पुस्तक मळवानु ठेकाणु—

वकील मोहनलाल हिमचद-पादरा (स्टेट वडोदरा)

वडोदरा—शियापुरामा, लुहाणामित्र स्टीम प्रिं प्रेसमा, विठ्ठलभाई आशाराम
ठक्करे ता १-६-१८ ना रोज प्रकाशक-शाह लल्लुभाई करमचद दलाल,
चपागला-मुबाई-ने माटे छापा प्रसिद्ध कर्युं

निवेदन.

श्रीमद् बुद्धिसागरसूरि ग्रन्थमालाक ४९ तरीके श्रीमद् देवचद्र प्रथम भाग बहार पडे छे जैन कोममा अढारमी सदीना अते अने ओगणीशमी सदीना प्रारभमा विद्यमान खरतरगच्छीय पडित श्रीमद् देवचद्रजी थएल छे तेमणे जे जे कृतियो बनावी छे ते प्रस्तावनामा पादराना वकील मोहनलाल हेमचदभाइए जणावी छे श्रीमद् आनदघनजी, श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्यायनी पेठे जैन कोममा महात्मा ज्ञानी तरीके श्रीमद् देवचद्रजी महाराज प्रख्यात थयेल छे श्रीमद् देवचद्रजी महाराजना ग्रन्थोनो जैन कोममा सादर साथे प्रचार थयो छे, थाय छे अने भविष्यमा थशे श्रीमद् देवचद्रजी महाराज जेवा द्रव्यानुयोगी गीतार्थथी जैनसघ अने खरतरगच्छनी महत्तामा वृद्धि थएल छे श्रीमद् देवचद्रजी महाराजनो तपागच्छीय आचार्य मुनिवरो साथे घणो सारो सबध हतो श्रीमद् उपाध्यायजी यशोविजयजीकृत ज्ञानसार ग्रन्थ पर तेमणे ज्ञानमजरी नामनी टीका रचेली छे अने दिगबरी शुभचद्राचार्यकृत ज्ञानार्णवनो ध्यानचतुष्पदी ग्रन्थमा सार खेंची सर्व गच्छोना महापुरुषो प्रत्ये गुणानुराग दर्शावी भविष्यना जैन साधुओ माटे स्वादर्शजीवन मुकी गया छे श्रीमद् द्रव्यानुयोगी गीतार्थ हता तेमनु चारित्र केवु उत्तम हतु ते तेमना बनावेला ग्रन्थोमाना उद्गारोथी सुस्पष्ट थाय छे, अने खरतरगच्छना अद्यपर्यंत थयेल सर्व आचार्यो मुनिवरोमा श्रीमद् देवचद्रजी महाराज प्रथम नबरे आवे छे एवा महापुरुषनी कृतिओने छपावी जाहेर करवामा आवे तो तेथी जैन कोम तथा जैनेतर

भारतबन्धुओपर महान् उपकार करी शकाय एवो विचार प्रथम श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजीना मनमा प्रगट्यो अने तेमणे पादरा निवासी सुश्रावक वकील मोहनलाल हेमचदभाइ, माणेकलाल, प्रेमचदभाइ, मगळभाइ वगेरे श्रावकोने जणाव्यो अने तेओए श्रीमद् देवचद्रजी महाराजकृत सर्व कृतियोने छपावीने बहार पाडवानो निश्चय कर्यो छे, तथा प्रवृति करी छे तेना फल तरीके श्रीमद् देवचद्र प्रथमभाग छपाइने बहार पड्यो छे अने द्वितीय भाग अल्पमासमा छपाइने बहार पडशे एम आशा रहे छे द्वितीय भाग छपाववानो आरभ करवामा आव्यो छे अने तेमां कया ग्रन्थो छपाववामा आवशे तेनु लीष्ट पण प्रस्तावनामा दर्शाववामा आव्यु छे श्रीमद्नी कृतियो छपाववामा मुख्य भाग लेनार अने तेमना रागी पादराना वकील श्रावक मोहनलाल हिमचदभाइ छे तेमणे त्रणसेना आशरे पत्रो लखीने ज्या त्या मुनिराजो तथा श्रावकोने मळीने श्रीमद्नी कृतियो भेगी करी छे अने पोताना अमूल्य वखतनो भोग आपीने श्रीमद्नी कृतियो छपाववानी व्यवस्था करी छे तेथी तेमने धन्यवाद घटे छे श्रीमद्ना ग्रन्थोना अभ्यासथी तेमना रागी बनेल पादरा निवासी द्रव्यानुयोगना अभ्यासी सुश्रावक शा माणेकलाल वरजीवनदास तथा शा प्रेमचदभाइ दलसुख तथा वडु निवासी छगनलाल लक्ष्मीचद तथा भाइलालभाइ चुनीलाल वगेरेए वकीलजी मोहनलाल हिमचदभाइनी पेठे श्रीमद्नी कृतियो छपाववामा आर्थिक सहायनी व्यवस्थामा सारो भाग लीधो छे तेथी तेमने धन्यवाद घटे छे वडोदरा–लुहाणामित्र स्टीम प्रेसना मालीक विठ्ठलभाइ आशाराभे जल्दी पुस्तक छापवा माटे प्रवृत्ति करी छे तेथी तेमने धन्यवाद आपवामा आवे छे,

तथा प्रुफो शोधमामा पडित लालचद भगवान् तथा पडित जयचद विठ्ठल तथा शास्त्री भाइशकर वैकुठराम तथा मुनि कीर्तिसागरजी तथा मास्तर चदुलाल नानचद वगेरेए थोडावणा अगे जे जे सहाय करी तेमाटे तेमने धन्यवाद घटे छे

आ पुस्तक छपाववामा आर्थिक सहाय करनाराओनो उपकार मानवामा आवे छे तथा जे जे मुनिराजोए तथा श्रावकोए श्रीमद्नी कृतियो मेळववामा साहाय्य करी छे तेनो प्रस्तावनामा उपकार मानवामा आव्यो छे श्रीमद् देवचद्रजीनी कृतियोनु श्वेताम्बर जैनोनी पेठे दिगबर जैनो पण वाचन श्रवण मनन करे छे, तेमना बनावेला पुस्तकोनो बहु प्रमाणमा फेलावो करवामाटे आर्थिक सहाय कर्त्ताओनी सहायथी पडतर किंमत करता पण मोंघवारीना समयमा घणीज ओछी मात्र रु २) किंमत राखवामा आवी छे एक हजार उपर पत्रवाळा ग्रन्थनी बिलकुल ओछी किंमत राखीने तेनो जैनोमा सर्वत्र फेलावो करवानो इरादो राख्यो छे तेथी हवे वाचको तेनो लाभ लेवा चूकशे नहीं एम आशा रखाय छे वालुचर निवासी श्रीयुत् झवेरी अमरचदजी बोथराए तेनी १५० प्रतियो लेवानी मागणीतो ग्रन्थ तेयार थता पूर्वे करी छे ते उपरथी श्रीमद् देवचद्रजीकृत कृतियोनी उपयोगितानो ख्याल आवी शके छे आ ग्रन्थनी किमतनी उपजेली रकम बने भाग छपावता वधशे तो तेनो अन्य द्रव्यानुयोगना तथा आध्यात्मिक ग्रन्थो छपाववामा उपयोग करवामा आवशे तेथी परपराए धार्मिक ग्रन्थोनो प्रचार तथा तेओनु प्राकट्य थशे एम अवबोधीने जैनोए तथा गुणानुरागी जैनेतरोए श्रीमद् देवचद्र प्रथम भागनो लाभ लेवा चूकवु नहीं अध्यात्मज्ञानप्रसारक मडळ तरफथी आप्रमाणे

उपयोगी पुस्तको बहार पड्या छे–पडे छे अने भविष्यमां सद्गृहस्थोनी साहाय्यथी उपयोगी पुस्तको बहार पडशे, माटे जैनधर्माभिलाषी सज्जनोए आ मडळने सहाय करवी जोइए

श्रीमद् देवचद्रजीकृत पुस्तको छपाववामां अत्यार सुधीमां जे जे गृहस्थो तरफथी मदद मळी छे तेमनां नामो नीचे प्रमाणे

५०१ शा मोहनलाल नाथाभाई पादरा
२०० शा मोहनलाल नरोत्तमदास रणु (पादरा)
२०० शा जवेरभाई भगवानदास कावीठा (बोरसद)
१०१ श्रीयुत श्रेष्टी अमरचदजी बोथरा–वालुचर (मुर्शीदाबाद)
३१ „ „ बुधसिंहजी बोथरा „
६१ „ „ जगपतिसिंहजी दुगड „
५१ „ „ हरखचदजी नाहटा „
२५ „ „ गुलाबचदजी भुरा „
१८६ शा हीरालाल छोटालाल पादरा
१५० बाई रतन शा चुनीलाल कहानदासनी विधवा रे इटोला (वडोदरा)
१०१ वकील मोहनलाल हीमचद पादरा
२५ सौ बाई जमना वकील मोहनलाल हीमचदना पत्नी पादरा
१०० शा लक्ष्मीचद लालचद वडु (पादरा)
१०० बाई चचळ शा दामोदर कल्याणदासनी विधवा वडु (पादरा)
८९ बेन मणी शा प्रेमचद दलसुखभाईनी भाणेज पादरा

८० शा केशवलाल लालचद वडोदरा मामानीपोळ
७५ शा केशवलाल नरोत्तमदास वड (पादरा)
७५ बाई आवार शा गोरधनभाई हीराचदनी विधवा अगुटण (डभोई)
५० शा रतनचद लावाजी कावीटा (चोरसद)
४१ शा भाईलाल चुनीलाल पादरा
२५ वकील नदलाल लल्लुभाई पादरा
२५ बाई साकळी ते शा मणीलाल चुनीलालनी विधवा पादरा.
२० एक गृहस्थ तरफथी पादरा
१० शा नीकमलाल पृजलाल राजळी (डभोई).
१० शा मुळजी पीताम्बरदास मुजपुर (पादरा)
५ बाई रुक्षमणी शा दलसुखभाई प्राणजीवनदासनी दीकरी पादरा
५ बाई टाही ते शा छोटालाल छगनलालनी विधवा पादरा
५ शा माणेकलाल वरजीवनदास ,,

२३४७

उपर प्रमाणे मदद करनारा सभ्य गृहस्थोनो उपकार मानवामा आवे छे तथा जे जे गृहस्थो हवे पछी मदद करशे तेनो द्वितीय भागमा नामसहित उपकार मानवामा आवशे आवा मोंघवारीना प्रसगमा श्रीमद्नी कृतियो छपाववामां आर्थिक सहायनी घणी जरुर छे. तपागच्छना श्रावकोनी पेठे खरतरगच्छीय श्रावको जो पोतानो उदार हाथ लबावशे तो

तेओ श्रीमद्ना रागी भक्त बनी तेमना पुस्तकोनो प्रचार करी अमूल्य लाभ प्राप्त करशे अने तेथी तेओ भविष्यनी जैन कोमना उपकारी बनशे ॥ इत्यल विस्तरेण ॥ ॐअर्हंशान्ति ३

अध्यात्मज्ञानप्रसारक मंडळ–मुबाई,
चपागली
स १९७४ चैत्र सुदि १

प्रस्तावना.

श्रीमद् देवचंद्रजी कृत सर्व ग्रंथो छपाववानो संकल्प.

श्रीमद् देवचंद्रजी महाराजकृत सर्व ग्रंथो छपाववानो संकल्प संवत् १९६८ ना चैत्र मासमां थयो योगनिष्ठ शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिश्वरजी विहार करता मुंबाई सुरत थई चैत्र मासमां पादरे पधार्या तत्समये श्रीमद्देवचंद्रजीकृत आगमसार नयचक्रसार विगेरे ग्रंथोनुं परिशीलन थयुं ते वखते गुरु महाराजे तेमना सर्व ग्रंथो मेळवी एकत्र करी छपाववा संबंधी उपदेश कर्यो तेथी तेम करवा दृढ निश्चय कर्यो, अने ते संबंधी विचारोनो प्रवाह शरु थयो, आद्यमां कया कया ग्रंथो छपाववा तेनो निश्चय कर्यो संवत् १९७२ नी सालमां श्रीमद् सूरिजी महाराज विजापुरमां चोमासुं रह्या ते समये तेमनी देखरेख नीचे तथा तेमनी दृष्टि प्रमाणे आगमसार ग्रंथ छपाववानो शरु कर्यो, वडोदराना लुहाणामित्र स्टीम प्रेसना मालीक रा विठ्ठलभाई आशारामे सगवड भरेली रीते पुस्तको छापी आपवानुं कबुल कर्युं तेथी तेमना प्रेसमां आगमसार ग्रंथ प्रथम आपवामां आव्यो, अने एक तरफ तेमना बनावेला पुस्तकोनी शोध अने संग्रह माटे जाहेर खबरो छपाववामां आवी

श्रीमद् देवचंद्रजी महाराजनुं नाम समग्र जैन कोममां प्रख्यात छे जैन कोमनो कोई पण फीरको तेमना नामथी अजाण्यो नथी, सर्व गच्छवाळाओ तेमना ग्रंथोनो प्रेमथी उपयोग करे छे तेथी तेमना सर्व ग्रंथो छपाववानी जाहेरखबर बहार

पत्वाथी जैन कोममा आनदनी लागणी फेलाई, तेमना ग्रथो ज्याथी ज्याथी मळे एवो सभव हतो त्या त्या अनेक स्थळे अनेक महाशयो उपर पत्रो लख्या

ग्रथोनी प्राप्ति माटे पत्रव्यवहार

श्रीमद् मुळचदजी महाराजना सघाडाना आचार्य श्रीविजय कमळसूरिजी, तथा तेमना शिष्य पन्यास केसरविजयजी, तथा मुनी लाभविजयजी, तथा मुनीराज श्रीहंसमुनिजी, तथा प्रवर्तकजी महाराजश्री कान्तिविजयजी, तथा मुनिराजश्री जिनविजयजी, तथा पन्न्यासजी महाराजश्री दानविजयजी तथा मुनिमहाराजश्री श्रीकृपाचद्रसूरिजी तथा पन्यासजीश्री भावविजयजी (पाली) तथा मुनीश्री नागचद्रजी (कच्छ) तथा मुनिश्री चित्तविजयजी तथा वालुचर (मुर्शीदाबाद) निवासी जवेरी अमरचदजी बोथरा तथा भोजक गीरधरभाई हेमचद तथा रा रा चीमनलाल डी० दलाल तथा जवेरी भोगीलाल ताराचद तथा रा रा मोहनलाल दलीचद देसाई तथा अन्य मुनिराज तथा ग्रहस्थो अने सस्थाओ साथे पत्रव्यवहार कर्यो

कया कया ग्रथो क्यां क्याथी मळ्या

१ आगमसारनी एक जुनी प्रति के जेमा प्रतिमापूजा, पुष्पपूजाचर्चा, गुणस्थानक स्वरूप, पापस्थानक स्वरूप ए चार विषयो के जे छपाएला आगमसारना नहोता ते प्रत पादराना भडारमाथी मळी अने तेवा वधारावाळी बे प्रतिओ सुरतना श्रीमोहनलालजी महाराजना भडारमाथी मळी * तथा मुनिश्री लाभविजयजी पासेथी एक प्रति तेवा वधारावाळी मळी

---

* प्रत न ४०९—५६०

२ नयचक्रसारनी एक जुनी प्रति मुनिश्री मोहनलालजी महाराजना भंडारमांथी * मळी ते परथी छपायला नयचक्रसारना जेवी हती

३ ज्ञानमंजरी टीकानी जुनी बे प्रतिओ मुनि मोहनलालजी महाराजना भंडारमांथी मुनिश्री देव मुनिजी मारफत मळी तथा तेमनाज तरफथी तामाज छपाएली एक प्रति मळी

४ गुरु गुणषट्त्रिंशिकानो टबो—तेनी एक प्रति पन्यास गुलाबविजयजी पासेथी भोजक गीरधरभाई हेमचंदे मेळवी आपी अने तेने श्री आत्मानंद सभा तरफथी छपाएल मूळ टीका सहितनी मळेली प्रतना आधारे सुधारी

५ ध्यानदीपिकाचतुष्पदीनी एक प्रति आचार्य श्रीविजयकमळसूरिजी (मुळचंदजी महाराजना) मारफत थोराजीना भंडारमांथी शा जादवजी ग्वजीए मोकली तेना आधारे छपावी

६ पांच कर्मग्रंथनो टबो आनी एक प्रति पन्यास गुलाबविजयजी पासेथी भोजक गीरधरभाइए मेळवी आपी बीजी प्रति मळी नथी

७ विचार रत्नसारनी एक प्रति प्रवर्तकजी श्री कांतिविजयजी महाराज पासेथी तथा एक प्रति अमदावाद श्रीशांतिसागरजीना भंडारमांथी शा जमनादास घेलाभाइ मारफत मळी तथा एक प्रति मुनि लाभविजयजी पासेथी मळी

८ प्रश्नोत्तरनी एक प्रति प्र श्रीकांतिविजयजी महाराज पासेथी मळी

---

* नं ९४६ पान ४१

९ कर्मसवेध अमदावाद डेलाना उपाश्रयना भडारमायी ×
झवेरी भोगीलालभाई ताराचद मारफत मळी

१० प्रतिमापुष्पपूजासिद्धि

११ गुणस्थानकअधिकार

आ बने विषयो पादराना तथा सुरतना भडारमायी+ तथा मुनिलाभविजयजी पासेथी मळेली आगमसारनी जुनी प्रतिओमायी मळेल छे, अने प्रतिमापुष्पपूजासिद्धिना जुदा लखेला भागनी बे प्रतो अमदावाद डेलाना उपाश्रयना ज्ञान भडारमायी मळेली छे * ज्यारे आगमसार छपातो हतो ते वखते आ विषयवाळी प्रतिओ मळेली नही होवाथी तेनी अदर दाखल करेल नथी अने पाछळथी मळवाथी ते आगमसारना पेटा भाग तरीके आ ग्रथमा पाछळ दाखल करवामा आवेल छे

श्रीमद् देवचद्र द्वितीय भागमां छापवाना ग्रथो.

१२ (१) विचारसार मूळ-सस्कृत-टीका—श्रीमद् देवचद्रजीकृत विचारसार नामनो ग्रथ छे एवी प्रथम खबर मने वालुचर नीवासी श्रीयुत् अमरचदजी बोथराए अत्रेथी छपावेल जाहेरखबर वाचीने आपी अने ते ग्रथनी मुळ-टबावाळी एक प्रत तेमणे श्रीजिनयश सुरिजीना पुस्तक भडारमाथी मोकली आपी अने तेवीज बीजी प्रती रा रा चीमनलाल डी० दलाल

× डाबडो न ३२ बी प्रत न ४२

+ प्रत न ४०९-९६२ पान ६६ ६७

* डाबडो न २० बी प्रत न ८०-८१ पान १०-७

एमणे बीकानेरथी त्यांना प अनुपचन्द्रजीपति पासेथी खरीद करी मारापर मोकली आपी तथा बेबीज एक प्रति प्र० श्री कान्तिविजयजी महाराज पासेथी मळी × तथा आ ग्रथनी सपूर्ण टीकावाळी प्रति अमदावाद टेलाना उपाश्रयना ज्ञानभंडारमाथी+ मळी तथा तेज भडारमाथी टबावाळी एक प्रत मळी । तथा विचारसारनी प्रथमखडनी सस्कृत टीकावाळी प्रत उपाध्यायजी श्रीवीरविजयजी शास्त्रसग्रहमाथी प श्रीदानविजयजी महाराज पासेथी मळी (पान ६८) आ स्थळे एक बात जणाववी अगत्यनी छे के अमदावाद टेलाना उपाश्रयनो ज्ञानभडार जे घणो जुनो तथा तेमानो ग्रथसग्रह घणो उत्तम अने अमूल्य छे, परतु कार्यवाहकोना मतभेदना लिधे तेमाथी प्रतिओ मेळववा घणी मुश्केलीओ नडी हती, छता अध्यात्मज्ञान रसिक झवेरी भोगीलालभाइ ताराचद एमणे खास प्रयास करी जोइती प्रतिओ कढावी आपी हती तेमाटे तेमनो उपकार मानुछु

१३ (२) अध्यात्मगीता—आ ग्रथ प्रथम छपायेलो हतो ते शीवाय तेनी बे प्रतिओ सुरत मोहनलालजी महाराजना ज्ञानभडारमाथी मळी हती *

१४ (३) द्रव्यप्रकाश—नी एक प्रति अमदावाद विद्याशाळाना ज्ञानभंडारमाथी भोजक गीरधरभाइ मारफत अने एक प्रति पन्यास लाभविजयजी महाराज पासेथी मळी हती.

× डाबडो न ४९ पोथी न ९७ पान ६८

+ टाबडो न ३२ बी पूर्वार्ध प्रत न ९० उत्तरार्ध न ९१.

– ,, न ३२ बी प्रत न ९२

* प्रत न ७०२–४३९ पा १२–४९

१५ (४) चोवीशी मोटी टबासह—आ चोवीशीनी प्रथम छपायली प्रतिओ उपरात प्र० श्रीकातिविजयजी महाराज पासेथी आजथी दोढसो वर्षपर सुरतना भणसाली कुटवे लखावेली प्रति मळी छे आ प्रति प्रथम छपाएली चारे आवृतिओ करता वधारे शुद्ध छे छापेली प्रतिओमा जुनी आवृति अमदावाद श्रीशातीसागरजीना भडारमा छे

१६ (५) वीस विहरमानजी स्तवन (वीसी)—आ ग्रथ प्रथम छपायेल छे

१७ (६) गतचोवीसी (स्तवन २१) प्रथम छपाएल छे छे छेल्ला त्रण स्तवनो शोध कर्या छता मळी शक्या नथी कोइ महाशयना जोवामा आवेने जणावशे तो आभार थशे

१८ (७) स्नात्रपूजा १९ (८) नवपदजीपूजा (उलाळा) २० (९) एकवीशप्रकारी पूजा २१ (१०) अष्टप्रकारी पूजा	आ चारे ग्रथो प्रथम पूजा सग्रहमा छपाएल छे तेनी जुनी हस्तलीखीत प्रति-

ओ पादराना पुस्तक भडारमा छे

२२ (११) वीरनिर्वाणना स्तवननी ढाळो—नी एक प्रति अमदावाद विद्याशाळाना भडारमाथी भोजक गीरधरभाइ मारफत मळी छे

२३ (१२) बाहुजीन स्तवनना टबो अमदावाद डेलाना उपाश्रयना भडारमाथी मळेल छे * बीजा ओगणीस स्तवनना टबो श्रीमदे लखेलो होय एवो सभव छे पण मळेल नथी

* डाबडा न ४४ नी प्रत न ८ पान ७

२४ (१३) भावी चोवीशीना प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभजीनु स्तवन श्रीयुत अमरचंदजी बोथरा तथा भोजकगीरधर हेमचंद तरफथी मळेल छे बीजा तेवीस स्तवनो छे एम सांभळ्यु छे पण हजु सुधी मळी शक्या नथी

२५ (१४) सीमंधरजिनस्तवन मोटु भोजक गीरधरभाई तरफथी मळ्यु छे तेम छपायेलु पण छे

२६ (१५)
२७ (१६)
२८ (१७)
२९ (१८)
— सिद्धाचळना स्तवनो आ चारे स्तवनो पादराना भंडारस्थ टीपणामांथी मळेल छे

३० (१९) दीवाळीनु स्तवन नानु
३१ (२०) नवानगरजी स्तवन
३२ (२१) ध्रुपद स्तवन
— पादराना भंडारमांथी मळेल छे

३३ (२२) समवसरणस्तवन
३४ (२३) कुभस्थापना स्तवन
— आ बे स्तवनो श्रीयुत अमरचंदजी बोथरा तथा भोजकगी० हे० तरफथी मळेल छे

३५ (२४) सहस्रकुटनु स्तवन भोजकगी० हे० तरफथी मळेल छे तेमज जैन हेरल्डना १९१५ ना खास अंकमा छपायलु छे

३६ (२५) अजितनाथ जिनहोरी होरी संग्रहमा छपाएल छे

३७ (२६) प्रभुस्तुति
३८ (२७) सिद्धाचळस्तुति
३९ (२८) विंशस्थानकस्तुति
४० (२९) गीरनारस्तुति
४१ (३०) ज्ञानवद्धमानस्तुति
— आ स्तुतिओ श्रीयुत अमरचंदजी बोथरा तरफथी मळी छे.

४२ (३१) वडी साधुवदनानी ढालो श्रीयुत अमरचदजी बोथरा तरफथी मळेल छे

४३ (३२) अष्टप्रवचन मातानी सज्झायो ४४ (३३) प्रभजनानी सज्झाय ४५ (३४) ढढण ऋषिनी सज्झाय ४६ (३५) समकितनी सज्झाय ४७ (३६) गजसुकुमालनी सज्झाय	आ सज्झायो छपायेली छे

४८ (३७) पचेंद्री विषय त्यागपद—श्रीयुत् अमरचदजी बोथरा तरफथी मळ्यु छे

४९ (३८) | सुरत नीवाशी जानकीवाइ उपर लखेला
५० (३९) | पत्रो २—आ बे पत्रो आत्मानदप्रकाशमा छपाएला छे ते उपरथी लीधा छे

५१ (४०) एक श्रावक उपर लखेलो पत्र—प्र० श्रीकातीविजयजी महाराज पासेथी मळ्यो छे

५२ साधु स्वाध्याय

५३ बे सज्जायो प अजितसागरगणि तरफथी मळेल छे

उपर प्रमाणे ज्यायी पुस्तको स्तवनो सज्झायो विगेरे मळ्या तेनी वीगत आपी छे श्रीमद देवचद्रजी महाराजना रागी भक्तोमा श्रीयुत् अमरचदथी बोथरानु नाम प्रथम पद धरावे छे तेमणे श्रीमद्नी केटलीक कृतिओना नाम तथा ते क्या क्या मळी शकशे ते मने पत्र लखी प्रथमथी जणाव्यु हतु तेमना पत्रव्यवहार उपरथी तेमनी श्रीमद् उपरनी भक्तिनो उत्तम ख्याल आवी शके छे " श्रीमद् देवचद्र " पहेलो भाग छपायलो तेमनापर मोकल्यो त्यारे तेमने अत्यत आनद थयो हतो ते सबधी पत्रनो उतारो नीचे आप्यो छे

पत्र

" श्रद्धास्पद धर्मबन्धु वकील मोहनलालभाइ जोग ली० बालुचरसे अमरचद बोथरेका प्रणाम बहुत बहुत वंचियेगा, यहा कुशलमगल है आप लोगोकी कुशल सदा चहाता हु अपरच समाचार बचियेगा आगु " श्रीमद देवचन्द्र " नामाग्रथका मुद्रिताश आपने कृपापूर्वक भेजा सो पतिनपात्रनि तिथि चैत्र शुकल त्रयोदशीके दिवस मुझे मिला था आपकी इस कृपाके लीये मै आपका आ जन्म ऋणी भया हु, उपरोक्त ग्रथका पहुच समाचार में कलकत्ते चले जानेसे फॉरन देनमे देरि भया आशा है हमारा ए अपराव क्षमा करिनेगा

ओर कलदिनमें कलकत्तेसे आया हु " विचारसार " ग्रंथ पहोचा सो जानियेगा, विकानेरवाले श्रीपूज्यजी कहा है मालुम नही भया मालुम होनेसे उनको पत्र लिखकर सर्व वात पुछ-कर आपको लिखुगा

× × × ×

आगु–कमसेकम हजार पुस्तक छपवाइएगा ऐसा हमारा अनुमान था इसिसे १५१ पुस्तक भेजनेको लिखा था लिकन पुस्तक कम छपेगी तो पु १५१ भेजनेकी जरुरत नहि है, पुस्तक छववानेके खर्च बावत रुपीया चार पाच रोजमे भेजेगे

श्रीमद्कृत समस्त ग्रथादि छपानेके विचार है एक अक्षर भी छोडनेका इरादा नहि है लिखा सो वाचकर खुशी भये

पूज्याचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजीसूरिजी तपागच्छके होकर श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराजके प्रति इतनी भक्ति रखते है इह इस कालमे अपूर्व है इस लिये श्रीआचार्य बुद्धिसागरसूरिजीके चरणमे वारवार नमस्कार हो

× × × ×

श्रीमद् समन्वि हमको जो कुछ मालुम था सो बतलाना हमारा फरज था सो हम कथचित पालन किया यह हमारा सौभाग्य है इस लिये हमारी प्रससा की कोई जरुरत नहिं मुजे लज्जित होना पडता है सो मालुम किजियेगा धर्म स्नेह सविशेष रखीयेगा, पत्रोतर शीघ्र दिजियेगा यद्दा के लायक काम हो सो लिखियेगा इति

छपाव्या विनाना पुस्तको

(१) गुरुगुणछत्रीशिका टबो (२) ध्यानदीपिका चतुष्पदी (३) कर्मग्रथ पाचमो टबो (४) विचाररत्नसार पूर्ण (५) प्रश्नोत्तर (६) विचारसार मुळ–टीका अने टबो (७) कर्मसवेध प्रकरण (८) प्रतिमापुष्पसिद्धि (९) गुणस्थानाधिकार (१०) द्रव्यप्रकाश (११) बाहुजिनस्तवन टबो (१२) वीर निर्वाणनी ढालो (१३) पद्मनाभजिन-स्तवन (१४–१५–१६–१६) सिद्धाचलना स्तवन (१८) नवानगरस्तवन (१९) ध्रुवपदस्तवन (२०) समवसरण स्तवन (२१) कुभस्थापनस्तवन (२२) सिद्धाचलस्तुति (२३) वीशस्थानकस्तुति (२४) ज्ञानबहुमानस्तुति-(२५) गिरनारस्तुति (२६) कागळ- (२७) पचेन्द्रिय विषय-त्यागपद (२८) प्रभुस्तुति साधुपद अन्यपद ए रीते त्रीश छपाव्या वगरना हता ते छपाव्या छे अने ते विनाना पहेला छपावेला हता ते पुन शुद्ध करी छपावेल छे

कइ साल मा क्या पुस्तको क्या गाममा रच्या

सवत् १७७६ फागण सुदि त्रीजे मोटा कोट–मरोट–मा पोताना मित्र दुर्गादासना बोधार्थे आगमसारनी रचना करवामा आवी

सवत् १७९६ ना कार्तिक सुदि पाचमे नवानगरमा ज्ञानसार उपर ज्ञानमजरी टीका रचवाना आवी

सवत् १७६६ ना वेशाख वदि १३ ना रोज मुल्तान शहेरमां भणशाळी मीठुमल्ना आग्रहथी ध्यानदीपिकाचतुष्पदी रची

सवत् १७९६ ना कार्तिक सुदि १ ना रोज नवानगरमा विचारसार ग्रथरच्यो

सवत् १७६७ ना पोष वदि १३ ना रोज द्रव्यप्रकाश ग्रथ रच्यो

सवत् १८०४ ना मागशर सुदि १३ ना रोज सिद्धाचलजीनु स्तवन सुरतवाशी कचरा कीकाना सघमा सिद्धाचळजीना दर्शन करी रच्यु

जेसलमेरमा वर्धमान शेटना आग्रहथी पचभावनानी रचना करी शाल मळती नथी

लीमडी शहेरमां अध्यात्मगीतानी रचना करी

भावनगरमा दीवाळीना दीवसे वीरनिर्वाणनु स्तवन (ढालो) रची शाल लखी नथी.

ए शीवाय बीजा ग्रथोनी शाल तथा स्थळ मळेल नथी

श्रीमद्नुं जीवनचरित्र

श्रीमद्नु जीवनचरित्र हजी परिपूर्ण उपलब्ध थयु नथी ते सबधी ज्या त्या पत्रो लखी हकीकत मेळववा प्रयास करवामा आवे छे श्रीमद् देवचद्र द्वितीय भागमा श्रीमद्ना जीवनचरित्र सबधी जे-जे हकीकत मळशे ते दाखल करवामा आवशे-तथा तेमनी कृतिओ सबधी उपोद्घातमा लेख्य विचारो प्रगट करवामा

आवशे प्रथम भागमा पत्र विस्तार भयथी ते दाखल करेल नथी श्रीमद्‌ना जीवनचरित सबधी जे जे महाशयो खबरो पूरी पाडशे तेमनी उपकारसह बीजा भागमा नोंध लेवामां आवशे

अप्रगट कृतियो

श्रीमद्‌नी जे जे कृतियो मळी तेनु लीए उपर आपवामां आव्यु छे तेम छता हजी जे जे अप्रगट कृतियो रही होय ते सबधी जाहेरखबरथी तथा पत्रव्यवहारथी प्रयत्न करवामा आवशे श्रीमद्‌नी अप्रगट कृतिओ मेळववामा जे जे महाशयो स्हाय करशे तेमनी बीजा भागमा उपकार सह नोंध लेवाशे

पुस्तको मेळवी आपनार महाशयोनो उपकार

अमदावाद डेलाना उपाश्रय ज्ञानभडारमाथी बने पक्षना मतभेद प्रसगे पुस्तको न मळी शके तेवा सजोगोमा खास काळजी राखी श्रीमद्‌नी कृतियोनी प्रतिओ अपाववामा झवेरी भोगीलालभाइ ताराचदे जे सहाय आपी छे तेमाटे तेमनो आभार मानुछु श्रीमद् देवचद्रजीनी चोवीशी तथा अन्य वाचनथी तेओनो श्रीमद्‌पर पूर्ण राग प्रगटेलो जणाय छे ने तेथी तेमणे आ कार्यमा सारी स्हाय आपी छे

वालुचरवाळा झवेरी अमरचदजी बोथरा जेओ श्रीमद्‌ना पूर्ण रागी ज्ञानरसिक भक्त छे तेमनो तथा श्रीमद्‌नी कृतिना पुस्तको आपवा माटे श्रीमद् प्रवर्तक श्रीकांतिविजयजी तथा श्रीमद् विजयकमलसूरीश्वरजी, पन्यास लाभविजयजी, पन्यास केसरविजयजी, पन्यास गुलाबविजयजी, मुनि हेतमुनि, भोजक

गीरधरभाइ हेमचद तथा धोराजीना शेठ जादवजी रवजी विगेरेनो अन्तःकरणपूर्वक आभार मानुछु

आ कार्यना मूळ उत्पाद अने प्रेरक परमपूज्य योगनिष्ट शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिश्वरजी महाराज जेओए मात्र आ ग्रंथ छपाववानो उपदेश करीनेज नहीं अटकता तमाम ग्रंथो शोधवा सुधारवामा तेमज प्रुफो तपासवामा आशरे वे वर्षथी सतत प्रयास सेवेलो छे एटलुज नही पण विचारसारनी संस्कृत टीका अने बीजा केटलाक ग्रंथ एटला तो अशुद्ध अने अव्यवस्थित रीते लखायला हता के जे शुद्ध करवामा तेओ श्रीनो घणो काळ व्यतीत थयो छे तेओ श्रीनी आटली बधी काळजी अने सहाय न होत तो आ कार्य कदापी थई शकत नहीं तेथी तेओश्रीनो जेटलो उपकार मानीए तेटलो ओछो छे, अने तेथी आ कार्यनी सफळतानु सर्व मान तेओश्रीनेज घटे छे.

आ पुस्तकसंग्रहमा छपाएल ग्रंथो पैकी केटलाकनी प्रतिओ घणी जुनी पण अशुद्ध होवाथी तेमज तेनी मेळवणी माटे पुरतु साधन नहीं मळवाथी तेने शुद्ध करवा प्रयत्न कर्या छता घणी भुलो रही जवानो संभव छे तेनु शुद्धिपत्रक दाखल करेलु छे छता पण कोई स्थळे भुलो रहेली होय तो ते सुज्ञ वाचको सुधारी वाचशे अने मने जणावशे तो तेमनो आभार मानी बीजी आवृत्तिमा सुधारो करवामा आवशे

आ ग्रंथ संबधमा जे काई लखवानुं बाकी रहेलु हशे ते बीजी आवृत्तिमा जणाववामा आवशे

छेवटे श्रीमद्‌नी कृतिओ अने जीवनचरित्र संबंधी तेमज आ ग्रंथ संबंधी जे जे उपयोगी सुचनाओ आपवानु योग्य लागे तेवी सुचनाओ आपवा सर्व सज्जनोने विनति करी आ प्रस्तावना पूर्ण करु छु, अने मारा जीवननो जे कांई समय आ कार्यमां व्यतित थाय छे तेमाटे मारा आत्माने धन्य मानु छु

पादरा
चैत्र सुदि १ सं १९७४ } वकील मोहनलाल हीमचंद

अनुक्रमणिका.



॥ श्रीसर्वज्ञाय नमः ॥

॥ अथ ॥

॥ श्रीपंडितदेवचंद्रजीकृत ॥

आगमसार.

भव्यजीवने प्रतिबोधवा निमित्ते मोक्षमार्गनी वचनिका कहे छे तिहां प्रथम जीव अनादिकालनो मिथ्यात्वी हतो ते काललब्धि पामीने त्रण करण करेछे तेना नाम–पहेलुं यथाप्रवृत्ति करण, बीजुं अपूर्व करण, अने त्रीजुं अनिवृत्ति करण

तेमां पहेलुं यथाप्रवृत्ति करण कहेछे १ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४ अंतराय, ए चार कर्मनी त्रीस कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति छे, तेमांथी ओगणत्रीस कोडाकोडी खपावे अने एक कोडाकोडी बाकी राखे, तथा १ नामकर्म, २ गोत्रकर्म, ए बे कर्मनी वीस कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति छे, तेमांथी ओगणीस खपावे अने एक कोडाकोडी राखे, अने मोहनीयकर्मनी सित्तेर कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति छे तेमांथी अगणोतेर खपावे, बाकी एक कोडाकोडी शेष राखे । एवी रीते एक आयुकर्म वर्जीने बाकी साते कर्मनी एकपल्योपमना असख्यातमा भागेन्यून एक कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति राखे,

एवो जे वैराग्यरूप उदासी परिणाम तेने यथाप्रवृत्तिकरण कहिये ए पहेलु करण, सर्वसंज्ञी पचेंद्रीजीव अनन्तीवार करेछे

हवे बीजु अपूर्वकरण कहेछे ते एक कोटाकोडी सागरोपमनी स्थितिमाहेथी एक मुहूर्त अने अनादि मिथ्यात्व जे अनतानुबंधीआनी चोकडी ते खपाववाने अज्ञान हेय ते छाडवु, अने ज्ञान उपादेय एटले आदरवु, ए गाठारूप अपूर्व कहेता पहेला क्यारे न आव्यो एवो जे परिणाम ते अपूर्व करण कहीये, ए बीजु करण ते समकितयोग्य जीवने थाय

हवे त्रीजु अनिवृत्ति करण कहेछे ते मुहूर्त्तरूप स्थिति खपावीने निर्मल शुद्ध समकित पामे मिथ्यात्वनो उदय मटे त्यारे जीव उपशम समकित पामे, एवो जे परिणाम ते अनिवृत्ति करण कहिये ए करण कीधाथी गठीभेद थयो कहीए उक्तञ्च आवश्यकनिर्युक्तौ “ जा गठी ता पढम । गठीसमय छेओ भवेबीओ ॥ अनिअट्टिकरण पुण । समत्तपुरक्खडेजीवे ॥ १ ॥ ऊसर देस दड्ढिल्लिय च । विज्जाइ वणदवो पप्प ॥ मिच्छत्तस्साणुदए । उवसमसम्म लहइ जीवो ॥ २ ॥ एम मिथ्यात्वनो उदय मट्याथी जीव समकित पामे, ते समकितनी सद्दहणाना बे भेद छे, एक व्यवहार समकित सद्दहणा, बीजी निश्चय समकित सद्दहणा

देवश्रीअरिहत देवाधिदेव, अने गुरु सुसाधु जे सूधो अर्थ कहे ते, तथा धर्म केवलीनो प्ररूप्यो जे आगममा सातनय तथा एक प्रत्यक्ष बीजु परोक्ष ए बे प्रमाण अने चार निक्षेपेकरी सद्दहे, एवी सद्दहणा ते व्यवहार समकित कहिये ए पुण्यनु कारण तथा धर्म प्रगट करवानु कारण छे एवी रुचि ज्ञानविना पण घणा जीवने उपजे.

बीजु निश्चयसमकित ते आवी रीते जे निश्चय देव ते आपणोज आत्मा जीव निष्पन्नस्वरूपी सिद्ध ते संग्रहनयनी-सत्तागवेषता, तथा निश्चयगुरु ते पण आपणो आत्माज तत्त्व-रमणी, अने निश्चयधर्म ते आपणा जीवनो स्वभावज छे एवी सद्दहणा ते मोक्षनु कारण छे केमके जीव स्वरूप ओलख्या विना कर्मखपे नहीं एवी शुद्ध सद्दहणा ते निश्चयसमकित

हवे ज्ञाननु स्वरूप कहेछे ते ज्ञानना वे भेदछे एक व्यवहारज्ञान, बीजु निश्चयज्ञान, तेमा जे अन्यमतिना सर्व-शास्त्र जाणवा अथवा जेनागममध्ये कह्या जे एकगणितानुयोग ते क्षेत्रमान, बीजो चरणकरणानुयोग ते क्रियाविधि, त्रीजो धर्मकथानुयोग ए त्रण अनुयोगनु जाणवापणु ते सर्व व्यव-हारज्ञान छे अथवा अन्तरउपयोगविना जे सूत्रना अर्थ करवा ते पण व्यवहारज्ञान कहियें

हवे निश्चयज्ञान ते छ द्रव्य तथा तेना गुण अने पर्याय सर्वेने जाणे तेमा पाच अजीव द्रव्यछे ते हेय—कहेता छाडवायोग्य जाणी छाडवा, अने एक जीवद्रव्य ते निश्चयेंकरी सिद्धसमान मोक्षमयी मोक्षनो जाणनार मोक्षनु कारण मोक्षनो-जावावालो मोक्षमाज रहे छे एहवो आपणो जीव अनतगुणी अरूपीछे तेनेज ध्यावे ते निश्चयज्ञान कहियें

हवे एकधर्मास्तिकाय, बीजो अधर्मास्तिकाय, त्रीजो आका-शास्तिकाय, चोथो पुद्गलास्तिकाय, पाचमो जीवास्तिकाय, अने छट्ठो काल ए छ द्रव्य शाश्वताछे तेनु ज्ञान कहे छे. ए छ द्रव्य मध्ये पाच अजीव द्रव्यछे अने एक जीव द्रव्य ते चेत-नालक्षणवतछे उपादेयछे

हवे ए छ द्रव्यना गुण कहेछे पहेलो धर्मास्तिकायना चार गुण एक अरूपी, बीजो अचेतन, त्रीजो अक्रिय, चोथो गतिसहायगुण बीजा अधर्मास्तिकायना पण चार गुणछे एक अरूपी, बीजो अचेतन, त्रीजो अक्रिय, अने चोथो स्थिति-सहायगुण त्रीजा आकाशास्तिकायद्रव्यना चार गुणछे एक अरूपी, बीजो अचेतन, त्रीजो अक्रिय, चोथो अवगाहना दान-गुण हवे कालद्रव्यना चार गुण कहेछे एक अरूपी, बीजो अचेतन, त्रीजो अक्रिय, चोथो नवापुराणवर्त्तनालक्षण हवे पुद्गल-द्रव्यना चार गुण कहेछे एकरुपी, बीजो अचेतन, त्रीजो सक्रिय चोथो मिलणविखरणरूप पूरणगलन गुण हवे जीवद्रव्यना चार गुण कहेछे एक अनतज्ञान, बीजो अनतदर्शन, त्रीजो अनन्तचारित्र, चोथो अनतवीर्य, ए छ द्रव्यना गुण कह्या ते नित्यध्रुवछे

हवे छ द्रव्यना पर्याय कहेछे धर्मास्तिकायना चार पर्यायछे. एक खध, बीजो देश, त्रीजो प्रदेश, चोथो अगुरुलघु अधर्मास्तिकायना चार पर्याय एक खध, बीजो देश, त्रीजो प्रदेश, चोथो अगुरुलघु, पुद्गल द्रव्यना चार पर्याय एक वर्ण, बीजो गध, त्रीजो रस, चोथो स्पर्श अगुरुलघुसहित, तथा आकाशास्तिकायना चार पर्याय एक खध, बीजो देश, त्रीजो प्रदेश, चोथो अगुरुलघु, कालद्रव्यना चार पर्याय एक अतीत काल, बीजो अनागत काल त्रीजो वर्त्तमान काल, चोथो अगुरुलघु, अने जीव द्रव्यना चार पर्याय एक अव्याबाध, बीजो अनवगाह, त्रीजो अमूर्तिक, चोथो अगुरुलघु ए छ द्रव्यनापर्याय कह्या

हवे छ द्रव्यना गुणपर्यायनु साधर्म्यपणु कहेछे अगुरु लघुपर्याय सर्वद्रव्यमा सरीखो छे अने अरूपीगुण पाच द्रव्यमा

छे. एक पुद्गलद्रव्यमा नथी, तथा अचेतनगुण पाच द्रव्यमाछे एक जीवद्रव्यमा नथी, अने सक्रियगुण जीव तथा पुद्गल ए बे द्रव्यमाछे बाकी चारद्रव्यमा नथी, तथा चलणसहायगुण एक धर्मास्तिकायमाछे, बीजा पाच द्रव्यमा नथी, वली स्थिरसहायगुण एक अधर्मास्तिकायमा छे बीजा पाच द्रव्यमा नथी, तथा अवगाहनागुण ते एक आकाशद्रव्यमाछे, बीजा पाच द्रव्यमा नथी, अने वर्तनागुण ते एक कालद्रव्यमाजछे, बीजा पाच द्रव्यमा नथी, तेमज मिलणविखरणगुण ते पुद्गलमाछे, बीजा द्रव्यमा नथी तथा ज्ञान-चेतना गुण ते एक जीव द्रव्यमा छे, पण बीजा-द्रव्यमा नथी. ए मूलगुण कोइ द्रव्यना कोइ द्रव्यमा मिले नहीं. एक धर्म, बीजो अधर्म, त्रीजो आकाश, ए त्रण द्रव्यना त्रण गुण तथा चार पर्याय सरिखाछे अने त्रण गुणें करी तो काल-द्रव्य पण ए समान छे

हवे वली अग्यार बोले करी छद्रव्यना गुणजाणवाने गाथा कहेछे

परिणामि जीव मुत्ता, सपएसा एग खित्त किरिआय निञ्च कारण कत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे । १ ।

अर्थ-निश्चयनयथी आप आपणा स्वभावे छए द्रव्य परिणामी छे अने व्यवहारनयथी जीव तथा पुद्गल ए बे द्रव्य परिणामी छे तथा एक धर्म, बीजो अधर्म, त्रीजो आकाश अने चोथो काल, ए चार द्रव्य अपरिणामी छे तथा छ द्रव्यमा एक-जीव द्रव्य ते जीवछे, बीजा पाच द्रव्य अजीव छे तथा छ द्रव्यमा एक पुद्गल मूर्तिवन्त रूपी छे अने पाच द्रव्य अमूर्तिमत अरूपी छे छ द्रव्यमा पाच द्रव्य सप्रदेशी छे, अने एक-काल-द्रव्य अप्रदेशीछे. तेमा एक धर्मास्तिकाय. बीजो अधर्मा-

स्तिकाय ए बे द्रव्य असख्यात प्रदेशी छे, अने एक आकाश-द्रव्य अनतप्रदेशीछे जीव द्रव्य असख्यात प्रदेशीछे, पुद्गलपरमाणु * अनतप्रदेशी छे, परमाणुआ अनताछे एम पाच द्रव्य सप्रदेशीछे अने छट्ठो काल अप्रदेशी छे

छ द्रव्यमा एकधर्मास्तिकाय, बीजो अधर्मास्तिकाय, त्रीजो आकाशास्तिकाय ए त्रण ते एकेक द्रव्यछे, तथा एक जीवद्रव्य बीजो पुद्गलद्रव्य त्रीजो कालद्रव्य ए त्रण द्रव्य अनेकअनेकछे, छ द्रव्यमा एक आकाशद्रव्य क्षेत्रछे, अने बीजा पाच द्रव्य क्षेत्रीछे, निश्चयनयथी छ द्रव्य पोतपोताना कार्ये सदा प्रवर्त्तेछे माटे सक्रियछे, अने व्यवहारनयथी जीव तथा पुद्गल ए बे द्रव्य सक्रियछे, तेमा पण पुद्गल सदा सक्रियछे, अने जीव द्रव्यतो ससारी थको सक्रियछे, पण सिद्धअवस्थायें थको ससारी क्रिया करवाने अक्रिय छे, तथा बाकीना चार द्रव्य तो अक्रियछे, निश्चयनयथी छ द्रव्य नित्यछे ध्रुवछे, अमे उत्पादव्ययेंकरी अनित्यपणे पण छे तथा व्यवहारनयें जीव अने पुद्गल ए बे द्रव्य अनित्यछे, बाकीना चार द्रव्य नित्यछे, यद्यपि उत्पादव्ययध्रुवपणे सर्व पदार्थ परिणमेछे तोपण एक धर्म, बीजो अधर्म, त्रीजो आकाश, चोथो काल, ए चार द्रव्य सदा अवस्थितछे ते माटे नित्य कह्या

छ द्रव्यमा एक जीव द्रव्य अकारण छे अने पाच द्रव्य कारण छे केमके पाचे द्रव्य जीवने भोगमा आवे छे माटे कारण कहिये केमके धर्मास्तिकाय चालवानो साह्य आपे छे अधर्मास्तिकाय थिररहेवानो साह्य आपे छे आकाशास्तिकाय अवकाश आपे छे पुद्गलास्तिकाय जीवने मधुरादि, सुरभिगधादिक तथा सकोमल स्पर्शादिक भोगपणे थाय छे तथा कालद्रव्य ते जीवने जरा, बाल,

- *, पुद्गलास्तिकायना स्कन्धो पर्यायो अनतप्रदेशी छे

तारुण्य अवस्था दिएछे, तथा अनादि ससारी जीव भवस्थिति परिपाक थवा एक अतर्मुहूर्तकालमा सकलकर्म निर्जरी मोक्ष पहोंचे तिहा सिद्ध अवस्थायें अनतोकाल पर्यंत जीव अनता सुखने विल्से माटे कालद्रव्य पण जीवने भोग थाय छे पण एक जीव द्रव्य कोइने भोग आवनो नथी माटे अकारण कह्यु अने पाच द्रव्य भोग आवे माटे कारण कह्या तथा घणी प्रतोमा तो सक्षेपे एटलु छे जे छ द्रव्यमा एक जीव द्रव्य कारण छे पाच द्रव्य अकारणछे ए पण वात घणीरीते मलतीछे माटे जे बहुश्रुत कहे ते खरु मारी धारणा प्रमाणे जीवद्रव्य कारण अने पाच द्रव्य अकारण एम सभवे छे" निश्चयनयथी छए द्रव्य कर्त्ताछे अने व्यवहारनयें एक जीवद्रव्य कर्त्ताछे बाकी पाचद्रव्य अकर्त्ता छे. छद्रव्यमा एक आकाशद्रव्य सर्वव्यापी छे अने पाचद्रव्य लोक व्यापी छे छए एक खेत्रमा एकठा रह्या छे पण एक बीजा साथे मली जाय नहीं ए छ द्रव्यनो विचार कह्यो

हवे एकेका द्रव्यमा एक नित्य, बीजो अनित्य त्रीजो एक चोथो अनेक, पाचमो सत्, छट्ठो असत्, सातमो वक्तव्य, आठमो अवक्तव्य, ए आठ आठ पक्ष कहेछे

धर्मास्तिकायना चार गुण नित्यछे तथा पर्यायमा धर्मास्तिकायनो एक खध नित्यछे बाकीना देश प्रदेश तथा अगुरुलघु पर्याय अनित्यछे अधर्मास्तिकायना चार गुण तथा एक लोकप्रमाण खध नित्यछे अने एक देश, बीजो प्रदेश, त्रीजो अगुरुलघु ए त्रण पर्याय अनित्यछे तथा आकाशास्तिकायना चार गुण तथा लोकालोकप्रमाणखध नित्यछे अने एक देश, बीजो प्रदेश त्रीजो अगुरुलघु ए त्रण पर्याय अनित्यछे तथा कालद्रव्यना चार गुण नित्यछे अने चार पर्याय अनित्यछे पुद्गल द्रव्यना चार गुण नित्य

अने चार पर्याय अनित्यछे जीवद्रव्यना चारगुण तथा त्रण पर्याय-नित्यछे अने एक अगुरुलघु पर्याय अनित्य छे ए रीते नित्या-नित्यपक्ष कह्यो

हवे एक अनेकपक्ष कहे छे एक धर्मास्तिकाय वीजो अधर्मास्तिकाय ए बे द्रव्यनो खध लोकाकाशप्रमाण एक छे अने गुण अनताछे पर्यायअनताछे प्रदेश असख्याताछे, तेणेंकरी अनेकछे, आकाशद्रव्यनो लोकालोकप्रमाणखध एकछे अने गुण अनताछे पर्याय अनताछे प्रदेशअनताछे माटे अनेकछे, काल द्रव्यनो वर्तनारूप गुण एकछे अने गुण अनताछे, पर्याय अनता छे, केमके समय अनताछे अतीत काले अनतासमय गया अने अनागतकाले अनता समय आवशे तथा वर्त्तमानकाले समय एक छे माटे अनेकपक्षछे पुद्गलद्रव्यना परमाणु अनताछे ते एकेक परमाणुमा अनतागुण पर्यायछे ते अनेकपणुछे अने सर्व परमाणुमा पुद्गलपणु ते एकज छे माटे एक छे

जीवद्रव्य अनताछे एकेका जीवमा प्रदेश असख्याताछे तथा गुण अनताछे पर्याय अनंताछे ते अनेकपणु छे पण जीवितव्यपणु सर्वजीवोनु एकसरीखुछे माटे एकपणु छे इहा शिष्य पुछे छे जे सर्व जीव एक सरीखा छे तो मोक्षनाजीव सिद्ध परमानदमयी देखायछे अने ससारीजीव कर्मवश पड्या दु:खी देखाय छे अने ते सर्व जुदाजुदा देखाय छे ते केम ? तेहने गुरु उत्तर कहे छे के निश्चयनये तो जीव सिद्ध समान छे माटेज सर्व जीव कर्म खपावीने सिद्ध थाय छे तेथी सर्व जीवनी सत्ता एकछे

फरि शिष्य पुछे छे के जो सर्व जीव सिद्ध समान कहोछो तो अभव्य जीव पण सिद्ध समान छे एम ठेरयु (ठर्यु) अने

ते तो मोक्षे जता नथी, तेहने उत्तर जे अभव्यने कर्म चीकणा छे अने अभव्यमा परावर्त्त धर्म नथी तेथी सिद्ध थता नथी माटे तेनो एहवोज स्वभावछे जे मोक्षे जवुज नथी अने भव्यजीवमा परावर्त्त धर्म छे माटे कारण सामग्री मिले पल्टण पामे गुणश्रेणि चढी मोक्षे करी सिद्ध थाय पण जीवना मुख्य आठ रुचक प्रदेश जे छे ते निश्चयनयथी भव्य तथा अभव्य सर्वना सिद्ध समान छे माटे सर्व जीवनी सत्ता एक सरीखी छे केमके ए आठ प्रदेशने बिल्कुल कर्म लागता नथी ते "श्री आचाराग सूत्रनी श्री सिलागाचार्य कृत टीकाना लोक-विजयाध्ययने प्रथमोद्देशके साख छे तिहाथी सविस्तरपणे जोवु"

हवे सत् तथा असत् पक्ष कहेछे ए छ द्रव्य ते स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, अने स्वभावपणे सत् एटले छता छे अने परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल तथा परभावपणे असत् एटले अछता छे तेनी रीत बतावबाने अर्थे छए द्रव्यना द्रव्य क्षेत्र काल भाव कहिये छैये

धर्मास्तिकायनो मूलगुण चलण सहायपणो ते स्वद्रव्य, अधर्मास्तिकायनो मूलगुण स्थिति सहायपणो ते स्वद्रव्य, आकाशास्तिकायनो मूल गुण अवगाहपणो ते स्वद्रव्य, कालद्रव्यनो मूल गुण वर्त्तनालक्षण पणो ते स्वद्रव्य, तथा पुद्गलनो मूलगुण पुरणगलनपणो ते स्वद्रव्य अने जीवद्रव्यनो मूलगुण ज्ञानादिक चेतनालक्षणपणो ते स्वद्रव्य ए छद्रव्यनोस्वद्रव्यपणो कह्यो

हवे स्वक्षेत्र ते द्रव्यनो प्रदेशपणो छे ते देखाडे छे तिहा एकधर्मास्तिकाय, बीजो अधर्मास्तिकाय ए बे द्रव्यनो स्वक्षेत्र असख्यात प्रदेश छे अने आकाशद्रव्यनो स्वक्षेत्र अनत प्रदेश छे कालद्रव्यनो स्वक्षेत्र समय छे. पुद्गलद्रव्यनो स्वक्षेत्र एक पर-

माणुछे ते परमाणु अनताछे जीवद्रव्यनो स्वक्षेत्र एक जीवना असख्याता प्रदेशछे

हवे स्वकाल ते छए द्रव्यगा अगुरुलघुनोज छे अने ए छ द्रव्यना पोतपोताना गुण पर्यायते सर्व द्रव्यनो स्वभाव जाणवो एटले धर्मास्तिकायमा पोतानाज द्रव्य क्षेत्र काल भावछे पण बीजा पाच द्रव्यना नथी तथा अधर्मास्तिकाय द्रव्य मध्ये पण स्वद्रव्यादिक चार छे पण बीजा पाच द्रव्यना नथी एमज आकाशास्तिकायने विषे आकाशनाज स्वद्रव्यादिक चार छे पण बीजा पाच द्रव्यना नथी कालद्रव्यमा कालनाद्रव्यादिक चार छे बीजा पाच द्रव्यना नथी अने पुद्गलना द्रव्यादिक चार ते पुद्गलमाज छे पण बीजा पाच द्रव्यना नथी तथा जीव द्रव्यना स्वद्रव्यादिक चार ते जीवमा छे पण बीजा पाच, द्रव्यना नथी

जे द्रव्य ते गुण पर्यायवत द्रव्यथी अभेदपर्याय होय ते द्रव्य कहिये तथा स्वधर्मनो आधारवतपणो ते क्षेत्र कहिये अने उत्पाद व्ययनीवर्त्तना ते काल कहिये तथा विशेष गुण परिणति स्वभाव परिणति पर्याय प्रमुख ते स्वभाव कहियें

इहा १ भेद स्वभाव, २ अभेदस्वभाव ३ भव्यस्वभाव ४ अभव्यस्वभाव ५ परमस्वभाव ए पाच स्वभाव कहेवा तेमा द्रव्यना सर्व धर्मने पोतपोताना स्वस्वकार्यने करवे करी भेद स्वभाव छे, अने अवस्थान पणे अभेद स्वभाव छे 'अणपलटण स्वभावे अभव्य स्वभाव' छे तथा पलटण स्वभावे भव्य स्वभाव छे अने द्रव्यना सर्व धर्म ते विशेष धर्मने अनुयायीज परिणमे ते माटे ते परम स्वभाव कहियें ए सामान्य स्वभाव जाणवा ए रीते छए द्रव्य स्वगुणे सत् छे अने परगुणे असत् छे

हवे वक्तव्य तथा अवक्तव्य पक्ष कहेछे ए छ द्रव्यमा अनता गुण पर्याय ते वक्तव्य एटले वचने कहेवा योग्य छे अने अनता गुण पर्याय ते अवक्तव्य एटले वचने कह्या जाय नहीं एवा छे तिहा केवळी भगवते समस्त भाव दीठा तेने अनतमे भागे जे वक्तव्य एटले कहेवा योग्य हता ते कह्या वळी तेनो पण अनतमो भाग श्रीगणधर देवे सूत्रमा गुथ्यो ते सूत्रमा गुथ्या तेने असख्यातमे भागे हमणा आगम रह्या छे ए छ द्रव्यमा आठपक्ष कह्या

हवे नित्य तथा अनित्य पक्षथी चोभगी उपनी ते कहे छे एक जेनी आदि नथी अने अत पण नथी ते अनादि अनत पहेलो भागो अने जेनी आदि नथी पण अत छे ते अनादि सात बीजो भागो तथा जेनी आदि पण छे अने अत एटले छेहेडो पण छे ते सादि सात त्रीजो भागो वळी जेहने आदि छे पण अत नथी ते सादि अनत नामे चोथो भागो जाणवो

हवे ए चार भागा छ द्रव्यमा फलावी देखाडे छे जीव द्रव्यमा ज्ञानादिक गुण ते अनादि अनत छे नित्य छे, अने भव्य जीवने कर्म साथे सबध तथा ससारीपणानी आदि नथी पण सिद्ध थाय तेवारे अत आव्यो तेथी ए अनादि सात भागो छे, अने देवता तथा नारकी प्रमुखना भव करवा ते सादिसात भागो छे, अने जे जीव कर्म खपावी मोक्ष गया तेनी सिद्धपणे आदि छे अने पाछो ससारमा कोइ काले आववु नथी माटे अत नथी तेथी ए सादि अनत भांगो छे ए जीव द्रव्यमा चोभगी कही जीव द्रव्यना चार गुण अनादि अनतछे जीवने कर्म साथे सयोग ते अनादि सातछे केमके केवारे पण कर्म छूटे छे

हवे धर्मास्तिकायमा चार गुण तथा खवपणो ते अनादि अनतछे अने अनादि सात भागो नथी तथा १ देश २ प्रदेश ३ अगुरुलघु ए सादि सात भागोछे तथा सिद्धना जीवमा धर्मास्तिकायना जे प्रदेश रह्या छे ते प्रदेश आश्रयीने सादि अनत भागोछे एवीज रीते अधर्मास्तिकायमा पण चौभगी जाणवी अने आकाश द्रव्यमा गुण तथा खव अनादि अनतछे बीजो भागो नथी अने १ देश २ प्रदेश तथा ३ अगुरु लघु सादि सातछे तथा सिद्धना जीवनी साथे सबध ते सादि अनत छे

पुद्गल द्रव्यमा गुण अनादि अनतछे जीवपुद्गलनो सबन्ध अभव्य ने अनादि अनतछे भव्य जीवने अनादि सातछे पुद्गलना खध सर्व सादि सातछे जे खध बाध्या ते स्थिति प्रमाणे रही खरेछे वळी नवा बधायछे माटे सादि अनत भागो पुद्गलमा नथी

कालद्रव्यमा गुण चार अनादि अनतछे पर्यायमा अतीत काल अनादि सात छे अने वर्तमानकाल सादि सात छे अनागतकाल सादि अनत छे ए कालनु स्वरूप ते सर्व उपचारथी छे ए रीतें काल द्रव्यमा चौभगी कही

हवे द्रव्य क्षेत्र काल तथा भावमा चौभगी कहे छे जीव द्रव्यमा स्वद्रव्यथी ज्ञानादिक गुण ते अनादि अनत छे स्वक्षेत्रें जीवना प्रदेश असख्याता छे ते सादि सात छे ततोद्वर्त्तनापणे फरे छे ते माटे अथवा अवगाहना माटे सादि सात छे पण छती पणे तो अनादि अनत छे स्वकाल अगुरु लघुने गुणे अनादि अनत छे अने अगुरु लघु गुणनो उपजवो

तथा विणशवो ते सादि सात छे तथा स्वभाव गुण पर्य्याय ते अनादि अनत छे अने भेदान्तरे अगुरुलघु ते सादि सात छे

धर्मास्तिकायमा स्वद्रव्य जे चलण सहाय गुण ते अनादि अनत छे अने स्वक्षेत्र असख्यात प्रदेश लोक प्रमाण छे ते अवगाहनापणे सादि सात छे स्वकाल ते अगुरुलघु गुणे करी अनादि अनत छे अने उत्पाद व्यय ते सादि सात छे स्वभाव ते चार गुण अगुरुलघु अनादि अनत छे १ खध २ देश ३ प्रदेश ते अवगाहनाने प्रमाणे सादि सात छे एम अधर्मास्तिकायना पण द्रव्यादि चार भागा जाणवा तथा आकाशास्तिकायमा स्वद्रव्य अवगाहनादान गुण ते अनादि अनत छे अने स्वक्षेत्र लोकालोक प्रमाण अनत प्रदेश ते अनादि अनत छे स्वकाल ते अगुरुलघुगुण सर्वथापणे अनादि अनतछे अने उपजवे तथा विणसवे सादि सात छे स्वभावते चार गुण तथा खध अने अगुरुलघु ते अनादि अनत छे तथा देश प्रदेश ते सादि सात छे ते आकाश द्रव्यना बे भेद छे एक चौद-राज लोकनो खध लोकाकाश ते सादि सात छे बीजो अलोका-काशनो खध ते सादि अनत छे *

काल द्रव्यमा स्वद्रव्य जे नव पुराणवर्त्तना गुण ते अनादि अनतछे स्वक्षेत्र समय काल ते आदि सात छे केमके वर्तमान

* चउदराज लोकनो खध लोकाकाश सादि सात छे ते आवी रीतें जे लोकना मध्यमार्गे आठ रुचक प्रदेशथी माडीने सादि छे जिहा चउदराज लोकनो अत आवे तिहा सात तथा चउदराज लोकनो छेलो प्रदेश मूकीने पछे अलोकनी आदि लेवी पण अलोकनो अत नथी माटे सादि अनत कह्यु छे

समय एकछे ते माटे तथा स्वकाल ते अनादि अनत छे स्वभाव ते गुण चार अने अगुरुलघु अनादि अनतछे अतीत काल अनादि सात छे अने वर्तमानकाल सादि सात छे अनागत काल सादि अनत छे

पुद्गल द्रव्यमा स्वद्रव्य ते द्रव्यपणे जे पूरणगलन धर्म ते अनादि अनन्त छे अने स्वक्षेत्र परमाणु ते सादि सात छे स्वकाल स्थिति अगुरुलघु गुण ते अनादि अनत छे अगुरुलघुनो उपजवो विणशवो ते सादि सात छे स्वभावते गुण चार अनादि अनत छे वर्णादि पर्याय चार एटले वर्ण गध रस स्पर्श ते सादि सात छे ए द्रव्यादि चारमा चौभगी कही

हवे छ द्रव्यना सबन्ध आश्री चौभगी कहे छे, तिहा प्रथम आकाश द्रव्य छे तेमा अलोकाकाशमा कोइ द्रव्य नथी, अने लोकाकाशमा छ द्रव्य छे, तिहा लोकाकाश द्रव्य तथा बीजु धर्मास्तिकाय द्रव्य अने त्रीजु अधर्मास्तिकाय द्रव्य ते अनादि अनत संबधी छे जे लोकाकाशना एकेक प्रदेशमा धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यनो एकेक प्रदेश रह्यो छे ते पण किवारे विछडसे नहीं माटे अनादि अनत सबधी छे , आकाश खेत्र लोक सर्व अने जीव द्रव्यनो अनादि अनत सबध छे, अने ससारी जीव कर्म सहित तथा लोकना प्रदेशनो सादि सांत सबन्ध छे लोकांत सिद्धक्षेत्रना सिद्ध जीवोनो आकाश प्रदेश साथे सादि अनत सबन्ध छे, लोकाकाश अने पुद्गल द्रव्यनो अनादि अनत सबन्ध छे आकाश प्रदेशनी साथे पुद्गल परमाणुनो सादि सात सबन्ध छे एम आकाश द्रव्यनी परे धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकायनो पण सर्व सबन्ध जाणवो जीव अने पुद्गलना सबधमा अभव्य जीवने पुद्गलनो अनादि अनत

सत्र छे केमके अभव्य जीवना कर्म किवारें खपशे नही माटे, अने भव्य जीवने कर्मनु लागवु अनादि कालनु छे पण ते किवारेक छुटशे माटे भव्य जीवने पुद्गल सबंध अनादि सांत छे तथा निश्चय नयेकरी ७ द्रव्य स्वभाव परिणाम परिगम्या छे ते परिणामीपणो सदा शाश्वतो छे ते माटे अनादि अनंत छे अने जीव तथा पुद्गल बेहु द्रव्य मलि संबंध भाव पामे छे ते पर परिणामीपणो छे ते परपरिणामिपणो अभव्य जीवने अनादि अनंत छे अने भव्य जीवने अनादि सांत छे अने पुद्गलनो परिणामीपणो ते सत्ताये अनादि अनंत छे अने पुद्गलनो मिलवो विछडवो ते सादि सांत छे एटले जीव द्रव्य पुद्गल साथे मिल्यो सक्रिय छे अने पुद्गल कर्मथी रहित थाय तेवारें जीव द्रव्य अक्रिय छे अने पुद्गल द्रव्य सदा सक्रिय छे

हवे एक, अनेक–पक्षथी निश्चय ज्ञान कहेवाने नय कहे छे, सर्व द्रव्यमा अनेक स्वभाव छे, ते एक वचनथी कह्या जाय नहीं माटे माहोमाहे नय करी संक्षेप पणे कहे छे, तिहा मूल नयना बे भेद छे एक द्रव्यार्थिक बीजो पर्यायार्थिक तेमा उत्पाद व्यय पर्याय गौण पणे अने प्रधानपणे द्रव्यनो गुण सत्ताने ग्रहे ते द्रव्यार्थिक नय कहियें तेना दश भेद छे १ सर्व द्रव्य नित्य छे ते नित्य द्रव्यार्थिक २ अगुरु लघु अने खेत्रनी अपेक्षा न करे मूल गुणने पिंडपणे ग्रहे ते एक द्रव्यार्थिक ३ ज्ञानादिक गुणे सर्व जीव एक सरीखा छे माटे सर्वने एक जीव कहे स्वद्रव्यादिकने ग्रहे ते सत् द्रव्यार्थिक जेम सल्लक्षण द्रव्य ४ द्रव्यमा कहेवा योग्य गुण अंगीकार करे ते वक्तव्य द्रव्यार्थिक ५ आत्माने अज्ञानी कहेवो ते अशुद्ध द्रव्यार्थिक ६ सर्व द्रव्य गुण पर्याय सहित

छे एम कहेवु ते अन्वय द्रव्यार्थिक ७ सर्व जीव द्रव्यनी मूल सत्ता एक छे ते परमद्रव्यार्थिक नय ८ सर्व जीवना आठ प्रदेश निर्मल छे ते शुद्ध द्रव्यार्थिक नय ९ सर्व जीवना असख्यात प्रदेश एक सरीखा छे ते सत्ता द्रव्यार्थिक नय, १० गुणगुणी द्रव्य ते एक छे ते परमभावग्राहक द्रव्यार्थिक जेम आत्मा ज्ञानरूप छे इत्यादिक ए द्रव्यार्थिक नयना दश भेद कह्या

हवे पर्यायार्थिक नयना ७ भेद कहे छे जे पर्यायने ग्रहे ते पर्यायार्थिक नय कहिये, तेना छ भेद छे १ द्रव्य पर्याय ते जीवने भव्यपणु तथा सिद्धपणु कहेवु, २ द्रव्य व्यजन पर्याय ते द्रव्यनु प्रदेशमान, ३ गुण पर्याय जे एक गुणथी अनेकता थाय जेम धर्माधर्मादिद्रव्य पोताना चलण सहकारादि गुणथी अनेक जीव तथा पुद्गलने सहाय करे, ४ गुण व्यजन पर्याय जे एक गुणना घणा भेद छे ५ स्वभाव पर्याय ते अगुरुलघु पर्यायथी जाणवो ए पाच पर्याय सर्व द्रव्यमा छे अने छट्ठो विभाव पर्याय ते जीव पुद्गल ए बे द्रव्यमा छे तिहा जीव जे चार गतिना नवा नवा भव करे ते जीवमा विभाव पर्याय तथा पुद्गलमा खधपणु ते विभाव पर्याय जाणवो

हवे पर्यायना बीजा छ भेद कहे छे १ अनादि नित्य पर्याय ते जेम पुद्गल द्रव्यनो मेरु प्रमुख, २ सादि नित्य पर्याय ते जीव द्रव्यनु सिद्धपणु, ३ अनित्य पर्याय ते समय समयमा द्रव्य उपजे विणशे छे, ४ अशुद्ध अनित्य पर्याय ते जन्म मरण थाय छे तेणे करी कहेवु, ५ उपाधि पर्याय ते कर्म सबध, ६ शुद्ध पर्याय जे मूल पर्याय सर्व द्रव्यना एक सरीखा छे ए पर्यायार्थिकनु स्वरूप कह्यु,

हवे सात नय कहे छे १ नेगम, २ सग्रह, ३ व्यवहार, ४ रुजु सत्र, ५ शब्द ६ समभिरुढ, ७ एव भूत–ए सात नयना नाम जाणवा, तेमा पहेलो नेगम नय कहे छे नयी एक गमो ते नेगम कहियें गुणनो एक अश उपन्यो होय तो नेगमनय कहिय दृष्टान्त जेम कोइक मनुष्यने पाली लाववानो मन थयो, ते वॉरं जगलमा लाकडु लेवा चाल्यो, रस्तामा कोइक मनुष्य मल्यो तेणें पूछ्यु तु क्या जाय छे ते वॉरं तेणें कयु जे पाली लेवा जाउ छु ते पाली तो हजी घडी नयी पण मनमा चितवी ते थइ एम गण्यु तेम नेगम नय, सर्व जीवने सिद्ध समान कहे, केमके सर्व जीवना आठ रुचक प्रदेश निर्मल सिद्ध रूप छे तेयी एक अशें सिद्ध छे ते माटे सिद्ध समान सर्व जीव कह्या ते नेगम नयना त्रण भेद छे १ अतीत नेगम २ अनागत नेगम ३ वर्तमान नेगम, ए नेगम नय कह्यो

हवे सग्रह नय कहे छे सत्ताग्रहे ते सग्रह जे एक नाम लीवायी सर्व गुण पर्याय परिवार सहित आवे ते सग्रह नय जाणवो तेनो दृष्टान्त–जेम कोइक मनुष्ये प्रभातें दातण करवाने अर्थे पोताना घरना बारणे बेशीने चाकर पुरुषने कयु जे दातण लइ आवो, ते वॉरं ते चाकर मनुष्य पाणीनो लोटो तथा रुमाल अने दातण एम सर्व चीज लइ आव्यो हवे शेठें तो एक दातण नाम लइने मगाव्यु हतु पण सर्वनो सग्रह करी चाकर लइ आव्यो तेमज द्रव्य एवु नाम कयु तो द्रव्यना गुण पर्याय सर्व आव्या ए सग्रह नयना बे भेद छे एक जे द्रव्य पणो सामान्य पणे बोलता जीव तथा अजीव द्रव्यनो भेद पडचो नही ते पेहेलो सामान्य सग्रह, तथा बीजो

विशेषताने अगीकार करे छे, जे जीव द्रव्य एम कह्यु तो अजीव सर्व टल्या ते विशेष सग्रह

हवे व्यवहार नय कहे छे. जे बाह्यस्वरूप देखीने भेदनी वेंहेचण करे अने जे बाहेर देखता गुणनेज माने पण अतरग सत्ता न माने एटले ए नयमा आचार क्रिया मुख्य छे अतरग परिणामनो उपयोग नथी केमके नैगम तथा सग्रह नय ते ज्ञान रूप ध्याननां परिणाम विना अश तथा सत्ता ग्राही छे तेम इहा करणी मुख्य छे ते व्यवहारनये (पणे) जीवनी व्यवस्था अनेक प्रकारें छे तिहा नैगम तथा सग्रह नय करी सर्व जीव सत्तायें एक रूप छे पण व्यवहार नयथी जीवना बे भेद छे एक सिद्ध, बीजा ससारी ते वली ससारी जीवना बे भेद छे एक अयोगी चौदमा गुणठाणावाला तथा बीजा सयोगी ते सयोगीना बे भेद एक केवली-बीजो छद्मस्थ, छद्मस्थना बे भेद एक क्षीण मोही बारमा गुणठाणे वर्त्तता मोहनीय कर्म खपाव्यु ते, बीजो उपशान्तमोहवे उपशान्त मोहना वली बे भेद एक अकषायी इग्यारमा गुणठाणना जीव, बीजा सकषायीना बे भेद छे, एक सूक्ष्म कषायी दशमा गुणठाणाना जीव बीजा बादर कषायी ते बादर कषायीना वली बे भेद छे एक श्रेणि प्रतिपन्न, बीजो श्रेणि रहित ते श्रेणी रहितना बे भेद एक अप्रमादी बीजो प्रमादी ते प्रमादीना बे भेद एक सर्व विरति-बीजो देश विरति, देश विरतिना बे भेद एक विरति परिणामि बीजा अविरति परिणामि, अविरतिना बे भेद एक अविरति समकीति-बीजा अविरति मिथ्यात्वी, ते मिथ्यात्वीना बे भेद एक भव्य-बीजा अभव्य, ते भव्यना बे भेद एक ग्रथिभेदी बीजा ग्रथी अभेदी (अभेद ग्रन्थि) एवी रीते जे जीव जेवो देखाय तेने

तेवो माने ए व्यवहार नय छे एमज पुद्गलना भेद करवा ते कहे छे पुद्गल द्रव्यना बे भेद छे एक परमाणु, बीजो खंध, खंधना बे भेद एक जीवने लागा ते जीव सहित बीजा जीव रहित ते घटो प्रमुख अजीवनो खंध, हवे जीव सहित खंधना बे भेद छे एक सूक्ष्म खंध बीजो बादर खंध

इहा वर्गणानो विचार लखीये छेयें, तिहा पुद्गलनी वर्गणा आठछे १ औदारिक वर्गणा २ वैक्रिय वर्गणा ३ आहारक वर्गणा ४ तेजस वर्गणा ५ भाषा वर्गणा ६ श्वासोच्छ्वास वर्गणा ७ मनो वर्गणा ८ कार्मण वर्गणा–ए आठ वर्गणाना नाम कह्या बे परमाणु मेला थाय त्यारे द्वयणुकखंध कहेवाय त्रण परमाणु मेला थाय तेवारे त्र्यणुकखंध थाय एम सख्याता परमाणु मिले सख्याताणुकखंध थाय, तेमज असख्याते असख्याताणुकखंध थाय, तथा अनता परमाणु मिले अनताणुकखंध थाय ए खंध ते सर्व जीवने अग्रहण योग्य छे, अने जेवारें अभव्यथी अनतगुण अधिक परमाणु मेला थाय तेवारें औदारिक शरीरने लेवा योग्य वर्गणा थाय

एमज औदारिकथी अनतगुणा अधिक वर्गणामा दल मेला थाय तेवारें वैक्रिय वर्गणा थाय, वली वैक्रिय थकी अनतगुणा परमाणु मिले तेवारें आहारक वर्गणा थाय एम सर्व वर्गणाना एकेकथी अनतगुणा अधिक परमाणु मिले तेवारें ते वर्गणा थाय एटले पहेलीथी बीजी वर्गणा, बीजीथी त्रीजी एम सातमी मनो वर्गणाथी आठमी कार्मण वर्गणामा अनतगुण परमाणु अधिक छे इहां १ औदारिक, २ वैक्रिय, ३ आहारक, ४ तैजस, ए चार वर्गणा बादर छे तेमा पाचवर्ण–बे गन्ध–पाच रस, आठ स्पर्श ए वीस गुण छे, तथा १ भाषा २ श्वासोच्छ्वास ३ मन ४ कार्मण ए

चार वर्गणा सूक्ष्म छे एमा पाचवर्ण–बे गन्ध, पाचरस–चार स्पर्श– ए सोल गुण छे, अने एक परमाणुमा एक वर्ण–एक गध– एक रस–बे स्पर्श ए पाच गुण छे एम पुद्गल खधना अनेक भेद छे

ए व्यवहार नयना छ भेद छे १ शुद्ध व्यवहार ते आगला गुणठाणानु छोडवु अने उपरना गुणठाणानु ग्रहण करवु अथवा ज्ञान–दर्शन–चारित्र गुण ते निश्चयनय एकरूप छे पण ते शिष्यने समजाववाने जूदा जूदा भेद कहेवा ते शुद्ध व्यवहार छे २ जीवमा अज्ञान राग द्वेष लाग्या छे ते अशुद्धपणु छे माटे अशुद्ध व्यवहार ३ जे पुण्यनी क्रिया करवी ते शुभ व्यवहार ४ जेथकी जीव पापरूप अशुभ कर्म करे ते ५ अशुभ व्यवहार धन–घर–कुटुब प्रत्यक्ष सर्व आपणाथी जुदा जुदा छे पण जीवें अज्ञानपणे आपणा करी जाण्या छे ते उपचरित व्यवहार ६ शरीरादिक परवस्तु यद्यपि जीवथी जुदी छे तोपण परिणामिकभाव लोलीपणे एकठा मिली रह्या छे तेने जीव आपणा करी जाणे छे ते अनुपचरित व्यवहार जाणवो ए व्यवहार नय कह्यो

हवे ऋजु सूत्र नयनो विचार कहे छे जे अतीत काल अने अनगत कालनी अपेक्षा न करे पण वर्त्तमान काले जे वस्तु जेवा गुण परिणामे वर्त्ते ते वस्तुने तेवेज परिणामे माने माटे ए नय परिणामग्राही छे जेम कोइक जीव गृहस्थ छे पण अतरग साधुसमान परिणाम छे तो ते जीवने साधु कहे अने कोइक जीव साधुने वेषे छे पण मनना परिणाम विषयाभिलाष सहित छे तो ते जीव अव्रतीज छे एम ऋजु सूत्रनु मानवु छे ते ऋजु सूत्रना बे भेद छे एक सूक्ष्म ऋजु सूत्र ते

एम कहे जे सदाकाल सर्व वस्तुमा एक वर्त्तमान समय वर्ते छे एटले जे जीव गया कालें अज्ञानी हतो अने अनागत कालें अज्ञानी भावें अज्ञानी थशे एम वेहु कालनी अपेक्षा न करे पण एक वर्त्तमान समये जे जेवो तेने तेवो कहे ते सूक्ष्म ऋजुसूत्र कहियें अने महोटा वाह्यपरिणाम ग्रहे ते स्थूल ऋजु सूत्र नय जाणवो एटले रुजु सूत्र नय कह्यो

हवे शब्दनय कहे छे जे वस्तु गुणवन्त अथवा निर्गुण ते वस्तुने नाम कही बोलाविये जे भाषा वर्गणाथी शब्द पणें वचन गोचर थाय ते शब्दनय जे कारणे अरूपी द्रव्य वचनथी कहेवा ते शब्दनय कहियें इहां जे शब्दनो अर्थ होय ते पणो जे वस्तुमा वस्तुपणे पामियें ते वारे ते वस्तु शब्दनय कहियें जेम घटनी चेष्टाने करतो होय ते घट. ए शब्दनयमा व्याकरणथी नीपना अने बीजा पण सर्व शब्द लीधा ते शब्दनयना चार भेद छे १ नाम २ स्थापना ३ द्रव्य ४ अने भाव चार निक्षे-पाना पण एहिज नाम छे

१ पहेलो नाम निक्षेपो ते आकार तथा गुणरहित वस्तुने नाम करी बोलाववो जेम एक लाकडीनो कटको लेइने कोइके तेहने जीव एवु नाम कह्यु ते नाम जीव जाणवु जेम काली दोरीने सापनी बुद्धियें करी वावेहणे तेहने सापनी हिंसा लागे ए नाम सर्प थयु एवीज रीते नाम तप अथवा नाम सिद्ध जेम वड प्रमुखने सिद्धवड एम कही बोलावे छे ते नाम निक्षेपो कहियें ए सूत्र सार्खे छे

२ स्थापना निक्षेपो कहे छे जे कोइक वस्तुमा कोइक वस्तुनो आकार देखीने तेहने ते वस्तु कहे जेम चित्रामण अथवा काष्ट पाषाणनी मूर्त्ति तेने घोडा–हाथीनो आकार छे तो ते

घोडा–हाथी कहेवाय ते स्थापना जाणवी ए स्थापना निक्षेपो नाम निक्षेपे सहित होय जेम स्थापना सिद्ध जिनप्रतिमा प्रमुख ते सद्भाव स्थापना पण होय अने असद्भाव स्थापना पण होय अकृत्रिम जिन प्रतिमा ते नदीश्वरद्वीप प्रमुखने विषे अने जेह इहानी जिन प्रतिमा ते कृत्रिम ते सर्व स्थापना जाणवी जेम चित्रामनी स्त्री जिहा माडी होय तिहा साधु रहे नही कारणके स्थापना स्त्री छे ते स्त्री तुल्य जाणवी तेमज जिन प्रतिमा जिन समान जाणवी इहा कोइक अज्ञानी जीव कहे छे जे, स्थापनामा ज्ञानादि गुण नथी तेथी स्थापनाने मानवी पूजवी नही तेने उत्तर कहे छे के स्थापना रूप स्त्रीमा स्त्रीपणाना गुण नथी तो पण ते विकारनु कारण थाय छे तेमज जिनप्रतिमा पण ध्याननु कारण छे अने जे एम पुछे के हिंसा थाय छे अने भगवते ता दयाने धर्म कह्यो छे तेहने एम कहेवु जे परदेशी राजा केसी गुरुने वादवाने अर्थे बीजें दीवसें मोहोटा आडबरथी आव्यो ते वदनामा हिंसा थइ पण लाभ कारण गणता त्रोटो न थयो बीजो मल्लिनाथजीयें छ मित्र प्रतिबोधवाने पुतलीनो दृष्टान्त कह्यो, ते हिंसा तो घणी थइ पण ते लाभना कारणमा गणी छे एम भाव शुद्ध होय तिहा हिंसा लागती नथी, अथवा कोइक एम कहे छे जे अमे आपणे स्थानके बेठा नमुथ्थुण कहिसु अमने लाभ थासे ते खरो पण भगवती सूत्रमा भगवानने वदनाने अधिकारें तो तिहा जइ वदना करवानु फल महोटु कह्यु छे तथा निक्षेपाने अधिकारें कह्यु जे भाव निक्षेपो एकलो थाय नही। पण नाम स्थापना तथा द्रव्य ए त्रण मिल्या भाव निक्षेपो थाय माटे स्थापना अवश्य मानवी हवे जे स्थापना न माने तेने कहियें जे

चित्रामनी मूर्त्ति ते हिंसाना परिणामथी फाडे तेहने हिंसा लागे छे तेमज जिनवरना ध्याने जिनप्रतिमा पूजता लाभ थाय छे एम युक्ति करता तथा आगमनी साखे पण जिन प्रतिमाने जिनसमान माने ते आराधक अने जे जिन प्रतिमाने न माने तेणे स्थापना निक्षेपो उथाप्यो अने स्थापना उथापी तो द्रव्य तथा भाव निक्षेपो स्थापना विना थाय नही माटे द्रव्य तथा भाव पण उथाप्यो एम त्रण निक्षेपा उथाप्या ते वारें सिद्धान्त उथाप्याज माटे जे जिनप्रतिमाने नही माने ते विराधक जाणवो ते स्थापना इत्वर अने यावत्कथिक ए वे भेदें छे

३ द्रव्य निक्षेपो कहे छे, जेनो नाम पण होय तथा आकार थापना गुण पण होय अने लक्षण होय पण आत्मोपयोग न मिले ते द्रव्य निक्षेपो जाणवो एटले अज्ञानी जीव ते जीव स्वरूपना उपयोग विना द्रव्य जीव छे "अणुवओगो-दव" इति अनुयोगद्वार वचनात् वली कह्यु छे जे सिद्धान्त वाचता पूछता पद अक्षर मात्रा शुद्ध अर्थ करे छे अने गुरुमुखे सदहे छे ते पण शुद्ध निश्चये पोतानी सत्ता ओलख्या विना सर्व द्रव्य निक्षेपामा छे जे भाव विना द्रव्यपणो छे ते पुण्यबंधनु कारण छे पण मोक्षनु कारण नथी एटले जे करणी रूप कष्ट तपस्या करे छे अने जीव अजीव पदार्थनी सत्ता ओलखी नथी तेने भगवती सूत्रमा अव्रती तथा अपच्चख्खाणी कह्या छे, तथा जे एकली बाह्य करणी करे छे अने पोते साधु कहेवाय छे ते मृषावादी छे एम उत्तराध्ययन सूत्रमा कह्यु छे "नमुणी रन्नवासेण" ए वचनें "नाणेण य मुणी होइ" ए वचनथी जे ज्ञानवान् ते मुनि छे अने जे अज्ञानी ते मिथ्यात्वी छे तथा कोइक गणितानुयोगना नरक देवताना बोल अथवा यति

श्रावकनो आचार जाणीने कहे जे अमे ज्ञानी छैयें ते पण ज्ञानी नथी पण जे द्रव्य गुण पर्याय जाणे तेने ज्ञानी कहिये श्री उत्तराध्ययने मोक्ष मार्गे कह्यो छे गाथा " एय पच विहणाणाणा दव्वाणय गुणाणय, पज्जवाणय सवेसिं, नाण नाणी हि दसिय ॥ १ ॥ माटे वस्तु सत्ता जाण्या विना ज्ञानी समजवु नही अने नवतत्त्व ओळखे ते समकीति अने एहवा ज्ञान दर्शन विना जे कहे के अमे चारित्रिआ छैयें ते पण मृषावादी छे कारण के श्री उत्तराध्ययन सूत्र मध्ये कह्यु छे जे " नाण दसण नाण नाणेण विना न हुति चरण गुणा " ए वचन छे ते माटे आज केटलाक ज्ञानहीन क्रियानो आडबर देखाडे छे ते ठग छे तेहनो सग करवो नही ए बाह्य करणी अभव्य जीवने पण आवे माटे ए बाह्य करणी ऊपर राचवु नही अने आत्मानु स्वरूप ओळख्या विना सामायक पडिकमणा पच्चख्खाण करवा ते सर्व द्रव्यनिक्षेपामा पुण्याश्रव छे पण सवर नथी श्रीभगवती सूत्र मध्ये कह्यु छे के " आयाखलु सामाइय " ए आलावाथी जाणजो तथा जीव स्वरूप जाण्या विना तप सयम पुण्य प्रकृति ते देवताना भवनु कारण छे " पुव्व तवेण पुव्व सयमेण देवलोए उववज्जति नो चेवण आयत्ता भाववत्तव्वयाए " ए आलावो भगवतीमा कह्यो छे तथा जे क्रियालोपी आचार हीन अने ज्ञानहीन छे मात्र गच्छनी लाजें सिद्धान्त भणे वाचे छे व्रत पच्चख्खाण करे छे ते पण द्रव्य निक्षेपो जाणवो एम श्री अनुयोगद्वारमा कह्यु छे सेकिंतलोगुत्तरिअदव्वावस्सय ?

जे इमे समण गुणमुक्कजोगी छकाय निरणुकपा ॥ हयाइव उद्दामा ॥ गयाइव निरकुसा ॥ घट्ठामट्ठातुप्पोठा ॥ पडुरपडयाउरणा जिणाणमणाणाए सच्छद विहरिउण उभओकाल ' आवस्सयस्स उवठति ॥ सेत लोगुत्तरिय दव्वावस्सय ॥

अर्थ–जेने छ कायनी दया नथी, घोटानी पेरें उन्मत्त छे, हाथीनी पेठे निरंकुश छे, पोताना शरीरने धोवता मसल्ता उजले कपडे शिणगार करी गच्छना ममत्वभावे माचता स्वेच्छाचारी वीतरागनी आज्ञा भाजता जे तप क्रिया करे छे ते पण द्रव्य निक्षेपामा छे अथवा ज्योतिष वैद्यक करे छे अने पोताने आचार्य उपाध्याय कहेवरावीने लोक पासे महिमा करे (करावे छे) छे ते पत्रीवध खोटा रूपेया जेवा छे घणा भव भमसे माटे अवंदनीक छे ए साख उत्तराध्ययनमध्ये अनाथी मुनिना अध्ययनथकी जाणवी अने सूत्रना अर्थ गुरुमुखे शिख्या विना तथा नय प्रमाण जाण्या विना निश्चय आत्मानु स्वरूप ओलख्या विना निर्युक्ति विना उपदेश आपे छे ते पोते तो ससारमा बुडया छे पण जे तेमनी पासे बेसे छे तेमने पण ससारमा बुडावे छे एम प्रश्न व्याकरण सूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्रमा कह्यु छे " अज्जत्थ चेत सोल सम " इत्यादि अने भगवती सूत्रमा* पण कह्यु छे " सुतत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्ति मिसओ भणिओ, इत्तो तईयणओगो, नाणुन्नाओ जिणवरेहिं " अने केटलाक एम कहे छे जे अमे सूत्र उपर* अर्थ करिये छैयें तो निर्युक्ति तथा टीका प्रमुखनु शु काम छे ते पण मृषावाद

* श्री भगवती सूत्रमा " सुतत्थोखलु पढमो, बीओनिज्जुत्ति मिसओ भणिओ ॥ इत्तो तईयणुओगो, नाणुन्नाओजिणवरेहिं" एवी रीते आगमसारनी जूदी जूदी त्रण प्रतोमा लख्यु हतु माटे म पण तेमज लख्यु छ पण त्रीजा ठेकाणे ए भगवतीनी साख दीधी छ तिहा तो " सुतत्थो खलुपढमो, बीओनिज्जुत्ति मिसओ भणिओ ॥ तइओय निरविसेसो, एस विहि होइ अणुओगो " एवो पाठ छे ते खरो जणाय छे पछे बहुश्रुत कहे ते खरु

तथा कोइकनु तप एहवु नाम ते नाम तप तथा पुस्तक-मा तपनी विधीनु लेखन ते थापना तप अने पुण्यरूप मास-खमणादिक करवो ते द्रव्य तप जे परवस्तु ऊपर त्यागनो परिणाम ते भाव तप एम सवरादिक सर्वमा चार चार निक्षेपा जाणवा तथा श्री अनुयोगद्वार मध्ये कह्यु छे—यत "जत्थयज जाणिज्जा, निक्खेव निक्खिवे निरवसेस ॥ जत्थवी य न जाणिज्जा, चउक्कगनिक्खिवे तत्थ ॥ १ । ए चार निक्षेपा कह्या एटले शब्दनय कह्यो

हवे छट्ठो समभिरूढ नय कहे छे जे वस्तुना केटलाक गुण प्रगट्या छे अने केटलाक गुण प्रगट्या नथी पण अ-वश्य प्रगटशे एहवी वस्तुने वस्तु कहे ते वस्तुना नामातर एक करी जाणे जेम जीव चेतन तथा आत्मा एहनो * एक अर्थ कहे ते समभिरूढ नय कहियें ए नय एक अश ओछी वस्तुने पूरेपूरी वस्तु कहे जेम तेरमा गुणठाणे केवली होय तेहने सिद्ध कहे ए नयना भेद बिलकुल नथी ए समभिरूढनय कह्यो

हवे एवभूतनय कहे छे जे वस्तु पोताने गुणे सपूर्ण छे अने पोतानी क्रिया करे छे तेने ते वस्तु कही बोलावे जेम मोक्षस्थानकें जे जीव पहोतो तेनें सिद्ध कहे जेम पाणीथी भरेलो स्त्रीना माथा ऊपर आवतो जल धरण क्रिया करतो तेने घडो कहे ए एवभूतनय कह्यो

हवे सात नयना दृष्टान्त श्री अनुयोगद्वार सूत्रथी लखियें छैयें जेम कोइक पुरुषे कोइक बीजा पुरुषने पुछ्यु जे तमे किहा वसोछो तेवारें ते पुरुषे कह्यु हु लोकमा वसुछु तेवारें

* एकार्थवाची नामोना नामभेदे भिन्न भिन्न अर्थ करे छे तेने समभिरूढनय कथे छे

अशुद्ध नैगमवाळे पुज्यु जे लोकना त्रण भेद छे, १ अधोलोक २ तिर्छोलोक ३ ऊर्ध्वलोक तेमा तु किहा रहे छे तेवारें शुद्ध नैगमें कयु जे तिर्छालोकमा रहुछु वळी पुज्यु जे तिर्छालोकमा असख्याता द्वीप समुद्र छे तेमा तु कया द्वीपमा रहे छे तेवारें विशुद्ध नैगमें कयु जे जबुद्वीपमा रहुछु, ते जबुद्वीपमा खेत्र घणा छे, ते तेमा तु कया खेत्रमा रहे छे, तेवारें अतिशुद्ध नैगम बोल्यो जे भरतक्षेत्रमा रहुछु, ते भरतक्षेत्रना छ खड छे ते माहेला कया खडमा रहे छे तेवारें कयु जे मध्यखडमा रहु छु एम क्रमे पूछता छेल्ले कयु जे आपणा देशमा रहु छु, तेवारें फरी पुज्यु जे देशमा तो नगरगाम घणा छे तो तु किहा रहे छे तेवारें कयु जे हु अमुक गाममा रहु छु, ते गाममा वळी अमुक पाडो तथा अमुक घर बतान्यु तिहा सुधी नैगम नय जाणवो

अने सग्रह नय वालो बोल्यो जे मारा पोताना शरीरमा वसु छु, तथा व्यवहारनयवालो बोल्यो जे ससारे बेठो छु तेटलाज बिछानामा रहु छु, अने ऋजुसूत्र नयवाले कयु जे मारा आत्माना असख्याता प्रदेशमा रहु छु वळी शब्दनय कहे जे मारा स्वभावमा रहु छु, तेमज समभिरूढनय कहे जे हु मारा गुणमा रहु छु, अने एवमूतनयवादी कहे जे ज्ञानदर्शन गुणमा वसु छु ए दृष्टात कह्यो तेम सर्व वस्तुमा कहेवु

तथा कोइके प्रदेशमात्र क्षेत्र अगीकार करी पुज्यु जे ए प्रदेश कया द्रव्यनो छे तेवारें नैगमनय बोल्यो जे छए द्रव्यनो प्रदेश छे केमके एक आकाश प्रदेशमध्ये छ द्रव्य मेला छे तेवारें सग्रहनय बोल्यो जे कालद्रव्य तो अप्रदेशी छे ते माटे सर्व लोकमा एक समय सरिखो छे पण ते एक आकाश द्रव्यना प्रदेशमा जुदो नथी माटे काल विना पाच द्रव्यनो

प्रदेश छे तेवारें व्यवहारनय बोल्यो के जे द्रव्य मुख्य देखाय छे तेहनो प्रदेश छे तेवारें ऋजुसूत्रनय बोल्यो के जे द्रव्यनो उपयोग देइ पुछियें ते द्रव्यनो प्रदेश छे जो धर्मास्तिकायनो उपयोग देइ पुछियें तो धर्मास्तिकायनो प्रदेश छे. जो अधर्मास्तिकायनो उपयोग देइ पुछियें तो अधर्मास्तिकायनो प्रदेश छे तेवारे शब्दनय बोल्यो के जे द्रव्यनो नाम लइ पुछियें ते द्रव्यनो प्रदेश छे हवे समभिरूढनय बोल्यो जे एक आकाश प्रदेश मध्ये धर्मास्तिकायनो एक प्रदेश छे, अधर्मास्तिकायनो एक प्रदेश छे अने जीवना अनता प्रदेश छे पुद्गलना पण अनता प्रदेश छे, तेवारे एवमूतनय बोल्यो के प्रदेशनी जे द्रव्यनी क्रियागुण पर्याय अगीकार करी देखीयें ते समय ते प्रदेश ते द्रव्यनो गणियें ए प्रदेशमा सात नय कह्या

हवे जीवमा सात नय कहे छे प्रथम नैगमनयने मते जे गुण पर्यायवत शरीर सहित ते जीव एटले शरीरमा जे बीजा पुद्गल तथा धर्मास्तिकायादिक द्रव्य छे ते सर्व जीवमाज गण्या तेवारे सग्रहनय बोल्यो जे असख्यात प्रदेशी ते जीव एटले एक आकाशना प्रदेश टल्या बीजा सर्व द्रव्य एमा गणाणा तेवारे व्यवहारनय बोल्यो जे विषय लइ काम वात सभारे ते जीव इहा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश तथा बीजा पुद्गल सर्व टल्या पण पाचे इन्द्रीय तथा मन अने लेश्या ए पुद्गल छे ते जीवमा गणाणा, कारणके विषयादिकतो इद्रियो ले छे ते जीवथी न्यारा छे पण इहा व्यवहारनयमते जीव भेला लीधा छे तेवारें ऋजुसूत्रनय बोल्यो जे उपयोगवत ते जीव इहा इद्रियादिक सर्व टल्या पण अज्ञान तथा ज्ञानना भेद टल्या नहीं. हवे शब्दनय बोल्यो जे नामजीव, स्थापना जीव

द्रव्य जीव भाव जीव इहा जीवमा गुण–निर्गुणनो भेद पड्यो नही, तेवारें समभिरूढनय बोल्यो जे ज्ञानादिगुणवत ते जीव तेवारें मतिज्ञान श्रुतज्ञान इत्यादिक साधक अवस्थाना गुण ते सर्व जीव स्वरूपमा आव्या हवे एवम्भूतनयबोल्यो जे अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनत चारित्र, शुद्धसत्तावत ते जीव ए नये जे सिद्ध अवस्थामा गुण हता तेज ग्रह्या ए सात नये जीव द्रव्य कह्यो

हवे सातनयें धर्म कहे छे नेगमनय बोल्यो जे सर्व धर्म छे केमके सर्व प्राणी धर्मने चाहे छे ए नय अशरूप धर्मने धर्म एहवु नाम कहे हवे सग्रहनय बोल्यो जे वडेरायें आदर्यो ते धर्म, एणे अनाचार छोड्यो पण कुलाचारने धर्म कह्यो, व्यवहारनय बोल्यो जे सुखनु कारण ते धर्म एणे पुण्य करणीने धर्म करी मान्यो ऋजुसूत्रनयमते जे उपयोग सहित वैराग्यरूप परिणाम ते धर्म कहियें ए नयमा यथाप्रवृत्तिकरणना परिणाम प्रमुख सर्व धर्ममा गण्या ते मिथ्यात्वीने पण होय हवे शब्दनय बोल्यो जे धर्मनु मूल समकित छे माटे समकित तेज धर्म तेवारें समभिरूढनय बोल्यो जे जीव अजीव नवतत्त्व तथा ६ द्रव्यने ओळखीने जीवसत्ता ध्यावे, अजीवनो त्याग करे एहवो ज्ञान दर्शन चारित्रनो शुद्ध निश्चय परिणाम ते धर्म ए नये साधक सिद्धना परिणाम ते धर्मपणे लीधा एवमूतनय बोल्यो जे शुक्ल ध्यान रूपातीतना परिणाम क्षपक श्रेणि कर्म क्षयना कारण ते धर्म जे जीवनो मूल स्वभाव ते वस्तु धर्म जे मोक्षरूप कार्यने करे ते धर्म ए साते नयें धर्म कह्यो

हवे सातनयें सिद्धपणो कहे छे. नैगमनयनी मते सर्व

जीव सिद्ध छे केमके सर्व जीवना आठ रुचक प्रदेश सिद्ध समान निर्मल छे माटे संग्रहनय कहे जे सर्व जीवनी सत्तासिद्ध समान छे एणे पर्यायार्थिक नयेंकरी कर्म सहित अवस्था ते टालीने द्रव्यार्थिकनयेंकरी अवस्था अगीकार करी तेवारें व्यवहारनय बोल्यो जे विद्या लब्धि प्रमुख गुणे करी सिद्ध थयो ते सिद्ध ए नये बाह्य तप प्रमुख अगीकार कर्या हवे ऋजुसूत्रनय बोल्यो के जेणे पोताना आत्मानी सिद्धपणानी सत्ता ओलखी अने ध्याननो उपयोग पण तेज वर्त्ते छे ते समयें ते जीव सिद्ध जाणवो ए नये समकीति जीव सिद्ध समान छे एम कह्युं हवे शब्दनय बोल्यो जे शुद्ध शुक्ल ध्यान परिणाम नामादिक निक्षेपे ते सिद्ध तेवारें समभिरूढनय बोल्यो जे केवलज्ञान केवलदर्शन, यथाख्यातचारित्र ए गुणे सहित ते सिद्ध जाणवा ए नये तेरमा चउदमा गुणठाणाना केवलीने सिद्ध कह्या अने एवभूतनय कहे छे के जेना सकल कर्म क्षय थया लोकने अते विराजमान अष्टगुण सपन्न ते सिद्ध जाणवा ए रीते सिद्ध पदे सात नय कह्या एम सात नय मिल्या समकीति छे अने जे एक नयने ग्रहण करे ते मिथ्यात्वी छे ए साते नय सिद्ध ते वचन प्रमाण छे अने ए सात नयमा कोइ पण नयने उथापे तेनु वचन अप्रमाण छे

हवे प्रमाणनो विचार कहे छे प्रमाणना बे भेद छे एक प्रत्यक्ष प्रमाण बीजु परोक्ष प्रमाण तेमा जे जीव पोताना उपयोगथी द्रव्यने जाणे ते प्रत्यक्ष प्रमाण कहिये जेम केवली छ द्रव्य प्रत्यक्ष प्रमाणे जाणे तथा देखे ते माटे केवलज्ञान ते सर्वथी प्रत्यक्ष ज्ञान छे, अने मन पर्यवज्ञान ते मनोवर्गणा प्रत्यक्ष जाणे तथा अवधिज्ञान ते पुद्गल द्रव्यने प्रत्यक्ष जाणे

माटे ए वे ज्ञान देश प्रत्यक्ष छे बीजु छद्मस्थज्ञान ते सर्व परोक्ष प्रमाण छे

हवे परोक्ष प्रमाण कहे छे मतिज्ञाननो अने श्रुतज्ञाननो उपयोग परोक्ष प्रमाण छे केमके जे शास्त्रना बलथी जाणे ते परोक्ष प्रमाण कहियें ते परोक्ष प्रमाणना त्रण भेद छे १ अनुमान प्रमाण, २ आगम प्रमाण, ३ उपमान प्रमाण तेमा अनुमान एटले कोइक सहिनाण देखीने जे ज्ञान थाय जेम धुमाडो देखीने अग्निनु अनुमान थाय अने आगम एटले शास्त्रनी साखथी जे वात जाणियें जेम देवलोक तथा नरक निगोद विगेरेनो विचार आगमथी जाणियें छे ते आगमप्रमाण अने कोइक वस्तुनो दृष्टान्त आपीने वस्तुने ओलखाववी ते उपमान प्रमाण जाणवो ए प्रमाण कह्या हवे सत् असत् पक्षथी सप्तभगी कहे छे

१ स्यात् केहता अनेकातपणे सर्व अपेक्षा लेइ जीवद्रव्यमा आपणो द्रव्य आपणो क्षेत्र आपणो काल आपणो भाव एम आपणे गुण पर्यायें जीव छे तेम सर्व द्रव्य आपणे गुणपर्याये छे ते स्यात् अस्ति नामा पहेलो भागो थयो

२ जे जीवमा बीजा पाच द्रव्यना १ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल ४ भाव ते परद्रव्यना गुणपर्याय जीवमा नथी एटले परद्रव्यना गुणनो नास्तिपणो सर्व द्रव्यमा छे ए स्यात् नास्ति बीजो भाग थयो

३ द्रव्य स्वगुणे अस्ति अने पर गुणे नास्ति ए वे भागा एक समये द्रव्यमा छे जेम जे समये शुद्ध स्वगुणनी अस्ति छे तेज समये परगुणनी नास्ति पण छे, माटे अस्ति नास्ति ए बेहु भागा भेला छे ते स्यात् अस्ति नास्ति त्रीजो भागो थयो

४ अस्ति अने नास्ति ए बेह भागा एक समयमा छे तो वचने करी अस्ति एटलो बोलता असख्याता समय लागे तेथी नास्ति भागो तेज वखते कहेवाणो नही अने जो नास्ति भागो कह्यो तो अस्ति पणो नाव्यो माटे एकज अस्ति कहेता थका नास्तिपणो तेज समये द्रव्यमा छे ते नही कहेवाणो माटे मृषावाद लागे तेमज नास्ति कहेता अस्तिनो मृषावाद लागे माटे वचने अगोचर छे एक समयमा बेहु वचन बोल्या जाय नही केमके एक अक्षर बोलता असख्याता समय लागे छे माटे वचनथी अगोचर छे ते स्यात् अवक्तव्य ए चोथो भागो कह्यो

५ ते अवक्तव्यपणो वस्तुमा अस्तिधर्मनो पण छे माटे स्यात्अस्ति अवक्तव्य पाचमो भागो कह्यो

६ तेमज नास्ति धर्मनो पण अवक्तव्यपणो वस्तु मध्ये छे माटे स्यात् नास्ति अवक्तव्य छट्ठो भागो जाणवो

७ ते अस्तिपणो तथा नास्तिपणो बेहु धर्म एकसमये वस्तु मध्ये छे पण वचनथी अवक्तव्य छे माटे स्यात् अस्ति-नास्तियुगपत्अवक्तव्य ए सातमो भागो कह्यो

हवे ए सात भागा नित्य तथा अनित्यपणामा लगाडे छे १ स्यात् नित्य २ स्यात् अनित्य ३ स्यात्नित्यानित्य ४ स्यात्-अवक्तव्य ५ स्यात्नित्यअवक्तव्य ६ स्यात्अनित्य अवक्तव्य ७ स्यात् नित्यानित्य युगपत् अवक्तव्य, एमज एक अनेकना सात भागा कहेवा तथा गुणपर्यायमा पण कहेवा केमके सिद्ध मध्ये नय नथी तोपण सप्तभगी तो सिद्धमा छे

हवे सत्ता ओळखाववाने त्रिभगीयो कहे छे १ मिथ्यात्व दशा ते बाधकदशा २ समकित गुणठाणाथी माडीने अयोगी केवली गुणठाणा सुधी साधक दशा जाणवी ३ सर्व कर्मथी

रहित ते सिद्ध दशा १ ज्ञाननो जाणपणो ते जीवनो गुण. २ तेनो ज्ञाता ते जीव ३ ज्ञेय ते सर्व द्रव्य १ ध्यान ते जीवना स्वरूपनो २ ते ध्याननो ध्याता जीव ३ ध्येय आत्मानो स्वरूप. १ कर्त्ता ते जीव २ कर्म ते एक मोक्ष बीजो बन्ध ३ क्रिया ते एक संवर बीजी आस्रव १ कर्म ते चेतनाने कर्म बंधना परिणाम २ कर्मनु फल ते चेतनाने जे कर्म उदयना परिणाम ३ ज्ञान चेतना ते जीवनो स्वगुण ते आत्माना त्रण भेद छे १ अज्ञानी जीव शरीरादिक परवस्तुने आत्मबुद्धियें करी माने छे पहेलो बहिरात्मा २ जे देह सहित जीव छे ते पण निश्चये सत्तागुण सिद्ध समान छे एटले पोताना जीवने सिद्ध समान करी ध्यावे ते बीजो अंतरात्मा जाणवो ३ कर्म खपावी केवलज्ञान पाम्या ते अरिहंत तथा सिद्ध सर्व परमात्मा जाणवा. ए त्रिभंगीनो विचार कह्यो एटले आठ पक्षनो विचार कह्यो

हवे एक द्रव्य मध्ये छ सामान्य गुण छे ते कहे छे पहेलो अस्तित्व ते जे छ द्रव्य आपणा गुण पर्याय प्रदेशे करी अस्ति छे तेमा धर्म, अधर्म, आकाश अने जीव ए चार द्रव्यनो असंख्याता प्रदेश मिल्या खंध थाय छे अने पुद्गलमा खंध थवानी शक्ति छे माटे ए पाच द्रव्य अस्तिकाय छे अने छट्ठो काल द्रव्यनो समय कोइ कोइथी मिलतो नथी केमके एक समय विणस्या पछे बीजो समय आवे छे माटे काल अस्तिकाय नथी द्रव्यमा ए अस्तित्व पणो कह्यो

२ वस्तुत्व कहेता वस्तुपणो कहे छे ते द्रव्य छए एकठा एक क्षेत्र मध्ये रह्या छे एक आकाश प्रदेशमा धर्मास्तिकानो एक प्रदेश रह्यो छे तथा अधर्मास्तिकायनो पण एक प्रदेश रह्यो छे अने जीव अनंताना अनंता प्रदेश रह्या छे पुद्गल

परमाणु अनता रह्या छे ते सर्व पोतानी सत्ता लीधा थका रह्या छे पण कोइ द्रव्य साथे मिली जातो नथी ते वस्तुपणो

३ द्रव्यत्व केहता- द्रव्यपणो ते सर्व द्रव्य पोतपोतानी क्रिया करे एटले धर्मास्तिकायमा चलनगुण ते सर्व प्रदेश मध्ये छे, सदा काले पुद्गल तथा जीवने चलाववारूपक्रिया करे छे, इहा कोइ पुछे जे लोकान्त सिद्धक्षेत्रमा धर्मास्तिकाय छे ते सिद्धना जीवने चलाववापणो करतो नथी तेनु केम ? तेने उत्तर कहे छे जे सिद्धना जीव अक्रिय छे माटे चालता नथी पण ते क्षेत्रमा जे सूक्ष्म निगोदना जीव तथा पुद्गल छे तेहने धर्मास्तिकाय चलावे छे माटे पोतानी क्रिया करे छे, तेमज अधर्मास्तिकाय जीव तथा पुद्गलने स्थिर राखवानी क्रिया करे छे, तथा आकाश द्रव्य ते सर्व द्रव्यने अवगाहनारूपकार्य करे छे. इहा कोइ पूछे जे अलोकाकाशमातो बीजु कोइ द्रव्य नथी तो अलोकाकाश कया द्रव्यने अवगाहदान आपे छे तेने उत्तर कहे छे जे अलोकाकाशमा अवगाह करवानी शक्ति तो लोकाकाश जेवीज छे परतु तिहा अवगाहनो दान लेनार द्रव्य कोइ नथी माटे अवगाहदान करतो नथी अने पुद्गल द्रव्य मिलवा विखरवारूप क्रिया करे छे तथा काल-द्रव्य वर्त्तना रूप क्रिया करे छे अने जीव द्रव्य ज्ञान लक्षण उपयोगरूप क्रिया करे छे एम सर्व द्रव्य पोताने परिणामी स्वसत्तानी क्रिया करे छे ए द्रव्यत्वपणो कह्यो

४ प्रमेयत्व कहेता प्रमेयपणो जे छ द्रव्यमा प्रमेय पणो छे, तेनो प्रमाण केवली पोताना ज्ञानथी करे छे, जे धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय अने आकाशास्तिकाय एकेक द्रव्य छे अने जीवद्रव्य अनता छे तेहनी गणति कहे छे सज्ञी

मनुष्य सख्याता छे, असज्ञी मनुष्य असरयाता छे, नारकी असख्याता छे, देवना असख्याता छे, तिर्यंच पचेन्द्रिय असख्याता छे, वेइन्द्री असख्याता छे, तेइन्द्री असख्याता, चोरेंद्रीय असख्याता छे ते थकी पृथ्वीकाय असख्याता, अपकाय असख्याता, तेउकाय असख्याता, वायुकाय असख्याता, प्रत्येकवनस्पति जीव असख्याता, ते थकी सिद्धना जीव अनता ते थकी वादर निगोदना जीव अनतगुणा एटले वादर निगोद ते कदमूल आदु सूरण प्रमुख एहने सुइने अग्रभागें अनता जीव छे ते सिद्धना जीवथी अनत गुणा छे अने सूक्ष्मनिगोद सर्वथी अनत गुणा छे सूक्ष्मनिगोदनो विचार कहे छे जेटला लोकाकाशना प्रदेश छे तेटला गोला छे ते एकेक गोलामा असरयाता निगोद छे निगोद शब्दनो अर्थ ए छे जे अनता जीवनो पिंड मृत एक शरीर तेहने निगोद कहियें ते एकेकी निगोदमध्ये अनता जीव छे ते अतीत कालना सर्व समय तथा अनागतकालना सर्व समय अने वर्त्तमान कालनो एक समय तेने मेला करी अनत गुणा करीये एटला एक निगोदमा जीव छे एटले अनता जीव छे ए ससारी जीव एकेकाना असख्याता प्रदेशे छे अने एकेका प्रदेशे अनति कर्म वर्गणा लागी छे ते एकेक वर्गणा मध्ये अनता पुद्गल परमाणु छे एम अनता परमाणु जीव साथे लाग्या छे ते थकी अनत गुणा पुद्गल परमाणु जीवथी रहित छुटा छे

गोलाय असखिज्जा,
असख निगोयओ हवइ गोलो ॥
इक्किक्कमि निगोए,
अणतजीवा मुणेयव्वा ॥ १ ॥

अर्थ-लोक माहे असख्याता गोला छे, एकेका गोला मध्ये असख्याति निगोद छे एकेक निगोदमा अनता जीव छे ॥

सत्तरस समहियाकिर ।
इगाणुपाणुमि हुति खुडुभवा ॥
सगतीससयतिहुत्तर ।
पाणू पुण इग मुहुत्तमि ॥ १ ॥

अर्थ-निगोदिया जीव ते मनुष्यना एक उसासमा सत्तर १७ भव जाजेरा करे छे अने संडत्रीससो तिहुतेर ३७७३ श्वासोच्छ्वासे एक मुहूर्त्तमा थाय

पणसट्ठि सहस्स पणसय ।
छत्तिसा इग मुहुत्त खुडुभवा ॥
आवलियाण दो सय ।
छपन्ना एग खुडुभवे ॥ १ ॥

अर्थ-निगोदना जीव एक मुहूर्त्तमा ६५५३६ भव करे अने निगोदनो एक भव २५६ आवलीनो छे क्षुल्लक भवनो ए प्रमाण छे

अथ्थि अणताजीवा,
जेहिं न पत्तो तसाइपरिणामो ॥
उववज्जतिचयति य,
पुणोवि तत्थेव तत्थेव ॥ १ ॥

अर्थ-निगोदमा अनता जीव एहवा छे जे जीव त्रसपणो पहेला किवारें पाम्या नथी अनतो काल पूर्वे गयो अने अनतो काल जाशे पण ते जीव वारवार तिहाज उपजे छे अने तिहाज चवे छे एम एक निगोदमा अनता जीव छे ते निगोदना बे भेद छे एक व्यवहार राशी निगोद अने,बीजो अव्य-

वहारराशी निगोद तेमा जे बादर एकेन्द्रियपणो भोवे त्रसपणो पामीने पाछा निगोदमा जाइ पडया छे ते निगोदिया जीवने व्यवहार राशिया कहियें, अने जे जीव कोइपण काले निगोदमायी निकल्या नथी ते जीव अव्यवहारराशीया कहियें अने इहा मनुष्यपणायी जेटला जीव कर्म खपावीने एक समयमा मोक्ष जाय छे तेटला जीव तेज समये अव्यवहारराशी सूक्ष्म निगोदमायी निकलीने उचा आवे छे जो दश जीव मोक्ष जाय तो दश जीव निकले कोइक वेलाए भव्य जीव ओछा निकले तो ते ठेकाणे एक वे अभव्य निकले पण व्यवहारराशीमा जीव कोइ वधे घटे नही एवा निगोदना असख्याता लोकमाहेला गोला ते छदिशीना आव्या पुद्गलने आहारादिपणे ले छे ते सकल गोला कहेवाय अने लोक अतना प्रदेशे जे निगोदना गोला रह्या छे तेने त्रण दिशीना आहारनी फरशना छे माटे विकल गोला कहियें ए सूक्ष्म निगोदमा पाच थावरना सूक्ष्म जीव ते सर्व लोकमा काजलनी कुपलीनी पेरे भरया थका व्यापी रह्या छे अने साधारणपणो ते मात्र एक वनस्पतिमाज छे पण चार थावरमा नथी ए सूक्ष्म निगोदमा अनतु दुःख छे तेनु उदाहरण कहे छे सातमी नरकनु आयुष्य तेत्रीस सागरोपमनु छे तेत्रीस सागरोपमना जेटला समय थाय तेटला वखत सातमी नरकमा उत्कृष्टे तेत्रीस सागरोपमने आयुषे कोइक जीव उपजे तेटला भवमा जेटलु छेदन भेदननु दुःख थाय ते सर्व एकठु करियें तेथी अनतगणु दुःख निगोदना जीव, एक समयमा भोगवे छे दृष्टान्त जेम कोइक मनुष्यने साडा त्रण क्रोड लोढानी सुइने अग्निथी तपावीने कोइक देवता समकाले चापे तेने जे वेदना थाय 'तेथी अनत गुणी वेदना नि-

गोद मध्ये छे अने भव्य जीवने निगोदरु कारण ते अज्ञान दशा छे माटे तेहनो त्याग करो ए निगोदनो विचार कह्यो ए सर्व प्रमेयनो प्रमाता आत्मा पोताना ज्ञान गुणे करी प्रमेयनो प्रमाण करे ए प्रमेय पणो कह्यो

५ सत्त्वपणो ते छ द्रव्य एक समयमा उपजे विणशे छे अने स्थिरपणे छे उत्पाद व्यय ध्रुवपणो तेहिज सत्‌पणो उत्पादव्ययध्रुवयुक्त सत् इति "तत्त्वार्थ वचनात्" ते विस्तारथी कही देखाडे छे जे धर्मास्तिकायना असख्याता प्रदेश छे तिहा एक प्रदेशमा अगुरुलघु असख्यातो छे अने बीजा प्रदेशमा अनतो अगुरुलघु छे, त्रीजा प्रदेशमा सख्यातो अगुरुलघु छे एम असख्याता प्रदेशमा अगुरुलघुपर्याय घटतो वधतो रहे छे ते अगुरुलघु पर्याय चल छे ते जे प्रदेशमा असख्यातो छे ते प्रदेशमा अनतो थाय छे अने अनताने ठेकाणे असख्यातो थाय छे एम लोकप्रमाण असख्यात प्रदेशमा शरीखो समकाले अगुरु लघु पर्याय फिरे छे ते जे प्रदेशमा असख्यातो फिटीने अनतो थाय छे ते प्रदेशमा असख्यातपणानो विनाश छे अने अनत पणानो उपजवो छे अने अगुरुलघुपणे गुण ध्रुव छे एम उपजवो विणसवो अने ध्रुव ए त्रणे परिणाम छे अधर्मास्तिकायमा पण ए त्रणे परिणाम असख्यात प्रदेशे सदा समय समयमा परिणमी रह्या छे, तेमा पण उपजे विणशे अने थिर रहे छे एम आकाशना अनता प्रदेशमा पण एक समये त्रण परिणाम परिणमे छे, अने जीवना असख्याता प्रदेश छे ते मध्ये पण उपजे विणशे थिर रहे (छे) तथा पुद्गल परमाणुमा पण समय थाय छे अने कालनो वर्त्तमान समय फिटीने अतीत काल थाय छे तो, ते समयमा वर्त्तमानपणानो विनाश

छे अने अतीतपणानो उपजवो छे काल पणे ध्रुव छे ए स्थूल थकी उत्पादक व्यय ध्रुवपणो कह्यो अने वस्तुगते मूलपणे ज्ञेयने पल्टवे ज्ञाननो पण ते भासनपणे परिणमवो थाय ते पूर्व पर्यायना भासननो व्यय अने अभिनव ज्ञेयना पर्याय भासननो उत्पाद तथा ज्ञानपणानो ध्रुव ए रीते सर्व गुणना धर्मनी प्रवृत्तिरूप पर्यायनो उत्पाद व्यय श्रीसिद्धभगवन्तमा पण थइ रह्यो छे एमज धर्मास्तिकायना प्रदेशें जे क्षेत्र गत असख्यात पुद्गल तथा जीवने पहेले समय चलण सहायीपणो परिणमतो हतो अने बीजे समय अनन्त परमाणु तथा अनन्ता जीव प्रदेशने चलन सहायी थयो तेवारें असख्याता चलन सहायनो व्यय अने अनता चलन सहायनो उपजवो अने गुणपणे ध्रुव एम धर्मद्रव्य मध्ये उत्पाद व्यय थइ रह्यो छे तेमज अधर्मादिक द्रव्यने विषे पण भाववु तथा वली कार्य कारणपणे उत्पाद व्यय तथा अगुरुलघुना चलननो उत्पाद व्यय पचास्तिकायने विषे कहेवु तथा कालद्रव्य ते उपचार छे तेनु स्वरूप सर्व उपचारथीज कहेवु ए रीते सर्व द्रव्यमा सत्पणो छे जो अगुरुलघुनो भेद न थाय तो पछे प्रदेशनो माहोमाहे भेद केवो थाय ते माटे अगुरुलघुनो भेद सर्वमा छे अने जेनो उत्पाद व्यय रूप सत्पणो एक छे ते द्रव्य एक छे तथा जेनो उत्पाद व्यय सत् पणो जूदो ते द्रव्य पण जूदो छे एटले सत् केहता सत्त्वपणो कह्यो

६ अगुरुलघुपणो कहे छे जे द्रव्यनो अगुरुलघु पर्याय छे ते छ प्रकारनी हानि वृद्धि करे छे तेमा छ प्रकारनी वृद्धि छे १ अनन्त भागवृद्धि, २ असख्यातभागवृद्धि, ३ सख्यातभागवृद्धि, ४ सख्यातगुणवृद्धि, ५ असख्यातगुणवृद्धि, ६ अनत

गुणवृद्धि हवे छ प्रकारनी हानि कहे छे १ अनतभागहानि, २ असख्यातभागहानि, ३ सख्यातभागहानि, ४ सख्यातगुण हानि, ५ असख्यातगुणहानि, ६ अनतगुणहानि ए रीते छ प्रकारनी वृद्धि तथा छ प्रकारनी हानि ते सर्व द्रव्यमा सदा समय समय थइ रही छे वृद्धि ते उपजवो अने हानि ते व्यय कहियें ए अगुरुलघुपणो कह्यो नहीं गुरु तथा नहीं लघु ते अगुरुलघु स्वभाव कहियें ए सर्व द्रव्य मध्ये छे ते श्री भगवती सूत्रे " सव्वदव्वा सव्वगुण सव्वपएसा सव्वपज्जवा सव्वद्धा अगुरु लहुआए " अगुरुलघु स्वभावने आवरण नथी तथा आत्मा मध्ये जे अगुरुलघुगुण ते आत्माना सर्व प्रदेशे क्षायक भाव थये सर्व गुण सामान्यपणे परिणमे पण अधिका ओछा परिणमे नही ते अगुरुलघुगुणनु प्रवर्तन जाणवु ते अगुरुलघु गुणने गोत्रकर्म रोके छे ए अगुरुलघु स्वभाव ते सर्व द्रव्यमा छे

हवे गुणनी भावना कहे छे तिहा जेटला छए द्रव्यमा सरीखा गुण छे ते सामान्य गुण कहियें, अने जे गुण एक द्रव्यमा छे अने बीजा द्रव्यमा नथी ते विशेष गुण कहियें जे गुण कोइक द्रव्यमा छे अने कोइक द्रव्यमा नथी ते साधारण, असाधारण गुण कहिये एम ए छ द्रव्यमा अनतगुण, अनन्त पर्याय, अनन्त स्वभाव सदा शाश्वता छे, जेम श्रीकेवली भगवतें प्ररूप्या ते सर्व जे रीतें छे ते रीतें सद्दहणा पूर्वक यथार्थ उपयोगथी श्रुतज्ञानादिकथी यथार्थपणे जाणवा. सद्दहवा ते मोक्षनु कारण छे जे जीव ज्ञान पाम्यो ते जीव विरति करे छे ते चारित्र कहियें ज्ञाननु फल विरतिपणो छे ते मोक्षनु तत्काल कारण छे

हवे, निश्चय चारित्र अने व्यवहार चारित्रनो विचार कहे

छे तेमा प्रथम व्यवहार चारित्र ते जे प्राणातिपातविरमण प्रमुख पचमहाव्रतरूप ते सर्व विरति कहियें अने स्थूलप्राणातिपातविरमण व्रतादिक श्रावकना बार व्रत ते देश विरति चारित्र जाणवु ए व्यवहार चारित्र सुखनु कारण छे एवी करणीरूप श्रावकना बार व्रत अने यतिना पाच महाव्रत ते अभव्यने पण आवे तेथी देवतानी गति पामे पण सकाम निर्ज्जरानु कारण न थाय इहा कोइ पूछे के मोक्षनु कारण नथी तो एटलु कष्ट शा वास्ते करियें ? तेने उत्तर जे त्याग बुद्धि निश्चय ज्ञान सहित चारित्र ते मोक्षनु कारण छे माटे निश्चय चारित्र सहित व्यवहार चारित्र पाल्नु ते निश्चय चारित्र कहे छे शरीर, इन्द्रिय, विषय, कपाय योग ए सर्व परवस्तु जाणी छांडवा तथा आहार ते पुद्गल वस्तु जाणी छांडवो आत्मा अणाहारी छे ते माटे मुजने आहार करवो घटे नही आहार ते पुद्गल छे, आत्मा अपुद्गली छे ते माटे त्याग करवो तद्रूप जे तप ते तप निश्चय चारित्रमा जाणवु चारित्र कहेता चचलता रहित थिरताना परिणाम अने आत्मस्वरूपने विषे एकत्वपणे रमण तन्मयता स्वरूप विश्राति तत्त्वानुभव ते चारित्र कहियें ते चारित्रना बे भेद छे एक देशविरति, बीजु सर्व विरति तिहा देश विरति कहेता श्रावकना बार व्रत ते बार व्रत निश्चय तथा व्यवहारथी कहे छे

१ प्राणातिपात विरमण व्रत ते परजीवने आपणा जीव सरीखो जाणी सर्व जीवनी रक्षा करे ते व्यवहार दया थइ माटे व्यवहार प्राणातिपात विरमण व्रत जाणवु अने जे आपणो जीव कर्म वश पड्यो दु खी थाय छे ते आपणा जीवने कर्मबधनथी मुकाववु अने आत्म गुण रक्षा करी गुण वृद्धि करवी

ते स्वदया बंधहेतु परिणति निवारी स्वरूप गुणने प्रगटपणे करवा जे गुण प्रगट थयो ते राखवो एटले ज्ञाने करी मिथ्यात्व टाली आपणा जीवने निर्मल करे ते निश्चयथी प्राणातिपात विरमण व्रत कहियें

२ मृषावाद विरमणव्रत कहे छे जूठु वचन बिलकुल बोलवु नही ते व्यवहार मृषावाद विरमणव्रत अने जे पर पुद्गलादिक वस्तुने आपणी कहेवी ते मृषावाद वचन छे अने जीवने अजीव कहे तथा अजीवने जीव कहे इत्यादिक अज्ञान भाव ते सर्व निश्चय मृषावाद छे अथवा सिद्धान्तना अर्थ खोटा कहे ए मृषावाद जेणे छाडयो ते निश्चय मृषावाद विरमणव्रत कहियें, एटले बीजा अदत्तादानादिक व्रत जो भाजे (भागे) तो तेनो मात्र चारित्र भग थाय पण ज्ञान दर्शननो भग न थाय अने जेणे निश्चय मृषावादनो भग कर्यो तेणे समकित तथा ज्ञान अने चारित्र ए त्रणेनो भग कर्यो तथा आगममा एम कह्यु छे जे एक साधुयें चोथो व्रत भग कर्यो अने एक साधुये बीजो मृषावाद व्रत भग कर्यो तो जेणे चोथो व्रत भग कर्यो ते आलोयण लेइ शुद्ध थाय पण जे सिद्धान्तना अर्थनो मृषा उपदेश आपे ते आलोयण लीधे पण शुद्ध थाय नही

३ अदत्तादान विरमण व्रत कहे छे जे पारकु धन वस्तु छुपावे चोरी करे ठगबाजी करी लीये ते चोरी छे, एटले पारकी वस्तु धणीना दीधा विना लेवी नही ए व्यवहारथी अदत्तादानविरमण व्रत जाणवु अने जे पाच इद्रियना त्रेवीस विषय, आठ कर्मवर्गणा इत्यादिक परवस्तु लेवी नहीं तथा तेनी वाछा न करवी ते आत्माने अग्राह्य छे माटे ते निश्चयी अदत्तादानविरमण व्रत कहियें इहा कोइ पूछे जे विषयनी

अने कर्मनी वाछा कोण करे छे? तेने उत्तर जे पुण्यने मेलो लेवा योग्य कहे छे ते जीव कर्मनी वाछा करे छे जे पुण्यना ४२ भेद छे ते चार कर्मनी शुभ प्रकृति छे एटले जे व्यवहार अदत्तादान तो नथी लेता पण अतरग पुण्यादिकनी वाछा छे तेने निश्चय अदत्तादान लागे छे

४ मैथुन विरमणव्रत कहे छे जे पुरुष परस्त्रीनो परिहार करे तथा जे स्त्री परपुरुषनो परिहार करे इहा साधुने स्त्रीनो सर्वथा त्याग छे अने गृहस्थने परणेली स्त्री मोकली छे परस्त्रीनो पच्चखाण छे ते व्यवहारथी मैथुनतु विरमण कहियें अने जे विषयना अभिलाषतु तथा ममता तृष्णानो त्याग परभाव वर्णादिक परद्रव्यना स्वामित्वादिक तेनो अभोगीपणो आत्मा स्वगुण ज्ञानादिकनो भोगी छे अने ए पुद्गलखध ते अनता जीवनी एठ छे तेने केम भोगवे ए रीते त्याग निश्चयथी मैथुन विरमण कहियें जेणे बाह्य विषय छाड्यो छे अने अतरग लालच छुटी नथी तो तेहने ते मैथुनना कर्म लागे छे

५ परिग्रह परिमाणव्रत कहे छे परिग्रह धन–धान्य–दास–दासी–चौपद–जमीन–वस्त्र आभरणनो त्याग तेमा साधुने तो सर्वथा परिग्रहनो त्याग छे तथा श्रावकने इच्छा परिमाण छे जेटली इच्छा होय तेटलो परिग्रह मोकलो राखे बीजानी विरति करे ए व्यवहारथी कह्यो अने जे कर्म रागद्वेष अज्ञान द्रव्य ज्ञानावरणीय प्रमुख आठ कर्म अने शरीर इन्द्रियनो परिहार एटले कर्मने पर जाणी छाडवो ते निश्चयथी परिग्रहनो त्याग एटले परवस्तुनी मूर्छा छाडवी जेणे मूर्छा छोडी तेणे परिग्रह छोड्योज छे एम जाणवु

६ दिशिपरिमाण व्रत कहे छे. तिहा तिरछि चार दिशी

पाचमी अवो छट्ठी ऊर्ध्व ए छ दिशिना क्षेत्रनो मानकरी मोकलो राखे ते व्यवहारथी दिशिपरिमाण कहियें अने चारगतिमा भटकवु ते कर्मनु फल छे एम जाणी तेथी उदासीपणो अने सिद्ध अवस्था(नो) शु उपादेयपणो ते निश्चय दिशिपरिमाण व्रत कहियें

७ भोगोपभोगपरिमाण व्रत कहे छे जे एकवार भोगववु ते भोग अने जे वारवार भोगववु ते उपभोग तेनो परिमाण करे ते व्यवहार भोगोपभोगव्रत कहियें, अने जे व्यवहारनये कर्मनो कर्त्ता भोक्ता जीव छे अने निश्चयनये तो कर्मनो कर्त्ता कर्म छे आत्मा अनादिनो परभाव भोगी थयो छे तेथी परभावग्राहक अने परभावरक्षक थयो एटले आत्मानी ज्ञायकता, ग्राहकता, भोग्यता, रक्षकता वीगडे कर्त्ता पणो वीगड्यो तेवारें परभाव कर्त्ता थयो ते पण परभाव रंगीपणें आठ कर्मनो कर्त्ता थयो छे पण सत्ताय तो स्वभावनो कर्त्ता छे पण उपकरण अवराणा तेथी स्वकार्य करी शकतो नथी विभावने करे छे अज्ञानपणे जीवनो उपयोग मल्यो छे पण न्यारो छे पोताना ज्ञानादिक गुणनो कर्त्ता भोक्ता छे एहवो स्वरूपानुयायी परिणाम ते निश्चयभोगोपभोगव्रत त्याग जाणवो

८ अनर्थदण्डविरमणव्रत कहे छे काम विना जीवनो वध करवो पारका वास्ते आरभ प्रमुख करवानी आज्ञा प्रमुखे आपवी ते व्यवहार अनर्थदड अने शुभाशुभ कर्म ते मिथ्यात्व अविरति कषाय योगथी बधाय छे तेने जीव आपणा करी जाणे ए निश्चयथी अनर्थदड.

९ सामायिक व्रत कहे छे जे मन वचन कायाना आरभ टालीने तेने निरारभपणे वर्त्तावे ते व्यवहार सामायिक जाणवो

अने जे जीवना ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुण विचारे सर्व जीवना गुणनी सत्ता एकसमान जाणी सर्व जीव साथे समतापरिणामे वर्ते ते निश्चय समतारूप सामायिक कहिये

१० देशावगाशिक व्रत कहे छे जे मन वचन कायाना योग एक ठोर करी एकस्थानकें बेसी धर्म ध्यान करवो ते व्यवहार देशावगाशिक कहियें अने जे श्रुतज्ञाने करी छ द्रव्य ओलखीने पाच द्रव्यनो त्याग करे अने ज्ञानवंत जीवने ध्यावे ते निश्चय देशावगाशिक व्रत कहियें

११ पौषध व्रत कहे छे जे चार पहोर अथवा आठ पहोर सुधी समता परिणामे सावद्य छोडी निरारंभपणे सझायध्यानमा प्रवर्ते ते व्यवहार पोशह कहिये अने पोताना जीवने ज्ञान ध्यानथी पोषीने पुष्ट करे ते निश्चयथी पौषध व्रत कहियें जीवने पोताना स्वगुणे करी पोषीजे तेणे पोषध कहियें

१२ अतिथिसंविभाग व्रत कहे छे जे पोशहने पारणे अथवा सदा सर्वदा साधुने तथा जैनधर्मिश्रावकने पोतानी शक्ति प्रमाणे दान देवु ते व्यवहार अतिथिसंविभाग कहियें अने पोताना जीवने अथवा शिष्यने ज्ञाननु दान ते भणवु, भणाववु, गुणवु सुणाववु, ते निश्चयथी अतिथिसंविभाग व्रत कहियें एटले श्रावकना बार व्रत कह्या ते समकित सहित जे निश्चय तथा व्यवहारथी बार व्रत धारे ते जीवने पाचमे गुणठाणे देशविरति श्रावक कहियें देश केहता देशथकी थोडीशी व्रतिपणो छे माटे अने यतिने सर्वथी व्रतिपणो छे तेथी पाच महाव्रतज छे साधुने पाच महाव्रतमा सर्व व्रत आव्या ए निश्चय त्यागरूप ज्ञान ध्यान संवर निर्जरामा थिरताना परिणाम ते निश्चय चारित्रना एक उत्सर्ग बीजो अपवाद ए बे मार्ग छे तेमा जे उत्कृष्ट तीक्ष्ण

पाचमी अधो उर्द्ध ऊर्व्व ए छ दिशिना क्षेत्रनो मानकरी मोकलो राखे ते व्यवहारथी दिशिपरिमाण कहियें अने चारगतिमा भटकवु ते कर्मनु फल छे एम जाणी तेथी उदासीपणो अने सिद्ध अवस्था(नो) शु उपादेयपणो ते निश्चय दिशिपरिमाण व्रत कहियें

७ भोगोपभोगपरिमाण व्रत कहे छे जे एकवार भोगववु ते भोग अने जे वारवार भोगववु ते उपभोग तेनो परिमाण करे ते व्यवहार भोगोपभोगव्रत कहियें, अने जे व्यवहारनये कर्मनो कर्त्ता भोक्ता जीव छे अने निश्चयनये तो कर्मनो कर्त्ता कर्म छे आत्मा अनादिनो परभाव भोगी थयो छे तेथी परभावग्राहक अने परभावरक्षक थयो एटले आत्मानी ज्ञायकता, ग्राहकता, भोग्यता, रक्षकता वीगडे कर्त्ता पणो वीगड्यो तेवारें परभाव कर्त्ता थयो ते पण परभाव रगीपणें आठ कर्मनो कर्त्ता थयो छे पण सत्ताय तो स्वभावनो कर्त्ता छे पण उपकरण अवराणा तेथी स्वकार्य करी शकतो नथी विभावने करे छे अज्ञानपणे जीवनो उपयोग मल्यो छे पण न्यारो छे पोताना ज्ञानादिक गुणनो कर्त्ता भोक्ता छे एहवो स्वरूपानुयायी परिणाम ते निश्चयभोगोपभोगव्रत त्याग जाणवो

८ अनर्थदण्डविरमणव्रत कहे छे काम विना जीवनो वध करवो पारका वास्ते आरभ प्रमुख करवानी आज्ञा प्रमुखे आपवी ते व्यवहार अनर्थदड अने शुभाशुभ कर्म ते मिथ्यात्व अविरति कषाय योगथी बधाय छे। तेने जीव आपणा करी जाणे ए निश्चयथी अनर्थदड

९ सामायिक व्रत कहे छे जे मन वचन कायाना आरभ टालीने तेने निरारभपणे वर्त्तावे ते व्यवहार सामायिक जाणवो

एहवी आगला भवनी वाञ्छा छे ते अग्रशोच आर्तध्याननो चोथो पायो जाणवो ए आर्तध्यानना चार भेद कह्या ए तिर्यंच गतिना कारण छे ए ध्यानना परिणाम ते पाचमा अथवा छट्ठा गुणठाणा सुधी होय

२ जे कठोर परिणामनु चिंतवन ते रौद्रध्यान तेना चार भेद छे १ जीवहिंसा करीने हर्ष पामे अथवा बीजो कोइ हिंसा करतो होय तेने देखी खुशी थाय अथवा गुरुनी अनुमोदना करे ते हिंसानुबंधी रौद्रध्यान २ जुठु बोलीने मनमा हर्ष पामे के जुओ में केवो कपट केळव्यो मारा जुटापणानी खबर कोइने पडी नही, एवो मृषावाद रूप परिणाम ते मृषानुबंधी रौद्रध्यान ३ चोरी करी अथवा ठगाइ करी मनमा खुशी थाय के मारा जेवो जोरावर कोण छे, हु पारको माल खाउ छु एवो परिणाम ते चोरानुबंधि रौद्रध्यान ४ परिग्रह धन धान्य परिवार घणो वधवानी लालच होय ते धन अथवा कुटुंबने माटे गमे तेवु पाप करे अथवा घणो परिग्रह मिल्याथी अहंकार करे ते परिग्रहरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान ए रौद्रध्यानना चार भेद कह्या ए ध्यान नरक गति पमाडवानु कारण छे महा अशुभकर्मनु कारण छे ए पाचमा गुणठाणा सुधी छे, अने छट्ठे गुणठाणे पण एक हिंसानुबंधीरौद्रध्यानना परिणाम कोइक जीवने होय

हवे धर्मध्यान कहे छे जे व्यवहार क्रियारूप कारण ते धर्म तथा श्रुतज्ञान अने चारित्र ए उपादानपणे साधन धर्म तथा रत्नत्रयी भेदपणे ते उपादान शुद्ध व्यवहार उत्सर्गाऽनुयायी ते अपवाद धर्म जाणवो अने अभेद रत्नत्रयी ते साधन शुद्ध निश्चयनयें उत्सर्ग धर्म अने (धम्मो वत्थु सहावो). जे

परिणाम ते उत्सर्ग अने जे उत्सर्ग राखवाने कारणरुप ते अपवाद–उक्तच ॥ "सवरणमि असुद्ध, दुन्नंवि गिन्ह तदेतयाणहिय ॥ आउर दिट्ठ तेण, ते चेवहीय असवरणे" ॥ १ ॥ एटले ज्या सुधी साधक भावने बाधक न पडे त्या सुधी जेहनी ना कही ते आदरवो नहीं अने जो साधक परिणाम रहेता न दीठा तेवारे जेहनी ना ते आचरे तेने अपवाद मार्ग कहियें जे आत्मगुण राखवाने करवो ते अपवाद अने गुणीने रागे भक्तियें करवो ते प्रशस्त ए बे तो साधन छे अने जे औदयिकने अखमवायी करवु ते अतिचार छे तथा सबलो अने औदयिक माटे अशक्तपणे करवु ते पडिवाइ छे ते मध्ये अपवाद मार्ग ते परिणाम दृढ रहे तेम आज्ञायें करवो

हवे चार ध्यान कहे छे १ आर्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान, ४ शुक्लध्यान तिहा पहेला बे ध्यान ते अशुभ कहियें अने पाछला बे ध्यान ते शुद्ध छे तिहा मनमा आहट्ट दोहट्टना परिणाम ते आर्तध्यान कहिये तेना चार पाया छे १ भाइ, मित्र, सज्जन, माता, पिता, स्त्री, पुत्र, धन, प्रमुख इष्ट वस्तुनो वियोग थयाथी विलाप करे ते पहेलो इष्ट वियोगनामा आर्तध्यान तथा २ अनिष्ट जे भुडा दु खना कारण, दुश्मन दरिद्रीपणो, तथा कुपुत्रादि मलवाथी मनमा दु ख चिंता उपजे ते अनिष्ट सयोग नाम आर्तध्यान ३ शरीरमा रोग उपना थका दु ख करे, चिंता घणी करे ते रोगचिंतानाम आर्तध्यान ४ मनमा आगलना वखतनो शोच करे जे आ वर्षमा आ काम करशु, आवता वर्षमा अमुक काम करशु तो अमुक लाभ थशे अथवा दान शील तपनु फल मागे जे आ भवमा तप कीधो छे माटे आवते भवे इन्द्र चक्रवर्त्तिनी पदवी मले

३ विपाकविचय धर्मध्यान कहे छे जे एहवो जीव छे तोपण कर्मवशे दुःखी छे ते कर्मनो विपाक चिंतवे जे जीवनो ज्ञानगुण ते ज्ञानावरणीय कर्मे दाब्यो छे अने दर्शनावरणीय कर्म दर्शनगुण दाब्यो छे, एम आठ कर्मे जीवना आठ गुण दाब्या छे एटले आ संसारमा भमता थका जीवने जे सुखदुःख छे ते सर्व कर्मना कीधा छे माटे सुख उपने राचवु नही अने दुःख उपने दिलगीर थवु नही कर्म स्वरूपनी प्रकृति, स्थिति, रस, अने प्रदेशनो बंध, उदय, उदीरणा, तथा सत्ता, चिंतवनानु एकाग्रता परिणाम ते विपाकविचय धर्मध्यान

४ संस्थानविचयधर्मध्यान कहे छे ते चउद राजमान लोकनु स्वरूप विचारे जे ए लोक ते चउदराज ऊचो छे ते मध्ये सातराज अधोलोक छे विचमा अढारसो योजन मनुष्य क्षेत्र तिर्छो लोक छे ते ऊपर काइक ऊणो सातराज ऊर्ध्वलोक छे तेमा सर्व वैमानिक देवता वसे छे अने ऊपरे सिद्ध शिला सिद्ध क्षेत्र छे ए रीते लोकनु प्रमाण छे ए लोकनु संस्थान वैशाख छे अनतो काल आपणा जीवें संसारमा भमता सर्व लोकने जन्म मरण करी फरस्यो छे, एवु जे लोक स्वरूप तथा लोकने विषे पंचास्तिकायनु अवस्थान तथा परिणमन द्रव्य मध्ये गुणपर्यायनु अवस्थान तेनो जे एकाग्रताये तन्मयचिंतवन परिणाम एहवु जे ध्यान ते संस्थान विचय धर्मध्यान कहिये ए धर्मध्यानना चार पाया कह्या ए धर्मध्यान चोथा गुणठाणाथी माडीने सातमा गुणठाणा सुधी छे

हवे शुक्लध्यान कहे छे शुक्ल केहता निर्मल, शुद्ध, पर

वस्तुनो सत्तागत शुद्ध परिणामिक स्वगुण प्रवृति कर्तादिक अनतानद रूप सिद्धावस्थायें रह्यो ते एवमत् उत्सर्ग उपादान शुद्ध धर्म, ते धर्मनु भासन रमण एकाग्रतापणे चिंतन तन्मयतानो उपयोग एकत्वनो चिंतववो ते धर्म ध्यान कहियें तेना पाया चार छे ते कहे छे

१ आज्ञाविचयधर्मध्यान ते जे वीतराग देवनी आज्ञा साची करी सद्दहे एटले भगवते छ द्रव्यनु स्वरूप नय प्रमाणे निक्षेपा सहित सिद्ध स्वरूप, निगोद स्वरूप जेम कह्या तेम सद्दहे, वीतरागनी आज्ञा नित्य अनित्य स्याद्वादपणे निश्चये व्यवहारपणे माने सद्दहे ते आज्ञा प्रमाणे यथार्थ उपयोग भासन थयो तेने हर्षे करी ते उपयोग मध्ये निरधार, भासन, रमण अनुभवता, एकता, तन्मयपणो ते आज्ञाविचय धर्मध्यान कहियें

२ अपायविचयधर्मध्यान ते जीवमा अशुद्धपणे कर्मना योगथी ससारी अवस्थामा अनेक अपाय कहेता दूषण छे ते अज्ञान, राग, द्वेष, कषाय, आश्रव ए मारा नथी हु एथकी न्यारो छु हु अनतज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यमयी, शुद्ध, बुद्ध, अविनाशी छु अज, अनादि, अनत, अक्षर, अनक्षर, अचल, अकल, अमल, अगम्य, अनमी, अरूपी, अकर्म्मी, अबधक, अनुदय, अनुदीरक, अयोगी, अभोगी, अरोगी, अभेदी, अवेदी, अछेदी, अखेदी, अकषायी, असखाइ, अलेशी, अशरीरी, अणाहारी, अव्याबाध, अनवगाही, अगुरुलघु, परिणामी, अतीन्द्रिय, अप्राणी, अयोनि, अससारी, अमर, अपर, अपरपार, अव्यापी, अनाश्रित, अकप, अविरुद्ध, अनाश्रव, अलख, अशोकी, असगी, अनारक, लोकालोकज्ञायक, एवो शुद्ध चिदानद मारो जीव छे, एहवो एकाग्रतारूप ध्यान ते अपायविचयधर्मध्यान जाणवो

मल केवल ज्ञान पामे पछे तेरमे गुणठाणे ध्याननरीकापणे छे तेरमाना अते अने चउदमे गुणठाणे ए वे पाया ध्यावे

३ सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति पायो कहे छे ते सूक्ष्म मन, वचन कायाना योग रुंधे, शैलेशी करण करी अयोगी थाय ते जे अप्रतिपाति निर्मलवीर्य अचलतारूप परिणाम ते सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाति ध्यान जाणवु इहा सत्तायें ८५ प्रकृति रही हती ते मध्ये ७२ खपावे

४ उच्छिन्नक्रियानुवृत्ति पायो कहे छे जे योग निरुध कीधा पछे तेर प्रकृति खपावे, अकर्मा थाय, सर्व क्रियाथी रहित थाय ते, समुच्छिन्न क्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान कहियें ए ध्यान ध्यावता शेष, दल, खरणरूप क्रिया उच्छेदे, अवगाहना देह मानमाथी त्रीजो भाग घटाडे, शरीर मूकी इहाथी सातराज ऊपर लोकने अते जाय, सिद्ध थाय इहा शिष्य पूछे जे चौदमे गुणठाणे तो अक्रिय छे, तो सात राज उचो गयो ए क्रिया केम करे छे? तेने उत्तर जे सिद्ध तो अक्रिय छे, परतु पूर्व प्रेरणायें तुबीने दृष्टान्ते जीवमा चालवानो गुण छे धर्मास्तिकायमध्ये प्रेरणा गुण छे, तेथी कर्मरहित जीव मोक्षे जता लोकने अते जइ रहे इहा कोइ पूछे जे आगळ उचो अलोक छे तिहा किम जातो नथी? तेने उत्तर जे आगल धर्मास्तिकाय नथी माटे न जाय वली कोइ पुछे जे तो अधोगतियें अथवा तिरच्छी गतियें केम नथी जातो? तेने उत्तर जे कर्मना भारथी रहित थयो, हलवो थयो, माटे नीचो तथा डावो जिमणो न जाय, कारण के प्रेरक कोइ नथी तथा कपे नही केमके अक्रिय छे माटे तथा कोइ पूछे जे सिद्धने कर्म केम लागता नथी? तेने कहे छे जे कर्म तो जीवने अज्ञानथी तथा योगथी लागे छे,

आलंबन विना आत्माना स्वरूपने तन्मयपणे ध्यावे एहवु ध्यान तेने शुक्लध्यान कहियें तेहना पाया चार छे ते कहे छे

१ पृथक्त्ववितर्कसप्रविचार—ते पृथक्त्व केहता जीवथी अजीव जूदा करवा, स्वभाव विभाव तेने जूदा पृथक्रूपणे वहेंचण करवी स्वरूपने विषे पण द्रव्य तथा पर्यायनो पृथक्पणे ध्यान करी, पर्याय ते गुणमा संक्रमावे अने गुण ते पर्यायमा संक्रमण करे ए रीते स्वधर्मने विषे धर्मांतरभेद ते पृथक्त्व कहियें अने तेनो वितर्क ते जे श्रुतज्ञाने स्थित उपयोग अने सप्रविचार ते सविकल्पोपयोग एटले एक चिंतव्या पछी बीजो चितववो तेने विचार कहियें एटले निर्मल विकल्प सहित पोतानी सत्ताने ध्यावे ते पृथक्त्व वितर्कसप्र विचार पेहेलो पायो ए आठमा गुणठाणाथी मांडी अग्यारमा गुणठाणा सुधी छे

२ एकत्व वितर्कअप्रविचार नामा बीजो पायो कहे छे जे जीव आपणा गुणपर्यायनी एकता करी ध्यावे ते आवी रीते के जीवना गुणपर्याय अने जीव ते एकज छे, अने म्हारो जीव सिद्धस्वरूप एकज छे एवो एकत्व स्वरूप तन्मयपणे अनंता आत्म धर्मनो एकत्वपणे ध्यानवितर्क केहता श्रुतज्ञानावलंबीपणे अने अप्रविचार केहता विकल्प रहित दर्शन ज्ञाननो समयांतरे कारणता विना रत्नत्रयीनो एक समयी कारण कार्यतापणे जे ध्यान वीर्य उपयोगनी एकाग्रता ते एकत्ववितर्क अप्रविचार जाणवो ए पायो बारमा गुणठाणे ध्यावे ए बेहु पायामा श्रुतज्ञानावलंबीपणो छे पण अवधि मन पर्यव ज्ञानोपयोगें वर्तता जीव कोइ ध्यान करी सके नहीं, ए बे ज्ञान परानुयायी छे माटे ए ध्यानथी घनघातिया चार कर्म खपावे नि-

नही कारण के हिंसक ऊपर पण उत्तम जीवने करुणा ऊपजे जो उपदेश थकी राग मार्ग आवे तो तेने शुद्ध मार्गे आणवो कदाचित् मार्गे न आवे तो पण द्वेष न राखवो केमके ते अजाण छे एम समजवु एहवा जे परिणाम ते मध्यस्थ भावना ४ सर्व जीवने पोताने तुल्य जाणी दया पाळे, कोइने हणे नही तथा जे दुःखी अथवा धर्महीन तेहना उपर करुणा तेना दुःख टाळवानो परिणाम तथा धर्महीन जीव देखीने एवो चिंतवे जे ए जीव किवारें धर्म पामशे यथार्थ आत्मसाधन पामी स्वरूप धर्मने किवारें अवलंबशे एवो परिणाम ते चोथी करुणा केहना दया भावना ए चार भावना कही

१ हवे बार भावना कहे छे शरीर, कुटुंब, धन, परिवार सर्व विनाशी छे जीवनो मूल धर्म अविनाशी छे एम चिंतववु ते पहेली अनित्य भावना २ संसारमा मरण समये जीवने शरण राखनार कोइ नथी एक धर्मनो शरण छे एवु चिंतववु ते बीजी अशरण भावना ३ मारा जीवे संसारमा भमता सर्व भव कीधा छे ए संसारथी हु केवारें छुटीश, ए संसार मारो नथी हु मोक्षमयी छु एम विचारवु ते त्रीजी संसार भावना ४ ए माहरो जीव एकलो छे, एकलो आव्यो, एकलो जशे, पोताना करेला कर्म एकलो भोगवशे एम चिंतववु ते चोथी एकत्व भावना ५ आ संसारमा कोइ कोइनो नथी एम चिंतववु ते पांचमी अन्यत्व भावना ६ आ शरीर अपवित्र मलमूत्रनी खाण छे, रोग–जराथी भर्यो छे, ए शरीरथी हु न्यारो छु, एम चिंतववो ते छठ्ठी अशुचि भावना ७ रागद्वेष, अज्ञान, मिथ्यात्व प्रमुख सर्व आस्रव छे, एम चिंतववु ते सातमी आस्रव भावना. ८ ज्ञानध्यानमा वर्त्ततो जीव नवा कर्म बांधे

ते सिद्धना जीवने अज्ञान तथा योग नयी, माटे कर्म लागे नही ए चार ध्याननो अधिकार कह्यो

हवे वली बीजा चार ध्यान कहे छे १ पदस्थ, २ पिंडस्थ, ३ रूपस्थ, ४ रूपातीत तेमा पहेलु पदस्थ ध्यान कहे छे जे अरिहतादीक पाच परमेष्ठीना गुण सभारे, तेनो चित्तमा ध्यान करे ते पदस्थध्यान २ पिंडस्थ केहता शरीरमा रह्यो जे आपणो जीव तेमा अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने साधुपणाना गुण सर्व छे एहवो जे ध्यान ते पिंडस्थ ध्यान अथवा गुणीना गुण मध्ये एकत्वता उपयोग करवो ते पिंडस्थ ध्यान ३ रूपमा रह्यो थको पण ए मारो जीव अरूपी अनत गुणी छे, जे वस्तुनो स्वरूप अतिशयावलम्बी थया पछे आत्मानु रूप एकतापणो एहवो जे ध्यान ते रूपस्थध्यान ए त्रण ध्यान धर्म ध्यानमा गणवा ४ निरजन, निर्मल, सकल्पविकल्प रहित, अभेद एक शुद्ध सत्तारूप चिदानद तत्त्वामृत, असग अखंड, अनतगुण पर्यायरूप, आत्मस्वरूपनु ध्यान ते रूपातीत ध्यान जाणवु इहा मार्गणागुणठाणा नयप्रमाण मति आदिक ज्ञान क्षयोपशमभाव सर्व छाडवा योग्य थया एक सिद्धना मूल गुणने ध्यावे ते रूपातीत ध्यान जाणवो एटले मोक्षनु कारण जे ध्यान ते कह्यु

हवे भावना कहे छे तेमा धर्म ध्याननी चार भावना कहे छे १ मैत्री भावना ते सर्व जीव साथे मित्रतानो भाव चिंतववो, सर्वनु भलु चाहवु पण कोइनु माठु चिंतववु नही सर्व जीव ऊपर हित बुद्धि राखवी ते मैत्री भावना २ गुणवत अने ज्ञानादिक गुण ऊपरें राग ते बीजी प्रमोदभावना ३ जे धर्मवत ऊपर राग अने मिथ्यात्वी ऊपर राग नही तेम द्वेष पण

तेने समकेन ज्ञान कहियें ते समकेत ज्ञान भलोज थाय तिहा अनुयोगद्वारमा कह्यो छे

नायम्मि गिन्हियव्वे, ।
अगिन्हियव्वे अ इच्छ अच्छामि ॥
जइवमेवइयजो, सो उवएसो नओताम । १ ।

अर्थ –ज्ञानथी छ द्रव्य जाणीने लेवा योग्य होय ते ले अने छाडवा योग्य छाडे एवो जे उपदेश ते नय उपदेश जाणवो हवे समकेतनी दश रुचि कहे छे

१ निसर्ग रुचि ते निश्चयनये करी जीवादि नव तत्त्व जाणे आश्रव त्यागे सवर आदरे वीतरागना कह्या भाव जे छ द्रव्य ते द्रव्य क्षेत्र काल भाव सहित जाणे, नामादि चार निक्षेपा पोतानी बुद्धियी जाणे सद्दहे, वीतरागना भाख्या भाव ते सत्य एवी सद्दहणा होय

२ उपदेश रुचि नव तत्त्व तथा छ द्रव्यने गुरु उपदेशथी जाणी सद्दहे ते उपदेश रुचि

३ आज्ञा रुचि ते रागद्वेष मोह जेमना गया छे, अज्ञान मिट्यु छे एहवा अरिहत देव तेणे जे आज्ञा कही तेने माने सद्दहे ते आज्ञारुचि

४ सूत्ररुचि १ आचाराग २ सुयगडाग ३ ठाणाग ४ समवायाग ५ भगवती ६ ज्ञाताधर्म कथा ७ उपासकदशाग ८ अतगडदशाग ९ अनुत्तरोववाइ दशाग १० प्रश्नव्याकरण ११ विपाक ए इग्यार अग तथा बारमु अग दृष्टिवाद जेमा चउद पूर्व हता ते हमणा विच्छेद गया छे तथा १ उववाइ २ रायपसेणी ३ जीवाभिगम ४ पन्नवणा ५ जबुद्वीपपन्नति

नही ते आठमी सवर भावना ९ ज्ञान सहित क्रिया ते निर्ज्जरानु कारण छे, ते नवमी निर्ज्जरा भावना १० चउदराज लोकनु स्वरूप विचारवु ते दशमी लोकस्वरूप भावना ११ ससारमा भमता जीवने समकित ज्ञाननी प्राप्ति पामवी दुर्लभ छे अथवा समकित पाम्यो पण चारित्र सर्व विरति परिणाम रूप धर्म पामवो दुर्लभ छे ते अग्यारमी बोधिदुर्लभ भावना १२ धर्मना कहेणहार (कथक) गुरु तथा शुद्ध आगमनु साभलवु एहवी जोगवाइ मलवि दोहेली छे ते बारमी धर्मदुर्लभ भावना एटले बार भावना कही ए चारित्रनु स्वरूप सपूर्ण कह्यु

एवो समकित सहित ज्ञानचारित्र ते मोक्षनु कारण छे, तेना उपर भव्य प्राणीयें विशेषे उद्यम करवो अने जो तेवु ज्ञानचारित्र नही पले तोपण श्रेणिक राजानी पेरे सद्दहणा शुद्ध राखवो जो समकित शुद्ध छे तो मोक्ष नजीक छे समकित विना ज्ञानध्यान क्रिया सर्व नि फल छे एम आगममा कह्यो छे

जसक्कत किरइ, अहवा न सक्केइ तहय सद्दहइ ।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अयरामर ठाण ॥ १ ॥

अर्थ—रे जीव। तु करी शके तो कर अने जो न करी शके तोपण जेवो वीतरागें धर्म कह्यो ते रीते सद्दहजे सद्दहणा शुद्ध राखनार जीव अजरामर स्थानक ते मोक्ष पदवी पामे

हवे समकितनो मार्ग कहे छे १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आस्रव, ६ सवर, ७ निर्ज्जरा, ८ बध, ९ मोक्ष ए नव तत्त्व छे तेमा मोक्षनु कारण जीव छे, अने सवर तथा निर्ज्जरा ए बे गुण छे, एटले जीव सवर निर्ज्जरा मोक्ष ए चार उपादेय छे अने बीजा पाच हेय छे एहवो परिणाम

१० जे पाच अस्तिकायनु स्वरूप जाणे श्रुतज्ञाननो स्वभाव अतरग सत्ता सद्दहे ते धर्मरुचि

हवे समकितना आठ गुण कहे छे १ नि शका ते जिनागम मध्ये सूक्ष्म अर्थ कह्या ते साचा सद्दहे तेमा सदेह आणे नही तथा सात भयथी पण डरे नहि १ निकखा गुण ते पुण्यरूप फलनी चाहना न राखे केमके जिहां इच्छा तिहा कर्मनो बध छे माटे ३ निर्विचिकित्सागुण ते शुभ अशुभ पुद्गल एक सरिखा छे तेमा पुण्यना उदयथी शुभयोग मिल्या खुशी थइ अहकार न करवो तथा पापना उदयथी दु खसयोग मिल्या दिलगीर थावु नही ४ अमूढदृष्टि गुण ते जे आगममा सूक्ष्म निगोदना तथा छ द्रव्यना सूक्ष्म विचार कह्या छे ते साभलतो थको मुजाय नही, जे पोतानी धारणामा आवे ते धारी राखे अने जे धारणामा न आवे तेने सद्दहे ५ उपब्रहगुण जे ए आपणा जीवमा अनत ज्ञानादिक गुण छे ते छुपाववा नही शुद्ध सत्ता जेवी छे तेवी कहेवी, राग द्वेष अज्ञान ते कर्मनी उपाधि छे, जीव ए उपाधिथी न्यारो छे ६ स्थिरिकरण गुण ते आपणा परिणाम ज्ञानमा स्थिर करवा डगाववा नही अथवा कोइ भव्य प्राणी धर्मथी पडतो होय तेने साह्य देइ उपदेश आपी स्थिर करवो ७ वात्सल्यता गुण ते जेनी साथे ज्ञान ध्यान तप पडिक्कमणो भेलो करता होइये अने सद्दहणा पण एकज होय ते आपणो साधर्मि भाइ छे तेनी भक्ति करवी अथवा सर्व जीवना ज्ञानादि गुण आपणा समान छे माटे सर्व जीव ऊपर दया करवी अथवा बीजा जीवना पण आपणा तुल्य ज्ञानादि गुण छे ते जीवने पोषवा योग्य ज्ञान ध्याननो घणो अभ्यास करावे ८ प्रभावक

हे गौतम ! मङ्खलिपुत्रस्य गोशालकस्यानुकम्पनार्थं बालतपस्विनो वैश्यायनस्य तेजःप्रतिसंहरणार्थं च मया शीतला तेजोलेश्यामुद्धाव्य तदीयोष्णा तेजोलेश्या प्रतिहतेत्यर्थः। तत्र 'अणुकंपणट्ठयाए' 'तेयपडिसाहरणट्ठयाए' इति पदद्वयेन गोशालकरक्षणार्थं भगवतस्तेजोलेश्यासमुद्धात इति स्पष्टीभवति।

न च रक्षणं यदि धर्मस्तर्हि स्वसमवसरणे वर्तमानौ सर्वानुभूतिसुनक्षत्रनामानौ शिष्यौ किं न भगवता रक्षितौ? इति वाच्यम्, भगवतः सर्वज्ञतया तयोरायुःसमाप्तिसन्दर्शनात्। ननु यथा समाप्तायुषं कोऽपि नैव रक्षितुं प्रभवति तथा विद्यमानायुषं न कोऽपि हन्तुं शक्नुयात्? इति चेन्न, त्रिषष्टिशलाकापुरुषान् देवान्

यहा यह संदेह हो सकता है कि यदि बचाने में धर्म होता तो भगवान्ने अपने समवसरणमें स्थित सर्वानुभूति और सुनक्षत्र नामक शिष्यों को क्यो न बचाया?

इसका समाधान यह है कि-भगवान् सर्वज्ञ थे, इसलिए किसका आयुष्य कितना अवशेष है या समाप्त हो चुका है इसे वे अपने निर्मल केवल ज्ञानसे जानते थे। सर्वानुभूति और सुनक्षत्र शिष्योका वर्तमान आयुष्य समाप्त हो चुका था।

प्रश्न—जैसे वर्तमान आयुष्य समाप्त होने पर कोई किसीको बचा नहीं सकता वैसे ही आयुष्य रहते हुए कोई किसीको प्राणरहित भी नही कर सकता?

અહીં એવો સંદેહ થઇ શકે છે કે—જો બચાવવામાં ધર્મ થાય છે તો ભગવાને પોતાના સમવસરણમાં રહેલા સર્વાનુભૂતિ અને સુનક્ષત્ર નામના શિષ્યોને કેમ ન બચાવ્યા?

એનું સમાધાન એ છે કે—ભગવાન્ સર્વજ્ઞ હતા, તેથી કોનું આયુષ્ય કેટલું અવશેષ રહ્યું છે અથવા સમાપ્ત થઇ ચૂક્યું છે તે ભગવાન્ પોતાના નિર્મળ કેવળ જ્ઞાનથી જાણતા હતા સર્વાનુભૂતિ અને સુનક્ષત્ર શિષ્યોનું વર્તમાન આયુષ્ય સમાપ્ત થઇ ચૂક્યું હતું

પ્રશ્ન—જેમ વર્તમાન આયુષ્ય સમાપ્ત થવાથી કોઇ કોઇને બચાવી શકતું નથી, તેમજ આયુષ્ય બાકી હોય તો કોઇ કોઇને પ્રાણરહિત પણ કરી શકતું નથી

एवंविधा च हिंसा काययोगस्य चपलतया सर्वथा परिहर्तुमशक्येति व्यवहारनयमात्रगम्या ।

भावतो हिंसा=प्राणव्यपरोपणेच्छालक्षण आत्मनोऽशुद्धपरिणामः, यथा-मकरनाम्नो जलजन्तुविशेषस्य भ्रूप्रदेशे लब्धजन्मा तण्डुलदघ्नोऽन्तर्मुहूर्त्तायुष्कोऽन्तर्मुहूर्त्तमात्रगर्भनिवासानन्तरमुत्पादशीलस्तण्डुलाभिधानो मत्स्यविशेषस्तत्र स्थित एनावलोकयति—

मकरोऽय मत्स्यानशितु तावत्तुण्डतस्तोयमाकर्षति, ततश्च जलवेगादाननान्तःसमागतेषु मत्सुरतरेषु मीनेषु पश्चात्तानवरुध्याऽऽस्यगत नीर निस्सार-

योगकी चपलताको सर्वथा दूर करना अत्यन्त कठिन होनेके कारण व्यवहारनयमात्र है।

(२) भावहिंसा-प्राणोंसे रहित करनेकी इच्छारूप आत्माका अविशुद्ध परिणाम, भावहिंसा कहलाती है।

जैसे-मगर नामके जलचर-जीव-विशेषकी भौंह पर बारीक चाँवलके समान शरीरवाला एक तन्दुल नामका मत्स्य होता है, वह अन्तर्मुहूर्त्त गर्भमें रहकर जन्म लेता है, उसकी आयु अन्तर्मुहूर्त्तमात्रकी ही होती है। गर्भज होनेके कारण उसको मन होता है। वह वहाँ (भौंह पर) बैठा हुआ मगरका कृत्य देखता है कि वह मगर जलजन्तुओंको खानेके लिए पहले अपने मुँहमें पानीको खींचता है, फिर पानीके वेगसे आई-हुई मछलियोंको मुँहमें रोककर जब पानीको निकालता है तब दांतोंके

સર્વથા દૂર કરવી અત્યંત કઠિન હોવાને કારણે વ્યવહારનયમાત્ર છે

(૨) ભાવહિંસા—પ્રાણથી રહિત કરવાની ઇચ્છારૂપ આત્માનો અવિશુદ્ધ પરિણામ એ ભાવહિંસા કહેવાય છે

જેમકે—મગર નામના એક જળચર પ્રાણીની ભમ્મર પર ચોખા જેવા બારીક શરીરવાળો એક તંદુલ નામનો મત્સ્ય થાય છે એ મત્સ્ય અંતર્મુહૂર્ત ગર્ભમાં રહીને જન્મ લે છે તેનું આયુષ્ય અંતર્મુહૂર્ત જેટલુ હોય છે તે ગર્ભજ જીવ હોવાને લીધે તેને મન થાય છે તે મગરની ભમ્મર પર બેઠોબેઠો મગરનું કૃત્ય જુએ છે કે આ મગર જળમાના જીવોને ખાવાને માટે પહેલા પોતાના મ્હોમા પાણીને એચે છે, પછી પાણીના વેગથી આવેલી માછલીઓને મ્હોમા રોકીને જ્યારે પાણીને કાઢી નાખે છે, ત્યારે દાતના છિદ્રો દ્વારા પાણીની

स्मृतिभ्रंश-योगदुष्प्रणिधान-धर्मानादरभेदादष्टविधः। सा च हिंसा त्रिविधा-द्रव्यतो भावत उभयतश्चेति, तत्र—

द्रव्यतो हिंसा=आत्मनो विशुद्धपरिणामस्य सत्त्वेऽप्यकस्मादनिच्छया जन्तुविराधनं, यथा-भिक्षाचर्यादौ प्रवृत्तस्य समितिगुप्त्यादिधारकस्य चलनार्थं पादोत्थाने कृते एकेन चरणेन तिष्ठतः साधोरुत्थापितचरणतले तदानीं कुतश्चिद्भयाद् दुर्लक्ष्यकारणवशाद्वा वेगेन समागतस्य कस्य चिद् द्वीन्द्रियादिजन्तोरितस्ततः साधुना तद्रक्षणप्रयासे कृतेऽपि अकस्माच्चरणतलसंलग्नतया विराधनम्।

---

(३) विपर्यय, (४) राग, (५) द्वेष, (६) स्मृति-भ्रंश, (७) योगदुष्प्रणिधान, (८) धर्मानादर, के भेदसे आठ प्रकारका है।

हिंसा तीन प्रकारकी है—(१) द्रव्यहिंसा, (२) भावहिंसा और (३) उभयहिंसा।

(१) द्रव्यहिंसा—आत्माके परिणाम विशुद्ध होने पर भी अकस्मात् इच्छाके विना ही जन्तुको पीडा हो जाना द्रव्यहिंसा है, जैसे-आहार विहार आदिमें प्रवृत्त, समिति और गुप्तिके धारण करनेवाले मुनिने जब एक चरण उठाया तो उठाये हुए चरणके नीचे किसी भयसे या अन्य कारणसे कोई द्वीन्द्रिय आदि लघुकाय जीव अचानक नीचे आ जाय और साधु उसकी रक्षा करनेका प्रयत्न भी कर रहे हों, फिर भी अचानक दब जानेसे विराधना होना। इस प्रकारकी हिंसा, शरीरके

---

(४) राग, (५) द्वेष, (६) स्मृतिभ्रंश, (७) योगदुष्प्रणिधान, (८) धर्मनो अनादर, ए भेदे करीने प्रमाद आठ प्रकारनो छे

हिंसा त्रण प्रकारनी छे—(१) द्रव्यहिंसा, (२) भावहिंसा, अने (३) उभयहिंसा

(१) द्रव्यहिंसा—आत्माना परिणाम विशुद्ध होवा छतां अकस्मात् इच्छा विना जंतुओनी विराधना थई जाय ते द्रव्यहिंसा छे जेमके—आहार विहार आदिमां प्रवृत्त, समिति अने गुप्तिने धारण करवावाळा मुनिए ज्यारे एक पग उपाडयो त्यारे उपाडेला पगनी नीचे कोई भयने लीधे अथवा बीजा कोई कारणथी कोई बेइंद्रिय आदि लघुकाय जीव अचानक पग नीचे आवी जाय, अने मुनि एनी रक्षा करवानो प्रयत्न पण करी रह्या होय, तो पण अचानक दबाई जवाथी विराधना थाय आ प्रकारनी हिंसा, शरीरना योगनी चपलताने

शस्त्रादिना तत्प्रहरणं तदभिलापमात्रं वा रज्जोरचेतनत्वेन प्राणव्यपरोपणाऽभावेऽपि आत्मन उक्तस्वरूपाऽशुद्धपरिणामोदयाच्चतुर्गतिभवभ्रमणहेतुर्बन्धो नियतं भवति ।

उभयतो हिंसा=आत्मनोऽशुद्धपरिणामपूर्वकं प्राणव्यपरोपणं, यथा=केनचिद् व्याधेन मृगजिघांसया शरप्रक्षेपेण कृतं तद्धननम् ।

संयमः ।

संयमः=संयमनं=सम्यगुपरमणं सावद्ययोगादिति संयमः, स च सप्तदशविधः,

समझकर क्रूर परिणामसे मारा, या मारनेका प्रयास किया तो वहाँ रस्सीके अचेतन होनेके कारण यद्यपि प्राणोंका व्यपरोपण नहीं हुआ तथापि आत्मामें अशुद्ध परिणामके उदय होनेसे वह भी भावहिंसा है। उस हिंसासे निश्चय ही चतुर्गतिमें परिभ्रमण करानेवाले कर्मोंका बन्ध होता है।

(३) उभयहिंसा–अशुद्ध परिणामोंसे जीवका घात करना उभयहिंसा है, क्योंकि इस हिंसामें आत्माके अशुद्ध परिणाम और प्राणोंका नाश दोनों पाये जाते हैं, जैसे–कोई व्याध हरिणको मारनेकी इच्छासे बाण चलाता है और उससे उसके प्राणोंका नाश हो जाता है।

संयम।

सावद्ययोगसे सम्यक्प्रकारसे निवृत्त होनेको संयम कहते हैं। वह

પરિણામથી માર્યો, અથવા મારવાનો પ્રયાસ કર્યો, તો તેમાં દોરડું અચેતન હોવાથી જો કે પ્રાણનું વ્યપરોપણ થયું નહિ, તો પણ આત્મામાં અશુદ્ધ પરિણામનો ઉદય હોવાથી એ પણ ભાવહિંસા છે આ હિંસાથી નિશ્ચિતપણે ચતુર્ગતિમાં પરિભ્રમણ કરનારા કર્મોનો બંધ થાય છે

(૩) ઉભયહિંસા— અશુદ્ધ પરિણામોથી જીવનો ઘાત કરવો એ ઉભયહિંસા છે, કેમકે એ હિંસામાં આત્માના અશુદ્ધ પરિણામ તથા પ્રાણનો નાશ બન્ને રહેલા હોય છે જેમકે–કોઈ પારધી હરણને મારવાની ઇચ્છાથી બાણ છોડે છે અને એ રીતે હરણના પ્રાણનો નાશ થઈ જાય છે

સંયમ

સાવદ્યયોગથી સમ્યક્ પ્રકારે નિવૃત્ત થવું તેને સંયમ કહે છે સંયમ સત્તર

यति तदा दशनान्तरावकाशनिर्गतोदकवेगतो बहुतर मीना लघुतरा निस्सरन्त्येव। एवं बहिर्व्रजतस्तान्निरीक्ष्यासौ तण्डुलमत्स्यो मनसि विभावयति–
"यदि मम वपुरीदृशं बृहत् स्यात् तर्हि मम मुखान्निर्गन्तुमेकोऽपि मत्स्यो न शक्नुयात्, मया सर्वेऽपि भक्षिता भवेयुः" इति।

इत्थं कलुषिताध्यवसायरूपया भावहिंसया स्वकीयमन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणमायुष्यं समाप्य त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणं नरकायुष्यं निबध्यासौ (तण्डुलमत्स्यः) तमस्तमाऽभिधाया सप्तम्या नरकपृथिव्या नारकत्वेन समुत्पद्यते।

यद्वा–अल्पीयसि प्रकाशे रज्जुमालोक्य 'व्यालोऽय'–मित्यालोचयतः

छिद्रो द्वारा पानीके साथ–साथ बहुतसी छोटी२ मछलिया निकल जाती है, तब उन निकलती हुई मछलियोंको देखकर तन्दुलमत्स्य विचारता है कि—

इस (मगर) के तो दांतोंके छिद्रों द्वारा बहुतसी मछलिया निकल जाती है, किन्तु, अगर मेरा शरीर मगरके बराबर बड़ा होता तो मैं इनमेंसे एकको भी नही निकलने देता–सबको भक्षण कर जाता।

इस प्रकार वह परम कलुषित अध्यवसायरूप भावहिंसासे तेंतीस-सागरप्रमाण नरकायुष्य बाधकर अन्तर्मुहूर्त्तकी अपनी आयुष्यको समाप्त करके तमतमा नामकी सातवीं नरकपृथिवीके अन्दर नारकीपनमें उत्पन्न होता है।

अथवा जैसे–मन्द–मन्द प्रकाशमें किसी हिंसकने रस्सीको सर्प

સાથે સાથે ઘણીય નાની નાની માછલીઓ બહાર નીકળી જાય છે એ નીકળી જતી માછલીઓને જોઇને તંદુલ મત્સ્ય વિચારે છે કે આ મગરના દાતના છિદ્રોની વાટે ઘણીય માછલીઓ બહાર નીકળી જાય છે, પરન્તુ જો મારૂ શરીર મગરના જેટલુ મોટુ હોત તો હુ એમાથી એક પણ માછલીને બહાર નીકળવા ન દેત બધીયનુ ભક્ષણ કરી જાત

આ પ્રમાણે એ પરમ કલુષિત અધ્યવસાયરૂપ ભાવહિંસાથી તેત્રીસ સાગરનું નરકાયુષ્ય બાધીને અંતર્મુહૂર્તનું આયુષ્ય સમાપ્ત કરે છે અને તમતમા નામની સાતમી નરકપૃથિવીની અંદર નારકીપણે ઉત્પન્ન થાય છે

અથવા જેમ–મંદ મંદ પ્રકાશમા કોઇ હિંસકે દોરડાને સર્પ સમજીને ક્રૂર

शस्त्रादिना तत्प्रहरणं तदभिलापमात्रं वा रज्जोरचेतनत्वेन प्राणव्यपरोपणाऽभावेऽपि आत्मन उक्तस्वरूपाऽशुद्धपरिणामोदयाच्चतुर्गतिभवभ्रमणहेतुर्बन्धो नियत भवति ।

उभयतो हिंसा=आत्मनोऽशुद्धपरिणामपूर्वकं प्राणव्यपरोपणं, यथा=केनचिद् व्याघ्रेन मृगजिघांसया शरप्रक्षेपेण कृतं तद्धननम् ।

संयम. ।

संयमः=संयमनं=सम्यगुपरमणं सावद्ययोगादिति संयमः, स च सप्तदशविधः,

---

समझकर क्रूर परिणामसे मारा, या मारनेका प्रयास किया तो वहाँ रस्सीके अचेतन होनेके कारण यद्यपि प्राणोंका व्यपरोपण नहीं हुआ तथापि आत्मामें अशुद्ध परिणामके उदय होनेसे वह भी भावहिंसा है। उस हिंसासे निश्चय ही चतुर्गतिमें परिभ्रमण करानेवाले कर्मोंका बन्ध होता है।

(३) उभयहिंसा–अशुद्ध परिणामोंसे जीवका घात करना उभयहिंसा है, क्योंकि इस हिंसामें आत्माके अशुद्ध परिणाम और प्राणोंका नाश दोनों पाये जाते हैं, जैसे–कोई व्याध हरिणको मारनेकी इच्छासे बाण चलाता है और उससे उसके प्राणोंका नाश हो जाता है।

संयम।

सावद्ययोगसे सम्यक्प्रकारसे निवृत्त होनेको संयम कहते हैं। वह

परिणामथी मार्यो, अथवा मारवानो प्रयास कर्यो, तो तेमां दोरडुं अचेतन होवाथी जो के प्राणुनुं व्यपरोपणु थयुं नहि, तो पणु आत्मामां अशुद्ध परिणामनो उदय होवाथी ए पणु भावहिंसा छे आ हिंसाथी निश्चितपणे चतुर्गतिमां परिभ्रमणु करनारां कर्मोनो बंध थाय छे

(३) उभयहिंसा— अशुद्ध परिणामोथी जीवनो घात करवो ए उभयहिंसा छे, केमके ए हिंसामां आत्माना अशुद्ध परिणाम तथा प्राणुनो नाश बन्ने रहेला होय छे जेमके–कोई पारधी हरणुने मारवानी इच्छाथी बाणु छोडे छे अने ए रीते हरणुना प्राणुनो नाश थई जाय छे

संयम

सावद्ययोगथी सम्यग् प्रकारे निवृत्त थवुं तेने संयम कहे छे संयम सत्तर

तदुक्त समवायाङ्गे—

" सत्तरसविहे सजमे पण्णत्ते तजहा—(१) पुढवीकायसजमे (२) आउकायसजमे (३) तेउकायसजमे (४) वाउकायसजमे (५) वणस्सइकायसजमे (६) वेइदियसजमे (७) तेइदियसजमे (८) चउरिंदियसजमे (९) पचिंदियसजमे (१०) अजीवकायसजमे (११) पेहासजमे (१२) उवेहासजमे (१३) अवहट्टु-(परिट्ठावणा)सजमे (१४) पमज्जणासजमे (१५) मणसजमे (१६) वयसजमे (१७) कायसजमे " इति ।

छाया—सप्तदशविधः सयमः प्रज्ञप्तस्तद्यथा–(१) पृथिवीकायसयमः (२) अप्कायसयमः (३) तेजस्कायसयमः (४) वायुकायसयमः (५) वनस्पतिकायसयमः (६) द्वीन्द्रियसयमः (७) त्रीन्द्रियसयमः (८) चतुरिन्द्रियसयमः (९) पञ्चेन्द्रियसयमः (१०) अजीवकायसयमः (११) प्रेक्षासयमः (१२) उपेक्षासयमः (१३) अपहृत्यसयमः (१४) प्रमार्जनासयमः (१५) मनःसयमः (१६) वाक्सयमः (१७) कायसयमः ।

तत्र (१) पृथिवीकायसयमः=सचित्तपृथिव्या हस्तपादादिना सघट्टनादि-

सतरह प्रकारका है । समवायाङ्गके सतरहवें समवायमें कहा है— (१) पृथिवीकायसयम, (२) अप्कायसयम, (३) तेजस्कायसयम, (४) वायुकायसयम, (५) वनस्पतिकायसयम, (६) द्वीन्द्रियसयम, (७) त्रीन्द्रियसयम, (८) चतुरिन्द्रियसयम, (९) पञ्चेन्द्रियसयम, (१०) अजीवकायसयम, (११) प्रेक्षासयम, (१२) उपेक्षासयम, (१३) अपहृत्यसयम (परिष्ठापनासयम), (१४) प्रमार्जनासयम, (१५) मनःसयम, (१६) वाक्सयम, (१७) कायसयम ।

(१) पृथिवीकायसयम=हाथ पैर इत्यादिसे सचित्त पृथिवीका सघट्टन (सघटा) आदिका वर्जन करना ।

પ્રકારનો છે સમવાયાગના સત્તરમા સમવાયમા તે પ્રકારો કહ્યા છે (૧) પૃથિવીકાયસયમ, (૨) અપ્કાયસયમ, (૩) તેજસ્કાયસયમ, (૪) વાયુકાયસયમ, (૫) વનસ્પતિકાયસયમ, (૬) દ્વીન્દ્રિયસયમ, (૭) ત્રીન્દ્રિયસયમ, (૮) ચતુરિન્દ્રિયસયમ, (૯) પચેન્દ્રિયસયમ, (૧૦) અજીવકાયસયમ (૧૧) પ્રેક્ષાસયમ, (૧૨) ઉપેક્ષાસયમ, (૧૩) અપહૃત્યસયમ (પરિષ્ઠાપનાસયમ), (૧૪) પ્રમાર્જનાસયમ, (૧૫) મન સયમ, (૧૬) વાક્સયમ, (૧૭) કાયસયમ

(૧) પૃથિવીકાયસયમ—હાથ પગ ઇત્યાદિથી સચિત્ત પૃથિવીનુ સઘટન વગેરેને વર્જવુ

विरतिः (२) अप्कायसंयमः=सचित्तजलस्य संघट्टनाद्यकरणम्, (३) तेजस्कायसंयमः=पचनपाचनादिनिमित्तकाऽनलारम्भनिवर्त्तनम्, (४) वायुकायसंयमः=वस्त्रपात्रव्यजनवक्त्रादिसमुत्पन्नवायुजनितवायुकायोपमर्दननिवृत्तिः, तत्र वस्त्रपात्राणामयतनया निक्षेपणादानप्रक्षेपनिपातनादिकारणवशात्, तथा तेषां (वस्त्रपात्राणां) व्यजनपर्णशाखादीनां च विधूननेन वायुकायविराधनं भवति। अनावृतमुखेन संभाषणे च तन्निर्गतोष्णवायुना तद्विराधनं जायते।

(५) वनस्पतिकायसंयमः=तरुलतिकादिहरितकायमात्रस्य संघट्टनादिवर्जनम्।

---

(२) अप्कायसंयम=सचित्त जलका संघटा आदि न करना।

(३) तेजस्कायसंयम=पचन पाचन आदि किसी प्रयोजनके लिए अग्निके संघटा आदिका वर्जन करना।

(४) वायुकायसंयम=वस्त्र, पात्र, पंखा, फूंक आदिसे उत्पन्न हुए वायुद्वारा वायुकायकी विराधनाका वर्जन करना।

वस्त्र, पात्रोंको अयतनासे रखनेसे, अयतनासे लेनेसे, फेंकनेसे, गिरानेसे, तथा वस्त्र, पात्र, पंखा आदिको हिलाकर वायुकायकी उदीरणा करनेसे तथा बोलते समय उष्णवायु निकलनेके द्वारा मुखसे वायुकायकी विराधना होती है।

(५) वनस्पतिकायसंयम-वृक्ष, लता आदि हरित कायके संघटा आदिसे निवृत्त होना।

---

(२) અપ્કાયસંયમ—સચિત્ત જલનું સંઘટન આદિ ન કરવું

(૩) તેજસ્કાયસંયમ—રાંધવું, રંધાવવું વગેરે કોઈ પ્રયોજનને માટે અગ્નિનું સંઘટન આદિને વર્જવું

(૪) વાયુકાયસંયમ—વસ્ત્ર, પાત્ર, પંખો, ફૂંક ઇત્યાદિથી ઉત્પન્ન થએલા વાયુદ્વારા વાયુકાયની વિરાધના વર્જવી

વસ્ત્ર, પાત્રો ઇત્યાદિને અયતનાપૂર્વક રાખવાથી, અયતનાપૂર્વક લેવાથી, ફેંકવાથી, પાડવાથી, તથા વસ્ત્ર-પાત્ર-પંખો વગેરેને હલાવીને વાયુકાયની ઉદીરણા કરવાથી તથા બોલતી વખતે મુખના ઉના વાયુથી વાયુકાયની વિરાધના થાય છે

(૫) વનસ્પતિકાયસંયમ—વૃક્ષ, લતા આદિ હરિતકાયના સંઘટન આદિથી નિવૃત્ત થવું

एव (६) द्वीन्द्रियादि- (९) पञ्चेन्द्रियपर्यन्ताना सर्वथाऽनुपमर्दन तत्तत्सयमः (१०) अजीवकायसयमः=बहुमूल्यवता वस्त्रपात्रादीनामनुपादानम्, उपादेयवस्त्रपात्रादीना सयत्नमुपादान स्थापन च, (११) प्रेक्षासयमः=वसतिवस्त्रपात्रादीना सयतन सविधि प्रतिलेखनम्, (१२) उपेक्षासयमः=सयममार्गे क्लेशमाकलयतोऽ सयममार्गे प्रवर्तमानस्य वा स्वात्मनः परस्य वा असयमदोषान् सयम-

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसयम=द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय जीवोंका सर्वथा उपमर्दन न करना तत्तत्सयम, अर्थात् द्वीन्द्रियसयम, त्रीन्द्रियसयम, चतुरिन्द्रियसयम, पञ्चेन्द्रियसयम कहलाता है।

(१०) अजीवकायसयम=बहुत मूल्यवाले वस्त्र पात्र आदिका ग्रहण न करना, तथा कल्पनीय वस्त्र पात्र आदि को यतनाके साथ लेना और रखना।

(११) प्रेक्षासयम=वसती, वस्त्र, पात्र, पाट, पाटला आदिका यतनापूर्वक सविधि प्रतिलेखन करना।

(१२) उपेक्षासयम=सयममार्गमें अनुकूल प्रतिकूल परिषहोंसे क्लेशका अनुभव करनेवाले, अथवा असयममे प्रवृत्ति करनेवाले स्वपरकी आत्माको सयमके गुण और असयमके दोष समझाकर फिर सयममार्गमें प्रवृत्त

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसयम—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, અને પચેન્દ્રિય જીવોનું સર્વથા ઉપમર્દન ન કરવુ, તે તે પ્રકારનો સયમ, અર્થાત દ્વીન્દ્રિયસયમ, ત્રીન્દ્રિયસયમ, ચતુરિન્દ્રિયસયમ અને પચેન્દ્રિયસયમ કહેવાય છે

(૧૦) અજીવકાયસયમ—મૂલ્યવાન વસ્ત્ર પાત્ર આદિને ગ્રહણ ન કરવા, તથા કલ્પે તેવા જ વસ્ત્ર પાત્ર આદિને યતનાપૂર્વક લેવા તથા રાખવા

(૧૧) પ્રેક્ષાસયમ—વસતી, વસ્ત્ર, પાત્ર, પાટ, પાટલા ઇત્યાદિને યતના પૂર્વક તથા વિધિસર પ્રતિલેખન કરવા

(૧૨) ઉપેક્ષાસયમ—સયમમાર્ગમા અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ પરિષહોથી ક્લેશનો અનુભવ કરનારા, અથવા અસયમમા પ્રવૃત્તિ કરનારા, સ્વપરના આત્માઓને સયમના ગુણ તથા અસયમના દોષ સમજાવીને પછી સયમમાર્ગમા

गुणाश्चावरोऽप्य सयमयोगेषु प्रवर्त्तन सयमसमीपानयनलक्षण सयमसामीप्यदर्शनमित्यर्थः। यद्वा प्रेक्षासयमः=सकृत्प्रतिलेखनम्। उपेक्षासयमः=पुनः पुनः प्रतिलेखनम्। (१३) अपहृत्य (परिष्ठापना) सयमः=उच्चारादीना विधिना समुत्सर्गः परिष्ठापनमित्यर्थः। (१४) प्रमार्जनासयम=विधिना वसतिपात्रादेः परिशोधनम्। (१५-१६-१७) मनोवाकायसयमः=अकुशलाना मनोवाक्कायाना निरोधेन कुशलानामुदीरणम्। तत्राऽऽर्त्तरौद्रध्यानपरिहारपूर्वकधर्मशुक्लध्यानप्रवर्त्तन मन.सयमः। सावद्यपरिहारपूर्वकनिरवद्यभापण वाक्सयमः। अयतनापरि-

---

करना। अथवा वस्त्र पात्र आदिके उपभोग करते समय एक वार प्रतिलेखन करना प्रेक्षासयम है, और वारवार चारों ओरसे प्रतिलेखन करना उपेक्षासयम है।

(१३) अपहृत्य(परिष्ठापना)सयम=यतनापूर्वक उच्चार-प्रस्रवणको त्यागना।

(१४) प्रमार्जनासयम=यतनाके साथ वसती वस्त्र पात्र आदिको पूँजना (प्रमार्जन करना)।

(१५) मनःसयम=अकुशल मनका निरोध करके कुशल मनकी प्रवृत्ति करना, अर्थात् आर्त्तध्यान और रौद्रध्यानका त्याग करके धर्म और शुक्लध्यानमें मनको लगाना।

(१६) वचनसयम=अशुभ (सावद्य) वचनका त्यागकर शुभ (निरवद्य) वचन बोलना।

પ્રવૃત્ત કરવા અથવા વસ્ત્ર-પાત્ર આદિનો ઉપભોગ કરતી વખતે એકવાર પ્રતિલેખન કરવુ એ પ્રેક્ષાસયમ છે, અને વારવાર ચારે બાજુએથી પ્રતિલેખન કરવુ એ ઉપેક્ષાસયમ છે

(૧૩) અપહૃત્ય (પરિષ્ઠાપના) સયમ—યત ાપૂર્વક ઉચ્ચાર-પ્રસ્રવણને પરિઠવવા-ત્યજવા

(૧૪) પ્રમાર્જનાસયમ—યતનાપૂર્વક વસતી વસ્ત્ર પાત્ર આદિને પૂજવા (પ્રમાર્જવા)

(૧૫) મન સયમ—અકુશળ મનનો નિરોધ કરીને કુશળ મનની પ્રવૃત્તિ કરવી, અર્થાત્ આર્તધ્યાન અને રૌદ્રધ્યાનનો ત્યાગ કરીને ધર્મધ્યાન તથા શુકલ-ધ્યાનમા મનને લગાડવુ

(૧૬) વચનસયમ—અશુભ વચનનો ત્યાગ કરીને શુભ વચન બોલવા

एव (६) द्वीन्द्रियादि- (९) पञ्चेन्द्रियपर्यन्ताना सर्वथाऽनुपमर्दन तत्तत्सयमः (१०) अजीवकायसयमः=बहुमूल्यरता वस्त्रपात्रादीनामनुपादानम्, उपादेय-वस्त्रपात्रादीना सयत्नमुपादान स्थापन च, (११) प्रेक्षासयमः=वसतिवस्त्रपात्रा-दीना सयतन सविधि प्रतिलेखनम्, (१२) उपेक्षासयमः=सयममार्गे क्लेशमाक्-लयतोऽसयममार्गे प्रवर्तमानस्य वा स्वात्मनः परस्य वा असयमदोषान् सयम-

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसयम=द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रिय जीवोका सर्वथा उपमर्दन न करना तत्तत्सयम, अर्थात् द्वीन्द्रियसयम, त्रीन्द्रियसयम, चतुरिन्द्रियसयम, पञ्चेन्द्रियसयम कहलाता है।

(१०) अजीवकायसयम=बहुत मूल्यवाले वस्त्र पात्र आदिका ग्रहण न करना, तथा कल्पनीय वस्त्र पात्र आदि को यतनाके साथ लेना और रखना।

(११) प्रेक्षासयम=वसती, वस्त्र, पात्र, पाट, पाटला आदिका यतना-पूर्वक सविधि प्रतिलेखन करना।

(१२) उपेक्षासयम=सयममार्गमें अनुकूल प्रतिकूल परिषहोंसे क्लेशका अनुभव करनेवाले, अथवा असयममें प्रवृत्ति करनेवाले स्वपरकी आत्माको सयमके गुण और असयमके दोप समझाकर फिर सयममार्गमें प्रवृत्त

(६-७-८-९) द्वीन्द्रियादिसयम—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, અને પચેન્દ્રિય જીવોનુ સર્વથા ઉપમર્દન ન કરવુ, તે તે પ્રકારનો સયમ, અર્થાત્ द्वीन्द्रियसयम, त्रीन्द्रियसयम, चतुरिन्द्रियसयम અને પચેન્દ્રિયસયમ કહેવાય છે

(૧૦) અજીવકાયસયમ—મૂલ્યવાન વસ્ત્ર પાત્ર આદિને ગ્રહણ ન કરવા, તથા કલ્પે તેવા જ વસ્ત્ર પાત્ર આદિને યતનાપૂર્વક લેવા તથા રાખવા

(૧૧) પ્રેક્ષાસયમ—વસતી, વસ્ત્ર, પાત્ર, પાટ, પાટલા ઈત્યાદિને યતના પૂર્વક તથા વિધિસર પ્રતિલેખન કરવા

(૧૨) ઉપેક્ષાસયમ—સયમમાર્ગમા અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ પરિષહોથી ક્લેશનો અનુભવ કરનારા, અથવા અસયમમા પ્રવૃત્તિ કરનારા, સ્વપરના આત્માઓને સયમના ગુણ તથા અસયમના દોષ સમજાવીને પછી સયમમાર્ગમા

पूर्वं वायुकायसंयमविषये प्रोक्तं यत्—'अनावृतमुखेन संभाषणे मुखनिर्गतोष्णवायुना वायुकायविराधनं जायते' इति, तत्र केचिदेवं वदन्ति—आत्मा हि भाषणकाले चतुःस्पर्शवतो भाषावर्गणापुद्गलान् गृह्णाति तैर्वायुकायस्य विराधना न संभवति तस्यापि चतुःस्पर्शवत्त्वादिति।

तेषामपर्याप्तमेतत्कथनम्, वस्तुतस्तु आत्मा पूर्वं चतुःस्पर्शकपुद्गलानेव गृह्णाति किन्तु संभाषणसमये तैजसशरीरं संगृह्यैव भाषापुद्गला निस्सरन्तीति तैजसशरीरसम्बन्धेन तेऽष्टस्पर्शवन्तो जायन्ते तस्मादनिवार्या वायुकायविराधना।

पहले वायुकायसंयममें कहा है कि—बोलते समय मुखसे निकलनेवाली वायु गर्म होती है और इसी कारण उससे वायुकायके जीवोंकी विराधना होती है।

-यहां कुछ लोगोंका कहना है कि आत्मा चार स्पर्शवाले भाषावर्गणाके पुद्गलोंको ग्रहण करती है और चार स्पर्शवाले पुद्गलों से वायुकायकी विराधना नहीं हो सकती, क्योंकि वायुकायके जीवभी चार स्पर्शवाले होते हैं। उनका यह कथन अधूरा है। बात वास्तव में यह है कि आत्मा ग्रहण तो चार स्पर्शवाले पुद्गलों का ही करती है किन्तु भाषण करते समय तैजस शरीरको ग्रहण करके ही भाषा-पुद्गल निकलते हैं। तैजस शरीरके सम्बन्धसे भाषा-पुद्गल आठ स्पर्शवाले हो जाते हैं, और आठ स्पर्शवाले होने से उनसे वायुकाय आदि की विराधना अवश्य होती है।

પૂર્વે વાયુકાય-સંયમમાં જે કહ્યું છે કે— ખુલે મોઢે બોલવામાં મુખમાંથી નીકળતા ગરમ વાયુ વડે વાયુકાયના જીવોની વિરાધના થાય છે ત્યાં કેટલાક લોકોનું કહેવું એવું છે કે આત્મા ચાર સ્પર્શવાળા ભાષાવર્ગણાના પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે અને ચાર સ્પર્શવાળા પુદ્ગલોથી વાયુકાયની વિરાધના થઈ શકતી નથી કેમકે વાયુકાયના જીવો પણ ચાર સ્પર્શવાળા હોય છે એમનું એ કથન અધૂરૂં છે વસ્તુત વાત એવી છે કે આત્મા ગ્રહણ તો ચાર સ્પર્શવાળા પુદ્ગલોનું જ કરે છે, કિન્તુ બોલતી વખતે તૈજસ શરીરને ગ્રહણ કરીને જ ભાષાપુદ્ગલો નીકળે છે તૈજસ શરીરના સંબંધથી ભાષા-પુદ્ગલ આઠ સ્પર્શવાળા થઈ જાય છે, અને આઠ સ્પર્શવાળા થવાથી, તેનાથી વાયુકાય આદિની વિરાધના અવશ્ય થાય છે

द्वारेण यतनापुरस्सरकायप्रवर्त्तनं कायसंयम इति विवेकः ।

प्रकारान्तरेणापि संयमः सप्तदशविधः, यथा—

" पञ्चास्रवाद्विरमणं, पञ्चेन्द्रियनिग्रहः कषायजयः ।
दण्डत्रयविरतिश्चेति संयमः सप्तदशभेदः ॥१॥ " इति ।

तत्र पञ्चास्रवविरमणं=पञ्चास्रवाः प्राणातिपातादय एतेभ्यो विरमणं=निवृत्तिः (५), पञ्चेन्द्रियनिग्रहः=तत्तद्विषयेष्वप्रवर्त्तनम्, इष्टानिष्टेषु शब्दादिषु रागद्वेषाकरणमित्यर्थः (१०), कषायजयः=उदयभावमप्राप्नुवतां क्रोधादीनां चतुर्णां निरोधः, उदयभावं प्राप्तानां च तेषां निष्फलीकरणम् (१४) दण्डत्रयविरतिः=दण्ड्यते= रत्नत्रयैश्वर्यापहारादसारीक्रियते आत्मा यैरिति दण्डास्तेषां त्रयं दण्डत्रयं=मनोदण्ड–वचोदण्ड–कायदण्ड–लक्षणास्त्रयो दण्डा इत्यर्थः, तस्माद्विरतिः=निवृत्तिः(१७)।

---

(१७) कायसंयम=अयतनाको छोडकर यतनापूर्वक ही कायकी प्रवृत्ति करना।

संयमके सत्तरह भेद दूसरे प्रकारसे भी होते हैं, जैसे–प्राणातिपात आदि पांच आस्रवोंका विरमण (५), पांच इन्द्रियोंके इष्ट विषयोंमें राग न करना, अनिष्ट विषयोंमें द्वेष न करना (१०), उदयमें न आए हुए क्रोध आदि चार कषायोंका निरोध करना और उदयमें आये हुएको निष्फल करना, जैसे–क्रोधका उदय होने पर क्षमा रखना, मानका उदय होनेपर मार्दव भाव रखना, मायाका उदय होने पर सरलता रखना, और लोभकषायका उदय होने पर निर्लोभता धारण करना (१४), ज्ञान आदि गुणोंका अपहरण (नाश) करके आत्माको दरिद्र बनानेवाले मनदण्ड वचनदण्ड, और कायदण्डका त्याग करना (१७),

---

(૧૭) કાયસંયમ—અયતનાને ત્યજીને યતનાપૂર્વકજ કાયાની પ્રવૃત્તિ કરવી

સંયમના સત્તર ભેદ બીજે પ્રકારે પણ થાય છે જેમકે પ્રાણાતિપાત આદિ પાંચ આસ્રવોનું વિરમણ (૫), પાંચ ઇન્દ્રિયોના ઇષ્ટ વિષયોમાં રાગ ન કરવો, અનિષ્ટ વિષયોમાં દ્વેષ ન કરવો (૧૦), ઉદયમાં ન આવેલા ક્રોધ આદિ ચાર કષાયોનો નિરોધ કરવો અને ઉદયમાં આવેલાને નિષ્ફળ કરવા જેમકે ક્રોધનો ઉદય થતાં ક્ષમા રાખવી, માનનો ઉદય થતાં માર્દવભાવ રાખવો, માયાનો ઉદય થતાં સરલતા રાખવી, અને લોભકષાયનો ઉદય થતાં નિર્લોભતા ધારણ કરવી (૧૪), જ્ઞાન આદિ ગુણોનું અપહરણ (નાશ) કરીને આત્માને દરિદ્ર બનાવનારા મનદંડ, વચનદંડ અને કાયદંડનો ત્યાગ કરવો (૧૭),

अयमाशयः—मुखवस्त्रिकाधारणं विना भाषणे वायुकायादिविराधनस्य दुर्वारतया भाषा सावद्या भवतीति।

एतद्व्याख्याने अभयदेवसूरिणाऽपि—"जीवसंरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति, अन्या तु सावद्ये" त्युक्तम्। 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' इत्यस्य हि वस्त्रमपोह्य मुखोपरि वस्त्रमदत्त्वे (मवदूत्वे) त्यर्थः। यदन्वयव्यतिरेकाभ्यां भाषाया निरवद्यत्वं सावद्यत्वं च भवति, भाषाभिव्यक्तिश्च मुखाद्भवतीति मुखे ध्रियमाणं वस्त्रं 'मुखवस्त्रिका' शब्देन शास्त्रे व्यवह्रियते।

'शक्र' इत्येव वक्तव्ये 'देवेन्द्रो देवराजः' इति विशेषणोक्त्या दिव्यशक्ति-

---

तात्पर्य यह है कि मुखवस्त्रिका धारण किये विना भाषण करनेसे वायुकायकी विराधना अनिवार्य है, अत एव वह भाषा सावद्य है। इसका व्याख्यान करते हुए अभयदेवसूरि लिखते हैं—"जीव संरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति अन्या तु सावद्या।"—अर्थात् जीवों की रक्षा होनेसे भाषा निरवद्य होती है और इससे भिन्न (जीवों की घात करने वाली) भाषा सावद्य होती है। मूल पाठके 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' इस पदका अर्थ यह है कि–'मुख पर वस्त्र न धारण करके' जहाँ वस्त्र धारण नहीं वहाँ भाषा सावद्य होती है, और जहा वस्त्र धारण होता है वहाँ भाषा निरवद्य होती है। भाषा मुखसे निकलती है, इसलिए मुख पर धारण किया जानेवाला वस्त्र 'मुखवस्त्रिका' कहलाता है।

मूलमें 'शक्र' कहनेसे ही इन्द्रका बोध हो सकता था, किन्तु

તાત્પર્ય એ છે કે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કર્યા વિના ભાષણ કરવાથી વાયુકાયની વિરાધના અનિવાર્ય છે, તેથી કરીને એ ભાષા સાવદ્ય છે એનું વ્યાખ્યાન કરતા અભયદેવ સૂરિ લખે છે કે "जीवसंरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति अन्या तु सावद्या" અર્થાત્ જીવોની રક્ષા થવાથી ભાષા નિરવદ્ય થાય છે અને એથી ભિન્ન (જીવોની ઘાત કરવાવાળી) ભાષા સાવદ્ય હોય છે મૂળ પાઠના 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' પદનો અર્થ એ છે કે 'મુખ પર વસ્ત્ર ન ધારણ કરીને', જ્યા વસ્ત્ર ધારણ નથી, ત્યા ભાષા સાવદ્ય છે અને જ્યા વસ્ત્ર ધારણ થાય છે ત્યા ભાષા નિરવદ્ય છે ભાષા મુખમાથી નીકળે છે તેથી મુખ પર ધારણ કરવામા આવનારૂ વસ્ત્ર 'મુખવસ્ત્રિકા' કહેવાય છે

મૂળમા 'શક્ર' કહેવાથી ઇન્દ્રનો બોધ થઇ શકતો હતો, પરન્તુ દેવેન્દ્ર

। मुखवस्त्रिकाविचारः ।

ननु मुखोष्णवायुनाऽपि यदि वायुकायविराधनं तर्हि मुनीनां कथं वायुकायसंयमः? इति चेत् न, यतो भगवता श्रीतीर्थङ्करेण मुनीनां वायुकायसंयमार्थं मुखवस्त्रिकाबन्धनं प्रतिपादितम् ।

तद्विना हि श्रीव्याख्याप्रज्ञप्तौ षोडशतमशतकस्य द्वितीयोद्देशे भगवता शक्रेन्द्रस्यापि भाषणं सावद्यत्वेन परिकथितं, तथाहि-

'गोयमा! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिजूहित्ताणं भासं भासति ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासइ। जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं णिजूहित्ताणं भासं भासइ ताहे सक्के देविंदे देवराया असावज्जं भासं भासइ' इत्यादि ।

'गौतम! यदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः सूक्ष्मकायमपोह्य भाषां भाषते तदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः सावद्यां भाषां भाषते। यदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः सूक्ष्मकायं दत्त्वा भाषां भाषते तदा शक्रो देवेन्द्रो देवराजः असावद्यां भाषां भाषते' इति संस्कृतम् ।

मुखवस्त्रिकाविचार.

जब मुखसे निकलनेवाली वायुसे वायुकाय की विराधना होती है, तो मुनि वायुकायका संयम कैसे पाल सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि वायुकायके संयमके लिए ही तीर्थंकर गणधर भगवानने मुखवस्त्रिका धारण करना बताया है। भगवतीसूत्र सोलहवें शतक के दूसरे उद्देशमें भगवानने विना मुखवस्त्रिकाके इन्द्र महाराजके भाषणको भी सावद्य बताया है, यथा—" गोयमा ! " इत्यादि ।

મુખવસ્ત્રિકાવિચાર

જો મુખમાંથી નિકળનારા વાયુથી વાયુકાયની વિરાધના થાય છે, તો મુનિ વાયુકાયનો સંયમ કેવી રીતે પાળી શકે છે? એ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે વાયુકાયના સંયમને માટે જ તીર્થંકર ગણધર ભગવાને મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાનું બતાવ્યું છે ભગવતી-સૂત્રના સોળમા શતકના બીજા ઉદ્દેશમાં મુખવસ્ત્રિકા વિનાના ઇન્દ્ર મહારાજના ભાષણને પણ ભગવાને સાવદ્ય બતાવ્યું છે.— 'गोयमा' ઇત્યાદિ

पुनरपि—

"मुखे नाधी ते-मुहपती, हेठे पाटो धारी।
अति हेठी दाढी थई, जोतर गळे निवारी ॥ १ ॥
"एक काने धजसम कही, खधे पछेड़ी ठाम।
केड़े खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम ॥ २ ॥" इति।
(श्रावक-ऋषभदासकृते हितशिक्षारासे पृ० ३८ प० १६)
"सुलभ बोधी जीवड़ा, माडे निज पटकर्म।
साधु जन मुख मोंपत्ती, बाधी है जिन-धर्म ॥१॥"
(मुनिलब्धिविजयकृते हरिवलमच्छीरासे पृ० ७३ दोहा ५)

और भी कहा है—

"मुखे बांधी ते मुहपती, हेठे पाटो धारी।
अति हेठी दाढी थई, जोतर गले निवारी ॥१॥
एक काने धज सम कही, खधे पछेडी ठाम।
केडे खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम" ॥२॥
(श्रावक-ऋषभदास-कृत हितशिक्षारासे पृ० ३८ प १६)
"सुलभ-बोधी जीवडा, माडे निज पट-कर्म।
साधुजन मुख मोंपत्ती बाधी है जिन-धर्म" ॥१॥
(हरिवलमच्छीरास मुनिलब्धिविजयकृत पृ० ७३ दोहा ५)

વળી કહ્યું છે કે—

"મુખે બાધી તે મુહપતી હેઠે પાટો ધારી,
અતિ હેઠી દાઢી થઇ જોતર ગળે નિવારી (૧)
એક કાને ધજ સમ કહી, ખધે પછેડી ઠામ,
કેડે ખોસી કોથળી, નાવે પુણ્યને કામ" (૨)
(શ્રાવક–ઋષભદાસ–કૃત 'હિત–શિક્ષા–રાસ'
પૃષ્ઠ ૩૮ પ ૧૬)
"સુલભ બોધી જીવડા, માડે નિજ પટ્–કર્મ
સાધુ જન મુખ મોપતી બાધી હૈ જિન–ધર્મ" (૧)
(હરિબલ–મચ્છી–રાસ–મુનિ લબ્ધિવિજય કૃત
પૃષ્ઠ ૭૩, દોહા ૫)

सत्त्वेऽपि तस्य मुखवस्त्रिकाधारणाभावे यदि सावद्या भाषा तर्हि औदारिक शरीरधारिणा का वार्ते ? ति ध्वनितम् ।

सा च मुखवस्त्रिका वायुकायादिप्राणिप्राणसंरक्षणोपयोगि–मुखोपरिबन्धनीय–मुखपरिमित–सदोरकाऽष्टपुटवस्त्रखण्डविशेषः । अत्राय सङ्ग्रहः—

"वाउकायाइरक्खट्ठ, वज्झई ज सया मुहे ।
सदोरट्ठपुड वत्थ, वुत्ता सा मुहवत्तिया ॥ १ ॥
मुहमाणा जईलिंग, सव्वसजमकारण ।
पसत्थभावणावुड्ढी–हेऊ य मुहवत्तिया ॥ २ ॥" इति ।

देवेन्द्र और देवराज विशेषणों का देना यह सिद्ध करता है कि जब दिव्य शक्तिमान् होने पर भी मुखवस्त्रिका न धारण करने से उसकी भाषा सावद्य होती है तो औदारिक-शरीर-धारियों की बात ही क्या है? उनकी भाषा अवश्य ही सावद्य होगी ।

वह मुखवस्त्रिका वायुकाय आदिके प्राणियोंकी रक्षाके लिये उपयोगी, मुख पर बाधने योग्य, मुखके बराबर डोरा सहित आठ पुटवाला, वस्त्रका खण्डविशेष है । यहा सग्रहगाथाएँ हैं–' वाउ ' इत्यादि,

अर्थात्-वायुकाय आदिकी रक्षाके लिये जो सदा मुख पर बांधी जाती है, वह डोरासहित आठ पुटवाला वस्त्र "मुखवस्त्रिका" कहलाती है ॥१॥ वह मुखवस्त्रिका मुख-प्रमाण होती है, यह मुनिका चिह्न सर्व सयमका कारण तथा प्रशस्त भावना की वृद्धिका कारण है ॥२॥

અને દેવરાજ વિશેષણો એ સિદ્ધ કરે છે કે જો દિવ્ય શક્તિમાન હોવા છતા પણ મુખવસ્ત્રિકા ન ધારણ કરવાથી એની ભાષા સાવદ્ય થાય છે તો ઔદારિક-શરીરધારીઓની વાત જ શી ? એની ભાષા પણ જરૂર જ સાવદ્ય જ થાય

એ મુખવસ્ત્રિકા વાયુકાય આદિના પ્રાણીઓની રક્ષાને માટે ઉપયોગી, મુખ પર બાધવા યોગ્ય, મુખની બરાબર, દોરાસહિત આઠપુટવાળો વસ્ત્રનો ખડવિશેષ છે અહી સગ્રહ ગાથાઓ છે–'વાઉ૦ ' ઇત્યાદિ

અર્થાત્–વાયુકાય આદિની રક્ષાને માટે જે સદા મુખ પર બાધવામા આવે છે, તે દોરાસહિત આઠપુટવાળુ વસ્ત્ર 'મુખવસ્ત્રિકા' કહેવાય છે (૧) એ મુખવસ્ત્રિકા મુખ-પ્રમાણ હોય છે એ મુનિનું ચિહ્ન સર્વ સયમનું કારણ તથા પ્રશસ્ત ભાવનાની વૃદ્ધિનુ કારણ છે (૨)

पुनरपि—

" मुखे बाधी ते-मुहपती, हेठे पाटो धारी ।
अति हेठी दाढी थई, जोतर गळे निवारी ॥ १ ॥
" एक काने धजसम कही, खधे पछेड़ी ठाम ।
केडे खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम ॥ २ ॥ " इति ।
(श्रावक-ऋषभदासकृते हितशिक्षारासे पृ० ३८ प० १६)

" सुलभ बोधी जीवड़ा, माडे निज षटकर्म ।
साधु जन मुख मोंपती, बाधी है जिन-धर्म ॥१॥"
(मुनिलब्धिविजयकृते हरिबलमच्छीरासे पृ० ७३ दोहा ५)

और भी कहा है—

" मुखे बांधी ते मुहपती, हेठे पाटो धारी ।
अति हेठी दाढी थई, जोतर गले निवारी ॥१॥
एक काने धज सम कही, खधे पछेडी ठाम ।
केडे खोसी कोथली, नावे पुण्यने काम " ॥२॥
(श्रावक-ऋषभदास-कृत हितशिक्षारासे पृ० ३८ प १६)
" सुलभ-बोधी जीवडा, माडे निज षट-कर्म ।
साधुजन मुख मोंपती बांधी है जिन-धर्म " ॥१॥
(हरिबलमच्छीरास मुनिलब्धिविजयकृत पृ० ७३ दोहा ५)

વળી કહ્યુ છે કે—

" મુખે બાંધી તે મુહપતી હેઠે પાટો ધારી,
અતિ હેઠી દાઢી થઈ જોતર ગળે નિવારી (૧)
એક કાને ધજ સમ કહી, ખધે પછેડી ઠામ,
કેડે ખોસી કોથળી, નાવે પુણ્યને કામ " (૨)
(શ્રાવક—ઋષભદાસ—કૃત ' હિત—શિક્ષા—રાસ '
પૃષ્ઠ ૩૮ પ ૧૬)
" સુલભ બોધી જીવડા, માડે નિજ ષટ્—કર્મ
સાધુ જન મુખ મોપતી બાંધી હૈ જિન—ધર્મ " (૧)
(હરિબલ—મચ્છી—રાસ—મુનિ લબ્ધિવિજય કૃત
પૃષ્ઠ ૭૩, દોહા ૫)

ननु भाषणसमये हस्तेनापि वस्त्रमादाय मुखाच्छादने उक्तजीवरक्षा निर्वहति किमन्यदापि मुखवस्त्रिकाबन्धनेन ? इति चेदुच्यते—

न केवलं भाषणसमय एव जीवविराधनासंभवः, यतो हस्तेन वस्त्रमादाय मुखाच्छादने जीवरक्षा संभवेत्, किन्तु दीर्घश्वासनिःश्वासाभ्यां, जृम्भातः, स्वभावादकस्मादपि च, तथा निद्रावस्थायां मुखव्यादानाच्च तत्सम्भव इति न हस्तेन मुखोपरि वस्त्रं धारयन्तः सम्यग् जीवरक्षां सर्वदा कर्तुं प्रभवन्ति, वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य प्रसुप्तस्यापि निद्रायां पार्श्वपरिवर्तनेन वस्त्रापसरणे सति क उपायस्तदानीं सूक्ष्म-

यहाँ यह आशङ्का की जा सकती है कि जब बोलनेका काम पडे तब हाथमें कपडा लेकर मुँह ढँक लेनेसे वायुकाय आदि जीवोंकी रक्षा हो सकती है, जब बोलते नहीं उस समय भी मुखवस्त्रिका बांध रखनेसे क्या लाभ है ?

इसका उत्तर यह है कि केवल बोलते समय ही मुखसे हवा नहीं निकलती जिससे हाथमें वस्त्र लेकर मुँह ढँक लेनेसे जीवोंकी रक्षा हो जाय। किन्तु दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेनेसे, जभाई लेनेसे, स्वभावसे, अकस्मात्, तथा निद्रावस्था में मुख खुला रहनेसे भी हवा निकलती है। अतएव मुख पर हाथसे वस्त्र लगानेसे जीवोंकी सम्यक् प्रकार सर्वदा रक्षा नहीं हो सकती। वस्त्रसे मुँह ढाँक कर सोया हुवा व्यक्ति नींद में करवट (पसवाडा) बदलता है तब वस्त्र खिसक जाता है। उस समय सूक्ष्म,

અહીં એવી આશંકા કરી શકાય છે કે જ્યારે બોલવાનું કામ પડે ત્યારે હાથમાં કપડું લઈને મ્હોં ઢાંકી લેવાથી વાયુકાય આદિ જીવોની રક્ષા થઈ શકે [illegible] જ્યારે બોલતા ન હોઈએ, ત્યારે પણ મુખવસ્ત્રિકા બાંધી રાખવાથી શો લાભ છે ?

એનો ઉત્તર એ છે કે કેવળ બોલતી વખતે જ મુખમાંથી હવા નીકળતી નથી કે જેથી હાથમાં વસ્ત્ર લઈને મ્હોં ઢાંકી લેવાથી જીવોની રક્ષા થઈ જાય. કિન્તુ દીર્ઘ શ્વાસોચ્છ્વાસ લેવાથી, બગાસું ખાવાથી, સ્વભાવથી, અકસ્માત્ તથા નિદ્રાવસ્થામાં મ્હોં ખુલ્લું રહેવાથી પણ હવા નીકળે છે તેથી મ્હોં પર હાથ વડે વસ્ત્ર લગાડવાથી જીવોની સમ્યક્ પ્રકારે સર્વદા રક્ષા થઈ શકતી નથી વસ્ત્રથી મ્હોં ઢાંકીને સૂતેલી વ્યક્તિ ઉંઘમાં જ્યારે પાસું બદલાવે છે ત્યારે વસ્ત્ર ખસી

व्यापिसम्पातिमजीवसचित्तरजःप्रवेशवारणार्थं दीर्घोष्णनिःश्वासोच्छ्वासजनित-वायुकायविराधनापरिहारार्थं च।

तथा चोक्तं योगशास्त्रे तृतीयप्रकाशे सप्ताशीतितमश्लोकस्य स्वोपज्ञविवरणे हेमचन्द्राचार्येण—

"मुखवस्त्रमपि सम्पातिमजीवरक्षणादुष्णमुखवातविराध्यमानबाह्य-वायुकायजीवरक्षणान्मुखे धूलिप्रवेशरक्षणाच्चोपयोगी"ति।

तथा चोत्तराध्ययनसूत्रे तृतीयाध्ययने श्रीलक्ष्मीवल्लभीयायां नवमगाथा-व्याख्याया सप्तमनिह्नवोदाहरणेऽपि—

"तथा सम्पातिमाः सत्त्वाः, सूक्ष्माश्च व्यापिनोऽपरे।
तेषा रक्षानिमित्तं च, विज्ञेया मुखवस्त्रिका ॥१॥" इति।

व्यापी और सपातिम जीव तथा सचित्त रज आदि मुखमें जानेसे कैसे रुक सकते हैं ?, तथा दीर्घश्वासोच्छ्वाससे होनेवाली वायुकायकी विराधना का क्योंकर परिहार हो सकता है ? इन्हें रोकने का उपाय ही क्या है ? हेमचन्द्राचार्य कहते हैं "मुखवस्त्र०" इत्यादि—

अर्थात् "मुखवस्त्र, सपातिम जीवोंकी रक्षा करता है, मुख से निकलने वाले उष्ण वायु द्वारा विराधित होनेवाले बाह्य वायुकायके जीवोंकी रक्षा करता है, तथा मुँहमें धूली नही घुसने देता, इसलिये वह उपयोगी है।"

उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे उद्देशकी टीकामें कहा है—"सन्ति०" इत्यादि,

अर्थात् "सपातिम, सूक्ष्म और व्यापी जीवोंकी रक्षाके लिये मुख-

જાય છે તે સમયે-સૂક્ષ્મ, વ્યાપિ અને સપાતિમ જીવ તથા સચિત્ત રજ આદિ મુખમા જવાથી કેવી રીતે રોકાઇ શકે ? તથા દીર્ઘ શ્વાસોચ્છ્વાસથી થનારી વાયુકાયની વિરાધનાનો કેવી રીતે પરિહાર થઇ શકે ? તેને રોકવાનો ઉપાય જ શો છે ? હેમચન્દ્રાચાર્ય કહે છે કે "मुखवस्त्र०" ઇત્યાદિ

અર્થાત્-મુખવસ્ત્ર સપાતિમ જીવોની રક્ષા કરે છે, મુખથી નીકળતા ઉષ્ણ વાયુ દ્વારા વિરાધિત થતા વાયુકાયના જીવોની રક્ષા કરે છે, તથા મુખમા ધૂળ પેસવા દેતુ નથી, તેથી તે ઉપયોગી છે"

ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ત્રીજા ઉદ્દેશની ટીકામા કહ્યુ છે કે "सन्ति" ઇત્યાદિ અર્થાત્-"સપાતિમ, સૂક્ષ્મ અને વ્યાપી જીવોની રક્ષાને માટે મુખવસ્ત્રિકા

ननु भाषणसमये हस्तेनापि वस्त्रमादाय मुखाच्छादने उक्तजीवरक्षा निर्वहति किमन्यदापि मुखवस्त्रिकाबन्धनेन ? इति चेदुच्यते—

न केवलं भाषणसमय एव जीवविराधनासंभवः, यतो हस्तेन वस्त्रमादाय मुखाच्छादने जीवरक्षा संभवेत्, किन्तु दीर्घश्वासनिःश्वासाभ्यां, जृम्भातः, स्वभावादकस्मादपि च, तथा निद्रावस्थायां मुखव्यादानाच्च तत्सम्भव इति न हस्तेन मुखोपरि वस्त्रं धारयन्तः सम्यग् जीवरक्षां सर्वदा कर्तुं प्रभवन्ति, वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य प्रसुप्तस्यापि निद्रायां पार्श्वपरिवर्त्तनेन वस्त्रापसरणे सति क उपायस्तदानीं सूक्ष्म-

यहाँ यह आशङ्का की जा सकती है कि जब बोलनेका काम पडे तब हाथमें कपडा लेकर मुँह ढँक लेनेसे वायुकाय आदि जीवोंकी रक्षा हो सकती है, जब बोलते नहीं उस समय भी मुखवस्त्रिका बांध रखनेसे क्या लाभ है ?

इसका उत्तर यह है कि केवल बोलते समय ही मुखसे हवा नहीं निकलती जिससे हाथमें वस्त्र लेकर मुँह ढँक लेनेसे जीवोंकी रक्षा हो जाय। किन्तु दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेनेसे, जभाई लेनेसे, स्वभावसे, अकस्मात्, तथा निद्रावस्था में मुख खुला रहनेसे भी हवा निकलती है। अतएव मुख पर हाथसे वस्त्र लगानेसे जीवोंकी सम्यक् प्रकार सर्वदा रक्षा नहीं हो सकती। वस्त्रसे मुँह ढाँक कर सोया हुवा व्यक्ति नींद में करवट (पसवाडा) बदलता है तब वस्त्र खिसक जाता है। उस समय सूक्ष्म,

અહીં એવી આશંકા કરી શકાય છે કે જ્યારે બોલવાનું કામ પડે ત્યારે હાથમાં કપડું લઈને મ્હો ઢાંકી લેવાથી વાયુકાય આદિ જીવોની રક્ષા થઈ શકે છે જ્યારે બોલતા ન હોઈએ, ત્યારે પણ મુખવસ્ત્રિકા બાંધી રાખવાથી શો લાભ છે ?

એનો ઉત્તર એ છે કે કેવળ બોલતી વખતે જ મુખમાંથી હવા નીકળતી નથી કે જેથી હાથમાં વસ્ત્ર લઈને મ્હો ઢાંકી લેવાથી જીવોની રક્ષા થઈ જાય કિન્તુ દીર્ઘ શ્વાસોચ્છ્વાસ લેવાથી, બગાસું ખાવાથી, સ્વભાવથી અકસ્માત્ તથા નિદ્રાવસ્થામાં મ્હો ખુલ્લું રહેવાથી પણ હવા નીકળે છે તેથી મ્હો પર હાથ વડે વસ્ત્ર લગાડવાથી જીવોની સમ્યક્ પ્રકારે સર્વદા રક્ષા થઈ શકતી નથી વસ્ત્રથી મ્હો ઢાંકીને સૂતેલી વ્યક્તિ ઉંઘમાં જ્યારે પાસું બદલાવે છે ત્યારે વસ્ત્ર ખસી

ध्यायविरचित-सर्वार्थसिद्धि-टीकाया तृतीयाध्ययनेऽप्येवमेव । एव विशेषावश्यकबृहद्वृत्तावप्युक्तम् ।

किञ्चाऽऽगमविरोधोऽपि तेषा (अवद्धमुखवस्त्रिकाणा) दुर्वार एव, तथाहि –भगवतीसूत्रे द्वितीयशतकस्य प्रथमोद्देशके स्कन्दकानगारस्यानशनकाले 'नमोत्थु ण' पाठविधौ—

"पुरत्थाभिमुहे सपलियकनिसण्णे करयलपरिग्गहिय दसनह सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी" इत्याद्युक्तम् ,

तत्राञ्जलिवद्धस्य करद्वयस्य शिरसि स्थापने पद्मासनसस्थः स्कन्दकोऽनगारः कथ तन्मते 'नमोत्थु णं' पाठमनावृतमुखेन व्यधात् । अनावृतमुखेन हि मुनयो न भापन्ते, तथाविधभाषणस्याऽऽगमप्रतिपिद्धत्वात् ।

पाध्यायरचित सर्वार्थसिद्धि नामकी तीसरे अध्ययनकी टीकामें भी इसी प्रकार कहा है और ऐसेही विशेषावश्यक बृहद्वृत्तिमें भी कहा है।

जो मुख पर मुखवस्त्रिका नही बाधते, उनके मतमें आगम–विरोध अनिवार्य है। भगवतीसूत्र २ श०, १ उ० में स्कन्दक अनगारके अनशन समय में ' नमोत्थु ण ' के पाठकी विधिमें कहा है–"पुरत्था०" इत्यादि।

इसमें विचारणीय विषय यह है कि अञ्जलि बाध कर दोनों हाथ सिर पर धर कर पद्मासन लगाकर पूर्व दिशाकी ओर मुख करके बैठे हुवे स्कन्दक अनगारने 'नमोत्थु ण' पाठ खुले मुखसे कैसे उच्चारण किया, क्योंकि दोनों हाथ सिर पर रखे हुए थे। और खुले मुखसे तो मुनि बोलते नही, क्योंकि ऐसा बोलना तो शास्त्रसे निपिद्ध है।

सर्वार्थ-सिद्धि नामनी त्रीजा अध्ययननी टीकामा पणु એવુ જ કહ્યુ છે, એવીજ રીતે વિશેષાવશ્યક બૃહદ્વૃત્તિમા પણુ કહ્યુ છે

જેઓ મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધતા નથી, તેમના મતમા આગમ–વિરોધ અનિવાર્ય છે ભગવતીસૂત્ર ૨ શ ૧ ઉ મા સ્કદક અનગારના અનશન સમયમા 'नमोत्थु ण' ના પાઠની વિધિમા કહ્યુ છે–"पुरत्था०" ઇત્યાદિ

એમા વિચારણીય વિષય એ છે કે અજલિ બાધીને, બેઉ હાથ શિર પર ધારણુ કરીને, પદ્માસન લગાવીને, પૂર્વ દિશા તરફ મુખ કરીને બેઠેલા સ્કદક અનગારે 'नमोत्थु ण' પાઠનુ ખુલ્લા મુખે કેવી રીતે ઉચ્ચારણુ કર્યું ? કેમકે બેઉ હાથ માથા પર રાખેલા હતા અને ખુલ્લે મુખે તો મુનિ બોલે નહિ, કારણુ કે એમ બોલવુ શાસ્ત્રથી નિષિદ્ધ છે

ओघनिर्युक्तौ द्वादशाधिकसप्ताततम (७१२)-गाथाऽप्येवमेव बोधयति-

" सपातिमरयरेणू,-पमज्जणट्ठा वयति मुहपत्ति ।
नास मुह च बधइ, तीए वसहिं पमज्जतो ॥ ७१२ ॥"

" सपातिमरजोरेणुप्रमार्जनार्थं वदन्ति मुखपत्रीम् ।
नासिका मुख च बध्नाति, तया वसतिं प्रमार्जयन् ॥७१२॥

इति सस्कृतम् ।

वसतिं प्रमार्जयता घ्राणे मुखे चैतद्द्वयेऽपि मुखवस्त्रिका बन्धनीया, अन्यदा मुख एवेत्याशयः, अन्यथा भगवतीसूत्राद्यनेकागमविरोधापत्तिर्दुर्वारा स्यात् ।

एवमेव प्रवचनसारोद्धारे त्रयोविंशत्यधिकपञ्चशततमगाथा विद्यते, तथा प्रकरणरत्नाकरस्यापि तृतीयभागे, उत्तराध्ययनसूत्रस्य कमलसयमोपा-

---

वस्त्रिका समझनी चाहिये " ॥१॥

ओघनिर्युक्ति ७१२ वीं गाथामें कहा है-" सपातिम० " इत्यादि ।

अर्थात् "सपातिम जीव, सचित्त रज तथा रेणुकी रक्षा करनेके लिये मुखवस्त्रिका का कथन करते हैं । और जब वसतिकी प्रमार्जना करे तब नाक और मुख दोनों बाधे । "

अर्थात् अन्य समयमें सिर्फ मुखही बाधे, यह तात्पर्य हुआ, अन्यथा भगवतीसूत्र आदि अनेक आगमोंका विरोध अनिवार्य होगा ।

इसीप्रकार प्रवचनसारोद्धारकी ५२३ वी गाथामें कहा है । तथा प्रकरणरत्नाकरके तीसरे भागमें, फिर उत्तराध्ययनसूत्रकी कमलसयमो-

---

સમજવી જોઇએ " (૧)

ઓઘનિર્યુક્તિ ૭૧૨ મી ગાથામા કહ્યુ છે કે-सपातिम० ઈત્યાદિ અર્થાત્-" સપાતિમ જીવ, સચિત્ત રજ, તથા રેણુની રક્ષા કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકાનુ કથન કરે છે અને જ્યારે વસતિની પ્રમાર્જના કરે ત્યારે નાક અને મુખ બેઉ બાધે "

અર્થાત્-અન્ય સમયમા સિર્ફ મુખજ બાધે, એ તાત્પર્યાર્થ થયુ, અગર એવુ અર્થ નહીં કરવામા આવે તો ભગવતીસૂત્ર આદિ અનેક આગમોનો વિરોધ અનિવાર્ય આવશે

એવીજ રીતે પ્રવચનસારોદ્ધારની ૫૨૩ મી ગાથામા કહ્યુ છે તથા પ્રકરણ રત્નાકરના ત્રીજા ભાગમા, અને ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રની કમલસયમોપાધ્યાયરચિત

दानसूत्रस्य व्याख्याया तट्टीकाकारेण हरिभद्रसूरिणाऽभिहितम्—

"अय च प्रकृतसूत्रार्थः—अवग्रहाद्बहिःस्थितो विनेयोऽर्द्धावनतकायः करद्वयगृहीतरजोहरणो वन्दनायोद्यत एवमाह—इच्छामि—अभिलषामि हे क्षमाश्रमण ! वन्दितु नमस्कार कर्त्तुं भवन्तमिति गम्यते" इत्यादि ।

अत्र 'करद्वयगृहीतरजोहरणः' इति विशेषण कथयता हरिभद्रसूरिणा 'मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धन भगवदभिमत'मिति प्रकटीकृतम् , अन्यथा क्षमाश्रमणसूत्रोच्चारणकाले करद्वयस्य रजोहरणग्रहणे प्रतिबद्धतया मुखोपरि मुखवस्त्रिकास्थापनस्योपायान्तरासम्भवात् क्षमाश्रमणदानमेव निर्विषय स्यात् । अनावृतमुखेन तु मुनीना भाषणमेवाऽऽगमप्रतिषिद्धमिति नात्र केषाञ्चिद्विवादः ।

किञ्च क्षमाश्रमणदाने सम्बोधनशब्दप्रयोगे गुरोः स्वाभिमुखीकरणार्थं सवि-

---

श्रमणदान सूत्रकी व्याख्यामें व्याख्याकार हरिभद्रसूरिने भी कहा है— " अय " इत्यादि,

यहाँ "दोनों हाथोंमें रजोहरण लेकर" ऐसा कहनेवाले हरिभद्रसूरिने यह प्रगट किया है कि मुख पर मुखवस्त्रिका बाधनेकी भगवानकी आज्ञा है। अन्यथा जब दोनों हाथोंमें रजोहरण ले लिया तब मुख पर मुखवस्त्रिका धारण करनेके लिए अन्य उपाय असभव है। और खुले मुख बोलनेसे क्षमाश्रमण देना ही व्यर्थ हो जायगा। साधुओंको खुले मुखसे बोलना शास्त्रविरुद्ध है, इस विषयमें किसीको विवाद नहीं है। दूसरी बात यह है कि क्षमाश्रमणदानमें 'हे क्षमाश्रमण!' इस सम्बोधनका प्रयोग किया है। इसलिए गुरुको अपनी ओर अभिमुख करने के लिए

સૂત્રની વ્યાખ્યામા વ્યાખ્યાકાર હરિભદ્રસૂરિએ પણ કહ્યુ છે કે—'अय' ઇત્યાદિ

અહી 'બેઉ હાથમા રજોહરણ લઇને' એમ કહેતા હરિભદ્રસૂરિએ એમ પ્રકટ કર્યું છે કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવાની ભગવાનની આજ્ઞા છે નહિ તો જે બેઉ હાથમા રજોહરણ લઈ લીધો એટલે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાને માટે અન્ય ઉપાય અસભવિત છે, અને ખુલ્લે મુખે બોલવાથી ક્ષમાશ્રમણ આપવાનું જ વ્યર્થ બની જાય સાધુઓએ ખુલ્લે મુખે બોલવું એ શાસ્ત્રવિરુદ્ધ છે, એ સબધમા તો કોઇનો વાધો નથી બીજી વાત એ છે કે ક્ષમાશ્રમણદાનમા 'હે ક્ષમાશ્રમણ' એવો સબોધનનો પ્રયોગ કહેલો છે તેથી કરીને ગુરુને પોતાની તરફ અભિમુખ કરવાને માટે વિશેષ-પ્રયત્ન-પૂર્વક સ્પષ્ટ

किञ्च–अन्तकृद्दशाङ्गषष्ठे वर्गेऽतिमुक्ताख्ये पञ्चदशाध्ययने—

" तए ण अइमुत्ते कुमारे भगव गोयम एव वयासी–एह णं भंते ! तुब्भे जाण अह तुब्भ भिक्खं दवावेमि त्ति कट्टु भगव गोयम अंगुलीए गेण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए गेहे तेणेव उवागए " इत्यभिहितम् ।

तत्र भिक्षाचर्यां गतस्य गौतमस्वामिनो भिक्षापात्रधारणमविरुद्धैकहस्ताङ्गुलिस्व सुतरामेव सिद्धम् । इतरस्य तु करस्याङ्गुली अतिमुक्तकुमारेण गृहीतायां सत्यां तस्य भगवतो गौतमस्वामिनो हस्तेन मुखोपरि मुखवस्त्रिकाधारण नोपपद्यते, सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमजीवसचित्तरजःप्रवेशादिवारणाय तदानीमपि मुखवस्त्रिकाधारणमावश्यकमेव ।

किञ्चावश्यके ' इच्छामि खमासमणो ! वदिउ ' इत्यादि–क्षमाश्रमण-

अन्तकृतदशाङ्गके ६ वर्गमें 'अतिमुक्त' शीर्षक पन्द्रहवें अध्ययनमें कहा है–" तए ण इत्यादि ।

इस कथनसे भिक्षाचरी (गोचरी) के लिए-गये हुवे गौतमस्वामीने हाथमें भिक्षाका पात्र लिया था, यह बात स्वय सिद्ध है और दूसरे हाथ की अगुली अतिमुक्त कुमारने पकड़ ली थी। इस प्रकार जब दोनों हाथ गौतमस्वामीके रुधे हुए थे तो मुखवस्त्रिका नहीं रही होगी ? । किन्तु सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम जीव तथा–सचित्त रजका प्रवेश रोकनेके लिए मुखवस्त्रिकाकी उस समय भी आवश्यकता थी ।

आवश्यक सूत्रमें " इच्छामि खमासमणो ! वदिउ " इत्यादि क्षमा-

અન્તકૃતદશાંગના ૬ વર્ગમા 'अतिमुक्त' શીર્ષક ૫ દરમા અધ્યયનમા કહ્યુ છે 'तए ण' ઇત્યાદિ

આ કથન મુજબ ભિક્ષાચરી (ગોચરી) ને માટે ગએલા ગૌતમ સ્વામીએ હાથમા ભિક્ષાનુ પાત્ર લીધુ હતુ એ વાત સ્વયસિદ્ધ છે અને બીજા હાથની આગળી અતિમુક્ત કુમારે પકડી લીધી હતી એ પ્રકારે જો ગૌતમ સ્વામીના બેઉ હાથ રોકાઇ ગયા હતા, તો તે વખતે હાથવડે મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર કેવી રીતે રાખી હોય ? કિન્તુ સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સપાતિમ જીવો તથા સચિત્ત રજનો પ્રવેશ રોકવાને માટે એ સમયે પણ મુખવસ્ત્રિકાની આવશ્યકતા હતી

આવશ્યક–સૂત્રમા 'इच्छामि खमासमणो वदिउ' ઇત્યાદિ ક્ષમાશ્રમણદાન

दानसूत्रस्य व्याख्याया तट्टीकाकारेण हरिभद्रसूरिणाऽभिहितम्—

"अय च प्रकृतसूत्रार्थः–अवग्रहाद्बहिःस्थितो विनेयोऽर्द्धावनतकायः करद्वय-गृहीतरजोहरणो वन्दनायोद्यत एवमाह–इच्छामि–अभिलपामि हे क्षमाश्रमण ! वन्दितु नमस्कार कर्तुं भवन्तमिति गम्यते" इत्यादि ।

अत्र 'करद्वयगृहीतरजोहरणः' इति विशेषण कथयता हरिभद्रसूरिणा 'मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धन भगवदभिमत'मिति प्रकटीकृतम् , अन्यथा क्षमाश्रमण-सूत्रोच्चारणकाले करद्वयस्य रजोहरणग्रहणे प्रतिबद्धतया मुखोपरि मुखवस्त्रिका-स्थापनस्योपायान्तरासम्भवात् क्षमाश्रमणदानमेव निर्विषय स्यात् । अनावृतमुखेन तु मुनीना भाषणमेवाऽऽगमप्रतिषिद्धमिति नात्र केषाञ्चिद्विवादः ।

किञ्च क्षमाश्रमणदाने सम्बोधनशब्दप्रयोगे गुरोः स्वाभिमुखीकरणार्थं सचि-

---

श्रमणदान सूत्रकी व्याख्यामें व्याख्याकार हरिभद्रसूरिने भी कहा है– " अय " इत्यादि,

यहाँ "दोनों हाथोंमें रजोहरण लेकर" ऐसा कहनेवाले हरिभद्रसूरिने यह प्रगट किया है कि मुख पर मुखवस्त्रिका बाधनेकी भगवानकी आज्ञा है । अन्यथा जब दोनों हाथोंमें रजोहरण ले लिया तब मुख पर मुख-वस्त्रिका धारण करनेके लिए अन्य उपाय असभव है । और खुले मुख बोलनेसे क्षमाश्रमण देना ही व्यर्थ हो जायगा । साधुओंको खुले मुखसे बोलना शास्त्रविरुद्ध है, इस विषयमें किसीको विवाद नहीं है । दूसरी बात यह है कि क्षमाश्रमणदानमें 'हे क्षमाश्रमण !' इस सम्बोधनका प्रयोग किया है । इसलिए गुरुको अपनी ओर अभिमुख करनेके लिए

સૂત્રની વ્યાખ્યામા વ્યાખ્યાકાર હરિભદ્રસૂરિએ પણ કહ્યુ છે કે—'અય' ઇત્યાદિ

અહી 'બેઉ હાથમા રજોહરણ લઇને' એમ કહેતા હરિભદ્રસૂરિએ એમ પ્રકટ કર્યું છે કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવાની ભગવાનની આજ્ઞા છે નહિ તો જો બેઉ હાથમા રજોહરણ લઈ લીધો એટલે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાને માટે અન્ય ઉપાય અસભવિત છે, અને ખુલ્લે મુખે બોલવાથી ક્ષમા શ્રમણ આપવાનુ જ વ્યર્થ બની જાય સાધુઓએ ખુલ્લે મુખે બોલવુ એ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે, એ સબધમા તો કોઇનો વાધો નથી બીજી વાત એ છે કે ક્ષમા શ્રમણદાનમા 'હે ક્ષમાશ્રમણ' એવો સબોધનનો પ્રયોગ કહેલો છે તેથી કરીને ગુરૂને પોતાની તરફ અભિમુખ કરવાને માટે વિશેષ–પ્રયત્ન–પૂર્વક સ્પષ્ટ

शेपप्रयत्नपूर्वकोच्चैःस्वरेण सुस्पष्टोच्चारणं विधेयमस्ति न त्वव्यक्तध्वनिनेत्युपाया न्तरेण मुखावरणस्य कर्तुमशक्यतयोक्तजीवविराधना परिहर्तुमशक्यैव ।

अन्यच्च तत्रैव क्षमाश्रमणदाने गुरुनिदेशानन्तरम्-" अहोकाय, कायस-फास" इत्यस्य व्याख्याया तेनैव हरिभद्रसूरिणा व्याख्यात, तथाहि—

" ततः शिष्यो नैषेधिक्या प्रविश्य गुरुपादान्तिकम्, निधाय तत्र रजोहरणम्, तत् (रजोहरण) ललाटं च कराभ्यां सस्पृशन्निदं भणति-अवस्तात्कायः अधःकायः=पादलक्षणस्तमधःकायं प्रति कायेन=निजदेहेन सस्पर्शः=कायसस्पर्शस्त करोमि, एतच्चानुजानीते-"ति ।

तत्र समिलितकरद्वयेन रजोहरण-ललाटयोः सस्पर्शे सति ' अहोकाय, कायसफास ' इत्यस्योच्चारणं मुखवस्त्रिकाबन्धनं विना नोपपद्यते, हस्तेन मुखोपरि मुखवस्त्रिकास्थापनं तदानीं न सभवति, हस्तद्वयस्यापि रजोहरणललाटसस्पर्श-प्रतिबद्धत्वात् ।

अपि च-ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्रे चतुर्दशाध्ययने—

विशेषप्रयत्नपूर्वक स्पष्ट उच्चारण करनेकी आवश्यकता है। अव्यक्त भाषासे सबोधन करना सभव नहीं है। इस प्रकार जब दूसरे उपायसे मुख नहीं ढँका जा सका तो उल्लिखित जीवोंकी विराधना अनिवार्य है। इसके सिवाय इसी क्षमाश्रमणदानमें गुरुकी आज्ञाके अनन्तर "अहोकाय कायसफास" इसका उच्चारण मुखवस्त्रिका बाधे विना नहीं हो सकता और हाथसे मुख पर मुखवस्त्रिका धारण करना उस समय सभव नहीं है, क्योंकि दोनों हाथ रजोहरणको ग्रहण करके ललाटमें लगाये जाते हैं।

ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रके चौदहवें अध्ययनमें कहा है-"तए ण" इत्यादि ।

ઉચ્ચારણ કરવાની જરૂર છે અવ્યક્ત ભાષાથી સબોધન કરવાનો સભવ નથી એ રીતે જો બીજા ઉપાયથી મુખ નથી ઢાકી શકાય તો ઉપર લખ્યા મુજબ જીવોની વિરાધના થયા વિના રહે નહિ એ ઉપરાત એ ક્ષમાશ્રમણદાનમા ગુરુની આજ્ઞાની પછી ' अहोकाय, कायसफास ' એનુ ઉચ્ચારણ મુખવસ્ત્રિકા બાધ્યા વિના થઈ શકતુ નથી અને એ સમયે હાથથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાનુ સભવિત નથી, કારણ કે બેઉ હાથ રજોહરણને ગ્રહણ કરીને કપાળે અડાડવાના હોય છે

જ્ઞાતાધર્મકથાગ સૂત્રના ચૌદમા અધ્યયનમા કહ્યુ છે કે- तए ण ઇત્યાદિ

"तएण ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए एव वुत्ताओ समाणीओ दोवि कन्ने ठाइति, ठाइत्ता पोट्टिल एव वयासी-अम्हे ण देवाणुप्पिए ! समणीओ निग्गथीओ जाव गुत्तबभयारिणीओ, नो खलु कप्पइ अम्ह एयप्पयार कन्नेहिवि निसामित्तए किमग पुण उवदिसित्तए वा" इत्याद्युक्तम् ।

पोट्टिलया भिक्षार्थं स्वगृहमनुप्रविष्टासु साध्वीषु काचित् पतिं वशीकर्तुं चूर्णयोग-मन्त्रयोगादिकानुपायान् पृष्टा सती कर्णौ पिधाय प्रोवाच-हे देवानुप्रिये ! वय श्रमण्यो निर्ग्रन्थ्यो यावद् गुप्तब्रह्मचारिण्यः स्मः, नो खलु कल्पते अस्माक-मेतत्प्रकार कर्णाभ्यामपि निशामयितु किमङ्ग पुनरुपदेष्टुमित्यर्थः ।

लोके हि अनुचितवार्ताश्रवणसमये झटिति कर्णपिधान हस्ताभ्यामेव विधीयमान दृश्यते तस्मात् साध्व्या हस्ताभ्या कर्णौ पिधाय प्रतिवचनदाने मुखवस्त्रिका-धारण बन्धन विना नोपपद्यते, तदभावे वायुकायादिजीवविराधनाऽवश्यम्भाविनी ।

अर्थात्-" पोट्टिलाके घरमें साध्वियाँ भिक्षाके लिए गई। उसने अपने पतिको वश करनेके लिए एक साध्वीसे चूर्णयोग और मन्त्रयोग आदि उपाय पूछे। तब साध्वीने तत्काल दोनो कान मूद कर कहा-हे देवानुप्रिये ! हम निर्ग्रन्थ आर्यिका हैं यावत् गुप्तब्रह्मचारिणी हैं । ऐसी बात सुनना भी हमें नहीं कल्पता तो उपदेश देनेकी बात ही क्या है ?"

अनुचित बात सुनते समय लोकमें भी झटपट हाथोंसे कान मूदना देखा जाता है । ऐसी हालतमें दोनों हाथोसे दोनों कान मूद लेने पर विना मुखवस्त्रिका बाधे उत्तर देना युक्त नहीं हो सकता । यदि मुख-वस्त्रिका के बाधे विना उत्तर दिया तो वायुकाय आदि जीवोंकी विराधना अवश्य हुई ।

અર્થાત્-"પોટ્ટિલાના ઘરમા સાધ્વીઓ ભિક્ષાને માટે ગઈ તેણે પોતાના પતિને વશ કરવાને માટે એક સાધ્વીને ચૂર્ણયોગ અને મત્રયોગ આદિ ઉપાયો પૂછયા, ત્યારે સાધ્વીએ તત્કાળ બેઉ કાને હાથ મૂકીને કહ્યુ-હે દેવાનુપ્રિયે ! અમે નિર્ગ્રંથ આર્યિકા છીએ તેમજ યાવત્ ગુપ્તબ્રહ્મચારિણી છીએ આવી વાત સાભળવી પણ અમને કલ્પતી નથી તો પછી ઉપદેશ આપવાની તો વાત જ શી ?"

અનુચિત વાત સાભળતી વખતે લોકોમા પણ ઝટપટ હાથથી કાન ઢાકવામા આવે એવુ જોવામા આવે છે એવી હાલતમા બેઉ હાથથી બેઉ કાન ઢાકી લેતા, મુખવસ્ત્રિકા બાધ્યા વિના ઉત્તર આપવો યુક્ત નથી હોતો જો મુખ વસ્ત્રિકા બાધ્યા વિના ઉત્તર આપવામા આવે તો વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધના અવશ્ય થાય

किञ्च-मुखवस्त्रिकाबन्धनमन्तरेण षट्कायविराधना दुष्परिहार्या, तथाहि-मुखे सूक्ष्मसचित्तरजःप्रवेशेन पृथिवीकायस्य, वृष्ट्यादिवशात्सचित्तजलकणानामाकस्मिकनिपातेन धूमिकायाः प्रवेशेन वाऽप्कायस्य, तथा यत्र कुत्रापि स्फुलिङ्गा उत्पतन्ति तत्राऽऽकस्मिकसूक्ष्मस्फुलिङ्गनिपातेन तेजस्कायस्य, मुखस्योष्णश्वासनिःश्वासाभ्यां बाह्यवायुकायस्य, 'जत्थ जल तत्थ वण' इतिप्रामाण्या जलनान्तरीयकतया मुखे सचित्तजलबिन्दुनिपातेनैव वनस्पतिकायस्यापि, तथा सम्पातिम-व्यापि-सूक्ष्म-जीवसम्पातेन त्रसकायस्य विराधना भवतीति।

किञ्च मुखवस्त्रिकाबन्धने प्रमादवतः षट्कायविराधना दुर्वारा, यतः प्रति-

---

मुखवस्त्रिकाके बांधे विना षट्कायकी विराधनाका परिहार नहीं हो सकता। मुखमें सूक्ष्म सचित्त रजका प्रवेश होनेसे पृथ्वीकायकी विराधना होती है। बरसा होने पर सचित्त जलकणोंके अकस्मात् ही मुखमें चले जानेसे अथवा मुखमें धूँअर के चले जाने से अप्कायकी विराधना होती है। इधर-उधर उड़नेवाली अग्निकी चिनगारी कदाचित् मुखमें घुस जाय तो तेजस्कायकी हिंसा होती है। मुखसे निकलती हुई गर्म साससे बाह्य वायुकायकी विराधना होती है। 'जहाँ अप्काय है वहाँ वनस्पतिकाय भी होता है" (जत्थ जल तत्थ वण) इस प्रमाणसे मुखमें सचित्त जल गिरनेसे ही वनस्पति कायकी विराधना होती है। तथा सपातिम, व्यापी और सूक्ष्म जीवोंके घुसनेसे त्रसकायकी भी विराधना होती है।

मुखवस्त्रिकाके बाधनेमें जो साधु प्रमादी होता है उसको षट्कायकी

મુખવસ્ત્રિકા બાધ્યા વિના ષટ્કાયની વિરાધનાનો પરિહાર નથી થઇ શકતો મુખમા સૂક્ષ્મ સચિત્ત રજનો પ્રવેશ થવાથી પૃથ્વીકાયની વિરાધના થાય છે (૧) વરસાદ પડતા સચિત્ત જલકણો અકસ્માત્ મુખમા જવાથી અથવા મોઢામા ઝાકળ જવાથી અપ્કાયની વિરાધના થાય છે (૨) અહી-તહી ઉડતી અગ્નિની ચિણગારી કદાચ મુખમા પેસી જાય તો તેજસ્કાયની હિંસા થાય છે (૩) મુખમાથી નીકળતા ગરમ શ્વાસથી બાહ્ય વાયુકાયની વિરાધના થાય છે (૪) જ્યા અપ્કાય છે ત્યા વનસ્પતિ કાય પણ હોય છે' (जत्थ जल तत्थ वण) એ પ્રમાણથી મુખમા સચિત્ત જલ પડવાથી વનસ્પતિકાયની પણ વિરાધના થાય છે (૫) તથા સપાતિમ, વ્યાપી અને સૂક્ષ્મ જીવો પેસી જવાથી ત્રસકાયની પણ વિરાધના થાય છે (૬)

મુખવસ્ત્રિકા બાધવામા જે સાધુ પ્રમાદી હોય છે તેને ષટ્કાયની વિરાધના

लेखनकालेऽन्यस्मै तत्प्रत्याख्यानदानेऽपि प्रतिलेखनोपयोगाभावेन प्रमाद-दोषाविष्टः सन् षट्कायविराधको भवतीति भगवतोत्तराध्ययनसूत्रे प्रतिपादितम्, तथाहि—

"पडिलेहणं कुणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा।
देइ व पच्चक्खाणं वाएइ सयं पडिच्छइ वा ॥ १ ॥

पुढवी-आउक्काए,तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं।
पडिलेहणापमत्तो, छण्हंपि विराहओ होइ ॥ १ " इति।

तर्हि का वार्ता ये मुखवस्त्रिकाबन्धनमन्तरेण तिष्ठन्ति तेषां प्रमाददोषस्त-ज्जनितषट्कायविराधना नापतेत्? आगमे हि मुखवस्त्रिकाबन्धनपरित्यागे दोष-बाहुल्यं प्रदर्शितं तच्च प्रागेव प्रतिपादितम्।

इत्थं च यथा नौकादौ सूक्ष्मेऽपि सुषिरे सति नद्यादौ तन्निमज्जनान्महती

विराधना अवश्य लगेगी क्योंकि भगवानने उत्तराध्ययनसूत्रमें कहा है कि–"प्रतिलेखन करनेमें जो साधु प्रमादी है तथा प्रतिलेखनके समय साधु परस्पर बातें करे, जनपद आदिकी कथा करे, पच्चक्खाण देवे, बाचे अथवा बचावे तो वह षट्कायका विराधक होता है" तो जो मुखवस्त्रिका बांधे विना रहते हैं उनको प्रमाद-दोष तथा प्रमादजन्य षट्कायकी विराधनाका दोष कैसे नहीं लगेगा? अर्थात् जरूर लगेगा। मुखवस्त्रिकाके नहीं बांधनेमें आगमोंमें जो बहुतसे दोष कहे हैं वे तो पहले प्रतिपादित कर ही चुके हैं।

इस प्रकार जैसे नावमें छोटासा छेद होनेपर नदी आदिमें डूब जानेसे

અવશ્ય થાય છે કેમકે ભગવાને ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રમાં કહ્યું છે કે–" પ્રતિલેખન કરતી વખતે જો સાધુ પરસ્પર વાર્તાલાપ કરે, દેશકથા આદિ કથા કરે, પચ્ચક્ખાણ કરાવે, પોતે વાંચે અને વંચાવે તો તે ષટ્કાયનો વિરાધક થાય છે" જો એમ છે તો જે મુખવસ્ત્રિકા બાંધ્યા વગર રહે છે તેને પ્રમાદદોષ અને પ્રમાદજન્ય ષટ્કાયની વિરાધનાનો દોષ કેમ નહીં લાગે? અર્થાત્ અવશ્ય લાગે. મુખવસ્ત્રિકા નહીં બાંધવામાં આગમોમાં દોષ બતાવ્યા છે તે તો પહેલા કહી ચુકયા છીએ

એ પ્રકારે જેમ નાવમાં નાનું છિદ્ર પડવાથી તે નદી આદિમાં ડૂબી

हानिः, अल्पीयस्या अपि हीरककणिकाया भक्षणे प्राणानामेव नाशः, वृश्चिकस्पेपदंशनेऽपि सकलशरीरव्यथनम् , कण्टकाग्रमात्रे बाणाग्रमात्रे च कचिदङ्गे निखाते सकलाङ्गपीडा, नेत्रेऽणुतरस्यापि रजःकणस्य निपाते नेत्रोपघातः, नासिकाग्रमात्रे स्वल्पेऽपि देहभागे छिन्ने समग्रशरीरशोभोपघातः, स्वल्पेनाऽप्याधाकर्मादिसिक्थेन मिश्रितेऽन्नादौ पूतिकर्मदोषदूषितमाहारजातं भवति, स्वल्पेऽपि जिनवचनसन्देहे सर्वचारित्रनाशो जायते, तथैव स्वल्पेऽपि काले मुखवस्त्रिकाबन्धनोपेक्षया षट्कायविराधनाया सत्या चातुर्मासिकप्रायश्चित्ताधिकारितापत्तिः । तथा चोक्तं निशीथसूत्रे द्वादशोद्देशकेऽष्टमसूत्रादारभ्य द्वादशसूत्रं यावत्—

महान् हानि होती है, छोटीसी हीराकी कनीका भक्षण करनेसे प्राणोंका ही नाश होता है, बिच्छूके थोड़ासा काट खानेसे सारे शरीरमें व्यथा होती है, काटे या तीरकी जरासी नोंक किसी अगमें घुस जाय तो सब अगमें पीडा होने लगती है, आँखमें छोटीसी किरकिरी घुस जानेसे आँखमें तकलीफ होती है, जरासी नाक कट जानेसे सब शरीरकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है। आधाकर्म आदि आहारका एक भी सीथ मिल जानेसे सब आहार पूतिकर्मदोषसे दूषित हो जाता है, जिनवचनोंमें तनिक भी सन्देह करनेसे समस्त चारित्रका नाश हो जाता है, वैसे ही थोडी देर भी मुखवस्त्रिका बाधनेकी उपेक्षा करनेसे षट्कायकी विराधना होती है, अतः चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लगता है। निशीथसूत्रके बारहवें उद्देशके आठवें सूत्रसे बारहवें सूत्रतकमें कहा है–" जे भिक्खू० " इत्यादि,

જવાથી ભારે હાનિ થાય છે, નાની સરખી હીરા કણીનું ભક્ષણ કરવાથી પ્રાણનો નાશ થાય છે, વીંછી જરા કરડવાથી આખા શરીરમા વ્યથા થાય છે, કાંટા યા તીરની નાની સરખી અણી કોઈ અગમા પેસી જવાથી આખા અગમા પીડા થવા લાગે છે, આખમા નાનું સરખુ કણુ પેસી જવાથી આખમા તકલીફ થાય છે, નાનું સરખુ નાક કપાઈ જવાથી આખા શરીરની સુદરતા નષ્ટ થઈ જાય છે, આધાકર્મ આદિ આહારનું એક પણ કણુ મળી જવાથી બધો આહાર પૂતિકર્મ દોષથી દૂષિત થઈ જાય છે જિનવચનોમા લગાર પણ સદેહ કરવાથી સમસ્ત ચારિત્રનો નાશ થઇ જાય છે, તેમ થોડો વખત પણ મુખવસ્ત્રિકા બાધવાની ઉપેક્ષા કરવાથી ષટ્કાયની વિરાધના થાય છે તેથી ચાતુર્માસિક પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે, નિશીથસૂત્રના બારમા ઉદ્દેશના આઠમા સૂત્રથી બારમા સૂત્ર સુધીમા કહ્યુ છે કે 'जे भिक्खू०' ઇત્યાદિ,

"जे भिक्खू० पुढवीकायस्स कलमायमवि समारभइ, समारभंत वा साइज्जइ। एवं जाव वणस्सइकायस्स आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं"

पुनरपि निशीथभाष्ये संयमघातद्वारे महिकाद्यप्काययतनार्थं प्रोक्तम्—

"वासत्ताणावरिया णिक्कारणे ठंति, कज्जे जतणाए।
हत्थऽच्छिंगुलिसण्णा, पोत्ततरिया व भासंति ॥१॥ इति।
(नि. भाष्य उ. १९ गा. ५७)

छाया—' वर्षात्राणावृता निष्कारणे तिष्ठन्ति, कार्ये यतनया।
हस्ताक्ष्यङ्गुलीसञ्ज्ञा, पोतान्त एव भाषन्ते ॥१॥' इति।

चूर्णिकारेण "पोत्ततरिया व भासंति" इति पदस्य चूर्णौ हस्तभ्रुवादिसङ्केतेन यदि साधवो नावगच्छन्ति तदाऽवश्यवक्तव्ये सति "मुहपोत्तियअंतरिया जयणाए भासंति" इति प्रतिपादितम्।

अनेन स्पष्टं सिध्यति–यत् मुखवस्त्रिका साधूना मुखे पूर्वं बद्धाऽऽसीदिति, तेनैव कारणेन 'मुखपोतान्त एव यतनया मन्द–मन्दं भाषन्ते' इत्युक्तम्।

फिरभी निशीथ सूत्रके भाष्यमें संयमघात नामक द्वारके अन्दर धूँअर आदि अप्कायकी यतनाके लिए कहा है 'वासत्ताणा०' इत्यादि,

इस गाथामें आये हुए 'पोत्ततरिया व भासंति' इस पदकी चूर्णि करते समय चूर्णिकारने कहा है–अगर साधु हाथ आँख आदिके इशारेसे नहीं समझ सके और बोलना ही जरूरी समझे तो 'मुखवस्त्रिकाके अंदर ही यतनासे (धीरे–धीरे) बोले' इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि साधुओंके मुख पर मुखवस्त्रिका पहले बांधी हुई थी, इसी कारणको लेकर ही 'मुखवस्त्रिकाके अंदर ही यतनासे (धीरे धीरे) बोले' ऐसा कहा है।

વળી નિશીથસૂત્રના ભાષ્યમાં 'સંયમઘાત' નામના દ્વારમાં ઝાકળ આદિ અપ્કાયની યતના કહતી વખતે કહ્યું છે કે 'वासत्ताणा०' ઇત્યાદિ,

આથી સ્પષ્ટ સિદ્ધ થાય છે કે સાધુઓના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધેલી હતી આ કારણને લીધે જ 'पोत्ततरिया व भासंति' આ પદની ચૂર્ણિ કરતા ચૂર્ણિકારે કહ્યું છે કે– "સાધુ ઇશારાથી ન સમજે અને બોલવું જ પડે તો મુખ વસ્ત્રિકાની અંદર જ યતનાથી બોલે"

हानिः, अल्पीयस्या अपि हीरककणिकाया भक्षणे प्राणानामेव नाशः, वृश्चिकस्य पद्दशनेऽपि सकलशरीरव्यथनम्, कण्टकाग्रमात्रे बाणाग्रमात्रे च कचिदङ्गे निखाते सकलाङ्गपीडा, नेत्रेऽणुतरस्यापि रजःकणस्य निपाते नेत्रोपघातः, नासिकाग्रमात्रे स्वल्पेऽपि देहभागे छिन्ने समग्रशरीरशोभोपघातः, स्वल्पेनाऽप्याधाकर्मादिसिक्थेन मिश्रितेऽन्नादौ पूतिकर्मदोपदूपितमाहारजातं भवति, स्वल्पेऽपि जिनवचनसन्देहे सर्वचारित्रनाशो जायते, तथैव स्वल्पेऽपि काले मुखवस्त्रिकाबन्धनोपेक्षया षट्कायविराधनायां सत्यां चातुर्मासिकप्रायश्चित्ताधिकारितापत्तिः। तथा चोक्तं निशीथसूत्रे द्वादशोद्देशकेऽष्टमसूत्रादारभ्य द्वादशसूत्रं यावत्—

महान् हानि होती है, छोटीसी हीराकी कनीका भक्षण करनेसे प्राणोंका ही नाश होता है, बिच्छूके थोड़ासा काट खानेसे सारे शरीरमें व्यथा होती है, कांटे या तीरकी जरासी नोंक किसी अंगमें घुस जाय तो सब अंगमें पीडा होने लगती है, आँखमें छोटीसी किरकिरी घुस जानेसे आँखमें तकलीफ होती है, जरासी नाक कट जानेसे सब शरीरकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है। आधाकर्म आदि आहारका एक भी सीथ मिल जानेसे सब आहार पूतिकर्मदोपसे दूपित हो जाता है, जिनवचनोंमें तनिक भी सन्देह करनेसे समस्त चारित्रका नाश हो जाता है, वैसे ही थोड़ी देर भी मुखवस्त्रिका बांधनेकी उपेक्षा करनेसे पट्कायकी विराधना होती है, अतः चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लगता है। निशीथसूत्रके बारहवें उद्देशके आठवें सूत्रसे बारहवें सूत्रतकमें कहा है—" जे भिक्खू० " इत्यादि,

જવાથી ભારે હાનિ થાય છે, નાની સરખી હીરા કણીનું ભક્ષણ કરવાથી પ્રાણનો નાશ થાય છે, વીંછી જરા કરડવાથી આખા શરીરમા વ્યથા થાય છે, કાટા યા તીરની નાની સરખી અણી કોઈ અગમા પેસી જવાથી આખા અગમા પીડા થવા લાગે છે, આખમા નાનું સરખુ કણુ પેસી જવાથી આખમા તકલીફ થાય છે, નાનું સરખુ નાક કપાઈ જવાથી આખા શરીરની સુદરતા નષ્ટ થઈ જાય છે, આધાકર્મ આદિ આહારનું એક પણ કણ મળી જવાથી બધો આહાર પૂતિકર્મ દોષથી દૂષિત થઈ જાય છે જિનવચનોમા લગાર પણ સદેહ કરવાથી સમસ્ત ચારિત્રનો નાશ થઇ જાય છે, તેમ થોડો વખત પણ મુખવસ્ત્રિકા બાધવાની ઉપેક્ષા કરવાથી ષટ્કાયની વિરાધના થાય છે તેથી ચાતુર્માસિક પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે, નિશીથસૂત્રના બારમા ઉદ્દેશના આઠમા સૂત્રથી બારમા સૂત્ર સુધીમા કહ્યુ છે કે 'जे भिक्खू०' ઇત્યાદિ,

वेति भावः। तस्मात्-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धन सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम्। एव च भगवतीसूत्रे 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' इति वाक्यस्य सूक्ष्मकाय=मुखवस्त्रिकाम् 'अणिज्जूहित्ता'=अपोह्य परित्यज्य=अबद्ध्वेत्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽप्यूहनीयम्।

यत्तु-आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वासादिकाले मुखपिधानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया घ्राणमुखादिपिधान विधेयमिति च प्रतीयते, दोरकावलम्बेन मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिधानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तदज्ञानमूलम्। आचाराङ्ग-

आज्ञाभगमे गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना सब जैनशास्त्रोंमे प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार भगवती सूत्रके 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिकाका त्याग करके अर्थात् न बाध करके।' ऐसा सब जगह समझना चाहिए।

प्रश्न-आचाराङ्गसूत्रमे उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है। इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमें ही रखनी चाहिए डोरेसे नहीं बाँधनी चाहिए, अमुक-अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए। डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुनः मुख ढकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा।

ભગમા ગુરુતર પ્રાયશ્ચિત્ત આવે છે એ રીતે સિદ્ધ થયુ કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવી એવુ બધા જૈનશાસ્ત્રોમા પ્રતિપાદન કરેલુ છે એટલા માટે ભગવતી-સૂત્રના 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' એ વાક્યનો અર્થ એમ સમજવો જોઈએ કે 'મુખવસ્ત્રિકાનો ત્યાગ કરીને અર્થાત્ ન બાધીને' એજ પ્રમાણે બધી જગ્યાએ સમજવુ

પ્રશ્ન-આચારાગ-સૂત્રમા ઉચ્છ્વાસ આદિ લેતી વખતે મુખ ઢાકવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે એવી એમ પ્રતીત થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા હાથમા જ રાખવી જોઈએ, દોરાથી બાધવી જોઈએ નહિ અમુક અમુક સમયે જ જ્યારે ઉચ્છ્વાસ આદિ આવે ત્યારે જ નાક યા મુખ ઢાકી લેવુ જોઈએ, દોરાથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવી ઉચિત હોય તો પછી પુન મુખ ઢાકવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ થઇ જશે

किञ्च विधिप्रपाग्रन्थे चारित्रातिचारप्रायश्चित्ताधिकारे मुखवस्त्रिकामन्तरेण भाषणनिषेधः प्रतिपादितः ।

किञ्च पूर्वोक्तदिशा षट्कायविराधकस्य तद्विराधनावर्जनपरकभगवदाज्ञाभङ्गदोषप्रसङ्गः ।

तथा च सति अविधिविधानं, ततो मिथ्यात्वं, तस्माच्चारित्रविराधना, ततश्च दीर्घसंसारित्वं प्रपद्येत, अत एवाऽऽज्ञाभङ्गकर्तुर्गुरुतरप्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् ।

उक्तं हि बृहत्कल्पभाष्ये—

" अवराहे लहुगयरो, आणाभंगंमि गुरुतरो किण्णु ? ।
आणाए चिय चरणं, तब्भंगे किं न भग्गं तु ? ॥१॥" इति ।

सर्वमेव चारित्रं भगवदाज्ञायामेव व्यवस्थितम्, अतस्तद्भङ्गे मूलोत्तरगुणादिकं वस्तु किं न भग्नम् ? अपि तु सर्वमपि भग्नमिति हेतोस्तत्र गुरुतरप्रायश्चित्तं युक्तमे-

फिर 'विधिप्रपा' नामके ग्रन्थमें भी चारित्रके अतिचारोंका प्रायश्चित्त करते समय मुखवस्त्रिकाके विना बोलनेका स्पष्ट निषेध किया गया है ।

तथा-पूर्वोक्त रीतिसे षट्कायकी विराधना करनेवालेको भगवान्की "षट्कायकी विराधनाका त्याग करना" इस आज्ञाके भंग करनेका दोष लगता है । यह दोष लगनेसे अविधिका विधान, अविधिका विधान करनेसे मिथ्यात्व, मिथ्यात्वसे चारित्रकी विराधना और चारित्रकी विराधनासे दीर्घसंसारित्वकी प्राप्ति होती है । इसीसे आज्ञाभंगका गुरुतर प्रायश्चित्त लगता है ।

बृहत्कल्पभाष्यमें कहा है—"अवराहे" इत्यादि,

समस्त चारित्र भगवान्की आज्ञामें ही है । भगवान्की आज्ञाका भंग होने पर मूलगुण उत्तरगुण आदि सभी नष्ट हो जाते हैं । अत

વળી 'વિધિપ્રપા' નામના ગ્રન્થમાં પણ ચારિત્રના અતિચારોની શુદ્ધિના પ્રકરણમાં મુખવસ્ત્રિકા વગર બોલવાનો નિષેધ કર્યો છે ।

તથા-પૂર્વોક્ત રીતિથી ષટ્કાયની વિરાધના કરનારને ભગવાનની "ષટ્કાયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો" આ આજ્ઞાનો ભંગ કરવાનો દોષ લાગે છે. આ દોષ લાગવાથી અવિધિનું વિધાન, અવિધિ-વિધાનથી મિથ્યાત્વ, મિથ્યાત્વથી ચારિત્રની વિરાધના અને ચારિત્રની વિરાધનાથી દીર્ઘસંસારિત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે એથી આજ્ઞાભંગનું ગુરુતર પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે

બૃહત્કલ્પભાષ્યમાં કહ્યું છે- 'અવરાહે' ઇત્યાદિ

સમસ્ત ચારિત્ર ભગવાનની આજ્ઞામાં જ રહેલું છે. ભગવાનની આજ્ઞાનો ભંગ થવાથી મૂળગુણ ઉત્તરગુણ આદિ બધું નષ્ટ થઈ જાય છે તેથી આજ્ઞા

वेति भावः। तस्मात्-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धन सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम्। एव च भगवतीसूत्रे 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' इति वाक्यस्य सूक्ष्मकाय=मुखवस्त्रिकाम् 'अणिज्जूहित्ता'=अपोह्य परित्यज्य=अबद्ध्वेत्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽप्यूहनीयम्।

यत्तु-आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वासादिकाले मुखपिधानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया घ्राणमुखादिपिधान विधेयमिति च प्रतीयते, दोरकावलम्बेन मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिधानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तदज्ञानमूलम्। आचाराङ्ग-

आज्ञाभगमे गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना सब जैनशास्त्रोंमे प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार भगवती सूत्रके 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिकाका त्याग करके अर्थात् न बाध करके।' ऐसा सब जगह समझना चाहिए।

प्रश्न-आचाराङ्गसूत्रमे उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है। इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमे ही रखनी चाहिए डोरेसे नही बॉधनी चाहिए, अमुक-अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए। डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुन' मुख ढकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा।

ભગમા ગુરુતર પ્રાયશ્ચિત્ત આવે છે એ રીતે સિદ્ધ થયુ કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવી એવું બધા જૈનશાસ્ત્રોમા પ્રતિપાદન કરેલુ છે એટલા માટે ભગવતી સૂત્રના 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' એ વાક્યનો અર્થ એમ સમજવો જોઈએ કે 'મુખવસ્ત્રિકાનો ત્યાગ કરીને અર્થાત્ ન બાધીને' એજ પ્રમાણે બધી જગ્યાએ સમજવુ

પ્રશ્ન-આચારાગ-સૂત્રમા ઉચ્છ્વાસ આદિ લેતી વખતે મુખ ઢાકવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે એવી એમ પ્રતીત થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા હાથમાજ રાખવી જોઈએ, દોરાથી બાધવી જોઈએ નહિ અમુક અમુક સમયેજ જ્યારે ઉચ્છ્વાસ આદિ આવે ત્યારેજ નાક યા મુખ ઢાકી લેવુ જોઈએ, દોરાથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવી ઉચિત હોય તો પછી પુન મુખ ઢાકવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ થઈ જશે

किञ्च विधिप्रपाग्रन्थे चारित्रातिचारप्रायश्चित्ताधिकारे मुखवस्त्रिकामन्तरेण भाषणनिषेधः प्रतिपादितः ।

किञ्च पूर्वोक्तदिशा षट्कायविराधकस्य तद्विराधनावर्जनपरकभगवदाज्ञाभङ्ग-दोषप्रसङ्गः ।

तथा च सति अविधिविधानं, ततो मिथ्यात्वं, तस्माच्चारित्रविराधना, ततश्च दीर्घसंसारित्वं प्रपद्येत, अत एवाऽऽज्ञाभङ्गकर्तुर्गुरुतरप्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् ।

उक्तं हि बृहत्कल्पभाष्ये—

" अवराहे लहुगयरो, आणाभंगंमि गुरुतरो किण्णु ? ।
आणाए च्चिय चरणं, तब्भंगे किं न भग्गं तु ? ॥१॥" इति।

सर्वमेव चारित्रं भगवदाज्ञायामेव व्यवस्थितम् , अतस्तद्भङ्गे मूलोत्तरगुणादिकं वस्तु किं न भग्नम् ? अपि तु सर्वमपि भग्नमिति हेतोस्तत्र गुरुतरप्रायश्चित्तं मुक्तमे

फिर ' विधिप्रपा ' नामके ग्रन्थमें भी चारित्रके अतिचारोंका प्रायश्चित्त कहते समय मुखवस्त्रिकाके विना बोलनेका स्पष्ट निषेध किया गया है ।

तथा–पूर्वोक्त रीतिसे षट्कायकी विराधना करनेवालेको भगवान्‌की "षट्कायकी विराधनाका त्याग करना" इस आज्ञाके भंग करनेका दोष लगता है । यह दोष लगनेसे अविधिका विधान, अविधिका विधान करनेसे मिथ्यात्व, मिथ्यात्वसे चारित्रकी विराधना और चारित्रकी विराधनासे दीर्घसंसारित्वकी प्राप्ति होती है । इसीसे आज्ञाभंगका गुरुतर प्रायश्चित्त लगता है ।

बृहत्कल्पभाष्यमें कहा है–"अवराहे" इत्यादि,

समस्त चारित्र भगवान्‌की आज्ञामें ही है । भगवान्‌की आज्ञाका भंग होने पर मूलगुण उत्तरगुण आदि सभी नष्ट हो जाते हैं । अतः

વળી ' વિધિપ્રપા ' નામના ગ્રન્થમાં પણ ચારિત્રના અતિચારોની શુદ્ધિના પ્રકરણમાં મુખવસ્ત્રિકા વગર બોલવાનો નિષેધ કર્યો છે ।

તથા–પૂર્વોક્ત રીતિથી ષટ્કાયની વિરાધના કરનારને ભગવાનની " ષટ્કાયની વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો " આ આજ્ઞાનો ભંગ કરવાનો દોષ લાગે છે આ દોષ લાગવાથી અવિધિનું વિધાન, અવિધિ–વિધાનથી મિથ્યાત્વ, મિથ્યાત્વથી ચારિત્રની વિરાધના અને ચારિત્રની વિરાધનાથી દીર્ઘસંસારિત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે એથી આજ્ઞાભંગનું ગુરુતર પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે

બૃહત્કલ્પભાષ્યમાં કહ્યું છે– 'અવરાહે' ઈત્યાદિ

સમસ્ત ચારિત્ર ભગવાનની આજ્ઞામાં જ રહેલું છે ભગવાનની આજ્ઞાનો ભંગ થવાથી મૂળગુણ ઉત્તરગુણ આદિ બધું નષ્ટ થઈ જાય છે તેથી આજ્ઞા

वेति भावः। तस्मात्-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धन सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम्। एवं च भगवतीसूत्रे 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' इति वाक्यस्य सूक्ष्मकाय=मुखवस्त्रिकाम् 'अणिज्जूहित्ता'=अपोह्य परित्यज्य=अबद्ध्वेत्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽप्यूहनीयम्।

यत्तु-आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वासादिकाले मुखपिधानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया घ्राणमुखादिपिधान विधेयमिति च प्रतीयते, दोरकावलम्बेन मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिधानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तदज्ञानमूलम्। आचाराङ्ग-

---

आज्ञाभगमे गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना सब जैनशास्त्रोंमे प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार भगवती सूत्रके 'सुहुमकाय अणिजूहित्ताण' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिकाका त्याग करके अर्थात् न बाध करके।' ऐसा सब जगह समझना चाहिए।

प्रश्न-आचाराङ्गसूत्रमे उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है। इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमे ही रखनी चाहिए डोरेसे नही बाँधनी चाहिए, अमुक-अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए। डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुन' मुख ढकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा।

ભગમા ગુરુતર પ્રાયશ્ચિત્ત આવે છે એ રીતે સિદ્ધ થયુ કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવી એવું બધા જૈનશાસ્ત્રોમા પ્રતિપાદન કરેલુ છે એટલા માટે ભગવતી-સૂત્રના 'સુહુમકાય અણિજ્જૂહિત્તાણ' એ વાક્યનો અર્થ એમ સમજવો જોઈએ કે 'મુખવસ્ત્રિકાનો ત્યાગ કરીને અર્થાત્ ન બાધીને' એજ પ્રમાણે બધી જગ્યાએ સમજવુ

પ્રશ્ન-આચારાગ-સૂત્રમા ઉચ્છ્વાસ આદિ લેતી વખતે મુખ ઢાકવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે એવી એમ પ્રતીત થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા હાથમા જ રાખવી જોઈએ, દોરાથી બાધવી જોઈએ નહિ અમુક અમુક સમયે જ જ્યારે ઉચ્છ્વાસ આદિ આવે ત્યારે જ નાક યા મુખ ઢાકી લેવુ જોઈએ, દોરાથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવી ઉચિત હોય તો પછી પુન મુખ ઢાકવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ થઈ જશે

किञ्च विधिप्रपाग्रन्थे चारित्रातिचारप्रायश्चित्ताधिकारे मुखवस्त्रिकामन्तरेण भाषणनिषेधः प्रतिपादितः ।

किञ्च पूर्वोक्तदिशा षट्कायविराधकस्य तद्विराधनावर्जनपरकभगवदाज्ञाभङ्ग-दोषप्रसङ्गः ।

तथा च सति अविधिविधानं, ततो मिथ्यात्वं, तस्माच्चारित्रविराधना, ततश्च दीर्घसंसारित्वं प्रपद्येत, अत एवाऽऽज्ञाभङ्गकर्तुर्गुरुतरप्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् ।

उक्तं हि बृहत्कल्पभाष्ये—

" अवराहे लहुगयरो, आणाभंगंमि गुरुतरो किण्णु ? ।
आणाए चिय चरणं, तब्भंगे किं न भग्गं तु ? ॥१॥" इति।

सर्वमेव चारित्रं भगवदाज्ञायामेव व्यवस्थितम् , अतस्तद्भङ्गे मूलोत्तरगुणादिकं वस्तु किं न भग्नम् ? अपि तु सर्वमपि भग्नमिति हेतोस्तत्र गुरुतरप्रायश्चित्तं युक्तम्

फिर ' विधिप्रपा ' नामके ग्रन्थमें भी चारित्रके अतिचारोंका प्रायश्चित्त करते समय मुखवस्त्रिकाके विना बोलनेका स्पष्ट निषेध किया गया है ।

तथा-पूर्वोक्त रीतिसे षट्कायकी विराधना करनेवालेको भगवान्की "षट्कायकी विराधनाका त्याग करना" इस आज्ञाके भंग करनेका दोष लगता है । यह दोष लगनेसे अविधिका विधान, अविधिका विधान करनेसे मिथ्यात्व, मिथ्यात्वसे चारित्रकी विराधना और चारित्रकी विराधनासे दीर्घसंसारित्वकी प्राप्ति होती है । इसीसे आज्ञाभंगका गुरुतर प्रायश्चित्त लगता है ।

बृहत्कल्पभाष्यमें कहा है-"अवराहे" इत्यादि,

समस्त चारित्र भगवान्की आज्ञामें ही है । भगवान्की आज्ञाका भंग होने पर मूलगुण उत्तरगुण आदि सभी नष्ट हो जाते हैं । अतः

वली 'विधिप्रपा' नामना ग्रन्थमा पण चारित्रना अतिचारोनी शुद्धिना प्रकरणमा मुखवस्त्रिका वगर बोलवानो निषेध कर्यु छे।

तथा-पूर्वोक्त रीतिथी षट्कायनी विराधना करनारने भगवाननी "षट्कायनी विराधनानो त्याग करवो" आ आज्ञानो भंग करवानो दोष लागे छे आ दोष लागवाथी अविधिनुं विधान, अविधि-विधानथी मिथ्यात्व, मिथ्यात्वथी चारित्रनी विराधना अने चारित्रनी विराधनाथी दीर्घसंसारित्वनी प्राप्ति थाय छे एथी आज्ञाभंगनु गुरुतर प्रायश्चित्त लागे छे

बृहत्कल्पभाष्यमा कह्युं छे- 'अवराहे' ईत्यादि

समस्त चारित्र भगवाननी आज्ञामां ज रहेलुं छे भगवाननी आज्ञानो भंग थवाथी मूळगुण उत्तरगुण आदि बधुं नष्ट थई जाय छे तेथी आज्ञा

वेति भावः। तस्मात्-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाबन्धनं सकलजैनागमप्रतिपाद्यमिति सिद्धम्। एवं च भगवतीसूत्रे 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' इति वाक्यस्य सूक्ष्मकाय=मुखवस्त्रिकाम् 'अणिज्जूहित्ता'=अपोह्य परित्यज्य=अबद्ध्वेत्यर्थो बोध्यः, एवमन्यत्राऽप्यूहनीयम्।

यत्तु-आचाराङ्गसूत्रे उच्छ्वासादिकाले मुखपिधानोपदेशेन मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया न तु दोरकेणेति तत्तत्समये एव मुखवस्त्रिकया घ्राणमुखादिपिधानं विधेयमिति च प्रतीयते, दोरकावलम्बनेन मुखवस्त्रिकायाः सदा धारणीयत्वे तु पुनर्मुखपिधानोपदेशो व्यर्थः स्यादिति वदन्ति तदज्ञानमूलम्। आचाराङ्ग-

आज्ञाभंगमें गुरुतर प्रायश्चित्त देना युक्त ही है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना सब जैनशास्त्रोंमें प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार भगवती सूत्रके 'सुहुमकाय अणिज्जूहित्ताण' वाक्यका अर्थ यह समझना चाहिये कि 'मुखवस्त्रिकाका त्याग करके अर्थात् न बाँध करके।' ऐसा सब जगह समझना चाहिए।

प्रश्न-आचाराङ्गसूत्रमें उच्छ्वास आदि लेते समय मुख ढँकने का उपदेश दिया है। इससे यह प्रतीत होता है कि मुखवस्त्रिका हाथमें ही रखनी चाहिए डोरेसे नहीं बाँधनी चाहिए, अमुक-अमुक समय पर ही जब उच्छ्वास आदि आवे तब ही नाक या मुख ढँक लेना चाहिए। डोरेसे मुखवस्त्रिका धारण करना उचित हो तो पुनः मुख ढकनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा।

ભંગમાં ગુરુતર પ્રાયશ્ચિત્ત આવે છે એ રીતે સિદ્ધ થયું કે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવી એવું બધા જૈનશાસ્ત્રોમાં પ્રતિપાદન કરેલું છે એટલા માટે ભગવતી સૂત્રના 'સુહુમકાય અણિજ્જૂહિત્તાણ' એ વાક્યનો અર્થ એમ સમજવો જોઈએ કે 'મુખવસ્ત્રિકાનો ત્યાગ કરીને અર્થાત્ ન બાધીને' એજ પ્રમાણે બધી જગ્યાએ સમજવું

પ્રશ્ન-આચારાગ-સૂત્રમાં ઉચ્છ્વાસ આદિ લેતી વખતે મુખ ઢાકવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે એવી એમ પ્રતીત થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા હાથમાં જ રાખવી જોઈએ, દોરાથી બાધવી જોઈએ નહિ અમુક અમુક સમયે જ જ્યારે ઉચ્છ્વાસ આદિ આવે ત્યારે જ નાક યા મુખ ઢાકી લેવું જોઈએ, દોરાથી મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવી ઉચિત હોય તો પછી પુન મુખ ઢાકવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ થઈ જશે

किञ्च विधिप्रपाग्रन्थे चारित्रातिचारप्रायश्चित्ताधिकारे मुखवस्त्रिकामन्तरेण भाषणनिषेधः प्रतिपादितः।

किञ्च पूर्वोक्तदिशा षट्कायविराधकस्य तद्विराधनावर्जनपरकभगवदाज्ञाभङ्ग-दोषप्रसङ्गः।

तथा च सति अविधिविधान, ततो मिथ्यात्व, तस्माच्चारित्रविराधना, ततश्च दीर्घसंसारित्व प्रपद्येत, अत एवाऽऽज्ञाभङ्गरूपं गुरुतरप्रायश्चित्त प्रदर्शितम्।

उक्त हि बृहत्कल्पभाष्ये—

" अवराहे लहुगयरो, आणाभगंमि गुरुतरो किण्णु ?।
आणाए च्चिय चरण, तब्भंगे किं न भग्ग तु ? ॥१॥" इति।

सर्वमेव चारित्र भगवदाज्ञायामेव व्यवस्थितम्, अतस्तद्भङ्गे मूलोत्तरगुणा-वस्तु किं न भग्नम्? अपि तु सर्वमपि भग्नमिति हेतोस्तत्र गुरुतरप्रायश्चित्त

फिर 'विधिप्रपा' नामके ग्रन्थमें भी चारित्रके अति-प्रायश्चित्त करते समय मुखवस्त्रिकाके विना बोलनेका स्पष्ट नि-गया है।

तथा-पूर्वोक्त रीतिसे षट्कायकी विराधना करनेवालेको "षट्कायकी विराधनाका त्याग करना" इस आज्ञाके भंग लगता है। यह दोष लगनेसे अविधिका विधान, अवि-करनेसे मिथ्यात्व, मिथ्यात्वसे चारित्रकी विराधना और धनासे दीर्घसंसारित्वकी प्राप्ति होती है। इसीसे आ-प्रायश्चित्त लगता है।

बृहत्कल्पभाष्यमे कहा है-"अवराहे" इत्यादि
समस्त चारित्र भगवान्‌की आज्ञामें ही है।
भग होने पर मूलगुण उत्तरगुण आदि सभी

વળી 'વિધિપ્રપા' નામના ગ્રન્થમા પણ
પ્રકરણમા મુખવસ્ત્રિકા વગર બોલવાનો નિષેધ કર્યો

તથા-પૂર્વોક્ત રીતિથી ષટ્કાયની વિરા
વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો" આ આજ્ઞાનો ભ
વાથી અવિધિનું વિધાન, અવિધિ-વિધાનથી
અને ચારિત્રની વિરાધનાથી દીર્ઘસંસા
ગુરૂતર પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે

બૃહત્કલ્પભાષ્યમા કહ્યુ છે- '
સમસ્ત ચારિત્ર ભગવાનની આ
ભગ થવાથી મૂળગુણ ઉત્તરગુણ આદિ

सादियतनाया अनुपपत्तेः ।

अनेन सूत्रेण 'उच्छ्वासादिकाले आस्यकपोपकपरिपिधान पाणिना विधेय' मिति वोधयतो भगवतस्तात्पर्यं मुखवस्त्रिकया पिधाने कल्पयन्तः पण्डिताभिमानिन एवमनुयोक्तव्याः—'पाणि' शब्दस्य मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थः किं वाच्यो लक्ष्यो व्यङ्ग्यो वा ? । नाद्यः, अभिधाशक्तिग्राहकव्याकरणकोशादिभिरुक्तार्थालाभात्, 'पञ्चशाखः शयः पाणि'-रित्यमरकोशव्याख्याया पञ्च शाखा इवाङ्गुलयोऽस्येति पञ्चशाखः, शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शयः, ('पुंसि' ३।३।१२१।) घः'। पणाय-

मुख ढँक लेनेपर भी नाकसे निकलनेवाले उच्छ्वास आदिकी यतना नहीं हो सकती।

इस सूत्रसे 'उच्छ्वास लेते समय आस्यक और पोपक (मलद्वार)को हाथसे ढँक लेना चाहिए,' ऐसा भगवान् बताते हैं, फिरभी नामधारी पंडित 'मुखवस्त्रिकासे ढँकना चाहिए' ऐसा अर्थ निकालते हैं। उनसे हम पूछते हैं कि तुम हाथका अर्थ मुखवस्त्रिका करते हो सो वह अर्थ वाच्य है, या लक्ष्य है या व्यङ्ग्य है ?। पहला पक्ष तो ठीक नहीं है, क्योंकि अभिधा शक्तिके ग्राहक व्याकरण कोश आदिकोंमें यह अर्थ नहीं मिलता। अमरकोशमें हाथके तीन नाम दिये हैं-(१) पञ्चशाख (२) शय और (३) पाणि। व्याख्यामें बताया है कि शाखा जैसी पाँच अंगुलियाँ होती हैं इसलिए इसे पञ्चशाख कहते हैं। उसमें सब वस्तुएँ सोती (रखी जाती) हैं इसलिए शय कहते हैं। उससे सब लेनदेन

લેવા છતા પણ નાકથી નીકળનાર ઉચ્છ્વાસ આદિની યતના થઇ શકતી નથી

આ સૂત્રથી ઉચ્છ્વાસ લેતી વખતે આસ્યક અને પોષક (મલદ્વાર) ને હાથથી ઢાકી લેવુ જોઇએ એમ ભગવાન્ બતાવે છે, છતા પણ નામધારી પડિત 'મુખવસ્ત્રિકાથી ઢાકવુ જોઈએ' એવો અર્થ કાઢે છે એમને અમે પૂછીએ છીએ કે તમે હાથનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરો છો, તો એ અર્થ વાચ્ય છે, યા લક્ષ્ય છે કે વ્યગ્ય છે? પહેલો પક્ષ તો બરાબર નથી કારણ કે અભિધા શક્તિના ગ્રાહક વ્યાકરણ કોશ આદિમા એ અર્થ નથી મળતો અમરકોશમા હાથના ત્રણ નામ આપ્યા છે (૧) પચશાખ, (૨) શય અને (૩) પાણિ વ્યાખ્યામા બતાવ્યુ છે કે શાખા જેવી પાચ આગળીઓ હોય છે તેથી તેને 'પચશાખ' કહે છે એમા બધી વસ્તુઓ સૂએ (રાખવામા આવે) છે તેથી તેને 'શય'

सूत्रपाठो हि तावदेव विद्यते—

"से भिक्खू वा २ उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वायनिसग्गं वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता तओ संजयामेव ऊससिज्ज वा जाव वायनिसग्गं वा करेज्जा" (सूत्र १०९) इति।

छाया—"स भिक्षुर्वा२ उच्छ्वसन् वा, निःश्वसन् वा, कासमानः (कासं कुर्वन्) वा, क्षुवन् (क्षुतं कुर्वन्) वा, जृम्भमाणो वा, उद्गिरन् वा, ((अधिष्ठानेन) वातनिसर्गं वा कुर्वन् पूर्वमेव आस्यकं वा पोपकं वा पाणिना परिपिधाय ततः संयत एव उच्छ्वसेद् वा यावद् वातनिसर्गं वा कुर्यात्." इति संस्कृतम्।

अत्र "आसयं" इति लक्षणावृत्त्या घ्राणस्यापि बोधकम्, "उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा छीयमाणे वा" इति पदानि लक्षणाया तात्पर्यग्राहकाणि। 'आसयं' इत्यस्य मुखमात्रपरत्वे तु पाणिना तत्परिविधानेऽपि घ्राणजन्योच्छ्वा-

---

उत्तर—ऐसा प्रश्न करना अज्ञानता है। आचाराङ्ग सूत्रका पाठ ऐसा है—

"भिक्षु श्वासोच्छ्वास लेते समय, खांसते समय, छींकते समय, जभाते समय, डकारते समय तथा अधोवायुका त्याग करते समय, पहले मुख अथवा मलद्वारको हाथसे ढँककर फिर यतनापूर्वक श्वास लेवे यावत् अधोवायुका त्याग करे"।

यहाँ 'आसयं' (मुख) पद लक्षणाके द्वारा घ्राणकाभी बोधक है। 'उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा छीयमाणे वा' ये पद लक्षणामें तात्पर्यके ग्राही हैं। 'आसयं' पदसे केवल मुखका अर्थ लिया जाय तो हाथसे

ઉત્તર—એવો પ્રશ્ન કરવો અજ્ઞાનતા છે આચારાંગ-સૂત્રનો પાઠ એવો છે— "ભિક્ષુ શ્વાસોચ્છ્વાસ લેતી વખતે, ઉધરસ ખાતી વખતે, છીંકતી વખતે, બગાસું ખાતી વખતે, ઓડકાર ખાતી વખતે તથા અધોવાયુનો ત્યાગ કરતી વખતે, પહેલાં મુખ અથવા મળદ્વારને હાથથી ઢાંકીને પછી યતનાપૂર્વક શ્વાસ લે યાવત્ અધોવાયુનો ત્યાગ કરે"

અહીં 'आसयं' (મુખ) શબ્દ લક્ષણાદ્વારા ઘ્રાણનો પણ બોધક છે 'उस्सासमाणे वा निस्सासमाणे वा छीयमाणे वा' એ પદો લક્ષણામાં તાત્પર્યના ગ્રાહી છે आसयं શબ્દથી કેવળ મુખનો અર્થ લેવામાં આવે તો હાથથી મુખ ઢાંકી

सादियतनाया अनुपपत्तेः ।

अनेन सूत्रेण 'उच्छ्वासादिकाले आस्यकपोपकपरिपिधान पाणिना विधेय' मिति बोधयतो भगवतस्तात्पर्यं मुखवस्त्रिकया पिधाने कल्पयन्तः पण्डिताभिमानिन एवमनुयोक्तव्याः–'पाणि' शब्दस्य मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थः किं वाच्यो लक्ष्यो व्यङ्ग्यो वा ? । नाद्यः, अभिधाशक्तिग्राहकव्याकरणकोशादिभिरुक्तार्थालाभात्, 'पञ्चशाखः शयः पाणि'–रित्यमरकोशव्याख्याया पञ्च शाखा इवाङ्गुलयोऽस्येति पञ्चशाखः, शेतेऽस्मिन् सर्वमिति शयः, ('पुंसि' ३।३।१२१।) घः'। पणाय-

मुख ढँक लेनेपर भी नाकसे निकलनेवाले उच्छ्वास आदिकी यतना नहीं हो सकती।

इस सूत्रसे 'उच्छ्वास लेते समय आस्यक और पोपक (मलद्वार)को हाथसे ढँक लेना चाहिए,' ऐसा भगवान् बताते हैं, फिरभी नामधारी पडित 'मुखवस्त्रिकासे ढँकना चाहिए' ऐसा अर्थ निकालते हैं। उनसे हम पूछते हैं कि तुम हाथका अर्थ मुखवस्त्रिका करते हो सो वह अर्थ वाच्य है, या लक्ष्य है या व्यङ्ग्य है ?। पहला पक्ष तो ठीक नहीं है, क्योंकि अभिधा शक्तिके ग्राहक व्याकरण कोश आदिकोंमें यह अर्थ नहीं मिलता। अमरकोशमें हाथके तीन नाम दिये हैं–(१) पञ्चशाख (२) शय और (३) पाणि। व्याख्यामें बताया है कि शाखा जैसी पाँच अंगुलियाँ होती हैं इसलिए इसे पञ्चशाख कहते हैं। उसमें सब वस्तुएँ सोती (रखी जाती) हैं इसलिए शय कहते हैं। उससे सब लेनदेन

લેવા છતા પણ નાકથી નીકળનાર ઉચ્છ્વાસ આદિની યતના થઇ શકતી નથી

આ સૂત્રથી ઉચ્છ્વાસ લેતી વખતે આસ્યક અને પોપક (મલદ્વાર) ને હાથથી ઢાકી લેવુ જોઇએ એમ ભગવાન્ બતાવે છે, છતા પણ નામધારી પડિત 'મુખવસ્ત્રિકાથી ઢાકવુ જોઇએ' એવો અર્થ કાઢે છે એમને અમે પૂછીએ છીએ કે તમે હાથનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરો છો, તો એ અર્થ વાચ્ય છે, યા લક્ષ્ય છે કે વ્યગ્ય છે ? પહેલો પક્ષ તો બરાબર નથી કારણ કે અભિધા શક્તિના ગ્રાહક વ્યાકરણ કોશ આદિમા એ અર્થ નથી મળતો અમરકોશમા હાથના ત્રણ નામ આપ્યા છે (૧) પચશાખ, (૨) શય અને (૩) પાણિ વ્યાખ્યામા બતાવ્યુ છે કે શાખા જેવી પાચ આગળીઓ હોય છે તેથી તેને 'પચશાખ' કહે છે એમા બધી વસ્તુઓ સૂએ (રાખવામા આવે) છે તેથી તેને 'શય'

न्त्यनेनेति पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' इत्यस्मात् 'अशिपणाय्योरुडायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लुक् चे'-ति व्युत्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणकपिधानतात्पर्यस्य निर्बाधेन तात्पर्यानुपपत्तिरूपलक्षणाबीजस्याभावात्।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यकत्वेनैककरेण पायुपिधानस्यापरकरेण मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यकत्वकल्पनाया अनावश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च। पायुनिसर्गानन्तरं क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु-

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं। "अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका लुक् होता है। ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है। लक्ष्य अर्थ वहाँ माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा आती हो। यहाँ पर 'हाथसे ढँककर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है। जब प्रधान अर्थ लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अनावश्यक और अनुचित है। अधोवायु निकलते ही किसीको छींक आने

કહે છે તે વડે બધી લેણદેણ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને 'પાણિ' કહે છે અશિપણાય્યો રુડાયલુકૌ ચ (ઉ૦ ૪।૧૩૩) એ સૂત્રથી इण् થાય છે અને आय પ્રત્યયનો लुक् થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી कर નો વાચક જ બને છે

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) બરાબર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યાં માનવામા આવે છે કે જ્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ બાધા આવે અહીં 'હાથથી ઢાકીને' એવો અર્થ કરવામા કોઇ બાધા આ. નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીજો પક્ષ (વ્યગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે જ્યારે પ્રધાન અર્થ લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવુ અને બીજા હાથે નાક-મુખને યુક્ત છે તો વ્યગ્યાર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અન અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઇને છીંક આવવા લાગે

सच्छ्या मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरमतीतमेव।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः। अपिच-आस्यकूपोषकैतदुभयपरिपिधाने पाणिनेत्येकमेव साधनमुक्तं, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादीनामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपद्ये सति कथमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुश्चाऽऽवरीतु शक्यत इति "पाणिणा परिपेहित्ता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः। न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लोगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता। दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है। यदि इसका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढाँके जा सकते। अतः 'पाणिणा परिपेहित्ता' यह भगवान्का वचन ठीक नही बैठेगा। यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

એ અધોવાયુથી વાસિત મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ અને નાક ઢાકવા એ બિલકુલ અનુચિત છે અને એ અનૌચિત્યને સૌ કોઇ સમજી શકે છે

જો 'પાણિ' શબ્દમા અજહલ્લક્ષણા વૃત્તિ માનીને, 'પાણિ' (હાથ) થી પાણિમા સ્થિત મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ લેશો તોપણ અનૌચિત્ય દોષ દૂર થઈ શકતો નથી બીજી વાત એ છે કે મુખ અને મળદ્વાર ઢાકવાનુ પાણિરૂપ એકજ સાધન બતાવ્યુ છે જો એનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરવામા આવે તો જ્યારે એકી સાથે અધોવાયુ અને દીર્ઘ ઉચ્છ્વાસ આવશે ત્યારે એક જ મુખવસ્ત્રિકા મળદ્વાર પર લગાડવામા આવશે કે મુખ પર? અને જો સાથે જ છીંક પણ આવશે તો તે નાક પર કેવી રીતે લગાડવામા આવશે? કારણ કે એક મુખવસ્ત્રિકાથી એકી સાથે બધા દ્વાર ઢાકી શકાતા નથી તેથી 'पाणिणा परिपेहित्ता' એવુ ભગવાનનુ વચન બરાબર બધ બેસશે નહિ જો એવુ સમાધાન કરવા ઇચ્છો કે એક હાથની

न्त्यनेनेति पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' इत्यस्मात् 'अशिपणाय्योरुडायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लुक् चे'-ति व्युत्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणकपिधानतात्पर्यस्य निर्बाधेन तात्पर्यानुपपत्तिरूपलक्षणाबीजस्याभावात्।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यकत्वेनैकेनकरेण पायुपिधानस्यापरकरेण मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यकत्वकल्पनाया अनावश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च। वायुनिसर्गानन्तरं क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं। "अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका लुक् होता है। ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है। लक्ष्य अर्थ वहाँ माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा आती हो। यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है। जब प्रधान अर्थ लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अनावश्यक और अनुचित है। अधोवायु निकलते ही किसीको छींक

કહે છે તે વડે બધો લેણદેણ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને 'પાણિ' કહે છે अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च (उ० ४।१३३) એ સૂત્રથી इण् થાય છે અને आय પ્રત્યયનો लुक् થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી कर નો વાચક જ બને છે

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) બરાબર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યારે માનવામા આવે છે કે જ્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ બાધા આવે અહી 'હાથથી ઢાકીને' એવો અર્થ કરવામા કોઇ બાધા આવતી નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીજો પક્ષ (વ્યગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે જ્યારે પ્રધાન અર્થ લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવુ અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાકવું યુક્ત છે, તો વ્યગ્યાર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઇને છીંક આવવા લાગે

सम्पृष्टया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरमतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच–आस्यकृ-पोषकैतदुभयपरिपिधाने पाणिनेत्येकमेव साधनमुक्तं, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादीनामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपद्ये सति कथमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुश्चाऽऽवरीतु शक्यत इति "पाणिणा परिपेहित्ता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः।न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूंदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लोगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता। दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है। यदि इसका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढाँके जा सकते। अतः 'पाणिणा परिपेहित्ता' यह भगवान्का वचन ठीक नहीं बैठेगा। यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

એ અધોવાયુથી વાસિત મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ અને નાક ઢાકવા એ બિલકુલ અનુચિત છે અને એ અનૌચિત્યને સૌ કોઇ સમજી શકે છે

જો 'પાણિ' શબ્દમા અજહલ્લક્ષણા વૃત્તિ માનીને, 'પાણિ' (હાથ) થી પાણિમા સ્થિત મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ લેશો તોપણ અનૌચિત્ય દોષ દૂર થઈ શકતો નથી બીજી વાત એ છે કે મુખ અને મળદ્વાર ઢાકવાનું પાણિરૂપ એકજ સાધન બતાવ્યુ છે જો એનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરવામા આવે તો જ્યારે એકી સાથે અધોવાયુ અને દીર્ઘ ઉચ્છ્વાસ આવશે ત્યારે એક જ મુખવસ્ત્રિકા મળદ્વાર પર લગાડવામા આવશે કે મુખ પર? અને જો સાથે જ છીંક પણ આવશે તો તે નાક પર કેવી રીતે લગાડવામા આવશે? કારણ કે એક મુખવસ્ત્રિકાથી એકી સાથે બધા દ્વાર ઢાકી શકાતા નથી તેથી 'पाणिणा परिपेहित्ता' એવુ ભગવાનનું વચન બરાબર બધ બેસશે નહિ જો એવુ સમાધાન કરવા ઇચ્છો કે એક હાથની

न्त्यनेनेति पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' इत्यस्मात् 'अशिपणाय्योरु-डायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लुक् चे'-ति व्युत्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च ।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणकपिधानतात्पर्यस्य निरोधेन तात्पर्यानुपपत्तिरूपलक्षणाबीजस्याभावात् ।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यस्त्वेनेकस्करेण पायुपिधानस्यापरकरेण मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यस्त्वस्त्पनाया अनावश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च । वायुनिसर्गानन्तरं क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु-

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं। "अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका लुक् होता है। ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है। लक्ष्य अर्थ वहाँ माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा आती हो। यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है। जब प्रधान अर्थ लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अनावश्यक और अनुचित है। अधोवायु निकलते ही किसीको छींक आने

કહે છે તે વડે બધો લેણદેણ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને 'પાણિ' કહે છે अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च (उ० ४।१३३) એ સૂત્રથી इण् થાય છે અને आय પ્રત્યયનો लुक् થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી कर નો વાચક જ બને છે

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) બરાબર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યા માનવામા આવે છે કે જ્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ પ્રકારની બાધા આવે અહીં 'હાથથી ઢાકીને' એવો અર્થ કરવામા કોઇ બાધા આવતી નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીજો પક્ષ (વ્યગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે જ્યારે પ્રધાન અર્થ લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવુ અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાકવુ યુક્ત છે તો વ્યગ્યાર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઇને છીંક આવવા લાગે

सस्पृष्टया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरप्रतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोपनिस्तारः । अपिच–आस्यक-पोपकैतदुभयपरिपिधाने पाणिनेत्येकमेव साधनमुक्तं, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादीनामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपद्ये सति कथमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुश्चाऽऽवरीतु शक्यत इति "पाणिणा परिपेहित्ता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः।न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लोगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता। दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है। यदि इसका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढाँके जा सकते। अतः 'पाणिणा परिपेहित्ता' यह भगवानका वचन ठीक नहीं बैठेगा। यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

એ અધોવાયુથી વાસિત મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ અને નાક ઢાકવા એ બિલકુલ અનુચિત છે અને એ અનૌચિત્યને સૌ કોઈ સમજી શકે છે

જો 'પાણિ' શબ્દમા અજહલ્લક્ષણા વૃત્તિ માનીને, 'પાણિ' (હાથ) થી પાણિમા સ્થિત મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ લેશો તોપણ અનૌચિત્ય દોષ દૂર થઈ શકતો નથી બીજી વાત એ છે કે મુખ અને મળદ્વાર ઢાકવાનુ પાણિરૂપ એકજ સાધન બતાવ્યુ છે જો એનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરવામા આવે તો જ્યારે એકી સાથે અધોવાયુ અને દીર્ઘ ઉચ્છ્વાસ આવશે ત્યારે એક જ મુખવસ્ત્રિકા મળદ્વાર પર લગાડવામા આવશે કે મુખ પર ? અને જો સાથે જ છીંક પણ આવશે તો તે નાક પર કેવી રીતે લગાડવામા આવશે ? કારણ કે એક મુખવસ્ત્રિકાથી એકી સાથે બધા દ્વાર ઢાકી શકાતા નથી તેથી 'पाणिणा परिपेहित्ता' એવુ ભગવાનનુ વચન બરાબર બધ બેસશે નહિ જો એવુ સમાધાન કરવા ઈચ્છો કે એક હાથની

न्यपनेनेति पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' इत्यस्मात् 'अशिपणाय्योरु-डायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लुक् चे'-ति व्युत्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च ।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणकपिधानतात्पर्यस्य निर्बाधेन तात्पर्यानुपपत्तिरूपलक्षणाबीजस्याभावात् ।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यकत्वेनैककरेण पायुपिधानस्यापरकरेण मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यकत्वकल्पनाया अनावश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च । वायुनिसर्गानन्तरं क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु-

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं। "अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका लुक् होता है । ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है ।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है । लक्ष्य अर्थ वहाँ माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा आती हो। यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए लक्षणा नही हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है । जब प्रधान अर्थ लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अनावश्यक और अनुचित है । अधोवायु निकलते ही किसीको छींक आने

કહે છે તે વડે બધો લેણદેણ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને 'પાણિ' કહે છે अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च (उ० ४। १३३) એ સૂત્રથી इण् થાય છે અને आय પ્રત્યયનો लुक् થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી कर નો વાચક જ બને છે

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) બરાબર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યા માનવામા આવે છે કે જ્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ પ્રકારની બાધા આવે અહીં 'હાથથી ઢાકીને' એવો અર્થ કરવામા કોઇ બાધા આવતી નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીજો પક્ષ (વ્યગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે જ્યારે પ્રધાન અર્થ લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવું અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાકવુ યુક્ત છે તો વ્યગ્યાર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઇને છીંક-આવવા

सच्छ्रया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरप्रतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्ति स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच-आस्यकु-पोपकैतदुभयपरिपिधाने पाणिनेत्येकमेव साधनमुक्तं, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादीनामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपद्ये सति कथमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुश्चाऽऽवरीतु शक्यत इति "पाणिणा परिपेहित्ता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः। न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

---

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूंदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लोगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता। दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है। यदि इसका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढाँके जा सकते। अतः 'पाणिणा परिपेहित्ता' यह भगवानका वचन ठीक नहीं बैठेगा। यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुंह और दूसरे

એ અધોવાયુથી વાસિત મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ અને નાક ઢાકવા એ બિલકુલ અનુચિત છે અને એ અનૌચિત્યને સૌ કોઈ સમજી શકે છે

જો 'પાણિ' શબ્દમા અજહલ્લક્ષણા વૃત્તિ માનીને, 'પાણિ' (હાથ) થી પાણિમા સ્થિત મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ લેશો તોપણ અનૌચિત્ય દોષ દૂર થઈ શકતો નથી બીજી વાત એ છે કે મુખ અને મળદ્વાર ઢાકવાનુ પાણિરૂપ એકજ સાધન બતાવ્યુ છે જો એનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરવામા આવે તો જ્યારે એકી સાથે અધોવાયુ અને દીર્ઘ ઉચ્છ્વાસ આવશે ત્યારે એક જ મુખવસ્ત્રિકા મળદ્વાર પર લગાડવામા આવશે કે મુખ પર ? અને જો સાથે જ છીંક પણ આવશે તો તે નાક પર કેવી રીતે લગાડવામા આવશે ? કારણ કે એક મુખવસ્ત્રિકાથી એકી સાથે બધા દ્વાર ઢાકી શકાતા નથી તેથી 'पाणिणा परिपेहित्ता' એવુ ભગવાનનુ વચન બરાબર બધ બેસશે નહિ જો એવુ સમાધાન કરવા ઈચ્છો કે એક હાથની

न्यनेनेति पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' इत्यस्मात् 'अशिपणाय्योरु-डायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लुक् चे'-ति व्युत्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच्च।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थककरणकपिधानतात्पर्यस्य निर्बाधेन तात्पर्यानुपपत्तिरूपलक्षणाबीजस्याभावात्।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यकत्वेनैककरेण पायुपिधानस्यापरकरेण मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यकत्वकल्पनाया अनावश्यकत्वात्, अनौचित्याच्च। वायुनिसर्गानन्तरं क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु-

---

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं। "अशिपणाय्यो रुडा यलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका लुक् होता है। ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है। लक्ष्य अर्थ वहाँ माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा आती हो। यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है। जब प्रधान अर्थ लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अनावश्यक और अनुचित है। अधोवायु निकलते ही किसीको छींक आने

કહે છે તે વડે બધો લેણદેણ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને 'પાણિ' કહે છે अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च (उ० ४।१३३) એ સૂત્રથી इण् થાય છે અને आय પ્રત્યયનો लुक् થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી कर નો વાચક જ બને છે

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) બરાબર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યા માનવામા આવે છે કે જ્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ પ્રકારની બાધા આવે અહી 'હાથથી ઢાકીને' એવો અર્થ કરવામા કોઇ બાધા આવતી નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીજો પક્ષ (વ્યગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે જ્યારે પ્રધાન અર્થ લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવુ અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાકવુ યુક્ત છે તો વ્યગ્યાર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઈ

सम्बद्धया मुखवस्त्रिकया मुखघ्राणपिधानस्यानौचित्यमापामरमतीतमेव ।

पाणिशब्देऽजहल्लक्षणावृत्तिं स्वीकृत्य 'पाणिस्थितमुखवस्त्रिकये' त्यर्थकल्पनेऽपि नोक्तानौचित्यदोषनिस्तारः । अपिच—आस्यक-पोपकैतदुभयपरिपिधाने पाणिनेत्येकमेव साधनमुक्त, तत्र पाणिस्थितमुखवस्त्रिकयेत्यर्थाङ्गीकारे दीर्घोच्छ्वासादीनामधोवायुनिसर्गस्य च यौगपद्ये सति कथमेकयैव पाणिस्थितया मुखवस्त्रिकया युगपदेव घ्राण मुख पायुश्चाऽऽवरीतु शक्यत इति "पाणिणा परिपेहित्ता" इति भगवद्वाक्यस्यानुपपत्तिः।न च 'एकपाणिस्थितया मुखवस्त्रिकयाऽऽस्यकम्, अपरपा-

लगे तो उसी अधोवायुवासित मुखवस्त्रिकासे 'मुख' और नाक मूदना बिलकुल अनुचित है और इस अनौचित्यको हरेक समझ सकता है।

यदि 'पाणि' शब्दमें अजहल्लक्षणा वृत्ति मानकर 'पाणि' (हाथ) से पाणिमें स्थित मुखवस्त्रिका अर्थ लोगे तो भी अनौचित्य दोष नहीं हट सकता। दूसरी बात यह है कि मुख और मलद्वार ढँकनेका पाणिरूप एक ही साधन बताया है। यदि इसका अर्थ मुखवस्त्रिका किया जावे तो जब एक ही साथ अधोवायु और दीर्घ उच्छ्वास आवेगा तब एक ही मुखवस्त्रिका मलद्वार पर लगाई जावेगी या मुँहपर ? और यदि साथ ही छींक भी आयगी तो वही नाकमें कैसे लगाई जावेगी ? क्योंकि एक मुखवस्त्रिकासे एक साथ ही सब द्वार नहीं ढाँके जा सकते। अतः 'पाणिणा परिपेहित्ता' यह भगवान्का वचन ठीक नहीं बैठेगा। यदि ऐसा समाधान करना चाहो कि एक हाथकी मुँहपत्तीसे मुँह और दूसरे

એ અધોવાયુથી વાસિત મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ અને નાક ઢાકવા એ બિલકુલ અનુચિત છે અને એ અનોચિત્યને સૌ કોઇ સમજી શકે છે

જો 'પાણિ' શબ્દમા અજહલ્લક્ષણા વૃત્તિ માનીને, 'પાણિ' (હાથ) થી પાણિમા સ્થિત મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ લેશો તોપણ અનોચિત્ય દોષ દૂર થઈ શકતો નથી બીજી વાત એ છે કે મુખ અને મળદ્વાર ઢાકવાનું પાણિરૂપ એકજ સાધન બતાવ્યુ છે જો એનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કરવામા આવે તો જ્યારે એકી સાથે અધોવાયુ અને દીર્ઘ ઉચ્છ્વાસ આવશે ત્યારે એક જ મુખવસ્ત્રિકા મળદ્વાર પર લગાડવામા આવશે કે મુખ પર ? અને જો સાથે જ છીંક પણ આવશે તો તે નાક પર કેવી રીતે લગાડવામા આવશે ? કારણ કે એક મુખવસ્ત્રિકાથી એકી સાથે બધા દ્વાર ઢાકી શકાતા નથી તેથી 'पाणिणा परिपेहित्ता' એવુ ભગવાનનું વચન બરાબર બધ બેસશે નહિ જો એવુ સમાધાન કરવા ઈચ્છો કે એક હાથની

न्यनेनेति पाणिः 'पण व्यवहारे स्तुतौ च' इत्यस्मात् 'अशिपणाय्योरुडायलुकौ च' (उ० ४।१३३) इतीण्, 'आयप्रत्ययस्य लुक् चे'-ति व्युत्पादनेन तत्र करवाचकत्वस्यैव लाभाच।

नापि द्वितीयः, मुख्यार्थकरकरणकपिधानतात्पर्यस्य निर्बाधेन तात्पर्यानुपपत्तिरूपलक्षणाबीजस्याभावात्।

नापि तृतीयः, मुख्यार्थतात्पर्यकत्वेनैककरेण पायुपिधानस्यापरकरेण मुखघ्राणपिधानस्य चोपपत्त्या व्यङ्ग्यार्थमुखवस्त्रिकातात्पर्यकत्वकल्पनाया अनावश्यकत्वात्, अनौचित्याच। वायुनिसर्गानन्तरं क्षुते जायमाने पायुनिर्गतवायु

आदि व्यवहार होते हैं अतः उसे पाणि कहते हैं। "अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च" (उ० ४।१३३) इस सूत्रसे 'इण्' होता है और 'आय' प्रत्ययका लुक् होता है। ऐसी व्युत्पत्ति करनेसे 'कर'का वाचक ही होता है।

दूसरा भी पक्ष (लक्ष्य अर्थ मानना) ठीक नहीं है। लक्ष्य अर्थ वहाँ माना जाता है जहाँ मुख्य (शाब्दिक) अर्थ लेनेमें किसी प्रकारकी बाधा आती हो। यहाँ पर 'हाथसे ढँक कर' ऐसा अर्थ करनेमें कोई बाधा नहीं आती, इसलिए लक्षणा नहीं हो सकती, अतः यह लक्ष्य अर्थ भी नहीं है।

तीसरा (व्यङ्ग्य अर्थ मानना) भी पक्ष बाधित है। जब प्रधान अर्थ लेनेसे एक हाथसे मलद्वार ढँकना और दूसरे हाथसे नाक मुखका ढँकना युक्त है तो व्यङ्ग्य अर्थ (मुखवस्त्रिकाके तात्पर्यकी कल्पना करना) अनावश्यक और अनुचित है। अधोवायु निकलते ही किसीको छींक आने

કહે છે તે વડે બધો લેણદેણ વગેરેનો વહેવાર થાય છે તેથી એને 'પાણિ' કહે છે अशिपणाय्यो रुडायलुकौ च (उ० ४। १३३) એ સૂત્રથી इण् થાય છે અને आय પ્રત્યયનો लुक् થાય છે એવી વ્યુત્પત્તિ કરવાથી कर નો વાચક જ બને છે

બીજો પક્ષ પણ (લક્ષ્ય અર્થ માનવો) બરાબર નથી લક્ષ્ય અર્થ ત્યા માનવામા આવે છે કે જ્યા મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થ લેવામા કોઈ પ્રકારની બાધા આવે અહીં 'હાથથી ઢાકીને' એવો અર્થ કરવામા કોઇ બાધા આવતી નથી, તેથી લક્ષણા થઇ શકતી નથી, એટલે એ લક્ષ્ય અર્થ પણ નથી

ત્રીજો પક્ષ (વ્યગ્ય અર્થ માનવો) પણ બાધિત છે જ્યારે પ્રધાન અર્થ લેવાથી એક હાથથી મળદ્વાર ઢાકવુ અને બીજા હાથે નાક-મુખને ઢાકવુ યુક્ત છે તો વ્યગ્યાર્થ (મુખવસ્ત્રિકાના તાત્પર્યની કલ્પના કરવી) અનાવશ્યક અને અનુચિત છે અધોવાયુ નીકળતી વખતે જ કોઇને છીંક આવવા લાગે તો

तापत्तिः, अन्यथा परिधानवस्त्रावृतपोपकावरणोपदेशस्य वैयर्थ्यापत्तिरित्युभयथाऽपि न दोषनिस्तारः। तस्मात्-" आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहित्ता " इति भगवद्वाक्यस्य 'मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया नतु दोरकेणे'-त्यर्थकल्पन साहसमात्रम् ।

मम तु सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थं बद्धमुखवस्त्रिकस्योच्छ्वासादिकाले मुखोद्गतवायुवेगेन मुखतो दोरकावलम्बिततदपगमसम्भावनायाः सत्त्वेन तन्निवारणाय मुखवस्त्रिकाऽऽवृतस्यापि मुखस्य पाणिना परिपिधानमावश्यकमेव । एव परिधानवस्त्राऽऽवृतस्यापि पोपकस्य परिपिधान विधेयमेव, उच्छ्वासादीना यौगपद्येऽयौगपद्ये वा एकेन करेण घ्राणमुखपिधानम्,

फिर आवरण करनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा। अतएव " आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहित्ता " इस भगवद्वाक्य का यह अर्थ निकालना कि-'मुखवस्त्रिका हाथ ही मे रखनी चाहिए डोरेसे मुख पर नहीं बाधना चाहिए,' ऐसी कल्पना करना साहसमात्र है ।

हमारे मतसे सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनासे बचनेके लिए मुखवस्त्रिका बँधी हुई होने पर भी उच्छ्वास आदिके समय मुखसे निकलने वाले वायुके वेगसे मुखवस्त्रिकाके खिसक जानेकी सभावना रहती है, इसलिए उस सभावनाको दूर करनेके वास्ते मुखवस्त्रिकासे आवृत मुखको फिर हाथसे आवृत करना आवश्यक है। इसी प्रकार चोलपट्ट होने पर भी अधोवायुके विषयमे समझना चाहिए। उच्छ्वास आदि यदि एक ही साथ होवें तो एक हाथसे मुख

નહિ તો આવૃતને ફરી આવરણ કરવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ બની જશે તેથી કરીને 'आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहित्ता' એ ભગવદ્વાકયનો એવો અર્થ કાઢવો કે 'મુખવસ્ત્રિકા હાથમા જ રાખવી જોઇએ, દોરાથી મુખ પર બાધવી ન જોઇએ' એવી કલ્પના કરવી એ સાહસમાત્ર છે

અમારે મતે સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સપાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે મુખવસ્ત્રિકા બાધી હોવા છતા ઉચ્છ્વાસ આદિને સમયે મુખથી નીકળતા વાયુના વેગથી મુખવસ્ત્રિકા ખસી જવાની સભાવના રહે છે તેથી એ સભાવનાને દૂર કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકાથી ઢાકેલા મુખને પણ હાથથી ઢાકવાની આવશ્યકતા છે એજ રીતે ચોલપટ્ટ હોવા છતા પણ અધોવાયુના વિષયમા સમજવુ ઉચ્છ્વાસ આદિ જો એકી સાથેજ થાય તો એક હાથથી

णिस्थितया पायुवस्त्रिकया पोषक परिपिधाये' त्यर्थाङ्गीकारेण समाधान मुखकमिति वाच्यम्, सकृदुच्चरितन्यायविरोधेन तादृशार्थकल्पनायाः कर्तुमशक्यत्वात्।

किञ्च तेषामयोगपद्येऽपि पायुपिधायकवस्त्रखण्डे मुखवस्त्रिकात्वकल्पन परमभ्रान्तिमूलम्, मुखपाय्वोरैक्याभावात्। अनावृतस्यैव मुखादेरावरणे तात्पर्यसत्त्वे परिपिधायेत्यत्र परीत्युपसर्गप्रयोगस्याऽऽनर्थक्यापत्तिश्च, अपिपूर्वकादपि ल्यप्प्रत्ययसिद्धेः।

किञ्च-'आवृतस्य पुनरावरण व्यर्थमेवेति हेतोरनावृतस्यैवाऽऽवरणार्थमयमुपदेश" इति वदतस्तव हस्तवस्त्रिकाधारकस्य मते पोषकस्य परिधानवसनानावरणीय-

हाथके पायुवस्त्रसे मलद्वार ढक लेवेंगे, सो ठीक नहीं है। 'सकृदुच्चरितन्याय' से ऐसी कल्पना करना शक्य नहीं है।

अधोवायु और छींक आदि एक साथ न भी हों तो भी अधोवायुकी यतना करनेवाले वस्त्रको मुखवस्त्रिका कहना भारी भूल है, क्योंकि मुख और मलद्वार एक चीज नहीं है-दोनों अलग अलग हैं। यदि खुले मुख बोलनेका तात्पर्य हो तो 'परिपेहित्ता' पदमें 'परि' उपसर्ग व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि 'अपि' उपसर्गपूर्वक धातुसे भी ल्यप् प्रत्यय होता है।

'ढँके हुएको फिर ढाँकना वृथा ही है, इसलिए बगैर ढँके हुए को ढँकनेके लिए यह उपदेश दिया है।'-यदि हाथमें मुँहपत्ति रखने वाले ऐसा कहेंगे तो यह सिद्ध हो जायगा कि उनका मलद्वार सदा अनावृत (उघडा हुआ) रहता है। नहीं तो आवृतको

મુહપત્તિથી મુખ અને બીજા હાથના પાયુવસ્ત્રથી મળદ્વાર ઢાંકી લેવાશે, તે તે બરાબર નથી, કારણ કે सकृदुच्चरितन्यायથી એવી કલ્પના કરવી શકય નથી

અધોવાયુ અને છીંક આદિ એકી સાથે ન હોય તોપણ અધોવાયુની યતના કરનારા વસ્ત્રને મુખવસ્ત્રિકા કહેવી એ મોટી ભૂલ છે, કારણ કે મુખ અને મળદ્વાર એક ચીજ નથી બેઉ અલગ અલગ છે જો ખુલ્લે મુખે બોલવાનું તાત્પર્ય હોય તો परिपेहित्ता શબ્દમા परि ઉપસર્ગ વ્યર્થ થઈ જશે કારણ કે अपि ઉપસર્ગ પૂર્વક ધાતુથી પણ ल्यप् પ્રત્યય થાય છે

'ઢાંકેલાને ફરીથી ઢાંકવુ એ વૃથા છે, તેથી ઢાંકયા વગરનાને ઢાંકવાને માટે આ ઉપદેશ આપ્યો છે'-જો હાથમા મુહપત્તી રાખનાર એમ કહેશે તો એમ સિદ્ધ થશે કે એનું મળદ્વાર સદા અનાવૃત (ઉઘાડુ) રહે છે

तापत्तिः, अन्यथा परिधानवस्त्रावृतपोपकावरणोपदेशस्य वैयर्थ्यापत्तिरित्युभयथाऽपि न दोषनिस्तारः। तस्मात्–" आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहित्ता " इति भगवद्वाक्यस्य 'मुखवस्त्रिका करेणैव धारणीया नतु दोरकेणे'-त्यर्थकल्पन साहसमात्रम्।

मम तु सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थं बद्धमुखवस्त्रिकस्योच्छ्वासादिकाले मुखोद्गतवायुवेगेन मुखतो दोरकावलम्बिततदपगमसम्भावनायाः सत्त्वेन तन्निवारणाय मुखवस्त्रिकाऽऽवृतस्यापि मुखस्य पाणिना परिपिधानमावश्यकमेव। एव परिधानवस्त्राऽऽवृतस्यापि पोपस्य परिपिधान विधेयमेव, उच्छ्वासादीना योगपद्येऽयौगपद्ये वा एकेन करेण घ्राणमुखपिधानम्,

---

फिर आवरण करनेका उपदेश व्यर्थ हो जायगा। अतएव " आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहित्ता " इस भगवद्वाक्य का यह अर्थ निकालना कि-'मुखवस्त्रिका हाथ ही मे रखनी चाहिए डोरेसे मुख पर नहीं बांधना चाहिए,' ऐसी कल्पना करना साहसमात्र है।

हमारे मतसे सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनासे बचनेके लिए मुखवस्त्रिका बँधी हुई होने पर भी उच्छ्वास आदिके समय मुखसे निकलने वाले वायुके वेगसे मुखवस्त्रिकाके खिसक जानेकी सभावना रहती है, इसलिए उस सभावनाको दूर करनेके वास्ते मुखवस्त्रिकासे आवृत मुखको फिर हाथसे आवृत करना आवश्यक है। इसी प्रकार चोलपट्ट होने पर भी अधोवायुके विषयमें समझना चाहिए। उच्छ्वास आदि यदि एक ही साथ होवें तो एक हाथसे मुख

નહિ તો આવૃતને ફરી આવરણ કરવાનો ઉપદેશ વ્યર્થ બની જશે તેથી કરીને 'आसय वा पोसय वा पाणिणा परिपेहित्ता' એ ભગવદ્વાકયનો એવો અર્થ કાઢવો કે 'મુખવસ્ત્રિકા હાથમા જ રાખવી જોઇએ, દોરાથી મુખ પર બાધવી ન જોઇએ' એવી કલ્પના કરવી એ સાહસમાત્ર છે

અમારે મતે સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સપાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે મુખવસ્ત્રિકા બાધી હોવા છતા ઉચ્છ્વાસ આદિને સમયે મુખથી નીકળતા વાયુના વેગથી મુખવસ્ત્રિકા ખસી જવાની સભાવના રહે છે તેથી એ સભાવનાને દૂર કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકાથી ઢાકેલા મુખને પણ હાથથી ઢાકવાની આવશ્યકતા છે એજ રીતે ચોલપટ્ટ હોવા છતા પણ અધોવાયુના વિષયમા સમજવુ ઉચ્છ્વાસ આદિ જો એકી સાથેજ થાય તો એક હાથથી

अपरेण पायुपिधानं विधेयमिति भावः ।

पाणिनेत्यत्रैकवचनमपि पाणित्वजातावन्वयनिरासयेत्युभयपाणिबोधकत्वेऽप्यनुकूलमेव ।

किञ्च पाणिशब्दस्य मुख्यार्थबाधाऽभावेन मुख्यार्थबाधमूलिका लक्षणापि नाङ्गीकरणीया भवति । तथा चोक्तसूक्ष्मव्यापिप्रभृतिविविधजीवहिंसावारणाय सदैव सदोरकमुखवस्त्रिकाधारणं नैतत्सूत्रतो विरुध्यते, किन्तु परिपिधायेत्यत्र परिशब्दप्रयोगेण भगवान् मुखवस्त्रिकापिहितस्यैव मुखस्य पिधानमावेदयतीत्यलं पल्लवितेन।

केचित्तु-' विपाकसूत्रे मृगापुत्राध्ययने-"तए णं सा मिया देवी तं कट्ठसगडियं अणुकड्ढेमाणीर जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छति, उवाग-

---

और नाक ढँक ले और दूसरे हाथसे अधोवायुकी यतना करे ।

"पाणिणा" यद्यपि एक वचन है तथापि पाणित्वजातिमें अन्वय होनेसे दोनों हाथोंका बोधक होता है, इसलिए हमारे मतके अनुकूल ही है ।

यहाँ 'पाणि' शब्दके मुख्य अर्थमें बाधा नही है अतः लक्षणा भी मानने योग्य नहीं है, क्योंकि लक्षणा वहीं होती है जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा आती हो । इसलिए उक्त सूक्ष्म व्यापी वगैरह विविध जीवोंकी विराधनासे बचने के वास्ते सदैव डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधना इस सूत्रसे विरुद्ध नहीं है । परन्तु ' परिपेहित्ता ' में 'परि' उपसर्गके प्रयोगसे प्रगट है कि महावीर प्रभुने मुँहपत्ति से पिहित (ढँके हुए) मुखको पुनः पिधान करना प्रतिपादित किया है ।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि विपाकसूत्रमे मृगापुत्रके अध्ययनमें

મુખ અને નાક ઢાંકી લેવા અને બીજા હાથથી અધોવાયુની યતના કરવી

पाणिणा જો કે એકવચન છે તોપણ પાણિત્વ જાતિમાં અન્વય થવાથી બંને હાથનો બોધક થાય છે તેથી અમારે મતે તે શબ્દ અનુકૂળ જ છે

અહીં **पाणि** શબ્દના મુખ્ય અર્થમાં બાધા નથી તેથી લક્ષણા પણ માનવા યોગ્ય નથી, કારણ કે લક્ષણા ત્યાં થાય છે કે જ્યાં મુખ્ય અર્થમાં બાધા આવતી હોય તેથી કરીને ઉક્ત સૂક્ષ્મ, વ્યાપી વગેરે વિવિધ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે સદૈવ દોરા સાથે મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી એ સૂત્રથી વિરુદ્ધ નથી પરન્તુ **परिपेहित्ता** અહીં **परि**- ઉપસર્ગના પ્રયોગથી સ્પષ્ટ થાય છે કે મહાવીર પ્રભુએ મુહપત્તિથી પિહિત (ઢાંકેલા) મુખને પુન પિધાન કરવાનું પ્રતિપાદિત કર્યું છે

કોઈ કોઈ એમ કહે છે કે વિપાકસૂત્રમા મૃગાપુત્રના અધ્યયનમા લખ્યું છે-

च्छित्ता चउप्पुडेण वत्थेण मुहं बंधमाणी भगवं गोयमं एवं वयासि–तुब्भे-वि णं भंते ! मुहपोत्तियाए मुहं बंधेह । तए णं से भगवं गोयमे मियाए देवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुहं बंधइ" इत्युक्त, तस्यायमाशयः–मृगापुत्रं दर्शयितुं प्रवृत्ता मृगादेवी भूमिगृहद्वारोद्घाटनकाले दुर्गन्धाघ्राणवारणाय चतुष्पुटेन वस्त्रेण स्वमुखं बध्नती भगवन्तं गौतमं जगाद–हे भदन्त ! त्वमपि मुख-पोतिकया मुखं बधान, ततः स भगवान् गौतमो मृगादेव्यैवमुक्तः सन् मुखपोति-कया मुखं बध्नाति (स्म) इति । इदमनेन सुस्पष्टं प्रतीयते–गौतमस्वामिनो मुखो-परि मुखवस्त्रिका बद्धा नासीत् किन्तु हस्त एव धृतेति, अत एव मृगादेवी दुर्गन्धा-घ्राणप्रतिबन्धाय "तुब्भेवि णं भंते! मुहपोत्तियाए मुहं बंधेह" इति प्रार्थित-वतीत्याहुः' तन्न सम्यक्–उष्णमुखवायुतः सम्पातिमसूक्ष्मव्यापिजीवानां रक्षणार्थं

ऐसा लिखा है–"तए णं सा" इत्यादि।

इसका आशय यह है कि मृगादेवी जब मृगापुत्रको आहार देनेके लिए भोंयरेके किवाड खोलने लगी तब नाकमें दुर्गन्ध आनेका निवारण करनेके लिए चार पडवाला वस्त्र मुख पर बांधकर भगवान् गौतमस्वामीसे कहने लगी–'हे भदन्त । आप भी मुखवस्त्रिकासे मुख बांध लीजिये'। मृगादेवीका कथन सुनकर भगवान् गौतम मुखवस्त्रिकासे मुख बांधते हैं (बांध लिया) । 'इससे यह बिलकुल स्पष्ट है कि पहले गौतमस्वामीके मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बंधी हुई थी, किन्तु हाथमें थी, इसीसे मृगादेवीने मुखवस्त्रिका बांधनेकी प्रार्थना की थी । उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखकी उष्ण वायुसे संपातिम, सूक्ष्म और व्यापी जीवोंकी रक्षा करनेके लिए तथा बाह्य वायुकायकी

'तए णं सा' ઇત્યાદિ એનો આશય એ છે કે મૃગાદેવી જ્યારે મૃગાપુત્રને આહાર દેવાને માટે ભોંયરાના કમાડ ખોલવા લાગી ત્યારે નાકમાં દુર્ગંધ આવતી નિવારવાને માટે ચાર પડવાળું વસ્ત્ર મુખ પર બાંધીને ભગવાન્ ગૌતમ સ્વામીને કહેવા લાગી કે–હે ભદન્ત ! આપ પણ મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ બાંધી લ્યો. મૃગાદેવીનું કથન સાંભળીને ભગવાન્ ગૌતમ મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ બાંધે છે (બાંધી લીધું) આથી એ તદ્દન સ્પષ્ટ થાય છે કે પહેલાં ગૌતમ સ્વામીના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધેલી નહોતી, કિન્તુ હાથમાં હતી, તેથી મૃગાદેવીએ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાની પ્રાર્થના કરી હતી એમનું એ કહેવું બરાબર નથી કારણ કે મુખના ઉષ્ણ વાયુથી સંપાતિમ, સૂક્ષ્મ અને વ્યાપી જીવોની રક્ષા કરવાને માટે તથા બાહ્ય વાયુકાયની

अपरेण पायुपिधानं विधेयमिति भावः ।

पाणिनेत्यत्रैकवचनमपि पाणित्वजात्यान्वयविवक्षयेत्युभयपाणिबोधकत्वेऽप्यनुकूलमेव ।

किञ्च पाणिशब्दस्य मुख्यार्थबाधाऽभावेन मुख्यार्थबाधमूलिका लक्षणापि नाङ्गीकरणीया भवति । तथा चोक्तसूक्ष्मव्याप्यादिप्रभृतिविविधजीवहिंसावारणाय सदैव सदोरकमुखवस्त्रिकाधारणं नैतत्सूत्रतो विरुध्यते, किन्तु परिपिधायेत्यत्र परिशब्दप्रयोगेण भगवान् मुखवस्त्रिकापिहितस्यैव मुखस्य पिधानमावेदयतीत्यलं पल्लवितेन।

केचित्तु-' विपाकसूत्रे मृगापुत्राध्ययने-"तए णं सा मिया देवी तं कट्ठसगडियं अणुकड्ढेमाणीर जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छति, उवाग

और नाक ढँक ले और दूसरे हाथसे अधोवायुकी यतना करे ।

"पाणिणा" यद्यपि एक वचन है तथापि पाणित्वजातिमें अन्वय होनेसे दोनों हाथोंका बोधक होता है, इसलिए हमारे मतके अनुकूल ही है ।

यहाँ 'पाणि' शब्दके मुख्य अर्थमें बाधा नहीं है अतः लक्षणा भी मानने योग्य नहीं है, क्योंकि लक्षणा वहीं होती है जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा आती हो । इसलिए उक्त सूक्ष्म व्यापी वगैरह विविध जीवोंकी विराधनासे बचने के वास्ते सदैव डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधना इस सूत्रसे विरुद्ध नहीं है । परन्तु ' परिपेहित्ता ' में 'परि' उपसर्गके प्रयोगसे प्रगट है कि महावीर प्रभुने मुँहपत्ति से पिहित (ढँके हुए) मुखको पुनः पिधान करना प्रतिपादित किया है ।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि विपाकसूत्रमे मृगापुत्रके अध्ययनमें

મુખ અને નાક ઢાંકી લેવા અને બીજા હાથથી અધોવાયુની યતના કરવી

पाणिणा જો કે એકવચન છે તોપણ પાણિત્વ જાતિમા અન્વય થવાથી બેઉ હાથનો બોધક થાય છે તેથી અમારે મતે તે શબ્દ અનુકૂળ જ છે

અહીં **पाणि** શબ્દના મુખ્ય અર્થમા બાધા નથી તેથી લક્ષણા પણ માનવા યોગ્ય નથી, કારણ કે લક્ષણા ત્યા થાય છે કે જ્યા મુખ્ય અર્થમા બાધા આવતી હોય તેથી કરીને ઉક્ત સૂક્ષ્મ, વ્યાપી વગેરે વિવિધ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે સદૈવ દોરા સાથે મુખવસ્ત્રિકા બાધવી એ સૂત્રથી વિરૂદ્ધ નથી પરન્તુ **परिपेहित्ता** અહીં **परि** ઉપસર્ગના પ્રયોગથી સ્પષ્ટ થાય છે કે મહાવીર પ્રભુએ મુહપત્તિથી પિહિત (ઢાકેલા) મુખને પુન પિધાન કરવાનુ પ્રતિપાદિત કર્યું છે

કોઈ કોઇ એમ કહે છે કે વિપાકસૂત્રમા મૃગાપુત્રના અધ્યયનમા લખ્યુ છે-

च्छित्ता चउप्पुडेण वत्थेण मुहं बंधमाणी भगवं गोयमं एवं वयासि—तुब्भे-वि णं भंते ! मुहपोत्तियाए मुहं बंधेह । तए णं से भगवं गोयमे मियाए देवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुहं बंधइ" इत्युक्त, तस्यायमाशयः—मृगापुत्रं दर्शयितुं प्रवृत्ता मृगादेवी भूमिगृहद्वारोद्घाटनकाले दुर्गन्धाघ्राणवारणाय चतुष्पुटेन वस्त्रेण स्वमुखं बध्नती भगवन्तं गौतमं जगाद—हे भदन्त ! त्वमपि मुख-पोतिकया मुखं बधान, ततः स भगवान् गौतमो मृगादेव्यैवमुक्तः सन् मुखपोति-कया मुखं बध्नाति (स्म) इति । इदमनेन सुस्पष्टं प्रतीयते—गौतमस्वामिनो मुखो-परि मुखवस्त्रिका बद्धा नासीत् किन्तु हस्त एव धृतेति, अत एव मृगादेवी दुर्गन्धा-घ्राणप्रतिरुन्धाय "तुब्भेवि णं भंते! मुहपोत्तियाए मुहं बंधेह" इति प्रार्थित-वतीत्याहुः' तन्न सम्यक्—उष्णमुखवायुतः सम्पातिमसूक्ष्मव्यापिजीवानां रक्षणार्थं

ऐसा लिखा है—" तए णं सा " इत्यादि।

इसका आशय यह है कि मृगादेवी जब मृगापुत्रको आहार देनेके लिए भोंयरेके किवाड़ खोलने लगी तब नाकमें दुर्गन्ध आनेका निवारण करनेके लिए चार पडवाला वस्त्र मुख पर बांधकर भगवान् गौतमस्वामीसे कहने लगी—' हे भदन्त । आप भी मुखवस्त्रिकासे मुख बांध लीजिये'। मृगादेवीका कथन सुनकर भगवान् गौतम मुखवस्त्रिकासे मुख बांधते हैं (बांध लिया) । 'इससे यह बिलकुल स्पष्ट है कि पहले गौतमस्वामीके मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बंधी हुई थी, किन्तु हाथमें थी, इसीसे मृगादेवीने मुखवस्त्रिका बांधनेकी प्रार्थना की थी । उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखकी उष्ण वायुसे संपातिम, सूक्ष्म और व्यापी जीवोंकी रक्षा करनेके लिए तथा बाह्य वायुकायकी

'तए णं सा' ઇત્યાદિ એનો આશય એ છે કે મૃગાદેવી જ્યારે મૃગાપુત્રને આહાર દેવાને માટે ભોયરાના કમાડ ખોલવા લાગી ત્યારે નાકમાં દુર્ગંધ આવતી નિવારવાને માટે ચાર પડવાળુ વસ્ત્ર મુખ પર બાંધીને ભગવાન્ ગૌતમ સ્વામીને કહેવા લાગી કે–હે ભદન્ત ! આપ પણ મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ બાંધી લ્યો મૃગાદેવીનું કથન સાંભળીને ભગવાન્ ગૌતમ મુખવસ્ત્રિકાથી મુખ બાંધે છે (બાંધી લીધુ) આથી એ તદ્દન સ્પષ્ટ થાય છે કે પહેલાં ગૌતમ સ્વામીના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધેલી નહોતી, કિન્તુ હાથમાં હતી, તેથી મૃગાદેવીએ મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાની પ્રાર્થના કરી હતી એમનું એ કહેવું બરાબર નથી કારણ કે મુખના ઉષ્ણ વાયુથી સંપાતિમ, સૂક્ષ્મ અને વ્યાપી જીવોની રક્ષા કરવાને માટે તથા બાહ્ય વાયુકાયની

अपरेण पायुपिधानं विधेयमिति भावः ।

पाणिनेत्यत्रैकवचनमपि पाणित्वजातावन्वयविवक्षयेत्युभयपाणिबोधकत्वेऽप्यनुकूलमेव ।

किञ्च पाणिशब्दस्य मुख्यार्थबाधाऽभावेन मुख्यार्थबाधमूलिका लक्षणापि नाङ्गीकरणीया भवति । तथा चोक्तसूक्ष्मव्यापिप्रभृतिविविधजीवहिंसावारणाय सदैव सदोरकमुखवस्त्रिकाधारणं नैतत्सूत्रतो विरुध्यते, किन्तु परिपिधायेत्यत्र परिशब्दप्रयोगेण भगवान् मुखवस्त्रिकापिहितस्यैव मुखस्य पिधानमावेदयतीत्यलं पल्लवितेन।

केचित्तु—'विपाकसूत्रे मृगापुत्राध्ययने—"तए णं सा मिया देवी तं कट्ठसगडियं अणुकड्ढेमाणीर जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छति, उवाग-

और नाक ढँक ले और दूसरे हाथसे अधोवायुकी यतना करे ।

"पाणिणा" यद्यपि एक वचन है तथापि पाणित्वजातिमें अन्वय होनेसे दोनों हाथोंका बोधक होता है, इसलिए हमारे मतके अनुकूल ही है ।

यहाँ 'पाणि' शब्दके मुख्य अर्थमें बाधा नहीं है अतः लक्षणा भी मानने योग्य नहीं है, क्योंकि लक्षणा वहीं होती है जहाँ मुख्य अर्थ में बाधा आती हो । इसलिए उक्त सूक्ष्म व्यापी वगैरह विविध जीवोंकी विराधनासे बचने के वास्ते सदैव डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधना इस सूत्रसे विरुद्ध नहीं है । परन्तु 'परिपेहित्ता' में 'परि' उपसर्गके प्रयोगसे प्रगट है कि महावीर प्रभुने मुँहपत्ति से पिहित (ढँके हुए) मुखको पुनः पिधान करना प्रतिपादित किया है ।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि विपाकसूत्रमे मृगापुत्रके अध्ययनमें

મુખ અને નાક ઢાંકી લેવા અને બીજા હાથથી અધોવાયુની યતના કરવી

पाणिणा જો કે એકવચન છે તોપણ પાણિત્વ જાતિમા અન્વય થવાથી બેઉ હાથનો બોધક થાય છે તેથી અમારે મતે તે શબ્દ અનુકૂળ જ છે

અહીં **पाणि** શબ્દના મુખ્ય અર્થમા બાધા નથી તેથી લક્ષણા પણ માનવા યોગ્ય નથી, કારણ કે લક્ષણા ત્યા થાય છે કે જ્યા મુખ્ય અર્થમા બાધા આવતી હોય તેથી કરીને ઉક્ત સૂક્ષ્મ, વ્યાપી વગેરે વિવિધ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે સદૈવ દોરા સાથે મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી એ સૂત્રથી વિરૂદ્ધ નથી પરન્તુ **परिपेहित्ता** અહીં **परि**॰ ઉપસર્ગના પ્રયોગથી સ્પષ્ટ થાય છે કે મહાવીર પ્રભુએ મુહપત્તિથી પિહિત (ઢાંકેલા) મુખને પુન પિધાન કરવાનું પ્રતિપાદિત કર્યું છે

કોઈ કોઇ એમ કહે છે કે વિપાકસૂત્રમા મૃગાપુત્રના અધ્યયનમા લખ્યુ છે—

किञ्च दुर्गन्धाघ्राणवारणोद्देशेनापि तत्प्रार्थना नोपपद्यते, मुखमात्रबन्धने कृतेऽपि घ्राणेन्द्रियस्याऽनावरणेन तदुद्देशसिद्ध्यसम्भवादिति मुखमात्रे बन्धनान्वयतात्पर्यस्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्तिनि घ्राणेऽपि लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति गम्यते। लक्षणाश्रयणस्याऽऽवश्यकत्वादेवाऽऽचाराङ्गसूत्रेऽपि–"से भिक्खू वा२ उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वायनिसग्गं वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता" इत्यादिपाठः सगच्छते, तत्राप्यास्यकशब्दे लक्षणाश्रयणाऽभावे तु पाणिनाऽऽस्यकपरिपिधाने सति तज्जन्योच्छ्वासादियतनाया उपपत्तावपि घ्राणजन्योच्छ्वासनिःश्वासक्षुतयतनाया अनुपपत्त्या तेषामागमविरोधः सुस्पष्ट एव।

लिए मुख बाधनेकी प्रार्थना करना युक्त नहीं है, क्योंकि मुख बाध लेने पर भी दुर्गन्धका आना नहीं रुक सकता, अतः यहाँ मुख बाँधनेका अर्थ अयुक्त होनेसे मुखके समीपवर्ती नासिका बाँधनेका तात्पर्य लक्षणासे विदित होता है। लक्षणाका आश्रय लेना आवश्यक होनेसे ही आचाराङ्गसूत्रका "से भिक्खू वा०" इत्यादि पाठ ठीक बैठता है।

वहाँ पर भी यदि 'आसय' (मुख) शब्दमें लक्षणाका आश्रय न लिया जाय तो हाथसे मुख ढँक लेने पर मुखजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिकी यतना सभव हो सकती है किन्तु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छींककी यतना नहीं हो सकती। अतः उन लोगोंके मतमें आगमसे विरोध होना स्पष्ट है।

પેસવા દેવાને માટે મુખ બાધવાની પ્રાર્થના કરવી યુક્ત નથી કારણ કે મુખ બાધી લેવા છતા દુર્ગંધ આવવાનું રોકી શકાતુ નથી એટલે અહી મુખ બાંધવાનો અર્થ અયુક્ત હોવાથી મુખની નિકટ આવેલુ નાક બાધવાનું તાત્પર્ય લક્ષણાથી વિદિત થાય છે લક્ષણાનો આશ્રય લેવો આવશ્યક હોવાથી જ આચારાગ સૂત્રનો "से भिक्खू वा०" ઇત્યાદિ પાઠ બરાબર બધ બેસે છે

તેમા પણ જો आसय (મુખ) શબ્દમા લક્ષણાનો આશ્રય લેવામા ન આવે તો હાથથી મુખ ઢાકી લેતા મુખજન્ય ઉચ્છ્વાસ નિશ્વાસ આદિની યતના સભવિત થઇ શકે છે, કિંતુ ઘ્રાણજન્ય ઉચ્છ્વાસ–નિશ્વાસ છીંકની યતના થઈ શકતી નથી એટલે એ લોકોના મતમા આગમથી વિરોધ થાય છે એ સ્પષ્ટ છે

वायवायुकायरक्षार्थं च मुखवस्त्रिकाबन्धनस्य सकलजैनागमतात्पर्यविषयतया मुखवस्त्रिका बद्धा नासीदिति कल्पनं तावन्मिथ्यात्वविल्सितं सकलागमविरुद्धं च। इदमत्र तत्त्वम्-दुर्गन्धाघ्राणवारणाय 'मुखं बधेह' इति प्रार्थनाऽनुपपन्ना, मुखेन गन्धग्रहणानुपपत्तेः, तस्मादत्र 'मुख' शब्दो न मुखमात्रपरः किन्तु यथा 'गङ्गाया घोषः' इत्यत्र गङ्गाशब्दस्य प्रवाहरूपे शक्यार्थे (मुख्यार्थे) घोषान्वय-तात्पर्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्तिनि तीरे लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति मन्यते, तथा मुखे बद्धाया एव तस्याः पुनस्तत्रैव बन्धनार्थप्रार्थना निष्फलतया नोपपद्यते,

रक्षा करनेके लिए मुखवस्त्रिका बांधना सब जैन-आगमोंमें तात्पर्यरूपसे विधान किया गया है, इसलिए 'उनके मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बंधी थी' ऐसा कहना मिथ्यात्वका ही प्रताप है और सब शास्त्रोंसे विरुद्ध है। तात्पर्य यह है कि दुर्गन्धसे बचनेके लिए मुख बांधनेकी प्रार्थना उचित नहीं है, क्योंकि मुखसे गन्धका ग्रहण नहीं होता। अतएव यहाँ मुखसे केवल मुखही अर्थ नहीं है। जैसे "गंगामें घोष (अहीरोंकी वसती) है। इस वाक्यसे ऐसा मतलब नहीं निकल सकता कि गंगाकी बीचधारमें अहीरोंकी वसती है, क्योंकि ऐसा होना अनुपपन्न है। अतएव जब वाक्यके मुख्य (शाब्दिक) अर्थमें बाधा आती हो तब लक्षणासे दूसरा मतलब लेना पडता है कि-गंगाके किनारे अही-रोंकी वसती है। इसीप्रकार मुखवस्त्रिकाका जब पहलेसे बंधी हुई है तब पुनः बांधनेकी प्रार्थना व्यर्थ पडती है, तथा दुर्गन्ध नाकमें न घुसने देनेके

રક્ષા કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકા બાંધવી એવું બધાં જૈન-આગમોમાં તાત્પર્યરૂપે વિધાન કરવામાં આવ્યું છે તેથી એમના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાંધેલી નહોતી એમ કહેવું એ મિથ્યાત્વનો જ પ્રતાપ છે અને બધાં શાસ્ત્રોથી વિરુદ્ધ છે તાત્પર્ય એ છે કે દુર્ગંધથી બચવાને માટે મુખ બાંધવાની પ્રાર્થના ઉચિત નથી, કારણ કે મુખથી ગંધનું ગ્રહણ થતું નથી એટલે અહીં મુખથી કેવળ મુખનો જ અર્થ થતો નથી જેમ "ગંગામાં ઘોષ (આહીરોની વસતી) છે" એ વાક્યથી એવો મતલબ નથી નીકળી શકતો કે ગંગાની વચ્ચે પાણીના પ્રવાહમાં આહીરોની વસતી છે, કેમકે એમ હોવું અનુપપન્ન છે એટલે કે જ્યારે વાક્યના મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થમાં બાધા આવે છે ત્યારે લક્ષણાથી બીજો મતલબ લેવો પડે છે, કે ગંગાને કિનારે આહીરોની વસતી છે એ રીતે મુખવસ્ત્રિકા જો પહેલેથી બાંધી રાખેલી છે તો પુનઃ બાંધવાની પ્રાર્થના વ્યર્થ બને છે તથા દુર્ગંધ ના...

किञ्च दुर्गन्धाघ्राणवारणोद्देशेनापि तत्प्रार्थना नोपपद्यते, मुखमात्रबन्धने कृतेऽपि घ्राणेन्द्रियस्याऽनावरणेन तदुद्देशसिद्ध्यसम्भवादिति मुखमात्रे बन्धनान्वयतात्पर्यस्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्त्तिनि घ्राणेऽपि लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति गम्यते। लक्षणाश्रयणस्याऽऽवश्यकत्वादेवाऽऽचाराङ्गसूत्रेऽपि-"से भिक्खू वा२ उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वायनिसग्गं वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता" इत्यादिपाठः सगच्छते, तत्राप्यास्यकशब्दे लक्षणाश्रयणाऽभावे तु पाणिनाऽऽस्यकपरिपिधाने सति तज्जन्योच्छ्वासादियतनाया उपपत्तावपि घ्राणजन्योच्छ्वासनिःश्वासक्षुतयतनाया अनुपपत्त्या तेषामागमविरोधः सुस्पष्ट एव।

लिए मुख बांधनेकी प्रार्थना करना युक्त नहीं है, क्योंकि मुख बांध लेने पर भी दुर्गन्धका आना नहीं रुक सकता, अतः यहाँ मुख बाँधनेका अर्थ अयुक्त होनेसे मुखके समीपवर्ती नासिका बाँधनेका तात्पर्य लक्षणासे विदित होता है। लक्षणाका आश्रय लेना आवश्यक होनेसे ही आचाराङ्गसूत्रका "से भिक्खू वा०" इत्यादि पाठ ठीक बैठता है।

वहाँ पर भी यदि 'आसय' (मुख) शब्दमें लक्षणाका आश्रय न लिया जाय तो हाथसे मुख ढँक लेने पर मुखजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिकी यतना सम्भव हो सकती है किन्तु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छींककी यतना नहीं हो सकती। अतः उन लोगोंके मतमें आगमसे विरोध होना स्पष्ट है।

પેસવા દેવાને માટે મુખ બાધવાની પ્રાર્થના કરવી યુક્ત નથી કારણ કે મુખ બાધી લેવા છતા દુર્ગંધ આવવાનું રોકી શકાતુ નથી એટલે અહી મુખ બાંધવાનો અર્થ અયુક્ત હોવાથી મુખની નિકટ આવેલુ નાક બાધવાનું તાત્પર્ય લક્ષણાથી વિદિત થાય છે લક્ષણાનો આશ્રય લેવો આવશ્યક હોવાથી જ આચારાગ સૂત્રનો "से भिक्खू वा०" ઇત્યાદિ પાઠ બરાબર બધ બેસે છે

તેમા પણ જો आसय (મુખ) શબ્દમા લક્ષણાનો આશ્રય લેવામા ન આવે તો હાથથી મુખ ઢાકી લેતા મુખજન્ય ઉચ્છ્વાસ નિશ્વાસ આદિની યતના સભવિત થઇ શકે છે, કિંતુ ઘ્રાણજન્ય ઉચ્છ્વાસ-નિશ્વાસ છીંકની યતના થઈ શકતી નથી એટલે એ લોકોના મતમા આગમથી વિરોધ થાય છે એ સ્પષ્ટ છે

घाणवायुकायरक्षार्थं च मुखवस्त्रिकाबन्धनस्य सकलजैनागमतात्पर्यविषयतया मुखवस्त्रिका बद्धा नासीदिति कल्पनं तावन्मिथ्यात्वविजृम्भितं सकलागमविरुद्धं च। इदमत्र तत्त्वम्-दुर्गन्धाघ्राणवारणाय 'मुहं बंधेह' इति प्रार्थनाऽनुपपन्ना, मुखेन गन्धग्रहणानुपपत्तेः, तस्मादत्र 'मुह' शब्दो न मुखमात्रपरः किन्तु यथा 'गङ्गायां घोषः' इत्यत्र गङ्गाशब्दस्य प्रवाहरूपे शक्यार्थे (मुख्यार्थे) घोषान्वय-तात्पर्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्त्तिनि तीरे लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति मन्यते, तथा मुखे बद्धाया एव तस्याः पुनस्तत्रैव बन्धनार्थप्रार्थना निष्फलतया नोपपद्यते,

रक्षा करनेके लिए मुखवस्त्रिका बांधना सब जैन-आगमोंमें तात्पर्यरूपसे विधान किया गया है, इसलिए 'उनके मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बंधी थी' ऐसा कहना मिथ्यात्वका ही प्रताप है और सब शास्त्रोंसे विरुद्ध है। तात्पर्य यह है कि दुर्गन्धसे बचनेके लिए मुख बांधनेकी प्रार्थना उचित नहीं है, क्योंकि मुखसे गन्धका ग्रहण नहीं होता। अतएव यहाँ मुखसे केवल मुखही अर्थ नहीं है। जैसे "गंगामें घोष (अहीरोंकी वसती) है। इस वाक्यसे ऐसा मतलब नहीं निकल सकता कि गंगाकी बीचधारमें अहीरोंकी वसती है, क्योंकि ऐसा होना अनुपपन्न है। अतएव जब वाक्यके मुख्य (शाब्दिक) अर्थमें बाधा आती हो तब लक्षणासे दूसरा मतलब लेना पडता है कि-गंगाके किनारे अही-रोंकी वसती है। इसीप्रकार मुखवस्त्रिकाका जब पहलेसे बंधी हुई है तब पुनः बांधनेकी प्रार्थना व्यर्थ पडती है, तथा दुर्गन्ध नाकमें न घुसने देनेके

રક્ષા કરવાને માટે મુખવસ્ત્રિકા બાધવી એવુ બધા જૈન-આગમોમા તાત્પર્યરૂપે વિધાન કરવામા આવ્યુ છે તેથી એમના મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધેલી નહોતી એમ કહેવું એ મિથ્યાત્વનો જ પ્રતાપ છે અને બધા શાસ્ત્રોથી વિરૂદ્ધ છે તાત્પર્ય એ છે કે દુર્ગંધથી બચવાને માટે મુખ બાધવાની પ્રાર્થના ઉચિત નથી, કારણ કે મુખથી ગંધનુ ગ્રહણ થતુ નથી એટલે અહીં મુખથી કેવળ મુખનો જ અર્થ થતો નથી જેમ "ગગામા ઘોષ (આહીરોની વસતી) છે" એ વાક્યથી એવી મતલબ નથી નીકળી શકતી કે ગગાની વચ્ચે પાણીના પ્રવાહમા આહીરોની વસતી છે, કેમકે એમ હોવુ અનુપપન્ન છે એટલે કે જ્યારે વાક્યના મુખ્ય (શાબ્દિક) અર્થમા બાધા આવે છે ત્યારે લક્ષણાથી બીજી મતલબ લેવી પડે છે, કે ગગાને કિનારે આહીરોની વસતી છે એ રીતે મુખવસ્ત્રિકા જો પહેલેથી બાધી રાખેલી છે તો પુન બાધવાની પ્રાર્થના વ્યર્થ બને છે તથા દુર્ગંધ નાકમા

किञ्च दुर्गन्धाघ्राणवारणोद्देशेनापि तत्प्रार्थना नोपपद्यते, मुखमात्रबन्धने कृतेऽपि घ्राणेन्द्रियस्याऽनावरणेन तदुद्देशसिद्ध्यसम्भवादिति मुखमात्रे बन्धनान्वयतात्पर्यस्यानुपपत्त्या तत्समीपवर्तिनि घ्राणेऽपि लक्षणावृत्त्या तात्पर्यमिति गम्यते। लक्षणाश्रयणस्याऽऽवश्यकत्वादेवाऽऽचाराङ्गसूत्रेऽपि—"से भिक्खू वा२ उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उड्डोए वा वायनिसग्गं वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता" इत्यादिपाठः सगच्छते, तत्राप्यास्यकशब्दे लक्षणाश्रयणाऽभावे तु पाणिनाऽऽस्यकपरिपिधाने सति तज्जन्योच्छ्वासादियतनाया उपपत्तावपि घ्राणजन्योच्छ्वासनिःश्वासक्षुतयतनाया अनुपपत्त्या तेषामागमविरोधः सुस्पष्ट एव।

लिए मुख बांधनेकी प्रार्थना करना युक्त नहीं है, क्योंकि मुख बांध लेने पर भी दुर्गन्धका आना नहीं रुक सकता, अतः यहाँ मुख बाँधनेका अर्थ अयुक्त होनेसे मुखके समीपवर्ती नासिका बाँधनेका तात्पर्य लक्षणासे विदित होता है। लक्षणाका आश्रय लेना आवश्यक होनेसे ही आचाराङ्गसूत्रका "से भिक्खू वा०" इत्यादि पाठ ठीक बैठता है।

वहाँ पर भी यदि 'आसय' (मुख) शब्दमें लक्षणाका आश्रय न लिया जाय तो हाथसे मुख ढँक लेने पर मुखजन्य उच्छ्वास निःश्वास आदिकी यतना सम्भव हो सकती है किन्तु घ्राणजन्य उच्छ्वास-निःश्वास छींककी यतना नहीं हो सकती। अतः उन लोगोंके मतमें आगमसे विरोध होना स्पष्ट है।

પેસવા દેવાને માટે મુખ બાંધવાની પ્રાર્થના કરવી યુક્ત નથી કારણ કે મુખ બાંધી લેવા છતાં દુર્ગંધ આવવાનું રોકી શકાતું નથી એટલે અહીં મુખ બાંધવાનો અર્થ અયુક્ત હોવાથી મુખની નિકટ આવેલું નાક બાંધવાનું તાત્પર્ય લક્ષણાથી વિદિત થાય છે લક્ષણાનો આશ્રય લેવો આવશ્યક હોવાથી જ આચારાંગ સૂત્રનો "से भिक्खू वा०" ઇત્યાદિ પાઠ બરાબર બંધ બેસે છે

તેમાં પણ જો आसय (મુખ) શબ્દમાં લક્ષણાનો આશ્રય લેવામાં ન આવે તો હાથથી મુખ ઢાંકી લેતાં મુખજન્ય ઉચ્છ્વાસ નિશ્વાસ આદિની યતના સંભવિત થઈ શકે છે, કિંતુ ઘ્રાણજન્ય ઉચ્છ્વાસ-નિશ્વાસ છીંકની યતના થઈ શકતી નથી એટલે એ લોકોના મતમાં આગમથી વિરોધ થાય છે એ સ્પષ્ટ છે

नन्वेव मुखवस्त्रिका भवतु बन्धनीया तथापि दोरकस्य बन्धने निबन्धनता ऽऽगमतो न लभ्यते, तथा च तत्प्रान्तभागेनापि बन्धन सुसम्पादम्, अलमेतेन दोरकपरिग्रहेणेति चेन्न, मुखवस्त्रिकाबन्धनस्य शास्त्रप्रतिपाद्यताया सिद्धाया तत्रा ल्पमेव दोरकमपेक्ष्य निरवद्यप्रकारेण तद्बन्धनसिद्धौ सत्या चारित्रमालिन्यापादक-प्रकारान्तराश्रयणस्यानौचित्यात्, मुखवस्त्रिकाप्रान्तभागेन शिरःपश्चाद्भागे न्यून तावशाद्ग्रन्थिनिरहमाप्तावुचिताधिकतन्मानकल्पनायामुत्सूत्रप्ररूपणापत्तेश्च ।

किञ्च-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाया बन्धन दोरकेणैव समुचित भगवद्भिमेत च,

प्रश्न-उक्त प्रकारसे मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधना तो सिद्ध हुआ किन्तु डोरा लगाकर बाँधना आगममें कहीं नहीं पाया जाता। इसलिए मुखवस्त्रिकाके छोर (पल्ला) से भी उसे बाँध सकते हैं, डोराकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर-उनका यह कथन ठीक नहीं है। क्योंकि जब यह सिद्ध हो चुका कि आगममे मुखवस्त्रिकाका बाँधना प्रतिपादित किया गया है तो छोटेसे डोरेसे निर्दोषतापूर्वक बन्धनकी सिद्धि होने पर चारित्रको मलिन करने वाले दूसरे तरीके काममें लाना अनुचित है। मुखवस्त्रिकाके छोरसे, सिरके पीछे न्यूनताके वशसे गाठ न लगा सकनेसे मुख वस्त्रिकाके उचित प्रमाणसे अधिकको कल्पना करनी पडेगी, और ऐसी कल्पना करनेसे उत्सूत्रप्ररूपणाका दोष लगेगा।

दूसरी बात यह है कि डोरेसे ही मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना

પ્રશ્ન—એ પ્રકારે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવાનુ તો સિદ્ધ થયુ, પરંતુ દોરો લગાવીને બાધવાનુ આગમમા કયાય મળી આવતુ નથી તેથી કરીને મુખ વસ્ત્રિકાના છેડાથી પણ તેને બાધી શકાય છે દોરાની શી આવશ્યકતા છે

ઉત્તર—એનું કથન બરાબર નથી, કારણ કે જો એ સિદ્ધ થઇ ચૂકયુ કે આગમમા મુખવસ્ત્રિકા બાધવાનુ પ્રતિપાદિત કરવામા આવ્યુ છે તો નાના સરખા દોરાથી નિર્દોષતા-પૂર્વક બધનની સિદ્ધિ થતા ચારિત્રને મલિન કરનારો બીજો પ્રકાર કામમા લેવો એ અનુચિત છે, મુખવસ્ત્રિકાના છેડાથી શિરની પાછળ ન્યૂનતાને કારણે ગાઠ ન બાધી શકાવાથી મુખવસ્ત્રિકાને ઉચિત પ્રમાણથી વધારે (લાબી) રાખવાની કલ્પના કરવી પડશે, અને એવી કલ્પના કરવાથી ઉત્સૂત્ર-પ્રરૂપણાનો દોષ લાગશે

બીજી વાત એ છે કે દોરાથી જ મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવી ઉચિત છે

लोके हि बन्धन गुणेनैव प्रसिद्ध तत्रापि यथायोग्यमेव सूत्रदोरकादयस्तदर्थमादीयन्ते, यथा पुष्पपुस्तकवसनादिबन्धनार्थी यथाक्रम मृदुमेव दोरकमुपादत्ते।

किञ्च-सामाचारीग्रन्थे-"मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्" इत्युक्त देवचन्द्रसूरिणाऽपि। अत्र मुखवस्त्रिकाया बन्धनक्रियाकर्मत्वेन प्रतिपादनात् तदौचित्याच्च सा दोरकरूपमनुरूपं करणमपेक्षत एव। तत्प्रान्तभागेन ग्रन्थिदाने तु तत्र करणत्वकल्पन देवचन्द्रसूरिविरुद्धमयुक्त च, कर्मत्व-करणत्वयोर्विरोधात्।

उचित है और यही बात भगवानको भी इष्ट है। लोकमे किसी वस्तुका बाँधना डोरेसे ही प्रसिद्ध है। उसमें भी यथायोग्य सूत्रका डोरा आदि बाँधनेके काम में लाये जाते हैं, जैसे फूल, पुस्तक या कपडा बाँधने वाले क्रमशः कोमल डोरेको ही काममें लाते हैं।

सामाचारी ग्रन्थ में देवचन्द्रसूरिने लिखा है-"मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्।" इस वाक्य में मुखवस्त्रिकाको बाँधनेरूप क्रियाका कर्म बताया है और वह उचित भी है। इसलिये वह (क्रिया) मुखवस्त्रिकाके अनुरूप डोरारूप करणकी अपेक्षा रखती है। तात्पर्य यह है कि जब मुखवस्त्रिका कर्म है तब करण भी कोई होना चाहिये और वह करण अर्थात् जिससे बाँधनारूप क्रिया होती है, डोरा ही होना चाहिए। गाठ लगानेमें करणत्वकी कल्पना करना देवचन्द्रसूरिसे विरुद्ध है और अयुक्त है, क्योंकि कर्मत्व और करणत्वका विरोध है।

અને એ જ વાત ભગવાનને પણ ઈષ્ટ છે લોકોમા કોઇ વસ્તુને બાધવાનુ કાર્ય દોરાથી જ પ્રસિદ્ધ છે તેમા પણ યથાયોગ્ય સૂતરને દોરો વગેરે બાધવાના કામમા લેવામા આવે છે, જેમકે ફૂલ, પુસ્તક યા કપડુ બાધનારા ક્રમશ કોમળ દોરાને જ કામમા લે છે

સામાચારી ગ્રથમા દેવચન્દ્રસૂરિએ લખ્યુ છે "मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्" એ વાકયમા મુખવસ્ત્રિકાને બાધવારૂપ ક્રિયાનુ કર્મ બતાવ્યુ છે અને તે ઉચિત પણ છે તેથી કરીને એ (ક્રિયા) મુખવસ્ત્રિકાને અનુરૂપ દોરારૂપ કરણની અપેક્ષા રાખે છે તાત્પર્ય એ છે કે જો મુખવસ્ત્રિકા કર્મ છે તો કરણ પણ હોવુ જોઇએ અને એ કરણ અર્થાત્ જેવડે બાધવારૂપ ક્રિયા થાય છે તે દોરો જ હોવો જોઇએ ગાઠ બાધવામા કરણત્વની કલ્પના કરવી એ દેવચન્દ્રસૂરિથી વિરૂદ્ધ છે અને અયુકત છે, કારણ કે કર્મત્વ અને કરણત્વનો વિરોધ છે

नन्वेवं मुखवस्त्रिका भवतु बन्धनीया तथापि दोरकस्य बन्धने निबन्धनता ऽऽगमतो न लभ्यते, तथा च तत्प्रान्तभागेनापि बन्धनं सुसम्पादम्, अलमेतेन दोरकपरिग्रहेणेति चेन्न, मुखवस्त्रिकाबन्धनस्य शास्त्रप्रतिपाद्यताया सिद्धाया तत्र लघमेव दोरकमपेक्ष्य निरवद्यप्रकारेण तद्बन्धनसिद्धौ सत्यां चारित्रमालिन्यापादक प्रकारान्तराश्रयणस्यानौचित्यात्, मुखवस्त्रिकाप्रान्तभागेन शिरःपश्चाद्भागे न्यून तावशाद्ग्रन्थिविरहप्रसङ्गात्तुचिताधिकतन्मानकल्पनायामुत्सूत्रप्ररूपणापत्तेश्च ।

किञ्च-मुखोपरि मुखवस्त्रिकाया बन्धनं दोरकेणैव समुचितं भगवदभिमतं च,

प्रश्न-उक्त प्रकारसे मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधना तो सिद्ध हुआ किन्तु डोरा लगाकर बाँधना आगममें कहीं नहीं पाया जाता । इसलिए मुखवस्त्रिकाके छोर (पल्ला) से भी उसे बाँध सकते हैं, डोराकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर-उनका यह कथन ठीक नहीं है । क्योंकि जब यह सिद्ध हो चुका कि आगममें मुखवस्त्रिकाका बाँधना प्रतिपादित किया गया है तो छोटेसे डोरेसे निर्दोषतापूर्वक बन्धनकी सिद्धि होने पर चारित्रको मलिन करने वाले दूसरे तरीके काममें लाना अनुचित है। मुखवस्त्रिकाके छोरसे, सिरके पीछे न्यूनताके वशसे गाठ न लगा सकनेसे मुख वस्त्रिकाके उचित प्रमाणसे अधिककी कल्पना करनी पडेगी, और ऐसी कल्पना करनेसे उत्सूत्रप्ररूपणाका दोष लगेगा ।

दूसरी बात यह है कि डोरेसे ही मुख पर मुखवस्त्रिका बाधना

પ્રશ્ન—એ પ્રકારે મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવાનુ તો સિદ્ધ થયુ, પરતુ દોરો લગાવીને બાધવાનુ આગમમા ક્યાય મળી આવતુ નથી તેથી કરીને મુખ વસ્ત્રિકાના છેડાથી પણ તેને બાધી શકાય છે દોરાની શી આવશ્યકતા છે

ઉત્તર—એનુ કથન બરાબર નથી, કારણ કે જો એ સિદ્ધ થઇ ચૂક્યુ કે આગમમા મુખવસ્ત્રિકા બાધવાનુ પ્રતિપાદિત કરવામા આવ્યુ છે તો નાના સરખા દોરાથી નિર્દોષતા—પૂર્વક બધનની સિદ્ધિ થતા ચારિત્રને મલિન કરનારો બીજો પ્રકાર કામમા લેવો એ અનુચિત છે, મુખવસ્ત્રિકાના છેડાથી શિરની પાછળ ન્યૂનતાને કારણે ગાઠ ન બાધી શકાવાથી મુખવસ્ત્રિકાને ઉચિત પ્રમાણથી વધારે (લાબી) રાખવાની કલ્પના કરવી પડશે, અને એવી કલ્પના કરવાથી ઉત્સૂત્ર-પ્રરૂપણાનો દોષ લાગશે

બીજી વાત એ છે કે દોરાથી જ મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા બાધવી ઉચિત છે

लोके हि वन्धन गुणेनैव प्रसिद्ध तत्रापि यथायोग्यमेव सूत्रदोरकादयस्तदर्थमादीयन्ते, यथा पुष्पपुस्तकवसनादिवन्धनार्थी यथाक्रम मृदुमेव दोरकमुपादत्ते।

किञ्च-सामाचारीग्रन्थे-"मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्" इत्युक्त देवचन्द्रसूरिणाऽपि। अत्र मुखवस्त्रिकाया वन्धनक्रियाकर्मत्वेन प्रतिपादनात् तदौचित्याच्च सा दोरकरूपमनुरूप करणमपेक्षत एव। तत्प्रान्तभागेन ग्रन्थिदाने तु तत्र करणत्वकल्पन देवचन्द्रसूरिविरुद्धमयुक्त च, कर्मत्व-करणत्वयोर्विरोधात्।

उचित है और यही बात भगवानको भी इष्ट है। लोकमे किसी वस्तुका बाँधना डोरेसे ही प्रसिद्ध है। उसमें भी यथायोग्य सूत्रका डोरा आदि बाँधनेके काम में लाये जाते हैं, जैसे फल, पुस्तक या कपड़ा बाँधने वाले क्रमश' कोमल डोरेको ही काममें लाते हैं।

सामाचारी ग्रन्थ में देवचन्द्रसूरिने लिखा है-"मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्।" इस वाक्य में मुखवस्त्रिकाको बाँधनेरूप क्रियाका कर्म बताया है और वह उचित भी है। इसलिये वह (क्रिया) मुखवस्त्रिकाके अनुरूप डोरारूप करणकी अपेक्षा रखती है। तात्पर्य यह है कि जब मुखवस्त्रिका कर्म है तब करण भी कोई होना चाहिये और वह करण अर्थात् जिससे बाँधनारूप क्रिया होती है, डोरा ही होना चाहिए। गाठ लगानेमें करणत्वकी कल्पना करना देवचन्द्रसूरिसे विरुद्ध है और अयुक्त है, क्योंकि कर्मत्व और करणत्वका विरोध है।

અને એ જ વાત ભગવાનને પણ ઇષ્ટ છે લોકોમા કોઇ વસ્તુને બાધવાનુ કાર્ય દોરાથી જ પ્રસિદ્ધ છે તેમા પણ યથાયોગ્ય સૂતરનો દોરો વગેરે બાધવાના કામમા લેવામા આવે છે, જેમકે ફૂલ, પુસ્તક યા કપડુ બાધનારા ક્રમશ કોમળ દોરાને જ કામમા લે છે

સામાચારી ગ્રથમા દેવચન્દ્રસૂરિએ લખ્યુ છે "मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य मुखे बद्ध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणम्" એ વાક્યમા મુખવસ્ત્રિકાને બાધવારૂપ ક્રિયાનુ કર્મ બતાવ્યુ છે અને તે ઉચિત પણ છે તેથી કરીને એ (ક્રિયા) મુખવસ્ત્રિકાને અનુરૂપ દોરારૂપ કરણની અપેક્ષા રાખે છે તાત્પર્ય એ છે કે જો મુખવસ્ત્રિકા કર્મ છે તો કરણ પણ હોવુ જોઇએ અને એ કરણ અર્થાત્ જેવડે બાધવારૂપ ક્રિયા થાય છે તે દોરો જ હોવો જોઇએ ગાઠ બાધવામા કરણત્વની કલ્પના કરવી એ દેવચન્દ્રસૂરિથી વિરૂદ્ધ છે અને અયુક્ત છે, કારણ કે કર્મત્વ અને કરણત્વનો વિરોધ છે

मुखवस्त्रिकाबन्धनार्थं कर्णयुगले शस्त्रेण छिद्रकरणं तु अतीवाऽज्ञानविजृम्भितम्, छिद्रकरणस्य शास्त्रानुक्ततया शस्त्रप्रयोगसाध्यतया दुष्करतया च तदपेक्षया निरवद्यत्वेन दोरकाश्रयणस्यैवौचित्यात्।

नन्वेवं दोरकाश्रयणे सदोरकमुखवस्त्रिकाधारकाणां भाषणकाले मुखोत्पतितजलकणैरार्द्रीभूतायां मुखवस्त्रिकायामशुचिस्थानतया समूर्च्छिमजीवा उत्पद्येरन्, हस्तेन मुखवस्त्रिकाधारणे तु न तथाविधजीवोत्पत्तिसम्भवः, तथा च दोरकपरिग्रहो दुराग्रहमात्रमिति चेन्न, मुखोत्पन्नजलकणानां भगवता जीवोत्पत्तिस्थानतयाऽनुक्त-

मुखवस्त्रिका बाँधनेके लिए-कानों में छेद कर लेना तो बड़ी भारी अज्ञानता है। क्योंकि साधुपनेके लिए किसी अवयवको छेदना शास्त्रों में निषिद्ध है और शस्त्रसाध्य होनेसे दुष्कर भी है। उसकी अपेक्षा निर्दोषरूपसे डोरेका आश्रय लेना ही उचित है।

प्रश्न-डोरेका आश्रय लेनेसे डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर धारण करनेवालोंकी मुखवस्त्रिका भाषण करते समय मुखसे निकलनेवाले पानी के कणोंसे गीली हो जायगी और गीली होनेसे अशुचिस्थान हो जानेके कारण वहाँ सम्मूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति होगी। हाथमें मुखवस्त्रिका धारण करनेसे सम्मूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिए डोराका ग्रहण करना दुराग्रहमात्र है।

उत्तर-ऐसा कहना उचित नहीं है। क्योंकि मुखसे निकलने वाले जलके कणोंको भगवानने जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है। ऐसा भी

મુખવસ્ત્રિકા બાંધવાને માટે કાનમાં છિદ્ર પડાવી લેવાં એ તો ભારે અજ્ઞાનતા છે, કારણ કે સાધુપણાને માટે કોઈ અવયવને છેદવું શાસ્ત્રમાં નિષિદ્ધ છે અને શસ્ત્રસાધ્ય હોવાથી દુષ્કર પણ છે એને બદલે નિર્દોષ રૂપે દોરાનો આશ્રય લેવો જ ઉચિત છે

પ્રશ્ન—દોરાનો આશ્રય લેવાથી દોરા-સહિત મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર ધારણ કરનારાઓની મુખવસ્ત્રિકા ભાષણ કરતી વખતે મુખમાંથી નીકળતા પાણીના કણોથી ભીની થઈ જશે અને ભીની થવાથી અશુચિસ્થાન થઈ જવાને કારણે ત્યાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિ થશે હાથમાં મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાથી સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિ થતી નથી તેથી કરીને દોરાનું ગ્રહણ કરવું એ દુરાગ્રહ થાય છે

ઉત્તર—એમ કહેવું ઉચિત નથી, કારણ કે મુખથી નીકળતા જળના કણોને ભગવાને જીવોત્પત્તિનું સ્થાન બતાવ્યું નથી, એમ પણ ન કહી શકાય

त्वात्। न चैतेषां जलकणानां खेलांशतयाऽशुचिस्थानतया वा जीवोत्पत्तिस्थानत्वं प्रतीयत इति वाच्यम्, तत्र खेलांशतामतीतेर्भ्रान्तिमूलकत्वात्। वैद्यकशास्त्रे हि खेलस्य मुखजलकणानां च भेदः सुस्पष्टः, तथाहि खेलशब्दः श्लेष्मण्यर्थे वर्तते, आमाशयो, हृदयं, कण्ठः, शिरः, सन्धयश्चैतानि श्लेष्मणः स्थानानि, तथाचोक्तं भावप्रकाशे–

"आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात्॥" इति,

अस्य स्वरूपं धर्माश्चोक्ताः सुश्रुतसंहितायां यथा–

"श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः, पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, [1]विदग्धो लवणः स्मृतः॥" इति,

नहीं कहना चाहिए कि वे जलकण खेलके अंश हैं, इसलिए अशुचिस्थान हैं और अशुचिस्थान होनेसे जीवोत्पत्तिके स्थान हैं। क्योंकि उन जलकणोंको खेल (कफ) का अंश समझना भ्रान्तिमूलक है। 'खेल' शब्दका अर्थ श्लेष्म है। आमाशय, हृदय, कंठ, सिर और सन्धियाँ श्लेष्मके स्थान हैं। भावप्रकाश में लिखा है–

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात्॥ १॥

अर्थात्–"आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर और संधिभाग, इन स्थानों में मनुष्यों को अनुक्रम से कफ रहता है।"

सुश्रुतसंहितामें श्लेष्मका स्वरूप और गुण इस प्रकार बताये हैं–

કે એ જળકણુ ખેલ (કફ) ના અંશરૂપ હોય છે અને તેથી અશુચિ-સ્થાન છે અને અશુચિ-સ્થાન હોવાથી જીવોત્પત્તિના સ્થાન છે એ જળકણોમાં કફનો અંશ સમજવો એ ભ્રાન્તિમૂલક છે खेल શબ્દનો અર્થ શ્લેષ્મ છે આમાશય, હૃદય, કંઠ, શિર અને સંધિ એ શ્લેષ્મનું સ્થાન છે ભાવપ્રકાશમાં લખ્યું છે કે–

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणां, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात्॥

અર્થાત્–" આમાશય હૃદય કંઠ શિર અને સંધિભાગ એ સ્થાનોમાં મનુષ્યોને અનુક્રમથી કફ રહે છે "

સુશ્રુતસંહિતામાં શ્લેષ્મનું સ્વરૂપ અને ગુણ આ પ્રકારે બતાવ્યા છે–

---

१ विदग्ध–पका या जला हुआ।

मुखवस्त्रिकाबन्धनार्थं कर्णयुगले शस्त्रेण छिद्रकरणं तु अतीवाऽज्ञानविजृम्भितम्, छिद्रकरणस्य शास्त्राननुमततया शस्त्रप्रयोगसाध्यतया दुष्करतया च तदपेक्षया निरवद्यत्वेन दोरकाश्रयणस्यैवौचित्यात्।

नन्वेवं दोरकाश्रयणे सदोरकमुखवस्त्रिकाधारकाणां भाषणकाले मुखोत्पतितजलकणैरार्द्रीभूतायां मुखवस्त्रिकायामशुचिस्थानतया सम्मूर्च्छिमजीवा उत्पद्येरन्, हस्तेन मुखवस्त्रिकाधारणे तु न तथाविधजीवोत्पत्तिसम्भवः, तथा च दोरकपरिग्रहो दुराग्रहमात्रमिति चेन्न, मुखोत्पन्नजलकणानां भगवता जीवोत्पत्तिस्थानतयाऽनुक्त

मुखवस्त्रिका बाँधनेके लिए-कानों में छेद कर लेना तो बड़ी भारी अज्ञानता है। क्योंकि साधुपनेके लिए किसी अवयवको छेदना शास्त्रों में निषिद्ध है और शस्त्रसाध्य होनेसे दुष्कर भी है। उसकी अपेक्षा निर्दोषरूपसे डोरेका आश्रय लेना ही उचित है।

प्रश्न-डोरेका आश्रय लेनेसे डोरा सहित मुखवस्त्रिका मुख पर धारण करनेवालोंकी मुखवस्त्रिका भाषण करते समय मुखसे निकलनेवाले पानी के कणोंसे गीली हो जायगी और गीली होनेसे अशुचिस्थान हो जानेके कारण वहाँ सम्मूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति होगी। हाथमें मुखवस्त्रिका धारण करनेसे सम्मूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिए डोराका ग्रहण करना दुराग्रहमात्र है।

उत्तर-ऐसा कहना उचित नहीं है। क्योंकि मुखसे निकलने वाले जलके कणोंको भगवान्ने जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है। ऐसा भी

મુખવસ્ત્રિકા બાધવાને માટે કાનમા છિદ્ર પડાવી લેવા એ તો ભારે અજ્ઞાનતા છે, કારણ કે સાધુપણાને માટે કોઇ અવયવને છેદવુ શાસ્ત્રમા નિષિદ્ધ છે અને શસ્ત્રસાધ્ય હોવાથી દુષ્કર પણ છે એને બદલે નિર્દોષ રૂપે દોરાનો આશ્રય લેવો જ ઉચિત છે

પ્રશ્ન—દોરાનો આશ્રય લેવાથી દોરા-સહિત મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર ધારણ કરનારાઓની મુખવસ્ત્રિકા ભાષણ કરતી વખતે મુખમાથી નીકળતા પાણીના કણોથી ભીની થઇ જશે અને ભીની થવાથી અશુચિસ્થાન થઇ જવાને કારણે ત્યા સમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિ થશે હાથમા મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાથી સમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિ થતી નથી તેથી કરીને દોરાનુ ગ્રહણ કરવુ એ દુરાગ્રહ થાય છે

ઉત્તર—એમ કહેવુ ઉચિત નથી, કારણ કે મુખથી નીકળતા જળના કણોને ભગવાને જીવોત્પત્તિનુ સ્થાન બતાવ્યુ નથી, એમ પણ ન કહી શકાય

त्वात्। न चैतेषा जलकणाना खेलागततयाऽशुचिस्थानतया वा जीवोत्पत्तिस्थानत्व प्रतीयत इति वाच्यम्, तत्र खेलागततामतोतेर्भ्रान्तिमूलकत्वात्। वैद्यकशास्त्रे हि खेलस्य मुखजलकणाना च भेद सुस्पष्ट, तथाहि खेलशब्दः श्लेष्मण्यर्थे वर्त्तते, आमाशयो, हृदय, कण्ठ, शिर., सन्धयश्चैतानि श्लेष्मण. स्थानानि, तथाचोक्त भावप्रकाशे–

"आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणा, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥" इति,

अस्य स्वरूप धर्माश्चोक्ताः सुश्रुतसहिताया यथा–

"श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः, पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्ध' स्याद्, 'विदग्धो लवणः स्मृतः ॥" इति,

नहीं कहना चाहिए कि वे जलकण खेलके अश हैं, इसलिए अशुचिस्थान हैं और अशुचिस्थान होनेसे जीवोत्पत्तिके स्थान हैं। क्योंकि उन जलकणोंको खेल (कफ) का अश समझना भ्रान्तिमूलक है। 'खेल' शब्दका अर्थ श्लेष्म है। आमाशय, हृदय, कठ, सिर और सन्धियाँ श्लेष्मके स्थान हैं। भावप्रकाश में लिखा है–

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणा, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥ १ ॥

अर्थात्– "आमाशय, हृदय, कण्ठ, शिर और सधिभाग, इन स्थानों में मनुष्यों को अनुक्रम से कफ रहता है।"

सुश्रुतसहितामें श्लेष्मका स्वरूप और गुण इस प्रकार बताये हैं–

કે એ જળકણ ખેલ (કફ) ના અશરૂપ હોય છે અને તેથી અશુચિ–સ્થાન છે અને અશુચિસ્થાન હોવાથી જીવોત્પત્તિના સ્થાન છે એ જળકણોમા કફનો અશ સમજવો એ ભ્રાન્તિમૂલક છે खेल શબ્દનો અર્થ શ્લેષ્મ છે આમાશય, હૃદય, કઠ, શિર અને સધિ એ શ્લેષ્મનુ સ્થાન છે ભાવપ્રકાશમા લખ્યુ છે કે–

आमाशयेऽथ हृदये, कण्ठे शिरसि सन्धिषु।
स्थानेष्वेषु मनुष्याणा, श्लेष्मा तिष्ठत्यनुक्रमात् ॥

અર્થાત–" આમાશય હૃદય કઠ શિર અને સાધભાગ એ સ્થાનોમા મનુષ્યોને અનુક્રમથી કફ રહે છે "

સુશ્રુતસહિતામા શ્લેષ્મનુ સ્વરૂપ અને ગુણ આ પ્રકારે બતાવ્યા છે–

---

१ विदग्ध–पका या जला हुआ।

मुखजलस्य तु रसनामूलं तदग्रभागश्चेतिद्वयमुत्पत्तिस्थानम्, इदं च चर्वितस्यान्नस्य पिण्डीभवने कण्ठनलिकयाऽधोनयने पाचने च निमित्तम्। अत एव योगचिन्तामणौ प्रथमाध्याये–

" रसाऽसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।

इत्युक्त्वा कस्य धातोः किं मलम्? इति प्रदर्शयितुं पुनरभिहितम्–

" जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्, " इत्यादि।

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, विदग्धो लवणः स्मृतः ॥१

अर्थात्–श्लेष्म (कफ) सफेद, गुरु, चिकना, पिच्छल और शीत होता है। नहीं जला हुआ या कच्चा कफ मधुर होता है और पका या जला हुआ नमकीन होता है।

मुखजलके केवल दो उत्पत्तिस्थान हैं–(१) जिह्वाका मूल और (२) जिह्वाका अग्रभाग। यह मुखजल चबाये हुए अन्नको पिण्ड बनाने तथा कण्ठकी नलीके नीचे लेजाने तथा पचानेका कारण है। इसीसे योगचिन्तामणि ग्रन्थके प्रथम अध्यायमें "रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः" ऐसा कह कर किस धातुका क्या मल है, सो बतानेके लिए फिर कहा है–" जिह्वानेत्रकपोलानां, जलं पित्तं च रञ्जकम्"। अर्थात्

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्यात् विदग्धो लवणः स्मृतः ॥

અર્થાત્–" શ્લેષ્મ (કફ) સફેદ, ગુરૂ, ચિકણો, પિચ્છલ, અને શીત હોય છે નહિ બળેલો યા કાચો કફ મધુર હોય છે અને પાકો યા બળેલો કફ ખારો હોય-છે "

મુખજળના માત્ર બે ઉત્પત્તિ સ્થાન હોય છે (૧) જીહ્વાનુ મૂળ અને (૨) જીહ્વા (જીભ)નો અગ્રભાગ એ મુખજળ ચાવેલા અન્નનો પિંડ બનાવવાનુ તથા કંઠની નળીની નીચે લઇ જવાનુ તથા પચાવવાનુ કારણ છે તેથી યોગ ચિન્તામણિ ગ્રથના પ્રથમ અધ્યાયમા रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः એમ કહીને કઇ ધાતુનો કયો મળ છે તે બતાવવાને માટે પછી કહ્યુ છે કે जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्। અર્થાત્—જીભ નેત્ર અને ગાલનુ જલ

जिह्वानेत्रकपोलानां जलं रसधातोर्मलं, रञ्जकं पित्तं रुधिरस्य मलमिति तदर्थः। इत्थं जिह्वाकपोलदेशे जायमानं जलं मुखजलं, तदीयकणिका एव भाषणकाले कदाचिद् बहिरुत्पतन्तीति विशदीभवति, श्लेष्मा तु न कस्यचिद् धातोर्मलं, स हि दोषत्रयान्तःपातित्वाचत्स्वरूपम्, अत एव योगचिन्तामणौ प्रथमाध्याये धातुमलतः पृथक्कृत्य दोषत्रयोपादानं कृतं, यथा शारीरकप्रकरणे—

" कलाः सप्ताशयाः सप्त, धातवः सप्त तन्मलाः।
सप्तोपधातवः सप्त, त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः॥ १ ॥
त्रयो दोषा नवशतं, स्नायूनां सन्धयस्तथा।
दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च द्विशतं मतम्॥ २ ॥
सप्तोत्तरं मर्मशतं, शिराः सप्तशतं तथा।
चतुर्विंशतिराख्याता, धमन्यो रसवाहिकाः॥ ३ ॥
मांसपेश्यः समाख्याता, नृणां पञ्चशतं बुधैः।
स्त्रीणां च त्रिंशत्यधिकाः, कण्डराश्चैव षोडश॥ ४ ॥
नृदेहे दश रन्ध्राणि, नारीदेहे त्रयोदश।
एतत्समासतः प्रोक्तं, विस्तरेणाधुनोच्यते॥ ५ ॥" इति।

जीभ, नेत्र और गालका जल रसधातुका मल है तथा रजक पित्त रुधिरका मल है। इसप्रकार जीभ और गालोंमें उत्पन्न होनेवाला जल मुखका जल कहलाता है और उसीकी कणिका भाषण करते समय कभी-कभी बाहर निकल जाती है, यह बात स्पष्ट है। श्लेष्मा किसी धातुका मल नहीं है, वह तीन दोषोंमेंसे एक दोष है, इसीसे योगचिन्तामणिमें धातुओंके मलोंसे पृथक् करके तीन दोष अलग बताये हैं, देखो शारीरक प्रकरण "कलाः सप्ताशयाः" इत्यादि श्लोक ५।

રસ ધાતુનો મલ છે તથા રજક પિત્ત રૂધિરનો મલ છે એ રીતે જીભ અને ગાલમા ઉત્પન્ન થનારૂ જલ મુખનું જલ કહેવાય છે અને તેની કણિકાઓ ભાષણ કરતી વખતે કોઇ-કોઇ વાર બહાર નીકળી જાય છે તે વાત સ્પષ્ટ છે શ્લેષ્મ કોઇ ધાતુનો મલ નથી, તે ત્રણ દોષોમાનો એક દોષ છે તેથી યોગચિન્તા મણિમા ધાતુઓના મલોથી જૂદા પાડીને ત્રણ દોષ અલગ બતાવેલા છે જુઓ શારીરક પ્રકરણ " कलाः सप्ताशयाः " ઇત્યાદિ શ્લોક ૫

मुखजलस्य तु रसनामूलं तदग्रभागश्चेतिद्वयमुत्पत्तिस्थानम्, इदं च चर्वित स्यान्नस्य पिण्डीभवने कण्ठनलिकयाऽधोनयने पाचने च निमित्तम्। अत एव योगचिन्तामणौ प्रथमाध्याये–

" रसाऽसृद्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।

इत्युक्त्वा कस्य धातोः किं मलम्? इति प्रदर्शयितुं पुनरभिहितम्–

" जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्," इत्यादि।

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्, विदग्धो लवणः स्मृतः ॥१

अर्थात्–श्लेष्म (कफ) सफेद, गुरु, चिकना, पिच्छल और शीत होता है। नहीं जला हुआ या कच्चा कफ मधुर होता है और पका या जला हुआ नमकीन होता है।

मुखजलके केवल दो उत्पत्तिस्थान हैं–(१) जिह्वाका मूल और (२) जिह्वाका अग्रभाग। यह मुखजल चबाये हुए अन्नको पिण्ड बनाने तथा कण्ठकी नलीके नीचे लेजाने तथा पचानेका कारण है। इसीसे योग चिन्तामणि ग्रन्थके प्रथम अध्यायमें "रसासृद्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः" ऐसा कह कर किस धातुका क्या मल है, सो बतानेके लिए फिर कहा है–" जिह्वानेत्रकपोलानां, जलं पित्तं च रञ्जकम्"। अर्थात्

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च।
मधुरस्त्वविदग्धः स्यात् विदग्धो लवणः स्मृतः ॥

अर्थात्–" श्लेष्म (कफ) सफेद, गुरु, चिकणो, पिच्छल, अने शीत होय छे नहि बळेलो या काचो कफ मधुर होय छे अने पाको या बळेलो कफ खारो होय-छे "

मुखजळना मात्र बे उत्पत्ति स्थान होय छे (१) जीहानु मूळ अने (२) जीहा (जीभ)नो अग्रभाग ए मुखजळ चावेला अन्ननो पिंड बनाववानुं तथा कंठनी नळीनी नीचे लइ जवानुं तथा पचाववानु कारण छे तेथी योग चिन्तामणि ग्रंथना प्रथम अध्यायना रसासृद्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः एम कहीने कइ धातुनो कयो मळ छे ते बतावावाने माटे पछी कह्यु छे के जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्। अर्थात्—जीभ नेत्र अने गालना जल

शब्दानुपादानात् । वस्तुतस्तु निष्ठीवनशब्दस्य भावल्युडन्ततया प्रक्षेपणात्मकनिरसनक्रियावाचित्वं युक्तम् , अतएव—

" रक्तनिष्ठीवनं दाहो, मोहश्छर्दन-विभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ " इति,

रक्तज्वरलक्षणं प्रतिपादयता माधवनिदानकृता निर्गमनेऽप्यर्थे निष्ठीवनशब्दः प्रयुक्तः । कवलीकृतस्य द्रव्यस्य मुखान्निरसनेऽपि निष्ठीवनत्वमुक्तं, भावप्रकाशे यथा—

" वातपित्तकफघ्नस्य द्रव्यस्य कवलं मुखे ।
अर्धं निःक्षिप्य सचर्व्य, निष्ठीवेत् कवले विधिः ॥ " इति,

तिब्बअकब्बराख्ये वैद्यकग्रन्थे पञ्चमाध्याये प्रथमप्रकरणेऽपि जिह्वामूलतो

निष्ठीवनका वास्तविक अर्थ है क्षेपण करना, या त्यागना। इसीसे 'माधवनिदान' कर्ताने रक्तज्वर के लक्षण बताते समय निकलनेके अर्थमें निष्ठीवन शब्दका प्रयोग किया है–

रक्तनिष्ठीवनं दाहो, मोहश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशमें कौर (कवल)के बाहर निकालनेको निष्ठीवन कहा है– "वातपित्त०" इत्यादि,

"तिब्ब अकब्बर" नामक यूनानी वैद्यक ग्रन्थमें भी जिह्वाके मूलसे मुखजलकी उत्पत्ति स्पष्टरूपसे बताई गई है "जीभकी जड़में एक मासका लोथडा है जिसमेसे लुआब और मुखका पानी निकलता है और जीभको तर रखता है और खानेकी चीजोंमें मिला करता है।" तथा

અર્થ છે–ક્ષેપણુ કરવુ યા ત્યાગવુ તેથી 'માધવનિદાન' કર્તાએ રક્તજ્વરના લક્ષણો બતાવતી વખતે નીકલવાના અર્થમા નિષ્ઠીવન શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે

रक्तनिष्ठीवनं दाहो, मोहश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिटिका तृष्णा, रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ १ ॥

ભાવપ્રકાશમા કોળીયાનુ બહાર નીકાળવુ એને નિષ્ઠીવન કહેલ છે — वातपित्त० ઇત્યાદિ

"તિબ્બ અકબ્બર" નામક યૂનાની વૈદ્યક ગ્રંથમા પણ જીહ્વાના મૂલમાથી મુખજલની ઉત્પત્તિ સ્પષ્ટરૂપે બતાવી છે "જીભના મૂળમા માસનો લોચો છે જેમાથી લુઆબ અને મુખનુ પાણી નીકળે છે અને જીભને તર રાખે છે અને

एव च मुखजलस्य खेलतो भेदः स्पष्ट एव । न च खेलशब्दस्य निष्ठीवनार्थकतया निष्ठीवनात्मके मुखजले खेलशब्दप्रवृत्त्या तस्यापि जीवोत्पत्तिस्थानत्व दुर्वारमेवेति वाच्यम्, निष्ठीव्यते=निरस्यते=प्रक्षिप्यते यत्तन्निष्ठीवनमिति 'नि'पूर्वकात् 'ष्ठीवु निरसने' इति धातोर्बाहुल्कात् कर्मणि ल्युटि निष्पन्नस्य निष्ठीवनशब्दस्य योगेन मुखनिर्गतपदार्थमात्रे प्रयोगो भवति, एव च निष्ठीवनशब्दस्यैव प्रक्षिप्तखेलाद्यर्थकत्व सिध्यति न तु खेलशब्दस्य निष्ठीवनार्थकत्वम्, तथा च मुखनिर्गतजलकणेषु न जीवोत्पत्तिसिद्धिः, जीवोत्पत्तिस्थानपरिगणने निष्ठीवन-

इस प्रकार स्पष्ट है कि मुखका जल श्लेष्मसे भिन्न है।

प्रश्न—'खेल' शब्दका अर्थ 'थूक' है, और थूक तथा मुखजल एक ही है। अतः मुखजलमें खेल शब्दकी प्रवृत्ति होनेसे वह जीवोत्पत्तिका स्थान होगा ही।

उत्तर—ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि 'निष्ठीवन' शब्द 'नि'-उपसर्गपूर्वक 'ष्ठीवु निरसने' धातुसे बना है। अतः मुखसे निकलने वाला कोई भी पदार्थ निष्ठीवन कहलाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि त्यागा हुआ खेल आदि निष्ठीवन कहला सकता है किन्तु निष्ठीवन 'खेल' नहीं कहला सकता। इसलिए मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें जीवोत्पत्तिकी सिद्धि नहीं होती, क्योंकि जीवोत्पत्तिके स्थानोंमे 'निष्ठीवन' शब्द नहीं दिया है। वास्तवमें निष्ठीवन शब्द भावल्युडन्त होनेसे प्रक्षेपणरूप निरसन क्रियाका वाची है, ऐसा मानना युक्त है। अर्थात्

એ રીતે સ્પષ્ટ થાય છે કે મુખનુ જલ એ શ્લેષ્મથી ભિન્ન છે

પ્રશ્ન—'ખેલ' શબ્દનો અર્થ 'થૂક' છે, અને થૂક તથા મુખજલ એક જ છે એટલે મુખજલમા ખેલ શબ્દની પ્રવૃત્તિ થવાથી તે જીવોત્પત્તિનુ સ્થાન થશે જ

ઉત્તર—એમ કહેવુ બરાબર નથી નિષ્ઠીવન શબ્દ 'નિ'–ઉપસર્ગ–પૂર્વક ષ્ઠીવુ નિરસને ધાતુથી બન્યો છે એટલે મુખથી નીકળતો કોઇ પદાર્થ નિષ્ઠીવન કહેવાય છે તેથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે ત્યાગેલો ખેલ આદિ નિષ્ઠીવન કહી શકાય છે, પરન્તુ નિષ્ઠીવન 'ખેલ' નથી કહી શકાતો તેથી મુખથી નીકળતા જલકણોમા જીવોત્પત્તિની સિદ્ધિ થતી નથી, કારણ કે જીવોત્પત્તિના સ્થાનોમા 'નિષ્ઠીવન' શબ્દ આપ્યો નથી વસ્તુત નિષ્ઠીવન શબ્દ ભાવલ્યુડન્ત હોવાથી પ્રક્ષેપણરૂપ નિરસન ક્રિયાનો વાચક છે એમ માનવુ યુક્ત છે અર્થાત્ નિષ્ઠીવનનો વાસ્તવિક

अत्र " सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इत्यस्य " सर्वेषु चैव अशुचिस्थानेषु " इति संस्कृतम् , अशुचीनां स्थानानि अशुचिस्थानानि तेषु=अशुचिस्थानेषु, यत्रानेकेषामशुचीनामुच्चारादीनां स्थितिस्तत्रेत्यर्थः ।

अयमाशयः—यथा पृथिव्यादीनां परकायशस्त्रेण परिणतत्वे सति सचित्तत्वमपगच्छति तथोच्चारादीनां प्रस्रवणादिसाङ्कर्ये सति सम्मूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वापगमः स्यादिति शिष्यशङ्कासंभावनायां तन्निरसनार्थमेव पृथक्कृत्येदमुक्तम्—"सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इति, न त्वत्रानुक्तानामशुचीनां स्थानेषु, इति तदाशयः । एतेनोच्चारादीनां सम्मूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वादेव तत्साङ्कर्येऽपि तादृशजीवोत्पत्ति-

यहाँ सब अशुचियोंके स्थानोंसे तात्पर्य यह है कि जहाँ उच्चार आदि अनेक अशुचियोंकी स्थिति हो वह स्थान ।

मतलब यह कि–परकाय शस्त्रसे परिणत होने पर पृथिवीकाय आदि अचित्त हो जाते हैं, उसी प्रकार जब उच्चार आदि प्रस्रवण आदिके साथ मिल जाते हैं, तब उनमें सम्मूर्च्छिम जीवोंको उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है या नहीं ? शिष्यके ऐसे प्रश्नकी संभावना होने पर खुलासा करनेके लिए अलग कहा है कि "सब अशुचिस्थानोंमें।" इस वाक्यका "उक्त अशुचियोंके स्थानोंके सिवाय अन्य स्थानोंमें" यह अर्थ नहीं है। उपर्युक्त कथन करनेसे यह स्वयं सिद्ध हो गया कि जब उच्चार आदि सम्मूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं तब उन स्थानोंमेंसे यदि दो या तीन आदि मिल जावें तो भी वे जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान रहेंगे। अतएव जो लोग

અહીં સર્વ અશુચિઓના સ્થાનોનું તાત્પર્ય એ છે કે જ્યાં ઉચ્ચાર આદિ અનેક અશુચિઓની સ્થિતિ હોય તે સ્થાન

મતલબ એ છે કે–પરકાય શસ્ત્રથી પરિણત થતાં પૃથિવીકાય આદિ અચિત્ત થઈ જાય છે, એ રીતે જ્યારે ઉચ્ચાર આદિ પ્રસવણ આદિની સાથે મળી જાય છે, ત્યારે તેમાં સમ્મૂર્ચ્છિમ જીવોને ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિ રહે છે કે નહિ ? શિષ્યના એવા પ્રશ્નની સંભાવના હોવાથી ખુલાસો કરવાને માટે જૂદું કહ્યું છે કે "સર્વ અશુચિસ્થાનોમાં " આ વાક્યનો અર્થ "ઉક્ત અશુચિઓના સ્થાનો સિવાય અન્ય સ્થાનેમાં ' એવો નથી ઉપર મુજબ કથન કરવાથી એ સ્વયંસિદ્ધ થઈ ગયું કે જો ઉચ્ચાર આદિ સમ્મૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિના સ્થાન છે તો એ સ્થાનોમાં જો બે યા ત્રણ આદિ મળી જાય તો પણ તે જીવોની ઉત્પત્તિના સ્થાનો રહેશે તેથી કરીને જે લોકો એમ કહે છે કે પૂર્વોક્ત અર્થ કરવાથી

मुखजलोत्पत्तिः स्पष्टं प्रतिपादिता। शरीरविज्ञाने च मुखजलस्य पाचनशक्तिमत्त्वं प्रकटितम्।

अशुचिस्थानतया मुखजलस्य जीवोत्पत्तिस्थानत्वापादनं तु सर्वथा निर्मूलमेव, तथाहि-यावन्ति जीवोत्पत्तिस्थानानि सन्ति तानि प्रज्ञापनासूत्रे निर्दिष्टानि, यथा-

" उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा पूयेसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा विगयजीवकलेवरेसु वा थीपुरिससंजोएसु वा णगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु, एत्थ णं समुच्छिममणुस्सा समुच्छंति " इति।

'शरीर विज्ञान' नामक ग्रन्थमें मुखजलके विषयमें लिखा है कि उसमें पचानेकी शक्ति होती है।

'अशुचिस्थान होनेसे मुखजल जीवोत्पत्तिका स्थान है' ऐसा कहना बिलकुल बेजड है। जीवोत्पत्तिके जितने स्थान हैं उन सबका निर्देश प्रज्ञापनासूत्रमें किया है " उच्चारेसु वा " इत्यादि,

अर्थात् " उच्चार (विष्ठा) मे, प्रस्रवण (मूत्र) मे, कफमे, नाकके मैलमें, कैमें, पित्तमें, पीवमें, खूनमे, शुक्रमे, शुक्रपुद्गलपरिशाट (शुष्क शुक्र-पुद्गलोके फिर भीने होने) मे, प्राणीकी लाशमें, स्त्रीपुरुषके संयोगमे, नगरकी गटरमें, इन सब अशुचियोंके स्थानोमें सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं।"

ખાવાની ચીજોમાં મળ્યા કરે છે " અને "શરીરવિજ્ઞાન' નામના ગ્રંથમાં મુખજલના વિષયમાં લખ્યું છે કે એમાં પચાવવાની શક્તિ હોય છે

'અશુચિસ્થાન હોવાથી મુખજલ જીવોત્પત્તિનું સ્થાન છે' એમ કહેવું બિલકુલ અમૂલક છે જીવોત્પત્તિના જેટલા સ્થાનો છે એ બધાનો નિર્દેશ પ્રજ્ઞાપના-સૂત્રમાં કરેલો છે उच्चारेसु वा ઇત્યાદિ " ઉચ્ચાર (વિષ્ઠા)મા, પ્રસ્રવણ (પિસાબ)મા, કફમા, નાકના લીંટમા, વમન-ઉલટીમા, પિત્તમા, પરૂમા, લોહીમા, શુક્ર-વીર્યમા, શુક્રપુદ્ગલપરિશાટમા (શુક્રના સુકાયલા પુદ્ગલ ભીના થવામા), પ્રાણીના મુડદામા, સ્ત્રીપુરુષના સમાગમમા, નગરની ખાળો (ગટરો)મા, એ બધા અશુચિના સ્થાનોમા સમૂર્ચ્છિમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન થાય છે "

अत्र " सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इत्यस्य " सर्वेषु चैव अशुचिस्थानेषु " इति संस्कृतम् , अशुचीनां स्थानानि अशुचिस्थानानि तेषु=अशुचिस्थानेषु, यत्रानेकेषामशुचीनामुच्चारादीनां स्थितिस्तत्रेत्यर्थः ।

अयमाशयः—यथा पृथिव्यादीनां परकायशस्त्रेण परिणतत्वे सति सचित्तत्वमपगच्छति तथोच्चारादीनां प्रस्रवणादिसाङ्कर्ये सति संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वापगमः स्यादिति शिष्यशङ्कासम्भावनायां तन्निरसनार्थमेव पृथक्कृत्येदमुक्तम्—"सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इति, न त्वत्रानुक्तानामशुचीनां स्थानेषु, इति तदाशयः । एतेनोच्चारादीनां संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वादेव तत्साङ्कर्येऽपि तादृगजीवोत्पत्ति-

---

यहाँ सब अशुचियोंके स्थानोंसे तात्पर्य यह है कि जहाँ उच्चार आदि अनेक अशुचियोंकी स्थिति हो वह स्थान ।

मतलब यह कि—परकाय शस्त्रसे परिणत होने पर पृथिवीकाय आदि अचित्त हो जाते हैं, उसी प्रकार जब उच्चार आदि प्रस्रवण आदिके साथ मिल जाते हैं, तब उनमें संमूर्च्छिम जीवोंको उत्पन्न करनेकी शक्ति रहती है या नहीं ? शिष्यके ऐसे प्रश्नकी संभावना होने पर खुलासा करनेके लिए अलग कहा है कि "सब अशुचिस्थानोंमें।" इस वाक्यका "उक्त अशुचियोंके स्थानोंके सिवाय अन्य स्थानोंमें" यह अर्थ नहीं है। उपर्युक्त कथन करनेसे यह स्वयं सिद्ध हो गया कि जब उच्चार आदि संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं तब उन स्थानोंमेंसे यदि दो या तीन आदि मिल जावें तो भी वे जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान रहेंगे। अतएव जो लोग

અહીં સર્વ અશુચિઓના સ્થાનોનું તાત્પર્ય એ છે કે જ્યાં ઉચ્ચાર આદિ અનેક અશુચિઓની સ્થિતિ હોય તે સ્થાન

મતલબ એ છે કે—પરકાય શસ્ત્રથી પરિણત થતાં પૃથિવીકાય આદિ અચિત્ત થઇ જાય છે, એ રીતે જ્યારે ઉચ્ચાર આદિ પ્રસ્રવણ આદિની સાથે મળી જાય છે, ત્યારે તેમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવોને ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિ રહે છે કે નહિ ? શિષ્યના એવા પ્રશ્નની સંભાવના હોવાથી ખુલાસો કરવાને માટે જૂદું કહ્યું છે કે "સર્વ અશુચિસ્થાનોમાં " આ વાક્યનો અર્થ "ઉક્ત અશુચિઓના સ્થાનો સિવાય અન્ય સ્થાનેમાં " એવો નથી ઉપર મુજબ કથન કરવાથી એ સ્વયંસિદ્ધ થઇ ગયું કે જો ઉચ્ચાર આદિ સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિના સ્થાન છે તો એ સ્થાનોમાં જો બે યા ત્રણ આદિ મળી જાય તો પણ તે જીવોની ઉત્પત્તિના સ્થાનો રહેશે તેથી કરીને જે લોકો એમ કહે છે કે પૂર્વોક્ત અર્થ કરવાથી

मुखजलोत्पत्तिः स्पष्ट प्रतिपादिता। शरीरविज्ञाने च मुखजलस्य पाचनशक्तिमत्त्व प्रकटितम्।

अशुचिस्थानतया मुखजलस्य जीवोत्पत्तिस्थानत्वापादन तु सर्वथा निर्मूलमेव, तथाहि-यावन्ति जीवोत्पत्तिस्थानानि सन्ति तानि प्रज्ञापनासूत्रे निर्दिष्टानि, यथा-

" उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा पूयेसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा विगयजीवकलेवरेसु वा थीपुरिससंजोएसु वा णगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु, एत्थ ण समुच्छिममणुस्सा समुच्छंति " इति।

'शरीर विज्ञान' नामक ग्रन्थमें मुखजलके विषयमें लिखा है कि उसमें पचानेकी शक्ति होती है।

'अशुचिस्थान होनेसे मुखजल जीवोत्पत्तिका स्थान है' ऐसा कहना बिलकुल बेजड है। जीवोत्पत्तिके जितने स्थान हैं उन सबका निर्देश प्रज्ञापनासूत्रमें किया है " उच्चारेसु वा " इत्यादि,

अर्थात् " उच्चार (विष्ठा) मे, प्रस्रवण (मूत्र) मे, कफमें, नाकके मैलमें, कैमें, पित्तमें, पीवमें, खूनमें, शुक्रमें, शुक्रपुद्गलपरिशाट (शुष्क शुक्र पुद्गलोंके फिर भीने होने) मे, प्राणीकी लाशमें, स्त्रीपुरुषके सयोगमें, नगरकी गटरमें, इन सब अशुचियोंके स्थानोंमें सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है।"

ખાવાની ચીજોમા મળ્યા કરે છે " અને " શરીરવિજ્ઞાન ' નામના ગ્રથમા મુખજલના વિષયમા લખ્યુ છે કે એમા પચાવવાની શક્તિ હોય છે

' અશુચિસ્થાન હોવાથી મુખજલ જીવોત્પત્તિનુ સ્થાન છે ' એમ કહેવુ બિલકુલ અમૂલક છે જીવોત્પત્તિના જેટલા સ્થાનો છે એ બધાનો નિર્દેશ પ્રજ્ઞાપના-સૂત્રમા કરેલો છે उच्चारेसु वा ઇત્યાદિ " ઉચ્ચાર (વિષ્ઠા)મા, પ્રસ્રવણ (પિસાબ)મા, કફમા, નાકના લીટમા, વમન-ઉલટીમા, પિત્તમા, પરૂમા, લોહીમા, શુક્ર-વીર્યમા, શુક્રપુદ્ગલપરિશાટમા (શુક્રના સુકાયલા પુદ્ગલ ભીના થવામા), પ્રાણીના મુડદામા, સ્ત્રીપુરુષના સમાગમમા, નગરની ખાળો (ગટરો)મા, એ બધા અશુચિના સ્થાનોમા સમૂર્ચ્છિમ મનુષ્ય ઉત્પન્ન થાય છે "

त्पत्तौ सत्या भगवता शिष्याणा स्पष्टप्रतिपत्तये– "खेलेसु वा वतेसु वा" इत्यादिवत् " मुहजलकणेसु वा " इति वाक्येन तेऽपि पृथक्कृत्य निर्दिष्टव्याः स्युः, इति मुखजलकणाना भगवदनुक्तत्वान्न तत्र जीवोत्पत्तिर्भवतीति निश्चीयते । इदमत्र तत्त्वम्—

शिष्याणा जीवोत्पत्तिस्थानप्रतीतिं विना सम्यक् सयमपालन न स्यादिति हेतोः स्पष्टीकृत्य सकलानि सम्मूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानानि बोधयितु भगवता तत्तन्नामनिर्देशप्रयत्नोऽङ्गीकृतः, साकल्येन सम्मूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याभावे तु भगवान्–" सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इत्येव ब्रूयात , उच्चारमलव-

---

उत्पत्ति होती तो शिष्योंको स्पष्ट बोध करानेके लिए भगवानने जैसे 'खेलेसु वा वतेसु वा' इत्यादि अलग अलग नाम गिनाये हैं वैसे ही "मुहजलकणेसु वा" ऐसा और एक सूत्रपाठ रख देते। अत. निश्चित है कि मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें सम्मूर्च्छिम जीव उत्पन्न नही होते, क्योंकि भगवानने उसे जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है। तात्पर्य यह है कि–

शिष्य जबतक यह न जानलें कि जीवोंके उत्पत्तिस्थान कौन कौन हैं ? तब तक सयमका सम्यक् प्रकार परिपालन नहीं कर सकते। इसीसे भगवान्ने जीवोत्पत्तिके स्थानोंका खुलासा ज्ञान करानेके लिए अलग अलग नाम गिनाये हैं। यदि सम्मूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके सब स्थान गिनानेका मतलब न होता तो सिर्फ 'सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु' (अशुचि

ઉત્પત્તિ થતી હોત તો શિષ્યોને સ્પષ્ટ બોધ કરાવવાને ભગવાને જેમ खेलेसु वा वतेसु वा ઇત્યાદિ અલગ અલગ નામ ગણાવ્યા છે તેમ मुहजलकणेसु वा એવો એક વધારે સૂત્રપાઠ રાખ્યો હોત તેથી કરીને નિશ્ચિત છે કે મુખથી નીકળનારા જલકણોમા સમ્મૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થતા નથી, કારણ કે ભગવાને એને જીવોત્પત્તિનું સ્થાન બતાવ્યુ નથી

તાત્પર્ય એ છે કે–જ્યા સુધી શિષ્ય જાણી ન લે કે જીવોના ઉત્પત્તિ સ્થાન કયા કયા છે, ત્યા સુધી તે સયમનું સમ્યક્ પ્રકારે પરિપાલન કરી શકતો નથી તેથી ભગવાને જીવોત્પત્તિના સ્થાનોનું ખુલાસાથી જ્ઞાન કરાવવાને અલગ અલગ નામો ગણાવ્યા છે જો સમ્મૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિના બધા સ્થાનો ગણાવવાની મતલબ ન હોત તો માત્ર सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु (અશુચિના બધા સ્થાનોમા)

स्थानत्व सुतरा सिद्धमिति " सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इति पुनरभिधानमसकृत व्यर्थं च स्यादितिवादिनः परास्ताः, उक्तशङ्कानिवारणाय तथाऽभिधानस्याऽऽवश्यकत्वात् ।

अयमर्थश्च भगवद्वाक्यादेव स्फुटीभवति, तथाहि–सर्वेषा मुखनिर्गतपदार्थानां जीवोत्पत्तिस्थानत्वे लाघवानुरोधेन " मुहनिग्गएसु सव्वेसु चेव दव्वेसु " इत्येव वक्तव्ये पुनः " खेलेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा " इति तन्नामनिर्देशप्रयत्नो भगवत्कृतो व्यर्थः स्यात्, तस्मान्निर्दिष्टेतरपदार्थे जीवोत्पत्तिर्न भवतीति स्पष्ट प्रतीयते । अथवा अणीयस्सु भाषणकालिकेषु मुखोत्पतितजलकणेषु जीवो-

ऐसा कहते हैं कि पूर्वोक्त अर्थ करनेसे 'सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु" कहना व्यर्थ और असगत हो जायगा, वे परास्त हो गये। क्योंकि शिष्यकी पूर्वोक्त शकाका निवारण करनेके लिए उस कथनकी आवश्यकता है।

यह अर्थ भगवान्के वचनसे ही निकलता है, क्योंकि यदि मुखसे निकलने वाले सब पदार्थ जीवोत्पत्तिके स्थान होते तो सक्षेप करनेके लिए केवल इतना कह देते कि ' मुहनिग्गएसु सव्वेसु चेव दव्वेसु ' अर्थात् मुखसे निकलने वाले सब पदार्थोंमें समूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं। " खेलेसु वा वतेसु वा पित्तेसु वा " इस प्रकार अलग अलग भगवान् न फरमाते। इसलिए सूत्रमें निर्देश किये हुए पदार्थोंके सिवाय अन्य किसी पदार्थमें जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती, यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है। अथवा यदि भाषण करते समय निकले हुए थोडेसे जलकणोंमें जीवोंकी

सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु કહેવુ વ્યર્થ અને અસ ગત થઈ જશે, તેઓ પરાસ્ત થઈ ગયા કારણ કે શિષ્યની પૂર્વોક્ત શ કાનુ નિવારણ કરવા માટે એ કથનની આવશ્યકતા છે

આ અર્થ ભગવાનના વચનોમાથી જ નીકળે છે કારણ કે જો મુખથી નીકળ નારા બધા પદાર્થો જીવોત્પત્તિના સ્થાનો હોત તો સ ક્ષેપ કરવાને કેવળ એટલુ જ કહી દેત કે मुहनिग्गएसु सव्वेसु चेव दव्वेसु અર્થાત્ મુખથી નીકળનારા બધા પદાર્થોમા સ મૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થાય છે खेलेसु वा वतेसु वा पित्तेसु वा એ પ્રમાણે ભગવાન્ અલગ અલગ કહેત નહિ તેથી કરીને સૂત્રમા નિર્દેશેલા પદાર્થો સિવાય અન્ય કોઈ પદાર્થમા જીવોની ઉત્પત્તિ થતી નથી એ વાત સ્પષ્ટ પ્રતીત થાય છે અથવા જો ભાષણ કરતી વખતે નીકળતા થોડા જલકણોમા જીવોની

त्पत्तौ सत्या भगवता शिष्याणां स्पष्टप्रतिपत्तये- "खेलेसु वा वंतेसु वा" इत्यादिवत् "मुहजलकणेसु वा" इति वाक्येन तेऽपि पृथक्कृत्य निर्देष्टव्याः स्युः, इति मुखजलकणानां भगवदनुक्तत्वान्न तत्र जीवोत्पत्तिर्भवतीति निश्चीयते। इदमत्र तत्त्वम्—

शिष्याणां जीवोत्पत्तिस्थानप्रतीतिं विना सम्यक् संयमपालनं न स्यादिति हेतोः स्पष्टीकृत्य सकलानि संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानानि बोधयितुं भगवता तत्तन्नामनिर्देशप्रयत्नोऽङ्गीकृतः, साकल्येन संमूर्च्छिमजीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याभावे तु भगवान्-" सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु " इत्येव ब्रूयात, उच्चारप्रस्रव-

उत्पत्ति होती तो शिष्योंको स्पष्ट बोध करानेके लिए भगवानने जैसे 'खेलेसु वा वंतेसु वा' इत्यादि अलग अलग नाम गिनाये हैं वैसे ही "मुहजलकणेसु वा" ऐसा और एक सूत्रपाठ रख देते। अतः निश्चित है कि मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें संमूर्च्छिम जीव उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि भगवानने उसे जीवोत्पत्तिका स्थान नहीं बताया है। तात्पर्य यह है कि-

शिष्य जबतक यह न जानलें कि जीवोंके उत्पत्तिस्थान कौन कौन हैं ? तब तक संयमका सम्यक् प्रकार परिपालन नहीं कर सकते। इसीसे भगवानने जीवोत्पत्तिके स्थानोंका खुलासा ज्ञान करानेके लिए अलग अलग नाम गिनाये हैं। यदि संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके सब स्थान गिनानेका मतलब न होता तो सिर्फ 'सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु' (अशुचि

ઉત્પત્તિ થતી હોત તો શિષ્યોને સ્પષ્ટ બોધ કરાવવાને ભગવાને જેમ खेलेसु वा वंतेसु वा ઇત્યાદિ અલગ અલગ નામ ગણાવ્યા છે તેમ मुहजलकणेसु वा એવો એક વધારે સૂત્રપાઠ રાખ્યો હોત તેથી કરીને નિશ્ચિત છે કે મુખથી નીકળનારા જલકણોમાં સંમૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થતા નથી, કારણ કે ભગવાને એને જીવોત્પત્તિનું સ્થાન બતાવ્યું નથી

તાત્પર્ય એ છે કે-જ્યાં સુધી શિષ્ય જાણી ન લે કે જીવોના ઉત્પત્તિ સ્થાન કયા કયા છે, ત્યાં સુધી તે સંયમનું સમ્યક્ પ્રકારે પરિપાલન કરી શકતો નથી તેથી ભગવાને જીવોત્પત્તિના સ્થાનોનું ખુલાસાથી જ્ઞાન કરાવવાને અલગ અલગ નામો ગણાવ્યા છે જો સંમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિના બધા સ્થાનો ગણાવવાની મતલબ ન હોત તો માત્ર सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु (અશુચિના બધા સ્થાનોમાં)

णादीनामप्यशुचिस्थानतयैव तादृशजीवोत्पत्तिस्थानत्वमतीतिसिद्धेः, तथा च तत्तदशुचिस्थाननिर्देशस्य चैयर्थ्यापत्तिः। जीवोत्पत्तिस्थानपरिगणनतात्पर्याङ्गीकारे तु कियत्स्वशुचिस्थानेषु सम्मूर्च्छिमजीवा उत्पद्यन्ते ? इति जिज्ञासोपशमो न स्यादिति तत्तदशुचिस्थाननिर्देशस्य नानर्थक्यं, प्रत्युताऽऽवश्यकतया सार्थक्यमेव, अतएव " उचत्थिदियनिग्गएसु दव्वेसु वा " (उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु द्रव्येषु) इत्यनुक्त्वा पुनः पुनः–" पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा थीपुरिससजोएसु वा " इति तत्तन्नाम्ना भगवानुपादिशत्,

के सब स्थानोंमें) इतना ही कह देते। क्योंकि उचार प्रस्रवण आदि सभी अशुचिस्थान होनेके कारण सम्मूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं, यह बात प्रतीतिसे सिद्ध है। ऐसी अवस्थामें अलग-अलग नाम गिनाना अकारथ हो जायगा। अगर ऐसा मानें कि जीवोंकी उत्पत्तिके स्थान गिनानेका मतलब है तो जिज्ञासु शिष्योंका सन्देह तब तक दूर नहीं हो सकता जब तक उन्हें साफ न बता दिया जाय कि किन-किन जगहोंमें सम्मूर्च्छिम जीवोंका जन्म होता है। इसलिए अलग-अलग गिनाना वृथा नहीं है, किन्तु आवश्यक होनेसे सार्थक है, इसी कारण "उवत्थिदिय निग्गएसु वा" (उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु) ऐसा न कहकर वारवार ' पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा थीपुरिससजोएसु वा " इस प्रकार हरेकका अलग-अलग नाम गिना कर भगवानने कथन किया है। ऐसा कथन न करते तो यह संशय बना रहता

એટલુ જ કહી દેત કારણ કે ઉચ્ચાર પ્રસ્રવણ આદિ બધા અશુચિસ્થાનો હોવાને કારણે સમૂર્ચ્છિમ જીવોની ઉત્પત્તિના સ્થાન છે, એ વાત પ્રતીતિથી સિદ્ધ છે એવી સ્થિતિમા અલગ અલગ નામો ગણાવવા અહેતુક થઈ જાય અગર એમ માનો કે જીવોની ઉત્પત્તિના સ્થાનો ગણાવવાની મતલબ છે તો જિજ્ઞાસુ શિષ્યોનો સદેહ ત્યા સુધી દૂર નહિ થઈ શકે કે જ્યા સુધી તેમને સાફ ન બતાવી દેવામા આવે કે કઈ કઈ જગ્યાઓમા સમૂર્ચ્છિમ જીવોનો જન્મ થાય છે તેથી કરીને અલગ અલગ ગણાવવુ એ વૃથા નથી, કિન્તુ આવશ્યક હોવાથી સાર્થક છે એ કારણે उवत्थिदियनिग्गएसु वा (उपस्थेन्द्रियनिर्गतेषु) એમ ન કહેતા વારવાર पासवणेसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा सोणिएसु वा थीपुरिससजोएसु वा એ રીતે દરેકના અલગ અલગ નામો ગણાવીને ભગવાને કથન કર્યું છે એવુ કથન ન કરત તો એ સશય પડત કે સ્ત્રી-પુરુષના સયોગ વિના કેવળ શુક્રશોણિત

अथवा "स्त्रीपुरुषसंयोगातिरिक्तेषु केवलशुक्रशोणितादिषु सम्मूर्च्छिमजीवा उत्पद्यन्ते न वा ?" इति संशयानपगमे सति मुनीनां संयमपालनं सङ्कटापन्नं स्यादिति ।

वस्तुतस्तु भाषणकाले मुखोत्पतितानां जलकणानामशुचित्वमेव निर्मूलतया दुर्वचम्, शास्त्रे प्रज्ञापनासूत्रोक्तेषूच्चारादिष्वेवाशुचिशब्दप्रयोगदर्शनात्, मुखोत्पतितजलकणार्थे तत्प्रयोगानुपलम्भाच्च, तथाहि व्यवहारसूत्रभाष्ये तृतीयोद्देशके—

"दव्वे भावे असुई भावे आहारवहणादीहिं" इत्यादिगाथा-(२८६) व्याख्यानावसरे—"अशुचिर्द्विधा-द्रव्यतो भावतश्च, तत्र योऽशुचिना लिप्तगात्रो

कि स्त्रीपुरुषके संभोगके सिवाय केवल शुक्र शोणित आदिमें सम्मूर्च्छिम जीव उत्पन्न होते हैं या नहीं ? इस प्रकारके सन्देहसे मुनियोंको संयम-पालन करना मुश्किल हो जाता ।

वास्तवमें मुखसे निकलने वाले जलकणोंको अशुचि कहना ही खोटा है, क्योंकि शास्त्रमें प्रज्ञापनासूत्रोक्त उच्चार आदि ही 'अशुचि' शब्दसे कहे गये हैं, और मुखसे निकलने वाले जलकणके अर्थमें 'अशुचि' शब्दका प्रयोग नहीं पाया जाता । व्यवहारसूत्रके भाष्यमें, तीसरे उद्देशमें "दव्वे भावे असुई" इत्यादि २८६ वीं गाथाका व्याख्यान करते समय कहा है—अशुचि दो प्रकारकी है (१) द्रव्य अशुचि और (२) भाव अशुचि । जिस व्यक्तिका शरीर अशुचिसे लिप्त हो अथवा जो विष्ठाका त्याग

આદિમા સમ્મૂર્ચ્છિમ જીવો ઉત્પન્ન થાય છે કે નહિ ? એ પ્રકારના સંદેહથી મુનિઓને સંયમ પાલન કરવાનુ મુશ્કેલ થઈ પડત

વાસ્તવમા મુખમાથી નીકળનારા જળકણોને અશુચિ કહેવા એ ખોટુ છે, કારણ કે શાસ્ત્રમા પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રોક્ત ઉચ્ચાર આદિને જ અશુચિ શબ્દથી ઓળખવામા આવ્યા છે અને મુખમાથી નીકળનારા જળકણના અર્થમા અશુચિ શબ્દનો પ્રયોગ મળી આવતો નથી વ્યવહાર સૂત્રના ભાષ્યમા, ત્રીજા ઉદ્દેશમા दव्वे भावे असुई ઇત્યાદિ ૨૮૬ મી ગાથાનુ વ્યાખ્યાન કરતી વખત કહ્યુ છે—

અશુચિ બે પ્રકારની છે (૧) દ્રવ્ય અશુચિ અને (૨) ભાવ અશુચિ જે વ્યકિતનુ શરીર અશુચિથી લેપાયલુ હોય અથવા જે વિષ્ઠાનો ત્યાગ કરીને (જાજરૂ

यो वा पुरीषमुत्सृज्य पुतौ न निर्लेपयति स द्रव्यतोऽशुचिः" इत्युक्तम्, किञ्च-"दव्वे भावे असुई दव्वम्मि विट्ठमादिलित्तो उ।" इत्यादिगाथा-(२८७) व्याख्यानावसरे "अशुचिर्द्विधा द्रव्ये भावे च, तत्र द्रव्ये विष्ठादिना लिप्तः, आदिशब्दान्मूत्रश्लेष्मादिपरिग्रहः" इत्यभिहितम्। प्रज्ञापनासूत्रोक्ता उच्चारादय एवाशुचिपदस्यार्थ इत्याशयेनैव प्रकृते द्रव्यभावभेदेन द्विधा विभाजितेऽप्यशुचिपदार्थे मुखनिर्गतविप्रुषामनुपादानं कृतम्। आवश्यकसूत्रे वन्दनाख्य तृतीयाध्ययने एकादशाधिकैकशततम-(१११)-गाथाव्याख्यायां हरिभद्रसूरिणाऽप्यशुचिस्थानशब्दस्य विट्प्रधानस्थानार्थत्वमुक्तम्। एवमेव दर्शनशुद्धि-

---

करके (टट्टी जाकर) मलद्वार नहीं धोता उस व्यक्तिको द्रव्यसे अशुचि कहते हैं, इत्यादि।

तथा इसी व्यवहार भाष्यके तीसरे उद्देशेकी 'दव्वे भावे असुई दव्वम्मि विट्ठमादिलित्तो उ" इस २८७ वीं गाथाकी व्याख्या करते समय टीकाकारने कहा है-विष्ठा आदिसे लिप्तको द्रव्य अशुचि कहते हैं। यहाँ आदि शब्दसे मूत्र और श्लेष्म आदिको ग्रहण करना चाहिए, ऐसा कहा है। प्रज्ञापनासूत्रमें कहे हुए उच्चार आदि ही अशुचि पदका अर्थ है, इसी आशयसे प्रकृतमें द्रव्य भावका भेद कर देने पर भी अशुचि पदार्थोंमें मुखसे निकलने वाले जलकणोंका ग्रहण नहीं किया है।

आवश्यकसूत्रके वन्दना नामक तीसरे अध्ययनमें हरिभद्रसूरिने १११वीं गाथाकी व्याख्या करते समय अशुचि शब्दका अर्थ विट्प्रधान स्थान

જઈને) મળદ્વાર નથી ધોતો એ વ્યકિતને દ્રવ્યથી અશુચિ કહે છે, ઇત્યાદિ

તથા—એ વ્યવહારસૂત્ર ભાષ્યની दव्वे भावे असुई दव्वम्मि विट्ठमादिलित्तो उ એ ૨૮૭ મી ગાથાની વ્યાખ્યા કરતી વખતે કહ્યુ છે—

વિષ્ઠાઆદિથી લિપ્તને દ્રવ્ય અશુચિ કહે છે અહીં 'આદિ' શબ્દથી મૂત્ર અને શ્લેષ્મ આદિનુ ગ્રહણ કરવુ જોઈએ એમ કહ્યુ છે પ્રજ્ઞાપનાસૂત્રમા કહેલા ઉચ્ચાર આદિ જ અશુચિ શબ્દનો અર્થ છે, એ આશયથી પ્રકૃતમા દ્રવ્યભાવનો ભેદ કરતા છતા પણ અશુચિ પદાર્થોમા મુખથી નીકળતા જળકણોને ગ્રહણ કર્યા નથી

આવશ્યક સૂત્રના વદના નામક ત્રીજા અધ્યયનમા હરિભદ્ર સૂરિએ ૧૧૧ મી ગાથાની વ્યાખ્યા કરતા અશુચિ શબ્દનો અર્થ વિટપ્રધાન સ્થાન — દર્શન

नामके ग्रन्थेऽपि प्रतिपादितम् । उत्तराध्ययनसूत्रे एकोनविंशेऽध्ययने द्वादशगाथाव्याख्याया भावविजयगणिनाऽपि–"अशुचिभ्या=शुक्रशोणिताभ्या सभवम्= उत्पन्नम् अशुचिसम्भवम्" इत्युक्तम् । तत्रैव कमलसयमोपाध्यायेनापि सर्वार्थसिद्धिटीकायाम्—" अशुचिसम्भवम् = अशुचिरूपशुक्रशोणितोत्पन्नम् "–इति व्याख्यातम् , सूत्रकृताङ्गे द्वितीयश्रुतस्कन्धे द्वितीयाध्ययने नरकवर्णने पदूपष्टितम- (६६) सूत्रे–' असुई ' इत्यस्य टीकायाम्–" अशुचयो विष्ठासृक्क्लेदप्रधानत्वात् " इति शीलाङ्काचार्येण कथितम् । क्लेद' प्रस्वेदः (पसीना) इति हिन्दीशब्दसागरकोशः । स च मुखजलाद्भिन्न इत्यतिरोहितमेव सर्वेषाम् । प्रस्वेदेऽपि

किया है । दर्शनशुद्धि नामक ग्रन्थमें भी ऐसा ही प्रतिपादन किया है। उत्तराध्ययनसूत्रमें उन्नीसवें अध्ययनकी बारहवीं गाथाकी व्याख्या करते समय भावविजयगणिने कहा है–"अशुचिभ्या=शुक्रशोणिताभ्या सभवम्= उत्पन्नम् अशुचिसभवम्।" इसी सूत्रकी सर्वार्थसिद्धि नामक टीकामें कमलसयम उपाध्यायने ऐसा व्याख्यान किया है–" अशुचिसभवम्=अशुचिरूप शुक्रशोणितोत्पन्नम् ।

सूत्रकृताङ्गसूत्रमें द्वितीय श्रुतस्कन्धके द्वितीय अध्ययनमें नरकके वर्णनमें ६६ वें सूत्रमें 'असुई' पदकी टीकामे शीलाङ्काचार्यने कहा है– "अशुचयो विष्ठासृक्क्लेदप्रधानत्वात् ।" यहाँ क्लेद पसीनाको कहा है। यह बात सबको विदित ही है कि मुखसे निकलने वाले जलकण और पसीना एक नहीं हैं दोनों अलग-अलग हैं। पसीनेमे भी सम्मूर्च्छिम जीव उत्पन्न नहीं होते, क्योंकि सम्मूर्च्छिम जीवोंके उत्पत्ति–स्थानोंकी गिनती

शुद्धि नामक ग्रथमा पण एवु ज प्रतिपादन कर्यु छे उत्तराध्ययन सूत्रमा १९ मा अध्ययननी बारमी गाथानी व्याख्या करता भावविजयगणिए कह्यु छे के– अशुचिभ्या = शुक्रशोणिताभ्या सभवम् = उत्पन्नम् अशुचिसभवम् । आ सूत्रनी सर्वार्थसिद्धि नामक टीकामा कमलसयम उपाध्याये एवु व्याख्यान कर्यु छे के– अशुचिसभवम्=अशुचिरूप–शुक्रशोणितोत्पन्नम् ।

सूत्रकृताग सूत्रमा द्वितीय श्रुतस्कधना बीजा अध्ययनमा नरकना वर्णनमा ६६ मा सूत्रमा असुई शब्दनी टीकामा शीलागाचार्ये कह्यु छे के अशुचयो विष्ठासृक्क्लेदप्रधानत्वात् । अही क्लेद पसीनाने कह्यो छे ए वात सौ जाणे छे के मुखथी नीकळता जळकण अने पसीनो एक नथी–बेउ जूदा–जूदा छे पसीनामा पण समूर्च्छिम जीवो उत्पन्न थता नथी, कारण के समूर्च्छिम जीवोना उत्पत्ति–

न समूच्छिमजीवोत्पत्तिः, तत्परिगणने तस्यानुक्तत्वात्। पिण्डनिर्युक्तौ च पूतिकर्मदोषभेदस्य द्रव्यपूतेरुदाहरणे अशुचिगन्धशब्दस्य पुरीषगन्धार्थकत्वं निगदितम्।

मानवधर्मशास्त्रेऽपि भाषणकालिकमुखोद्गतविप्रुषां मेध्यत्वमेवोक्तं नत्वशुचित्वं, यथा मनुस्मृतौ पञ्चमाध्याये—

" मक्षिका विप्रुषश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः।
रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥ ५ ॥" १३३ ॥इति।

किञ्च दोरकाश्रयणमेव हिंसानिदानं मत्वा हस्तेन शिरःपश्चाद्भागे ग्रन्थिदानेन वा मुखवस्त्रिकां धारयताऽपि भाषणकालिकमुखोत्पतितजलकणेषु समूच्छिमजीवोत्पत्तिस्थानत्वाभावोपपादनाय प्रकृतोपात्तानि प्रमाणान्यवश्यं शरणीकरणीयानि,

---

करते समय भगवान्ने पसीना नहीं कहा है। पिण्डनिर्युक्तिमें पूतिकर्म दोषके भेद द्रव्यपूतिके उदाहरणमें 'अशुचिगन्ध' शब्दको विष्ठा गन्ध वाले अर्थमें प्रयोग किया है।

मानवधर्मशास्त्रमें भाषण करते समय निकलने वाले जलकणोंको अशुचि नहीं कहा है। मनुस्मृति पाँचवाँ अध्याय–

" मक्षिका विप्रुषश्छाया, गौरश्वः सूर्यरश्मयः।
रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥ " १३३।

डोरा धारण करनेको ही हिंसाका कारण मान कर हाथसे अथवा सिरके पीछे गाठ लगा कर मुखवस्त्रिका धारण करने वालोंको भी इन प्रमाणोंकी शरण लेनी चाहिए, जो यह बतानेके लिए यहाँ दिये गये हैं कि भाषण करते समय मुखसे निकलने वाले जलकणोंमें समूच्छिम जीव

સ્થાનોની ગણત્રી કરતી વખતે ભગવાને પસીનો કહેલો નથી પિંડનિર્યુક્તિમાં પૂતિકર્મદોષના ભેદ દ્રવ્યપૂતિના ઉદાહરણમાં અશુચિ-ગંધ શબ્દનો વિષ્ઠા-ગંધવાળા અર્થમાં પ્રયોગ કર્યો છે

માનવધર્મશાસ્ત્રમાં ભાષણ કરતી વખતે નીકળતા જળકણોને અશુચિ કહ્યા નથી મનુસ્મૃતિના પાંચમા અધ્યાયમાં કહ્યું છે—

मक्षिका विप्रुषश्छाया, गौरश्व सूर्यरश्मय ।
रजो भूर्वायुरग्निश्च, स्पर्शे मेध्यानि निर्दिशेत् ॥ १३३ ॥

દોરો ધારણ કરવાને જ હિંસાનું કારણ માનીને હાથથી અથવા શિરની પાછળ ગાંઠ વાળીને મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરનારાઓએ પણ આ પ્રમાણોનું શરણ લેવું જોઈએ, જે એ બતાવવાને માટે અહીં આપવામાં આવ્યા છે કે-ભાષણ કરતી વખતે મુખથી નિકળતા જલકણોમાં સમૂચ્છિંમ જીવ ઉત્પન્ન નથી થતા, અન્યથા વ્યાખ્યાન

अन्यथा तेषामपि धर्मोपदेशकाले द्वित्रहोरापर्यन्त भाषणे मुखोपरि मुखवस्त्रिकाधारणस्याऽऽवश्यकतया तत्र मुखोत्पतितजलकणैरार्द्रतापत्तिर्वारयितुमशक्यैव, लोके हि अनावृतमुखेन पुस्तक पठता पर प्रति ब्रुवता च मुखविप्रुषः पुस्तके परदेहे च पतन्त्यो लक्ष्यन्ते, पुनः समीतरवर्तिमुखवस्त्रिकाया न ताः पतिष्यन्तीति कल्पना किं दुराग्रह नावेदयेदित्यलम् ।

नन्वेव सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवविराधनापरिहारार्थमेव यदि सदा सदोरकमुखवस्त्रिकाबन्धने सावधानता विधीयते तर्हि भोजनकाले तदपसारणावश्यकतया कथ तादृशजीवविराधनापरिहारः ?, इति चेच्चित्तमवधेहि ।

उत्पन्न नहीं होते । अन्यथा धर्मोपदेश देते समय वे दो-दो तीन तीन घण्टे बोलते हैं उस समय मुखवस्त्रिका धारण करना आवश्यक होनेके कारण मुखसे निकलने वाले जलकणोंसे मुखवस्त्रिका गीली हो जायगी और इस आपत्ति का निवारण करना शक्य नहीं है ।

लोकमें खुले मुँह पुस्तक पढनेवालोंके तथा दूसरोंसे वार्तालाप करने वालोंके मुखसे जलकण निकल कर पुस्तक पर तथा दूसरेकी देह पर गिरते हुए देखे जाते हैं । फिर मुखके पास ही रहनेवाली मुखवस्त्रिका पर कण नहीं गिरेंगे, ऐसी कल्पना करना दुराग्रहको ही प्रगट करता है ।

प्रश्न-सूक्ष्म, व्यापी, सपातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनासे बचनेके लिए ही यदि सदा डोरा सहित मुखवस्त्रिका बाँधनेमें सावधानी रखी जाती है तो भोजन करते समय उन जीवोंकी विराधनासे कैसे बच सकते हैं ? क्योंकि उस समय मुखवस्त्रिका खोल लेना आवश्यक है ।

વાચતી વખતે બબે ત્રણ-ત્રણ કલાક સુધી બોલે છે, ત્યારે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવી આવશ્યક હોવાથી મુખથી નીકળતા જલકણોથી મુખવસ્ત્રિકા ભીની થઈ જશે અને એ આપત્તિ નિવારવાનુ શકય નથી

લોકોમા ખુલ્લે મુખે પુસ્તક વાચનારના તથા બીજાઓ સાથે વાર્તાલાપ કરનારના મુખમાથી જલકણ નીકળીને પુસ્તક પર તથા બીજાના શરીર પર પડતા જોવામા આવે છે તો પછી મુખની પાસે જ રહેનારી મુખવસ્ત્રિકા પર કણ નહિ પડે, એવી કલ્પના કરવી એ દુરાગ્રહને પ્રકટ કરે છે

પ્રશ્ન-સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સપાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાથી બચવાને માટે જ જો સદા દોરા સાથે મુખવસ્ત્રિકા બાધવામા સાવધાની રાખવામા આવે છે તો ભોજન કરતી વખતે એ જીવોની વિરાધનાથી કેવી રીતે બચી શકાય ? કારણ કે એ વખતે મુખવસ્ત્રિકા છોડી નાખવાની જરૂર પડે છે

अत्रैव चतुर्थाध्ययने–" जयं भुंजतो भासतो पाव कम्म न बधइ " इति भगवताऽभिहितम्, [1]प्रागुक्तरीत्या मुखवस्त्रिकाबन्धनस्याऽऽवश्यकत्वेऽपि तदपसारणमन्तरेण 'भुंजतो' इति पदबोध्याया भोजनक्रियाया अनुपपत्त्या भोजनकाले मुनिना मुखवस्त्रिका मोचनीयेति गम्यते, अत एवात्र–' जयं भुंजतो' इत्यस्य यथाकल्पलब्धान्तप्रान्ताद्यशनं मण्डलदोषपरिवर्जनपूर्वकमभ्यवहरमाणः' इत्येवाशयो न तु मुखवस्त्रिका बद्ध्वैव भुञ्जान इति, तथा चोक्तयतनापूर्वकभोजनकाले मुखवस्त्रिकापसारणमागमानुकूलमेवेति न तस्य पापकर्मबन्धनहेतुत्वम्, अनेनैवाऽऽ

१ ' पूर्वोक्तप्रमाणानुसारेण ' इत्यर्थः ।

उत्तर–चित्त लगाकर सुनो। इसी (दशवैकालिक) के चौथे अध्ययनमें भगवान्ने कहा है "जयं भुंजतो भासतो पाव कम्म न बधइ। " अर्थात् यतनापूर्वक आहार करने और भाषण करनेसे पापकर्मका बन्ध नहीं होता है। पहले कहे गये प्रमाणोंसे मुखवस्त्रिका बाधना सिद्ध होने पर भी उसके निकाले विना 'भुंजतो' पदसे बोध्य भोजनक्रिया नहीं हो सकती। इससे ऐसा तात्पर्य निकलता है कि भोजन करते समय मुनिको मुख वस्त्रिका हटा देनी चाहिये। अतः ' जयं भुंजतो " पदका " कल्पके अनुसार प्राप्त हुआ अन्त प्रान्त आदि आहार मण्डलदोषोंका त्याग करके भोगता हुआ" ऐसा अर्थ समझना चाहिए। ऐसा नहीं कि मुखवस्त्रिका बाँधे-बाँधे आहार करे। अत एव उक्त-यतना पूर्वक भोजनकालमें मुख वस्त्रिका त्याग देना आगमके अनुकूल है, अतः उससे पापकर्मका बन्ध

ઉત્તર–ચિત્ત રાખીને સાભળો એના (દશવૈકાલિકના) જ ચોથા અધ્યયનમા ભગવાને કહ્યુ છે કે जयं भुंजतो भासतो पाव कम्म न बधइ અર્થાત્ યતનાપૂર્વક આહાર કરવાથી પાપકર્મનો બધ થતો નથી પૂર્વોક્ત પ્રમાણોથી મુખવસ્ત્રિકા બાધવી એ સિદ્ધ થયા છતા પણ એને કાઢી નાખ્યા વિના भुंजतो શબ્દથી બોધ્ય ભોજન ક્રિયા થઇ શકતી નથી તેથી એવુ તાત્પર્ય નીકળે છે કે ભોજન કરતી વખતે, મુનિએ મુખવસ્ત્રિકા હઠાવી દેવી જોઇએ એટલે जयं भुंजतो પદનો અર્થ ' કલ્પને અનુસારે પ્રાપ્ત થએલો અત પ્રાત આદિ આહાર મડલ-દોષોનો ત્યાગ કરીને ભોગવતા " એ પ્રમાણે સમજવો જોઇએ એમ ન સમજવુ જોઇએ કે મુખવસ્ત્રિકા બાધી રાખીને આહાર કરે એટલે ઉક્ત-યતનાપૂર્વક ભોજનકાળમા મુખવસ્ત્રિકાનો ત્યાગ કરવો એ આગમને અનુકૂળ છે, તેથી પાપકર્મનો બધ થતો નથી

शयेन च–" पाव कम्म न बधइ " इत्युक्त भगवता ।

एव च भगवत्तीर्थङ्करगणधरादिवचनपर्यालोचनेन निरवशेषसंशयतिमिरापगमपुरस्सर प्रकाशमाने मानसे वायुकायादिविराधनापरिहाराय सदोरकमुखवस्त्रिकाबन्धन साह्लादं स्थानमासादयति । रागद्वेषदोषाकलितचेतसा भगवद्वचनामृतरसास्वादवञ्चिताना विविधसशयपराहते चेतसीममर्थं दुर्लक्ष्यमभिलक्ष्य हस्तदुष्प्राप्यमर्थमाकलयितु सोपानमिवालम्बन तेभ्यः पुरस्कर्तुं सप्रमाणमेतत् सम्यगुपपादितम् ।

नहीं होता । इसी आशयसे भगवानने ' पाव कम्म न बन्धइ ' कहा है ।

इस प्रकार भगवान् तीर्थङ्कर गणधरादिकोंके वचनोंकी पर्यालोचना करनेसे सकलसशयरूप अन्धकारके दूर हो जानेके कारण प्रकाशमान ऐसे हृदयमे वायुकाय आदिकी विराधनाका दोष टालनेके लिए दोरासहित मुखवस्त्रिकाका बान्धना आल्हादपूर्वक स्थानको धारण करता है ।

रागद्वेषरूपी दोषसे दूषित भगवद्वचनामृतके रसास्वादसे वञ्चित पुरुषोंके अनेक दुर्विकल्पोंसे पराहत हुए चित्तमे इस अर्थको दुर्लक्ष्य समझकर उनके लिए हाथसे न प्राप्त होनेवाली वस्तुकी प्राप्तिके लिए सोपान (सीढी) की तरह आलम्बन अगाडी रखकर यह सब सप्रमाण प्रतिपादित किया गया है ।

એ આશયથી ભગવાને પાવ कम्म न बधइ કહ્યુ છે

એ પ્રકારે ભગવાન્ તીર્થંકર ગણધરાદિના વચનોની પર્યાલોચના કરવાથી સકલ સ શયરૂપ અ ધકાર દૂર થઇ જવાને લીધે પ્રકાશમાન એવા હૃદયમા, વાયુકાય આદિની વિરાધનાનો દેષ ટાળવાને માટે દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકાનુ બાધવુ તે આહ્‌લાદપૂર્વક સ્થાનને ધારણ કરે છે

રાગદ્વેષ રૂપી દોષથી દૂષિત, ભગવદ્‌વચનામૃતના રસાસ્વાદથી વ ચિત એવા પુરૂષોના અનેક દુર્વિકલ્પોથી પરાહત એવા ચિત્તમા આ અર્થને દુર્લક્ષ્ય સમજીને તેમને માટે હાથથી ન પ્રાપ્ત થનારી વસ્તુની પ્રાપ્તિને માટે સોપાન (સીડી)ના જેવુ આલ બન આગળ રાખીને આ બધુ સપ્રમાણ પ્રતિપાદિત કરવામા આવ્યુ છે

अत्र प्रमाणतयोपन्यस्तग्रन्थनामानि विनेयबुद्धिवैमल्याय निर्दिश्यन्ते—

(१) श्री–भगवतीसूत्रम् ।
(२) हितशिक्षारासः ।
(श्रावकऋषभदासकृतः)
(३) हरिबलमच्छीरासः
(मुनिलब्धिविजयकृतः)
(४) योगशास्त्रम् (हेमचन्द्राचार्य०)
(५) ओघनिर्युक्तिः ।
(६) प्रवचनसारोद्धारः ।
(७) प्रकरणरत्नाकरः ।
(१०) उत्तराध्ययनसूत्रटीकाः ३ ।
(१) सर्वार्थसिद्धिटीका ।
(२) भावविजयकृतवृत्तिः ।
(३) पाईटीका ।
(११) विशेषावश्यकबृहद्वृत्तिः
(१२) अन्तकृदशाङ्गम् ।
(१३) आवश्यकसूत्रटीका ।
(हारिभद्रीया)
(१४) ज्ञाताधर्मकथाङ्गम् ।
(१५) निशीथसूत्रम् ।
(१६) बृहत्कल्पभाष्यम् ।
(१७) व्यवहारभाष्यम् ।
(१८) आचाराङ्गसूत्रम् ।
(१९) विपाकसूत्रम् ।
(२०) सामाचारी ।
(देवचन्द्रसूरिकृता)
(२१) प्रज्ञापनासूत्रम् ।
(२२) भावप्रकाशः ।
(२३) सुश्रुतसहिता ।
(२४) योगचिन्तामणिः ।
(२५) माधवनिदानम् ।
(२६) तिब्बअकब्बर ।
(२७) शरीरविज्ञानम् ।
(२८) मानवधर्मशास्त्रम् ।
(२९) पिण्डनिर्युक्तिः ।
(३०) सूत्रकृताङ्गम् ।
(३१) दशवैकालिकसूत्रम् । इति ।

॥ इति मुखवस्त्रिकाविचारः ॥

यहां विनीत शिष्यकी बुद्धिका विकाशके लिए प्रमाणरूपसे दिये गये ग्रन्थोंकी कुछ नामावली सस्कृत टीकामें दी गई है, पाठकगण वहां देख लेवें ॥

॥ इति मुखवस्त्रिकाविचार ॥

અહીં વિનીત શિષ્યની બુદ્ધિના વિકાસને માટે પ્રમાણરૂપે આપેલા ગ્રથોની નામાવલી સસ્કૃતટીકામા આપવામા આવી છે, ત્યાથી પાઠકોએ જોઇ લેવી

ઇતિ મુખવસ્ત્રિકાવિચાર

तपः

तपः=तपति-ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध कर्म दहतीति तपः, तत्तु बाह्याभ्यन्तर-भेदाद्‌द्विधा, तत्र बाह्य तपः षड्विधम् , तथा चोक्तम्—

" अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो सलीणया य बज्झो तवो होइ ॥ १ ॥ " इति।

छाया-" अनशनमूनोदरिका, भिक्षाचर्या च रसपरित्यागः।
कायक्लेशः सलीनता च, बाह्य तपो भवति ॥ १ ॥ "

(१) अनशन=चतुर्थभक्तादिपाण्मासिकान्त यावज्जीवन वाऽशेपाहारपरिहारः।

। तप ।

जिससे ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म भस्म हो जावें उसे तप कहते हैं। वह दो प्रकारका है-(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर। बाह्य तप छह प्रकारका है-

(१) अनशन, (२) ऊनोदरी, (३) भिक्षाचर्या, (४) रसपरित्याग, (५) कायक्लेश, (६) सलीनता।

(१) अनशन=इहलोक परलोक सम्बन्धी कामनारहित चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, अष्टमभक्त आदि छहमासी तप पर्यन्त, अथवा यावज्जीवन सपूर्ण आहारका परित्याग करना अनशन तप कहलाता है।

તપ.

જેથી જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મ ભસ્મીભૂત થઇ જાય તેને તપ કહે છે તપ બે પ્રકારનો છે (૧) બાહ્ય અને (૨) આભ્યતર બાહ્ય તપ છ પ્રકારનો છે—(૧) અનશન, (૨) ઊનોદરી, (૩) ભિક્ષાચર્યા, (૪) રસપરિત્યાગ, (૫) કાયકલેશ, (૬) સલીનતા

(૧) **અનશન**—ઇહલોક પરલોક સબધી કામના રહિતપણે, ચતુર્થ ભક્ત, ષષ્ઠ ભક્ત, અષ્ટમ ભક્ત (સળગ એક ઉપવાસ, બે ઉપવાસ, ત્રણ ઉપવાસ) આદિ છ માસી તપ સુધી અથવા જીવનપર્યત સપૂર્ણ આહારનો પરિત્યાગ કરવો એ અનશન-તપ કહેવાય છે

(२) ऊनोदरिका=यावताऽन्नादिनोदरं परिपूर्यते तत्र कवलमात्रमपि न्यूनयित्वाऽभ्यवहरणम् । (३) भिक्षाचर्या=स्वाध्यायाविरोधियथाविधिविशुद्धभिक्षाकृते चरणम् (४) रसपरित्यागः=दुग्धादिविकृतित्यागः । (५) कायक्लेशः=शीतोष्णादिसहिष्णुत्वं केशलुञ्चनं च । (६) सलीनता=स्त्रीपशुपण्डकरहितवसतौ कूर्मवदङ्गोपाङ्गाद्याकुञ्चनपूर्वकावस्थानम् ।

(२) ऊनोदरी=जितने अन्नसे उदरकी पूर्ति हो जाती है उससे एक ग्रास भी कम आहार करनेको ऊनोदरी तप कहते हैं। इससे स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाएँ अच्छीतरह निभती हैं।

(३) भिक्षाचर्या=जिससे स्वाध्याय, ध्यान आदि क्रियाओंमें विघ्न न आवे, इसप्रकार शास्त्रानुकूल विधिसे विशुद्ध भिक्षाके लिए पर्यटन करना भिक्षाचर्या तप कहलाता है।

(४) रसपरित्याग=दूध, दही, घृत, तेल, मीठेका त्याग करनेको रस परित्याग कहते हैं।

(५) कायक्लेश= शीत, उष्ण आदिका सहन करना, अथवा केशलोच करनेको कायक्लेश तप कहते हैं।

(६) सलीनता=स्त्री-पशु-पण्डकरहित वसतीमें कछुवेकी तरह अङ्गोपाङ्ग सकुचित करके स्थित होना सलीनता तप कहलाता है।

(२) **ઊનોદરી**—જેટલા અન્નથી ઉદર ભરાય તેથી એક કોળિયો માત્ર પણ ઓછો આહાર કરવો તે ઊનોદરી તપ કહેવાય છે તેથી સ્વાધ્યાય, ધ્યાન, આદિ ક્રિયાઓનો સારી રીતે નિભાવ થાય છે

(૩) **ભિક્ષાચર્યા**—જેથી સ્વાધ્યાય, ધ્યાન આદિ ક્રિયાઓમા વિઘ્ન ન આવે, એ પ્રકારે શાસ્ત્રાનુકૂલ વિધિથી વિશુદ્ધ ભિક્ષાને માટે પર્યટન કરવુ એ ભિક્ષાચર્યા તપ કહેવાય છે

(૪) **રસપરિત્યાગ**—દૂધ, દહી, ઘી, તેલ, મીઠાઈનો ત્યાગ કરવો એને રસપરિત્યાગ કહે છે

(૫) **કાયકલેશ**—ટાઢ, તાપ, આદિને સહન કરવા અથવા કેશલોચ કરવો એ કાયકલેશ તપ કહેવાય છે

(૬) **સલીનતા**—સ્રી-પશુ-પડક- હિત વસતીમા (સ્થાનમા) કાચબાની પેઠે અગોપાગ સકોચીને રહેવુ તે સલીનતા તપ કહેવાય છે

आभ्यन्तरमपि तपः षड्विधं, तथा चोक्तम्—

"पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं च विउस्सग्गो एसो अब्भिंतरो तवो ॥ १ ॥" इति ।

छाया—"प्रायश्चित्तं विनयः, वैयावृत्त्यं तथैव स्वाध्यायः ।
ध्यानं च व्युत्सर्गः, एतदाभ्यन्तरं तपः ॥ १ ॥"

तत्र (१) प्रायश्चित्तम्=उपचिताऽतीचारशोधनं, यथाऽऽलोचनाप्रतिक्रमणादि । (२) विनयः=गुर्वाद्याराधनं, यथाऽभ्युत्थानाऽऽसनप्रदानाभिवादनतन्मनोऽनुकूलप्रवृत्त्यादि । (३) वैयावृत्त्यं=साधूनामशनपानाद्यानयनादिना साहाय्यकरणम् । (४) स्वाध्यायः=श्रुतधर्माराधनं, स च वाचना-प्रच्छना-परिवर्त्तनाऽनुप्रेक्षा-धर्म-

---

आभ्यन्तर तपके भी छह भेद हैं-(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, (६) व्युत्सर्ग ।

(१) प्रायश्चित्त=लगे हुए अतिचारोंकी विशुद्धि करना प्रायश्चित्त तप है, जैसे आलोचना, प्रतिक्रमण आदि करना ।

(२) विनय=गुरु आदिकी आराधना करना विनय है। गुरु आदिके आने पर खडा होना, आसन देना, वन्दना करना, उनके मनके अनुकूल प्रवृत्ति करना आदि अनेक प्रकारका विनय होता है ।

(३) वैयावृत्य=अशन पान आदि लाकर मुनियोंको सहायता पहुंचाना वैयावृत्य (वेयावच्च) तप कहलाता है ।

(४) स्वाध्याय=श्रुतज्ञानकी आराधना करना स्वाध्याय है। स्वाध्यायके पांच भेद हैं—(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्त्तना, (४) अनुप्रेक्षा

આભ્યંતર તપના પણ છ ભેદો છે (૧) પ્રાયશ્ચિત્ત, (૨) વિનય, (૩) વૈયાવૃત્ય, (૪) સ્વાધ્યાય, (૫) ધ્યાન, (૬) વ્યુત્સર્ગ

(૧) **પ્રાયશ્ચિત્ત**—લાગેલા અતિચારોની વિશુદ્ધિ કરવી એ પ્રાયશ્ચિત્ત તપ છે, જેમકે આલોચના, પ્રતિક્રમણ વગેરે કરવા

(૨) **વિનય**—ગુરૂ આદિની આરાધના કરવી એ વિનય છે ગુરૂ આદિ આવે ત્યારે ઊભા થવું, આસન આપવું, વંદના કરવી, એમના મનને અનુકૂળ પ્રવૃત્તિ કરવી વગેરે અનેક પ્રકારે વિનય થાય છે

(૩) **વૈયાવૃત્ય**—અશન પાન આદિ લાવીને મુનિઓને સહાય આપવી આદિ વૈયાવૃત્ય (વૈયાવચ્ચ) તપ કહેવાય છે

(૪) **સ્વાધ્યાય**—શ્રુતજ્ઞાનની આરાધના કરવી એ સ્વાધ્યાય છે સ્વાધ્યાયના પાંચ ભેદો છે (૧) વાચના, (૨) પૃચ્છના, (૩) પરિવર્તના, (૪) અનુપ્રેક્ષા,

कथाभेदात् पञ्चविधः। (५) ध्यानम्=एकमात्रावलम्बनेन पवनासंपृक्तदीपशिखाया इव चित्तस्य स्थिरीकरणम्।

यद्यपि तच्चतुर्विधम् आर्त्त-रौद्र-धर्म-शुक्लभेदात्, तथापि धर्म-शुक्ल लक्षण द्वयमेवोपादेयं पूर्वद्वयस्य कर्मबन्धहेतुत्वात्। (६) व्युत्सर्गः=कायादिसंचालन

और (५) धर्मकथा।

शिष्योंको आगम पढ़ानेको 'वाचना' कहते हैं। सद्भावसे संशय दूर करनेके लिए, अथवा तत्त्वका निश्चय करनेके लिए पूछना 'पृच्छना' कहलाता है। शुद्ध उच्चारण करके बार-बार मनन करना 'अनुप्रेक्षा' है। धर्मकी चर्चा या उपदेश करनेको 'धर्मकथा' कहते हैं।

(५) ध्यान=वायुके स्पर्श नही होनेसे जैसे दीपककी ज्योति स्थिर हो जाती है, वैसेही मनको किसी एक विषयमें स्थिर करलेनेको ध्यान कहते हैं। ध्यान यद्यपि आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल भेदसे चार प्रकारका है, तथापि यहाँ धर्म और शुक्ल ये दो शुभ ध्यान ही उपादेय हैं, यही दोनों तपमें अन्तर्गत हैं, पहलेके दो अशुभ ध्यान कर्मबन्धनके कारण हैं।

(६) व्युत्सर्ग=काय आदिके व्यापारको, तथा कषाय आदिको त्याग कर उपयोगसहित रहनेको 'व्युत्सर्ग' कहते हैं।

અને (૫) ધર્મકથા

શિષ્યોને આગમ ભણાવવા અને પોતે ભણવુ એ વાચના કહેવાય છે સદ્ભાવ પૂર્વક સંશય દૂર કરવા માટે, અથવા તત્ત્વનો નિશ્ચય કરવા માટે પૃચ્છા કરવી-પૂછવુ એ પૃચ્છના કહેવાય છે શુદ્ધ ઉચ્ચારણ કરીને વારવાર આવૃત્ત કરવુ તે પરિવર્તના કહેવાય છે ભણેલા અર્થનુ વારવાર મનન કરવુ એ અનુપ્રેક્ષા છે ધર્મની ચર્ચા અથવા ઉપદેશ કરવો એ ધર્મકથા કહેવાય છે

(૫) **ધ્યાન**—વાયુનો સ્પર્શ નહિ થવાથી જેમ દીવાની જ્યોત સ્થિર રહે છે, તેવી રીતે મનને કોઇ એક અવલંબનમા સ્થિર કરી લેવુ એ ધ્યાન કહેવાય છે ધ્યાન આર્ત, રૌદ્ર, ધર્મ અને શુકલ એવા ભેદે કરીને ચાર પ્રકારનો છે, તો પણ અહીં ધર્મ અને શુકલ એ બે શુભ ધ્યાન જ ઉપાદેય છે એ બે ધ્યાન તપમા અંતર્ગત છે, પહેલા બે અશુભ ધ્યાન કર્મબંધના કારણ છે

(૬) **વ્યુત્સર્ગ**—કાયા આદિના વ્યાપારને તથા કષાય આદિને ત્યજીને ઉપયોગ સહિત રહેવુ એ વ્યુત્સર્ગ કહેવાય છે

निवृत्तिपूर्वकसोपयोगावस्थानम् । एव वाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वादशविध तपः सिद्धम् ।

ननु अहिंसा-सयम-तपः-स्वरूपस्य धर्मस्योत्कृष्टमङ्गलत्व प्रतिपाद्यते तत्र तपसोऽनशनादिलक्षणदुःखरूपत्वेन मोक्षहेतुत्व न प्राप्नोति, तद्धि अशातवेदनीय-कर्मोदयात्मकम्, भगवताऽपि क्षुत्पिपासादयः परीषहा वेदनीयकर्मोदयस्वरूपत्वेनाऽभ्यधायिषत ।

कर्मक्षयो हि यद्यपि मोक्षाङ्गत्वेन श्रूयतेऽपि शास्त्रे, कर्मोदयस्य तु न क्वचिन्मोक्षहेतुत्व शास्त्रे लोके वा प्रथितम् । एव सति तस्योत्कृष्टमङ्गलात्मकधर्मरूपत्वकथनमयुक्तम् ।

इस प्रकार वाह्य और आभ्यन्तरके भेद मिलकर तपके सब बारह भेद होते हैं ।

प्रश्न—अहिंसा, सयम और तपरूप धर्मको उत्कृष्ट मगल बतलाया है, लेकिन अनशन आदि तप भोजन आदिका त्याग करनेसे होते हैं, इसलिए वे दुःख हैं और दुःख मोक्षका कारण नहीं हो सकता, क्योंकि दुःख असातवेदनीय कर्मके उदयसे होता है । भगवान्ने भी यही प्रतिपादन किया है कि—"क्षुधा पिपासा आदि परिषह वेदनीय कर्मके उदयसे होते हैं ।" कर्मका क्षय तो मोक्षका कारण हो सकता है, परन्तु यह कहीं नहीं सुना कि कर्मका उदय भी मोक्षका कारण है । यह बात न किसी शास्त्रमें है और न लोकमेंही प्रसिद्ध है, इसलिए जब कि तप, कर्मोदय-जन्य होनेसे मोक्षका कारण नहीं हो सकता तो उसे उत्कृष्ट मगल क्यों

એ પ્રમાણે બાહ્ય અને આભ્યતરના ભેદ મળીને તપના એકદર બાર ભેદ થાય છે

પ્રશ્ન—અહિંસા, સયમ અને તપ રૂપ ધર્મને ઉત્કૃષ્ટ મગલ બતલાવેલ છે, પરન્તુ અનશન આદિ તપ ભોજનાદિનો ત્યાગ કરવાથી થાય છે, તેથી એ દુ ખ છે અને દુ ખ મોક્ષનુ કારણ થઈ શકતુ નથી, કારણ કે દુ ખ અસાતા વેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થાય છે ભગવાને પણ એમ જ પ્રતિપાદન કર્યું છે કે—"ભૂખ તરસ આદિ પરિષહ વેદનીય કર્મના ઉદયથી જ થાય છે" કર્મનો ક્ષય તો મોક્ષનુ કારણ હોઈ શકે છે પરન્તુ એવુ ક્યાય સાભળ્યુ નથી કે કર્મનો ઉદય પણ મોક્ષનુ કારણ છે એ વાત કોઈ શાસ્ત્રમા નથી તેમજ લોકમા પ્રસિદ્ધ નથી, તેથી જો તપ કર્મોદયજન્ય હોઈને મોક્ષનુ કારણ થઈ શકતો નથી તો

दुःखरूपत्वेन तपसो मोक्षसाधनत्वस्वीकारे तु व्याधिनाऽऽतुरस्य, राजदण्डेन तस्करस्य, कशादिघातेनाश्वादेः, दशविधक्षेत्रवेदनया नारकाणां, श्वासोच्छ्वासमात्रमितकालेऽपि सार्द्धसप्तदशमितजन्ममरणनिमित्तकाऽनन्तघोरवेदनायुक्तानां निगोदजीवानां च मोक्षापत्तिः, तेषामपि भवद्भिमतमोक्षहेतुदुःखसद्भावादिति। किञ्चालमेतेन विशेषविचारेण जन्मजरामरणेष्टवियोगाऽनिष्टसंयोगाद्यनेकविधदुःखयुक्ताः सर्व एव संसारिण इत्यविशेषेण सर्वेषां मोक्षापत्तिः स्यात्।

एतदुक्तं भवति-तपः समाचरतः क्षुत्पिपासादयः समुद्भवन्ति, ततश्च प्रबल

कहा है?, यदि दुःखरूप तपको मोक्षका कारण मानलिया जाय तो अनेक दोष आते हैं, वे ये हैं कि-जो पुरुष रोगसे अत्यन्त पीड़ा पा रहा है उसे मोक्ष होजाना चाहिये, राजदण्डसे दुःख भोगनेवाले चोर डाकुओंको मोक्ष होना चाहिए, घोडोंपर कोडोंकी मार पडती है, वे दुःखी होते हैं, अतः उन्हेंभी मोक्ष मिलना चाहिये। इसी प्रकार, क्षेत्रवेदनासे दुःखी नारकी जीवोंको तथा एक श्वासोच्छ्वासमें साढ़े सतरह बार जन्म-मरणके अनन्त काल तक दुःख पाने वाले निगोदिया जीवोंको मुक्तिकी प्राप्ति होनी चाहिये। अधिक कहां तक कहें? संसारके समस्त प्राणी जन्म, मरण, इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग आदि भांति-भांतिके दुःखोंसे दुःखी हैं अत एव सबहीको मोक्ष मिलजाना चाहिये, क्योंकि दुःखको यहां मोक्षका कारण माना है।

जो अनशन आदि तप करता है उसे क्षुधा पिपासा आदि परिषह

તેને ઉત્કૃષ્ટ મંગલ કેમ કહ્યો છે? જો દુઃખરૂપ તપને મોક્ષનું કારણ માનવામાં આવે તો, અનેક દોષો આવે છે, જેમકે-જે પુરુષ રોગથી અત્યંત પીડા પામી રહ્યો હોય તેનો મોક્ષ થઇ જવો જોઇએ, રાજદંડથી દુઃખ ભોગવવા વાળા ચોર ડાકુઓનો મોક્ષ થવો જોઈએ, ઘોડા પર ચાબૂકનો માર પડે છે તેથી તે દુઃખી થાય છે તેથી તેને પણ મોક્ષ મળવો જોઇએ એજ પ્રમાણે ક્ષેત્રવેદનાથી દુઃખી એવા નારકી જીવોને તથા એક શ્વાસોચ્છ્વાસમાં સાડી સત્તરવાર જન્મ-મરણના દુઃખો અનંતકાળ સુધી પામનારા નિગોદિયા જીવોને પણ મુક્તિની પ્રાપ્તિ થવી જોઇએ વધારે શું કહીએ? જગતના બધા પ્રાણીઓ જન્મ મરણ ઇષ્ટનો વિયોગ, અનિષ્ટનો સંયોગ વગેરે તરેહ તરેહના દુઃખોથી દુઃખી છે એટલે એ બધાને મોક્ષ મળી જવો જોઇએ, કારણ કે દુઃખને અહીં મોક્ષના કારણ રૂપ માન્યો છે

જે અનશન આદિ તપ કરે છે તેને ભૂખ-તરસ આદિ પરિષહ થાય છે

दुःखम्, एतच्च चित्तविक्षेपस्य हेतुः, सति च तस्मिन् अप्रशस्त ध्यान, तस्माच्चावश्य कर्मबन्धः, ततश्च चतुर्गतिकससारपरिभ्रमणरूप महदमङ्गलमिति कथकथमप्यहिंसा-सयमविशिष्टस्यापि तपसो मोक्षहेतुत्वरूपमुत्कृष्टमङ्गलत्व न सम्भवदुक्तिकमिति ।

अत्रोच्यते—तपो न तावद्दुःखात्मक, दुःख हि नामाऽशातवेदनीयकर्मोदय-विपाक. पीडालक्षण आत्मपरिणामः, तपश्चर्यागर्भिताऽनशनादिव्यापारस्य न पीडात्मकाऽऽत्मपरिणामरूपत्वम् ।

किञ्च तपः पक्षीकृत्य मोक्षसाधनत्वाभावसाध्ये यदुक्त दुःखरूपत्वसाधन

होते हैं। परिषह होनेसे तीव्र दुःख होता है। दुःखसे चित्तका विक्षेप होता है। चित्तके विक्षेपसे अशुभ ध्यान होता है। अशुभ ध्यानसे कर्मका बन्ध होता है। कर्मबन्धसे चार गतियोमे भ्रमण करना पडता है, इसप्रकार यह बडा अमगल है। जो प्रबल अमगल है वह अहिंसा और सयमसे युक्त होनेपर भी उत्कृष्ट मगल नही हो सकता। अमृतमे विष मिला देनेसे क्या विष अमृत हो सकता है। कदापि नही। इसलिए तपको मोक्षका कारण मानना उचित नही है।

उत्तर—तपको दुःख कहना युक्त नहीं है वह दुःखरूप नही है। क्योंकि असातावेदनीय कर्मके फलको, जो आत्माका ही एक विभाव परिणाम है, और पीडारूप है उसे दुःख कहते हैं। अनशन आदि तप पीडारूप परिणाम नही है, अतः उन्हें दुःख नही कहा जा सकता। दूसरी बात यह है—शकाकारने कहा है कि तप मोक्षका कारण नही है। क्योंकि वह दुःख है। यहा "तप मोक्षका कारण नही" यह

परिषहथी तीव्र दुःख थाय छे दुःखथी चित्तनो विक्षेप थाय छे चित्तना विक्षेपथी अशुभ ध्यान थाय छे अशुभ ध्यानथी कर्मनो बंध थाय छे कर्मबंधथी चारे गतिओमा परिभ्रमण करवु पडे छे ए रीते ए मोटु अमगळ छे जे प्रबळ अमगळ छे ते अहिंसा अने सयमथी युक्त थवा छता पण उत्कृष्ट मगळ थई शकतु नथी अमृतमा विष मेळववाथी शु विष अमृत थई शके छे? कदापि नहि तेथी तपने मोक्षनु कारण मानवु ए उचित नथी

ઉત્તર—તપને દુઃખ કહેવુ એ યુક્ત નથી તે દુઃખરૂપ નથી કારણ કે એ સાતાવેદનીય કર્મ કે જે આત્માનો જ એક વિભાવ પરિણામ છે અને પીડારૂપ છે, તેને દુઃખ કહે છે અનશન આદિ તપ પીડારૂપ પરિણામ નથી, તેથી તેને દુઃખ કહી શકાય નહિ બીજી વાત આ છે શંકાકારે કહ્યુ કે તપ મોક્ષનુ કારણ નથી. કારણ કે તે દુઃખ છે, પરન્તુ અહીં "તપ મોક્ષનું કારણ નથી" એ

तदयुक्त, तस्य दुःखजयरूपत्वेन स्वरूपासिद्धेः ।

तत्र (तपसि) जायमानाः क्षुत्पिपासादयः आत्मनः प्रवर्द्धमानविशुद्धपरिणामेन निर्जिताः सन्तः पीडालक्षण कार्यं न जनयन्ति। एतेन क्षुत्पिपासादीना कर्मोदयस्वरूपत्वेऽपि स्वकार्यकरणाऽक्षमतया चित्तविक्षेपाजनकत्व सिद्धम् ।

प्रतिज्ञा है और "क्योंकि वह दुःख है" यह हेतु है। हेतुका सदा ऐसा ही प्रयोग करना चाहिए जो प्रतिवादीको भी सिद्ध होवे। यदि "वह दुःख है" यह हेतु सिद्ध होता तो शकाकारका साध्य सिद्ध हो सकता, परन्तु वह सिद्ध नहीं है। क्योंकि पहले बतला चुके हैं कि तप दुःख नहीं है। अत एव यह हेतु स्वरूपसेही असिद्ध है। तप दुःखरूप नहीं, बल्कि दुःखको विजय करना तप कहलाता है।

अनशन आदि तपसे होनेवाले क्षुधा आदि परिषह आत्माके बढ़ते हुए विशुद्ध परिणामसे जीत लिये जाते हैं। क्षुधा दुःख अवश्य है परन्तु उसे तप नहीं कहते, बल्कि क्षुधा पर विजय पानेको तप कहते हैं। क्षुधाको जीतना दुःख नहीं परन्तु सुख है अत एव तप सुखरूप है। क्योंकि तपश्चर्या करनेवालेको भूखकी परवाह ही नहीं रहती। इसलिए शकाकारका यह कहना ठीक नही है कि तपसे पीड़ा उत्पन्न होती है। इस कथनसे यह बात अच्छीतरह सिद्ध हो गई कि क्षुधा आदि परिषह

પ્રતિજ્ઞા છે અને "કારણ કે તે દુખ છે" એ હેતુ છે હેતુનો પ્રયોગ સદા એવો કરવો જોઇએ કે જે પ્રતિવાદીને મતે પણ સિદ્ધ હોય જો "તે દુખ છે" એ હેતુ સિદ્ધ હોત તો શકાકારનું સાધ્ય સિદ્ધ કરી શકાત, પરતુ એ સિદ્ધ નથી, કરણ કે પહેલા બતાવી ચૂક્યા છીએ કે તપ એ દુખ નથી એટલે એ હેતુ સ્વરૂપથી જ અસિદ્ધ છે તપ દુખરૂપ નથી, બલ્કે દુખ ઉપર વિજય મેળવવો એ તપ કહેવાય છે

અનશન આદિ તપથી થનારા ક્ષુધા આદિ પરિષહ આત્માના વધતા જતા વિશુદ્ધ પરિણામથી જીતાઇ જાય છે ક્ષુધા એ દુખ અવશ્ય છે, પરન્તુ તેને તપ કહી શકાય નહિ, બલ્કે ક્ષુધા પર વિજય પ્રાપ્ત કરવો એ તપ કહેવાય છે ક્ષુધાને જીતવી એ દુખ નથી પરન્તુ સુખ છે એટલે તપ સુખરૂપ છે, કેમકે તપશ્ચર્યા કરનારાઓને ભૂખની પરવા જ નથી હોતી તેથી શકાકારનુ એ કહેવુ બરાબર નથી કે–'તપથી પીડા ઉત્પન્ન થાય છે' આ કથનથી એ વાત સારી રીતે સિદ્ધ થઇ ગઇ કે ક્ષુધા આદિ પરિષહ વેદનીય કર્મના ઉદયથી થાય છે પરન્તુ

अतएव भगवताऽपि क्षुत्पिपासादिपरीषहस्य तपसश्च पृथक्त्वेन प्रतिपादनं विहितम्।

यद्यनशनादिकं सर्वत्र दुःखात्मकमेव मन्येत तदा–सिद्धानामपि अशनाद्य-ग्राहितयाऽनन्तदुःखसद्भावप्रसङ्गः केन वार्येत। एवं च मोक्षमार्गे प्रवर्त्तकस्य शास्त्रस्य तदुक्तधर्मानुष्ठानस्य च वैयर्थ्यापत्तिः।

अयं भावः–यथा व्याधितस्य व्याधिपरिजिहीर्षया स्वयमेव लङ्घनादिप्रवृत्तिः

वेदनीय कर्मके उदयसे होते हैं, परन्तु वे पीडा नहीं उत्पन्न कर सकते। और जब उनसे पीड़ा नहीं उत्पन्न हो सकती तो चित्तमें विक्षेप भी नहीं हो सकता। चित्तमें विक्षेप न होनेसे कर्मका बन्ध भी नहीं हो सकता। उल्टा क्षुधा आदिको जीतनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है और आते हुए कर्मोंका निरोध होनेसे संवर भी होता है। इसलिए भगवान् महावीर स्वामीने क्षुधा आदि परिषह और तपको अलग अलग कहा है।

एक बात और भी है–सिद्ध भगवान् कभी आहार नहीं लेते। यदि अनशनको दुःख मानलिया जाय तो उन्हें भी दुःखी मानना पडेगा। जब सिद्ध भी दुःखी होंगे तो मोक्षमार्गकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्र व्यर्थ होजावेंगे, और उन शास्त्रोंके अनुसार की हुई क्रियाएँ भी व्यर्थ जायँगी। क्योंकि दुःखी बननेके लिए कोई बुद्धिमान तैयार नहीं होगा। मतलब यह है कि–जैसे अपना रोग दूर करनेके लिए रोगीकी स्वयं ही लंघनमें

ते पीडा उत्पन्न करी शकतो नथी अने जो तेथी पीडा उत्पन्न नथी थती तो चित्तमा विक्षेप पण थई नथी शकतो, चित्तमा विक्षेप नहि थवाथी कर्मनो बंध पण नथी थई शकतो. उल्टु क्षुधा आदिने जीतवाथी कर्मनी निर्जरा थाय छे अने आवता कर्मोनो निरोध थवाथी संवर पण थाय छे तेथी भगवान् महावीर स्वामी क्षुधा आदि परिषह अने तपने जुदा–जुदा कहेला छे

એક બીજી વાત એમ છે કે–સિદ્ધ ભગવાન્ કદાપિ આહાર લેતા નથી જો અનશનને દુ ખ માની લેવામા આવે તો તેમને પણ દુ ખી જ માનવા પડે જો સિદ્ધ પણ દુ ખી હોય તો મોક્ષમાર્ગની પ્રરૂપણા કરનારૂ શાસ્ત્ર વ્યર્થ બની જાય, અને એ શાસ્ત્રોને અનુસરીને કરવામા આવતી ક્રિયાઓ પણ વ્યર્થ થાય, કારણ કે દુ ખી થવાને કોઇ બુદ્ધિમાન તૈયાર નહિ થાય મતલબ એ છે કે–જેમ પોતાનો રોગ દૂર કરવાને માટે રોગી પોતાની મેળે જ લાંઘણ કરવામા પ્રવૃત્ત

मणि-मौक्तिक-प्रवाल-हेम हीरक-रजतादीनां प्राप्त्यर्थं स्वयमेव सिन्धुतरणगहन-भयानककाननगमनदुर्गमपथभ्रमणप्रवृत्तिः पीडालक्षणात्मपरिणाम न जनयति, अन्यथा हि प्रतिकूलकर्मणि समुत्साहपूर्वकस्वतःप्रवृत्तिर्नोपपद्यते, तथा मुनयोऽपि वक्ष्यमाणभावनया तपसि पीडां नानुभवन्ति, तथाहि–

इह संसारे (१) स्वकृतदुष्कृतसन्ततिवशान्नरकेषु नारकाः कियन्तो भिद्यन्ते,

प्रवृत्ति होती है। अथवा हीरे, मोती, मूंगे, सोने, चांदी आदिकी प्राप्तिके लिए मनुष्य, दुस्तर समुद्र तरते हैं, अथवा अपनी इच्छासे ही मोती आदिकी प्राप्तिके लिए गहरे समुद्रमें गोते लगाते हैं। बड़े बड़े गहन और भयानक जंगलोंमें गर्मी आदि अनेक कष्ट उठाते हैं, दुर्गम मार्गमें लाभके लिए घूमते फिरते हैं, फिरभी अपने मनमें उसे दुःख नहीं मानते न पीड़ाका अनुभव करते हैं, यदि लंघन करनेमें और गोते लगाने आदिमें कष्ट मालूम होता तो विना किसीके दबावके अपनी इच्छासे ही उत्साह पूर्वक क्यों प्रवृत्ति करते? इसी प्रकार मुनिराज भी अपनी आत्माकी विशुद्धिके लिए अपने आपही प्रमुदित भावसे अनशन आदि तपस्या करते हैं। ऐसा करनेमें उन्हें तनिकभी दुःख नहीं होता।

(१) संसारमें अपने किये हुए कर्मोंके कारण कईएक नरकमें जाकर परमाधर्मीद्वारा भाले आदिसे भेदे जाते हैं। कईएक घानीमें तिल या

થાય છે, અથવા હીરા, મોતી, માણેક, સોનું, ચાંદી આદિની પ્રાપ્તિ માટે મનુષ્ય દુસ્તર સમુદ્રને તરે છે, અથવા પોતાની ઇચ્છાથી જ મોતી આદિની પ્રાપ્તિ માટે ઉંડા સમુદ્રમાં ડુબકી મારે છે, મોટા મોટા ઘીચ અને ભયાનક જંગલોમાં ટાઢ તાપના અનેક કષ્ટો ઉઠાવે છે, દુર્ગમ રસ્તાઓમાં લાભને માટે ભટકતો ફરે છે, તોપણ પોતાના મનમાં તેને દુઃખ માનતો નથી કે પીડાનો અનુભવ કરતો નથી, જો લંઘન કરવામાં અને ડુબકી મારવા આદિમાં કષ્ટનો અનુભવ થતો હોત તો કોઈએ દબાવ્યા કે આગ્રહ કર્યા વિના પોતાની જ ઇચ્છાથી મનુષ્ય ઉત્સાહ પૂર્વક કેમ પ્રવૃત્તિ કરત? એજ રીતે મુનિરાજ પણ પોતાના આત્માની વિશુદ્ધિને માટે પોતાની મેળે જ પ્રમુદિત ભાવથી અનશન આદિ તપશ્ચર્યા કરે છે એમ કરવામાં તેને જરા પણ દુઃખ થતું નથી.

(૧) જગતમાં પોતાના કરેલા કર્મોને કારણે કઈ કઈ જીવો નરકમાં જઈને પરમાધર્મીદ્વારા ભાલા આદિથી છેદાય-ભેદાય છે કેટલાક ઘાણીમાં તલ અથવા

कियन्तस्तैलयन्त्रे तिलसर्षपादिवन्निष्पीड्यन्ते, ताम्रादिभाजनवच्च कियन्तः कुट्यन्ते, कियन्तो दारुवद्विदार्यन्ते, कियन्तः शूलशय्यायां स्वाप्यन्ते, कियन्तः शिलोपरि वस्त्रवत्ताडयन्ते, अनन्तक्षुत्पिपासादिभिः परिभूयन्ते, इत्येवं विविध-दुःखसन्ततिमनुभवन्ति ।

(२) अथ तिर्यञ्चोऽपि केचित् सक्लेशं शीतोष्णे सहमानाः, केचिद् गुरुतरं भारं वहमानाः, केचित्तोत्रादिना ताड्यमानाः, केचिन्मांसार्थिभिर्विविधैस्तीक्ष्णाग्र-शस्त्रैश्छिद्यमानाः, केचिच्च शङ्कुनिरुद्धाः मलैः क्षुत्पिपासादिभिः परिभूयमाना लक्ष्यन्ते ।

सरसोंकी तरह पीले जाते हैं। कईएक तांबे पीतल आदिके बर्त्तनोंकी तरह कूटे जाते हैं। कईएक काठकी भाँति करवतसे चीरे जाते हैं। कईएक तीक्ष्ण कांटोंके बिछौने पर सुलाये जाते हैं। कईएक शिलापर कपडोंकी तरह पछाडे जाते हैं, और अनन्त भूख प्यास आदि नाना प्रकारके असह्य क्लेश पाते हैं। इस प्रकार भाँति-भाँतिके दुःखोंका अनु-भव करते हैं।

(२) तिर्यञ्च गतिमें भी कोई२ तिर्यञ्च दुःखके साथ गर्मी सर्दी सहते हैं, किसी पर भारी बोझ लादा जाता है, कोई-कोई कोडोंकी मार खाते हैं, कोई२ पैने (तीखे) शस्त्रोंसे छेदे जाते हैं, कोई-कोई खूटीसे बंधे हुए भूख प्यास आदि नाना प्रकारके दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं।

સરસવની પેઠે પીલાય છે કેટલાકો તાંબા પીતળના વાસણોની જેમ કુટાય-પીટાય છે કેટલાકો લાકડાની પેઠે કરવતથી વહેરાય છે કેટલાકને તીક્ષ્ણ કાંટાના બિછાના પર સુવાડવામાં આવે છે કેટલાકને કપડાની પેઠે શિલાપર પછાડવામાં આવે છે, અને અનંત ભૂખ-તરસ આદિ નાના પ્રકારના અસહ્ય કલેશ પમાડ વામાં આવે છે એ પ્રમાણે તરેહ તરેહના દુ ખોનો અનુભવ એ જીવો કરે છે

(૨) તિર્યંચ ગતિમાં પણ કોઈ કોઈ તિર્યંચ દુ ખ સાથે ટાઢ-તાપ સહન કરે છે, કેટલાક પર ભારે બોજો લાદવામાં આવે છે, કોઈ કોઈ ચાબૂકના માર ખાય છે, કોઈ કોઇને કાતીલ શસ્ત્રોથી છેદવામાં આવે છે, કોઇ કોઇ ખૂંટે બંધાએલા ભૂખ-તરસ આદિ નાના પ્રકારના દુ ખો ભોગવતા જોવામાં આવે છે

(३) एवं मनुष्यगतिं प्राप्ता अपि केचिदन्धत्वं, केचिद्बधिरत्वं, केचित् पङ्गुत्वं, केचित्कासश्वासादिरोगं, केचिद्दारिद्र्यं च समाप्य, हीना दीनास्तत्पीडापरिहाराक्षमा विविधदुर्दशामापन्नाः, स्थाविरे कलत्रपुत्रादिभिरप्यनादृताः क्षुत्पिपासादिभिर्बाध्यमाना म्रियन्ते ।

(४) देवा अपि परोत्कर्षनिरीक्षणेर्ष्याद्वेषादिजनितान्तस्तापस्य प्रतिकर्तुमसमर्थतया प्रायो दुःखभाज एव दृश्यन्ते ।

(३) यदि भाग्योदयसे मनुष्यगति मिल जाय तो उसमें भी सैकडों दुःख भोगने पड़ते हैं। कोई मनुष्य अन्धा होजाता है, कोई बहिरा हो जाता है, कोई लंगड़ा होजाता है। किसीको श्वास या खाँसीका रोग हो जाता है। कोई दरिद्रताके दुःखोंसे दीन हीन होकर अनेक प्रकारकी दुर्दशाका अनुभव करता है। वृद्धावस्थामें पत्नी पुत्र आदि तिरस्कार करते हैं। अन्तमें क्षुधा-पिपासा आदिके भी दुःख उठाकर मरणकी शरणमें जाना पड़ता है।

(४) कभी देवगति पाकर देवता होजाय तो वहां भी तरह-तरहके दुःख विद्यमान हैं।

किसी देवताकी विभूति अधिक होती है, किसीकी कम होती है, कम विभूतिवाला अधिकविभूतिवाले देवताको देखकर ईर्ष्या-द्वेष करता है, ऐसा करनेसे मनमें अत्यन्त सन्ताप होता है। उस सन्तापको मिटाने में जब अपनेको असमर्थ पाता है तो दुःखी होता है। इसलिये संसारमें कहींभी सुख नहीं दिखलाई पडता है।

(૩) જો ભાગ્યોદયથી મનુષ્યગતિ મળી જાય તો તેમાં પણ સેંકડો દુઃખો ભોગવવા પડે છે કોઈ માણસ આંધળો થઈ જાય છે, કોઈ બહેરો બની જાય છે, કોઈ લંગડો થાય છે કોઈને શ્વાસ યા ખાંસીનો રોગ થાય છે કોઈ દરિદ્રતાના દુઃખોથી દીન-હીન થઈને અનેક પ્રકારની દુર્દશાનો અનુભવ કરે છે વૃદ્ધાવસ્થામાં પત્ની પુત્ર આદિ તેનો તિરસ્કાર કરે છે છેવટે ભૂખ-તરસ આદિના દુઃખો પણ વેઠીને તેને મરણ શરણ થવું પડે છે

(૪) કદાચ દેવગતિ પામીને દેવતા થઈ જાય તો ત્યાં પણ તરેહ તરેહના દુઃખો વિદ્યમાન હોય છે કોઈ દેવતાની વિભૂતિ અધિક હોય છે, કોઈની ઓછી હોય છે ઓછી વિભૂતિવાળા અધિક વિભૂતિવાળા દેવતાને જોઈને ઈર્ષા-દ્વેષ કરે છે એમ કરવાથી મનમાં અત્યંત સંતાપ થાય છે એ સંતાપને શમાવવાને જ્યારે તે પોતાને અસમર્થ જુએ છે ત્યારે તે દુઃખી થાય છે તેથી સંસારમાં ક્યાંય પણ સુખ જોવામાં આવતું નથી

इत्येवमपारपारावारतरलतरतरङ्गभङ्गमालायमानजन्मजरामरणाधिव्याधीष्टवियोगाऽनिष्टसयोगादिजनितविविधसन्तापकलापमाकलयन्तः 'कथमेतस्मात्क्लेशकदम्बकादुन्मुक्ता भविष्यामः?' इत्युपाय समन्तात् समार्गयन्तो मुनयोऽपि जिनेन्द्रप्रतिपादित मोक्षमार्गमारुह्य, तत्रापि शुक्लध्यानादितकेवलज्ञानसमनन्तरजायमानाऽव्याबाधामन्दानन्दसन्दोहलक्षणमोक्षस्याऽपुनरावृत्तिलक्षण महिमान विनिश्चित्य, ईषत्क्षुत्पिपासाऽऽपादितदुःख मनागपि न गणयन्ति, अत एव तदनशना-

जिसतरह अपार सागरमें चञ्चल तरगे उत्पन्न होती हैं उसी तरह ससारमें जन्म, मरण, बुढ़ापा, मानसिक चिन्तायें, शारीरिक व्याधियाँ, इष्टवस्तुओंका वियोग, अनिष्टका सयोग आदि अनेक प्रकारके नये-नये दुःख उत्पन्न होते रहते हैं। इन विविध प्रकारके दुःखोंको भली भाँति सम्यग्ज्ञानद्वारा जाननेसे यह जिज्ञासा होती है कि इस दुःखसमूहसे हम कैसे छूटेंगे ? इसप्रकार छूटनेका उपाय ढूँढ़ते २ मुनिमहात्मा जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित मोक्षके मार्ग पर आरूढ हो जाते हैं। फिर क्रमशः शुक्लध्यान द्वारा केवलज्ञान पाकर अव्याबाध अनन्त आत्मिकसुख और पुनरागमनरहित मोक्षको प्राप्त करते हैं। ऐसा अपने मनमें विचार कर तपमें लीन होनेवाले तपस्वी जन क्षुधा-पिपासाके थोडेसे दुःखको तनिक भी नहीं गिनते। उनके सामने अनन्त सुखका स्थान मोक्षका ध्येय सदा रहता है और उस ध्येयकी प्राप्तिमें क्षुधा आदि

જેવી રીતે અપાર સાગરમા ચચલ તરગો ઉત્પન્ન થાય છે, તેવી રીતે સસારમા જન્મ, મરણ, બુઢાપો, માનસિક ચિંતાઓ, શારીરિક વ્યાધિઓ, ઇષ્ટ વસ્તુઓનો વિયોગ, અનિષ્ટનો સયોગ આદિ અનેક પ્રકારના નવા નવા દુખો ઉત્પન્ન થતા રહે છે એ વિવિધ પ્રકારના દુખોને સારી પેઠે સમ્યગ્જ્ઞાનદ્વારા જાણવાથી એવી જિજ્ઞાસા થાય છે કે આ દુખસમૂહથી આપણે કેવી રીતે છૂટીશુ ? એ રીતે છૂટવાનો ઉપાય શોધતા મુનિ મહાત્મા જિનેન્દ્ર ભગવાને પ્રતિપાદિત કરેલા મોક્ષના માર્ગ પર આરૂઢ થઈ જાય છે પછી ક્રમશ શુકલ ધ્યાનદ્વારા કેવલ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરીને અવ્યાબાધ અનત આત્મિકસુખ અને પુનરાગમનરહિત મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે પોતાના મનમા એવો વિચાર કરીને તપમા લીન થનાર તપસ્વીજન ક્ષુધ-તરસના થોડા દુખને લગારે ગણતા નથી તેમની સામે અનત સુખના સ્થાન મોક્ષનું ધ્યેય સદા રહે છે અને એ ધ્યેયની પ્રાપ્તિમા ક્ષુધા આદિ પરિષહોથી થનારૂ દુખ નહિવત્ બને છે તે પોતાના

दिलक्षण तपः परिणामपरमपदसुखजनकतया मुनीनामात्मपरिणामविकृतिकारण न भवितुमीष्टे नापि च तत्कर्मोदयस्वरूपमिति प्राक् प्रतिपादितमिति तपसः सर्वथा मोक्षाङ्गत्वेनोत्कृष्टमङ्गलात्मकधर्मरूपत्व सिद्धम् ।

अथोत्कृष्टमङ्गलत्वसम्पादक धर्मस्य महिमानमावेदयति–'देवा वि' इत्यादि ।

धर्मे=अहिंसादित्रयस्वरूपे यस्य प्राणिन मनः=चित्त सदा=निरन्तर तिष्ठतीति शेषः, त=धर्मचित्त प्राणिन देवा अपि=भवनपत्यादिचतुर्निकाया अपि

परिषहोंसे होनेवाला दुःख नहीं के बराबर हैं। वे उन तुच्छ दुःखोंको अपने अन्तःकरणमें स्मरण भी नहीं करते। तात्पर्य यह है कि–अनशन आदि तप, परमपद मोक्षके अनन्त अविनाशी सुखका प्रबल कारण होनेसे मुनियोंकी आत्माके परिणामोंमे विकार उत्पन्न नहीं कर सकता है और न औदयिक भावमें ही है, अर्थात् तप क्षायोपशमिक भावोंमें है। इस विषयका विस्तारसे प्रतिपादन पहले किया जा चुका है। अब यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी कि तप मोक्षका कारण है और उत्कृष्ट मगलरूप धर्म है।

धर्म उत्कृष्ट मगल है, किन्तु धर्ममें ऐसी कौनसी विचित्र महिमा है जिससे उसे उत्कृष्ट मगल कहते हैं ?, इस प्रश्नका समाधान करनेके लिए कहते हैं—

जिस प्राणीके मनमें अहिंसा, सयम और तपरूप धर्मका निरन्तर निवास रहता है, उस धर्मात्मा प्राणीको भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी

અત કરણમા એ તુચ્છ દુ ખોનું સ્મરણ પણ કરતા નથી તાત્પર્ય એ છે કે- અનશન આદિ તપ, પરમપદ મોક્ષના અનત અવિનાશી સુખનું પ્રબલ કારણ હોવાથી મુનિઓના આત્માના પરિણામોમા વિકાર ઉત્પન્ન કરી શકતું નથી અને એ ઔદયિક ભાવમા પણ નથી અર્થાત્ તપ ક્ષાયોપશમિક-ભાવમા છે આ વિષયનું પ્રતિપાદન પહેલા વિસ્તારથી કરવામા આવ્યું છે હવે એ વાત સારી રીતે સિદ્ધ થઈ ચૂકી છે તપ મોક્ષનું કારણ છે અને ઉત્કૃષ્ટ મગલરૂપ ધર્મ છે

ધર્મ ઉત્કૃષ્ટ મગલ છે, પરતુ ધર્મમા એવો કયો વિચિત્ર મહિમા છે જેથી તેને ઉત્કૃષ્ટ મગલ કહ્યો છે ? આ પ્રશ્નનું સમાધાન કરવાને કહે છે —

જે પ્રાણીના મનમા અહિંસા, સયમ અને તપરૂપ ધર્મનો નિરતર નિવાસ રહે છે, તે ધર્માત્મા પ્રાણીને ભવનવાસી, વ્યન્તર જ્યોતિષી અને વૈમાનિક એ

नमस्यन्ति=नमस्कुर्वन्ति सम्मानयन्तीति यावत्, किं पुनश्चक्रवर्त्यादयो मनुष्या इत्यर्थः।

एतादृशोऽयं समुत्कृष्टो धर्मः स्वसमाराधनबद्धपरिकराणां वृन्दारकवृन्दवन्दनीयपदारविन्दतां जनयति, यदि पुनस्त्रिविधकरणयोगेन तदाराधनपरायणो भवेत् तदा शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावृत्ति सिद्धिगतिनामधेयं मोक्षपदमपि समासादयेदेव, कैव कथा तदपेक्षया तुच्छतरदेवेन्द्रचक्रवर्त्यादिपदप्राप्तिजनितसौख्यस्य सस्यानुगतपलालवदिति।

और वैमानिक इस प्रकार चारों निकायोंके देवता नमस्कार करते हैं अर्थात् समान करते हैं। गाथामें आये हुए 'अपि' शब्दसे प्रकट है कि जब देवताभी धर्मात्मा प्राणीका समान करते हैं तो राजा, महाराज, सम्राट् और चक्रवर्ती आदिकी बात ही क्या है? वे भी उसके चरणोंमें गिरते हैं। इस प्रकार इस उत्कृष्ट धर्मकी आराधना करनेवाले प्राणी देवोंके द्वारा वन्दनीय हो जाते हैं। यदि कोई तीन करण और तीन योगसे उस धर्मकी आराधना भली-भाँति करे तो वह अवश्यही ऐसी सिद्धिगति (मोक्ष)को प्राप्त करेगा जो परम कल्याणरूप है, अचल है, जिसमें किसी प्रकारका रोगदोष नहीं है, जिसका कभी अन्त नहीं होता, जिसमें पहुँच कर क्षय नहीं होता, और न किसी प्रकारकी बाधा शेष रहती है। अहो! उस मोक्षका क्या कहना है, जिसके आगे नरेन्द्र, इन्द्र, अहमिन्द्र आदिका सुख इतना तुच्छ है जैसे धान्यके आगे भूसा तुच्छ होता है।

ચારે નિકાયોના દેવતા નમસ્કાર કરે છે અર્થાત્ તેમનુ સમાન કરે છે ગાથામા આવેલા 'अपि' શબ્દથી સ્પષ્ટ થાય છે કે જ્યારે દેવતા પણ ધર્માત્મા પ્રાણીનુ સમાન કરે છે તો રાજા, મહારાજા, સમ્રાટ અને ચક્રવર્તી આદિની તો વાત જ ક્યા રહી? તેઓ પણ તેમના ચરણમા પડે છે એ રીતે આ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મની આરાધના કરનારો પ્રાણી દેવો વડે વદનીય બને છે જો કોઈ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી એ ધર્મની આરાધના ભલી પેઠે કરે તો તે અવશ્ય એવી સિદ્ધિ ગતિ (મોક્ષ) ને પ્રાપ્ત કરે કે જે પરમ કલ્યાણરૂપ છે, અચલ છે, તેમા કોઈ પ્રકારનો રોગદોષ નથી, જેનો કદાપિ અત આવતો નથી જેમા પહોચવાથી ક્ષય થતો નથી અને કોઈ પ્રકારની બાધા-પીડા થતી નથી અહા! એ મોક્ષની શી વાત કહીએ, જેની આગળ નરેદ્ર, ઈદ્ર અહમિંદ્ર આદિનું સુખ એવુ તુચ્છ છે કે જેમ ધાન્ય આગળ ફોતરા તુચ્છ છે

ननु सर्वधर्माणामहिंसामूलकत्वादहिंसायामेव संयमतपसोरपि धर्मयोः समावेशे सति किं पुनस्तयोः पृथङ्निर्देशः ? इति चेन्न,—

तपो विना संयमो यथावत्स्वरूपनैर्मल्यं न लभते, संयममन्तरेणाऽहिंसाऽपि न परिशुद्धिमेतीति इत्याशयेनाहिंसां प्रतिपाद्य तन्निर्मलीकरणार्थं संयमस्य प्रतिपादनम्, तस्य च प्रभूतशक्तिसम्पादनाय तपसः समाराधनमावश्यकमित्याशयेन, त्रयाणां पृथङ्निर्देशः कृतः ।

किञ्च संयमतपसोर्विषयेऽपरोऽपि विशेषो दृश्यते—संयमात्संवरः, तपस्तु मुख्यतो निर्जरामुद्भावयत् संवरमपि निष्पादयति । संयमस्तपश्चैते द्वे-राज्ञ आत्म

प्रश्न—संयम तप आदि सब धर्मोंका मूल अहिंसा है, इसलिए संयम और तपका अहिंसामें ही समावेश हो जाता है तो फिर संयम और तपको अलग अलग क्यों कहा है ? सुनो—

उत्तर—अलग अलग कहनेका कारण यह है कि तपके विना संयम की जैसी चाहिए वैसी निर्मलता नहीं होती और विना संयमके अहिंसाका ठीक २ पालन नहीं हो सकता। इस अभिप्रायसे अहिंसाका प्रतिपादन करके उसे निर्मल बनानेके लिए तपका अलग कथन किया गया है। इससे तीनोंका अलग २ कथन उचित है।

संयम और तपके अर्थमें और भी विशेषता है और वह यह है कि-संयमसे संवर होता है, परन्तु तपसे संयम और निर्जरा दोनों होते है।

अथवा यह समझना चाहिये कि संयम और 'तप' ये दोनों

પ્રશ્ન—સંયમ તપ આદિ સર્વ ધર્મોનું મૂલ અહિંસા છે, તેથી સંયમ અને તપનો સમાવેશ અહિંસામાં જ થઈ જાય છે તો સંયમ અને તપને જુદા-જુદા કેમ કહ્યા છે ? સાંભળો—

ઉત્તર—જુદા જુદા કહેવાનું કારણ એ છે કે તપ વિના સંયમની જોઈએ તેવી નિર્મળતા થતી નથી અને સંયમ વિના અહિંસાનું બરાબર પાલન થઈ શકતું નથી એ કારણથી અહિંસાનું પ્રતિપાદન કરીને તેને નિર્મળ બનાવવાને માટે તપનું જુદું કથન કરવામાં આવ્યું છે એથી ત્રણેનું જુદું-જુદું કથન ઉચિત છે

સંયમ અને તપના અર્થમાં બીજી પણ વિશેષતા છે અને તે એ કે-સંયમથી સંવર થાય છે, પણ તપથી સંયમ અને નિર્જરા બેઉ થાય છે

અથવા એમ સમજવું જોઈએ કે સંયમ અને તપ એ બેઉ રાજાના

रक्षकाविवाऽहिंसाव्रतस्य संरक्षके। यद्वा एतद्द्वयस्याहिंसापरिपोषकतया पृथङ्-निर्देशः संगच्छते।

अन्यच्च अहिंसा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिप्रधाना, संयमस्तु श्रोत्रादीन्द्रियनिग्रह-प्रधान इति महद्वैलक्षण्यमुपलभ्य पृथङ्निर्देशः। तपसो वैलक्षण्यं तु न कस्यचित् संशयगोचरः स्वरूपत एव परस्परं भेदात्, तथाहि—अहिंसा नाम स्वतः परतो वा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिकरणं, तपस्तु क्षुत्पिपासाशीतोष्णादिसहिष्णुत्वरूपमिति।

राजाके आत्मरक्षकोंकी तरह अहिंसाव्रतके रक्षक हैं, जबतक संयम और तप न हों तबतक अहिंसाका सम्यक् पालन नहीं हो सकता।

एक समाधान औरभी है-अहिंसामें प्राणोंके व्यपरोपणकी निवृत्तिकी प्रधानता है, और संयममें श्रोत्र आदि इन्द्रियोंके निग्रहकी प्रधानता है। इस प्रकार इनमें कितनी ही प्रकारकी बडी २ विशेषताएँ देखकर सूत्र-कारने पृथक् कथन किया है। तपके स्वरूपमें तो इतना भेद है कि किसीको सन्देह हो ही नहीं सकता। अपने या दूसरेके द्वारा प्राणव्यपरोपणकी निवृत्ति करनेको अहिंसा कहते हैं, और क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदिको सहन करना तप कहलाता है।

प्रश्न—भगवान्ने अहिंसा संयम और तप इन तीनोंमें तपको ही अन्तमें क्यों कहा?

આત્મરક્ષકોની પેઠે અહિંસાવ્રતના રક્ષક બને છે જ્યા સુધી સયમ અને તપ ન થાય ત્યા સુધી અહિંસાનું સમ્યક્ પાલન થઈ શકતુ નથી

એક સમાધાન બીજુ પણ છે અહિંસામા પ્રાણોના વ્યપરોપણની નિવૃત્તિની પ્રધાનતા છે અને સયમમા શ્રોત્ર આદિ ઈંદ્રિયોના નિગ્રહની પ્રધાનતા છે એ રીતે એમા અનેક પ્રકારની મોટી મોટી વિશેષતાઓ જોઈને સૂત્રકારે પૃથક્ કથન કર્યું છે તપના સ્વરૂપમા તો એટલો ભેદ છે કે કોઈને સદેહ થઈ શકે નહિ પોતાની અથવા બીજાની દ્વારા પ્રાણના વ્યપરોપણની નિવૃત્તિ કરવી તેને અહિંસા કહે છે, અને ભૂખ તરસ ટાઢ તાપ આદિને સહેવા તે તપ કહેવાય છે

પ્રશ્ન—ભગવાને અહિંસા, સયમ અને તપ એ ત્રણમા તપને છેલ્લુ કેમ કહ્યુ ?

ननु सर्वधर्माणामहिंसामूलकत्वादहिंसायामेव संयमतपसोरपि धर्मयोः समावेशे सति किं पुनस्तयोः पृथङ्निर्देशः ? इति चेन्न,—

तपो विना संयमो यथावत्स्वरूपनैर्मल्यं न लभते, संयममन्तरेणाऽहिंसाऽपि न परिशुद्धिमेति इत्याशयेनाहिंसां प्रतिपाद्य तन्निर्मलीकरणार्थं संयमस्य प्रतिपादनम्, तस्य च प्रभूतशक्तिसम्पादनाय तपसः समाराधनमावश्यकमित्याशयेन, त्रयाणां पृथङ्निर्देशः कृतः ।

किञ्च संयमतपसोर्विषयेऽपरोऽपि विशेषो दृश्यते—संयमात्संवरः, तपस्तु मुख्यतो निर्जरामुत्पादयत् संवरमपि निष्पादयति । संयमस्तपश्चैते द्वे-राज्ञ आत्म

प्रश्न—संयम तप आदि सब धर्मोंका मूल अहिंसा है, इसलिए संयम और तपका अहिंसामें ही समावेश हो जाता है तो फिर संयम और तपको अलग अलग क्यों कहा है ? सुनो—

उत्तर—अलग अलग कहनेका कारण यह है कि तपके विना संयम की जैसी चाहिए वैसी निर्मलता नहीं होती और विना संयमके अहिंसाका ठीक २ पालन नहीं हो सकता । इस अभिप्रायसे अहिंसाका प्रतिपादन करके उसे निर्मल बनानेके लिए तपका अलग कथन किया गया है। इससे तीनोंका अलग २ कथन उचित है ।

संयम और तपके अर्थमें और भी विशेषता है और वह यह है कि संयमसे संवर होता है, परंतु तपसे संयम और निर्जरा दोनों होते हैं।

अथवा यह समझना चाहिये कि संयम और 'तप' ये दोनों

પ્રશ્ન—સંયમ તપ આદિ સર્વ ધર્મોનું મૂલ અહિંસા છે, તેથી સંયમ અને તપનો સમાવેશ અહિંસામાં જ થઇ જાય છે તો સંયમ અને તપને જુદા-જુદા કેમ કહ્યા છે ? સાંભળો—

ઉત્તર—જુદા જુદા કહેવાનું કારણ એ છે કે તપ વિના સંયમની જોઇએ તેવી નિર્મળતા થતી નથી અને સંયમ વિના અહિંસાનું બરાબર પાલન થઇ શકતું નથી એ કારણથી અહિંસાનું પ્રતિપાદન કરીને તેને નિર્મળ બનાવવાને માટે તપનું જુદું કથન કરવામાં આવ્યું છે એથી ત્રણેનું જુદું-જુદું કથન ઉચિત છે

સંયમ અને તપના અર્થમાં બીજી પણ વિશેષતા છે અને તે એ કે-સંયમથી સંવર થાય છે, પણ તપથી સંયમ અને નિર્જરા બેઉ થાય છે

અથવા એમ સમજવું જોઇએ કે સંયમ અને તપ એ બેઉ રાજાના

रक्षकाविवाऽहिंसाव्रतस्य संरक्षके। यद्वा एतद्द्वयस्याहिंसापरिपोषकतया पृथङ्-निर्देशः सगच्छते ।

अन्यच्च अहिंसा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिप्रधाना, संयमस्तु श्रोत्रादीन्द्रियनिग्रह-प्रधान इति महद्वैलक्षण्यमुपलभ्य पृथङ्निर्देशः। तपसो वैलक्षण्य तु न कस्यचित् संशयगोचरः स्वरूपत एव परस्पर भेदात्, तथाहि–अहिंसा नाम स्वतः परतो वा प्राणव्यपरोपणनिवृत्तिकरण, तपस्तु क्षुत्पिपासाशीतोष्णादिसहिष्णुत्वरूपमिति ।

राजाके आत्मरक्षकोंकी तरह अहिंसाव्रतके रक्षक हैं, जबतक संयम और तप न हों तबतक अहिंसाका सम्यक् पालन नहीं हो सकता।

एक समाधान औरभी है-अहिंसामें प्राणोंके व्यपरोपणकी निवृत्तिकी प्रधानता है, और संयममें श्रोत्र आदि इन्द्रियोंके निग्रहकी प्रधानता है। इस प्रकार इनमें कितनी ही प्रकारकी बडी २ विशेषताएँ देखकर सूत्र-कारने पृथक् कथन किया है। तपके स्वरूपमें तो इतना भेद है कि किसीको सन्देह हो ही नहीं सकता। अपने या दूसरेके द्वारा प्राणव्यपरोपणकी निवृत्ति करनेको अहिंसा कहते हैं, और क्षुधा पिपासा शीत उष्ण आदिको सहन करना तप कहलाता है ।

प्रश्न—भगवान्ने अहिंसा संयम और तप इन तीनोंमें [illegible] अन्तमें क्यों कहा ?

આત્મરક્ષકોની પેઠે અહિંસાવ્રતના રક્ષક બને છે જ્યા સુધી [illegible] ન થાય ત્યા સુધી અહિંસાનું સમ્યક્ પાલન થઈ શકતુ નથી

એક સમાધાન બીજુ પણ છે અહિંસામા [illegible] નિવૃત્તિની પ્રધાનતા છે અને સયમમા શ્રોત્ર આદિ [illegible] એ રીતે એમા અનેક પ્રકારની મોટી મોટી [illegible] પૃથક્ કથન કર્યું છે તપના સ્વરૂપમા તો એટલો [illegible] થઈ શકે નહિ પોતાની અથવા બીજાની [illegible] કરવી તેને અહિંસા કહે છે, અને ભૂખ [illegible] તપ કહેવાય છે

પ્રશ્ન—ભગવાને અહિંસા, [illegible] કેમ કહ્યુ ?

कोटिभवसञ्चितानि पर्कशतमान्यपि कर्माणि तपसाऽऽशुतर विनश्यन्तीति दुस्तरससारसागर शीघ्रमुत्तर्तुमभिलप्यतामहिंसासयमाऽऽराधनतत्पराणा मुमुक्षूणामुग्रतपोऽवश्यमाश्रयणीयमित्याशयेनान्ते तपसः पृथङ्निर्देशः कृत इति भावः। इति प्रथमगाथार्थः ॥ १ ॥

ननु धर्मः शरीरेण रक्ष्यते, शरीररक्षण चाहारेण भवति, स च पड्जीवनिकायोपमर्दनरूपाऽऽरम्भेण निष्पाद्यते, यत्र चारम्भो न तत्र धर्मः सम्भवति, यथोक्त श्रीस्थानाङ्गसूत्रे—

"दो ठाणाइ अपरियाणित्ता आया णो केवलिपन्नत्त धम्म लभेज्जा सवणयाए, तजहा-आरभे चेव परिग्गहे चेव" इति, अस्य हि—"द्वे वस्तुनी अपरिज्ञाय आत्मा न केवलिप्रज्ञप्त धर्मं श्रोतु लभेत, तद् यथा-आरम्भश्च परिग्रहश्च"

उत्तर—करोड़ों भवोंमें सचित किये हुए अत्यन्त कठोर कर्म, तपके द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसलिए दुस्तर ससाररूपी सागरको शीघ्र पार करनेकी अभिलाषा रखनेवाले, अहिंसा और सयमकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले मोक्षाभिलाषियोंको अवश्य ही उग्र तपस्या करनी चाहिये, इस उद्देश्यसे भगवान्ने तपको अन्तमें अलग कहा है ॥१॥

धर्मका रक्षण शरीरसे होता है और शरीरका निर्वाह आहारसे होता है। आहार पृथिवी आदिक षड्जीवनिकायके आरभके विना नहीं बन सकता, और 'जहां आरम्भ है वहां धर्म नहीं' यह सर्वज्ञ भगवान्ने कहा है, क्योंकि ठाणाग (स्थानाङ्ग) सूत्रके दूसरे ठाणेसे यह बात स्पष्ट है।

ઉત્તર—કરોડો ભવોમા સચિત કરેલા અત્યત કઠોર કર્મ તપની દ્વારા શીઘ્ર નષ્ટ થઇ જાય છે એથી દુસ્તર સસારરૂપી સાગરને શીઘ્ર પાર કરવાની અભિલાષા રાખનારા, અહિંસા અને સયમની આરાધનામા તત્પર રહેનારા, મોક્ષાભિલાષીઓએ અવશ્ય ઉગ્ર તપસ્યા કરવી જોઇએ એ ઉદ્દેશથી ભગવાને તપને છેલ્લુ જુદુ કહ્યુ છે ॥ ૧ ॥

ધર્મનું રક્ષણ શરીરથી થાય છે અને શરીરનો નિર્વાહ આહારથી થાય છે આહાર પૃથિવી આદિ છ જીવનિકાયના આરભ વિના નથી બની શકતો, અને 'જ્યા આરભ છે ત્યા ધર્મ નથી' એમ સર્વજ્ઞ ભગવાને કહ્યુ છે ઠાણાગ (સ્થાનાગ) સૂત્રના બીજા ઠાણામા એ વાત સ્પષ્ટ છે અર્થાત આરભ અને

अर्थादारम्भ-परिग्रहौ ज्ञ-परिज्ञया जन्ममरणादिदुःखहेतू विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया तयोस्त्यागमकृत्वा जिनोक्तं धर्मं श्रोतुमपि न शक्नोति, पालयितुं शक्नोतीति तु दूरापास्तमित्यर्थः, तस्मादुक्तरीत्या त्यागसम्पन्नस्यापि श्रमणस्य शरीरसंरक्षणावश्यकता वर्तते तदर्थं चाहारो ग्रहीतव्यः, तत्र का वृत्तिः समादर्त्तव्ये ? त्याह–' जहा दुमस्स ' इत्यादि

१ ३ ४ २ ६ ५
मूलम्–जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं।
७ ८ १० १२ ११ १४ १३
ण य पुप्फं किलामेइ, सो अ पीणेइ अप्पयं ॥२॥

छाया–यथा द्रुमस्य पुष्पेषु, भ्रमर आपिबति रसम्।
न च पुष्पं क्लामयति, स च प्रीणात्यात्मानम् ॥ २ ॥

अर्थात् आरंभ और परिग्रह इन दोनोंके यथार्थ स्वरूपको आत्मा ज्ञपरिज्ञासे सम्यक् प्रकार जानकर कि ये ही दोनों जन्म जरा मरणके दाता चतुर्गतिरूप अनन्त संसारमें परिभ्रमण करानेवाले, छेदन–भेदन–आधि–व्याधि–क्लेशरूप दुःखोंके कारण तथा आत्माके विशुद्ध स्वरूपके घातक हैं, परंतु जबतक प्रत्याख्यानपरिज्ञा द्वारा तीन करण और तीन योगसे इनको त्याग न देवे तब तक जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्ररूपित धर्मको सुनने योग्य भी नहीं होता, पालनेकी तो बात ही कहा है ? तात्पर्य यह है कि आरंभ और परिग्रहका त्याग किये विना धर्मका पूर्ण पालन नहीं हो सकता। इसलिए धर्मके आराधक मुनियोंको निरवद्य आहारकी विधि कहते हैं—'जहा दुमस्स' इत्यादि।

परिग्रह એ બેઉના યથાર્થ સ્વરૂપને આત્મા, જ્ઞપરિજ્ઞાથી સમ્યક્-પ્રકારે જાણે કે એ બેઉ જન્મ જરા મરણના દાતા, ચતુર્ગતિરૂપ અનંત સંસારમાં પરિભ્રમણ કરાવનારા, છેદન-ભેદન-આધિ-વ્યાધિ-ક્લેશરૂપ દુઃખોના કારણ તથા આત્માના વિશુદ્ધ સ્વરૂપના ઘાતક છે, પરંતુ જ્યાં સુધી પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાદ્વારા ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી તેને ત્યજી ન દેવાય ત્યાં સુધી જિનેન્દ્રભગવાને પ્રરૂપેલા ધર્મને સાંભળવા યોગ્ય પણ થવાતું નથી, પછી પાળવાની તો વાત જ ક્યાં ? તાત્પર્ય એ છે કે આરંભ અને પરિગ્રહનો ત્યાગ કર્યા વિના ધર્મનું પૂર્ણ પાલન થઈ શકતું નથી તેથી ધર્મના આરાધક મુનિઓને નિરવદ્ય આહારની વિધિ કહે છે—"जहा दुमस्स" ઇત્યાદિ

सान्वयार्थः—जहा=जैसे, भमरो=भौंरा, दुमस्स=वृक्षके पुप्फेसु=फूलोंमें (रहे हुए) रस=रसको आवियइ=मर्यादानुसार पीता है, य=और पुप्फं=फूलको ण कीलामेइ=पीडित नहीं करता है, अ=तोभी सो=वह भौंरा अप्पयं=अपनेको पीणेइ=सन्तुष्ट कर लेता है। अर्थात्-जैसे भौंरा अनेक वृक्षोंके फूलोंसे थोड़ा थोड़ा रस उचित मात्रामें लेता है, ऐसा करनेसे वह सन्तुष्ट भी होजाता है और फूलोंकोभी कष्ट नहीं देता ॥ २ ॥

टीका—यथा भ्रमरः-भ्राम्यति=एकत्र नावतिष्ठत इति भ्रमरः=चतुरिन्द्रिय जातिमान् भृङ्गपर्यायवाच्यः प्राणिविशेषः। द्रुमस्य, जात्येकत्वादेकवचनम्, 'सर्वो गच्छति' इत्यादिवत्, तेन द्रुमाणामित्यर्थः, द्रुमपदेन योगमर्यादया लतादीनामपि ग्रहणं बोद्धव्यम्, पुष्पेषु स्थितमित्यस्याध्याहारः, रसं=मकरन्दम् आपिबति= आ=मर्यादा-पूर्वकम् उचितादधिकं परित्यज्य पिबति=पानविषयं करोति, अल्पं गृह्णातीति भावः। चकारो हेत्वर्थे, तेन-च=अत एव पुष्पं न क्लामयति=न पीडयति-लेशतोऽपि न म्लानयतीति यावत्, च=किञ्च सः=भ्रमरः आत्मानं=स्वं प्रीणाति=तोषयतीत्यर्थः।

पुष्पाणि तु द्रुमलतादीनामेव भवन्ति पुनर्द्रुमपदोपादानम्-यथा भ्रमरः सर्वेषामेव द्रुमलतादीनां पुष्पेषु रसमापिबति न चोचनीचादिभेदभावं रक्षति 'वृक्षोऽयं

जैसे भ्रमर, भ्रमण करके अनेक वृक्ष लता आदिकोंके पुष्पोंका थोडा२ रस मर्यादासे लेता है, अधिक नहीं, यानी ऐसा कि किसीको भी पीडा न देते हुए वह अपनी आत्माको तृप्त कर लेता है।

प्रश्न-वृक्ष और लताओंमे ही फूल होते है फिर द्रुम (वृक्ष) शब्द देनेका क्या अभिप्राय है ?।

उत्तर-जैसे भौंरा सभी वृक्षों और लताओंके फूलोंका रस पीता है, ऊंच-नीच भेद-भाव नही रखता कि-इस वृक्षमें कम फूल है और

જેમ ભ્રમર ભ્રમણ કરીને અનેક વૃક્ષ લતા આદિના પુષ્પોનો થોડો થોડો રસ મર્યાદાપૂર્વક લે છે, વધુ લેતો નથી, અને એવી રીતે લે છે કે કોઇ પણ પુષ્પને જરાએ પીડા થાય નહિ, એમ તે પોતાના આત્માને તૃપ્ત કરી લે છે

પ્રશ્ન—વૃક્ષ અને લતાઓ પર જ ફૂલ થાય છે, તો વળી દ્રુમ (વૃક્ષ) શબ્દ કહેવાનો શો હેતુ છે

ઉત્તર—જેમ ભમરો બધા વૃક્ષો અને લતાઓના ફૂલોનો રસ પીએ છે, ઉચ-નીચનો ભેદભાવ રાખતો નથી કે-આ વૃક્ષ પર ઓછા છે અને

मल्पपुष्पफलोऽय च बहुपुष्पफलसमृद्धः ' इति, तथा साधुरप्युच्चनीचादिभेदभाव विहाय सर्वत्र समानभावो गृहस्थकुलाना सकाशाद् यथोचिता भिक्षामाददीतेति सूचनार्थम् ।

यद्वा 'दुमस्स' इत्यत्र सम्बन्धसामान्यषष्ठ्या द्रुमसम्बन्धिष्विति, अर्थादय दृष्टान्तो द्रुमससक्तपुष्परसग्राहिणो भ्रमरस्य बोद्धव्यो नेतरस्य, ततश्च यथा भ्रमरो द्रुमसम्बद्धेषु स्थित रसमापिबति तथा साधुरपि गृहस्थसम्बन्धिनमेव, अर्थात् तत्स्वत्वयुक्तमेवाऽऽहार गृह्णीयान्न तु स्वामिविरहितमित्यर्थः ।

इसमें अधिक, इसी प्रकार साधुभी द्रव्य-भावसे ऊच-नीच भेद-भाव न रखकर समानदृष्टिसे गृहस्थियोंके कुलोमें भिक्षा-वृत्तिके लिए भ्रमण करते हैं। इस आशयको प्रगट करनेके लिए गाथामे ' द्रुम ' शब्द दिया गया है ।

अथवा यों समझिये कि गाथामें 'द्रुम' शब्दके साथ षष्ठी विभक्तिका प्रयोग किया गया है, षष्ठी विभक्तिका अर्थ है 'सम्बन्ध' ।

इसलिए यह दृष्टान्त द्रुममें लगे हुए पुष्पके रसको ग्रहण करनेवाले भौंरेका ही समझना चाहिए, दूसरे भौंरेका नहीं। इससे यह अर्थ निकलता है कि जैसे भ्रमर, द्रुम (वृक्ष) सम्बन्धी पुष्परसको ही ग्रहण करता है, अन्य रसको नहीं, इसीभाँति साधुभी गृहस्थसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थात् जिसपर गृहस्थका अधिकार है उसी आहारको ग्रहण करते हैं, जिस आहारका कोई गृहस्थ स्वामी नही होता उसे नहीं ग्रहण करते।

આ પર વધારે છે, એ પ્રમાણે સાધુ પણ દ્રવ્ય–ભાવથી ઉચ્ચ નીચનો ભેદભાવ ન રાખીને સમાન દૃષ્ટિથી ગૃહસ્થોના કુળોમા ભિક્ષાવૃત્તિને માટે ભ્રમણ કરે છે એ આશયને પ્રકટ કરવા માટે ગાથામા દ્રુમ (વૃક્ષ) શબ્દ આપેલો છે

અથવા એમ સમજવુ કે ગાથામા દ્રુમ શબ્દની સાથે છઠ્ઠી વિભક્તિનો પ્રયોગ કરવામા આવ્યો છે છઠ્ઠી વિભક્તિનો અર્થ સબધ થાય છે એથી આ દૃષ્ટાત દ્રુમમા લાગેલા પુષ્પોના રસને ગ્રહણ કરનારા ભમરાનુ જ સમજવુ જોઈએ, બીજા ભમરાઓનુ નહિ એટલે એ અર્થ થાય છે કે જેમ ભ્રમર, દ્રુમ (વૃક્ષ) સબધી પુષ્પરસને જ ગ્રહણ કરે છે, બીજા રસને નહિ, તેમ સાધુ પણ ગૃહસ્થથી સબધ રાખનારા અર્થાત્ જેની ઉપર ગૃહસ્થનો અધિકાર હોય તે આહારનેજ ગ્રહણ કરે છે જે આહારનો કોઈ ગૃહસ્થ સ્વામી નથી હોતો તેને સાધુ ગ્રહણ કરતો નથી

सान्वयार्थः—जहा=जैसे, भमरो=भौंरा, दुमस्स=वृक्षके पुप्फेसु=फूलोंमें (रहे हुए) रस=रसको आवियइ=मर्यादानुसार पीता है, य=और पुप्फं=फूलको ण कीलामेइ=पीडित नहीं करता है, अ=तोभी सो=वह भौंरा अप्पय=अपनेको पीणेइ=सन्तुष्ट कर लेता है। अर्थात्-जैसे भौंरा अनेक वृक्षोंके फूलोंसे थोड़ा थोड़ा रस उचित मात्रामें लेता है, ऐसा करनेसे वह सन्तुष्ट भी होजाता है और फूलोंकोभी कष्ट नहीं देता ॥ २ ॥

टीका—यथा भ्रमरः-भ्राम्यति=एकत्र नावतिष्ठत इति भ्रमरः=चतुरिन्द्रिय जातिमान् भृङ्गपर्यायवाच्यः प्राणिविशेषः। द्रुमस्य, जात्येकत्वादेकवचनम्, 'सर्वो गच्छति' इत्यादिवत्, तेन द्रुमाणामित्यर्थः, द्रुमपदेन योगमर्यादया लतादीना-मपि ग्रहणं बोद्धव्यम्, पुष्पेषु स्थितमित्यस्याध्याहारः, रस=मकरन्दम् आपिबति= आ=मर्यादा-पूर्वकम् उचितादधिकं परित्यज्य पिबति=पानविषयं करोति, अल्पं गृह्णातीति भावः। चकारो हेत्वर्थे, तेन-च=अत एव पुष्पं न क्लामयति=न पीड-यति-लेशतोऽपि न म्लानयतीति यावत्, च=किञ्च सः=भ्रमरः आत्मानं=स्वं प्रीणाति=तोषयतीत्यर्थः।

पुष्पाणि तु द्रुमलतादीनामेव भवन्ति पुनर्द्रुमपदोपादानम्-यथा भ्रमरः सर्वे-षामेव द्रुमलतादीनां पुष्पेषु रसमापिबति न चोचनीचादिभेदभावं रक्षति 'वृक्षोऽय-

जैसे भ्रमर, भ्रमण करके अनेक वृक्ष लता आदिकोंके पुष्पोंका थोडा२ रस मर्यादासे लेता है, अधिक नहीं, यानी ऐसा कि किसीको भी पीडा न देते हुए वह अपनी आत्माको तृप्त कर लेता है।

प्रश्न-वृक्ष और लताओंमें ही फूल होते हैं फिर द्रुम (वृक्ष) शब्द देनेका क्या अभिप्राय है ?।

उत्तर-जैसे भौंरा सभी वृक्षो और लताओंके फूलोंका रस पीता है, ऊच-नीच भेद-भाव नहीं रखता कि-इस वृक्षमें कम फूल हैं और

જેમ ભ્રમર ભ્રમણ કરીને અનેક વૃક્ષ લતા આદિના પુષ્પોનો થોડો થોડો રસ મર્યાદાપૂર્વક લે છે, વધુ લેતો નથી, અને એવી રીતે લે છે કે કોઇ પણ પુષ્પને જરાએ પીડા થાય નહિ, એમ તે પોતાના આત્માને તૃપ્ત કરી લે છે.

પ્રશ્ન—વૃક્ષ અને લતાઓ પર જ ફૂલ થાય છે, તો વળી દ્રુમ (વૃક્ષ) શબ્દ કહેવાનો શો હેતુ છે

ઉત્તર—જેમ ભમરો બધા વૃક્ષો અને લતાઓના ફૂલોનો રસ પીએ છે, ઉચ-નીચનો ભેદભાવ રાખતો નથી કે-આ વૃક્ષ પર ઓછાં ફૂલો છે અને

मल्पपुष्पफलोऽय च बहुपुष्पफलसमृद्धः' इति, तथा साधुरप्युचनीचादिभेदभाव विहाय सर्वत्र समानभावो गृहस्थकुलाना सकाशाद् यथोचिता भिक्षामाददीतेति सूचनार्थम् ।

यद्वा 'दुमस्स' इत्यत्र सम्बन्धसामान्यषष्ठ्या द्रुमसम्बन्धिष्विति, अर्थादय दृष्टान्तो द्रुमससक्तपुष्परसग्राहिणो भ्रमरस्य बोद्धव्यो नेतरस्य, ततश्च यथा भ्रमरो द्रुमसम्बद्धेषु स्थित रसमापिबति तथा साधुरपि गृहस्थसम्बन्धिनमेव, अर्थात् तत्स्वत्वयुक्तमेवाऽऽहार गृह्णीयान्न तु स्वामिविरहितमित्यर्थः ।

इसमें अधिक, इसी प्रकार साधुभी द्रव्य-भावसे ऊच-नीच भेद-भाव न रखकर समानदृष्टिसे गृहस्थियोंके कुलोंमें भिक्षा वृत्तिके लिए भ्रमण करते हैं। इस आशयको प्रगट करनेके लिए गाथामें 'द्रुम' शब्द दिया गया है ।

अथवा यों समझिये कि गाथामें 'द्रुम' शब्दके साथ षष्ठी विभक्तिका प्रयोग किया गया है, षष्ठी विभक्तिका अर्थ है 'सम्बन्ध'।

इसलिए यह दृष्टान्त द्रुममें लगे हुए पुष्पके रसको ग्रहण करनेवाले भौंरेका ही समझना चाहिए, दूसरे भौंरेका नहीं। इससे यह अर्थ निकलता है कि जैसे भ्रमर, द्रुम (वृक्ष) सम्बन्धी पुष्परसको ही ग्रहण करता है, अन्य रसको नहीं, इसीभाँति साधुभी गृहस्थसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थात् जिसपर गृहस्थका अधिकार है उसी आहारको ग्रहण करते हैं, जिस आहारका कोई गृहस्थ स्वामी नहीं होता उसे नहीं ग्रहण करते।

આ પર વધારે છે, એ પ્રમાણે સાધુ પણ દ્રવ્ય—ભાવથી ઉચનીચનો ભેદભાવ ન રાખીને સમાન દૃષ્ટિથી ગૃહસ્થોના કુળોમા ભિક્ષાવૃત્તિને માટે ભ્રમણ કરે છે એ આશયને પ્રકટ કરવા માટે ગાથામા દ્રુમ (વૃક્ષ) શબ્દ આપેલો છે

અથવા એમ સમજવુ કે ગાથામા દ્રુમ શબ્દની સાથે છઠ્ઠી વિભક્તિનો પ્રયોગ કરવામા આવ્યો છે છઠ્ઠી વિભક્તિનો અર્થ સબધ થાય છે એથી આ દૃષ્ટાત દ્રુમમા લાગેલા પુષ્પોના રસને ગ્રહણ કરનારા ભમરાનુ જ સમજવુ જોઈએ, બીજા ભમરાઓનુ નહિ એટલે એ અર્થ થાય છે કે જેમ ભ્રમર, દ્રુમ (વૃક્ષ) સબધી પુષ્પરસને જ ગ્રહણ કરે છે, બીજા રસને નહિ, તેમ સાધુ પણ ગૃહસ્થની સબધ રાખનારા અર્થાત્ જેની ઉપર ગૃહસ્થનો અધિકાર હોય તે આહારનેજ ગ્રહણ કરે છે જે આહારનો કોઈ ગૃહસ્થ સ્વામી નથી હોતો તેને સાધુ ગ્રહણ કરતો નથી

सान्वयार्थः—जहा=जैसे, भमरो=भौंरा, दुमस्स=वृक्षके पुप्फेसु=फूलोंमें (रहे हुए) रसं=रसको आविय‍इ=मर्यादानुसार पीता है, य=और पुप्फं=फूलको ण कीलामेइ=पीडित नहीं करता है, अ=तोभी सो=वह भौंरा अप्पयं=अपनेको पीणेइ=सन्तुष्ट कर लेता है। अर्थात्-जैसे भौंरा अनेक वृक्षोंके फूलोंसे थोड़ा थोड़ा रस उचित मात्रामें लेता है, ऐसा करनेसे वह सन्तुष्ट भी होजाता है और फूलोंकोभी कष्ट नहीं देता ॥ २ ॥

टीका—यथा भ्रमरः-भ्राम्यति=एकत्र नावतिष्ठत इति भ्रमरः=चतुरिन्द्रिय जातिमान् भृङ्गपर्यायवाच्यः प्राणिविशेषः। द्रुमस्य, जात्येकत्वादेकवचनम्, 'सर्वो गच्छति' इत्यादिवत्, तेन द्रुमाणामित्यर्थः, द्रुमपदेन योगमर्यादया लतादीनामपि ग्रहणं बोद्धव्यम्, पुष्पेषु स्थितमित्यस्याध्याहारः, रसं=मकरन्दम् आपिबति= आ=मर्यादा-पूर्वकम् उचितादधिकं परित्यज्य पिबति=पानविषयं करोति, अल्पं गृह्णातीति भावः। चकारो हेत्वर्थे, तेन-च=अत एव पुष्पं न क्लामयति=न पीडयति-लेशतोऽपि न म्लानयतीति यावत्, च=पश्च सः=भ्रमरः आत्मानं=स्वं प्रीणाति=तोषयतीत्यर्थः।

पुष्पाणि तु द्रुमलतादीनामेव भवन्ति पुनर्द्रुमपदोपादानम्-यथा भ्रमरः सर्वेषामेव द्रुमलतादीनां पुष्पेषु रसमापिबति न चोचनीचादिभेदभावं रक्षति 'वृक्षोऽय

जैसे भ्रमर, भ्रमण करके अनेक वृक्ष लता आदिकोंके पुष्पोंका थोडा२ रस मर्यादासे लेता है, अधिक नहीं, यानी ऐसा कि किसीको भी पीडा न देते हुए वह अपनी आत्माको तृप्त कर लेता है।

प्रश्न—वृक्ष और लताओंमे ही फूल होते हैं फिर द्रुम (वृक्ष) शब्द देनेका क्या अभिप्राय है ?।

उत्तर—जैसे भौंरा सभी वृक्षों और लताओंके फूलोका रस पीता है, ऊंच नीच भेद-भाव नहीं रखता कि-इस वृक्षमें कम फूल है और

જેમ ભ્રમર ભ્રમણ કરીને અનેક વૃક્ષ લતા આદિના પુષ્પોનો થોડો થોડો રસ મર્યાદાપૂર્વક લે છે, વધુ લેતો નથી, અને એવી રીતે લે છે કે કોઇ પણ પુષ્પને જરાએ પીડા થાય નહિ, એમ તે પોતાના આત્માને તૃપ્ત કરી લે છે.

પ્રશ્ન—વૃક્ષ અને લતાઓ પર જ ફૂલ થાય છે, તો વળી દ્રુમ (વૃક્ષ) શબ્દ કહેવાનો શો હેતુ છે

ઉત્તર—જેમ ભમરો બધા વૃક્ષો અને લતાઓના ફૂલોનો રસ પીએ છે, ઉચ-નીચનો ભેદભાવ રાખતો નથી કે—આ વૃક્ષ પર ઓછાં ફૂલો છે અને

'पुप्फ' इत्येकवचनेन 'यथा भ्रमर एकमपि पुष्प न क्लामयति तथा साधुरपि कश्चिदेकमपि दातार न निपादयेदिति सूचितम्।

यथा जलधरो न कश्चिदुद्दिश्य जल मुञ्चति, यथा वा शाखिनः स्वीयनामगोत्रकर्मोदयेन पुष्प-फलानि स्वभावत एव समुत्पादयन्ति तथा गृहस्था अपि स्वक्षुधावेदनीयोदयेन यथासमय दिवसे निशाया वा रन्धयन्ति, यथा च यत्र भ्रमरा न गन्तु शक्नुवन्ति तत्रापि द्रुमाः पुष्प्यन्त्येव तथा साधुना तपोऽवस्थाया रात्रौ साधुसस्थितिरहितेषु ग्रामनगरनिगमादिषु च गृहस्थाः पाक सम्पादयन्त्येवेति नास्ति गृहस्थसम्पादितपाकस्य साधुभिक्षाहेतुत्वम्।

गाथाके उत्तरार्द्धमें 'पुप्फ' इस एकवचनसे ऐसा सूचित होता है कि जैसे भौंरा एकभी पुष्पको पीड़ा नहीं पहुचाता है वैसे ही साधु किसी एकभी दाताको कष्ट न पहुचावे।

जैसे मेघ, किसीको उद्देश्य करके पानी नही बरसाता अथवा जैसे वृक्ष, अपने नाम-गोत्र कर्मके उदयसे ही विना किसीको उद्देश्य करके स्वभावसे ही फल-फूल उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार गृहस्थ अपने क्षुधावेदनीय कर्मके उदयसे जब आवश्यकता होती है भोजन बनाते हैं। अथवा जैसे जहाँ भौंरे नहीं जा सकते वहा परभी वृक्ष फूलते ही हैं, वैसे ही साधु जब तपस्या करते हैं, या जहां साधु नहीं होते उस ग्राम नगर आदिमे भी दिन या रात्रिमें गृहस्थ भोजन बनाते ही हैं, इसलिए 'गृहस्थ जो भोजन बनाते हैं वह साधुओंके निमित्त होता है' ऐसा नही समझना चाहिये।

ગાથાના ઉત્તરાર્ધમા 'पुप्फ' એ એકવચનથી એમ સૂચિત થાય છે કે જેમ ભમરો એક પણ પુષ્પને પીડા ઉપજાવતો નથી, તેમજ સાધુએ કોઇપણ દાતાને કષ્ટ ન ઉપજાવવો

જેમ મેઘ, કોઇને ઉદ્દેશ્ય કરીને પાણી વરસાવતો નથી, અથવા જેમ વૃક્ષ, પોતાના નામ ગોત્ર કર્મના ઉદયથી જ કોઇને ઉદ્દેશ્ય કર્યા વિના સ્વભાવથી જ ફળ ફૂલ ઉત્પન્ન કરે છે, તેમ ગૃહસ્થ પોતાના ક્ષુધા-વેદનીય કર્મના ઉદયથી જ્યારે આવશ્યકતા લાગે છે ત્યારે ભોજન બનાવે છે અથવા જેમ જ્યા ભમરા ન જઇ શકે તેવે સ્થળે પણ વૃક્ષ ફૂલે છે, તેમ જ સાધુ જ્યારે તપસ્યા કરે છે ત્યારે, અને જ્યા સાધુ નથી હોતા તે ગ્રામ નગર આદિમા પણ દિવસે યા રાત્રિએ ગૃહસ્થો ભોજન તો બનાવે જ છે, એથી 'ગૃહસ્થ જે ભોજન બનાવે છે તે સાધુઓને નિમિત્તે હોય છે' એમ ન સમજવુ જોઇએ

'पुष्फेसु' इति प्रसूनकुसुमादिपर्यायान्तरं परिहाय पुष्पपदोपादाने विकसितार्थोऽभिमतस्ततश्च यथा भ्रमरो विकसितेष्वेव पुष्पेषु स्थित्वा रसं गृह्णाति तथा साधुरपि दातृत्वभावमस्त्वेभ्यो निर्जुगुप्सेभ्यश्च कुलेभ्य आहारं गृह्णीयादित्यर्थः ।

'भमरो' इत्यनेन इतस्ततो भ्रमणेन किञ्चित्किञ्चिदाहारग्रहणं सूचितम् । मर्यादार्थकेनोपसर्गेणाऽऽङा 'यावानाहारोऽपेक्षितस्तावानेव ग्रहीतव्यः' इति सूचितम् ।'

'पुष्प' शब्दके प्रसून कुसुम आदि अनेक पर्याय शब्द होनेपर भी गाथामें प्रसून या कुसुम आदि अन्य शब्द न देकर 'पुष्प' शब्द ही दिया है, इससे सूत्रकारका आशय खिलेहुए फूलोंसे है ऐसा स्पष्ट होता है, क्योंकि खिले हुए फूलका ही नाम पुष्प है, इसलिए भ्रमर, जैसे खिले हुए फूलों पर ही ठहरता है और उन्हींका रसपान करता है उसी प्रकार साधुभी उन्ही गृहस्थोंसे आहार लेते हैं जिनका साधुओंको आहार देनेका भाव हो, तथा जो कुल दुगुंछित न हो ।

भ्रमरके भी षट्पद द्विरेफ आदि अनेक नाम हैं, उनमेंसे दूसरा कोई शब्द न देकर 'भ्रमर' पद दिया है, 'भ्रमर' शब्दका अर्थ है भ्रमण करने वाला-एक स्थानपर न ठहरने वाला, इस शब्दको देनेका आशय यह है कि साधुको इधर-उधर भ्रमण करके थोडा२ आहार लेना चाहिए, जिससे गृहस्थ फिर आरंभ न करे। मर्यादा अर्थवाले 'आ' उपसर्गको देनेका तात्पर्य यह है कि जितने आहारकी आवश्यकता हो उतनाही लेवे, अधिक नहीं ।

પુષ્પ શબ્દના પ્રસૂન કુસુમ આદિ અનેક પર્યાય શબ્દો હોવા છતાં ગાથામાં પ્રસૂન કે કુસુમ આદિ અન્ય શબ્દ ન આપતાં પુષ્પ શબ્દ જ આપ્યો છે એમાં સૂત્રકારનો આશય ખીલેલાં ફૂલોનો છે એમ સ્પષ્ટ થાય છે, કારણ કે ખીલેલાં ફૂલનું જ નામ પુષ્પ છે એથી ભ્રમર, જેમ ખીલેલાં ફૂલો પર જ બેસે છે અને તેનું રસપાન કરે છે, તેમ સાધુ પણ એવા ગૃહસ્થો પાસેથી આહાર લે છે કે જેમનો ભાવ સાધુઓને આહાર આપવાનો હોય અને જે કુળ દુગુંછિત ન હોય

ભ્રમરના પણ ષટ્પદ દ્વિરેફ આદિ અનેક નામો છે, તેમાંથી બીજો કોઈ શબ્દ ન આપતાં 'ભ્રમર' શબ્દ આપ્યો છે ભ્રમર શબ્દનો અર્થ થાય છે ભ્રમણ કરનાર-એક સ્થાનપર બેસી ન રહેનાર, એ શબ્દ આપવાનો આશય એ છે કે સાધુએ અહીં-તહીં ભ્રમણ કરીને થોડો થોડો આહાર લેવો જોઈએ, જેથી ગૃહસ્થ ફરી આરંભ ન કરે મર્યાદા અર્થવાળો આ ઉપસર્ગ આપવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જેટલા આહારની આવશ્યકતા હોય એટલો જ લેવો વધારે નહિ

'पुष्फ' इत्येकवचनेन 'यथा भ्रमर एकमपि पुष्प न क्लामयति तथा साधुरपि कञ्चिदेकमपि दातार न विषादयेदिति सूचितम् ।

यथा जलधरो न कञ्चिदुद्दिश्य जल मुञ्चति, यथा वा शाखिनः स्वीयनाम-गोत्रकर्मोदयेन पुष्प-फलानि स्वभावत एव समुत्पादयन्ति तथा गृहस्था अपि स्वक्षुधावेदनीयोदयेन यथासमय दिवसे निशाया वा रन्धयन्ति, यथा च यत्र भ्रमरा न गन्तु शक्नुवन्ति तत्रापि द्रुमाः पुष्प्यन्त्येव तथा साधूना तपोऽवस्थाया रात्रौ साधुसस्थितिरहितेषु ग्रामनगरनिगमादिषु च गृहस्थाः पाक सम्पादयन्त्येवेति नास्ति गृहस्थसम्पादितपाकस्य साधुभिक्षाहेतुत्वम् ।

गाथाके उत्तरार्द्धमें 'पुष्फ' इस एकवचनसे ऐसा सूचित होता है कि जैसे भौंरा एकभी पुष्पको पीडा नहीं पहुचाता है वैसे ही साधु किसी एकभी दाताको कष्ट न पहुचावे ।

जैसे मेघ, किसीको उद्देश्य करके पानी नही वरसाता अथवा जैसे वृक्ष, अपने नाम-गोत्र कर्मके उदयसे ही विना किसीको उद्देश्य करके स्वभावसे ही फल-फूल उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार गृहस्थ अपने क्षुधा-वेदनीय कर्मके उदयसे जव आवश्यकता होती है भोजन बनाते हैं । अथवा जैसे जहाँ भौंरे नहीं जा सकते वहा परभी वृक्ष फूलते ही हैं, वैसे ही साधु जव तपस्या करते हैं, या जहा साधु नहीं होते उस ग्राम नगर आदिमें भी दिन या रात्रिमें गृहस्थ भोजन वनाते ही हैं, इसलिए 'गृहस्थ जो भोजन बनाते हैं वह साधुओके निमित्त होता है' ऐसा नही समझना चाहिये ।

ગાથાના ઉત્તરાર્ધમા 'पुष्फ' એ એકવચનથી એમ સૂચિત થાય છે કે જેમ ભમરો એક પણ પુષ્પને પીડા ઉપજાવતો નથી, તેમજ સાધુએ કોઇપણ દાતાને કષ્ટ ન ઉપજાવવો

જેમ મેઘ, કોઇને ઉદ્દેશ્ય કરીને પાણી વરસાવતો નથી, અથવા જેમ વૃક્ષ, પોતાના નામ ગોત્ર કર્મના ઉદયથી જ કોઇને ઉદ્દેશ્ય કર્યા વિના સ્વભાવથી જ ફળ ફૂલ ઉત્પન્ન કરે છે, તેમ ગૃહસ્થ પોતાના ક્ષુધા–વેદનીય કર્મના ઉદયથી જ્યારે આવશ્યકતા લાગે છે ત્યારે ભોજન બનાવે છે અથવા જેમ જ્યા ભમરા ન જઇ શકે તેવે સ્થળે પણ વૃક્ષ ફૂલે છે, તેમ જ સાધુ જ્યારે તપસ્યા કરે છે ત્યારે, અને જ્યા સાધુ નથી હોતા તે ગામ નગર આદિમા પણ દિવસે યા રાત્રિએ ગૃહસ્થો ભોજન તો બનાવે જ છે, એથી 'ગૃહસ્થ જે ભોજન બનાવે છે તે સાધુઓને નિમિત્તે હોય છે' એમ ન સમજવુ જોઇએ

ननु विषमोऽयं भ्रमरदृष्टान्तः, तथाहि–भ्रमरो द्रुमाज्ञामन्तरेणैव पुष्परसमादत्ते भिक्षुः पुनर्याचित्वैव, किञ्च तत्र कदाचिदेकस्मिन्नपि दिने मुहुर्मुहुरेकं द्रुममुपैति तत्किं साधवोऽपि तथैव गृहस्थेभ्यो भिक्षां गृह्णीयुः ? किञ्च भ्रमरोऽसञ्ज्ञी, साधवस्तु सञ्ज्ञिनो जिनवचननिपुणाश्च, भ्रमरोऽव्रती साधवस्तु व्रतिनः, भ्रमरोऽप्रत्याख्यानी साधवस्तु प्रत्याख्यानिनः, भ्रमरोऽसंयतः साधवस्तु संयताः, इत्यादि विरुद्धधर्मशालित्वादिति चेन्न, सर्वत्र दृष्टान्तस्यैकदेशिरूपत्वात्, अनेकपुष्पतः पुष्पाऽक्रान्तिपूर्वककिञ्चित्किञ्चिदुपादानमात्रे दृष्टान्ततात्पर्यमिति निष्कर्षः, स्फुटी

प्रश्न—भ्रमरका उदाहरण विषम है, कारण यह कि उसका साधुओंके साथ ठीक मिलान नहीं होता। क्योंकि, भ्रमर वृक्षकी आज्ञा प्राप्त किये विना ही पुष्परस पीता है, साधु याचना करके ही भिक्षा लेते हैं, भ्रमर एक दिनमें एकही वृक्षके पास वारम्वार जाता है और पुष्परसको पीता है, साधु एक दिनमें वारम्वार एक गृहस्थके घरसे भिक्षा नहीं ले सकते, भ्रमर असञ्ज्ञी होता है, साधु सञ्ज्ञी होते हैं, भ्रमर अप्रत्याख्यानी होता है, साधु प्रत्याख्यानी होते हैं, भ्रमर असंयत होता है, साधु संयत होते हैं, इत्यादि अनेक भिन्नताएँ पायी जाती हैं।

उत्तर—ऐसी शंका ठीक नहीं है, क्योंकि दृष्टान्त सब जगहोंमें एकदेशीय ही होता है, 'पीडा न पहुंचाते हुए अनेक पुष्पोंसे थोडा थोडा लेना' इतने अंशोंमें यह दृष्टान्त समझना चाहिये। इस विषयका स्पष्टी-

પ્રશ્ન—ભ્રમરનું ઉદાહરણ વિષમ છે, કારણ કે તે સાધુઓની સાથે બરાબર બંધ બેસતું નથી ભ્રમર વૃક્ષની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કર્યા વિના જ પુષ્પનો રસ પીએ છે સાધુ યાચના કરીને જ ભિક્ષા લે છે ભ્રમર એક દિવસમાં એક જ વૃક્ષની પાસે વારવાર જાય છે અને પુષ્પરસને પીએ છે, સાધુ એક દિવસમાં વારવાર એક ગૃહસ્થના ઘેરથી ભિક્ષા નથી લઈ શકતા, ભ્રમર અસંજ્ઞી હોય છે, સાધુ સંજ્ઞી હોય છે, ભ્રમર અવ્રતી હોય છે, સાધુ વ્રતી હોય છે, ભ્રમર અપ્રત્યાખ્યાની હોય છે, સાધુ પ્રત્યાખ્યાની હોય છે ભ્રમર અસંયત હોય છે, સાધુ સંયત હોય છે ઇત્યાદિ અનેક ભિન્નતાઓ રહેલી છે

ઉત્તર—એ શંકા બરાબર નથી, કારણકે દૃષ્ટાંત બધી જગ્યાએ એકદેશીય જ હોય છે 'પીડા ઉપજાવ્યા વિના અનેક પુષ્પોમાંથી થોડો થોડો રસ લેવો' એટલા અંશમાં જ આ દૃષ્ટાન્ત સમજવું જોઈએ આ વિષયનું સ્પષ્ટી

करिष्यति चैतत्सूत्रकारः स्वयम्-'महुगारसमा' इति पञ्चमगाथया ॥२॥

एतदेव विशेषेण स्फोरयितु दार्ष्टान्तिकमाह-'एमेए' इत्यादि

१ ५ ४ ३ २ ७ ६
मूलम्-एमेए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो।
८ १० ८ ११ १२
विहंगमा व पुप्फेसु, दाणभत्तेसणे रया ॥३॥

छाया-एवमेते श्रमणा मुक्ता, ये लोके सन्ति साधवः।
विहङ्गमा इव पुष्पेषु, दानभक्तैषणे रताः ॥३॥

सान्वयार्थः—एमेए=इसीप्रकार ये लोए=लोकमे जे=जो मुत्ता=द्रव्यभाव-परिग्रहरहित समणा=तपस्वी साहुणो=साधु संति=हैं, (वे) पुप्फेसु=फूलोंमें विहंगमा व=पक्षियों-भ्रमरोंकी तरह दाणभत्तेसणे=दाता द्वारा दियेजाने वाले आहारकी गवेषणामें रया=लीन रहते हैं। अर्थात्-जैसे पूर्वोक्त प्रकारसे भौंरा पुष्परसका पान करता है उसी प्रकार साधु गृहस्थियोंको असुविधा न पहुचाते हुए अनेक घरोंसे थोडा-थोडा आहार ग्रहण करते है ॥ ४ ॥

टीका—एवम्=उक्तप्रकारेण ये लोके=समयक्षेत्रे सन्ति=वर्तन्ते एते=ते सर्वे श्रमणाः। 'श्रमणाः, शमनाः समनसः, समणाः' इत्येतेषा प्राकृते 'समणा' इति रूप

करण सूत्रकार स्वय 'महुगारसमा' इस पाचवीं गाथामें करेंगे ॥२॥

अब विशेष खुलासा करनेके लिए दार्ष्टान्तिक कहते हैं-

इस प्रकार अढाइ द्वीपमें जितने श्रमण, मुक्त, साधु हैं वे सब दाताद्वारा दिये जाते हुए आहारकी एषणामें इस प्रकार प्रयत्न करें जैसे भ्रमर पुष्पोंके रसके अन्वेषणमें लीन होता है।

श्रमण, शमन, समनस, समण, इन सब शब्दोंका प्राकृत भाषामें

કરણ સૂત્રકાર પોતે જ महुगारसमा એ પાચમી ગાથામા કરશે (૨)

હવે વિશેષ ખુલાસો કરવાને દાર્ષ્ટાન્તિક કહે છે–

આ પ્રમાણે અઢી દ્વીપમા જેટલા શ્રમણ, મુક્ત, સાધુઓ છે તેઓ બધા દાતા દ્વારા આપવામા આવતા આહારની એષણામા એવો પ્રયત્ન કરે કે જેમ ભ્રમર પુષ્પોના રસના શોધનમા લીન થાય છે

શ્રમણ, શમન, સમનસ્, સમણ, એ બધા શબ્દોનું પ્રાકૃત ભાષામા

ननु विषमोऽयं भ्रमरदृष्टान्तः, तथाहि-भ्रमरो द्रुमाज्ञामन्तरेणैव पुष्परसमादत्त भिक्षु' पुनर्याचित्वैव, किञ्च तदर्थं कदाचिदेकस्मिन्नपि दिने मुहुर्मुहुरेकं द्रुममुपैति तत्किं साधवोऽपि तथैव गृहस्थेभ्यो भिक्षा गृह्णीयुः ? किञ्च भ्रमरोऽसञ्ज्ञी, साधवस्तु सञ्ज्ञिनो जिनवचननिपुणाश्च, भ्रमरोऽव्रती साधवस्तु व्रतिनः, भ्रमरोऽप्रत्याख्यानी साधवस्तु प्रत्याख्यानिनः, भ्रमरोऽसंयतः साधवस्तु संयताः, इत्यादिविरुद्धधर्मशालित्वादिति चेन्न, सर्वत्र दृष्टान्तस्यैकदेशित्वात्, अनेकपुष्पतः पुष्पाऽक्रान्तिपूर्वककिञ्चित्किञ्चिदुपादानमात्रे दृष्टान्ततात्पर्यमिति निष्कर्षः, स्फुटी

प्रश्न—भ्रमरका उदाहरण विषम है, कारण यह कि उसका साधुओंके साथ ठीक मिलान नहीं होता। क्योंकि, भ्रमर वृक्षकी आज्ञा प्राप्त किये विना ही पुष्परस पीता है, साधु याचना करके ही भिक्षा लेते हैं, भ्रमर एक दिनमें एकही वृक्षके पास बारम्बार जाता है और पुष्परसको पीता है, साधु एक दिनमें बारम्बार एक गृहस्थके घरसे भिक्षा नहीं ले सकते, भ्रमर असञ्ज्ञी होता है, साधु सञ्ज्ञी होते हैं, भ्रमर अप्रत्याख्यानी होता है, साधु प्रत्याख्यानी होते हैं, भ्रमर असंयत होता है, साधु संयत होते हैं, इत्यादि अनेक भिन्नताएँ पायी जाती हैं।

उत्तर—ऐसी शंका ठीक नहीं है, क्योंकि दृष्टान्त सब जगहोंमें एकदेशीय ही होता है, 'पीडा न पहुंचाते हुए अनेक पुष्पोंसे थोडा थोडा लेना' इतने अंशोंमें यह दृष्टान्त समझना चाहिये। इस विषयका स्पष्टी

પ્રશ્ન—ભ્રમરનું ઉદાહરણ વિષમ છે, કારણ કે તે સાધુઓની સાથે બરાબર બંધ બેસતું નથી ભ્રમર વૃક્ષની આજ્ઞા પ્રાપ્ત કર્યા વિના જ પુષ્પનો રસ પીએ છે સાધુ યાચના કરીને જ ભિક્ષા લે છે ભ્રમર એક દિવસમાં એક જ વૃક્ષની પાસે વારવાર જાય છે અને પુષ્પરસને પીએ છે, સાધુ એક દિવસમાં વારવાર એક ગૃહસ્થના ઘેરથી ભિક્ષા નથી લઈ શકતા, ભ્રમર અસંજ્ઞી હોય છે, સાધુ સંજ્ઞી હોય છે, ભ્રમર અવ્રતી હોય છે, સાધુ વ્રતી હોય છે, ભ્રમર અપ્રત્યાખ્યાની હોય છે, સાધુ પ્રત્યાખ્યાની હોય છે ભ્રમર અસંયત હોય છે, સાધુ સંયત હોય છે ઇત્યાદિ અનેક ભિન્નતાઓ રહેલી છે

ઉત્તર—એ શંકા બરાબર નથી, કારણકે દૃષ્ટાન્ત બધી જગ્યાએ એકદેશીય જ હોય છે 'પીડા ઉપજાવ્યા વિના અનેક પુષ્પોમાંથી થોડા થોડા રસ લેવો' એટલા અંશમાં જ આ દૃષ્ટાન્ત સમજવું જોઈએ આ વિષયનું સ્પષ્ટી

जीवन्तीति वा समणाः । मुक्ताः=परिग्रहबन्धनरहिताः धर्मोपकरण विहाय सूची-कुशाग्रमात्रेणापि परिग्रहेण रिक्ता इति यावत, तत्र परिग्रहो बाह्याभ्यन्तरभेदाद्द्वि-विधः, तयोराद्यो धनधान्यादिरूपो नवविधः । द्वितीयस्तु—

"मिच्छत्त वेयतिग, हासाइयछक्कग च नायव्व ।
कोहाईण चउक्क, चउदस अब्भितरा गठी ॥" इत्युक्तरूपः ।

साधवः=साध्नुवन्ति=निष्पादयन्ति स्वपरशिवसुख ये ते, पुष्पेपु=व्याख्यात-पूर्वेपु विहङ्गमा इव, विहायसा=गगनेन गच्छन्तीति तथोक्ताः, प्रकरणादत्र भ्रमरा इत्यर्थः, त इव, भ्रमरतुल्या इति यावत् ।

एव दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्मिथः सादृश्य प्रदर्श्य सम्प्रति यः कश्चिद् भेदस्तमाह-

---

परिग्रहके बन्धनसे रहित अर्थात् धर्मके उपकरणोंके सिवाय सुई या कुशकी नोंकके बराबर भी परिग्रह न रखनेवालोंको मुक्त कहते हैं ।

परिग्रहके दो भेद हैं-(१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर । पहला बाह्य परिग्रह धन-धान्य आदि नौ प्रकारका है । दूसरा आभ्यन्तर परिग्रह-(१) मिथ्यात्व, (२) स्त्रीवेद, (३) पुरुषवेद, (४) नपुसकवेद, (५) हास्य, (६) रति, (७) अरति, (८) शोक, (९) भय, (१०) जुगुप्सा, (११) क्रोध, (१२) मान, (१३) माया और (१४) लोभके भेदसे चौदह प्रकारका है ।

स्व और परके मोक्ष सम्बन्धी सुखको साधनेवाले साधु कहलाते हैं । ऐसे साधु, दिये जानेवाले अशन आदिकी एषणामें प्रवृत्त होवें -आहार-पानी की विशुद्धिमें लीन रहें ।

यहां तक दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिककी परस्परमें समानता बतलाई है ।

પરિગ્રહના બધનથી રહિત અર્થાત્ ધર્મના ઉપકરણો સિવાય એક સોય કે તણખલા જેટલો પણ પરિગ્રહ ન રાખનારાઓને મુક્ત કહે છે

પરિગ્રહના બે ભેદ છે (૧) બાહ્ય અને (૨) આભ્યતર પહેલો બાહ્ય પરિગ્રહ ધન-ધાન્યાદિ નવ પ્રકારનો છે બીજો આભ્યતર પરિગ્રહ-(૧) મિથ્યાત્વ, (૨) સ્ત્રીવેદ, (૩) પુરૂષવેદ, (૪) નપુસકવેદ, (૫) હાસ્ય, (૬) રતિ, (૭) અરતિ, (૮) શોક, (૯) ભય, (૧૦) જુગુપ્સા, (૧૧) ક્રોધ, (૧૨) માન, (૧૩) માયા, અને (૧૪) લોભ, એ ભેદોએ કરીને ૧૪ પ્રકારનો છે

સ્વ અને પરના મોક્ષ સબધી સુખને સાધનારા સાધુ કહેવાય છે એવા સાધુ, આપવામા આવતા અશન આદિની એષણામા પ્રવૃત્ત થાય, આહાર પાણીની વિશુદ્ધિમા લીન રહે

અહીં સુધી દૃષ્ટાન્ત અને દાર્ષ્ટાન્તિકની પરસ્પર સમાનતા બતાવી છે હવે

भवति, तत्र श्राम्यन्ति=तपस्यन्त्याहारादिनिरासेन शरीरं क्लेशयन्तीति, भवभ्रमणाहेतुभूतविषयेषु खिद्यन्तीति, यद्वा अन्तर्भावितण्यर्थत्वात् श्राम्यन्ति=दमनेन श्रमयन्तीन्द्रियनोइन्द्रियाणीति श्रमणाः, शमयन्ति=शान्तिं नयन्ति कषायनोकषायरूपाऽनलमिति, शाम्यन्ति=विशद्भटभवाटवीपर्यटद्भोगानलोज्ज्वलज्ज्वालामालाजनितसन्तापकलापतो निवृत्ता भवन्तीति वा शमनाः। समानानि=स्वपरेषु तुल्यानि मनांसि येषामिति, कुशलमयैर्मनोभिः सह वर्तन्त इति वा समनसः, सम्=सम्यक् अणन्ति=प्रवचनं ब्रुवत इति, सम्यक् अण्यन्ते=कषायचतुष्टयं जित्वा

'समण' रूप होता है। इनमें 'श्रमण' का अर्थ यह है कि जो अनशन आदि तप करते हैं-परिषह सहते हैं, संसारमें परिभ्रमण करानेवाले इन्द्रियोंके विषयोंसे उदास रहते हैं, अथवा जो पांच इन्द्रियोंका तथा मनका दमन करते हैं। 'शमन'का अर्थ यह होता है कि कषाय-क्रोध मान माया और लोभ तथा नोकषाय-हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेद-रूपी अग्निको शान्त कर देते हैं, विशाल भवाटवीमें पर्यटन करते हुए भोगरूपी अग्निकी धधकती हुई ज्वालाओंसे उत्पन्न हुए संतापके समूहको शुद्ध भावनासे शान्त कर देते हैं। 'समनस्' शब्दका यह अर्थ है कि जिनका मन स्व और पर में समान है, अथवा जिनके मनोयोग सदा शुद्ध रहते हैं। 'समण' शब्दका अर्थ यह है कि-जो सम्यक् प्रकारसे प्रवचनका प्रतिपादन करते हैं अथवा चारों कषायोंको जीत लेते हैं।

'સમણ' રૂપ થાય છે 'શ્રમણ'નો અર્થ એવો છે કે-જે અનશન આદિ તપ કરે છે-પરિષહ સહે છે, સંસારમાં પરિભ્રમણ કરાવનારા ઇન્દ્રિયોના વિષયોથી ઉદાસ રહે છે, અથવા જે પાંચ ઇન્દ્રિયોનું તથા મનનું દમન કરે છે, 'શમન' નો અર્થ એવો થાય છે કે-કષાય-ક્રોધ માન માયા અને લોભ, તથા નોકષાય-હાસ્ય રતિ અરતિ શોક ભય જુગુપ્સા સ્ત્રીવેદ પુરુષવેદ અને નપુંસકવેદ રૂપી અગ્નિને શાન્ત કરી નાખે છે, વિશાળ ભવાટવીમાં પર્યટન કરતાં ભોગરૂપી અગ્નિની ભભકતી જ્વાલાઓમાંથી ઉત્પન્ન થતા સંતાપના સમૂહને શુદ્ધ ભાવનાથી શાન્ત કરી નાખે છે 'સમનસ્' શબ્દનો અર્થ એવો છે કે-જેનું મન સ્વ અને પરમાં સમાન હોય અથવા જેના મનોયોગ હમેશાં શુદ્ધ રહે 'સમણ' શબ્દનો અર્થ એવો થાય છે કે-જે સમ્યક્ પ્રકારે પ્રવચનનું પ્રતિપાદન કરે છે અથવા ચારે કષાયોને જીતી લે છે

मपि व्यवच्छिद्यते । आधाकर्मादिदोषव्यावृत्तये ' एसणा '–पदमुपात्तम् ।

एवमुक्तगाथाभ्यां दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकप्रदर्शनपुरस्सरं साधुभिः कथं भिक्षा ग्रहीतव्येत्युक्तं, तत्र भिक्षा द्विविधा–लौकिकी लोकोत्तरा च । तयोराद्या दीनवृत्ति–पौरुषघ्नी-भेदाद् द्विविधा, तत्र स्वोदरभरणासमर्थानां हीना-ऽनाथ-पङ्गुप्रभृतीनामाद्या, पञ्चास्रवभाजामिन्द्रियपञ्चकविषयासक्तचित्तानां प्रमादपञ्चकप्रवृत्तानां भोगामिषगृध्नूनां सन्ततिसमुत्पादकानां निरुद्यमानां द्वितीया । लोकोत्तराऽपि

निराकरण करनेके लिए 'भत्त' शब्द और आधाकर्मी आदि दोषवाले आहारका व्यवच्छेद करनेके लिए 'एषणा' शब्द गाथामें दिया गया है।

इन दो गाथाओंमें दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक बतलाकर यह प्रगट किया है कि साधुओंको किस प्रकार भिक्षा लेनी चाहिये?, अतःभिक्षाके भेद कहते हैं—

भिक्षा दो प्रकारकी है–लौकिक भिक्षा और लोकोत्तर भिक्षा। लौकिक भिक्षाके भी दो भेद हैं–(१) दीनवृत्ति, (२) पौरुषघ्नी। अपना पेट भरनेमें असमर्थ, दीन, हीन, अनाथ, लूलों, लगडोंकी भिक्षा दीनवृत्ति कहलाती है। पांच आस्रवोंका सेवन करनेवाले, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें चित्तको सदा आसक्त रखनेवाले, पाचो प्रकारके प्रमादोंमें प्रवृत्ति करनेवाले, भोगरूपी आमिषमे अभिलाषा रखनेवाले, बाल-बच्चोंको उत्पन्न करनेवाले निकम्मे मनुष्योंको दी जानेवाली भिक्षा पौरुषघ्नी कहलाती है, क्योंकि इससे उनका पौरुष नष्ट हो जाता है।

આધાકર્મી આદિ દોષવાળા આહારનો વ્યવચ્છેદ કરવાને માટે एषणा શબ્દ ગાથામાં આપવામાં આવેલો છે

આ બે ગાથાઓમાં દષ્ટાંત અને દાર્ષ્ટાન્તિક બતાવીને એમ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે સાધુઓએ કેવા પ્રકારની ભિક્ષા લેવી જોઈએ માટે ભિક્ષાના ભેદો કહે છે–

ભિક્ષા બે પ્રકારની છે લૌકિક ભિક્ષા અને લોકોત્તર ભિક્ષા લૌકિક ભિક્ષાના પણ બે ભેદો છે (૧) દીનવૃત્તિ, (૨) પૌરૂષઘ્ની પોતાનું પેટ ભરવામાં અસમર્થ દીન, હીન, અનાથ, લૂલા, લગડાની ભિક્ષા દીનવૃત્તિ કહેવાય છે પાચ આસ્રવોનું સેવન કરનારા, પાચે ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં ચિત્તને સદા આસક્ત રાખનારા પાચે પ્રકારના પ્રમાદોમાં પ્રવૃત્તિ કરનારા, ભોગરૂપી આમિષમાં અભિલાષા રાખનારા, બાળ-બચ્ચાને ઉત્પન્ન કરનારા, એવા નકામા મનુષ્યોને આપવામાં આવતી ભિક્ષા પૌરૂષઘ્ની કહેવાય છે, કારણ કે તેથી એમનું પૌરૂષ નષ્ટ થઈ જાય છે

यद्वा यथा विहङ्गमाः पुष्पेषु तथा साधवः कुत्र रताः ? इत्याह–'दानभक्तैषणे रताः' इति, दीयत इति, अदायीति वा दान=दीयमानमथवा दत्त, तच्च तद्भक्तम्=अन्नादिकं च दानभक्तं तस्य एषणम्=अन्वेषणं तस्मिन्, अथवा दान=दत्त, भक्त=प्रासुकम्, एषणा=अन्वेषणम् एतेषां समाहारद्वन्द्वे दानभक्तैषणं तस्मिन् रताः=आसक्ता इत्यर्थः ।

बोटिक-शाक्य तापस-गैरिका-ऽऽजीवा अपि लोके श्रमणपदेनोच्यन्ते तेषां निरासार्थमुक्तं 'मुक्ता' इति । निह्नवादिष्वपि व्यवहारतो मुक्तत्वमस्त्यतस्तद्व्यावृत्त्यर्थमाह–'साहुणो' इति । मधुकरा अदत्ताऽऽदानवृत्त्या कुसुमरसं पिबन्ति श्रमणास्तु दातृभिरदत्तस्यान्नादेर्जिघृक्षामपि न कुर्वते ग्रहणस्य तु कथैव केति भ्रमरापेक्षया साधूनां व्यतिरेकं दर्शयितुमाह–'दाण' इति । 'भत्त' पदेन सचित्त-

अब उनमें जो अन्तर है उसेभी बतलाते हैं । वह अन्तर यह है कि जैसे भ्रमर पुष्पोंमें अनुरक्त होता है वैसे साधु गृहस्थद्वारा दिये जाने वाले अशन पान आदिके अन्वेषणमें प्रवृत्त होवें ।

बोटिक, शाक्य, तापस, गैरिक और आजीविक आदिभी, लोकमें श्रमण कहलाते हैं, उनका निराकरण करनेके लिए गाथामें 'मुत्ता' (मुक्ताः) कहा है । निह्नव आदिभी व्यवहारसे मुक्त कहलाते हैं अतः उनका निराकरण करनेके लिए 'साहुणो' (साधवः) पद दिया है । भ्रमर विना दिये हुए पुष्पके रसका पान करते हैं किन्तु श्रमण विना दिये हुएको ग्रहण करनेकी इच्छाभी नहीं करते, ग्रहण करनेकी तो बात ही दूर है, इस भेदको प्रगट करनेके लिए 'दान' शब्द, सचित्त आहारका

તેમાં જે અંતર રહેલું છે તે બતાવે છે તે અંતર એ છે કે–જેમ ભ્રમર પુષ્પોમાં અનુરક્ત થાય છે તેમ ગૃહસ્થે આપેલા અશન પાન આદિના શોધનમાં પ્રવૃત્ત થાય બોટિક, શાક્ય, તાપસ, ગૈરિક અને આજીવિક આદિ પણ આ શ્રમણ કહેવાય છે, તેનું નિરાકરણ કરવા માટે ગાથામાં मुत्ता (मुक्ताः) કહ્યું છે નિહ્નવ આદિ પણ વ્યવહારે કરીને મુક્ત કહેવાય છે, તેથી તેનું કરણ કરવાને साहुणो (साधव) પદ આપેલું છે ભ્રમર અણઆપેલા પુષ્પ-રસનું પાન કરે છે, કિન્તુ શ્રમણ અણઆપેલા ભોજનનું ગ્રહણ કરવાની પણ કરતા નથી, પછી ગ્રહણ કરવાની વાત જ ક્યાં રહી ? આ ભેદને પ્રકટ કરવ માટે दान શબ્દ, સચિત્ત આહારનું નિરાકરણ કરવાને માટે भत्त શબ્દ,

द्वितीया–यथा गौर्यत्र लघुतृणादिकं पश्यति तत्राऽल्पं यत्र चाधिकं तत्र पूर्वापेक्षयाऽधिकं कवलं गृह्णाति न तु तृणादिकमुन्मूलयति तथा मुनिरपि गृहस्थगृहे यथाऽवसरं यथासामग्रि च या भिक्षां गृह्णाति सा। अथवा विविधवसनरत्नालङ्करणविभूषिता सुन्दरी युवतिर्गवे घासादिकं समर्पयति तदा तदीयरूपलावण्यादिकमपश्यन्ती गौर्दीयमानं घासादिकमुपादत्ते, तद्वद् भिक्षुणाऽपि दातृवसनसुवेपरूपलावण्यादेः सानुरागावलोकनं विहाय केवलमशनपानादिशुद्धौ दृष्टिः स्थापनीयेति गोचरीभिक्षासमाचारः (२)।

तृतीया गड्डुलेपा–यथा गड्डूपरि समधिकलेपप्रदानेन प्रसृतलेपतो नीरुजोऽपि

(२) गोचरी–जैसे गाय जहा कम घास देखती है वहाँ कम कवल ग्रहण करती है, जहा अधिक देखती है वहां पहलेसे कुछ अधिक ग्रहण करती है, घासको जड़से नहीं उखाडती, उसीप्रकार भिक्षु एक स्थानसे ही पूर्ण अशन पान आदि न ग्रहण करे किन्तु गृहस्थको फिर आरम्भ न करना पडे इस प्रकार विचार कर अशनादि ले उसे गोचरी कहते हैं। अथवा जैसे विविध बहुमूल्य वस्त्र आभूषणोंसे आभूषित सुन्दरी युवती स्त्री गायको घास डालने आती है तो गाय उसकी सुन्दरता नहीं देखती वरन् घास पर ही दृष्टि रखती है, उसीप्रकार भिक्षु आहारादि देती हुई स्त्रीके सौन्दर्य, सुवेप, आभूपण आदिका निरीक्षण न करे किन्तु अशनादिकी शुद्धि पर ही दृष्टि रखे उसे गोचरी कहते हैं।

(३) गड्डुलेपा–जैसे फोडेके ऊपर आवश्यकतासे अधिक लेप करनेसे

(२) ગોચરી–જેમ ગાય જ્યા ઓછુ ઘાસ જુએ છે ત્યા ઓછો કોળિયો લે છે, જ્યા વધુ ઘાસ જુએ છે ત્યા પહેલાથી વધુ મોટો ગ્રાસ (કોળીયો) લે છે, ઘાસને મૂળમાથી ઉપાડતી નથી એ રીતે ભિક્ષુ એક સ્થાનેથી જ પૂરા અશન પાન આદિ ગ્રહણ ન કરે, કિંતુ ગૃહસ્થને ફરીથી આરભસમારભ ન કરવો પડે એવો વિચાર કરીને અશનાદિ લે, તેને ગોચરી કહે છે અથવા જેમ વિવિધ બહુ મૂલ્ય વસ્ત્રાભૂષણોથી સજ્જ થએલી સુન્દર યુવતી સ્ત્રી ગાયને ઘાસ નીરવા આવે છે, તો ગાય તેની સુદરતા જોતી નથી પરન્તુ ઘાસ પર જ દૃષ્ટિ રાખે છે, તે પ્રમાણે ભિક્ષુ આહારાદિ આપતી સ્ત્રીનું સૌદર્ય, સુવેશ, આભૂષણ આદિનુ નિરીક્ષણ ન કરે, કિંતુ અશનાદિની શુદ્ધિ પર જ દૃષ્ટિ રાખે તેને ગોચરી કહે છે

(૩) ગડુલેપા–જેમ ગુમડા ઉપર જરૂરી કરતા વધારે લેપ કરવાથી લેપ

द्विविधा–अप्रशस्ता प्रशस्ता च, तत्राऽवसन्न-पार्श्वस्थादीनामप्रशस्ता भिक्षा, प्रशस्ता पुनः पञ्चमहाव्रतधारिणां षट्कायरक्षकाणां समितिपञ्चक-गुप्तित्रयवतां मुनीनां प्रतिमाधारिश्रावकाणां च, यतः एवंभूताः श्रावका अपि श्रमणकल्पा एव। इयमेव 'सर्वसम्पत्करी'–त्युच्यते, अस्या अन्यान्यपि षड् नामानि यथा–(१) माधुकरी, (२) गोचरी, (३) गड्डलेपा, (४) अक्षाञ्जना, (५) गर्तापूरणी, (६) दाहोपशमनी चेति। तासु माधुकरी–समनन्तरसूत्रोक्तस्वरूपा (१)।

लोकोत्तरभिक्षा भी दो प्रकारकी है–(१) अप्रशस्त और (२) प्रशस्त। अवसन्न और पार्श्वस्थ आदिकी भिक्षा अप्रशस्त और पंचमहाव्रतधारी, षट्कायरक्षक, पांचसमिति तीनगुप्तिका पालन करनेवाले मुनिकी तथा प्रतिमा (पडिमा)-धारी श्रावकोंकी भिक्षा प्रशस्त कहलाती है।

प्रतिमा-(पडिमा)-धारी श्रावकोंकी भिक्षा प्रशस्त इस कारण है कि वे श्रावक होते हुए भी साधुसरीखी उत्कृष्ट क्रियाका पालन करते हैं। इस भिक्षाको 'सर्वसम्पत्करी' भी कहते हैं, क्योंकि इससे आत्माकी समस्त सम्पत्ति ज्ञान दर्शन सुख आदिकी प्राप्ति होती है। इस भिक्षाके छह नाम और भी कहते हैं—

(१) माधुकरी (भ्रामरी), (२) गोचरी, (३) गड्डलेपा, (४) अक्षाञ्जना, (५) गर्तापूरणी और (६) दाहोपशमनी।

(१) माधुकरी (भ्रामरी) का स्वरूप इससे पहलेकी गाथामें कहा जाचुका है।

લોકોત્તર ભિક્ષા બે પ્રકારની છે (૧) અપ્રશસ્ત, (૨) પ્રશસ્ત અવસન્ન અને પાર્શ્વસ્થ આદિની ભિક્ષા અપ્રશસ્ત અને પંચ મહાવ્રતધારી, ષટ્કાયરક્ષક, પાંચ સમિતિ ત્રણ ગુપ્તિનું પાલન કરનારા મુનિની તથા પ્રતિમા–(પડિમા)–ધારી શ્રાવકોની ભિક્ષા પ્રશસ્ત કહેવાય છે

પ્રતિમા–(પડિમા)–ધારી શ્રાવકોની ભિક્ષા પ્રશસ્ત એ કારણથી છે કે એ શ્રાવકો હોવા છતાં સાધુના જેવી ઉત્કૃષ્ટ ક્રિયાનું પાલન કરે છે આ ભિક્ષાને 'સર્વસમ્પત્કરી' પણ કહે છે, કારણ કે તેથી આત્માની સમસ્ત સમ્પત્તિ જ્ઞાન દર્શન સુખ આદિની પ્રાપ્તિ થાય છે એ ભિક્ષાના બીજા છ નામ પણ કહેલા છે (૧) માધુકરી (ભ્રામરી), (૨) ગોચરી, (૩) ગડુલેપા, (૪) અક્ષાજના, (૫) ગર્તાપૂરણી, અને (૬) દાહોપશમની

(૧) માધુકરી (ભ્રામરી)નું સ્વરૂપ પહેલાની ગાથામાં કહ્યું છે

द्वितीया-यथा गौर्यत्र लघुतृणादिकं पश्यति तत्राऽल्पं यत्र चाधिकं तत्र पूर्वापेक्षयाऽधिकं कवलं गृह्णाति न तु तृणादिकमुन्मूलयति तथा मुनिरपि गृहस्थगृहे यथाऽवसरं यथासामग्रि च या भिक्षां गृह्णाति सा। अथवा विविधवसनरत्नालङ्करणविभूषिता सुन्दरी युवतिर्गवे घासादिकं समर्पयति तदा तदीयरूपलावण्यादिकमपश्यन्ती गौर्दीयमानं घासादिकमुपादत्ते, तद्वद् भिक्षुणाऽपि दातृवसनसुवेषरूपलावण्यादेः सानुरागावलोकनं विहाय केवलमशनपानादिशुद्धौ दृष्टिः स्थापनीयेति गोचरीभिक्षासमाचारः (२)।

तृतीया गड्डलेपा-यथा गडूपरि समधिकलेपप्रदानेन प्रस्तलेपतो नीरुजोऽपि

(२) गोचरी-जैसे गाय जहा कम घास देखती है वहाँ कम कवल ग्रहण करती है, जहा अधिक देखती है वहां पहलेसे कुछ अधिक ग्रहण करती है, घासको जड़से नहीं उखाडती, उसीप्रकार भिक्षु एक स्थानसे ही पूर्ण अशन पान आदि न ग्रहण करे किन्तु गृहस्थको फिर आरम्भ न करना पडे इस प्रकार विचार कर अशनादि ले उसे गोचरी कहते हैं। अथवा जैसे विविध बहुमूल्य वस्त्र आभूषणोंसे आभूषित सुन्दरी युवती स्त्री गायको घास डालने आती है तो गाय उसकी सुन्दरता नहीं देखती वरन् घास पर ही दृष्टि रखती है, उसीप्रकार भिक्षु आहारादि देती हुई स्त्रीके सौन्दर्य, सुवेष, आभूषण आदिका निरीक्षण न करे किन्तु अशनादिकी शुद्धि पर ही दृष्टि रखे उसे गोचरी कहते हैं।

(३) गड्डलेपा-जैसे फोडेके ऊपर आवश्यकतासे अधिक लेप करनेसे

(२) ગોચરી—જેમ ગાય જ્યા ઓછું ઘાસ જુએ છે ત્યા ઓછો કોળિયો લે છે, જ્યા વધુ ઘાસ જુએ છે ત્યા પહેલાથી વધુ મોટો ગ્રાસ (કોળીયો) લે છે, ઘાસને મૂળમાથી ઉપાડતી નથી એ રીતે ભિક્ષુ એક સ્થાનેથી જ પૂરા અશન પાન આદિ ગ્રહણ ન કરે, કિંતુ ગૃહસ્થને ફરીથી આરભ-સમારભ ન કરવો પડે એવો વિચાર કરીને અશનાદિ લે, તેને ગોચરી કહે છે અથવા જેમ વિવિધ બહુમૂલ્ય વસ્ત્રાભૂષણોથી સજ્જ થએલી સુન્દર યુવતી સ્ત્રી ગાયને ઘાસ નીરવા આવે છે, તો ગાય તેની સુદરતા જોતી નથી પરન્તુ ઘાસ પર જ દૃષ્ટિ રાખે છે, તે પ્રમાણે ભિક્ષુ આહારાદિ આપતી સ્રીનું સૌદર્ય, સુવેશ, આભૂષણ આદિનુ નિરીક્ષણ ન કરે, કિંતુ અશનાદિની શુદ્ધિ પર જ દૃષ્ટિ રાખે તેને ગોચરી કહે છે

(૩) ગડુલેપા—જેમ ગુમડા ઉપર જરૂરી કરતા વધારે લેપ કરવાથી લેપ

गडुसन्निहितदेशो निहन्यते, तदेकदेशमात्रे यत्किञ्चिल्लेपप्रदाने गडुप्रदेशसाकल्येन लेपाभावाद्रोगो नोपशाम्यति, तद्वत्साधुरपि, निर्दोषपरिमिताहारेण क्षुधा निवर्तयति तद्रूपा (३)।

चतुर्थं चास्या अक्षाञ्जनेति नाम-यथा शकटेन दूरं गन्तुकामस्तत्र यदि तैलदानं न कुर्यात्, तदा चलितुमेवाक्षम तत्र पारयति शकटारोहिणं प्रापयितुमभीष्टं स्थानम् तत्राधिकतरतैलनिक्षेपस्तु न केवलं निष्फलः प्रत्युत हानिं जनयतीति, तद्विनिरवद्याशनपानप्रदानं विना मोक्षप्रापकसंयमपथे चलितुमक्षम शरीर

लेप इधर-उधर फैल जाता है और आस-पासका नीरोग प्रदेश भी खराब हो जाता है, और यदि फोड़े पर बिलकुल ही लेप न किया जाय तो भी रोग शान्त नहीं होता, वैसेही साधु यदि प्रमाणसे अधिक आहार करे तो प्रमाद आदि दोष उत्पन्न होनेसे स्वाध्याय आदि क्रियाओंका पूर्ण पालन नहीं कर सकता, और बिलकुल ही थोड़ा आहार करे तो क्षुधावेदनीयकी शान्ति न होनेसे वैयावृत्त्य आदि साधुकी क्रियाएँ नहीं हो सकतीं, इसलिए निर्दोष और परिमित आहार लेना 'गडुलेपा' भिक्षा कहलाती है।

(४) अक्षाञ्जना-जैसे कोई गाडीद्वारा इच्छित स्थान पर जाना चाहता है परन्तु गाडीको बिलकुल तैल नहीं देवे तो वह गाडी चल नहीं सकती और यदि अधिक तेल दे दिया जाय तो वह वृथा ही नहीं वरन् हानिकारक भी है, इसीप्रकार मोक्षपुरी तक पहुचनेके लिए शरीर-रूप शकट (गाडी)

આમ-તેમ ફેલાઇ જાય છે અને આસપાસનો નીરોગ પ્રદેશ પણ ખરાબ થઇ જાય છે અને જો ગૂમડા ઉપર બિલકુલ લેપ ન કરવામા આવે તો રોગ શાન્ત થાય નહિ એવી જ રીતે સાધુ જો પ્રમાણથી અધિક આહાર કરે તો પ્રમાદ આદિ દોષ ઉત્પન્ન થવાથી સ્વાધ્યાય આદિ ક્રિયાઓનુ પૂર્ણ પાલન કરી શકતો નથી, અને બિલકુલ થોડો આહાર કરે તો ક્ષુધાવેદનીયની શાન્તિ નહિ થવાથી વૈયાવૃત્ય આદિ સાધુની ક્રિયાઓ થઇ શકતી નથી તેથી નિર્દોષ અને પરિમિત આહાર લેવો એ ' ગડુલેપા ' ભિક્ષા કહેવાય છે

(૪) જેમ કોઈ માણસ ગાડામા બેસીને ઇચ્છિત સ્થાન પર જવા ઇચ્છે છે પરન્તુ ગાડાને બિલકુલ તેલ ન ઉજે તો એ ગાડુ ચાલી શકતુ નથી અને જો વધારે પડતુ તેલ ઉજે તો તે વૃથા જાય છે એટલુ જ નહિ પણ હાનિકારક પણ નીવડે છે એ રીતે મોક્ષપુરી સુધી પહોચવાને માટે શરીર-શકટ (ગાડા)

मपि नाल मुनीन् मोक्ष प्रापयितुम्, अधिकतराहारपूरित तु निद्राप्रमादादिदोषजात जनयन्नूनमेव विनयश्रुतादिसमाधि विध्वसयति, अतः परिमित विशुद्ध चाशनपानमुपादेय भिक्षुणेति सेय भिक्षा 'अक्षाञ्जना नाम' (४)।

पञ्चमी गर्तापूरणी, सा यथा—कस्यापि श्रेष्ठिनो भवनसम्बन्धिनि गमनागमनमार्गे यदि केनापि कारणेन गर्त्तः सजायते तदा तमवलोक्य स तदानीं यदेव सद्यो लोष्टपाषाणखण्डादिकमुपलभते तदेवादाय त गर्तं परिपूरयति न तूत्तमैनैवेष्टकप्रभृतिना गर्तोऽय पूरयितव्य इति विचारयति, तथा सति महाऽनर्थोत्पत्तिसभवः, एवमेव मुनिरपि क्षुधावेदनीयोदयवशाद्रिक्तमुदरमैषणिकैरन्तप्रान्तादिभिराहारैर्बिभर्तीति। (५)

को आहारादिरूप तेल बिलकुल न दिया जाय तो सयमयात्राका सम्यक् निर्वाह नहीं हो सकता और अधिक आहार देनेसे रोगादि होजानेके कारण विनय श्रुत आदि समाधि नही हो सकती, इसलिए परिमित आहार लेना अक्षाञ्जना भिक्षा कहलाती है॥

(५) गर्तापूरणी—जैसे यदि किसी रईसके घर जाने-आनेके मार्गमें किसी कारणसे गड्ढा होजाय तो उसे देखते ही वह रईस शीघ्रतासे मिट्टी-पत्थरके टुकडे आदि जो कुछ पाता है उन्हींको लेकर खड्डेको भर देता है। परन्तु ऐसा नही विचारता है कि अच्छे २ ईंट-पत्थरों से ही इसे भरना चाहिये। यदि न पूरे तो बडी आपत्ति आनेकी सभावना रहती है। इसीप्रकार मुनि, क्षुधावेदनीयके वशसे अन्त-प्रान्त आदि निरवद्य आहार लेकर खाली उदर भर लेते हैं। इसलिए इसे गर्तापूरणी कहते हैं।

ને આહારાદિ રૂપ તેલ બિલકુલ ન ઉજવામા આવે તો સયમ—યાત્રાનો સમ્યક્ નિર્વાહ થઈ શકતો નથી, અને અધિક આહાર આપવામા આવે તો રોગાદિ થવાથી વિનય શ્રુત આદિ સમાધિ થઈ શકતી નથી તેથી પરિમિત આહાર લેવો એ 'અક્ષાજના' ભિક્ષા કહેવાય છે

(૫) ગર્તાપૂરણી—જેમ કોઈ ગૃહસ્થને ઘેર જવા આવવાના માર્ગ પર કોઈ કારણથી ખાડો પડી જાય છે તો તેને દેખતા જ તે ગૃહસ્થ શીઘ્ર માટી, પત્થરના ટુકડા, વગેરે જે કાઈ મળે તે લઈને ખાડાને પૂરી નાખે છે પણ એમ નથી વિચારતો કે સારી ઈટો પથરોથીજ પૂરીએ જો ન પૂરે તો ભારે આપત્તિ આવી પડવાની સભાવના રહે છે એ રીતે મુનિ ક્ષુધા—વેદનીયને લીધે અત—પ્રાત આદિ નિરવદ્ય આહાર લઈને ખાલી ઉદર ભરી લે છે તેને ગર્તાપૂરણી કહે છે

षष्ठी दाहोपशमनी यथा-भवने ज्वलनज्वालामालादन्दह्यमाने गृही यदेव सद्यो जलकर्दमधूलिलोष्टप्रभृतिकमुपलभते तदेव प्रक्षिप्य पावकं प्रशमयति न तु गङ्गादिसलिलं प्रतीक्षते, तथा संयमरक्षार्थं निर्दोषेण रूक्षादिनाऽप्याहारेण शमयति क्षुधां मुमुक्षुर्भिक्षुरिति (६) ॥ ३ ॥

प्रशस्तैव भिक्षा साधुभिर्ग्रहीतव्या नेतरेति निशम्य शिष्यो गुरुं प्रत्याह-'वयं च,-इत्यादि ।

१　२　३　४　　　७　५　६　८
मूलम्-वयं च वित्तिं लब्भामो, न य कोइ उवहम्मइ ।
९　　　१०　　　१३　　१२　　११
अहागडेसु रीयंते, पुप्फेसु भमरा जहा ॥ ४ ॥

(छाया)—वयं च वृत्तिं लप्स्यामहे, न च कोऽपि उपहन्यते ।
यथाकृतेषु रीयन्ते, पुष्पेषु भ्रमरा यथा ॥ ४ ॥

(६) दाहोपशमनी-जिस समय घरमें अग्नि धधक जाय उस समय घरका स्वामी जल्दीसे जल कीचड़ धूल मिट्टी आदि जो कुछ मिलजाय उसीको डालकर आग बुझाता है । उस समय वह यह नहीं सोचता कि जब गंगासिन्धुका निर्मल नीर मिलेगा तभी आग बुझाऊंगा, उसीप्रकार संयमकी रक्षाके लिए मुमुक्षु भिक्षु तुच्छ आदि निर्दोष भिक्षासे क्षुधाको शान्त कर लेता है । इसलिए इसको दाहोपशमनी कहते हैं ॥३॥

'प्रशस्त भिक्षा ही साधुको ग्रहण करनी चाहिये अन्य नहीं' यह सुनकर शिष्य गुरुसे निवेदन करता है-'वयं च वित्तिं' इत्यादि ।

(६) દાહોપશમની—જે સમયે ઘરમાં અગ્નિ ભભૂકી ઉઠે તે સમયે ઘરનો ધણી જલ્દી-જલ્દી પાણી, કાદવ, ધૂળ, માટી વગેરે જે કાંઇ મળી જાય તે નાખીને આગ બુઝાવે છે તે વખતે તે એમ નથી વિચારતો કે જ્યારે ગંગા-સિંધુનું નિર્મળ નીર મળશે ત્યારે આગને બુઝાવીશ એ રીતે સંયમની રક્ષાને માટે મુમુક્ષુ ભિક્ષુ લુખ્ખી, તુચ્છ, આદિ નિર્દોષ ભિક્ષાથી ક્ષુધાને શાન્ત કરી લે છે તેથી તેને 'દાહોપશમની' કહે છે (૩)

"પ્રશસ્ત ભિક્ષાજ સાધુએ ગ્રહણ કરવી જોઇએ બીજી નહિ," એમ સાંભળીને શિષ્ય ગુરૂ સમીપે નિવેદન કરે છે—वयं च वित्तिं ઇત્યાદિ

गुरु महाराजके प्रति शिष्यकी प्रतिज्ञा—

सान्वयार्थः-(हे गुरुमहाराज !) वय=हम च=ऐसी विर्त्ति=वृत्ति-भिक्षावृत्तिको लब्भामो=स्वीकार करेंगे (जिससे) कोइय=कोईभी न उवहम्मइ=उपमर्दित न हो, (साधु) अहागडेसु=सदाकी भांति गृहस्थद्वारा अपने लिए बनाये हुए भोजनमेंही रीयते=सयम यात्राका निर्वाह करते हैं, जहा=जिस प्रकार भमरो=भौंरा पुप्फेसु=फूलोंमें निर्वाह करता है । अर्थात् श्रमण महाराज गृहस्थद्वारा खुदके लिये बनाये हुए आहारसे ही अपनी यात्राका निर्वाह कर लेते हैं ॥ ४ ॥

टीका—एतद्गाथायाः पूर्वार्द्धे समुपात्त चकारद्वय क्रमेण यथा-तथा-शब्दार्थवाचक ततश्चायमर्थः-वय च=तथा-तेन रूपेण, वृत्तिं=जिनोक्तस्वरूपा प्रशस्ता भिक्षा, लप्स्यामहे=प्राप्स्यामः स्वीकरिष्याम इति यावत् , यथा न कोऽपि त्रस स्थावरप्राणिमात्रमित्यर्थः उपहन्यते=उपहतः (उपमर्दितः) भवेत । एवविधवृत्तिग्रहणे सदृष्टान्तहेतुमुपन्यस्यति 'अहा०' इति, अत्र 'यत्' इत्यध्याहार्यम् , तथा च-यतः यथाकृतेषु=गृहस्थैरात्मार्थमात्मीयार्थं च सम्पादितेष्वाहारादिषु रीयन्ते=गच्छन्ति सयमयात्रा निर्वहन्तीति यावत् 'साधवः' इति शेषः । अत्र गतमपि भ्रमरदृशान्त विस्पष्टप्रतिपत्तये पुनरुपन्यस्यति 'पुप्फेसु' यथा पुष्पेषु

इस गाथाके पूर्वार्द्धमें दो 'च' आये हैं, एकका अर्थ है 'जैसे' और दूसरेका अर्थ है 'वैसे', इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि-हे भगवन् ! हम वैसेही प्रशस्त भिक्षा ग्रहण करेंगे जैसे (जिस प्रकार) त्रस या स्थावर जीवको किसीभी प्रकारकी बाधा न पहुँचे, क्योंकि गृहस्थोंद्वारा अपनेलिये या अपने कुटुम्बके लिये बनाये हुए आहारको लेकर ही साधु अपनी सयमयात्राका निर्वाह कर लेते हैं । इसी बातको अधिक स्पष्ट करनेके

આ ગાથાના પૂર્વાર્ધમા બે च આવ્યા છે એકનો અર્થ છે 'જેમ' અને બીજાનો અર્થ છે 'એમ' એ રીતે તેનો અર્થ એમ થયો કે-હે ભગવન્ ! અમે એમ જ (એજ પ્રકારે) પ્રશસ્ત ભિક્ષા ગ્રહણ કરીશુ કે જેમ (જે પ્રકારે) ત્રસ યા સ્થાવર જીવને કોઇ પણ પ્રકારની બાધા ન પહોંચે કારણ કે ગૃહસ્થોએ પોતાને માટે યા પોતાના કુટુબને માટે બનાવેલો આહાર લઇને જ સાધુ પોતાની સયમ-યાત્રાનો નિર્વાહ કરી લે છે એ વાતને વધુ સ્પષ્ટ કરવાને માટે ભ્રમરના દૃષ્ટાતને ફરીથી બેવડાવે છે

भ्रमराः, ते हि पुष्पेभ्यो रसमाददन्तोऽपि तानि (पुष्पाणि) लेशतोऽपि न पीडयन्ति । अत्र 'लब्भामो' इत्यस्य 'लप्स्याम' इति व्याख्यान तु सर्वथा व्याकरणविरुद्धमेव 'लभ' धातोरनुदात्तेत्सु पठितत्वेन नित्यात्मनेपदित्वात्, न च चक्षिङो ङित्करणज्ञापितया 'अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्' इतिपरिभाषया परस्मैपदमपि युक्तमेवेति वाच्यम्, तस्या अगतिकगतिकत्वयेष्टप्रयोगविषयत्वात्, वस्तुतस्तु भाष्यानुक्तज्ञापितार्थस्य साधुताया नियामकत्वे प्रमाणाभावादेवमादिकाः परिभाषाश्चिन्त्या एवेति स्पष्ट 'परिभाषेन्दुशेखरे' इत्यविरोहित वैयाकरणानाम् । अत्र गाथाया 'लब्भामो' इति, 'उवहम्मइ' इति भविष्यद्वर्तमानौ कालावविवक्षितौ, तेन कालत्रयग्रहण बोध्यम् ॥ ४ ॥

एव मधुकरदृष्टान्तेन यत्फलित तत्प्रतिपादयन्नुपसहरति-'महुगारसमा०' इत्यादि ।

मूलम्-महुगारसमा[२] वुद्धा[३] जे[१] भवंति[७] अणिस्सिया[४] ।
नाणापिंडरया[५] दंता[६] तेण[८] वुच्चंति[१०] साहुणो[९] ॥त्तिबेमि॥५॥

छाया—मधुक(क) रसमा बुद्धा यतो भवन्त्यनिश्रिताः ।
नानापिण्डरता दान्ताः, तेन उच्यन्ते साधवः ॥ ५ ॥

सान्वयार्थः—(क्योंकि) जे=जो महुगारसमा=भौरेकीभांति वुद्धा=विवेकी अणिस्सिया=मोहबन्धनरहित नाणापिंडरया=अनेक घरोंका निरवद्य पिण्ड लेकर सयममें लीन दंता=इन्द्रियविजयी भवति=होते हैं, तेण=इसीसे वे साहुणो=साधु वुच्चति=कहलाते हैं। त्तिबेमि=इस प्रकार श्रीसुधर्मा स्वामी

लिए कहे हुए भ्रमर दृष्टान्तको फिर दुहराते हैं कि–जैसे भ्रमर पुष्पोंसे रस ग्रहण करकेभी किसी पुष्पको पीडा नही पहुँचाता ॥४॥

मधुकरका उदाहरण देनेसे जो निष्कर्ष निकला उसे सूत्रकार कहते हैं–'महुगारसमा' इत्यादि ।

કે–જેમ ભ્રમર પુષ્પોમાંથી રસ ગ્રહણ કરીને પણ કોઇ પુષ્પને પીડા ઉપજાવતો નથી (૪)

મધુકરના ઉદાહરણમાંથી જે નિષ્કર્ષ નીકળ્યો તેને સૂત્રકાર કહે છે–
महुगारसमा, ઇત્યાદિ

जम्बूस्वामीसे कहते हैं–"हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीरसे मैंने जैसा सुना है वैसा ही तेरे लिए कहता हूं ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमाध्ययनस्य सान्वयार्थः ॥ १ ॥

टीका—अत्र गाथाया 'जे' इत्यस्यादौ 'यतः' इति, 'तेण' इत्यस्यान्ते 'ते' इति च पदद्वयमध्याहार्यम्, तथा च–यतः ये मधुका(क)रसमाः=भृङ्गवदनियत-वृत्तयः: बुद्धाः=इदं कर्त्तव्यमिदमकर्त्तव्यमित्येव विवेकवन्तः, अनिश्रिताः=निश्रा-रहिताः-निवासकुलादिषु प्रणयनिगडबन्धशून्या इत्यर्थः, नानापिण्डरताः= नाना=अभिग्रहविशेषेण प्रतिगृहाऽल्पाल्पग्रहणयुक्ततया अन्तप्रान्तादिभेदेन च विविधप्रकारा ये पिण्डाः=आहाराद्यास्तेषु रताः=ससक्ताः, दान्ताः=इन्द्रिय-नोइन्द्रियविकारभावाऽनुपहतचित्ताः, भवन्ति=सम्पद्यन्ते, तेन=उक्तप्रकारेण निरव-द्यवृत्तिसमाराधनेन हेतुना ते योगत्रये-न्द्रियपञ्चक-नवविधविशुद्धब्रह्मचर्याऽहिंसाः साधयन्तीति साधवः व्युच्यन्ते=कथ्यन्ते इति गाथार्थः, इत्यन्ये, वस्तु-तस्तु अत्र 'यतः' इत्यस्य, 'ते' इत्यस्य चाध्याहरणं 'जे' इत्यस्य प्रथमान्तत्वेन व्याख्यानं च न युक्तं, तथा सति 'ये'–'ते'–शब्दयोर्वैयर्थ्यापत्तेः, तस्मात् 'जे' इत्यव्ययपदं 'यतः' इत्यस्यार्थे, अव्ययानामनेकार्थत्वात्, ततश्चा-यमभिसम्बन्धः–यतः मधुकारसमाः बुद्धाः अनिश्रिताः नानापिण्डरताः दान्ता

जो भौंरेके समान अनियत (कुलकी नेसराय रहित) भिक्षा लेते हैं, कर्तव्य और अकर्तव्यके विवेकी हैं, निवासस्थान तथा कुटुम्ब परिवार आदिमें ममताके बन्धनसे बन्धे हुए नहीं हैं, भाँति२के अभिग्रह धारण करके अनेक घरोंसे लिये जाने वाले अन्त-प्रान्त आदि आहारमें अनुरक्त रहते हैं, इन्द्रियों और मनके विकारको दमन करते हैं वे निर्दोष भिक्षा लेकर तीन योग, पाँच इन्द्रियाँ, नव प्रकारके विशुद्ध ब्रह्मचर्य और अहिंसाकी साधना करनेवाले साधु कहलाते हैं ।

જે ભ્રમરાની પેઠે અનિયત (કુળની નેસરાય રહિત) ભિક્ષા લે છે, કર્તવ્ય અને અકર્તવ્યનો વિવેકી છે, નિવાસસ્થાન તથા કુટુમ્બ પરિવાર આદિમાં મમતાના બંધનથી બદ્ધ થયો નથી, તરેહ-તરેહના અભિગ્રહો ધારણ કરીને અનેક ઘરોથી લીધેલા અંત પ્રાંત આદિ આહારમાં અનુરક્ત રહે છે, ઇન્દ્રિયો અને મનના વિકારોનું દમન કરે છે, તે નિર્દોષ ભિક્ષા લઈને ત્રણ યોગ, પાંચ ઇન્દ્રિયો, નવ પ્રકારનું વિશુદ્ધ બ્રહ્મચર્ય અને અહિંસાની સાધના કરનારો સાધુ કહેવાય છે

भवन्ति तेन साधवः उच्यन्त इति, साधुविशेषणानां मधुकारसमादीनां व्याख्या तु यथापूर्वमेवेति नयमिति विभावयन्तु विद्वांसः ।

मधुकरसमा असंज्ञिनोऽपि भवन्ति अतस्तद्व्यवच्छेदार्थमाह 'बुद्धा' इति, मधुकरसमा बुद्धाश्च प्रतिमाधारिप्रभृतयः संयतासंयता अपि भवन्ति तद्व्यावृत्तये 'अणिस्सिया' इति । मधुकरसाम्यं च साधूनां न सार्वदेशिकं किन्तु चन्द्रमुखादिवदेकदेशिकमेवेत्यतो यदंशे मधुकरसादृश्याभावस्तद्बोधनार्थमाह—'नाणापिंडरया दंता' इति, भ्रमरा हि सुगन्धिभ्य एव कुसुमेभ्यः स्वाद्यमेव च रसमादत्ते न च

भौंरेके समान असंज्ञी भी होते हैं अतः 'बुद्ध' (कर्तव्याकर्तव्य विवेकसे युक्त) पद दिया है। प्रतिमा (पडिमा) धारी श्रावक (संयतासंयत) भी भौंरेके समान और बुद्ध होते हैं इसलिए 'अणिस्सिया' पद दिया है,

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भौंरेका उदाहरण एकदेशीय है, कोई कहता है कि 'इसका मुख, चन्द्रमाके समान है' तो मुखमें चन्द्रमाके सब गुण नहीं पाये जाते, अर्थात् कुछ गुण सदृश होते हैं कुछ विसदृश होते हैं, भौंरेका उदाहरण भी कुछ अंशोंमें मिलता कुछ अंशोंमें नहीं मिलता है। जिस अंशमें नहीं मिलता है वह सूत्रकारने 'नाणापिंडरया' और 'दंता' विशेषणोंसे प्रगट किया है। भ्रमर, केवल कुसुमोंके स्वादिष्ट रसको ही पीता है इसलिए वह दान्त (इन्द्रियोंको जीतनेवाला) नहीं है, इस दृष्टान्तसे दार्ष्टान्तिककी विसदृशता है।

ભ્રમરાની પેઠે અસંજ્ઞી પણ હોય છે, તેથી બુદ્ધ (કર્તવ્યાકર્તવ્ય-વિવેકથી યુક્ત) પદ આપેલું છે પ્રતિમા (પડિમા) ધારી શ્રાવક (સંયતાસંયત) પણ ભ્રમરાની સમાન અને બુદ્ધ હોય છે, તેથી अणिस्सिया પદ આપ્યું છે

પહેલાં કહેવામાં આવ્યું છે કે ભ્રમરાનું ઉદાહરણ એક-દેશીય છે કોઈ કહે છે કે-'એનું મુખ ચંદ્રમા જેવું છે' પણ મુખમાં ચંદ્રમાના બધા ગુણો હોતા નથી અર્થાત્ કોઈ ગુણ સમાન હોય છે, કોઈ અસમાન હોય છે ભ્રમરાનું ઉદાહરણ પણ કોઈ અંશોમાં મળતું છે, કોઈ અંશોમાં અણમળતું છે જે અંશમાં અણમળતું છે તે સૂત્રકારે नाणापिंडरया અને दंता વિશેષણોથી પ્રકટ કર્યું છે ભ્રમર માત્ર કુસુમોના સ્વાદિષ્ટ રસને જ પીએ છે, તેથી એ દાન્ત (ઇન્દ્રિયોને જીતનાર) નથી આ દૃષ્ટાંતથી દાર્ષ્ટાન્તિકની અસમાનતા છે

दान्ता भवन्ति । 'त्तिबेमि' इति=उक्तरूपं तत्त्वं यथा तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य सकाशान्मया श्रुतं न तु स्वबुद्धया कल्पितं यतः स्वबुद्धया कथने श्रुतज्ञानस्याविनयो भवति, किञ्च छद्मस्थानां दृष्टयोऽप्यपूर्णा भवन्ति, तस्माद् यथा भगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । इहार्थे चेयं सङ्ग्रहगाथा—

"सुअणाणस्स अविणओ परिहरणिज्जो सुहाहिलासीहिं ।
छउमत्थाण दिट्ठी, पुण्णा णत्थित्ति सइय इइणा ॥ १ ॥" इति,

इति पञ्चमगाथार्थः ॥ ५ ॥

सुधर्मस्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—हे जम्बू ! ऊपर जो प्रथम अध्ययनका भाव कहा गया है वह अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् श्रीमहावीरसे जैसा मैंने सुना वैसाही कहा है, अपनी बुद्धिसे कल्पना किया हुआ नहीं कहा है, अपनी बुद्धिसे कल्पना करके कहनेसे श्रुतज्ञानकी आशातना होती है, और छद्मस्थोंका ज्ञान भी अधूरा होता है, इसलिए भगवान्द्वारा प्रतिपादित प्रवचन ही तुझे सुनाया है । कहाभी है—

"सुखके अभिलाषी पुरुषोंको श्रुतज्ञानकी आशातनाका त्याग करना चाहिये । क्योंकि छद्मस्थोंकी दृष्टि पूर्ण नहीं होती। इसी अर्थको 'त्तिबेमि' शब्दसे प्रगट किया है" ॥५॥

સુધર્મ-સ્વામી જમ્બૂ-સ્વામીને કહે છે-હે જમ્બૂ ! ઉપર જે પ્રથમ અધ્યયનનો ભાવ કહ્યો છે તે અંતિમ તીર્થંકર ભગવાન્ મહાવીર પાસેથી જેવો મે સાભળ્યો તેવો જ કહ્યો છે મે પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પના કરેલો નથી કહ્યો પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પના કરી કહેવાથી શ્રુતજ્ઞાનની આશાતના થાય છે અને છદ્મસ્થોનું જ્ઞાન પણ અધૂરૂ હોય છે, તેથી ભગવાન્ દ્વારા પ્રતિપાદિત પ્રવચન જ મે તને સભળાવ્યુ છે કહ્યુ પણ છે કે-

" સુખના અભિલાષી પુરૂષોએ શ્રુતજ્ઞાનની આશાતનાનો ત્યાગ કરવો જોઇએ, કારણ કે છદ્મસ્થોની દૃષ્ટિ પૂર્ણ હોતી નથી આ અર્થને त्तिबेमि શબ્દથી પ્રકટ કર્યો છે" (૫)

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक
श्री शाहूछत्रपति-कोल्हापुरराज-प्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पदभूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां प्रथमं
द्रुमपुष्पकाख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ १ ॥

— ✻ —

इसप्रकार दशवैकालिक सूत्रके 'द्रुमपुष्पक'
नामक पहले अध्ययनकी आचारमणिमञ्जूषा
नामक व्याख्याका हिन्दी-भाषानुवाद
समाप्त हुआ ॥ १ ॥

— ❀ —

ઇતિ 'દ્રુમ-પુષ્પક' નામના પહેલા અધ્યયનનું
ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૧).

— ❀ —



॥ द्वितीयाध्ययनम् ॥

गत प्रथममध्ययनमथ द्वितीयमारभ्यते, तत्रायमभिसम्बन्धः–पूर्वाध्ययने 'धम्मो मगल' इत्यादिना धर्मः प्रशसितो यः केवल जिनशासन एवोपलभ्यते, ततश्चोक्तरूपधर्मपरिपालनार्थस्वीकृतजिनशासनो नवदीक्षितः कदाचिद्धैर्याभावाच्चारित्रच्युतो न भवेदित्याशयेनास्मिन्नध्ययने 'साधुना धैर्य धार्य' मिति वक्तव्य, धैर्यधारण च कामनिवारणमन्तरेण न सभवतीति प्रथम तदेवाह–'कह नु' इत्यादि।

११ ६ १२ १० १ २ ३ ४

मूलम्–कह नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।

७ ८ ५ ६

पए पए विसीअतो, सकप्पस्स वसगओ ॥ १ ॥

छाया—कथ नु कुर्याच्छ्रामण्य, यः कामान्न निवारयेत् ।

पदे पदे विषीदन्, सकल्पस्य वश गत' ॥ १ ॥

दूसरा अध्ययन ।

पहले अध्ययनमें धर्मका स्वरूप और माहात्म्य कहा है वह केवल जैनशासनमे ही पाया जाता है । इसलिए पहले कहे हुए धर्मका पालन करनेके लिए जिसने जैनशासन अर्थात् चारित्रधर्म स्वीकार कर लिया हो परन्तु नवीन दीक्षित होनेसे कभी धैर्य छूट जानेके कारण वह कदाचित् चारित्रसे स्खलित न हो जाय, इस अभिप्रायसे इस अध्ययनमें 'साधुको धैर्य धारण करना चाहिए' यह कहा जायगा । लेकिन धैर्य तब ही रह सकता है जब कि कामके विकारको जीत लिया जाय । अत एव शास्त्रकार सबसे पहले इसी विषयका प्रतिपादन करते हैं–'कह नु–' इत्यादि ।

અધ્યયન ૨ જુ

પહેલા અધ્યયનમા ધર્મનુ સ્વરૂપ અને માહાત્મ્ય કહ્યુ છે તે કેવળ જૈન શાસનમા મળી આવે છે તેથી, પહેલા કહેલા ધર્મનુ પાલન કરવાને માટે, જેણે જૈન શાસન અર્થાત્ ચારિત્ર ધર્મ સ્વીકાર્યો હોય પરતુ નવદીક્ષિત હોવાથી કોઈવાર ધૈર્ય છૂટી જવાથી એ કદાચ ચારિત્રથી સ્ખલિત ન થઈ જાય, તેટલા માટે આ અધ્યયનમા "સાધુએ ધૈર્ય ધારણ કરવુ જોઈએ" એ કહેવામા આવશે પરન્તુ ધૈર્ય ત્યારે જ રહી શકે છે કે જ્યારે કામવિકારને જીતી લેવામા આવે તેથી શાસ્ત્રકાર સૌથી પહેલા એ વિષયનુ પ્રતિપાદન કરે છે–कह नु० ઈત્યાદિ

सान्वयार्थः—जो=जो कामे=विषयोंको न निवारए=नहीं छोडता है, वह संकप्पस्स=इच्छाओंके वसगओ=वशमें होकर पए पए=पद-पद पर विसीअतो= खेदित होता हुआ नु=आश्चर्य है कि वह सामण्णं=श्रमणधर्मको कहं=कैसे कुज्जा=कर-पाल सकता है। अर्थात्-जो इन्द्रियोंके विषयोंका परित्याग नहीं करता उसकी इच्छाएँ सदैव बढती रहती हैं, उसे कभी सन्तोष नहीं होता, सन्तोष न होनेसे निरन्तर मानसिक कष्ट होता है, विषयोंकी इच्छासे उत्पन्न हुआ मानसिक कष्ट होते रहनेसे चारित्रधर्मकी आराधना नहीं हो सकती, अतः सर्व प्रथम इन्द्रियोंको वशमें करना चाहिये ॥ १ ॥

टीका-यः, काम्यन्ते=अभिलष्यन्ते प्राणिभिरिति कामाः=शब्दादयस्तान् न निवारयेत्=नापनयेत्, अत्र 'सः' इत्यध्याहार्यं यत्तदोर्नित्यसम्बन्धादिति केचित्; वस्तुतस्तु नात्र तच्छब्दाध्याहारावश्यकता, न चाऽनध्याहारे साकाङ्क्षत्वदोष इत्याक्षेप्यम्, उत्तरवाक्यगतत्वेन यच्छब्दोपादाने तस्य दोषस्याऽनवकाशात् 'आत्मा जानाति यत्पाप' मित्यादिवत्। संकल्पस्य=अप्राप्तविषयप्राप्तिरूपस्याऽप्रशस्तस्याऽध्यवसायस्य, वशम्=अधीनतां गतस्तदधीनवर्ती भूत्वेति भावः, पदे पदे= प्रतिस्थानं विषीदन् खेदमनुभवन् कथं=केन प्रकारेण 'नु' क्षेपे वितर्के पृच्छायां वा, श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणः=सचित्ता चित्त-मनोज्ञा मनोज्ञद्रव्याधिकरणक-साम्यभाव हास्यादिषट्कविप्रमुक्ति-पंचसमितिसमितत्व-गुप्तित्रयगुप्तत्व गुप्तब्रह्मचर्यत्व

जीव, जिन इन्द्रियोंके विषयोंकी कामना (अभिलाषा) करता है उनको 'काम' कहते हैं। जो साधु, इन कामोंका त्याग नहीं करते, वे अप्राप्त विषयकी प्राप्तिरूप अशुभ अध्यवसायके अधीन होकर पद पद पर खेदका अनुभव करते हुए क्या कभी श्रमणताको प्राप्त कर सकते हैं? कदापि नहीं।

इष्ट, अनिष्ट, सचित्त, अचित्त आदि समस्त वस्तुओं पर समताभाव रखना, हास्य आदि छह नोकषायका त्याग करना,

જીવ જે ઈન્દ્રિયોના વિષયોની કામના (અભિલાષા) કરે છે તેને 'કામ' કહે છે જે સાધુ, એ કામોનો ત્યાગ નથી કરતા, તેઓ અપ્રાપ્ત વિષયની પ્રાપ્તિ-રૂપ અશુભ અધ્યવસાયને અધીન થઈને ડગલે ડગલે ખેદનો અનુભવ કરતા શું કદાપિ શ્રમણતાને પ્રાપ્ત કરી શકે ? કદાપિ નહિ

ઈષ્ટ, અનિષ્ટ, સચિત્ત, અચિત્ત, આદિ બધી વસ્તુઓ પર સમતા-ભાવ રાખવે, હાસ્ય આદિ છએ નોકષાયનો ત્યાગ કરવો પાંચ સમિતિ અને ત્રણ ગુપ્તિનું

योगत्रयसाधकत्व-सदोरकमुखवस्त्रिकोपशोभितमुखत्व-यतनाधर्मधरत्व-भोगामिषविरक्तत्व-करणसप्तति-चरणसप्ततिपारगत्व-निर्दोषभिक्षणशीलत्व तीर्थङ्कराज्ञाराधकत्व-स्वात्मज्ञत्व-निष्परिग्रहत्व-यात्रामात्राज्ञत्व-कूर्मवदात्मगोपकत्वा-ऽल्पपिण्डाऽल्पपानाशित्वाऽल्पोपधिकत्वा-ऽल्पकषायत्व-निराश्रवत्व-तीर्णत्वा-ऽपापत्व निर्ग्रन्थ-प्रवचनप्रवीणत्व शल्यकर्तकत्व-सन्निधिरहितत्वो-रगाद्युपमितत्व-पापश्रुतप्रतिषेधित्व-सुमन-

पाच समिति और तीन गुप्तिका पालन करना, गुप्त-ब्रह्मचारी होना, तीन योगोंको साधना, श्रुतज्ञानरूपी जलसे अन्तःकरणको शुद्ध रखना, सम्यक्त्वसे युक्त रहना, सयमरूपी कवच (बखतर) से सदा सन्नद्ध रहना, डोरासहित मुखवस्त्रिकाको मुखपर बाधे हुए रहना, यतना-धर्मको धारण करना, भोगरूपी आमिषसे विरक्त रहना, करणसत्तरी और चरणसत्तरीके पारगामी होना, निर्दोषभिक्षासे ही सयमयात्राका निर्वाह करना, तीर्थङ्कर भगवानकी आज्ञाका आराधन करना, आत्मज्ञानी होना, परिग्रहका त्याग करना, यात्रा-मात्राको जानना, कछुएकी भाँति इन्द्रियोंका गोपन करना, अल्प अशन अल्प पानका ग्रहण करना, अल्प उपधि रखना, कषायको त्यागना, आस्रवरहित होना, ससाररूपी सागरसे पार उतरना, पापरहित होना, निर्ग्रंथ प्रवचनमें प्रवीण होना, माया, मिथ्यात्व और निदान रूप शल्योंको काटना, सन्निधिका न रखना, उरगादिकी उपमासे युक्त होना, पापकी प्ररूपणा करनेवाले शास्त्रोंका उपदेश नहीं करना, मनको स्वच्छ रखना और अतिचाररहित चारित्रको पालना, तथा मृग जैसे सिंहसे

પાલન કરવુ, ગુપ્ત બ્રહ્મચારી થવુ, ત્રણ યોગોને સાધવા, શ્રુતજ્ઞાનરૂપી જળથી અંતઃકરણને શુદ્ધ રાખવુ, સમ્યક્ત્વથી યુક્ત રહેવુ, સયમરૂપી કવચ (બખ્તર) થી સદા સજ્જ રહેવું, દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકાને મુખ પર બાધીને રહેવુ, યતના-ધર્મને ધારણ કરવુ, ભોગરૂપી આમિષથી વિરક્ત રહેવુ, કરણસિત્તેરી અને ચરણસિત્તેરીના પારગામી થવુ, નિર્દોષ ભિક્ષાથી જ સયમયાત્રાનો નિર્વાહ કરવો, તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાનુ આરાધન કરવુ, આત્મજ્ઞાની થવુ, પરિગ્રહનો ત્યાગ કરવો, યાત્રામાત્રાને જાણવી, કાચબાની પેઠે ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરવુ, અલ્પ અશન અલ્પ પાનને ગ્રહણ કરવા અલ્પ ઉપધિ રાખવી, કષાયને ત્યજવા, આસ્રવરહિત થવુ, સસારરૂપી સાગરથી પાર ઉતરવુ, પાપરહિત થવુ, નિર્ગ્રંથ પ્રવચનમા પ્રવીણ થવુ, માયા, મિથ્યાત્વ અને નિદાનરૂપ શલ્યોને કાપવા, સન્નિધિને ન રાખવો, ઉરગાદિની ઉપમાથી યુક્ત થવુ, પાપની પ્રરૂપણા કરનારા શાસ્ત્રોનો ઉપદેશ ન કરવો, મનને સ્વચ્છ રાખવ અને અતિચારરહિત ચારિત્રને

-स्कृत्य-निरतिचारचारित्रत्वादिगुणसम्पन्नः, तस्य भावः कर्म वा श्रामण्यं=श्रमणधर्मं कुर्यात्=प्रतिपालयेत्, न हि सङ्कल्पाधीनचित्तवृत्तितया व्याक्षिप्तस्य भावक्रिया-शून्य-द्रव्य-क्रियामात्रपालनेन श्रामण्यं भवतीति गाथार्थः ॥ ॥ १ ॥

अत्राय संग्रहः—

" सचित्ताचित्तदव्वेसु मणुन्ने अमणुन्नए ।
रक्खए समभावं जो, समणो सो पवुच्चई ॥ १ ॥
हास रई भय सोगो, दुगुंछा य कसायया ।
एएहिं विप्पमुक्को जो, समणो सो पवुच्चई ॥ २ ॥
पंचसमिइहिं समिओ, तिगुत्तिगुत्तो य बंभयारी जो ।
परिसाहेइ सुजोगं, सो समणो वुच्चई निच्चं ॥ ३ ॥

छाया—

" सचित्ताचित्तद्रव्येषु, मनोज्ञे अमनोज्ञके ।
रक्षति समभावं यः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ १ ॥
हास्यं रतिर्भयं शोको, जुगुप्सा च कषायता ।
एतैर्विप्रमुक्तो यः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ २ ॥
पञ्चसमितिभिः समितः, त्रिगुप्तिगुप्तश्च ब्रह्मचारी यः ।
परिसाधयति सुयोगं, स श्रमण उच्यते नित्यम् ॥ ३ ॥

सर्वथा दूर भागते हैं उसी-प्रकार पापकर्म जिसके पास न ठहरे वह 'श्रामण्य' (साधुपन) कहलाता है । ऐसा श्रामण्य तब तक प्राप्त नहीं होता जब तक वह काम-भोगका त्याग न कर देवें, जिसका चित्त कामके संकल्प-विकल्पोंसे व्याकुल रहता हो उसकी क्रियाएँ भावशून्य द्रव्यक्रियाएँ हैं, केवल द्रव्यक्रियाओंका पालन करनेसे कोई श्रमण नहीं हो सकता, इस विषयमें संग्रहगाथाएँ हैं उनका अर्थ पहले आचुका है ॥१॥

પાળવું, તથા મૃગ જેમ સિંહથી સદા દૂર ભાગે છે તેમ પાપકર્મ જેની પાસે ન ઉભા રહે તે 'શ્રામણ્ય' (સાધુતા) કહેવાય છે એવું શ્રામણ્ય ત્યાં સુધી પ્રાપ્ત નથી થતું કે જ્યાં સુધી તે કામભોગનો ત્યાગ કરે નહિ, જેનું ચિત્ત કામના સંકલ્પવિકલ્પથી વ્યાકુળ રહેતું હોય છે તેની ક્રિયાઓ ભાવ્યશૂન્ય દ્રવ્ય-ક્રિયાઓ હોય છે, કેવળ દ્રવ્ય-ક્રિયાઓનું પાલન કરવાથી કોઇ શ્રમણ થઇ શકતો નથી આ વિષયમાં સંગ્રહ ગાથાઓ છે, જેનો અર્થ પહેલા આવી ગયો ॥ (१)

सुयनाणसुनीरेण, सुद्धो समत्तरजिओ ।
सजमवम्मसनद्धो, समणो सो पवुच्चई ॥ ४ ॥
सदोर मुहपत्ति जो, बधई सयय मुहे ।
जयणाधम्मेण जुओ, समणो सो पवुच्चई ॥ ५ ॥
भोगामिसपरिहीणो, करणे चरणे य वट्टए सुद्ध ।
अदोसभिक्खणसीलो, समणो सो वुच्चई निच्च ॥ ६ ॥
जिणाणाए समारोहो, आयन्नो निप्परिग्गहो ।
जायामायन्नो य मुणी, समणत्ति पवुच्चई ॥ ७ ॥
कुम्मो जहा नियगाइ, सए देहम्मि गोवई ।
तहा गोवइ अप्पाण, समणत्ति पवुच्चई ॥ ८ ॥
अप्पपिंडे अप्पपाणे, अप्पोवहिकसायओ ।
निरासवो य तिन्नो य, निप्पावो समणो भवे ॥ ९ ॥
निग्गथपवयणन्नो, अनियाणो सल्लकत्तओ ।
भेसज्जाईण वत्थूण, सन्निहिं वज्जए मुणी ॥ १० ॥

छाया—

" श्रुतज्ञानसुनीरेण, शुद्धः सम्यक्त्वरञ्जितः ।
सयमवर्म्मसनद्धः, श्रमणः स प्रोच्यते ॥ ४ ॥
सदोरा मुखवस्त्री यो, वध्नाति सतत मुखे ।
यतनाधर्म्मेण युतः, श्रमण. स प्रोच्यते ॥ ५ ॥
भोगामिषपरिहीण., करणे चरणे च वर्त्तते शुद्धम् ।
अदोषभिक्षणशील:, श्रमण. स उच्यते नित्यम् ॥ ६ ॥
जिनाज्ञाया समारोहः, आत्मज्ञो निष्परिग्रहः ।
यात्रामात्राज्ञश्च मुनिः, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ७ ॥
कूर्मो यथा निजाङ्गानि, स्वके देहे गोपयति ।
तथा गोपयत्यात्मान, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ८ ॥
अल्पपिण्डोऽल्पपानः, अल्पोपधिकषायक' ।
निरास्रवश्च तीर्णश्च, निष्पाप , श्रमणो भवेत ॥ ९ ॥
निर्ग्रन्थप्रवचनज्ञ , अनिदानः शल्यकर्त्तकः ।
भैषज्यादीना वस्तूना, सनधि वर्जयति मुनिः ॥ १० ॥"

उरगाइउवमो पाव,-सुयाण पडिसेहओ ।
सुमणो सुहचारित्तो, समणत्ति पवुच्चई ॥ ११ ॥
मिया जहेव सीहाओ, दूरं चरंति सव्वहा ।
तहा जओ य पावाइ, समणत्ति पवुच्चई ॥ १२ ॥ इति ।

छाया—

" उरगाद्युपमः पापश्रुतानां प्रतिषेधकः ।
सुमनाः शुभचारित्रः, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ ११ ॥
मृगा यथैव सिंहाद्, दूरं चरन्ति सर्वथा ।
तथा यतश्च पापानि, श्रमण इति प्रोच्यते ॥ १२ ॥" इति छाया।

पूर्वं शब्दादिविषयप्रवृत्तः श्रामण्यं पालयितुं न शक्नोतीत्युक्तं, सम्प्रति 'द्रव्यक्रियां कुर्वाणोऽपि कलुषितचित्तत्वादश्रमण एवे'ति दर्शयितुमाह—

यद्वा पूर्वगाथया भङ्ग्यन्तरेण शब्दादिविषयविनिवृत्त एव श्रामण्यमर्हतीति सूचितम्, शब्दादिविषयविनिवृत्तिश्च रोगादिना कारणेनापि सम्भवतीत्यतस्तद्व्यवच्छेदार्थं गाथान्तरमाह-' वत्थगंध '-मित्यादि ।

ऊपर कह चुके हैं कि शब्दादि इन्द्रियविषयोंमें प्रवृत्त साधु श्रामण्य (चारित्र) का पालन नहीं कर सकता । अब द्रव्यक्रियाएँ करते हुए भी यदि साधुके चित्तमें कलुषता हो तो वह वास्तवमें त्यागी नहीं है, यह कहते हैं—

अथवा पहली गाथामें एक विशेष प्रणालीसे यह प्रतिपादन किया है कि-शब्दादिविषयोंका त्यागी ही श्रामण्य (साधुपना) पाल सकता है, किन्तु रोग आदि कारणोंसे भी शब्दादि विषयोंको नहीं भोग सकता तो क्या उस समय वह भी त्यागी कहला सकता है ? कभी नहीं कहला सकता, इसी विषयको कहते है-' वत्थ गंध ' इत्यादि ।

ઉપર કહેવાઇ ગયું છે કે શબ્દ આદિ ઇન્દ્રિયવિષયોમાં પ્રવૃત્ત એવો સાધુ શ્રામણ્ય (ચારિત્ર)નું પાલન કરી શકતો નથી હવે દ્રવ્યક્રિયાઓ કરતાં પણ જો સાધુના ચિત્તમાં કલુષતા હોય તો તે વાસ્તવમાં ત્યાગી નથી, એ કહે છે—

અથવા પહેલી ગાથામાં એક વિશેષ પ્રણાલીથી એમ પ્રતિપાદન કર્યું છે કે-શબ્દાદિ-વિષયોનો ત્યાગી જ શ્રામણ્ય (સાધુતા) પાળી શકે છે, કિંતુ રોગાદિ કારણોથી પણ શબ્દાદિ વિષયોને નથી ભોગવી શકતો તો શું તે સમયે એ પણ ત્યાગી કહેવાઇ શકે છે ? નથી કહેવાતો, એ વિષય હવે કહે છે— ' ... '— ઇત્યાદિ

मूलम्—वत्थगंधमलंकारं, इत्थीओ सयणाणि य ।
अच्छंदा जे न भुंजति, न से चाइत्ति वुच्चई ॥२॥

छाया—वस्त्रगन्धमलङ्कार, स्त्रियः शयनानि च ।
अच्छन्दो यो न भुङ्क्ते, न स त्यागीत्युच्यते ॥ २ ॥

सान्वयार्थ'—जे=जो अच्छंदा=पराधीन होनेसे वत्थगध=वस्त्र गन्ध अलकार=आभूषण इत्थीओ=स्त्रियों य=और सयणाणि=शय्या-(पलग महल विगेरे) को न भुजति=नहीं भोगता है से=वह चाइत्ति="त्यागी" ऐसा न वुचइ=नहीं कहा जाता है। अर्थात् अपनी इच्छासे विषयोंको न भोगनेवाला त्यागी कहलाता है। जो रोग आदि किसी कारणसे पराधीन होकर विषयोंका सेवन नहीं कर सकता वह त्यागी नहीं कहलाता ॥ २ ॥ और—

टीका—अत्र 'अच्छंदा' 'जे' 'भुजति' इत्येतेषु पदेषु बहुवचनप्रयोगः सौत्रत्वात्[1] । तथा चायमर्थः-यः अच्छन्दः=रोगाद्यभिभूततया पराधीनो वस्त्र च गन्धश्चानयो. समाहारः वस्त्रगन्ध, तत्र वस्त्र=प्रसिद्ध, गन्धः=चन्दनकर्पूरादि-सुगन्धिद्रव्य तत्, अलङ्कार=कुण्डलवलयादिस्तम्, स्त्यायतः शुक्रशोणिते यासु

[1] यत्तु 'बहुवचनोद्देशेऽप्येकवचननिर्देशो विचित्रत्वात्सूत्रगते' इति, यच्च 'अत्र सूत्रगतेर्विचित्रत्वाद्बहुवचनेऽप्येकवचननिर्देश' इति, यदपि च 'किं बहुवचनोद्देशेऽप्येकवचननिर्देश. ? विचित्रत्वात्सूत्रगतेर्विपर्ययश्च भवत्येवेति कृत्वा-ऽऽह—'नासौ त्यागीत्युच्यते' इति, तदिद त्रितयमपि व्याख्यान सूत्रपूर्वापराऽननुसन्धानमूलकत्वादनुपादेयमेव, यतो द्वितीय-तृतीयगाथयोस्तात्पर्यपर्यालोचनायामेकवचनान्तप्रयोग एव सूत्रकृतोऽभिमेत इति सूचीकटाहन्यायेनापि बहुवचनान्तेष्वेवैकवचनान्तत्वकल्पन युक्तियुक्तमिति ॥

जो मनुष्य रोग आदिसे आक्रान्त होनेके कारण पराधीन है और पराधीनता (असमर्थता) के कारण वस्त्र, कस्तूरी, केशर, चन्दन, आदि गन्ध, कुण्डल, कटक आदि आभूषण, स्त्री, शय्या और 'च' शब्दसे सवारी

જે મનુષ્યો રોગાદિથી આક્રાન્ત હોવાને કારણે પરાધીન છે અને પરાધીનતા (અસમર્થતા)ને કારણે વસ્ત્ર, કસ્તૂરી, કેશર, ચદન આદિ ગધ, કુડલ, કડા આદિ આભૂષણ, સ્ત્રી, શય્યા અને ચ શબ્દથી સવારી, આસન આદિનું સેવન

ताः स्त्रियः=कामिन्यस्ताः, [1]शय्यते येषु [2]तानि शयनानि=पल्यङ्कखट्वाचतुष्कि कादीनि, [3]तानि, चकारात् यानाऽऽसनादीनि, न[4]भुञ्जते=न सेवते, सः, त्यागी त्यजति=परिमुञ्चति संसारसम्बन्धं तच्छील इति, न उच्यते=न कथ्यते, इ गाथार्थः ॥ २ ॥

कस्तर्हि त्यागी ? इति चेत्तत्राह-'जे य कंते' इत्यादि ।

मूलम्-जे य कंते पिए भोए, लद्धेवि पिट्ठिकुव्वइ ।
साहीणे चयई भोए, से हु चाइत्ति वुच्चई ॥ ३ ॥

छाया-यश्च कान्तान् प्रियान् भोगान्, लब्धानपि पृष्ठीकरोति ।
स्वाधीनस्त्यजति भोगान्, स एव त्यागी इत्युच्यते ॥ ३ ॥

सान्वयार्थ -जे य=जो लद्धेवि=प्राप्त हुएभी कंते=मनोहर पिए=अभीष्ट मन गमते भोए=भोगोंको पिट्ठिकुव्वइ=त्याग देता है (और) साहीणे=स्वतन्त्र हो हुए भोए=विषयोंको चयई=त्यागता है से=वह हु=निश्चय करके चाइत्ति "त्यागी" ऐसा वुच्चइ=कहलाता है। अर्थात् भोगोंकी प्राप्ति होनेपर भी औ

१-अधिकरणे ल्युट् । २-प्रथमान्तमिदम्। ३-द्वितीयान्तमिदम् । ४-'भुजो नवने' इत्यात्मनेपदं, सूत्रे तु प्राकृतत्वात्परस्मैपदम् ।

आसन आदिका सेवन नही करते है वे त्यागी अर्थात् संसारके सम्बन्धोंका त्याग करने वाले नही कहला सकते है, क्योंकि असार समझकर ममता छोडना-रुचि न रखना त्याग कहलाता है । रोग आदिसे ग्रसि ऊपर कहे-हुए विषयोंकी ममता नही छोडता (रुचि रखता) है इसलि वह त्यागी नहीं कहला सकता ॥२॥

त्यागी किसे कहते है ? इसपर सूत्रकार कहते है-'जे य०' इत्यादि

કરતા નથી તેઓ ત્યાગી અર્થાત્ સંસારના સંબંધોનો ત્યાગ કરવાવાળા ન કહેવાઇ શકતા કારણ કે અસાર સમજીને મમતા છોડવી-રૂચિ ન રાખવી એ ત્યાગ કહેવાય છે રોગાદિથી ત્રસિત મનુષ્યો ઉપર કહેલા વિષયોની મમતા છોડ નથી, તેથી તેઓ ત્યાગી કહેવાતા નથી (૨)

ત્યાગી કોને કહે છે ? એ વિષે સૂત્રકાર કહે છે-જે ય૦ ઈત્યાદિ

भोगनेकी स्वतन्त्रता रहते हुए भी जो भोगोंको नहीं भोगता वह सच्चा त्यागी है। गाथामें "वि" शब्द आया है उससे यह प्रगट होता है कि यदि किसीको अमुक समयमें मनोहर और प्रिय भोग न भी उपलब्ध हो तथापि उसकी इच्छा कदापि भोगनेकी न हो तो भी वह त्यागी ही है ॥ ३ ॥

टीका-'च' शब्दः पूर्वगाथोक्तार्थनिवारकत्वेन 'तु'-शब्दार्थेऽवधारणार्थे वा, 'खलु'-शब्दोऽवधारणार्थे, तथा चायमर्थः-यस्तु लब्धान्=प्राप्तानपि कान्तान्=कमनीयान् (मनोहरान) प्रियान्=अभिलषितान्, भोगान्=शब्दादीन् पृष्ठीकरोति=पृष्ठशब्दस्य तत्स्थे लक्षणया अपृष्ठस्थान् पृष्ठस्थान् करोति=दूरतः परिहरतीत्यर्थः, ततो विमुखीभवतीति यावत्। एव तु रोगाद्यवस्थायामपि सभवतीत्यत' स्पष्टयति-स्वाधीनः=रोगाद्यनभिभूतचित्तः सन् भोगान्=पूर्वोक्तलक्षणान् शब्दादीन्, पुनर्भोगग्रहण 'छिन्नबद्ध सुबद्ध भवती'-ति न्यायात्साकल्येन भोगत्वावच्छिन्नपरिग्रहार्थम्, त्यजति=मुञ्चति, स खलु=स एव त्यागीति उच्यते=कथ्यते, न तु पराधीन इति गाथार्थः ॥ ३ ॥

उक्तविधस्यापि साधोः सयममार्गे विहरतः कदाचिद् विषयस्मरणेन प्रस्खलितचित्तता मामसाद्क्षीदिति तदुपाय दर्शयति-"समाए०" इति।

जो महापुरुष पूर्वपुण्यके उदयसे प्राप्त हुए मनोहर और इष्ट शब्दादि विषयोंको विविध-वैराग्य-भावना भाकर त्याग देते हैं-उनसे विमुख हो जाते हैं और रोग आदिसे पीडित न होनेके कारण स्वाधीन (समर्थ) होते हुए भी विविध-वैराग्य-भावना भाकर समस्त भोगोंको त्याग देते हैं वेही त्यागी कहलाते हैं ॥३॥

सयम मार्गमें विहार करते हुए त्यागी मुनिका मन, स्त्री आदिको देखनेसे कदाचित् विचलित (डावाडोल) हो जाय तो उसको रोकने के लिए उपाय बतलाते हैं-'समाए०' इत्यादि ।

જે મહાપુરૂષો પૂર્વપુણ્યના ઉદયથી પ્રાપ્ત થએલા મનોહર અને ઇષ્ટ શબ્દાદિ વિષયોને વિવિધ-વૈરાગ્ય-ભાવના ભાવીને ત્યજી દે છે-તેનાથી વિમુખ બની જાય છે, અને રોગાદિથી પીડિત ન હોવાને કારણે સ્વાધીન (સમર્થ) હોવા છતા પણ વિવિધ-વૈરાગ્ય-ભાવના ભાવીને બધા ભોગોને ત્યજી દે છે, તેઓ જ ત્યાગી કહેવાય છે (૩)

સયમ-માર્ગમા વિહાર કરતા ત્યાગી મુનિનુ મન, સ્ત્રી આદિને જોવાથી જો વિચલિત (ડામાડોળ) થઇ જાય તો તેને રોકવાને માટે ઉપાય બતાવે છે-'समाए०' ઇત્યાદિ

मूलम्-समाए[1] पेहाए[2] परिव्वयतो[3], सिया[5] मणो[4] निस्सरई[7] बहिद्धा[6] ।
न[10] सा[9] महं[8] नोवि[13] अहंवि[12] तीसे[11], इच्चेव[14] ताओ[15] विणइज्ज[17] राग[16] ॥४॥

छाया-समया प्रेक्षया परिव्रजतः, स्यान्मनो निःसरति बहिः ।
न सा मम नो अपि अहमपि तस्याः, इत्येव तस्या विनयेत रागम् ॥४॥

सान्वयार्थः-समाए=सम पेहाए=भावनासे परिव्वयतो=संयममार्गमें विचरते हुए साधुका मणो=मन सिया=कदाचित्-कभी बहिद्धा=संयमगृहसे बाहर निस्सरई=निकल जाय तो "सा=वह स्त्री महं=मेरी न=नहीं है अवि=और अहंवि=मैं भी तीसे=उस स्त्रीका नो=नहीं हूँ" इच्चेव=इस प्रकार ताओ=उस स्त्रीसे राग=रागको विणइज्ज=दूर करे ॥ ४ ॥

टीका---समया=रागद्वेषपरिणतिरिक्तया स्वतुल्यया, प्रेक्षया=प्रेक्षतेऽनयेति करणव्युत्पत्तिबलाद् दृष्ट्या, परिव्रजतः=विहरतः मोक्षरूपश्रामण्ये स्थितस्येत्यर्थः मनः=हृदयं, स्यात्=कदाचित् मोहनीयकर्मप्रकृत्युदयवशाद् भुक्तभोगतया पूर्वकृतरत्यादिस्मरणेन तदन्यथात्वे विषयसेवनवाञ्छया वा, बहिः=संयमयोगाद्बाह्ये विषयादौ निःसरति=निर्गच्छति, अथ किं कर्तव्य ? तदाह 'न सा' इति, सा=परिचिन्त्यमाना स्त्री न मम, अपि=च अहमपि तस्याः=परिचिन्त्यमानाया

रागद्वेषरहित-समतापूर्वक विचरते हुए श्रामण्यमें स्थित मुनिका मन स्त्री आदिको देखने पर मोहनीय कर्मके उदयसे कदाचित् पहले भोगे हुए भोगोंका स्मरण होजानेसे, अथवा विषयसेवनकी इच्छा होनेसे संयमरूपी घरसे बाहर निकल जाय तो उस समय साधुको विचारना चाहिए कि-मैं जिसकी अभिलाषा करता हूँ, वह स्त्री न मेरी है और न

રાગદ્વેષ રહિત સમતાપૂર્વક વિચરતા શ્રામણ્યમાં સ્થિત મુનિનું મન સ્ત્રી આદિને દેખતાં મોહનીય કર્મના ઉદયથી કદાચિત પહેલાં ભોગવેલા ભોગોનું સ્મરણ થઇ જવાથી, અથવા વિષય સેવનની ઇચ્છા થવાથી સંયમરૂપી ઘરની બહાર નીકળી જાય તો તે સમયે સાધુએ વિચારવું જોઇએ કે હું જેની અભિલાષા કરું છું તે સ્ત્રી નથી મારી કે નથી હું તેનો એવો વિચાર કરીને એ સ્ત્રી પ્રત્યેના

स्त्रियाः न, इत्येवम्=अनया रीत्या, तस्याः=अभिलष्यमाणायाः स्त्रियास्तत्सम्बन्धिनमित्यर्थः, रागम्=दुरभिलाप, विनयेत्=दूरीकुर्यात् ।

वनिताविषये प्रसृत मनस्तदीयरागसबन्धिबहुतरदोषानुचिन्तनेन ततो निवर्तयन् मुनिः समा प्रेक्षामवलम्ब्य वनितादर्शनात् प्रागिव रागशून्यो भवेदिति भावः । दोषानुचिन्तन यथा-"रे चित्त ! चारित्रस्य प्राणभूत ब्रह्मचर्यं यावज्जीवनमनुपालयितु कृतप्रतिज्ञस्य तव स्वकृतप्रतिज्ञापरित्यागोद्यमे कुतो न लज्जासमुद्भव' ? । यदा ससारदावदहनपरितप्तस्य तव कोऽपि लोके शरण नाभूत् तदा यानेव विषयान् परित्यज्य जिनेन्द्रप्रतिपादित चारित्रधर्मं शिरसाऽङ्गीकृत्य त्वया

में उसका हूँ। ऐसा विचार करके उस स्त्रीके विषयका राग-भाव दूर करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि-स्त्रीके विषयमें मनकी प्रवृत्ति होनेसे चारित्रकी मलिनता आदि बहुतेरे दोष उत्पन्न होते हैं। उन दोषोका विचार करके मुनि अपने मनको उस तरफसे हटाता हुआ समप्रेक्षाका अवलम्बन करके उसीप्रकार रागरहित होजावे जिस प्रकार स्त्रीको देखनेके पहले था।

दोषोंका विचार इसप्रकार करे-रे मन ! चारित्रके प्राणोंके समान ब्रह्मचर्यको यावत्जीवन पालन करनेकी तूने प्रतिज्ञा की है, पहले की हुई प्रतिज्ञाका अब परित्याग करते तुझे लज्जा नही आती ? जिस समय तू ससाररूपी तीव्र दावाग्निसे सतप्त हुआ और लोकमें कोईभी तुझे न बचा सका उस समय जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्ररूपित चारित्र धर्मको तूने

વિષયનો રાગભાવ દૂર કરવો જોઈએ તાત્પર્ય એ છે કે—સ્રીના વિષયમા મનની પ્રવૃત્તિ થવાથી ચારિત્રની મલિનતા આદિ અનેક દોષ ઉત્પન્ન થાય છે એ દોષોનો વિચાર કરીને મુનિ પોતાના મનને તે તરફથી પાછુ હઠાવતા સમપ્રેક્ષાનુ અવલબન કરીને એવો રાગરહિત થઈ જાય કે જેવો તે સ્રીને દેખતા પહેલા હતો

દોષોનો વિચાર આ પ્રમાણે કરે-હે મન ! ચારિત્રના પ્રાણ સમાન બ્રહ્મચર્યને જીવનપર્યંત પાળવાની તે પ્રતિજ્ઞા કરી છે પહેલા કરેલી પ્રતિજ્ઞાનો હવે પરિત્યાગ કરતા તને શરમ નથી આવતી ? જે સમયે તુ સસારરૂપી તીવ્ર દાવાનળથી સતપ્ત થયો અને લોકમા કોઈ પણ તને બચાવી ન શકયુ, તે સમયે જીનેન્દ્ર ભગવાને પરૂપેલા ચારિત્ર ધર્મને તે સ્વીકાર કર્યો અને જે હેય વિષયોથી

निरस्तः सकलः सन्तापः, किमिदानीं पुनर्वान्ताचलेढी श्वेव भवसागनुसरद् विरम रस्यात्मानम् ? ।

अरे ! विस्मृतः किं ब्रह्मचर्यमहिमा ? यत्प्रभावेणाऽल्पीयसैव कालेन लोकपूजितैरपि सुरासुरमनुजेन्द्रैः पूज्यमानमसि पुनः किं तदेव विस्मरसि ? । इदमप्यनुचिन्तय—

" चिरायुष' सुसंस्थाना, दृढसंहनना नराः ।
तेजस्विनो महावीर्या, भवेयुर्ब्रह्मचर्यतः ॥ १ ॥ " इति ।

अपिच अनवाप्तपरमार्थतत्त्वास्वादनसुखानां संसाराभिनन्दिनां विषयामिषोपभोगसुखकामुकानामविवेकिनामेव कामिनी कमनीया भवतु नाम, परन्तु एत-

स्वीकार किया और जिन हेय विषयोंसे मुख मोड़कर सकल जंजाल छोड दिये उन्ही विषयोंको वमनचाटनेवाले श्वानके समान फिर स्वीकार करना चाहता है ? ऐ अधम मन ! अपने स्वरूपका विचार कर ।

अरे मन ! देख,ब्रह्मचर्यकी महिमासे ही लोकमें पूजे जानेवाले सुरेन्द्र असुरेन्द्र और नरेन्द्रोंके द्वारा तू पूज्य समाननीय हुआ है, ऐसे अमितमहिमावाले ब्रह्मचर्यको भी तू क्यों भूल गया है ? कहा भी है—

"ब्रह्मचर्यसे दीर्घ आयु, सुन्दर आकार, और दृढ संहनन प्राप्त होते हैं, ब्रह्मचर्यसे ही मनुष्य, तेजस्वी और महाशक्तिशाली होते हैं" ॥१॥

हे जीव ! किंपाकफल सरीखे विषयभोग सुगन्ध, सुरूप, सुशब्द, और सुस्पर्श अविवेकी जीवोंको भलेही मनोहर लगें, पर तूतो

વિમુખ થઇને બધી જ જાળને છોડી દીધી, તેજ વિષયોનો વમનચાટનારા શ્વાનની પેઠે ફરીથી તુ સ્વીકાર કરવા ચાહે છે ? હે અધમ મન ! તારા પોતાના સ્વરૂપનો તુ વિચાર કર

અરે મન ! જો, બ્રહ્મચર્યના મહિમાથી જ, લોકમા પુજાતા સુરેન્દ્ર અસુરેન્દ્ર અને નરેન્દ્રોની દ્વારા તુ પૂજ્ય સમાનનીય થયો છે, એવા અપારમહિમાવાળા બ્રહ્મચર્યને પણ તુ કેમ ભૂલી ગયો છે ? કહ્યુ પણ છે—

" બ્રહ્મચર્યથી દીર્ઘ આયુષ્ય, સુદર આકાર, અને દૃઢ સહનન પ્રાપ્ત થાય છે બ્રહ્મચર્યથી જ મનુષ્ય તેજસ્વી અને મહાશક્તિશાલી થાય છે " (૧)

હે જીવ ! કિંપાકફળ જેવા વિષયભોગ, સુદર, સુરૂપ, સુશબ્દ અને સુસ્પર્શ અવિવેકી જીવોને ભલે મનોહર લાગે, પરન્તુ તુ તો સયમીઓમા શ્રેષ્ઠ બનવા

दीयानुरागपरिणामदारुणता विस्मरतस्तत्रापि किं सयताग्रगणनीयताऽभिलापो नोपहासाय जायेत ? ।

अरे मूढ ! अस्याः खलु विलासकलाकलापवैदुष्य विलोक्य लुब्धकप्रसारितजाले कुरङ्ग इव, मार्गवर्तिनि गर्ते तुरङ्ग इव, ज्वलति प्रदीपे पतङ्ग इव किमात्मान निरये निपातयसि ? ।

अहो ! अयोमयशृङ्खलामप्यतिशयति रागपाशः, यत् खलु मधुपः कठिनतरकाष्ठकृन्तनदक्षोऽपि न क्षमो भवति सकुचितकमलपुष्पानुरागनिबद्धमात्मान परित्रातुम् ।

सयमियोंमें श्रेष्ठ बनना चाहता है फिर इनमें अनुराग करनेसे जो भयकर फल उत्पन्न होते हैं उन्हें क्यों भूल जाता है? इससे तेरी वह उच्च अभिलाषा क्या हास्यास्पद नहीं होगी? अवश्य होगी।

अरे मूढ ! जैसे व्याध (शिकारी) के फैलाए हुए जालमें कुरग (हरिन) फस जाता है, रास्तेके गड्ढेमे तुरग गिर जाता है, जलते हुए दीपककी ज्वालामें पतग गिर पडता है वैसेही स्त्रीके हास विलास और हाव-भावकी चतुराई देखकर क्यों अपनी आत्माको नरकमें गिराता है?

अहो ! इस रागके बन्धनके आगे लोहेकी बेडीभी तुच्छ है, देखो, भौंरा कठिनसे कठिन काष्ठको काट डालनेमें कुशल होता है परन्तु सूर्यके अस्त होजाने पर सकुचित कमल पुष्पके अनुरागके बन्धनमें बधी

ઇચ્છે છે, તો પછી એમા અનુરાગ કરવાથી જે ભયકર ફળ ઉત્પન્ન થાય છે તેને કેમ ભૂલી જાય છે? તેથી તારી એ ઉચ્ચ અભિલાષા શુ હાસ્યાસ્પદ નહિ થાય ? અવશ્ય થશે

અરે મૂઢ ! જેમ વ્યાધે (શિકારીએ) ફેલાવેલી જાળમા કુરગ (હરણ) ફસાઈ જાય છે રસ્તામાના ખાડામા તુરગ (ઘોડો) પડી જાય છે, બળતા દીવાની જવાળામા પતગ હોમાઈ જાય છે, તેમ સ્ત્રીના હાસ્યવિલાસ અને હાવભાવની ચતુરાઈ જોઈને કેમ તારા આત્માને નરકમા પાડે છે?

અહો ! આ રાગના બધનની આગળ લોઢાની બેડી પણ તુચ્છ છે જુઓ ! ભમરો કઠિનમા કઠિન કાષ્ઠને કાપી નાખવામા કુશળ હોય છે પરન્તુ સૂર્યનો અસ્ત થતાની સાથે જ બીડાયલા કમળ પુષ્પના અનુરાગના બધનમા બધાયેલો

इह बाह्यरमणीयतास्पदे, नितान्ताशुचिपदे, चपलावत्प्रतिपल्चपल्रूपलावण्ये, योषिदपघने किमिह नाम शोभनं निरीक्ष्यते, यद् बालविधुलेखेव, अमृतावयवनिर्मितेव, चन्द्रमण्डलादुद्भूतेव, इय नीलकमलदलायताक्षी [1]सहासनयनाभ्यां जीवलोकमाश्वासयन्तीव कमनीया निरीक्ष्यते ।

१ स्त्रीचेष्टाविशेषो हासस्तेन सहिते=सहासे ते च ते नयने च=सहासनयने ताभ्यामित्यर्थः ।

हुई अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं [1]होता। इसलिए हे मन! ऐसे रागमें फँसनेकी इच्छा क्यों कर रहा है?

ऐ जीव! ऊपर-ऊपरसे मनोहर मालूम होनेवाले, अत्यन्त अपवित्रताके स्थान, चपला (बिजली) की नाई पल-पलमें चपल रूप-लावण्यवाले, स्त्रीके शरीरमें तुझे क्या अच्छापन दिखाई देता है? जिससे तू उसे यह समझ रहा है कि-मानो वह द्वितीयाके चद्रमाकी कला है, अमृतके अवयवोंसे बनी हुई है, चन्द्रमाको फाड़कर निकल पडी है, नीलकमलके दल (पत्ता) के समान विशाल नेत्रवाली, तथा लीलायुक्त लोचनोंसे लोकको अवलम्बन देनेवाली मनोहर दीख पडती है।

१ सूर्य डूबने बाद, कमलके भीतर पडा हुआ भौंरा, तकलीफ सहकर सारी रात बिताता है किन्तु अनुराग (प्रीति) के कारण, कमलके कोमल (मोलायम) पत्तोंको भी काटकर उस तकलीफको रफा करनेका साहस नहीं कर सकता ॥

પોતાના આત્માની રક્ષા કરવામા સમર્થ નથી બનતો[1]? તો હે મન! એવા રાગમા ફસાવાની ઇચ્છા કેમ કરી રહ્યો છે?

હે જીવ! ઉપર ઉપરથી મનોહર માલુમ પડતા, અત્યંત અપવિત્રતાનું સ્થાન વિજળીની પેઠે પલ-પલમા ચપળ રૂપ-લાવણ્યવાળા સ્ત્રીના શરીરમા તને કંઈ સુંદરતા દેખાય છે? કે જેથી તુ તેને માની રહ્યો છે કે- આ બીજના ચંદ્રમાની કલા છે અમૃતના અવયવોથી બનેલી છે, ચંદ્રમાને ફાડીને નીકળી પડી છે, નીલ કમળના દળ (પાદડીઓ)ની સમાન વિશાળ નેત્રવાળી તથા લીલાયુક્ત લોચનોથી લોકને અવલંબન આપનારી મનોહર દેખાય છે

૧ સૂર્ય અસ્ત પામ્યા પછી કમળની અંદર ગોંધાઈ ગએલો ભમરો તકલીફ સહન કરીને આખી રાત વીતાવે છે, પરન્તુ અનુરાગ (પ્રીતિ) ને કારણે કમળની કોમળ (મુલાયમ) પાંદડાઓને કાપી નાખીને એ તકલીફ દૂર કરવાનુ સાહસ નથી કરી શકતો

अनालोच्य प्रवर्तमानः खलु पराभूयते, तस्मादियदपि तावद् विभावय विलासिनीविलसन कुतः स्थानादिदमुद्भवति? किं चास्य कारणम्? कथमिदं तिष्ठति? किमेतस्मान्निःसरत् सतत दरीदृश्यते? इति,

विरम विरमात्रानुरागकरणात्, अस्य हि शरीरस्य मूत्राद्युपहतमुद्भवस्थानम्, शुक्रशोणिते एव कारणम्, अशितपीतादिना च स्थितिः, एतस्मान्निःसरीसर्ति च मलमूत्रकफादिकमेव, किं बहुना मृदुतममनोरमवसनविनिर्मितया मलमूत्रास्थि-

हे आत्मन्! स्मरण रख, जो विना विचारे किसी विषयमें प्रवृत्ति करता है उसकी बडी दुर्गति होती है। तू अपना कल्याण चाहता है तो विलासिनियोंके विलासका अच्छीतरह विचार करले। यह सोच देख कि यह शरीर कहांसे उत्पन्न होता है? इसका क्या कारण है? कैसे ठहरता है? और इससे क्या? घिनौने (घृणाजनक) पदार्थ निकलते हुए दिखाई देते हैं?

बस कर, रहेनेदे, इस शरीरमें अनुराग मत कर, मलमूत्रसे भरे हुए स्थानसे यह शरीर उत्पन्न हुआ है, रज-वीर्य इसके कारण हैं, खाया पीया भोजन इसकी स्थितिका निमित्त है, और इसके नौ द्वारोंसे मल-मूत्र आदि घृणित पदार्थ निकला करते हैं, अधिक क्या कहें? कोमल और मनोहर कपडेसे बधी-हुई मल-मूत्रकी गठरीमें पामर प्राणीभी अनुराग नहीं करता, फिर अशुचि आदि भावनाओंका समीचीन

હે આત્મન્! યાદ કર કે, જે વિના વિચારે કોઇ વિષયમા પ્રવૃત્તિ કરે છે તેની ભારે દુર્ગતિ થાય છે તુ પોતાના કલ્યાણને ચાહે છે તો વિલાસિનીઓના વિલાસને સારી પેઠે વિચાર કરી લે એટલુ વિચારી જો કે આ શરીર કયાથી ઉત્પન્ન થયુ છે? એનું શુ કારણ છે? તે કેવી રીતે ટકે છે? અને એમાથી કેવા કેવા ગધાતા (ઘૃણાજનક) પદાર્થો નીકળતા જોવામા આવે છે?

બસ કર, રહેવા દે, આ શરીરમા અનુરાગ ન કર, મળમૂત્રથી ભરેલા સ્થાનમાથી આ શરીર ઉત્પન્ન થયુ છે, રજ-વીર્ય એનું કારણ છે, ખાધેલુ-પીધેલુ ભોજન, એની સ્થિતિનુ નિમિત્ત છે, અને તેના નવ દ્વારો વાટે મળ-મૂત્ર આદિ ઘૃણિત પદાર્થો નીકળ્યા કરે છે વધારે શુ કહીએ? કોમળ અને મનોહર કપડાથી બાધેલી મળમૂત્રની ગાસડીમા પામર પ્રાણી પણ અનુરાગ નથી કરતો, તો પછી અશુચિ આદિ ભાવનાઓનું સમીચીન ચિંતન કરવામા ચતુર મુનિઓની તો

कफादिपोट्टलिकया न पामरोऽपि रज्यते, का कथा पुनर्भावनाकुशलानां मुनीनाम्।
उक्तश्च—" अम्भःकुम्भशतैरपूर्ननु यदिमुग्धाः ! शुचित्व क्रियत्,-
काल लम्भयथोत्तम परिमल कस्तूरिकाद्यैस्तथा ।
विष्ठाकोष्ठकमेतदङ्गकमहो ! मध्ये तु शौच कथ,-
ङ्कार नेष्यथ सूचयिष्यथ कथङ्कार च तत्सौरभम् " ॥ १ ॥
अन्यच्च–" विरम विरम सङ्गान्मुञ्च मुञ्च प्रपञ्च,
विसृज विसृज मोह विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्।
कलय कलय वृत्त पश्य पश्य स्वरूप,
कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्दहेतोः ॥ २ ॥ इति, "

चिन्तन करनेमें चतुर मुनियोंका कहना ही क्या है ? वे तो उस ओर आखभी नहीं उठाते। कहा भी है—

"शरीरको सैकडों घडोंसे चाहे जितना नहलाओ धुलाओ, और केशर कस्तूरी गुलाब आदिकी सुगन्धसे सुगन्धित करो, परन्तु यह शरीर तो मल-मूत्रका भाजन है। हे भव्यो! इसे कैसे पवित्र बनाओगे? और कैसे इसकी सुगन्धि फैलाओगे" ॥१॥

"हे आत्मन् ! तू स्त्री आदिकी ममतासे विरक्त हो विरक्त हो, मोहका त्यागकर त्यागकर, आत्माके स्वरूपको पहचान पहचान, और मोक्षसुखके लिए पुरुषार्थ कर पुरुषार्थ कर[1]" ॥२॥

---

१ यहां प्रत्येक कर्त्तव्यको दुहरानेसे अत्यन्त तीव्र प्रेरणा प्रगट होती है।

શી વાત ? તેઓ તો તેની તરફ ઉંચી આંખે જોતા પણ નથી કહ્યું છે કે—

"શરીરને સેંકડો ઘડા પાણીથી ચાહે તેટલું ન્હવરાવો, ધુઓ, અને કેશર કસ્તૂરી ગુલાબ આદિની સુગંધથી સુગંધિત કરો, પરંતુ આ શરીર તો મળ-મૂત્રનું ભાજન છે હે ભવ્યો ! તેને કેવી રીતે પવિત્ર બનાવશો ! અને કેવી રીતે તેના પરાગ (ફોરમ)ને ફેલાવશો ?" (૧)

"હે આત્મન્ ! તું સ્ત્રીઆદિની મમતાથી વિરક્ત થા વિરક્ત થા, મોહનો ત્યાગ કર ત્યાગ કર, આત્માના સ્વરૂપને જાણ જાણ, ચારિત્રનો અભ્યાસ કર અભ્યાસ કર, પોતાને પિછાણ પિછાણ, અને મોક્ષ સુખને માટે પુરૂષાર્થ કર પુરૂષાર્થ કર[1]" (૨)

---

૧ અહીં પ્રત્યેક કર્તવ્યને બેવડાવવાથી અત્યંત તીવ્ર પ્રેરણા પ્રકટ થાય છે.

अपरञ्च—" अमेध्यपूर्णे कृमिजालसङ्कुले, स्वभावदुर्गन्धविनिन्दितान्तरे ।
कलेवरे मूत्रपुरीपभाविते, रमन्ति मूढा विरमन्ति धीराः ॥३॥ " इति ।

यद्यपि ससारभीरुभिः परिहेयोऽन्यसङ्गो दुस्त्यजः, तथापि ब्रह्मचर्यमहिमानमनुस्मरता मुनीना केवल स्त्रीसङ्गपरिहारेण द्रव्यादिसङ्गः स्वयमेव निवर्तते । यथा स्वयम्भूरमणमहासागरमुत्तीर्णस्य पुरतः क्षुद्राकृतिर्गङ्गासमानाऽपि नदी सुखसमुत्तरणीया भवति । उक्तञ्च भगवता उत्तराध्ययनसूत्रस्य द्वात्रिंशेऽध्ययने—

" एए य सगे समइकमित्ता, सुहुत्तरा चेव हवति सेसा ।
जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गगासमाणा ॥ १ ॥ " इति ,

" अशुचि पदार्थोंसे भरा हुआ, जूँ आदि कीडोंसे व्याप्त, स्वाभाविक दुर्गन्धके कारण भीतर भी घृणित और मल-मूत्रसे वेष्टित (स्त्रियोंके) शरीरमें रमण वे करते हैं जो मूढ हैं, और बुद्धिमान् पुरुष महान् निकृष्ट समझ कर उससे अलग रहते हैं ॥ ३ ॥ "

यद्यपि विषयोंके सग ससारभीरु पुरुषोंके लिए त्याज्य है और उनका त्याग होना कठिन है, तथापि ब्रह्मचर्यकी महिमाका स्मरण करनेवाले मुनियोंको एक मात्र स्त्रीसगके त्याग देनेसे अन्य विषयोंके सग दुस्त्यज होनेपर भी स्वयमेव निवृत्त हो जाते है । अर्थात् ब्रह्मचर्यमें दृढ रहनेवालों पर कोई भी विषय, अपना प्रभाव नही डाल सकता । जो पुरुष स्वयम्भूरमण महासमुद्रको पार कर चुका है उसके लिए गगा जैसी छोटीर नदिया पार करना क्या बडी बात है ?। भगवान्ने उत्तरा ययन

" અશુદ્ધ પદાર્થોથી ભરેલા, જુ-આદિ કીડાઓથી વ્યાપ્ત, સ્વાભાવિક દુર્ગંધિને કારણે અ દર પણ ઘૃણિત અને મળ-મૂત્રથી વેષ્ટિત (સ્રીઓના) શરીરમા તેઓ રમણ કરે છે કે જેઓ મૂઢ છે, અને બુદ્ધિમાન પુરૂષ તો તેને અત્ય ત નિકૃષ્ટ સમજીને તેનાથી અલગ રહે છે" (૩)

જો કે વિષયોના સગ સસારભીરૂ પુરૂષોને માટે ત્યાજ્ય છે અને તેનો ત્યાગ થવો કઠિન છે, તોપણ બ્રહ્મચર્યના મહિમાનું સ્મરણ કરનારા મુનિઓને એક માત્ર સ્રીસગનો ત્યાગ કરવાથી, અન્ય વિષયોના સગ દુસ્ત્યજ હોવા છતા પણ આપોઆપ નિવૃત્ત થઇ જાય છે અર્થાત્ બ્રહ્મચર્યમા દઢ રહેનારાઓ પર કોઇ પણ વિષય પોતાનો પ્રભાવ પાડી શકતો નથી જે પુરૂષ સ્વયમ્ભૂરમણ મહાસમુદ્રને પાર કરી ચૂકયો છે તેને માટે ગ ગા જેવી નાની નાની નદીઓ પાર કરવામા શી મોટી વાત છે ? ભગવાને પણ ઉત્તરાધ્યયન-સૂત્રના ૩૨ મા અધ્યયનમા

कफादिपोट्टलिकया न पामरोऽपि रज्यते, का कथा पुनर्भावनाकुशलाना मुनीनाम्।
उक्तञ्च—" अम्भःकुम्भशतैरपूर्णनु यदिम्रुग्गाः ! शुचित्र क्रियत् ,-
काल लम्भयथोत्तम परिमल कस्तूरिकाद्यैस्तथा ।
विष्ठाकोष्ठकमेतदङ्गकमहो ! मन्ये तु शौच कथ,-
ङ्कार नेष्यथ सूचयिष्यथ कथङ्कार च तत्सौरभम् " ॥ १ ॥
अन्यच्च–" विरम विरम सगान्मुञ्च मुञ्च प्रपञ्च,
विसृज विसृज मोह विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम्।
कलय कलय वृत्त पश्य पश्य स्वरूप,
कुरु कुरु पुरुपार्थं निर्वृतानन्दहेतोः ॥ २ ॥ इति, "

चिन्तन करनेमें चतुर मुनियोंका कहना ही क्या है ? वे तो उस ओर आखभी नहीं उठाते। कहा भी है—

"शरीरको सैकड़ों घड़ोंसे चाहे जितना नहलाओ धुलाओ, और केशर कस्तूरी गुलाब आदिकी सुगन्धसे सुगन्धित करो, परन्तु यह शरीर तो मल-मूत्रका भाजन है। हे भव्यो! इसे कैसे पवित्र बनाओगे? और कैसे इसकी सुगन्धि फैलाओगे " ॥१॥

"हे आत्मन्! तू स्त्री आदिकी ममतासे विरक्त हो विरक्त हो, मोहका त्यागकर त्यागकर, आत्माके स्वरूपको पहचान पहचान, और मोक्षसुखके लिए पुरुपार्थ कर पुरुपार्थ कर[1] " ॥२॥

---

१ यहा प्रत्येक कर्त्तव्यको दुहरानेसे अत्यन्त तीव्र प्रेरणा प्रगट होती है।

શી વાત? તેઓ તો તની તરફ ઉંચી આંખે જોતા પણ નથી કહ્યુ છે કે—

"શરીરને સેકડો ઘડા પાણીથી ચાહે તેટલુ ન્હવરાવો, ધુઓ, અને કેશર કસ્તૂરી ગુલાબ આદિની સુગધથી સુગધિત કરો, પરતુ આ શરીર તો મળ-મૂત્રનુ ભાજન છે હે ભવ્યો! તેને કેવી રીતે પવિત્ર બનાવશો ! અને કેવી રીતે તેના પરાગ (ફોરમ)ને ફેલાવશો ? " (૧)

"હે આત્મન્! તુ સ્ત્રીઆદિની મમતાથી વિરક્ત થા વિરક્ત થા, મોહનો ત્યાગ કર ત્યાગ કર, આત્માના સ્વરૂપને જાણુ જાણુ, ચારિત્રનો અભ્યાસ કર અભ્યાસ કર, પોતાને પિછાણ પિછાણુ, અને મોક્ષ સુખને માટે પુરૂષાર્થ કર પુરૂષાર્થ કર[1] " (૨)

---

૧ અહીં પ્રત્યેક કર્તવ્યને બેવડાવવાથી અત્યત તીવ્ર પ્રેરણા પ્રકટ થાય છે

दोषा विविधशस्त्रास्त्रधारिणः प्रबलशत्रव इव समुत्तिष्ठन्ति। तत्रादावार्त्तरौद्रध्यानं हृदये पदमारोपयति, तस्मिंश्च विद्यमाने प्रमादः साहस-मज्ञान-मधर्मो-ऽसिद्धिस्तथा-ऽन्येऽपि दोषाः समायान्ति। अब्रह्मचर्यस्य सकलप्रमादस्थानत्वेन प्रमादः, अविचारितकार्यकरणबुद्धिसमुत्पादकत्वेन साहसं, बोधिबीजविनाशकत्वेन अज्ञानम्, अधोगतिकारकत्वेन अधर्मः, अष्टविधकर्मजनकत्वेन असिद्धिश्च, एते दोषाश्चेतोगृहे संयमरत्नापहाराय यथेच्छमाशु प्रविशन्ति।

किञ्च—विषयरागः, सकलपापानां निदानम्, कुठार इव चारित्रतरुं छिनत्ति,

दोष इस प्रकार आ खडे होते हैं मानों अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रबल शत्रु आ डटे हों। पहले पहल तो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान हृदयमें स्थान पा लेते हैं। इनके स्थान पाते ही प्रमाद, साहस, अज्ञान, अधर्म, असिद्धि आदि अनेक दोष उपस्थित होते हैं।

अब्रह्मचारीको प्रमादके सब कारण मौजूद रहते हैं इसलिए प्रमाद, बिना विचारे कार्य करनेसे साहस, बोधि-रूपी बीजका विनाशक होनेसे अज्ञान, अधोगतिमें लेजानेके कारण अधर्म, और आठों कर्मोंका जनक होनेसे असिद्धि, और इस प्रकारके अनेक दोष शत्रुकी तरह चित्तरूपी घरमें संयमरूपी रत्नको लूटनेके लिए इच्छानुसार प्रवेश कर जाते हैं।

विषयराग सकल पापोंका मूल कारण है, चारित्र-वृक्षको, काटनेके लिए कुठार है, जिस प्रकार कज्जल, सफेद वस्त्रको मलिन कर देता

ખડા થાય છે, જાણે કે અનેક અસ્ત્ર શસ્ત્ર લઈને પ્રબળ શત્રુઓ આવી પહોંચ્યા હોય પહેલા તો આર્ત્ત-ધ્યાન અને રૌદ્ર-ધ્યાન હૃદયમા સ્થાન જમાવી લે છે તેને સ્થાન મળતા જ પ્રમાદ, સાહસ, અજ્ઞાન, અધર્મ, અસિદ્ધિ આદિ અને દોષો આવી ઊભા રહે છે

અબ્રહ્મચારીની સમીપે પ્રમાદના બધા કારણો હાજર રહે છે એથી પ્રમાદ, વગર વિચારે કાર્ય કરવાથી સાહસ, બોધિરૂપી બીજનું વિનાશક હોવાથી અજ્ઞાન, અધોગતિમા લઇ જવાને કારણે અધર્મ, અને આઠે કર્મોનું જનક હોવાથી અસિદ્ધિ અને એવા જ બીજા અનેક દોષો શત્રુની પેઠે ચિત્તરૂપી ઘરમા સયમ રૂપી રત્નને લૂટી લેવાને ઇચ્છાનુસાર પ્રવેશ કરે છે

[illegible] છે, ચારિત્ર વૃક્ષને કાપનારો કોહાડો છે

इय दृष्टिविषा नागीव सन्दर्शनादेव संयमिनां संयमलक्षणं जीवनं विनिहन्ति।

अथवा किमियं प्रगाढान्धकारा रजनी ? यत्रोलूका इव चत्वारः कषाया विचरन्ति, अज्ञानपिशाचश्चात्र चारित्रलक्षणगुणशरीरग्रसनाय जागरूको लक्ष्यते।

हे चित्त-सहचर ! ज्ञानप्रकाशेन रागान्धकारमपनीय रात्रिकृतोपसर्गं निवारयता भवता मदीयसाहाय्यं क्रियताम्।

अपि चेदं भावनीयम्–मुनीनां कृते ब्रह्मचर्यपरित्यागो महाऽनर्थंकरः, तथा हि ब्रह्मचर्यपरित्यागेच्छायामपि सत्यां बहवो

सूत्रके ३२ वें अध्ययनमें 'एए य संगे' इस गाथासे यही प्रतिपादन किया है ॥

जैसे जिस नागिनकी दृष्टिमें विष होता है उसके देखनेसे ही जीवनका अन्त होजाता है, इसी प्रकार स्त्रीके भी सानुराग देखनेसे चारित्र-रूपी जीवन नष्ट हो जाता है।

अथवा यह कैसी प्रगाढ़ अन्धकारमय रजनी है, जिसमें चारों कषाय-रूपी उल्लुओंका राज्य है, और चारित्र-रूपी शरीरको निगलनेके लिए अज्ञानरूपी पिशाच सदा ताकता रहता है। हे मित्र मन ! ज्ञानके प्रकाशसे रागरूपी अन्धकारको निवारण कर, स्त्रीरूपी रात्रि द्वारा किये गए उपसर्गको हटानेमें मेरी सहायता कर।

ब्रह्मचर्यका परित्याग करना मुनियोंके लिए महान् अनर्थ करनेवाला है। यहाँ तक कि ब्रह्मचर्य परित्याग करनेकी इच्छा होते ही बहुतसे

एए य संगे એ ગાથાથી એજ પ્રતિપાદન કર્યું છે

જેવી રીતે જે નાગણની દૃષ્ટિમા વિષ હોય છે તેને જોવાથી જ જીવનનો અંત આવી જાય છે, તેવી રીતે સ્ત્રીને અનુરાગપૂર્વક જોવાથી ચારિત્રરૂપ જીવન નષ્ટ થઈ જાય છે

અથવા એ કેવી ગાઢ અંધકારમય રાત્રિ છે કે જેમા ચારે કષાયોરૂપી ઘુવડોનું રાજ્ય છે, અને ચારિત્રરૂપી શરીરને ગળી જવાને માટે અજ્ઞાનરૂપી પિશાચ સદા તાકી રહેલો છે હે મિત્ર મન ! જ્ઞાનના પ્રકાશથી રાગરૂપી અંધકારનું નિવારણ કર, અને સ્ત્રીરૂપી રાત્રિથી ઉત્પન્ન થતા ઉપસર્ગોને હઠાવવામા મને સહાય કર

બ્રહ્મચર્યનો ત્યાગ કરવો એ મુનિઓને માટે મહાન્ અનર્થકારક છે, એટલે સુધી કે બ્રહ્મચર્ય ત્યજવાની ઇચ્છા થતા જ અનેક દોષો એવી રીતે આવીને

दोपा विविधशस्त्रास्त्रधारिणः प्रबलशत्रव इव समुत्तिष्ठन्ति। तत्रादावार्त्तरौद्रध्यान हृदये पदमारोपयति, तस्मिंश्च विद्यमाने प्रमादः साहस-मज्ञान-मधर्मो-ऽसिद्धिस्तथा-ऽन्येऽपि दोषाः समायान्ति। अब्रह्मचर्यस्य सकलप्रमादस्थानत्वेन प्रमादः, अविचारितकार्यकरणबुद्धिसमुत्पादकत्वेन साहसं, बोधिबीजविनाशकत्वेन अज्ञानम्, अधोगतिकारकत्वेन अधर्मः, अष्टविधकर्मजनकत्वेन असिद्धिश्च, एते दोषाश्चेतोगृहे संयमरत्नापहाराय यथेच्छमाशु प्रविशन्ति।

किञ्च—विषयरागः, सकलपापानां निदानम्, कुठार इव चारित्रतरुं छिनत्ति,

दोष इस प्रकार आ खडे होते हैं मानों अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रबल शत्रु आ डटे हों। पहले पहल तो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान हृदयमें स्थान पा लेते हैं। इनके स्थान पाते ही प्रमाद, साहस, अज्ञान, अधर्म, असिद्धि आदि अनेक दोष उपस्थित होते हैं।

अब्रह्मचारीको प्रमादके सब कारण मौजूद रहते हैं इसलिए प्रमाद, बिना विचारे कार्य करनेसे साहस, बोधि-रूपी बीजका विनाशक होनेसे अज्ञान, अधोगतिमें लेजानेके कारण अधर्म, और आठों कर्मोंका जनक होनेसे असिद्धि, और इस प्रकारके अनेक दोष शत्रुकी तरह चित्तरूपी घरमें संयमरूपी रत्नको लूटनेके लिए इच्छानुसार प्रवेश कर जाते हैं।

विषयराग सकल पापोंका मूल कारण है, चारित्र-वृक्षको, काटनेके लिए कुठार है, जिस प्रकार कज्जल, सफेद वस्त्रको मलिन कर देता

ખડા થાય છે, જાણે કે અનેક અસ્ત્ર શસ્ત્ર લઈને પ્રબળ શત્રુઓ આવી પહોચ્યા હોય પહેલા તો આર્ત્ત-ધ્યાન અને રૌદ્ર-ધ્યાન હૃદયમા સ્થાન જમાવી લે છે તેને સ્થાન મળતા જ પ્રમાદ, સાહસ, અજ્ઞાન, અધર્મ, અસિદ્ધિ આદિ અને દોષો આવી ઊભા રહે છે

અબ્રહ્મચારીની સમીપે પ્રમાદના બધા કારણો હાજર રહે છે એથી પ્રમાદ, વગર વિચારે કાર્ય કરવાથી સાહસ, બોધિરૂપી બીજનું વિનાશક હોવાથી અજ્ઞાન, અધોગતિમા લઈ જવાને કારણે અધર્મ, અને આઠે કર્મોનું જનક હોવાથી અસિદ્ધિ અને એવા જ બીજા અનેક દોષો શત્રુની પેઠે ચિત્તરૂપી ઘરમા સયમ રૂપી રત્નને લૂટી લેવાને ઈચ્છાનુસાર પ્રવેશ કરે છે

વિષયરાગ બધા પાપોનુ મૂળ કારણ છે, ચારિત્ર વૃક્ષને કાપનારો કોહાડો છે

कज्जल इव मलिनयति स्वच्छमम्बरमिवात्मानम्, भवति चार्गला मोक्षमार्गद्वारस्य नरकनिगोदाद्यनन्तदुःखानाञ्च निधानमिति सर्वथा तमपहाय पराव्रन्ति च्यवन्तपः संयमाचरणचतुरास्तपस्विनः ।

ननु बहवो मन्त्रास्तथाविधाः सन्ति ये देवाना दानवानामुपरि प्रभावमाविर्भावयन्ति, परन्तु किमेतदाश्चर्यम् ? यत् स्त्रीणां चरित्रे तेऽपि मन्त्रा हतमायाः किमपि कर्तुं न प्रभवन्ति । अथासां चरित्रस्यैतादृशप्रभावशालिता, यत्पुरतो मन्त्रा अपि पराभूय निवर्त्तन्ते, तर्हि क उपायस्तदुद्भावितरागरज्जुकर्त्तनाय संयताना-?-मिति चेत्,

हन्त ! हृदय-सहचर ! योषित्संनिधसंस्थितिपरित्याग एव तदीय चरित्राऽऽ-

है उसी प्रकार आत्माको मलिन करने वाला है, मुक्तिके मार्गकी अर्गला है, नरक निगोदके दुःखोंका निधान है और विविध व्याधियोंका उत्पत्तिस्थान है, अत एव तप और संयमके पालनेमें चतुर तपस्वी लोग इस (विषय राग) को बिलकुल छोड़कर अलग होते हैं ।

जो मन्त्र, देवों और दानवों पर भी अपना प्रभाव शीघ्रही दिखलाते हैं वे भी स्त्रीजनित राग पर प्रभाव नहीं डाल सकते । यह बड़े आश्चर्यकी बात है । स्त्रियोंका चरित्र इतना प्रभावशाली होता है कि उसके सामने मन्त्र भी प्रभावहीन हो जाते हैं तब उनके विषयमें उत्पन्न होने वाले राग-रज्जूको काटनेके लिए मुनियोंको क्या उपाय करना चाहिये ?

हे हृदय-सुहृद् ! स्त्रियोंके समीप रहनेका त्याग करदेना ही उनके

જેમ કાજળ સફેદ વસ્ત્રને મલિન કરી નાખે છે તેમ આત્માને મલિન કરનારો છે, મુક્તિના માર્ગની અર્ગલા છે, નરક નિગોદના દુઃખોનું નિધાન છે, અને વિવિધ વ્યાધિઓનું ઉત્પત્તિસ્થાન છે તેથી કરીને તપ અને સંયમને પાળવામાં ચતુર એવા તપસ્વી લોકો આ (વિષયરાગ)ને બિલકુલ છોડીને તેથી દૂર જતા રહે છે

જે મંત્ર, દેવો અને દાનવો પર પણ પોતાનો પ્રભાવ તુરત બતાવી આપે છે, તે મંત્ર પણ સ્ત્રીજનિત રાગ પર પ્રભાવ પાડી શકતો નથી, એ મોટા આશ્ચર્યની વાત છે સ્ત્રીઓનું ચારિત્ર એટલું પ્રભાવશાળી હોય છે કે તેની સામે મંત્ર પણ પ્રભાવહીન બની જાય છે તો તેના વિષયમાં ઉત્પન્ન થનારા રાગરજ્જુને કાપવા માટે મુનિઓએ કયો ઉપાય કરવો જોઈએ ?

હે હૃદય-સુહૃદ્ ! સ્ત્રીઓની સમીપે રહેવાનું છોડી દેવું એજ

पादितरागभङ्गोपाय इति धारणामुपैहि । उक्तञ्च—

"शृणु हृदय ! रहस्य यत्प्रशस्त मुनीना,
न खलु न खलु योपित्सनिधिः सविधेयः ।
हरति हि हरिणाक्षी क्षिप्रमक्षिक्षुरप्रैः,
पिहितशमतनुत्र चित्तमप्युत्तमानाम् ॥ १ ॥
शास्त्रज्ञोऽपि प्रकटविनयोऽप्यात्मबोधेऽपि गाढः,
ससारेऽस्मिन् भवति विरलो भाजन सद्गतीनाम् ।
येनैतस्मिन् निरयनगरद्वारमुद्घाटयन्ती,
वामाक्षीणा भवति कुटिला भ्रूलता कुञ्चिकेव" ॥ २ ॥

वस्तुतस्तु इहाऽनादिससारे स्वस्मिन्नपि शरीरे जीवस्य किं नाम स्वातन्त्र्यम् ?

विपयमें होनेवाले प्रेम-पाशके काटनेका उपाय है । कहा भी है–

"ऐ मन ! मुनियोंकी आत्माका कल्याण करनेवाले रहस्यको सुन, वह यह है कि–स्त्रियोंका सम्पर्क (ससर्ग) सर्वथा नहीं करना चाहिये, क्योंकि शम-रूप कवच पहने हुए उत्तम पुरुषोंके अन्तःकरणको भी स्त्रिया अपनी आखेंरूपी छुरीकी धारसे छिन्न-भिन्न कर डालती हैं"॥१॥

"प्रवचनमें प्रवीण, विनयवान् और गभीर आत्मज्ञानवान् होते हुए भी कोई विरला ही व्यक्ति सद्गतिकी प्राप्ति कर पाता है । क्योंकि ससारमें एक ऐसी कुजी मौजूद है जो जल्दी नरकका द्वार खोल देती है, वह कुजी क्या है ? स्त्रियोंकी टेढ़ी भौंह" ॥२॥

सच है–अनादि-कालीन ससारमें, जीवोंको अपने शरीरमें भी

ઉત્પન્ન થતા પ્રેમપાશને કાપવાનો ઉપાય છે કહ્યુ છે કે–હે મન ! મુનિઓના આત્માનું કલ્યાણ કરનારા રહસ્યને શ્રવણ કર તે આ પ્રમાણે છે—

"સ્રીઓનો સ પર્ક (સસર્ગ) સર્વથા ન કરવો જોઇએ, કારણ કે શમરૂપ કવચ પહેરેલા ઉત્તમ પુરૂષોના અ ત કરણને પણ સ્રીઓ પોતાની આંખોરૂપી છુરીની ધારથી છિન્ન–ભિન્ન કરી નાખે છે"

"પ્રવચનમા પ્રવીણ, વિનયવાન્ અને ગભીર આત્મજ્ઞાનવાન્ હોવા છતા પણ વિરલ વ્યક્તિ જ સદ્ગતિને પ્રાપ્ત કરી શકે છે કારણ કે સસારમા એક એવી કુચી મોજુદ છે કે જે જલ્દી નરકનુ દ્વાર ખોલી નાખે છે એ કુચી કઇ છે ? સ્રીની વાકી ભમ્મર

ખરૂ છે અનાદિકાલીન સસારમા, જીવો પાસે પોતાના શરીરની પણ

दृश्यते हि लोकेऽपकृष्टमनुजपशुपक्षिसरीसृपादिशरीरोपभोगमवाञ्छतोऽपि प्राणिनस्तत्तद्द्रयोगेन अनावृतदेशावस्थानाऽभिमताऽन्नपानाऽनवाप्तिशीतवातातपोपलवृष्टिदंशमशकादिजनिताऽनेकविधदुर्निवारदुःखोपभोगः सोढव्यो भवतीति, स्वातन्त्र्ये तु न कोऽपि तत्तदङ्गमङ्गीकुर्यात्। अङ्गसयोग इवाङ्गवियोगेऽपि नास्ति जीवस्य स्वातन्त्र्यम्, तनुवियोगमनिच्छतामपि सुखसमन्वितानां मरणदर्शनात्, तमिच्छतां दुःखदग्धानां विषादिभक्षणेऽप्यैकान्तिकमरणादर्शनाच्च।

स्वाधीनता नहीं है। अपकृष्ट-मनुष्य पशु पक्षी साँप आदिके हीन शरीरको जो प्राणी चाहते ही नहीं, उन्हें भी वह शरीर धारण करना पड़ता है, और उसके सयोगसे अनिष्ट स्थानका निवास, अन्न-पानकी अप्राप्ति, गर्मी, सर्दी, ओलोंकी वर्षा, हवा, डास-मच्छर आदिसे होनेवाले अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं। यदि ऐसे शरीरको धारण करना अपनी इच्छा पर निर्भर होता तो कोई भी प्राणी ऐसा दुखदायी शरीरको धारण न करता।

जिस प्रकार शरीर धारणमें जीव स्वाधीन नहीं है उसी प्रकार उसके त्यागनेमें भी स्वाधीन नहीं है। ससारमें जो प्राणी सुखसम्पन्न हैं वे वर्त्तमान शरीरका त्याग नही करना चाहते, फिरभी उनकी मृत्यु हो जाती है। और मृत्युकी कामना करनेवाले दु.खी जीव विष आदि भक्षण कर लेते हैं तो भी कभी कभी बच जाते हैं, अत' सिद्ध हुआ कि अपना शरीरभी अपने अधीन नही है।

સ્વાધીનતા નથી અપકૃષ્ટ-મનુષ્ય પશુ પક્ષી સાપ આદિના હીન શરીરને જે પ્રાણી ચાહતા જ નથી, તેમને પણ એ શરીર ધારણ કરવા પડે છે અને તેના સયોગથી અનિષ્ટ સ્થાનનો નિવાસ, અન્નપાનની અપ્રાપ્તિ, તાપ, ટાઢ, કરાનો વરસાદ, હવા, ડાસ મચ્છર આદિથી ઉત્પન્ન થતા અનેક પ્રકારના દુ ખો ભોગવવા પડે છે જો એવા શરીરને ધારણ કરવાનું પોતાની ઈચ્છા પર જ નિર્ભર હોત તો કોઈ પણ પ્રાણી એવા દુ ખદાયી શરીરને ધારણ ન કરત

જેવી રીતે શરીર ધારણ કરવામા જીવ સ્વાધીન નથી, તેવી રીતે તેને ત્યજવામા પણ સ્વાધીન નથી સસારમા જે પ્રાણીઓ સુખસપન્ન છે તેઓ વર્તમાન શરીરનો ત્યાગ કરવા ઇચ્છતા નથી, તો પણ એમનું મૃત્યુ થઇ જાય છે અને મૃત્યુની કામના કરનારા દુ ખી જીવો વિષ આદિ ભક્ષણ કરી લે છે તોપણ કોઈ કોઇ વાર બચી જાય છે એ ઉપરથી સિદ્ધ થયુ કે આપણુ શરીર પણ આપણને આધીન નથી

जीवस्य स्वातन्त्र्येण शरीरस्वामित्वे सति अनेकेषां कुसुमसुकुमाराणां सुन्दरावयवानां कतिपयानामतीतदेवादिशरीराणां विनाशः कथं न वारितः ? तस्माद् देहगेहादि किमपि वस्तु कस्यापि नास्ति, किन्तु अज्ञानवशाज्जीवाः 'इदं मम, इयं ममे' त्यादिस्वरूपं ममत्वं कुर्वन्तीति निश्चीयते ।

इत्थं च स्वकीयदेहगेहादौ ममत्वकरणमज्ञानमूलं, कर्मबन्धहेतुश्चेति विवेकिनः स्वदेहेऽपि ममत्वं न कुर्वन्ति, किं पुनरन्यदीयदेहगेहादौ—इत्यनुचिन्तनेन समुत्पन्नया "न सा मम, नाहं तस्याः" इत्याकारया विवेकबुद्ध्या मनसि प्रसृतं रागं प्रशमयेदिति भावः ॥ अत्र गाथायां 'परिव्वयंतो' इत्यत्र सौत्रत्वात्षष्ठ्यर्थे प्रथमा, 'बहिद्धा' इति प्राकृतत्वात्, यद्वा बहिर्धावतीति विग्रहे पृषोदरादित्वाद्धकारादिलोपः । इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

यदि शरीर पर प्राणीका अधिकार होता तो फूलसे कोमल तथा सुन्दर अवयववाले अतीतकालीन देव आदिके शरीरके वियोगको क्यों न रोक लेता ? सत्य बात तो यह है कि–देह गेह आदि कोई भी वस्तु किसीकी नहीं है । जीव अज्ञानके कारण 'यह मेरा है' 'यह मेरी है' इस प्रकारकी ममता करते हैं, अत एव शरीरमें ममता करना ही अज्ञान-मूलक और परिग्रह होने से कर्म-बन्धका कारण है, ऐसा समझ कर विवेकी जन अपने शरीरमें भी स्नेह नहीं करते तो दूसरेकी देहमें कैसे स्नेह करेंगे ? । ऐसा सोच कर, मनमें उत्पन्न हुए भी रागादिको "न वह मेरी है" और "न मैं उसका हूँ" इस प्रकारकी भावनासे दूर कर मुनि, उस निकले हुए मनको फिरसे संयम-घरमें लावे ॥४॥

જો શરીર પર પ્રાણીનો અધિકાર હોત તો ફૂલથીય કોમળ તથા સુંદર અવયવોવાળા અતીતકાલીન દેવાદિના શરીરના વિયોગને કેમ રોકી રાખત નહિ ? સાચી વાત એ છે કે દેહ ગેહ આદિ કોઈ પણ વસ્તુ કોઈની નથી જીવ અજ્ઞાનને કારણે 'આ મારો છે' એ 'એ મારી છે' એ પ્રકારની મમતા રાખે છે એટલે શરીર પર મમતા રાખવી એજ અજ્ઞાનમૂલક અને પરિગ્રહરૂપ હોવાને કારણે કર્મબંધનું કારણ છે એવું સમજીને વિવેકીજન પોતાના શરીર પર પણ સ્નેહ રાખતા નથી, તો પછી બીજાના દેહ પર કેમ સ્નેહ કરે ? એમ વિચારીને મનમાં ઉત્પન્ન થએલા રાગાદિને, "એ મારી નથી" કે "હું તેનો નથી" એવી ભાવનાથી દૂર કરીને, મુનિએ સંયમઘરથી બહાર નીકળેલા મનને પાછું સંયમઘરમાં લાવે (૪)

पूर्वगाथया 'रागव्यपनयः कर्तव्यः' इत्युक्त, स च बाह्यक्रियामन्तरेण न सम्भवतीत्यतस्तत्प्रतिपादनार्थमाह–'आयावयाही' इत्यादि ।

मूलम्–आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज राग, एवं सुही होहिसि संपराए ॥५॥

छाया–आतापय त्यज सौकुमार्यं, कामान् क्राम क्रान्तमेव दुःखम् ।
छिन्धि द्वेषं व्यपनय रागम्, एवं सुखी भविष्यसि सम्पराये ॥ ५ ॥

सान्वयार्थः–स्त्रीपरसे मोह हटानेका उपाय कहते हैं—

आयावयाही=शरीरको तपस्यासे सूखा डालो, सोगमल्लं=सुकुमारता अमीरीको चय=त्यागो, कामे=विषयकी इच्छाओंको कमाही=काबूमें करो रोको, (ऐसा करनेसे) खु=निश्चय करके दुक्खं=दुःख कमियं=दूर होगा, दोसं=द्वेषको छिंदाहि=छेदो-नष्ट करो, रागं=रागको विणएज्ज=हटाओ-दूर करो, एवं=इस प्रकार करनेसे (तुम) संपराए=संसारमें सुही=सुखी होहिसि=होवोगे ॥५॥

टीका–हे शिष्य ! त्वं श्रामण्ययोगाद्बहिर्निर्गतं चित्तं प्रतिरोद्धुम् आतापय=शीतोष्णादिसहनोत्कुटुकासनाद्यवलम्बना-ऽनशनादिदुष्करतपोविधानैस्तनुं तापय, सौकुमार्यं=शरीरसुकुमारतां त्यज=परिहर, यद्वा आतापयेतिपदेन बोधितमेवार्थं

पूर्व गाथामें, उत्पन्न हुए रागका परित्याग करना कहा किन्तु रागका त्याग तप आदि बाह्य क्रियाओंके विना नहीं हो सकता । इसलिए अब उनकी प्ररूपणा करते हैं– 'आयावयाही-' इत्यादि,

हे शिष्य ! तपस्या कर–आतापना ले, सुकुमारताका त्याग कर, इन्द्रियोंके विषयोंमें राग न कर, रागके त्यागसे दुःखोंका नाश होही

પૂર્વ ગાથામા, ઉત્પન્ન થએલા રાગનો પરિત્યાગ કરવાનુ કહ્યુ, કિન્તુ રાગનો ત્યાગ તપ આદિ બાહ્ય ક્રિયાઓ વિના થઈ શકતો નથી તેટલા માટે એની પ્રરૂપણા કરે છે આયાવયાહી૦ ઇત્યાદિ

હે શિષ્ય ! તપસ્યા કર–આતાપના લે, સુકુમારતાનો ત્યાગ કર, ઇંદ્રિયોના વિષયોમા રાગ ન કર, રાગના ત્યાગથી દુઃખોનો નાશ થઇ જ જાય છે તે દ્વેષનો

त्रिशदयति-सौकुमार्यं त्यजेति शरीरसुखसाधने दत्तचित्तो मा भव, शीतवातादिपरिषहसहनयोग्यता सम्पादयेति भावार्थः। काम्यन्त इति कामाः=शब्दादिविषयास्तान् क्राम=अतिक्राम-सन्त्यजेत्यर्थः। कामातिक्रमणे सति तु दुःखं क्रान्तमेव=गतमेव नष्टमेवेत्यर्थः। कामा एव हि दुःखसमुदायनिदानम्।

ननु 'यथा बुभुक्षापिपासादीनामशनपानादिभिरेव निवृत्तिस्तद्वत्कामानामुपभोगेन भविष्यति'

जाता है। तू द्वेपका लेश न रहने दे, और रागको छोड दे, तो तू ससारमें सुखी, अथवा परिषह उपसर्गोके युद्धमें विजयी होगा। तात्पर्य-हे शिष्य ! श्रामण्ययोग (सयमरूप घर) से बाहर मन निकल जाय तो शीत उष्ण आदि सह कर और उत्कुडुकासन आदिका आश्रय लेकर, तथा अनशन आदि तप करके शरीरको सुखा डाल, शरीरकी कोमलताका त्याग कर, अर्थात् अपने शरीरको शीत-आतप प्रभृति परिषह सहने योग्य बना ले, शारीरिक सुखोकी सामग्रीमें मन न लगा। जिनकी कामना की जाती है, उन्हें काम कहते हैं, उन कामों (शब्द, रूप, गध, रस, स्पर्श आदि इन्द्रिय-विषयो) की अपेक्षा न रख। ऐसा करनेसे दु:खोंका अस्तित्व रह नही सकता, उनका नाश ही समझ, क्योंकी काम ही दु:खोका कारण है।

शका-हे गुरुमहाराज ! जैसे भोजन करनेसे भूख शान्त हो जाती है, और पानी पीनेसे प्यास बुझती है, वैसेही विषयोंका सेवन करनेसे

અશ પણ રહેવા ન દે અને રાગને છોડી દે, તેથી તુ સસારમા સુખી અથવા પરિષહ ઉપસર્ગો સાથેના યુદ્ધમા વિજયી થઈશ તાત્પર્ય એ છે કે-હે શિષ્ય ! શ્રામણ્યયોગ (સયમરૂપી ઘર) થી બહાર મન નીકળી જાય તો ટાઢ-તાપ આદિ પરિષહ અને ઉત્કુટુક આસન આદિનો આશ્રય લઈને, તથા અનશન આદિ તપ કરીને શરીરને સુકાવી નાખ, શરીરની કોમળતાનો ત્યાગ કર, અર્થાત્ પોતાના શરીરને ટાઢ તાપ આદિ પરિષહ સહેવાને યોગ્ય બનાવી લે શારીરિક સુખોની સામગ્રીમા મન ન લગાડ જેની કામના કરવામા આવે છે તેને કામ કહે છે એ કામો (શબ્દ, રૂપ, ગધ, રસ, સ્પર્શ આદિ ઇન્દ્રિય-વિષયો)ની અપેક્ષા ન રાખ એમ કરવાથી દુખોનુ અસ્તિત્વ રહી શકશે નહિ, એનો નાશ જ સમજ, કેમકે કામ જ દુખનુ કારણ છે

શકા-હે ગુરૂ મહારાજ ! જેમ ભોજન કરવાથી ભૂખ શાન્ત થઈ જાય છે અને પાણી પીવાથી તરસ છીપે છે, તેમજ વિષયોનુ સેવન કરવાથી વિષય

मैवम्, हे शिष्य! विषयवासनैव तावत्सकलाऽनर्थमूलम्, विशेषतश्चारित्र-मुच्छेदयन्ती रागद्वेषौ दृढीकुरुते। यथा विदेशं गतस्य कस्यचित् प्रेयसो जीवितस्यापि श्रुताया मरणवार्त्ताया जना रुदन्ति न तथा तस्मिन्मृतेऽप्यश्रुताया तदीय-मरणप्रवृत्तौ, तस्माच्चेतोविकृतिरेव मुख्यतः सुखदुःखसम्बन्धहेतुः, विषयवासनायाः समुच्छेदमन्तरेण पुनः पुनरष्टविधानां कर्मणामङ्कुरणं न शक्यते प्रतिरोद्धुं, तेषां विषयवासनामूलकत्वात्। उक्तञ्च—

विषयसेवनकी इच्छा भी शान्त हो जायगी तो फिर आतापना आदि बाह्य तप क्यों करना चाहिए?

उत्तर-हे शिष्य! ऐसी शंका करना उचित नहीं है, क्योंकि विषयोंकी वासना (इच्छा) ही सब अनर्थोंकी जड़ है, और चारित्ररूपी वृक्षकी जडको उखाड़नेवाली है। यह रागद्वेषको दृढ करती है। परदेश गया हुआ कोई इष्टमित्र जीवित हो परन्तु उसकी मृत्युका समाचार मिले तो सम्बन्धी लोग रोने लगते हैं, और यदि वह मर जाय किन्तु मरनेका समाचार न मिले तो कोई भी नहीं रोता। इससे ज्ञात होता है कि चित्तका विकार ही सुख-दु:खका मुख्य कारण है।

इसलिए जब तक मनसे विषयवासनाका समूल त्याग नहीं होता तब तक आठों कर्मोंकी उत्पत्ति नहीं रुक सकती, क्योंकि उनका मूल, विषय वासना है। कहा भी है—

સેવનની ઇચ્છા પણ શાન્ત થઈ જાય, તો પછી આતાપના આદિ બાહ્ય તપ કરવાની શી જરૂર?

ઉત્તર-હે શિષ્ય! એવી શંકા કરવી ઉચિત નથી, કારણ કે વિષયોની વાસના (ઇચ્છા) જ બધા અનર્થોનું મૂળ છે અને ચારિત્રરૂપી વૃક્ષના મૂળને ઉખાડનારી છે તે રાગદ્વેષને દૃઢ કરે છે પરદેશ ગએલો કોઈ ઇષ્ટમિત્ર જીવતો હોય પરંતુ તેના મૃત્યુના સમાચાર મળે તો સગા સંબંધીઓ રોવા લાગે છે, અને જો તે મરી જાય પણ મરવાના સમાચાર ન મળે તો કોઇ પણ રોતું નથી, એથી સમજાય છે કે ચિત્તનો વિકારજ સુખદુઃખનું મુખ્ય કારણ છે

એ કારણથી જ્યાંસુધી મનમાંથી વિષયવાસનાનો સમૂળો ત્યાગ નથી થતો ત્યાંસુધી આઠે કર્મોની ઉત્પત્તિને રોકી શકાતી નથી, કારણ કે તેનું મૂળ વિષય વાસના છે કહ્યું છે કે—

"विचारितमलं शास्त्रं, चिरमुद्ग्राहितं मिथः ।
सन्त्यक्तवासनान्मौनाद्, ऋते नास्त्युत्तमं पदम् ॥" इति।

यथा पवनपथे पतत्रिणः स्वच्छन्दं विहरन्ति तथाऽनुपमाऽलौकिकाऽऽनन्दमय-मोक्षमार्गसञ्चारिणः संयमिनः प्रतिबन्धरहितं विहरन्ति, परन्तु जालबद्धा विहङ्गमा उत्पतनयत्नवन्तोऽपि यथा निर्बन्धविहाराय न प्रभवन्ति, तद्वद् विषयसेवनाऽऽशालक्षणविषयवासनाकलितचेतसो मुनयोऽनुपलभ्य मोक्षमार्गमप्रतिबन्धविचरण-वञ्चिता भवन्तीति शिष्य ! जानीहि तावद् विषयाशा दुस्तरमहानदीसमानाम् । उक्तञ्च—

"भले ही कोई कितनेही शास्त्रोंका मनन करले, या दूसरोंको सिखलादे, पर जब तक वासनाका परित्याग करके समिति-गुप्ति-आदिरूप संयमकी आराधना नहीं कर लेता तबतक मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता" ॥१॥

जैसे-पक्षी आकाशमें स्वच्छन्द विहार करते हैं, उसीप्रकार अनुपम अलौकिक आनन्दमय मोक्षमार्गमें विहार करनेवाले संयमी भी अप्रतिबन्धविहारी होते हैं। किन्तु जिस प्रकार जालमें फँसे हुए पक्षी उडनेका यत्न करते हैं पर उड नहीं सकते, उसी-प्रकार विषयसेवनकी आशारूप वासनासे मुनि मोक्षमार्गको न पाकर अप्रतिबन्ध विहारसे वंचित रहते हैं। हे शिष्य ! इस विषय-वासनाको ऐसी विशाल नदी समझ कि जिसका पार पाना अत्यन्त कठिन है। कहा भी है—

"ભલે કોઈ ગમે તેટલા શાસ્ત્રોનું મનન કરી લે, અથવા બીજાઓને શીખવે, પરન્તુ જ્યાસુધી વાસનાનો ત્યાગ કરીને સમિતિ–ગુપ્તિ આદિરૂપ સંયમની આરાધના કરી લેતો નથી ત્યાસુધી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી" (૧)

જેમ પક્ષી આકાશમા સ્વચ્છન્દ વિહાર કરે છે, તેમ અનુપમ અલૌકિક આનંદમય મોક્ષમાર્ગમા વિહાર કરનારા સંયમી પણ અપ્રતિબંધ વિહારી હોય છે. પરન્તુ જેવી રીતે જાળમા ફસેલા પક્ષીઓ ઉડવાનો યત્ન કરે છે પણ ઉડી શકતા નથી, તેવી રીતે વિષયના સેવનની આશારૂપ વાસનાથી વાસિત અંતઃકરણવાળા મુનિઓ મોક્ષમાર્ગને ન પામતા અપ્રતિબંધ વિહારથી વંચિત રહે છે હે શિષ્ય! આ વિષયવાસનાને એવી વિશાળ નદી સમજ કે જેનો પાર પામવો અત્યંત કઠિન છે કહ્યુ છે કે—

मैवम्, हे शिष्य ! विषयवासनैव तावत्सकलाऽनर्थमूलम्, विशेषतश्चारित्र-मुच्छेदयन्ती रागद्वेषौ दृढीकुरुते । यथा विदेशं गतस्य कस्यचित् प्रेयसो जीवित स्यापि श्रुताया मरणवार्त्तया जना रुदन्ति न तथा तस्मिन्मृतेऽप्यश्रुताया तदीय-मरणवृत्तौ, तस्माच्चेतोविकृतिरेव मुख्यतः सुखदुःखसम्बन्धहेतुः, विषयवासनायाः समुच्छेदमन्तरेण पुनः पुनरष्टविधानां कर्मणामङ्कुरणं न शक्यते प्रतिरोद्धुं, तेषां विषयवासनामूलकत्वात् । उक्तञ्च—

विषयसेवनकी इच्छा भी शान्त हो जायगी तो फिर आतापना आदि बाह्य तप क्यों करना चाहिए ?

उत्तर—हे शिष्य ! ऐसी शंका करना उचित नहीं है, क्योंकि विषयोंकी वासना (इच्छा) ही सब अनर्थोंकी जड़ है, और चारित्ररूपी वृक्षकी जड़को उखाड़नेवाली है। यह रागद्वेषको दृढ़ करती है। परदेश गया हुआ कोई इष्टमित्र जीवित हो परन्तु उसकी मृत्युका समाचार मिले तो सम्बन्धी लोग रोने लगते हैं, और यदि वह मर जाय किन्तु मरनेका समाचार न मिले तो कोई भी नहीं रोता। इससे ज्ञात होता है कि चित्तका विकार ही सुख-दुःखका मुख्य कारण है।

इसलिए जब-तक मनसे विषयवासनाका समूल त्याग नहीं होता तब तक आठों कर्मोंकी उत्पत्ति नहीं रुक सकती, क्योंकि उनका मूल, विषय वासना है। कहा भी है—

સેવનની ઇચ્છા પણ શાન્ત થઈ જાય, તો પછી આતાપના આદિ બાહ્ય તપ કરવાની શી જરૂર ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! એવી શંકા કરવી ઉચિત નથી, કારણ કે વિષયોની વાસના (ઇચ્છા) જ બધા અનર્થોનું મૂળ છે અને ચારિત્રરૂપી વૃક્ષના મૂળને ઉખાડનારી છે તે રાગદ્વેષને દૃઢ કરે છે પરદેશ ગએલો કોઈ ઇષ્ટમિત્ર જીવતો હોય પરંતુ તેના મૃત્યુના સમાચાર મળે તો સગાસંબંધીઓ રોવા લાગે છે, અને જો તે મરી જાય પણ મરવાના સમાચાર ન મળે તો કોઈ પણ રોતું નથી, એથી સમજાય છે કે ચિત્તનો વિકારજ સુખદુઃખનું મુખ્ય કારણ છે

એ કારણથી જ્યાંસુધી મનમાંથી વિષયવાસનાનો સમૂળો ત્યાગ નથી થતો ત્યાંસુધી આઠે કર્મોની ઉત્પત્તિને રોકી શકાતી નથી, કારણ કે તેનું મૂળ વિષય વાસના છે કહ્યું છે કે—

सेवन, तदेवमाकल्य तावत्-सुखाशया दीपकोपगमन पतङ्गानाम्, दारुधिया ग्राह-ग्रहण-पुरस्सर नदीतरण मनुष्याणाम्। किञ्च बुभुक्षापिपासादिदृष्टान्तस्यात्र वैषम्य विद्यते, नहि कामा उपभोगेन शाम्यन्ति प्रत्युताभ्यासवशादतितरा वृद्धिमेवोपगच्छन्ति, यदुक्तमन्यत्रापि—

"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूय एवाभिवर्धते ॥१॥" इति,

लोकेऽपि च दृश्यते-यथा यथा वह्नाविन्धनानि प्रक्षिप्यन्ते तथा तथाऽसौ

बस तू यही समझ ले—जैसे सुख पानेकी इच्छासे पतगोंका दीपकमें गिरना है, अथवा कोई भोला मनुष्य लकडी समझकर ग्राहको पकड लेवे और उसीका सहारा लेकर नदी पार करना चाहे तो वह कभी सफल-मनोरथ नहीं होगा वरन् उसे प्राण त्यागने पडेंगे, इसी प्रकार 'विषय भोगनेसे विषयोंकी वासना मिट जायगी' यह विचारना ठीक नहीं है।

भूख-प्यासका दृष्टान्त भी यहा मेल नही खाता, क्योंकि विषय-सेवनसे काम शान्त नहीं होते, बल्कि अधिक-अधिक बढ़ते है। कहा भी है—"कामोंका सेवन करनेसे काम कदापि शान्त नहीं होते, जैसे घीके डालनेसे अग्नि शान्त नही होती वरन् बढ़ती ही जाती है ॥१॥"

तथा लोकमे भी देखा जाता है कि—अग्निमें ज्यों-ज्यो इन्धन डाला जाता है, त्यों त्यों वह अधिक प्रबल होती जाती है, बुझती नही है।

કે—જેમ સુખ પામવાની ઇચ્છાથી પતગો દીપકમા હોમાય છે, અથવા કોઇ ભોળો માણુસ લાકડુ સમજીને ગ્રાહ (મગર) ને પકડી લે અને તેને આધારે નદી પાર કરવા ઇચ્છે તો કદાપિ તેનો મનોરથ સફળ ન થાય પરન્તુ તેને પ્રાણુ ત્યજવાનો જ વખત આવે, તેમ "વિષય ભોગવવાથી વિષયોની વાસના મટી જશે" એમ વિચારવુ એ બરાબર નથી

ભૂખ તરસનું દૃષ્ટાત પણુ અહીં બધ બેસતુ નથી, કારણુ કે વિષય-સેવનથી કામ શાન્ત થતો નથી, પરન્તુ વધારે ને વધારે વધે છે કહ્યુ છે કે- "કામેનું સેવન કરવાથી કામ કદાપિ શાન્ત થતો નથી, જેમ ઘી નાખવાથી અગ્નિ શાન્ત થતો નથી, પરતુ વધતો જાય છે" (૧) તેમજ જગતમા પણુ જોવામા આવે છે કે— અગ્નિમા જેમ-જેમ ઇંધન નાખવામા આવે છે, તેમ-તેમ તે વધારે પ્રબળ

" आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी ।
मोहाऽऽवर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥ १ ॥" इति

अपरं चाऽऽकर्णय—

"विषयाशामहापाशाद्, यो विमुक्तः सुदुस्त्यजात् ।
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षट्शास्त्रवेद्यपि ॥ १ ॥" इति,

हे शिष्य ! एवं विषयभोगस्पृहाऽपि महतेऽनर्थाय कल्पते, किं पुनस्तदुप-

---

" आशा, नदीके समान है, इसमें मनोरथरूपी जल भरा हुआ है; तृष्णाकी तरगे छलागे मार रही हैं, रागरूपी ग्राह इसमें निवास करते हैं, नाना प्रकारके सोच विचार ही इसमें पक्षी हैं, यह नदी धीरता-रूपी वृक्षको विध्वस करनेवाली है, चिन्तारूपी इसका तट है, इसका पार करना बहुत कठिन है, जो मुनीश्वर इस नदीको पार कर लेते हैं वे ही सुखी होते हैं॥१॥"

और सुनो–

"विषयोंका आशापाश दुस्त्याज्य है। जो इस पाशसे मुक्त हो जाते हैं वेही मोक्ष-मार्गके अधिकारी होते हैं, अन्य नहीं, चाहे वह सभी शास्त्रोंके पारगत क्यों न हो ! ॥१॥"

हे शिष्य ! इसप्रकार विषय भोगनेकी इच्छा भी महान् अनर्थको उत्पन्न करती है, तो विषयोंके सेवनके विषयमे तो कहना ही क्या है?

"આશા નદીના જેવી છે, તેમા મનોરથરૂપી જળ ભરેલુ છે તૃષ્ણાના તરંગો ઉછળી રહ્યા છે, રાગરૂપી ગ્રાહ એમા નિવાસ કરે છે, નાના પ્રકારના વિચારો તેમા પક્ષીરૂપ છે, એ ધીરતારૂપી વૃક્ષનો ધ્વસ કરવાવાળી છે ચિન્તા એનું તટ છે એ નદીને પાર કરવી અત્યત કઠિન છે, જે મુનીશ્વર એ નદીને પાર કરે છે તે જ સુખી થાય છે," (૧) અને વળી શ્રવણ કરો—

"વિષયોનો આશાપાશ દુસ્ત્યાજ્ય છે જેઓ એ પાશથી મુક્ત થઇ જાય છે તેઓ જ મોક્ષમાર્ગના અધિકારી બને છે–બીજા નહિ, પછી ભલે તેઓ બધા શાસ્ત્રોના પારગત કેમ ન હોય ?" (૧)

હે શિષ્ય ! એ રીતે વિષય ભોગવવાની ઇચ્છા જ મહાન્ અનર્થને ઉત્પન્ન કરે છે, તો વિષયોના સેવનની બાબતમા તો કહેવુ શુ ? બસ, તુ સમજી લે

अथ च-तात्कालिकमेव बुभुक्षाद्युपशमं प्रति भोजनादेरन्वयव्यतिरेकृत' कारणता विद्यते, अतस्तादृगबुभुक्षाद्युपशमनकामनयैव भोजनाद्युपादीयते, अत्र तु यावज्जीवनं विषयसेवनेच्छाप्रशमः साधुजनाऽभिलाषविषय इति तादृशप्रशममुद्दिश्य प्रवर्त्तमानानां मुनीनां विषयसेवनं कदापि नोपादेयम्, विषयसेवनसमये हि तदीयवासना रागमनुवर्द्धयन्तीन्द्रियाणि च सबलयन्ती विविधाशुभभावनामुद्भावयति-'अयमुपभोगो न जातु नश्यतु, उत्तरोत्तरं चानुवर्द्धताम्, न चैनं प्रतिघ्नन्तु केऽपि विघ्नाः' इत्यादि। एवं च विषयसेवनेन नैव तदभिलाषोपशमः प्रत्युत तद्विपरीतं प्रतिक्षणं वर्द्धमान एव तदभिलाषः पाशबद्ध-

जब भोजन किया जाता है तो क्षुधाकी तात्कालिक शान्ति हो जाती है बिना भोजन किये नहीं होती, इसलिए अन्वय-व्यतिरेकद्वारा भोजन तात्कालिक क्षुधा-निवृत्तिके प्रति कारण होता है। इसी कारणसे क्षुधा आदि शान्त करनेके लिए भोजन आदि किया जाता है। साधु जीवन-पर्यंत विषय-सेवनकी अभिलाषाकी शान्तिकी इच्छा रखते हैं। इस शान्तिके लिए प्रवृत्ति करनेवाले मुनियोंको कदापि विषयसेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि विषयवासना, विषयसेवनके समय राग-भावकी वृद्धि करती है और इन्द्रियोंको सबल बनाकर नाना प्रकारकी दुर्भावनाएँ उत्पन्न करती है कि-'यह भोग कभी नष्ट न हो जाय, उत्तरोत्तर बढ़ता जाय, इसके भोगनेमें कोई विघ्न न आजावे' इत्यादि। अत एव विषय-सेवन करनेसे विषयकी अभिलाषा शान्त नहीं होती, बल्कि प्रतिक्षण अधिक-अधिक बढ़ती जाती है। यहां तक कि यह विषयलालसा पुरुषको

જ્યારે ભોજન કરવામા આવે છે ત્યારે ક્ષુધાની તાત્કાલિક શાતિ થઇ જાય છે, ભોજન વિના શાન્તિ થતી નથી, તેથી અન્વય વ્યતિરેક દ્વારા ભોજન, તાત્કાલિક ક્ષુધાનિવૃત્તિને પ્રતિ કારણ બને છે આ કારણથી ક્ષુધા આદિ શાન્ત કરવાને માટે ભોજન આદિ કરવામા આવે છે સાધુ જીવનપર્યંત વિષય-સેવનની અભિલાષાની શાન્તિની ઇચ્છા રાખે છે આ શાન્તિને માટે પ્રવૃત્તિ કરનારા મુનિઓએ કદાપિ વિષયસેવન કરવુ ન જોઇએ, કારણ કે વિષયવાસના વિષયસેવનને સમયે રાગ-ભાવની વૃદ્ધિ કરે છે, અને ઇન્દ્રિયોને સબળ બનાવીને એવી નાના પ્રકારની દુર્ભાવનાઓ ઉત્પન્ન કરે છે કે-'આ ભોગ કદાપિ નષ્ટ ન થાય, ઉત્તરોત્તર વધતો જાય, એને ભોગવવામા કાઇ વિઘ્ન ન આવે' ઇત્યાદિ, એટલે વિષયસેવનથી વિષયના અભિલાષા શાન્ત થતી નથી, બલ્કે પ્રતિક્ષણ અધિક-અધિક વધતી જાય છે, તે એટલે સુધા કે એ વિષયલાલસા પુરૂષને કેવળ નકામો બનાવી દે છે

प्राबल्यमधिगच्छति । अन्यच्च दद्रुरोगप्रशमनाभिलाषिणा यथा यथा तदीयकण्डूयनाऽऽदरः क्रियते, तथा तथा दद्रुरोगो वर्धमान एवाऽनुभूयते न तु जातु तदुपशमो लक्ष्यते क्वाऽपि, तद्वद् विषयसेवनतो न विषयतृष्णोपशमः ।

अपर चात्र वैषम्य, तथाहि–विषयसेवनेच्छोपशम प्रति विषयसेवनस्य, बुभुक्षाद्युपशम प्रति भोजनादेरिव कारणत्वमङ्गीकृत्य यत् तदुपादेयता त्वयोपपाद्यते तन्न मनोरमम्, अन्वयव्यतिरेकौ हि सर्वसमतौ कार्यकारणभावनियामकौ, तत्राऽन्वयः–'तत्सत्त्वे तत्सत्तारूपः' व्यतिरेकस्तु–'तदभावे तदभावरूपः'। यथा सर्वविरतिसत्त्वे साधुत्वसत्ता, तदभावे च साधुसत्ताया अभाव इत्यन्वय व्यतिरेकाभ्या साधुत्वकारण सर्वविरतिचारित्रमिति गम्यते ।

अथवा दादको खुजलानेसे दाद रोग मिटता नहीं किन्तु बढ़ता ही जाता है ॥

उक्त दृष्टान्तमें और भी विषमता है सो कहते हैं–जैसे बुभुक्षा (भूख) आदिको शान्त करनेमें भोजन आदि कारण है, इसी प्रकार विषय-सेवनकी इच्छाको शान्त करनेमें विषयोंका सेवन कारण है, ऐसा मानकर तुम विषय-सेवनको उपादेय कहते हो सो ठीक नहीं है। यह सब मानते हैं कि अन्वय-व्यतिरेकसे कार्य कारणभावका निश्चय होता है, कारणके होने पर ही कार्यका होना अन्वय कहलाता है, और कारणके अभावमें कार्यका न होना व्यतिरेक कहलाता है। जैसे सर्वविरतिरूप चारित्रके होने पर ही साधुता होती है और सर्वविरतिरूप चारित्रके अभावमें साधुता नही रहती। इस अन्वयव्यतिरेकसे ज्ञात होता है कि विरति साधुत्वका कारण है ।

થતો જાય છે, ઓલવાતો નથી અથવા દાદરને ખજવાળવાથી દાદર મટતી નથી પણ વધતી જાય છે

ઉકત દૃષ્ટાંતમા બીજી પણ વિષમતા છે તે કહે છે– જેમ ભૂખ આદિને શાન્ત કરવામા ભોજન આદિ કારણ છે, તેમ વિષય–સેવનની ઇચ્છાને શાન્ત કરવામા વિષયોનું સેવન કારણ છે, એમ માનીને તમે વિષય–સેવનને ઉપાદેય કહો છો તે બરાબર નથી સૌ એમ તો માને છે કે–અન્વય વ્યતિરેકથી કાર્ય કારણભાવનો નિશ્ચય થાય છે કારણ હોવાથી જ કાર્યનું બનવુ અન્વય કહેવાય છે અને કારણના અભાવમા કાર્યનું ન બનવુ એ વ્યતિરેક કહેવાય છે, જેમ સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્ર હોવાથી જ સાધુતા હોય છે અને સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રના અભાવમા સાધુતા રહેતી નથી આ અન્વય વ્યતિરેકથી સમજાય છે કે વિરતિ સાધુત્વનું કારણ છે

उक्तमर्थं दृष्टान्तेन स्फुटीकरोति-' पक्खंदे० ' इत्यादि,

मूलम्-पक्खंदे जलियं जोइ, धूमकेउ दुरासय ।
नेच्छंति वंतय भोत्तु, कुले जाया अगंधणे ॥६॥

छाया-प्रस्कन्दन्ति ज्वलित ज्योतिष, धूमकेतु दुरासदम् ।
नेच्छन्ति वान्त भोक्तु, कुले जाता अगन्धने ॥६॥

सान्वयार्थः—

अगधणे=अगन्धननामक कुले=कुलमें जाया=उत्पन्न हुए (सर्प) जलिय=जलती हुई धूमकेउ=धुआँ निकालती हुई (और) दुरासय=असह्य-नहीं सहने योग्य (ऐसी) जोइ=अग्निमें पक्खदे=प्रवेश कर जाते है,(किन्तु) वतय=उगले हुए विषको भोत्तु=भोगनेकी नेच्छति=इच्छा नही करते । अर्थात् अगन्धन सर्प भी त्यागे हुएको फिर ग्रहण नहीं करना चाहते ॥६॥

टीका-गन्धना-ऽगन्धनभेदेन भुजगा द्विविधास्तत्र गन्धनास्ते ये मन्त्रप्रयोगादिवशाद्दष्टप्रदेशे वान्त विप पुनश्चूपन्ति, तद्भिन्ना अगन्धनास्तत्कुलमगन्धन तस्मिन् कुले जाता'=समुत्पन्ना. सर्पा इति शेपः, ज्वलित=प्रदीप्त धूमकेतु=धूम केतु=श्चिह्न यस्य त धूमध्वजमित्यर्थः, अत एव दुरासदम्=दुःखेन आसद्यते=धातूनामनेकार्थत्वात् सह्यते सवेद्यते इति वाऽर्थस्त दुष्प्रवेशमिति यावत् , ज्योतिपम्=अग्निम् प्रस्कन्दन्ति=प्रविशन्ति, किन्त्वितिशेप', वान्तम्=उद्गीर्णं सन्त्यक्तमितियावत्

इसी विपयको दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट करते है- 'पक्खदे०' इत्यादि ।

साँप दो प्रकारके होते हैं-(१) गन्धन और (२) अगन्धन, गन्धन सर्प उन्हें कहते हैं जो मन्त्रादिके बलसे विवश होकर काटे हुए स्थानसे उगले विषको फिर चूस लेते है । अगन्धन इनसे विपरीत होते है । उस अगन्धन कुलमे उत्पन्न हुए साँप अगन्धन सर्प कहलाते है। वे सर्प

આ વિષયને દૃષ્ટાન્ત દ્વારા સ્પષ્ટ કરે છે—પક્ખદ૦ ઇત્યાદિ

સાપ બે પ્રકારના થાય છે (૧) ગધન અને (૨) અગધન ગધન સર્પ એ કહેવાય છે કે જે મત્રાદિના બળથી વિવશ થઈને ડખેલા સ્થાનમા નાખેલુ ઝેર તેમાથી પાછુ ચૂસી લે છે અગધન સર્પ તેથી વિપરીત પ્રકારનો હોય છે એ અગધન કુળમા ઉત્પન્ન થએલો સાપ અગધન સર્પ કહેવાય છે એ સર્પ

मिव पुरुष पुरुषार्थसाधनाक्षम कुरुते, तस्मात् कार्यकारणभावनियामकाऽन्वय-व्यतिरेकाभावेन यावज्जीवन विषयसेवनतृष्णाप्रशम प्रति विषयसेवनस्य कारणताऽनुपपत्त्या तादृशोपशमाऽभिलापरता सयतानामनुपादेयत्व सिद्धम् ।

इत्थ पूर्वार्द्धेन बाह्यकामपरित्यागमुक्त्वा पश्चार्द्धेनाऽऽभ्यन्तरकामपरित्याग-माह-'छिंदाहि०' इति, शब्दादिविषयेषु द्वेष छिन्धि=मुञ्च, तथा राग=कामराग व्यपनय=दूरीकुरु, एवम्=एव कृते सति, सम्परायेे=जन्ममरणरूपत्वेन नाशमये ससारेऽपीति भावः । यद्वा परीषहोपसर्गरूपे सग्रामे,त्वमितिशेषः, सुखी=स्वात्मिकानन्दभाग् भविष्यसीति गाथार्थः ॥ ५ ॥

इतना निकम्मा बना देती है कि वह पुरुषार्थ-साधनमें सर्वथा असमर्थ हो जाता है, जैसे फन्देमे फँसा हुआ पुरुष कुछभी पुरुषार्थ नहीं कर सकता। इसलिए यहाँ कार्य-कारणभावका निश्चय करानेवाले अन्वय-व्यतिरेकका अभाव होनेसे यावज्जीवन विषय लालसाकी शान्तिके प्रति विषयसेवन कारण नहीं हो सकता। अतः यावज्जीवन विषयाभिलाषाकी शान्ति चाहनेवाले मुनियोंको यह उपादेय नही है।

इस प्रकार पूर्वार्द्धमें सूत्रकार बाह्य विषयोका त्याग बताकर उत्त रार्द्धमें अन्तरङ्ग- विषयोंके त्यागका उपदेश देते हैं कि-हे शिष्य! शब्दादि-विषयोंमें द्वेष तथा रागको दूर कर। ऐसा करनेसे तू,जन्म मरण स्वरूपवाले विनश्वर ससारमें सुखी, अथवा अनुकूल प्रतिकूल परीषह और उपसर्ग रूप सग्राममें विजयी होगा ॥५॥

અને તે પુરૂષાર્થ-સાધનમા સર્વથા અસમર્થ બની જાય છે, કે જેવી રીતે ફંદામા (હેડમા) ફસેલો પુરૂષ કાઇ પણ પુરૂષાર્થ કરી શકતો નથી તેથી કરીને અહીં કાર્ય-કારણભાવનો નિશ્ચય કરાવનારા અન્વય-વ્યતિરેકનો અભાવ હોવાથી જીવન પર્યંત વિષયલાલસાની શાન્તિની પ્રતિ વિષયસેવન કારણ થઇ શકતુ નથી, એટલે જીવનપર્યંત વિષયાભિલાષાની શાતિને ચાહનારા મુનિઓને માટે એ ઉપાદેય નથી

એ પ્રકારે પૂર્વાર્ધમા સૂત્રકાર બાહ્ય વિષયોના ત્યાગ બતાવીને ઉત્તરાર્ધમા અતરગ વિષયોના ત્યાગનો ઉપદેશ આપે છે કે-હે શિષ્ય! શબ્દાદિ- વિષયોમા દ્વેષ તથા રાગને દૂર કર એમ કરવાથી જન્મ મરણસ્વરૂપવાળા વિનશ્વર સસારમા સુખી, અથવા અનુકૂળ પ્રતિકૂળ પરીષહ તથા ઉપસર્ગના સગ્રામમા વિજયી થઇશ (૫)

अरिष्टनेमी भगवति प्रव्रजिते तत्कनिष्ठभ्राता रथनेमी राजीमतीं चकमे, सा तु कामवासनाविरक्ता कदाचन सुवासितसरसपायसं भुक्त्वा कस्मिंश्चित्कटोरके समुद्वम्य 'भुज्यता'-मित्युक्त्वा रथनेमये दत्तवती, रथनेमिना च 'कथमिदं वान्तं क्षत्रियवंशावतंसेन मया भोक्ष्यते' इत्युक्ता सा प्रोवाच-'तर्हि कथमरिष्टनेमिना त्वद्भ्रात्रा समुज्झिततया वान्ततुल्यां मामभिलष्यसि? न च त्रपसे' इति, ततश्च तद्वचनश्रवणसञ्जातवैराग्योऽसौ प्राव्राजीत्।

जब बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमिने दीक्षा ग्रहण कर ली तब उनके छोटे भाई रथनेमिने राजीमतीकी इच्छा की, किन्तु सती-शिरोमणि राजीमती, कामकी वासनासे विरक्त हो चुकी थी। उसने एक रोज सुगन्धित तथा स्वादिष्ट खीर खाई और एक कटोरेमें वमन करके वह रथनेमिको देने लगी और बोली-लीजिये खीर खाइए। रथ-नेमि यह सुनकर आगबबूले (क्रुद्ध) हो गये और बोले-'मैं क्षत्रियोंके वंशका भूषण होकर वमन की हुई खीर कैसे खाऊंगा?' राजीमतीजी कहने लगी-'अहो श्रेष्ठक्षत्रिय! तुम वमन की हुई खीर नहीं खाते तो, अपने बडे भाई श्रीअरिष्टनेमिद्वारा वमन की हुई यानी त्यागी हुई मुझको क्यों चाहते हो? मेरी इच्छा करते तुम्हें लज्जा नहीं आती?, सती राजीमतीकी हृदयमें चुभनेवाली बात सुनतेही रथनेमिको संसारसे विरक्ति होगई। उन्होंने दीक्षा लेली। कुछ दिनोंके बाद राजीमतीने भी

જ્યારે બાવીસમા તીર્થંકર ભગવાન્ અરિષ્ટનેમિએ દીક્ષા ગ્રહણ કરી, ત્યારે તેમના નાના ભાઈ રથનેમિએ રાજીમતીની ઈચ્છા કરી, પરન્તુ સતીશિરોમણિ રાજીમતી કામની વાસનાથી વિરકત થઈ ચૂકી હતી તેણે એક દિવસ સુગંધિત અને સ્વાદિષ્ટ ખીર ખાધી અને એક વાટકામાં તેનું વમન કરીને તે રથનેમિને આપવા લાગી અને બોલી "લ્યો, ખીર ખાઓ!" રથનેમિ એ સાંભળીને ક્રોધાવિષ્ટ થઇ ગયો અને બોલ્યો 'હું ક્ષત્રિયોના વંશનું ભૂષણ થઈને વમેલી ખીર કેમ ખાઈશ?' રાજીમતી કહેવા લાગી 'અહો શ્રેષ્ઠ ક્ષત્રિય! તમે વમેલી ખીર નથી ખાતા તો તમારા મોટાભાઈ શ્રીઅરિષ્ટનેમિએ વમેલી એટલે ત્યજેલી એવી મને કેમ ચાહો છો? ભોગ માટેની ઈચ્છા કરતા તમને શરમ નથી આવતી?' હૃદયને ડંખે એવી સતી રાજીમતીની વાત સાંભળતા જ રથનેમિને સંસારથી વિરકિત આવી ગઇ એમણે દીક્ષા લીધી કેટલાક દિવસ પછી રાજીમતીએ પણ

विषमितिशेषः भोक्तुं नेच्छन्ति=नाभिलषन्ति। तिर्यञ्चः सर्पा अपि वह्निप्रवेशा-पेक्षया दुःसहमनुचितं च वान्ताशनमेव मन्यन्ते। तस्मात् शिष्य! प्रवचनतत्त्वाभिज्ञेन त्वया निःसारतया परित्यक्तस्य विषयस्य पुनः स्वीकरणं न विधेयमिति भावः। मुर्मुरादिशान्तज्वालाग्निव्यवच्छेदार्थमाह-'जलियं' इति, अङ्गारोल्कादिव्यावृत्त्यर्थम् अग्नेर्वर्द्धिष्यमाणत्वद्योतनार्थं चाह-'धूमकेउं' इति, । तीव्रतमत्वबोधनार्थं 'दुरासयं' इति। अग्निपर्यायो ज्योतिःशब्दः पुंल्लिङ्गः। 'जलियं' मित्यादिविशेषणत्रयेण 'यत्राग्नौ प्रवेशे सद्यो भस्मसाद् भवति तादृशेऽप्यगन्धनजाः सर्पाः प्रविशन्ति किन्तु परित्यक्तविषमापातुं नैव वाञ्छन्ति, एवं सत्पुरुषा अपि परित्यक्तान् विषयान् मरणान्तेऽपि न पुनः सेवितुमिच्छन्तीति बोध्यते, इति गाथार्थः॥६॥

असह्य और जलती अग्निमें प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु त्यागे हुए विषको फिर नहीं चूसते।

हे शिष्य! जब तिर्यञ्च सर्प भी उगले हुएको निगलना नहीं चाहते तब तू तो प्रवचनमें प्रवीण है अतः एव निःसार समझ कर त्यागे हुए विषयोंका सेवन तुझे तो भूलकर भी नहीं करना चाहिए।

अग्निके 'ज्वलित' आदि तीन विशेषण दिये हैं, उनका अभिप्राय यह है कि-जिस अग्निमें प्रवेश करतेही तत्काल भस्म हो जावे उस प्रकारकी अग्निमें भी अगन्धन कुलके सर्प प्रवेश करजाते हैं पर त्यागे हुए विषको ग्रहण नहीं करते। इसी प्रकार कुलीन पुरुषभी त्यागे हुए विषयोंको प्राणसंकटमेंभी ग्रहण नहीं करते। अर्थात् वे दुष्कर्म करके क्षणभर भी जीना नहीं चाहते ॥६॥

અસહ્ય અને બળતી આગમાં પ્રવેશ કરે છે પરન્તુ એકવાર મૂકેલા ઝેરને પાછું ચૂસી લેતો નથી.

હે શિષ્ય! જ્યારે તિર્યંચ સર્પ પણ મૂકેલા ઝેરને પાછું ગળી જવા ઇચ્છતો નથી તો તું ત્યારે પ્રવચનમાં પ્રવીણ છે, એટલે નિ:સાર સમજીને ત્યજેલા વિષયોનું સેવન તારે તો ભૂલે-ચૂકયે-પણ ન કરવું જોઈએ.

અગ્નિના 'જ્વલિત' આદિ ત્રણ વિશેષણો આપેલા છે, તેનો હેતુ એ છે કે-જે અગ્નિમાં પ્રવેશ કરતાં જ તત્કાળ ભસ્મ થઈ જવાય એ પ્રકારના અગ્નિમાં પણ અગંધન કુળનો સર્પ પ્રવેશ કરે છે, પરન્તુ ત્યજેલા વિષને ગ્રહણ કરતો નથી એ પ્રમાણે કુલીન પુરૂષો પણ ત્યજેલા વિષયોને પ્રાણસંકટમાં પણ ગ્રહણ કરતા નથી અર્થાત્ તેઓ દુષ્કર્મ કરીને ક્ષણ ભર પણ જીવવા ઇચ્છતા નથી. (૬)

रसौ राजीमती पुनर्यदुक्तवती तदेव तिसृभिर्गाथाभिः सूत्रकारो ब्रूते-'धिरत्थु०' इत्यादि ।

मूलम्-धिरत्थु ते जसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।
वतं इच्छसि आवेउं, सेय ते मरणं भवे ॥७॥

छाया—धिगस्तु त्वा (ते) यशःकामिन्, यस्त्वं जीवितकारणात् ।
वान्तमिच्छस्यापातुं, श्रेयस्ते मरणं भवेत् ॥७॥
रथनेमिके प्रति राजीमती कहती है—

सान्वयार्थः-जसोकामी=हे यशके अभिलाषी ते=तुझे धिरत्थु=धिक्कार हो, जो=जो तं=तू जीवियकारणा=असंयमजीवन सुखके लिये वंतं=वमन किये -त्यागे हुएको आवेउं=पीना इच्छसि=चाहता है, (इससे तो) ते=तेरा मरणं= मरजाना सेयं=अच्छा भवे=है । अर्थात्-संयम धारण करके फिर असंयममें आना अत्यन्त निन्दनीय है, और उस असंयमकी अपेक्षा संयमी अवस्थामें मृत्यु होजाना अच्छा है ॥७॥ देख—

टीका-कामयते=वाञ्छति तच्छीलः कामी, यशसः=संयमस्य कीर्त्तर्वा कामी यशःकामी, तत्सम्बुद्धौ हे यशःकामिन्!, यद्वा अकारच्छेदाद् हे अयशःकामिन्=

कुछ कहा उसे सूत्रकार तीन गाथाओंसे कहते हैं- 'धिरत्थु०' इत्यादि ।

हे यशके अभिलाषी ? तुझे धिक्कार है, जो असंयम जीवनके सुखके लिए वमन किये हुएको खाना चाहता है, इस प्रकारके जीवनसे मर जाना ही अच्छा है ।

हे यश अर्थात् संयम अथवा कीर्त्तिकी इच्छा करनेवाले ! अथवा हे असंयम और अपयशके कामी ! तुझे धिक्कार है, तू अत्यन्त निन्दाका

રમણીય રાજીમતીએ જે કાંઈ કહ્યુ તે વાત સૂત્રકાર ત્રણ ગાથાઓમા કહે છે — ધિરત્થુ૦ ઈત્યાદિ

હે યશના અભિલાષી ! તને ધિક્કાર છે, જે અસયમ જીવનના સુખને માટે વમેલાને ખાવા ઇચ્છે છે, એ પ્રકારના જીવનથી તો મરવુ જ વધારે સારૂ છે યશ અર્થાત્ સયમ અથવા કીર્તિની ઇચ્છા કરનારા !, અથવા હે અસયમ અને અપયશના કામી ! તને ધિક્કાર છે, તુ અત્યત નિંદાને પાત્ર છે અથવા હે કામી !

अथैकदा गृहीतप्रव्रज्या सा राजीमती साध्वीभिः परिवृता रैवतकपर्वतसमवसृतं भगवन्तमरिष्टनेमिं वन्दितुं व्रजन्ती मध्येमार्गं जलधरवृष्टमहाजलमुशलधारया-ऽऽर्द्रगात्रैकाकिनी काकतालीयन्यायेन तदेव गिरिकन्दरमाससाद, यत्रासौ प्रव्रजितो रथनेमिरपि ततः पूर्वं गत्वा स्थित आसीत्, तमनवलोक्यैव 'विविक्तोऽयं प्रदेश' इति विचार्याऽऽर्द्रवस्त्राणि प्रसारयामास। तदानीं तां यथाजातां (नग्नां) विलोक्य भग्नाऽभ्यन्तरङ्गोऽनङ्गोपद्रुतचित्तवृत्तिर्निवृत्तिपथविच्युतो रथनेमिः पुना रथनेमिवद्भ्रान्तभावः समपद्यत। तं भूयो जातकाममालोक्य प्रकामकमनीयाकृति-

---

दीक्षा लेली। राजीमती, बहुतसी साध्वियोंके परिवारसे परिवृत होकर रैवतक पर्वतपर पधारे हुए भगवान् अरिष्टनेमिको वन्दना करने गई तब मार्गमें अचानक ही पानीकी मूसलधार वर्षा होने लगी, सारा शरीर और वस्त्र, पानीसे भीग गया। सयोगसे राजीमतीने भी उसी गुफामे प्रवेश किया जिसमें रथनेमि पहलेसे ही ठहरे हुए थे। जिस स्थानपर रथनेमि बैठे थे उधर दृष्टि न पडनेके कारण वे दृष्टिगोचर न हुए। राजीमतीने एकान्त स्थान समझ कर भीगे कपडे फैला दिये। राजीमतीको कपडेरहित देखकर रथनेमिका चित्त चलित होगया। उनके मन पर काम विकारने आक्रमण कर लिया। वे सयम मार्गसे च्युत होगये। रथकी नेमि (पहिये) की भाँति उनका चित्त घूमने लगा। रथनेमिको इस प्रकार कामातुर देखकर रतिसी रमणीय राजीमतीने जो

દીક્ષા લીધી રાજીમતી અનેક સાધ્વીઓના પરિવારથી વિંટાઇને રૈવતક પર્વત પર પધારેલા ભગવાન્ અરિષ્ટનેમિને વદના કરવા ગઇ, ત્યારે માર્ગમા અચાનક મૂશળધાર વરસાદ વરસવા લાગ્યો તેનુ આખુ શરીર અને વસ્ત્રો પાણીથી ભીંજાઇ ગયા સયોગવશ રાજીમતીએ એજ ગુફામા પ્રવેશ કર્યો કે જે ગુફામા રથનેમિ પહેલેથી આવીને રહ્યા હતા જે સ્થાન પર રથનેમિ બેઠા હતા તે સ્થળ પર દષ્ટિ ન પડવાને લીધે તે રાજીમતીને દષ્ટિગોચર ન થયા તેથી તે એકાન્ત પ્રદેશ જાણીને પોતાના ભીંજાયલા લુગડા ફેલાવી દીધા ત્યારે તે રાજીમતીને વસ્ત્ર રહિત જોઇને રથનેમિનુ ચિત્ત ચલિત થઇ ગયુ એમના મન પર કામવિકારે આક્રમણ કર્યું તે સયમમાર્ગથી ભ્રષ્ટ થઈ ગયા રથની નેમિ (પૈડુ)ની પેઠે તેમનુ ચિત્ત ભ્રમવા લાગ્યુ રથનેમિને એ પ્રમાણે કામાતુર જોઇને રતિ જેવી

होकर सजम=सयमको चर=पालो। भावार्थ-राजीमती रथनेमिसे कहती है कि हम दोनो उच्च कुलोमें उत्पन्न हुए है, अतः उगले हुए विषको वापिस पीजाने-वाले गन्धन सापोंके समान हमको नीच न होना चाहिए ॥ ८ ॥

टीका—'अह च' इत्यादि। चद्वय समुच्चयार्थम्, हे रथनेमे! अह=राजीमती भोगराजस्य=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य अस्मीतिशेषः, अह भोगराजस्य पौत्रीति भावः। त्व च अन्धकवृष्णेः=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य असि, अन्धकवृष्णिपौत्रोऽसीत्यर्थः। ततः किं? तदाह-कुले=वशेऽर्थान्निष्कलङ्के गन्धनौ=गन्धनकुलसम्भूतसर्पसदृशौ, 'आवा' मिति गम्यते, माभूव=नभवेव, तस्मात् निभृतः=निश्चलो विषयादिभिरक्षोभ्यः सन् सयमम्=अनश्वरसुखसाधनभूत निरवद्यक्रियाऽनुष्ठान चर=पालय। इति गाथार्थः८

मूलम्—जइ त काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धु व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥ ९ ॥

छाया—यदि त्व करिष्यसि भाव, या या द्रक्ष्यसि नारीः।
वाताविद्ध इव हडो,-ऽस्थितात्मा भविष्यसि ॥ ९ ॥

सान्वयार्थः-जइ=यदि त=तुम जा जा=जो-जो नारिओ=स्त्रीको दिच्छ-सि=देखोगे (उन उनपर) भाव=बुरे विचार काहिसि=करोगे तो वायाविद्धुव्व=

"अह च' इत्यादि। हे रथनेमि! मै (राजीमती) भोगराजकी पोती और उग्रसेनकी बेटी हूँ, और तुम अन्धकवृष्णिके पौत्र तथा समुद्रविजयके पुत्र हो, इसलिए दोनोही निर्मल कुलोंमे उत्पन्न हुए हैं। हमें गन्धन कुलमें उत्पन्न होने वाले सर्पोके समान नहीं होना चाहिये। अत विषय आदिको त्याग करके अनन्त सुखके कारणभूत निरतिचार सयमका पालन करो ॥८॥

अह च ઈત્યાદિ હે રથનેમિ! હુ (રાજીમતી) ભોગરાજની પૌત્રી અને ઉગ્રસેનની પુત્રી છુ, અને તમે અધકવૃષ્ણિના પૌત્ર તથા સમુદ્રવિજયના પુત્ર છો, એ રીતે આપણે બેઉ નિર્મળ કુલોમા ઉત્પન્ન થયા છીએ આપણે ગધન કુળમા ઉત્પન્ન થએલા સર્પોના જેવા ન થવુ જોઇએ માટે વિષય આદિને ત્યજીને અનત સુખના કારણભૂત નિરતિચાર સયમનુ પાલન કરો (૮)

हे असयमापयशोऽर्थिन् ! त्वा धिगस्तु, निन्द्योऽसि त्वमित्यर्थः 'ते' इति द्वितीयार्थे षष्ठी, यद्वा 'ते' इति षष्ठ्यन्तमेव, तत्र 'पौरुष'मित्यस्य शेषः, धिगित्यनेन सम्बन्धः, ते=तव पौरुष धिगित्यर्थः । यद्वा हे कामिन् ! ते=तव यशः=' अहो धन्योऽय तीव्रतपःसयमव्रतपरिपालको महात्मे '-त्येव लोकप्रतीता कीर्त्तिम् , अथवा अयश = मा दृष्ट्वैव दुष्टचेष्टनरूप पाप धिगस्त्वित्यर्थः, इति त्रयम् , यस्त्व जीवितकारणात्= असयमजीवितसुखार्थमिति भावः, वा त=भगवता परित्यक्तत्वाद्वान्तसदृशीं माम् , यद्वा सयमसेवित्वेन परित्यक्तस्य विषयस्यैवमभिलापोदयाद्वान्ततुल्य विषयम् आपातुम्=उपसर्गवशेन धात्वर्थभेदादुपभोक्तुम् इच्छसि=कामयसे, ते=तव मरण= मृत्युः श्रेयः=प्रशस्य श्रेष्ठ भवेत् , न पुनरित्थमनाचरणीयाऽऽचरणमिति गाथार्थः ।७।

मूलम्-अह[1] च[2] भोगरायस्स[4], त[3] च[6] सि[5] अंधगवण्हिणो ।
मा[6] कुले[7] गधणा[8] होमो[10], सजम[12] निहुओ[11] चर[13] ॥ ८ ॥

छाया-अह च भोगराजस्य, त्व चासि अन्धकवृष्णेः ।
मा कुले गन्धनौ भूव, सयम निभृतश्चर ॥ ८ ॥

सान्वयार्थः-अह्=च=मैं (राजीमती) भोगरायस्स=भोगकुलकी हूँ, च=और त=तुम अधगवण्हिणो=अधकवृष्णिकुलके सि=हो, कुले=ऐसे उच्च कुलमें गधणा=(दोनो) गन्धन मा=नही होमो=होवें । (अत') निहुओ=निश्चल

पात्र है । अथवा हे कामी ! जगतमे तुम्हारी इस प्रकारकी जो कीर्ति फैली हुई है कि "यह रथनेमि मुनि, अत्यन्त उत्कृष्ट सयमका पालन करने-वाला महात्मा है" इस कीर्त्तिको धिक्कार है, क्योंकि तुम असयम रूप जीवितके लिए, भगवान् अरिष्टनेमिके द्वारा त्यागी हुई मुझको, अथवा सयम पालनके लिए त्यागे हुए विषयोंको फिर चाहते हो, तुम्हें मर जाना अच्छा है किन्तु असयमकी वाछा करना अच्छा नहीं है ॥७॥

જગતમા તારી એ પ્રકારની જે કીર્તિ ફેલાઇ છે કે 'આ રથનેમિ મુનિ અત્યત ઉત્કૃષ્ટ સયમનું પાલન કરનારા મહાત્મા છે,' એ કીર્તિને ધિક્કાર છે કેમ કે તમે અસયમરૂપ જીવિતને માટે, ભગવાન્ અરિષ્ટનેમિએ ત્યજેલી એવી મને, અથવા સયમપાલનને માટે ત્યજેલા વિષયોને પાછા ચાહો છો તમારે મરી જવુ જ સારૂ છે, પરન્તુ અસયમની વાછના કરવી સારી નથી (૭)

होकर संजम=संयमको चर=पालो। भावार्थ-राजीमती रथनेमिसे कहती है कि हम दोनो उच्च कुलोमें उत्पन्न हुए हैं, अतः उगले हुए विषको वापिस पीजानेवाले गन्धन सापोंके समान हमको नीच न होना चाहिए ॥ ८ ॥

टीका—'अहं च' इत्यादि। चद्वय समुच्चयार्थम्, हे रथनेमे! अहं=राजीमती भोगराजस्य=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य अस्मीतिशेषः, अहं भोगराजस्य पौत्रीति भावः। त्वं च अन्धकवृष्णेः=तन्नाम्ना प्रसिद्धस्य असि, अन्धकवृष्णिपौत्रोऽसीत्यर्थः। ततः किं? तदाह—कुले=वंशेऽर्थान्निष्कलङ्के गन्धनौ=गन्धनकुलसम्भूतसर्पसदृशौ, 'आवा' मिति गम्यते, माभूव=नभवेव, तस्मात् निभृतः=निश्चलो विषयादिभिरक्षोभ्यः सन् संयमम्=अनश्वरसुखसाधनभूतं निरवद्यक्रियाऽनुष्ठानं चर=पालय। इति गाथार्थः८

मूलम्—जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धु व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥ ९ ॥

छाया—यदि त्वं करिष्यसि भावं, या या द्रक्ष्यसि नारीः।
वाताविद्ध इव हडो,-ऽस्थितात्मा भविष्यसि ॥ ९ ॥

सान्वयार्थ.—जइ=यदि तं=तुम जा जा=जो-जो नारिओ=स्त्रीको दिच्छसि=देखोगे (उन उनपर) भावं=बुरे विचार काहिसि=करोगे तो वायाविद्धु व्व=

"अहं च' इत्यादि। हे रथनेमि! मै (राजीमती) भोगराजकी पोती और उग्रसेनकी बेटी हूँ, और तुम अन्धकवृष्णिके पौत्र तथा समुद्रविजयके पुत्र हो, इसलिए दोनोही निर्मल कुलोमे उत्पन्न हुए हैं। हमें गन्धन कुलमें उत्पन्न होने वाले सर्पोके समान नहीं होना चाहिये। अतः विषय आदिको त्याग करके अनन्त सुखके कारणभूत निरतिचार संयमका पालन करो ॥८॥

अहं च ઇત્યાદિ હે રથનેમિ! હુ (રાજીમતી) ભોગરાજની પૌત્રી અને ઉગ્રસેનની પુત્રી છુ, અને તમે અધકવૃષ્ણિના પૌત્ર તથા સમુદ્રવિજયના પુત્ર છો, એ રીતે આપણે બેઉ નિર્મળ કુલોમા ઉત્પન્ન થયા છીએ આપણે ગધન કુળમા ઉત્પન્ન થએલા સર્પોના જેવા ન થવુ જોઇએ માટે વિષય આદિને ત્યજીને અનત સુખના કારણભૂત નિરતિચાર સયમનુ પાલન કરો (૮)

हवासे उडाये हुए हडो=हडवनस्पतिकी भाँति अट्ठिअप्पा=अस्थिर आत्मावाले-चचलचित्त भविस्ससि=हो जाओगे ॥९॥

टीका-'जइ तं०' इत्यादि। त्वं या या नारीः=स्त्रीः द्रक्ष्यसि=अवलोकिष्यसे यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात् 'तासु तासु' यदि भावं=कलुषिताध्यवसायतया दुष्टां दृष्टिं करिष्यसि तदा वाताविद्धः=वातेन=वायुना आविद्धः=प्रेरितः हडः=निर्मूलो वनस्पतिविशेष इव, शैवालमिव वा अस्थितात्मा=अस्थितः=अस्थिरः आत्मा यस्य स तथोक्तो भविष्यसि, जन्म-जरा-मरणजन्य-जगदटवीपर्यटनदुःखपरम्परा-निराकरणकारणेभ्यः संयमगुणेभ्यः प्रस्खल्याऽपारसंसारपारावारे विषयवासना-वातविकम्पितचेताः शान्तिं न गमिष्यसीति भावः, इति गाथार्थः ॥९॥

एवं राजीमत्या प्रतिबोधितो रथनेमिर्धर्मनिष्ठोऽभवदित्याह-'तीसे सो०' इत्यादि।

मूलम्—तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाइ सुभासियं।
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥१०॥

'जइ तं' इत्यादि। यदि तुम जिस जिस स्त्रीको देखोगे उन सब पर विकारदृष्टि डालोगे तो आंधीसे उडाये हुए हड वनस्पति अथवा सेवालकी तरह अस्थिर हो जाओगे, अर्थात् जन्म-मरणसे होनेवाले जगत्रूपी अटवीमें भ्रमण करनेके कष्टोंको दूर करनेवाले संयमगुणोंसे च्युत होनेके कारण संसाररूप अपार समुद्रमें विषयवासनारूपी हवासे चचलचित्त होकर भटकते फिरोगे ॥९॥

राजीमतीजीके द्वारा प्रतिबोध पाकर रथनेमि संयममें स्थिर होगया। इसी विषयको सूत्रकार प्रतिपादन करते हैं- 'तीसे०' इत्यादि।

जइ तं० ઇત્યાદિ, જો તમે જે જે સ્ત્રીઓને જોશો તે બધી પર વિકારદૃષ્ટિ નાખશો તો આંધીથી ઉડેલી હડ વનસ્પતિ અથવા શેવાલની પેઠે અસ્થિર થઈ જશો, અર્થાત્ જન્મ-મરણથી ઉત્પન્ન થતા જગતરૂપી અટવીમાં ભ્રમણ કરવાના કષ્ટોને દૂર કરનારા સંયમગુણોથી ભ્રષ્ટ થવાને લીધે સંસારરૂપ અપાર સમુદ્રમાં વિષયવાસનારૂપી હવાથી ચંચળ ચિત્તવાળા થઈને ભ્રમણ કરતા ફરશો. (૯)

રાજીમતીથી એવો પ્રતિબોધ પામીને રથનેમિ સંયમમાં સ્થિર થઈ ગયા એ વિષયનું પ્રતિપાદન સૂત્રકાર કરે છે—तीसे० ઇત્યાદિ

छाया-तस्याः स वचनं श्रुत्वा, संयतायाः सुभाषितम् ।
अङ्कुशेन यथा नागो, धर्मे सम्प्रतिपातितः ॥ १० ॥

सान्वयार्थः-सो=वह (रथनेमि) तीसे=उस संजयाइ=संयमवती (राजीमती) के सुभासियं=सुभाषित वयणं=वचनको सोच्चा=सुनकर धम्मे=धर्ममें संपडिवाइओ=आगया-प्राप्त होगया, जहा-जैसे अंकुसेण=अंकुशसे नागो=हाथी मार्गमें आ जाता है ॥ १० ॥

टीका-सः=रथनेमिः, संयतायाः=संयमवत्याः तस्याः=राजीमत्याः, सुभाषितमिति वैराग्यसारगर्भितत्वात् वचनं=सदुपदेशं, श्रुत्वा=समाकर्ण्य 'स्थितः' इति शेषः अन्यथा 'सम्प्रतिपातितः' इत्यनेन समानकर्तृकत्वाऽभावात् क्त्वाप्रत्ययोत्पत्तिरसङ्गता स्यात्, यद्वा 'सम्प्रतिपातित' इत्यस्य णिजर्थाऽविवक्षया 'सम्प्रतिपन्नः' इत्यर्थः कर्त्तव्यः। अङ्कुशेन=हस्तिचालनार्थ-लौहमयवक्राग्रास्त्रेण नागो यथा=हस्तीव, धर्मे=जिनोक्तप्रवचनरूपे, सम्प्रतिपातितः=संस्थापितः संस्थित इति वा, यथाऽङ्कुशेन प्रशमितमदो मतङ्गजोऽनुकूलं मार्गमवलम्बते तथा राजीमतीवचनेन दूरीकृतमदनमदो रथनेमिरपि जिनोक्तधर्ममार्गमवलम्बितवानिति भावः ॥१०॥

जैसे अङ्कुशसे हाथी ठीक मार्ग पर आजाता है वैसे ही रथनेमि संयमवती राजीमतीके वैराग्य-परिपूर्ण वचन (सदुपदेश) सुनकर जिनेन्द्र भगवानके प्रवचन-रूप धर्म-मार्गमे स्थित हो गये, अर्थात् जैसे महावतके अङ्कुशसे मदोन्मत्त हाथीका मद चकनाचूर हो जाता है और वह सन्मार्ग पर आजाता है, उसी प्रकार राजीमती-रूपी महावतके वचन-रूपी अङ्कुशसे रथनेमि रूपी हाथीका विषयवासना रूपी मद दूर होगया और वे जिनोक्त धर्ममार्गमें प्रवृत्त होगये ॥१०॥

જેમ અંકુશથી હાથી બરાબર માર્ગ પર આવી જાય છે, તેમજ રથનેમિ સંયમવતી રાજીમતીના વૈરાગ્યપૂર્ણ વચન (સદુપદેશ) સાંભળીને જિનેન્દ્ર ભગવાનના પ્રવચનરૂપ ધર્મમાર્ગમાં સ્થિર બની ગયા અર્થાત્ જેમ મહાવતના અંકુશથી મદોન્મત્ત હાથીનો મદ ચૂર્ણ થઇ જાય છે, અને તે રાહ પર આવી જાય છે, તેમ રાજીમતીરૂપી મહાવતના વચનરૂપી અંકુશથી રથનેમિરૂપી હાથીનો વિષયવાસનારૂપી મદ દૂર થઈ ગયો અને તે જિનોક્ત ધર્મમાર્ગમાં પ્રવૃત્ત થઈ ગયા (૧૦)

सम्प्रत्युपसंहरन्नाह-'एवं करंति०' इत्यादि ।

मूलम्-एवं करंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ॥
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसुत्तमो ॥११॥ त्तिबेमि॥

छाया-एवं कुर्वन्ति सम्बुद्धाः, पण्डिताः प्रविचक्षणाः ॥
विनिवर्त्तन्ते भोगेभ्यो, यथा स पुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥ इति ब्रवीमि ॥

सान्वयार्थः-संबुद्धा=सत् असत् के विवेकी पंडिया=विषयदोषोंके ज्ञाता पवियक्खणा=आगमके मर्मज्ञ पुरुष एवं=ऐसा ही करंति=करते हैं, (वे) भोगेसु=भोगोंसे विणियट्टंति=निवृत्त होजाते हैं, जहा=जैसे से=वह पुरिसुत्तमो=पुरुषोंमें श्रेष्ठ (रथनेमि विषयोंसे निवृत्त हो गया) त्तिबेमि=(पूर्ववत्) । भावार्थ-जो विवेकी होते हैं वे विषयोंके दोषोंको जानकर उनका परित्याग कर देते हैं, जैसे रथनेमिने परित्याग कर दिया था ॥ ११ ॥

॥ इति द्वितीयाध्ययनस्य सान्वयार्थः ॥ २ ॥

टीका-सम्=सम्यग् बुद्धाः=बोधं प्राप्ताः हेयोपादेयज्ञानसम्पन्ना इत्यर्थः, सम्बुद्धत्वमेव विशेषयति-'पण्डिताः प्रविचक्षणाः' इति विशेषणाभ्याम् । तत्र पण्डिताः=विषयप्रवृत्तिदोषज्ञाः, प्रविचक्षणाः=विचक्षणश्रेष्ठाः आगममर्मवेदिनः प्राप्तचरणपरिणामा वेत्यर्थः, एवं=तथा कुर्वन्ति=समाचरन्ति । किं समाचरन्तीत्याह-'विणियट्टंति भोगेसु' इति, भोगेभ्यः=विषयेभ्यः विनिवर्त्तन्ते=उपरता भवन्ति, यथा सः=रथनेमिः, पुरुषोत्तमः=पुरुषेषु श्रेष्ठः ।

उपसंहार- 'एवं करंति०' इत्यादि ।

हेय और उपादेय वस्तुओंको सम्यक् प्रकार समझनेवाले संबुद्ध, विषयोंमें प्रवृत्तिके दोषोंके ज्ञाता, आगमके रहस्यको जाननेवाले अथवा चारित्रके फलको प्राप्त करनेवाले प्रविचक्षण मुनिजन ऐसे ही करते हैं,

ઉપસંહાર-एवं करंति० ઈત્યાદિ

હેય અને ઉપાદેય વસ્તુઓને સમ્યક્ પ્રકારે સમજનારા સંબુદ્ધ, વિષયોમાં પ્રવૃત્તિના દોષોના જ્ઞાતા, આગમના રહસ્યને જાણનારા અથવા ચારિત્રના ફળને પ્રાપ્ત કરનારા પ્રવિચક્ષણ મુનિજનો એમ જ કરે છે, અર્થાત્ ભોગોથી નિવૃત્ત

ननु कथमसौ पुरुषोत्तमो यो गृहीतसंयमो भ्रातृजायामचीकमत? उच्यते—विचित्रा खलु कर्मणां गतिः, गृहीतसंयमस्यापि रथनेमेश्चेतसि विषयवासना मोहनीयकर्मोदयवशादुद्बुद्धा, परन्तु वैराग्यवारिधारावरेण राजीमतीवचनेन यदा विषयवलयदावानलजनिततापकवलितो म्लानतामापन्नो रथनेमिचेतस्तरुः सेचितस्तदैव पुनरसौ संयमामृतरसास्वादनपरो विषवद्विषयविविधदोषाकलनेन

अर्थात् भोगोंसे निवृत्त होते हैं जैसे कि–पुरुषोंमें उत्तम रथनेमिने भोगोंकी निवृत्ति की।

प्रश्न–जिन्होंने संयम लेकर भी विषयवासनामें लीन होकर परम अनुचित जो कि गृहस्थभी नहीं करता ऐसी साक्षात् अपने-भाईकी भार्यापर कुदृष्टि करके भोगोंकी प्रार्थना की, विषयभोगोंकी इच्छामात्र भी करना चारित्रको मलिन करनेवाला और आत्माको दुर्गतिदाता है तो फिर भगवानने विषयानुरागी रथनेमिको पुरुषोंमें उत्तम कैसे कहा?

उत्तर–कर्मोंकी गति विचित्र होती है, मोहकर्मके उदयसे यद्यपि विषयभोगकी अभिलाषा हुई तो भी विषयरूपी दावानलसे उत्पन्न संतापसे संतप्त हो मुरझाया हुआ रथनेमिका चित्त-रूपी वृक्ष वैराग्य-रसकी वरसा करनेवाले राजीमतीजीके वचनरूपी मेघसे सींचे जाने पर शीघ्रही संयमरूप अमृतरसके आस्वादनमें तत्पर होगया। 'विषय परम कटुक फल देनेवाले और आत्माको चतुर्गतिमें परिभ्रमण करानेवाले हैं'

થાય છે, કે જેવી રીતે પુરૂષોમાં ઉત્તમ રથનેમિએ ભોગોની નિવૃત્તિ કરી

પ્રશ્ન—જેમણે સંયમ લઇને પણ વિષયવાસનામાં લીન થઈને પરમ અનુચિત–કોઇ ગૃહસ્થ પણ ન કરે એવી, સાક્ષાત્ પોતાના ભાઇની ભાર્યા પર કુદૃષ્ટિ કરીને ભોગની પ્રાર્થના કરી, વિષયભોગોની ઇચ્છા માત્ર પણ ચારિત્રને મલિન કરનારી અને આત્માને દુર્ગતિ દેનારી છે, તો પછી ભગવાને તેવા વિષયાનુરાગી રથનેમિને પુરૂષોમાં ઉત્તમ કેવી રીતે કહ્યો?

ઉત્તર—કર્મોની ગતિ વિચિત્ર હોય છે મોહકર્મના ઉદયથી જો કે વિષયભોગની અભિલાષા ઉત્પન્ન થઇ, તોપણ વિષયરૂપી દાવાનળથી ઉત્પન્ન થએલા સંતાપથી સંતપ્ત થઇને બેભાન બનેલા રથનેમિનું ચિત્તરૂપી વૃક્ષ, વૈરાગ્ય રસની વૃષ્ટિ કરનારા રાજીમતીના વચનરૂપી મેઘથી સિંચિત થતા પછી, તુરતજ સંયમરૂપી અમૃતરસનું આસ્વાદન કરવામાં તત્પર બની ગયુ 'વિષયો અત્યંત કડવા ફળ દેનારા અને આત્માને ચતુર્ગતિમાં પરિભ્રમણ કરાવનારા છે' એ પ્રકારની પરા

शान्तिमुपगतः परमदुश्चरतपःसेवनपरायणो झटिति बभूवेति विषयसान्निध्येऽपि चित्तनिग्रहकारित्वेन झटिति विषयोपरतत्वेन च पुरुषोत्तमत्वं तस्य निर्बाधमेवेत्यल पल्लवितेन ।

न चाधुनिकरथनेमेरुदाहरणोपलम्भादिदं दशवैकालिकसूत्रमनित्यं स्यादिति वाच्यम्, पर्यायार्थिकनयमपेक्ष्याऽनित्यत्वेऽपि द्रव्यार्थिकनयापेक्षया नित्यत्वात् ।

इस प्रकारकी परम वैराग्यभावना द्वारा, एकान्त स्थानमें विषयका सान्निध्य रहनेपर भी इन्द्रिय निग्रह करके विषयोंको विषतुल्य समझ कर तत्काल त्याग दिया और उग्र तप-संयमको पालन किया, इसलिये भगवानने उन्हे पुरुषोंमें उत्तम कहा है ॥

प्रश्न–हे गुरो ! प्रवचन अनादि और नित्य है, क्योंकि आचाराग आदि बत्तीसों शास्त्र अनादिकालसे चले आते हैं, और यह दशवैकालिक सूत्र भी उन्ही बत्तीसोंमें है तो आधुनिक रथनेमि और राजीमतीका उदाहरण आनेसे तो यह सादि और अनित्य सिद्ध होता है ।

उत्तर–हे शिष्य ! पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे प्रत्येक पदार्थ अनित्य है, इसी नयकी अपेक्षा दशवैकालिक भी अनित्य है, किन्तु द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे वह नित्य है । अर्थात् दशवैकालिकमे प्ररूपित मुनिका आचार सर्वज्ञोक्त है । सब सर्वज्ञोंका कथन एकहीसा होता है । जिस आचारका प्ररूपण चरम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीने

વૈરાગ્યભાવના દ્વારા એકાન્ત સ્થાનમા વિષયનું સાન્નિધ્ય હોવા છતા પણ ઇન્દ્રિય નિગ્રહ કરીને વિષયોને વિષતુલ્ય સમજીને તત્કાળ ત્યજી દીધા અને ઉગ્ર તપ સંયમનું પાલન કર્યું, તેથી ભગવાને તેમને પુરૂષોમા ઉત્તમ કહ્યા છે

પ્રશ્ન—હે ગુરો ! પ્રવચન અનાદિ અને નિત્ય છે કારણ કે આચારાગ આદિ બત્રીસે શાસ્ત્ર અનાદિકાળથી ચાલ્યા આવે છે અને આ દશવૈકાલિક સૂત્ર પણ એ બત્રીસમાનું જ છે, તો આધુનિક રથનેમિ અને રાજીમતીનું ઉદાહરણ આવવાથી તો એ સૂત્ર સાદિ અને અનિત્ય સિદ્ધ થાય છે

ઉત્તર—હે ! શિષ્ય પર્યાયાર્થિક નયની અપેક્ષાથી પ્રત્યેક પદાર્થ અનિત્ય છે એ નયની અપેક્ષાએ દશવૈકાલિક પણ અનિત્ય છે પરન્તુ દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાથી તે નિત્ય છે અર્થાત્ દશવૈકાલિકમા પ્રરૂપેલો મુનિનો આચાર સર્વજ્ઞોક્ત છે બધા સર્વજ્ઞોનું કથન એકસરખુ જ હોય છે જે આચારનું પ્રરૂપણ ચરમ તીર્થંકર શ્રી મહાવીર સ્વામીએ કર્યું છે તેની જ પ્રરૂપણા અનાદિ કાળથી બધા

'इति ब्रवीमि' इति पूर्ववत् ॥ इति गाथार्थः ॥ ११ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-
श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां द्वितीय
श्रामण्यपूर्वकाख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ २ ॥



किया है उसीकी प्ररूपणा अनादिकालसे सब सर्वज्ञ करते आये हैं अत एव द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे यह दशवैकालिक अनादि और नित्य है।११।

इति हिन्दीभाषानुवादमें श्रामण्यपूर्वकाख्य
द्वितीय अध्ययन समाप्त हुआ ॥२॥



સર્વજ્ઞો કરતા આવ્યા છે એટલે દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાથી આ દશવૈકાલિક અનાદિ અને નિત્ય છે (૧૧)

ઇતિ 'શ્રામણ્યપૂર્વક' નામના બીજા અધ્યયનનુ
ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૨)





कोऽप्यात्मीय इति, रागादयश्च जीवमृगवागुरायमाणत्वान्महाशत्रव इत्यहो ! शत्रु-हस्तगतोऽहं स्वकीयाऽभ्युदयनिःश्रेयससाधनाक्षमः सञ्जातोऽस्मि, धिङ् माम् ।
उक्तश्च—

"इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं,
स्फुरति परिमलोऽयं स्पर्श एषोऽङ्गनानाम् ।
इति हतपरमार्थै-रिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणः,
स्वहितकरणधूर्तैः पञ्चभिर्वञ्चितोऽस्मि ॥१॥" इति,'

एवंविधविविधभावनाभिः सर्वथा रागादितो मुक्ताः विप्रमुक्तास्तेषाम्,

कर चुकी है, वास्तवमें संसारमें कोई भी मेरा नहीं है। यह रागादि दोष, जीवरूपी हरिणके लिए व्याधके समान होनेके कारण महान् शत्रु है। खेद है कि मैं उन वैरियोंके वशमें पडकर अपने परम अभ्युदय-स्वरूप मोक्षके साधनमें भी असमर्थ होगया हूँ मुझे धिकार है। कहा भी है—

"कैसा कर्णमधुर गीत है, कैसा नेत्रोंको लुभानेवाला नृत्य है, कैसा जिह्वाका प्रिय स्वाद है, कैसा नासिकाको आकर्षित करनेवाला सुगन्ध है और स्त्री आदिका स्पर्श कैसा सुखकारी है। इस प्रकार अनु-भव कराकर परमार्थका सत्यानाश करनेवाली अपना स्वार्थ साधनेमें धूर्त इन दगाबाज पाचों इन्द्रियोंने हाय! मेरी आत्मिक-सम्पत्तिसे मुझे वंचित कर दिया—मुझको लूट लिया ॥१॥"

इस प्रकारकी भावनाओं द्वारा राग आदि शत्रुओंसे सर्वथा मुक्त

ઓનો અનુભવ કરી ચૂકયો છે વાસ્તવમા સંસારમા કોઈપણુ મારૂ નથી, આ રાગાદિ દોષ જીવરૂપી હરણુને માટે વ્યાધ (પારધી)ની સમાન હોવાને કારણે મહાન્ શત્રુ છે, ખેદની વાત છે કે હુ એ વેરીઓને વશ પડીને પોતાના પરમ અભ્યુદય સ્વરૂપ મોક્ષના સાધનમા પણુ અસમર્થ બની ગયો છુ, મને ધિક્કાર છે કહ્યુ છે કે—

"કેવુ કર્ણુમધુર ગીત છે, કેવુ નેત્રોને લોભાવનારૂ નૃત્ય છે, કેવો જિહ્વાને પ્રિય સ્વાદ છે, કેવી નાકને આકર્ષિત કરનાર સુગંધ છે, અને સ્ત્રી આદિનો સ્પર્શ કેવો સુખકારી છે, એ પ્રમાણે અનુભવ કરાવીને પરમાર્થનું સત્યાનાશ વાળનારી પોતાનો સ્વાર્થ સાધવામા ધૂર્ત એ દગાબાજ પાચે ઇંદ્રિયોએ, હાય! મને મારી આત્મિક-સંપત્તિથી વંચિત કરી નાખ્યો—મને લુટી લીધો" (૧)

એ પ્રકારની ભાવનાઓ દ્વારા રાગાદિ શત્રુઓથી સર્વથા મુક્ત થનારા,

त्रायिणाम्=त्राण=स्वस्य परस्योभयस्य च रक्षण त्रायः, सोऽस्त्येषामिति त्रायिण,[1] प्रत्येकबुद्धाः स्वस्य, तीर्थङ्कराः परस्य, स्थविरा उभयस्येतीमे सर्वे त्रायिण उच्यन्ते। निर्ग्रन्थाना=बाह्याऽऽभ्यन्तरपरिग्रहरूपाद् ग्रन्थान्निर्गताः निर्ग्रन्थास्तेषाम्। महर्षीणाम्=महान्तश्च ऋषय इति महर्षयस्तेषाम्, यद्वा 'महर्षिणाम्' इतिच्छाया, महः=जन्मजरामरणदुःखरहितत्वेनैकान्तोत्सवरूपो मोक्षस्तम् ऋषन्ति=गत्यर्थधातूना प्राप्त्यर्थत्वात् प्राप्नुवन्तीत्येवशीला महर्षिणस्तीर्थङ्करगणधरादयस्तेषाम्, एतत्=द्वापञ्चाशता भेदैर्वक्ष्यमाणम्, अनाचीर्णम्=अनासेवितम्, अस्तीति शेषः। अत्र महर्षिणामित्यन्तेषु कर्तुः शेषत्वविषया षष्ठी। यतः सयमे सुस्थितात्मानोऽत एव विप्रमुक्ताः, यतो विप्रमुक्ता अतस्त्रायिणः, यतस्त्रायिणोऽतो निर्ग्रन्थाः, यतो निर्ग्रन्था अतो महर्षयः, इति यथोत्तर पूर्व-पूर्वस्य हेतुत्वेन भवति विशेषणसगतिरिति बोद्धव्यम्।

१ अत्र 'अत इनिठना'-विति मत्वर्थीय इनि', ताच्छील्यणिनिस्तु न, तस्य सुबन्तपूर्वपदकत्व एव प्रवृत्तेरिति वयम्॥

होनेवाले, ससारभ्रमणसे भयभीत भव्य जीवोंकी तथा आत्माकी रक्षा करनेवाले, बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहरूपी ग्रन्थिसे रहित, महान् ऋषि-तीर्थकर आदि या जन्म-जरा-मरणके दुःखोंसे रहित होनेके कारण एकान्त आनन्दस्वरूप मोक्षको प्राप्त करनेवाले मुनियोंके, आगे कहेजाने वाले बावन अनाचार (अनाचीर्ण) हैं। अर्थात् ये बावन अनाचार मुनियोंके सेवने योग्य नहीं है। यहाँ षष्ठी विभक्तिवाले अनेक विशेषण दिये गये हैं, उन सबमें पहले२ के विशेषण कारण हैं और आगे आगे के कार्य हैं। जैसे-सयममें भली भाँति स्थित होनेके कारण विप्रमुक्त हैं,

સસાર ભ્રમણથી ભયભીત ભવ્ય જીવોની તથા આત્માની રક્ષા કરનારા, બાહ્ય અને આભ્યતર પરિગ્રહરૂપી ગ્રથિથી રહિત, મહાન્ ઋષિ તીર્થકર આદિ, યા જન્મ જરા મરણના દુઃખોથી રહિત હોવાને કારણે એકાત આનદસ્વરૂપ મોક્ષને પ્રાપ્ત કરનારા મુનિઓને માટે, આગળ કહેવામા આવનારા બાવન અનાચાર (અનાચીર્ણ) છે અર્થાત્ એ બાવન અનાચાર મુનિઓને સેવવા યોગ્ય નથી અહીં છઠ્ઠી વિભક્તિવાળા અનેક વિશેષણો આપવામા આવ્યા છે, એ બધામા પહેલા-પહેલાના વિશેષણ કારણ છે અને પછી પછીના કાર્ય છે જેમકે-સયમમા સારી રીતે સ્થિત હોવાને કારણે વિપ્રમુક્ત છે, વિપ્રમુક્ત હોવાથી સ્વ પરના ત્રાતા

नन्वेतावता 'यद्यन्महापुरुषैरनाचीर्णं तत्तदनाचरणीयं, यद्यच्चाचीर्णं तत्तदाचरणीयमेवेत्यायातं ततश्च तीर्थङ्करार्थं सुरसम्पादितैरष्टविधमहाप्रातिहार्यैस्तीर्थङ्करा युक्ता इति वयमप्यस्मदर्थं सम्पादितैः कथं न युक्ता भवेमेति चेद्? भ्रान्तोऽसि, ते हि वीतरागत्वात् कल्पातीताः, वयं तु कल्पस्थिता इति, कल्पातीतानां तेषां जिनेश्वराणामष्टमहाप्रातिहार्याणि तीर्थङ्करगोत्रनामप्रकृत्युदयमहिम्ना प्रतिभासितानि भवन्ति, न तु तानि सुरैः सपाद्यन्ते, अत एव औपपातिकसूत्रे—

" आगासगएण चक्केण आगासगएण छत्तेण आगासियाहिं चामराहिं "

इत्यस्य व्याख्यायाम्—

विप्रमुक्त होनेसे स्व-पर के त्राता (रक्षक) हैं, त्राता होनेसे निर्ग्रन्थ हैं, निर्ग्रन्थ होनेसे महर्षि हैं।

शङ्का-इस गाथासे यह तात्पर्य निकला कि महापुरुषोंने जिस जिस का आचरण नहीं किया वह वह अनाचरणीय है, उन्होंने जिस जिसका आचरण किया वे सब आचरण करने योग्य है, यदि ऐसा ही है तो तीर्थङ्कर भगवान् देवनिर्मित आठ महाप्रातिहार्योंसे युक्त होते हैं इसलिए हम भी हमारे लिए बनाये हुए पदार्थोंसे युक्त क्यों न होवें?।

समाधान-हे वत्स! ऐसा नहीं है, क्यों कि वे वीतराग होनेसे कल्पातीत है, और हम कल्पस्थित हैं, इसलिए उन कल्पातीत जिनेश्वरों के तीर्थङ्करगोत्र नाम-प्रकृतिके उदयकी महिमासे अष्ट महाप्रातिहार्य केवल भासित होते है किन्तु देवताओंसे समर्पित नहीं किये जाते, अत एव औपपातिक सूत्रके "आगासगएण चक्केण" इत्यादि पदोंकी

(રક્ષક) છે, ત્રાતા હોવાને કારણે નિર્ગ્રંથ છે, નિર્ગ્રંથ હોવાને લીધે મહર્ષિ છે

શંકા—આ ગાથામાંથી એ તાત્પર્ય નીકળ્યું કે-મહાપુરૂષોએ જેનું જેનું આચરણ નથી કર્યું છે તે અનાચરણીય છે, અને તેમણે જેનું જેનું આચરણ કર્યું તે બધું આચરણ કરવા યોગ્ય છે જો એમ છે તો તીર્થંકર ભગવાન્ દેવ નિર્મિત આઠ મહાપ્રાતિહાર્યોથી યુક્ત હોય છે, તેમ આપણે પણ આપણા માટે બનાવેલા પદાર્થોથી યુક્ત કેમ ન થવું?

સમાધાન—હે વત્સ! એમ નથી, કારણ કે તે વીતરાગ હોવાથી કલ્પાતીત છે, અને આપણે કલ્પસ્થિત છીએ એ કલ્પાતીત જિનેશ્વરોના તીર્થંકર-ગોત્ર-નામ પ્રકૃતિના ઉદયના મહિમાથી આઠ મહાપ્રાતિહાર્ય કેવળ ભાસિત થાય છે, પરન્તુ દેવતાઓ તરફથી સમર્પિત થતા નથી, એટલે ઓપપાતિક સૂત્રના आगासगएण

"आगासगएण चक्केण"-ति आकाशवर्तिना चक्रेण=धर्मचक्रेण, 'आगासगएण छत्तेण'-ति छत्रत्रयेण 'आगासियाहिं'-ति, आकाशम्=अम्बरम् इताभ्या=प्राप्ताभ्याम् आकर्षिताभ्या वा=आकृष्टाभ्यामुत्पाटिताभ्यामित्यर्थः, 'चामराहिं'-ति चामराभ्या प्रकीर्णकाभ्या प्राकृतत्वाच्च लिङ्गव्यत्ययः, 'लक्षितः इति सर्वत्र गम्यम्" इत्युक्तम् ।

अत्र 'लक्षितः' इत्युक्त्याऽन्यकृत इति स्पष्ट निराक्रियते, यथा—अर्द्धमागधभाषया प्रवृत्ताऽपि तीर्थङ्करवाग् समवसरणगताना देवाना मनुष्याणा तिरश्चा च स्व-स्व-भाषानुरूपा प्रतिभाति किन्तु न सा तादृशी, तस्मादस्मादृशा तदसदृशा तदुक्तकल्प एव स्यातव्य, न तु तथाऽनुकरणीयमिति दिक् इति गाथार्थः ॥ १ ॥

अनाचीर्णान्याह—'उद्देसिय०' इत्यादि,

व्याख्यामें कहा है—"आकाशस्थित चक्र, छत्र और चामरोंसे भगवान् लक्षित होते हैं"। यहाँ पर 'लक्षित' ऐसा कहनेसे साफ२ यह दिखलाया गया है कि—औरोंको छत्र चामरादिसे युक्त भगवान् लक्षित होते हैं किन्तु वे चक्र-छत्रादि अन्य-(देव)-कृत नही हैं। जैसे अर्द्धमागधीभाषारूप भी तीर्थङ्कर की वाणी, समवसरणमे आये हुए देव मनुष्य तिर्यंचोंकी अपनी अपनी भाषाके स्वरूपमे ही प्रतीत होती है किन्तु वस्तुत' वह वैसी नहीं है, अत एव उन कल्पातीतोंकी तुलनामें नहीं पहुचे हुए हम छद्मस्थोंको तो उनके कहे हुए कल्पमे ही रहना चाहिए, न कि उनका अनुकरण करना चाहिए ॥१॥

अथ (५२)—अनाचीर्णोंको दिखलाते हैं—'उद्देसिय०' इत्यादि ।

चक्केण ઇત્યાદિ પદોના વ્યાખ્યાનમા કહ્યુ છે કે– "આકાશસ્થિત ચક્ર, છત્ર અને ચામરોથી ભગવાન્ લક્ષિત થાય છે" અહીં 'લક્ષિત' કહેવાથી એમ સાફ સાફ બતાવ્યુ છે કે–બીજાઓને છત્ર ચામરાદિ યુક્ત ભગવાન્ લક્ષિત થાય છે, પરતુ તે ચક્ર–છત્રાદિ અન્ય (દેવ) કૃત નથી હોતા જેમ અર્ધમાગધીભાષારૂપ પણ તીર્થંકરની વાણી સમવસરણમા આવેલા દેવ–મનુષ્ય–તિર્યંચોને પોતપોતાની ભાષાના સ્વરૂપમા જ પ્રતીત થાય છે, કિન્તુ વસ્તુત તે તેવી નથી હોતી એટલે એ કલ્પાતીતોની તુલનામા નહિ પહોચેલા આપણે છદ્મસ્થોએ તો એમણે કહેલા કલ્પમા જ રહેવુ જોઈએ, નહિ કે તેમનુ અનુકરણ કરવુ જોઈએ (૧)

હવે (૫૨)–અનાચીર્ણો દર્શાવે છે–उद्देसिय० ઇત્યાદિ

मूलम्—उद्देसिय[1] कीयगडं[2], नियाग[3]मभिहडाणि[4] य।
राइभत्ते[5] सिणाणे[6] य, गंध[7]मल्ले[8] य वीयणे[9] ॥२॥

छाया—औद्देशिकं क्रीतकृतं, नियागमभ्याहृतानि च।
रात्रिभक्तं स्नानं च, गन्ध-माल्ये च वीजनम् ॥ २ ॥

सान्वयार्थः—(१) उद्देसियं=औद्देशिक-किसी एक साधुके लिए बनाया हुआ आहार (२) कीयगडं=साधुके लिए खरीदा हुआ आहार (३) नियागं=निमंत्रणसे ग्रहण किया हुआ आहार (४) अभिहडाणि=सामने लाकर दिया हुआ आहार (५) राइभत्ते=रात्रिभोजन (६) सिणाणे=स्नान य=और (७) गंध=चन्दनादिलेप (८) मल्ले=पुष्पादिमाला (९) वीयणे=पंखा ॥ २ ॥

टीका—औद्देशिकम्=उद्देशनमुद्देशस्तत्र भवं तत्प्रयोजनमस्येति वा औद्देशिकं-साध्वादिकमुद्दिश्य निष्पादितमित्यर्थः (१),

क्रीतकृतं=क्रीतेन=क्रयणेन कृतं=सम्पादितं साधुकृते मूल्येन गृहीतमिति यावत् (२),

---

(१) औद्देशिक, (२) क्रीतकृत, (३) नियाग, (४) अभ्याहृत, (५) रात्रिभोजन, (६) स्नान, (७) गन्ध, (८) माल्य, (९) पंखा चलाना।

(१) साधु आदिके लिए जो आहार बनाया जाता है उसे औद्देशिक कहते हैं।

(२) साधुके लिए मूल्य देकर जो आहारादि खरीद किया गया हो उसे क्रीतकृत कहते हैं।

---

(૧) ઔદ્દેશિક, (૨) ક્રીતકૃત, (૩) નિયાગ, (૪) અભ્યાહૃત, (૫) રાત્રિભોજન, (૬) સ્નાન, (૭) ગંધ, (૮) માલ્ય, (૯) પંખો ચલાવવો.

(૧) સાધુ આદિને માટે જે આહાર બનાવવામાં આવ્યો હોય તેને ઔદ્દેશિક કહે છે.

(૨) સાધુને માટે મૂલ્ય ખર્ચીને જે આહારાદિ ખરીદ કરવામાં આવેલ હોય તેને ક્રીતકૃત કહે છે.

नियाग-नि=निरतिशयो यागो निमन्त्रणादिरूपः सत्कारो यस्मिँस्तत्-आमन्त्रितपिण्डस्य कदाचिदपि ग्रहणम्, अनामन्त्रितस्य नित्यग्रहणमिति भावः (३),

अभ्याहृतानि=स्व-पर-ग्राम-गृहादिभेदभिन्नानि साधुनिमित्त सम्मुखमानीय दत्तानि, बहुवचन सर्वेषामेवाऽभ्याहृतानामनाचीर्णत्वख्यापनार्थम् (४),

रात्रिभक्त=रात्रिभोजन रात्र्यादिगृहीत भक्त वा (५), स्नान=प्रसिद्धम् (६),

गन्धमाल्ये-गन्धः=चन्दन-केतकादिसौरभम् (७)-

माल्य=पुष्पादिमाला, तयोरितरेतरयोग इति गन्ध-माल्ये (८),

---

(३) गृहस्थका निमन्त्रण पाकर कभी भी आहार लेना अथवा प्रतिदिन एक ही घरसे आहार लेना नियागपिण्ड है।

(४) अपने गाँवसे पर गाँवसे अथवा घरसे साधुके सामने लाया हुआ आहार अभ्याहृत पिण्ड है।

अभ्याहृतके लिए गाथामे बहुवचन आया है उसका यह अभिप्राय है कि जितनेभी अभ्याहृत (सामने लाये हुये) है वे सभी अनाचार है।

(५) रात्रिमे आहार लेना, दिनमे लेकर रात्रिमें खाना आदि रात्रि-भक्त है (६) देशत. सर्वतः स्नान करनेको स्नान-अनाचार कहते हैं।

(७-८) चन्दन केतक अतर आदिकी सुगन्ध तथा फूलमाला आदिका सेवन करना गन्ध-माल्य-अनाचार है।

---

(૩) ગ્રહસ્થનું નિમંત્રણ મેળવીને કોઈવાર પણ આહાર લેવો અથવા પ્રતિ દિન એકજ ઘરથી આહાર લેવો એ નિયાગપિંડ કહેવાય છે

(૪) પોતાના ગામથી, પરગામથી અથવા ઘરથી સાધુની સામે લાવવામા આવેલો આહાર અભ્યાહૃત-પિંડ કહેવાય છે

અભ્યાહૃતને માટે ગાથામા બહુવચન આવ્યુ છે તેનો એ હેતુ છે કે-જેટલા અભ્યાહૃત (સામે લાવેલા) હોય તે બધા અનાચાર છે

(૫) રાત્રે આહાર લેવો, દિનમા લઈને રાત્રે ખાવો, ઈત્યાદિ રાત્રિભકત કહેવાય છે (૬) દેશથી (થોડે ભાગે) સર્વથી (આખે શરીરે) સ્નાન કરવુ એ સ્નાન અનાચાર કહેવાય છે

(૭-૮) ચંદન, કેવડો, અત્તર આદિની સુગંધ તથા ફૂલ માલા આદિનું સેવન કરવુ એ ગંધમાલ્ય અનાચાર કહેવાય છે

तथा वीजन=ग्रीष्मादिऋतौ तालवृन्तादिना वातादिसञ्चालनम् (९),
अत्राऽऽरम्भादयो दोषा जायन्त इति स्वयमवगन्तव्यम्। औद्देशिकक्रीतकृतयोः स्वरूप सप्रपञ्च पञ्चमाध्ययने वक्ष्यते ॥ २ ॥

मूलम्—[१०] सन्निही [११] गिहिमत्ते य, [१२] रायपिंडे [१३] किमिच्छए ।
[१४] संवाहणा [१५] दंतपहोयणा य, [१६] संपुच्छणा [१७] देहपलोयणा य ॥३॥

(छाया)—सन्निधि-र्गृहिमत्र च, राजपिण्डः किमिच्छकः ।
संवाहन दन्तप्रधावन च, सम्प्रच्छन देहप्रलोकन च ॥३॥

सान्वयार्थः—(१०) सनिही=रात्रिमें आहार आदिका संचय (११) गिहिमत्ते=गृहस्थके पात्रमें भोजन करना य=और (१२) रायपिंडे=राजाके लिए बनाया हुआ आहार (१३) किमिच्छए=दानशाला या अन्नक्षेत्र आदिका आहार (१४) संवाहणा=शरीरकी मालिश करना (१५) दंतपहोयणा=दांत मांजना य=और (१६) संपुच्छणा=गृहस्थसे कुशलप्रश्न पूछना य=और (१७) देहपलोयणा=दर्पण या जलमें मुख आदि देखना ॥३॥

टीका—सन्निधीयते=सम्यक्तया नितरां स्थाप्यते नरकादिष्वात्माऽनेनेति सन्निधिः=सम्भवादत्र घृतादिसञ्चयकरणम् (१०),

(९) ग्रीष्मादि कालमें पंखा चलाना यह व्यजन-अनाचार है।
इनसे आरम्भ आदि दोष होते हैं सो स्वयं समझना चाहिये। औद्देशिक और क्रीतकृतका विस्तारपूर्वक विवेचन पांचवें अध्ययनमें किया जायगा ॥२॥

(१०) सन्निधि जिस अनाचारका सेवन करनेसे आत्मा नरकादि कुगतियोंमें गिरती है अर्थात् घृत औषध आदिका रात्रिमें बासी रखना सन्निधि अनाचार है।

(૯) ગ્રીષ્માદિ કાળમા પખો ચલાવવો એ વ્યજન—અનાચાર છે
એથી આરભ આદિ દોષ લાગે છે તે પોતેજ સમજવુ જોઇએ ઔદ્દેશિક અને ક્રીતકૃતનુ વિસ્તારપૂર્વક વિવેચન પાચમા અધ્યયનમા કરવામા આવશે (૨)
(૧૦) સનિધિ—જે અનાચારનું સેવન કરવાથી આત્મા નરકાદિ દુર્ગતિમા પડે છે, અર્થાત્ ઘી ઔસડ આદિ રાત્રે વાસી રાખવા તે સનિધિ—અનાચાર છે

गृह्यमत्र=गृहिणा=गृहस्थानाम् अमत्र=पात्र प्रसगादत्र तस्मिन्नभ्यवहरणादि (११),
राजपिण्डः=राजार्थं निष्पन्नाऽऽहारः (१२),
किमिच्छकः=' कः किमिच्छत्याहारादिक '-मित्येव पृच्छ्यते यस्मिन् कर्मणि तत्, अन्नसत्र-(सदाव्रत)-शालादित आहारादिग्रहणमित्यर्थ (१३),
सवाहनम्=अस्थ्यादिसुखविशेपजनक तैलादिना शरीरसमर्दनम् (१४),
दन्तप्रधावन=दन्तमार्जनम् (१५),
सम्प्रच्छन=गृहस्थ प्रति कुशलादिरूपसावद्यप्रश्नकरणम् (१६),
देहप्रलोकन=जलदर्पणादिपु मुखादिनिरीक्षणम् (१७),
चकाराः समुच्चयार्थाः । सनि यादिपु परिग्रहादयो दोपाः प्रतीताः ॥३॥

---

(११) गृह्यमत्र-गृहस्थके पात्रमे आहार आदि करना गृह्यमत्र है।
(१२) राजपिण्ड-राजाके लिए बनाया हुआ आहार लेना राजपिंड है।
(१३) किमिच्छक-जिसमे यह पूछा जाता है कि कौन क्या चाहता है? अर्थात् दानशाला (सदाव्रत) आदिसे आहार लेना किमिच्छक है।

(१४) सवाहन-अस्थि, मास, त्वचा, रोमको आनन्ददायक चार प्रकारका मर्दन करना सवाहन है। (१५) दन्त-प्रधावन-दात धोना।
(१६) सम्प्रच्छन-गृहस्थसे कुशल आदि रूप सावद्य प्रश्न पूछना।
(१८) देहप्रलोकन-जलमे अथवा दर्पण आदिमे अपना मुख आदि देखना। सन्निधि आदिमे परिग्रहादि दोप प्रसिद्ध है ॥३॥

---

(૧૧) ગૃહ્યમત્ર-ગૃહસ્થના પાત્રમા આહાર આદિ કરવો તે ગૃહ્યમત્ર કહેવાય છે

(૧૨) રાજપિંડ-રાજાને માટે બનાવેલો આહાર લેવો તે રાજપિંડ છે

(૧૩) કિમિચ્છક-જેમા એ પૂછવામા આવે છે કે કોને શુ જોઇએ છે? અર્થાત્ દાનશાલા (સદાવ્રત) આદિ પાસેથી આહાર લેવો તે કમિચ્છિક કહેવાય છે

(૧૪) સવાહન-અસ્થિ, માસ, ત્વચા, રોમને આનદદાયક ચાર પ્રકારનું મર્દન કરવુ એ સવાહન છે (૧૫) દતપ્રધાવન-દાત ધોવા

(૧૬) સપ્રચ્છન-ગૃહસ્થને કુશળ આદિ રૂપ સાવદ્ય પ્રશ્નો પૂછવા

(૧૭) દેહપ્રલોકન-જલમા અથવા દર્પણ આદિમા પોતાનુ મુખ આદિ જોવા, સન્નિધિ આદિમા પરિગ્રહાદિ દોષ પ્રસિદ્ધ છે (૩)

१८ १९
मूलम्-अट्टावए य नालीए, छत्तस्स य धारणट्टाए।
२० २१ २२
तेगिच्छं पाहणा पाए, समारंभं च जोइणो ॥४॥

छाया—अष्टापद नालिकया, छत्रस्य धारणार्थाय (धारणाऽष्टया)।
चैकित्स्यमुपानही पादयोः, समारम्भश्च ज्योतिषः ॥४॥

सान्वयार्थः—(१८) नालीए=जूएके उपकरण-साधनसे अट्टावए=चौपड़ शतरञ्ज आदि खेलना, (१९) अट्टाए=मुट्ठीसे छत्तस्स=छतेका धारण=धारण करना (२०) तेगिच्छं=रोगकी चिकित्सा करना (२१) पाए पाहणा=पैरोंमें जूते चपल मौजे आदि पहिनना च=और (२२) जोइणो=अग्निका समारंभं=आरंभ करना ॥४॥

टीका—च=तथा, नालिका=यथाऽभिमतपतनार्थं यया पाशाः पात्यन्ते सा=पाशपातनद्रव्यम् तया, उपलक्षणमेतत्-द्यूतोपकरणमात्रस्य, अष्टापदम्-अष्टौ अष्टौ पदानि=स्थानानि (गृहाणि) सर्वभागेषु यस्मिंस्तत्तथा वस्त्राऽऽधारस्थानम्, [illegible] च लक्षणया द्यूतसामान्यम् (१८),

च=किञ्च छत्रस्य=आतपत्रस्य धारणार्थाय ग्रहणमिति शेषः ॥ यद्वा-'धारणा अट्टाए' इतिच्छेद, 'अट्टा' इत्यस्य 'मुष्टि'-रित्यर्थः, "चउहिं अट्टाहिं लोयं करेइ'

१ 'चतसृभिरष्टाभिर्लोचं करोति' इतिच्छाया ॥

(१८) अष्टापद- 'नालीए' अर्थात् पासा फेंककर चौपड़, शतरंज आदि खेलना, अथवा अन्य प्रकारसे जुआ खेलना।

(१९) छत्रधारण करना। गाथामें 'धारणट्टाए' ऐसा पद है उसे अलग अलग करनेसे 'धारणा अट्टाए' होता है। यहाँ अट्टा शब्दका अर्थ 'मुट्टी' है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें कहा है कि- 'चउहिं अट्टाहिं लोयं करेइ'

(१७) અષ્ટાપદ-नालीए અર્થાત્- પાસા ફેંકીને ચોપડ, શતરંજ, આદિ ખેલવા, અથવા અન્ય પ્રકારે જુગાર ખેલવો

(૧૯) છત્ર ધારણ કરવું ગાથામાં धारणट्टाए એવું પદ છે, એને જુદા પાડવાથી धारणा+अट्टाए થાય છે અહીં અટ્ટ શબ્દનો અર્થ 'મુઠી' છે જમ્બૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિમાં કહ્યું છે કે-चउहिं अट्टाहिं लोयं करेइ અર્થાત્-ઋષભદેવ ભગવાને,

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यादौ तथादर्शनात्, ततश्च 'अट्ठाए'=अट्ठया=मुष्ट्या छत्रस्य धारणा=ग्रहणमित्यर्थः। न च छत्रादिधारण मुष्ट्यादिनैव सम्भवतीति 'अट्ठाए' इत्यस्य 'मुखेन पठती'-इत्यादिषु मुखादिवद्वैयर्थ्यमिति शङ्कनीयम्, 'चक्षुर्भ्यां पश्यति, कर्णाभ्या शृणोति, जिह्वया लेढि' इत्यादि-लोकोक्तिषु चक्षुरादीनामिव यथास्थितवस्तुप्रतिपादनमात्रतात्पर्येणाऽपौनरुक्त्यात्, अत्रैव गाथायामुत्तरार्द्धे 'पाहणा

अर्थात्-ऋषभदेव भगवान्ने चार मुट्ठी लोच किया। अतः 'धारणट्ठाए'का अर्थ 'मुट्ठीसे छत्रको ग्रहण करना' हुआ।

प्रश्न-छत्र तो मुट्ठीसे ही पकडा जाता है फिर 'अट्ठाए'की क्या आवश्यकता है? जैसे "मुखसे बोलता है" इस वाक्यमें 'मुखसे' इतना अश व्यर्थ है, क्योंकि सिवाय मुखके और किसी अगसे नहीं बोला जाता, इसी प्रकार यहा 'मुट्ठीसे' कहना भी वृथा है?

उत्तर-यह प्रश्न ठीक नहीं, क्योंकि लोकमें "आँखोंसे देखता है, कानोंसे सुनता है, जिह्वासे चखता है" इत्यादि वाक्योंमें 'आँखोंसे' 'कानोंसे', 'जिह्वासे' इन पदोंके बोलनेका अभिप्राय यथास्थित वस्तुका प्रतिपादन करना है, इस गाथाके उत्तरार्द्धमें 'पाहणा पाए' पद आया है इसका अर्थ है कि-पैरोंमें उपानह (जूता), उपानह यद्यपि पैरोंमे ही पहने जाते हैं हाथ या सिरमें नहीं पहने जाते फिरभी 'पाए' कहनेसे

ચાર મુઠી લોચ કર્યો એટલે धारणट्ठाए નો અર્થ 'મુઠીથી છત્રને ગ્રહણ કરવુ' એવો થયો

પ્રશ્ન-છત્ર તો મુઠીથી જ પકડવામા આવે છે, પછી अट्ठाए ની શી જરૂર રહે છે? જેમકે "મુખથી બોલે છે" એ વાકયમા 'મુખથી' એટલો અશ વ્યર્થ છે, કારણ કે મુખ વિના બીજા કોઈ અગથી બોલી શકાતુ નથી તે જ રીતે ત્યા 'મુઠીથી' એમ કહેવુ એ પણ વૃથા છે

ઉત્તર-એ પ્રશ્ન બરાબર નથી, કારણ કે લોકમા 'આખોથી જોવે છે,' 'કાનથી સાભળે છે,' 'જીભથી ચાખે છે,' ઇત્યાદિ વાકયોમા 'આખોથી,' 'કાનથી,' 'જીભથી' એ શબ્દો આપવાનો હેતુ યથાસ્થિત વસ્તુનુ પ્રતિપાદન કરવાનો છે આ ગાથાના ઉત્તરાર્ધમા पाहणा पाए પદ આવ્યુ છે તેનો અર્થ છે- 'પગમા ઉપાનહ (જોડા), જો કે જોડા પગમા જ પહેરવામા આવે છે, હાથે કે માથે નહિ, તો પણ पाए કહેવાથી પુનરૂક્તિ થતી નથી, કારણ કે એ શબ્દથી

पाए' इत्यत्र 'पाए' इतिवदिति, उपलक्षणमेतच्छिरसि छायाकरणमात्रस्य (१९),

¹चैकित्स्य=चिकित्सा=व्याधिप्रतीकारः, कफपित्तादिवैगुण्य, ग्रहादिवैगुण्य च व्याधेर्निदान तत्प्रशमन तदुपायोपदेशादिनेत्यर्थः (२०),

पादयोः=चरणयोः, उपानहौ=चर्मपादुके, उपलक्षणमिद काष्ठपादुकादीनामपि (२१),

च=किञ्च ज्योतिषः=वह्नेः समारम्भः=आरम्भकरणम् (२२),

दोषास्तत्राऽलीकत्वादयः स्वबुद्ध्याऽवगन्तव्याः, चकारा इहापि समुच्चयार्थाः ॥४॥

१–' गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (५।१।१२४) इत्यत्रत्यब्राह्मणादेराकृतिगणत्वात्स्वार्थे ष्यञ् तत आदिवृद्धिरालोपश्च, यत्तु ' चिकित्साया भावश्चैकित्स्य ' मिति टीकान्तरकृतस्तद् व्याकरणाऽनवबोधमूलकमेव, भावप्रत्ययान्ताद्भावप्रत्ययस्याऽनुत्पत्तेः, ' चिकित्सायाः कर्म ' त्यर्थकल्पनमपि केषाचित्प्रामादिकमेव चिकित्साया रोगापनयनक्रियारूपायाः स्वत एव कर्मभूतत्वेन कर्मपर्यायत्वात्, ष्यञ्विधायकसूत्रे हि ' कर्म=क्रिये '-ति वैयाकरणा ॥

पुनरुक्ति नही है, क्योकि इस पदसे यथावस्थित वस्तुका प्रतिपादनमात्र किया गया है, इसलिए 'मुट्ठीसे छत्र धरना ऐसा कहना अयुक्त नही है।

(२०) चैकित्स्य–चिकित्सा करना, अर्थात् वैद्यक करना, या ग्रह आदिको मत्र वगैरहसे शात करना, या इस विषयका उपदेश देना।

(२१) उपानह (जूता) या मौजा आदि पहनना।

(२२) अग्निका आरम्भ करना,

इनसे भी असत्य आदि दोष समझना चाहिए, अर्थात् जूआ खेलनेसे असत्य, क्लेश, आर्तध्यान, परिग्रह आदि, छत्र धारण करनेसे सुकुमारता

યથાવસ્થિત વસ્તુનુ પ્રતિપાદન માત્ર કરવામા આવ્યુ છે તેથી 'મુઠીથી છત્ર ધરવુ' એમ કહેવુ એ અયુક્ત નથી

(૨૦) ચૈકિત્સ્ય–ચિકિત્સા કરવી અર્થાત્ વૈદુ કરવુ, અથવા ગ્રહાદિ ને મત્ર વગેરેથી શાન્ત કરવા અથવા એ વિષયનો ઉપદેશ આપવો

(૨૧) ઉપાનહ (જોડા) અથવા મોજા આદિ પહેરવા

(૨૨) અગ્નિનો આરભ કરવો એથી પણ અસત્ય આદિ દોષ સમજવા જોઇએ

અર્થાત્–જુગાર ખેલવાથી અસત્ય, કલેશ, આર્તધ્યાન, પરિગ્રહ આદિ, છત્ર ધારણ કરવાથી સુકુમારતા, પરિષહને સહન કરવામા અસામર્થ્ય આદિ અનેક

मूलम्—सिज्जायरपिंडं[२३] च, आसदी[२४] पलियंकए[२५] ।
गिहंतरनिसिज्जा[२६] य, गायस्सुव्वट्टणाणि[२७] य ॥५॥

छाया—शय्यातरपिण्डश्च, आसन्दी पर्य(ल्य)ङ्कः ।
गृहान्तरनिषद्या च, गात्रस्योद्वर्त्तनानि च ॥५॥

सान्वयार्थः—च=और (२३) सिज्जायरपिंड=शय्यातरका आहार, (२४) आसदी=कुर्सी या खाट (२५) पलियंकए=पलंग पालखी डोला आदि, (२६) गिहंतरनिसिज्जा=गृहस्थके घरमें बैठना, य=और (२७) गायस्स=शरीरका उव्वट्टणाणि=उवटन करना ॥५॥

टीका—शय्यतेऽस्यामिति शय्या=वसतिः, शय्ययाऽर्थात्तद्दानेन तरति संसार-सागरमिति शय्यातरः, यद्वा शय्या=प्रोक्तरीत्या वासस्थानम्, [१]आतरः=संसार-

१—'आतरस्तरपण्यं स्या'—दित्यमरः, 'उतराई' इति लोकप्रसिद्धम् ।

परिषहके सहनेमें असामर्थ्य आदि अनेक दोष, चिकित्सा करनेसे आरम्भ असत्य आदि दोष, उपानह पहननेसे द्वीन्द्रिय आदि जीवोंका उपमर्दन आदि, तथा अग्निकायका आरम्भ करनेसे छह कायका उपमर्दन आदि दोष होते हैं ॥ ४ ॥ ४ ॥ ४ ॥

(२३) शय्यातरका पिण्ड लेना ।

जिसमें शयन किया जाता है उसे शय्या या वसति कहते हैं। उस शय्याके दानसे संसार-समुद्रको तैरनेवाला शय्यातर कहलाता है। अथवा शय्या है संसाररूपी सागरसे पार होनेका आतर (शुल्क)

દોષ, ચિકિત્સા કરવાથી આરંભ, અસત્ય આદિ દોષ, જોડા પહેરવાથી દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવોનું ઉપમર્દન આદિ, તથા અગ્નિકાયનો આરંભ કરવાથી છ કાયનું ઉપમર્દન આદિ દોષ લાગે છે (૪)

(૨૩) શય્યાતરનો પિંડ લેવો

જેમાં શયન કરવામાં આવે છે તેને શય્યા યા વસતિ કહે છે એ શય્યાના દાનથી સંસાર-સમુદ્રને તરનાર શય્યાતર કહેવાય છે અથવા શય્યા છે સંસાર રૂપી સાગરથી પાર થવાનું આતર (શુલ્ક) જેનું, તેને શય્યાતર કહે છે, જેમ

पारावारोत्तरणशुल्कं यस्य स शय्यातरः। अत्र पक्षे यथा कश्चिन्नदी-पारं जिगमिषुर्नाविकाय नदीतरणशुल्कं दत्त्वा तत्पारं गच्छति तथा संसारसमुद्रपारं जिगमिषुर्गृहस्थस्तन्नाविकस्वरूपाय महापुरुषाय मुनये शय्या (वसतिस्थान)-रूपमातरं (तरणशुल्कं) दत्त्वा तत्पारं व्रजतीति भावार्थोऽनुसन्धेयः। पक्षद्वयेऽपि साधुवासार्थमाज्ञादायक इति फलितम्, तस्य पिण्डः=आहारौषध्यादिः शय्यातरपिण्ड इति।

शय्यातरविचारः।

यद्यपि निवासार्थं साधवे स्वानुमतिप्रकाशको वसतिस्वामी शय्यातरशब्दस्यार्थः, तथापि तस्य तदैव शय्यातरत्वं भवति यदा तत्र वसतौ साधुर्भाण्डोपकरणानि स्थापयेत्, प्रतिक्रमणमाचरेत्, रात्रौ शयीत च। अत्राय विवेकः-

जिसका उसे शय्यातर कहते हैं। जैसे कोई नदी पार करनेकी इच्छावाला बटोही (मार्गू) नाविकको नदी पार उतारनेका मूल्य देकर पार उतरता है उसीप्रकार संसाररूपी समुद्रके पार उतरनेकी इच्छावाला गृहस्थ नाविकके समान साधु महापुरुषोंको शय्या (वसति-स्थान)रूपी उतराई (पार उतरनेका मूल्य) देकर संसारसागरसे पार उतरता है, यह अभिप्राय समझना चाहिए। दोनों पक्षोंका अर्थ एक ही है कि शय्यातर उसे कहते हैं, जो साधुको ठहरनेके लिए मकानकी आज्ञा देता है। उसके आहार औषध आदि पिण्डको शय्यातर-पिण्ड कहते है।

शय्यातर—विचार

साधुको ठहरनेके लिए अपनी अनुमति प्रगट करनेवाला उपाश्रयका स्वामी शय्यातर कहलाता है, तथापि वह इन अवस्थाओंमें शय्यातर होता है—

કોઇ નદી પાર કરવાની ઇચ્છા-વાળો ઊતારૂ નાવિકને નદી ઊતરવાનું ભાડું આપીને પાર ઊતરે છે, તેમ સંસાર-રૂપી સમુદ્રને પાર ઊતરવાની ઇચ્છા-વાળો ગૃહસ્થ, નાવિક-સમાન સાધુ-મહાપુરૂષોને શય્યા-(વસતિ-સ્થાન) રૂપી ભાડું (પાર ઊતરવા માટેનુ મૂલ્ય) આપીને સંસાર-સાગરથી પાર ઊતરે છે, એવો અર્થ સમજવો જોઇએ બેઉ પક્ષોનો અર્થ એક જ છે કે શય્યાતર એને કહે છે કે જે સાધુને રહેવાને માટે મકાનની આજ્ઞા આપે છે, એના આહાર ઔષધ આદિ પિંડને શય્યાતર-પિંડ કહે છે

શય્યાતર—વિચાર

સાધુને રહેવાને માટે પોતાની અનુમતિ આપનાર ઉપાશ્રયનો સ્વામી શય્યાતર કહેવાય છે, તથાપિ તે આ અવસ્થાઓમા શય્યાતર થાય છે —

भाण्डोपकरणस्थापन-प्रतिक्रमणाचरण-शयनाना त्रयाणा प्रत्येक शय्यातरत्वे हेतुत्वम्, तेन प्रतिक्रमणाचरण-शयनाभ्या प्रागपि भाण्डोपकरणस्थापनानन्तर वसतिस्वामिनः शय्यातरत्वम्, पूर्वगृहीतवसतौ स्थानसकीर्णताया सत्या कियान् मुनिरन्यसाधुसकाशे स्वकीयभाण्डोपकरणानि निधाय अन्यस्मिन् समीपतरवर्त्तिन्युपाश्रये तत्स्वामिनिदेशमादाय प्रतिक्रमण कुर्वीत तदा तत्र भाण्डोपकरणस्थापनाभावेऽपि तदीयस्वामिनः शय्यातरत्वम्। अन्यत्र प्रतिक्रमण कृत्वा स्थानसकीर्णताया सत्या

(१) साधु वसतिमें भाण्डोपकरण रख देवे।

(२) प्रतिक्रमण करे, और (३) रात्रिमे शयन करे।

(१) इन तीनोंमेसे प्रत्येक क्रिया शय्यातर होनेमे कारण है। इसलिए प्रतिक्रमण और शयन करनेसे पहले भी भाण्डोपकरण रख देनेपर वसतिका स्वामी शय्यातर हो जाता है।

(२) पहले जिस वसतिको ग्रहण कर लिया हो उसमे स्थानकी सकीर्णता होनेपर कुछ साधु अपने भाण्डोपकरण अन्य साधुओंके समीप रखकर, पासके दूसरे उपाश्रयमे उसके स्वामीकी आज्ञा लेकर प्रतिक्रमण करें तो वहा भाण्डोपकरण न रखने पर भी जहा प्रतिक्रमण किया हो उस वसतिका स्वामी शय्यातर कहलाता है, इस वसतिका नही।

(३) दूसरे स्थानमें प्रतिक्रमण करके, स्थानकी सकीर्णता होने पर जहा

(१) साधु वसतिमा भाडोपकरण (पात्र वगेरे) राखे (२) प्रतिक्रमण करे अने (३) रात्रे शयन करे

(१) आ त्रणेमानी प्रत्येक क्रिया शय्यातर थवामा कारण छे, तेथी प्रतिक्रमण अने शयन पूर्वे पण भाडोपकरण राखी दे तो वसतिनो स्वामी शय्यातर थई जाय छे

(२) पहेला जे वसतिनु ग्रहण करी लीधु होय, तेमा स्थाननी सकीर्णता (सकडाश) होवाथी कोई साधु पोताना भाडोपकरण बीजा साधुओनी समीपे राखीने, पासेना बीजा उपाश्रयमा तेना स्वामीनी आज्ञा लईने प्रतिक्रमण करे तो त्या भाडोपकरण न राखवा छता पण ज्या प्रतिक्रमण कर्यु होय ते वसतिनो स्वामी शय्यातर कहेवाय छे, आ वसतिनो नहि

(३) बीजा स्थानमा प्रतिक्रमण करीने स्थाननी सकडाशने कारणे ज्या

शयनमात्र यत्राचरित तत्स्वामिनोऽपि शय्यातरत्वम् । परन्त्वय विशेषो बोद्धव्यः-

अन्यसाधुसविधे स्वकीयभाण्डोपकरणानि संस्थाप्याऽन्यत्र शयनप्रतिक्रमणाचरणे मूलोपाश्रयस्वामिनो न शय्यातरत्वम्, भाण्डादिस्थापने साधुसानिध्यस्यैव निमित्तता न तु [1]तत्स्वामिनः, साधोरभावे भाण्डादिस्थापनस्य शास्त्राविहितत्वात्। शय्यातरत्वनिवृत्तिकरणाय तु पुनः पुनः शय्यातरपरिवर्तनं नाचरणीयम् । पुनः पुनः शय्यातरपरिवर्त्तनं हि साधोर्भिक्षालोभं प्रकाशयति, तत्र बहवो दोषा अपि चापतन्ति, तथाहि-शय्यातरपरिवर्त्तने पूर्वशय्यातरो विभावयति-अत्र मम गृहे

१-वसतिस्वामिनः ।

सिर्फ शयन किया हो उस स्थानके स्वामीको भी शय्यातर कहते हैं अर्थात् उस अवस्थामें दोनों शय्यातर हैं ।

विशेष यह है कि-दूसरे साधुओंके पास भाण्डोपकरण रखकर अन्य ही किसी स्थानपर प्रतिक्रमण और शयन करे तो जहा भाण्डोपकरण रक्खें है, उस स्थानका स्वामी शय्यातर नही कहलाता। क्योंकि भाण्डोपकरण साधुके नेसराय (अधीनता) में ही रखे जाते हैं, गृहस्थके नेसरायमें रखना शास्त्रविरुद्ध है ।

शय्यातरत्वकी निवृत्ति करनेके लिए बारबार शय्यातरका परिवर्तन नही करना चाहिए । ऐसा करनेसे यह प्रगट होता है कि साधु भिक्षाका लोभी है, इसमें बहुतसे दोष भी उत्पन्न होते है।

जैसे-शय्यातरका परिवर्तन करनेसे पहला शय्यातर इस प्रकार

માત્ર શયન કર્યું હોય તે સ્થાનના સ્વામીને પણ શય્યાતર કહે છે અર્થાત્ એ સ્થિતિમા બેઉ શય્યાતર છે

વિશેષ વાત એ છે કે-બીજા સાધુઓ પાસે ભાંડોપકરણ રાખીને બીજા જ કોઈ સ્થાન પર પ્રતિક્રમણ અને શયન કરે તો જ્યા ભાંડોપકરણ રાખેલા હોય, તે સ્થાનનો સ્વામી શય્યાતર નથી કહેવાતો, કેમકે ભાંડોપકરણ સાધુની નેસરાય (અધીનતા) મા જ રાખવામા આવે છે, ગૃહસ્થની નેસરાયમા રાખવા એ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે

શય્યાતરત્વની નિવૃત્તિ કરવાને માટે વારવાર શય્યાતરનો પરિત્યાગ કરવો ન જોઈએ એમ કરવાથી એવુ પ્રકટ થાય છે કે સાધુ ભિક્ષાનો લોભી છે, એમાથી અનેક દોષો પણ ઉત્પન્ન થાય છે

જેમ-શય્યાતરનું પરિવર્તન કરવાથી પહેલો શય્યાતર આ પ્રમાણે વિચારે છે-

त्यक्तमदीयोपाश्रयः साधुरसौ निश्चितमागमिष्यतीति तदर्थं सुरसमन्नादिकं साधनीयमिति कृत्वा निष्पादितस्यान्नपानादेराधाकर्मिकत्वापत्तिः। यदि तु स्वार्थं साधुनिमित्तं च निष्पादितं तदा मिश्रजातदोषापत्तिर्दुर्निवारैव। पूर्वं शय्यातरेण त्यक्तोपाश्रयाय साधवे कस्यचिद् वस्तुनः स्थापने स्थापनादोषः कथं साधुना वारणीयः। अन्ये दोषाः स्वयमूहनीयाः। तस्माद् झटिति शय्यातरपरिवर्त्तनं न साधुना विधेयम्।

वसतियाचनाविधिः।

अथोपाश्रयस्वामिनस्तदनुपस्थितौ तत्संरक्षकाद्वा वसतियाचनाविधिरभिधीयते-

सोचता है-आज मेरे उपाश्रयकी आज्ञा सन्तोंने छोड़ दी है, अतः मेरे यहाँ अवश्य आवेंगे, इसलिए उनके वास्ते स्वादिष्ठ अन्न आदिक बनाना चाहिए, ऐसा विचार कर बनाया हुआ अन्नादिक आधाकर्मिक होगा। यदि पहला शय्यातर अपने और साधुके लिए इकट्ठा बनावेगा तो मिश्रजात दोष लगेगा। साधुके आनेकी संभावनासे वह किसी वस्तुको स्थापना करेगा तो स्थापना (ठवणा) दोष होगा।-इत्यादि अनेक दोष स्वयं समझ लेने चाहिये। इसलिए साधुको वारम्वार शय्यातर बदलना नहीं कल्पता है।

उपाश्रय-याचनाकी विधि।

वसति-स्वामीसे अथवा उसकी गैर-मौजूदगीमें उसके संरक्षकसे वसति-याचनाकी विधि कहते हैं—

આજ મારા ઉપાશ્રયની આજ્ઞા સંતોએ છોડી દીધી છે, એટલે મારે ત્યાં જરૂર આવશે, તેથી એમને માટે સ્વાદિષ્ટ અન્નાદિ બનાવવા જોઈએ એવો વિચાર કરીને બનાવેલું અન્નાદિ આધાકર્મી બનશે, જો પહેલો શય્યાતર પોતાના માટે અને સાધુને માટે એકઠું બનાવશે તો મિશ્રજાત દોષ લાગશે સાધુ આવવાની સંભાવનાથી તે કોઈ વસ્તુને સ્થાપન કરશે તો સ્થાપના-(ઠવણા)-દોષ લાગશે -ઇત્યાદિ અનેક દોષો પોતાની મેળે સમજી લેવા એ કારણથી સાધુને વારવાર શય્યાતર બદલવા કલ્પતા નથી

(ઉપાશ્રય-યાચનાની વિધિ)

વસતિના સ્વામી પાસે અથવા તેની ગેરહાજરીમા એના સંરક્ષકની પાસે વસતિ-યાચના કરવાની વિધિ કહે છે—

मुनिर्वदेत्-हे आयुष्मन् ! अस्यां वसतौ स्थातुमिच्छामि, यावति समये स्थातुमादेशो भवदीयो भवेत् तावानेव कालो यापनीयः, तत्रापि यावान् वसतिभूमिभागो ममावस्थानाय भवते रोचेत तावानेव ममापेक्षणीय इति ।

ततो गृहस्थः प्रतिब्रूयात्-भगवन् ! मुनीश्वर ! कियतः कालानवस्थास्यते ? तदा ऋतुबद्धशेषकाले सति साधुः "एकमासावधिकाले कल्प्ये यावदवसर स्थास्यामि" इति, वर्षाकाले तु "चतुरो मासानत्र यापयिष्यामी"-ति वदेत् ।

सागारिकेण साधुकल्प्यकालमुपलक्ष्य-"एतावत' कालानत्राहं न स्थास्यामि ग्रामान्तरं गमिष्यामी"-ति कथने तु साधुरेव कथयेत्-'अत्र भवदुपस्थितिसमया-

---

मुनि—हे आयुष्मन् ! हम इस वसतिमें ठहरना चाहते हैं। तुम जितने समय तक ठहरनेकी आज्ञा दोगे, उतने समयसे अधिक नहीं ठहरेंगे। उसमें भी तुम भूमि का जितना भाग हमें ठहरनेके लिए देना चाहो, उतनाही हमारे लिए पर्याप्त है।

गृहस्थ पूछे कि-हे मुनिराज! आप कितने समय तक ठहरना चाहते हैं ?।

तब मुनि-ऋतुबद्ध शेषकाल हो तो 'एक मासके कल्पमें जब तक अवसर होगा तब तक रहेंगे' ऐसा, यदि चातुर्मास हो तो 'चार मास ठहरनेका हमारा कल्प है' ऐसा कहे। यदि साधुका कल्प-काल सुनकर गृहस्थ कहे कि-मै तो थोडेही दिन यहाँ रहूँगा फिर ग्रामान्तर जाऊँगा, तो साधुको कहना चाहिए कि-"जब तक तुम यहाँ रहोगे तब तक ही

મુનિ-હે આયુષ્મન્ ! અમે આ વસતિ (મકાન-સ્થાન) મા રહેવા ઇચ્છીએ છીએ તમે જેટલા સમય સુધી રહેવાની આજ્ઞા આપશો, તેટલા સમયથી વધારે સમય રહીશુ નહિ તેમા પણ તમે ભૂમિનો જેટલો ભાગ અમને રહેવાને માટે આપવા ઇચ્છો તેટલો જ અમારે માટે પર્યાપ્ત (પૂરતો) છે

ગૃહસ્થ-હે મુનિરાજ ! આપ કેટલા સમય સુધી રહેવા ઇચ્છો છો ?

ત્યારે મુનિ-ઋતુબદ્ધ શેષકાળ હોય તો-'એક માસના કલ્પમા જ્યા સુધી અવસર હશે ત્યા સુધી રહીશુ' એમ કહે, અથવા જો ચાતુર્માસ હોય તો-'ચાર માસ રહેવાનો અમારો કલ્પ છે' એમ કહે જો સાધુનો કલ્પકાળ સાભળીને ગૃહસ્થ કહે કે 'હુ તો થોડા જ દિવસ અહીં રહીશ' તો સાધુએ કહેવુ જોઇએ કે જ્યા સુધી તમે અહીં રહેશો ત્યા સુધી જ અમે રહીશુ, તમે જશો

वधिरेव कालो मया क्षपणीयः, तदनन्तरमिमा वसतिं परिहास्यामीति । पुनः सागारिकेण—'कियन्तः साधवो भवन्तः?' इति पृष्टः साधुरभिदधीत—समुद्रतरङ्गवत् साधूनामियत्तावधारण क कुर्यात्, यतः कियन्तो गच्छन्ति, कियन्तश्चागच्छन्ति, ये चागमिष्यन्ति तेऽप्यत्रावस्थान करिष्यन्ति । इत्थ सागारिकाज्ञामादाय तदीयनामगोत्रे विज्ञायोपाश्रये साधुस्तिष्ठेत् । गोचरीं गन्तुमुद्यतो भिक्षुः शय्यातरनामगोत्रे अविज्ञाय भिक्षार्थं न पर्यटेत् ।

कल्प्याकल्प्यविधिः ।

शय्यातरगृहे साधोरकल्प्यानि कथ्यन्ते, यथा—

हम ठहरेंगे, तुम्हारे जाने पर इस वसतिको छोड देंगे ।"

यदि गृहस्थ पूछे कि—'आप कितने साधु हैं?' तो साधु उत्तर देवें कि—'समुद्रके तरङ्गोंकी तरह साधुओंकी मर्यादा नहीं है । क्योंकि कितने ही साधु आते हैं और कितनेही चले जाते हैं, जो आवेंगे वे भी यहीं ठहरेंगे।

इस प्रकार गृहस्थकी आज्ञा लेकर, उसका नाम और गोत्र जानकर साधुको ठहरना चाहिए । जबतक साधुको शय्यातरका नाम और गोत्र न मालूम हो जावे तब तक भिक्षाके लिए न जावे ।

कल्प्याकल्प्य—विधि ।

निम्नलिखित वस्तुएँ शय्यातरके घरकी कल्पनीय नहीं हैं—

त्यारे आ स्थानने अमे छोडी दईशु '

जो गृहस्थ पूछे के 'आप केटला साधुओ छो ?' तो साधु उत्तर आपे के—'समुद्रना तरंगोनी पेठे साधुओनी मर्यादा नथी, केमके केटलाय साधुओ आवे छे अने केटलाय चाल्या जाय छे, जेओ आवशे तेओ पण अहीं ज रहेशे "

ए प्रमाणे गृहस्थनी आज्ञा लईने, एनु नाम अने गोत्र जाणीने साधुए रहेवु जोईए ज्या सुधी शय्यातरनु नाम अने गोत्र साधुना जाणवामा न आवे त्या सुधी भिक्षाने माटे जाय नहि

કલ્પ્યાકલ્પ્ય-વિધિ

નીચે લખેલી વસ્તુઓ શય્યાતરના ઘરની સાધુને કલ્પે નહિ—

(१) अशनम्, (२) पानम्, (३) खाद्यम्, (४) स्वाद्यम्, (५) वस्त्रम्, (६) पात्रम्, (७) कम्बल, (८) रजोहरणम्, (९) दोरकम्, (१०) सूची, (११) कर्त्तरी, (१२) छुरिका, (१३) नखहरणी, (१४) कर्णशोधनी (कानखुचरनी), (१५) दन्तशोधनी (दातखुचरनी), (१६) कण्टकोद्धारणी (काटाकाढनी-चींपिया) (१७) कण्टकः कण्टकोद्धारणीपात्रश्च (कण्टककुत्थलिका), (१८) औषधम्, (१९) भैषज्यम्, (२०) शतपाकसहस्रपाकादितैलम्, (२१) पात्ररञ्जनद्रव्यम् (रोगान सपेदा आदि), (२२) पात्रादौ रन्ध्रकरणाद्युपयोगी शस्त्रविशेषः (सियार, रेती, इत्यादि), (२३) फरगलम्, (२४) लेखनी, (२५) मसी, (२६) मसीपात्रम्, (२७) हिङ्गुलम्, (२८) खटिका, (खडी), इत्यादीनि।

अथ शय्यातरगृहे साधोरुपादेयानि (कल्प्यानि) निर्दिश्यन्ते-

---

(१) अशन, (२) पान, (३) खाद्य, (४) स्वाद्य, (५) वस्त्र, (६) पात्र, (७) कम्बल, (८) रजोहरण, (९) डोरा, (१०) सुई, (११) कैंची, (१२) चाकू, (१३) नखहरणी (नहरनी), (१४) कर्णशोधनी (कानकुचरनी), (१५) दन्तशोधनी (दातकुचरनी), (१६) चींपिया, (१७) काटे और काटोंकी कोथली, (१८) औषध, (१९) भेषज, (२०) शतपाक-सहस्रपाक आदि तेल (२१) पात्र रगनेके लिए रोगन, सुपेता आदि, (२२) पात्रमें छेद आदि करनेके काममे आनेवाले स्यार, रेती आदि ओजार, (२३) कागज, (२४) लेखनी, (२५) स्याही, (२६) हिंगलु, (२७) खड़ी इत्यादि।

निम्नलिखित वस्तुएँ शय्यातरके घरसे साधुको कल्पनीय हैं-

---

(૧) અશન, (૨) પાન, (૩) ખાદ્ય, (૪) સ્વાદ્ય, (૫) વસ્ત્ર, (૬) પાત્ર, (૭) કાંબળી (૮) રજોહરણ, (૯) દોરા, (૧૦) સોય, (૧૧) કાતર, (૧૨) ચપ્પુ, (૧૩) નખ ઉતારવાની નેરણી, (૧૪) કાન-ખોતરણી, (૧૫) દાત-ખોતરણી, (૧૬) ચીપીયો, (૧૭) કાટો અથવા કાટાની કોથળી, (૧૮) ઓસડ, (૧૯) ભેષજ, (૨૦) શતપાક-સહસ્રપાક આદિ તેલ, (૨૧) પાત્ર રગવા માટેનો રોગાન સફેતો વગેરે, (૨૨) પાત્રમા છિદ્ર આદિ કરવાના કામમા આવવાના સારડી, રેતી વગેરે ઓજાર, (૨૩) કાગળ, (૨૪) લેખણ, (૨૫) શાહી, (૨૬) હીંગળો, (૨૭) ખડી, ઈત્યાદિ

નીચે લખેલી વસ્તુઓ શય્યાતરના ઘરની સાધુને કલ્પે—

(१) तृणम्, (२) लोष्टम्, (३) शिलापट्टकः (पेषणी), (४) शिलापुत्रकः, (५) भस्म, (६) पाषाणखण्डम्, (७) इष्टका, (८) धूलिः, (९) पीठम्, (१०) फलकम् (आसनविशेषः), (११) शय्या (शरीरप्रमाणा), (१२) संस्तारकम् (सार्द्धद्वयहस्तप्रमाण आसनविशेषः), (१३) गोमयम्, (१४) सोपधिकशिष्यः, (१५) स्वाध्यायाद्यर्थं प्रातिहारिकं (पडिहारी) पुस्तकम्, इत्यादीनि। इदमप्यनुसन्धेयम्—यस्योपाश्रयस्य स्वामिने निवासशुल्कं दत्त्वा गृहस्थो निवासार्थं साधु निमन्त्रयेत् स उपाश्रयः साधोरकल्प्य इति। उपाश्रयस्यानेकस्वामिनि सति कश्चिदेक एव शय्यातरत्वेन स्थापनीयः, न तु सर्वेऽपि।

एतादृशशय्यातरस्य पिण्डे चत्वारो भङ्गा भवन्ति, यथा—

(१) एकत्र रन्धनम्, एकत्र भोजनम्,

तिनका, (२) पत्थर, (३) शिला, (४) लोढ़ी, (५) राख, (६) पत्थरका-टुकड़ा, (७) ईंट, (८) धूल, (९) छोटा बाजौट, (१०) फलक (आसन), (११) शय्या (शरीरप्रमाण), (१२) संस्तारक (ढाइ हाथका आसन), (१३) गोबर, (१४) उपधि-सहित शिष्य, (१५) स्वाध्याय आदिके लिए पडिहारी (वापस दी जानेवाली) पुस्तक आदि।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि-जिस उपाश्रयको भाडेपर साधुके लिए खरीदा हो वह उपाश्रय साधुको कल्पनीय नहीं है।

उपाश्रयके अनेक स्वामी हो तो उनमेंसे एक शय्यातर होता है। ऐसे शय्यातरके पिण्डमें चार भग होते हैं। वे इस प्रकार—

(१) उसी घरमें बनाना उसी घरमे जीमना।

---

(१) तणखलु, (२) पत्थर, (३) शिला, (४) लोढी, (५) राख, (६) पत्थरनो टुकडो, (७) ईंट, (८) धूळ, (९) नानो बाजठ, (१०) फलक (आसन), (११) शय्या (शरीर प्रमाणनी), (१२) सन्तारक (अढी हाथनु आसन), (१३) छाण, (१४) उपधि सहित शिष्य, (१५) स्वाध्याय आदिने माटे पडिहारी (पाछी आपी देवाय तेवी) पुस्तक आदि

એ પણ યાદ રાખવુ જોઇએ કે જે ઉપાશ્રય સાધુને માટે ભાડે રાખ્યો હોય તે ઉપાશ્રય સાધુને કલ્પે નહિ

ઉપાશ્રયના અનેક સ્વામીઓ હોય તો તેમાથી એક શય્યાતર થાય છે એવા શય્યાતરના પિંડમા ચાર ભાગા હોય છે, તે આ પ્રમાણે-(૧) એજ ઘરમા

(२) एकत्र रन्धनम् , अन्यत्र गेहादौ भोजनम् ।

(३) पृथक्-पृथग् रन्धनम् , एकत्र भोजनम् ।

(४) पृथक् पृथग् रन्धनम् , पृथक्-पृथग् भोजनम् ।

तत्र द्वितीयचतुर्थभङ्गौ साधोः कल्प्यौ । द्वितीयभङ्गे एकत्र रन्धनेऽपि पश्चात् शय्यातरेतरांशस्य पृथक्कारे शय्यातरमात्रांशं विहायाऽन्येषां पिण्ड उपादेयः, तत्र तदानीं शय्यातरस्वत्वापगमात् । चतुर्थकल्पे तु पिण्डे शय्यातरांशलेशसंसर्गशङ्कापि नास्ति । शय्यातरस्वत्वापगम एवोपादेयताहेतुरिति निष्कर्षः ।

एवं प्रोषितभर्तृकासु अनेकासु सपत्नीष्वेकैव काचित् शय्यातरा कर्तव्या ।

---

(२) उसी घरमें बनाना दूसरे-दूसरे घरमें जीमना ।

(३) दूसरे-दूसरे घरमें बनाना उसी घरमें जीमना ।

(४) दूसरे-दूसरे घरमे बनाना और दूसरे-दूसरे घरमें जीमना ।

इन चार भंगोंमेंसे दूसरा और चौथा भंग साधुको कल्पनीय है। दूसरे भंगमें एकत्र रन्धन होने पर भी शय्यातरसे भिन्न मनुष्यके अंशके अलग होजाने पर शय्यातरका भाग छोडकर अन्यका पिण्ड कल्पनीय है, क्योंकि वहाँ शय्यातरका स्वामित्व नहीं रहता ।

चौथे भंगमें तो शय्यातरके स्वत्वके संसर्गकी तनिक भी आशंका नहीं है। तात्पर्य यह है कि जहां शय्यातरका स्वत्व (हक) नहीं रहता वही वस्तु साधुको ग्राह्य होती है ।

इसी प्रकार यदि एक शय्यातरकी अनेक पत्नियाँ हों और वह

ભોજન બનાવવું અને એજ ઘરમાં જમવું (૨) એ ઘરમાં ભોજન બનાવવું અને બીજા ઘરમાં જમવું (૩) બીજા–બીજા ઘરમાં બનાવવું અને એ ઘરમાં જમવું (૪) બીજા–બીજા ઘરમાં બનાવવું અને બીજા–બીજા ઘરમાં જમવું

આ ચાર ભાગોમાંથી બીજો અને ચોથા ભાગો સાધુને કલ્પે છે બીજા ભાગામાં એકત્ર રસોઈ થતી હોય તો પણ શય્યાતરથી ભિન્ન મનુષ્યોનો ભાગ જૂદો થઈ જતાં શય્યાતરનો ભાગ છોડીને અન્યનો પિંડ કલ્પે છે, કારણ કે ત્યાં શય્યાતરનું સ્વામિત્વ રહેતું નથી

ચોથા ભાગામાં તો શય્યાતરના સ્વત્વના સંસર્ગની જરા પણ આશંકા નથી તાત્પર્ય એ છે કે જેમાં શય્યાતરનું સ્વત્વ રહેતું નથી, તે વસ્તુ સાધુને માટે ગ્રાહ્ય બને છે

એજ રીતે જો એક શય્યાતરની અનેક પત્નીઓ હોય અને એ (શય્યાતર)

चत्वारो भङ्गा अत्राऽपि पूर्ववदेव ।

अप्रोषितभर्तृकासु तु यया निष्पादितमन्नादिकं नियतं शय्यातरो भुङ्क्ते सैव शय्यातरा, यद्यनियतं भुङ्क्ते तदा सर्वा अपि शय्यातरा मन्तव्याः, पूर्वोक्त-तृतीयभङ्गेऽयं विशेषो बोद्धव्यः—यदा पृथक् पृथग् रन्धनं कृतम्, एकत्र कृत्वा भुक्तं च तदाऽवशिष्टमन्नादिकं विभज्य यदि स्व-स्वगृहं नयेत् तादृशं शय्यातरस्वत्व-विरहितमन्नादिकं साधोः कल्प्यमेवेति । एकत्रीकृतमविभक्तं चेन्न कल्प्यमिति तदाशयः ।

(शय्यातर) परदेश चला गया हो तो उनमें किसी एकको ही शय्यातर बनाना चाहिए । पहलेकी नांई यहां भी चार भंग समझना चाहिए । उनका पति परदेश न गया हो तो वह जिस पत्नीके यहां नियमित रूपसे जीमता हो वही शय्यातर होती है ।

यदि नियमित रूपसे न जीमता हो-कभी कहीं कभी कहीं जीमता हो तो सभीको शय्यातर मानना चाहिए ।

पहलेके चार भंगोंमेंसे तीसरे भंगमें इतना विशेष समझना चाहिए-यदि अलग अलग भोजन बनाया गया हो और एकत्र करके जीमा हो तो बचे हुए अन्न आदिको बाँट लेने पर साधु शय्यातरसे अन्यका आहार आदि ले सकते हैं, क्योंकि उसमेंसे शय्यातरका हिस्सा अलग निकल चुका है । हां इकट्ठा कर लिया हो और बांटा न हो तो साधुको कल्प-

પરદેશ ચાલ્યો ગયો હોય તો તે પત્નીઓમાંથી કોઇ એકને જ શય્યાતર બનાવવી જોઇએ પહેલાની પેઠે એમાં પણ ચાર ભાગા સમજવા જોઇએ એનો પતિ પરદેશ ન ગયો હોય તો તે જે પત્નીને ત્યાં નિયમિત રીતે જ જમતો હોય તે શય્યાતર બને છે જો નિયમિત રીતે ન જમતો હોય અને કોઇવાર એકને ત્યાં અને કોઇવાર બીજીને ત્યાં જમતો હોય તો બધી પત્નીઓને શય્યાતર માનવી જોઇએ

પહેલાના ચાર ભાગામાંના ત્રીજા ભાગામાં એટલું વિશેષ સમજવું કે—જો જુદું જુદું ભોજન બનાવ્યું હોય અને એકત્ર કરીને જમતા હોય તો વધેલા અન્નાદિને વહેંચી લીધા પછી સાધુ શય્યાતરથી જુદાનો આહાર આદિ લઇ શકે છે, કારણ કે એમાંથી શય્યાતરનો ભાગ જુદો કાઢવામાં આવી ચૂક્યો હોય છે હા, એકઠું કરેલું હોય અને વહેંચ્યું ન હોય તો સાધુને કલ્પે નહિ કોઇ શય્યા

कोऽपि शय्यातरो देशान्तर मस्थितः स्वगृहाद्बहिर्गत्वा कुत्रचित् तिष्ठेत्, तत्र यदि गृहादन्यस्थानाद्वाऽशनपानादिकं तदर्थमानीतम्, अथवा बहिःप्रदेश एव निष्पादितं चेत् तदा तदशनादिकं साधोरकल्प्यम्, रात्रिवासार्थं बहिर्गतस्य साधोस्तु पुनः कल्प्यमेव।

यदि शय्यातरोऽन्यदीयगृहेऽन्यदीयमन्नादिकं परिवेषयेत्, तत्रापि शय्यातरेण दीयमानमन्यदीयमप्यशन-पानादिकं साधोरकल्प्यम्।

साधोर्भिक्षादाने शय्यातरस्य सहगमनरूपनिमित्तत्वे सति तत्र भिक्षाग्रहणमकल्प्यम्। ग्रामाद्बहिरपि शय्यातरीयगोशालादिसत्त्वे तदीयदुग्धादिकं साधोरकल्प्यम्।

नीय नहीं है। कोई शय्यातर परदेश जा रहा हो, और घरसे निकलकर कहीं बाहर ठहर गया हो, तो भी उसका अन्न-पान ग्राह्य नहीं है, भलेही वह अन्न पान घरसे उसके लिए लाया गया हो या अन्य स्थानसे लाया गया हो अथवा वहीं पर तैयार किया गया हो। यदि रात्रिमें निवास करनेके लिए साधु बाहर चला गया हो तो कल्पनीय है।

शय्यातर, दूसरे गृहस्थके यहां उसी दूसरे गृहस्थका अन्नादि परोस रहा हो तो भी उसके हाथसे दिया हुआ आहार कल्पनीय नहीं है। यदि किसी भिक्षाकी प्राप्तिमें शय्यातर निमित्त हो अर्थात् दलाली करे तो वह भिक्षा भी साधुको ग्राह्य नहीं है।

गावसे बाहर शय्यातरकी गोशाला आदि हो तो वहांका दूध आदि भी साधुको ग्राह्य नहीं है।

તર પરદેશ જઈ રહ્યો હોય અને ઘરમાંથી નીકળીને ક્યાંક બહાર રહ્યો હોય તો પણ એનું અન્ન-પાન ગ્રાહ્ય બનતું નથી, પછી ભલે એ અન્ન-પાન ઘેરથી એને માટે લાવવામાં આવ્યું હોય અથવા અન્ય સ્થાનથી લાવવામાં આવ્યું હોય, યા ત્યાંજ તૈયાર બનાવવામાં આવ્યું હોય જો રાત્રે નિવાસ કરવાને માટે સાધુ બહાર ચાલ્યા ગયા હોય તો કલ્પે છે

શય્યાતર, બીજા ગૃહસ્થને ત્યાં એ બીજા ગૃહસ્થના અન્નાદિ પીરસે તોપણ એના હાથથી અપાતો આહાર કલ્પે નહિ જો કોઈ ભિક્ષાની પ્રાપ્તિમાં શય્યાતર નિમિત્ત હોય અર્થાત્ દલાલી કરે તો એ ભિક્ષા પણ સાધુને ગ્રાહ્ય થતી નથી

ગામની બહાર શય્યાતરની ગોશાળા આદિ હોય તો ત્યાંનું દૂધ વગેરે પણ સાધુને ગ્રાહ્ય બને નહિ

शय्यातरगृहे भोक्ता भृत्यादिरपि शय्यातरः । शय्यातरस्य स्वसा दुहिता च तस्मिन् दिवसे पुनरागमनमनिश्चित्य भर्तृकुलादागच्छेत्, तदा साऽपि शय्यातरा। यदि तस्मिन्नहनि भर्तृकुलं पुनर्गन्तुकामा शय्यातरगृहमागता चेत् सा शय्यातरगृहे एव शय्यातरत्वमुपयाति अन्यगृहे तु न तस्याः शय्यातरत्वमिति बोध्यम् ।

उपाश्रयस्वामिनि देशान्तरस्थे सति उपाश्रयसंरक्षकादाज्ञामादाय यत्र साधुस्तिष्ठेत् तत्रोपाश्रयस्वामिनि समागते साधुना शय्यातरत्वं स्वामिन्येव कल्पनीयम्, न संरक्षके ।

शय्यातरमदत्तमन्येन स्वीकृतमप्यशनादिकं शय्यातरगृहे साधोरकल्प्यम्, व्यवहारशुद्ध्यादिदोषात् ।

शय्यातरके घर जीमनेवाले नोकर-चाकर भी शय्यातर हैं । शय्यातरकी बहिन या बेटी उस दिन वापस लौटनेका निश्चय न करके अपनी ससुरालसे आई हो तो वह भी शय्यातर है, यदि वापस लौटनेका विचार करके आई हो तो वह शय्यातरके घरमें ही शय्यातर है, दूसरेके घरमें नहीं, अर्थात् दूसरेके घरमें दूसरेका आहारादि यदि वह परोसे तो साधु ले सकते हैं ।

जब उपाश्रयका स्वामी परदेशमें रहता हो और उपाश्रयके रखवालेसे आज्ञा लेकर साधु उसमें ठहरे तो जब उपाश्रयका स्वामी आजावे तब वही शय्यातर होता है, रखवाला नहीं ।

शय्यातरने अशन आदिक दूसरे को दे दिया और दूसरेने चाहे उसे स्वीकार भी कर लिया हो तो भी शय्यातर के घर पर साधु को वह लेना नहीं

શય્યાતરના ઘેર જમનારા નોકર-ચાકર પણ શય્યાતર છે, શય્યાતરની બહેન યા પુત્રી એ દિવસ પાછા જવાનો નિશ્ચય કર્યા વિના પોતાને સાસરેથી આવી હોય તો તે પણ શય્યાતર છે જો પાછા જવાનો વિચાર કરીને આવી હોય તો શય્યાતરના ઘરમા જ તે શય્યાતર છે, બીજાના ઘરમા નહિ, અર્થાત બીજાના ઘરમા બીજાનો આહારાદિ જો તે પીરસે તો સાધુ લઈ શકે છે

જો ઉપાશ્રયનો સ્વામી પરદેશમા રહેતો હોય અને ઉપાશ્રયના રખેવાળની આજ્ઞા લઈને સાધુ તેમા રહે તો જ્યારે ઉપાશ્રયનો સ્વામી આવી જાય ત્યારે તે શય્યાતર બને છે, રખેવાળ નહિ

શય્યાતરે અશનાદિ બીજાને આપી દીધુ હોય અને બીજાએ ભલે એને સ્વીકારી પણ લીધુ હોય, તો પણ શય્યાતરને ઘેર સાધુએ તે લેવુ જોઈએ નહિ,

तथा शय्यातरेण दत्तमन्येनास्वीकृतमशनादिकं शय्यातरगृहाद् बहिरपि साधोरकल्प्यम्, तत्र शय्यातरस्वत्वापगमाभावात् ।

शय्यातरगृहाद् बहिरन्येन स्वीकृतं चेत् तदा साधोः कल्प्यमेव, तत्र शय्यातरस्वत्वापगमादिति बोध्यम् ।

शय्यातरगृहाद्बहिस्तेन (शय्यातरेण) दत्तमन्येनाऽस्वीकृतं चेत् तत्राऽस्वीकृताशनपानादेः स्वीकारार्थं 'गृह्यतामिदं'-मित्यादिपररूपा प्रवर्त्तनाऽपि साधोरकल्प्या । शय्यातरपिण्डग्रहणादिदोषशङ्कासमवात् ।

चाहिए, क्योंकि स्वीकार कर लेनेसे शय्यातरका स्वामित्व तो नहीं रहा पर यहा व्यवहारसे अशुद्धि है।

यदि शय्यातरद्वारा दिये हुए अन्नादिको अन्य गृहस्थ न स्वीकार करे तो शय्यातरके घरमे या घरसे बाहर कहीं भी साधुको नहीं ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि उस आहारादिमें शय्यातरका स्वत्व रहता है। शय्यातरके घरसे बाहर दूसरेने स्वीकार कर लिया हो तो साधुको कल्पनीय है, क्योंकि उसपर शय्यातरका स्वत्व नहीं रहा।

शय्यातरके घरसे बाहर शय्यातरने किसी दूसरेको दिया हो और दूसरेने स्वीकार न किया हो तो उस-अशनादिके स्वीकार करानेके लिए 'तुम ले लो' इत्यादिरूपसे गृहस्थको प्रेरणा करना भी साधुका कल्प नहीं है, क्योंकि उसमें शय्यातरका पिण्ड लेने आदि अनेक दोषोंकी शका होती है।

કારણ કે સ્વીકારી લેવાથી શય્યાતરનું સ્વામિત્વ તો રહ્યું નહિ, પણ તેમા વ્યવહારથી અશુદ્ધિ રહેલી છે

જો શય્યાતરે આપેલુ અન્નાદિ અન્ય ગૃહસ્થ ન સ્વીકારે તો શય્યાતરના ઘરમા યા ઘરબહાર ક્યાય પણ તે સાધુએ ગ્રહણ કરવુ જોઈએ નહિ, કારણ કે તે આહારાદિમા શય્યાતરનું સ્વત્વ રહેલુ હોય છે શય્યાતરના ઘરથી બહાર બીજાએ સ્વીકારી લીધુ હોય તો તે સાધુને કલ્પે, કેમકે તે ઉપર શય્યાતરનું સ્વત્વ રહેતુ નથી

શય્યાતરના ઘરની બહાર શય્યાતરે કોઈ બીજાને આપ્યુ હોય અને બીજાએ સ્વીકાર્યું ન હોય તો તે અશનાદિનો સ્વીકાર કરાવવાને માટે 'તમે લઈ લ્યો' ઇત્યાદિરૂપે ગૃહસ્થને પ્રેરણા કરવી એ પણ સાધુને કલ્પે નહિ, કારણ કે તેમા શય્યાતરના પિંડ લેવો વગેરે અનેક દોષોની શકા રહે છે

अथ शय्यातरपिण्डग्रहणे दोषाः प्रदर्श्यन्ते—

(१) वसतिदौर्लभ्यम्, वसतिस्वामिनो गृहेऽशनपानादिग्रहणनियमे-स्वकीयान्नादिव्ययमालोच्य स्वोपाश्रयनिवासार्थमाज्ञा साधवे न कोऽपि दद्यात्, इत्याशयः। (२) प्रवचनलाघवम्, (३) स्वावासस्थान एव भिक्षालाभसम्भावनया परिभ्रमणालस्ये सञ्जाते कदाचित् शय्यातरगृहे आहाराद्यलाभेऽकालभिक्षाचर्याप्रसङ्गः, वेलातिक्रमे सति आर्त्तरौद्रध्यानप्रसङ्गः, स्वाध्यायान्तरायः, आत्मक्लान्तिश्च,

शय्यातरका पिण्ड ग्रहण करनेमें दोष बतलाते हैं—

(१) शय्यातरका पिण्ड ग्रहण किया जाय तो वसति मिलना दुर्लभ (मुश्किल) हो जायगा। गृहस्थ यह विचारेंगे कि इन्हें स्थान देनेसे अन्न-पान आदि भी देना पडेगा। ऐसा सोचकर गृहस्थ अपने स्थानमें रहनेके लिए साधुओंको स्थान नहीं देगा।

(२) प्रवचनका लाघव होगा।

(३) अपने निवासस्थान पर ही भिक्षा मिल जानेकी सम्भावनासे साधु भ्रमण करनेमें आलस्य करेंगे, और जब शय्यातरके घर पर आहार नहीं मिलेगा तो अकाल-(असमय)-में गोचरी करनेका प्रसंग होगा, और असमयमें भिक्षा न मिलनेसे आर्त्त-रौद्र ध्यान होंगे, स्वाध्याय आदिमें अन्तराय पडेगा, और आत्माको खेद होगा।

શય્યાતરનો પિંડ ગ્રહણ કરવામા રહેલા દોષો બતાવે છે —

(૧) શય્યાતરનો પિંડ ગ્રહણ કરવામા આવે તો વસતિ (રહેવાનુ સ્થાન) મળવુ દુર્લભ (મુશ્કેલ) બની જાય ગૃહસ્થ એમ વિચારશે કે એમને સ્થાન આપવાથી અન્ન-પાન આદિ પણ દેવા પડશે એમ વિચારીને ગૃહસ્થ પોતાના સ્થાનમા રહેવાને માટે સાધુઓને સ્થાન આપશે નહિ

(૨) પ્રવચનનુ લાઘવ થશે

(૩) પોતાના નિવાસસ્થાન પર જ ભિક્ષા મળી જવાની સભાવનાથી સાધુ ભ્રમણ કરવામા આળસ કરશે, અને જો શય્યાતરના ઘેરથી આહાર નહિ મળે તો અકાલે (અસમયે) ગોચરી કરવાનો પ્રસગ આવશે, અને અકાલ ભિક્ષા ન મળવાથી આર્ત-રૌદ્ર ધ્યાન થશે, સ્વાધ્યાયાદિમા અતરાય પડશે અને આત્માને ખેદ થશે

(४) तीर्थङ्कराज्ञाभङ्गोऽपीत्यादयो दोषाः प्रसज्यन्ते, (२३),

इति शय्यातरविचारः ।

आसन्दी=वेत्रासन, खट्टिका च (२४),

पर्य्यङ्कः=मञ्चविशेषः, स एव पर्यङ्ककः; स्वार्थे कः । चकाराच्छिबिका दोला-तामयानादिग्रहणम् (२५),

गृहान्तरनिषद्या=गृह=गृहिनिकेतन तस्याऽन्तरम्=अभ्यन्तर मध्यमिति यावत्, तस्मिन् निषद्या=निषदनम् उपवेशनमित्यर्थः, यद्यपि व्याकरणादौ निषीदन्त्यस्या' मिति विगृह्य 'निषद्या=आपणः' इत्युक्त तथाप्यत्र शास्त्रसङ्केतितत्वा द्भाववयवन्तोऽय निषद्याशब्दः (२६),

गात्रस्य=शरीरस्य उद्वर्त्तनानि=मलापनयनद्रव्येण समालेपनानि 'उबटन' इतिलोकप्रसिद्धानि, चकारादन्येषामपि शरीरसम्बन्धिना सस्काराणा ग्रहण बोद्धव्यम् (२७),

एषु चारित्रघातादयो दोषा' सुस्पष्टा एव ॥ ५ ॥ ५ ॥

(४) इसके सिवाय तीर्थंकर भगवानने शय्यातर-पिण्डको अकल्पनीय बताया है, इसलिए उनकी आज्ञाका भग होगा, इत्यादि अनेक दोष आते हैं ॥ इति शय्यातर-विचार समाप्त ।

(२४) आसन्दी–बेतकी बनी हुई छिद्रवाली कुर्सीपर बैठना ।

(२५) पर्यङ्क–एकप्रकारका पलग, पालखी, डोला, तामजाम आदिका ग्रहण करना ।

(२६) गृहान्तरनिषद्या–गृहस्थके घरमें बैठना ।

(२७) गात्रोद्वर्त्तन–शरीर पर उबटन आदि करना ॥५॥

(४) એ ઉપરાત તીર્થંકર ભગવાને શય્યાતર પિંડને અકલ્પનીય બતાવ્યો છે, તે માટે એમની આજ્ઞાનો ભગ થશે, ઈત્યાદિ અનેક દોષો ઉત્પન્ન થાય છે

ઈતિ શય્યાતર-વિચાર સમાપ્ત

(૨૪) આસન્દી–નેતરની બનાવેલી છિદ્રવાળી ખુરશી પર બેસવુ

(૨૫) પર્યંક–એક પ્રકારનો પલગ, પાલખી, હિંડોળો, મ્યાનો

(૨૬) ગૃહાન્તરનિષદ્યા–ગૃહસ્થના ઘરમા બેસવુ

(૨૭) ગાત્રોદ્વર્તન–શરીર પર સુગધી પદાર્થો ચોળવા (૫)

मूलम्-गिहिणो[२८] वेयावडियं, जाइयाजीववत्तिया[२९]।
तत्तानिव्वुडभोइत्तं[३०], आउरस्सरणाणि[३१] य ॥६॥

छाया-गृहिणो वैयावृत्यं, जात्याजीववृत्तिता (आजीववर्तिता)
तप्तानिर्वृतभोजित्व,-मातुरस्मरणानि च ॥ ६ ॥

सान्वयार्थः-(२८) गिहिणो=गृहस्थकी वेयावडियं=वैयावच्च करना, (२९) जाइया=जातिसे-अपनी ऊची जाति बताकर आजीववत्तिया=जीविकानिर्वाह करना, (३०) तत्तानिव्वुडभोइत्तं=अग्निमें सिर्फ तपाया हुआ किन्तु शस्त्रसे अपरिणत-मिश्र भोजन करना, य=और (३१) आउरस्सरणाणि=बीमार होनेपर पूर्वभुक्त वस्तुका स्मरण करना ॥ ६ ॥

टीका-गृहिणः=गृहस्थस्य, वैयावृत्यं=गृहस्थायान्नाऽऽनयनप्रदानादि-लक्षण-शुश्रूषाकरणम् (२८),

जात्या='अहमेतादृशजातिविशिष्ट' इत्याद्यावेदनेन, उपलक्षणमिद कुलादीनामपि, आजीववृत्तिता-आजीवे=जीविकायां वृत्तिः=स्थितिर्यस्य तद्भाव', यद्वा 'आजीववर्त्तिता' इतिच्छाया, आजीवे=जीविकायां वर्तितु शील यस्यासौ आजीववर्त्ती तस्य भाव इति तदर्थ (२९),

तप्तानिर्वृतभोजित्वं=तप्त=वह्निनोष्णीकृत च तत् अनिर्वृतं=शस्त्रापरिणत तप्तानिर्वृतम् अर्द्धपक्वमिति भावस्तद्भोक्तु शीलमस्य तत्त्वम्, मिश्रान्नादिसेवनमित्यर्थ (३०)

आतुरस्मरणम्=आतुरा'=रोगादिग्रस्तास्तेषां स्मरणं=तत्कर्तृकपूर्वोपभुक्त

(२८) गृहस्थकी वैयावृत्य (सेवा-शुश्रूषा) करना।
(२९) अपनी जाति या कुल आदि बताकर भिक्षा लेना।
(३०) आधा पक्का आधा कच्चा अर्थात् मिश्र अन्न-पानी आदि लेना।
(३१) रोग आदिकी अवस्थामें पहले सेवन किये हुए विषयोंका

(२८) ગૃહસ્થની વૈયાવૃત્ય (સેવા-શુશ્રૂષા) કરવી
(૨૯) પોતાની જાતિ યા કુળ બતાવીને ભિક્ષા લેવી
(૩૦) અધપાકા-અધકાચા અર્થાત્ મિશ્ર અન્નપાણી આદિ લેવા
(૩૧) રોગાદિની અવસ્થામા પહેલા સેવેલા વિષયોનું સ્મરણ કરવુ અર્થાત્

वस्तुस्मरणमिति फलितम्, यद्वा आतुरशब्दोऽत्र भावप्रधाननिर्देशस्तथाचाऽऽतुरत्वे स्मरणमिति समासः, रोगाद्यवस्थायां पूर्वाऽनुभूतवस्तुस्मरणमित्यर्थ (३१)।
चकार इहापि समुच्चयार्थकः। अत्रासंयमादयो दोषा जायन्ते ॥ ६ ॥

मूलम्-मूलए[३२] सिंगबेरे[३३] य, उच्छुखंडे[३४] अनिव्वुडे ।
कंदे[३५] मूले[३६] य सच्चित्ते, फले[३७] बीए[३८] य आमए ॥७॥

छायाः-मूलकं शृङ्गबेरं च, इक्षुखण्डमनिर्वृतम् ।
कन्दो मूलं च सचित्तं, फलं बीजं चामकम् ॥ ७ ॥

सान्वयार्थः-य=और (३२) मूलए=मूला (३३) सिंगबेरे=अदरख (३४) उच्छुखंडे=गन्ना (सेलडी) अनिव्वुडे=शस्त्रसे अपरिणत (३५) कंदे=कन्द य= और (३६) मूले=शिफा (तथा) सच्चित्ते=सचित्त (३७) फले=फल य=और आमए=सचित्त (३८) बीए=बीज। भावार्थ-इनके सेवनसे अनन्तकाय आदि वनस्पतिकायकी विराधना होती है ॥ ७ ॥

टीका-मूलकं=प्रसिद्धम् (३२), शृङ्गबेरं=शृङ्गवद्बेरं=शरीरं यस्य तत् आर्द्रकमित्यर्थ (३३), च=तथा इक्षुखण्डम्=इक्षुशकलम्, एतत्त्रयम् अनिर्वृतं=शस्त्रापरिणतम् (३४) कन्द =शूरणादिः (३५), मूलं=शिफा (३६), च=पुनः, सचित्तं=सजीवम्,

स्मरण करना अर्थात् बीमारीमें हाय! हाय! करना ॥६॥
(३२) सचित्त मूलाका सेवन करना।
(३३) सचित्त अदरख (आदा) का सेवन करना।
(३४) सचित्त इक्षुखण्डका सेवन करना।
(३५) सचित्त शूरण आदि कन्दोंका सेवन करना।
(३६) सचित्त मूलका सेवन करना।

बिमारीमां 'हाय! हाय!' करवी (६)
(३२) सचित्त मूळानुं सेवन करवु
(३३) सचित्त आदुनुं सेवन करवु
(३४) सचित्त शेरडीना पतीका-कटका-नुं सेवन करवु
(३५) सचित्त सूरण आदि कंदोनुं सेवन करवुं
(३६) सचित्त मूळनुं सेवन करवु

फल=कर्कटी-त्रपुषादिकम्(३७),च=तथा बीज=तिलादि, आमकम्=सचित्तम्(३८),। अत्रानन्तकायादिविराधनादिदोषा जायन्ते ॥ ७ ॥

मूलम्-सोवच्चले[39] सिंधवे[40] लोणे, रुमालोणे[41] य आमए ।
सामुद्दे[42] पसुखारे[43] य, कालालोणे[44] य आमए ॥८॥

छायाः-सौवर्चल सैन्धवो लवणो, रुमालवणश्चामकः ।
सामुद्रः पाशुक्षारश्च, काललवणश्चामकः ॥ ८ ॥

सान्वयार्थः-आमए=सचित (३९) सोवचले=सौवर्चल-सचरनमक (४०) सिंधवे लोणे=सैन्धव-सींधानमक (४१) रुमालोणे=रुमानदीसे निकला हुआ नमक (४२) सामुद्दे=समुद्री नमक य=और (४३) पसुखारे=ऊपर नमक य=और आमए=सचित्त (४४) कालालोणे=काला नमक। भावार्थ-उल्लिखित नमकोंका सेवन करनेसे पृथ्वीकाय आदिकी विराधना होती है ॥ ८ ॥

टीका—सुवर्चले=देशविशेषे भवः सौवर्चलः=रुचकलवण. (३९),

सिन्धुनद्युपलक्षितदेशीयपर्वते भव. सैन्धवः, लवणः=लुनाति=छिनत्ति दूरयति कफादिकमिति लवण', इद सौवर्चलादेर्विशेषणपदम् (४०),

च=तथा, रुमालवण =रुमा=विशिष्टलवणाकरभूता काचिन्नदी तस्या लवण', आमक =सचित्त', अस्य पूर्वार्द्धे सर्वत्र सम्बन्ध (४१),

(३७) सचित्त ककडी खीरा आदि फलोंका सेवन करना।
(३८) सचित्त बीजका=तिल आदिका सेवन करना ॥ ७ ॥
(३९) सचित्त रुचक (सौवर्चल सोचर) नमकका सेवन करना।
(४०) सचित्त सैन्धव (सेंधा) नमकका सेवन करना।
(४१) सचित्त रुमा (नदीविशेषके) नमकका सेवन करना।

(૩૭) સચિત્ત કાકડી ખીરા આદિ ફલોનુ સેવન કરવુ
(૩૮) સચિત્ત બીજ તલ આદિનુ સેવન કરવુ (૭)
(૩૯) સચિત્ત રૂચક લૂણ (સૌવર્ચલ-સચળ)નુ સેવન કરવુ
(૪૦) સચિત્ત સિંધાલૂણનુ સેવન કરવુ
(૪૧) સચિત્ત રૂમા (નદીવિશેષમાંથી નીકળેલા) મીઠાનું સેવન કરવું

सामुद्रः=समुद्रोत्थलवणः (४२),

पांशुक्षारः=ऊपरलवणः (४३),

च=तथा काललवणः=कृष्णलवणः 'बिडलवण' इतिप्रसिद्धः (४४),

आमकः=सचित्तः, 'आमक' इत्यस्योत्तरार्द्धे सर्वत्र सम्बन्धः। अत्र पृथ्वीकायविराधनादयो दोषा भवन्ति ॥ ८ ॥

४५ ४६ ४७ ४८
मूलम्-धुवणेत्ति वमणे य, वत्थीकम्म-विरेयणे।

४९ ५० ५१ ५२
अजणे दंतवण्णे य, गायब्भगविभूसणे ॥९॥

छायाः-धूपनमिति वमनं च, वस्तिकर्म विरेचनम्।
अञ्जनं दन्तवर्णश्च, गात्राभ्यङ्ग-विभूषणे ॥ ९ ॥

सान्वयार्थः-(४५) धुवणेत्ति=रोग मिटाने आदिके लिए किसी स्थानमें धूप देना, (४६) वमणे=प्रयत्नपूर्वक वमन करना, (४७) वत्थीकम्म=बस्तीकर्म करना, य=और (४८) विरेयणे=विरेच-जुलाब लेना, (४९) अजणे=अंजन-सुरमा आदि आजना, (५०) दंतवण्णे=दातून मसी आदिसे दाँत साफ करना, (५१-५२) गायब्भगविभूसणे=शरीरको तैल आदिसे मालिश करना (५१) तथा वस्त्र आदिसे भूषित करना (५२) ॥ ९ ॥

टीका—धूपन=रोगाद्युपशान्तिनिमित्तं स्थानकादिषु धूपदानम्, सौगन्ध्योत्पत्तिनिमित्तमंशुकादीनां धूपादिना वासनञ्च (४५),

(४२) सचित्त समुद्री नमकका सेवन करना।
(४३) सचित्त ऊपर नमकका सेवन करना।
(४४) सचित्त काले नमकका सेवन करना ॥ ८ ॥
(४५) रोग आदिकी शान्ति अथवा सुगधिके लिए स्थानक या वस्त्र आदिमे धूप देना।

(૪૨) સચિત્ત સમુદ્રના લૂણનુ સેવન કરવુ
(૪૩) સચિત્ત ઊપર લૂણ (ખારા)નું સેવન કરવુ
(૪૪) સચિત્ત કાળા મીઠાનું સેવન કરવુ (૮)
(૪૫) રોગાદિની શાન્તિ અથવા સુગધિને માટે સ્થાનક યા વસ્ત્રાદિને ધૂપ કરવો

वमन=वमिजनकभेषजादिप्रयोगेण वान्तिकरणम् (४६),

वस्तिकर्म=वसतः=तिष्ठतः, मूत्रपुरीषावत्रेति, वस्ते=आच्छादयति मूत्राऽऽशयपुटमिति वा वस्तिः=नाभेरधोभागः, तस्याः कर्म=तच्छोधनव्यापारो वस्तिकर्म=मलादिशोधनार्थमपानादिमार्गे वर्तिकादिप्रवेशनम्, अपानमार्गेण जलकर्षण वेत्यर्थः (४७),

विरेचनम्–कोष्ठशुद्ध्यर्थं स्वर्णमुख्यादिविरेचनसेवनम् (४८)

अञ्जन=शोभावशीकरणाद्यर्थं नयनयोः कज्जल-सौवीरादिदानम् (४९),

दन्तवर्णः–[1]वर्णन-वर्णः, दन्ताना वर्णः=उज्ज्वलीकरण दन्तवर्णः=अङ्गुली दन्तशाण(मसी)काष्ठादिभिर्दन्तवर्षणम् (५०) ।

गात्राभ्यङ्ग-विभूषणे=अभ्यङ्गश्च विभूषण चेत्यनयोरितरेतरयोगद्वन्द्व इत्यभ्यङ्ग-विभूषणे, गात्रस्य अभ्यङ्ग-विभूषणे गात्राभ्यङ्गविभूषणे, 'द्वन्द्वान्ते द्वन्द्वादौ वा श्रूयमाण पद प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इतिन्यायाद् गात्रशब्दस्य प्रत्येक सम्बन्धस्तत्र गात्राभ्यङ्ग=गात्रस्य=शरीरस्य अभ्यङ्गः=शतपाक-सहस्रपाकादितैला दिनाऽभ्यञ्जन मर्दनमिति यावत् (५१),

गात्रविभूषण=वस्त्रालङ्करणादिना शरीरपरिष्करणम् (५२),

१ चौरादिकाद्वर्णयतेर्भावे घञ् ।

(४६) दवाई लेकर वमन करना ।
(४७) मल आदिके शोधनके लिए वस्तिकर्म करना ।
(४८) कोठेकी शुद्धिके लिए सनाय आदिका जुलाब लेना ।
(४९) नेत्रोंमें कज्जल आदि लगाना ।
(५०) मिस्सी आदि लगाकर दांत रंगना ।
(५१) शतपाक, सहस्रपाक आदि तेलसे शरीरकी मालिश करना ।
(५२) शरीरका वस्त्र आभूषणोंसे मण्डन करना ।

(४६) દવા લઈને વમન કરવું
(૪૭) મલાદિના શોધન માટે બસ્તિકર્મ કરવું
(૪૮) ઉદર ની શુદ્ધિને માટે સોનામુખી આદિનો જુલાબ લેવો
(૪૯) આંખોમાં કાજળ (મેશ) આંજવું
(૫૦) મસ્સી વગેરે લગાડીને દાંત રંગવા
(૫૧) શતપાક, સહસ્રપાક આદિ તેલથી શરીરને મર્દન કરવું
(૫૨) શરીરનું મંડન કરવું (શોભાવવું)

धूपनादिनाऽग्निकायप्रभृतिविराधनादिदोषा जायन्ते ९ ॥

सम्प्रत्युपसंहरन्नाह–' सव्वमेयं '-इत्यादि ।

मूलम्–सव्वमेयमणाइन्नं, निग्गंथाण महेसिणं ।
संजमम्मि अ जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं ॥१०॥

छायाः–सर्वमेतदनाचीर्णं, निर्ग्रन्थानां महर्षीणाम् ।
संयमे च युक्तानां लघुभूतविहारिणाम् ॥ १० ॥

सान्वयार्थः–निग्गंथाणं=परिग्रहरहित महेसिणं=महर्षियोंके संजमम्मि=संयममें जुत्ताणं=लगेहुए य=और लहुभूयविहारिणं=वायुके समान अप्रतिबन्धविहार करनेवालोंके एयं=ये–पूर्वोक्त बावन सव्वं=सब अणाइन्नं=अनाचीर्ण है। भावार्थ–निर्ग्रन्थ महर्षियोंने पूर्वोक्त इन बावन विषयोंका आचरण नहीं किया, अतः ये अनाचीर्ण कहलाते हैं। साधुओंको इनका आचरण नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

टीका—ग्रन्थान्निर्गता निर्ग्रन्थाः=कनक-रजतादिद्रव्यग्रन्थि-मिथ्यात्वादिभावग्रन्थिरहितास्तेषाम्, महर्षीणाम् महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयस्तेषाम्, यद्वा 'महैषिणा'मिति च्छाया, महो=निजहितं तम् एषयन्ति=गवेषयन्तीति महैषिणस्तेषाम्। संयमे=सकलसावद्यव्यापारोपरमलक्षणे युक्तानां=व्यापृतानां दत्तचित्तानामित्यर्थः,

---

इन धूप आदिसे अग्निकाय आदि जीवोंकी विराधना आदि दोष होते हैं ॥९॥

अब उपसंहार करते हैं–'सव्वमेयं०' इत्यादि।

बाह्याभ्यन्तर परिग्रहकी ग्रन्थिसे रहित, अपने हितका अन्वेषण करनेवाले महर्षि तीन करण तीन योगसे सावद्य व्यापारके त्यागरूप

એ ધૂપ આદિથી અગ્નિકાય આદિ જીવોની વિરાધના આદિ દોષ લાગે છે (૯),

હવે ઉપસંહાર કરે છે—सव्वमेयं० ઇત્યાદિ

બાહ્યાભ્યંતર પરિગ્રહની ગ્રંથિથી રહિત, પોતાના હિતનું અન્વેષણ કરનારા મહર્ષિઓએ ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી સાવદ્ય વ્યાપારને ત્યજવા રૂપ સકળ સંયમથી

च=पुनः लघुभूतविहारिणाम्=लघुभूतो=वायुस्तद्वदप्रतिबद्ध विहरन्ति तच्छीलास्तेषा वायुवदप्रतिबन्धविहारिणामित्यर्थः। एतत्=पूर्वोक्त सर्वं द्विपञ्चाशत्प्रकारकम् अनाचीर्णम्=अनासेवितम् 'अस्ती'-ति शेषः ॥ १० ॥ १० ॥

अनाचीर्णत्यागिनो मुनयः कीदृशा भवन्ति ?-इत्याह-

मूलम्-पंचासवपरिन्नाया[१], तिगुत्ता[२] छसु[३] संजया[४] ।
पंचनिग्गहणा[५] धीरा[६], निग्गंथा[७] उज्जुदंसिणो[८] ॥११॥

छायाः-पञ्चाश्रवपरिज्ञाता,-स्त्रिगुप्ताः षट्सु संयताः ।
पञ्चनिग्रहणा धीरा, निर्ग्रन्था ऋजुदर्शिनः ॥ ११ ॥

सान्वयार्थ.-पंचासवपरिन्नाया=पांच आस्रवोंके त्यागी, तिगुत्ता=मनोगुप्ति १ वचनगुप्ति २ कायगुप्ति ३ से युक्त, छसु=छह कायमें संजया=संयमवान्, पंचनिग्गहणा=पांच इन्द्रियोंके निग्रह करनेवाले धीरा=परीषह उपसर्ग सहनेमें धीर निग्गंथा=मुनि उज्जुदंसिणो=मोक्षमार्गके आराधक होते हैं। भावार्थ-जो अनाचीर्णोंका त्याग करते हैं वे गाथोक्तविशेषणोंसे विशिष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

टीका-पञ्चास्रवपरिज्ञाताः=आस्रवति=आक्षरति मिथ्यात्वादिनालिकाभ्यः कर्मसलिलमात्मतडागे यैस्ते आस्रवा हिंसादयः, पञ्च च त आस्रवाश्चेति पञ्चास्रवा

सकल संयमसे युक्त और वायुकी तरह अप्रतिबन्ध विहार करनेवाले मुनिराजोंके ये पूर्वोक्त बावन अनाचीर्ण हैं ॥१०॥

अनाचीर्णोंका त्याग करनेवाले मुनि कैसे होते हैं ? सो कहते हैं- 'पंचासव०' इत्यादि ।

जिनके द्वारा आत्मारूपी तालावमें मिथ्यात्वादिरूप नालाओंसे कर्मरूपी जल आता है उन्हें आस्रव कहते हैं। वे आस्रव मिथ्यात्व

યુક્ત અને વાયુની પેઠે અપ્રતિબંધ વિહાર કરનારા મુનિરાજોના એ પૂર્વોક્ત બાવન અનાચીર્ણ છે

અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરનારા મુનિઓ કેવા હોય છે ? તે કહે છે—
पंचासव० ઇત્યાદિ

જેની દ્વારા આત્મારૂપી તળાવમાં મિથ્યાત્વાદિ-રૂપ નાળાઓથી કર્મ-રૂપી જળ આવે છે તેને આસ્રવ કહે છે એ આસ્રવો મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિ ભેદો

धूपनादिनाऽग्निकायप्रभृतिविराधनादिदोषा जायन्ते ९ ॥

सम्प्रत्युपसंहरन्नाह–' सव्वमेय '-इत्यादि ।

मूलम्–सव्वमेयमणाइन्नं, निग्गंथाण महेसिणं ।
संजमंमि अ जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं ॥१०॥

छायाः–सर्वमेतदनाचीर्णं, निर्ग्रन्थानां महर्षीणाम् ।
संयमे च युक्तानां लघुभूतविहारिणाम् ॥ १० ॥

सान्वयार्थः–निग्गंथाणं=परिग्रहरहित महेसिणं=महर्षियोंके संजमंमि=संयममें जुत्ताणं=लगेहुए य=और लहुभूयविहारिणं=वायुके समान अप्रतिबन्धविहार करनेवालोंके एयं=ये-पूर्वोक्त बावन सव्वं=सब अणाइन्नं=अनाचीर्ण हैं। भावार्थ–निर्ग्रन्थ महर्षियोंने पूर्वोक्त इन बावन विषयोंका आचरण नहीं किया, अतः ये अनाचीर्ण कहलाते हैं। साधुओंको इनका आचरण नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

टीका–ग्रन्थान्निर्गता निर्ग्रन्थाः=कनक-रजतादिद्रव्यग्रन्थि-मिथ्यात्वादिभावग्रन्थिरहितास्तेषाम्, महर्षीणाम् महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयस्तेषाम्, यद्वा 'महैषिणा' मिति च्छाया, महो=निजहितं तम् एषयन्ति=गवेषयन्तीति महैषिणस्तेषाम्। संयमे=सकलसावद्यव्यापारोपरमलक्षणे युक्तानां=व्यापृतानां दत्तचित्तानामित्यर्थः,

इन धूप आदिसे अग्निकाय आदि जीवोंकी विराधना आदि दोष होते हैं ॥९॥

अब उपसंहार करते हैं–'सव्वमेय०' इत्यादि।

बाह्याभ्यन्तर परिग्रहकी ग्रन्थिसे रहित, अपने हितका अन्वेषण करनेवाले महर्षि तीन करण तीन योगसे सावद्य व्यापारके त्यागरूप

એ ધૂપ આદિથી અગ્નિકાય આદિ જીવોની વિરાધના આદિ દોષ લાગે છે (૯),

હવે ઉપસંહાર કરે છે—सव्वमेय० ઇત્યાદિ

બાહ્યાભ્યંતર પરિગ્રહની ગ્રંથિથી રહિત, પોતાના હિતનું અન્વેષણ કરનારા મહર્ષિઓએ ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી સાવદ્ય વ્યાપારને ત્યજવા રૂપ સકળ સંયમથી

छाया-आतापयन्ति ग्रीष्मेषु, हेमन्तेष्वप्रावृताः ।
वर्षासु प्रतिसंलीनाः, संयताः सुसमा(हिताः)धिकाः ॥ १२ ॥

सान्वयार्थ-सुसमाहिया=प्रशस्त समाधिवाले सजया=संयमी मुनि गिम्हेसु=ग्रीष्मऋतुमें आयावयंति=आतापना लेते हैं, हेमंतेसु=हेमन्तऋतुमें अवाउडा=अल्पवस्त्र या वस्त्ररहित रहते है, वासासु=वर्षाऋतुमें पडिसलीणा=कछुएकी भाति इन्द्रियोका गोपन करते है, अर्थात् जिस ऋतुमें जिस प्रकारकी तपस्यासे अधिक कायक्लेश होता हो उस ऋतुमें वही तपस्या करते है ॥ १२ ॥

टीका-सुसमाधिका.=समाधीयतेऽस्मिन् मनो विवेकिभिरिति समाधिः-प्रशस्तभावावस्थानम्, सु=शोभन. समाधिर्येषाते तथोक्ता.=विनय-श्रुतादिसमाधिसम्पन्नाः । यद्वा 'सुसमाहिता' इति च्छाया, 'निरवद्यव्यापारविधानदत्तावधानाः' इति तदर्थः । संयता=प्रवचनमननयतनावन्तः, मुनय' ग्रीष्मेषु=घर्मर्तुषु आतापयन्ति=ऊर्ध्वाभिमुखावस्थानादिना परितापयन्ति स्वतनुमिति शेष', आतापना विदधतीति यावत् । घ्नन्ति=नाशयन्ति शैत्याधिक्येन चित्तसमाधिमिति हेमन्ताः[1] हिमोऽन्तोऽवयवोऽस्त्येपामिति वा पृषोदरादित्वाद् हेमन्तास्तेषु हिमर्तुषु अप्रावृताः=

१ ('हन्तेर्मुट् हि च' उणादिसू. ३ । १२९) इति झच् हन्तेर्हिरादेशो मुडागमो गुणश्च ।

जिस अवस्थामें आत्मज्ञानी जन प्रशस्त-भावोंसे रमण करते हैं उसे समाधि कहते हैं। अनाचीर्णोंका त्याग करनेवाले साधु उस विनय श्रुत आदि चार प्रकारकी समाधिको प्राप्त करते हैं, अथवा निरवद्य व्यापार करनेमें सदा सावधान रहते हैं। तथा प्रवचनके मनन करनेमें यत्नवान् रहते हैं। ग्रीष्म ऋतुमे सूर्यके सन्मुख मुख करके भुजाएँ फैलाकर आतापना लेते है। शीत ऋतुमे थोडे कपडे रखते, या कपडोको

જે અવસ્થામા આત્મજ્ઞાની જન પ્રશસ્ત-ભાવોથી રમણ કરે તેને સમાધિ કહે છે અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરનારા સાધુઓએ વિનય શ્રુત આદિ ચાર પ્રકારની સમાધિને પ્રાપ્ત કરે છે અથવા નિરવદ્ય વ્યાપાર કરવામા સદા સાવધાન રહે છે તથા પ્રવચનનુ મનન કરવામા યત્નવાન્ રહે છે ગ્રીષ્મ ઋતુમા સૂર્યની સન્મુખ મુખ રાખીને ભુજાઓને પહોળી કરીને આતાપના લે છે શીત ઋતુમા થોડા કપડા રાખીને યા કપડા દૂર કરીને ઠંડીની આતાપના લે છે,

परि=सर्वतोभावेन ज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञातोऽनर्थमूलमनुभाविताः प्रत्याख्यानपरिज्ञातो हेयत्वेन परित्यक्ता यैस्ते तथोक्ताः,[1] त्रिगुप्ता'=तिसृभिर्मनोवाक्कायगुप्तिभिर्गुप्ता', षट्सु=पृथिव्यादिकायषट्केषु संयताः=सम्यग् यतनावन्त'-षड्जीवनिकायोपमर्दनविरता इत्यर्थः, पञ्चनिग्रहणाः=पञ्च=प्रसंगात् पञ्चेन्द्रियाणि निगृह्णन्ति=वशयन्तीति[2]तथोक्ताः, धीराः=परीषहोपसर्गादिषु धृतिमन्त', निर्ग्रन्थाः=मुनयः, ऋजुदर्शिनः=ऋजु=अवक्रम् अकुटिलस्वभाव यथा स्यात्तथा द्रष्टु शील येषा ते तथोक्ताः सरलहृदया इत्यर्थः, यद्वा अर्जते=उपार्जयति=सम्पादयत्यविचलसुखमिति ऋजुः=सम्यग्रत्नत्रयलक्षणो मोक्षमार्गस्त पश्यन्ति तच्छीला इति ऋजुदर्शिनः, मोक्षमार्गसाधका इत्यर्थ ॥ ११ ॥ ११ ॥

मूलम्-आयावयंति[4] गिम्हेसु[3], हेमंतेसु[5] अवाउडा[6] ।
वासासु[7] पडिसंलीणा[8], संजया[2] सुसमाहिया[1] ॥१२॥

१ 'पञ्चास्रवपरिज्ञाताः' अत्र आहिताग्न्यादित्वान्निष्ठान्तस्य परनिपातः।
२ 'पञ्चनिग्रहणाः' अत्र नन्द्यादित्वात्कर्त्तरि ल्युः ॥

अविरति आदिके भेदसे पाच प्रकारके हैं। उन आस्रवोको ज्ञ परिज्ञासे अनर्थोंका कारण जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञासे त्यागते हैं। अर्थात् अनाचीर्णोका त्याग करनेवाले पाँच आस्रवोंसे विरत हो जाते हैं, मन वचन कायरूप तीन गुप्तियोंसे युक्त होते हैं, पृथिवी आदि षट्कायकी यतनामे सावधान रहते है, अर्थात् षड्जीवनिकायकी विराधनासे रहित होते है, पाच इन्द्रियोंका दमन करते हैं, परीषह और उपसर्ग सहनेमे दृढ ऐसे मुनि, सरल हृदय होते है, अथवा अविनाशी सुखको प्राप्त करनेवाले या मोक्षमार्गके साधक होते है ॥११॥

કરીને પાચ પ્રકારના છે એ આસ્રવોને જ્ઞપરિજ્ઞાથી અનર્થોના કારણરૂપ જાણીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યજે છે, અર્થાત્ અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરનારાઓ પાચ આસ્રવોથી વિરત થઇ જાય છે, મન વચન કાયા-રૂપ ત્રણ ગુપ્તિઓથી યુક્ત થાય છે, પૃથિવી આદિ ૬ કાયની યતનામા સાવધાન રહે છે, અર્થાત્ ૬ જીવ નિકાયની વિરાધનાથી રહિત થાય છે, પાચ ઇંદ્રિયોનું દમન કરે છે, પરીષહ અને ઉપસર્ગ સહેવામા દૃઢ એવા મુનિઓ સરલહૃદય બને છે, અથવા અવિનાશી સુખને પ્રાપ્ત કરનારા યા મોક્ષમાર્ગના સાધક બને છે (૧૧)

उपशम प्रापिताः परीषहरिपवो यैस्ते तथोक्ताः,¹ धूतमोहाः=मुह्यति=सदसद्विवेक-रहितो भवत्यात्माऽनेनेति मोहोऽज्ञान धूतः=समुज्झितो मोहो यैस्ते तथोक्ताः, जितेन्द्रियाः=जितानि=रागद्वेषवशात्स्वविषयप्रवृत्त्युपरोधपूर्वकं वशीकृतानि इन्द्रियाणि=चक्षुरादीनि यैस्ते एवंविधा महर्षयः=मुनयः सर्वदुःखप्रहीणार्थं='प्रहीण'-मिति सौत्रत्वाद् भावक्तान्त गृह्यते, तथा च-सर्वाणि च तानि दुःखानि च सर्वदुःखानि सर्वदु खाना प्रहीण=परित्याग. सर्वदुःखप्रहीण, सर्वदुःखप्रहीणाय इद सर्वदुःखप्रहीणार्थम् 'अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्य'-मिति समासः। यद्वा 'प्रक्षीणार्थ'-मिति तदर्थ., सर्वदुःखप्रक्षीणार्थ=शारीरिक-मानसिक-निखिलदु'खविनाशार्थं प्रक्रामन्ति=समुद्युञ्जते स्वीया शक्ति स्फोरयन्तीत्यर्थः॥१३॥

सम्प्रत्यध्ययनमुपसहरन्नाह-'दुक्कराइ' इत्यादि-

मूलम्-दुक्कराइ करित्ताणं, दुस्सहाइ सहेत्तु य।
केइत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झंति नीरया॥१४॥

छाया¹-दुष्कराणि कृत्वा, दुस्सहानि सोढ्वा च।
केचिदत्र देवलोकेषु, केचित् सिध्यन्ति नीरजस्काः॥ १४॥

सान्वयार्थ-दुक्कराइ=दुष्कर आतापना आदि करित्ताण=करके य=और दुस्सहाइ=कायर पुरुषोके असह्य (परीषह आदि) सहेत्तु=सह करके केई=

१-'निष्ठान्तस्य न पूर्वनिपात', 'लक्षणहेत्वो क्रियाया.' इति सूत्रनिर्देशेन पूर्वनिपातप्रकरणस्याऽनित्यत्वात्।

सत्-असत्के बोधसे वंचित करनेवाले मोहको नष्ट कर देते हैं। इन्द्रियोंकी अपने अपने विषयमें जो प्रवृत्ति होती है, उस प्रवृत्तिको रोक कर इन्द्रियोंको वशमे करके जितेन्द्रिय होते है, ऐसे महर्षि शारीरिक और मानसिक समस्त प्रकारके समस्त दु खोका विनाश करनेके लिए पराक्रम फोडते है॥१३॥

સત્ અસતના બોધથી વંચિત કરનારા મોહને નષ્ટ કરી નાખે છે ઇંદ્રિયોની પોત પોતાના વિષયોમા જે પ્રવૃત્તિ થાય છે, તે પ્રવૃત્તિને રોકીને ઇંદ્રિયોને વશ રાખીને જિતેન્દ્રિય બને છે, એવા મહર્ષિઓ શારીરિક અને માનસિક બધા પ્રકારના બધા દુ ખોનો વિનાશ કરવાને માટે પરાક્રમ કરે છે (૧૩)

'अनुदरा कन्ये'–इत्यत्रेव नञोऽल्पार्थकत्वेन अल्पप्रावरणाः, यद्वा प्रावरणरहिताः, वर्षासु=प्रावृट्कालेषु, प्रतिसंलीनाः=कूर्मवदिन्द्रियगोपनतत्परा भवन्तीत्यर्थः। ग्रीष्मादिषु बहुवचनप्रयोगः प्रतिवत्सरमेवकरणसूचनाय ॥ १२ ॥ १२ ॥

मूलम्–परीसहरिउदंता, धूयमोहा जिइंदिया।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ॥१३॥

छाया–परीषहरिपुदान्ता, धूतमोहा जितेन्द्रिया।
सर्वदुःखप्रहीणार्थं, प्रक्रामन्ति महर्षिणः ॥१३॥

सान्वयार्थः–परीसहरिउदंता=परीषहरूपी शत्रुओंको जीतने वाले धूयमोहा=मोहममताके त्यागी जिइंदिया=इन्द्रियोंके दमन करनेवाले महेसिणो=महर्षि-मुनिराज सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा=समस्त दुःखोंके नाशके लिए पक्कमंति=शक्ति फोडते है-उद्योग करते है ॥ १३ ॥

टीका–'परीसह०' इत्यादि।

परीषहरिपुदान्ताः=परीषहाः=क्षुधा-पिपासादय एव रिपवः=शत्रवः पराभवकारित्वात् परीषहरिपवः, दान्ताः=अन्तर्भावितण्यर्थतया दमिता=निगृहीता

दूर कर शीतकी आतापना लेते हैं, वर्षा ऋतुमे कछुवेकी तरह इन्द्रियोंका गोपन करनेमे तत्पर होते हैं।

ग्रीष्म, हेमन्त, और वर्षा-शब्द गाथामें बहुवचनान्त है, इससे यह आशय निकलता है कि प्रत्येक वर्षकी ऋतुओंमे ऐसा करते हैं ॥१२॥

'परीसह०' इत्यादि।

क्षुधा पिपासा प्रभृति परीषहरूपी शत्रुओंको पराजित करते है।

વર્ષાઋતુમા કાચબાની પેઠે ઇન્દ્રિયોનું ગોપન કરવામા તત્પર રહે છે

ગ્રીષ્મ, હેમન્ત અને વર્ષા શબ્દ ગાથામા બહુ-વચનાન્ત છે, તેથી એવો આશય નીકળે છે કે પ્રત્યેક વર્ષની ઋતુઓમા એમ કરે છે (૧૨)

परीसह० ઇત્યાદિ ભૂખ, તરસ, ઇત્યાદિ પરીષહ રૂપી શત્રુઓને પરાજિત કરે છે

छाया–क्षपयित्वा पूर्वकर्माणि, संयमेन तपसा च ।
सिद्धिमार्गमनुप्राप्ता, त्रायिण• परिनिर्वृताः ॥१५॥ इति ब्रवीमि ।

सान्वयार्थ–सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता=मोक्षमार्गमें प्राप्त हुए ताइणो=षट्कायके रक्षक (मुनि) संजमेण=संयमके द्वारा य=और तवेण=तपके द्वारा पुव्वकम्माइं=पहले किये हुए कर्मोंको खवित्ता=खपा करके परिनिव्वुडे=मुक्त होते हैं। त्ति बेमि=पूर्ववत् ॥ १५ ॥

इति तृतीयाध्ययनस्य सान्वयार्थः ।

टीका–'सिद्धि'=अविचलसुखनिष्पत्तिस्तस्या 'मार्ग'=उपायो ज्ञानादिः सिद्धिमार्गस्तम् 'अनुप्राप्ता'=अनुगता', त्रायिण•=षड्जीवनिकायत्राणपरायणान्तःकरणा• संयमेन=सावद्यव्यापारविरतिलक्षणेन सप्तदशविधेन, च=तथा तपसा=ऊनोदरतादिरूपेण द्वादशविधेन तपश्चरणेन पूर्वकर्माणि=प्राग्भवोपार्जितज्ञानावरणीयाद्यष्ट-

---

जो मुनि कर्म बाकी रहेनेसे देवलोकमे जाते हैं, वे भी देवलोकसम्बन्धी आयुष्यको भोग कर, वहासे चव कर आर्य क्षेत्रमें मनुष्यजाति, और सुकुलमें जन्म लेकर उसी भवमें सिद्धि प्राप्त करते हैं। इसी विषयको सूत्रकार आगेकी गाथामें कहते हैं–"खवित्ता०" इत्यादि ।

वे मुनि, मोक्षमार्गमे प्राप्त होकर सर्वसावद्यव्यापारके त्यागरूप सत्रह प्रकारके संयमसे, तथा अनशन ऊनोदर आदि बारह प्रकारके तपसे, पहले भवोंमे बांधे हुए ज्ञानवरण आदि आठ प्रकारके समस्त

જે મુનિ કર્મ બાકી રહેવાને લીધે દેવલોકમા જાય છે, તેઓ પણ દેવલોકસબધી આયુષ્યને ભોગવીને, ત્યાથી ચવીને આર્યક્ષેત્રમા મનુષ્યજાતિ અને સુકુળમા જન્મ લઇને એજ ભવમા સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરે છે આ વિષયને સૂત્રકાર આગળની ગાથામા કહે છે–खवित्ता० ઇત્યાદિ

તે મુનિ, મોક્ષ–માર્ગમા પ્રવેશ કરીને સર્વસાવદ્ય–વ્યાપારના ત્યાગરૂપ સત્તર પ્રકારના સયમથી, તથા અનશન ઊનોદરી આદિ બાર પ્રકારના તપથી પહેલાના ભવોમા બાધેલા જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ પ્રકારના બધા કર્મોનો નાશ

कोई-कोई देवलोएसु=स्वर्गोंमें (उत्पन्न होते हैं), केई=कोई-कोई नीरया=कर्म रजसे रहित-मुक्त होकर अत्थ=इसी भवमें सिज्झंति=सिद्ध होजाते हैं-मोक्ष चले जाते हैं ॥ १४ ॥

टीका-दुःखेन कर्तुं योग्यानि दुष्कराणि=आचरितुमशक्यानि कष्टसाध्यान्यातापनादीनि कृत्वा=विधाय, च=तथा दुःसहानि=कातरचित्तैः सोढुमशक्यानि परीषहोपसर्गादीनि सोढ्वा=सहित्वा केचित्=मुनयः अवशिष्टकर्माणः देवलोकेषु= सौधर्मादिसुरलोकेषु 'यान्ती'-ति शेषः, केचित्=कतिपये नीरजस्काः=कर्मरजोविनिर्मुक्ताः अत्र=अत्रैव भवे सिध्यन्ति=सिद्धा भवन्ति, शिवपदमासादयन्तीत्यर्थः । अत्र टीकान्तरेषु-'अत्रे'-त्यस्य 'देवलोकेषु' इत्यनेन सहान्वयकरणं सर्वथा प्रमादविजृम्भितम् ॥ १४ ॥ १४ ॥ १४ ॥

कर्मावशेषेण ये मुनयो देवलोकं गच्छन्ति ते तत्र देवायुष्कमुपभुज्य ततश्च्युता आर्यक्षेत्रे मनुष्यजातौ सुकुले च समुत्पन्नाः तद्भवमोक्षगामिनो भवन्तीति दर्शयितुमाह-'खवित्ता' इत्यादि-

मूलम्-खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य ।
सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता, तायिणो परिनिव्वुडे ॥१५॥ त्ति बेमि॥

उपसंहार करते हुए कहते हैं- 'दुक्कराइं०' इत्यादि ।

पूर्वोक्त गुणोंसे विशिष्ट मुनि दुष्कर आतापना आदि क्रियाओंका आचरण करके, तथा कायर पुरुष जिन्हें सहन नहीं कर सकते ऐसे परीषह और उपसर्गोंको सह कर अवशिष्ट-कर्मवाले कोई मुनि सौधर्म आदि देवलोकमें जाते हैं। जो कर्मरजसे सर्वथा मुक्त होजाते हैं वे इसी मनुष्य-भवमें सिद्धिपदको प्राप्त करते हैं। दूसरे टीकाकारोंने 'अत्र' शब्दको देवलोकके साथ जोडा है वह ठीक नहीं है, 'अत्र' शब्दका अर्थ-यहाँ-"इसी भवमें" ऐसा है ॥१४॥

હવે ઉપસંહાર કરતા કહે છે-दुक्कराइं० ઇત્યાદિ

પૂર્વોક્ત ગુણોથી વિશિષ્ટ મુનિ દુષ્કર આતાપના આદિ ક્રિયાઓનું આચરણ કરીને તથા કાયર પુરુષો જે સહન કરી શકતા નથી એવા પરીષહો અને ઉપસર્ગો સહીને અવશિષ્ટ કર્મવાળા કોઈ મુનિ સૌધર્મ આદિ દેવલોકમાં જાય છે જેઓ કર્મરજથી સર્વથા મુક્ત થઈ જાય છે તેઓ આ મનુષ્યભવમાં સિદ્ધિપદને પ્રાપ્ત કરે છે બીજા ટીકાકારોએ अत्र શબ્દને દેવલોક સાથે જોડયો છે તે બરાબર નથી अत्र શબ્દનો અર્થ અહીં 'આ ભવમાં' એવો છે (૧૪)

॥ अथ चतुर्थाध्ययनम् ॥

गत तृतीयाध्ययन सम्प्रति चतुर्थमारभ्यते–पूर्वाध्ययने 'अनाचीर्णानि विहायाऽऽचारे धृतिः सधार्या सयमिने'त्युक्तम्, आचारश्च पड्विधजीवाना यथावस्थितस्वरूपमवबुध्य तत्सरक्षणपुरस्सर भवत्यतोऽत्र पड्जीवनिकायानामाऽध्ययने तत्स्वरूप तत्सरक्षणोपाय च प्रतिपादयिष्यन् प्रवचनस्याऽऽप्तोपदिष्टत्व प्रदर्शयति–'सुय मे' इत्यादि,

मूलम्–सुय मे आउस ! तेणं भगवया एवमक्खाय-इह खलु छज्जीवणियानामज्झयण, समणेण भगवया महावीरेण कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता, सेय मे अहिज्जिउ अज्झयण धम्मपन्नत्ती ॥१॥

चौथा अध्ययन ।

अथ चौथा अध्ययन कहते हैं—

तीसरे अध्ययनमें यह प्रतिपादन किया है कि महापुरुषों को अनाचीर्णों का त्याग करके, आचार-(सयम)-मे दृढता रखनी चाहिए। आचारमें दृढता तब ही होती है जब षट्काय के जीवोंका वास्तविक स्वरूप जानकर उनकी रक्षा की जाय, इसलिए इस 'षड्जीवनिकाय' नामक अध्ययनमें षड्जीवनिकायका स्वरूप और उसकी रक्षाका उपाय बताते हुए 'यह प्रवचन आप्त-(भगवान्)-द्वारा उपदिष्ट है' इस बातको कहते हैं– 'सुय मे०' इत्यादि ।

અધ્યયન ૪ થુ

હવે ચોથુ અધ્યયન કહે છે—

ત્રીજા અધ્યયનમા એમ પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યું છે કે–મહાપુરૂષોએ અનાચીર્ણોનો ત્યાગ કરીને આચાર (સયમ)મા દૃઢતા રાખવી જોઇએ આચારમા દૃઢતા ત્યારે જ આવે છે કે જ્યારે ષટ્કાયના જીવોનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાણીને તેમની રક્ષા કરવામા આવે, તેટલા માટે આ 'ષડ્જીવનિકાય' નામના અધ્યયનમા છ–કાયનુ સ્વરૂપ અને તેની રક્ષાના ઉપાયો બતાવતા 'આ પ્રવચન આપ્ત (ભગવાન્) દ્વારા ઉપદિષ્ટ છે' એ વાતને કહે છે–સુય મે૦ ઇત્યાદિ

विधकर्माणि क्षपयित्वा=क्षय नीत्वा परिनिर्वृताः=परि सर्वतोभावेन निर्वृता= कर्मजनित-सन्तापराहित्येन शीतलीभूताः 'भवन्ती'-ति शेषः, सिध्यन्तीत्यर्थः। इति ब्रवीमीति पूर्ववत् ॥ १५ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य-नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-
श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्यायां व्याख्यायां तृतीय
'क्षुल्लकाचारकथा'ऽऽख्यमध्ययनं समाप्तम् ॥ ३ ॥



कर्मोंको नाश करके सर्वथा मुक्त हो जाते हैं-कर्मजन्य संतापसे रहित होकर परमशीतलीभूत होते हैं अर्थात् सिद्ध हो जाते हैं।

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते है-हे जम्बू! तीसरे अध्ययनका जैसा भाव भगवानने फरमाया है, वैसा ही तुमसे कहता हूँ ॥१५॥

इति "क्षुल्लकाचारकथा"-नामक तीसरे
अध्ययनका हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥३॥



કરીને સર્વથા મુક્ત થઈ જાય છે-કર્મજન્ય સંતાપથી રહિત થઈને પરમશીતલીભૂત થાય છે, અર્થાત્ સિદ્ધ થઈ જાય છે

સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે-હે જમ્બૂ! ત્રીજા અધ્યયનનો જેવો ભાવ ભગવાને ફરમાવ્યો છે તેવો હું તને કહું છું (૧૫)

ઇતિ 'ક્ષુલ્લકાચારકથા' નામક ત્રીજા અધ્યયનનું
ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૩)



गुरुमाराध्य शिक्षा लब्धवतः शिष्यस्य शास्त्राध्ययनं सफलीभवतीति द्योतितम् ।

अथवा 'आउसंतेण' इत्यस्य 'आवसता' इति संस्कृतम्, तस्यापि 'मये'-त्यनेनैव सम्बन्धः, आङ् भगवन्मर्यादार्थकस्तथाच-आ=शिष्योचितमर्यादया वसता=भगवदन्तिके निवासं कुर्वता मयेत्यर्थः । अनेन शिष्यस्य गुरुकुलनिवासः सूचितः ।

भगवता=भग.=ज्ञानं सकलपदार्थविषयकम् (१), माहात्म्यम्=अनुपम-महनीयमहिमसम्पन्नत्वम् (२), यशः=विविधानुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसहनसमुद्भूता जगद्रक्षणप्रज्ञासमुत्था वा कीर्त्तिः (३), वैराग्यम्=क्रोधादिकषायनिग्रहलक्षणम् (४) मुक्तिः=सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षः (५), रूपम्=सुरासुरनरहृदयहारि सौन्दर्यम् (६) वीर्यम्=अन्तरायान्तजन्यमनन्तसामर्थ्यम् (७), श्रीः=घातिकर्म

'गुरुकी सेवा करके सीखनेसे ही शास्त्रका अध्ययन सफल होता है' यह सूचित होता है (२), 'आवसता' ऐसी भी छाया होती है, अर्थात् शिष्यके योग्य मर्यादा पूर्वक भगवानके समीप रहनेवाले मैंने (सुना), इस पदसे गुरुकुलमें निवास करना सूचित किया है ।

यहां 'भग' शब्दके दश अर्थ हैं-(१) समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाला ज्ञान, (२) अनुपम-महिमा, (३) विविध प्रकारके अनुकूल और प्रतिकूल परीषहोंको सहन करनेसे उत्पन्न होनेवाली या संसारकी रक्षा करनेवाले अलौकिक ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली कीर्त्ति, (४) क्रोध आदि कषायोंका सर्वथा निग्रहरूप वैराग्य, (५) समस्त कर्मोंका क्षयस्वरूप मोक्ष, (६) सुर-असुर और नरोंके अन्तःकरणको हर लेनेवाला सौन्दर्य,

---

સેવા કરીને શીખવાથી જ શાસ્ત્રનું અધ્યયન સફળ થાય છે' એ સૂચિત થાય છે (૨), આવસતા એવી પણ છાયા થાય છે અર્થાત્ શિષ્યને યોગ્ય મર્યાદા પૂર્વક ભગવાન્‌ની સમીપે રહેનારા એવા મેં (સાભળ્યુ), એ પદથી ગુરૂકુળમા નિવાસ કરવાનું સૂચન કરેલુ છે

અહીં 'भग' શબ્દના દસ અર્થ છે (૧) બધા પદાર્થોને વિષય કરવાવાળું જ્ઞાન, (૨) અનુપમ-મહિમા (૩) વિવિધ પ્રકારના અનુકૂળ અને પ્રતિકૂળ પરીષહોને સહન કરવાથી ઉત્પન્ન થનારી અથવા જગતની રક્ષા કરનારા અલૌકિક જ્ઞાનથી ઉત્પન્ન થનારી કીર્તિ, (૪) ક્રોધ આદિ કષાયોના સર્વથા નિગ્રહ રૂપ વૈરાગ્ય, (૫) બધા કર્મોના ક્ષયસ્વરૂપ મોક્ષ, (૬) સુર અસુર અને નરોના અંતઃકરણને હરનારૂ સૌંદર્ય, (૭) અંતરાય કર્મના નાશથી ઉત્પન્ન થનારૂ

छाया—श्रुतं मया आयुष्मन्! तेन भगवता एवमाख्यातम्—इह खलु षड्जीवनिकायानामाध्ययनं, श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुमध्ययनं धर्मप्रज्ञप्तिः ॥१॥

सान्वयार्थः—आउसं=हे आयुष्मन् शिष्य! तेणं=उस भगवया=भगवानने एवं=ऐसा अक्खायं=कहा है, मे=मैंने सुयं=सुना है, इह=यहां इस प्रवचनमें खलु=निश्चय करके छज्जीवणियानामज्झयणं=षट्जीवनिकाय नामका अध्ययन है, (वह) समणेणं=श्रमण भगवया=भगवान् कासवेणं=काश्यपगोत्रीय महावीरेणं=महावीरने पवेइया=प्रवेदित की है, सुअक्खाया=सम्यक् प्रकारसे कही है, सुपन्नत्ता=सम्यक्तया बताई है। धम्मपन्नत्ती=धर्मप्रज्ञप्ति (नामक यह) अज्झयणं=अध्ययन मे=मुझे अहिज्जिउं=पढनेको सेयं=कल्याणकारी है। अर्थात् भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित इस अध्ययनका अध्ययन करना मुझे कल्याणकारी है ॥१॥

टीका—एति=गच्छतीत्यायुः=संयमलक्षणं नीरुजं दीर्घं वा जीवितमस्यास्तीत्यायुष्मान् तत्सम्बुद्धौ हे आयुष्मन्! गुणवच्छिष्यामन्त्रणमेतत्। अनेन धर्माचरणे प्राधान्येनायुषोऽपेक्षा विद्यते इति सूचितम्। तेन=लोकत्रयप्रसिद्धेन,

यद्वा 'आउसंतेणं' इत्येकपदस्य 'आजुषमाणेन' इति संस्कृतं तस्य मयेत्यनेन सम्बन्धः, तथा च आङिति मर्यादायाम्, आ=शास्त्रश्रवणमर्यादया जुषमाणेन=गुरून् सेवमानेन मयेत्यर्थः। विधिमन्तरेण हि श्रवणे शास्त्ररहस्यं श्रोतुरधोमुखकुम्भस्येव न किञ्चिदप्यन्तः प्रविशति। 'आजुषमाणेने'-ति विशेषणेन

हे आयुष्मन्! अर्थात् संयमरूपी-जीवनवाले! नीरोग-जीवनवाले! या दीर्घजीवी!, इस सम्बोधनसे धर्मके आचरणमें आयुष्यकी प्रधानता सूचित की है (१), अथवा 'आउसंतेणं' यह एक पद है, इसकी छाया 'आजुषमाणेन' होती है, अर्थात् गुरुकी सेवा करनेवाले मैंने, इस पदसे

હે આયુષ્મન્! અર્થાત્ સંયમ-રૂપી-જીવન-વાળા! નીરોગી-જીવન-વાળા! યા દીર્ઘજીવી!, આ સંબોધનથી ધર્મના આચરણમાં આયુષ્યની પ્રધાનતા સૂચિત કરી છે (૧), અથવા आउसंतेणं એ એક પદ છે, એની છાયા आजुषमाणेन એ પ્રમાણે થાય છે, અર્થાત્ ગુરુની સેવા કરનારા એવા મેં, આ પદથી 'ગુરુની

'सा च षड्जीवनिकाया' इत्यध्याह्रियते उत्तरवाक्याऽऽकाङ्क्षोत्थानाय, श्रमणेन=श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणस्तेन सार्द्धद्वादशवर्षाणि घोरतपश्चरणाच्छ्रमण इति प्रसिद्धिं लब्धवता, भगवता, काश्यपेन=कश्यपगोत्रोत्पन्नेन महावीरेण=वीरयति=पराक्रमते मोक्षानुष्ठाने इति वीरः[1], यद्वा वि=विशेषेण ईरयति=गमयति प्रापयति मोक्षं प्रति भव्यजनानिति, वि=विशेषेण ईर्ते=गच्छति क्षपिताखिलकर्मा मोक्षमिति, वि=विशेषेण ईरयति=कम्पयति कषायादिपरिपन्थिन इति, वि=विशेषेण ईरयति=प्रक्षिपति घनघातिकर्मपटलमवकरनिकरमिवेति, वि=विशेषेण ईरयति=प्रेरयति प्रवर्त्तयति संयमाद्यनुष्ठाने प्राणिन इति वा वीरः,[2] महाँश्चासौ वीरश्च महावीरस्तेन श्रीवर्द्धमानस्वामिनेत्यर्थः। प्रवेदिता=प्रकर्षेण सकलप्राणिगणस्य स्वस्वभाषापरिणमनरूपेण यथावस्थितार्थद्वारेण च वेदिता=केवलाऽऽलोकेन

१ 'वीर विक्रान्तौ' अस्मात्पचाद्यच्।

२ 'ईर गतौ कम्पने च' इत्यादादिकात् 'ईर क्षेपे' इति चौरादिकाच्च धातोः पचाद्यच्।

साढे बारह वर्ष तक घोर तपश्चरण करनेके कारण श्रमण नामसे प्रसिद्ध कास्यप गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले भगवान् महावीरने, वीर शब्दके छह अर्थ हैं, अर्थात्-(१) मोक्षके अनुष्ठानमे पराक्रम करनेवाले, अथवा (२) भव्य जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले, या (३) समस्त कर्मोंको दूर करके मोक्षको प्राप्त होनेवाले, (४) कषाय आदि शत्रुओंको सर्वथा हरानेवाले, (५) चार घन-घातिया कर्मोंको कचरेकी तरह दूर करनेवाले (६) प्राणियोंको विशेष-रूपसे संयमके अनुष्ठानमे प्रवृत्ति करानेवाले श्रीवर्द्धमान स्वामीने, प्रत्येक प्राणीकी अपनी २ भाषामें परिणत होनेवाले इस प्रवचनको केवल ज्ञानसे जानकर प्रतिपादन किया है, पूर्वापर-

સાડા બાર વર્ષ સુધી ઘોર તપશ્ચર્યા કરવાને કારણે શ્રમણ નામથી પ્રસિદ્ધ, કશ્યપ ગોત્રમા ઉત્પન્ન થએલા ભગવાન્ મહાવીરે (વીર શબ્દના છ અર્થ છે), અર્થા (૧) મોક્ષના અનુષ્ઠાનમા પરાક્રમ કરનારા, અથવા (૨) ભવ્ય જીવોને મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવનારા, યા (૩) સર્વ કર્મોને દૂર કરીને મોક્ષને પ્રાપ્ત થએલા, (૪) કષાય આદિ શત્રુઓને સર્વથા હઠાવનારા, (૫) ચાર ઘનઘાતી કર્મોને કચરાની પેઠે દૂર કરી દેનારા, (૬) પ્રાણીઓને વિશેષ-રૂપથી સંયમના અનુષ્ઠાનમા પ્રવૃત્તિ કરાવનારા એવા શ્રી વર્ધમાન સ્વામીએ, પ્રત્યેક પ્રાણીની પોત-પોતાની ભાષામા પરિણત થવાવાળુ આ પ્રવચન કેવળ જ્ઞાનથી જાણીને પ્રતિપાદન કર્યું છે,

पटलविघटनजनितानन्तचतुष्टयलक्ष्मीः (८), धर्मः=अपवर्गद्वारकपाटोद्घाटनसाधनम्, श्रुतादिरूपो यथाख्यातचारित्ररूपो वा (९), ऐश्वर्यं=त्रैलोक्याधिपत्यं (१०) चाऽस्यास्तीति भगवान् तेन तथोक्तेन, एवम्='धम्मो मंगलमुक्किट्ठं'-मित्यारभ्य 'तायिणो परिनिव्वुडे' इत्यन्तं यावत् पूर्वोपवर्णितरूपेण, आख्यातम्-परस्परासङ्कीर्णतया कथितम्, मे=मया श्रुतम्=श्रवणगोचरीकृतम्। खलुशब्दो वाक्यालङ्कारे। इह=अस्मिन् प्रवचने, षड्जीवनिकायनामाध्ययनम्=षट् च ते पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसलक्षणा जीवाश्चेति षड्जीवास्तेषां निकायः=समूहः प्रतिपाद्यत्वेनाऽस्ति यस्यामागमपद्धतौ सा 'षड्जीवनिकाया' तन्नाम यस्य तच्च तदध्ययनं चेति [1]षड्जीवनिकायानामाध्ययनम् 'अस्ती'-तिशेषः।

१ सूत्रे 'छज्जीवणिया' इति पदं 'स्वरादस्य' (४।४।६२) इति निकायाघटकयकारस्य लोपे, 'कगचजतदपयवां प्रायो लुक्' इति ककारलोपे कृते 'नि+आ+आ+' इति स्थिते 'सवर्णे दीर्घः' (१।२।७) इति द्वयोराकारयो स्थाने दीर्घैकादेशे 'अवर्णो यश्रुतिः' इति यकारश्रुत्या णत्वेन च सिद्धम्। –

(७) अन्तराय कर्मके नाशसे उत्पन्न होनेवाला अनन्त बल, (८) घातिया कर्मरूपी पटलके हट जानेसे प्रादुर्भूत होनेवाली अनन्त-चतुष्टय लक्ष्मी, (९) मोक्षके द्वारको खोलनेका साधन श्रुत-चारित्र-यथाख्यातचारित्र रूप धर्म, (१०) तीन लोकका आधिपत्य रूप ऐश्वर्य।

ये सब भगशब्दके अर्थ जिनमें पाये जाते हैं उन्हें भगवान् कहते हैं। हे आयुष्मन्! 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' से लेकर 'तायिणो परिनिव्वुडे' तक सब भगवानने ही कहा है और मैंने सुना है। इस अध्ययनका नाम 'षड्जीवनिकाया' है। वह इसलिए कि इसमें पृथिवी आदि षड्जीव निकायोंका वर्णन है।

અનંત બળ (૮) ઘાતી-કર્મ-રૂપી પડળ હઠી જવાથી ઉત્પન્ન થનારી અનંત ચતુષ્ટય લક્ષ્મી, (૯) મોક્ષના દ્વારને ખોલવાના સાધન શ્રુત-ચારિત્ર-યથાખ્યાત-ચારિત્ર-રૂપ ધર્મ, (૧૦) ત્રણ લોકના આધિપત્ય-રૂપ ઐશ્વર્ય

આ બધા ભગ શબ્દના અર્થો જેનામાં મળી આવે છે તેને ભગવાન્ કહે છે હે આયુષ્મન્! धम्मो मंगलमुक्किट्ठं થી લઈને तायिणो परिनिव्वुडे સુધી બધુંય ભગવાને જ કહ્યું છે અને મેં સાંભળ્યું છે આ અધ્યયનનું નામ 'ષડ્જીવનિકાયા' છે તે એટલા માટે કે એમાં પૃથિવી આદિ ૭ જીવનિકાયનું વર્ણન છે

पवेइया=प्रवेदित की है, सुअक्खाया=सम्यक्प्रकार कही है, सुपन्नत्ता=सम्यक्तया बताई है। वह धम्मपन्नत्ती अज्झयणं=धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामक अध्ययन अहिज्जिउ=पढना मे=मुझे सेय=श्रेय है ॥२॥

टीका—सा=पूर्वोक्ता षड्जीवनिकाया खलु कतरा=किंभूता या अध्ययनं नाम=अध्ययनत्वेन प्रसिद्धेत्यर्थः, या च काश्यपेनेत्यादि व्याख्यातपूर्वम्। 'कयरा' इत्यनेन मोक्षाभिलाषिणा शिष्येण सकलक्रियाकलापे स्वाभिमानपरित्यागपूर्वकं गुरुः प्रष्टव्य इति सूचितम् ॥२॥

सम्प्रति सुधर्मस्वामिन उत्तरयन्ति-'इमा खलु०' इत्यादि।

मूलम्-इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेण कासवेण पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता, सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती ॥३॥

छाया-इयं खलु सा षड्जीवनिकाया नामाध्ययनं श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुमध्ययनं धर्मप्रज्ञप्तिः ॥३॥

सान्वयार्थ-सा=वह छज्जीवणिया=षड्जीवनिकाया खलु=निश्चय करके इमा=यह है जो अज्झयणं नाम=अध्ययन नाम से प्रसिद्ध है, और जो कासवेणं=काश्यपगोत्रीय समणेणं=श्रमण भगवया=भगवान् महावीरेण=महावीरने

हे भगवन्! पहले बताई हुई षड्जीवनिकायाका स्वरूप क्या है? जो इस अध्ययनरूपसे कही गई है अर्थात् जिसका इस समस्त अध्ययनमें वर्णन किया गया है, और भगवान् महावीर स्वामीने यावत् प्ररूपित किया है? और धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामसे प्रसिद्ध उस अध्ययन का पढना मेरे लिये कल्याणकर है?। इस प्रश्नसे यह आशय निकलता है कि-मुमुक्षु शिष्यको अहंकार त्यागकर समस्त क्रियाएँ गुरुसे पूछनी चाहिए ॥२॥

श्री सुधर्मा स्वामी उत्तर देते हैं-'इमा खलु०' इत्यादि।

હે ભગવાન્! પહેલા બતાવેલી ષડજીવનિકાયાનું સ્વરૂપ કેવું છે કે જે આ અધ્યયનરૂપથી કહેવામાં આવી છે? અર્થાત્ જેનું આ આખા અધ્યયનમાં વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે, અને ભગવાન્ મહાવીર સ્વામીએ જેનું પ્રરૂપણ કર્યું છે? અને ધર્મપ્રજ્ઞપ્તિ એમ બીજા નામથી જે પ્રસિદ્ધ છે તે અધ્યયનનું અધ્યયન કરવું મારે માટે કલ્યાણકારક છે? આ પ્રશ્નથી એવો આશય નીકળે છે કે-મુમુક્ષુ શિષ્યે અહંકારનો ત્યાગ કરીને બધી ક્રિયાઓ ગુરૂને પૂછવી જોઇએ (૨)

શ્રી સુધર્મા સ્વામી ઉત્તર આપે છે કે-इमा खलु० ઈત્યાદિ

विलोक्य प्रतिपादिता, स्वाख्याता=सुष्ठु-पूर्वापराविरोधियुक्तयुक्तिभिरुपपन्नतयाऽऽख्याता=उक्ता, सुप्रज्ञप्ता=सुष्ठु-सदेवमनुजासुरसमायां दिव्यध्वनिना प्रज्ञप्ता=प्ररूपिता, यद्वा धातूनामनेकार्थत्वादुपसर्गसमभिव्याहारबलाच्च ज्ञपिरासेवनार्थः, तथा च-येनैव रूपेणाऽऽख्याता तेनैव रूपेण प्र=प्रकर्षेण ज्ञप्ता=आसेविता, अणुमात्रतोऽपि हिंसां परिहरता भगवता यथाकथितमाचरितेत्यर्थः। तदेतदध्ययनं षड्जीवनिकायाख्यं धर्मप्रज्ञप्तिः=धर्मप्ररूपकम्, यद्वा धर्मप्रज्ञप्तिः=एतदपरसञ्ज्ञकं मे=मम अध्येतुम्=अभ्यसितुं श्रेयः=प्रशस्यं निःश्रेयसकरमित्यर्थः ॥ १ ॥

एतन्निशम्य जम्बूस्वामी परिपृच्छति-'कयरा०' इत्यादि ।

मूलम्-कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुअक्खाया सुपन्नत्ता, सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती ? ॥२॥

छाया—कतरा खलु सा षड्जीवनिकाया नामाध्ययनं श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिता स्वाख्याता सुप्रज्ञप्ता, श्रेयो मेऽध्येतुम् अध्ययनं धर्मप्रज्ञप्तिः ? ॥२॥

सान्वयार्थः—सा खलु=वह छज्जीवणिया=षड्जीवनिकाया कयरा=कौनसी है ? जो अज्झयणं नाम=अध्ययन नाम से प्रसिद्ध है, जो कासवेणं=कश्यपगोत्रीय समणेणं=श्रमण भगवया=भगवान् महावीरेणं=महावीरने

विरोध-रहित और युक्तियों सहित कहा है, देव मनुष्य और असुरोंकी सभा-समवसरण-मे दिव्य ध्वनिसे प्ररूपित किया है। अथवा भगवानने जैसा कहा है वैसा ही उन्होंने आचरण किया है।

इसलिए यह षड्जीवनिकाया नामक, धर्मकी प्ररूपणा करनेवाला अध्ययन मेरे अभ्यसन करनेके लिए श्रेय है—कल्याणकारी है ॥१॥

यह सुनकर जम्बूस्वामी प्रश्न करते हैं-'कयरा खलु०' इत्यादि ।

પૂર્વાપર વિરોધ રહિત અને યુક્તિઓ સહિત કહ્યુ છે, દેવ મનુષ્ય અને અસુરોની સભા-સમવસરણમા દિવ્ય ધ્વનિથી પ્રરૂપિત કર્યું છે અથવા ભગવાને જેવુ કહ્યુ છે એવુ તેમણે આચરણ કર્યું છે

તેથી કરીને આ ષડ્જીવનિકાયા નામક ધર્મની પ્રરૂપણા કરનારૂ અધ્યયન મારે અધ્યયન કરવાને શ્રેય છે કલ્યાણકારી છે (૧)

આ સાભળીને જમ્બૂસ્વામી પ્રશ્ન કરે છે-कयरा खलु० ઇત્યાદિ

तेजश्चित्तवदाख्यातम् , अनेकजीव, पृथक्सत्त्वमन्यत्र शस्त्रपरिणतात् । वायुश्चित्तवानाख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वोऽन्यत्र शस्त्रपरिणतात् , वनस्पतिश्चित्तवानाख्यातोऽनेकजीवः पृथक्सत्त्वोऽन्यत्र शस्त्रपरिणतात् ॥४॥

सान्वयार्थः–तजहा–वह इस प्रकार है– (१) पुढविकाइया=पृथ्वीकायिक, (२) आउकाइया=अप्कायिक, (३) तेउकाइया=तेजस्कायिक, (४) वाउकाइया=वायुकायिक, (५) वणस्सइकाइया=वनस्पतिकायिक, (६) तसकाइया=त्रसकायिक॥

अब आचार्य महाराज एक-एककी सचित्तता बतलाते हैं —

(१) पृथ्वीकाय.

सान्वयार्थः–(भगवानने) पुढवी=पृथ्वीको चित्तमत=सचित्त अक्खाया=कही है, वह अणेगजीवा=अनेकजीववाली है–अनेकजीवोंका पिण्डभूत है, पुढोसत्ता=उसमें अनेकजीव भिन्न-भिन्न रहे हुए है, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएण=शस्त्रपरिणतके, अर्थात् जहा शस्त्र नही लगा है वहाका पृथ्वीकाय सब सचित्त है। इसी प्रकार छहों कायोंमें समझ लेना चाहिये ॥१॥

(२) अप्काय.

सान्वयार्थः–आऊ=जल चित्तमत=सचित्त अक्खाया=कहा है, वह अणेगजीवा=अनेक जीवोंका आश्रयभूत है, पुढोसत्ता=वे अनेक जीव भिन्न२ रहे हुए है, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएण=शस्त्रपरिणतके ॥२॥

(३) तेजस्काय

तेऊ=तेजस्काय चित्तमत=सचित्त अक्खाया=कहा गया है, वह अणेगजीवा=अनेक जीवोंका आश्रयभूत है, पुढोसत्ता=वे अनेक जीव भिन्न-भिन्न रहे हुए है, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएण=शस्त्रपरिणतके ॥३॥

(४) वायुकाय

वाऊ=वायु चित्तमत=सचित्त अक्खाया=कहा गया है, वह अणेगजीवा=अनेक जीवोंका आश्रय है, पुढोसत्ता=भिन्न-भिन्न जीवोवाला है, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएण=शस्त्रपरिणतके ॥४॥

(५) वनस्पतिकाय

वणस्सई=वनस्पति चित्तमत=सचित्त अक्खाया=कही गई है, वह अणे-

पवेइया=प्रवेदित की है, सुअक्खाया=सम्यक्प्रकार कही है, सुपन्नत्ता=सम्यक्तया बताई है। यह धम्मपन्नत्ती अज्झयण=धर्मप्रज्ञप्ति अपरनामक अध्ययन अहिज्जिउं=पढना मे=मुझे सेयं=श्रेयस्कारी है ॥३॥

टीका—'इमा' इत्यनेन 'विनीतविनेयाय करुणासम्भारचारुहृदयेन गुरुणा शास्त्रोपदेशः कर्त्तव्य' इति सूचितम्। अन्यत्स्पष्टम् ॥३॥

तामेव षड्जीवनिकायां सूत्रकारः प्रदर्शयति='तंजहा' इत्यादि।

मूलम्–तंजहा–पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया। पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥४॥

छाया–तद्यथा–पृथिवीकायिकाः (१), अप्कायिकाः (२), तेजस्कायिकाः (३), वायुकायिकाः (४), वनस्पतिकायिकाः (५), त्रसकायिकाः (६)। पृथिवी चित्तवत्याख्याता, अनेकजीवा, पृथक्सत्त्वा, अन्यत्र शस्त्रपरिणतायाः। आपश्चित्तवत्य आख्याताः, अनेकजीवाः, पृथक्सत्त्वाः, अन्यत्र शस्त्रपरिणताभ्यः।

इस पाठका व्याख्यान पहले किया जा चुका है। 'इमा' पदसे यह सूचित होता है कि करुणासागर गुरु महाराज विनीत शिष्यको शास्त्रका उपदेश अवश्य देवें ॥३॥

उस षड्जीवनिकायको सूत्रकार दिखाते हैं–'तंजहा' इत्यादि।

આ પાઠનું વ્યાખ્યાન પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે. इमा શબ્દથી એમ સૂચિત થાય છે કે કરૂણાસાગર ગુરૂ મહારાજ વિનીત શિષ્યને શાસ્ત્રનો ઉપદેશ જરૂર આપે (૩)

એ ષડ્જીવનિકાયને સૂત્રકાર દર્શાવે છે–तंजहा– ઇત્યાદિ

पृथिवीकायः ।

पृथिवी, चित्त=चेतनाऽस्त्यस्या इति चित्तवती=सात्मिका आख्याता=केवलज्ञानाऽऽलोकावलोकिताखिललोकालोकलक्षणेन भगवता कथिता ।

ननु पृथिव्याः कथ सचेतनत्वमिति चेदाकर्णय-(१) पृथिवी सचेतना खानितखनिभूम्यादिषु तत्सजातीयावयवान्तरद्वारा परिपूर्त्तिदर्शनात् मनुष्यादिशरीरवत्, तद्यथा-मनुष्यशरीरस्थ व्रणादिक स्वय भ्रियते, एवमेव खानित खनिभूम्यादिक स्वसमानजातीयावयवैर्भ्रियमाण प्राक्समानरूपता भजते तस्माद् गम्यते पृथिव्याः सचेतनत्वम् ।

पृथिवीकाय ।

केवल-ज्ञानरूपी आलोकसे समस्त लोक और अलोकको प्रत्यक्ष जाननेवाले भगवानने पृथिवीको सचेतन कहा है ।

प्रश्न—पृथिवी सचेतन कैसे है ?

उत्तर—(१) पृथिवी सचेतन है, क्यों कि उसमें खोदी हुई खान आदिकी भूमि सजातीय अवयवोसे स्वयमेव भर जाती है, जो सजातीय अवयवोंसे स्वय भर जाता है वह सचेतन होता है, जैसे मनुष्यका शरीर । अर्थात् मनुष्यके शरीरमे घाव हो जाता है वह उसी तरहके अवयवोंसे स्वय भर जाता है, उसी प्रकार खोदी हुई खान आदिकी भूमि उसी प्रकारके अवयवोसे भर जाती है और पहलेके समान हो जाती है इसलिए पृथिवी सचेतन है ।

'પૃથિવીકાય'

કેવળ-જ્ઞાન-રૂપી પ્રકાશથી બધા લોક અને અલોકને પ્રત્યક્ષ જાણુવાવાળા ભગવાને પૃથિવીને સચેતન કહી છે

પ્રશ્ન--પૃથિવી સચેતન કેવી રીતે છે ?

ઉત્તર-(૧) પૃથિવી સચેતન છે, કારણુ કે તેમા ખોદેલી ખાણુ આદિની ભૂમિ સજાતીય અવયવોથી પોતાની મેળે ભરાઈ જાય છે જે સજાતીય અવયવોથી સ્વયમેવ ભરાઈ જાય છે તે સચેતન હોય છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર અર્થાત્ મનુષ્યના શરીરમા ઘા પડે છે તે એવી તરેહના અવયવોથી પોતાની મેળે ભરાઈ જાય છે, એ જ રીતે ખોદેલી ખાણુ આદિની ભૂમિ એ પ્રકારના અવયવોથી ભરાઈ જાય છે અને પહેલાની જેવી બની જાય છે, તેથી પૃથિવી સચેતન છે

गजीवा=अनेक जीवोंका आधार है, पुढोसत्ता=भिन्न-भिन्न जीववाली है, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएणं=शस्त्रपरिणतके ॥

भावार्थः-पांचों स्थावरकाय सचित्त हैं, वे अनेक जीवरूप हैं, उन जीवोंका अस्तित्व पृथक्-पृथक् है, । इन कायोंके जो जो शस्त्र हैं उनसे यदि ये परिणत हो जायँ तो अचित्त हो जाते हैं ॥५॥

टीका-तद्यथा=तदेव प्रदर्श्यते-पृथिवी=कठिनस्वभावा सैव कायः=शरीर येषां ते पृथिवीकायास्त एव पृथिवीकायिकाः ('विनयादित्वात्स्वार्थे ठक्, तस्येकादेशः' एवमग्रेऽपीय प्रक्रिया ज्ञेया)। आप =द्रवलक्षणास्ता एव कायो येषां तेऽप्कायास्त एवाप्कायिकाः। तेजः=उष्णलक्षणं तदेव कायो येषां ते तेजस्कायिकाः। वायुः=चलनस्वभावः स एव कायो येषां ते वायुकायिकाः। वनस्पतिकायिकाः=वनस्पतिः=लतातरुगुल्मादिलक्षणः कायो येषां ते तथोक्ताः। त्रस्यति शीतातपादिजनितपीडया उद्विजते इति त्रसः, त्रसनस्वभावः कायो येषां तथोक्ताः।

अथ प्रत्येकं सचित्तता दर्शयन्नाह—

कठिनता-स्वभाववाली पृथ्वी ही जिनका शरीर है उन्हें पृथ्वीकायिक कहते हैं। द्रवत्व-स्वभाववाला जल ही जिनका शरीर है उन्हें अप्कायिक कहते है। उष्णता-स्वभाववाला तेज ही जिनका शरीर है उन्हें तेजस्कायिक कहते हैं। चलन-स्वभाववाला वायु ही जिनका शरीर है उन्हें वायुकायिक कहते हैं। लता वृक्ष गुल्म आदि वनस्पति ही जिनका शरीर है उन्हे वनस्पतिकायिक कहते हैं। जिन्हें शीत-आतप (गर्मी) आदिद्वारा उत्पन्न हुई पीडासे त्रास होता है ऐसा चलने-फिरनेवाला काय जिनका होता है उन्हें त्रसकायिक कहते है।

अब एक-एककी सचित्तता दिखलाते हैं—

१-કઠિનતા-સ્વભાવવાળી પૃથ્વી જ જેનું શરીર છે તેને પૃથ્વીકાયિક કહે છે ૨-દ્રવત્વ-સ્વભાવવાળુ જળ જ જેનું શરીર છે તેને અપ્કાયિક કહે છે ૩-ઉષ્ણતા સ્વભાવવાળુ તેજ જ જેનું શરીર છે તેને તેજસ્કાયિક કહે છે ૪-ચલન-સ્વભાવવાળો વાયુ જ જેનુ શરીર છે તેને વાયુકાયિક કહે છે ૫-લતા, વૃક્ષ ગુલ્મ (ગુચ્છ) આદિ વનસ્પતિ જ જેનું શરીર છે તેને વનસ્પતિકાયિક કહે છે ૬-જેને ઠંડી ગરમી આદિ દ્વારા ઉત્પન્ન થએલી પીડાથી ત્રાસ થાય છે એવી હરવા ફરવાવાળી કાયા જેની હોય છે તને ત્રસકાયિક કહે છે

હવે અકેકની સચિત્તતા દેખાડે છે

(४) विद्रुमाद्यात्मिका पृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातूत्पत्तिदर्शनात् अर्शोऽङ्कुरवत्, तद्यथा=अर्शसोऽङ्कुरे छिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एव विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीयधातुभिस्तद्रिक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात्सिद्ध पृथिव्याः सचित्तत्वम् ।

अनेकजीवा=अनेके=बहवो जीवाः=एकेन्द्रिया यस्या सा तथोक्ता । पृथक्सत्त्वा=पृथक्-पृथग्भूताः=अङ्गुलासख्येयभागमात्रावगाहनामाश्रित्याऽनेके विभिन्नरूपेण स्थिताः सत्त्वाः=स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्या सा तथोक्ता 'आख्याता' इति पूर्वोक्तेनान्वयः, भगवता प्ररूपितेति तदर्थः ।

ननु तर्हुक्तस्वरूपाया जीवपिण्डभूताया पृथिव्या गमनागमनादिक्रिया कुर्वता

---

(४) विद्रुम आदिरूप पृथिवी सचित्त है, क्योंकि उसे काट देने पर भी सजातीय धातुकी उत्पत्ति देखी जाती है, जैसे शरीरमे मसा। अर्थात् जैसे मसाको ऊपरसे काट डालने पर भी फिर उसीके समान अवयव ऊग आते हैं, वैसेही–विद्रुम और शिला आदिको खानमे काट देने पर भी सजातीय स्कन्धोंसे कटा हुआ भाग फिर भर जाता है, अतः पृथिवीकी सचेतनता सिद्ध है ।

वह पृथिवी अनेक जीववाली है और वे स्पर्शनेन्द्रियवाले पृथिवीकायके जीव अगुलके असख्यातवें–भाग–प्रमाण अवगाहनाको आश्रय करके भिन्न-भिन्न स्वरूपसे स्थित हैं, ऐसा भगवानने कहा है।

शिष्य गुरुसे पूछता है–हे गुरु महाराज ! जबकि पृथिवी जीवोंका

---

(४) विद्रुम आदि रूप पृथिवी सचित्त छे, कारण के तेने कापी नाखवा छता पण सजातीय धातुनी उत्पत्ति जोवामा आवे छे, जेमके शरीरमा मसा, अर्थात् जेमके मसाने उपरथी कापी नाख्या छता पण तेना समान अवयवो ऊगी आवे छे, तेम ज विद्रुम अने शिला आदिने खाणमा कापी नाख्या छता सजातीय स्कन्धोथी कापेलो भाग पाछो भराई जाय छे तेथी पृथिवीनी सचेतनता सिद्ध थाय छे

ए पृथिवी अनेक–जीव–वाळी छे, अने ए स्पर्शनेन्द्रिय–वाळा पृथिवी कायना जीवो आगळना असख्यातमा भाग प्रमाणनी अवगाहनानो आश्रय करीने भिन्न–भिन्न स्वरूपे स्थित छे, एवु भगवाने कह्यु छे

शिष्य गुरुने पूछे छे–हे गुरु महाराज ! जो पृथिवी, जीवोना पिंड–रूप छे

(२) यद्वा-पृथिवी सजीवा दैनिकघर्षणोपचयसदर्शनात् चरणतलवत्, तथाचरणतल घृष्यते पुष्यति च तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यह घृष्यते उपचीयते च तस्मा त्तस्याः सजीवत्वम् । अथवा—

(३) विद्रुमपाषाणादिरूपा पृथिवी सचेतना काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिदर्शनात् शरीरस्थिताऽस्थ्यादिवत्, तथथा-शरीरस्थितमस्थ्यादिक कमठपृष्ठकठिन सदपि चित्तवदनुभूयमानमुपचय च गच्छत् सदृश्यते । एव विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिक प्रत्यक्ष दृश्यते तस्मात्तस्याः सचेतनत्वम् । अथ च—

(२) पृथिवी सचेतन है, क्योंकि उसमें प्रतिदिन घर्षण और उपचय देखा जाता है जैसे पैरका तलुवा । अर्थात् जैसे तलुवा घिसकर फिर भर जाता है वैसे ही पृथिवी भी घिस कर भर जाती है इसलिए वह सजीव है । अथवा—

(३) विद्रुम (मूगा) पाषाण आदि-रूप पृथिवी सचेतन है, क्योंकि कठिन होने पर भी उसमें वृद्धि देखी जाती है जैसे शरीरकी हड्डी आदि । अर्थात् जैसे शरीरकी हड्डी आदि कछुएकी पीठकी भाँति कठोर होने पर भी सचेतन है और बढती है उसी प्रकार विद्रुम, शिला आदि रूप पृथिवीमें कठिनता होनेपर भी वृद्धि आदि गुण प्रत्यक्षसे हैं इससे सिद्ध है कि पृथिवी सचेतन है । अथवा—

(२) પૃથિવી સચેતન છે, કારણ કે તેમા પ્રતિદિન ઘર્ષણ અને ઉપચય જોવામા આવે છે, જેમકે પગનું તળીઉં અર્થાત્ જેમ પગનું તળીઉં ઘસાઈને પાછું ભરાઈ જાય છે, તેમ પૃથિવી પણ ઘસાઈને ભરાઈ જાય છે, તેથી પૃથિવી સજીવ છે અથવા—

(૩) વિદ્રુમ (પ્રવાળ) પત્થર આદિ-રૂપ પૃથિવી સચેતન છે, કારણ કે કઠિન હોવા છતા તેમા વૃદ્ધિ જોવામા આવે છે, જેમકે શરીરના હાડકા વગેરે, અર્થાત્ જેમ શરીરના હાડકા વગેરે કાચબાની પીઠની જેમ કઠોર હોવા છતા સચેતન છે અને વધે છે, તેવી રીતે વિદ્રુમ, શિલા આદિ-રૂપ પૃથિવીમા કઠિનતા હોવા છતા તેમા વૃદ્ધિ આદિ ગુણ પ્રત્યક્ષ છે એથી સિદ્ધ થાય છે કે પૃથિવી સચેતન છે અથવા—

कृष्णमृत्तिका शस्त्रमित्यादि, परकायशस्त्रं–जलाग्निगोमयचरणसमर्दनादि । उभयकायशस्त्र–जलादिमिश्रमृत्तिका । एवं च शस्त्रपरिणतायाः पृथिव्या अचित्ततया न तत्रोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियासम्पादने काऽपि क्षतिर्मुनीनां संयमपालन इति सिद्धम् ।

अप्कायः ।

आपः=भौमाऽऽन्तरिक्षोभयलक्षणाः, चित्तवत्यः=सचेतनाः, आख्याताः=भगवताऽभिहिताः, तथाहि–भूमिगता आपः सचेतनाः खातभूमिसजातीयस्वभाव-

पीली मिट्टीका शस्त्र काली मिट्टी है। जल, अग्नि, गोबर तथा पैरोंसे रौंदना आदि परकाय शस्त्र हैं। जल आदिसे मिली हुई मिट्टी उभयकाय शस्त्र है।

इस प्रकार शस्त्रपरिणत पृथिवी अचित्त है, अतः उस पर आहार-विहार आदि क्रियाएँ करनेसे मुनियोंके अहिंसाव्रत पालनेमे कुछ भी क्षति नहीं होती।

(अप्काय)

पार्थिव और आकाशीय दोनों प्रकारके जलोंको भी भगवानने सचित्त कहा है।

(१) भूमिमें रहा हुआ जल सचेतन है, क्योंकि खोदी हुई भूमिमे सजातीय स्वभाववाला जल उत्पन्न होता है, जैसे मेंढक। भूमिको खोदनेसे जैसे मेंढक निकलता है और वह सचेतन होता है उसी प्रकार पानी

પૃથિવીનું સ્વકાય–શસ્ત્ર છે, જેમ પીળી માટીનું શસ્ત્ર કાળી માટી છે જળ, અગ્નિ, છાણ તથા પગ વડે ખુંદવુ વગેરે પરકાય–શસ્ત્ર છે જળ આદિથી મળેલી માટી એ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે

એ રીતે શસ્ત્રપરિણત પૃથિવી અચિત્ત છે, તેથી એની ઉપર આહાર વિહાર આદિ ક્રિયાઓ કરવાથી મુનિઓના અહિંસા વ્રતના પાલનમા કાંઇ પણ ક્ષતિ આવતી નથી

અપ્કાય

પાર્થિવ અને આકાશીય બેઉ પ્રકારના જળને પણ ભગવાને સચિત્ત કહ્યુ છે

(૧) ભૂમિમા રહેલુ જળ સચેતન છે, કારણકે ખોદેલી જમીનમા સજાતીય સ્વભાવવાળુ જળ ઉત્પન્ન થાય છે, જેમકે દેડકો ભૂમિને ખોદવાથી જેમ દેડકો નીકળે છે અને તે સચેતન હોય છે, તેમ પાણી પણ નીકળે છે તેથી તે પણ

संयमिनामहिंसाव्रतस्य संरक्षणं कथं भवति ? प्रत्युताऽवश्यकरणीयोच्चारप्रस्रवणादिक्रियया हिंसैव भवत्यतोऽहिंसाव्रतपालनं वन्ध्यासुतपालनवदसम्भवमित्यत आह–'अन्यत्रे'ति, शस्त्रपरिणताया अन्यत्र=शस्त्रपरिणतां पृथिवीं वर्जयित्वाऽन्या पृथिवी सजीवेत्यर्थः, शस्यते=हिंस्यते प्राणिगणोऽनेनेति शस्त्रं, तद् द्विविधं-द्रव्यभावभेदात्। तत्र द्रव्यशस्त्रं-स्वपरोभयकायलक्षणम्, भावशस्त्रं पृथिवीं प्रति दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायात्मकम्, एवमेवान्येषां तत्तत्कायानामपि भावशस्त्रं बोद्धव्यम्। स्वकायशस्त्रं पृथिव्याः स्वेतरवर्णगन्धादिमती पृथिव्येव, यथा पीतमृत्तिकायाः

पिण्डरूप है तो उस पर अहिंसाव्रतकी रक्षा कैसे होगी ? उच्चार-प्रस्रवण आदि क्रियाएँ अनिवार्य हैं, और इन क्रियाओंके करनेसे हिंसा अनिवार्य है, इसलिए अहिंसाव्रतका पालन ऐसा ही असम्भव है जैसा वन्ध्याके पुत्रका पालन करना।

उत्तर–हे शिष्य ! शस्त्रपरिणत पृथिवीके सिवाय अन्य समस्त पृथिवी सचित्त है। जिससे प्राणियोंकी हिंसा होती है उसे शस्त्र कहते हैं।

शस्त्र दो प्रकारका है–(१) द्रव्य शस्त्र और (२) भाव–शस्त्र। उनमेंसे स्व-काय, पर-काय और उभय-कायको द्रव्य-शस्त्र कहते हैं। पृथिवीके विषयमें मन–वचन–कायकी दुष्परिणति करना भाव–शस्त्र है। इसी प्रकार अन्य सब कायके जीवोंके भाव–शस्त्र समझ लेने चाहिए। अपनेसे भिन्न वर्णगन्धवाली पृथिवी ही पृथिवीका स्वकाय-शस्त्र है, जैसे

તો તેની ઉપર ગમનાગમન આદિ ક્રિયાઓ કરનારા સંયમીઓના અહિંસાવ્રતની રક્ષા કેમ થશે ? ઉચ્ચાર, પ્રસ્રવણ આદિ ક્રિયાઓ અનિવાર્ય છે, અને એ ક્રિયાઓ કરવાથી હિંસા અનિવાર્ય છે, તેથી અહિંસા–વ્રતનું પાલન એવું અસંભવિત છે કે જેવું વંધ્યાના પુત્રનું પાલન કરવું અસંભવિત છે

ઉત્તર–હે શિષ્ય ! શસ્ત્રપરિણત પૃથિવી સિવાયની બધી પૃથિવી સચિત્ત છે જે વડે પ્રાણીઓની હિંસા થાય છે, તેને શસ્ત્ર કહે છે

શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્ય–શસ્ત્ર (૨) ભાવ–શસ્ત્ર એમાં સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાયને દ્રવ્ય–શસ્ત્ર કહે છે, પૃથિવીના વિષયમાં મન વચન કાયાથી દુષ્પરિણતિ કરવી એ ભાવશસ્ત્ર છે એજ રીતે બીજી બધી કાયાના જીવોના ભાવશસ્ત્ર સમજી લેવાં પોતાથી ભિન્ન વર્ણ–ગંધ–વાળી પૃથિવીજ

नन्वेवमपां जीवपिण्डभूततयाऽद्भिर्विना संयमिनां संयमयात्रा असंभवन्निर्वाहा स्यादित्यत आह–शस्त्रेत्यादि,शस्त्रपरिणताभ्योऽन्यत्र=शस्त्रपरिणता अपो विहायान्या आपः सचित्ता इत्यर्थः। शस्त्र–द्रव्यभावभेदाद्द्विविधं, द्रव्यशस्त्र–स्वकायपर-कायो-भयकायस्वरूपं, भावशस्त्रम्–अपः प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिहितत्वम्। तत्र स्वकायशस्त्र–तडागाद्युदकस्य कूपाद्युदकम्। एवंविधशस्त्रपरिणतं जलं व्यवहारतोऽ-शुद्धत्वाद्भगवदनादिष्टत्वाच्च सर्वथैवाग्राह्यम्। परकायशस्त्र-द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-दाली-चणकादि। अपां शस्त्रपरिणतत्वं च वर्णादिना पूर्वावस्थावैलक्षण्यरूपम्।

हे गुरो! जलके विना संयमियोंका निर्वाह नहीं हो सकता और वह जीवोंका पिण्ड है, इसलिए उसको पीने आदिके काममें लानेसे संयमकी रक्षा नहीं हो सकती। ऐसी आशङ्का होनेपर गुरु कहते हैं–हे शिष्य! शस्त्रपरिणत जलके सिवाय अन्य जल सजीव है। यहां परभी शस्त्र, द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है। उसका कथन पहले किया जाचुका है। यह विशेष समझना चाहिए कि तालाव आदिके जलका कूप आदिका जल स्वकायशस्त्र है। इस प्रकारका शस्त्र-परिणत जल व्यवहारसे अशुद्ध होनेके कारण ग्राह्य नहीं है। तथा ऐसे जलके लेनेमें भगवानकी आज्ञा भी नहीं है।

दाख, शाक, चावल, आटा आदि परकायशस्त्र हैं। जलमें पहले जैसा वर्ण गन्ध आदि था उसका बदल जाना शस्त्रपरिणत होना कहलाता है।

હે ગુરુ! જળ વિના સંયમીઓનો નિર્વાહ થઇ શકતો નથી અને એ જીવોનો પિંડ છે તેથી તેને પીવા આદિના કામમાં લેવાથી સંયમની રક્ષા નહિ થઇ શકે એવી આશંકા થતાં ગુરૂ કહે છે હે શિષ્ય! શસ્ત્ર–પરિણત જળ સિવાયનું અન્ય જળ સજીવ છે એમાં પણ શસ્ત્ર, દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદે કરીને બે પ્રકારનાં છે એનું કથન પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે વિશેષ એટલું સમજવું કે તળાવ આદિના જળનું કૂપાદિનું જળ એ સ્વકાય શસ્ત્ર છે એ પ્રકારનું શસ્ત્ર–પરિણત જળ વ્યવહારથી અશુદ્ધ હોવાને કારણે ગ્રાહ્ય નથી તથા એવું જળ લેવાની ભગવાનની આજ્ઞા પણ નથી

દ્રાક્ષ, શાક, ચોખા, આટો ઇત્યાદિ પરકાય શસ્ત્ર છે જળમાં પહેલાં જેવા વર્ણ ગંધ આદિ હતાં તેનું બદલાઇ જવું એ શસ્ત્રપરિણત થવું કહેવાય છે

सम्भवात् मण्डूकवत् । आन्तरिक्षोऽप्यापः सचेतनाः मेघादिविकृतौ स्वाभाविकसम्भूयसपतनशीलत्वान्मीनवत् । यद्वा-आपः सचेतनाः, ग्रीष्महेमन्तयोः स्वाभाविकशैत्यौष्ण्यबाष्पाद्युपलम्भान्मनुष्यशरीरवत्, तथथा-भूमिगृहस्थितनरस्य शरीरं ग्रीष्मे शीतलं हेमन्ते चोष्णं भवति, मुखाच्च बाष्पमुद्गच्छति, एवमेव गभीरतरतडागकूपादिस्थसलिलं हेमन्ते सबाष्पोद्गमामुष्णता, ग्रीष्मे च शीतलता धत्ते। अनेकजीवाः पृथक्सत्त्वाः, आख्याता इत्यनेनान्वयः, व्याख्या चैषां पदानां प्राग्वद्बोध्या ।

निकलता है, अतएव वह भी सचेतन है। आकाशका भी जल सचेतन है, क्योंकि मेघादि-विकार होने पर स्वयं ही गिरने लगता है-जैसे मछली। अथवा-

(२) जल सजीव है, क्योंकि उसमें ग्रीष्म और हेमन्त ऋतुमें स्वाभाविक शीतता उष्णता और भाफ आदि देखे जाते हैं, जिसमें ग्रीष्मादि ऋतुओंमें शीतता आदि पाये जाते हैं वह सजीव होता है, जैसे मनुष्यका शरीर। जैसे भोंयरेमें स्थित मनुष्यका शरीर ग्रीष्म ऋतुमें शीत और हेमन्त ऋतुमें उष्ण होता है, तथा हेमन्त ऋतुमें मुँहसे भाफ निकलती है, वैसेही खूब गहरे तालाब या कुएका जलभी हेमन्तमें भाफवाला और उष्ण होता है तथा ग्रीष्ममें शीतल होता है।

अनेकजीव और पृथक्सत्त्व आदि पदोंका व्याख्यान पहले कहे हुए पृथिवीकायके आलापकके समान समझना चाहिए।

સચેતન છે આકાશનું જળ પણ સચેતન છે, કારણ કે મેઘાદિ-વિકાર થવાથી સ્વયં પડવા લાગે છે, જેમકે માછલી અથવા—

(૨) જળ સજીવ છે, કારણ કે તેમાં ગ્રીષ્મ અને હેમન્ત ઋતુમાં સ્વાભાવિક શીતતા ઉષ્ણતા અને બાફ આદિ જોવામાં આવે છે જેમાં ગ્રીષ્માદિ ઋતુઓમાં શીતળતા આદિ જણાઇ આવે છે તે સજીવ હોય છે, જેમકે માણસનું શરીર જેમ ભોયરામાં રહેલા માણસનું શરીર ગ્રીષ્મ-ઋતુમાં શીતલ અને હેમન્ત-ઋતુમાં ગરમ હોય છે તથા હેમન્ત-ઋતુમાં મ્હોમાંથી બાફ (વરાળ) નીકળે છે, એજ રીતે ખૂબ ઊંડા તળાવ યા કુવાનું જળ પણ હેમન્ત ઋતુમાં બાફવાળું અને ઉષ્ણ હોય છે તથા ગ્રીષ્મમાં શીતળ હોય છે

અનેક જીવ તથા પૃથક્સત્ત્વ આદિ શબ્દોનું વ્યાખ્યાન પહેલા કહેલા પૃથિવી કાયના આલાપકની જેમ સમજવું

अङ्गारादीनां प्रकाशनशक्तिर्यावदात्मसंयोगभाविनी देहस्थत्वात्, खद्योतशरीरपरिणामवत् ।

अङ्गारादीनां तापोऽपि आत्मसंयोगसद्भावहेतुकः, शरीरस्थत्वात् ज्वरतापवत्,

न देनेसे हानि (मन्दता) होती है, जैसे मनुष्यका शरीर। अर्थात् मनुष्यका शरीर आहार देनेसे बढता और न देनेसे घटता है, अतः वह सचेतन है। इसी प्रकार तेजस्काय भी ईंधन देनेसे बढती और न देनेसे घटती है, अतः वह भी सचेतन है।

अंगार आदिकी प्रकाशन शक्ति जीवके संयोगसे ही उत्पन्न होती है, क्योंकि वह देहस्थ है, जो जो देहस्थ प्रकाश होता है वह वह आत्माके संयोगके ही निमित्तसे होता है, जैसे जुगनूके शरीरका प्रकाश। जुगनूके शरीरमें प्रकाश तब तक ही रहता है जब तक उसके साथ आत्माका संयोग रहता है।

इसी प्रकार अंगार आदिका प्रकाश भी तब तक ही रहता है जबतक उसमें आत्मा रहती है।

अंगार आदिका ताप भी आत्माके संयोगके ही कारण है क्योंकि वह शरीरस्थ है, जितने शरीरस्थ ताप होते हैं वे सब आत्माके निमित्तसे ही

તેની વૃદ્ધિ અને ન આપવાથી હાનિ (મંદતા) થાય છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર અર્થાત્–મનુષ્યનું શરીર આહાર આપવાથી વધે છે અને ન આપવાથી ઘટે છે, તેથી તે સચેતન છે, એજ રીતે તેજસ્કાય પણ ઇંધન આપવાથી વધે છે અને ન આપવાથી ઘટે છે, તેથી તે સચેતન છે,

અંગારા આદિની પ્રકાશન–શક્તિ જીવના સંયોગથી જ ઉત્પન્ન થાય છે કારણ કે એ દેહસ્થ છે, જે જે દેહસ્થ પ્રકાશ હોય છે તે તે આત્માના સંયોગના જ નિમિત્તથી હોય છે, જેમકે આગીયાના શરીરનો પ્રકાશ આગીયાના શરીરમાં પ્રકાશ ત્યાંસુધી જ રહે છે કે જ્યાંસુધી તેની સાથે આત્માનો સંયોગ રહે છે, એ રીતે અંગારા આદિનો પ્રકાશ પણ ત્યાંસુધી જ રહે છે કે જ્યાંસુધી તેમાં ચેતન રહે છે

અંગારા આદિનો તાપ પણ આત્માના સંયોગના જ કારણે છે, કેમકે તે શરીરસ્થ છે જેટલા શરીરસ્થ તાપ હોય છે તે બધા આત્માના નિમિત્તથી જ

तत्र-वर्णतो धूसरत्वादिरूपम्, गन्धतस्तत्तद्वस्तुगन्धनिर्गमरूपम्, रसतस्तिक्तकटु कषायत्वादिरूपम्, स्पर्शतः स्निग्धरूक्षत्वादिरूपम्। इत्थमुक्तप्रकारद्राक्षादिधावनजलं प्रासुकत्वान्मुनिग्राह्यम्। उपलक्षणमेतदग्निशस्त्रपरिणतस्योदकस्यापि। भस्ममिश्रजलमग्राह्यं, तत्र मिश्रशङ्कायाः सद्भावात्, शास्त्रे क्वचिदप्यप्रतिपादितत्वाच्च। उभयकायशस्त्र-मृत्तिकामिश्रजलम्। भावशस्त्रमुक्तस्वरूपमेवेति।

तेजस्कायः।

तेजश्चित्तवत्=सचेतनम् आख्यातम्=उक्तम्, तथाहि-

तेजश्चेतनावत् इन्धनाद्याहारोपादानहानाभ्यां तद्वृद्धिमान्द्योपलम्भात्, मनुष्यादिशरीरवत्।

जैसे-धूसर वर्ण हो जाना, जो वस्तु उसमें डाली गई हो उसकी गन्ध आने लगना, तीखा, कडुवा, कषायला आदि रस हो जाना, स्निग्ध या रूक्ष आदि स्पर्श हो जाना। इस प्रकार यह दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, बेसन आदिका धोवन प्रासुक होनेसे मुनिके लिए ग्राह्य है। यह तो उपलक्षण है, इससे यह भी समझना चाहिये कि-अग्निशस्त्रपरिणत अर्थात् उष्ण जल भी मुनिको ग्राह्य है। राखका पानी ग्राह्य नही है, क्योंकि उसमें मिश्रकी शङ्का रहती है। मृत्तिका आदिसे मिला हुआ जल उभयकाय शस्त्र है। भावशस्त्र पहले कह चुके हैं।

(तेजस्काय)

तेजस्कायको भी भगवानने सचेतन कहा है, यही कहते है—

तेजस्काय सजीव है, क्योंकि इन्धन आदि आहार देनेसे उसकी वृद्धि और

જેમકે-ધુંધળા વર્ણનું થઇ જવુ, જે વસ્તુ તેમા નાખવામા આવી હોય તેની ગંધ આવવા લાગવી, તીખો કડવો કસાયલો આદિ રસ થઇ જવો, સ્નિગ્ધ યા રૂક્ષ આદિ સ્પર્શ થઇ જવો એ પ્રકારે એ દ્રાક્ષ, શાક, ચોખા, આટો, દાળ, વેસણ આદિનુ ધોવણ પ્રાસુક હોવાથી મુનિને માટે ગ્રાહ્ય છે એ ઉપલક્ષણ છે, એથી એમ પણ સમજવુ જોઇએ કે- અગ્નિશસ્ત્ર-પરિણત અર્થાત્ ઉષ્ણ જળ પણ મુનિને ગ્રાહ્ય છે રાખનું પાણી ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે એમા મિશ્રની શંકા રહે છે માટી આદિથી મળેલુ જળ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે (૨) ભાવશસ્ત્ર પહેલે કહી દીધુ છે

(તેજસ્કાય)

તેજસ્કાયને પણ ભગવાને સચેતન કહી છે, એ હવે કહે છે —

તેજસ્કાય સજીવ છે, કારણ કે લાકડા (ઈંધણા) આદિ આહાર આપવાથી

अङ्गारादीनां प्रकाशनशक्तिर्यावदात्मसंयोगभाविनी देहस्थत्वात्, खद्योतशरीरपरिणामवत् ।

अङ्गारादीनां तापोऽपि आत्मसंयोगसद्भावहेतुकः, शरीरस्थत्वात् ज्वरतापवत्,

न देनेसे हानि (मन्दता) होती है, जैसे मनुष्यका शरीर। अर्थात् मनुष्यका शरीर आहार देनेसे बढता और न देनेसे घटता है, अतः वह सचेतन है। इसी प्रकार तेजस्काय भी ईंधन देनेसे बढती और न देनेसे घटती है, अतः वह भी सचेतन है।

अंगार आदिकी प्रकाशन शक्ति जीवके संयोगसे ही उत्पन्न होती है, क्योंकि वह देहस्थ है, जो जो देहस्थ प्रकाश होता है वह वह आत्माके संयोगके ही निमित्तसे होता है, जैसे जुगनूके शरीरका प्रकाश। जुगनूके शरीरमें प्रकाश तब तक ही रहता है जब तक उसके साथ आत्माका संयोग रहता है।

इसी प्रकार अंगार आदिका प्रकाश भी तब तक ही रहता है जबतक उसमें आत्मा रहती है।

अंगार आदिका ताप भी आत्माके संयोगके ही कारण है क्योंकि वह शरीरस्थ है, जितने शरीरस्थ ताप होते हैं वे सब आत्माके निमित्तसे ही

તેની વૃદ્ધિ અને ન આપવાથી હાનિ (મંદતા) થાય છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર અર્થાત્-મનુષ્યનું શરીર આહાર આપવાથી વધે છે અને ન આપવાથી ઘટે છે, તેથી તે સચેતન છે, એજ રીતે તેજસ્કાય પણ ઇંધન આપવાથી વધે છે અને ન આપવાથી ઘટે છે, તેથી તે સચેતન છે,

અંગારા આદિની પ્રકાશન-શક્તિ જીવના સંયોગથી જ ઉત્પન્ન થાય છે કારણ કે એ દેહસ્થ છે, જે જે દેહસ્થ પ્રકાશ હોય છે તે તે આત્માના સંયોગના જ નિમિત્તથી હોય છે, જેમકે આગીયાના શરીરનો પ્રકાશ આગીયાના શરીરમાં પ્રકાશ ત્યાંસુધી જ રહે છે કે જ્યાંસુધી તેની સાથે આત્માનો સંયોગ રહે છે, એ રીતે અંગારા આદિનો પ્રકાશ પણ ત્યાંસુધી જ રહે છે કે જ્યાંસુધી તેમાં ચેતન રહે છે

અંગારા આદિનો તાપ પણ આત્માના સંયોગના જ કારણે છે, કેમકે તે શરીરસ્થ છે જેટલા શરીરસ્થ તાપ હોય છે તે બધા આત્માના નિમિત્તથી જ

तत्र-वर्णतो धूसरत्वादिरूपम्, गन्धतस्तद्वस्तुसम्बन्धिगन्धत्वम्, रसतस्तिक्त-कटु कषायत्वादिरूपम्, स्पर्शतः स्निग्धरूक्षत्वादिरूपम्। इत्यमुक्तप्रकार द्राक्षादिधावनजलं प्रासुकत्वान्मुनिग्राह्यम्। उपलक्षणमेतदग्निशस्त्रपरिणतस्योदकस्यापि। भस्ममिश्र जलमग्राह्य, तत्र मिश्रशङ्कायाः सद्भावात्, शास्त्रे क्वचिदप्यप्रतिपादितत्वाच्च। उभय कायशस्त्रं मृत्तिकामिश्रजलम्। भावशस्त्रमुक्तस्वरूपमेवेति।

तेजस्कायः।

तेजश्चित्तवत्=सचेतनम् आख्यातम्=उक्तम्, तथाहि-

तेजश्चेतनावत् इन्धनाद्याहारोपादानदानाभ्यां तद्वृद्धिमान्द्योपलम्भात्, मनुष्यादिशरीरवत्।

जैसे-धूसर वर्ण हो जाना, जो वस्तु उसमें डाली गई हो उसकी गन्ध आने लगना, तीखा, कडुवा, कषायला आदि रस हो जाना, स्निग्ध या रूक्ष आदि स्पर्श हो जाना। इस प्रकार यह दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, वेसन आदिका धोवन प्रासुक होनेसे मुनिके लिए ग्राह्य है। यह तो उपलक्षण है, इससे यह भी समझना चाहिये कि-अग्निशस्त्रपरिणत अर्थात् उष्ण जल भी मुनिको ग्राह्य है। राखका पानी ग्राह्य नही है, क्योंकि उसमे मिश्रकी शङ्का रहती है। मृत्तिका आदिसे मिला हुआ जल उभयकाय शस्त्र है। भावशस्त्र पहले कह चुके हैं।

(तेजस्काय)

तेजस्कायको भी भगवानने सचेतन कहा है, यही कहते हैं—

तेजस्काय सजीव है, क्योंकि इन्धन आदि आहार देनेसे उसकी वृद्धि और

જેમકે-ધુંધળા વર્ણનુ થઈ જવુ, જે વસ્તુ તેમા નાખવામા આવી હોય તેની ગંધ આવવા લાગવી, તીખો કડવો કસાયલો આદિ રસ થઈ જવો, સ્નિગ્ધ યા રૂક્ષ આદિ સ્પર્શ થઈ જવો એ પ્રકારે એ દ્રાક્ષ, શાક, ચોખા, આટો, દાળ, વેસણુ આદિનુ ધોવણુ પ્રાસુક હોવાથી મુનિને માટે ગ્રાહ્ય છે એ ઉપલક્ષણુ છે, એથી એમ પણુ સમજવુ જોઈએ કે- અગ્નિશસ્ત્ર-પરિણુત અર્થાત ઉષ્ણુ જળ પણુ મુનિને ગ્રાહ્ય છે રાખનુ પાણી ગ્રાહ્ય નથી, કારણુ કે એમા મિશ્રનો શંકા રહે છે માટી આદિથી મળેલુ જળ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે (૨) ભાવશસ્ત્ર પહેલે કહી દીધુ છે

(તેજસ્કાય)

તેજસ્કાયને પણુ ભગવાને સચેતન કહી છે, એ હવે કહે છે —

તેજસ્કાય સજીવ છે, કારણુ કે લાકડા (ઈંધણુ) આદિ આહાર આપવાથી

शस्त्रपरिणताचित्ताग्निकायमाह–उष्णमन्न-कृशरौदनादि, उष्णपानकं शाकौदनादीनामवस्रावणादि (ओसामण इति भाषा), तप्तेष्टका सिकतादि च, एतेष्वग्निसंयोगनिष्पाद्यत्वादचित्ताग्निकायशब्दो व्यपदिश्यते, क्षुधाद्युपशमनार्थं ग्राह्योऽसौ।

वायुकायः ।

वायुश्चित्तवानाख्यातः । कथमस्य सचेतनत्वमिति चेत्तत्प्रमाणाद् गृहाण, तथाहि–वायुश्चेतनावान् अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्यग्गमनत्वात्, हरिणगवयादिवत्, स च 'अनेकजीवः, पृथक्सत्त्वः आख्यातः, शस्त्रपरिणतादन्यत्र' इत्यादिकाना भाग्वद्व्याख्या बोद्धव्या ।

खिचडी, भात आदि उष्ण अन्न, शाकका ओसामण और चावलोंका मण्ड आदि उष्ण पान, तपी हुई ईंट, बालू आदि शस्त्र-परिणत अचित्त अग्निकाय कहलाते हैं। ये सब अग्निके संयोगसे निष्पन्न होते हैं इसलिए इनमें अचित्त अग्निकाय शब्दकी प्रवृत्ति होती है।

(वायुकाय)

वायुकायको भी भगवानने सचित्त कहा है। वायु कैसे सचित्त है सो कहते हैं। वायु सचेतन है, क्योंकि दूसरेकी प्रेरणाके विना अनियत रूपसे तिर्यक्गमन करनेवाला है, जैसे हिरन या रोझ (गवय)।

अनेकजीव और पृथक्सत्त्व आदिकी व्याख्या पहलेके समान समझनी चाहिए ।

ખિચડી, ભાત આદિ ઊનું અન્ન, શાકનું ઓસામણ અને ચોખાનું ઓસામણ, આદિ ઊનું પાન, તપેલી ઇંટ, ગરમ રેતી આદિ શસ્ત્રપરિણત અચિત્ત અગ્નિકાય કહેવાય છે એ બધા અગ્નિના સંયોગથી નિષ્પન્ન થાય છે, તેથી એમા અચિત્ત અગ્નિકાય શબ્દની પ્રવૃત્તિ થાય છે (૩)

(વાયુકાય)

વાયુકાયને પણ ભગવાને સચિત્ત કહી છે વાયુ કેવી રીતે સચિત્ત છે તે કહે છે –

વાયુ સચેતન છે, કારણ કે બીજાની પ્રેરણા વિના અનિયતરૂપે તિર્યક્ ગમન કરનારો છે, જેવું કે હરણ અથવા રોઝ (નીલગાય)

અનેક જીવ અને પૃથક્સત્ત્વ આદિની વ્યાખ્યા પહેલાની પેઠે સમજવી

न हि कचिदपि विरहितात्मानो ज्वरतापोष्णगात्राः संश्रूयन्ते न चोपलभ्यन्ते, एव मेव निस्तेजस्काद्गारादितोऽणुमात्रोऽपि तापो न जन्यते, तस्माद् यावदात्मसंयोगः भाव्येवाङ्गारादीनां तापजनकत्वमतः सिद्धं तेजसः सचेतनत्वम्। 'अनेकजीव, पृथक्सत्त्वम्' इति प्राग्वत्, 'आख्यात'-मित्यनेनान्वयः, 'शस्त्रपरिणतादन्यत्र' इति च पूर्ववत्। शस्त्रस्वरूपमाह,-तत्र स्वकायशस्त्र-करीषाग्नेस्तृणाग्निः, एतद्विधशस्त्र-परिणतोऽप्यग्निः सर्वथैवाग्राह्यो व्यवहारतोऽशुद्धत्वात्। परकायशस्त्र-जलमृत्तिका-दि। उभयकायशस्त्रमुष्णोदकादि। भावशस्त्रमग्निकाय प्रति मनसो दुष्प्रणिधानम्।

होते हैं, जैसे ज्वरके ताप। आत्मारहित शरीर (शव-मुर्दा) में कभी ज्वरका ताप नहीं सुना जाता न उपलब्ध होता है। इसीप्रकार निस्तेजस अंगारमें अणुमात्र भी ताप नहीं होता, अतएव सिद्ध है कि अंगार आदिमें तापजनन शक्ति जब-तक आत्मा रहती है तब तक होती है, इसलिए तेजस्काय सचेतन है। 'अनेकजीव और पृथक्सत्त्व' आदि पदोंकी व्याख्या पहलेकी भाँति है।

यह भी समझ लेना चाहिये कि वही तेजस्काय सचित्त है जो शस्त्र-परिणत न हो। तेजस्कायके शस्त्र ये हैं--जैसे छाणाकी अग्निका शस्त्र तृणकी अग्नि है। इस प्रकारकी शस्त्रपरिणत अग्नि ग्राह्य नहीं है, क्योंकि वह व्यवहारसे अशुद्ध है। तथा इसके ग्रहण करनेमें भगवानकी आज्ञा भी नहीं है। जल मृत्तिका आदि पर-काय शस्त्र है। उष्णजल उभयकाय शस्त्र है।

હોય છે, જેમકે જ્વરનો તાપ આત્મારહિત શરીર (મુડદુ)મા કદિ જ્વરનો તાપ નથી સાભળવામા આવતો કે નથી જોવામા આવતો, એ રીતે નિસ્તેજસ અગારામા અણુમાત્ર પણ તાપ હોતો નથી તેથી સિદ્ધ થાય છે કે અગારા આદિમા જ્યાસુધી આત્મા હોય છે ત્યાસુધી જ તાપ-જનન-શક્તિ રહે છે તેથી તેજસ્કાય સચેતન છે 'અનેક-જીવ અને પૃથક્-સત્વ' આદિ શબ્દોની વ્યાખ્યા પહેલાની જેમ છે

એ પણ સમજી લેવુ જોઇએ કે એજ તેજસ્કાય સચિત્ત છે કે જે શસ્ત્ર પરિણત ન હોય તેજસ્કાયના શસ્ત્ર આ છે—જેમ છાણાના અગ્નિનું શસ્ત્ર તરણાનો અગ્નિ છે એ પ્રકારનો શસ્ત્રપરિણત અગ્નિ ગ્રાહ્ય નથી, કારણ કે તે વ્યવહારથી અશુદ્ધ છે વળી તેને ગ્રહણ કરવાની ભગવાનની આજ્ઞા પણ નથી જળ, માટી વગેરે પરકાય-શસ્ત્ર છે ઉનુ પાણી ઉભયક

पूरितोऽपि मिश्रत्वादग्राह्य एव सचित्तवत्। (४)

वनस्पतिकायः ।

वनस्पतिश्चित्तवान् आख्यातः, व्याख्या तु पूर्ववत्। चैतन्यवत्त्वसिद्धिश्चेत्थम्-वनस्पतिः सचेतनः, बाल्याद्यवस्थासन्दर्शनात्, छेदन-भेदनादिभिर्म्लानतादि-दर्शनाच्च मनुष्यशरीरवत्। शेषं पूर्ववत्। शस्त्रं द्रव्यभावभेदाद्विविधं, तत्र द्रव्यशस्त्रं-स्वपरोभयकायात्मकम्। स्वकायशस्त्र-यष्ट्यादि। परकायशस्त्रं पाषाणाऽसिकर्त्तर्यादि,

---

अचित्त वायु साधुओंको ग्राह्य है, किन्तु दूसरे प्रहरका मिश्र वायु सचित्त वायुकी तरह अग्राह्य है। (४)

(वनस्पतिकाय.)

वनस्पतिकायको भी भगवानने सचित्त कहा है। वनस्पति सचित्त है, क्योंकि उसमें बाल्यावस्था आदि, तथा छेदन भेदन करनेसे म्लानता आदि सचेतनके गुण देखे जाते हैं, जैसे मनुष्यका शरीर। अर्थात् बाल्य-तरुण आदि अवस्थाएँ और छेदन-भेदन आदि करनेसे म्लानता होनेके कारण जैसे मनुष्य-शरीर सचेतन है वैसेही वनस्पतिकाय भी सचेतन है। 'अनेकजीव' आदि पदोंका व्याख्यान पहलेकी भाँति जानना चाहिए।

वनस्पति-कायके शस्त्र दो प्रकारके हैं—(१) द्रव्यशस्त्र और (२) भावशस्त्र। द्रव्य-शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय है, लकडी आदि स्वकाय शस्त्र है। लोह पत्थर आदि परकाय शस्त्र हैं, परशु

કિન્તુ બીજા પ્રહરનો મિશ્રવાયુ સચિત્તવાયુની પેઠે અગ્રાહ્ય છે (૪)

(વનસ્પતિકાય)

વનસ્પતિકાયને પણ ભગવાને સચિત્ત કહી છે

વનસ્પતિ સચિત્ત છે, કારણ કે તેમા બાલ્યાવસ્થા આદિ તથા છેદન ભેદન કરવાથી મ્લાનતા આદિ સચેતનના ગુણ જોવામા આવે છે, જેમકે મનુષ્યનું શરીર, અર્થાત્ બાલ્ય-તરૂણ આદિ અવસ્થાઓ અને છેદન ભેદન આદિ કરવાથી મ્લાનતા થવાને કારણે જેમ મનુષ્યનું શરીર સચેતન છે તેમ વનસ્પતિકાય પણ સચેતન છે 'અનેક-જીવ' આદિ શબ્દોનુ વ્યાખ્યાન પહેલાની પેઠે જાણવુ

વનસ્પતિકાયના શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્યશસ્ત્ર અને (૨) ભાવશસ્ત્ર દ્રવ્યશસ્ત્ર સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય છે લાકડી આદિ સ્વકાયશસ્ત્ર છે લોહ

शस्त्रं चास्य द्रव्य-भावभेदाद्विविधं, तत्र द्रव्यशस्त्रं [1]स्व पर तदुभय-कायभेदात्त्रिविधम्। स्वकायशस्त्र-पौरस्त्यादिवायोः पाश्चात्यादिवायुः। परकायशस्त्रमनलादि। उभयकायशस्त्रमनलादिसंतप्तो वायुरेव। भावशस्त्रं तु वायुं प्रति मनसो दुष्प्रवृत्तिः।

वायुः सचित्ताचित्तमिश्रभेदात्त्रिधा, तत्र सचित्तो घनवातादिः, अचित्तो दृति प्रभृतिषु पूरितः, सोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तादूर्ध्वं यावदेकं याममचेतनः, तदनु पूर्णद्वितीययामं यावन्मिश्रः, तत्पश्चात्सचित्त एव, रोगाद्यवस्थायां वायोरावश्यकत्वे इत्यादि

१ भगवतीसूत्रस्य द्वितीयशतके प्रथमोद्देशे वाय्वधिकारे—
"से भंते ! किं पुट्ठे उद्दाइ अपुट्ठे उद्दाइ ? गो० ! पुट्ठे उद्दाइ नो अपुट्ठे उद्दाइ"
छाया—'स (वायुः) भगवन् ! किं स्पृष्टः अपद्रवति (म्रियते) अस्पृष्टः अपद्रवति ? गौतम ! स्पृष्टः अपद्रवति नो अस्पृष्टः अपद्रवति'। अस्य टीका—'स्पृष्टः स्वकायशस्त्रेण परकायशस्त्रेण वा अपद्रवति=म्रियते'।

वायुकायका शस्त्र द्रव्य-भाव-भेदसे दो प्रकारका है, द्रव्यशस्त्र—स्व पर-उभयकायके भेदसे तीन प्रकारका है। वहा स्वकाय-शस्त्र पूर्व आदि दिशाके वायुका पश्चिम आदि दिशाका वायु, परकाय-शस्त्र अग्नि आदि है, उभयकाय शस्त्र अग्नि आदिसे तपा हुआ वायु ही है। वायु तीन प्रकारका है—

(१) सचित्त, (२) अचित्त, (३) मिश्र। घनवात आदि सचित्त है, दृति या रबरकी थैली आदिमे भरी हुई हवा अचित्त होती है, किन्तु अन्तर्मुहूर्त्तके बाद एक प्रहर तक अचित्त रहती है, उसके बाद दूसरे पहर तक मिश्र अवस्थामे रहती है बादमें सचित्त होजाती है। रोग आदि अवस्थामे वायुकी आवश्यकता होने पर दृति आदिमे भरा हुआ

વાયુકાયનો શસ્ત્ર દ્રવ્ય ભાવભેદે બે પ્રકારનો છે દ્રવ્યશસ્ત્ર સ્વ પર ઉભયકાયના ભેદે કરી ત્રણ પ્રકારનો છે, ત્યા સ્વકાયશસ્ત્ર—પૂર્વઆદિ દિશાના વાયુનો પશ્ચિમ-આદિ દિશાનો વાયુ, પરકાયશસ્ત્ર અગ્નિ આદિ છે, ઉભયકાયશસ્ત્ર અગ્નિઆદિથી તપેલો વાયુ જ છે ભાવશસ્ત્ર પહેલાની જેમ સમજી લેવુ વાયુ ત્રણ પ્રકારનો છે—

(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર ઘન વાત આદિ વાયુ સચિત્ત છે, મસક યા રબ્બરની થેલી આદિમા ભરેલી હવા અચિત્ત છે, પરન્તુ અંતર્મુહુર્તની પછી એક પ્રહર સુધી અચિત્ત રહે છે, ત્યારપછી બીજા પ્રહર સુધી મિશ્ર અવસ્થામા રહે છે, અને ત્યારબાદ સચિત્ત બની જાય છે રોગાદિ અવસ્થામા વાયુની આવશ્યક્તા પડતા મસક આદિની અંદર ભરેલો અચિત્ત વાયુ સાધુઓને ગ્રાહ્ય છે,

मूलबीजाः=मूलमेव बीजं येषां ते कमलकन्दप्रभृतयः। पर्वबीजाः=पर्वणि-ग्रन्थौ पर्वैव वा बीजं येषां ते तथा इक्षुप्रमुखाः। स्कन्धबीजाः=स्कन्धः-स्थुडः स एव बीजं येषां ते तथा शल्लकीप्रभृतयः। बीजरुहाः=बीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति ते तथा शालिगोधूमादयः। सम्मूर्च्छिमाः=सम्मूर्च्छन्ति=बीजं विनापि दग्धभूमावपि समुद्भवन्तीति ते तथोक्ताः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषा इत्यर्थः। आर्षत्वात्सिद्धिः। तथा तृणलताः=तृणानि लताश्चेत्यर्थः। वनस्पतिकायिकाः=अवशिष्टाः समस्तवनस्पतय इत्यर्थः। यद्वा 'तृणलतावनस्पतिकायिकाः' इत्येक

मूलबीज-मूलही जिनका बीज हो वह, कमलका कंद आदि मूलबीज हैं।

पर्वबीज-पोर (गांठ)मे या पर्वही जिनका बीज है ऐसे, गन्ना (साठा) आदि पर्वबीज कहलाते हैं।

स्कन्धबीज-स्कन्ध (थुड)ही जिनका बीज है उस शल्लकी आदिको स्कन्धबीज कहते है।

बीजरुह-चाँवल गेहूं आदि बीजसे उगनेवाली वनस्पतिको बीजरुह कहते है।

सम्मूर्च्छिम-बिना बीजके जलीहुई भूमिमें भी जो पृथ्वी और जलके संयोगसे उग जावे ऐसी घास आदिको सम्मूर्च्छिम कहते है।

तृणलता-तिनका (घास) और लताएँ सब वनस्पतिकायिक है।

अथवा "तृणलतावनस्पतिकायिकाः" यह एकही पद है। दर्भ

મૂલબીજ—મૂળજ જેનું બીજ છે તે કમળનો કંદ આદિ મૂલબીજ છે

પર્વબીજ—ગાંઠ યા પર્વમાં જેનું બીજ છે એવી શેરડી આદિ પર્વબીજ કહેવાય છે

સ્કંધબીજ—સ્કંધ-થડજ જેનું બીજ છે એવા શલ્લકી આદિને સ્કંધબીજ કહે છે

બીજરૂહ—ચોખા ઘઉં આદિ બીજથી ઉગનારી વનસ્પતિને બીજરૂહ કહે છે

સમ્મૂર્ચ્છિમ—બીજ વિના બળી ગએલી ભૂમિમાં પણ જે પૃથ્વી અને જળના સંયોગથી ઉગે એવા ઘાસ આદિને સમ્મૂર્ચ્છિમ કહે છે

તૃણલતા—તરણા (ઘાસ) અને લતા એ બધા વનસ્પતિકાયિક છે

અથવા तृणलतावनस्पतिकायिका એ એક જ પદ છે દર્ભ (દાભડો)

उभयकायशस्त्र-परशुदात्रादि । भावशस्त्र तु न मति मनोमालिन्यम् ॥ ४ ॥

सम्प्रति वनस्पतिमेव सविशेष वर्णयति-'तजहा' इत्यादि ।

मूलम्-तजहा-अग्गबीया मूलबीया पोरबीया, खंधबीया बीयरुहा समुच्छिमा तणलया वणस्सइकाइया सबीया चित्तमतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ॥५॥

छाया—तद्यथा-अग्रबीजा मूलबीजाः पर्वबीजाः स्कन्धबीजाः बीजरुहाः सम्मूर्च्छिमास्तृणलता वनस्पतिकायिकाः सबीजाश्चित्तवन्त आख्याता अनेकजीवाः पृथक्सत्त्वा अन्यत्र शस्त्रपरिणतेभ्यः ॥५॥

यहा वनस्पतिकायका विशेष वर्णन करते हैं—

सान्वयार्थः—तजहा=वह इस प्रकारसे है-अग्गबीया=जिनका बीज अग्र भागमें होता है, मूलबीया=जिनका बीज मूलभागमें होता है, पोरबीया=जिनका बीज पोर (सन्धि) में होता है, खधबीया=जिनका बीज स्कन्ध (डाले) में होता है, बीयरुहा=बीजसे उगनेवाले, समुच्छिमा=बिना बीजके उत्पन्न होनेवाले, तणलया=तृण और लताएँ, ये सभी वणस्सइकाइया=वनस्पतिकायिक हैं, सबीया=पूर्वोक्त अपने-अपने नामप्रकृतिके उदयसे उत्पन्न हुए बीजसहित सब वनस्पतिकाय चित्तमत=सचित्त अक्खाया=कहे गये हैं, अन्नत्थ=सिवाय सत्थपरिणएण=शस्त्रपरिणतके, ये वनस्पतिकाय अणेगजीवा=अनेक जीववाले और पुढोसत्ता=भिन्न भिन्न सत्तावाले है ॥५॥

टीका-तथाहि-अग्रबीजाः=अग्रे=अग्रभागे बीज येषा ते तथा कोरण्टकादयः।

(फरसा) दात्र आदि उभयकाय शस्त्र हैं। भावशस्त्र उसके प्रति मनके परिणाम दुष्ट करना ॥ ४ ॥

अब वनस्पतिकायका विशेष वर्णन करते हैं—'त जहा' इत्यादि ।

अग्रबीज—जिनके बीज अग्र-भागमे होते है ऐसे कोरटक आदि अग्रबीज कहलाते है।

પત્થર આદિ પરકાયશસ્ત્ર છે કોહાડો, દાતરડુ આદિ ઉભયકાય શસ્ત્ર છે ભાવશસ્ત્ર એની પ્રતિ મનના પરિણામ દુષ્ટ કરવા તે

હવે વનસ્પતિકાયનું વિશેષ વર્ણન કરે છે-તજહા ઈત્યાદિ

અગ્રબીજ—જેના બીજ અગ્રભાગમા હોય છે એવા કોરટક (હજારી ગુલ) આદિ અગ્રબીજ કહેવાય છે

जेसिं केसिंचि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कत सकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइय, आगइगइविन्नाया। जे य कीडपयगा। जा य कुंथुपिवीलिया। सव्वे वेइंदिया, सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पंचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुया, सव्वे देवा, सव्वे पाणा परमाहम्मिया। एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाउ-त्ति पवुच्चइ ॥६॥

छाया–अथ ये पुनरिमेऽनेके बहवस्त्रसाः प्राणिनस्तद्यथा–अण्डजाः पोतजा जरायुजा रसजाः संस्वेदजाः सम्मूर्च्छिमा उद्भिज्जा औपपातिकाः, येषां केषाञ्चित्प्राणिनामभिक्रान्तं प्रतिक्रान्तं सङ्कुचितं प्रसारितं रुतं भ्रान्तं त्रस्तं पलायितम्, आगतिगतिविज्ञातारः। ये च कीटपतङ्गाः। याश्च कुन्थुपिपीलिकाः। सर्वे द्वीन्द्रियाः, सर्वे त्रीन्द्रियाः, सर्वे चतुरिन्द्रियाः, सर्वे पञ्चेन्द्रियाः, सर्वे तिर्यग्योनिकाः, सर्वे नैरयिकाः, सर्वे मनुजाः, सर्वे देवाः, सर्वे प्राणाः परमधर्माणः। एष खलु षष्ठो जीवनिकायस्त्रसकाय इति प्रोच्यते ॥६॥

(६) त्रसकायवर्णन.

सान्वयार्थः—से=अथ पुण=और जे=जो इमे=ये (आगे कहे जानेवाले) अणेगे=अनेक प्रकारके बहवे=बहुतसे तसा=त्रस पाणा=प्राणी हैं, तजहा=वे इस प्रकार है–(१) अंडया=अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले, (२) पोयया=विना जेर (जरायु-आवल-जड)के अर्थात् विना ही कुछ मलभागके वस्त्रसे पूछे हुएके समान उत्पन्न होनेवाले, (३) जराउया=जेरसे लिपटे हुए उत्पन्न होनेवाले, (४) रसया=रसमें उत्पन्न होनेवाले, (५) संसेइमा=पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले, (६) सम्मुच्छिमा=सम्मूर्च्छिम, (७) उब्भिया=पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होनेवाले (शलभ आदि), (८) उववाइया=उपपात जन्मवाले-देव और नारकी, जेसिं-केसिंचि=इनमेंसे जिन किन्हीं पाणाणं=प्राणियोंका अभिक्कंतं=अभिमुख गमन होता है, पडिक्कंतं=प्रतिकूल गमन होता है, सकुचियं=शरीरमें सकोच–सिकुडन होता है, पसारियं=शरीरमें फैलाव होता है, रुयं=शब्दका प्रयोग होता है, भंतं=इधर-उधर भ्रमण होता है, तसियं=उद्वेग होता है, पलाइयं=डरसे भागना देखा जाता है, (वे त्रस) आगइगइविन्नाया=आगमन और गमनको जाननेवाले, य=और जे=जो

पदम्, तत्र तृणानि=दर्भादीनि, लताः=चम्पकाऽशोकवासन्त्यादयः, वनस्पतिकायिकाः=वनस्पतिकायभेदाः-अग्रबीजादयः सर्वेऽपि वनस्पतिकायिका एव, पुनर्वनस्पतिकायिकग्रहणं स्वगतसूक्ष्मादिसकलभेदद्योतनार्थम्। सबीजाः=पूर्वविहितस्वस्वनामगोत्रप्रकृत्युदयात्मककारणवन्तः, अर्थात् पूर्वोक्ता अग्रबीजादयः सर्वेऽपि चित्तवन्तः; इत्यादीनां व्याख्या पूर्ववत्।

इति पञ्चस्थावरकायनिरूपणम् ॥५॥

साम्प्रतं क्रमप्राप्तं त्रसकायस्वरूपमाह-'से जे०' इत्यादि।

मूलम्-से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा, तंजहा-अंडया पोयया जराउया रसया संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववाइया।

(दूब आदि) तृण, चम्पक, अशोक और वासन्ती आदि लताएँ और वनस्पतिकायके भेद अग्रबीज आदि सब वनस्पतिकायिक हैं। सूत्रमें दूसरी वार 'वनस्पतिकायिक' पदका ग्रहण इसलिए किया है कि-ऊपर बताये हुए भेदोंके सिवाय सूक्ष्म बादर आदि और भी समस्त भेदोंका ग्रहण होजावे। ये सब पहले दिखलाये हुए अपने अपने नाम-गोत्ररूप प्रकृतिके उदयरूप कारणवाले हैं। अर्थात् पूर्वोक्त बीज आदि सब सचित्त हैं और पृथक्-पृथक् स्पर्शरूप एक इन्द्रियवाले हैं ॥५॥

यह पाच स्थावरकायका निरूपण समाप्त हुआ।

अब क्रमप्राप्त त्रसकायका स्वरूप कहते हैं-'से जे' इत्यादि।

તૃણ, ચંપક, અશોક, અને વાસંતી આદિ લતાઓ અને વનસ્પતિકાયના ભેદ અગ્ર બીજ આદિ બધા વનસ્પતિકાયિક છે સૂત્રમાં બીજી વાર 'વનસ્પતિકાયિક' શબ્દનું ગ્રહણ એટલા માટે કરવામાં આવ્યું છે કે-ઉપર બતાવેલા ભેદો ઉપરાંત સૂક્ષ્મ બાદર આદિ બીજા પણ બધા ભેદોનું ગ્રહણ થઈ જવા પામે એ બધા પહેલાં બતાવેલા પોતપોતાના નામ ગોત્ર રૂપ પ્રકૃતિના ઉદય રૂપ કારણવાળા છે અર્થાત્ પૂર્વોક્ત બીજ આદિ બધા સચિત્ત છે અને પૃથક્-પૃથક્ સ્પર્શરૂપ એક ઇન્દ્રિયવાળા છે (૫)

ઇતિ પંચ-સ્થાવર-કાયનું નિરૂપણ સમાપ્ત

હવે ક્રમપ્રાપ્ત ત્રસકાયનું સ્વરૂપ કહે છે - से जे ઇત્યાદિ

एव परिस्पन्दादिसामर्थ्योपेता' पोतजाः । यद्वा पोतो वस्त्रम्-(इति शब्दकल्पद्रुमः), तेन तत्समार्जिता लक्ष्यन्ते, तथा च-पोता इव=वस्त्रसमार्जिता इव गर्भवेष्टनचर्माऽनावृतत्वात्, जायन्ते=उत्पद्यन्ते इति, पोतात्=गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भात् जायन्त इति वा पोतजा'[1] कुञ्जर-शल्लक-शश-नकुल-मूषिक-चर्मचटिका-वल्गुलिकादयः। जरायुजाः=जरामेति=गच्छतीति जरायुः=गर्भवेष्टनचर्म तस्माज्जायन्त इति ते= नर-महिष-गवादयः । रसजा =रसे=मद्यलक्षणे 'रसजो मद्यकीटः' इति हैमात्, जायन्त इति, रसे=विकृतमधुरादौ जायन्त इति वा रजसाः । सस्वेदजाः=सस्वेदात्=घर्माज्जायन्त इति ते यूका-लिक्षा-मत्कुणप्रमुखाः । सम्मूर्च्छिमाः=सम्मूर्च्छनं सम्मूर्च्छ =गर्भाधानमन्तरेणैव स्वयं समुत्पत्तिः, ('मूर्च्छा मोह-समुच्छ्राययोः' अस्माद्भावे घञ्, व्युत्पत्तिप्रदर्शनमेतत्, शब्दोऽयं मनोविकले

१ 'अन्येष्वपि दृश्यते'-इति ड

निकलते ही गमन-आगमन आदि क्रियाएँ करनेकी सामर्थ्यसे युक्त पूर्ण अवयववाले, या वस्त्रसे पोंछे हुएके समान साफ उत्पन्न होनेवाले हाथी, शल्लकी, खरगोश, नौला, चूहा आदि पोतज कहलाते हैं (२), जरायु (आँवल जड) सहित उत्पन्न होनेवाले मनुष्य महिषादि जरायुज कहलाते हैं (३), मदिरा आदि रसोंमें उत्पन्न होनेवाले तथा स्वादसे चलित अर्थात् सडे हुए मधुरादि रसोंमें उत्पन्न होनेवाले रसज कहलाते हैं (४), पसीनेसे पैदा होनेवाले जू, लीख, खटमल आदि सस्वेदज कहलाते हैं (५) गर्भाधानके विना शरीरनाम-कर्मके उदयसे शरीरके अवयवोंका संग्रह हो जानेसे स्वयं ही उत्पन्न होनेवाले जीव सम्मूर्च्छिम कहलाते हैं (६),

નીકળતા જ ગમનાગમન આદિ ક્રિયાઓ કરવાના સામર્થ્યથી યુક્ત પૂર્ણ અવયવવાળા, યા વસ્ત્ર દ્વારા લૂછેલાની પેઠે સાફ ઉત્પન્ન થનારા હાથી, શેળો, સસલા, નોળિયા, ઉંદર આદિ **પોતજ** કહેવાય છે (૨) જરાયુ (નાળ વગેરે મળ ભાગ) સહિત ઉત્પન્ન થનારા મનુષ્ય, મહિષાદિ (ભેંશ વગેરે) **જરાયુજ** કહેવાય છે (૩) મદિરા આદિ રસોમાં ઉત્પન્ન થનારા તથા સ્વાદથી ચલિત અર્થાત્ સડેલા મધુરાદિ રસોમાં ઉત્પન્ન થનારા **રસજ** કહેવાય છે (૪) પ્રસ્વેદથી પેદા થનારા જૂ, લીખ, માકણ, આદિ **સસ્વેદજ** કહેવાય છે (૫) ગર્ભાધાન વિના શરીરનામ-કર્મના ઉદયથી શરીરના અવયવોનો સંગ્રહ થઈ જવાથી સ્વયં ઉત્પન્ન થનારા જીવો **સંમૂર્ચ્છિમ** કહેવાય છે (૬) પૃથ્વીને ભેદીને ઉત્પન્ન

कीडपयगा=कीट-कीडे और पयगा पतंगिये हैं, य=और जा=जो कुंथुपिवीलिया=कुथवा और चींटियाँ हैं, वे सव्वे बेइंदिया=सब द्वीन्द्रिय सव्वे तेइंदिया=सब त्रीन्द्रिय सव्वे चउरिंदिया=सब चार इन्द्रियवाले सव्वे पंचिंदिया=सब पञ्चेन्द्रिय सव्वे तिरिक्खजोणिया=सब तिर्यञ्चगतिवाले सव्वे नेरइया=सब नारकी सव्वे मणुया=सब मनुष्य सव्वे देवा=सब देव सव्वे=पूर्वोक्त सब पाणा=प्राणीमात्र परमाहम्मिया=सुखके अभिलाषी हैं। एसो=यह खलु=निश्चय करके छट्ठो=छठा जीवनिकाओ=जीवनिकाय तसकाउत्ति=" त्रसकाय " ऐसा पवुच्चइ=कहा जाता है ॥६॥

टीका—'से'=अथ=स्थावरपञ्चकनिरूपणानन्तरं पुनः इमे=वक्ष्यमाणभेदाः अनेके=द्वीन्द्रियादिभेदेनाऽनेकप्रकाराः बहव'=एकैकस्यां जातौ प्रचुरा भिन्नयोनयो वा त्रसाः=त्रसनामकर्मोदयात्, त्रस्यन्ति=आतपाद्यभिपीडिता उद्विजन्ते प्रच्छायशीतलं स्थलं प्रयान्ति वेति तथोक्ताः,[१] प्राणन्ति=जीवन्त्येभिरिति, प्राण्यन्ते=जीव्यन्ते प्राणिन एभिरिति वा (प्रोपसृष्टा-दनितेः, अण्यतेर्वा करणे घञ्) प्राणा'=उच्छ्वासादयस्ते सन्त्येषामिति प्राणाः[२] प्राणिन इत्यर्थः, तद्यथा-अण्डे=पक्ष्यादिप्रादुर्भावककोषे जायन्ते=उत्पद्यन्ते इत्यण्डजाः=पक्षि सर्पादय । पोता एव जाता पोतजाः न जराय्वादिना वेष्टिताः पूर्णावयवयोनिनिर्गतमात्रा

१ 'त्रसे. पचाद्यच्' २ 'अर्शआदित्वादच्'

जो ये आबालप्रसिद्ध द्वीन्द्रिय आदिके भेदसे अनेक, एक एक जातिमे बहुतसे अथवा भिन्न-भिन्न योनिवाले आतप (गर्मी) आदिसे पीडित होनेपर त्रास (उद्वेग) पानेवाले, अथवा छायादार शीतल और निर्भय स्थलमे चले जानेवाले, व्यक्त चेतनावान्, उच्छ्वास आदि प्राण वाले त्रस कहलाते हैं, उनके भेद इस प्रकार है—

पक्षी सर्प आदि अण्डज हैं (१), जरायुसे वेष्टित न होकर योनिसे

જે એ આબાલ-પ્રસિદ્ધ દ્વીન્દ્રિયાદિના ભેદે કરીને અનેક, એક એક જાતિમા ઘણા અથવા ભિન્ન-ભિન્ન યોનિવાળા, ગરમી આદિથી પીડિત થતા ત્રાસ (ઉદ્વેગ) પામનારા, અથવા છાયાવાળા શીતળ અને નિર્ભય સ્થળમા ચાલ્યા જનારા, વ્યક્ત ચેતનાવાન્ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણવાળા ત્રસ કહેવાય છે, તેના ભેદ આ પ્રકારે છે —

પક્ષી સર્પ આદિ અંડજ છે (૧) જરાયુથી વેષ્ટિત ન હોઇને યોનિમાથી

तयो विज्ञातारः=वेदितारः=ओघसञ्ज्ञया प्रवृत्तिमन्तः स्वस्वाभिक्रान्तप्रतिक्रान्तादिविषयकाऽवबोधसम्पन्ना भवन्तीत्यर्थः ।

इन्द्रियादिविभागप्रदर्शनेन तानेव परिचाययति 'ये चे' त्यादि, ये च कीटपतङ्गाः=कीटाः=कृमयो गण्डोलकप्रभृतयः, तज्जातीया अन्ये द्वीन्द्रियाश्च, पतङ्गाः=शलभाश्चतुरिन्द्रियास्तज्जातीया भ्रमरादयश्च । याश्च कुन्थु-पिपीलिका, कुन्थवश्च पिपीलिकाश्चेत्यनयोरितरेतरयोगे 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्व तत्पुरुषयो'-रिति परवल्लिङ्गता । कुन्थवः=चलन्त एव परिज्ञेया न स्थिताः सूक्ष्मत्वात् लघुकायजीवाः, पिपीलिकाः=कीटिकास्तज्जातीयास्त्रीन्द्रियाश्च, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियक्रममुल्लङ्घ्य द्विचतुस्त्रीन्द्रियेति व्युत्क्रमेणोपादानमार्षत्वात्सूत्रगतेर्वैचित्र्याच्च । तत सर्वे द्वीन्द्रिया, सर्वे त्रीन्द्रियाः, सर्वे चतुरिन्द्रियाः, सर्वे पञ्चेन्द्रियाः, सर्वे तिर्यग्योनिकाः, सर्वे नैरयिकाः, सर्वे

प्रवृत्ति करनेवाले होते हैं। अनुकूलता और प्रतिकूलताको सामान्यतया ओघसञ्ज्ञासे जानते हैं।

इन्द्रियोंका विभाग करके फिर उनका कथन करते हैं–

कृमि, लट, गण्डोल आदि उनकी जातिवाले द्वीन्द्रिय हैं। शलभ और उनकी जातिके भ्रमर आदि चार इन्द्रियवाले होते हे। कुन्थु और पिपीलिका (चिउटी) तथा उनकी जातिके अन्य जीव तीन इन्द्रियवाले होते हैं। यहां द्वीन्द्रिय बतानेके बाद पहले चार इन्द्रिय फिर तीन इन्द्रियवाले जीव बताये हैं, यह कथन आर्ष होनेसे किया गया है, इसलिए सब द्वीन्द्रिय, सब त्रीन्द्रिय, सब चतुरिन्द्रिय, सब पचेन्द्रिय, सब तिर्यञ्च, सब नारकी, सब

અને પ્રતિકૂળતાને સામાન્ય રીતે ઓઘ-સંજ્ઞાએ કરી જાણે છે

ઇંદ્રિયોના વિભાગ કરીને હવે એનું કથન કરવામાં આવે છે -

કૃમિ (કરમિયા), લટ, અળસીયા વગેરે એની જાતિવાળા દ્વીન્દ્રિય છે તીડ અને તેની જાતિવાળા ભ્રમર આદિ ચાર ઇંદ્રિયવાળા છે કુંથવા અને કીડી તથા તેની જાતિવાળા બીજા જીવો ત્રણ ઇંદ્રિયવાળા હોય છે અહીં દ્વીન્દ્રિય બતાવ્યા પછી પહેલા ચાર ઇંદ્રિયવાળા અને પછી ત્રણ ઇંદ્રિયવાળા બતાવ્યા છે, એ કથન આર્ષ હોવાથી કરેલું છે એ રીતે બધા દ્વીન્દ્રિય, બધા ત્રીન્દ્રિય, બધા ચતુરિન્દ્રિય, બધા પંચેન્દ્રિય, બધા તિર્યંચ, બધા નારકી, બધા મનુષ્ય, બધા દેવ, એ પ્રકારે

रूढः,।) यद्वा समन्ततो देहस्य मूर्च्छनम्=अवयवसंयोगस्तेन निर्वृत्ताः सम्मूर्च्छिमाः= मातापितृसंयोगं विनैव स्वयं समुत्पन्नाः=पिपीलिका मक्षिका मत्कोटकादयः, (आर्षत्वात्सिद्धिः)। उद्भिज्जाः=उद्भिद्य=पृथिवीं भित्त्वा जायन्त इति ते शलभा- दयः। औपपातिकाः=उपपतनमुपपातः (पतधातोर्भावे घञ्) देवनारकाणां प्रसि- द्धगर्भसम्मूर्च्छनरूपजन्मप्रकारद्वयविलक्षण उद्भवस्तेन निर्वृत्ताः औपपातिकाः=देव नारकाः, देवा हि पुष्पशय्यायां नारकाश्च कुम्भ्यादिषु स्वयं समुत्पद्यन्ते। तानेव विशिनष्टि-'येषा'-मित्यादिना, येषां केषाञ्चित्पूर्वोक्तानां प्राणानां=श्वासोच्छ्वा- सादिप्राणवताम्, अभिक्रान्तम्=आभिमुख्येन अभिमुखं वा प्रज्ञापकस्य क्रमणं= गमनमभिक्रान्तं 'भवती' ति शेषः। प्रतिक्रान्तं=प्रति=प्रातिकूल्येन प्रतिकूलं वा प्रज्ञापकस्य क्रमणम्, यद्वा प्रतिक्रान्तं=परावृत्य गमनम्, सङ्कुचितं=सङ्कोचः गात्रा- वकुञ्चनम्, प्रसारितं=करचरणादिप्रसारणं, रुतं=शब्दकरणम्, भ्रान्तम्=इतस्ततो भ्रमणम्, त्रस्तं=त्रासः=उद्वेगः, पलायितं=पलायनं भयादिना स्थानान्तरगमनं 'भवती'-त्यध्याहृतेन प्रत्येकं सम्बन्धः। सर्वं एवैतेऽभिक्रान्तादयः शब्दाः भाव- न्ताः। ते त्रसाः, आगतिगतिविज्ञातारः=आगतिः=आगमनम्, गतिः=गमनं

पृथ्वीको भेदकर उत्पन्न होनेवाले शलभ (टिड्डी) आदि उद्भिज्ज हैं (७), गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मोंसे भिन्न देव और नारकोंके जन्मको उपपात कहते हैं, उससे उत्पन्न होनेवाले देव और नारकी औपपातिक कह- लाते हैं (८), देव शय्या पर और नारकी कुम्भीमें स्वयं उत्पन्न होते हैं।

ये सब पूर्वोक्त जीवोंके प्रज्ञापककी अपेक्षा सामने आना, लौटके पीछे जाना, इसी प्रकार अंगको सिकोडना, हाथ पैर फैलाना, बोलना, भ्रमण करना, उद्विग्न होना, भय आदि कारणोंसे भागना आदि क्रियाएँ होती हैं। वे गमन आगमन आदिके जाननेवाले अर्थात् ओघसंज्ञासे

થનારા શલભ (ટીડ) આદિ ઉદ્ભિજ્જ કહેવાય છે (૭) ગર્ભ અને સમ્મૂર્ચ્છન જન્મોથી ભિન્ન દેવ અને નારકોના જન્મને ઉપપાત કહે છે, તેથી ઉત્પન્ન થનારા દેવ અને નારકી **ઔપપાતિક** કહેવાય છે (૮) દેવ શય્યા પર અને નારકી કુંભીમાં સ્વયં ઉત્પન્ન થાય છે

એ બધા પૂર્વોક્ત જીવોનું પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાએ સામે આવવું, ફરીને પાછા જવું, એ જ રીતે અંગ સંકોચવા, હાથ-પગ ફેલાવવા, બોલવું, ભ્રમવું, ઉદ્વિગ્ન થવું, ભયાદિ કારણે ભાગી જવું, વગેરે ક્રિયાઓ હોય છે તેઓ ગમનાગમન આદિને જાણનારા અર્થાત્ ઓઘ-સંજ્ઞાથી પ્રવૃત્તિ કરનારા હોય છે અનુકૂળતા

योंके दंड=दण्ड-हिंसा आदि-को सयं=स्वयं नेव=न समारंभिज्जा=आरम्भ करे, नेव=न अन्नेहिं=दूसरोंसे दंडं=दण्डको समारंभाविज्जा=आरंभ करावे, दंडं=दण्डका समारंभंतेवि=आरम्भ करते हुओंको भी अन्ने=दूसरोंको न=नहीं समणुजाणेज्जा=भला जाने,जावज्जीवाए=यावज्जीवन-जीवनपर्यन्त तिविहं=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन-करण-पूर्वक (इस प्रकार) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायासे न करेमि=नही करूँगा, न कारवेमि=नही कराऊँगा, अन्नं=दूसरे करंतंपि=करनेवालेकोभी न समणुजाणामि=भला नही समझूँगा। भंते !=हे भदन्त ! तस्स=पूर्वोक्त उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे जुगुप्सा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हू (और) अप्पाणं=दंडसेवन करनेवाले आत्माका वोसिरामि=त्याग करता हूँ ॥६॥

टीका—इत्येषां पूर्वोक्तस्वरूपाणां षण्णां जीवनिकायानां=त्रसस्थावरलक्षणजीवसमुदायानाम्, दण्ड्यते=सारहीनः क्रियते आत्माऽनेनेति दण्डः=प्राणव्यपरोपणादिरूतम्, स्वयम्=आत्मना नैव=न कदापि समारभेत=विदधीत, नैव अन्यैः=स्वव्यतिरिक्तैः कैरपि जनैस्तद्वारेति भावः, दण्डम्=उक्तलक्षणव्यापारं समारम्भयेत्=कारयेत्, दण्डं समारभमाणान्=कुर्वाणान् अपि अन्यान् न समनुजानीयात्=अनुमन्येत। कियत्समयपर्यन्त ? मित्याह—'जावज्जीवाए' इति, अत्र यावच्छब्द परिमाणार्थको मर्यादार्थकोऽवधारणार्थकश्चाव्ययः, जीवनं जीवा ('जीव प्राणधारणे' अस्मात् 'गुरोश्च हलः'(३।३।१०३) इतिपाणिनिवचनेन स्त्रियामकारप्रत्यये स्त्रीत्वाट्टाप् 'ईहा, ऊहे'-त्यादिवत्,) तया जीवया जीवामित्यर्थः ('ततोऽन्यत्रापि दृश्यते') इति वचनबलाद् यावच्छब्दयोगे द्वितीयायां प्राप्तावपि सौत्रत्वात्तृतीया, तेन यावन्मम जीवनं तावदिति, जीवन मर्यादीकरणार्थाच्च केवल मरणकाल

जिससे आत्मा ज्ञान दर्शन चारित्रसे रहित होजाय उस हिंसा आदि व्यापारको दण्ड कहते हैं। मुनि पूर्वोक्त छह कायोंके दण्डका यावज्जीव न स्वयं समारंभ करे न दूसरोंसे करावे और न समारंभ करनेवाले

જેથી આત્મા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રથી રહિત થઈ જાય, એ હિંસા આદિ વ્યાપારને દંડ કહે છે મુનિ પૂર્વોક્ત છ કાયોના દંડનો યાવજ્જીવન પોતે ન સમારંભ કરે, ન બીજાઓ પાસે કરાવે અને સમારંભ કરનારા બીજાઓની ન

मनुष्याः, सर्वे देवाः, सर्वे प्राणाः=पूर्वोक्ताः सर्वप्राणिनः परमधर्माणः=परमं सुखमेव धर्मो येषां ते सुखाभिलाषुका इत्यर्थः 'परमा' इत्यत्र दीर्घ आर्षत्वात्। एषः=अनन्तरोदीरितस्वरूपोऽण्डजादिलक्षणः खलु=निश्चयेन षष्ठ'=स्थावरपञ्चकापेक्षया षष्ठत्वमापन्नः जीवनिकायः=प्राणिसमूहः 'त्रसकाय'-इति प्रोच्यते=कथ्यते त्रसकायनाम्ना स्यात इत्यर्थः ॥६॥

सर्वे प्राणिनः सुखाभिलाषिणो भवन्ति, सुखं च तेषामनारम्भेणैव सम्पद्यतेऽत इदानीमनारम्भोपदेशः-' इच्चेसिं ' इत्यादि ।

मूलम्-इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा, नेवन्नेहिं दंडं समारंभाविज्जा, दंडं समारंभंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥ ७ ॥

छाया—इत्येषां षण्णां जीवनिकायानां नैव स्वयं दण्डं समारभेत, नैवान्यैर्दण्डं समारम्भयेत् , दण्डं समारभमाणानप्यन्यान् न समनुजानीयात् , यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्य भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि।७।

षट्कायका आरम्भ न करनेका उपदेश देते हैं—

सान्वयार्थ —इच्चेसिं=इन पूर्वोक्त छण्हं=छह जीवनिकायाणं=जीवनिका

मनुष्य, सब देव, इस प्रकार पूर्वोक्त सब प्राणी सुखकी अभिलाषावाले हैं। इस छठे जीवनिकायको भगवानने त्रसकाय कहा है ॥ ६ ॥

समस्त प्राणी सुखके अभिलाषी हैं, किन्तु सुखकी प्राप्ति तब ही हो सकती है जब आरंभका परित्याग कर दिया जाय, इसलिए आरंभके त्यागका उपदेश देते हैं-'इच्चेसिं' इत्यादि ।

પૂર્વોક્ત બધા પ્રાણી સુખની અભિલાષાવાળા છે એ છઠા જીવનિકાયને ભગવાને ત્રસ-કાય કહેલ છે (૬)

બધા પ્રાણી સુખના અભિલાષી છે, પરન્તુ સુખની પ્રાપ્તિ ત્યારે થાય છે કે જ્યારે આરંભનો પરિત્યાગ કરવામાં આવે, તેથી આરંભના ત્યાગનો ઉપદેશ આપે છે- इच्चेसिं ઇત્યાદિ

त्रिविधेन कायेने'-त्यन्वये मनोवाक्कायाना प्रत्येकं त्रैविध्य प्राप्नोति तच्चाऽनिष्ट, नह्यत्र मनआदीनि प्रत्येकं त्रैविध्यमर्हन्ति किं तर्हि? तद्व्यापारा एवेति चेन्न,

तदभावे हि 'मनसा वाचा कायेन' इत्येतावन्मात्रोक्तौ 'न करोमि न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामी'-त्यनेन सह 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' (१।३।१०) इति वचनानुरोधेन 'शत्रु मित्र विपत्ति च जय रञ्जय भञ्जये'-त्यादिवत्, 'एचोऽयवायावः' (६।१।७८) इत्यादिवद्वा क्रमिकान्वये 'मनसा न करोमि, वाचा न कारयामि, कायेन कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजा-

---

अर्थ होगा कि 'तीन प्रकारके मनसे, तीन प्रकारके वचनसे और तीन प्रकारके कायसे' आरम्भ न करे। अर्थात् मन वचन कायके तीन तीन भेद होंगे। ऐसा अर्थ शास्त्रविरुद्ध है-शास्त्रोंमें भगवानने मन आदिके तीन तीन भेद नहीं बताये हैं, किन्तु मन आदिके व्यापारोंको तीन प्रकारका बताया है।

उत्तर-यह शंका ठीक नहीं है। यदि 'त्रिविधेन' न कहकर केवल 'मनसा वाचा कायेन' कह देते तो अर्थ ठीक न बैठता, क्योंकि जैसे कोई कहे कि "हेय और उपादेयको त्यागो और ग्रहण करो।" तो इस वाक्यमें क्रमसे 'हेय' के साथ 'त्यागो'का सम्बन्ध होजाता है और 'उपादेय'के साथ 'ग्रहण करो'का। इसी प्रकार 'चोलपट्टा चादर पहनो, ओढो' कहनेसे यह अर्थ होता है कि "चोलपट्टा पहनो-और चादर ओढो।" इसीप्रकार 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) पद न रखते

મનથી, ત્રણ પ્રકારના વચનથી, અને ત્રણ પ્રકારની કાયાથી' આરંભ ન કરે અર્થાત્ મન વચન કાયાના પણ ત્રણ ભેદ બનશે એવો અર્થ શાસ્ત્રવિરૂદ્ધ છે શાસ્ત્રમા ભગવાને મન આદિના ત્રણ ભેદ બતાવ્યા નથી, પરન્તુ મન આદિના વ્યાપારોને તે ત્રણ પ્રકારના બતાવ્યા છે

ઉત્તર-એ શંકા બરાબર નથી જો त्रिविधेन ન કહીને કેવળ मनसा वाचा कायेन કહ્યુ હોત તો અર્થ બરાબર બંધ બેસત નહિ કારણ કે જેમ કોઇ કહે કે "હેય અને ઉપાદેયને ત્યાગો અને ગ્રહણ કરો" તો એ વાકયમા ક્રમાનુસાર 'હેય'ની સાથે 'ત્યાગ'નો સંબંધ થઇ જાય છે અને 'ઉપાદેય'ની સાથે 'ગ્રહણ કરો'નો એજ રીતે 'ચોલપટ્ટો ચાદર પહેરો ઓઢો' કહેવાથી એ અર્થ થાય છે કે 'ચોલપટ્ટો પહેરો અને ચાદર ઓઢો' એ રીતે त्रिविधेन (ત્રણ પ્રકારે)

एवाऽपितु ततः मागपीति, जीवन एव न तदुत्तर परलोकेऽपीत्यर्थः। दण्ड किंविध? मित्याह-त्रिविध=तिस्रो विधाः-प्रकारा यस्य स तम्=कृत-कारिताऽनुमत-रूपम्, तत्र कृत=स्वतन्त्रेणाऽऽत्मना सम्पादितम्, कारितम्=अन्य (व्यक्त्यन्तर)-द्वारा निष्पादितम्, अनुमत=सावद्यव्यापारमारभमाणस्य 'त्व साधु करोषि, एवमेव कुर्वन्नास्व' इत्यादिना प्रोत्साहितम्, त्रिविधेन=प्रकारत्रयविशिष्टेन करणभूतेन, केन? त्याह-'मनसा वाचा कायेने'ति।

ननु त्रिविधेनेत्यनेन यत्प्रकारत्रय श्रूयते तत् 'मनसे' त्यादिना प्रतिपदमेवोक्तम्, एव सति त्रिविधेनेत्युपादान पौनरुक्त्यदोषग्रस्त भवति। यद्वा 'त्रिविधेने'ति विशेषण 'मनसे'-त्यादेरेव सभवति, ततश्च 'त्रिविधेन मनसा, त्रिविधया वाचा,

दूसरोंकी अनुमोदना करे। दण्ड तीन प्रकारका है-(१) कृत, (२) कारित, (३) अनुमोदित।

कृत-अपनी इच्छासे स्वय करना।

कारित-दूसरे व्यक्तिसे कराना।

अनुमोदित-जो सावद्य व्यापार कर रहा हो उसे अच्छा समझना।

यह सब सावद्य व्यापार तीन करण तीन योगसे न करे। वे तीन योग ये हैं-(१) मन, (२) वचन, (३) काय।

प्रश्न-सूत्रमें 'त्रिविधेन' (तीन प्रकारसे) कहा ही है फिर 'मनसा' (मनसे) 'वाचा' (वचनसे) 'कायेन' (कायसे) कहनेसे पुनरुक्ति (कहे हुए को पुनः कहना) होती है। या 'तीन प्रकारसे' यह विशेषण 'मन, वचन, काय' का ही हो सकता है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो इसका

અનુમોદના કરે દડ ત્રણ પ્રકારને છે (૧) કૃત, (૨) કારિત, (૩) અનુમોદિત

કૃત-પોતાની ઈચ્છાથી પોતે કરવુ

કારિત-બીજી વ્યકિત પાસે કરાવવુ

અનુમોદિત-જે સાવદ્ય વ્યાપાર કરી રહ્યો હોય, તેને સારૂ જાણવુ

એ બધા સાવદ્ય વ્યાપાર ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી ન કરે તે ત્રણ યોગ, આ છે-(૧) મન, (૨) વચન, (૩) કાયા

પ્રશ્ન-સૂત્રમા त्रिविधेन (ત્રણ પ્રકારે) કહેલુ જ છે, પછી मनसा (મનથી), वाचा (વચનથી,) कायेन (કાયાથી) કહેવાથી પુનરૂકિત (કહેલાને ફરી કહેવુ) થાય છે આ 'ત્રણ પ્રકારે' એ વિશેષણ 'મન, વચન, કાયા' નુ જ હોઇ શકે છે જો એમ માનવામા આવે તો એનો અર્થ એવો થશે કે 'ત્રણ પ્રકારના

दण्डादित्यर्थः, अत्रापादानस्य शेषत्वविवक्षया षष्ठी । भते ' भदन्त '' भन्दते= कल्याण सुख वा प्रापयतीति भदन्तः, (' अन्तर्भावितण्यर्थाद् 'भदि कल्याणे सुखे च ' त्यस्माद्धातो' ' भन्देर्नलोपश्च '-त्यौणादिकसूत्रेण झच् धातुनकारलोपयोः 'झोऽन्त ' इति झस्यान्तादेश ।) यद्वा भव=ससारमन्तयति=दूरीकरोतीति, (-' कर्मण्यण् (३ । २ । १) इत्यण् शकन्ध्वादेराकृतिगणत्वात्पररूपे पृषोदरादित्वाद्भस्य दः ।) अथवा भवस्य=समारस्याऽन्तो=ऽवसान येनेति व्यधिकरणपदो बहुव्रीहि पररूपादेशो प्राग्वत् । भयस्य=जन्म-जरा-मरण-निमित्तकस्याऽन्तो= नाशो येनेति भयान्तः, स एव भदन्त इति वा, पृषोदरादित्वादेकस्याकारस्य लोपो यस्य च दः । अपिवा भय ददतीति भयदाः=भोगास्तानन्तयतीति कर्मण्यणिति सूत्रविहिताऽणन्त-भयदान्त-शब्दस्य पृषोदरादित्वाद् भदन्त इति ।

यद्वा दान्त भय येन स भयदान्तः 'निष्ठान्तस्य परनिपात आहिताग्न्यादिपाठात् ' स एव भदन्तः ' यलोप-ह्रस्वौ पृषोदरादिपाठकृतौ ।

अथच भान्ति=दीप्यन्ते (समुल्लसन्तीत्यर्थात्) स्वस्वविषयेष्विति भानि= इन्द्रियाणि, तानि दान्तानि येन स भदान्त', स एव भदन्तः (निष्ठान्तपरनिपातः प्राग्वत् , पृषोदरादित्वादाकारस्य ह्रस्व.) । यद्वा भाति=सम्यग्ज्ञान-दर्शन-

---

व्याकरणमें 'भते' शब्द अनेक प्रकारसे सिद्ध होता है, इसलिए उसके अर्थ बहुतसे हैं। जैसे (१) कल्याण और सुखको देनेवाले, (२) ससारका अन्त करनेवाले, (३) जिनकी सेवा भक्ति करनेसे ससारका अन्त हो जाता है, (४) जन्म-जरा-मरणके भयका नाश करनेवाले, (५) भोगोंको त्याग देनेवाले, (६) भयको दमन करनेवाले निर्भय, (७) इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, (८) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन

વ્યાકરણમા ભંતે શબ્દ અનેક પ્રકારે સિદ્ધ થાય છે, તેથી એના અર્થ ઘણા છે જેવા કે (૧) કલ્યાણ અને સુખને આપનાર, (૨) સસારનો અત કરનાર, (૩) જેની સેવાભક્તિ કરવાથી સસારનો અત આવી જાય છે, (૪) જન્મ જરા મરણના ભયનો નાશ કરનાર, (૫) ભોગોનો ત્યાગ કરનાર, (૬) ભયનું દમન કરનાર-નિર્ભય (૭) ઇંદ્રિયોનું દમન કરનાર, (૮) સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યગ્દર્શન

नामी'-त्यनभीष्टोऽर्थ आपद्येत तद्वारणाय त्रिविधेनेत्युक्तम् , तेन मनसा न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि; वाचा न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि; एवं कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामीत्यर्थो भवति, यद्वा पूर्वं सामान्यतस्त्रिविधेनेत्युक्त्वा केन विधिनेऽति जिज्ञासाया तत्प्रकारान् दर्शयितु विशेषेणाऽऽह- 'मनसे'-त्यादीति नास्ति पौनरुक्त्यदोषाऽऽपात । केचित् 'मनसा वा वाचा वा कायेन वेति विकल्पसग्रहार्थं 'त्रिविधेने'-त्युक्तमित्यूचिरे । 'न कारयामी' त्यत्रा-'ऽन्येने'ति-शेषः पूरणीयः । न समनुजानामि=नानुमन्ये । तस्येति-तस्मात्=पूर्वोक्तरूपा

तो ऐसा अनिष्ट अर्थ होजाता कि-मनसे न करे, वचनसे न करावे और कायसे अनुमोदना न करे। इस अनिष्ट अर्थका परिहार करनेके लिए 'त्रिविधेन' पद रखनेसे यह अर्थ हुआ कि-(१) मनसे न करूँ, (२) न कराऊँ, (३) न करते हुए को भला जानूँ। (४) वचनसे न करूँ, (५) न कराऊँ, (६) न करते हुएको भला जानूँ। (७) कायसे न करूँ, (८) न कराऊँ, (९) न करनेवालेको भला जानूँ।

अथवा पहले सामान्य रूपसे कहा है कि तीन प्रकारसे न करूँ, परन्तु तीन प्रकार कौन-कौनसे हैं ? ऐसी जिज्ञासा होने पर विशेष बता दिया कि "मनसा वाचा कायेन" ये तीन प्रकार हैं, इसलिए पुनरुक्ति आदि कोई दोष नहीं है।

अथवा मन वचन और कायके निमित्तसे होनेवाले तीन भेदोंका संग्रह करनेके लिए 'त्रिविधेन' पद रखा है।

શબ્દ ન રાખ્યો હોત તો એવો અનિષ્ટ અર્થ થઈ જાત કે મનથી ન કરો, વચનથી ન કરાવો અને કાયાથી ન અનુમોદના કરો. અનિષ્ટ અર્થનો પરિહાર કરવાને માટે त्रिविधेन શબ્દ આપ્યો છે, એમ त्रिविधेन શબ્દ આપવાથી એવો અર્થ થયો કે-(૧) મનથી ન કરૂ, (૨) ન કરાવુ, (૩) ન કરનારને ભલો જાણુ, (૪) વચનથી ન કરૂ, (૫) ન કરાવુ, (૬) ન કરનારને ભલો જાણુ, (૭) કાયાથી ન કરૂ, (૮) ન કરાવુ, (૯) ન કરનારને ભલો જાણુ

અથવા પહેલા સામાન્યરૂપે કહ્યુ છે કે 'ત્રણ પ્રકારે ન કરૂ ' પરન્તુ ત્રણ પ્રકાર કયા કયા છે ? એવી જિજ્ઞાસા થતા વિશેષ બતાવી આપ્યુ છે કે मनसा वाचा कायेन' એ ત્રણ પ્રકાર છે એથી કરીને પુનરૂક્તિ આદિ કોઇ દોષ થતો નથી

અથવા મન વચન અને કાયાના નિમિત્તે થનારા ત્રણ ભેદોનો સગ્રહ કરવાને માટે त्रिविधेन શબ્દ રાખ્યો છે

चतुर्थी [1]नेष्यते, 'निन्दामि, गर्हे' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धस्तेन-अतीतदण्डसम्बन्धिनीं स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकीं च निन्दा करोमीति निर्गलितोऽर्थः, तस्येत्यत्र सम्बन्ध-सामान्ये षष्ठ्याः प्रागुक्तत्वात् । यद्वा 'आत्मान'-मित्यस्यैव मध्यमणिन्यायाद् देहलीदीपन्यायाद्वा व्युत्सृजामीत्यनेन 'निन्दामि, गर्हे' इत्याभ्या च सम्बन्धस्तेन भूतकालिकदण्डविधायिनमप्रशस्तमात्मान जुगुप्से व्युत्सृजामि=विविधाऽनित्यादिभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थः ॥७॥

१ "क्रुधद्रुहेर्ष्याऽसूयार्थाना य प्रति कोपः" (१।४।६४) इत्यत्र शब्देन्दुशेखरे 'न-ह्यकुपितः क्रुध्यती'-ति भाष्येण प्ररूढकोप एव क्रोध इति कुपेस्तदर्थत्वाभावेन न तद्योग इदम् 'कुप्यति कस्मैचि'-दित्यासा वेवेति ।

इसका अर्थ यह होता है कि-हे भगवन् ! अतीत कालमे दण्ड (सावद्य व्यापार) करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जैसे घरकी देहलीपर दीपक रखनेसे भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है इसको 'देहली-दीपक' न्याय कहते हैं। कहा भी है-"परै एक पद बीचमें, दुहु दिस लागै सोय । सो है 'दीपक देहरी', जानत है सब कोय ॥१॥" बीचमें मणि जड देनेसे दोनो ओर मणिका प्रकाश होता है, यह 'मध्यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण' का दोनोंके साथ सम्बन्ध होता है । अर्थात् सावद्य व्यापारवाली आत्माको त्यागता हूँ और उसकी निन्दा करता हूँ, तथा गर्हा करता हूँ ॥७॥

એનો અર્થ એ થાય છે કે- હે ભગવન્ ! અતીત કાળમા દડ (સાવદ્ય વ્યાપાર) કરનારા આત્મા (આત્મપરિણતિ)ને અનિત્ય આદિ ભાવના ભાવીને ત્યાગુ છુ, નિંદુ છુ, ગર્હુ છુ, જેમ ઘરની ડહેલી (બારણુ) પર દીવો રાખવાથી અદર પણ પ્રકાશ થાય છે અને બહાર પણ પ્રકાશ થાય છે તેને 'દેહલી-દીપક ન્યાય' કહે છે કહ્યુ છે કે- "પરૈ એક પદ બીચમે, દુહુ દિસ લાગે સોય, સો હૈ 'દીપક-દેહરી,' જાનત હૈ સબ કોય (૧)" વચમા મણિ જડી દેવાથી બેઉ બાજુ મણિનો પ્રકાશ થાય છે તેને 'મધ્ય-મણિ ન્યાય' કહે છે, એ રીતે અપ્પાણ નો બેઉની સાથે સબધ થાય છે અર્થાત્ સાવદ્ય-વ્યાપારવાળા આત્માને ત્યાગુ છુ અને તેની નિંદા કરૂ છુ, તથા ગર્હા કરૂ છુ (૭)

चारित्रैर्दीप्यते इति भान्तः ('भा दीप्तौ' अस्मादौणादिकोऽन्तप्रत्ययः) स एव भदन्तः, ('सिद्धिः पृषोदरादित्वात्')।

(एव यथामति व्युत्पत्त्यन्तरेष्वपि निरुक्तोक्तशाकटायनादिप्रतिपादितरीत्या साधनप्रक्रिया बोद्धव्या।) तत्सम्बोधने हे भदन्त !=हे भगवन् ! अनेन सम्बोधन निर्देशेन व्रतप्रत्याख्यानादिकः सर्वोऽपि क्रियाकलापो गुरुसाक्षिक एव विधातव्य इति बोधितम्। प्रतिक्रामामि=प्रतिनिवर्ते भूतदण्डात्पृथग्भवामीत्यर्थः। यत्तु टीकान्तरेषु 'पडिक्कमामी'-त्यस्य 'प्रतिक्रामामी'ति च्छायोपलभ्यते सा प्रमाद विजृम्भितैव, ('क्रमः परस्मैपदेषु' (७।३।७६) इति पाणिनिवचनबलेन क्रमे रुपधादीर्घस्य दुर्वारत्वात्।) निन्दामि=जुगुप्से। गर्हे=प्रजुगुप्से इत्येवार्थः।

ननु तर्हि निन्दा-गर्हयोः 'कुत्सा निन्दा च गर्हणे'-ति कोशरीत्या पर्यायत्वेन पौनरुक्त्य वज्रलेपायितमेवेति चेन्न, यतः स्वसाक्षिकी निन्दा, गुरुसाक्षिकी च गर्हेति परस्पर भवति भेदः। यद्वा 'निन्दा=साधारणी कुत्सा, गर्हा=सैवाति भूयसी'-ति परस्परमर्थभेदान्नास्ति पर्यायता, यथा प्रवृद्ध एव कोपः क्रोधो न साधारण इति कोप-क्रोधयोः पर्यायत्वाभावेन क्रुध्यर्थत्वाभावात् कुपधातुयोगे

और सम्यक्चारित्रसे दीपनेवाले। इन सबको 'भंते' कहते हैं। इसी प्रकार और अर्थ भी समझने चाहिए। 'भदन्त!' इस सम्बोधनसे यह प्रगट होता है कि समस्त क्रियाएँ गुरु महाराजकी साक्षीसे ही करनी चाहिए।

हे भगवन्! मैं दण्डसे निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ, और गर्हा करता हूँ। कोशोंमे निन्दा और गर्हा शब्दका एक ही अर्थ है इसलिए पुनरुक्ति होती है, ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि निन्दा आत्मसाक्षीसे होती है और गर्हा गुरुसाक्षीसे होती है। अथवा निन्दा साधारण कुत्साको कहते हैं और गर्हा अत्यन्त निन्दाको कहते हैं।

અને સમ્યક્-ચારિત્રથી દીપ્તિમાન, એ બધાને ભંતે કહે છે એજ રીતે બીજા અર્થો પણ સમજી લેવા 'ભદન્ત' એ સંબોધનથી એમ પ્રકટ થાય છે કે બધી ક્રિયાઓ ગુરૂ મહારાજની સાક્ષીએ જ કરવી જોઈએ

હે ભગવન્! હું દંડથી નિવૃત્ત થઉં છું, નિન્દા કરૂં છું અને ગર્હા કરૂં છું શબ્દકોશોમાં 'નિન્દા' અને 'ગર્હા' શબ્દનો એકજ અર્થ છે, તેથી પુનરૂક્તિ થાય છે, એમ ન સમજવું કારણ કે નિંદા આત્મસાક્ષીએ થાય છે અને ગર્હા ગુરૂ સાક્ષીએ થાય છે અથવા નિંદા સાધારણ કુત્સાને કહે છે અને ગર્હા અત્યંત નિંદાને કહે છે

परिमाणविशेषे तादात्म्यसम्बन्धेन (अभेदसम्बन्धेन) अन्वये सति द्रोणाभिन्न परिमाणमिति बोधः, ततश्च प्रत्ययार्थपरिमाणस्य परिच्छेद्य-परिच्छेदकभावेन व्रीहिपदार्थेऽन्वये द्रोणाभिन्न यत्परिमाण तत्परिच्छिन्नो (तत्परिमितो) व्रीहिरिति बोधः, अत्र प्रत्ययार्थस्य व्रीहावन्वयप्रदर्शन प्रकृतानुपयोग्यपि प्रसङ्गतः कृतम्। यद्वा-यथा 'उपाध्यायो मुनि'-रित्यत्रोपाध्यायशब्दार्थे उपाध्यायपदधारिणि मुनिविशेषे मुनिशब्दार्थस्य मुनिसामान्यस्य तादात्म्यसम्बन्धेन (अभेदसम्बन्धेन) अन्वयः, तथा च-उपाध्यायाभिन्नो मुनिरिति बोधः, तत्र विशेषत्वेन विवक्षित-पदार्थे उपाध्यायपदधारिणि मुनिविशेषे मुनिशब्दार्थस्य मुनित्वस्य सत्त्वादुभयोः

द्वारा अन्वय होता है। इस अन्वयसे "चार आढकरूप परिमाण" (एक प्रकारका तौल) ऐसा बोध होता है। उस प्रत्ययार्थ परिमाण-सामान्यको परिच्छेद्य-परिच्छेदक-भाव सम्बन्धसे व्रीहि पदार्थमें अन्वय होनेसे 'उस परिमाणसे परिमित (मापा हुआ) व्रीहि" ऐसा बोध होता है। यहा व्रीहिमें अन्वय प्रसगवश दिखलाया गया है। अथवा—

"उपाध्यायो मुनिः" यहाँ उपाध्याय शब्दका अर्थ है उपाध्याय-पदधारी मुनिविशेष (१), तथा मुनि शब्दका अर्थ मुनिसामान्य (२), अतः जो उपाध्याय है वही मुनि है, अर्थात् मुनिसे अन्य उपाध्याय नहीं है इसलिए उपाध्याय शब्दार्थको मुनि शब्दार्थके साथ अभेद सम्बन्धसे अन्वय होता है तो 'उपाध्यायसे अभिन्न मुनि' ऐसा बोध होता है। यहा विशेष याने उपाध्यायपदधारी (व्यक्ति) में मुनिके

અન્વયથી "ચાર આઢક રૂપ પરિમાણુ" (એક પ્રકારનો તોલ) એવો બોધ થાય છે એ પ્રત્યયાર્થ-પરિમાણુ-સામાન્યનો પરિચ્છેદ્ય-પરિચ્છેદક-ભાવ સંબંધથી વ્રીહિ પદાર્થમા અન્વય થવાથી "એ પરિમાણુથી પરિમિત (માપેલા) વ્રીહિ" એવો બોધ થાય છે અહીં વ્રીહિમા અન્વય પ્રસંગવશ બતાવવામા આવ્યો છે અથવા—

ઉપાધ્યાયો મુનિ' એમા ઉપાધ્યાય શબ્દનો અર્થ છે-ઉપાધ્યાય પદધારી મુનિ-વિશેષ (૧), તથા મુનિ શબ્દનો અર્થ છે મુનિ-સામાન્ય (૨), એટલે જે ઉપાધ્યાય છે તેજ મુનિ છે, અર્થાત્ મુનિથી જૂદો ઉપાધ્યાય નથી એથી કરીને ઉપાધ્યાય શબ્દાર્થનો મુનિ શબ્દાર્થની સાથે અભેદ સંબંધથી અન્વય થાય છે, અને તેથી 'ઉપાધ્યાયથી અભિન્ન મુનિ' એવો બોધ થાય છે એમા વિશેષ કરીને ઉપાધ્યાય-પદધારી (વ્યક્તિ)મા મુનિના સામાન્ય ધર્મરૂપ મુનિત્વનું

दण्डपरित्यागो द्विविधः सामान्यविशेषभेदात्, सामान्यतो दण्डपरित्यागोऽहिंसासामान्यम्, विशेषतो दण्डपरित्यागश्च पञ्च महाव्रतानि ।

ननु पञ्चसु महाव्रतेषु सत्यादिव्रतानामहिंसातो भेदः सुस्पष्टं प्रतीयत इति कथमहिंसया पञ्चानां महाव्रतानां सामान्य-विशेषभाव उपपद्येत? सामान्यविशेषभावो हि विशेषत्वेन विवक्षितपदार्थस्य सामान्यधर्माक्रान्तत्वादेव सम्पद्यते, अत एव 'व्याप्यव्यापकभावापन्नयोः सामान्यविशेषभावः' इत्युद्घोषः, यथा 'द्रोणो व्रीहि' रित्यत्र प्रथमाविभक्त्यर्थस्य परिमाणसामान्यस्य द्रोणशब्दार्थे चतुराढकात्मक

दण्डपरित्याग दो प्रकारका है-(१) सामान्य-दण्डपरित्याग और (१) विशेष दण्डपरित्याग। अहिंसा-सामान्यको सामान्य-दण्डपरित्याग कहते हैं और पच महाव्रतोंको विशेष दण्डपरित्याग कहते हैं।

प्रश्न-पांच महाव्रतोंमें सत्य आदि महाव्रतोंका अहिंसासे स्पष्ट भेद प्रतीत होता है, फिर अहिंसाके साथ सत्य आदि महाव्रतोंका सामान्य-विशेषभाव कैसे हो सकता है? सामान्य-विशेषभाव वही होता है जिसको विशेष बनावें उसमें सामान्य धर्म भी पाया जाय। इसीलिए यह कहा गया है कि 'व्याप्य-व्यापकभाव जिनमें होता है उन्हींमें सामान्य विशेषभाव पाया जाता है' जैसे "द्रोणो व्रीहिः" इस वाक्यमें प्रथमा विभक्तिका अर्थ परिमाण-सामान्य है। इस परिमाण-सामान्यका द्रोण शब्दके अर्थ चार आढकरूप परिमाण-विशेषमें अभेद सम्बन्धके

દડપરિત્યાગ બે પ્રકારનો છે (૧) સામાન્ય-દડપરિત્યાગ અને (૨) વિશેષ-દડપરિત્યાગ અહિંસાસામાન્યને સામાન્ય દડ-પરિત્યાગ કહે છે, અને પચ મહાવ્રતોને વિશેષ-દડપરિત્યાગ કહે છે

પ્રશ્ન—પાચ મહાવ્રતોમા સત્ય આદિ મહાવ્રતોનો અહિંસાથી સ્પષ્ટ ભેદ પ્રતીત થાય છે, તો પછી અહિંસાની સાથે સત્ય આદિ મહાવ્રતોનો સામાન્ય વિશેષ-ભાવ કેવી રીતે હોઇ શકે છે? સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ તેમા હોઇ શકે છે કે જેને વિશેષ બતાવે તેમા સામાન્ય ધર્મ પણ મળી આવે તેથી કરીને એમ કહેવામા આવ્યુ છે કે 'જેમા વ્યાપ્ય-વ્યાપકભાવ હોય છે તેમા જ સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ મળી આવે છે' જેમકે द्रोणो व्रीहि એ વાક્યમા પ્રથમા વિભક્તિનો અર્થ પરિમાણ-સામાન્ય છે એ પરિમાણ-સામાન્યનો, દ્રોણ શબ્દના અર્થ ચાર આઢક રૂપ પરિમાણ-વિશેષમા અભેદ સબધની દ્વારા અન્વય થાય છે એ

दितो विशेषत्व प्रतीयते, यथा च नीलघटो घट इत्यादौ नीलगुणविशिष्टत्वेन नीलघटे घटसामान्यापेक्षया विशेषत्व विद्यते, विशेषत्व चात्र व्याप्यत्वमेव, तथा प्रकृते पञ्चमहाव्रतलक्षणेऽहिंसाविशेषे कथ विशेषत्वमिति चेच्छृणु–

प्राणातिपातविरमणत्वादिना व्याप्यधर्मेण पञ्चसु महाव्रतेषु विशेषत्व सुवचमेवेति ।

ननु तर्हि अहिंसासामान्यस्य किं लक्षण यत् पञ्चसु महाव्रतेषु व्यापक भवे ? दिति चेद् उच्यते–षड्जीवनिकायेषु दण्डसमारम्भवर्जनत्वमेवाऽहिंसा-सामान्यस्य

आढकरूप परिमाणमें चार आढकत्व आदि धर्मसे विशेषता प्रतीत होती है। अथवा "जो नीला घडा है वह घडा ही है" इत्यादि वाक्यों में अन्य घडोंकी अपेक्षा नीले घडेमे नीलेपनसे विशेषता पाई जाती है और वह विशेषता व्याप्यतारूप है, वैसे पच महाव्रतरूप अहिंसा-विशेषमें विशेषता किस धर्मके कारण है ?।

उत्तर–प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्यधर्मोंसे पाच महाव्रतोंमें विशेषता पाई ही जाती है। अर्थात् जहाँ प्राणातिपातविरमणत्व आदि व्याप्य धर्म पाये जाते हैं वहाँ अहिंसा सामान्यका अस्तित्व रहता ही है।

प्रश्न–अहिंसासामान्यका लक्षण क्या है ? जिससे वह पाच महाव्रतोंमें व्यापक होजावे ?।

उत्तर–षड्जीवनिकायोंमें दण्डका परित्याग करना अहिंसा-सामान्यका

પરિમાણમા ચાર આઢકત્વ આદિ ધર્મથી વિશેષતા પ્રતીત થાય છે, અથવા 'જે નીલો ઘડો છે તે ઘડોજ છે' ઇત્યાદિ વાકયોમા અન્ય ઘડાની અપેક્ષાએ નીલા ઘડામા નીલાપણાથી વિશેષતા મળી આવે છે અને તે વિશેષતા વ્યાપ્યતારૂપ છે તેમ પચમહાવ્રતરૂપ અહિંસા–વિશેષમા વિશેષતા કયા ધર્મને કારણે છે ?

ઉત્તર—પ્રાણુતિપાતવિરમણત્વ આદિ વ્યાપ્ય-ધર્મોથી પાચ મહાવ્રતોમા વિશેષતા મળી આવે છે અર્થાત્ જ્યા પ્રાણાતિપાતવિરમણત્વ આદિ વ્યાપ્ય ધર્મ મળી આવે છે ત્યા અહિંસા–સામાન્યનું અસ્તિત્વ રહેલુ જ હોય છે

પ્રશ્ન—અહિંસા–સામાન્યનું લક્ષણુ કર્યુ છે કે જેથી તે પાચ મહાવ્રતોમા વ્યાપક થઇ જાય છે ?

ઉત્તર—ષડ્જીવનિકાયમા દડનો પરિત્યાગ કરવો એ અહિંસા–સામાન્યનુ

पदार्थयोः सामान्य विशेषभावोऽभेदान्वयश्च भवति, तथा प्रकृतेऽन्वयो न सम्भवति, सत्यादिमहाव्रतानामहिंसातः सुस्पष्टभेदप्रतीतिबलादभेदान्वयस्य बाधादिति चेन्न-

पञ्चानामपि महाव्रताना वस्तुतोऽहिंसात्मकत्वात् सामान्य-विशेषभावः सुबोध एव। अहिंसासामान्यस्वरूपावदातकरणाय शिष्याणां सुस्पष्टप्रतिपत्तये च दण्ड परित्यागस्य द्वैविध्य कृतम्, एकैवाऽहिंसा पञ्चधा विभाजिता।

ननु यथा 'द्रोणो व्रीहि'रित्यादौ द्रोणादिशब्दार्थचतुराढकात्मकपरिमाणे चतुराढकत्वादिधर्मेण परिमाणत्वादिसामान्यधर्माक्रान्तात् प्रत्ययार्थपरिमाण-

सामान्यधर्म सुनित्वका अस्तित्व पाया जाता है, अत एव दोनों पदार्थोंका सामान्य-विशेषभावमें अभेदान्वय होता है।

अर्थात् जैसे इन दो उदाहरणोंसे अभेदमें सामान्य-विशेषभाव पाया जाता है, वैसा अहिंसाके साथ सत्यादि व्रतोंका अभेद नहीं है, अत एव सामान्य-विशेषभाव नहीं हो सकता, क्योंकि उनका स्पष्ट भेद, प्रतीत होता है।

उत्तर-पाँचों महाव्रत वास्तवमें अहिंसास्वरूप हैं, इसलिये अहिंसासे भिन्न नहीं हैं। अहिंसाके स्वरूपको स्पष्ट करनेके लिए और शिष्योंको स्पष्ट बोध करानेके लिए दण्डपरित्यागके दो भेद कर दिये हैं, अर्थात् एक ही अहिंसाको पांच महाव्रतोंमें विभक्त कर दिया है।

प्रश्न-जैसे "द्रोणो व्रीहिः" इत्यादि वाक्योंमें परिमाणत्व आदि सामान्यधर्मसे युक्त प्रत्ययार्थ परिमाण-सामान्यसे द्रोण शब्दार्थ चार

અસ્તિત્વ મળી આવે છે, તેથી કરીને બેઉ શબ્દોના અર્થોનો સામાન્ય-વિશેષ ભાવમા અભેદાન્વય થાય છે

અર્થાત્-જેમ એ બેઉ ઉદાહરણોથી અભેદમા સામાન્ય-વિશેષ ભાવ મળી આવે છે, તેમ અહિંસાની સાથે સત્યાદિ વ્રતોનો અભેદ નથી, તેથી સામાન્ય-વિશેષ-ભાવ થઇ શકતો નથી, કારણ કે એનો સ્પષ્ટ ભેદ પ્રતીત થાય છે

ઉત્તર—પાચે મહાવ્રત વસ્તુતાએ અહિંસાસ્વરૂપ છે, તેથી કરી અહિંસાથી ભિન્ન નથી અહિંસાના સ્વરૂપને સ્પષ્ટ કરવાને માટે અને શિષ્યોને સ્પષ્ટ બોધ કરાવવાને માટે દંડ પરિત્યાગના બે ભેદ કરવામા આવ્યા છે, અર્થાત્ એક જ અહિંસાને પાચ મહાવ્રતોમા વિભકત કરી નાખવામા આવી છે

પ્રશ્ન—જેમ द्रोणो व्रीहि ઇત્યાદિ વાકયોમા પરિમાણત્વ આદિ સામાન્ય ધર્મથી યુકત પ્રત્યયાર્થ પરિમાણ-સામાન્યથી દ્રોણ શબ્દાર્થ ચાર આઢકરૂપ

" आत्मपरिणामहिंसनहेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत् ।
अनृतवचनादिकेवल,-मुदाहृत शिष्यवोधाय ॥ २ ॥ "

किञ्च—

" एग चिय इत्थ वय, निदिट्ठ जिणवरेहिं सव्वेहिं ।
पाणाइवायविरमण,-मवसेसा तस्स रक्खट्ठा ॥ ३ ॥ "

अतश्चादौ प्राणातिपातविरमणाख्य प्रथम महाव्रतमाह-'पढमे०' इत्यादि ।

मूलम्—पढमे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वं भंते! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा बायर वा तस वा थावर वा नेव सय पाणे अइवाइज्जा, नेवन्नेहि पाणे अइवायाविज्जा, पाणे अइवायतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि, न कारवेमि, करतपि अन्न न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण

"असत्य-वचन बोलने आदिसे भी आत्माके परिणामोंकी हिंसा होती है, अतः असत्य आदि सभी हिंसारूप है। असत्य आदिका अलग कथन शिष्योंको स्पष्ट समझानेके लिए किया गया है ॥२॥"

तथा—

"भगवानने एक प्राणातिपातविरमणको ही मुख्य कहा है अन्य व्रत उसीकी रक्षाके लिए हैं ॥३॥"

इसलिये पहले-पहल प्राणातिपात-विरमण महाव्रतका कथन करते हैं- "पढमे भंते०" इत्यादि ।

"અસત્ય વચન બોલવા વગેરેથી પણ આત્માના પરિણામોની હિંસા થાય છે, તેથી અસત્ય આદિ બધા હિંસારૂપ છે અસત્ય આદિનું જૂદુ કથન શિષ્યોને સ્પષ્ટ સમજાવવાને માટે કરવામા આવ્યુ છે " (૨)

તથા—

" ભગવાને એક પ્રાણુતિપાત વિરમણને જ મુખ્ય કહ્યુ છે, અન્ય વ્રતો તેની રક્ષાને માટે છે " (૩)

તેથી કરીને સૌથી પહેલા પ્રાણુતિપાત-વિરમણ મહાવ્રતનું કથન કરે છે— પઢમે ભંતે૦ ઈત્યાદિ

लक्षणम् , तच्च पञ्चसु महाव्रतेषु प्रत्येकं समस्तीति लक्षणसमन्वयो बोध्यः, तथा च महाव्रतान्यत्र व्याप्यानि सामान्यतो दण्डपरित्यागो व्यापकस्तस्य पञ्चमहाव्रतरूपाशेषविशेषनिष्ठत्वादतो व्यापकस्वरूपसामान्यदण्डपरित्यागं व्याख्याय विशेषदण्डपरित्यागलक्षणमहाव्रतान्यभिधत्ते, तेषु प्राणातिपातविरमणात्मिकाया अहिंसायाः प्रधानत्वम् , इतरेषां सस्यक्षेत्रवर्ति-वृति (बाड़) वत्तत्परिपालनार्थतया तदङ्गत्वात् , तथाचोक्तम्—

" अहिंसैका मता मुख्या, स्वर्गमोक्षप्रसाधनी ।
अस्याः संरक्षणार्थं च, न्याय्यं सत्यादिपालनम् ॥ १ ॥ "

अन्यच्च—

लक्षण है । यह लक्षण पांचोंही महाव्रतोंमें पाया जाता है, अतः महाव्रत व्याप्य हैं और सामान्य-दण्डपरित्याग व्यापक है ।

व्यापकरूप सामान्य-दण्डपरित्यागका पूर्व सूत्रमें व्याख्यान किया है। अब विशेष-दण्डपरित्यागरूप पांच महाव्रतोंका व्याख्यान आरंभ करते हैं, उनमें प्राणातिपातविरमणरूप अहिंसा प्रधान है, जैसे धान्यकी रक्षाके लिए खेतके चारों ओर बाड़ होती है, उसी प्रकार अन्य महाव्रत अहिंसाके रक्षक होनेसे अंग है ।

कहा भी है—

"स्वर्ग और मोक्षको सिद्ध करनेवाली एक अहिंसा ही मुख्य है इसीकी रक्षाके लिए सत्यादि महाव्रतोंका पालन करना उचित है ।"॥१॥

और भी कहा है—

લક્ષણ છે, એ લક્ષણ પાંચે મહાવ્રતોમાં મળી આવે છે, તેથી મહાવ્રત વ્યાપ્ય છે, અને સામાન્ય-દંડપરિત્યાગ વ્યાપક છે

વ્યાપકરૂપ-સામાન્ય-દંડપરિત્યાગનું વ્યાખ્યાન પૂર્વ-સૂત્રમાં કહેલું છે હવે વિશેષ-દંડપરિત્યાગરૂપ પાંચ મહાવ્રતોનું વ્યાખ્યાન શરૂ કરવામાં આવે છે, તેમાં પ્રાણાતિપાતવિરમણરૂપ અહિંસા પ્રધાન છે જેમ ધાન્યની રક્ષાને માટે ખેતરની ચારે બાજુએ વાડ હોય છે, તેમ અન્ય મહાવ્રતો અહિંસાના રક્ષક હોવાને લીધે અંગરૂપ છે કહ્યું છે કે—

"સ્વર્ગ અને મોક્ષને સિદ્ધ કરવાવાળી એક અહિંસા જ મુખ્ય છે તેની રક્ષાને માટે સત્યાદિ મહાવ્રતોનું પાલન કરવું ઉચિત છે " (૧)

વળી કહ્યું છે કે—

(१) प्राणातिपात-विरमणव्रतम् ।

टीका-भदन्त[1]=हे भगवन्! प्रथमे=आद्ये महाव्रते=महत्-विशाल व्रत=शास्त्रीयमर्यादानुसरणम्, महच्च तद् व्रत च महाव्रतम्, महत्त्व चास्य श्रावकाणुव्रतापेक्षया, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावत' सर्वव्यापकत्वेन, महद्भिस्तीर्थकरगणधरादिभिराचरितत्वेन, महापुरुषाचर्यमाणत्वेन चास्ति, तस्मिन्, प्राणातिपातात्=प्राणाः=स्पर्शनेन्द्रियादय. सन्त्येपामिति प्राणा'=एकेन्द्रियादयो जीवाः ('अर्श आदित्वादच्') तेषामतिपातो=वियोजन हिंसनमित्यर्थ., तस्माद् विरमण=निवर्त्तनम् 'अस्ती'ति शेषः, अतोऽह भदन्त!=हे भगवन्! सर्व=स्थूलसूक्ष्मादियावद्भेदविशिष्ट कृत-कारिताऽनुमोदितस्वरूप वा प्राणातिपात प्रत्याख्यामि=प्रति=प्रातिकूल्येन आख्यामि=कथयामि सर्वथा परित्यजामीति भाव., तदेव विशेषयति-'[1]से०' इति, से=अथ=अनन्तरम् यत्प्रारभ्य सूक्ष्म=सूक्ष्मनामकर्मप्रकृत्युदयसपन्नम्। यत्र-

१ देशीशब्दोऽयम् ।

(१) प्राणातिपातविरमण ।

ये श्रावकके व्रतोकी अपेक्षा विशाल होनेसे महाव्रत कहलाते हैं (१), अथवा सर्व द्रव्य क्षेत्र-काल-भावकी अपेक्षा प्राणातिपात आदिका सर्वथा त्याग होता है इस कारण महाव्रत कहलाते हैं (२), या तीर्थंकर गणधर आदि महापुरुषोंने इनको अंगीकार किया है और वर्त्तमानमें भी महापुरुष इनको अंगीकार करते हैं इससे ये महाव्रत कहलाते हैं (३)।

हे भगवन्! प्रथम महाव्रतमें प्राणातिपातसे विरमण होता है इसलिए हे भगवन्! मैं कृत-कारित-अनुमोदनासे सूक्ष्म-स्थूल सब प्रकारके प्राणातिपातका परित्याग करता हूँ। अर्थात् सूक्ष्म नामकर्मकी प्रकृतिसे उत्पन्न

(૧) પ્રાણાતિપાતવિરમણ

એ શ્રાવકના વ્રતોની અપેક્ષાએ વિશાળ હોવાને લીધે મહાવ્રત કહેવાય છે (૧) અથવા સર્વ દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવની અપેક્ષાએ પ્રાણાતિપાત આદિનો સર્વથા ત્યાગ થાય છે એ કારણે તે મહાવ્રત કહેવાય છે (૨) અથવા તીર્થંકર ગણધર આદિ મહાપુરૂષો એને અંગીકારે છે તેથી એ મહાવ્રત કહેવાય છે (૩)

હે ભગવ! પ્રથમ મહાવ્રતમા પ્રાણાતિપાતથી વિરમણ હોય છે, તેથી, હે ભગવન્! હુ કૃત-કારિત-અનુમોદનાથી સૂક્ષ્મ-સ્થૂલ સર્વ પ્રકારના પ્રાણાતિપાતનો પરિત્યાગ કરૂ છુ અર્થાત્ સૂક્ષ્મ-નામકર્મની પ્રકૃતિથી ઉત્પન્ન સૂક્ષ્મ

वोसिरामि । पढमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ पाणाइवा याओ वेरमणं ॥८॥

छाया-प्रथमे भदन्त ! महाव्रते प्राणातिपाताद्विरमण, सर्वं भदन्त ! प्राणातिपात प्रत्याख्यामि, अथ सूक्ष्मं वा बादरं वा त्रसं वा स्थावरं वा नैव स्वयं प्राणानतिपातयामि, नैवान्यैः प्राणानतिपातयामि, प्राणानतिपातयतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि, तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि, प्रथमे भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माद् प्राणातिपाताद्विरमणम् ॥

शिष्य षट्कायकी विराधना का त्याग करके अब पाँच महाव्रत और छठे रात्रि भोजनविरमणव्रतको ग्रहण करता है-

(१) प्राणातिपातविरमण.

सान्वयार्थ-भंते ! हे भदन्त !-हे भगवन् ! पढमे=प्रथम महव्वए=महाव्रतमें पाणाइवायाओ=प्राणातिपातसे वेरमणं=विरमण होता है, (अतः मैं) भंते !=हे भगवन् ! सव्वं=सब प्रकारके पाणाइवायं=प्राणातिपात (हिंसा) का पच्चक्खामि=त्याग करता हूँ। से=अथ-अबसे लेकर (मैं) सुहुमं=सूक्ष्म वा=अथवा बायरं=बादर वा=अथवा तसं=त्रस वा=अथवा थावरं=स्थावर पाणे=प्राणियोंका सयं=स्वयं-खुद नेव=नहीं अइवाइज्जा=अतिपात हनन-करूँगा, नेव=न अन्नेहिं=दूसरोंसे पाणे=प्राणियोंको अइवायाविज्जा=हनन कराऊँगा, (और) पाणे=प्राणियोंको अइवायतेवि=हनन करते हुए भी अन्ने=दूसरोंको न=नहीं= समणुजाणेज्जा=भला जानूँगा, जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं= कृतकारितअनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करतंपि=करते हुए भी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा । भंते !=हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भंते=हे भगवन् ! पढमे=प्रथम महव्वए= महाव्रतमें मैं उवट्ठिओमि=उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके पाणाइवायाओ=प्राणातिपातका वेरमणं=त्याग है ॥८॥ (१)

सम्प्रति शिष्यः स्वस्य महाव्रतित्वं ख्यापयन्नुपसंहरति-हे भगवन्! प्रथमे महाव्रते उपस्थितोऽस्मि=अभ्युद्यतोऽस्मि कृतोद्यमोऽस्मीत्यर्थः। अतोऽद्यप्रभृति मम सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमणं सकलप्राणातिपातालम्बनसावद्यव्यापारप्रत्याख्यानम् 'अस्ती'-ति शेषः ॥ ८ ॥ (१)

सलिलेन तरुगुल्मलतादीनामिव प्राणातिपातविरमणस्य परिपुष्टिर्मृषावादपरित्यागेन भवतीत्यतस्तदनन्तरं मृषावादपरित्यागलक्षणं द्वितीयं महाव्रतमाह- 'अहावरे दोच्चे' इत्यादि।

मूलम्-अहावरे दोच्चे भंते! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं, सव्वं भंते! मुसावायं पच्चक्खामि,से कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा नेव सयं मुसं वइज्जा, नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा, मुसं वयंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। दोच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ॥९॥

छाया-अथापरे द्वितीये भदन्त! महाव्रते मृषावादाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! मृषावादं प्रत्याख्यामि, अथ क्रोधाद्वा लोभाद्वा भयाद्वा हासाद्वा नैव

हे भगवन्! मैं प्रथम महाव्रतको पालनेके लिए उद्यत हुआ हूँ, इसलिए आजसे मुझे समस्त प्रकारके प्राणातिपातका प्रत्याख्यान है (१) ॥८॥

जैसे वृक्ष-लता आदि पानीसे पुष्ट होते हैं वैसेही मृषावादका त्याग करनेसे प्राणातिपातविरमण महाव्रतकी पुष्टि होती है, अतः प्राणातिपातविरमणके बाद दूसरे मृषावादविरमण महाव्रतका व्याख्यान करते हैं- 'अहावरे दोच्चे०' इत्यादि।

હે ભગવન્! હું પ્રથમ મહાવ્રતને પાળવા માટે ઉદ્યત થયો છું, તેથી આજથી મારે બધા પ્રકારના પ્રાણાતિપાતના પ્રત્યાખ્યાન છે (૧) (૮)

જેમ વૃક્ષ-લતા આદિ પાણીથી પુષ્ટ થાય છે તેમ મૃષાવાદનો ત્યાગ કરવાથી પ્રાણાતિપાતવિરમણ મહાવ્રતની પુષ્ટિ થાય છે એટલે પ્રાણાતિપાતવિરમણની પછી બીજા મૃષાવાદવિરમણ મહાવ્રતનું વ્યાખ્યાન કરે છે-અહાવરે દોચ્ચે૦ ઇત્યાદિ

ण्यस्य कायिकी हिंसा न भवति तथाऽपि तद्ग्रहणं 'न केवलं कायिकयेव हिंसा किन्तु वाङ्मनसयोर्दुष्प्रणिधानेनापि हिंसा सम्भवत्येवेति ज्ञापनार्थम्। यद्वा सूक्ष्म=लघु-कायिकं कुन्थ्वादिकम्, बादरं=स्थूलकायिकं गोगजादिकम्, अनयोरपि त्रस-स्थावर-भेदाद्वैविध्यं, तदाह-त्रसं स्थावरं च, तत्र सूक्ष्मत्रसं=कुन्थ्वादिकम्, सूक्ष्मस्थावरं=पनकादिवनस्पतिम्, बादरत्रसम्=अज-गज-गवयादिकम्, बादरस्थावरं=भूम्यादिकम्, इतीमान् प्राणान्=जीवान् नैव स्वयम्=आत्मना अतिपातयामि=हन्मि, नैवान्यैः प्राणानतिपातयामि=घातयामि, प्राणानतिपातयतोऽन्यान् न समनुजानामि, इत्यादि प्राग्वत्।

सूक्ष्म अथवा सूक्ष्म कायवाले कुंथुवा आदि और बादर (स्थूल) कायवाले गो-हस्ती आदि जीवोंके प्राणोंका कभी अतिपात नहीं करूँगा। यद्यपि सूक्ष्म नामकर्मकी प्रकृतिवाले सूक्ष्म प्राणियोंकी कायिक हिंसा नहीं होती परन्तु वचन और मनसे हो सकती है, जैसे-'यह मर जाय तो अच्छा है' ऐसा कहना वचनसे हिंसा है, और घातकी भावना करना मनसे हिंसा है, इसलिए सूक्ष्मका भी यहाँ ग्रहण किया है। सूक्ष्म और बादरके भी दो दो भेद हैं-(१) त्रस और (२) स्थावर। सूक्ष्म-त्रस कुंथुवा आदि हैं, सूक्ष्म-स्थावर पनक आदि वनस्पति (नीलण फूलण) हैं। बादर-त्रस मेढा घोड़ा रोझ आदि। और बादर-स्थावर भूमि आदि हैं। इन सब प्राणियोंको कभी प्राणोसे वियुक्त नही करूँगा, न दूसरेसे कराऊँगा, न करनेवालेको भला जानूँगा।

અથવા સૂક્ષ્મ કાયવાળા કંથવા આદિ અને બાદર (સ્થૂલ) કાયવાળા ગાય હાથી આદિ જીવોના પ્રાણોનો કદાપિ અતિપાત નહિ કરૂં જો કે સૂક્ષ્મ-નામકર્મની પ્રકૃતિવાળા સૂક્ષ્મ પ્રાણીઓની કાયિક હિંસા થતી નથી, તોપણ વચન અને મનથી થઇ શકે છે, જેમકે-'એ મરી જાય તો સારૂં' એમ કહેવું તે વચનથી હિંસા છે, અને ઘાતની ભાવના કરવી એ મનથી હિંસા છે, તેથી કરીને સૂક્ષ્મને પણ અહીં ગ્રહણ કરેલ છે સૂક્ષ્મ અને બાદરના પણ બે-બે ભેદ છે (૧) ત્રસ, અને (૨) સ્થાવર, સૂક્ષ્મ ત્રસ કંથવા આદિ છે સૂક્ષ્મ સ્થાવર લીલન-ફૂલન આદિ વનસ્પતિ છે બાદર ત્રસ-મેંઢા ઘોડા રોઝ વગેરે છે અને બાદર સ્થાવર-ભૂમિ આદિ છે એ સર્વ પ્રાણીઓને કદાપિ પ્રાણથી વિયુક્ત કરીશ નહિ, બીજા વડે કરાવીશ નહિ અને કરનારને ભલો જાણીશ નહિ

मित्यनेन सम्बन्धो वक्ष्यते। मृषावादो हि सद्भावप्रतिषेधा-ऽभूतोद्भावना-ऽर्थान्तराभिधान-गर्हेतिभेदैश्चतुर्विधः, तत्र सद्भावप्रतिषेधः=जीवाजीवादिपदार्थसत्तानिराकरणम्, यथा–'नास्त्यात्मा, परलोकः, पुण्यपापादिकं चेति (१)। अभूतोद्भावनम्=जीवाजीवादितत्त्वानामतद्रूपत्वेन प्रतिपादनम्, यथा–"आत्माऽयमङ्गुष्ठमात्रो, निष्क्रियः, सर्वगतो वेत्यादि (२)। अर्थान्तराभिधानम्=प्रसिद्धपदार्थस्य पदार्थान्तरत्वेन कथनम्, यथा–गोर्गर्दभत्वेन, गर्दभस्य गोत्वेनाभिधानम् (३)। गर्हा=गर्हितं=हीनताप्रदर्शनम्, यद्वा हिंसापारुष्यादियुक्तं सत्यमपि वचः, यथा–'अय हन्तव्यः' इत्यादि, 'एहि अन्ध !, आयाहि बधिर !, आगच्छ पङ्गो !' इत्यादि च (४)।

विरमण होता है। मृषावाद चार प्रकारका है–(१) सद्भावप्रतिषेध, (२) अभूतोद्भावन, (३) अर्थान्तराभिधान, (४) गर्हा। जीव अजीव आदि पदार्थोंके अस्तित्वका निराकरण करना सद्भावप्रतिषेध मृषावाद है, जैसे–'आत्मा नहीं, परलोक नहीं, पुण्य नहीं, पाप नहीं' इत्यादि (१)। जीव अजीव आदि तत्त्वोंका अयथार्थ स्वरूप प्रतिपादन करना अभूतोद्भावन मृषावाद है, जैसे–'आत्मा अगूठेके बराबर है, निष्क्रिय है या सर्वगत है' (२)। एक पदार्थको दूसरा पदार्थ कह देना अर्थान्तराभिधान मृषावाद है, जैसे–'गायको गधा बताना, या गधेको गाय कहना' (३)। दूसरेकी हीनता प्रगट करना, अथवा हिंसा और कठोरतायुक्त सत्य वचन कहना गर्हारूप असत्य है, जैसे–'यह मार डालने योग्य है, ओ अंधे ! इधर आ, ओ बहिरे ! या लगडे ! यहाँ आ' इत्यादि (४)।

હોય છે મૃષાવાદ ચાર પ્રકારનો છે (૧) સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ, (૨) અભૂતોદ્‌ભાવન (૩) અર્થાન્તરાભિધાન, (૪) ગર્હા જીવ અજીવ આદિ પદાર્થોના અસ્તિત્વનું નિરાકરણ કરવું એ સદ્‌ભાવપ્રતિષેધ મૃષાવાદ છે, જેમકે–'આત્મા નથી, પરલોક નથી, પુણ્ય નથી, પાપ નથી' ઇત્યાદિ (૧) જીવ અજીવ આદિ તત્ત્વોનું અયથાર્થ સ્વરૂપ પ્રતિપાદન કરવું એ અભૂતોદ્‌ભાવન મૃષાવાદ છે, જેમકે– 'આત્મા અંગુઠા જેવડો છે, નિષ્ક્રિય છે યા સર્વગત છે' (૨) એક પદાર્થને બીજો પદાર્થ કહી દેવો એ અર્થાન્તરાભિધાન મૃષાવાદ છે, જેમકે– 'ગાયને ગધેડો કહેવો યા ગધેડાને ગાય કહેવી' (૩) બીજાની હીનતા પ્રકટ કરવી, અથવા હિંસા તથા કઠોરતા–યુક્ત સત્યવચન કહેવા એ ગર્હારૂપ અસત્ય છે, જેમકે– 'એ મારી નાખવા યોગ્ય છે, ઓ આંધળા ! અહીં આવ, ઓ બહેરા ! ઓ લગડા ! અહીં આવ' ઇત્યાદિ (૪)

स्वयं मृषा वदामि नैवान्यैर्मृषा वादयामि, मृषा वदतोऽप्यन्यान् न समनुजानामि। यावज्जीवया, त्रिविधं, त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। द्वितीये भदन्त! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि (अतः) सर्वस्मात् मृषावादाद्विरमणम् ॥ ९ ॥

(२) मृषावादविरमण.

सान्वयार्थः—भंते!=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद दोच्चे=दूसरे महव्वए=महाव्रतमें मुसावायाओ=मृषावादसे वेरमणं=विरमण होता है (अतः मैं) भंते!= हे भगवन्! सव्वं=सब प्रकारके मुसावायं=मृषावादका पच्चक्खामि=त्याग करता हूँ। से=अथ-अब से लेकर मैं कोहा वा=क्रोधसे लोहा वा=लोभसे भया वा=भयसे, हासा वा=हास्यसे, सयं=खुद, मुसावायं=असत्य नेव=नहीं वइज्जा=बोलूंगा, नेव=न अन्नेहिं=दूसरोंसे मुसं=असत्य वायाविज्जा=बोलवाऊंगा, मुसं=असत्य वयंतेवि=बोलते हुएभी अन्ने=दूसरोंको न समणुजाणिज्जा=भला नहीं जानूँगा। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ, भंते!=हे भगवन्! दोच्चे=दूसरे महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके मुसावायाओ=असत्यसे वेरमणं=त्याग है ॥९॥ (२)

(२) मृषावादविरमणव्रतम्।

टीका—अथ=प्रथममहाव्रतानन्तर हे भदन्त!=हे भगवन्! अपरे=समनन्तरोदीरितमहाव्रतापेक्षया भिन्ने द्वितीये महाव्रते मृषावादात्=मिथ्याभाषणात् 'विरमणं'

(२) मृषावादविरमण।

हे भगवन्! प्रथम महाव्रतके अनन्तर दूसरे महाव्रतमें मृषावादसे

(२) મૃષાવાદવિરમણ

હે ભગવન્! પ્રથમ મહાવ્રતની પછી, બીજા મહાવ્રત...

आत्मनः क्रोधमोहनीयप्रकृत्युदयेन स्वपरचित्तविकृतिजनको निरनुकम्पक्रौर्यवैभाविकपरिणामविशेषस्तस्मात् । लोभात्=लोभः-लोभप्रकृत्युदयवशाद्रव्याद्यभिलापलक्षणो जीवस्य वैभाविकपरिणामस्तस्मात् । भयात्=भय-भयमोहनीयप्रकृत्युदयेनोद्वेगाऽऽवेदको विकारविशेषस्तस्मात् । हासात्=हासः-हास्यमोहनीयप्रकृत्युदयेन वागादिविकृत्या कपोलयुगलोल्लासन-लोचनसंकोचन-दशनप्रकाशन-सहकृतसशब्दप्राय-वदनव्यादानादिलक्षणश्चेतोविकाशस्तस्मात् । नैव स्वयं मृषा=मिथ्या वदामि, नैवान्यैर्मृषा वादयामि, मृषा वदतोऽप्यन्यान्न समनुजानामीत्यादि पूर्ववत् ॥ ९ ॥ (२)

करनेवाला अनुकम्पारहित क्रूरतारूप वैभाविक परिणाम क्रोध है।

लोभ प्रकृतिके उदयसे द्रव्य आदिकी अभिलाषारूप जीवके वैभाविक भावको लोभ कहते हैं,

भय मोहनीयके उदयसे उद्वेगको उत्पन्न करनेवाला विकार भय कहलाता है।

हास्य-मोहनीयके उदयसे वचनोंकी विकृतिके साथ गाल फुलाकर आँखें कुछ२ मूँदकर दांत निकालकर 'ही-ही' शब्द करके मुखको प्रफुल्लित करना हास्य कहलाता है।

इन सब कारणोंसे मृषावाद होता है। मैं इन कारणोंके वश होकर न स्वयं मृषा बोलूँगा, न दूसरोंसे बोलाऊँगा, न किसी मृषा बोलते हुएको भला जानूँगा (२) ॥९॥

વાળો અનુકંપારહિત ક્રૂરતારૂપ જીવનો વૈભાવિક-પરિણામ એ ક્રોધ છે

લોભ-પ્રકૃતિના ઉદયે કરીને દ્રવ્ય આદિની અભિલાષારૂપ જીવના વૈભાવિક ભાવને લોભ કહે છે

ભય-મોહનીયના ઉદયથી ઉદ્વેગને ઉત્પન્ન કરવાવાળો વિકાર ભય કહેવાય છે

હાસ્ય-મોહનીયના ઉદયથી વચનોની વિકૃતિની સાથે ગાલ ફુલાવીને આંખો કાંઈક મીંચીને દાંત કાઢીને 'હી-હી' શબ્દ કરીને મુખને પ્રફુલ્લિત કરવું એ હાસ્ય કહેવાય છે

એ સર્વ કારણોથી મૃષાવાદ ઉત્પન્ન થાય છે હું એ કારણોને વશ થઈને નહિ સ્વયં મૃષા (જૂઠું) બોલું, નહિ બીજા પાસે બોલાવું, કે નહિ મૃષા બોલનારને ભલો જાણું (૨) (૯)

इमेऽपि (चत्वारो भेदाः) प्रत्येकं चतुर्धा-द्रव्य क्षेत्र काल भाव भेदात्। तत्र द्रव्य विषयकसद्भावप्रतिषेधः-धर्माधर्मादिषड्द्रव्याणामन्यथा प्ररूपणम्। क्षेत्रविषयक सद्भावप्रतिषेधः-लोकालोकयोरन्यथा निरूपणम्। कालविषयकसद्भावप्रतिषेधः-क्षण-मुहूर्त-दिवसादिस्वरूपाणामन्यथा निरूपणम्। भावविषयकसद्भावप्रतिषेधः-रागद्वेषादीनामन्यथा प्रतिपादनम्। एवमेवाऽभूतोद्भावनादित्रयेऽपि द्रव्यादिचतुर्भङ्गी योजनीया। तस्माद्विरमणमिति। हे भगवन्! सर्वं=समस्तं मृषावादं प्रत्याख्यामीति पूर्ववद्बोद्धव्यम्।

तदेव विशदयति-'से'-इति, अथ=अनन्तरम्-अद्यारभ्य-क्रोधात्=क्रोधः

इन चार प्रकारके मृषावादोंके भी द्रव्य क्षेत्र काल भावके भेदसे चार चार भेद होते हैं। धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्योंके स्वरूपकी अन्यथा प्ररूपणा करना द्रव्य-सद्भावप्रतिषेध है। लोक और अलोकका अयथार्थ निरूपण करना क्षेत्र-सद्भावप्रतिषेध है। क्षण मुहूर्त दिन आदिके स्वरूपका मिथ्या कथन करना काल-सद्भावप्रतिषेध है। राग द्वेष आदि भावोंका विपरीत स्वरूप बताना भाव-सद्भावप्रतिषेध है। इसी प्रकार अन्य तीन भेदोंकी चतुर्भंगी समझ लेनी चाहिए, जैसे-द्रव्य अभूतोद्भावन, क्षेत्र अभूतोद्भावन, इत्यादि।

हे भगवन्! मैं सब प्रकारके मृषावादका प्रत्याख्यान करता हूँ।

मृषावाद किस किस कारणसे होता है? सो कहते हैं—

जीवके क्रोध-मोहनीय प्रकृतिके उदयसे स्व-परके चित्तमें विकार

એ ચાર પ્રકારના મૃષાવાદોના પણ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ ભાવના ભેદે કરીને ચાર ચાર ભેદ થાય છે ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય આદિ ■ દ્રવ્યોના સ્વરૂપની અન્યથા પ્રરૂપણા કરવી એ દ્રવ્ય-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે લોક અને અલોકનુ અયથાર્થ નિરૂપણ કરવુ એ ક્ષેત્ર-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે, ક્ષણ મુહૂર્ત દિન આદિના સ્વરૂપનુ મિથ્યા કથન કરવુ એ કાલ-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે રાગ દ્વેષ આદિ ભાવોનુ વિપરીત સ્વરૂપ બતાવવુ એ ભાવ-સદ્ભાવપ્રતિષેધ છે એ પ્રકારે અન્ય ત્રણ ભેદોની ચતુર્ભંગી સમજી લેવી, જેમકે-દ્રવ્ય-અભૂતોદ્ભાવન, ક્ષેત્ર-અભૂતોદ્ભાવન, ઇત્યાદિ

હે ભગવન્! હુ સર્વ પ્રકારના મૃષાવાદના પ્રત્યાખ્યાન કરૂ છુ

મૃષાવાદ કયા કયા કારણથી થાય છે? તે હવે કહે છે—

જીવના ક્રોધ-મોહનીય પ્રકૃતિના ઉદયથી સ્વ-પરના ચિત્તમા વિકાર કરવા

मै) भंते!=हे भगवन्! सव्वं=सब प्रकारके अदिन्नादाणं=अदत्तादान (चोरी)का पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हूँ से=अथ-अब से लेकर मैं-गामे वा=ग्राममें नयरे वा=नगरमें रण्णे वा=अरण्यमें अप्पं वा=अल्प-थोडा बहुं वा=बहुत-घणा अणुं वा=सूक्ष्म-छोटा थूलं वा=स्थूल-मोटा चित्तमंतं वा=सचेतन अचित्तमंतं वा=अचेतन (आदि किसीभी) अदिन्नं=विना दिये हुए पदार्थको सयं=स्वयं नेव= नहीं गिण्हिज्जा=ग्रहण करूंगा, नेवन्नेहिं=न दूसरोंसे अदिन्नं=विना दिया हुआ गिण्हाविज्जा=ग्रहण कराऊँगा, अदिन्नं=विना दिये हुए पदार्थको गिण्हंतेवि= ग्रहण करते हुए भी अन्ने=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नही जानूँगा, जाव-ज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत-कारित-अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारसे मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि=करते हुए भी अन्नं= दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भंते!=हे भगवन्! तच्चे=तीसरे= महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित हुआ हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब अदिन्नादाणाओ= अदत्तादानसे वेरमणं=विरमण-त्याग है ॥१०॥ (३)

(३) अदत्तादानविरमणव्रतम्

टीका—हे भगवन्! अथ=मृषावादविरमणानन्तरम् अपरे=तृतीये महाव्रते अदत्तादानात्=न दत्तमदत्तं=देवगुरुभूपगाथापतिसाधर्मिकैरननुज्ञातं तस्याऽऽदानं= ग्रहणमदत्तादानं तस्माद्विरमणम्, सर्वं भगवन्! अदत्तादानं प्रत्याख्यामि, एतत्तु

(३) अदत्तादानविरमण।

मृषावादविरमणके बाद तीसरे महाव्रतमें देव गुरु राजा गाथापति और साधर्मिकके द्वारा न दिये हुए पदार्थके ग्रहणका त्याग किया जाता है, इसलिए हे भगवन्! मैं सर्व अदत्तादानका परित्याग करता हूँ। वह इस प्रकार—

(૩) અદત્તાદાનવિરમણ.

મૃષાવાદવિરમણની પછી ત્રીજા મહાવ્રતમાં દેવ ગુરૂ, રાજા, ગાથાપતિ અને સાધર્મિકે ન આપેલા એવા પદાર્થનું ગ્રહણ કરવાનો ત્યાગ કરવામાં આવે છે, તેથી હે ભગવન્! હું સર્વ અદત્તાદાનનો પરિત્યાગ કરૂં છું તે આ પ્રકારે—

सत्यपरिपालनं चाऽदत्तादान-(चौर्य)-परित्यागपूर्वकं कर्तुं शक्यमिति तदनन्तरमदत्तादानविरमणात्मकं तृतीयं महाव्रतमाह-'अहावरे तच्चे' इत्यादि ।

मूलम्-अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा नगरे वा रन्ने वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा, अदिन्नं गिण्हंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। तच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं ॥१०॥

छाया-अथापरे तृतीये भदन्त ! महाव्रतेऽदत्तादानाद्विरमणं, सर्वं भदन्त ! अदत्तादानं प्रत्याख्यामि, अथ ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा अल्पं वा बहु वा अणु वा स्थूलं वा चित्तवद्वा अचित्तवद्वा नैव स्वयमदत्तं गृह्णामि नैवान्यैरदत्तं ग्राहयामि, अदत्तं गृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्मात् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि । तृतीये भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माददत्तादानाद्विरमणम् ॥१०॥

(३) अदत्तादानविरमण

सान्वयार्थ —भंते !=हे भगवन् ! अहावरे=इसके बाद तच्चे=तीसरे महव्वए=महाव्रतमें अदिन्नादाणाओ=अदत्तादानसे वेरमणं=विरमण होता है (अत

सत्य महाव्रतका पालन अदत्तादानका त्याग करनेसेही हो सकता है, इस कारण सत्य महाव्रतके पश्चात् अदत्तादानविरमण नामक तीसरे महाव्रतका कथन करते हैं-'अहावरे तच्चे' इत्यादि ।

સત્ય મહાવ્રતનું પાલન અદત્તાદાનનો ત્યાગ કરવાથી જ થઈ શકે છે, તે કારણથી સત્ય મહાવ્રતની પછી અદત્તાદાન-વિરમણ નામના ત્રીજા મહાવ્રતનું કથન કરે છે-अहावरे तच्चे ઇત્યાદિ

इत्युक्तलक्षण तस्मिन् । अरण्ये=अर्यते-गम्यते एकान्तविविक्तदेशप्रियैर्ध्यानार्थिभिः, काष्ठाद्याहर्तुं काष्ठहारकैर्वेत्यरण्य तस्मिन्, उपलक्षणात्खेटकादौ । एतेषा मध्ये कस्मिंश्चिदपि स्थले अल्प=मूल्यतो न्यून दन्तादिपरिशोधनार्थं तृणादिकम्, वहु=अधिकमूल्यक सुवर्णादिकम्, अणु=प्रमाणतो लघु माणिक्यादिकम्, स्थूलम्=प्रमाणतो विशालमेरण्डकाष्ठादिकम्, चित्तवत्=सचेतनम्, अचित्तवत्=अचेतन वा, एतत्सर्वम् एतदन्यतम वा अदत्त=तत्स्वामिना ग्रहणायाऽननुमत नैव स्वय गृह्णामि, नैवान्यैरदत्त ग्राहयामि, अदत्त गृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामीत्यादिक सर्व व्याख्यातपूर्वम् ।

ननु सामान्येनाऽदत्तादानस्य स्तेयत्वे प्रतिक्षणमनन्यदेयकर्माण्याददानस्य

एकान्त और पवित्र स्थानके अभिलाषी ध्यानार्थी योगी अथवा लकडी लानेके लिए लकडहारे जहाँ जाते हैं वह अरण्य कहलाता है।

इन ग्राम, नगर, अरण्य और उपलक्षणसे खेटक (खेडा) आदि किसी स्थानमे कम मूल्यवाला-दाँत खुजानेका तिनका आदि, अधिक कीमतवाला-सुवर्ण आदि, प्रमाणकी अपेक्षा अणु-माणिक्य आदि, प्रमाणकी अपेक्षा बडा-एरण्डकाष्ठ आदि, सचेतन अथवा अचेतन कोई पदार्थ या सब पदार्थ विना स्वामीकी अनुमतिके न स्वय ग्रहण करूँगा, न दूसरोंसे ग्रहण कराऊँगा और न ग्रहण करनेवालेको भला जानूँगा।

प्रश्न-हे गुरु महाराज ! विना दी हुई सब वस्तुओंको ग्रहण करना यदि अदत्तादान है तो मुनियोंको भी अदत्तादानका प्रसग आवेगा,

---

એકાન્ત અને પવિત્ર સ્થાનના અભિલાષી ધ્યાનાર્થી યોગી અથવા લાકડા લેવાને માટે કઠિયારા જ્યા જાય છે તે અરણ્ય (જંગલ) કહેવાય છે

એ ગામ નગર અરણ્ય અને ઉપલક્ષણે કરીને ખેટક (ગામડુ) આદિ કોઈ સ્થાનમા ઓછા મૂલ્યવાળુ દાત ખોતરવાનું તણખલુ વગેરે, વધારે મૂલ્ય-વાળુ સોનુ વગેરે, પ્રમાણની અપેક્ષાએ નાનુ માણિક્યાદિ, પ્રમાણની અપેક્ષાએ મોટુ એરંડાનુ લાકડુ આદિ, સચેતન અથવા અચેન કોઈ પદાર્થ યા સર્વ પદાર્થ, તેના સ્વામીની અનુમતિ વિના, નહિ સ્વય હુ ગ્રહણ કરૂ, નહિ બીજા પાસે ગ્રહણ કરાવુ અને નહિ ગ્રહણ કરનારને ભલો જાણુ

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! આપવામા આવ્યા વિનાની બધી વસ્તુઓને ગ્રહણ કરવી એ જો અદત્તાદાન છે તો મુનિઓને પણ અદત્તાદાનનો પ્રસગ

व्याख्यातपूर्वम् । तदेव निर्दिशति-'से'-इति, अथ=अनन्तरम्-अपारम्य-ग्रामे= ग्रस्यन्ते=भक्ष्यन्ते=विनाश्यन्ते बुद्धिविद्याविवेकादयो गुणा यत्र स इति, गम्यो गोमहिषादीनां करैरिति वा ग्रामः (सिद्धिः पृषोदरादित्वात्) कृषिप्रचुरभूमागो, हट्टादिशून्यवसतिः, कण्टकमयवृतिपरिवेष्टितगृहसमूहसम्पन्नो वा तस्मिन् । नगरे= न गच्छन्तीति नगाः=वृक्षाः पर्वताश्च, त इव समुन्नताः प्रासादादयो यस्मिंस्त- न्नगरम्, ('नग पांसु-पाण्डुभ्यश्चे'-ति वार्तिकेन नगशब्दात्.) नकरमिति च्छायापक्षे तु न विद्यते गोमहिषादीनामष्टादशविधः करः=राजग्राह्यभागः (जकात) यत्र तत् । यद्वा—

" पुण्यपापक्रियाविज्ञै,—र्दयादानप्रवर्त्तकैः ।
कलाकलापकुशलैः, सर्ववर्णैः समाकुलम् ॥
भाषाभिर्विविधाभिश्च, युक्तं 'नगर'-मुच्यते ॥"

जहाँ रहनेसे बुद्धि, विद्या, विवेक आदि गुण नष्ट हो जाते हैं उसे ग्राम कहते हैं । अथवा जहाँ गाय भैंस आदिका कर (टेक्स) लिया जाता हो, अथवा पृथ्वीके अधिक भागमें कृषि होती हो, बाजार या दुकानें न हों, काँटोंकी बाड़से घिरे हुए घर हों उस बस्तीको ग्राम (गाँव) कहते हैं ।

जहाँ वृक्ष तथा पर्वतकी तरह अत्यन्त उन्नत महल-हवेलियाँ हों, अथवा गो महिष आदि पर कर (जकात) न लगता हो, अथवा जिस बस्तीमें पुण्य पाप क्रियाओंके ज्ञाता, दया-दानके प्रवर्त्तक, कलाओंमें कुशल चारों वर्ण हों, और जहाँ नाना देशकी भाषा बोलनेवाले मनुष्य रहते हों उसे नगर कहते हैं ।

જ્યાં રહેવાથી બુદ્ધિ, વિદ્યા, વિવેકાદિ ગુણો નષ્ટ થઇ જાય છે તેને ગ્રામ કહે છે અથવા જ્યાં ગાય ભેંશ આદિનો કર (ટેક્સ) લેવામાં આવે છે, અથવા પૃથ્વીના વધારે ભાગમાં ખેતી થાય છે, બજાર અથવા દુકાનો હોય નહિ, કાંટાની વાડથી ઘેરેલા ઘર હોય એ વસ્તીને ગ્રામ (ગામ) કહે છે

જ્યાં વૃક્ષ કે પર્વત જેવી અત્યંત ઉંચી મહેલ-હવેલીઓ હોય, અથવા ગાય-ભેંશ આદિ પર કર (જકાત) ન લાગતો હોય, અથવા જે વસ્તીમાં પુણ્ય-પાપ ક્રિયાઓના જ્ઞાતા, દયા-દાનના પ્રવર્તક, કળાઓમાં કુશળ ચારે વર્ણો હોય, અને જ્યાં જૂદા જૂદા દેશોની ભાષાઓ બોલનારા મનુષ્યો રહેતા હોય, તેને નગર કહે છે

धर्ममुपार्जयतश्चाऽप्रमत्तत्वात्तीर्थकराणां धर्मार्जनोपदेशाच्च न स्तेयप्रसङ्गः, अत एवा-ऽल्प-बहु-स्थूलाऽणुग्रहणं सूत्रे कृतमिति ॥ १० ॥ (३)

मैथुनविरमणमन्तरेण ह्यहिंसादिमहाव्रतानां संरक्षणं न भवितुं शक्नोति, यतो मैथुनपरायणः प्राणी त्रस-स्थावरजीवान् हिनस्ति, मिथ्या वदति, अदत्तं चाऽऽदत्तेऽतस्तेषां निरपायपरिपालनाय 'मैथुनविरमण'-नामधेयं चतुर्थं महाव्रतमाह- 'अहावरे चउत्थे' इत्यादि।

जिससे कर्म बंध जाते हैं। इस धर्मोपार्जन, सो तीर्थंकर भगवानने धर्मोपार्जन करनेका आदेश तथा उपदेश दिया है इसलिए अदत्तादानका प्रसंग नहीं आता।

सूत्रमें अल्प, बहु, स्थूल, और अणु, इन शब्दोंका ग्रहण भी इसी आशयसे किया गया है, अत एव, कर्मोके बन्धन तथा समिति-गुप्ति द्वारा धर्मोपार्जनमें अदत्तादान नहीं लगता है ॥१०॥ (३)

मैथुनविरमणके विना अहिंसा आदि महाव्रतोंकी रक्षा नहीं हो सकती, क्योंकि मैथुन सेवन करनेवाला त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करता है, असत्य बोलता है, और अदत्तका आदान करता है। अत एव अहिंसादि महाव्रतोंका निरतिचार पालन करनेके लिए मैथुन-विरमण नामक चतुर्थ महाव्रतका प्रतिपादन किया जाता है- 'अहावरे चउत्थे' इत्यादि।

ધર્મોપાર્જન, તે તીર્થંકર ભગવાને ધર્મોપાર્જન કરવાનો આદેશ તથા ઉપદેશ આપ્યો છે તેથી તેમાં અદત્તાદાનનો પ્રસંગ જ આવતો નથી.

સૂત્રમાં અલ્પ, બહુ, સ્થૂલ, અને અણુ, એ શબ્દોનું ગ્રહણ પણ એ જ આશયથી કરવામાં આવ્યું છે અટલે કર્મોનાં બંધન તથા સમિતિ-ગુપ્તિ દ્વારા ધર્મોપાર્જન, એમાં અદત્તાદાન લાગતું નથી (૩) (૧૦)

મૈથુનવિરમણ વિના અહિંસા આદિ મહાવ્રતોની રક્ષા થઈ શકતી નથી, કારણ કે-મૈથુન સેવન કરવાવાળો ત્રસ-સ્થાવર જીવોની હિંસા કરે છે, અસત્ય બોલે છે અને અદત્તનું આદાન કરે છે તેથી કરીને અહિંસાદિ મહાવ્રતોનું નિરતિચાર પાલન કરવાને માટે મૈથુનવિરમણ નામનું ચોથું મહાવ્રતનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે-अहावरे चउत्थे ઇત્યાદિ

समितिगुप्तिप्रभृतिभिर्धर्म वा समुपार्जयन्तः मार्गोऽदत्तादानापत्तिप्रसक्तिरिति चेन्न,

लोकप्रसिद्धहस्तादिकरणकदानाऽऽदानादिव्यवहारस्य कर्मादिष्वभावात्, तथाहि लोके वस्त्रपात्रादिकमन्यस्मै हस्तेन दीयतेऽन्यस्माद्वाऽऽदीयते, इत्येव दानाऽऽदानादिव्यवहारो दृश्यते तस्य न कर्मविषयकत्वं सम्भवति, तेषां सूक्ष्मत्वात्, नहि सूक्ष्म कर्मादिक हस्तादिकरणकग्रहणवितरणयोग्यता भजते इति ।

क्योंकि मुनि विना दिये हुए कर्मोंको प्रतिक्षण ग्रहण करते हैं और समिति-गुप्तिका पालन करके धर्मका भी उपार्जन करते हैं ।

उत्तर-हे शिष्य ! ऐसा नहीं है। हाथोंसे लेने-देनेका जैसा व्यवहार लोकमें प्रसिद्ध है वैसा कर्मोंमें नहीं हो सकता, अर्थात् लोकमें ऐसा व्यवहार होता है कि-'वस्त्र पात्र दूसरोंको हाथसे दिया जाता है, दूसरेसे लिया जाता है।' इस प्रकारका व्यवहार कर्मोंके विषयमें नहीं होता क्योंकि कर्म अत्यन्त सूक्ष्म हैं, वे इन्द्रियके विषय भी नहीं होते तो उनका लेन-देन कैसे हो सकता है ? । दूसरी बात यह है कि प्रमादके योगसे अदत्त पदार्थका आदान (ग्रहण) करना अदत्तादान कहलाता है, मुनिराजको तद्विषयक प्रमाद नही है इसलिए उन्हें अदत्तादानका दोष नही लगता । मुनिराज तो कभी नही चाहते कि हम कर्मोंको ग्रहण करे, किन्तु संसारी आत्मा और कर्मोंका स्वभाव ही ऐसा है कि

આવશે, કારણ કે મુનિ વિના અપાયલા કર્મોને પ્રતિક્ષણ ગ્રહણ કરે છે અને સમિતિ ગુપ્તિનું પાલન કરીને ધર્મનું પણ ઉપાર્જન કરે છે

ઉત્તર-હે શિષ્ય ! એમ નથી હાથેથી લેવા દેવાનો જેવો વહેવાર લોકમા પ્રસિદ્ધ છે તેવો વહેવાર કર્મોમા નથી હોઇ શકતો, અર્થાત્ લોકોમા એવો વહેવાર થાય છે કે-'વસ્ત્ર પાત્ર બીજાઓને હાથથી આપવામા આવે છે, બીજા પાસેથી લેવામા આવે છે' એ પ્રકારનો વહેવાર કર્મોની બાબતમા થતો નથી, કેમકે-કર્મ અત્યંત સૂક્ષ્મ છે, તે ઇંદ્રિયનો વિષય જ નથી હોતો તો એની લેણ-દેણ કેવી રીતે થઇ શકે ? બીજી વાત એ છે કે-પ્રમાદના યોગથી અદત્ત પદાર્થનું આદાન (ગ્રહણ) કરવુ એ અદત્તાદાન કહેવાય છે મુનિરાજને તદ્વિષયક પ્રમાદ હોતો નથી તેથી તેમને અદત્તાદાનનો દોષ લાગતો નથી મુનિરાજ તો કદાપિ એમ નથી ઇચ્છતા કે હું કર્મોનું ગ્રહણ કરૂં, કિન્તુ સંસારી આત્મા અને કર્મોનો સ્વભાવ જ એવો છે કે જેથી કર્મ બંધાઇ જાય છે બાકી રહ્યું

दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भंते !=हे भगवन् ! चउत्थे=चौथे महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित होता हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके मेहुणाओ=मैथुनसे वेरमणं=त्याग है ॥११॥ (४)

(४) मैथुनविरमणव्रतम्.

टीका —हे भगवन् ! अथ अपरे चतुर्थे महाव्रते मैथुनात्=मिथुनेन=स्त्रीपुंसाभ्यां निर्वृत्तं कर्म मैथुनं प्रत्याख्यामीति प्राग्वत्, तदेव विशदयति-'से' इति। अथ=अनन्तरम्-अद्यारभ्य दैवं=देवानामिदं मानुषं=स्त्रीपुंससम्बन्धीत्यर्थः, तैर्यग्योनं=तिर्यग्योनीनामिदं तैर्यग्योनं=पश्वादिसम्बन्धीत्यर्थः, मैथुनं नैव स्वयं सेवे, इत्यादि सर्वं पूर्ववत्। द्रव्यादिचतुर्भङ्ग्यपि प्राग्वद्योजनीया ॥११॥ (४)

(४)–मैथुनविरमण

हे भगवन् ! चौथे महाव्रतमें समस्त प्रकारके मैथुनसे विरमण किया जाता है, इसलिए हे भगवन् ! मैं सब तरहके मैथुनका प्रत्याख्यान करता हूँ। अप्सराओं सम्बन्धी दैवी, स्त्री–पुरुष सम्बन्धी मानुषिक, पशु आदि सम्बन्धी तैर्यग्योनिक मैथुनको मैं न स्वयं सेवन करूँगा, न दूसरोंसे सेवन कराऊँगा, न सेवन करते हुएको भला जानूँगा। द्रव्य क्षेत्र काल भावकी चौभंगी यहाँपर भी लगानी चाहिए, अर्थात् द्रव्यसे–स्त्री आदिके साथ, क्षेत्रसे–किसी क्षेत्रमें, कालसे–किसी कालमें और भावसे–किसीभी भावसे, तीन करण तीन योगसे मैथुन सेवन नहीं करूँगा ॥११॥ (४)

(४) मैथुनविरमण

હે ભગવન્ ! ચોથા મહાવ્રતમાં સર્વ પ્રકારના મૈથુનનું વિરમણ કરવામાં આવે છે, તેથી હે ભગવન્ ! હું સર્વ પ્રકારના મૈથુનનાં પ્રત્યાખ્યાન કરૂં છું અપ્સરાઓ સંબંધી દૈવી, સ્ત્રી–પુરૂષ–સંબંધી માનુષિક, પશુ–આદિ–સંબંધી તૈર્યગ્યોનિક મૈથુન નહિ હું સ્વયં સેવું, નહિ બીજાઓ પાસે સેવન કરાવું અને નહિ સેવન કરનારને ભલો જાણું દ્રવ્ય–ક્ષેત્ર–કાળ–ભાવની ચોભંગી એમાં પણ લગાડવી, અર્થાત્ દ્રવ્યથી સ્ત્રીઆદિની સાથે, ક્ષેત્રથી કોઈ પણ ક્ષેત્રમાં, કાળથી કોઈ કાળમાં અને ભાવથી કોઈ પણ ભાવે કરીને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી મૈથુન સેવીશ નહિ (૪) (૧૧)

मूलम्-अहावरे चउत्थे भंते! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! मेहुणं पच्चक्खामि, से दिव्वं वा माणुसं वा तिरिक्खजोणियं वा नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं-तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। चउत्थे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं॥११॥(४)

छाया—अथापरे चतुर्थे भदन्त! महाव्रते मैथुनाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! मैथुनं प्रत्याख्यामि, अथ दैवं वा मानुषं वा तैर्यग्योनं वा नैव स्वयं मैथुनं सेवे, नैवान्यैर्मैथुनं सेवयामि, मैथुनं सेवमानानप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। चतुर्थे भदन्त! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मान्मैथुनाद्विरमणम् ॥११॥

(४) मैथुनविरमण

सान्वयार्थः-भंते!=हे भगवन्! अहावरे=इसके बाद चउत्थे=चौथे महव्वए=महाव्रतमें मेहुणाओ=मैथुनसे वेरमणं=विरमण होता है, (अतः मैं) भंते!=हे भगवन्! सव्वं=सब प्रकारके मेहुणं=मैथुनका पच्चक्खामि=प्रत्याख्यान करता हूँ, से=अब से लेकर मैं दिव्वं वा=देवसम्बन्धी माणुसं वा=मनुष्यसम्बन्धी तिरिक्खजोणियं वा=तिर्यञ्चसम्बन्धी मेहुणं=मैथुनको सयं=स्वयं नेव=न सेविज्जा=सेवन करूँगा, नेवन्नेहिं=न दूसरोंसे मेहुणं=मैथुन सेवाविज्जा=सेवन कराऊँगा, मेहुणं=मैथुन सेवंतेवि=सेवन करते हुएभी अन्ने=दूसरोंको न समणुजाणिज्जा=भला नहीं समझूँगा, जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा न कारवेमि=न कराऊँगा करंतंपि=करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता

थूलवा=स्थूल मोटा चित्तमतवा=सचेतन अचित्तमतवा=अचेतन परिग्गह=परिग्रहको सयं=स्वयं नेव=नहीं परिगिण्हिज्जा=ग्रहण करूँगा, नेवन्नेहिं=न दूसरोसे परिग्गह=परिग्रहको परिगिण्हाविज्जा=ग्रहण कराऊँगा, परिग्गह=परिग्रहको परिगिण्हंतेवि=ग्रहण करनेवालेभी अन्ने=दूसरोको न समणुजाणिज्जा=भला नहीं जानूँगा। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूंगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करतंपि=करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते=!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ। भंते !=हे भगवन्! पंचमे=पाचवें महव्वए=महाव्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित होता हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब परिग्गहाओ=परिग्रहसे वेरमणं=विरमण-त्याग है ॥१२॥ (५)

(५) परिग्रहविरमणव्रतम् ।

टीका —हे भगवन्! अथापरे पञ्चमे महाव्रते परिग्रहात्=परि-सर्वतोभावेन गृह्यते=जन्मजरामरणादिजनितदुःखैर्गृह्यते आत्माऽनेनेति, यद्वा परिगृह्यते=समूर्च्छं स्वीक्रियते इति परिग्रहः 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' इति वचनात्, धर्मोपकरणभिन्न

---

(५)-परिग्रहविरमण

हे भगवन्! चतुर्थ महाव्रतके पश्चात् पाँचवें महाव्रतमें परिग्रहका पूर्ण प्रत्याख्यान किया जाता है। जिससे आत्मा जन्म-जरा मरण-आदि-जनित नाना दुःखोंसे गृहीत होता है, अथवा जो मूर्च्छा पूर्वक स्वीकार किया जाता है वह परिग्रह कहलाता है, क्योंकि भगवानने मूर्च्छाको ही परिग्रह बतलाया है। अतएव तीन करण तीन योगसे ग्राम नगर आदिमें

---

(૫) પરિગ્રહવિરમણ

હે ભગવન્! ચતુર્થ મહાવ્રતની પછી પાંચમા મહાવ્રતમાં પરિગ્રહના પૂર્ણ પ્રત્યાખ્યાન કરવામાં આવે છે જેથી આત્મા જન્મ જરા મરણાદિજનિત નાના પ્રકારના દુઃખોથી ગ્રસ્ત થાય છે અથવા જે મૂર્ચ્છાપૂર્વક સ્વીકારવામાં આવે છે તે પરિગ્રહ કહેવાય છે, કારણ કે ભગવાને મૂર્ચ્છાને જ પરિગ્રહરૂપ બતાવી છે તેથી કરીને ત્રણ કરણ ત્રણ યોગે ગ્રામ નગર આદિમાં ન સ્વયં પરિગ્રહ ધારણ

मैथुनविरमणं च परिग्रहविरमणमन्तरेण न भवितु सुशकमिति मैथुनविरमणानन्तरं परिग्रहविरमणनामकं पञ्चमं महाव्रतमाह–' अहावरे पंचमे ' इत्यादि ।

मूलम्–अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं, सव्वं भंते ! परिग्गहं पच्चक्खामि, से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा, परिग्गहं परिगिण्हंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। पचमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ॥१२॥ (५)

छाया—अथापरे पञ्चमे भदन्त ! महाव्रते परिग्रहाद्विरमणं, सर्वं भदन्त ! परिग्रहं प्रत्याख्यामि, अथ अल्पं वा बहु वा अणु वा स्थूलं वा चित्तवन्तं वा अचित्तवन्तं वा नैव स्वयं परिग्रहं परिगृह्णामि, नैवान्यैः परिग्रहं परिग्राहयामि, परिग्रहं परिगृह्णतोऽप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि । तस्माद् भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि । पञ्चमे भदन्त ! महाव्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्मात्परिग्रहाद्विरमणम् ॥१२॥ (५)

(५) परिग्रहविरमण

सान्वयार्थः–भंते !=हे भगवन् ! अहावरे=इसके बाद पंचमे=पांचवें महव्वए=महाव्रतमें परिग्गहाओ=परिग्रहसे वेरमणं=विरमण होता है, (अतः मैं) भंते !=हे भगवन् ! सव्वं=सब प्रकारके परिग्गहं=परिग्रहको पच्चक्खामि=त्यागता हूँ, से=अब से लेकर मैं अप्पंवा=अल्प बहुंवा=बहुत अणुंवा=अणु छोटा

मैथुनविरमण, परिग्रहके त्यागे विना नहीं हो सकता, इसलिए मैथुनविरमणके अनन्तर परिग्रहविरमणनामक पांचवां महाव्रत कहते हैं–' अहावरे पंचमे ' इत्यादि ।

મૈથુન વિરમણ, પરિગ્રહના ત્યાગ વિના થઈ શકતુ નથી, તેથી મૈથુન વિરમણની પછી પરિગ્રહવિરમણ નામનું પાંચમું મહાવ્રત કહે છે–અહાવરે પંચમે ઇત્યાદિ

मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि। छट्ठे भंते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं ॥ १३ ॥ (६)

छाया—अथापरे षष्ठे भदन्त! व्रते रात्रिभोजनाद्विरमणं, सर्वं भदन्त! रात्रिभोजनं प्रत्याख्यामि, अथ अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा नैव स्वयं रात्रौ भुञ्जे, नैवान्यान् रात्रौ भोजयामि, रात्रौ भुञ्जानानप्यन्यान्न समनुजानामि, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि। षष्ठे भदन्त! व्रते उपस्थितोऽस्मि सर्वस्माद्रात्रिभोजनाद्विरमणम् ॥१३॥ (६)

(६) रात्रिभोजनविरमण

सान्वयार्थः—भंते!=हे भगवन्! अहावरे=इसके अनन्तर छट्ठे=छठे वए=व्रतमें राइभोयणाओ=रात्रिभोजनसे वेरमणं=विरमण होता है, (अतः मैं) भंते!=हे भगवन्! सव्वं=सब प्रकारके राइभोयणं=रात्रिभोजनको पच्चक्खामि=त्यागता हूँ, से=अब से लेकर मैं–असणं वा=लड्डू पूरी घी सत्तू आदि अशन, पाणं वा=दूध शर्बत आदि पान–पीने योग्य, खाइमं वा=दाख खजूर आदि खाद्य, साइमं वा=लौंग इलायची आदि स्वाद्य, नेव=न सयं=स्वयं राइं=रात्रिमें भुंजिज्जा खाऊँगा, नेवन्नेहिं=न दूसरोंको राइं=रात्रिमें भुंजाविज्जा=खिलाऊँगा, राइं भुंजतेवि अन्ने=रात्रिमें भोजन करनेवाले दूसरोंकोभी न समणुजाणिज्जा=भला नहीं जानूँगा, जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा न कारवेमि=न कराऊँगा, करतंपि=करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ, भंते!=हे भगवन्! छट्ठे=छठे वए=व्रतमें उवट्ठिओमि=उपस्थित होता हूँ, इसलिये मुझे सव्वाओ=सब प्रकारके राइभोयणाओ=रात्रिभोजनसे वेरमणं=विरमण त्याग है ॥१३॥ (६)

सर्वमित्यर्थस्तस्माद्विरमणम्। हे भगवन्! सर्वं परिग्रहं प्रत्याख्यामि, अथ ग्रामे वा नगरे वेत्यादि प्राग्वद्बोद्धव्यम् ॥१२॥ (५)

द्वाविंशतितीर्थंकरशासने ऋजुप्राज्ञपुरुषापेक्षयाऽस्योत्तरगुणत्वेऽपि आद्यान्तिमतीर्थंकरसाधूनामृजुजड-वक्रजडत्वादनर्थप्रतिरोधार्थं स्फुटप्रतिबोधार्थं च महाव्रतानन्तरं मूलगुणत्वेनोपादानं षष्ठं रात्रिभोजनविरमणव्रतमाह-'अहावरे छट्ठे' इत्यादि।

मूलम्—अहावरे छट्ठे भंते! वए राइभोयणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि, से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा नेव सयं राइं भुंजिज्जा, नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुंजंतेवि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं

न स्वयं परिग्रह धारण करूँगा, न दूसरेसे धारण कराऊँगा, न धारण करते हुएको भला जानूँगा ॥१२॥ (५)

अजितनाथ भगवान्से लेकर पार्श्वनाथ जिनेन्द्र पर्यन्त बाईस तीर्थंकरोंके शिष्य ऋजु (सरल स्वभावके) और प्राज्ञ (समझानेसे समझनेवाले) होते हैं। उन शिष्योंकी अपेक्षासे रात्रिभोजन उत्तरगुण है। किन्तु ऋषभदेवके शिष्य ऋजु-जड तथा वर्द्धमान-स्वामीके शिष्य वक्र और जड होते हैं, अत एव अनर्थको रोकनेके लिए और स्पष्ट बोध करानेके लिए पच महाव्रतोंके बाद मूल-गुणोंमें गिनानेके लिए छट्ठे रात्रिभोजनविरमण व्रतको कहते हैं-'अहावरे छट्ठे' इत्यादि।

हुं करीश, न बीजाओ द्वारा धारण करावीश, न धारण करनारने भलो जाणीश (५) (१२)

अजितनाथ भगवानथी लईने पार्श्वनाथ जिनेन्द्र सुधीना बावीस तीर्थ-करोना शिष्यो ऋजु (सरल स्वभाववाळा) अने प्राज्ञ (समजाववाथी समज नारा) हता, ते शिष्योनी अपेक्षाए रात्रिभोजन उत्तरगुण छे, परंतु ऋषभ देवना शिष्यो ऋजु जड तथा वर्धमानस्वामीना शिष्यो वक्र अने जड हता तेथी अनर्थने रोकवाने माटे अने स्पष्ट बोध कराववाने माटे पंच महाव्रतोनी पछी मूल गुणोमां गणाववाने माटे छट्ठुं रात्रिभोजनविरमण व्रत कहे छे-अहावरे छट्ठे इत्यादि

घदनमप्राणातिपातायोक्तम् । अपिच-रात्रिभोजनव्यवस्थापने, रात्रौ भुक्त्वाऽऽत्मनः साधुत्वकथने च मृषावादः । रात्रावभ्यवहरणे हन्यमानप्राणिनिर्देशमन्तरेण तत्प्राणापहरणाद्रजन्यधिकरणकभोजननिषेधलक्षणजिनाज्ञाभङ्गाच्च स्तेयम् । रात्रिभोजनशीलस्यावश्यमेव भिक्षार्थं रात्रावितस्ततः परिभ्रमतः स्त्र्यादिससर्गादब्रह्मदोषप्रसङ्गः । रात्रिभोजने सग्रहोऽनिवार्यस्तेन च मूर्च्छाऽवश्यम्भाविनी, सैव परिग्रहः 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' इति भगवता स्वयमेवाऽभिधानादतो निशाशनमशेषदोषराशिभूतम्, न तत्त्यागादृते व्रतपरिपोषस्तस्मात्सर्वं भगवन्! रात्रि-

करनेसे ही हिंसाका परिहार हो सकता है। रात्रिभोजनका कर्त्तव्यरूपसे निरूपण करना और रात्रिभोजन करके अपनेको साधु कहना मृषावाद है।

रात्रिभोजनसे विराधित होनेवाले प्राणियोंकी आज्ञाके विना ही उनके प्राणोंका अपहरण करनेसे, तथा रात्रिभोजन न करनेकी जिन भगवानकी आज्ञाका लोप करनेसे अदत्तादानका दोप लगता है। रात्रिमें भोजन करनेवाला भिक्षाके लिए रात्रिमें भ्रमण भी करेगा, भ्रमण करते समय स्त्री आदिका ससर्ग होनेसे अब्रह्मचर्यका भी दोप लगेगा।

रात्रिभोजन करनेसे अन्न आदि सामानका भी सग्रह करना पडेगा इससे सनिधि-दोप लगेगा। सग्रह करनेसे मूर्च्छा भी होगी, मूर्च्छाको भगवानने स्वय परिग्रह कहा है, इसलिए रात्रिभोजन सब दोपोका कोप है, उसका त्याग किये विना व्रतोंका पालन नही हो सकता। इस

થઇ શકે છે રાત્રિભોજનનું કતવ્યરૂપે નિરૂપણ કરવુ અને રાત્રિભોજન કરીને પોતાને સાધુ કહેવડાવવો એ મૃષાવાદ છે

રાત્રિભોજનથી વિરાધિત થનારા પ્રાણીઓની આજ્ઞા વિના જ એમના પ્રાણનું અપહરણ કરવાથી થતા રાત્રિભોજન ન કરવાની જિનભગવાનની આજ્ઞાનો લોપ કરવાથી અદત્તાદાનનો દોષ લાગે છે રાત્રે ભોજન કરનારાઓ ભિક્ષાને માટે રાત્રે ભ્રમણ પણ કરશે ભ્રમણ કરતી વખતે સ્ત્રીઆદિનો સ સર્ગ થવાથી અબ્રહ્મચર્યનો પણ દોષ લાગશે

રાત્રિભોજન કરવાથી અન્ન આદિ સામાનનો પણ સ ગ્રહ કરવો પડશે, તેથી સ નિધિ-દોષ લાગશે સ ગ્રહ કરવાથી મૂર્છા પણ ઉત્પન્ન થશે મૂર્છાને ભગવાને પોતે પરિગ્રહરૂપ કહી છે, તેથી રાત્રિભોજન સર્વ દોષોનો કોષ છે

એનો ત્યાગ કર્યા વિના વ્રતોનું પાલન થઇ શકતુ નથી તેથી હે ભગવન્! હુ

(६) रात्रिभोजनविरमणव्रतम् ।

टीका—हे भगवन्! अथापरे षष्ठे व्रते रात्रिभोजनात्=रात्रौ=निशि भोजन रात्रिभोजन तस्माद् विरमणम्। रात्रिभोजनेन हि सकलमहाव्रतेषु दोषो जन्यते, तथाहि-रात्रौ दिनकरकिरणाभावाज्ञानाविधसूक्ष्मतनुधारिजन्तुजातसमुत्पातावपात-सञ्चारबाहुल्यात् हिंसाऽवश्यम्भाविनी, दीक्षाग्रहणसमये प्रतिज्ञा कृता यदद्यप्रभृति न कस्यापि प्राणिनः प्राणान् पीडयिष्यामीति, रात्रिभोजनेन तु प्राणिवधस्याऽनिवार्यत्वात्कृतप्रतिज्ञाभङ्गो भवितुमर्हतीति मृषावादः, यद्वा तीर्थंकरैर्लोकालोकाऽव'-लोकिकेवलालोकेनै'-तत्सयमविराधकमालोक्याऽऽदित्यालोके आलोकिताशनपाना-

१ केवलालोकस्य करणस्य कर्तृत्वविवक्षया णिनिः। एतत्=रात्रिभोजनम्।

(६) रात्रिभोजनविरमण ।

हे भगवन्! पाच महाव्रतोंके पश्चात् छट्ठे व्रतमें रात्रिभोजनसे विरमण किया जाता है। रात्रिभोजनसे समस्त महाव्रतोंमें दोष लगता है। रात्रिके समय सूर्यकी किरणोंके अभावसे सूक्ष्म-शरीरवाले भाँति-भाँतिके जन्तु इधर-उधर उडते हैं, नवीन उत्पन्न होते हैं, नीचे ऊपर आते-जाते हैं, इसलिए हिंसा अवश्य ही होती है। दीक्षा लेते समय ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि-'आजसे किसी प्राणीके प्राणोंको पीडा नहीं पहुँचाऊँगा' जब रात्रिभोजन किया तो हिंसा अवश्य हुई, इसलिए मृषावादका भी दोष लगा। अथवा लोक और अलोकको अवलोकन करनेवाले अलौकिक केवल-आलोकसे अवलोकन करके केवली भगवान्ने कहा है कि-सूर्यके आलोकमे अवलोकन किया हुआ अशन आदिक सेवन

(૬) રાત્રિભોજનવિરમણ

હે ભગવન્! પાચ મહાવ્રતોની પછી છઠ્ઠા વ્રતમા રાત્રિભોજનથી વિરમણ કરવામા આવે છે રાત્રિભોજનથી સવ મહાવ્રતોમા દોષ લાગે છે રાત્રિને સમયે સૂર્યના કિરણોના અભાવથી સૂક્ષ્મ-શરીરવાળા ભાત-ભાતના જન્તુઓ અહીં તહીં ઉડે છે, નવીન ઉત્પન્ન થાય છે, નીચે ઉપર આવ જા કરે છે, તેથી હિંસા જરૂર થાય છે

દીક્ષા લેતી વખતે એવી પ્રતિજ્ઞા કરી હતી કે 'આજથી કોઈ પ્રાણીના પ્રાણોને પીડા નહિ ઉપજાવુ જો રાત્રિભોજન કર્યું તો હિંસા અવશ્ય થઈ, તેથી મૃષાવાદનો દોષ લાગ્યો અથવા લોક અને અલોકનુ અવલોકન કરનારા અલૌકિક કેવળ જ્ઞાનથી અવલોકન કરીને કેવળી ભગવાને કહ્યુ છે કે સૂર્યના પ્રકાશમા અવલોકન કરેલુ અશન આદિ સેવવાથી જ હિંસાનો પરિહાર

(१) रात्रौ गृहीत्वा रात्रौ भुङ्क्ते, (२) रात्रौ गृहीत्वा दिवा भुङ्क्ते, (३) दिवा गृहीत्वा रात्रौ भुङ्क्ते, (४) दिवा गृहीत्वा (रात्रिव्यवधानेन) दिवा भुङ्क्ते। उक्तञ्च भगवता निशीथसूत्रस्यैकादशोद्देशे –

"जे भिक्खू दिया असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहित्ता दिया भुंजइ भुंजतं वा साइज्जइ ॥सू ७३॥ जे भिक्खू दिया असणं वा ४ पडिगाहित्ता रत्तिं भुंजइ भुंजतं वा साइज्जइ ॥सू. ७४॥ जे भिक्खू रत्तिं असणं वा ४ पडिगाहित्ता दिया भुंजइ भुंजतं वा साइज्जइ ॥सू. ७५॥ जे भिक्खू रत्तिं असणं वा ४ पडिगाहित्ता

(१) रात्रिमें ग्रहण करके रात्रिमें ही भोजन करना।

(२) रात्रिमें ग्रहण करके दिनमें भोजन करना।

(३) दिनमें ग्रहण करके रात्रिमें भोजन करना।

(४) दिनमें ग्रहण करके (रात्रिभर रखकर दूसरे) दिनमें भोजन करना।
भगवानने निशीथ सूत्रके ग्यारहवें उद्देशमे कहा है—

"जो भिक्षु दिनमें अशन पान खाद्य स्वाद्य ग्रहण करके (दूसरे) दिन भोगे, दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥७३॥

जो साधु दिनमें अशनादिक लेकर रात्रिमे स्वय भोगे दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥सू ७४॥

जो साधु रात्रिमें अशनादिक लेकर दिनमें भोगे भोगवावे या भोगनेवाले अन्यको भला जाने ॥सू ७५॥

(१) રાત્રે ગ્રહણ કરીને રાત્રે જ ભોજન કરવુ

(૨) રાત્રે ગ્રહણ કરીને દિવસે ભોજન કરવુ

(૩) દિવસે ગ્રહણ કરીને રાત્રે ભોજન કરવુ

(૪) દિવસે ગ્રહણ કરીને (રાતભર રાખીને બીજે) દિવસે ભોજન કરવુ
ભગવાને નિશીથ-સૂત્રના અગીઆરમા ઉદ્દેશમા કહ્યુ છે—

"જે ભિક્ષુ દિવસમા અશન-પાન-ખાદ્ય-સ્વાદ્ય ગ્રહણ કરીને (બીજે) દિવસે ભોગવે, બીજાને ભોગવાવે, અન્ય ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૩)

જે સાધુ દિવસે અશનાદિ લઈને રાત્રે પોતે ભોગવે, બીજાને ભોગવાવે અને અન્ય ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૪)

જે સાધુ રાત્રે અશનાદિ લઈને દિવસે ભોગે, ભોગવાવે યા ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૫)

भोजन प्रत्याख्यामि, तदेव विशदयति 'मे' इति, अश=अनन्तरम्-अशनम्=अश्यते=भुज्यते क्षुधोपशमनार्थं यत् तत्=ओदन सूप सक्तु-मुद्गमोदक-घृतपूर-लपनश्रीप्रभृतिकम्, पान=पीयते यत्तत्पान=दुग्धादिकं, तिलतण्डुलादिधावनोदकं च। खाद्य=खादितु योग्य खाद्यम्=अचित्तद्राक्षाखर्जूरादि। स्वाद्य=स्वादितु योग्यं स्वाद्य=लवङ्गचूर्णपूगीफलादि। रात्रिभोजनमपि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावभेदाच्चतुर्धा, तत्र द्रव्यतोऽशनपानादिकम्, क्षेत्रतोऽर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रवर्तिन, तद्वहिः प्रसिद्धदिनरात्र्यभावात्, कालतो रात्रौ, भावतो निशाशनाभिलाष । रात्रिभोजनस्य स्वरूपतश्चतुर्भङ्गी यथा-

---

लिए हे भगवन्! मैं समस्त-रात्रिभोजनका प्रत्याख्यान करता हूँ। अर्थात् भात, दाल, सत्तू, मगके लड्डू, घेवर, लप्सी आदि अशन, दूध, तिल और चावलका धोवन आदि पान, प्रासुक दाख, खजूर आदि खाद्य, लौंगका चूर्ण, सुपारी आदि स्वाद्य,इन चार प्रकारके आहारोंमेंसे किसी एक प्रकारका भी आहार रात्रिमें नहीं करूँगा।

रात्रिभोजन भी द्रव्य क्षेत्र काल भावसे चार प्रकारका है। अशन पान आदि द्रव्यसे रात्रिभोजन है। अढाई द्वीपमें रात्रिभोजन करना क्षेत्र-रात्रिभोजन है, क्योंकि अढाई द्वीपके बाहर दिन रात्रिका व्यवहार नहीं है। रात्रिमें भोजन करना कालकी अपेक्षा रात्रिभोजन है। रात्रिमें भोजन करनेकी इच्छा करना भाव-रात्रिभोजन है।

रात्रिभोजनकी चतुर्भंगी इस प्रकार है—

સર્વ–રાત્રિભોજનના પ્રત્યાખ્યાન કરૂં છુ અર્થાત્–ભાત, દાળ, મગજ, મગના લાડુ, ઘેબર, લાપસી આદિ અશન, દૂધ, તલ અને ચોખાનું ધોવણ આદિ પાન, પ્રાસુક દ્રાક્ષ, ખજૂર આદિ ખાદ્ય, લવગનું ચૂર્ણ, સોપારી આદિ સ્વાદ્ય, એ ચારે પ્રકારના આહારમાંથી કોઇ પણ એક પ્રકારનો આહાર રાત્રે હુ કરીશ નહિ

રાત્રિભોજન પણ દ્રવ્ય–ક્ષેત્ર–કાળ–ભાવથી ચાર પ્રકારનું છે અશન–પાન આદિ દ્રવ્યથી રાત્રિભોજન છે અઢી–દ્વીપમા રાત્રિભોજન કરવુ એ ક્ષેત્ર–રાત્રિભોજન છે, કેમકે–અઢી દ્વીપની બહાર દિવસ–રાત્રિનો વ્યવહાર નથી રાત્રે ભોજન કરવુ એ કાળની અપેક્ષાએ રાત્રિભોજન છે રાત્રે ભોજન કરવાની ઇચ્છા કરવી એ ભાવ રાત્રિભોજન છે

રાત્રિભોજનની ચતુર્ભંગી આ પ્રમાણે છે—

टीका-इत्येतानि=समनन्तरोदीरितलक्षणानि रात्रिभोजनविरमणषष्ठानि=रात्रौ भोजन रात्रिभोजन, रात्रिभोजनाद्विरमण रात्रिभोजनविरमण, षण्णा पूरण षष्ठ=षट्सङ्ख्यापूरक, रात्रिभोजनविरमण षष्ठ येषु तानि पञ्च महाव्रतानि आत्महितार्थाय=आत्मने हितम्=इष्टमिति आत्महितम्, आत्मनो हित=मङ्गल-मस्मादिति वाऽऽत्महितो मोक्षः,स एवार्थः=प्रयोजनम् आत्महितार्थस्तस्मै तथोक्ताय उपसम्पद्य=सामस्त्येन स्वीकृत्य विहरामि=सयमविषये विचरामि ॥१४॥

यतनापुरस्सरमेव व्रतग्रहण सफल भवतीत्यतस्तद्यतनास्वरूप प्रदर्श्यते-"से भिक्खू वा" इत्यादि।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजयविरयपडिहयपच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलु वा ससरक्ख वा काय ससरक्ख वा वत्थ हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा, अन्न न आलिहाविज्जा, न विलिहाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिंदाविज्जा, अन्न आलिहत वा, विलिहत वा, घट्टत वा भिंदत वा न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि

हे भगवन्। मैं पाच महाव्रतोंको और छठे रात्रिभोजनविरमण व्रतको आत्माके हित-मोक्ष-के लिए स्वीकार करके सयममार्गमें विचरता हूँ ॥४॥

व्रतोंको यतनापूर्वक स्वीकार किया जाय तभी वे सफल होते हैं, इसलिए यतनाका कथन करते हैं-'से भिक्खू०' इत्यादि ।

હે ભગવન્! હુ પાચ મહાવ્રતોને અને છઠા રાત્રિભોજનવિરમણ વ્રતને આત્માને હિત-સ્વરૂપ મોક્ષને માટે સ્વીકાર કરીને સયમ-માર્ગમા વિચરૂ છુ (૧૪)

વ્રતોના યતનાપૂર્વક સ્વીકાર કરવામા આવે ત્યારે તે સફળ થાય છે, તેથી યતનાનુ કથન કરે છે-સે ભિક્ખૂ૦ ઈત્યાદિ

रत्तिं भुंजइ भुंजतं वा साइज्जइ××××आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं ॥सू. ७६॥" इति ।

तच सर्वमशनादिकं रात्रौ नैव स्वयं भुञ्जे, इत्यादि सर्वं व्याख्यातपूर्वम् ॥१३॥

सम्प्रति गृहीतमहाव्रतः शिष्य उपसंहरन्नाह-'इच्चेयाइं' इत्यादि ।

मूलम्-इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ॥ १४ ॥

छाया—इत्येतानि पञ्च महाव्रतानि रात्रिभोजनविरमणषष्ठानि आत्महितार्थायोपसम्पद्य विहरामि ॥१४॥

उपसंहार.

सान्वयार्थ'—इच्चेयाइं=ये पहले कहे हुए राइभोयणवेरमणछट्ठाइं=छठे रात्रिभोजनविरमण व्रतके साथ पंच महव्वयाइं=पांच महाव्रतोंको अत्तहियट्ठयाए=आत्मकल्याणके लिये उवसंपज्जित्ताणं=स्वीकार करके विहरामि=संयममें विचरता हूँ ॥१४॥

जो साधु रात्रिमें अशनादिक लेकरके रात्रिमें भोगे दूसरेको भोगवावे और अन्य भोगनेवालेको भला जाने ॥सू. ७६॥ उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त लगता है ।

इन सब अशन आदि चार प्रकारके आहारको रात्रिमें नहीं भोगूँगा, इत्यादिका व्याख्यान पहले कर चुके है ॥१३॥ (६)

अब महाव्रतोंको स्वीकार करनेवाला शिष्य उपसंहार करता हुआ कहता है-'इच्चेयाइं' इत्यादि ।

જે સાધુ રાત્રે અશનાદિ લઈને રાત્રે ભોગવે, બીજાને ભોગવાવે અને અન્ય ભોગવનારને ભલો જાણે (સૂ ૭૬) તેને ચાતુર્માસિક પ્રાયશ્ચિત્ત લાગે છે"

એ સર્વ અશનાદિ ચાર પ્રકારના આહારને રાત્રે નહિ ભોગવું, ઇત્યાદિના વ્યાખ્યાન પહેલા કરવામા આવેલુ છે (૧૩) (૬)

હવે મહાવ્રતોનો સ્વીકાર કરવાવાળો શિષ્ય ઉપસંહાર કરતો છતો કહે છે-इच्चेयाइं ઇત્યાદિ

टीका-इत्येतानि=समनन्तरोदीरितलक्षणानि रात्रिभोजनविरमणषष्ठानि=रात्रौ भोजनं रात्रिभोजनं, रात्रिभोजनाद्विरमणं रात्रिभोजनविरमणं, षण्णां पूरणं षष्ठं=षट्सङ्ख्यापूरकं, रात्रिभोजनविरमणं षष्ठं येषु तानि पञ्च महाव्रतानि आत्महितार्थाय=आत्मने हितम्=इष्टमिति आत्महितम्, आत्मनो हितं=मङ्गलमस्मादिति वाऽऽत्महितो मोक्षः,स एवार्थः=प्रयोजनम् आत्महितार्थस्तस्मै तथोक्ताय उपसम्पद्य=सामस्त्येन स्वीकृत्य विहरामि=संयमविषये विचरामि ॥१४॥

यतनापुरस्सरमेव व्रतग्रहणं सफलं भवतीत्यतस्तद्यतनास्वरूपं प्रदर्श्यते-"से भिक्खू वा" इत्यादि।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्खं वा कायं ससरक्खं वा वत्थं हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अंगुलियाए वा सिलागाए वा सिलागहत्थेण वा न आलिहिज्जा न विलिहिज्जा न घट्टिज्जा न भिंदिज्जा, अन्नं न आलिहाविज्जा, न विलिहाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिंदाविज्जा, अन्नं आलिहंतं वा, विलिहंतं वा, घट्टंतं वा भिंदंतं वा न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि

हे भगवन्। मैं पांच महाव्रतोंको और छठे रात्रिभोजनविरमण व्रतको आत्माके हित-मोक्ष-के लिए स्वीकार करके संयममार्गमें विचरता हूँ ॥४॥

व्रतोंको यतनापूर्वक स्वीकार किया जाय तभी वे सफल होते हैं, इसलिए यतनाका कथन करते हैं-'से भिक्खू०' इत्यादि।

હે ભગવન્! હું પાંચ મહાવ્રતોને અને છઠ્ઠા રાત્રિભોજનવિરમણ વ્રતને આત્માને હિત-સ્વરૂપ મોક્ષને માટે સ્વીકાર કરીને સંયમ-માર્ગમાં વિચરૂં છું (૧૪)

વ્રતોનો યતનાપૂર્વક સ્વીકાર કરવામાં આવે ત્યારે તે સફળ થાય છે, તેથી યતનાનું કથન કરે છે-જે भिक्खू० ઈત્યાદિ

करंतपि अन्नं न समणुजाणामि! तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१॥१५॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयत-विरत प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स पृथिवीं वा भित्तिं वा शिलां वा लेष्टुं वा सरजस्कं वा कायं सरजस्कं वा वस्त्रं हस्तेन वा पादेन वा काष्ठेन वा किलिञ्चेन वा अङ्गुल्या वा शलाकया वा शलाकाहस्तेन वा नाऽऽलिखेत् न विलिखेत् न घट्टयेत् न भिन्द्यात्, अन्यं नाऽऽलेखयेन्न विलेखयेन्न घट्टयेन्न भेदयेद्, अन्यमालिखन्तं वा विलिखन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा न समनुजानीयात्, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥१॥१५॥

(१) पृथ्वीकाययतना

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी, से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहां से=वह पुढविं वा=पृथ्वीको भित्तिं वा=भीत-दीवार-को सिलं वा=शिलाको लेलुं वा=ढेलेको ससरक्खं=सचित्तरजसहित कायं वा=शरीरको ससरक्खं=सचित्त रजसहित वत्थं वा=वस्त्रको हत्थेण वा=हाथसे पाएण वा=पैरसे कट्ठेण वा=काष्ठसे किलिंचेण वा=बांस आदिकी खपचसे अंगुलियाए वा=अंगुलीसे सिलागाए वा=ऊडसे सिलागहत्थेण वा=बहुतसी छडोंसे न आलिहिज्जा= जराभी संघर्षण न करे, न विलिहिज्जा=वारम्वार संघर्षण न करे, न घट्टिज्जा= न घट्टन करे-न चलावे, न भिंदिज्जा=न भेदे, अन्नं=दूसरेसे न आलिहाविज्जा=जराभी संघर्षण न करावे, न विलिहाविज्जा=न वारम्वार संघर्षण करावे, न घट्टाविज्जा=न घट्टन करावे, न भिंदाविज्जा=न भेदन करावे, आलिहंतं वा= संघर्षण करनेवाले विलिहंतं वा=वार वार संघर्षण करनेवाले घट्टंतं वा=घट्टन करनेवाले भिंदंतं वा=भेदन करनेवाले अन्नं= दूसरेको न समणुजाणिज्जा= भला न समझे। इसलिये मैं जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (उसको) तिविहं=कृत-

कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेण=तीन प्रकारके मणेण= मनसे वायाए=वचनसे काएण=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा,करतपि=करते हुए भी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥१॥१५॥

टीका—से=सः=भिक्षावृत्तिकत्वेन प्रसिद्धः, भिक्खुः=भिक्षितु=याचितु शील धर्मो वा यस्य स भिक्षुः। ('भिक्ष याञ्चायामलाभे लाभे च'-इत्यस्माद्धातोः 'आकेस्तच्छील तद्धर्म-तत्साधुकारिषु' इत्यधिकारे 'सनाशंसभिक्ष उः' (३।२।१६२) इत्युप्रत्यये भिक्षुपद सिध्यति)। अत्र 'उ' प्रत्ययेन ताच्छील्यद्योतनाद् भिक्षणशीलत्व भिक्षुत्वमिति पर्यवस्यति।

ननु काषायाम्बरधारिणामपि भिक्षोपजीवित्वेन तत्रोक्तभिक्षुलक्षणमतिव्याप्त-मिति चेन्न—

भिक्षावृत्तिसे प्रसिद्ध भिक्षु कहलाते हैं, अर्थात् याचना करके आहारादि लेनेवालेको भिक्षु कहते हैं।

संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'भिक्षु' पदमें 'उ' प्रत्यय लगा हुआ है। उससे यह प्रगट होता है कि-भिक्षु उसे कहना चाहिए जो किसी वस्तुको विना भिक्षाके न ले, अर्थात् भिक्षणशील भिक्षु कहलाते हैं।

प्रश्न-गेरुआ या अन्य किसी प्रकारके रंगसे रंगे हुए कपडे पहनने-वाले सन्यासी आदि भी भिक्षु माग कर अपने जीवनका निर्वाह करते हैं, इसलिए यह भिक्षुका लक्षण उनमें भी चला जाता है, वे भी भिक्षु कहलावेंगे?।

ભિક્ષાવૃત્તિથી પ્રસિદ્ધ હોય તે ભિક્ષુ કહેવાય છે અર્થાત્ યાચના કરીને આહારાદિ લેનારાને ભિક્ષુ કહે છે,

સંસ્કૃત વ્યાકરણને અનુસરીને ભિક્ષુ શબ્દમા ઉ પ્રત્યય લાગેલો છે તેથી એમ પ્રકટ થાય છે કે ભિક્ષુ એને કહેવો જોઈએ કે જે કોઈ વસ્તુને ભિક્ષા વિના લે નહિ, અર્થાત ભિક્ષણશીલ હોય તે ભિક્ષુ કહેવાય છે

પ્રશ્ન-ગેરૂથી યા અન્ય કોઈ પ્રકારના રંગથી રંગેલા કપડા પહેરનારા સન્યાસી આદિ પણ ભિક્ષા માગીને પોતાના જીવનનો નિર્વાહ કરે છે તેથી એ ભિક્ષુનું લક્ષણ એને પણ લાગુ પડે છે, તેઓ પણ ભિક્ષુ કહેવાશે ?

करंतपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥१॥१५॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स पृथिवीं वा भित्तिं वा शिलां वा लेष्टुं वा सरजस्कं वा कायं सरजस्कं वा वस्त्रं हस्तेन वा पादेन वा काष्ठेन वा किलिञ्चेन वा अङ्गुल्या वा शलाकया वा शलाकाहस्तेन वा नाऽऽलिखेत् न विलिखेत् न घट्टयेत् न भिन्द्यात्, अन्यं नाऽऽलेखयेत्न विलेखयेन्न घट्टयेन्न भेदयेद्, अन्यमालिखन्तं वा विलिखन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा न समनुजानीयात्, यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥१॥१५॥

(१) पृथ्वीकाययतना

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी, से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा सभामें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहां से=वह पुढविं वा=पृथ्वीको भित्तिं वा=भीत-दीवार-को सिलं वा=शिलाको लेलुं वा=ढेलेको ससरक्खं=सचित्तरजसहित कायं वा=शरीरको ससरक्खं=सचित्त रजसहित वत्थं वा=वस्त्रको हत्थेण वा=हाथसे पाएण वा=पैरसे कट्ठेण वा=काष्ठसे किलिंचेण वा=बांस आदिकी खपचसे अंगुलियाए वा=अंगुलीसे सिलागाए वा=डंडेसे सिलागहत्थेण वा=बहुतसी छडोंसे न आलिहिज्जा= जराभी संघर्षण न करे, न विलिहिज्जा=वारम्वार संघर्षण न करे, न घट्टिज्जा= न घट्टन करे-न चलावे, न भिंदिज्जा=न भेदे, अन्नं=दूसरेसे न आलिहाविज्जा=जराभी संघर्षण न करावे, न विलिहाविज्जा=न वारम्वार संघर्षण करावे, न घट्टाविज्जा=न घट्टन करावे, न भिंदाविज्जा=न भेदन करावे, आलिहंतं वा= संघर्षण करनेवाले विलिहंतं वा=वार वार संघर्षण करनेवाले घट्टंतं वा=घट्टन करनेवाले भिंदंतं वा=भेदन करनेवाले अन्नं= दूसरेको न समणुजाणिज्जा= भला न समझे। इसलिये मैं जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत-

तथाहि शब्दस्य द्वे निमित्ते व्युत्पत्तिनिमित्त प्रवृत्तिनिमित्त चेति, तत्र व्युत्पत्तिलभ्यार्थप्रतीतौ प्रकारीभूतो धर्मो व्युत्पत्तिनिमित्तम्, यथा पङ्कजशब्दस्य पङ्कजनिकर्तृत्वम्। सङ्केतग्रहे प्रकारीभूतो धर्मः प्रवृत्तिनिमित्तम्, यथा पद्मत्वजातिः।

न च शब्दाना व्युत्पत्तिनिमित्तमेव प्रवृत्तिनिमित्तमिति वाच्यम्, पाचकादिशब्दे तथात्वेऽपि पङ्कजादिशब्दे तद्व्यभिचारात्। तथाहि–पङ्कजपद 'पङ्काज्जायते'

शब्दोंकी प्रवृत्ति दो प्रकारसे होती है। जैसे कमलका वाचक एक पङ्कज शब्द है दूसरा पद्म शब्द है। पकज शब्दका अर्थ है कीचडसे उत्पन्न होनेवाला, कमल कीचडसे उत्पन्न होता है इसलिए पकजत्व व्युत्पत्तिनिमित्त है। अर्थात् पङ्कज शब्दकी व्युत्पत्ति करनेसे जो अर्थ निकलता है वही अर्थ उसके वाच्यमें (अर्थमें) ठीक–ठीक घट जाता है, इसे व्युत्पत्तिनिमित्त कहते हैं।

दूसरा प्रवृत्तिनिमित्त है। शब्दके सकेतसे बोध्य अर्थमे विशेषणभूत धर्मको प्रवृत्तिनिमित्त कहते हैं, जैसे पद्मत्व या कमलत्व (कमलपन) जाति।

यदि कोई कहे कि– 'जो व्युत्पत्तिनिमित्त है वही प्रवृत्तिनिमित्त है तो ठीक नहीं है, क्योंकि यद्यपि 'पाचक' आदि शब्दोंमे जो व्युत्पत्तिनिमित्त है वही प्रवृत्तिनिमित्त है तथापि पङ्कज आदि शब्दोंमें यह कथन नहीं घटता, क्योंकि "पक (कीचड)से उत्पन्न होनेवाला पकज है"

શબ્દોની પ્રવૃત્તિ બે પ્રકારે થાય છે જેમકે–કમળનો વાચક એક પકજ શબ્દ છે, બીજો પદ્મ શબ્દ છે પકજ શબ્દનો અર્થ કીચડમા ઉત્પન્ન થએલુ એવો થાય છે કમળ કીચડમા ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી પકજત્વ વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત છે અર્થાત્ પકજ–શબ્દની વ્યુત્પત્તિ કરવાથી જે અર્થ નીકળે છે તે જ અર્થ તેના વાચ્યમા (અર્થમા) બરાબર બધ બેસે છે, તેથી તેને વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત કહે છે

બીજો પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે શબ્દના સ કેતથી બોધ્ય અર્થમા વિશેષણભૂત ધર્મને પ્રવૃત્તિનિમિત્ત કહે છે જેમકે–પદ્મત્વ યા કમલત્વ (કમળપણુ) જાતિ

જો કોઈ કહે કે–'જે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત છે તેજ પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે, તો તે બરાબર નથી કારણ કે જો કે 'પાચક' આદિ શબ્દોમા જે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત છે તેજ પ્રવૃત્તિનિમિત્ત છે, તથાપિ પકજ આદિ શબ્દોમા એ કથન બધ બેસતુ નથી, કારણ કે 'પક (કીચડ)માથી ઉત્પન્ન થવાવાળુ પકજ છે, –એ વ્યુત્પત્તિથી

भिक्षावृत्तित्वे सति भिक्षेतरवृत्तिरहितत्वं हि भिक्षुत्वम्, तथा च स्वामि निदेशमन्तरेणापि जलाशयादितोऽपि स्वहस्तेनापि जलादिग्रहणस्य तदीयजीविका न्तर्गतत्वेन,तथा यस्मिन् भिक्षाया अलाभे पचन पाचनादिक्रियया, कन्दमूलफला दिना च जीवननिर्वाहात्तेषामुक्तलक्षणभिक्षुत्वाभावात् ।

न च 'भिक्षते यदा भिक्षमाणास्तदा तथास्तु भिक्षुत्वं परन्त्वभिक्षमाणत्वावस्थायां कथं तेषु भिक्षुशब्दः प्रवर्त्तेत तदानीं भिक्षणव्यापाराभावात्?' इति वाच्यम्, उभयावस्थायामप्यवस्थाया भिक्षुशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तसद्भावेन भिक्षुशब्दप्रवृत्तिसम्भवात्,

उत्तर–जो भिक्षासे ही अपना निर्वाह करते हैं और सिवाय भिक्षाके अन्य वृत्तिको कदापि स्वीकार नहीं करते वे ही भिक्षु कहलाते हैं, सन्यासी आदि स्वामीकी आज्ञाके बिना भी जलाशय आदिसे भी जल आदि अपने हाथोंसे ले लेते हैं। जब भिक्षा नहीं मिलती तब पचन पाचनादि करते कराते हैं, तथा कन्द-मूल-फल-आदिसे निर्वाह कर लेते हैं, इसलिए वे भिक्षु नहीं कहला सकते।

प्रश्न–अच्छा, जो भिक्षासे ही अपना निर्वाह करे उसे भिक्षु कहते हैं तो साधु जब भिक्षाकी गवेषणा करेंगे तब ही भिक्षु कहलावेंगे, जिस समय स्वाध्याय आदि अन्य क्रिया करते होंगे उस समय भिक्षु कैसे कहलावेंगे ?

उत्तर–भिक्षाकी गवेषणा करते समय भी साधुको भिक्षु कह सकते हैं और न करते समय भी कह सकते हैं। दोनों अवस्थाओंमें भिक्षु शब्दकी प्रवृत्तिका कारण मौजूद है।

ઉત્તર–જેઓ ભિક્ષાથી જ પોતાનો નિર્વાહ કરે છે અને ભિક્ષા સિવાય અન્યવૃત્તિને કદાપિ સ્વીકારતા નથી તેઓ જ ભિક્ષુ કહેવાય છે સન્યાસી આદિ સ્વામીની આજ્ઞા વિના પણ જળાશય આદિથી પણ જળ આદિ પોતાના હાથે લઇ લે છે, જ્યારે ભિક્ષા નથી મળતી ત્યારે રાધવા–રધાવવાની ક્રિયા કરે છે, તથા કંદ મૂળ ફળ આદિથી નિર્વાહ કરી લે છે, તેથી તેઓ ભિક્ષુ કહેવાઇ શકતા નથી

પ્રશ્ન–ઠીક, જેઓ ભિક્ષાથી જ પોતાનો નિર્વાહ કરે તેમને ભિક્ષુ કહે છે તો સાધુ જ્યારે ભિક્ષાની ગવેષણા કરશે ત્યારે જ ભિક્ષુ કહેવાશે, જે સમયે સ્વાધ્યાય આદિ અન્ય ક્રિયા કરતા હશે તે સમયે ભિક્ષુ કેવી રીતે કહેવાશે ?

ઉત્તર–ભિક્ષાની ગવેષણા કરતી વખતે સાધુને ભિક્ષુ કહી શકાય છે અને ન કરતી વખતે પણ કહી શકાય છે બેઉ અવસ્થામા ભિક્ષુ શબ્દની પ્રવૃત્તિનુ કારણ મોજુદ છે

त्रिकाऽऽशसाविरहेण समितिगुप्त्यादिधारित्वरूपप्रवृत्तिनिमित्तमादाय भिक्षुत्व-समित्यादिपालकत्वयोर्भिक्षुलक्षणैकार्थसमवायेन कथञ्चित्तादात्म्यलक्षणेन भिक्षमाणेऽभिक्षमाणे वा भिक्षौ भिक्षुशब्दप्रवृत्तेः, वर्त्तमानपर्यायमात्रग्रहणलक्षणऋजुसूत्रनयाभिप्रायाच्च भिक्षुत्वसिद्धिः ।

ननु पूर्वोक्तलक्षण प्रवृत्तिनिमित्त कापायाम्बरधारिप्रभृतिष्वपि विद्यते, तेऽपि मार्ग पश्यन्त एव गच्छन्ति, तेन च तेपा समित्यादिपालकत्व, मौनादिसमवलम्बनेन गुप्तिपालकत्व चास्ति, ततश्च समिति गुप्तिपालकत्वरूपप्रवृत्तिनिमित्तस्य तेष्वपि सत्त्वेन कुतो न तेपा भिक्षुशब्दव्यवहार्यत्वमिति चेत् ?

यत इहलोकाद्याशसाविरहिततया समित्यादिपालकत्वमेव भिक्षुशब्दप्रवृत्ति-

---

निमित्तसे भिक्षु शब्दकी प्रवृत्ति होती है, क्योंकि भिक्षुत्व और समिति-गुप्तिपालकत्व दोनों धर्म भिक्षुमे कथञ्चित् तादात्म्यसम्बन्धरूप एकार्थ-समवायसे रहते हैं । इसलिए भिक्षा न करते समय भी 'समितिगुप्ति-पालकत्व' -रूप प्रवृत्ति-निमित्तसे भिक्षु शब्दकी प्रवृत्ति होती है ।

शङ्का-समिति-गुप्तिपालकता तो गेरुआ आदि वस्त्र पहननेवालोमे भी पाई जाती है । वे भी मार्ग देखकर ही चलते हैं इसलिए वे समितिका पालन करते हैं । और कभी-कभी मौन रखते हैं इसलिए गुप्तिका भी पालन करते हैं । जब उनमें समिति-गुप्तिपालकता पाई जाती है तो उन्हें भी भिक्षु क्यों नही कहना चाहिए ?

समाधान-इहलोक और परलोक सम्बन्धी आकाक्षा या स्वार्थरहित

શબ્દની પ્રવૃત્તિ થાય છે, કારણ કે ભિક્ષુત્વ અને સમિતિગુપ્તિ પાલકત્વ બેઉ ધર્મો ભિક્ષુમા કોઈપણ રીતે તાદાત્મ્ય સબધરૂપ એકાર્થ-સમવાયથી રહે છે તેથી ભિક્ષા ન કરતી વખતે પણ 'સમિતિગુપ્તિ પાલકત્વ' રૂપ પ્રવૃત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ શબ્દની પ્રવૃત્તિ થાય છે

શકા-સમિતિગુપ્તિ પાલકતા તો ગેરૂઆ આદિ વસ્ત્ર પહેરનારાઓમા પણ જોવામા આવે છે તેઓ પણ માર્ગ જોઈને જ ચાલે છે, તેથી તેઓ સમિતિનું પાલન કરે છે, અને કોઈ કોઈવાર મૌન રહે છે તેથી ગુપ્તિનું પણ પાલન કરે છે, જો તેઓમા સમિતિગુપ્તિ પાલકતા જોવામા આવે છે, તો તેમને પણ ભિક્ષુ કેમ ન કહેવા જોઈએ ?

સમાધાન-ઇહલોક અને પરલોક સબધી આકાક્ષા અથવા સ્વાર્થરહિત થઈને

इति व्युत्पत्त्या पङ्कजनिकर्तृत्वावच्छिन्ने शक्ततया पद्मरूपार्थबोधकं सदपि शैवालादिष्वतिप्रसङ्गवारणाय पद्मत्व(जाति)रूप प्रवृत्तिनिमित्तमादायैव पद्मं बोधयति न त्वितरथा ।

एवमत्रापि भिक्षुशब्दस्य भिक्षणं व्युत्पत्तिनिमित्तम्, भिक्षत इत्येवंशीलो भिक्षुरिति व्युत्पत्तेः । तथा चाऽभिक्षमाणस्यावस्थायां भिक्षुत्वाप्रसक्तावपि ऐकिस्यार

इस व्युत्पत्तिसे पंकज शब्द कमलका बोध तो कराता है परन्तु साथही साथ शैवाल तथा इस प्रकारसे पैदा होनेवाले गट्टलके फूल आदिका अर्थ भी उससे निकलता है, क्योंकि वे भी कीचड़से पैदा होते हैं। यदि व्युत्पत्तिनिमित्तको ही शब्दकी प्रवृत्तिमें कारण माना जाय तो शैवाल आदिमें भी पंकज शब्दका प्रयोग हो जायगा, इस आपत्तिका निवारण करनेके लिए व्युत्पत्तिनिमित्तके सिवाय प्रवृत्तिनिमित्त कमलत्व धर्मकी भी आवश्यकता है, इससे शैवाल आदिका निराकरण हो जाता है, दोनों निमित्तोंसे ठीक-ठीक अर्थका प्रतिपादन हो जाता है कि जो कीचड़से उत्पन्न हो और जिसमें कमलत्वरूप सामान्य (जाति) पाया जाय उसे पङ्कज कहते हैं।

इसी प्रकार यहाँ 'भिक्षु' शब्दका व्युत्पत्तिनिमित्त भिक्षण (याचना) धर्म है, जिस समय साधु भिक्षण नहीं करते उस समय व्युत्पत्तिनिमित्तसे भिक्षु नहीं कहला सकते, फिर भी 'समितिगुप्तिपालकत्व' –रूप प्रवृत्ति

પંકજ શબ્દ કમળનો બોધ તો કરાવે છે, પરન્તુ સાથે શેવાળ તથા એ પ્રકારે પેદા થનારા ધીતેલા શીંગોડા આદિનો અર્થ પણ તેમાંથી નીકળે છે, કારણ કે તે પણ કીચડમાંથી પેદા થાય છે જો વ્યુત્પત્તિનિમિત્તને જ શબ્દની પ્રવૃત્તિમાં કારણરૂપ માનવામાં આવે તો શેવાળ આદિમાં પણ પંકજ શબ્દનો પ્રયોગ થઈ જશે એ આપત્તિનું નિવારણ કરવાને માટે વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત ઉપરાંત પ્રવૃત્તિનિમિત્ત 'કમળત્વ ધર્મ'ની પણ આવશ્યકતા છે તેથી શેવાળ આદિનું નિરાકરણ થઈ જાય છે બેઉ નિમિત્તોથી બરાબર અર્થનું પ્રતિપાદન થઈ જાય છે કે જે કીચડમાંથી ઉત્પન્ન થાય અને જેમાં કમલત્વરૂપ સામાન્ય (જાતિ) મળી આવે તેને પંકજ કહે છે

એ રીતે અહીં 'ભિક્ષુ' શબ્દનો વ્યુત્પત્તિનિમિત્ત ભિક્ષણ (યાચના) ધર્મ છે જે સમયે સાધુ ભિક્ષણ કરતો નથી, તે સમયે વ્યુત્પત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ નથી કહેવાતો, તો પણ 'સમિતિગુપ્તિ–પાલકત્વ' રૂપ પ્રવૃત્તિનિમિત્તથી ભિક્ષુ

तेषामुद्गमोत्पादनादिदोषदुष्टान्नभोजित्व-सचित्ततोयकन्दमूलाद्यासेवित्व-पचन-पाचनादिक्रियेच्छानिवृत्त्यभावादिदोषदूषितत्वात्, अतो ये समितिगुप्तिधारका भिक्षामात्रोपजीविनोऽचित्तामेषणीयामुद्गमोत्पादनादिदोषराहित्येन विशुद्धां प्रमाणोपेतां च भिक्षां गृह्णन्ति, प्राणात्ययसमयेऽपि पचनपाचनादिनवकोटिविशुद्धिं नैव खण्डयन्ति त एव भिक्षुपदव्यवहारयोग्यता लभन्ते, इति विवेलिमम् ।

यद्वा क्षोभते क्षुभ्यति वा=अन्तर्भावितण्यर्थतया क्षोभयति=संचालयति चतुर्गतिकसंसारे सकलप्राणिनः इति क्षुप्=अष्टविधं कर्म (अन्तर्भावितण्यर्थाद् भौवादिकाद् दैवादिकाद्वा 'क्षुभ सञ्चलने' अस्माद्धातोः 'सम्पदादित्वात् क्विप्) तद् ज्ञानदर्शनादिना भिनत्ति=क्षपयतीति भिक्षुः (पृषोदरादित्वात्सिद्धिः) ॥

वाले सन्यासी आदि वास्तवमें भिक्षु नहीं कहला सकते, क्योंकि वे उद्गम-उत्पादना आदि दोषोंसे दूषित अन्न आदि अंगीकार करते सचित्त जल लेते हैं, सचित्त कन्द मूल आदिका सेवन करते हैं, पचन पाचनादि क्रियाएँ करते हैं और इच्छाका दमन नहीं करते हैं। अतः वास्तवमें वे ही भिक्षु कहलाने योग्य हैं जो समिति-गुप्तिके धारक तथा भिक्षामात्रसे उपजीवी हैं, अचित्त एषणीय उद्गम आदि दोषरहित विशुद्ध प्रमाणोपेत भिक्षा लेते हैं और प्राण जानेका अवसर आ जाने पर भी पचन-पाचन आदि नव कोटिकी विशुद्धताको खण्डित नहीं करते।

अथवा संसारके समस्त शरीरधारियोंको क्षोभित करनेवाले ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोंको भेदनेवाले भिक्षु कहलाते हैं।

આદિ વસ્તુતઃ ભિક્ષુ કહેવાઈ શકતા નથી, કારણ કે તેઓ ઉદ્ગમ ઉત્પાદના આદિ દોષોથી દૂષિત અન્ન આદિ અંગીકારે છે, સચિત્ત જળ લે છે, સચિત્ત કંદ-મૂળ આદિનું સેવન કરે છે, પચન-પાચનાદિ ક્રિયાઓ કરે છે અને ઇચ્છાનું દમન કરતા નથી એથી કરીને વસ્તુતઃ તેઓ જ ભિક્ષુ કહેવાવા યોગ્ય છે કે જેઓ સમિતિ ગુપ્તિના ધારક તથા ભિક્ષામાત્રથી ઉપજીવી છે, અચિત્ત, એષણીય, ઉદ્ગમાદિ-દોષથી રહિત, વિશુદ્ધ, પ્રમાણોપેત ભિક્ષા લે છે, અને પ્રાણ જવાનો અવસર આવે તો પણ પચન-પાચનાદિ નવ કોટિની વિશુદ્ધતાને ખંડિત કરતા નથી

અથવા સંસારના સર્વ શરીરધારીઓને ક્ષોભિત કરનારા જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોને ભેદનારા ભિક્ષુ કહેવાય છે

निमित्तम्, तच्च तेषु न विद्यते तेषां तथाविधप्रवृत्तेः, पैदिककण्टकादिनिवृत्त्यर्थत्वात्, यशःकीर्त्यादिसम्पादनार्थत्वाच्च, नातस्तेषां वस्तुतः समितिगुप्त्यादिपालकत्वं विद्यते । अन्यथा–'यावन्निगडबद्धोऽहं तावदेनं न हनिष्यामि, यावन्न समालपामि तावदहं मृषात्यागी, यावत्सुप्तोऽहं तावदचौर्यव्रती'–इत्याद्यभिमाना अपि केचिद् व्रतधारित्वेन व्यपदिश्येरन्, किन्तु तेषामान्तरिकेच्छायाः सततानुबन्धितया विद्यमानत्वान्न व्रतित्वमस्ति ।

किञ्च भिक्षुम्मन्येषु काषायाम्बरधारिषु नैवाऽयं भिक्षुशब्द आत्मसत्तां लभते,

---

होकर जो समिति-गुप्तिका पालन करते हैं वे ही भिक्षु कहलाते हैं। उनमें ऐसा नहीं पाया जाता। वे हिंसासे बचनेके लिए मार्ग देख कर गमन नहीं करते, किन्तु काँटे आदि लग जानेके भयसे मार्ग देखकर गमन करते हैं, और यश कीर्त्ति सम्पादन करनेके लिए मौन रखते हैं, इसलिए वे वास्तवमें समिति–गुप्तिके पालक नहीं हो सकते। यदि उन्हें समिति गुप्तिका पालक माना जाय तो वह मनुष्य भी व्रती कहलायगा, जो ऐसी प्रतिज्ञा करे कि–"मैं जब तक बेड़ीमें जकड़ा हुआ हूँ तब तक इसे नहीं मारूँगा" "जब तक न बोलूँ तब तक मृषावादका त्यागी हूँ" "जब तक सोया रहूँगा तब तक अचौर्य व्रतका पालन करूँगा" वास्तवमें ऐसे मनुष्य व्रती नहीं कहलाते हैं, क्योंकि उनकी आन्तरिक इच्छा पापोंसे निवृत्त नहीं हुई है।

गेरुआ आदि वस्त्र धारण करनेवाले और अपनेको भिक्षु समझने

જેઓ સમિતિ ગુપ્તિનું પાલન કરે છે તેઓજ ભિક્ષુ કહેવાય છે તેઓમાં એવું જોવામાં આવતું નથી તેઓ હિંસાથી બચવાને માટે માર્ગ જોઈને ગમન કરતા નથી, પરન્તુ કાંટા વગેરે વાગી જવાના ભયથી માર્ગ જોઈને ચાલે છે અને યશ કીર્તિ સંપાદન કરવાને માટે મૌન રાખે છે, તેથી તેઓ વસ્તુતાએ સમિતિ–ગુપ્તિના પાલક નથી થઈ શકતા જો તેમને સમિતિ ગુપ્તિના પાલક માનવામાં આવે તો એ માણસ પણ વ્રતી કહેવાશે કે જે એવી પ્રતિજ્ઞા કરે કે– "જ્યાં સુધી હું બેડીથી બંધાયેલો છું ત્યાંસુધી હું તેને નહિ મારૂં" "જ્યાં સુધી હું ન બોલું ત્યાંસુધી મૃષાવાદનો ત્યાગી છું" "જ્યાં સુધી સૂઈ રહીશ ત્યાં સુધી અચૌર્યવ્રતનું પાલન કરીશ" વસ્તુતઃ એવો માણસ વ્રતી નથી કહેવાતો, કારણ કે એની આંતરિક ઈચ્છા પાપથી નિવૃત્ત થઈ નથી

ગેરૂઆ આદિ વસ્ત્રો ધારણ કરનારા અને પોતાને ભિક્ષુ માનનારા સંન્યાસી

रेकान्तस्थानस्थितोऽद्वितीयः, भावतो रागद्वेषरहितो वा, परिषद्गतः=परि=समन्ततः सीदन्ति=गच्छन्ति गत्वा सङ्गता भवन्ति जना अस्यामिति परिषत्=सभा, ता गतः परिषद्गतः=साध्वादिसङ्घस्थित इत्यर्थः, सुप्तः=स्वाध्यायादिजनितश्रमापनोदार्थं रजनीमध्यमयामयुगलमात्र निद्रितः, जाग्रत्=इन्द्रियादिकरणकविषयज्ञानयोग्यावस्थां प्राप्त.-निद्राविमुक्तो भवेत्। एवंविधो भिक्षुर्वक्ष्यमाणरीत्या दुष्कृत्य न करोतीति प्रदर्श्यते-'से' इति, सः-भिक्षुः पृथिवीं=खनिसमुद्भूतमृत्तिकारूपाम्, भित्तिं=सरित्तीरमृत्तिकाम्, शिला=विशालपाषाणलक्षणाम्, लेष्टु=पिण्डात्मकमृत्खण्डम्, सरजस्क=सचित्तरजोऽवगुण्ठितम्, काय=शरीरम्, वस्त्र=चोलपट्टप्रमुख च, पात्रादीनामप्युलक्षणमेतत्, एतेषु अन्यतम किमपि वस्तु हस्तेन=करेण, पादेन=चरणेन, काष्ठेन=खदिरादिदारुखण्डेन, किलिञ्चेन=वंशादिकञ्चिकया, अङ्गुल्या=करचरणावयवविशेषेण, शलाकया=लोहादिरचितया, शलाकाहस्तेन=पुञ्जीकृतशलाकाभिर्वा नाऽऽलिखेत्=सकृत् अल्प वा न सघर्षयेत्, न विलिखेत्=बहुशोऽविरत विशेषतो वा

स्थित और भावसे रागद्वेषरहित होनेसे एकाकी, अथवा साधुओंके सघमे स्थित, स्वाध्याय आदिसे उत्पन्न श्रमको दूर करनेके लिए रात्रिके बीचके दो प्रहरोंमे सोते हुए, तथा जागते हुए भिक्षु, आगे कहे हुए सावद्य व्यापार नही करते हैं।

खानसे निकली हुई मृत्तिकारूप पृथ्वीपर, नदीके किनारेकी मिट्टी पर, पत्थरकी शिलापर, मिट्टीके ढेलेपर, सचित्त धूलीसे धूसर काय, चोलपट्ट आदि वस्त्र तथा पात्र पर, अर्थात् इनमेसे किसीभी पदार्थपर हाथसे, पैरसे, काष्ठसे, घास आदिकी सटक (छडी-खापटी)से, अगुलीसे, लोहे आदिकी बनी हुई छडसे, अथवा बहुतसी छडों (सलाइयों)से, न स्वय एकबार लकीर खींचे, न बार-बार लकीर खींचे अर्थात् इनको

રહિત હોવાને કારણે એકાકી અથવા સાધુઓના સઘમા સ્થિત, સ્વાધ્યાય આદિથી ઉત્પન્ન થત શ્રમને દૂર કરવાને માટે રાત્રિની વચ્ચેના બે પહોરમા સૂતા તથા જાગતા ભિક્ષુ, આગળ કહેલા સાવદ્ય વ્યાપારને કરતા નથી

ખાણુમાથી નીકળેલી માટીરૂપ પૃથ્વી પર, નદીના કિનારાની માટી પર, પત્થરની શિલા પર, માટીના ઢેફા પર, સચિત્ત ધૂળથી ધૂસર કાય, ચોલપટ્ટો આદિ વસ્ત્ર તથા પાત્ર પર અર્થાત્ એમાના કોઈ પણ પદાર્થ પર હાથથી, પગથી, કાષ્ઠથી, વાસ આદિના ખપાટથી, આગળીથી, લોઢા આદિની સળીથી અથવા અનેક સળીઓથી ન પોતે એકવાર રેખા દોરે, ન વારવાર રેખા દોરે, અર્થાત્

भिक्षुकी=साध्वी। 'संयत०' इत्यादीनि भिक्षुविशेषणानि भिक्षुक्या अपि बोध्यानि उभयोः समानाचारीकत्वात्।

(१) पृथिवीकाययतना।

संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यात पापकर्मा=संयतः-वर्तमानकालिकसर्वसावद्यानुष्ठाननिवृत्तः, विरतः-अतीतकालिकपापात्-जुगुप्सापूर्वकं, भविष्यति च संवरपूर्वकमुपरतो निवृत्त इत्यर्थः, अत एव प्रतिहत=वर्तमानकाले स्थित्यनुभागह्रासेन नाशितं, प्रत्याख्यात=पूर्वकृतातिचारनिन्दया भविष्यत्यकरणेन निराकृतं पापकर्म=पापानुष्ठानं येन स प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, संयतश्चासौ विरतश्च (विशेषणयोरपि परस्परविशेष्यविशेषणभावविवक्षया समासो गतप्रत्यागतादिवत्) संयतविरतश्चासौ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा चेति तथोक्तः, दिवा=दिवसे, रात्रौ=रजन्याम्, एककः=एकाकी-द्रव्यतो ध्यानादिहेतो

भिक्षुकी साध्वीको कहते हैं। संजय आदि विशेषण साध्वीके साथ भी समझना चाहिए क्योंकि साधु और साध्वीका आचार प्रायः समान है।

(१) पृथिवीकाययतना।

वर्तमान कालके सब प्रकारके सावद्य व्यापारसे निवृत्त होनेके कारण संयत, अतीतकालीन पापोंसे जुगुप्सा पूर्वक और भविष्यत्कालीन पापोंसे संवर-पूर्वक निवृत्त होनेसे विरत, संयत और विरत होनेके कारण वर्तमान कालमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धको ह्रास करके पापकर्मको नष्ट करनेवाले, दिनमें, रात्रिमें, द्रव्यसे ध्यान आदिके लिए एकान्तमें

ભિક્ષુકી સાધ્વીને કહે છે સંજય આદિ વિશેષણ સાધ્વીની સાથે પણ સમજવાનું છે, કારણ કે સાધુ અને સાધ્વીનો આચાર પ્રાય સમાન છે

(૧) પૃથિવીકાયયતના

વર્તમાનકાળના સર્વ પ્રકારના સાવદ્ય-વ્યાપારથી નિવૃત્ત હોવાને કારણે સંયત, અતીતકાલીન પાપોથી જુગુપ્સાપૂર્વક અને ભવિષ્યત્કાલીન પાપોથી સંવર પૂર્વક નિવૃત્ત હોવાથી વિરત, સંયત અને વિરત હોવાને કારણે વર્તમાન કાળમાં સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધનો હ્રાસ કરીને પાપકર્મને નષ્ટ કરનારા, દિવસમાં અને રાત્રે, દ્રવ્યથી ધ્યાન આદિને માટે એકાન્તમાં સ્થિત અને ભાવથી રાગ-દ્વેષ

मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥२॥१६॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा स उदकं वा अवश्याय वा हिमं वा मिहिकां वा करकं वा हरतनुं वा शुद्धोदकं वा उदकार्द्रं वा कायं,उदकार्द्रं वा वस्त्रं,सस्निग्धं वा कायं,सस्निग्धं वा वस्त्रं नाऽऽमृशेन्न संस्पृशेन्नाऽऽपीडयेन्न प्रपीडयेन्नास्फोटयेन्न प्रस्फोटयेन्नातापयेन्न प्रतापयेत् ,अन्येन नाऽऽमर्शयेन्न संस्पर्शयेन्नाऽऽपीडयेन्न प्रपीडयेन्नाऽऽस्फोटयेन्न प्रस्फोटयेन्नाऽऽतापयेन्न प्रतापयेत्, अन्यमामृशन्तं वा, संस्पृशन्तं वा, आपीडयन्तं वा, प्रपीडयन्तं वा,आस्फोटयन्तं वा, प्रस्फोटयन्तं वा, आतापयन्तं वा, प्रतापयन्तं वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥२॥१६॥

(२) अप्काययतना.

सान्वयार्थः——संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहां से=वह–उदगं वा=जलको हिमं वा=हिमको महियं वा=कुहरे-धूअर-को करगं वा=ओलेको हरतणुगं वा=घास पर बूंद-बूंद पड़ा हुआ जलविशेषको सुद्धोदगं वा=आकाशसे गिरे हुए निर्मल जलको (और) उदउल्लं वा=जलसे भीगे हुए-गीले कायं=शरीरको उदउल्लं वा वत्थं=जलसे भीगे हुए वस्त्रको ससिणिद्धं वा कायं=कुछ-कुछ गीले शरीरको ससिणिद्धं वा वत्थं= कुछ कुछ गीले वस्त्रको न आमुसिज्जा=जराभी स्पर्श न करे, न संफुसिज्जा= अधिक स्पर्श न करे, न आवीलिज्जा=पीडित न करे, न पवीलिज्जा=अधिक पीडित न करे, न अक्खोडिज्जा=स्फोटन न करे, न पक्खोडिज्जा=प्रस्फोटन न करे, न आयाविज्जा=तपावे नहीं, न पयाविज्जा=अधिक तपावे नहीं, अन्नं=

न घट्टयेत्=न चालयेत्, न भिन्द्यात्=न विदारयेत्=न विदीर्णतां नयेत्, तथाऽन्येन= (सूत्रे द्वार्थत्वाद्द्वितीया) स्व-व्यतिरिक्तजनेन नाऽऽलेखयेत्, न विलेखयेत्, न घट्टयेत्=न भेदयेत्, आलिखन्तं वा विलिखन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा अन्य= स्वव्यतिरिक्तं न समनुजानीयात्=नानुमन्येत, इत्येवं भगवदुपदिष्टाचारपद्धतिसंरक्षणपरायणान्तःकरणोऽहं यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेनेत्यादि पूर्ववत् ॥१॥१५॥

सम्प्रति क्रमप्राप्तामप्काययतनामाह–'से भिक्खू वा०' इत्यादि।

मूलम्–से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय पच्चक्खायपावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से उदगं वा ओसं वा हिमं वा महियं वा करगं वा हरतणुगं वा सुद्धोदगं वा उदउल्लं वा कायं उदउल्लं वा वत्थं ससिणिद्धं वा कायं ससिणिद्धं वा वत्थं न आमुसिज्जा न संफुसिज्जा न आविलिज्जा न पविलिज्जा न अक्खोडिज्जा, न पक्खोडिज्जा, न आयाविज्जा, न पयाविज्जा, अन्नं आमुसंतं वा, संफुसंतं वा आवीलतं वा पवीलतं वा, अक्खोडंतं वा, पक्खोडंतं वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं

न घिसे तथा न हिलावे, न विदारे, न दूसरेसे ये सब क्रियाएँ करावे और न ये सब क्रियाएँ करते हुए अन्यको भला जाने।

हे गुरुमहाराज! इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान् द्वारा उपदेश किए हुए आचारकी रक्षा करनेमें मनको तत्पर रखनेवाला मैं तीन करण तीन योगसे यह सब कार्य नहीं करूँगा ॥ २ ॥ १५ ॥

अब अप्कायकी यतनाका प्रतिपादन करते हैं–'से भिक्खू०' इत्यादि।

એને ન ઘસે તથા ન હલાવે, ન વિદારે, ન બીજાઓ પાસે એ બધી ક્રિયાઓ કરાવે અને ન એ બધી ક્રિયાઓ કરનારા અન્યને ભલો જાણે.

હે ગુરૂ મહારાજ! એ પ્રકારે સર્વજ્ઞ ભગવાને ઉપદેશેલા આચારની રક્ષા કરવામાં મનને તત્પર રાખનારો એવો હું ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી એ બધાં કાર્ય કરીશ નહિ (૧) (૧૫)

હવે અપ્કાયની યતનાનું પ્રતિપાદન કરે છે–से भिक्खू ઇત્યાદિ

शुद्धोदकम्=आकाशात्पतित स्वभावनिर्मल सलिलम् । तथा उदकार्द्र=जलक्लिन्न काय वस्त्र च । सस्निग्धम्=स्निग्धमिति भावक्तान्तम्, स्नेहः=स्निग्धत्वमिति तदर्थस्तेन सह वर्त्तमान तत्=बिन्दुरहितमीषदार्द्रं काय वस्त्र च, स्वय न आमृशेत्=आ=ईषत् 'आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे' इति कोशात्, मृशेत्=स्पृशेत्, न स्पर्शयुक्त कुर्यादित्यर्थः। न सस्पृशेत्=न स=प्रकर्षेण स्पृशेत् । नापीडयेत्, न प्रपीडयेत् । नाऽऽस्फोटयेत् , न प्रस्फोटयेत् । नाऽऽतापयेत्, न प्रतापयेत् । शेष सुगमम् । एषु ('आमृशेत् सस्पृशेत्' इत्यादिषु) सर्वत्र धात्वर्थाऽविशेषेऽप्युपसर्ग(आ. स. प्र.)-कृतवाच्यवैलक्षण्यान्न पौनरुक्त्यदोषावसर इति बोध्यम् ॥२॥१६॥

सम्प्रति तेजस्काययतनामाह-'से भिक्खू वा' इत्यादि ।

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, से अगणि वा इगाल वा मुम्मुर वा अच्चि वा जाल वा अलाय वा सुद्धागणि वा उक्क वा न उजेज्जा न घट्टेज्जा न भिंदेज्जा न उज्जालेज्जा न पज्जालेज्जा न निव्वावेज्जा, अन्न

आदिके अकुरोंपर जमनेवाले जलबिन्दु), वर्षाका निर्मल जल, इन सबको, तथा जलसे बहुत गीला या थोडा गीला शरीर या वस्त्र, इन सबको स्वय एक बार स्पर्श न करे, बार-बार स्पर्श न करे, वस्त्रको एकबार न निचोडे, बार-बार न निचोडे, न एकबार झटके, न बार-बार झटके, न एकबार धूपमें सुखावे, न बार-बार सुखावे, न ये सब क्रियाएँ दूसरेसे करावे, न करते हुएको भला जाने, शेष सुगम है ॥२॥१६॥

अग्निकायकी यतना कहते हैं-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

જળ એ સવને, તથા જળથી બહુ લીલુ અથવા થોડુ લીલુ શરીર યા વસ્ત્ર, એ સર્વને સ્વય એકવાર સ્પર્શ નહિ કરૂ, વારવાર સ્પર્શ નહિ કરૂ, વસ્ત્રને એકવાર નહિ નીચોવુ, વારવાર નહિ નીચોવુ, એકવાર નહિ ઝાટકુ, વારવાર નહિ ઝાટકુ, એકવાર તડકામા નહિ સુકાવુ, વારવાર નહિ સુકાવુ, નહિ એ બધી ક્રિયાઓ બીજા પાસે કરાવુ, અને કરનારને નહિ ભલો જાણુ શેષ ભાગ સહેલો છે (૨) (૧૬)

અગ્નિકાયની યતના કહે છે-से भिक्खू वा० ઇત્યાદિ

दूसरेसे न आमुसाविज्जा=जरामी स्पर्श न करावे, न सफुसाविज्जा=अधिक स्पर्श न करावे, न आवीलाविज्जा=पीडित न करावे, न पवीलाविज्जा= अधिक पीडित न करावे, न अक्खोडाविज्जा=स्फोटन न करावे, न पक्खो डाविज्जा=प्रस्फोटन न करावे, न आयाविज्जा=तपावे नहीं, न पयाविज्जा= अधिक तपावे नहीं, आमुसन्त वा=जरामी स्पर्श करनेवाले सफुसन्तं वा= अधिक स्पर्श करनेवाले आवीलंत वा=पीडित करनेवाले पवीलन्त वा=अधिक पीडित करनेवाले अक्खोडन्त वा=स्फोटन करनेवाले पक्खोडंत वा= प्रस्फोटन करनेवाले आयावंत वा=तपानेवाले पयावतं वा=अधिक तपानेवाले अन्नं=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे। जावज्जीवाए= जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करंतंपि= करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते !=हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि= आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥२॥१६॥

(२) अप्काययतना।

टीका—स भिक्षुर्वेत्यादि पूर्ववत्। उदकं=प्रसङ्गात्कूपादिजलम् भूगर्भोद्भव स्रोतोजलमित्यर्थः। अवश्याय=मेघमन्तरेण रात्रौ-पतित सूक्ष्मतुषाररूपमप्कायम्। हिम=शीतर्त्तौ शीताधिक्येन घनीभूतमप्कायम्-'बर्फ'इति लोके प्रसिद्धम्। मिहिका= हेमन्त-शिशिरयोः कदाचित२ सान्द्रतया धूमवत्प्रतिभासमानस्वरूपा कुज्झटिकाम् 'धूँअर' इति लोकप्रसिद्धाम्। करकं=किरति=क्षरति पानीयमिति करकं=वर्षोपलम्। हरतनुम्=भूमिमुद्भिद्य तृणाङ्कुराद्युपरि बिन्दुरूपेण स्थितमप्कायविशेषम्।

(२) अप्काययतना।

भिक्षु और भिक्षुकी आदि पदोंका अर्थ पहलेकी भाँति समझना चाहिए। कुएका पानी अर्थात् भूमिमे सोता (झरना)से निकलनेवाला जल,ओस,पाला,कुहरा(धूँअर),ओला(गडा),हरतनु(भूमिको भेद कर गेहूँ

(२) અપ્કાયયતના

ભિક્ષુ અને ભિક્ષુકી આદિ શબ્દોનો અર્થ પહેલાની પેઠે સમજવો કૂવાનું પાણી અર્થાત્ ભૂમિમાના સોત (ઝરણ)થી નીકળતું જળ, ઓસ, ઠાર, ઝાકળ, કરા, હરતનુ (ભૂમિને ભેદીને ઘઉં આદિના અંકુરો ઉપર જામનારા જલબિન્દુઓ), વરસાદનું નિર્મળ

न घट्टेज्जा=चलावे, नहीं, न भिंदेज्जा= भेदे नहीं, न उज्जालेज्जा=थोडाभी जलावे नही, न पज्जालेज्जा=प्रज्वलित करे नहीं, न निव्वावेज्जा=बुझावे नहीं, अन्न=दूसरेसे न उजावेज्जा=बढवावे नहीं, न घट्टावेज्जा=चलवावे नहीं, न भिंदावेज्जा=भिदावे नहीं, न उज्जालावेज्जा=न जलवावे, न पज्जालावेज्जा=न प्रज्वलित करावे, न निव्वावेज्जा=न बुझवावे, उजत वा=बढानेवाले घट्टत वा=चलानेवाले भिंदत वा=भेदनेवाले उज्जालत वा=जलानेवाले पज्जालत वा=प्रज्वलित करनेवाले निव्वावत वा=बुझानेवाले अन्न=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे । जावज्जीवाए=जीवन-पर्यन्त (इसको) तिविह्=कृत–कारित–अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेण=तीन प्रकारके मणेण=मनसे वायाए=वचनसे काएण=कायसे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करतपि= करते हुएभी अन्न=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नही समझूँगा । भते !=हे भगवन् ! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरु साक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाण=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥३॥१७॥

टीका–अग्नि=वह्निम् ,अङ्गार=निर्धूमज्वालज्वलदिन्धनम् ,मुर्मुर=प्रविरलस्फुलिङ्ग-समिश्रभस्मरूप तुषानल वा, 'मुर्मुरस्तु तुषानल.' इति वैजयन्तीकोशात्, अजालिण्डिकाग्नि वा, अर्चि'=मूलाग्निविच्छिन्ना ज्वालाम्, ज्वाला=दह्यमानतृणादिसम्बद्धाऽऽमूलोदूर्ध्वप्रसारितेजोराशिम्, अलात=ज्वलदग्रभाग काष्ठम्, शुद्धाग्निम्=अयःपिण्डानुसबद्ध विद्युदादिरूप वा, उल्का=मूलवह्नेर्विच्छिन्न समन्तात्प्रसर्पदग्निकणात्मिकाम्, (चिनगारी, तडगिया, इति भाषा) स्वय न उत्सिञ्चेत्=न तने-

(३) तेजस्कायथतना ।

अग्नि, अगारा, भूभल (गर्म राख) बकरीकी लेंडीकी आग, मूलसे टूटी हुई ज्वाला, मूलसे अविच्छिन्न ज्वाला, लुआठा (जलती हुई लकडी), गर्म लोहेके गोलेकी या बिजलीकी अग्नि, अथवा चिनगारी

(૩) તેજસ્કાયયતના

અગ્નિ, અગારા, ગરમ રાખ, બકરીની લીંડીની આગ, મૂળથી તૂટેલી જ્વાળા, મૂળથી અવિચ્છિન્ન જ્વાલા, બળતા લાકડા, ગરમ લોખડના ગોળાને અથવા વિજળીને અગ્નિ, અથવા ચીણગારી આદિમા પોતે ઇધન (બળતણ) નહિ

न उंजावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा, न उज्जालावेज्जा न पज्जालावेज्जा न निव्वावेज्जा, अन्नं उंजंतं वा घट्टतं वा भिंदतं वा उज्जालतं वा पज्जालंतं वा निव्वावतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥३॥१७॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, सः अग्निं वा अङ्गारं वा मुर्मुरं वा अर्चिर्वा ज्वालां वा अलातं वा शुद्धाग्निं वा उल्कां वा नोत्सिञ्चेत् न घट्टयेत् न भिन्द्यान्नोज्ज्वालयेन्न प्रज्वालयेन्न निर्वापयेद्, अन्येन नोत्सेचयेन्न घट्टयेन्न भेदयेन्नोज्ज्वालयेन्न प्रज्वालयेन्न निर्वापयेद्, अन्यमुत्सिञ्चन्तं वा घट्टयन्तं वा भिन्दन्तं वा उज्ज्वालयन्तं वा प्रज्वालयन्तं वा निर्वापयन्तं वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानामि। तस्माद् भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि ॥३॥१७॥

(३) तेजस्काययतना.

सान्वयार्थः—संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी, से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी, दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें, एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा सघमें स्थित, सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहां से=वह अगणिं वा=अग्निको इंगालं वा=अंगारेको मुम्मुरं वा=मुर्मुर-भूभूदर (तुषाग्नि) को अच्चिं वा=ज्योति मूलाग्निसे विच्छिन्न ज्वालाको, जालं वा=मूलाग्निसे अविच्छिन्न जलती हुई ज्वालाको, अलायं वा=जिसका अग्रभाग जल रहा हो ऐसे काठको, सुद्धागणिं वा=शुद्ध अग्नि लोहपिण्डमें संबद्ध अग्नि अथवा बिजलीरूप अग्निको, उक्कं वा=चिनगारियोंको न उंजेज्जा=इंधन डालकर बढावे नहीं,

ननेन वा तालवृन्तेन वा पत्रेण वा पत्रभङ्गेन वा शाखया वा शाखाभङ्गेन वा पिहुनेन वा पिहुनहस्तेन वा चैलेन वा चैलकर्णेन वा हस्तेन वा मुखेन वा, आत्मनो वा काय बाह्य वाऽपि पुद्गल न फूत्कुर्यात्, न वीजयेत्, अन्येन न फूत्कारयेन्न वीजयेद्, अन्य फूत्कुर्वन्त वा वीजयन्त वा न समनुजानीयात। यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि। तस्य भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मान व्युत्सृजामि ॥४॥१८॥

(४) वायुकाययतना.

सान्वयार्थः—सजयविरयपडिहयपचक्खायपावकम्मे=वर्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अति-चारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा सभमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहाँ से=वह सिएण वा=चामरसे, विहुणेणवा=पखेसे, तालिअटेण वा=ताडके पखेसे, पत्तेण वा=पत्तेसे, पत्तभगेण वा=बहुतसे पत्तोंसे, साहाए वा=शाखा डाली-से, साहाभंगेण वा=शाखाके खण्डसे, पिहुणेण वा=मोरपीछीसे, पिहुणहत्थेण वा=मोरपीछियोंके समूहसे, चेलेण वा=कपडेसे, चेलकण्णेण वा=कपडेके छोर-पल्ले से, हत्थेण वा=हाथसे, मुहेणवा=मुखसे, अप्पणो वा=अपने कायं=शरीरको, वा=अथवा बाहिर वि पुग्गल=बाहरी पुद्गलोंको भी न फुमेज्जा=फूक न मारे, न वीएज्जा=चँवर आदिसे हवा न करे, अन्न=दूसरेसे न फुमाविज्जा=फूक न मारावे, न वीआवेज्जा=हवा न करावे, फुमत वा=फूकनेवाले वीअत वा=हवा करनेवाले अन्न=दूसरेको न समणुजाणिज्जा=भला न समझे। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविह=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेण=मनसे वायाए=वचनसे काएण=कायसे न करेमि=न करूँगा,न कारवेमि=न कराऊँगा, करतंपि=करते हुए भी अन्न=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि=आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माका त्यागता हूँ ॥४॥१८॥

न्धनादिकं प्रक्षिपेत्, न घट्टयेत्=न सञ्चालयेत्, न भिन्द्यात्=दण्डेष्टकाखण्डादिना न स्फोटयेत्, न उज्ज्वालयेत्=तालवृन्तादिना सकृज्ज्वलन्तं वा न तापयेत् न वर्धयेदित्यर्थः, न प्रज्वालयेत्=पतत बहुशो वा न प्रज्वलितं कुर्यात्, न निर्वापयेत्=न विध्यापयेत् न निर्वाणं नयेदित्यर्थः, अन्येन न उन्से नयेदित्यादि सर्वं सुगमम् ।३।१७।

वायुकाययतनामाह–' से भिक्खू वा० ' इत्यादि ।

मूलम्–से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते जागरमाणेवा, से सिएण वा विहुणेण वा तालिअंटेण वा पत्तेण वा पत्तभंगेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेलकन्नेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं बाहिरं वावि पुग्गलं न फुमेज्जा न वीएज्जा, अन्नं न फुमावेज्जा न वीआवेज्जा, अन्नं फुमंतं वा वीअंतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥४॥१८॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स सितेन वा विधू-

आदिमें स्वयं इन्धन न डाले, न संचालन करे (न संघट्टा करे), न दण्ड ईंट आदिसे उसे भेदे, न पंखा आदिसे एकवार प्रज्वलित करे, न वार-वार प्रज्वलित करे, न बुझावे। न ये सब क्रियाएँ दूसरेसे करावे, न करते हुएकी अनुमोदना करे, इत्यादि सब पूर्ववत् ॥३॥१७॥

वायुकायकी यतना कहते हैं–'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

નાખે, નહિ સંચાલન કરે (નહિ સંઘટન કરે), નહિ દંડ કે ઈંટ આદિથી તેને ભેદે, નહિ પંખા વગેરેથી તેને એકવાર પ્રજ્વલિત કરે, નહિ વારવાર પ્રજ્વલિત કરે, નહિ બુઝાવે, નહિ એ બધી ક્રિયાઓ બીજા પાસે કરાવે, કરનારની નહિ અનુમોદના કરે ઇત્યાદિ પૂર્વવત્ (૩) (૧૭)

વાયુકાયની યતના કહે છે–से भिक्खू वा० ઇત્યાદિ

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, से वीएसु वा वीयपइट्ठेसु वा रूढेसु वा रूढपइट्ठेसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्नपइट्ठेसु वा सचित्तेसु वा सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीइज्जा न तुयट्टिज्जा, अन्न न गच्छाविज्जा न चिट्ठाविज्जा न निसीयाविज्जा न तुयट्टाविज्जा, अन्न गच्छत वा चिट्ठतं वा निसीयत वा तुयट्टतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥५॥१९॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा सयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिपद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स बीजेषु वा बीजप्रतिष्ठितेषु वा रूढेषु वा रूढप्रतिष्ठितेषु वा जातेषु वा जातप्रतिष्ठितेषु वा हरितेषु वा हरितप्रतिष्ठितेषु वा छिन्नेषु वा छिन्नप्रतिष्ठितेषु वा सचित्तेषु वा सचित्तकोल-प्रतिनिश्रितेषु वा न गच्छेन्नतिष्ठेन्न निषीदेन्न त्वग्वर्तयेत्, अन्य न गमयेन्न स्थापयेन्न निपादयेन्न त्वग्वर्त्तयेत्, अन्य गच्छन्त वा तिष्ठन्त वा निषीदन्त वा त्वग्वर्त्तयन्त वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि। तस्य भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मान व्युत्सृजामि ॥५॥१९॥

(५) वनस्पतिकाययतना.

सान्वयार्थ —सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्तमानकालीन सावद्य व्यापारोसे रहित, भूत भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके, तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें, राओ वा=अथवा

(४) वायुकाययतना।

टीका—सितेन=चामरेण श्वेतत्वगुणत्वेनोपचारात्, विधूननेन=वीजनकेन, तालवृन्तेन=ताले=करतले= वृन्तं=बन्धनमस्येति, तालस्येव वृन्तमस्येति, ताड्यते= करादिनाऽऽहन्यत इति तालम्, उभयोरेकत्वस्मरणात्, तादृशं वृन्तं यस्येति वा तालवृन्तं=तालपत्रादिरचितं व्यजनं तेन, उपलक्षणमिदं विद्युद्व्यजनादीनामपि, पत्रेण=कमलिनीदलादिना, पत्रभङ्गेन=दलशकलेन, शाखया=वृक्षभुजया, शाखाभङ्गेन=तदेकदेशेन, पिहुनेन=बर्हिबर्हेण (मयूरपिच्छेन) पिहुनहस्तेन=पुञ्जीकृतमयूरपिच्छेन, चैलेन=वस्त्रेण, चैलकर्णेन=अञ्चलेन(वस्त्रप्रान्तेन) हस्तेन=करेण, मुखेन= वदनेन, आत्मनः=स्वस्य कायं=शरीरं बाह्यमपि पुद्गलम्=उष्णदुग्धादिकं वा स्वयं न फूत्कुर्यात्=न मुखेन धमेत्, न वीजयेत्=चामरादिना वातं न सञ्चालयेत्, अन्येन वा न फूत्कारयेत्, इत्याद्यन्यत्सुबोधम् ॥४॥१८॥

वनस्पतिकाययतनामाह—'से भिक्खू वा०' इत्यादि

(४) वायुकाययतना।

चाँवरसे, पखेसे, ताड़के बने हुए पखेसे अथवा अन्य बिजली आदिके किसी प्रकारके पखेसे, कमल आदिके पत्तेसे, पत्तेके टुकड़ेसे, वृक्षकी शाखासे, शाखाके खण्डसे, मयूरके पिच्छसे, मयूरके बहुतसे पिच्छोंसे, वस्त्रसे, वस्त्रके पल्ले (छोर)से, हाथसे, मुखसे, अपने शरीरको तथा अन्य गरम दूध आदि पुद्गलोंको न स्वयं फूँके, न चाँवर आदिसे वींजे वायुका सचालन करे, न दूसरेसे फूकावे, न वीजावे, न फूँकते हुए तथा वींजते हुए अन्यको भला जाने, इत्यादि सुगम ही है ॥ ४ ॥ १८ ॥

वनस्पतिकायकी यतना कहते हैं—से भिक्खू वा०' इत्यादि।

(४) वायुकाययतना.

ચામરથી, પંખાથી, તાડના બનાવેલા પંખાથી, અથવા અન્ય વિજળી આદિના કોઇ પ્રકારના પંખાથી, કમળ આદિના પાંદડાથી, પાંદડાના ટુકડાથી, વૃક્ષની શાખાથી, શાખાના ખંડથી, મયૂરના પિચ્છથી, મયૂરના અનેક પીંછાથી, વસ્ત્રથી, વસ્ત્રના છેડાથી, હાથથી, મુખથી, પોતાના શરીરને, તથા બીજા ગરમ દૂધ આદિ પુદ્ગલોને નહિ સ્વયં ફૂંકે, નહિ ચામર આદિથી વીંઝે-વાયુનું સંચાલન કરે નહિ બીજા પાસે ફુંકાવે, કે ફુંકનાર તથા વીંઝનાર અન્યને ભલો જાણે ઇત્યાદિ સરલ છે (૪) (૧૮)

વનસ્પતિકાયની યતના કહે છે—से भिक्खू वा० ઇત્યાદિ

मूलम्-से भिक्खू वा भिक्खुणी वा सजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा, से बीएसु वा बीयपइट्ठेसु वा रूढेसु वा रूढपइट्ठेसु वा जाएसु वा जायपइट्ठेसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठेसु वा छिन्नेसु वा छिन्नपइट्ठेसु वा सचित्तेसु वा सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा न गच्छेज्जा न चिट्ठेज्जा न निसीइज्जा न तुयट्टिज्जा, अन्न न गच्छाविज्जा न चिट्ठाविज्जा न निसीयाविज्जा न तुयट्टाविज्जा, अन्न गच्छत वा चिट्ठतं वा निसीयत वा तुयट्टतं वा न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविह तिविहेणं मणेण वायाए काएण न करेमि न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भते! पडिक्कमामि निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥५॥१९॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा सयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा, स बीजेषु वा बीजप्रतिष्ठितेषु वा रूढेषु वा रूढप्रतिष्ठितेषु वा जातेषु वा जातप्रतिष्ठितेषु वा हरितेषु वा हरितप्रतिष्ठितेषु वा छिन्नेषु वा छिन्नप्रतिष्ठितेषु वा सचित्तेषु वा सचित्तकोलप्रतिनिश्रितेषु वा न गच्छेन्नतिष्ठेन्न निषीदेन्न त्वग्वर्त्तयेत्, अन्य न गमयेन्न स्थापयेन्न निषादयेन्न त्वग्वर्त्तयेत्, अन्य गच्छन्त वा तिष्ठन्त वा निषीदन्त वा त्वग्वर्त्तयन्त वा न समनुजानीयात्। यावज्जीवया त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि। तस्य भदन्त! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मान व्युत्सृजामि ॥५॥१९॥

(५) वनस्पतिकाययतना

सान्वयार्थ —सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोसे रहित, भूत भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोसे रहित, वर्त्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके, तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें, राओ वा=अथवा

रात्रिमें, एगओ वा=अकेला परिसागओ वा=अथवा सभमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ जागरमाणे वा=अथवा जागता हुआ रहे, वहाँ से=वह बीएसु वा=शालि आदि बीजोंपर, बीयपइट्ठेसु वा=बीजोंपर रखे हुए शयन आसन आदि पर, रूढेसु वा=अङ्कुरित वनस्पति पर, रूढपइट्ठेसु वा=अङ्कुरित वनस्पति पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, जाएसु वा=पत्ते आनेकी अवस्थावाली वनस्पति पर, जायपइट्ठेसु वा=पत्ते आनेकी अवस्थावाली वनस्पति पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, हरिएसु वा=हरित पर, हरियपइट्ठेसु वा=हरित पर रखे हुए शयन आसन आदि पर, छिन्नेसु वा=कटे हुए हरित पर छिन्नपइट्ठेसु वा=कटे हुए हरित पर रखे हुए आसन आदि पर, सचित्तेसु वा=फिर अन्य सचित्त अण्डा आदि सहित वनस्पति पर, सचित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा=घुने हुए-सडे काठ पर न गच्छेज्जा=गमन न करे, न चिट्ठेज्जा=न खड़ा होवे न निसीइज्जा=न बैठे, न तुअट्टिज्जा=न सोवे, अन्नं=दूसरेको न गच्छावेज्जा=न चलावे न चिट्ठावेज्जा=न खडा करे न निसीयावेज्जा=न बैठावे, न तुअट्टाविज्जा=न सुलावे, गच्छंतं वा=चलते हुए चिट्ठंतं वा=खडे होते हुए निसीयंतं वा=बैठते हुए तुयट्टंतं वा=सोते हुए अन्नं=दूसरेको न समणुजाणेज्जा=भला न जाने। जावज्जीवाए=जीवनपर्यन्त (इसको) तिविहं=कृत कारित अनुमोदनारूप तीन करणसे (तथा) तिविहेणं=तीन प्रकारके मणेणं=मनसे वायाए=वचनसे काएणं=कायासे न करेमि=न करूँगा, न कारवेमि=न कराऊँगा, करतंपि= करते हुएभी अन्नं=दूसरेको न समणुजाणामि=भला नहीं समझूँगा। भंते!=हे भगवन्! तस्स=उस दण्डसे पडिक्कमामि=पृथक् होता हूँ, निंदामि= आत्मसाक्षीसे निन्दा करता हूँ, गरिहामि=गुरुसाक्षीसे गर्हा करता हूँ, अप्पाणं=दण्ड सेवन करनेवाले आत्माको वोसिरामि=त्यागता हूँ ॥५॥१९॥

(५) वनस्पतिकाययतना

टीका—बीजेषु=शाल्यादिषु, बीजप्रतिष्ठितेषु=बीजोपरिस्थितेषु शयनाऽऽसनादिषु, एवमग्रेऽपि प्रतिष्ठितपदव्याख्या कार्या, रूढेषु=अङ्कुरितेषु, जातेषु=परो

(५) वनस्पतिकाययतना।

शालि आदि बीजों पर, बीजों पर रखे हुए शय्या आसन आदि पर, अङ्कुरों

(५) वनस्पतिकायथतना

डांगर आदि बीजो पर, बीजो पर मूकेला शय्या ... पर,

द्गणाऽनन्तरकालिकावस्था सम्प्राप्तेषु पत्रितेष्वित्यर्थः, हरितेषु=कीरमयूरपक्षसच्छायता गतेषु, छिन्नेषु=कुठारादिना सञ्छिद्य पृथक्कृतेषु आर्द्रेषु, सचित्तेषु=अन्येष्वपि सजीवाण्डादिषु, सचित्तकोलप्रतिनिश्रितेषु=सचित्तैः=सचेतनैः, कोलैः=घुणैः प्रतिनिश्रितेषु=आश्रितेषु जीवद्घुणयुक्तकाष्ठादिष्वित्यर्थः, न गच्छेत्, न तिष्ठेत्, न निषीदेत्=नोपविशेत्, न त्वग्वर्त्तयेत्=वर्त्तनं वर्त्तः=परिवर्त्तनम् (भावे घञ्) त्वचः=त्वगिन्द्रियस्य शरीरस्येत्यर्थात् वर्त्तः त्वग्वर्त्तः=वामपार्श्वतः परावृत्त्य दक्षिणपार्श्वेन, दक्षिणपार्श्वत' परावृत्त्य वामपार्श्वेन वा स्वपनम्, त्वग्वर्त्तं करोति त्वग्वर्त्तयति, (त्वग्वर्त्तशब्दात् 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचि टिलोपे धातुत्वाल्लडादयः) तस्य विधौ त्वग्वर्त्तयेत्=सुप्यादित्यर्थः ॥५॥१९॥

अथ त्रसकाययतनामाह-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

पर अङ्कुरोंपर रक्खे हुए शयन आदि पर, अङ्कुर अवस्थाके पश्चात् पत्रित अवस्थाको प्राप्त वनस्पतिपर, अथवा उसपर रक्खे हुए शयन आदिपर, कटी हुई वनस्पतिपर, हरी वनस्पतिपर, तथा इनके सिवाय सजीव अंडा आदिपर, घुने (सुले) हुए काष्ठ आदिपर न स्वयं गमन करे, न खडा होवे, न बैठे, तथा बाँयाँ पसवाडा बदलकर दाहिने पसवाडेसे और न दाहिना पसवाडा बदलकर बायें पसवाडेसे सोवे अर्थात् पसवाडा न बदले, ये सब क्रियाएँ दूसरेसे भी न करावे, न करते हुएको भला जाने। इसलिए तीन करण तीन योगसे इनका त्याग करता हूँ, इत्यादि व्याख्यान पूर्ववत् ॥५॥१९॥

अथ त्रसकायकी यतना कहते हैं-'से भिक्खू वा०' इत्यादि ।

અંકુરો પર, અંકુરો ઉપર મૂકેલા શયનાદિ પર, અંકુર અવસ્થા પછી પત્રિત અવસ્થાને પ્રાપ્ત થએલી વનસ્પતિ પર, અથવા તે પર મૂકેલા શયનાદિ પર, કાપેલી વનસ્પતિ પર, લીલી વનસ્પતિ પર તથા એ ઉપરાંત સજીવ ઇંડા આદિ પર, સળેલા કાષ્ઠ આદિ પર નહિ હું સ્વયં ગમન કરૂં, નહિ ઉભો રહું, નહિ બેસું, તથા ડાબું પડખું બદલીને જમણે પડખે અને જમણું પડખું બદલીને ડાબે પડખે નહિ સૂઉં અર્થાત્ પડખાં નહિ બદલું, એ બધી ક્રિયાઓ બીજા પાસે નહિ કરાવું, નહિ કરનારને ભલો જાણું એ રીતે ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી એનો ત્યાગ કરૂં છું ઇત્યાદિ વ્યાખ્યાન પૂર્વવત્ (૫) (૧૯)

હવે ત્રસકાયની યતના કહે છે-સે ભિક્ખૂ વા૦ ઇત્યાદિ

मूलम्—से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयगं वा कुंथुं वा पिवीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कवलंसि वा पायपुच्छणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उंडगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय ऐगंतमवणेज्जा नोणं संघायमावज्जेज्जा ॥६॥२०॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा संयतविरतप्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा दिवा वा रात्रौ वा एकको वा परिषद्गतो वा सुप्तो वा जाग्रद्वा स, कीटं वा पतङ्गं वा कुन्थुं वा पिपीलिकां वा हस्ते वा पादे वा बाहौ वा ऊरौ वा उदरे वा शीर्षे वा वस्त्रे वा पात्रे वा कम्बले वा पादप्रोञ्छनके वा रजोहरणे वा गोच्छे वा उन्दके वा दण्डके वा पीठके वा फलके वा शय्यायां वा संस्तारके वा अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे उपकरणजाते ततः संयत एव प्रत्युपेक्ष्य२ प्रमृज्य२ एकान्तेऽपनयेन्नैनं संघातमापादयेत् ॥६॥२०॥

(६) त्रसकाययतना.

सान्वयार्थः——संजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मे=वर्त्तमानकालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, भूत-भविष्यत्कालीन सावद्य व्यापारोंसे रहित, वर्तमान कालमें भी स्थिति और अनुभागकी न्यूनता करके तथा पहले किये हुए अतिचारोंकी निन्दा करके सावद्य व्यापारके त्यागी से=वह पूर्वोक्त भिक्खू वा=साधु भिक्खुणी वा=अथवा साध्वी दिया वा=दिनमें राओ वा=अथवा रात्रिमें एगओ वा= अकेला परिसागओ वा=अथवा संघमें स्थित सुत्ते वा=सोया हुआ अथवा जागरमाणे वा=जागता हुआ रहे, वहां से=वह कीडं वा=कीडेको पयगं वा= पतंगेको कुंथुंवा=कुंथुवाको पिवीलियं वा=कीडी- चिऊटीको हत्थंसि वा=हाथ पर पायंसि वा=पैरपर बाहुंसि वा=भुजापर ऊरुंसि वा=जानूपर उदरंसि वा=पेटपर सीसंसि वा=सिरपर वत्थंसि वा=वस्त्रपर पडिग्गहंसि वा=पात्रपर वा=

कम्बल पर पायपुञ्छणंसि वा=पैर पोंछनेके उपकरणविशेषपर रयहरणंसि वा=रजोहरण पर गोच्छगंसि वा=पूजनी पर उडगंसि वा=स्थण्डिलपात्र पर दंडगंसि वा=दंड पर पीढगंसि वा=चौकी पर फलगंसि वा=पाटे पर सेज्जंसि वा=शरीरपरिमित शयन करनेके उपकरण पर संथारगंसि वा=संस्तारक-साढे तीन हाथ परिमित बिछौने पर (अथवा) अन्नयरंसि वा=फिर दूसरे तहप्पगारे=इसी प्रकारके उवगरणजाए=उपकरणों पर (लगे हुए पूर्वोक्त कीडे आदिको) तओ=उस स्थान-हाथ पैर आदिसे संजयामेव=यतनाके साथही पडिलेहिय२=वार-वार प्रतिलेखन करके पमज्जिय२=वार-वार पूजकर एगंत=एकान्त-निरुपद्रव स्थान-में अवणेज्जा=ले जाकर रखदे, (किन्तु उनको) नोणं संघायमावज्जेज्जा=एकठा न करे ॥२०॥

(६) त्रसकाययतना ।

टीका-हस्ते, पादे, बाहौ, ऊरौ=जानूपरिभागे, उदरे, शीर्षे, वस्त्रे=मुखवस्त्रिकाचोलपट्टादौ, प्रतिग्रहे=प्रतिगृह्णाति=आधत्ते स्वस्मिन् भक्तपानादिकमिति प्रतिग्रहः=पात्र तस्मिन्, कम्बले, पादप्रोञ्छने=प्रोञ्छ्यते=प्रमृज्यतेऽनेनेति प्रोञ्छनं=प्रमार्जनसाधनम्, पादयोः प्रोञ्छनं=पादप्रोञ्छनं तस्मिन्=पादप्रोञ्छनसाधने वस्त्रखण्डे, रजोहरणे, गोच्छे सचित्तरजः संसृष्टचरणप्रमार्जनिकायाम् 'पूँजनी' इति भाषाप्रसिद्धायाम्, उण्डके=स्थण्डिलपात्रे, दण्डे=वृद्धत्वादिना प्रस्थानविप्लवगतिभिर्व्रतिभिरवलम्बनाय धार्यमाणे, नान्यथा, "थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दंडए वा" इत्यादिना स्थविर-स्थविरभूमिप्राप्तातिरिक्तमुनीनां

---

(६) त्रसकाययतना ।

हाथ, पैर, भुजा, जाँघ, उदर, मस्तक, मुखवस्त्रिका, चोलपट्ट आदि वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोञ्छन=पैर पोंछने का वस्त्रखण्ड, रजोहरण, गोछा=पूँजनी (पैरोंमें लगी हुई रजको पोंछनेका उपकरण), स्थण्डिलपात्र, वृद्धावस्था आदिके कारण गमन करनेमें असमर्थ मुनिके (चलनेमें) सहायक दण्ड, क्योंकि भगवानने "स्थविर और स्थविरभूमिको प्राप्त मुनियोंको ही दण्ड धारण करना

---

(૬) ત્રસકાયયતના

હાથ, પગ, ભુજા, જાંગ ઉદર, મસ્તક, મુખવસ્ત્રિકા, ચોળપટો આદિ વસ્ત્ર પાત્ર, કામળી, પગલૂછણું, રજોહરણ, પૂંજણી, સ્થંડિલપાત્ર, વૃદ્ધાવસ્થાઆદિને કારણે ચાલવામાં અસમર્થ મુનિનો સહાયક એવો દંડ, કારણ કે ભગવાને "સ્થવિર અને સ્થવિર ભૂમિને પ્રાપ્ત મુનિઓને માટે જ દંડ ધારણ કલ્પનીય છે" એવું કહ્યું છે,

दण्डाग्राह्यत्वस्य भगवता स्पष्टं प्रतिपादितत्वात्, पीठके=काष्ठनिर्मितचतुरस्राऽऽसनविशेषे "चौकी, चौरंग" इति- भाषाप्रसिद्धे, फलके=शयनोपयोगिकाष्ठविरचितपट्टादिरूपे, शय्यायां=शयनोपकरणरूपायां वसतौ वा, अस्या अपि धर्मोपकरणत्वात्, संस्तारके=संस्तार्यते=विस्तार्यते शयनार्थिभिरिति संस्तारः (सं+स्तृञः कर्मणि घञ्) स एव संस्तारकः=(स्वार्थिकः कः) अर्द्धतृतीयहस्तप्रमाणस्तस्मिन्, दर्भादिनिर्मितास्तरणे इत्यर्थः। अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे=तत्सदृशे संयमोपयोगिनि उपकरणजाते=उपक्रियन्ते=उपयुज्यन्ते संयमादिदाढर्यकृते यानि तान्युपकरणानि-साधूनां संयमसाधनाङ्गीभूतोपकारकवस्त्रपात्रादीनि तेषां जातं=समूहस्तस्मिन् उपकरणमात्रे इत्यर्थः, समापतितं कीटादिकत्रसजीवम्, ततः=तस्मात् हस्तादेः स्थानात् संयत एव=सम्यग् यतमान एव 'संजयामेव' इति मूलपाठे आर्षत्वाद्दीर्घो मकारश्च, प्रतिलेख्य२=प्रत्यवेक्ष्य२ सम्यगवलोक्येत्यर्थः, प्रमृज्य२=पौनःपुन्येन प्रमार्जनिकादिद्वारा निस्सार्य एकान्ते=निरुपद्रवस्थाने अपनयेत्=नीत्वा स्थापयेत् किन्तु संघातम्=एकत्र पुञ्जीकरणेन पीडाजनकपरस्परशरीरसंघर्षकारणदृढसंयोगं सामान्येन सम्मेलनं वा नो=नैव आपादयेत्=संप्रापयेत् 'णं'-मिति वाक्यालङ्कारे। 'संघातो दृढसंयोगः' इति वाचस्पत्यम्। यत्तु केचित्-

---

कल्पनीय है" ऐसा कहा है, अन्यको दण्ड धारण करना मना है। अत एव उनके द्वारा गृहीत दण्ड पर तथा चौकी पाटा (पट्ट) शय्या अर्थात् उपाश्रय, क्योंकि यह भी एक धर्मोपकरण है, संस्तारक अर्थात् दर्भ आदिका बिछौना, तथा संयममें उपयोगी इस प्रकारका अन्य कोई उपकरण, इन सबमें कीट आदि त्रस जन्तु हों तो उन्हें संयमी स्वयं सम्यक् प्रकार प्रतिलेखन करके बार-बार पूँजनी आदिसे पूँजकर बाधा-रहित एकान्त स्थानमें यतनासे रक्खें, किन्तु उन्हें इकट्ठा करके न रक्खें, क्योंकि ऐसा करनेसे उनको पीडा होनेकी संभावना है। कितनेक

અન્યને દંડ ધારણની મનાઈ છે, એટલે એમણે ધારણ કરેલા દંડ પર, તથા ચોકી, પાટ, શય્યા અર્થાત્ ઉપાશ્રય, કારણ કે એ પણ એક ધર્મોપકરણ છે સંસ્તારક અર્થાત્ દર્ભ આદિનું બિછાનું, તથા સંયમમાં ઉપયોગી એ પ્રકારના અન્ય કોઈ ઉપકરણો, એ સર્વમાં કીડી-કીડા આદિ ત્રસ જંતુ હોય તો તેને સંયમી સ્વયં સમ્યક્ પ્રકારે પ્રતિલેખન કરીને વારંવાર પૂંજણી આદિથી પૂંજીને બાધારહિત એકાન્ત સ્થાનમાં યતનાથી મૂકે, પરન્તુ એને એકઠા કરીને ન રાખે, કારણ કે એમ કરવાથી તેમને પીડા થવાની સંભાવના રહે છે કેટલાક કહે છે કે રક્ષાને

एकान्तप्रदेशे रक्षार्थं त्रसजीवाना स्थापने साधूनामसयतिवैयावृत्त्यदोषेण महाव्रत-भङ्गो भवतीत्याहुस्तदेतद्भगवदाज्ञाविरुद्धम्, अनेनापि सूत्रेण धर्मोपकरणस्थाना त्रसजीवाना निरुपद्रवप्रदेशे रक्षार्थं यतनया स्थापनविधानात् ।६। ॥२०॥

इत्येव षट्कायतनामभिधाय सम्प्रति तदपरिपालनपरिणामदारुणत्वं वर्ण्यते-'अजय चरमाणो' इत्यादि ।

मूलम्-अजय[1] चरमाणो[2] य[5], पाणभूयाइ[3] हिंसइ[4] ।
वधई[8] पावयं[6] कम्म[7], त[9] से[10] होइ[13] कडुय[12] फलं[11] ॥१॥

छाया-अयत चरश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥१॥

यतना न पालन करने का बुरा फल कहते हैं-

सान्वयार्थः-अजय=अयतनापूर्वक चरमाणो=गमन करता हुआ साधु पाणभूयाइ=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है य=और पावय कम्म=पापकर्मको बधई=बाधता है, त=उस कारण से=उस पाप कर्मका फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥१॥

कहते हैं कि-रक्षाके लिए त्रस जीवको एकान्त स्थानमें रखनेमें साधुको असयतिकी वेयावच्च करनेरूप दोष लगता है और उससे महाव्रतका भग होता है। यह उनका कहना भगवानकी आज्ञासे विरुद्ध है, क्योंकि इस सूत्रसे भगवानने स्पष्ट विधान किया है कि धर्मोपकरणमें स्थित त्रस जीवोंको रक्षाके लिए निरुपद्रव स्थानमें यतनासे रखना चाहिये ॥ ६ ॥ २० ॥

इस प्रकार षट्कायकी यतना कहकर "उसकी रक्षा नहीं करनेसे भयङ्कर परिणाम होता है" इस बातका उपदेश देते हैं-'अजय चरमाणो' इत्यादि ।

માટે ત્રસ જીવને એકાંત સ્થાનમાં રાખવામાં સાધુને અસયતિની વૈયાવચ્ચ કરવા રૂપ દોષ લાગે છે અને તેથી મહાવ્રતનો ભંગ થાય છે એમનું એવું કથન ભગવાનની આજ્ઞાથી વિરૂદ્ધ છે, કારણ કે આ સૂત્રથી ભગવાને સ્પષ્ટ વિધાન કર્યું છે કે ધર્મોપકરણમાં સ્થિત ત્રસ જીવોની રક્ષાને માટે નિરૂપદ્રવ સ્થાનમાં યતનાથી તેમને મૂકવા જોઇએ (૯) (૨૦)

એ રીતે ષટ્કાયની યતના કહીને 'એમની રક્ષા નહિ કરવાથી ભયંકર પરિણામ આવે છે, એ વાતનો ઉપદેશ આપે છે-अजय चरमाणो ઇત્યાદિ

टीका–अयत=यतनारहित यथास्यात्तथा चरन्=गच्छन् 'संयतः' इति शेषः, प्राणभूतानि=प्राणन्तीति प्राणाः=उच्छ्वासादिमन्तो द्वीन्द्रियप्रभृतयो जीवाः, भूतानि=भवनशीला एकेन्द्रियाः पृथिव्यादयः, प्राणाश्च भूतानि चेति प्राणभूतानि (द्वन्द्वत्वात्परवल्लिङ्गता) तानि=त्रसस्थावराणीत्यर्थः, हिनस्ति=हन्ति, च=तथा पापकं=प=पङ्किलमर्थान्मलिनं भावमापयति=प्रापयतीति, प=क्षेमम् आ=समन्तात् पिबति=नाशयतीति, पान–पास्तमर्थात्प्राणिनामात्मानन्दरसपानम् आप्नोति= प्राप्नोति=गृह्णातीति, नरकादिकुगतिषु जीवान् पातयतीति, कर्मरजोभिरात्मानं पाशयति[1]=मलिनयतीति वा पापं तदेव पापकं=(कुत्सायां कन्) ज्ञानावरणीयादि, कर्म=तत्सम्बन्ध्यतिसूक्ष्मपुद्गलसञ्चयं बध्नाति=उपार्जयति, तत्=तेन हेतुना, तस्य= पापकर्मणः, फलं=परिणतिः कटुकं=दुःखदम्, यद्वा 'कटुकफलं'-मिति च्छाया,

१ पाशयति=पांशुर्धूलिः, 'पांशुर्ना न द्वयो रजः' इत्यमरः, सोऽस्यास्तीति पांशुमान्, पांशुमन्तं करोति पाशयति 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचीष्ठ वद्भावात् 'विन्मतोर्लुक्' इति मतुपो लुक्' ततष्टिलोपः ।

यतनारहित गमन करनेवाला संयत (साधु) द्वीन्द्रिय आदि प्राणोंकी तथा एकेन्द्रिय पृथिवीकाय आदि भूतोंकी अर्थात् त्रस और स्थावर जीवोंकी हिंसा करता है, और ज्ञानावरणीयादि पापकर्मका उपार्जन करता है । पाप (१) मलिनताको प्राप्त कराता है, (२) नरक आदि अधो-गतिमें पहुँचाता है, (३) आत्माके हितका नाश करता है, (४) प्राणियोंके आत्मिक आनन्द रसको सुखा डालता है, (५) आत्माको कर्मरूपी रजसे मलिन कर देता है, इसलिए उसे पाप कहते हैं । अर्थात् अयतनापूर्वक प्रवृत्ति करनेसे जीवोंकी हिंसा होती है,और ज्ञानावरणीय आदि अशुभ कर्मोंका बन्ध भी होता है, और उस पापकर्मका परिणाम दुःखदायी

યતનારહિતપણે ગમન કરનાર સંયત (સાધુ) દ્વીન્દ્રિય આદિ પ્રાણોની તથા એકેન્દ્રિય પૃથિવીકાય આદિ ભૂતોની અર્થાત્ ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિંસા કરે છે અને જ્ઞાનાવરણીયાદિ પાપકર્મનું ઉપાર્જન કરે છે પાપ-(૧) મલિનતાને પ્રાપ્ત કરાવે છે, (૨) નરક આદિ અધોગતિમાં પહોંચાડે છે, (૩) આત્માના હિતનો નાશ કરે છે, (૪) પ્રાણીઓના આત્મિક આનંદ રસને સુકાવી નાખે છે (૫) આત્માને કર્મરૂપી રજથી મલિન કરી નાખે છે, તેથી તેને પાપ કહે છે અર્થાત્ અયતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરવાથી જીવોની હિંસા થાય છે, અને જ્ઞાનાવરણીય આદિ અશુભ કર્મોનો બંધ પણ ઉત્પન્ન થાય છે એ પાપકર્મનું પરિણામ દુઃખ

तत्=पापकर्म तस्य=अयतनया गच्छतः कटुकफल=कटुकम् अनिष्ट फल=परिणामो यस्य तत् अशुभफलप्रदमित्यर्थः, भवति=जायते। अत्र पक्षे 'कटुक'-मित्यत्रानुस्वार आर्पत्वात् ॥१॥

मूलम्-अजय चिट्ठमाणो य पाणभूयाइं हिंसइ ।
वधई पावय कम्मं, तं से होइ कडुय फलं ॥ २ ॥

छाया—अयत तिष्ठंश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापक कर्म, तत्तस्य भवति कटुक फलम् ॥२॥

सान्वयार्थः-अजय=अयतनापूर्वक चिट्ठमाणो=खडा होता हुआ साधु पाणभूयाइ=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है य=और पावयं कम्म=पाप कर्मको बधई=बाधता है, त=उस कारण से=उस पापकर्म का फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥२॥

टीका—'अजय चिट्ठमाणो' इत्यादि। अयत=यतनारहित तिष्ठन्=करचरणादिप्रसारणेनाऽनवहित दण्डवदूर्ध्वावस्थान कुर्वन्। शेप प्राग्वद्व्याख्येयम् ॥२॥

मूलम्-अजय आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
वधई पावयं कम्मं, त से होइ कडुय फल ॥ ३ ॥

छाया—अयतमासीनश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापक कर्म, तत्तस्य भवति कटुक फलम् ॥३॥

सान्वयार्थ -अजय=अयतना-पूर्वक आसमाणो=बैठता हुआ साधु पाणभूयाइ=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावय कम्म=पापकर्मको बधई=बाधता है, त=उस कारण से=उस पापकर्म का फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥३॥

होता है, तथा उसका कडुआ फल भोगना पडता है ॥ १ ॥
'अजय चिट्ठमाणो' इत्यादि। अयतनापूर्वक खडा होनेसे पापकर्म बधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥ २ ॥

હાથી આવે છે, તથા એના કડવા ફળ ભોગવવા પડે છે (૧)
अजय चिट्ठमाणो ઇત્યાદિ અયતનાપૂર્વક ઊભા રહેવાવાથી પાપકર્મ બંધાય છે અને તેના કડવા ફળ આવે છે (૨)

टीका—'अजय आसमाणो' इत्यादि। अयतमासीनः=प्रमार्जनं विनाऽनुपयुक्तोऽनवहित उपविशन्नित्यर्थः। शेषं पूर्ववत् ॥३॥

मूलम्—अजयं सयमाणो य पाणभूयाइं हिंसइ।
वंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥४॥

छाया—अयतं स्वपंश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥४॥

सान्वयार्थः—अजयं=अयतना-पूर्वक सयमाणो=सोता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस-स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावयं कम्मं=पापकर्मको वंधई=बांधता है, तं=उस कारण उस पापकर्म का फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥४॥

टीका—'अजयं सयमाणो' इत्यादि। अयतं स्वपन्=शय्याप्रमार्जनादिकं विना प्रकामशय्यादिना दिवसे वा शयानः। शेषं पूर्ववत् ॥४॥

मूलम्—अजयं भुंजमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
वंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं ॥५॥

छाया—अयतं भुञ्जानश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥५॥

सान्वयार्थः—अजयं=अयतना-पूर्वक भुंजमाणो=खाता हुआ साधु पाणभूयाइं=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावयं कम्मं=पाप-

---

'अजयं आसमाणो' इत्यादि। भूमि आदिकी विना प्रमार्जना किये ही अयतनापूर्वक बैठनेसे पापकर्म बंधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥३॥

'अजयं सयमाणो' इत्यादि। अयतनासे अर्थात् शय्याकी प्रमार्जना न करके शयन करनेसे पापकर्म बंधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥४॥

अजयं आसमाणो ઇત્યાદિ ભૂમિ આદિની પ્રમાર્જના કર્યા વિના અયતના પૂર્વક બેસવાથી પાપકર્મ બંધાય છે, અને તેના કડવા ફળ મળે છે (૩)

अजयं सयमाणो ઇત્યાદિ અયતનાથી અર્થાત્ શય્યાની પ્રમાર્જના કર્યા વિના શયન કરવાથી પાપકર્મ બંધાય છે અને એના કડવા ફળ મળે છે (૪)

कर्मको वधई=बांधता है, त=उस कारण से=उस पापकर्मका फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥५॥

टीका—'अजय भुंजमाणो' इत्यादि। अयत भुञ्जानः=यथाप्राप्तलब्धान्त-प्रान्ताद्याहार संयोजनादिमण्डलदोषापरिहारेण चपड-चपड-शब्दपूर्वकमभ्यवहरन्। अन्यत् सुबोधम् ॥५॥

मूलम्-अजय भासमाणो य, पाणभूयाइ हिंसइ।
वधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुअं फलं ॥ ६ ॥

छाया—अयत भाषमाणश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति।
बध्नाति पापकं कर्म, तत्तस्य भवति कटुकं फलम् ॥६॥

सान्वयार्थः—अजय=अयतना-पूर्वक भासमाणो=बोलता हुआ साधु पाण-भूयाइ=त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावयं कम्मं=पापकर्मको वधई=बांधता है, तं=उस कारण से=उस पापकर्मके फलं=फल कडुयं=दुःखदायी होइ=होता है ॥६॥

टीका—'अजय भासमाणो' इत्यादि। अयतं भाषमाण =अयतनया ब्रुवन्।

'अजय भुंजमाणो' इत्यादि। साधुके कल्पके अनुसार प्राप्त हुए आहारका संयोजना आदि मण्डल दोषोंका परित्याग न करके 'चपड-चपड' आदि शब्द करते हुए भोजन करनेसे पापकर्म बंधता है और उसका फल कडुआ होता है ॥५॥

'अजय भासमाणो' इत्यादि। अयतनापूर्वक भाषण करनेसे हिंसा होती है और पापकर्मका बंध होता है। उस पापकर्मका फल कडुआ होता है।

अजय भुंजमाणो ઈત્યાદિ સાધુના કલ્પને અનુસાર પ્રાપ્ત થએલા આહારના સંયોજના આદિ મંડલ દોષોનો પરિત્યાગ કર્યા વિના 'ચપડ-ચપડ' અવાજ કરતા ભોજન કરવાથી પાપકર્મ બંધાય છે અને તેના કડવા ફળ આવે છે (૫)

अजय भासमाणो ઈત્યાદિ અયતનાપૂર્વક ભાષણ કરવાથી હિંસા થાય છે અને પાપકર્મ બંધાય છે એ પાપકર્મના ફળ કડવા આવે છે

टीका—'अजय आसमाणो' इत्यादि । अयतमासीनः=प्रमार्जन विनाऽनुप युक्तोऽनवहित उपविशन्नित्यर्थः । शेष पूर्ववत् ॥३॥

१ २ ५ ३ ४
मूलम्–अजयं सयमाणो य पाणभूयाइं हिंसइ ।
८ ६ ७ ९ १० १३ १२ ११
बधई पावय कम्म, त से होइ कडुय फलं ॥४॥

छाया—अयत स्वपश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापक कर्म, तत्तस्य भवति कटुक फलम् ॥४॥

सान्वयार्थः–अजय=अयतना-पूर्वक सयमाणो=सोता हुआ साधु पाण भूयाइ=त्रस-स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावय कम्म= पापकर्मको बधई=बाधता है, त=उस कारण उस पापकर्म का फल=फल कडुय=दुःखदायी होइ=होता है ॥४॥

टीका-'अजय सयमाणो' इत्यादि । अयत स्वपन्=शय्याप्रमार्जनादिक विना प्रकामशय्यादिना दिवसे वा शयानः । शेष पूर्ववत् ॥४॥

१ २ ५ ३ ४
मूलम्–अजय भुजमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ ।
८ ६ ७ ९ १० १३ १२ ११
बधई पावय कम्म, त से होइ कडुय फलं ॥५॥

छाया—अयत भुञ्जानश्च, प्राणभूतानि हिनस्ति ।
बध्नाति पापक कर्म, तत्तस्य भवति कटुक फलम् ॥५॥

सान्वयार्थ.–अजय=अयतना-पूर्वक भुजमाणो=खाता हुआ साधु पाण- भूयाइ=त्रस-स्थावर जीवोंकी हिंसइ=हिंसा करता है, य=और पावय कम्म=पाप

'अजय आसमाणो' इत्यादि । भूमि आदिकी विना प्रमार्जना किये ही अयतनापूर्वक बैठनेसे पापकर्म बधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥३॥

'अजय सयमाणो' इत्यादि । अयतनासे अर्थात् शय्याकी प्रमार्जना न करके शयन करनेसे पापकर्म बधता है और उसका कडुआ फल होता है ॥४॥

अजय आसमाणो ઇત્યાદિ ભૂમિ આદિની પ્રમાર્જના કર્યા વિના અયતના પૂર્વક બેસવાથી પાપકર્મ બંધાય છે, અને તેના કડવા ફળ મળે છે (૩)

अजय सयमाणो ઇત્યાદિ અયતનાથી અર્થાત્ શય્યાની પ્રમાર્જના કર્યા વિના શયન કરવાથી પાપકર્મ બંધાય છે અને એના કડવા ફળ મળે છે (૪)

शिष्यः पृच्छति-'कह चरे' इत्यादि ।

टीका—हे भगवन् ! यद्येवं तर्हि संयतः कथं=केन प्रकारेण चरेत्=विहरेत् ?, कथं=केन प्रकारेण तिष्ठेत्=स्थितो भवेत् ?, कथं=केन रूपेण आसीत=उपविशेत् ?, कथं शयीत=स्वप्यात् ?, कथं वा भुञ्जानः=अभ्यवहरमाणः, भाषमाणश्च पापकर्म=व्याख्यातपूर्वं न बध्नाति ? ॥७॥

गुरुरुत्तरयति-'जयं चरे' इत्यादि ।

मूलम्-जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई ॥ ८ ॥

छाया—यतं चरेद् यतं तिष्ठेद्, यतमासीत यतं शयीत ।
यतं भुञ्जानो भाषमाणः, पापकर्म न बध्नाति ॥८॥

सान्वयार्थः-गुरु महाराज उत्तर देते है-जयं=यतनापूर्वक चरे=गमन करे जयं=यतनापूर्वक चिट्ठे=खडा होवे जयं=यतनापूर्वक आसे=बैठे जयं=यतनापूर्वक सए=सोवे (और) जयं=यतनापूर्वक भुजंतो=खाता हुआ तथा भासंतो=बोलता हुआ पाव कम्मं=पापकर्म न बंधई=नहीं बांधता है ॥८॥

टीका-यतम्=ईर्यादिसमितिसमन्वितं यथा तथा चरेत्=विहरेत्, यतं तिष्ठेत्=

शिष्य पूछता है-'कह चरे०' इत्यादि ।

हे भगवन् ! यदि ऐसा है तो मुनि कैसे चले ? कैसे खड़ा रहे ? कैसे बैठे ? कैसे शयन करे ? कैसे आहार करे ? और कैसे बोले ? जिससे पापकर्म न बंधने पावे ॥७॥

गुरु महाराज उत्तर देते हैं-'जयं चरे०' इत्यादि ।

हे शिष्य ! संयत ईर्यासमितियुक्त होकर चले, यतनासे खड़ा रहे,

શિષ્ય પૂછે છે-कह चरे० ઇત્યાદિ

હે ભગવન્ ! જો એમ છે તો મુનિ કેવી રીતે ચાલે ? કેવી રીતે ઉભો રહે ? કેવી રીતે બેસે ? કેવી રીતે સૂએ ? કેવી રીતે આહાર કરે ? અને કેવી રીતે બોલે ? કે જેથી પાપ કર્મ બંધાવા ન પામે ? (૭)

ગુરૂ મહારાજ ઉત્તર આપે છે-'जयं चरे०' ઇત્યાદિ

હે શિષ્ય ! સંયત ઈર્યાસમિતિયુક્ત થઈને ચાલે, યતનાથી ઉભો રહે,

ननु यतनापूर्वकभाषणार्थमेव मुनिर्मुखवस्त्रिका बध्नातीति त प्रति पुनरयं विधिर्व्यर्थ एवेति चेन्न, यथाविधिनिबद्धमुखवस्त्रिकस्यापि मुनेरनृतकर्कशादिसावद्यभाषणेऽनावृतमुखेन भाषणवदयतना भवतीति सर्वथा भाषासमितिसमाराधनाऽवधानमाधातुमस्योपदेशस्य सार्थक्यात् । शेष पूर्ववद्व्याख्येयम् ॥६॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

मूलम्-कह चरे कह चिट्टे, कहमासे कह सए ।

९ १० ११ १२ १३ १४

कह भुजतो भासतो, पावकम्म न बधई ॥ ७ ॥

छाया—कथ चरेत् कथ तिष्ठेत्, कथमासीत कथ शयीत ।

कथ भुञ्जानो भाषमाणः, पापकर्म न बध्नाति ॥७॥

सान्वयार्थ'-शिष्य पूछता है-(अगर ऐसा है तो हे गुरु महाराज!) कह=कैसे चरे=गमन करे?, कह=कैसे चिट्ठे=खडा हो?, कह=कैसे आसे=बैठे?, कह=कैसे सए=सोवे?, कह=किस प्रकार भुजतो=आहार करता हुआ (तथा) भासतो=बोलता हुआ पावकम्म=पापकर्म न बधई=नहीं बाधता है ॥७॥

प्रश्न—हे गुरुमहाराज! अयतनाको दूर करनेके लिए ही मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधी जाती है, फिर उनके प्रति 'अजय भासमाणो य' ऐसा उपदेश देना कैसे सगत है?।

उत्तर—हे शिष्य! सुनो, मुख पर मुखवस्त्रिका सदा बाँधी रहने पर भी असत्य कर्कश कठोर आदि बोलनेसे तथा सावद्य उपदेश देनेसे उसी प्रकार अयतना होती है जिस प्रकार खुले मुख बोलनेसे होती है। साधुको भाषासबधी सब प्रकारकी अयतनाका त्याग करना चाहिए इसलिए यह अयतनाके त्यागका उपदेश दिया गया है ॥६॥

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ! અયતનાને દૂર કરવાને માટે જ મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર બાધવામા આવે છે, પછી તેમની પ્રત્યે 'अजय भासमाणो य' એવો ઉપદેશ આપવો કેવી રીતે સગત છે?

ઉત્તર—હે શિષ્ય! મુખ પર મુખવસ્ત્રિકા સદા બાધી રહેવા છતા પણ અસત્ય કર્કશ કઠોર આદિ બોલવાથી તથા સાવદ્ય ઉપદેશ આપવાથી એવા પ્રકારની અયતના થાય છે કે જેવા પ્રકારની અયતના ઉઘાડે મ્હોએ બોલવાથી થાય છે સાધુએ ભાષાસબધી સર્વ પ્રકારની અયતનાનો ત્યાગ કરવો જોઈએ, તેથી આ અયતનાના ત્યાગનો ઉપદેશ આપવામા આવ્યો છે (૬)

छाया—सर्वभूतात्मभूतस्य, सम्यग् भूतानि पश्यतः ।
पिहितास्रवस्य दान्तस्य, पापकर्म न बध्यते ॥९॥

सान्वयार्थः–सव्वभूयप्पभूयस्स=सब प्राणियोंको अपने समान समझनेवाले सम्म=सम्यक् प्रकार आगमानुसार भूयाइं=जीवोंको पासओ=देखने-समझनेवाले पिहिआसवस्स=आस्रवको रोकनेवाले दंतस्स=जितेन्द्रिय साधुके पावकम्म=पापकर्म न बधई=नहीं बंधता है ॥९॥

टीका—सर्वभूतात्मभूतस्य=सर्वाणि च तानि भूतानि सर्वभूतानि=एकेन्द्रियादारभ्य पञ्चेन्द्रियपर्यन्ताः सर्वे जीवास्तेषु आत्मभूतः=आत्मसदृशः, जीव आत्मानं रक्षितुं यथा प्रयतते तथा यथाविधिसकलजीवरक्षासावधान इत्यर्थः, तस्य, भूतानि सम्यक्=प्रवचनप्रतिपादितस्वरूपेण पश्यतः=प्रेक्षमाणस्य निखिलप्राणिगणस्वरूपं याथातथ्येन पर्यालोचयत इत्यर्थः । पिहितास्रवस्य=पिहिताः=आच्छादिता आस्रवाः=कर्मागमहेतवो येन स पिहितास्रवः=प्रतिरुद्धकर्मद्वारस्तस्य, दान्तस्य=दमयति-वशं नयति इन्द्रियाऽश्वानिति दान्तः=जितेन्द्रियस्तस्य पापकर्म न बध्यते=तस्य पापलेपो न जायत इत्यर्थः ॥९॥

ननु क्रिययैव पापकर्मनिरोधश्चेत्तर्हि तदर्थमेव यतनीयं कृतं ज्ञानेनेति चेद्-भोच्यते—

नहि ज्ञानमन्तरेण क्रिया कदाचिदपि फलाय कल्पते प्रत्युतोन्मत्तक्रियावदनर्था-

---

समस्त प्राणियोंमें आत्मतुल्य बुद्धि रखनेवाले, तथा आगमके अनुसार जीवोंका स्वरूप समझनेवालेको, कर्मोंके आगमनके कारण (आस्रव)का निरोध करनेवालेको पापकर्मका बंध नहीं होता है ॥९॥

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! यदि केवल क्रियासे पापकर्मोंका निरोध हो जाता है तो क्रिया ही करनी चाहिए, ज्ञानकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर–हे शिष्य ! ज्ञानके विना क्रियाका कुछ फल नहीं होता,

બધા પ્રાણીઓમાં આત્મતુલ્ય બુદ્ધિ રાખનારા, અને આગમને અનુસાર જીવોનું સ્વરૂપ સમજનારાને, કર્મોના આગમનના કારણો (આસ્રવ) નો નિરોધ કરનારાઓને પાપકર્મનું બંધન થતું નથી (૯)

પ્રશ્ન—હે ગુરુ મહારાજ ! જો કેવળ ક્રિયાથી પાપકર્મોનો નિરોધ થઈ જાય છે તો ક્રિયા જ કરવી જોઈએ, જ્ઞાનની શી આવશ્યકતા છે ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જ્ઞાન વિના ક્રિયાનું કશું ફળ હોતું નથી જ્ઞાનરહિત

करचरणादिकमविक्षिपन् समवहितो दण्डायस्थितिं विदध्यात्, यतमासीत=यतनया-हस्तपादाद्याकुञ्चनप्रसारणादिकमकुर्वन् सोपयोगमुपविशेत्-दृढासनादिना स्थिरः सन्नावश्यककार्यमन्तरेण नेतस्ततो भ्राम्येदित्यर्थः, यत शयीत=प्रकामशयनीयादिपरिहारेण स्वप्यात्, यत भुञ्जानः=यथाकल्पप्राप्ताहारं सयोजनादिमण्डलदोषवर्जनपुरस्सरं 'चपड़-चपड़' इतिशब्दमकुर्वाणोऽभ्यवहरमाणः, यत भाषमाणः=निरुद्धमुखवस्त्रिकः सन् हितमितमृद्वादिनिरवद्यभाषयाऽवसरे समालपन् पापकर्म न बध्नाति=न बध्नीयात् ॥८॥

किञ्च-'सव्वभूय०' इत्यादि ।

मूलम्-सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ ।
पिहिआसवस्स दंतस्स, पावकम्मं न बधई ॥९॥

अर्थात् हाथ-पैर न हिलाता हुआ सावधान होकर दंडकी तरह खडा रहे, यतनासे बैठे अर्थात् वृथा हाथ पैर न हिलावे, उपयोग-सहित दृढासन आदिसे बैठे, विना कार्यके इधर उधर न हिले, यतनासे शयन करे अर्थात् प्रकाम शय्याका परिहार करता हुआ सोवे, यतनासे आहार करे अर्थात् जैसा निरवद्य आहार मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहे और 'चपड-चपड' आदि शब्द न करते हुए भोजन करे, न भोजनमे राग-द्वेष करे। यतनासे भाषण करे अर्थात् हित मित मधुर और निरवद्य भाषा बोले, खुले मुह न बोले, तथा कर्कश कठोर शब्दोंका उच्चारण न करे और निष्प्रयोजन न बोले। ऐसा करनेसे पापकर्म नही बधता है ॥८॥

और-'सव्वभूय०' इत्यादि ।

અર્થાત્ હાથ-પગ ન હલાવે ને દંડની જેમ ઉભો રહે યતનાથી બેસે અર્થાત્ વૃથા હાથ-પગ ન હલાવે, ઉપયોગ સહિત દૃઢાસન આદિથી બેસે, કાર્ય વિના આમ-તેમ હલે નહિ, યતનાથી શયન કરે, યતનાથી આહાર કરે, અર્થાત્ જે નિરવદ્ય આહાર મળી જાય તેમા જ સંતુષ્ટ રહે અને 'ચપડ-ચપડ' અવાજ કર્યા વિના ભોજન કરે, ભોજનમા રાગ-દ્વેષ ન કરે યતનાથી ભાષણ કરે અર્થાત્ હિત મિત મધુર અને નિરવદ્ય ભાષા બોલે, ખુલ્લે મોઢે બોલે નહિ એમ કરવાથી પાપકર્મ બંધાતુ નથી (૮)

અને-સવ્વભૂય૦ ઇત્યાદિ

एवम्=अनेन प्रकारेण क्रियाया ज्ञानपूर्वकत्वाऽवबोधरूपेण सर्वसंयतः=सर्वविरतः साधुरित्यर्थः, तिष्ठति=वर्त्तते, कथमिदमुच्यते? इत्याशङ्कायामाह—अज्ञानी=तत्त्वातत्त्वविवेकलक्षणज्ञानविरहितः किं करिष्यति=किं विधास्यति, किं वा=कथं वा छेक-पापकं, छेकं च पापकं चानयोः समाहारे छेकपापकं, तत्र छेकं=कल्याणम् उपादेयमित्यर्थः, पापकम्—अकल्याणं हेयमित्यर्थः, ज्ञास्यति=वेत्स्यति जन्मनाऽन्धवन्न किञ्चिदपीत्यर्थः, अतो ज्ञानार्थमेव प्रथमं यतनीयम् "हया अन्नाणिणं किया" इत्युक्तेः ॥१०॥

ज्ञानमहत्त्वं प्रदर्श्य सम्प्रति तत्प्राप्त्युपायमाह—"सोच्चा जाणइ" इत्यादि ।

मूलम्—सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयंपि जाणई सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥११॥

छाया—श्रुत्वा जानाति कल्याणं, श्रुत्वा जानाति पापकम् ।
उभयमपि जानाति श्रुत्वा, यच्छ्रेयस्तत्समाचरेत् ॥११॥

समस्त क्रियाओंका ग्रहण होता है। अर्थात् सम्यग्ज्ञानपूर्वक की हुई ही क्रिया सफल होती है, इसलिए मुनि ज्ञानपूर्वक ही क्रियाएँ करते हैं, क्योंकि तत्त्व और अतत्त्वके विवेकसे रहित अज्ञानी क्या कर सकता है? अर्थात् कुछ नहीं कर सकता, और जन्मान्धके समान उसे हेय-उपादेयका ज्ञान ही कैसे होसकता है? अर्थात् नहीं होसकता, अत पहले ज्ञानके लिए प्रयत्न करना चाहिए। कहा भी है—"ज्ञानके विना क्रिया निरर्थक है" ॥१०॥

ज्ञानका महत्त्व बताकर अब उसकी प्राप्तिका उपाय कहते हैं—"सोच्चा जाणइ०" इत्यादि।

થાય છે અર્થાત્ સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક કરેલી ક્રિયા જ સફળ થાય છે તેથી મુનિ જ્ઞાનપૂર્વક જ ક્રિયાઓ કરે છે કારણ કે-તત્ત્વ અને અતત્ત્વના વિવેકથી રહિત અજ્ઞાની શુ કરી શકે? અર્થાત્ કશુ નથી કરી શકતો, અને જન્માંધની પેઠે એને હેય-ઉપાદેયનું જ્ઞાન કેવી રીતે થઈ શકે? અર્થાત નથી થઈ શકતુ, તેથી પહેલા જ્ઞાનને માટે પ્રયત્ન કરવો જોઈએ કહ્યુ છે કે—"જ્ઞાન વિનાની ક્રિયા નિરર્થક છે" (૧૦)

જ્ઞાનનું મહત્ત્વ બતાવીને હવે એની પ્રાપ્તિનો ઉપાય કહે છે—सोच्चा जाणइ० ઇત્યાદિ

नुबन्धिनी स्यादिति ज्ञानविरहितकेवलक्रियाप्रवृत्तिर्लोकाना मा स्म भूदतो ज्ञानस्य क्रियापेक्षया प्राथम्य दर्शयति-'पढम नाण' इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ५ ७ ६
मूलम्-पढम नाण तओ दया, एव चिट्ठइ सव्वसंजए।
८ ९ १० ११ १२ १४ १३
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही छेय-पावग ॥१०॥

छाया—प्रथम ज्ञान ततो दया, एव तिष्ठति सर्वसयतः ।
अज्ञानी किं करिष्यति, किं वा ज्ञास्यति छेक-पापकम् ॥१०॥

सान्वयार्थः-पढम=पहले नाण=ज्ञान है तओ=उसके पश्चात् दया=दया अर्थात् चारित्र है एव=इसी प्रकार सव्वसजए=सर्वसयत साधु चिट्ठइ=आचरण करते है, अन्नाणी=सम्यग्ज्ञानसे रहित पुरुष किंकाही=क्या कर सकता है-कैसे सयम पाल सकता है अर्थात् नहीं पाल सकता ? (और) किं वा=कैसे छेयपावग= उपादेय और हेयको नाही=जान सकता है?, अर्थात् नहीं जान सकता ॥१०॥

टीका—प्रथमम्=आदौ ज्ञान=ज्ञायन्ते=बुध्यन्ते जीवाजीवादयः पदार्था येन यस्माद् यस्मिन् वा तज्ज्ञान=स्वपरस्वरूपपरिच्छेदलक्षणम्, अपेक्ष्य भवतीत्याशयः, क्रियामात्रस्य ज्ञानपूर्वकत्वे हि स्वाभीष्टसिद्धिकत्वात्, ततः=तदनन्तर दया=क्लेशा-कुलप्राणिसकष्टमोचनेच्छालक्षणाऽनुकम्पा, दयाशब्देन चात्र क्रियामात्रमुपलक्ष्यते,

---

ज्ञानरहित क्रिया उन्मत्त (पागल) पुरुषकी क्रियाके समान अनर्थको उत्पन्न करती है। 'कोई जीव ज्ञानरहित क्रिया न करे' इस अभिप्रायसे 'पहले ज्ञान फिर क्रिया होनी चाहिए',-इस बातको शास्त्रकार कहते हैं-'पढम नाण०' इत्यादि।

जिससे स्व-परका बोध होता है उसे ज्ञान कहते है। वह ज्ञान प्रथम है, क्योंकि जीव आदि नव पदार्थका ज्ञान होने पर ही सयम अर्थात् षड्जीवनिकायकी दयाका पालन हो सकता है। यहाँ दया शब्दसे

ક્રિયા ઉન્મત્ત (ગાંડા) પુરુષની ક્રિયાની પેઠે અનર્થને ઉત્પન્ન કરે છે 'કોઈ જીવ જ્ઞાનરહિત ક્રિયા ન કરે' એવા હેતુથી 'પ્રથમ જ્ઞાન પછી ક્રિયા હોવી જોઈએ' આ વાતને સૂત્રકાર કહે છે-પઢમ નાણ૦ ઇત્યાદિ

જે વડે સ્વપરનો બોધ થાય છે તેને જ્ઞાન કહે છે એ જ્ઞાન પ્રથમ છે કેમકે જીવ આદિ નવ પદાર્થનું જ્ઞાન થયા પછી જ સયમ અર્થાત્ ષડ્જીવનિકાયની દયાનું પાલન થઇ શકે છે અહીં દયા શબ્દથી બધી ક્રિયાઓનું ગ્રહણ

मूलम्-जो जीवे वि न याणेइ अजीवे वि न याणइ।
जीवाजीवे अयाणतो, कहं सो नाहीइ सजम ॥१२॥

छाया—यो जीवानपि न जानाति, अजीवानपि न जानाति।
जीवाऽजीवानजानन् कथ, स ज्ञास्यति सयमम् ॥१२॥

सान्वयार्थ—जो=जो जीवेवि=जीवोंकोभी न याणेइ=नही जानता है (और) अजीवेवि=अजीवोंकोभी न याणेइ=नही जानता है, जीवाजीवे=जीवो और अजीवोंको अयाणतो=नहीं जानता हुआ सो=वह सजम=सयमको कह=कैसे नाहीइ=जानेगा? अर्थात् नहीं जान सकता ॥१२॥

टीका—'जो जीवेवि' इत्यादि। यः जीवान्=एकेन्द्रियादीन्, जीवलक्षण तु मत्कृतातत्त्वप्रदीपाद्विशेषतोऽगन्तव्यम्, न जानाति=न वेत्ति, तथा अजीवान्=जीवविपरीतलक्षणान् सयमपरिपन्थिन काञ्चनरजतादीन् धर्मास्तिकायादीन् वा न जानाति, इत्थ जीवाजीवान्=जीवान् अजीवांश्चोभयानपि अजानन् सन् स सयम=प्राणातिपातविरमणादिलक्षण सप्तदशविध कथ=केन प्रकारेण ज्ञास्यति=वेत्स्यति, सयमस्य जीवाजीवोभयविषयकज्ञानजन्यत्वात् ॥१२॥

ननु कस्तर्हि सयम विज्ञातुमर्हती? त्याह-'जो जीवे वि०' इत्यादि।

'जो जीवे वि०' इत्यादि। जो पुरुष एकेन्द्रिय आदि जीवोंके स्वरूपको नही जानता और न जीवसे भिन्न पुद्गल आदि अजीवोंको जानता है। इस प्रकार दोनोंको ही नही जानता हुआ वह अज्ञानी प्राणातिपात आदिसे विरमणरूप सत्रह प्रकारके सयमको कैसे जानेगा? अर्थात् नही जान सकेगा, क्योंकि सयम तब ही हो सकता है जब जीव और अजीवका ज्ञान हो जाय ॥१२॥

सयमका ज्ञाता कौन हो सकता है? सो कहते हैं-'जो जीवे वि०' इत्यादि।

जो जीवे वि० ઇત્યાદિ જે પુરૂષ એકેન્દ્રિય આદિ જીવોના સ્વરૂપને જાણતો નથી અને જીવથી ભિન્ન પુદ્ગલ આદિ અજીવોને જાણતો નથી, એ રીતે બેઉને જાણતો નથી તે અજ્ઞાની પ્રાણાતિપાત આદિથી વિરમણરૂપ સત્તર પ્રકારના સયમને કેવી રીતે જાણશે? અર્થાત્ નહિ જાણી શકે, કારણ કે સયમ ત્યારે જ થઇ શકે છે કે જ્યારે જીવ અને અજીવનું જ્ઞાન થાય છે (૧૨)

સયમનો જ્ઞાતા કોણ થઇ શકે છે? તે હવે કહે છે-जो जीवे वि० ઇત્યાદિ

अब जानने का उपाय बताते हैं–

सान्वयार्थः–सोच्चा=गुरुमुखसे सुनकर कल्लाण=कल्याण–दयारूप संयमको जाणइ=जानता है, (तथा) सोच्चा=सुनकर ही पावगं=पाप–हिंसारूप असंयमको जाणइ=जानता है, (और) उभयंपि=दोनोंको भी सोच्चा=सुनकर ही जाणई=जानता है। (अतः) जं=जो सेयं=आत्माके हितकारी हो तं=उसका समायरे=आचरण करे ॥११॥

टीका—श्रुत्वा=गुरुमुखादाकर्ण्य श्रुतज्ञानविषयीकृत्येत्यर्थः, कल्याणम्=कल्यो मोक्षः कर्मबद्धसकलोपाधिव्याधिबाधाविधुरत्वात्, तम् आ=समन्तादणति-प्रापयतीति, कल्येन=आरोग्येण आरोग्यकरणेनेत्यर्थः ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणमोक्षमार्गोपदेशद्वारेति भावः, आनयति=जीवयति सांसारिकविशालविषयकाननसंलग्नेष्टवियोगानिष्टसंयोगदावानलज्वालामालावलीढान् प्राणिन इति कल्याणं=दयाभिधानसंयमस्वरूपं, निपातनाण्णत्वम्, तदुपादेयभूतं जानाति, श्रुत्वा च पापकं=नरकादिकुगतिपातिनं हेयभूतमसंयमं जानाति, उभयमपि=उपादेयानुपादेयभूतं संयमासंयमलक्षणं द्वयमपि श्रुत्वैव जानाति। निष्कर्षमाह–अत्र यत् श्रेयः=हितं तत् समाचरेत्=विदध्यात् ॥११॥

कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली समस्त आधि–व्याधि और बाधासे रहित मोक्षकी प्राप्ति करानेवालेको, अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूपी आरोग्यसे, हितवचन अथवा उपदेशसे संसारके विषयरूपी विशाल वनमें धधकती हुई इष्टवियोग-अनिष्टसंयोगरूप दावाग्निकी ज्वालाओंमें जलते हुए जीवोंको शान्ति देनेवालेको कल्याण कहते हैं। इस कल्याण (संयम) का ज्ञान गुरुमुखसे सुनकर ही होता है। पाप अर्थात् नरक आदि कुगतियोंमें गिरानेवाले असंयमका ज्ञान भी सुननेसे ही होता है, तथा इन दोनोंका भी ज्ञान सुननेसे ही होता है। इसलिए इनमेंसे जो श्रेष्ठ (हितकर) हो उसमें प्रवृत्ति करनी चाहिए ॥११॥

કર્મોથી ઉત્પન્ન થનારી બધી આધિ–વ્યાધિ અને બાધાથી રહિત મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવનારને અથવા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રરૂપી આરોગ્યથી, હિતવચન અથવા ઉપદેશથી સંસારના વિષયરૂપી વિશાળ વનમાં ભભુકતા ઇષ્ટવિયોગ–અનિષ્ટસંયોગરૂપી દાવાગ્નિની જ્વાળાઓમાં બળતા જીવોને શાન્તિ દેનારને કલ્યાણ કહે છે. આ કલ્યાણ (સંયમ)નું જ્ઞાન ગુરૂમુખથી શ્રવણ કરવાથી જ થાય છે. પાપ અર્થાત્ નરક આદિ કુગતિઓમાં પાડનારા અસંયમનું જ્ઞાન પણ સાંભળવાથી જ થાય છે, તથા એ બેઉનું જ્ઞાન પણ સાંભળવાથી જ થાય છે, તેથી એમાં જે શ્રેષ્ઠ (હિતકર) હોય એમાં પ્રવૃત્તિ કરવી જોઇએ (૧૧)

" दया भूतेषु वैराग्य, विधिवद्गुरुपूजनम् ।
विशुद्धा शीलवृत्तिश्च, पुण्य पुण्यानुबन्ध्यदः ॥१॥ इति.
(स्थानाङ्ग१स्था. टीका)

हरिभद्रसूरिरप्याह—
" गेहाद् गेहान्तर कश्चिच्छोभनादधिकं नरः ।
याति यद्वत् सुधर्मेण, तद्वदेव भवाद्भवम् ॥ १ ॥" इति ।

एतच्च मोक्षार्थिनामप्यादरणीयमेव, पुण्यानुबन्धिपुण्यस्याऽपतनशीलमोक्षसम्पज्जनकत्वात्, तथा चोक्तम्—
" शुभानुबन्ध्यतः पुण्य, कर्त्तव्य सर्वथा नरैः ।
यत्प्रभावादपातिन्यो, जायन्ते सर्वसम्पदः ॥१॥" इति ।

प्राणियों पर दया रखना, वैराग्य-भाव होना, आगमके अनुसार गुरुओंकी भक्ति करना, शुद्ध शीलका पालन करना, यह पुण्यानुबन्धि पुण्य है। (स्थानाङ्ग०१स्था०टीका)

हरिभद्रसूरिने भी कहा है-

" जैसे कोई मनुष्य एक अच्छे गृहसे दूसरे बहुत ही अच्छे गृहमे जाता है वैसेही पुण्यके प्रभावसे जीव अत्यन्त शुभ गतिको प्राप्त होता है ॥१॥ "

यह पुण्य मोक्षार्थी पुरुषोके लिए भी उपादेय है, क्योंकि इससे अविनश्वर-शाश्वत-मोक्षरूपी सम्पत्तिकी उत्पत्ति होती है। कहा भी है-

"मनुष्योंको पुण्यानुबन्धि पुण्य अवश्य करना चाहिए, जिसके प्रभावसे कभी नष्ट न होनेवाली सब प्रकारकी सम्पदाएँ प्राप्त होती है ॥१॥"

પ્રાણીઓ ઉપર દયા રાખવી, વૈરાગ્યભાવ થવો, આગમને અનુસાર ગુરૂઓની ભકિત કરવી, શુદ્ધ શીલ પાળવુ, એ પુણ્યાનુબધિ પુણ્ય છે (સ્થાનાંગ૦૧સ્થા૦ટીકા)

હરિભદ્રસૂરિએ પણ કહ્યુ છે કે-

" જેમ કોઈ મનુષ્ય એક સારા ગ્રહમાથી બીજા બહુ જ સારા ગૃહમા જાય છે તેમ પુણ્યના પ્રભાવથી જીવ અત્યત શુભ ગતિને પામે છે "

એ પુણ્ય મોક્ષાર્થી પુરૂષોને માટે પણ ઉપાદેય છે, કારણ કે તેથી અવિનશ્વર-શાશ્વત-મોક્ષરૂપી સપત્તિની ઉત્પત્તિ થાય છે કહ્યુ છે કે-

" મનુષ્યોએ પુણ્યાનુબધિ પુણ્ય અવશ્ય કરવુ જોઈએ જેના પ્રભાવથી કદાપિ નષ્ટ ન થાય તેવી સર્વ પ્રકારની સપદાઓ પ્રાપ્ત થાય છે"

बोधिबीजजिनधर्मादिप्राप्तिर्जायते, किंबहुना तीर्थकरगोत्रमपि पुण्येनैव बध्यते, यो हि पुण्य सर्वथा हेय मन्यमानस्तत्त्यजति असौ समुपेक्षिततरित्राऽप्राप्तपरतीरो मध्येसमुद्र मज्जन्नवसीदति ।

ननु पुण्यपापक्षयानन्तरमेव मोक्षप्राप्तिः शास्त्रे श्रूयते इति पापवत्पुण्यमप्यनुपादेय मोक्षार्थिनामिति चेन्न,

द्विविध हि पुण्य पुण्यानुबन्धि पापानुबन्धि च, तत्र पुण्यानुबन्धिपुण्यस्य लक्षणमुक्तम्-

---

प्राप्ति-होती है । अधिक क्या कहा जाय ? तीर्थङ्कर गोत्र भी पुण्यसे ही बधता है ।

जो पुण्यको सर्वथा हेय मानता हुआ उसका त्याग करता है वह ससार-सागरमे गोते लगाता है । जैसे मध्य समुद्रमें नौकाका त्याग कर देनेवाला पुरुष समुद्रमें डूबता हुआ दुःख पाता है ।

शङ्का-पुण्य और पाप दोनोंका क्षय होनेके बाद मोक्षकी प्राप्ति होती है, ऐसा शास्त्रोंमें सुना जाता है, इसलिए पापकी तरह पुण्य भी मोक्षार्थियोंके लिए उपादेय नही है ।

समाधान-ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्य दो प्रकारका है- (१) पुण्यानुबन्धि पुण्य, (२) पापानुबन्धि पुण्य । पुण्यानुबन्धि पुण्यका लक्षण यह है-

---

વધારે શુ કહેવુ ? તીર્થંકર-ગોત્ર પણ પુણ્યથી જ બધાય છે

જે પુણ્યને સર્વથા હેય માનીને તેનો ત્યાગ કરે છે, તે સસાર-સાગરમા ગોથા ખાય છે, જેમકે મધ્ય-સમુદ્રમા નૌકાનો ત્યાગ કરી નાખનાર પુરૂષ સમુદ્રમા ડુબતા દુ ખ પામે છે

શકા-પુણ્ય અને પાપ એ બેઉનો ક્ષય થયા પછી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થાય છે, એવુ શાસ્ત્રોમા સાભળવામા આવે છે તેથી પાપની પેઠે પુણ્ય પણ મોક્ષાર્થીઓને માટે ઉપાદેય નથી

સમાધાન-એમ કહેવુ તે બરાબર નથી, કારણ કે પુણ્ય બે પ્રકારના છે (૧) પુણ્યાનુબધિ પુણ્ય, (૨) પાપાનુબધિ પુણ્ય. પુણ્યાનુબધિ પુણ્યનુ લક્ષણ એવુ છે કે—

"शरीरमाहु[1] नावत्ति, जीवो उच्चइ नाविओ ।
ससारो अण्णवो वुत्तो, ज तरंति महेसिणो ॥ १ ॥" इति ।

तत्रैव दशमाध्ययने मनुष्यजन्मनो दौर्लभ्य चोक्तम्—

"[2]दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेणवि सव्वपाणिण" इति ।

स्थानाङ्गसूत्रेऽपि तृतीयस्थानके च—

"[3]तओ ठाणाइ देवेवीहेज्जा त जहा- (१) माणुस भव, (२) आरिए खेत्ते जम्म, (३) सुकुलपच्चायार्ति ।" इति ।

१ "शरीरमाहुः नौः इति, जीव उच्यते नाविकः ।
ससार अर्णवः उक्तः, य तरन्ति महर्षयः ॥१॥"

२ दुर्लभः खलु मानुष्यो भवः, चिरकालेनापि सर्वप्राणिनाम् ।

३ त्रीणि स्थानानि देवा अपीहेरन्, तद्यथा-(१) मानुष्य भवम्, (२) आर्ये क्षेत्रे जन्म, (३) सुकुलप्रत्यायातिम् ।

"(मनुष्यका) शरीर, नौकाके समान है, जीव, नाविक (खेवटिया) के सदृश है और ससार, समुद्र सरीखा है, इसे महर्षि पार करते हैं।"

इसी उत्तराध्ययनके दसवें अध्ययनमे मनुष्य-जन्मकी दुर्लभता बताई है —

"चिरकाल तक सब प्राणियोके लिए मनुष्य-भव अत्यन्त दुर्लभ है।"

स्थानाङ्गसूत्रमे तीसरे स्थानकमे कहा है-

"इन तीन बोलोकी देव भी अभिलाषा रखते हैं-(१) मनुष्य-भव, (२) आर्यक्षेत्रमें जन्म, (३) सुकुलकी प्राप्ति"।

' (મનુષ્યનુ) શરીર, નૌકા સમાન છે, જીવ, નાવિક (ખલાસી) સમાન છે અને સ સાર, સમુદ્ર સરખો છે, તેને મહર્ષિ પાર કરે છે "

એજ ઉત્તરાધ્યયનના દસમા અધ્યયનમા મનુષ્ય જન્મની દુર્લભતા બતાવી છે-

"ચિરકાળ સુધી સર્વ-પ્રાણીઓને માટે મનુષ્યભવ અત્યત દુર્લભ છે "

સ્થાનાગ-સૂત્રમા ત્રીજા સ્થાનકમા કહ્યુ છે કે-

"આ ત્રણ બોલોની અભિલાષા દેવ પણ રાખે છે (૧) મનુષ્યભવ, (૨) આર્યક્ષેત્રમા જન્મ, (૩) સુકુળની પ્રાપ્તિ "

किञ्च—मनुष्यजन्मनोऽपि मोक्षप्राप्तिकारणत्वेन शास्त्रे प्रतिपादनात्पुण्य मोक्षार्थिनामुपादेयमेवेत्यवसीयते, पुण्यमन्तरेण मनुष्यजन्मनो दुर्लभत्वात्, तथा चोक्तमुत्तराध्ययनसूत्रे तृतीयाध्ययने—

" चत्तारि[1] परमंगाणि, दुल्लहाणि य जंतुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥ १ ॥" इति ।

संसारार्णवोत्तरणाय नरशरीरस्य नौकारूपत्वेन प्रतिपादनान्मोक्षकारणत्वं गम्यते, तथा चोत्तराध्ययनसूत्रे त्रयोविंशाध्ययने—

१ " चत्वारि परमाङ्गानि, दुर्लभानि च जन्तोः ।
मानुषत्वं श्रुतिः श्रद्धा, संयमे च वीर्यम् ॥१॥"

दूसरी बात यह है कि–शास्त्रोंमें मनुष्यभवकी प्राप्ति पुण्यके उदयसे कही गई है, और मनुष्य-भव मोक्ष-प्राप्तिका कारण माना गया है, इससे भी यही सिद्ध होता है कि पुण्य मुमुक्षुओंके लिए उपादेय है, क्योंकि पुण्यके विना मनुष्य–पर्याय मिलना दुर्लभ है। उत्तराध्ययन सूत्रके तीसरे अध्ययनमें कहा है–

"चार परमाग जीवके लिए दुर्लभ हैं–(१) मनुष्य भव, (२) शुचिता, (३) सत्य धर्ममें श्रद्धा, (४) संयममें पराक्रम ॥"

मनुष्य-शरीर संसाररूपी समुद्रको पार करनेके लिए नौकाके समान है, इसलिए ज्ञात होता है कि मनुष्य-शरीर मोक्षका कारण है। उत्तराध्ययन सूत्रके तेईसवें अध्ययनमें कहा है–

બીજી વાત એ છે કે–શાસ્ત્રમાં મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ પુણ્યના ઉદયથી કહી છે અને મનુષ્યભવ મોક્ષપ્રાપ્તિનું કારણ માન્યું છે, તેથી પણ એમ સિદ્ધ થાય છે કે પુણ્ય મુમુક્ષુઓને માટે ઉપાદેય છે, કારણ કે પુણ્ય વિના મનુષ્ય પર્યાય મળવો દુર્લભ છે ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના ત્રીજા અધ્યયનમાં કહ્યું છે કે–

"ચાર પરમાગ જીવને માટે દુર્લભ છે–(૧) મનુષ્યભવ, (૨) શુચિતા, (૩) સત્યધર્મમાં શ્રદ્ધા, (૪) સંયમમાં પરાક્રમ"

મનુષ્ય શરીર સંસારરૂપી સમુદ્રને પાર કરવાને માટે નૌકા–સમાન છે, તેથી સમજાય છે કે મનુષ્ય–શરીર મોક્ષનું કારણ છે ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના તેવીસમા અધ્યયનમાં કહ્યું છે કે–

पत्र तरणितो विप्रयुक्तः पान्थः स्वावलम्बनो भूत्वा सुखेन सत्वरं स्वकीयं धाम समवाप्नोति, तथा भव्यजीवः संसारतः परस्मिन् पारे विद्यमानं मोक्षं गन्तुकामोऽपरपारे मनुष्यशरीरे तिष्ठन् विभावयति-"कथमहं दुःखबहुलं चतुर्गतिकसंसारं तरिष्यामि?" इति, तदानीं मुनिजनोपदेशश्रवणतो जैनागमाद्वा दयादानादिपुण्यमहिमानमवगत्य तत्र यदि विवेकी पुण्यमाश्रयते तदा स सुखेन संसारसागरमुत्तरति।

अथवा यथाऽङ्गारकामस्तावत् काष्ठादिषु वह्निं प्रज्वालयति, अन्येन वा प्रज्वालितं वह्निमुपादत्ते, ततः काष्ठगतानलं जलेन निर्वापयति, वह्निनाशे च सति अङ्गारोत्पत्तिर्भवति, एवं वह्न्युपादानं विनाऽङ्गारो लब्धुमशक्यः यथाऽङ्गार

परले पार पहुँचा देती है, आगे गति करनेमें असमर्थ होनेसे पथिक उसका त्याग करके स्वावलम्बी बन कर अपने घर पहुँच जाता है।

इसी प्रकार भव्य जीव संसारसे परले पार पर अर्थात् मोक्षको जाना चाहता है। वह मनुष्यशरीररूपी इस पार पर ठहरा हुआ विचार करता है कि-'मैं दुःखोंसे भरे हुए चतुर्गतिक संसार-सागरको कैसे पार कर सकूँगा?' तब मुनिजनोंके उपदेशसे, अथवा शास्त्रोंसे दया दान आदि पुण्यकी महिमा जान कर पुण्यका आश्रय लेवे तो सुखपूर्वक संसार-सागरके पार पहुँच सकता है।

अथवा जैसे कोयले चाहनेवाले पुरुष काष्ठ आदिमें अग्नि जलाता है, अथवा दूसरेके द्वारा जलाई हुई अग्निको ग्रहण करता है, फिर उस अग्निको बुझा देता है। अग्नि बुझ जाने पर कोयला उत्पन्न होता है। इस प्रकार अग्निका आश्रय लिए विना कोयला कदापि नहीं प्राप्त हो सकता।

नौका आगळ गति करवामां असमर्थ होवाथी पथिक एनो त्याग करीने स्वावलंबी बनीने पोताने घेर पहोंची जाय छे.

એ પ્રકારે ભવ્ય જીવ સંસારને પેલેપાર અર્થાત્ મોક્ષે જવા ઇચ્છતો હોય છે તે મનુષ્ય-શરીરરૂપી આ કિનારા પર ઉભો રહીને વિચાર કરે છે કે 'હું દુઃખોથી ભરેલા ચતુર્ગતિક સંસાર-સાગરને કેવી રીતે પાર કરી શકીશ?' ત્યારે મુનિજનોના ઉપદેશથી, અથવા શાસ્ત્રોદ્વારા દયા દાન આદિ પુણ્યનો મહિમા જાણીને પુણ્યનો આશ્રય લે તો સુખપૂર્વક સંસારસાગરને પેલેપાર પહોંચી શકે છે.

અથવા જેને કોયલા જોઇતા હોય છે તે પુરુષ લાકડાને અગ્નિ લગાડે છે અથવા બીજાઓએ સળગાવેલા અગ્નિને ગ્રહણ કરે છે, અને પછી એ અગ્નિને હોલવી નાખે છે. અગ્નિ હોલવાઈ જતા કોયલા ઉત્પન્ન થાય છે, એ રીતે અગ્નિનો આશ્રય લીધા

यच्छ्रूयते शास्त्रे तत् पारमासाद्य तरणिपरित्यजनमिव मुक्तिप्राप्तिमपेक्षम् । यथा समुद्रस्य परस्मिन् पारे विद्यमानं गृहं गन्तुकामः पथिकोऽपरतीरे विभावयति- 'कथमहं तरिष्यामी'ति, तदानीं नावं विलोक्य "नौरियं परपारमापिकैव न तु मदीयगृहप्रापिका, अलमस्या आश्रयणेन" इत्यालोच्य यदि नावं नावलम्बते तदाऽसौ गृहं गन्तुं न शक्नोति। यदि कश्चिन्नावि संस्थितः समुद्रमध्ये पूर्वोक्तभावनां कुर्वाणो नावं परित्यजेत् तदाऽपि नासौ गृहमुपैति प्रत्युत समुद्रस्य तरलतरकल्लोलावर्त्तयुक्ताऽगाधजले पतितो निमज्जति म्रियतेऽपि च । यस्तु पुनर्विवेकी पथिको नावमाश्रयति तयाऽसौ परं पारं प्राप्य तत परं चलितुमक्षमां तरणिं परित्यजति,

क्षय होनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है" सो इस प्रकार समझना चाहिए कि- जैसे समुद्रको पार करके फिर नौकाका त्याग किया जाता है। जैसे समुद्रके दूसरे किनारे पर बने हुए घरमें जानेकी इच्छा करनेवाला पथिक सोचता है कि-'मैं समुद्रको कैसे पार कर सकूँगा?' उसी समय नौकाको देख कर वह पथिक यदि यह विचार करने लगे कि 'इससे तो मैं परले पार तक ही पहुँच सकूँगा घर तक नहीं पहुँचूँगा' ऐसे विचारसे नौकाका अवलम्बन न करे तो कभी घर नही पहुँच सकता। यदि नौकामे बैठा हुआ कोई पथिक बीच समुद्रमें उक्त विचार करके नौकाका त्याग करदे तो भी घर नहीं पहुँच सकता, बल्कि समुद्रकी चचल तरगों और भँवरोंसे युक्त अथाह जलमें गिर पडेगा और मृत्युको भी प्राप्त हो जायगा किन्तु जो विवेकी पथिक नौकाका सहारा लेता है उसे नौका

प्राप्ति थाय छे" ते थे प्रकारे समजवु के-जेम समुद्रने पार करीने पछी नौकानो त्याग करवामा आवे छे जेम समुद्रना बीजा किनारा पर बनेला घरमा जवानी इच्छा करनारो पथिक विचारे छे के "हु समुद्रने केवी रीते ऊतरी शकीश ?" थे वखते नौकाने जोईने थे पथिक जो थेम विचार करवा लागे के "आथी तो हु पेला किनारा सुधी ज पहोची शकीश, घर सुधी नहि पहोची शकु," थेवा विचारथी नौकानु अवलबन न करे तो ते कदापि घेर पहोची शकशे नहि जो नौकामा बेठेलो कोई पथिक समुद्रनी वच्चे थेवो विचार करीने नौकानो त्याग करी दे तो पण घेर पहोचतो नथी बल्के समुद्रना चचल तरगो अने भम्मरीओथी युक्त अथाग जलमा पडी जशे अने मरण पण पामशे परन्तु जे विवेकी पथिक नौकानो आश्रय ले छे तेने नौका पेले पार पहोचाडी दे छे

तोषणीटीकातोऽवगन्तव्यः। बन्धम्=बध्यते=परतन्त्रीक्रियतेऽनेनाऽऽत्मेति बन्धः=अभीप्सितस्थानप्राप्तिगतिप्रतिरोधलक्षण, जीवकर्मणोरयोगोलकवह्न्योरिव तादात्म्यापन्नत्व वा, स च द्रव्यतो निगडादिः, भावतो रागद्वेषादिः, यथा द्रव्यबन्धनबद्धो जनोऽभिमतस्थानलाभाभावेन कारागारादावेव विविधवेदनादारुणा दशामासादयन् विषीदति, तथाऽयमात्मा ज्ञानावरणीयादिकर्माष्टकनिगडसन्दानितोऽनन्ताऽक्षय्यसुखसम्पदुल्लसिताऽव्याबाधाऽभिमतशिवस्थानप्राप्तिं विना जन्मजरामरणादिजन्यानन्यसामान्यकष्टसमष्टिं स्पष्टमनुभवन्निहैव ससारगह्वरे विषीदति, तम्।

आत्मा जिससे बद्ध-परतन्त्र हो जाती है, वह अर्थात्-अभीष्ट स्थानकी प्राप्ति करानेवाली गतिको रोकनेवाला बन्ध कहलाता है। अथवा जैसे लोहेका गोला और अग्नि एकमेकसे हो जाते हैं, उसी प्रकार जीव और कर्मोंमें एकताका ज्ञान करानेवाला बन्ध होता है। बेडी आदि द्रव्यबन्ध है और रागद्वेष आदि भावबन्ध है। जैसे द्रव्यबन्ध-निगड आदि-से बधा हुआ मनुष्य अभिमत स्थान पर न पहुँच सकनेके कारण कारागार आदिमे ही विविध वेदनाओंके द्वारा दारुण दशा प्राप्त करता हुआ दु'ख पाता है, वैसे ही ज्ञानावरण आदि आठ कर्म-स्वरूप भावबन्धरूपी बेड़ीके कारण अनन्त अविनाशी सुखरूपी सम्पत्तिसे शोभित, अव्याबाध और अभीष्ट मोक्ष-स्थानकी प्राप्तिके विना जन्म जरा मरण आदिसे होनेवाले अपरिमित दु.ख भोगता हुआ इसी ससाररूपी गड्ढेमें पडा हुआ कष्ट उठाता है।

આત્મા જેથી બદ્ધ-પરતત્ર થઇ જાય છે તે અર્થાત્ અભીષ્ટ સ્થાનની પ્રાપ્તિ કરાવનારી ગતિને રોકનાર બધ કહેવાય છે અથવા જેમ લોઢાનો ગોળો અને અગ્નિ એકમેક બની જાય છે, તેમ જીવ અને કર્મોમા એકતાનુ જ્ઞાન કરાવનાર બધ હોય છે બેડી આદિ દ્રવ્ય-બધ છે અને રાગદ્વેષ આદિ ભાવબધ છે જેમ દ્રવ્યબધ હેડ કે બેડી આદિથી બધાયલો મનુષ્ય ધારેલે સ્થાને ન પહોચી શકવાને કારણે કારાગાર આદિમા જ વિવિધ વેદનાઓ દ્વારા દારૂણ દશા પ્રાપ્ત કરતા દુખ પામે છે તેમ જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મસ્વરૂપ ભાવબધરૂપી બેડીને કારણે, અનત અવિનાશી સુખરૂપી સપત્તિથી શોભિત, અવ્યાબાધ અને અભીષ્ટ મોક્ષસ્થાનની પ્રાપ્તિ વિના જન્મ જરા મરણ આદિથી થતા અપરિમિત દુખ ભોગવતા જીવ આ સસારરૂપી ખાડામા પડીને કષ્ટ ભોગવે છે

प्रति वह्निध्वंसस्य कारणता, ध्वंसस्य च प्रतियोगिसापेक्षत्वेन प्रतियोगी वह्निरुपा देयो भवति, तद्वत् मोक्ष प्रति पुण्यध्वंसस्य कारणतया तत्प्रतियोगितया पुण्य मप्युपादेयमेव। पुण्यमर्जयित्वा शुभपरिणामरूप पुण्य ध्यानादिशुद्धपरिणामेन क्षपयित्वा मोक्षो लब्धु शक्यते। इत्थ चाऽऽगमप्रामाण्येन पुण्यस्य भव्यकर्त्तव्यता सुस्पष्ट सिध्यति, भव्यकर्त्तव्यतयाऽऽगमे प्रतिपादितत्वात्, शुद्धभावकारणत्वाच्चेति।

पापम्=पातयति=शुभपरिणामाद् ध्वंसयत्यात्मानमिति, यद्वा पाति=रक्षत्यात्म नोऽशुभपरिणाममिति पाप=पुण्यपरिपन्थि तत्, विस्तरस्तु श्रमणसूत्रीय-मत्कृतमुनि

अर्थात् जैसे कोयलेकी प्राप्तिके लिए अग्निका ध्वस कारण होता है और ध्वस प्रतियोगिसापेक्ष होता है इसलिए अग्निके ध्वसका प्रतियोगी अग्नि भी उपादेय होती है। इसी प्रकार मोक्षका कारण पुण्यका ध्वस है, अत ध्वसका प्रतियोगी पुण्य भी मोक्षके लिए उपादेय है। उसका उपादान किये विना मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि पहले शुभ परिणाम रूप पुण्यका उपार्जन करके फिर ध्यान आदि शुद्ध परिणामोंसे उनका क्षय करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार आगममें कर्त्तव्यरूपसे प्रतिपादन करनेसे तथा शुद्ध भावका कारण होनेसे यह भली भाँति सिद्ध हो गया कि पुण्य अवश्य कर्त्तव्य है

जो शुभ परिणामोंसे आत्माको दूर रखता है—शुभ परिणाम नहीं होने देता उसे पाप कहते हैं। वह पुण्यका विरोधी है।

विना કોયલા કદાપિ પ્રાપ્ત થતા નથી અર્થાત્ જેમ કોયલાની પ્રાપ્તિ માટે અગ્નિનો ધ્વંસ કારણ બને છે અને ધ્વંસ પ્રતિયોગિ-સાપેક્ષ હોય છે, માટે અગ્નિના ધ્વંસનો પ્રતિયોગી અગ્નિ પણ ઉપાદેય બને છે એજ રીતે મોક્ષનું કારણ પુણ્યનો ધ્વંસ છે એટલે ધ્વંસનું પ્રતિયોગી પુણ્ય પણ મોક્ષને માટે ઉપાદેય છે એનું ઉપાદાન કર્યા વિના મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી કારણ કે પહેલા શુભ-પરિણામરૂપ પુણ્યનું ઉપાર્જન કરીને પછી ધ્યાન આદિ શુદ્ધ પરિણામોથી એનો ક્ષય કરીને મોક્ષ પ્રાપ્ત કરી શકાય છે

એ રીતે આગમમા કર્તવ્યરૂપે પ્રતિપાદન કર્યું હોવાથી તથા શુદ્ધ ભાવનું કારણ હોવાથી એ સારી રીતે સિદ્ધ થઈ ગયું કે પુણ્ય અવશ્ય કર્તવ્ય છે

આત્માને શુભ પરિણામોથી દૂર રાખે છે-શુભ પરિણામ થવા દેતુ નથી તેને પાપ કહે છે તે પુણ્યનું વિરોધી છે

किञ्च-यथा मूर्त्तामूर्त्तयोः घटाकाशयोः संयोगरूपः सम्बन्धः, करक्रिययोर्मूर्त्तामूर्त्तयोः समवायसम्बन्धः परैरङ्गीक्रियते तथाऽऽत्मकर्मणोरमूर्त्त-मूर्त्तयोः सम्बन्धे न काचिदनुपपत्तिर्नाम। अपि च यथा शरीरमिदमात्मसम्बद्धं प्रत्यक्षमुपलभ्यते तथा प्रेत्य भवान्तरगमननिमित्तं कार्मणलक्षणं शरीरान्तरमप्यात्मसम्बद्धमिति स्वीकर्त्तव्यम्।

नन्वपूर्वापरपर्यायाऽदृष्टहेतुकमिदमेव शरीरं तत्रास्ति न कार्मणशरीरमिति चेत्, अदृष्टममूर्त्तं मूर्त्तं वा? अमूर्त्तत्वे कथं स्थूलमूर्त्तशरीरेण तत्सम्बन्धः? भवन्मते

अथवा जैसे आकाश अमूर्त्त है और घट मूर्त्त है तथापि उन दोनोंका संयोग-सम्बन्ध होता है, और जैसे मूर्त्त हाथ तथा हाथसे होनेवाली अमूर्त्त क्रियाका दूसरोंने समवाय-सम्बन्ध स्वीकार किया है, उसी प्रकार अमूर्त्त आत्मा और मूर्त्त कर्मका बन्ध भी युक्ति-युक्त ही है।

अथवा जैसे आत्मासे संबद्ध यह शरीर प्रत्यक्षसे सिद्ध है उसी प्रकार परलोकमें गमन करानेवाला कार्मण शरीर भी आत्मासे संबद्ध है, ऐसा स्वीकार करना चाहिए।

यदि ऐसा कहो कि-'अपूर्व' या 'अदृष्ट'के कारण यही शरीर परलोकके लिए गति कराता है तो हम पूछेंगे कि वह अदृष्ट अमूर्त्त है या मूर्त्त?, अमूर्त्त है तो स्थूल मूर्त्त शरीरके साथ अदृष्टका संयोग कैसे

અથવા જેમ આકાશ અમૂર્ત છે અને ઘટ મૂર્ત છે, તથાપિ એ બેઉનો સંયોગ-સંબંધ થાય છે, અને જેમ મૂર્ત હાથ તથા હાથથી થનારી અમૂર્ત ક્રિયાનો બીજાઓએ સમવાય-સંબંધ સ્વીકાર્યો છે, એ પ્રકારે અમૂર્ત આત્મા અને મૂર્ત કર્મનો બંધ પણ યુક્તિયુક્ત જ છે.

અથવા જેમ આત્માથી સંબદ્ધ આ શરીર પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ છે, તેમ પરલોકમાં ગમન કરાવનાર કાર્મણ શરીર પણ આત્માથી સંબદ્ધ છે એનો સ્વીકાર કરવો જોઈએ.

જો એમ કહો કે 'અપૂર્વ' યા 'અદૃષ્ટ'ને કારણે આ શરીર પરલોકને માટે ગતિ કરાવે છે, તો અમે પૂછીશું કે એ અદૃષ્ટ અમૂર્ત છે કે મૂર્ત?, અમૂર્ત છે તો સ્થૂલ મૂર્ત શરીરની સાથે અદૃષ્ટનો સંયોગ કેવી રીતે થયો?, તમારે મતે

नन्वात्मनोऽमूर्त्तत्वात्कर्मणा च मूर्त्तत्वान्न तयोः परस्पर सम्बन्ध. सम्भवति, अमूर्त्तत्वेऽपि सम्बन्धस्वीकारे आकाशधर्माधर्मास्तिकायकालैः सहापि सम्बन्धप्रसङ्ग इति चेन्न,

आत्मनः कर्मणा सह सम्बन्धाभावाऽऽपादने हेतुत्वेनोपन्यस्तममूर्त्तत्व किं सर्वथारूपेण किं वा कथञ्चिद्रूपेण स्वीक्रियते? नाद्यः, हेत्वसिद्धेः, सर्वथैवाऽमूर्त्तभूतस्य सिद्धात्मनः कर्मसम्बन्धाभावो मयाऽपीष्यत एव। आत्मत्वावच्छिन्नस्य सर्वथैवाऽमूर्त्तत्व तु दुर्वच, ससारिजीवाना कथञ्चिन्मूर्त्तत्वसद्भावात्। कथञ्चित् स्वीक्रियेत चेत्तदा यदपेक्षया मूर्त्तत्व तदपेक्षया सम्बन्धोऽसन्दिग्ध एव। मुक्तात्मनश्च मूर्त्तत्वाभावान्न सम्बन्धाभ्युपगमः।

प्रश्न–आत्मा अमूर्त्त (अरूपी) है और कर्म मूर्त्त (रूपी) है। इस कारणसे इन दोनोंका परस्पर बन्ध कैसे हो सकता है?, यदि मूर्त्तका बन्ध अमूर्त्तके साथ हो सकता है तो आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और कालके साथ भी कर्मोंका बन्ध हो जायगा, क्योंकि वे भी अमूर्त्त हैं।

उत्तर-तुम कहते हो कि आत्मा अमूर्त्त है, सो यह बताओ कि आत्मा सर्वथा अमूर्त्त है या कथंश्चित् अमूर्त्त है?, यदि कहोगे कि आत्मा सर्वथा अमूर्त्त है तो हेतु असिद्ध हो जायगा, क्योंकि आगममे आत्माको सर्वथा अमूर्त्त नही माना गया है।

अगर 'कथञ्चित् अमूर्त्त' कहोगे तो कथञ्चित् मूर्त्त भी होगी, और जिस (ससारावस्थाकी) अपेक्षासे आत्मा मूर्त्त है उसी अपेक्षासे कर्मोंका बन्ध होता है। मुक्तात्मा मूर्त्त नही है इसलिए वहाँ बध भी नही होता।

પ્રશ્ન—આત્મા અમૂર્ત (અરૂપી) છે અને કર્મ મૂર્ત (રૂપી) છે એ કારણે એ બેઉનો પરસ્પર બધ કેવી રીતે થઇ શકે? જો મૂર્તનો બધ અમૂર્તની સાથે થઇ શકે તો આકાશાસ્તિકાય, ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય અને કાલની સાથે પણ કર્મોનો બધ થઇ જશે, કારણ કે તે પણ અમૂર્ત છે

ઉત્તર—તમે કહો છો કે આત્મા અમૂર્ત છે, તો બતાવો કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત છે કે કથચિત્ અમૂર્ત છે? જો કહેશો કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત છે તો હેતુ અસિદ્ધ થઇ જશે, કારણ કે આગમમા આત્માને સર્વથા અમૂર્ત માન્યો નથી

અગર 'કથચિત્ અમૂર્ત' કહેશો તો કથચિત્ મૂર્ત પણ થશે, અને જે (સસારાવસ્થાની) અપેક્ષાએ આત્મા મૂર્ત છે તે અપેક્ષાએ કર્મોનો બધ થાય છે મુકતાત્મા મૂર્ત નથી તેથી તેને બધ પણ થતો નથી

मारोढु प्रभवेदिति चेन्न, जीवकर्मणोः खनौ सुवर्णोपलयोरिव सयोगस्याऽनादिकालिकत्वात् ।

नच 'जीवकर्मणोः सम्बन्धस्याऽनादित्वे मोक्षो नैव सभवति अनादेरन्ताभावादाकाशात्मनोरिवे'-ति वाच्यम्, अनाद्यनन्तत्वयोरविनाभावाऽभावात्, अनादेरपि घटादिप्रागभावस्य सान्तत्वोपलम्भात्, अनादेरपि बीजाङ्कुरादिसन्तानस्य दाहादिकारणवशात्सान्ततादर्शनाच्च, इत्यलमतिविस्तरेण । बन्धस्वरूपमुच्यते—

उत्तर-जैसे खानमें रहे हुए सुवर्ण तथा पाषाणका सम्बन्ध अनादिकालीन है, वैसेही जीव और कर्मका भी सम्बन्ध अनादिकालीन है ।

कोई-कोई ऐसा कहते हैं कि जिसकी आदि नहीं होती उसका अन्त भी नहीं होता है, जैसे जीव और आकाशका सम्बन्ध कभी नष्ट नहीं होता, इस नियमके अनुसार यदि जीव-कर्मका सम्बन्ध अनादिकालीन है तो कभी उसका भी अन्त न होगा, फिर किसीको मोक्ष मिल ही नहीं सकेगा ।

उनका यह कथन दूषित है, क्योंकि घट आदिका प्राग् अभाव यद्यपि अनादिकालीन है फिर भी घट उत्पन्न होते ही उसका अन्त होजाता है।

बीज तथा वृक्षकी परम्परा भी अनादिकालीन है तथापि यदि बीज जल जाय तो उस परम्पराका अभाव हो जाता है, इसलिए आत्मकर्मसयोग अनादि होनेपर भी सान्त हो सकता है।बन्धका स्वरूप कहते हैं-

---

ઉત્તર-જેમ ખાણુમા રહેલા સુવર્ણ તથા પાષાણુનો સબધ અનાદિ કાળનો છે તેમ જીવ અને કર્મનો પણુ સબધ અનાદિકાળનો છે

કોઈ-કોઈ એમ કહે છે કે જેની આદિ નથી તેનો અત પણુ હોતો નથી, જેમકે જીવ અને આકાશનો સબધ કદાપિ નષ્ટ થતો નથી એ નિયમાનુસાર જો જીવ-કર્મનો સબધ અનાદિકાળનો છે તો કદાપિ તેનો અત થશે નહિ, પછી કોઈને મોક્ષ મળી શકશે નહિ

એનુ એ કથન દૂષિત છે, કારણુ કે ઘટ આદિનો પ્રાગ્ અભાવ જો કે અનાદિકાળનો છે, તોપણુ ઘટ ઉત્પન્ન થતા જ તેનો અત થઈ જાય છે બીજ તથા વૃક્ષની પરપરા પણુ અનાદિકાળની છે તથાપિ જો બીજ બળી જાય તો એ પરપરાનો અભાવ થઇ જાય છે તેથી આત્મ કર્મ-સયોગ અનાદિ હોવા છતા પણુ સાન્ત થઇ શકે છે બધનો સ્વરૂપ કહે છે-

तदसम्भवात्। सम्भवे चाऽऽत्मकर्मसंयोगेन किमपराद्धम् ?, अथ मूर्त्तत्वमङ्गीक्रियते तदाऽन्धसर्पविलप्रवेशन्यायेन मूर्त्तामूर्त्तयोः सम्बन्धः स्वीकृत एव ॥

ननु कर्मसंयोगादात्मनो मूर्त्तत्वं सम्पद्यते, तस्मिंश्च सति बन्धसम्बन्धो युज्यते, कर्मबन्धात्पूर्वं तु आत्मनो मूर्त्तत्वाभावात् कथमिव बन्धः सम्भावनासरणि-

---

हुआ ? क्योंकि तुम्हारे मतसे ऐसा होना असंभव है। बिना अदृष्टके सम्बन्धके स्थूल शरीरमें चेष्टा नहीं हो सकती। संभव मानो तो आत्मा और कर्मके संयोगने क्या अपराध किया है ?। अर्थात् जब अमूर्त्त अदृष्ट और मूर्त्त शरीरका सम्बन्ध हो सकता है तो आत्मा और कर्मका भी संयोग हो सकता है ।

अगर अदृष्ट (भाग्य) को मूर्त्त मानो तो अमूर्त्त आत्माके साथ उसका सम्बन्ध स्वीकार करनेसे यह मान ही लिया कि अमूर्त्त और मूर्त्तका सम्बन्ध होता है। जैसे अन्धा सर्प इधर उधर भटककर फिर बिलमें प्रवेश करता है वैसेही तुमने कल्पनासे इधर उधर दौडकर अन्तमें अमूर्त्तका मूर्त्तके साथ संबन्ध स्वीकार करही लिया।

प्रश्न–कर्मका संयोग होनेपर आत्मा मूर्त्त होती है और मूर्त्त होजाने पर बन्ध हो सकता है किन्तु कर्मबन्ध होनेसे पहले तो आत्मा मूर्त्त नहीं थी–अमूर्त्त थी, फिर बन्धकी संभावना कैसे हो सकती है ?।

એમ થવું અસંભવિત છે અદૃષ્ટના સંબંધ વિના સ્થૂલ શરીરમાં ચેષ્ટા થઈ શકતી નથી સંભવ માનો તો આત્મા અને કર્મના સંયોગે શો અપરાધ કર્યો છે ? અર્થાત્ જો અમૂર્ત અદૃષ્ટ અને મૂર્ત શરીરનો સંબંધ થઇ શકે છે તો આત્મા અને કર્મનો પણ સંયોગ થઇ શકે છે

અગર અદૃષ્ટ (ભાગ્ય)ને મૂર્ત માનો તો અમૂર્ત આત્માની સાથે એનો સંબંધ સ્વીકારવાથી એમ માની લીધું કે અમૂર્ત અને મૂર્તનો સંબંધ થાય છે, જેમ આંધળો સર્પ અહીં–તહીં ભટકીને પછી દરમાં પ્રવેશ કરે છે, તેમ તમે કલ્પનાથી અહીં–તહીં દોડીને છેવટે અમૂર્તનો મૂર્તની સાથે સંબંધ સ્વીકાર કરી લીધો

પ્રશ્ન–કર્મનો સંયોગ થયા પછી આત્મા મૂર્ત થાય છે અને મૂર્ત થયા પછી બંધ થઇ શકે છે, પરન્તુ કર્મબંધ થયા પહેલા તો આત્મા મૂર્ત ન હોતો, અમૂર્ત હતો, પછી બંધની સંભાવના કેવી રીતે હોઇ શકે છે ?

दानादिप्रतिघातकत्वम् (८), तद्रूपो बन्धः प्रकृतिबन्ध १।

स्थितिः=जघन्यादिभेदेन कर्मणामात्मना सहावस्थान, तल्लक्षणो बन्धः स्थितिबन्धः २।

अनुभागो=रसः=कर्मणां फलदातृत्वशक्तितारतम्य, तत्स्वरूपो बन्धोऽनुभागबन्धः ३।

प्रदेशः=कर्मदलसञ्चयस्वरूपः=अनन्तानन्तकर्मप्रदेशानामियत्तारूपेण जीवप्रदेशेषु सम्बन्धस्तल्लक्षणो बन्धः प्रदेशबन्धः ४। उक्तञ्च—

"स्वभावः प्रकृतिः प्रोक्तः, स्थितिः कालावधारणम्।
अनुभागो रसो ज्ञेयः, प्रदेशो दलसञ्चयः ॥१॥" इति।

भोग उपभोग और वीर्यमें विघ्न डालना अन्तराय कर्मका स्वभाव है ८। इसीको प्रकृतिबन्ध कहते हैं।

(२) स्थितिबन्ध-बंधे हुए कर्म आत्माके साथ जघन्य कितने काल तक रहेंगे और उत्कृष्ट कितने काल तक रहेंगे, इस कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध कहते हैं।

(३) अनुभागबन्ध-फल देनेवाली कर्मोंकी शक्तिके तारतम्यको अनुभागबन्ध कहते हैं।

(४) प्रदेशबन्ध-कितने कर्म आत्माके साथ बन्धको प्राप्त हुए हैं, इस प्रकार कर्मप्रदेशोंकी परिगणनाको प्रदेशबन्ध कहते हैं। कहा भी है-

"स्वभावको प्रकृतिबन्ध, कालकी मर्यादाको स्थितिबन्ध, रसको अनुभागबन्ध और कर्मपुद्गलोंके समूहको प्रदेशबन्ध कहते हैं ॥१॥"

એ ગોત્રકર્મનો સ્વભાવ છે ૭ તથા દાન લાભ ભોગ ઉપભોગ અને વીર્યમાં વિઘ્ન નાખવું એ અંતરાય-કર્મનો સ્વભાવ છે ૮ એને પ્રકૃતિ-બંધ કહે છે

(૨) સ્થિતિબંધ-બંધાયેલા કર્મ આત્માની સાથે જઘન્ય કેટલા કાળસુધી રહેશે અને ઉત્કૃષ્ટ કેટલા કાળસુધી રહેશે એ કાળની મર્યાદાને સ્થિતિબંધ કહે છે

(૩) અનુભાગબંધ-ફળ આપનારી કર્મોની શક્તિના તારતમ્યને અનુભાગ બંધ-કહે છે

(૪) પ્રદેશબંધ-કેટલા કર્મો આત્માની સાથે બંધને પ્રાપ્ત થયા છે, એ પ્રકારે કર્મપ્રદેશોની પરિગણનાને પ્રદેશબંધ કહે છે કહ્યુ છે કે-

"સ્વભાવને પ્રકૃતિબંધ, કાળની મર્યાદાને સ્થિતિબંધ, રસને અનુભાગબંધ અને કર્મ-પુદ્ગલોના સમૂહને પ્રદેશબંધ કહે છે" (૧)

बन्धश्चतुर्विधः-प्रकृति स्थित्य-नुभाग प्रदेशभेदात्, तत्र-प्रकृति'=स्वभावः आत्मगृहीतकर्मपुद्गलानां तत्तच्छक्तिरूपतया परिणमनलक्षण', यथा=निम्बस्य तिक्तत्वम्, गुडस्य मधुरत्वमित्यादि, तथा ज्ञानावरणीयस्य जीवादिपदार्थानव बोधकत्वम् (१), दर्शनावरणीयस्य जीवादीनामनालोचकत्वम् (२), वेदनीयस्याऽव्याबाधगुणबाधकत्वम् (३), मोहनीयस्य तत्त्वारुचित्वमव्रतित्व च (४), आयुषो भवाधायकत्वम् मोक्षस्य साधनत्वस्थित्याच्छादकत्वमित्यर्थ' (५), नाम्नोऽमूर्तत्वगुणनिरोधकत्वम् (६), गोत्रस्यागुरुलघुगुणघातकत्वम् (७), अन्तरायस्य च

बन्ध चार प्रकारका है-(१) प्रकृतिबन्ध, (२) स्थितिबन्ध, (३) अनुभागबन्ध और (४) प्रदेशबन्ध।

(१) प्रकृतिबन्ध-प्रकृति स्वभावको कहते हैं। अर्थात् आत्माके द्वारा ग्रहण किये हुए कर्मोंमें अमुक अमुक प्रकारकी शक्तिका आजाना। जैसे नीमका स्वभाव कटुकता, गुड़का स्वभाव माधुर्य, इत्यादि। इसी प्रकार ज्ञानावरण कर्मका स्वभाव है-आत्माके ज्ञानको आच्छादित करना १। दर्शनावरणका स्वभाव है-दर्शनको रोकना २। अव्याबाध गुणको प्रगट न होने देना वेदनीय कर्मका ३। जीवादि तत्त्वोंमे रुचि न होने देना तथा चारित्रको रोकना मोहनीय कर्मका ४। किसी शरीरमें रोक रखना आयुकर्मका ५। अमूर्त्तत्व गुणको प्रगट न होने देना नामकर्मका ६। अगुरु-लघुत्व गुणका नाश कर देना गोत्रकर्मका ७। तथा दान लाभ

બંધ ચાર પ્રકારનો છે (૧) પ્રકૃતિ-બંધ, (૨) સ્થિતિ-બંધ, (૩) અનુભાગ બંધ અને (૪) પ્રદેશ-બંધ

(૧) પ્રકૃતિ બંધ-પ્રકૃતિ સ્વભાવને કહે છે, અર્થાત્ આત્મા વડે ગ્રહણ કરેલા કર્મોમાં અમુક-અમુક પ્રકારની શક્તિ આવી જવી તે જેમ લીંબડાનો સ્વભાવ કટુતા (કડવાશ) છે, ગોળનો સ્વભાવ મધુરતા (મિઠાશ) છે, ઇત્યાદિ એ રીતે જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાનો (ઢાંકવાનો) છે ૧ દર્શનાવરણનો સ્વભાવ દર્શનને રોકવાનો છે ૨ અવ્યાબાધ ગુણને પ્રકટ ન થવા દેવા એ વેદનીય-કર્મનો સ્વભાવ છે ૩ જીવાદિ તત્ત્વોમાં રૂચિ ન થવા દેવી તથા ચારિત્રને રોકવુ એ મોહનીય-કર્મનો સ્વભાવ છે ૪ કોઈ શરીરમાં આત્માને રોકી રાખવો એ આયુ-કર્મનો સ્વભાવ છે ૫ અમૂર્તત્વ ગુણને પ્રકટ થવા ન દેવો એ નામકર્મનો સ્વભાવ છે ૬ અગુરૂ-[illegible]

पमा, कस्यचिच्चान्तर्मुहूर्त्तपरिच्छिन्ना, एवं विभिन्नकर्मणा नियतकालावस्थानं स्थितिबन्धः (२)।

यथा कस्यचिन्मोदकस्यानुभागो(रसो)ऽतिमधुरः स्वल्पमधुरो वा, कस्यचिदतिकटुकः स्वल्पकटुको वा, कस्यचिच्च नातिमधुरो नाप्यतिकटुको भवति, द्विगुणीकरणादिना च स एव मन्द-मन्दतरत्वादिव्यपदेशं च लभते, तथा कर्मणामपि [1]शुभाशुभादिरूपेण तीव्र-तीव्रतर तीव्रतम-मन्द-मन्दतर मन्दतमत्वादिभेदभिन्नो बन्धोऽनुभागबन्धो रसबन्धव्यपदेश्यः (३)।

१ शुभकर्मणामनुभागो (रसो) द्राक्षेक्षुक्षीरमाक्षीकवदतिमधुरो भवति, यदनुभ-

किसीकी सत्तर कोडाकोडी सागरोपमकी होती है, किसी कर्मकी अन्तर्मुहूर्त्त मात्रकी होती है, इस प्रकार विभिन्न कर्मोंका अमुक समय तक आत्माके साथ स्थित रहना स्थितिबन्ध कहलाता है।

(३) जैसे किसी मोदकका स्वाद (रस) बहुत मीठा होता है, किसी मोदकका कम मीठा होता है, किसीका स्वाद बहुत कडुआ होता है, किसीका कम कडुआ होता है, किसीका स्वाद न अधिक मीठा होता है, न अधिक कडुआ होता है, उसे ही द्विगुण आदि करदेनेसे वही मन्द मन्दतर आदि कहलाने लगता है। वैसे ही कर्मोंका रस शुभ[1] अशुभ रूपसे तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर और मन्दतम आदि भेदोंसे विविध प्रकारका होता है। उसे ही अनुभागबन्ध या रसबन्ध कहते हैं।

१ शुभकर्मोंका अनुभाग (रस) दाख, साठा (गन्ना), दूध या मधुके समान

હોય છે, કોઇ કર્મની સ્થિતિ માત્ર અંતર્મુહૂર્તની હોય છે એ પ્રકારે વિભિન્ન કર્મોનું અમુક સમય સુધી આત્માની સાથે સ્થિત રહેવું એ સ્થિતિબંધ કહેવાય છે,

(૩) જેમ કોઇ મોદકનો સ્વાદ (રસ) બહુ મીઠો હોય છે કોઇ મોદકનો ઓછો મીઠો હોય છે, કોઇ મોદકનો સ્વાદ બહુ કડવો હોય છે, કોઇનો ઓછો કડવો હોય છે, કોઇનો સ્વાદ ન વધુ મીઠો કે વધુ કડવો હોય છે, તેને દ્વિગુણ (બેવડો) કરવાથી તે મંદ મંદતર આદિ કહેવાવા લાગે છે, એજ રીતે કર્મોનો રસ શુભ[1] અશુભ રૂપથી તીવ્ર, તીવ્રતર, તીવ્રતમ, મંદ, મંદતર, મંદતમ આદિ ભેદોએ કરીને વિવિધ પ્રકારનો થાય છે એને જ અનુભાગબંધ યા રસબંધ કહે છે

૧ શુભ કર્મોનો અનુભાગ (રસ) દ્રાક્ષ શેરડી દૂધ યા મધના જેવો અતિમધુર હોય છે

एतेषां स्वरूपं च सुखावबोधाय मोदकदृष्टान्तेन प्रदर्श्यते—

यथा कस्यचिदौषधमोदकस्य प्रकृतिर्वातहारिका, कस्यचित्पित्तहारिका, कस्यचित्कफहारिणी, कस्यचिद् बुद्धिनाशिनी, तथा कस्यचित्कर्मणः प्रकृतिर्ज्ञानावरकारिणी, कस्यचिद्दर्शनावरणविधायिनीत्येवमादिविभिन्नशक्तिमता कर्मणा बन्धः प्रकृतिबन्धः (१)।

यथा कस्यचिन्मोदकस्य स्थितिः सप्ताहोरात्रव्यापिनी, कस्यचित्पक्षव्यापिनी, कस्यचनैकादिकमासं यावत् स्थितिस्तथा कस्यचित्कर्मणस्त्रिंशत्कोटीकोटीसागरोपमा स्थितिः, कस्यचिद्विंशतिकोटीकोटीसागरोपमा, कस्यचन सप्ततिकोटीकोटीसाग

सरलतासे समझनेके लिए मोदकका दृष्टान्त देकर चारों बन्धों स्वरूप दिखलाते हैं–

(१) जैसे किसी औषध–मोदककी प्रकृति वातको हरनेवाली होती किसीकी पित्तको हरनेवाली होती है, किसीकी कफको हरनेवा होती है और किसी मोदककी प्रकृति बुद्धिको नष्ट करनेवाली होती इसी प्रकार किसी कर्मकी प्रकृति ज्ञानका आवरण करनेवाली होती और किसीकी दर्शनका आवरण करनेवाली होती है। इस प्रकार भि भिन्न शक्तिवाले कर्मोंका बन्ध होना प्रकृतिबन्ध है।

(२) जैसे किसी मोदककी स्थिति एक सप्ताहकी होती है, कि मोदककी स्थिति एक पक्ष (पखवाड़े) की होती है, किसी मोदककी स्थि एक मासकी होती है, वैसे ही किसी कर्मकी स्थिति तीस कोडाको सागरोपमकी होती है, किसीकी बीस कोडाकोडी सागरोपमकी होती

સરળતાથી સમજવાને માટે મોદકનુ દૃષ્ટાંત આપીને ચારે બંધોનુ સ્વ બતાવે છે—

(૧) જેમ કોઇ ઔષધ–મોદકની પ્રકૃતિ વાયુને હરવાવાળી છે કોઇ શકિત પિત્તને હરવાવાળી છે, કોઇની કફને હરવાવાળી છે, અને કોઇ મોદ પ્રકૃતિ બુદ્ધિને નષ્ટ કરવાવાળી હોય છે એ રીતે કોઇ કર્મની પ્રકૃતિ જ્ઞા આવરણ કરનારી હોય છે, કોઈની દર્શનનું આવરણ કરનારી હોય છે, એ ભિન્ન ભિન્ન શકિતવાળા કર્મોનો બંધ થવો એ પ્રકૃતિબંધ કહેવાય છે

(૨) જેમ કોઈ મોદકની સ્થિતિ એક સપ્તાહની હોય છે, કોઇ મોદ સ્થિતિ એક પક્ષ (પખવાડિયુ)ની હોય છે, કોઈ મોદકની સ્થિતિ એક માસ હોય છે, તેમજ કોઇ કર્મની સ્થિતિ ત્રીસ કોડાકોડી સાગરોપમની હોય કોઇની વીસ કોડાકોડી સાગરોપમની હોય છે, કોઈની સત્તર કોડાકોડી સાગરોપમ

यथा कस्यचिन्मोदकस्य प्रदेशः=कणिकादिदलसञ्चयः परिमाणेन द्विकर्षमितः, कस्यचित्कर्षत्रयमितः, एवं कस्मिंश्चित् कर्मदले परिमाणतोऽधिकसंख्यकाः, कस्मिंश्चिन्न्यूनसंख्यकाः, इत्येवं न्यूनाधिकस्वरूपेण कर्मवर्गणाभिरात्मनोऽभिसम्बन्धः प्रदेशबन्धः (४)।

मोक्षम्=मोक्षणं मोक्षः, स च द्रव्यभावभेदाद्द्विविधः, तत्र द्रव्यतो निगडादितः, भावतो ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मपाशतः पृथग्भवनमात्मनः, प्रकृते च भावमोक्षस्य आत्मनः पुनरप्रादुर्भाव्यशेषकर्मक्षयादनन्तज्ञानशाश्वतावस्थिति-कृतकृत्यत्वाऽव्याबाधसुखस्वरूपस्य ग्रहणम्।

---

(४) जैसे किसी मोदकमें आटे आदिके प्रदेश, परिमाणमें दो तोला होता है, किसीका तीन तोला होता है। इसी प्रकार किसी कर्मदलमें अधिक संख्यावाले प्रदेश हैं, किसी कर्मदलमें कम संख्यावाले प्रदेश होते हैं, अतः न्यूनाधिक रूपसे कर्मवर्गणाओंके साथ आत्माका सम्बन्ध होना प्रदेशबन्ध है।

छूटनेको मोक्ष कहते हैं, मोक्ष भी दो प्रकारका है-(१) द्रव्यमोक्ष और (२) भावमोक्ष। बेडी आदिसे छूटना द्रव्यमोक्ष है और ज्ञानावरण आदि आठ कर्मरूपी पाशसे आत्माका मुक्त हो जाना भावमोक्ष है।

यहां समस्त कर्मोंके आत्यन्तिक अभावसे उत्पन्न होनेवाले अनन्त ज्ञान, शाश्वत स्थिति, कृत-कृत्यता, अव्याबाध सुखस्वरूप भाव-मोक्षका ग्रहण किया गया है।

---

(४) જેમ કોઇ મોદકમા આટા આદિનો પ્રદેશ પરિમાણમા બે તોલા હોય છે, કોઇમા ત્રણ તોલા હોય છે, એજ રીતે કોઇ કર્મદળમા અધિક સખ્યાવાળા પ્રદેશો છે, કોઇ કર્મદળમા ઓછી સખ્યાવાળા પ્રદેશો હોય છે, એમ ન્યૂનાધિક રૂપે કર્મવર્ગણાઓની સાથે આત્માનો સબધ થવો એ પ્રદેશબધ છે

છૂટવાને મોક્ષ કહે છે મોક્ષના પણ બે પ્રકાર છે (૧) દ્રવ્ય-મોક્ષ અને (૨) ભાવમોક્ષ, બેડી વગેરેથી છૂટવુ એ દ્રવ્યમોક્ષ છે અને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મરૂપી પાશથી આત્માનુ મુક્ત થઇ જવુ તે ભાવમોક્ષ છે

અહી સર્વ કર્મોના આત્યન્તિક અભાવથી ઉત્પન્ન થનારા અનત જ્ઞાન, શાશ્વત-સ્થિતિ, કૃતકૃત્યતા, અવ્યાબાધ-સુખ-સ્વરૂપ ભાવમોક્ષને ગ્રહણ કરવામા આવેલ છે

वेन जीवः सान्द्रानन्दसन्दोहतुन्दिलान्तःकरणो जायते। अशुभकर्मणां रसस्तु निम्ब किराततिक्तादिवदतितरां तिक्तो भवति, यदनुभवेन जीवोऽनिर्वचनीयं व्याकुलीभावं भजते, तीव्रतीव्रतरत्वादिबोधनार्थं च दृष्टान्तः प्रदर्श्यते-इक्षुनिम्बयोरन्यतरस्य चतुःशेटकपरिमितो रसः 'स्वाभाविकरस' इत्युच्यते, यदि तापद्वारोत्कालितो यदा शेटकचतुष्टयस्थाने शेटकत्रितयमात्रोऽवशिष्येत तदाऽसौ 'तीव्र' इत्युच्यते, पुनरुत्कालनेन शेटकद्वितयमात्रोऽवशिष्येत तदा 'तीव्रतर' इत्यभिधीयते, पुनरप्युत्कालनेन शेटकैकमात्रेऽवशिष्टे 'तीव्रतम' इति कथ्यते।

इक्षु-निम्बयोरेव शेटकैकमात्रो रसः 'स्वाभाविकरसः' इत्युच्यते, एकशेटकजलमेलनेन 'मन्दरस' इति, द्विशेटकजलसंयोजनेन 'मन्दतरो रस' इति, शेटकत्रितयपरिमितजलसम्मर्नेन 'मन्दतमो रस' इति व्यपदेशं लभते।

अतिमधुर होता है, इसके उपभोगसे आत्मामें अत्यन्त आनन्द उत्पन्न होता है। अशुभ कर्मोंका फल नीम चिरायता आदिके समान अत्यन्त तिक्त होता है, इसका अनुभव करनेसे जीव अतिशय व्याकुलता प्राप्त करता है। तीन तीव्रतर आदि समझानेके लिये उदाहरण देते हैं—इक्षु या नीममेंसे किसीका चार सेर रस 'स्वाभाविक रस' कहलाता है, यदि अग्निमें उकालने पर तीन सेर रह जाय तो वह तीव्र कहलाता है, फिर उकालने पर दो सेर बच जाय तो तीव्रतर कहलाता है, यदि फिर उकालने पर सिर्फ एक सेर बाकी रह जाय तो वह तीव्रतम कहलाता है।

इक्षु और निम्बका एक सेर रस स्वभाविक रस, उसमें एक सेर जल मिला दिया जाय तो मन्द, दो सेर मिलानेसे मन्दतर, तीन सेर मिलानेसे मन्दतम रस कहलाता है।

એના ઉપભોગથી આત્મામા અત્યત આનદ ઉત્પન્ન થાય છે અશુભ કર્મોનુ ફળ લીંમડો કરિયાતુ આદિની જેઠ અત્યત તિકત હોય છે એનો અનુભવ કરવાથી જીવ અતિશય વ્યાકુળતા પ્રાપ્ત કરે છે તીવ્ર તીવ્રતર આદિ સમજાવવાને ઉદાહરણ આપે છે-શેરડી યા લીંબડામાથી કાઢેલો કોઈનો ચાર શેર રસ સ્વાભાવિક રસ કહેવાય છે જો તેને અગ્નિ પર ઉકાળવાથી ત્રણ શેર રહે તો તે તીવ્ર કહેવાય છે ફરી ઉકાળવાથી બે શેર રહે તો તે તીવ્રતર કહેવાય છે અને તેને ફરીથી ઉકાળતા માત્ર શેર બાકી રહે તો તે તીવ્રતમ કહેવાય છે

શેરડી અને લીંબડાના એક શેર સ્વાભાવિક રસમા જો એક શેર પાણી મેળવવામા આવે તો મદ, બે શેર પાણી મેળવતા મદતર અને ત્રણ શેર પાણી મેળવવાથી મદતમ રસ કહેવાય છે

तस्मादात्मनः सकलकर्ममलविरहिता सद्भावस्वरूपा काचिदवस्थाऽवश्यम्भाविनी ।

न च 'दीपस्याऽभ्रस्य वा निरन्वयविनाशदर्शनादात्मनः स (निरन्वयविनाशः) कथं ने-'ति शङ्कनीयम्, तयोरपि निरन्वयविनाशानभ्युपगमात्, यथा कर्पूरस्य 'पिपरमेण्ट' इति ख्यातपदार्थस्य वा वातेन ह्रियमाणस्य परिणमनसौक्ष्म्यादिन्द्रियगोचरत्वापायेऽपि न सर्वथाऽभावः किन्त्ववस्थान्तरेण परिणतिमात्रम्, तथैव प्रदीपपर्यायाऽऽपन्नाः पुद्गलास्तमस्त्वेन परिणमन्ति, एवमभ्रस्यापि विशीर्यमाणस्य पुद्गलपुञ्जः परिणामसूक्ष्मत्वेन दृष्टिपथमप्राप्तोऽपि न पुद्गलत्वेनाऽसद्भूतः। एवमेवा-

नहीं होता। जब सत् पदार्थका अभाव नहीं हो सकता तो आत्माकी भी समस्त कर्मोंसे रहित विद्यमान अवस्था अवश्य होनी चाहिये।

बौद्ध-जब दीपककी ज्वालाका तथा मेघका निरन्वय नाश देखा जाता है तो आत्माका निरन्वय (सर्वथा) नाश क्यों नहीं हो सकता?।

जैन-यह कहना सत्य नहीं है कि दीपककी ज्वाला और मेघ का निरन्वय नाश होजाता है। वह सूक्ष्मरूपसे परिणमन होनेसे यद्यपि इन्द्रियगोचर नहीं होता तथापि उसका सर्वथा अभाव नहीं होजाता, वह दूसरी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होजाता है। इसी तरह प्रदीप अवस्था वाले पुद्गल अन्धकाररूपमें परिणत होजाते हैं। मेघ जब छिन्न-भिन्न हो जाता है तो सूक्ष्मरूपमें परिणत होजाने से इन्द्रियोंद्वारा गृहीत नहीं हो सकता तथापि पुद्गल के रूपमें विद्यमान रहता ही है। ऐसे ही समस्त

થતો નથી જો સત્ પદાર્થનો અભાવ થઈ શકતો નથી તો આત્માની પણ સર્વ કર્મોથી રહિત વિદ્યમાન અવસ્થા અવશ્ય હોવી જોઈએ

બૌદ્ધ—જો દીપકની જ્વાળાનો તથા મેઘનો નિરન્વય નાશ જોવામા આવે છે, તો આત્માનો નિરન્વય (સર્વથા) નાશ કેમ ન થઈ શકે ?

જૈન—એમ કહેવુ સત્ય નથી કે દીપકની જ્વાળા અને મેઘનો નિરન્વય નાશ થઇ જાય છે સૂક્ષ્મરૂપથી પરિણમન થવાથી જો કે તે ઇન્દ્રિયગોચર થતા નથી, તથાપિ એનો સર્વથા અભાવ થઈ જતો નથી તે બીજી સૂક્ષ્મ અવસ્થાને પામે છે એ રીતે પ્રદીપ અવસ્થાવાળા પુદ્ગલ અંધકાર-રૂપમા પરિણત થઈ જાય છે મેઘ જ્યારે છિન્ન-ભિન્ન થઈ જાય છે ત્યારે તે સૂક્ષ્મરૂપમા પરિણત થઈ જવાથી ઇંદ્રિયોદ્વારા ગ્રહીત થઈ શકતો નથી. તોપણ પુદ્ગલના રૂપમા વિદ્યમાન

अत्र बौद्धा-"दीपनिर्वाणवदात्मनो निर्वाणं मोक्षः" यथोक्तम्—
"दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्, स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥१॥
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो, नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्, क्लेशक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥२॥"
इत्याहुस्तच्छाश्वतावस्थितिपदेन निराकृतम्, सतोऽत्यन्तविनाशाभावात्,

बौद्धमतावलम्बी मानते हैं कि-"जैसे दीपक बुझ जाता है उसी प्रकार आत्माका अभाव हो जाना मोक्ष है"। कहाभी है—

"जैसे दीपककी ज्वाला जब नष्ट हो जाती है, तब न भूमिकी ओर जाती है न आकाशकी ओर जाती है, न किसी दिशामें जाती है, न विदिशामें जाती है, किन्तु स्नेह (तेल) का अभाव हो जानेसे शान्त हो जाती है ॥ १ ॥

इसी प्रकार मुक्त जीव न भूमिकी ओर जाता है, न आकाशकी ओर जाता है, न किसी दिशामें जाता है, न किसी विदिशामें जाता है, हां, दुःखोंका क्षय होजानेसे शान्त होजाता है, अर्थात् मुक्त अवस्थामें जीवका अभाव होजाता है ॥२॥"

ऐसा माननेवाले बौद्धोंका खण्डन मोक्षके लक्षणमें आये हुए 'शाश्वत अवस्थिति' पदसे किया गया है, क्योंकि सत् पदार्थका कभी अभाव

બૌદ્ધમતાવલમ્બીઓ માને છે કે-'જેમ દીપક બુઝાઈ જાય છે તેમ આત્માનો અભાવ થઈ જવો એ મોક્ષ છે" કહ્યુ છે કે—

"જેમ દીપકની જ્વાળા જ્યારે નષ્ટ થઈ જાય છે, ત્યારે નથી તે ભૂમિની તરફ જતી, નથી આકાશની તરફ જતી, નથી કોઈ દિશામા જતી, નથી વિદિશામા જતી, પરંતુ સ્નેહ (તેલ) નો અભાવ થવાથી શાન્ત થઈ જાય છે (૧)

એ રીતે મુક્ત જીવ નથી ભૂમિનું તરફ જતો, નથી આકાશની તરફ જતો, નથી કોઈ દિશામા જતો, નથી કોઈ વિદિશામા જતો, હા, દુ ખોનો ક્ષય થઈ જવાથી શાન્ત થઈ જાય છે, અર્થાત્ મુક્ત અવસ્થામા જીવનો અભાવ થઈ જાય છે" (૧)

એમ માનનારા બૌદ્ધોનું ખડન મોક્ષના લક્ષણમા આવેલા 'શાશ્વત અવસ્થિતિ' શબ્દ વડે કરવામા આવ્યું છે, કારણ કે સત્ પદાર્થનો કદાપિ અભાવ

मोक्षः?। भिन्नाश्चेत्तर्हि वह्निशैत्ययोरिव तयोर्गुणगुणिभावोऽनुपपन्नः समवायस्याऽसिद्धत्वात्, अत एव न बुद्धयादीनामात्मगुणत्वम्। अस्तु वा अयौक्तिकोऽपि गुणगुणिभावस्तथापि ज्ञानसुखाद्यभावादात्मानं को जडीकर्तुमुपक्रमेत्? उच्छेदपि? ईदृशाद्भवदभिमतान्मोक्षात्संसारावस्थैव सम्यक्तराऽस्माकमस्तु, यस्मिन् सत्यपि क्लेशे कादाचित्कं स्वल्पमपि सुखं लभ्यत एव।

लोकेऽपि भवदभिमतमोक्षमाहात्म्यमुपहस्यते, यथा—

नाश होजायगा तो मोक्ष किस का होगा?। अगर कहो कि ये गुण आत्मासे भिन्न हैं तो उनका आत्मा के साथ गुण-गुणीका सम्बन्ध कैसे हुआ?, भिन्न होनेके कारण जैसे अग्नि और शीतलता में गुण-गुणि सम्बन्ध नहीं होता वैसे ही आत्मा और बुद्धि आदि का भी सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि समवाय सम्बन्ध से गुण गुणिभाव मान लोगे तो बुद्धि आदि गुणों का नाश नहीं हो सकता, क्योंकि समवाय सम्बन्ध को तुमने नित्य माना है, अतः बुद्धि आदि आत्मा के गुण ही सिद्ध नहीं होते। यद्यपि यह सम्बन्ध युक्ति से तो सिद्ध नही होता फिर भी मान लोगे तो जबकि मोक्षमें ज्ञान और सुख आदिका अभाव हो जाता है तो कौन बुद्धिमान् अपनी आत्मा को इन गुणों से रहित जड के समान बनाने का प्रयत्न करेगा? तुम्हारे इस मोक्षसे तो संसार ही भला जिसमें दुःखोंके साथ-साथ कभी-कभी थोडा बहुत सुख भी मिल जाता है। लोकमें भी तुम्हारे माने हुए मोक्ष की हँसी उडाई जाती है, सुनो—

પછી મોક્ષ કોનો થશે? અગર જો કહો કે એ ગુણ આત્માથી ભિન્ન છે તો આત્માની સાથે એનો ગુણ ગુણીનો સંબંધ કેવી રીતે થયો? ભિન્ન હોવાને કારણે જેમ અગ્નિ અને શીતલતામાં ગુણ ગુણી સંબંધ નથી હોતો, તેવી રીતે આત્મા અને બુદ્ધિ આદિનો પણ સંબંધ નથી હોઇ શકતો. જો સમવાય સંબંધથી ગુણ ગુણીભાવ માની લેશો તો બુદ્ધિ આદિ ગુણોનો નાશ નથી થઇ શકતો, કારણ કે સમવાય સંબંધને તમે નિત્ય માન્યો છે એથી બુદ્ધ આદિ આત્માના ગુણ જ સિદ્ધ થતા નથી જો કે એ સંબંધ યુક્તિથી તો સિદ્ધ નથી થતો, તોપણ માની લેશો તો જો મોક્ષમા જ્ઞાન અને સુખ આદિનો અભાવ થઇ જાય છે તો કયો બુદ્ધિમાન પોતાના આત્માને એ ગુણોથી રહિત જડની સમાન બનાવવાનો પ્રયત્ન કરશે? તમારા એવા મોક્ષ કરતા તો સંસાર જ સારો કે જેમા દુઃખોની સાથે સાથે કોઇ કોઇવાર થોડુ ઘણુ સુખ પણ મળી જાય છે લોકોમા પણ તમારા માનેલા મોક્ષની હાસી ઉડાવવામા આવે છે સાંભળો—

ऽऽत्माऽपि कृत्स्नकर्मकलापविप्रमुक्तः शुद्धः सिद्धो बुद्धोऽनन्तगुणसमृद्धो मोक्षावस्थायामपि विद्यत एवेति ।

अत्र 'अनन्तज्ञाने'-तिविशेषणेन नैयायिकवैशेषिकाभिमतं मतं निरस्तम्। तथाच—

"बुद्धि-सुख-दुःखेच्छा द्वेष-प्रयत्न धर्मा-ऽधर्म-संस्कारस्वरूपाणां नवानामात्मविशेषणगुणानामत्यन्तविच्छेदो मोक्षः" इति। अत्रोच्यते-बुद्ध्यादयो गुणा आत्मनो भिन्ना अभिन्ना वा ?, अभिन्नाश्चेत्तद्विनाशे आत्मनोऽपि विनाशोऽवश्यम्भावी तत्स्वरूपत्वात्, औष्ण्यविनाशे वह्निविनाशवत्, तथा च तदानीं कस्य

कर्मोंसे रहित, शुद्ध, सिद्ध, बुद्ध और अनन्त गुणों से समृद्ध आत्मा मोक्ष-अवस्थामें भी विद्यमान रहती है।

'अनन्तज्ञान' विशेषण से नैयायिक-वैशेषिक मत का निराकरण किया गया है।

उनकी मान्यता है कि-"बुद्धि, सुख, दु.ख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार, इन आत्मा के नौ विशेष गुणोंका अत्यन्त विनाश हो जाना मोक्ष है।"

यहाँ पूछना यह है कि-बुद्धि आदि गुण आत्मा से भिन्न हैं या अभिन्न ?, यदि अभिन्न हैं तो गुणोंका नाश होनेपर आत्माका भी नाश हो जायगा, क्योंकि आत्मा और गुण भिन्न नहीं हैं-एक ही है, जैसे उष्णताका नाश होनेपर अग्निका नाश होजाता है। जब आत्मा का

તો રહે જ છે એવી જ રીતે સર્વ કર્મોથી રહિત, શુદ્ધ, સિદ્ધ, બુદ્ધ અને અનંત ગુણોથી સમૃદ્ધ આત્મા મોક્ષ અવસ્થામા પણ વિદ્યમાન રહે છે

'અનન્ત જ્ઞાન' વિશેષણથી નૈયાયિક-વૈશેષિક મતનું નિરાકરણ કરવામા આવ્યુ છે

તેનો માન્યતા એવી [redacted] કે "બુદ્ધિ, સુખ, દુ ખ, ઇચ્છા, દ્વેષ, પ્રયત્ન, ધર્મ, અધર્મ અને સસ્કાર, એ આત્માના નવ વિશેષ ગુણોનો અત્યત વિનાશ થઇ જવો એ મોક્ષ છે"

અહીં પૂછવાનુ એ છે કે-બુદ્ધિ આદિ ગુણ આત્માથી ભિન્ન છે કે અભિન્ન? જો અભિન્ન છે તો ગુણોનો નાશ થયા બાદ આત્માનો પણ નાશ થઇ જશે, કારણ કે આત્મા અને ગુણ ભિન્ન નથી-એક જ છે, જેમકે ઉષ્ણતાનો નાશ થવાથી અગ્નિનો પણ નાશ થઇ જાય છે, જો આત્માનો નાશ થઈ જશે તો

'आत्मनः' इतिपदेन प्रत्यादिष्टम्। किञ्च-तन्मते प्रकृति-पुरुषयोः सयोगोऽपि न घटते कुतो मोक्षचर्चा?, तथाहि-नित्या प्रकृतिः प्रवृत्तिस्वभावा तदितरस्वभावा वा? तयोराद्यः सावद्यः पक्षः, तत्र तत्प्रवृत्तेरुपरत्यभावेन मोक्षासम्भवात्, उपरत्यभ्युपगमे च प्रकृतेरनित्यत्वप्रसङ्गः। द्वितीयोऽपि पक्षो न क्षोदक्षम प्रवृत्तेरेवाऽसम्भवतः कथमिव भवसम्भवः?, भवाभावे कस्य मोक्षः? एव तन्मते मोक्षस्यैवायौक्तिकत्वात्कथ तल्लक्षणस्य समीचीनत्व सिध्येत्?।

हो जाता है, इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं।"

ऐसी साख्यमतानुयायिओंकी मान्यता है। 'आत्मनः' पदसे उसका निराकरण किया गया है। साख्यमतमें प्रकृति और पुरुषका सयोग ही सिद्ध नहीं होता तब मोक्ष की चर्चा ही क्या करना? सो ही आगे दिखलाते हैं कि-प्रकृति का स्वभाव प्रवृत्ति करनेका है या नही?, पहला पक्ष दूषित है,क्योंकि प्रकृतिका स्वभाव यदि सर्वदा प्रवृत्ति करने का है तो उस प्रवृत्तिकी निवृत्ति नही होसकती और इसी कारणसे कभी मोक्ष भी नही होगा। दूसरा पक्ष भी विचार करनेसे बाधित होजाता है। जब प्रकृति प्रवृत्ति ही नही करेगी तो ससार कैसे होगा?, और जब ससार (कर्मसहित अवस्था) ही नही तो मोक्ष किससे होगा?, अर्थात् किसी प्रकार मोक्ष ही नही बनता। जब मोक्ष नही बनता तो उसके लक्षण की निर्दोषता भी सिद्ध नही होसकती।

थई जाय छे, એ અવસ્થાને મોક્ષ કહે છે"

એવી સાખ્યમતાનુયાયીઓની માન્યતા છે आत्मन. શબ્દથી એનું નિરાકરણ કરવામા આવ્યુ છે સાખ્યમતમા પ્રકૃતિ અને પુરૂષનો સયોગ જ સિદ્ધ નથી થતો તો મોક્ષની ચર્ચા જ શુ કરવી? તેજ આગળ બતાવવામા આવે છે કે-પ્રકૃતિનો સ્વભાવ પ્રવૃત્તિ કરવાનો છે કે નહિ? પહેલો પક્ષ દૂષિત છે, કારણ કે પ્રકૃતિનો સ્વભાવ જો સર્વદા પ્રવૃત્તિ કરવાનો છે તો એ પ્રવૃત્તિની નિવૃત્તિ થઇ શકતી નથી, અને તે કારણે કદાપિ મોક્ષ પણ થશે નહિ બીજો પક્ષ પણ વિચાર કરવાથી બાધિત થઇ જાય છે જો પ્રકૃતિ પ્રવૃત્તિ જ નહિ કરે તો સસાર કેવી રીતે થશે? અને જો સસાર (કર્મસહિત અવસ્થા) જ નથી તો મોક્ષ શાનાથી થશે? અર્થાત્ કેઇ પ્રકારે મોક્ષ જ નથી બનતુ, જો મોક્ષ નથી બનતુ તો તેના લક્ષણની નિર્દોષતા પણ સિદ્ધ થઇ શકે નહિ

"वर वृन्दावने रम्ये, शृगालत्वं व्रजाम्यहम् ।
न तु वैशेषिकीं मुक्तिं, प्रार्थयामि कदाचन ॥ १ ॥" इति ।

यत्तु "अनन्तसुखरूपो मोक्षः" इति तदप्यसमीचीनम् , तथाहि-तदनन्तसुखं मुक्तात्मनो ज्ञानगोचरं भवति न वा?, आद्ये पक्षे ज्ञानाऽऽनन्त्यप्रसङ्गः, तदन्तरेणाऽनन्तसुखसंवेदनाऽसम्भवात् । द्वितीये च सुखस्वभावताप्रसङ्गः, सातसंवेदनस्यैव सुखत्वात्, अत एवाऽनन्तज्ञानविरहितसुखस्वभावस्य मोक्षस्य न सिध्यति। "प्रकृतावुपरतायां[1] पुरुषस्य स्वस्वरूपेणाऽवस्थानं मोक्षः" इति हि साङ्ख्याः, तद्

[1] उपरतायां=निवृत्तायाम् ।

"मैं मनोहर वृन्दावन में शृगाल हो जाना पसंद करता हूँ, किन्तु वैशेषिकका मोक्ष नहीं चाहता ॥१॥"

जो कहते हैं कि-"मोक्ष अनन्तसुखस्वरूप है" अर्थात् मोक्ष में सुख ही अवशिष्ट रह जाता है और कुछ नहीं रहता। उनका यह मानना समीचीन नहीं है। यह अनन्त सुख मुक्तात्मा के ज्ञानका विषय है या नहीं? पहला पक्ष स्वीकार करो तो अनन्त सुखको जाननेके लिए अनन्त ज्ञान भी चाहिए। अनन्त ज्ञानके विना अनन्त सुखका बोध नही होसकता। दूसरा पक्ष अंगीकार करो तो सुखस्वभावता सिद्ध नहीं होसकती, क्योंकि, सातारूप संवेदनको ही सुख कहते है। जब संवेदन ही नहीं तो सुख हो ही नहीं सकता है, इसलिए "अनन्त ज्ञानसे रहित सुखस्वभाववाला मोक्ष" नहीं मानना चाहिए।

"प्रकृति जब उपरत होजाती है तब पुरुष अपने स्वरूपमें स्थित

"હું મનોહર વૃન્દાવનમાં શૃગાળ (શિયાળ) થઈ જવાનું પસંદ કરૂં છું, પરંતુ વૈશેષિકનો મોક્ષ નથી પસંદ કરતો." (૧)

જેઓ કહે છે કે "મોક્ષ અનંત સુખસ્વરૂપ છે" અર્થાત્ મોક્ષમાં સુખ જ અવશિષ્ટ રહી જાય છે બીજું કશું નથી રહેતું, તેઓનું એ માનવું પણ સમીચીન નથી એ અનંત સુખ મુક્તાત્માના જ્ઞાનનો વિષય છે કે નહિ? પહેલો પક્ષ સ્વીકારો તો અનંત સુખને જાણવાને માટે અનંત જ્ઞાન પણ જોઇએ અનંત જ્ઞાન વિના અનંત સુખનો બોધ થઇ શકતો નથી બીજો પક્ષ સ્વીકારો તો સુખ સ્વભાવતા સિદ્ધ થઇ શકતી નથી કારણ કે સાતારૂપ સંવેદનને જ સુખ કહે છે જો સંવેદન જ હોતું નથી તો સુખ થઇ જ શકતું નથી તેથી "અનંત જ્ઞાનથી રહિત સુખ-સ્વભાવવાળો મોક્ષ" નહિ માનવો જોઇએ

"પ્રકૃતિ જ્યારે ઉપરત થઇ જાય છે ત્યારે પુરૂષ પોતાના સ્વરૂપમાં સ્થિત

'आत्मनः' इतिपदेन प्रत्यादिष्टम्। किञ्च-तन्मते प्रकृति-पुरुषयोः संयोगोऽपि न घटते कुतो मोक्षचर्चा?, तथाहि-नित्या प्रकृतिः प्रवृत्तिस्वभावा तदितरस्वभावा वा? तयोराद्यः सावद्यः पक्षः, तत्र तत्प्रवृत्तेरुपरत्यभावेन मोक्षासम्भवात्, उपरत्यभ्युपगमे च प्रकृतेरनित्यत्वप्रसङ्गः। द्वितीयोऽपि पक्षो न क्षोदक्षम प्रवृत्तेरेवाऽसम्भवतः कथमिव भवसम्भवः?, भवाभावे कस्य मोक्षः? एव तन्मते मोक्षस्यैवायौक्तिकत्वात्कथ तल्लक्षणस्य समीचीनत्व सिध्येत्?।

हो जाता है, इसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं।"

ऐसी सांख्यमतानुयायिओंकी मान्यता है। 'आत्मनः' पदसे उसका निराकरण किया गया है। सांख्यमतमें प्रकृति और पुरुषका संयोग ही सिद्ध नहीं होता तब मोक्ष की चर्चा ही क्या करना? सो ही आगे दिखलाते हैं कि-प्रकृति का स्वभाव प्रवृत्ति करनेका है या नहीं?, पहला पक्ष दूषित है,क्योंकि प्रकृतिका स्वभाव यदि सर्वदा प्रवृत्ति करने का है तो उस प्रवृत्तिकी निवृत्ति नहीं होसकती और इसी कारणसे कभी मोक्ष भी नहीं होगा। दूसरा पक्ष भी विचार करनेसे बाधित होजाता है। जब प्रकृति प्रवृत्ति ही नहीं करेगी तो संसार कैसे होगा?, और जब संसार (कर्मसहित अवस्था) ही नहीं तो मोक्ष किससे होगा?, अर्थात् किसी प्रकार मोक्ष ही नहीं बनता। जब मोक्ष नहीं बनता तो उसके लक्षण की निर्दोषता भी सिद्ध नहीं होसकती।

થઈ જાય છે, એ અવસ્થાને મોક્ષ કહે છે"

એવી સાંખ્યમતાનુયાયીઓની માન્યતા છે आत्मनः શબ્દથી એનું નિરાકરણ કરવામાં આવ્યું છે સાંખ્યમતમાં પ્રકૃતિ અને પુરૂષનો સંયોગ જ સિદ્ધ નથી થતો તો મોક્ષની ચર્ચા જ શું કરવી? તેજ આગળ બતાવવામાં આવે છે કે-પ્રકૃતિનો સ્વભાવ પ્રવૃત્તિ કરવાનો છે કે નહિ? પહેલો પક્ષ દૂષિત છે, કારણ કે પ્રકૃતિનો સ્વભાવ જો સર્વદા પ્રવૃત્તિ કરવાનો છે તો એ પ્રવૃત્તિની નિવૃત્તિ થઈ શકતી નથી, અને તે કારણે કદાપિ મોક્ષ પણ થશે નહિ બીજો પક્ષ પણ વિચાર કરવાથી બાધિત થઈ જાય છે જો પ્રકૃતિ પ્રવૃત્તિ જ નહિ કરે તો સંસાર કેવી રીતે થશે? અને જો સંસાર (કર્મસહિત અવસ્થા) જ નથી તો મોક્ષ શાનાથી થશે? અર્થાત્ કેઈ પ્રકારે મોક્ષ જ નથી બનતું, જો મોક્ષ નથી બનતું તો તેના લક્ષણની નિર્દોષતા પણ સિદ્ધ થઈ શકે નહિ

यथाऽऽजीवकाः (सम्प्रदायविशेषाः) मुक्तेः सकाशादात्मनः पुनरागमनमामनन्ति, तथाहि—

"ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परमं पदम् ।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भव तीर्थनिकारतः ॥१॥" इति,

तत् 'पुनरप्रादुर्भावतये'-ति पदेनाऽपाकृतम्, यतो मोक्षः कर्मनाशे सति सम्पद्यते, कर्म च कर्मणैव जन्यते, ततश्च मुक्तावस्थायां कर्माभावात्कुत पुनः कर्मोत्पत्तिः?, तदभावे च कुतस्तरां संसारागमनम्? संसारस्य कर्महेतुकत्वात्, न कारणमन्तरेण कार्योत्पत्तिरिति सर्वसमतत्वाच्चेति ।

आजीवक सम्प्रदाय वाले ऐसा कहते हैं कि-"आत्मा मोक्ष से वापस लौट आती है। कहाभी है—

"धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले ज्ञानी परम पदको प्राप्त होकर जब तीर्थका अनादर होने लगता है तब मोक्षसे फिर संसारमें आ जाते हैं ॥१॥"

इनका यह मत 'पुनरप्रादुर्भावतया' इस विशेषण से खण्डित हो गया है। क्योंकि कर्मोंके नाश होने पर ही मोक्ष होता है, और कर्म कर्मोंसे ही उत्पन्न होते हैं। मोक्षमें कर्मोंका अभाव होजानेसे कर्मोंकी उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए संसारमें आगमन संभव नहीं है। कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होसकती, ऐसा सब सिद्धान्तवाले स्वीकार करते हैं।

આજીવક સંપ્રદાયવાળા એમ કહે છે કે-"આત્મા મોક્ષથી પાછો ફરી આવે છે કહ્યું છે કે—

"ધર્મતીર્થની સ્થાપના કરનારા જ્ઞાનીઓ પરમ પદને પ્રાપ્ત થઈને જ્યારે તીર્થનો અનાદર થવા લાગે છે ત્યારે મોક્ષમાંથી પાછા સંસારમાં આવી જાય છે" (૧)

એનો એ મત 'पुनरप्रादुर्भावतया' એ વિશેષણથી ખંડિત થઈ ગયો છે કારણ કે કર્મોનો નાશ થવાથી જ મોક્ષ થાય છે અને કર્મ કર્મોથી જ ઉત્પન્ન થાય છે મોક્ષમાં કર્મોનો અભાવ થઈ જવાથી કર્મોની ઉત્પત્તિ થતી નથી, તેથી સંસારમાં ફરી આવવાનો સંભવ નથી કારણ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, એવું સર્વ સિદ્ધાન્તવાળાઓ સ્વીકારે છે

"आत्मनः सततमूर्ध्वगतिर्मुक्ति"-रिति मण्डलीमतानुयायिनः, तच्च प्रमत्त-प्रलपनप्रायम्, लोकाकाशानन्तर धर्मास्तिकायस्यास्तित्वाभावात्। धर्मास्तिकायस्य जीवपुद्गलाना गतिनिमित्तत्व प्रमाणसिद्ध, तथाहि-गमनोन्मुखाना जीवपुद्गलाना गतिर्बाह्यनिमित्तसापेक्षा गतित्वात्, बाह्यनिमित्तमत्र धर्मास्तिकायोऽन्यस्यासम्भवात्, लोकाकाशाऽनन्तर तदभावान्न तस्मादूर्ध्वं गतिसम्भवः। अत एवाऽर्हतमार्हत-मताभिमतमुक्तिस्वरूपमेवेति।

ननु नरामरतिर्यङ्नारकपर्यायस्वरूप एव ससारस्तेभ्यः पृथग्भावेन न कस्य-

---

मण्डलीमत के माननेवाले कहते हैं कि-"आत्मा सदा ऊपर चली जाती है कहीं ठहरती नहीं है" यह कथन उन्मत्त पुरुषके प्रलापके सदृश है, क्योंकि लोकाकाशके बाद धर्मास्तिकायका सद्भाव नही है। यह बात प्रमाण से सिद्ध है कि धर्मास्तिकायके विना जीव और पुद्गलोंकी गति विना बाह्य कारण के नहीं होसकती, क्योंकि-'वह गति है, जो जो गति होती है वह बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती है'। गति में बाह्य निमित्त धर्मास्तिकाय ही होसकता, क्योंकि अन्य किसीमे ऐसी शक्ति नही है। यह धर्मास्तिकाय लोकाकाशसे आगे नहीं है, इसलिए लोकाकाशसे आगे आत्मा गमन भी नहीं कर सकती'। अत एव सिद्ध हुआ कि 'आर्हतमत (जिनमत) में माना हुआ मोक्षका लक्षण ही सर्वथा निर्दोष है'।

प्रश्न-मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नारकी-पर्यायस्वरूप ही ससार है

મ ડલીમતના માનનારાઓ કહે છે કે "આત્મા સદા ઉપર ચાલ્યો જાય છે, ક્યાય થોભતો-રહેતો નથી" આ કથન ઉન્મત્ત પુરૂષના પ્રલાપ જેવુ છે, કારણ કે લોકાકાશની પછી ધર્માસ્તિકાયનો સદ્ભાવ જ નથી એ વાત પ્રમાણથી સિદ્ધ થએલી છે કે ધર્માસ્તિકાય વિના જીવ અને પુદ્ગલોની ગતિ બાહ્ય કારણ વિના થઇ શકતી નથી, કારણ કે 'એ ગતિ છે, જે જે ગતિ હોય છે તે તે બાહ્ય નિમિત્તની અપેક્ષા રાખે છે' ગતિમા બાહ્ય નિમિત્ત ધર્માસ્તિકાય જ હોઇ શકે છે કારણ કે અન્ય કોઈમા એવી શકિત નથી એ ધર્માસ્તિકાય લોકાકાશથી આગળ નથી, તેથી લોકાકાશથી આગળ આત્મા ગમન કરી શકતો નથી એટલે સિદ્ધ થયુ કે "આર્હતમત (જૈનમત)મા માનેલુ મોક્ષનુ લક્ષણ જ સર્વથા નિર્દોષ છે"

પ્રશ્ન-મનુષ્ય, દેવ, તિર્યંચ અને નારકી-પર્યાયસ્વરૂપ જ સસાર છે એ

नापि श्रद्धानक्रियामात्रेण ज्ञानाऽभावात् (६)। एवमेव मोक्षोऽप्यन्यतमाभावे न सम्भवत्यपि तु समुदितरत्नत्रयादेवेति। त मोक्ष च जानीयात्=विद्यादित्यर्थः ॥१५॥

और पाषाणको पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि वहां क्रिया नहीं है। (५) ज्ञान और क्रियामात्रसे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि श्रद्धान नहीं है। (६) श्रद्धान और क्रिया मात्रसे भी पृथक् नहीं कर सकते, क्योंकि ज्ञानका अभाव है। इसी प्रकार मोक्ष भी समुदित तीनोंसे प्राप्त होता है, किसी एकके अभावमें नहीं होसकता।

जिस प्रकार वन में आग लगने पर, वहाँ रहे हुए अन्धा नेत्रोंके अभावसे, पङ्गु चरणों के अभावसे और अश्रद्धालु अग्निकी दाहकता शक्ति के प्रति श्रद्धा के अभावसे उस वन से नहीं निकल सकते हैं उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्रों से रहित होनेके कारण अन्ध जीव, सम्यक्चारित्र से रहित होने के कारण पङ्गु जीव और सम्यग्दर्शन के अभाव से अश्रद्धालु जीव भी जन्म-जरा-मरण रूपी भीषण दुःखोंकी प्रचण्ड अग्नि से जलते हुए इस ससार रूपी वन से नहीं निकल सकते हैं। जैसे-अन्ध, पङ्गु, और अश्रद्धालु वनाग्नि में जल मरते है उसी प्रकार ये भी ससाराग्निमें जल मरते है। परन्तु जिनके नेत्र और दोनों चरण अक्षत है, और अग्निकी दाहकता-शक्ति के प्रति भी श्रद्धा है वे जिस प्रकार दावाग्नि-प्रज्वलित वनको पार कर जाते हैं उसी प्रकार जो जीव सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र

કરી શકાતા નથી કારણ કે ત્યા ક્રિયા નથી (૫) જ્ઞાન અને ક્રિયા માત્રથી પણ અલગ કરી શકાતા નથી, કારણ કે શ્રદ્ધાન નથી (૬) શ્રદ્ધાન અને ક્રિયાથી પણ અલગ કરી શકાતા નથી કારણ કે જ્ઞાનનો અભાવ છે એ રીતે મોક્ષ પણ સમુદિત ત્રણેથી પ્રાપ્ત થાય છે, કોઇ એકનો અભાવ હોય તો મોક્ષ પ્રાપ્ત થતો નથી

જેમ વનમા આગ લાગવાથી, ત્યા રહેલો આધળો નેત્રો ન હોવાથી, લગડો પગો ન હોવાથી, અને અશ્રદ્ધાળુ અગ્નિની દાહકતા-શકિત પ્રત્યે શ્રદ્ધા ન હોવાથી તે વનમાથી નીકળી શકતો નથી તેમ સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપી નેત્રો ન હોવાથી આધળો જીવ, સમ્યક્ચારિત્ર ન હોવાથી લગડો જીવ, અને સમ્યગ્દર્શન ન હોવાથી અશ્રદ્ધાળુ જીવ પણ જન્મ-જરા-મરણરૂપી ભીષણ દુખોના પ્રચડ અગ્નિથી પ્રજ્વલિત આ સસારરૂપી વનમાથી નીકળી શકતો નથી જેમ આધળો, લગડો અને અશ્રદ્ધાળુ વનાગ્નિમા બળી મરે છે તેમ આ જીવો પણ સસારાગ્નિમા બળી મરે છે પરન્તુ જેના નેત્રો અને બેઉ ચરણો સાબૂત છે, અને અગ્નિની દાહકતા શકિત પ્રત્યે પણ શ્રદ્ધા છે તે જેમ દાવાગ્નિ પ્રજ્વલિત વનને પાર કરી જાય છે તેજ પ્રકારે જે જીવો સમ્યગ્જ્ઞાન, સમ્યક્ચારિત્ર અને સમ્યગ્દર્શનથી

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
मूलम्—जया पुण्णं च पाव च, वध मोक्ख च जाणइ ।
१० १७ १६ ११ १२ १३ १४ १५
तया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥१६॥

छाया—यदा पुण्य च पाप च, वन्ध मोक्ष च जानाति ।
तदा निर्विन्ते भोगान्, ये दिव्या ये च मानुषा· ॥१६॥

सान्वयार्थः–जया=जब पुण्ण च पाव च=पुण्य और पापको, च=तथा बध मुक्ख=बध और मोक्षको जाणइ=जानता है, तया=तब जे दिव्वे=जो देव सम्बन्धी य=और जे माणुसे=जो मनुष्यसम्बन्धी (भोग है, उन) भोए=भोगोको निव्विदए=तत्त्वसे विचारता है, अर्थात् निस्सार समझने लगता है ॥१६॥

टीका–'जया पुण्ण'-मित्यादि। यदा पूर्वप्रतिपादितलक्षणलक्षित पुण्यादिक जानाति तदा ये दिव्याः=दिवि=स्वर्गे भवाः देवसम्बन्धिनः, च=तथा ये मानुषा =मनुष्य-सम्बन्धिनः (भोगाः सन्ति तान् सर्वानपि) भोगान्=भुज्यन्ते=निर्विश्यन्ते=तत्त-दिन्द्रियनोइन्द्रियानुकूलतयोपयुज्यन्त इति भोगा.=शब्दादिविषयास्तान् निर्विन्ते= तत्त्वतो विचारयति–"भोगिभोगोपमाः खल्विमे भोगा अशुचयोऽशुचिसम्भवाः शटन पतन विध्वंसनस्वभावा अशाश्वताश्च, को नाम विवेकी एतत्रिशानिमान् भोगा-

---

और सम्यग्दर्शन से युक्त हैं वे भी जन्म-जरा-मरणरूप भीषण दु.खोंके प्रचण्ड-अग्नि से जलते हुए इस ससाररूपी वनको पार कर जाते हैं।

इससे सिद्ध है कि रत्नत्रयमेसे किसी एककी भी कमी होनेसे सिद्धि नही प्राप्त होसकती। उस प्रकारके मोक्षको जाने ॥१५॥

'जया पुण्ण०' इत्यादि। जब पूर्वोक्तस्वरूपवाले पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्षको जानता है तब देवों तथा मनुष्योंके सम्बन्धी भोगोंका वास्तविक विचार करता है। इन्द्रिय और मनकी अनुकूलतारूपसे जिनका उपभोग किया जाता है उन्हे भोग कहते है। भोगोंके विषयमे साधु ऐसा विचार करते है कि–"ये भोग भुजगके समान भयकर हैं,

---

યુકત છે તે જીવો પણ જન્મ જરા મરણરૂપ ભીષણ દુ ખેના પ્ર ા ડ અગ્નિથી પ્રજ્વલિત આ સ સારરૂપી વનને પાર કરી જાય છે

એથી સિદ્ધ થાય છે કે એ રત્નત્રયમાથી કોઈએક પણ જો ઓછુ હોય તો સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થઈ શકતી નથી, એ પ્રકારના મોક્ષને જાણે (૧૫)

जया पुण्ण० ઈત્યાદિ જ્યારે પૂર્વોક્ત-સ્વરૂપવાળા પુણ્ય પાપ બધ અને મોક્ષને જાણે છે ત્યારે દેવો તથા મનુષ્યો સબધી ભોગોને વાસ્તવિક વિચાર કરે છે ઈદ્રિય અને મનની અનુકૂળતારૂપે જેનો ઉપયોગ કરવામા આવે છે એને ભોગ કહે છે ભોગોના વિષયમા સાધુ એવો વિચાર કરે છે કે "એ ભોગો ભુજગ (સર્પ)ના જેવા ભયકર છે, અશુચિ છે, અશુચિ પદાર્થોથી ઉત્પન્ન થાય છે

नुपभोक्तुमभिलपेदपि? कस्य वा विवेकिनो वान्ताशनेच्छा, अतिपूतिगन्धिपूयरुधिर प्रवाहेऽवगाहनाऽऽकाङ्क्षा, शार्दूलसदननिवासाभिलाष', कल्कलायमाने सीसक कटाहादौ पतनस्पृहा, समन्ततो दन्दह्यमानभवनान्तरालपरिभ्रमणसाहसम्, अजगर विषधरमुपधानीकृत्य शयनेच्छा वा जायेत?। "क्षणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा" इत्यादि पर्यालोचयन् निर्वेदं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥१६॥

मूलम्-जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया चयइ संजोगं, सब्भिंतर-बाहिरियं ॥ १७ ॥

छाया-यदा निर्विन्ते भोगान्, ये दिव्या ये च मानुषाः।
तदा त्यजति संयोगं, साभ्यन्तर-बाह्यम् ॥१७॥

सान्वयार्थ'-जया=जब जे दिव्वे=जो देवसम्बन्धी और जे य माणुसे=मनुष्य

अशुचि हैं, अशुचि पदार्थोंसे उत्पन्न होते हैं, सड़ जाते हैं, गल जाते हैं, नष्ट होजाते हैं, नित्य नहीं रहते। कौन विवेकी ऐसे भोगोंको भोगनेकी अभिलाषा करेगा ?, किस विवेकशील व्यक्तिको वमन भक्षण करनेकी इच्छा होगी ?, अहा! कौन चाहेगा कि-' मैं अत्यन्त दुर्गन्धवाले पीप और रुधिरके प्रवाहमें अवगाहन (स्नान) करूँ?, क्या कोई सिंहकी माद (गुफा)में निवास करनेकी इच्छा करता है?, उकलते हुए शीशेकी कड़ाहीमें कौन बुद्धिमान् कूदनेकी कामना करता है? कोई नहीं करता है। अथवा चारों ओरसे धधकते हुए घरमें घुसनेका कौन साहस कर सकता है ?, और अजगर सर्पको उपधान (उसीसा-सिरहाना) बनाकर कौन शयन करना चाहेगा ?। ये विषय-भोग क्षणमात्र सुख देनेवाले हैं और बहुत काल तक दु ख देनेवाले हैं ॥" ऐसा विचार कर मुनि जन निर्वेद (वैराग्य)को प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

સડી જાય છે ગળી જાય છે, નષ્ટ થઈ જાય છે, નિત્ય રહેતા નથી કયો વિવેકી મનુષ્ય એવા ભોગો ભોગવવાની અભિલાષા કરશે ?, કઈ વિવેકશીલ વ્યક્તિને વમન કરેલાનુ ભક્ષણ કરવાની ઇચ્છા થશે ?, અહા! કોણ ઇચ્છશે કે-હુ અત્યત દુર્ગંધવાળા પરૂ અને રૂધિરના પ્રવાહમા અવગાહન (સ્નાન) કરીશ ? શુ કોઈ સિંહની ગુફામા નિવાસ કરવાની ઇચ્છા કરે છે? ઊકળતા સીસાની કડાઈમા કયો બુદ્ધિમાન્ મનુષ્ય કૂદી પડવાની કામના કરે ?, કોઈ કરે નહિ અથવા ચારે બાજુએથી અગ્નિથી ધગી રહેલા ઘરમા પેસવાનુ સાહસ કોણ કરી શકે ? અને અજગર સર્પને ઉપધાન (ઓશીકુ) બનાવીને સૂવાની કોણ ઇચ્છા કરશે ? એ વિષય-ભોગ ક્ષણમાત્ર સુખ દેવાવાળા છે અને ઘણા કાળ સુધી દુ ખ દેવાવાળા છે" એવો વિચાર કરીને મુનિજન નિર્વેદ (વૈરાગ્ય)ને પ્રાપ્ત કરે છે (૧૬)

सम्बन्धी भोए=भोगोको निव्विदए=तत्त्वसे विचारता है, तया=तब सब्भिनर-बाहिरिय=आभ्यन्तर और बाह्य सजोग=सयोगको चयइ=त्याग देता है ॥१७॥

टीका—'जया निव्विदए' इत्यादि । यदा दिव्य-मानुष-भोगोपभोगेषु निर्वेदो जायते तदा साऽऽभ्यन्तरबाह्यम्=बहिर्भवो बाह्य =सुवर्णमणिमाणिक्यादि', अभ्यन्तरे=अन्त करणे भव आभ्यन्तरः=क्रोधादिः, आभ्यन्तरेण सहित' साऽऽभ्यन्तरः स चासौ बाह्यश्चेति साभ्यन्तरबाह्यस्तम्, सयोग=सयुज्यते=सम्बध्यतेऽनेनाऽऽत्मेति सयोगः=ममत्वकृतसम्बन्धस्तम् त्यजति=परिहरति ॥१७॥

मूलम्-जया[१] चयइ[४] संजोग[३], सब्भितर-बाहिरियं[२] ।

तया[५] मुंडे[६] भवित्ताण[७], पव्वइए[९] अणगारियं[८] ॥ १८ ॥

छाया—यदा त्यजति सयोग, साभ्यन्तर बाह्यम् ।

तदा मुण्डो भूत्वा, प्रव्रजत्यनगारिताम् ॥१८॥

सान्वयार्थ —जया=जब सब्भितरबाहिरिय=आभ्यन्तर और बाह्य सजोग=सयोगको चयइ=त्याग देता है, तया=तब मुंडे=द्रव्यभावसे मुण्डित भवित्ता=होकर अणगारिय=साधुपनेको पव्वइए=प्राप्त होता है ॥१८॥

टीका—'जया चयइ' इत्यादि । यदा बाह्याऽऽभ्यन्तरसयोगविरहितो भवति तदा मुण्ड =मुण्डन मुण्ड ('मुडि खण्डने' इत्यस्माद्भावे घञ्) स च द्वेधा-द्रव्यतो

'जया निव्विदए०' इत्यादि । जब देवसम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी भोगोंको जान लेता है, तब सुवर्ण-मणि-माणिक्य आदि बाह्य परिग्रहका तथा क्रोधादि आन्तरिक परिग्रहका अर्थात् बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका त्याग कर देता है ॥१७॥

'जया चयइ' इत्यादि । जब बाह्याभ्यन्तर परिग्रहका परित्याग करता है तब मुण्डित हो जाता है । मुण्डन दो प्रकारका होता है-

---

जया निव्विदए० ઇત્યાદિ જ્યારે દેવસબધી અને મનુષ્યસબધી ભોગોને જાણી લે છે, ત્યારે મુનિ સુવર્ણ-મણિ-માણિકયાદિ બાહ્ય પરિગ્રહને તથા ક્રોધાદિ આતરિક પરિગ્રહને અર્થાત્ બાહ્યાભ્યતર પરિગ્રહને ત્યજી દે છે (૧૭)

जया चयइ० ઇત્યાદિ જ્યારે બાહ્યાભ્યતર પરિગ્રહનો મુનિ પરિત્યાગ કરે છે ત્યારે મુડિત થઇ જાય છે મુડન બે પ્રકારના હોય છે-(૧) દ્રવ્ય મુડન

भावतश्च, तत्र द्रव्यतो मस्तककेशापनयनम्, भावतो रागद्वेषापनयनम्, मुण्डनधर्मयोगाद्धर्म्यपि मुण्डः=मुण्डित इत्यर्थः, भूत्वा अनगारिताम्=अनगारिणो भावोऽनगारिता=साधुत्वं सर्वविरतिलक्षणं सामायिकादिकमित्यर्थ, ताम् प्रव्रजति=प्राप्नोति-प्रव्रजितो भवतीत्यर्थः ॥१८॥

मूलम्-जया मुंडे भवित्ताण, पव्वइए अणगारियं ।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥ १९ ॥

छाया—यदा मुण्डो भूत्वा, प्रव्रजत्यनगारिताम् ।
तदा संवरमुत्कृष्टं, धर्मं स्पृशत्यनुत्तरम् ॥१९॥

सान्वयार्थः-जया=जब मुंडे=द्रव्यभावसे मुण्डित भवित्ता=होकर अणगारियं=साधुपनेको पव्वइए=प्राप्त होता है, तया=तब उक्किट्ठं=अत्यन्त प्रशस्त अणुत्तरं=सर्वश्रेष्ठ संवरं=संवर धम्मं=धर्मको फासे=स्पर्श करता है-प्राप्त होता है॥

टीका—'जया मुंडे०'इत्यादि। यदा मुण्डो भूत्वाऽनगारितां प्रव्रजति=प्राप्नोति, तदा उत्कृष्टम्=अतिप्रशस्तम्, अनुत्तरं=निरतिचारतया सर्वश्रेष्ठम्। यद्वा स्थिरं=निश्चलम्। अथवा जिनागमसिद्धत्वात्[1]प्रतिजल्पविवर्जितम्, यद्वा 'अनुत्तर' मित्येतत् क्रियाविशेषणम्, अनुत्तरम्=उत्कर्षक यथा स्यात्तथा स्पृशतीति सम्बन्धः।

१ अनुत्तरम्=श्रेष्ठ, प्रतिजल्पविवर्जित, स्थिरमिति शब्दकल्पद्रुमः।

(१) द्रव्यमुण्डन, (२) भावमुण्डन। मस्तकके केशोंका लुञ्चन करना द्रव्यमुण्डन कहलाता है। राग द्वेष आदिको दूर करना भावमुण्डन है। दोनों प्रकारोंसे मुण्डित होकर सर्वविरतिरूप सामायिक आदि चारित्रको प्राप्त होता है ॥१८॥

'जया मुंडे०' इत्यादि। जब मुण्डित होकर सर्वविरतिको प्राप्त होता है तब अत्यन्त प्रशस्त निरतिचार होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ निश्चल आचरणीय संवर धर्मको स्पर्श करता है। आते हुए कर्म जिस आत्म-

અને (૨) ભાવમુંડન મસ્તકના કેશનું લુંચન કરવું એ દ્રવ્યમુંડન કહેવાય છે રાગદ્વેષ આદિને દૂર કરવા એ ભાવમુંડન છે બેઉ પ્રકારે મુંડિત થઈને સર્વ વિરતિરૂપ સામાયિક આદિ ચારિત્રને પ્રાપ્ત થાય છે (૧૮)

जया मुंडे० ઇત્યાદિ જ્યારે મુંડિત થઈને સર્વ વિરતિને પ્રાપ્ત થાય છે અત્યંત પ્રશસ્ત નિરતિચાર થવાને કારણે સર્વશ્રેષ્ઠ નિશ્ચલ આચરણીય સંવર

सवर=सव्रियते=निरुध्यते आस्रवत्कर्म येन सः, यद्वा सवरण सवरः=स्थगनम्। स द्रव्य भावभेदाभ्या द्विविधः। तत्र द्रव्यतस्तथाविधद्रव्येण (मसृणमृत्तिकादिना) सलिलोपरि तरत्तरण्यादेरनारतमविशज्जीराणा विवराणा पिधानम्, भावतः-समिति गुप्तिप्रभृतिभिरात्मतरण्या क्षरत्कर्मसलिलाना स्थगनम्। अत्र च भावसवरश्चारित्रलक्षणो गृह्यते, त तल्लक्षण धर्म स्पृशति=प्राप्नोति, अन्तःकरणत आत्मना सम्बन्धयतीत्यर्थः ॥१९॥

मूलम्—जया सवरमुक्किट्ठ धम्म फासे अणुत्तरं।
तया धुणइ कम्मरय, अवोहिकलुसकड ॥२०॥

छाया—यदा सवरमुत्कृष्ट, धर्म स्पृशत्यनुत्तरम्।
तदा धुनाति कर्मरजो ऽबोधिकलुषकृतम् ॥२०॥

सान्वयार्थ.—जया=जब उक्किट्ठ=अत्यन्त प्रशस्त अणुत्तर=सर्वश्रेष्ठ सवर=सवर धम्म=धर्मको फासे=स्पर्श करता है, तया=तव अवोहिकलुसकड=आत्माके मिथ्यात्व परिणाम द्वारा उपार्जित किये हुए कम्मरय=कर्मरूपी रजको धुणइ=हटा देता है ॥२०॥

परिणामसे रुक जाते हैं उसे सवर कहते हैं। सवर, द्रव्य-भावके भेदसे दो प्रकारका है। जल पर चलती हुई नौकाके छेदोंसे उसमें प्रवेश करनेवाले जलको चिकनी मिट्टी वस्त्र आदिसे वन्द कर देना द्रव्य-सवर है। आत्मारूपी नौकामे आस्रवरूपी छिद्रों द्वारा आनेवाले कर्मरूपी जलको रोक देना भाव-सवर है। यहा भाव-सवर अर्थात् चारित्रका अधिकार है। अर्थात् सर्वविरत मुनि भाव सवर रूपी धर्मको प्राप्त करते हैं। अथवा अनुत्तर रूपसे स्पर्श करते हैं, क्योंकि 'अनुत्तर' यह क्रियाविशेषण भी हो सकता है ॥१९॥

धर्मने स्पर्श करे छे आवता कर्म जे आत्मपरिणामथी रोकाई जाय छे तेने सवर कहे छे सवर द्रव्य-भावना भेदे करीने बे प्रकारनो छे जळपर चालती नोकाना छिद्रवाटे नोकामा प्रवेश करनारा जळने चीकणी माटी, वस्त्र आदिथी बध करी देवु ते द्रव्यसवर छे आत्मारूपी नोकामा आस्रवरूपी छिद्रोद्वारा आवनारा कर्मरूपी जळने रोकी देवु ए भाव-सवर छे अहीं भावसवर एटले चारित्रनो अधिकार छे अर्थात् सर्वविरत मुनि भावसवररूपी धर्मने प्राप्त करे छे, अथवा अनुत्तर-रूपे स्पर्श करे छे, कारणके 'अनुत्तर' ए क्रियाविशेषण पण होई शके छे (१९)

भावतश्च, तत्र द्रव्यतो मस्तककेशापनयनम्, भावतो रागद्वेषापनयनम्, मुण्डनधर्मयोगाद्धर्म्यपि मुण्डः=मुण्डित इत्यर्थः, भूत्वा अनगारिताम्=अनगारिणो भावोऽनगारिता=साधुत्वं सर्वविरतिलक्षण सामायिकादिकमित्यर्थः, ताम् प्रव्रजति=प्राप्नोति-प्रव्रजितो भवतीत्यर्थः ॥१८॥

मूलम्-जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥ १९ ॥

छाया—यदा मुण्डो भूत्वा, प्रव्रजत्यनगारिताम्।
तदा संवरमुत्कृष्टं, धर्मं स्पृशत्यनुत्तरम् ॥१९॥

सान्वयार्थः—जया=जब मुंडे=द्रव्यभावसे मुण्डित भवित्ता=होकर अणगारियं=साधुपनेको पव्वइए=प्राप्त होता है, तया=तब उक्किट्ठं=अत्यन्त प्रशस्त अणुत्तरं=सर्वश्रेष्ठ संवरं=संवर धम्मं=धर्मको फासे=स्पर्श करता है-प्राप्त होता है॥

टीका—'जया मुंडे०' इत्यादि। यदा मुण्डो भूत्वाऽनगारितां प्रव्रजति=प्राप्नोति, तदा उत्कृष्टम्=अतिप्रशस्तम्, अनुत्तरं=निरतिचारतया सर्वश्रेष्ठम्। यद्वा स्थिरं=निश्चलम्। अथवा जिनागमसिद्धत्वात्[1]प्रतिजल्पविवर्जितम्, यद्वा 'अनुत्तर' मित्येतत् क्रियाविशेषणम्, अनुत्तरम्=उत्कर्षक यथा स्यात्तथा स्पृशतीति सम्बन्धः।

१ अनुत्तरम्=श्रेष्ठ, प्रतिजल्पविवर्जित, स्थिरमिति शब्दकल्पद्रुम।

(१) द्रव्यमुण्डन, (२) भावमुण्डन। मस्तकके केशोंका लुञ्चन करना द्रव्यमुण्डन कहलाता है। राग द्वेष आदिको दूर करना भावमुण्डन है। दोनों प्रकारोंसे मुण्डित होकर सर्वविरतिरूप सामायिक आदि चारित्रको प्राप्त होता है ॥१८॥

'जया मुंडे०' इत्यादि। जब मुण्डित होकर सर्वविरतिको प्राप्त होता है तब अत्यन्त प्रशस्त निरतिचार होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ निश्चल -आचरणीय संवर धर्मको स्पर्श करता है। आते हुए कर्म जिस आत्म

અને (૨) ભાવ મુંડન મસ્તકના કેશનું લુંચન કરવું એ દ્રવ્યમુંડન કહેવાય છે રાગ દ્વેષ આદિને દૂર કરવા એ ભાવ મુંડન છે બેઉ પ્રકારે મુંડિત થઈને સર્વ વિરતિરૂપ સામાયિક આદિ ચારિત્રને પ્રાપ્ત થાય છે (૧૮)

जया मुंडे० ઇત્યાદિ જ્યારે મુંડિત થઈને સર્વ વિરતિને પ્રાપ્ત થાય છે અત્યંત પ્રશસ્ત નિરતિચાર થવાને કારણે સર્વશ્રેષ્ઠ નિશ્ચલ આચરણીય સંવર

उक्तञ्च—

"जीवस्याशुद्धरागादिभावाना कर्म कारणम् ।
कर्मणस्तस्य रागादिभावः प्रत्युपकारिवत् ॥१॥" इति ।

ससारी खल्वात्माऽनादिकालतः कर्म बध्नाति, तदुदयादात्मनि रागद्वेषाद्युत्पत्तिः, तदनु यथा वह्निसतप्तायःपिण्डः समन्तात् स्वसस्पृष्टजलमाकर्षति तथाऽऽत्मैकक्षेत्रावगाहिकर्मपुद्गलानादत्ते, तैश्च रागादिक भावकर्मोत्पाद्यते, तच्च पुनरपि द्रव्यकर्मो-

भाव है, अतः द्रव्यकर्म, भावकर्मका कारण भी है और कार्य भी है। कहाभी है—

"जीवके राग आदि अशुद्ध भावोंका कारण द्रव्यकर्म है और रागादि अशुद्ध भाव द्रव्यकर्मके कारण हैं। जैसे कोई पुरुष किसीका उपकार कर देता है तो वह उपकृत पुरुष उस उपकारीका पीछा उपकार करता है ॥१॥"

ससारी जीव अनादिकालसे कर्मोंका बन्ध कर रहा है। उन बधे हुए कर्मोंके उदय होनेपर आत्मामें राग-द्वेष आदिकी उत्पत्ति होती है। रागादिके उदय होनेपर जैसे तपा हुआ लोहेका गोला आस पासके जलको आकर्षित करलेता है वैसे ही आत्मा एकक्षेत्रावगाही अर्थात् जिस आकाशके प्रदेशमे आत्मा स्थित है उसी आकाश प्रदेशमे स्थित कर्मके पुद्गलोको ग्रहण करती है, उन रागादि-भावोंसे फिर द्रव्यकर्म

કર્મમા કાર્ય કારણભાવ રહેલો છે તેથી દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મનુ કારણ છે અને કાર્યપણ છે, તેમજ ભાવકર્મ દ્રવ્યકર્મનુ કારણ છે અને કાર્યપણ છે કહ્યુ છે કે-

"જીવના રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવોનું કારણ દ્રવ્યકર્મ છે, અને રાગાદિ અશુદ્ધ ભાવ દ્રવ્યકર્મનુ કારણ છે, જેમ કોઇ પુરૂષ કોઇનો ઉપકાર કરે છે તો એ ઉપકૃત પુરૂષ એનો પાછો ઉપકાર કરે છે (૧)"

સસારી જીવ અનાદિ કાળથી કર્મોનો બધ કરી રહ્યો છે એ બધાયલા કર્મનો ઉદય થતા આત્મામા રાગદ્વેષ આદિની ઉત્પત્તિ થાય છે રાગાદિનો ઉદય થતા જેમ તપાવેલો લોખડનો ગોળો આસપાસના જળને આકર્ષિત કરી લે છે તેમ આત્મા એકક્ષેત્રાવગાહી અર્થાત્ જે આકાશના પ્રદેશમા આત્મા સ્થિત છે એ આકાશપ્રદેશમા રહેલા કર્મના પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, એ રાગાદિ-ભાવોથી ફરી દ્રવ્યકર્મ બાધે છે એ રીતે દ્રવ્યકર્મ અને ભાવકર્મ એક

टीका-'जया संवर०' इत्यादि। यदा उत्कृष्टम् अनुत्तरं संवरं धर्मं स्पृशति तदा अबोधिकलुषकृतम्=बोधनं बोधिः=आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामः, तद्विपरीतोऽबोधिः=मिथ्यात्वाध्यवसायः स एव कलुषं=पापं तेन कृतं=जनितम् अबोधिकलुषकृतम्, तत्, 'कलुष'-मित्यत्रानुस्वार आर्षः। कर्मरजः=क्रियते=मिथ्यात्वादि परिणामैः सम्पाद्यते यत्तत् कर्म, तद्द्विधा-द्रव्य-भावभेदात्, तत्र द्रव्यतः-कूपिकास्थभृतकज्जलवत् सकललोकसभृता आत्मना सह बद्धा बध्यमाना बन्धार्हाश्च तथा विधपुद्गलपरमाणवः। भावतस्तु-आत्मनो रागद्वेषादिपरिणामः, अनयोश्च बीजवृक्षयोरनादिकालिककार्यकारणभाववत् पारस्परिककार्यकारणभावः, तथा च-द्रव्यकर्म भावकर्मणः कारणं कार्यं च। भावकर्म च द्रव्य-कर्मणः (कारणं कार्यं च)।

'जया संवर०' इत्यादि। जब साधु उत्कृष्ट अनुत्तर संवरधर्मको स्पर्श करते हैं तब आत्माके मिथ्यात्वपरिणामरूपी पापसे उत्पन्न हुए कर्मरूपी रजको धो डालते हैं।

कर्मरज दो प्रकारका है (१) द्रव्यकर्मरज, और (२) भावकर्मरज। कुप्पीमें भरे हुए कज्जलकी तरह समस्त लोकाकाशमें व्याप्त तथा आत्माके साथ बंधे हुए या बंधनेवाले और बंधते हुए विशेष प्रकारके (कार्मण जातिके) पुद्गलपरमाणुओंको द्रव्यकर्म कहते हैं। आत्माके राग-द्वेष आदि विभाव-परिणामोंको भावकर्म कहते हैं। वृक्षसे बीज उत्पन्न होता है और बीजसे वृक्ष उत्पन्न होता है। दोनो में कार्य-कारणभाव अनादिकालीन है। इसी प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्ममें कार्य कारण

जया संवर० ઇત્યાદિ જ્યારે સાધુ ઉત્કૃષ્ટ અનુત્તર સંવરધર્મને સ્પર્શ કરે છે ત્યારે આત્માના મિથ્યાત્વ-પરિણામરૂપી પાપથી ઉત્પન્ન થએલા કર્મરૂપ રજને ધોઈ નાખે છે

કર્મરજ બે પ્રકારની છે-(૧) દ્રવ્યકર્મરજ, અને (૨) ભાવકર્મરજ કુપ્પીમાં ભરેલા કાજળની પેઠે સમસ્ત લોકાકાશમાં વ્યાપ્ત તથા આત્માની સાથે બંધાયલા તથા બંધનારા અને બંધાતા વિશેષ પ્રકારના (કાર્મણ જાતિના) પુદ્ગલપરમાણુઓને દ્રવ્યકર્મ કહે છે આત્માના રાગ-દ્વેષ આદિ વિભાવ-પરિણામોને ભાવકર્મ કહે છે વૃક્ષથી બીજ ઉત્પન્ન થાય છે અને બીજથી વૃક્ષ ઉત્પન્ન થાય છે બેઉ કાર્ય-કારણભાવ અનાદિકાળનો છે એ પ્રકારે દ્રવ્યકર્મ અને ભાવ

थिक-पर्यायार्थिकादिनानानयैरर्थव्यञ्जनयोगसक्रान्तिसहितानुचिन्तनं पृथक्त्ववितर्क-सविचारम् ।

तत्रार्थसक्रान्तिस्तावत्-ध्येयस्यैकपर्यायपरित्यागेन पर्यायान्तरे, व्यञ्जने, योगे वा सक्रमः। व्यञ्जन चात्र चतुर्दशपूर्वात्मकश्रुतसम्बन्धिशब्दाः, तत्रत्य किञ्चिदेक व्यञ्जनमुपादाय ध्यानमारभ्य व्यञ्जनान्तरेऽर्थे योगे वा सक्रमण व्यञ्जनसक्रान्तिः। योगसक्रान्तिश्च पुनः काययोगतो मनोयोगे, मनोयोगतो वाग्योगे, इत्येवमेकस्माद् योगादन्यतरस्मिन् योगे सक्रमणम् । त्रिविधमेतत्सक्रमण च ध्यातुरनिच्छायामपि तादृश-(असक्रान्त)-ध्यानसपादनसामर्थ्याभावाज्जायते ।

उत्पाद आदि पर्यायोंका द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक आदि विविध नयोंसे, अर्थ, व्यञ्जन और योगकी सक्रान्ति सहित चिन्तन करना पृथक्त्ववितर्क शुक्ल ध्यान है। ध्येय वस्तुकी एक पर्यायको छोड़कर दूसरी पर्यायका ध्यान करना या व्यञ्जन अथवा योगमें सक्रान्त होजाना अर्थसक्रान्ति है। यहाँ चौदह पूर्वरूप श्रुतके शब्दोंको व्यञ्जन कहा है। उन शब्दोंमेंसे किसी एक शब्दका ध्यान आरम्भ करके फिर किसी दूसरे व्यञ्जनका ध्यान करने लगना, अथवा अर्थ या योगमें सक्रान्त होजाना व्यञ्जनसक्रान्ति है। काययोगसे मनोयोगमें, मनोयोगसे वचनयोगमें, इस प्रकार एक योगसे दूसरे योगमें सक्रान्त होजाना योगसक्रान्ति है। यह तीनों तरहका सक्रमण ध्याताकी इच्छा न होनेपर भी उतनी अधिक सामर्थ्य न होनेके कारण होता है।

આદિ નાના પ્રકારના પર્યાયોનું દ્રવ્યાર્થિક યા પર્યાયાર્થિક આદિ વિવિધ નયોથી, અર્થ વ્યજન અને યોગની સક્રાન્તિસહિત ચિંતન કરવુ એ પૃથક્ત્વવિતર્ક શુક્લ ધ્યાન છે, ધ્યેયવસ્તુના એક પર્યાયને છોડીને બીજા પર્યાયનું ધ્યાન કરવું યા વ્યજન અથવા યોગમા સક્રાન્ત થઈ જવુ એ અર્થસક્રાન્તિ છે અહીં ચૌદ પૂર્વરૂપ શ્રુતના શબ્દોને વ્યજન કહેલ છે, એ શબ્દોમાથી કોઈએક શબ્દનું ધ્યાન આરભીને પછી કોઈ બીજા વ્યજનનું ધ્યાન લગાવવુ અથવા અર્થ યા યોગમા સક્રાન્ત થઇ જવુ એ વ્યજનસક્રાન્તિ છે કાયયોગથી મનોયોગમા, મનોયોગથી વચનયોગમા, એ પ્રકારે એક યોગથી બીજા યોગમા સક્રાન્ત થઈ જવુ એ યોગ સક્રાન્તિ છે એ ત્રણે જાતનુ સક્રમણ ધ્યાતાની ઇચ્છા ન હોવા છતા પણ એટલુ અધિક સામર્થ્ય ન હોવાને કારણે થાય છે

त्पादयति, तदेव रज इव रजो जीवस्य मालिन्यहेतुत्वात् घातिकर्मचतुष्टयमित्यर्थः, तद् धुनाति=व्यपनयति=दूरीकरोतीत्यर्थः ।

कर्मरजोधुननं च यद्यपि धर्मध्यानेनापि जायते तथापि आत्यन्तिकतद्विधूननं शुक्लध्यानेनैव भवति, यथा मलापगमेन शुचिताधर्माभिसम्बन्धात् पटः शुक्ल उच्यते तथा रागद्वेषमलापनयनाच्छुचिधर्मसम्बन्धाद् ध्यानमपि शुक्लमित्युच्यते, तच्चतुर्विधम्-(१) पृथक्त्ववितर्कसविचारम्, (२) एकत्ववितर्काविचारम्, (३) सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति, (४) समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति, इति ।

तत्र पूर्वगतश्रुतज्ञानानुसारेण ध्येयविशेषगतोत्पादादिनानापर्यायाणां द्रव्या

बधते हैं। इस प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्म एक दूसरेके उत्पादक हैं। इन्हीं कर्मोंको रज कहते हैं, क्योंकि ये आत्मामें मलिनता उत्पन्न कर देते हैं। संवरधर्मको ग्रहण करनेसे यह चार-घातिकर्मरूपी रज दूर होजाती है।

कर्मरजका दूर होना यद्यपि धर्म-ध्यानसे होता है तथापि आत्यन्तिक रूपसे तो शुक्ल-ध्यानसे ही होता है। जैसे मैलको दूर करनेसे शुचिताधर्म आजाता है, इसलिए वस्त्रको शुक्ल (सफेद) वस्त्र कहते हैं, इसी प्रकार राग-द्वेषरूपी मैलके हट जानेपर शुचिताधर्मके सम्बन्धसे ध्यान भी शुक्लध्यान कहलाता है।

शुक्लध्यान चार प्रकारका है-(१) पृथक्त्ववितर्क सविचार, (२) एकत्ववितर्क-अविचार, (३) सूक्ष्मक्रिय-अनिवर्त्ति, (४) समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति।

(१) पृथक्त्ववितर्क पूर्वगत श्रुतज्ञानके अनुसार किसी ध्येय पदार्थकी

બીજાના ઉત્પાદક છે એજ કર્મોને રજ કહે છે, કારણ કે તે આત્મામા મલિનતા ઉત્પન્ન કરે છે સંવરધર્મને ગ્રહણ કરવાથી એ ચાર ઘાતિકર્મરૂપી રજ દૂર થઇ જાય છે

જો કે કર્મરજ ધર્મધ્યાનથી દૂર થાય છે તોપણ આત્યન્તિક રૂપથી તો શુકલ ધ્યાનથીજ થાય છે જેમ મેલ દૂર કરવાથી શુચિતા-ધર્મ આવી જાય છે તેથી વસ્ત્રને શુકલ (સફેદ) વસ્ત્ર કહે છે, તેમ રાગદ્વેષરૂપી મેલ હઠી જતા શુચિતાધર્મના સંબંધથી ધ્યાન પણ શુકલધ્યાન કહેવાય છે

શુકલ ધ્યાનના ચાર પ્રકાર છે (૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-સવિચાર, (૨) એકત્વવિતર્ક-અવિચાર, (૩) સૂક્ષ્મક્રિય અનિવર્તિ, (૪) સમુચ્છિન્નક્રિય અપ્રતિપાતિ

(૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-પૂર્વગત શ્રુતજ્ઞાનને અનુસાર કોઇ ધ્યેય પદાર્થના ઉત્પાદ

र्थिक-पर्यायार्थिकादिनानानयैरर्थव्यञ्जनयोगसक्रान्तिसहितानुचिन्तनं पृथक्त्ववितर्क-सविचारम् ।

तत्रार्थसक्रान्तिस्तावत्–ध्येयस्यैकपर्यायपरित्यागेन पर्यायान्तरे, व्यञ्जने, योगे वा सक्रमः। व्यञ्जन चात्र चतुर्दशपूर्वात्मकश्रुतसम्बन्धिशब्दाः, तत्रत्य किञ्चिदेक व्यञ्जनमुपादाय ध्यानमारभ्य व्यञ्जनान्तरेऽर्थे योगे वा सक्रमण व्यञ्जनसक्रान्तिः। योगसक्रान्तिश्च पुनः काययोगतो मनोयोगे, मनोयोगतो वाग्योगे, इत्येवमेकस्माद् योगादन्यतरस्मिन् योगे सक्रमणम् । त्रिविधमेतत्सक्रमण च ध्यातुरनिच्छायामपि तादृश-(असक्रान्त) ध्यानसपादनसामर्थ्याभावाज्जायते ।

उत्पाद आदि पर्यायोंका द्रव्यार्थिक या पर्यायार्थिक आदि विविध नयोंसे, अर्थ, व्यञ्जन और योगकी सक्रान्ति सहित चिन्तन करना पृथक्त्ववितर्क शुक्ल ध्यान है। ध्येय वस्तुकी एक पर्यायको छोडकर दूसरी पर्यायका ध्यान करना या व्यञ्जन अथवा योगमें सक्रान्त होजाना अर्थसक्रान्ति है। यहाँ चौदह पूर्वरूप श्रुतके शब्दोंको व्यञ्जन कहा है। उन शब्दोंमेंसे किसी एक शब्दका ध्यान आरम्भ करके फिर किसी दूसरे व्यञ्जनका ध्यान करने लगना, अथवा अर्थ या योगमें सक्रान्त होजाना व्यञ्जनसक्रान्ति है। काययोगसे मनोयोगमें, मनोयोगसे वचनयोगमें, इस प्रकार एक योगसे दूसरे योगमें सक्रान्त होजाना योगसक्रान्ति है। यह तीनों तरहका सक्रमण ध्याताकी इच्छा न होनेपर भी उतनी अधिक सामर्थ्य न होनेके कारण होता है।

આદિ નાના પ્રકારના પર્યાયોનું દ્રવ્યાર્થિક યા પર્યાયાર્થિક આદિ વિવિધ નયોથી, અર્થ વ્યજન અને યોગની સક્રાન્તિસહિત ચિંતન કરવું એ પૃથક્ત્વવિતર્ક શુક્લ ધ્યાન છે, ધ્યેયવસ્તુના એક પર્યાયને છોડીને બીજા પર્યાયનું ધ્યાન કરવુ યા વ્યજન અથવા યોગમા સક્રાન્ત થઈ જવુ એ અર્થસક્રાન્તિ છે અહીં ચૌદ પૂર્વરૂપ શ્રુતના શબ્દોને વ્યજન કહેલ છે, એ શબ્દોમાંથી કોઇએક શબ્દનું ધ્યાન આરભીને પછી કોઇ બીજા વ્યજનનું ધ્યાન લગાવવુ અથવા અર્થ યા યોગમા સક્રાન્ત થઇ જવુ એ વ્યજનસક્રાન્તિ છે કાયયોગથી મનોયોગમા, મનોયોગથી વચનયોગમા, એ પ્રકારે એક યોગથી બીજા યોગમા સક્રાન્ત થઇ જવુ એ યોગ સક્રાંતિ છે એ ત્રણે જાતનું સક્રમણ ધ્યાતાની ઇચ્છા ન હોવા છતા પણ એટલુ અધિક સામર્થ્ય ન હોવાને કારણે થાય છે

त्पादयति, तदेव रज इव रजो जीवस्य मालिन्यहेतुत्वात् घातिकर्मचतुष्टयमित्यर्थः, तद् धुनाति=अपनयति=दूरीकरोतीत्यर्थः ।

कर्मरजोधुननं च यद्यपि धर्मध्यानेनापि जायते तथापि आत्यन्तिकतद्विधूननं शुक्लध्यानेनैव भवति, यथा मलापगमेन शुचिताधर्माभिसम्बन्धात् पटः शुक्ल इत्युच्यते तथा रागद्वेषमलापनयनाच्छुचिधर्मसम्बन्धाद् ध्यानमपि शुक्लमित्युच्यते, तच्चतुर्विधम्-(१) पृथक्त्ववितर्कसविचारम्, (२) एकत्ववितर्काविचारम्, (३) सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्ति, (४) समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति, इति ।

तत्र पूर्वगतश्रुतज्ञानानुसारेण ध्येयविशेषगतोत्पादादिनानापर्यायाणां द्रव्या

बधते हैं। इस प्रकार द्रव्यकर्म और भावकर्म एक दूसरेके उत्पादक हैं। इन्हीं कर्मोंको रज कहते हैं, क्योंकि ये आत्मामें मलिनता उत्पन्न कर देते हैं। संवरधर्मको ग्रहण करनेसे यह चार-घातिकर्मरूपी रज दूर होजाती है।

कर्मरजका दूर होना यद्यपि धर्म-ध्यानसे होता है तथापि आत्यन्तिक रूपसे तो शुक्ल-ध्यानसे ही होता है। जैसे मैलको दूर करनेसे शुचिताधर्म आजाता है, इसलिए वस्त्रको शुक्ल (सफेद) वस्त्र कहते हैं, इसी प्रकार राग-द्वेषरूपी मैलके हट जानेपर शुचिताधर्मके सम्बन्धसे ध्यान भी शुक्लध्यान कहलाता है।

शुक्लध्यान चार प्रकारका है-(१) पृथक्त्ववितर्क सविचार, (२) एकत्ववितर्क-अविचार, (३) सूक्ष्मक्रिय-अनिवर्त्ति, (४) समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति।

(१) पृथक्त्ववितर्क पूर्वगत श्रुतज्ञानके अनुसार किसी ध्येय पदार्थकी

બીજાના ઉત્પાદક છે એજ કર્મોને રજ કહે છે, કારણ કે તે આત્મામાં મલિનતા ઉત્પન્ન કરે છે સંવરધર્મને ગ્રહણ કરવાથી એ ચાર ઘાતિકર્મરૂપી રજ દૂર થઇ જાય છે

જો કે કર્મરજ ધર્મધ્યાનથી દૂર થાય છે તોપણ આત્યન્તિક રૂપથી તો શુકલ ધ્યાનથીજ થાય છે જેમ મેલ દૂર કરવાથી શુચિતા-ધર્મ આવી જાય છે તેથી વસ્ત્રને શુકલ (સફેદ) વસ્ત્ર કહે છે, તેમ રાગદ્વેષરૂપી મેલ હઠી જતા શુચિતાધર્મના સંબંધથી ધ્યાન પણ શુકલધ્યાન કહેવાય છે

શુકલ ધ્યાનના ચાર પ્રકાર છે (૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-સવિચાર, (૨) એકત્વ વિતર્ક-અવિચાર, (૩) સૂક્ષ્મક્રિય અનિવર્તિ, (૪) સમુચ્છિન્નક્રિય અપ્રતિપાતિ

(૧) પૃથક્ત્વવિતર્ક-પૂર્વગત શ્રુતજ્ઞાનને અનુસાર કોઇ ધ્યેય પદાર્થના ઉત્પાદ

नन्वर्थव्यञ्जनयोगान्तरेषु सङ्क्रान्तस्य मनसः स्थैर्यासम्भवाद् ध्यानत्वमनुपपन्नमिति चेन्न, एकमेव ध्येय लक्ष्यीकृत्य प्रवृत्तस्य ध्यानस्यार्थादौ सक्रमणेऽपि ध्येयैकमात्रोद्देश्यकतया मनःस्थिरीकरणरूपाया ध्यानक्रियायास्तत्रापि सद्भावात्।

इद च ध्यान भङ्गिकश्रुतपाठकाना योगत्रयवता वा मुनिपुङ्गवाना भवति। अनेन ध्यानेन क्षपकश्रेण्या समारूढो मुनिरष्टमगुणस्थानादारभ्य क्रमशो दशमगुणस्थानचरमसमये बलवदपि मोहनीयकर्म क्षपयित्वा द्वितीयध्यानमाश्रित्य द्वादश गुणस्थानमधिरोहति।

उपशमश्रेण्या समारूढस्तु तदानीं मोहनीयकर्म शमयित्वा एकादशमुपशान्तमोहगुणस्थानमारोहति। इद च प्रथम ध्यानमष्टमगुणस्थानादारभ्य क्षपकश्रेण्य-

---

प्रश्न—हे गुरुमहाराज! इस ध्यानमें अर्थ, व्यञ्जन और योगोंमें मन सक्रान्त होता रहता है, इस कारण स्थिरता नहीं रह सकती, फिर इसे ध्यान कैसे कह सकते हैं?।

उत्तर—हे शिष्य! परिवर्त्तन तो होता रहता है, परन्तु ध्येय एक ही रहता है। ध्येयकी एकताके कारण यह ध्यान कहलाता है।

यह ध्यान पूर्वधारी तीन योगवाले श्रेष्ठ मुनियोंको ही होता है। इस ध्यान से दशवें गुणस्थानके अन्त समयमें क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि बलवान् मोहनीय कर्मका क्षय करके बारहवें गुणस्थानमे पहुँच जाते हैं, और यदि उपशमश्रेणिमें आरूढ हों तो ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानमें जाते हैं। यह प्रथम ध्यान उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे आठवें

પ્રશ્ન—હે ગુરૂમહારાજ! આ ધ્યાનમા અર્થ વ્યજન અને યોગમા મન સક્રાન્ત થયા કરે છે તે કારણથી સ્થિરતા રહી શકતી નથી, તો પછી તેને ધ્યાન કેમ કહી શકાય?

ઉત્તર—હે શિષ્ય! પરિવર્તન તો થયા કરે છે, પરન્તુ ધ્યેય એકજ રહે છે ધ્યેયની એકતાને કારણે એ ધ્યાન કહેવાય છે

એ ધ્યાન પૂર્વધરી ત્રણ યોગવાળા શ્રેષ્ઠ મુનિઓને જ થાય છે આ ધ્યાનથી દસમા ગુણસ્થાનના અત સમયે ક્ષપકશ્રેણીમા આરૂઢ મુનિ બળવાન્ મોહનીય-કર્મને ક્ષય કરીને બારમા ગુણસ્થાનમા પહોચી જાય છે, અને જો ઉપશમ-શ્રેણીમા આરૂઢ હોય તો અગ્યારમા ઉપશાન્તમોહ ગુણસ્થાનમા જાય છે એ પ્રથમ ધ્યાન, ઉપશમ-શ્રેણીની અપેક્ષાએ કરીને આઠમા ગુણસ્થાનથી લઈને

इदमत्र तात्पर्यम्—

अत्र पूर्वगताः शब्दास्तदर्था वा ध्येया भवन्ति, परन्तु ध्यातुस्तादृशं सामर्थ्यं न भवति येन स कश्चिदेकं शब्दं वाऽर्थं वा ध्यायेत्, अत एव कश्चिदेकमर्थं तत्पर्यायं वा परित्यज्येतरमर्थमितरपर्यायं वा ध्यायति । इदमेव च परिवर्त्तनं सङ्क्रमणशब्देनोच्यते । उक्तञ्च—

" अर्थादर्थान्तरे शब्दाच्छब्दान्तरे च सङ्क्रमः ।
योगाद् योगान्तरे यत्र, सविचारं तदुच्यते ॥
द्रव्याद् द्रव्यान्तरं याति, गुणाद् याति गुणान्तरम् ।
पर्यायादन्यपर्यायं, सपृथक्त्वं भवत्यतः ॥" इति,

तात्पर्य यह है कि-इस ध्यानमें पूर्वगत शब्द या उसके अर्थका ध्यान किया जाता है, किन्तु इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि एक ही शब्द या एक ही अर्थका ध्यान करते रहें, अत एव एक पदार्थ या उसकी पर्यायको छोड़ कर दूसरी पर्यायका ध्यान करते हैं। इसी प्रकारके परिवर्त्तन या बदलनेको सङ्क्रमण कहते हैं। कहा भी है—

"एक अर्थसे दूसरे अर्थमें, एक शब्दसे दूसरे शब्दमें, तथा एक योगसे दूसरे योगमें सङ्क्रमण होता है, अतः उसे सविचार (सङ्क्रान्ति) कहते हैं ॥१॥

अर्थ व्यञ्जन और योगकी सङ्क्रान्ति रूप होते हुए निज शुद्ध आत्म-द्रव्यको, एक गुणसे दूसरे गुणको, एक पर्यायसे दूसरी पर्यायको प्राप्त होता है, अतः उसे सपृथक्त्व कहते हैं ॥२॥"

તાત્પર્ય એ છે કે—આ ધ્યાનમા પૂર્વગત શબ્દ યા તેના અર્થનુ ધ્યાન કરવામા આવે છે, કિંતુ એટલુ સામર્થ્ય હોતુ નથી કે એકજ શબ્દ યા એકજ અર્થનુ ધ્યાન કરતો રહે તેથી કરીને એક પદાર્થ યા એના પર્યાયને છોડીને બીજા પર્યાયનુ ધ્યાન કરે છે આ પ્રકારના પરિવર્તનને યા બદલવાને સક્રમણુ કહે છે કહ્યુ છે કે—

"એક અર્થથી બીજા અર્થમા, એક શબ્દથી બીજા શબ્દમા તથા એક યોગથી બીજા યોગમા સક્રમણુ થાય છે, તેથી તેને અવિચાર (સક્રાન્તિ) કહે છે (૧)

અર્થ વ્યજન અને યોગની સક્રાન્તિરૂપ થતા નિજ શુદ્ધ આત્મ—દ્રવ્યને, એક ગુણુથી બીજા ગુણુને, એક પર્યાયથી બીજા પર્યાયને પ્રાપ્ત થાય છે, તેથી તેને સપૃથક્ત્વ કહે છે" (૨)

नन्वर्थव्यञ्जनयोगान्तरेषु सङ्क्रान्तस्य मनसः स्थैर्यासम्भवाद् ध्यानत्वमनुपपन्नमिति चेन्न, एकमेव ध्येयं लक्ष्यीकृत्य प्रवृत्तस्य ध्यानस्यार्थादौ सङ्क्रमणेऽपि ध्येयैकमात्रोद्देश्यकतया मनःस्थिरीकरणरूपाया ध्यानक्रियायास्तत्रापि सद्भावात्।

इदं च ध्यानं भङ्गिकश्रुतपाठकानां योगत्रयवतां वा मुनिपुङ्गवानां भवति। अनेन ध्यानेन क्षपकश्रेण्या समारूढो मुनिरष्टमगुणस्थानादारभ्य क्रमशो दशमगुणस्थानचरमसमये बलवदपि मोहनीयकर्म क्षपयित्वा द्वितीयध्यानमाश्रित्य द्वादश गुणस्थानमधिरोहति।

उपशमश्रेण्या समारूढस्तु तदानीं मोहनीयकर्म शमयित्वा एकादशमुपशान्तमोहगुणस्थानमारोहति। इदं च प्रथमं ध्यानमष्टमगुणस्थानादारभ्य क्षपकश्रेण्य-

प्रश्न–हे गुरुमहाराज! इस ध्यानमें अर्थ, व्यञ्जन और योगोंमें मन सङ्क्रान्त होता रहता है, इस कारण स्थिरता नहीं रह सकती, फिर इसे ध्यान कैसे कह सकते हैं?।

उत्तर–हे शिष्य! परिवर्त्तन तो होता रहता है, परन्तु ध्येय एक ही रहता है। ध्येयकी एकताके कारण यह ध्यान कहलाता है।

यह ध्यान पूर्वधारी तीन योगवाले श्रेष्ठ मुनियोंको ही होता है। इस ध्यान से दशवें गुणस्थानके अन्त समयमें क्षपकश्रेणीमे आरूढ मुनि बलवान् मोहनीय कर्मका क्षय करके बारहवें गुणस्थानमें पहुँच जाते हैं, और यदि उपशमश्रेणिमें आरूढ हों तो ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानमें जाते हैं। यह प्रथम ध्यान उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे आठवें

પ્રશ્ન—હે ગુરૂમહારાજ ! આ ધ્યાનમા અર્થ વ્યજન અને યોગમા મન સક્રાન્ત થયા કરે છે તે કારણથી સ્થિરતા રહી શકતી નથી, તો પછી તેને ધ્યાન કેમ કહી શકાય ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! પરિવર્તન તો થયા કરે છે, પરન્તુ ધ્યેય એકજ રહે છે ધ્યેયની એકતાને કારણે એ ધ્યાન કહેવાય છે

એ ધ્યાન પૂર્વધરી ત્રણ યોગવાળા શ્રેષ્ઠ મુનિઓને જ થાય છે આ ધ્યાનથી દસમા ગુણસ્થાનના અત સમયે ક્ષપકશ્રેણીમા આરૂઢ મુનિ બળવાન્ મોહનીય-કર્મનો ક્ષય કરીને બારમા ગુણસ્થાનમા પહોચી જાય છે, અને જો ઉપશમ-શ્રેણીમા આરૂઢ હોય તો અગ્યારમા ઉપશાન્તમોહ ગુણસ્થાનમા જાય છે એ પ્રથમ ધ્યાન, ઉપશમ-શ્રેણીની અપેક્ષાએ કરીને આઠમા ગુણસ્થાનથી લઈને

पेक्षया दशमगुणस्थानं यावत्, उपशमश्रेण्यपेक्षया तु एकादशगुणस्थानं यावद्भवतीति विवेकः ।

(२) ततश्चैकत्ववितर्काऽविचारमारभते, यथा सिद्धगारुडिकादिमन्त्रः सकलशरीरस्यापि विषम विष मन्त्रसामर्थ्येन सर्वावयवेभ्यः समाकृष्य दंशस्थाने समानीय सस्तम्भयति, तथा पूर्वगतश्रुतानुसारतोऽर्थ व्यञ्जन योगसक्रान्तिराहित्येनाशेषविषयेभ्यः सहृत्यैकस्मिन्नेव पर्याये योगस्य निर्वातस्थाने दीपशिखावत्स्थिरीकरणम्-एकत्ववितर्काऽविचारम् ।

गुणस्थानसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे तो अष्टमसे लेकर दशम गुणस्थान तक होता है, ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशान्तमोह होनेसे क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि उसका स्पर्श न करते हुए दूसरे ध्यानका आरम्भ करके बारहवें गुणस्थानमें जाते हैं।

(२) एकत्ववितर्क-अविचार–जैसे मन्त्र जाननेवाला पुरुष समस्त शरीरमें व्याप्त विषको मन्त्रकी शक्तिद्वारा अन्य-अन्य अवयवोंसे खींच कर दशस्थान (जहा विषैला जन्तुने काटा है उस जगह) पर स्तंभित कर देता है, वैसें ही पूर्वगत श्रुतके अनुसार अर्थ, व्यञ्जन और योगोंके परिवर्त्तनसे रहित होकर समस्त विषयोंसे विमुख होकर एक ही पर्यायके ध्यानमें वायुरहित स्थानमें रखे हुए दीपककी शिखा के समान स्थिर होजाना 'एकत्ववितर्क' ध्यान कहलाता है।

અગ્યારમા ગુણસ્થાન સુધી થાય છે ક્ષપક–શ્રેણીની અપેક્ષાએ કરીને તો આઠમાથી લઈને દસમા ગુણસ્થાન સુધી થાય છે, અગ્યારમુ ગુણસ્થાન ઉપશાન્તમોહ હોવાથી ક્ષપક શ્રેણીમા આરૂઢ મુનિ એનો સ્પર્શ ન કરતા બીજા ધ્યાનનો આરભ કરીને બારમા ગુણસ્થાનમા જાય છે

(૨) એકત્વવિતર્ક—અવિચાર—જેમ મત્ર જાણુવાવાળો પુરૂષ આખા શરીરમા વ્યાપેલા વિષને મત્રની શક્તિદ્વારા અન્ય અન્ય અવયવોમાથી ખેચી લઈને દશસ્થાન (જ્યા ઝેરી જતુ કરડયો હોય તે સ્થાન) પર સ્તભિત કરી દે છે, તેમ પૂર્વગત શ્રુતને અનુસાર અર્થ વ્યજન અને યોગના પરિવર્તનથી રહિત થઈને બધા વિષયોથી વિમુખ થઈ એકજ પર્યાયના ધ્યાનમા, વાયુરહિત સ્થાનમા રાખેલા દીપકની શિખાની પેઠે સ્થિર થઈ જવુ એ 'એકત્વવિતર્ક' કહેવાય છે

अयमाशयः—प्रथमं ध्यानं सपृथक्त्वं भवति, इदं तु पृथक्त्वरहितम्। अत्रैकमर्थं विहायाऽर्थान्तरे, तथैकं शब्दं विहाय शब्दान्तरे, तथा योगाद् योगान्तरे संक्रमणं न भवति तस्मादिदमेकत्ववितर्काभिधानं ध्यानमिति। इदं च ध्यानं मनोवाक्काय-योगान्यतमवतामेव महामुनीनां जायते, अत्र योगानां संक्रमणाभावात्।

तथा चोक्तम्—"निजात्मद्रव्यमेकं वा, पर्यायमथवा गुणम्।
निश्चलं चिन्त्यते यत्र, तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥१॥
यद्व्यञ्जनार्थयोगेषु, परावर्तविवर्जितम्।
चिन्तनं तदविचारं, स्मृतं सद्ध्यानकोविदैः ॥२॥" इति ॥

तात्पर्य यह है कि पहला ध्यान पृथक्त्व (अनेकप्रकारता) सहित होता है किन्तु दूसरे भेदमें पृथक्त्व नहीं रहता। इसमें एक अर्थसे दूसरे अर्थमें संक्रमण नहीं होता, इसलिए इसे एकत्ववितर्क-ध्यान कहते हैं।

यह ध्यान मन वचन काय योगोंमेंसे किसी एक योगवाले मुनिराजको ही होता है, अर्थात् इस ध्यानके समय एक ही योगमें स्थिर रहते हैं, क्योंकि इसमें योगोंका संक्रमण नहीं होता। कहा भी है-

"जिस ध्यानमें केवल निज आत्मा का अथवा उसकी एक पर्यायका या एक गुणका ध्यान किया जाता है उसे 'एकत्व' कहते हैं ॥१॥ जो व्यञ्जन अर्थ और योगोंके परिवर्त्तनसे रहित चिन्तन किया जाता है उसे 'अविचार' कहते हैं ॥२॥"

તાત્પર્ય એ છે કે પહેલું ધ્યાન પૃથક્ત્વ (અનેક-પ્રકારતા) સહિત હોય છે કિન્તુ બીજા ભેદમાં પૃથક્ત્વ રહેતું નથી એમાં એક અર્થમાંથી બીજા અર્થમાં, એક શબ્દમાંથી બીજા શબ્દમાં અને એક યોગમાંથી બીજા યોગમાં સંક્રમણ થતું નથી, તેથી એને એકત્વવિતર્ક ધ્યાન કહે છે.

એ ધ્યાન મન વચન કાયાના યોગોમાંના કોઈ એક યોગવાળા મુનિરાજ નેજ થાય છે, અર્થાત્ એ ધ્યાનને સમયે એકજ યોગમાં સ્થિર રહે છે, કારણ કે એમાં યોગોનું સંક્રમણ થતું નથી કહ્યું છે કે-

"જે ધ્યાનમાં કેવળ નિજ આત્માનું અથવા એના એક પર્યાયનું યા એક ગુણનું ધ્યાન કરવામાં આવે છે, તેને 'એકત્વ' કહે છે (૧) વ્યંજન અર્થ અને યોગોના પરિવર્તનથી રહિત ચિંતન કરવામાં આવે છે તેને 'અવિચાર' કહે છે (૨)"

पेक्षया दशमगुणस्थानं यावत्, उपशमश्रेण्यपेक्षया तु एकादशगुणस्थानं यावद्भवतीति विवेकः ।

(२) ततोऽसावेकत्ववितर्काऽविचारमारभते, यथा सिद्धगारुडिकादिमन्त्रः सकलशरीरस्यापि विषम विषं मन्त्रसामर्थ्येन सर्वावयवेभ्यः समाकृष्य दंशस्थाने समानीय सस्तम्भयति, तथा पूर्वगतश्रुतानुसारतोऽर्थ-व्यञ्जन योगसङ्क्रान्तिराहित्येनाशेषविषयेभ्यः संहृत्यैकस्मिन्नेव पर्याये योगस्य निर्वातस्थाने दीपशिखावत्स्थिरीकरणम्-एकत्ववितर्काऽविचारम् ।

गुणस्थानसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। क्षपकश्रेणीकी अपेक्षासे तो अष्टमसे लेकर दशम गुणस्थान तक होता है, ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशान्तमोह होनेसे क्षपकश्रेणीमें आरूढ मुनि उसका स्पर्श न करते हुए दूसरे ध्यानका आरम्भ करके बारहवें गुणस्थानमें जाते हैं।

(२) एकत्ववितर्क-अविचार—जैसे मन्त्र जाननेवाला पुरुष समस्त शरीरमें व्याप्त विषको मन्त्रकी शक्तिद्वारा अन्य-अन्य अवयवोंसे खींच कर दंशस्थान (जहां विषैला जन्तुने काटा है उस जगह) पर स्तंभित कर देता है, वैसें ही पूर्वगत श्रुतके अनुसार अर्थ, व्यञ्जन और योगोंके परिवर्त्तनसे रहित होकर समस्त विषयोंसे विमुख होकर एक ही पर्यायके ध्यानमे वायुरहित स्थानमे रखे हुए दीपककी शिखा के समान स्थिर होजाना 'एकत्ववितर्क' ध्यान कहलाता है ।

અગ્યારમા ગુણસ્થાન સુધી થાય છે ક્ષપક-શ્રેણીની અપેક્ષાએ કરીને તો આઠમાથી લઈને દસમા ગુણસ્થાન સુધી થાય છે, અગ્યારમુ ગુણસ્થાન ઉપશાન્તમોહ હોવાથી ક્ષપક શ્રેણીમા આરૂઢ મુનિ એનો સ્પર્શ ન કરતા બીજા ધ્યાનનો આરભ કરીને બારમા ગુણસ્થાનમા જાય છે

(૨) એકત્વવિતર્ક—અવિચાર—જેમ મત્ર જાણુવાવાળો પુરૂષ આખા શરીરમા વ્યાપેલા વિષને મત્રની શક્તિદ્વારા અન્ય અન્ય અવયવોમાથી ખેચી લઈને દશસ્થાન (જ્યા ઝેરી જતુ કરડયો હોય તે સ્થાન) પર સ્તભિત કરી દે છે, તેમ પૂર્વગત શ્રુતને અનુસાર અર્થ વ્યજન અને યોગના પરિવર્તનથી રહિત થઈને બધા વિષયોથી વિમુખ થઈ એકજ પર્યાયના ધ્યાનમા, વાયુરહિત સ્થાનમા રાખેલા દીપકની શિખાની પેઠે સ્થિર થઈ જવુ એ 'એકત્વવિતર્ક' કહેવાય છે

टीका—यदाऽबोधिकलुषकृत कर्मरजो धुनाति तदा सर्वत्रग=सर्वत्र गच्छति=व्याप्नोतीति सर्वत्रग=सकललोकालोकव्यापि तत्, ज्ञान=ज्ञायन्ते=परिच्छिद्यन्ते द्रव्य-गुण-पर्यायादयोऽनेनेति ज्ञान=केवलज्ञानमित्यर्थस्तत्, दर्शन=दृश्यन्ते=साक्षात्क्रियन्ते द्रव्यादयो येनेति दर्शनम्=केवलदर्शनमित्यर्थस्तत्। "सामान्यार्थावबोधो दर्शन, विशेषार्थावबोधो ज्ञान"-मित्युभयोर्भेद, तथाहि—

"ज सामण्णग्गहण दसणमेय विसेसिय नाण" इति, चः समुच्चये, अभिगच्छति=कर्मजनितसकलाऽऽवरणाभावादतिशयेन सम्प्राप्नोति सयोगिकेवलिगुणस्थानमारोहतीत्यर्थः ॥२१॥

केवलज्ञान-केवलदर्शनयोः फलमाह—'जया सव्वत्तग' इत्यादि ।

जब साधु मिथ्यात्वरूपी पापसे उत्पन्न हुए कर्मरजको नष्ट कर देते हैं तब समस्त लोकाकाश और अलोकाकाशमें व्यापी द्रव्य पर्यायोंको जाननेवाला केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त होता है। पदार्थोंका सामान्य ज्ञान होना दर्शन है और विशेष ज्ञान होना ज्ञान है, यही दोनोंमें भेद है, कहाभी है—

"सामान्यका ग्रहण होना दर्शन है और विशेष का ग्रहण होना ज्ञान है।"

कर्मोंसे उत्पन्न हुए समस्त आवरणोंके अभावसे इन दोनों (ज्ञानदर्शन)को प्राप्त करते हैं ॥ २१ ॥

केवलज्ञान और केवलदर्शन का फल कहते हैं—'जया सव्वत्तग' इत्यादि ।

જ્યારે સાધુ મિથ્યાત્વરૂપી પાપથી ઉત્પન્ન થએલી કર્મરજને નષ્ટ કરી નાખે છે, ત્યારે સમસ્ત લોકાકાશ અને અલોકાકાશમા વ્યાપેલા દ્રવ્ય પર્યાયોને જાણવાવાળુ કેવળજ્ઞાન તથા કેવળદર્શન પ્રાપ્ત થાય છે પદાર્થોનુ સામાન્ય જ્ઞાન થવુ એ દર્શન છે અને વિશેષ જ્ઞાન થવુ એ જ્ઞાન છે એ બેઉમા ભેદ છે કહ્યુ છે કે—

"સામાન્યનુ ગ્રહણ થવુ એ દર્શન છે અને વિશેષનુ ગ્રહણ થવુ એ જ્ઞાન છે"

કર્મોથી ઉત્પન્ન થએલા સર્વ આવરણોના અભાવથી એ બેઉ (જ્ઞાન દર્શન)ને પ્રાપ્ત કરે છે (૨૧)

કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનનુ ફળ કહે છે—જયા સવ્વત્તગ ઇત્યાદિ

इदं ध्यानं क्षीणमोहनीयगुणस्थाने एव भवति, एतद्ध्यानचरमसमये क्षपकश्रेण्यारूढो मुनिर्ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीयमन्तरायाख्यं च, त्रीणि कर्माणि युगपत् क्षपयति, अस्य ध्यानस्य फलं च केवलज्ञानकेवलदर्शनाऽनन्तवीर्यप्राप्तिरेव, प्रकृतध्यानद्वयमन्तरेण केवलज्ञानं लब्धुमशक्यम् । एतदुभयं ध्यानं छद्मस्थानां जायते, तृतीयचतुर्थे तु केवलिनामेव भवत इति बोद्धव्यम् ॥२०॥

घातिकर्मक्षयजनितफलं प्रदर्शयितुमुपक्रमते-'जया धुणइ' इत्यादि ।

मूलम्-जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसंकडं ।
तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥ २१ ॥

छाया—यदा धुनाति कर्मरजोऽबोधिकलुषकृतम् ।
तदा सर्वत्रगं ज्ञानं, दर्शनं चाभिगच्छति ॥२१॥

सान्वयार्थः-जया=जब अबोहिकलुसकडं=आत्माके मिथ्यात्वपरिणाम द्वारा उपार्जित किये हुए कम्मरयं=कर्मरूपी रजको धुणइ=हटा देता है, तया=तब सव्वत्तगं=सब जगह जानेवाले-सब पदार्थोंको जाननेवाले नाणं=ज्ञानको च=और दंसणं=दर्शनको अभिगच्छइ=प्राप्त करता है ॥२१॥

यह ध्यान क्षीणमोहनीय गुणस्थानमें ही होता है । इस ध्यानके अन्तमें ज्ञानावरणीय,दर्शनावरणीय और अन्तराय नामक तीन घाति कर्मोंका एक साथ ही क्षय हो जाता है । इस ध्यानका फल केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्तवीर्यकी प्राप्ति है । इन दोनों ध्यानोंके बिना केवलज्ञान नहीं प्राप्त होसकता । ये दोनों ध्यान छद्मस्थोंको होते हैं, तथा तीसरा और चौथा ध्यान केवलियों को होता है ॥२०॥

घातिकर्मोंके क्षय होनेसे उत्पन्न होनेवाला फल बतलाते हैं-'जया धुणइ' इत्यादि ।

એ ધ્યાન ક્ષીણમોહનીય ગુણસ્થાનમાં જ થાય છે એ ધ્યાનના અંતમાં જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય અને અન્તરાય નામના ત્રણ ઘાતિ-કર્મોનો એકી સાથે જ ક્ષય થઈ જાય છે એ ધ્યાનનું ફલ કેવળ જ્ઞાન, કેવળ દર્શન અને અનંત વીર્યની પ્રાપ્તિ છે એ બેઉ ધ્યાન વિના કેવળ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકતું નથી એ બેઉ ધ્યાન છદ્મસ્થોને થાય છે, તથા ત્રીજું અને ચોથું ધ્યાન કેવળીઓને થાય છે (૨૦)

ઘાતીકર્મોનો ક્ષય થવાથી ઉત્પન્ન થનારૂં ફળ બતાવે છે-जया धुणइ ઈત્યાદિ.

मस्माभिरवलोक्यते तावानेव लोकः ?, नहि, अनन्तज्ञानसम्पन्नेन सर्वज्ञेन यो लोक्यते स लोक इति ।

नन्वेतेनाऽलोकस्यापि लोकत्वप्रसङ्गस्तस्यापि सर्वज्ञेनावलोकितत्वात्, तथा-चाऽलोकोऽपि किं लोकः ? न, यतो लोक्यते धर्मास्तिकायाद्याधारभूत आकाश-विशेषो यः स लोक इत्यवधार्यम् । स च कटितटोभयपार्श्वतोनिहितहस्तद्वयो विस्फारितपादयुगलोऽवस्थितः पुरुष इव नृत्यद्भैरवोपासकाकृतिको वा ऊर्ध्वाऽध-स्तिर्यग्भेदभिन्नश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽसंख्यातप्रदेशात्मक आकाशविशेषस्तम् । तद्वि-परीतोऽलोकः ।

उत्तर–उतना ही नहीं है। अनन्तज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् द्वारा जितना देखा जाता है उतना लोक है।

प्रश्न–केवली भगवान् अलोकको भी देखते हैं तो उनके देखनेसे अलोक भी लोक हो जायगा ?

उत्तर–नहीं होगा। भगवानने धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का आधार-भूत जो आकाश देखा है उसे लोक कहते हैं, ऐसा समझना चाहिये।

वह लोक कमरपर दोनों हाथ रखकर, पैर फैलाकर खडे हुए पुरुष के आकारका, अथवा नाचते हुए भैरवोपासक (भोपा) की आकृतिका है। इसके तीन भेद हैं–(१) उद्र्ध्वलोक, (२) मध्यलोक, (३) अधोलोक। यह चौदह राजू जितना ऊचा और असख्यात–प्रदेशमय है। अलो-काकाश इससे विपरीत है।

ઉત્તર—એટલો જ નહિ અનતજ્ઞાની સર્વજ્ઞ ભગવાનદ્વારા જેટલો જોવાય છે એટલો લોક છે

પ્રશ્ન—કેવળી ભગવાન્ તો અલોકને પણ જુએ છે તો એમના જોવાથી અલોક પણ લોક થઈ જશે ?

ઉત્તર—નહિ થાય ભગવાને ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોનું આધારભૂત જે આકાશ જોયુ છે એને લોક કહે છે, એમ સમજવુ જોઇએ

એ લોક કમર પર બેઉ હાથ રાખીને, પગ ફેલાવીને ઊભેલા પુરુષના આકારનો, અથવા નાચતા ભૈરવોપાસક (ભુવા)ની આકૃતિનો છે તેના ત્રણ ભેદ છે (૧) ઊર્ધ્વલોક, (૨) મધ્યલોક, (૩) અધોલોક એ ચૌદ રાજૂ જેવડો ઉચો અને અસખ્યાત પ્રદેશમય છે અલોકાકાશ એથી વિપરીત છે

मूलम्-जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥२२॥

छाया-यदा सर्वत्रगं ज्ञानं, दर्शनं चाभिगच्छति ।
तदा लोकमलोकं च, जिनो जानाति केवली ॥२२॥

सान्वयार्थः-जया=जब सव्वत्तगं=सब जगह जानेवाले-सब पदार्थोंको जाननेवाले नाणं=ज्ञानको च=और दंसणं=दर्शनको अभिगच्छइ=प्राप्त करता है, तया=तब जिणो=वीतराग केवली=केवलज्ञानी होते-हुए लोगमलोगं च=लोक और अलोकको जाणइ=जानते हैं ॥२२॥

टीका—यदा केवलज्ञानं केवलदर्शनं च प्राप्नोति तदा जिनः=घातिकर्मविजेता, केवली=केवलज्ञानी सन् लोकः=लोक्यत इति लोकस्तं जानाति=करतलामलकवज्ज्ञानविषयीकरोति ।

आह-ननु कोऽयं लोकपदार्थः? यदि केनचिदेको ग्रामोऽवलोकितस्तर्हि किं तावानेव लोकः? न, अपरेण ततोऽप्यधिकग्रामदर्शनात् । तर्हि यावद् ग्रामादिक-

---

जब सर्वव्यापी ज्ञान तथा दर्शनको प्राप्त करते हैं तब केवली होकर लोक और अलोकको जानते हैं ।

जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं ।

प्रश्न-यदि किसीने एक ग्राम देखा हो तो लोक क्या उतना ही होगा ?

उत्तर-उतना ही नहीं होगा, क्योंकि दूसरे उससे अधिक ग्राम देखते हैं ?

प्रश्न-तो हमलोग जितने ग्रामोंको देखते है उतना ही लोक है ?

જ્યારે સર્વવ્યાપી જ્ઞાન તથા દર્શનને પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે કેવળી થઇને લોક અને અલોકને જાણે છે

જે જોઇ શકાય તેને લોક કહે છે

પ્રશ્ન—જો કોઇએ એક ગામ જોયુ હોય તો લોક શુ એટલો જ હોય ?

ઉત્તર—એટલો જ નહિ હોય, કારણ કે બીજાઓ એથી વધારે ગામો જુએ છે

પ્રશ્ન—તો આપણે જેટલા ગામોને જોઇએ છીએ એટલો જ લોક છે ?

मस्माभिरवलोक्यते तावानेव लोकः ?, नहि, अनन्तज्ञानसम्पन्नेन सर्वज्ञेन यो लोक्यते स लोक इति ।

नन्वेतेनाऽलोकस्यापि लोकत्वमसङ्गस्तस्यापि सर्वज्ञेनावलोकितत्वात्, तथा-चाऽलोकोऽपि किं लोकः ? न, यतो लोक्यते धर्मास्तिकायाद्याधारभूत आकाश-विशेषो यः स लोक इत्यवधार्यम् । स च कटितटोभयपार्श्वतोनिहितहस्तद्वयो विस्फारितपादयुगलोऽवस्थितः पुरुष इव नृत्यद्भैरवोपासकाकृतिको वा ऊर्ध्वाऽध-स्तिर्यग्भेदभिन्नश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽसङ्ख्यातप्रदेशात्मक आकाशविशेषस्तम् । तद्वि-परीतोऽलोकः ।

उत्तर-उतना ही नहीं है। अनन्तज्ञानी सर्वज्ञ भगवान् द्वारा जितना देखा जाता है उतना लोक है।

प्रश्न-केवली भगवान अलोकको भी देखते हैं तो उनके देखनेसे अलोक भी लोक हो जायगा ?

उत्तर-नहीं होगा। भगवानने धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का आधार-भूत जो आकाश देखा है उसे लोक कहते हैं, ऐसा समझना चाहिये।

यह लोक कमरपर दोनों हाथ रखकर, पैर फैलाकर खडे हुए पुरुष के आकारका, अथवा नाचते हुए भैरवोपासक (भोपा) की आकृत्तिका है। इसके तीन भेद हैं-(१) उद्ध्वलोक, (२) मध्यलोक, (३) अधोलोक। यह चौदह राजू जितना ऊचा और असख्यात-प्रदेशमय है। अलो-काकाश इससे विपरीत है।

ઉત્તર—એટલો જ નહિ અનંતજ્ઞાની સર્વજ્ઞ ભગવાનદ્વારા જેટલો જોવાય છે એટલો લોક છે

પ્રશ્ન—કેવળી ભગવાન્ તો અલોકને પણ જુએ છે તો એમના જોવાથી અલોક પણ લોક થઈ જશે ?

ઉત્તર—નહિ થાય ભગવાને ધર્માસ્તિકાય આદિ દ્રવ્યોનું આધારભૂત જે આકાશ જોયુ છે એને લોક કહે છે, એમ સમજવુ જોઈએ

એ લોક કમર પર બેઉ હાથ રાખીને, પગ ફેલાવીને ઊભેલા પુરૂષના આકારનો, અથવા નાચતા ભૈરવોપાસક (ભુવા)ની આકૃતિનો છે તેના ત્રણ ભેદ છે (૧) ઊર્ધ્વલોક, (૨) મધ્યલોક, (૩) અધોલોક એ ચૌદ રાજૂ જેવડો ઉંચો અને અસખ્યાત પ્રદેશમય છે અલોકાકાશ એથી વિપરીત છે

मूलम्-जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥२२॥

छाया-यदा सर्वत्रगं ज्ञानं, दर्शनं चाभिगच्छति।
तदा लोकमलोकं च, जिनो जानाति केवली ॥२२॥

सान्वयार्थः-जया=जब सव्वत्तगं=सब जगह जानेवाले-सब पदार्थोंको जाननेवाले नाणं=ज्ञानको च=और दंसणं=दर्शनको अभिगच्छइ=प्राप्त करता है, तया=तब जिणो=वीतराग केवली=केवलज्ञानी होते-हुए लोगमलोगं च=लोक और अलोकको जाणइ=जानते हैं ॥२२॥

टीका—यदा केवलज्ञानं केवलदर्शनं च प्राप्नोति तदा जिनः=घातिकर्मविजेता, केवली=केवलज्ञानी सन् लोकं=लोक्यत इति लोकस्तं जानाति=करतलामलकवज्ज्ञानविषयीकरोति।

आह-ननु कोऽयं लोकपदार्थः? यदि केनचिदेको ग्रामोऽवलोकितस्तर्हि किं तावानेव लोकः? न, अपरेण ततोऽप्यधिकग्रामदर्शनात्। तर्हि यावद् ग्रामादिकं

जब सर्वव्यापी ज्ञान तथा दर्शनको प्राप्त करते हैं तब केवली होकर लोक और अलोकको जानते हैं।

जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं।

प्रश्न-यदि किसीने एक ग्राम देखा हो तो लोक क्या उतना ही होगा?

उत्तर-उतना ही नहीं होगा, क्योंकि दूसरे उससे अधिक ग्राम देखते हैं?

प्रश्न-तो हमलोग जितने ग्रामोंको देखते हैं उतना ही लोक है?

જ્યારે સર્વવ્યાપી જ્ઞાન તથા દર્શનને પ્રાપ્ત કરે છે ત્યારે કેવળી થઈને લોક અને અલોકને જાણે છે

જે જોઈ શકાય તેને લોક કહે છે

પ્રશ્ન—જો કોઈએ એક ગ્રામ જોયું હોય તો લોક શું એટલો જ હોય?

ઉત્તર—એટલો જ નહિ હોય, કારણ કે બીજાઓ એથી વધારે ગ્રામો જુએ છે

પ્રશ્ન—તો આપણે જેટલા ગ્રામોને જોઈએ છીએ એટલો જ લોક છે?

लोकः सप्रतिपक्षः, व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयत्वात्, यो हि व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयः स सप्रतिपक्ष एव भवति, यथा घटः। यश्च लोकप्रतिपक्षः स एव सद्भूतोऽलोकः, अस्तित्ववत एव प्रतिपक्षित्वसम्भवात्।

ननु 'न लोकोऽलोकः' इति व्युत्पत्त्या घटादिष्वन्यतम एवालोकः सिध्यति किं पदार्थान्तरकल्पनया? इति चेदुच्यते-'न लोकः' इत्यत्र नञ् पर्युदासार्थक-

---

लोक अपने प्रतिपक्ष (विरोधी-अलोक)की अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य (अर्थ) है। जो जो व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य होता है वह प्रतिपक्षसहित ही होता है, जैसे घट। घट व्युत्पत्तिवाला है और समासरहित है, अर्थात् दो पद मिल कर नहीं बना हुआ है, अत एव घटके प्रतिपक्ष-अघट-पट, मुकुट, शकट, कट आदि भी अवश्य होते हैं। लोकका जो प्रतिपक्ष है वह अस्तित्ववान् अलोक है, क्योंकि अस्तित्ववान् पदार्थ ही किसीका प्रतिपक्ष हो सकता है। गधेका सींग आदि नास्तित्ववान् पदार्थ किसीके प्रतिपक्ष नहीं होते॥

प्रश्न-'जो लोक नहीं वह अलोक है' ऐसा माननेसे लोकसे भिन्न जितने घट पट आदि पदार्थ है वे सब अलोक होंगे, क्योंकि वे लोक नहीं है-लोकसे भिन्न हैं। फिर घट आदि पदार्थोंसे भिन्न एक अलग अलोक क्यों मानते हो?

લોક પોતાના પ્રતિપક્ષ (વિરોધી અલોક) ની અપેક્ષા રાખે છે, કારણ કે એ વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય (અર્થ) છે જે જે વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય હોય છે તે પ્રતિપક્ષસહિત જ હોય છે જેમ ઘટ, ઘટ વ્યુત્પત્તિવાળો છે અને સમાસરહિત છે, અર્થાત્ બે શબ્દો મળવાથી બનેલો નથી, તેથી ઘટનો પ્રતિપક્ષ-અઘટ-પટ, મુકુટ, શકટ, કટ આદિ પણ અવશ્ય હોય છે લોકનો જે પ્રતિપક્ષ છે તે અસ્તિત્વવાન્ અલોક છે, કારણ કે અસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ જ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થઇ શકે છે ગધેડાનું શીંગડું વગેરે નાસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થતો નથી

પ્રશ્ન—'જે લોક નથી તે અલોક છે' એમ માનવાથી લોકથી ભિન્ન જેટલા ઘટ પટ આદિ પદાર્થો છે તે બધા અલોક થશે, કારણ કે તે લોક નથી-લોકથી ભિન્ન છે પછી ઘટ આદિ પદાર્થોથી ભિન્ન એક જૂદો અલોક કેમ માનો છો?

अस्तु लोको जीवपुद्गलादीनामनाधारतयाऽवस्थानासम्भवात्, अलोकस्तु कथम्?, तस्याऽमूर्त्तत्वेनेन्द्रियागोचरतयाऽस्तित्वसाधकप्रमाणाभावात्, इन्द्रियागोचरे चार्थे मनःप्रवृत्तेः कदाऽप्यसम्भवादिति न शङ्कनीयम्, इन्द्रियनोइन्द्रियविषयत्वाभावमात्रदर्शनेन तदस्तित्वनिराकरणस्याऽशक्यत्वात्, अन्यथा हि प्रपितामहादीनामपि तव एवाभावः प्राप्नुयात्। यतः 'आसन् प्रपितामहादयोऽस्मदादिशरीरस्याऽन्यथाऽनुपपन्नत्वात्' इत्यनुमानेन तेषामस्तित्वं साध्यते चेदलोकस्याप्यनुमानेन सिद्धिरस्त्वेव, तथाहि–

प्रश्न–जीव और पुद्गल आदि विना आधारके नहीं ठहर सकते, अतः लोकाकाश मानना तो ठीक है, परन्तु अलोकाकाशके अस्तित्वमें क्या प्रमाण है?, कारण यह कि इन्द्रियोंका यह विषय नहीं है, क्योंकि अमूर्त्त है। जिस विषयमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती उसमें मन भी प्रवृत्त नहीं हो सकता। अत एव न इन्द्रियोंसे अलोकाकाशको जान सकते हैं और न मनसे।

उत्तर–यह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि इन्द्रिय और मनका विषय न होनेसे उसके अस्तित्वका खण्डन नहीं हो सकता, अन्यथा दादे परदादे आदि पूर्वजोंका भी अस्तित्व सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वे भी इन्द्रिय और मनके विषय नहीं होते। यदि कोई इस अनुमानसे पूर्वजोंका अस्तित्व सिद्ध करे कि–पितामह (दादा) आदि पूर्वजोंका किसी समयमें अस्तित्व था, क्योंकि उनके विना हमारा शरीर नहीं बन सकता तो अनुमानसे ही अलोककी भी सिद्धि मान लेनी चाहिए। अनुमान यह है–

પ્રશ્ન—જીવ અને પુદ્ગલ આદિ આધાર વિના રહી શકતા નથી, તેથી લોકાકાશ માનવું એ તો બરાબર છે, પરન્તુ અલોકાકાશના અસ્તિત્વનું શું પ્રમાણ છે?, કારણ એ છે કે ઇંદ્રિયોનો એ વિષય નથી કેમકે અમૂર્ત છે જે વિષયમાં ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ થતી નથી તેમાં મન પણ પ્રવૃત્ત થઇ શકતું નથી એથી કરીને ઇન્દ્રિયોથી અલોકાકાશને જાણી શકાતું નથી તેમજ મનથી પણ જાણી શકાતું નથી

ઉત્તર—એ પ્રશ્ન બરાબર નથી કેમકે ઇન્દ્રિય અને મનનો વિષય ન હોવાથી તેના અસ્તિત્વનું ખંડન થઈ શકતું નથી એમ તો દાદા પડદાદા આદિ પૂર્વજોનું પણ અસ્તિત્વ સિદ્ધ નહિ થાય, કેમકે તે પણ ઇન્દ્રિય અને મનના વિષય નથી હોતા જો કોઇ અનુમાનથી પૂર્વજોનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ કરે કે પિતામહ (દાદા) આદિ પૂર્વજોનું કોઇ સમયે અસ્તિત્વ હતું, કારણ કે એના વિના આપણું શરીર બની શકે નહિ, તો અનુમાનથી જ અલોકની પણ સિદ્ધિ માની લેવી જોઇએ, અનુમાન એ છે કે–

लोकः सप्रतिपक्षः, व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयत्वात्, यो हि व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयः स सप्रतिपक्ष एव भवति, यथा घटः। यश्च लोकप्रतिपक्षः स एव सद्भूतोऽलोकः, अस्तित्ववत एव प्रतिपक्षित्वसम्भवात्।

ननु 'न लोकोऽलोकः' इति व्युत्पत्त्या घटादिष्वन्यतम एवालोकः सिध्यति किं पदार्थान्तरकल्पनया? इति चेदुच्यते-'न लोकः' इत्यत्र नञ् पर्युदासार्थक-

लोक अपने प्रतिपक्ष (विरोधी-अलोक) की अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य (अर्थ) है। जो जो व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य होता है वह प्रतिपक्षसहित ही होता है, जैसे घट। घट व्युत्पत्तिवाला है और समासरहित है, अर्थात् दो पद मिल कर नहीं बना हुआ है, अत एव घटके प्रतिपक्ष-अघट-पट, मुकुट, शकट, कट आदि भी अवश्य होते हैं। लोकका जो प्रतिपक्ष है वह अस्तित्ववान् अलोक है, क्योंकि अस्तित्ववान् पदार्थ ही किसीका प्रतिपक्ष हो सकता है। गधेका सींग आदि नास्तित्ववान् पदार्थ किसीके प्रतिपक्ष नहीं होते॥

प्रश्न–'जो लोक नहीं वह अलोक है' ऐसा माननेसे लोकसे भिन्न जितने घट पट आदि पदार्थ हैं वे सब अलोक होंगे, क्योंकि वे लोक नहीं है–लोकसे भिन्न हैं। फिर घट आदि पदार्थोंसे भिन्न एक अलग अलोक क्यों मानते हो?

લોક પોતાના પ્રતિપક્ષ (વિરોધી અલોક) ની અપેક્ષા રાખે છે, કારણ કે એ વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય (અર્થ) છે જે જે વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય હોય છે તે પ્રતિપક્ષસહિત જ હોય છે જેમ ઘટ, ઘટ વ્યુત્પત્તિવાળો છે અને સમાસરહિત છે, અર્થાત્ બે શબ્દો મળવાથી બનેલો નથી, તેથી ઘટનો પ્રતિપક્ષ–અઘટ–પટ, મુકુટ, શકટ, કટ આદિ પણ અવશ્ય હોય છે લોકનો જે પ્રતિપક્ષ છે તે અસ્તિત્વવાન્ અલોક છે, કારણ કે અસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ જ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થઇ શકે છે ગધેડાનું શીંગડું વગેરે નાસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થતો નથી

પ્રશ્ન—'જે લોક નથી તે અલોક છે' એમ માનવાથી લોકથી ભિન્ન જેટલા ઘટ પટ આદિ પદાર્થો છે તે બધા અલોક થશે, કારણ કે તે લોક નથી–લોકથી ભિન્ન છે પછી ઘટ આદિ પદાર્થોથી ભિન્ન એક જૂદો અલોક કેમ માનો છો?

अस्तु लोको जीवपुद्गलादीनामनाधारतयाऽवस्थानासम्भवात्, अलोकस्तु कथम्?, तस्याऽमूर्त्तत्वेनेन्द्रियागोचरतयाऽस्तित्वसाधकप्रमाणाभावात्, इन्द्रियागोचरे चार्थे मनःप्रवृत्तेः कदाऽप्यसम्भवादिति न शङ्कनीयम्, इन्द्रियनोइन्द्रियविषयत्वाभावमात्रदर्शनेन तदस्तित्वनिराकरणस्याऽशक्यत्वात्, अन्यथा हि प्रपितामहादीनामपि तत्त्वाभाव' माप्नुयात्। यतः 'आसन् प्रपितामहादयोऽस्मादादिशरीरस्याऽन्यथाऽनुपपन्नत्वात्' इत्यनुमानेन तेषामस्तित्वं साध्यते चेदलोकस्याप्यनुमानेन सिद्धिरत्र यथैव, तथाहि–

प्रश्न–जीव और पुद्गल आदि बिना आधारके नहीं ठहर सकते, अतः लोकाकाश मानना तो ठीक है, परन्तु अलोकाकाशके अस्तित्वमें क्या प्रमाण है?, कारण यह कि इन्द्रियोंका यह विषय नहीं है, क्योंकि अमूर्त्त है। जिस विषयमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति नहीं होती उसमें मन भी प्रवृत्त नहीं हो सकता। अत एव न इन्द्रियोंसे अलोकाकाशको जान सकते हैं और न मनसे।

उत्तर–यह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि इन्द्रिय और मनका विषय न होनेसे उसके अस्तित्वका खण्डन नहीं हो सकता, अन्यथा दादे परदादे आदि पूर्वजोंका भी अस्तित्व सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि वे भी इन्द्रिय और मनके विषय नहीं होते। यदि कोई इस अनुमानसे पूर्वजोंका अस्तित्व सिद्ध करे कि–पितामह (दादा) आदि पूर्वजोंका किसी समयमें अस्तित्व था, क्योंकि उनके बिना हमारा शरीर नहीं बन सकता तो अनुमानसे ही अलोककी भी सिद्धि मान लेनी चाहिए। अनुमान यह है–

પ્રશ્ન—જીવ અને પુદ્ગલ આદિ આધાર વિના રહી શકતા નથી, તેથી લોકાકાશ માનવું એ તો બરાબર છે, પરન્તુ અલોકાકાશના અસ્તિત્વનું શું પ્રમાણ છે?, કારણ એ છે કે ઇંદ્રિયોનો એ વિષય નથી કેમકે અમૂર્ત છે જે વિષયમાં ઇન્દ્રિયોની પ્રવૃત્તિ થતી નથી તેમાં મન પણ પ્રવૃત્ત થઇ શકતું નથી એથી કરીને ઇન્દ્રિયોથી અલોકાકાશને જાણી શકાતું નથી તેમજ મનથી પણ જાણી શકાતું નથી

ઉત્તર—એ પ્રશ્ન બરાબર નથી કેમકે ઇન્દ્રિય અને મનનો વિષય ન હોવાથી તેના અસ્તિત્વનું ખંડન થઇ શકતું નથી એમ તો દાદા પડદાદા આદિ પૂર્વજોનું પણ અસ્તિત્વ સિદ્ધ નહિ થાય, કેમકે તે પણ ઇન્દ્રિય અને મનના વિષય નથી હોતા જો કોઇ અનુમાનથી પૂર્વજોનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ કરે કે પિતામહ (દાદા) આદિ પૂર્વજોનું કોઇ સમયે અસ્તિત્વ હતું, કારણ કે એના વિના આપણું શરીર બની શકે નહિ, તો અનુમાનથી જ અલોકની પણ સિદ્ધિ માની લેવી જોઇએ, અનુમાન એ છે કે–

लोकः सप्रतिपक्षः, व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयत्वात्, यो हि व्युत्पत्तिमच्छुद्धपदाभिधेयः स सप्रतिपक्ष एव भवति, यथा घटः। यश्च लोकप्रतिपक्षः स एव सद्भूतोऽलोकः, अस्तित्ववत एव प्रतिपक्षित्वसम्भवात्।

ननु 'न लोकोऽलोकः' इति व्युत्पत्त्या घटादिष्वन्यतम एवालोकः सिध्यति किं पदार्थान्तरकल्पनया? इति चेदुच्यते-'न लोकः' इत्यत्र नञ् पर्युदासार्थक-

---

लोक अपने प्रतिपक्ष (विरोधी-अलोक) की अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य (अर्थ) है। जो जो व्युत्पत्तिवाले समासरहित पदका वाच्य होता है वह प्रतिपक्षसहित ही होता है, जैसे घट। घट व्युत्पत्तिवाला है और समासरहित है, अर्थात् दो पद मिल कर नहीं बना हुआ है, अत एव घटके प्रतिपक्ष-अघट-पट, मुकुट, शकट, कट आदि भी अवश्य होते हैं। लोकका जो प्रतिपक्ष है वह अस्तित्ववान् अलोक है, क्योंकि अस्तित्ववान् पदार्थ ही किसीका प्रतिपक्ष हो सकता है। गधेका सींग आदि नास्तित्ववान् पदार्थ किसीके प्रतिपक्ष नहीं होते॥

प्रश्न–'जो लोक नहीं वह अलोक है' ऐसा माननेसे लोकसे भिन्न जितने घट पट आदि पदार्थ हैं वे सब अलोक होंगे, क्योंकि वे लोक नहीं है–लोकसे भिन्न हैं। फिर घट आदि पदार्थोंसे भिन्न एक अलग अलोक क्यों मानते हो?

લોક પોતાના પ્રતિપક્ષ (વિરોધી અલોક) ની અપેક્ષા રાખે છે, કારણ કે એ વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય (અર્થ) છે જે જે વ્યુત્પત્તિવાળા સમાસરહિત શબ્દનો વાચ્ય હોય છે તે પ્રતિપક્ષસહિત જ હોય છે જેમ ઘટ, ઘટ વ્યુત્પત્તિવાળો છે અને સમાસરહિત છે, અર્થાત્ બે શબ્દો મળવાથી બનેલો નથી, તેથી ઘટનો પ્રતિપક્ષ–અઘટ–પટ, મુકુટ, શકટ, કટ આદિ પણ અવશ્ય હોય છે લોકનો જે પ્રતિપક્ષ છે તે અસ્તિત્વવાન્ અલોક છે, કારણ કે અસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ જ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થઇ શકે છે ગધેડાનું શીંગડું વગેરે નાસ્તિત્વવાન્ પદાર્થ કોઇનો પ્રતિપક્ષ થતો નથી

પ્રશ્ન—'જે લોક નથી તે અલોક છે' એમ માનવાથી લોકથી ભિન્ન જેટલા ઘટ પટ આદિ પદાર્થો છે તે બધા અલોક થશે, કારણ કે તે લોક નથી–લોકથી ભિન્ન છે પછી ઘટ આદિ પદાર્થોથી ભિન્ન એક જૂદો અલોક કેમ માનો છો ?

त्वात्, 'पर्युदासः सदृशग्राही'-ति नियमान्निषेध्यसदृशेनैव भाव्यम्, निषेध्यश्चात्र जीवाऽजीवाऽऽदिद्रव्याधारभूत आकाशविशेषात्मको लोकः, अतोऽलोकोऽप्याकाशविशेषरूप एव भवितु योग्यः, यथा 'अधनोऽयम्' इत्युक्ते धनरहितो मनुष्य एव गृह्यते न तु घटपटादिः, तथैवाऽप्यलोको लोकानुरूप एव बोद्धव्य इति ॥२२॥

उत्तर—जो लोक नहीं वह अलोक है। यहाँ नञ्समास है। नञर्थ दो प्रकारका होता है। एक नञर्थ ऐसा होता है कि वह जिसका निषेध किया जाता है उस निषेध्यके समानका ही ग्रहण करनेवाला होता है उसे पर्युदास कहते हैं। कहा भी है कि-"पर्युदास सदृशका बोधक होता है।" अत एव लोकका निषेध रूप अलोक भी लोकहीके समान होना चाहिए। निषेध्य यहा जीव अजीव आदि द्रव्योंका आधारभूत आकाशविशेष है, अतः अलोक भी आकाशविशेष (जीव अजीव आदि द्रव्योंके आधारसे भिन्न) होना चाहिए। जैसे किसीने कहाकि यह 'अधन' है। इस वाक्यमें 'अधन' शब्दसे यह नही समझा जाता है कि यह घडा है या कपडा है, किन्तु धनरहित मनुष्य अर्थ ही समझा जाता है। इसी प्रकार यहाँ 'अलोक' शब्दसे घड़ा नही समझना चाहिए किन्तु आकाशविशेष ही समझना चाहिए। केवली भगवान् इन लोक और अलोक दोनोंको जानते हैं ॥२२॥

ઉત્તર—જે લોક નથી તે અલોક છે એમા નઞ્ સમાસ છે નઞર્થ બે પ્રકારના હોય છે એક નઞર્થ એવો હોય છે કે તે જેનો નિષેધ કરવામા આવે છે એ નિષેધ્યની સમાનના જ ગ્રહણ કરનાર હોય છે, તેને પર્યુદાસ કહે છે, કહ્યુ છે કે-"પર્યુદાસ સદૃશનો બોધક હોય છે" તેથી કરીને લોકના નિષેધરૂપ અલોક પણ લોકની જ સમાન હોવો જોઇએ અહી નિષેધ્ય જીવ-અજીવ આદિ દ્રવ્યોનો આધારભૂત આકાશ વિશેષ છે, તેથી અલોક પણ આકાશ વિશેષ (જીવ અજીવ આદિ દ્રવ્યોના આધારથી ભિન્ન) હોવો જોઇએ, જેમકે કોઇએ કહ્યુ કે એ 'અધન' છે, એ વાકયમા 'અધન' શબ્દથી એમ નથી સમજાતુ કે એ ઘડો છે યા કપડુ છે, કિન્તુ 'ધનરહિત મનુષ્ય' એવો અર્થ જ સમજાય છે એ રીતે અહી 'અલોક' શબ્દથી ઘડો યા કપડુ ન સમજવુ જોઇએ, કિન્તુ આકાશવિશેષ જ સમજવો જોઇએ કેવળી ભગવાન્ એ લોક અને અલોક બેઉને જાણે છે (૨૨)

मूलम्–जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥ २३ ॥

छाया—यदा लोकमलोकं च, जिनो जानाति केवली ।
तदा योगान्निरुध्य, शैलेशीं प्रतिपद्यते ॥२३॥

सान्वयार्थः—जया=जब जिणो=वीतराग केवली=केवलज्ञानी होये हुए लोगमलोगं च=लोक और अलोकको जाणइ=जानते हैं, तया=तब जोगे=मन-वचन-कायके योगोंका निरुंभित्ता=निरोध करके सेलेसिं=शैलेशीकरणको पडिवज्जइ=प्राप्त करते हैं ॥२३॥

टीका—'जया लोग'-मित्यादि । यदा जिनः केवली लोकालोकं जानाति तदा योगान्=मनोवाकायलक्षणान् निरुध्य, तथाहि–मुक्तिपदेऽन्तर्मुहूर्त्तभाविनि आयुष्यन्तर्मुहूर्तमात्रावशेषे सति यद्यघातिकर्मचतुष्टयं स्वभावतः समस्थितिकं स्यात्तदा निष्कलङ्कः परमकल्याणाऽऽस्पदीभूतः केवली सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्याख्यं ध्यानमारभते । उत्कृष्टत आयुषः षण्मासावशेषे समुत्पन्नकेवलस्य भगवतस्तु तदा-

"जया लोग०" इत्यादि । जब घातिकर्मोंको जीतनेवाले केवली भगवान् लोक और अलोकको जान लेते हैं तब योगोंका निरोध करके शैलेशी अवस्थाको प्राप्त करते हैं ।

(३) अन्तर्मुहूर्त मात्र आयु शेष रहने पर यदि बाकी रहे हुए चारों अघातिया कर्मोंकी स्थिति स्वभावसे ही बराबर हो तो निष्कलङ्क परम कल्याणके आश्रयभूत केवली प्रभु सूक्ष्मक्रिय नामक शुक्ल ध्यानके तीसरे पायेका ध्यान प्रारम्भ करते हैं, किन्तु जिन्हें उत्कृष्ट आयुकर्म छह मास अवशेष रहने पर केवलज्ञान उत्पन्न होता है उन्हें नियमसे केवलिसमुद्घात

जया लोग० ઇત્યાદિ જ્યારે ઘાતી કર્મોને જીતવાવાળા કેવળી ભગવાન્ લોક અને અલોકને જાણી લે છે ત્યારે યોગોનો નિરોધ કરીને શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરે છે

(૩) અન્તર્મુહૂર્ત માત્ર આયુ શેષ રહેતા જો બાકી રહેલા ચારે અઘાતી કર્મોની સ્થિતિ સ્વભાવથી બરાબર હોય તો નિષ્કલંક પરમ કલ્યાણના આશ્રયભૂત કેવળી પ્રભુ સૂક્ષ્મક્રિય નામના શુકલ ધ્યાનના ત્રીજા પાયાનુ ધ્યાન આરંભે છે કિન્તુ જેમને ઉત્કૃષ્ટ આયુકર્મ છ માસ અવશેષ રહેતા કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે, તેમને નિયમથી કેવળી સમુદ્ઘાત કરવો પડે છે, કારણ કે એમનું આયુકર્મ

युषोऽल्पत्वाद् वेदनीयनामगोत्रकर्मणा च स्थितिबाहुल्याच नियतमसुद्घातत्वात्, तत्कृत्वा वेदनीयादिषु चतुर्षु समस्थितिकेषु तस्मु तत्प्रारम्भः ।

यदा जघन्ययोगवतः सञ्ज्ञिपर्याप्तस्य मनोद्रव्याणि समये२ निरुन्धन् असख्यातसमयैः सम्पूर्ण मनोयोग, तत्पश्चात्पर्याप्तद्वीन्द्रियस्य वाग्योगपर्यायतोऽसख्यात गुणन्यूनवाग्योगपर्यायान् प्रतिसमय निरुन्धन असख्यातसमयैः सम्पूर्णवाग्योग, ततश्च प्रथमसमयसमुत्पन्ननिगोदजीवस्य जघन्यकाययोगपर्यायतोऽसख्यातगुणहीन काययोग प्रतिसमय निरुन्धन् असख्यातसमयैर्बादरकाययोग च सर्वथा निरुणद्धि

करना पडता है, क्योंकि उनका आयुकर्म अल्प होता है और उनके वेदनीय नाम गोत्र कर्मोंकी स्थिति अधिक होती है, इसलिए वे पहले समुद्घातके द्वारा चारों कर्मोंकी स्थिति बराबर करके फिर तीसरे पायेका ध्यान आरम्भ करते हैं ।

जब जघन्य योगवाले सञ्ज्ञी पर्याप्तकके मनोद्रव्य और मनोद्रव्य के व्यापारोंसे असख्यात गुणहीन मनोद्रव्योंका प्रतिसमयमें निरोध करते हुए असख्यात समयोंमें सम्पूर्ण मनोयोगका निरोध कर देते हैं। तब मनोयोगका निरोध करके पर्याप्त द्वीन्द्रियके वचनयोगकी पर्यायोंसे असख्यात गुणहीन वचनयोगकी पर्यायोंका प्रतिसमय निरोध करते हुए समस्त वचनयोगका निरोध करते हैं। वचन योगका सम्पूर्ण निरोध करके प्रथम समयमें उत्पन्न निगोदिया जीवके जघन्य काययोग की पर्यायो से असख्यातगुणहीन काययोगका प्रतिसमय निरोध करते हुए असख्यात समयोंमे बादर काययोगका भी सर्वथा निरोध कर देते हैं।

અલ્પ હોય છે અને એમના વેદનીય નામ ગોત્ર કર્મોની સ્થિતિ વધારે હોય છે તેથી કરીને તે પહેલા સમુદ્ઘાતની દ્વારા ચારે કર્મોની સ્થિતિ બરાબર કરીને પછી ત્રીજા પાયાનું ધ્યાન આરભે છે

જ્યારે જઘન્ય યોગવાળા સંજ્ઞી પર્યાપ્તકના મનોદ્રવ્ય અને મનોદ્રવ્યના વ્યાપારોથી અસખ્યાતગુણહીન મનોદ્રવ્યોનો પ્રતિ સમયે નિરોધ કરતા અસખ્યાત સમયોમા સપૂર્ણ મનોયોગનો નિરોધ કરીને પર્યાપ્ત દ્વીન્દ્રિયના વચનયોગના પર્યાયોથી અસખ્યાતગુણહીન વચનયોગના પર્યાયોનો પ્રતિસમય નિરોધ કરતા સમસ્ત વચનયોગનો નિરોધ કરે છે વચનયોગનો સપૂર્ણ નિરોધ કરીને પ્રથમ સમયમા ઉત્પન્ન નિગોદિયા જીવના જઘન્ય કાયયોગના પર્યાયોથી અસખ્યાતગુણ હીન કાયયોગનો પ્રતિસમય નિરોધ કરતા અસખ્યાત સમયોમા બાદર કાયયોગનો

तदेद सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्तिध्यानमुपक्रमते। तत्र श्वासोच्छ्वासरूप सूक्ष्ममपि काययोग निरुध्य=अयोगित्व माप्येत्यर्थः, शैलेशीम्=शैलाः=पर्वतास्तेषामीशः शैलेश = सुमेरुस्तद्वत् स्थैर्य यस्यामवस्थाया सा, यद्वा शील=यथाख्यातचारित्र तस्येशः= स्वामी शीलेशस्तस्येयमवस्था शैलेशी ता प्रतिपद्यते मध्यमकालेन 'अ-इ-उ-ऋ-लृ' इत्येवरूपपञ्चलघ्वक्षरोच्चारणसमकालस्थितिक समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपातिध्यानमनुभवतीत्यर्थः,

अर्थात् समस्त मनोयोग और वचनयोगका तथा बादर काययोगका निरोध होने पर सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति नामक तीसरे ध्यानको आरम करते हैं। तीसरे ध्यानके समय श्वासोच्छ्वासरूप काययोगकी सूक्ष्मक्रिया ही रहती है। इस ध्यानसे उस सूक्ष्मक्रियाका भी निरोध करके अयोगी हो जाते हैं। अयोगी होकर अर्थात् तेरहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थानमें पहुचकर शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होते हैं। जिसमें शैलों (पर्वतों) के ईश (स्वामी) सुमेरु पर्वतके समान स्थिरता रहती है उसे शैलेशी अवस्था कहते हैं। अथवा-शील (यथाख्यातचारित्र) के ईश(स्वामी) को शीलेश कहते हैं, उनकी अवस्थाको शैलेशी कहते हैं। इस शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होकर न धीमे न जल्दी अर्थात् मध्यम काल से 'अ-इ-उ-ऋ-लृ' इन पाच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारणमें जितना समय लगता है उतने समय तक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थानमें रह कर समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति ध्यान ध्याते हैं॥

પણ સર્વથા નિરોધ કરી નાખે છે અર્થાત્ સમસ્ત મનોયોગ અને વચનયોગનો તથા બાદર-કાયયોગનો નિરોધ થતા સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્તિ નામના ત્રીજા ધ્યાનનો આરભ કરે છે ત્રીજા ધ્યાનને સમય શ્વાસોચ્છ્વાસરૂપ કાયયોગની સૂક્ષ્મ ક્રિયા જ રહે છે, એ ધ્યાનથી તે સૂક્ષ્મ ક્રિયાનો પણ નિરોધ કરીને અયોગી થઇ જાય છે અયોગી થઇને અર્થાત્ તેરમે ગુણસ્થાનેથી ચૌદમા ગુણસ્થાનમા પહોચીને શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે જેમા શૈલો (પર્વતો)ના ઇશ (સ્વામી) સુમેરૂ પર્વતની પેઠે સ્થિરતા રહે છે તેને શૈલેશી અવસ્થા કહે છે, અથવા શીલ (યથાખ્યાત ચારિત્ર)ના ઇશ (સ્વામી)ને શીલેશ કહે છે, એની અવસ્થાને શૈલેશી કહે છે એ શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થઇને, નહિ ધીમે કે નહિ જલદી અર્થાત્ મધ્યમ કાલથી અ ઇ-ઉ-ઋ લૃ એ પાચ હ્રસ્વ અક્ષરોના ઉચ્ચારણમા જેટલો સમય લાગે એટલા સમય સુધી ચૌદમે અયોગિકેવળી ગુણસ્થાનમા રહીને સમુચ્છિન્નક્રિયાઽપ્રતિપાતિ ધ્યાન ધ્યાવે છે

ननु सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्त्याख्यस्य शुक्लध्यानस्य कथं ध्यानपदप्रतिपाद्यता?, ध्यानं हि नाम मनःस्थैर्यम्, केवलिनश्च तदानीं मनसोऽसत्त्वादिति चेन्न,

स्थैर्यावस्थापन्नत्वमेव ध्यानत्वम्, तच्च यथा स्थिरीभावमापन्नस्य छद्मस्थीय मनसस्तथैव केवलिकाययोगस्यापि सुस्थिरतया सुवचम्।

नन्वेवमपि समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपात्याख्यस्य शुक्लध्यानस्य कथं ध्यानत्वम्? तत्र काययोगस्याप्यभावात्, इति चेदुच्यते-यथा कुम्भकारचक्रं तद्भ्रामकदण्डादिसम्बन्धाभावेऽपि प्राक्कालीनवेगतो भ्रमति तथा मनोवाक्काययोगनिरोधेऽप्ययोगिनः प्राक्कृतध्यानधारावेगतो ध्यानं सम्पद्यते।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज! मनकी स्थिरताको ध्यान कहते हैं। केवली भगवान के उस समय मन नहीं रहता, अतः सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति शुक्ल ध्यान को ध्यान कैसे कहा जा सकता है?।

उत्तर-स्थिरता को ही ध्यान कहते हैं। वह स्थिरता जैसे छद्मस्थके मनोयोगकी होती है वैसे ही केवलीके काययोगकी स्थिरता होती है इसलिए उसे ध्यान कहते हैं।

प्रश्न-तो समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति-शुक्ल-ध्यानको ध्यान कैसे कह सकते है? क्योंकी वहा काययोगका भी अभाव है?।

उत्तर-जैसे कुंभारका चाक, घुमानेवाले दण्ड आदिके संयोग न होनेपर भी पूर्वकालके वेगसे घूमता रहता है वैसे ही मन वचन काय का निरोध होजाने परभी पूर्व ध्यानकी धारा के वेगसे अयोगी केवलीके ध्यान होता है।

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ! મનની સ્થિરતાને ધ્યાન કહે છે કેવળી ભગવાનને એ સમયે મન રહેતુ નથી એટલે સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્તિ શુકલ ધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય?

ઉત્તર—સ્થિરતાને જ ધ્યાન કહે છે એ સ્થિરતા જેવી છદ્મસ્થના મનોયોગની હોય છે તેવીજ કેવળીના કાયયોગની સ્થિરતા હોય છે, તેથી તેને ધ્યાન કહે છે

પ્રશ્ન—તો સમુચ્છિન્નક્રિયા અપ્રતિપાતિ-શુકલ-ધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય? કારણ કે ત્યા કાયયોગનો પણ અભાવ છે

ઉત્તર—જેમ કુંભારનો ચાકડો, તેને ઘુમાવનારા દંડ આદિનો સંયોગ ન થવા છતા પણ પૂર્વકાળના વેગથી ઘુમ્યા કરે છે, તેમજ મન વચન કાયનો નિરોધ થઈ ગયા પછી પણ પૂર્વ ધ્યાનની ધારાના વેગથી અયોગી કેવળીને ધ્યાન હોય છે

किञ्च-तत्र द्रव्ययोगाभावेऽपि भावयोगस्य सत्त्वाद् ध्यानमुपपद्यते, जीवोपयोगरूपस्य भावमनसस्तत्रापि सद्भावात्। अथ च-यथा पुत्रभिन्नोऽपि पुत्रकार्यकरणेन पुत्र उच्यते तथा भवोपग्राहिकर्मनिर्जरणरूपस्य ध्यानकार्यस्य करणेन ध्यानत्वोपाचाराद् ध्यानशब्दाभिधेयत्वं सिद्धम्।

अथ च-यथैकस्य नानार्थकशब्दस्य बहवोऽर्था भवन्ति, तथा धातूनामनेकार्थत्वाद् ध्यैधातुनिष्पादितस्य ध्यानशब्दस्यापि समुच्छिन्नक्रियाख्यं शुक्लध्यानमप्यर्थः। अपरं च-उक्तशुक्लध्यानस्य ध्यानत्वेन जिनागमप्रतिपाद्यतया ध्यानत्वं निर्बाधमित्यलम् ॥२३॥

मूलम्-जया[१] जोगे[२] निरुंभित्ता[३], सेलेसिं[४] पडिवज्जइ[५]।
तया[६] कम्मं[७] खवित्ताणं[८], सिद्धिं[१०] गच्छइ[११] नीरओ[९] ॥२४॥

अथवा-द्रव्ययोगका अभाव होने पर भी भावयोगके सद्भावसे ध्यान होता है, क्योंकि जीवका उपयोगरूप भाव-मन उस अवस्थामें भी रहता है। अथवा जैसे पुत्र न होकर भी यदि कोई पुत्रका कार्य करता है तो वह पुत्र कहलाता है, वैसे ही भवोपग्राही कर्मोंकी निर्जरारूप ध्यानका कार्य करनेसे उपचारसे वह ध्यान कहलाता है। अथवा जैसे नानार्थक शब्दके बहुतसे अर्थ होते हैं वैसे ही धातुओंके भी अनेक अर्थ होते हैं, इसलिए यहाँ 'ध्यै' धातुसे बने हुए ध्यान शब्दका अर्थ समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति-शुक्ल-ध्यान अर्थात् अयोगी गुणस्थानवालोंकी क्रिया भी समझ लेना चाहिए। अथवा जिनागममें इसको ध्यान कहा है अतः इसमें ध्यानत्व निर्बाध है ॥ २३ ॥

અથવા દ્રવ્યયોગનો અભાવ થયા છતા પણ ભાવયોગના સદ્‌ભાવથી ધ્યાન હોય છે કારણ કે જીવના ઉપયોગરૂપ ભાવમન એ અવસ્થામા પણ રહે છે અથવા જેમ પુત્ર ન હોવા છતા જો કોઈ પુત્રનુ કાર્ય કરે છે તો તે પુત્ર કહેવાય છે, તેમજ ભવોપગ્રાહી કર્મોની નિર્જરારૂપ ધ્યાનનુ કાર્ય કરવાથી ઉપચારે કરીને તે ધ્યાન કહેવાય છે અથવા જેમ વિવિધાર્થક શબ્દના ઘણાય અર્થો થાય છે તેમ ધાતુઓના પણ અનેક અર્થો થાય છે, અહી ધ્યૈ ધાતુથી બનેલા ધ્યાન શબ્દનો અર્થ સમુચ્છિન્નક્રિયાઽપ્રતિપાતિ-શુક્લ-ધ્યાન અર્થાત્ અયોગી ગુણસ્થાન વાળાઓની ક્રિયા પણ સમજી લેવી અથવા જિનાગમમા એને ધ્યાન કહ્યુ છે તેથી એમા ધ્યાનત્વ નિર્બાધ છે (૨૩)

ननु सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्याख्यस्य शुक्लध्यानस्य कथं ध्यानपदप्रतिपाद्यता?, ध्यानं हि नाम मनःस्थैर्यम्, केवलिनश्च तदानीं मनसोऽसत्त्वादिति चेन्न,

स्थैर्यावस्थापन्नत्वेन ध्यानत्वम्, तत्र यथा स्थिरीभावमापन्नस्य छद्मस्थीय-मनसस्तथैव केवलिकाययोगस्यापि सुस्थिरतया सुवचम्।

नन्वेवमपि समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपात्याख्यस्य शुक्लध्यानस्य कथं ध्यानत्वम्? तत्र काययोगस्याप्यभावात्, इति चेदुच्यते-यथा कुम्भकारचक्रं तद्भ्रामकदण्डादिसम्बन्धाभावेऽपि प्राक्तालीनवेगतो भ्रमति तथा मनोवाक्काययोगनिरोधेऽप्ययोगिनः प्राक्कृतध्यानधारावेगतो ध्यानं सम्पद्यते।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज! मनकी स्थिरताको ध्यान कहते हैं। केवली भगवान के उस समय मन नहीं रहता, अतः सूक्ष्मक्रियाऽनिवर्त्ति शुक्ल ध्यान को ध्यान कैसे कहा जा सकता है?।

उत्तर-स्थिरता को ही ध्यान कहते हैं। वह स्थिरता जैसे छद्मस्थके मनोयोगकी होती है वैसे ही केवलीके काययोगकी स्थिरता होती है इसलिए उसे ध्यान कहते हैं।

प्रश्न-तो समुच्छिन्नक्रियाऽप्रतिपाति-शुक्ल-ध्यानको ध्यान कैसे कह सकते है? क्योंकी वहा काययोगका भी अभाव है?।

उत्तर-जैसे कुभारका चाक, घुमानेवाले दण्ड आदिके सयोग न होनेपर भी पूर्वकालके वेगसे घूमता रहता है वैसे ही मन वचन काय का निरोध होजाने परभी पूर्व ध्यानकी धारा के वेगसे अयोगी केवलीके ध्यान होता है।

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ! મનની સ્થિરતાને ધ્યાન કહે છે કેવળી ભગવાનને એ સમયે મન રહેતુ નથી એટલે સૂક્ષ્મક્રિયાઽનિવર્તિ શુકલ ધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય?

ઉત્તર—સ્થિરતાને જ ધ્યાન કહે છે એ સ્થિરતા જેવી છદ્મસ્થના મનોયોગની હોય છે તેવીજ કેવળીના કાયયોગની સ્થિરતા હોય છે, તેથી તેને ધ્યાન કહે છે

પ્રશ્ન—તો સમુચ્છિન્નક્રિયા અપ્રતિપાતિ—શુકલ—ધ્યાનને ધ્યાન કેવી રીતે કહી શકાય? કારણ કે ત્યા કાયયોગનો પણ અભાવ છે

ઉત્તર—જેમ કુભારનો ચાકડો, તેને ઘુમાવનારા દડ આદિનો સયોગ ન થવા છતા પણ પૂર્વકાળના વેગથી ઘુમ્યા કરે છે, તેમજ મન વચન કાયનો નિરોધ થઈ ગયા પછી પણ પૂર્વ ધ્યાનની ધારાના વેગથી અયોગી કેવળીને ધ્યાન હોય છે

टीका-'जया कम्म' इत्यादि। यदा सर्वकर्मक्षय कृत्वा नीरजा सिद्धिं गच्छति तदा लोकमस्तकस्थः=सर्वलोकोपरिस्थितः, शाश्वतः=दग्धकर्मबीजत्वात्पुनः ससारससरणरहितो नित्यः, सिद्धः=कृतकृत्यो भवतीति।

ननु सिद्धाना सर्वकर्मक्षयात् त्रसनामकर्मणोऽप्यविद्यमानत्वेन कथ गतिसम्भवः ? इति चेदुच्यते—

यथा धनुर्मुक्तस्य बाणस्य तद्विरहेऽपि पूर्वप्रयोगसामर्थ्याद्गतिर्भवति तथा ससारावस्थायामपवर्गप्राप्तये कृतानेकविधप्रणिधानबलान्मुक्तात्मनोऽपीति।

ननु भवतु गतिः किन्तु सा तिर्यगधस्ताद्वा न भूत्वोर्ध्वमेव भवतीति कथ-

---

'जया कम्म' इत्यादि। जब सब कर्मोंका क्षय करके निष्कर्म होकर मोक्षगमन करते हैं तब लोकके अग्रभाग पर स्थित, सब कर्मोंसे रहित होनेके कारण कभी ससारमें न आनेसे शाश्वत, सिद्ध होजाते हैं।

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! सिद्धोंके समस्त कर्मोंका नाश होजाता है अत एव त्रस नाम कर्म भी नहीं रहता, फिर सिद्ध भगवान् लोकके अग्रभाग तक किस प्रकार गमन कर सकते हैं।

उत्तर–हे शिष्य जैसे धनुपसे छूटा हुआ बाण धनुपका सम्बन्ध न होने पर भी गति करता है, क्योंकि उसमें पहलेके व्यापारका सामर्थ्य रहता है। वैसे ही ससार अवस्थामें मोक्ष प्राप्त करनेके लिए किये हुए अनेक प्रकारके अनुष्ठानके वेगसे मुक्तात्मा भी गमन करते हैं।

प्रश्न–हे गुरुमहाराज ! गति तो होती है पर ऊर्ध्व गति ही क्यों

जया कम्म ઇત્યાદિ જ્યારે સર્વ કર્મોનો ક્ષય કરીને નિષ્કર્મ થઈને મોક્ષ ગમન કરે છે, ત્યારે લોકના અગ્રભાગ પર સ્થિત, સર્વ કર્મોથી રહિત હોવાને કારણે કદાપિ સસારમા ન આવવાથી શાશ્વત સિદ્ધ થઈ જાય છે

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! સિદ્ધોના બધા કર્મોનો નાશ થઈ જાય છે, એટલે ત્રસનામ-કર્મ પણ રહેતુ નથી, તો પછી સિદ્ધ ભગવાન્ લોકના અગ્રભાગ સુધી કેવે પ્રકારે ગમન કરી શકે છે ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જેવી રીતે ધનુષ્યથી છૂટેલુ બાણ ધનુષ્યનો સબધ ન હોવા છતા ગતિ કરે છે, કારણ કે તેમા પહેલાના વ્યાપારનુ સામર્થ્ય રહેલુ છે, તેવી રીતે સસાર અવસ્થામા મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવાને માટે કરેલા અનેક પ્રકારના અનુષ્ઠાનોના વેગથી મુક્તાત્મા પણ ગમન કરે છે

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! ગતિ તો હોય છે પણ ઊર્ધ્વ ગતિ જ કેમ

छाया—यदा योगान्निरुध्य, शैलेशीं प्रतिपद्यते ।
तदा कर्म क्षपयित्वा, सिद्धिं गच्छति नीरजाः ॥२४॥

सान्वयार्थः-जया=जब जोगे=योगोंका निरुंभित्ता=निरोध करके सेलेसिं=शैलेशीकरणको पडिवज्जइ=प्राप्त करते हैं, तया=तब कम्म=कर्ममात्रको खवित्ता=खपा करके नीरओ=कर्मरजरहित-सब कर्मोंसे मुक्त-होकर सिद्धिं=मोक्षको गच्छइ=जाते हैं ॥२४॥

टीका-'जया जोगे०' इत्यादि। यदा योगनिरोध कृत्वा शैलेशीं प्राप्नोति तदा कर्म=वेदनीयाऽऽयुर्नामगोत्राख्यमघातिकर्मचतुष्टयलक्षण क्षपयित्वा=क्षय नीत्वा सर्वथा विनाश्येत्यर्थः 'ण'-मिति वाक्यालङ्कारे, नीरजाः=निर्गत रज =सकलकर्म मल यस्मादिति, रजस =उक्तलक्षणान्निष्क्रान्तो वा नीरजाः=सर्वकर्मोपाधिरहितः साधितात्मा प्रभुः सिद्धिं=सिध्यन्ति=निष्ठितार्था भवन्ति यस्या सा सिद्धि=मुक्ति-लक्षणा तां गच्छति=प्राप्नोति, गत्यर्थधातूना प्राप्त्यर्थत्वात् ॥२४॥

मूलम्-जया[१] कम्मं[२] खवित्ताण[३], सिद्धिं[५] गच्छइ[६] नीरओ[४]।
तया[७] लोगमत्थयत्थो[८], सिद्धो[१०] हवइ[११] सासओ[९] ॥२५॥

छाया—यदा कर्म क्षपयित्वा, सिद्धिं गच्छति नीरजाः ।
तदा लोकमस्तकस्थः, सिद्धो भवति शाश्वत. ॥२५॥

सान्वयार्थ -जया=जब कम्म=कर्ममात्रको खवित्ता=खपा करके नीरओ=कर्मरजरहित होकर सिद्धिं=मोक्षको गच्छइ=जाते है, तया=तब लोगमत्थयत्थो=लोकके अग्रभाग पर स्थित सासओ=शाश्वत-नित्य सिद्धो=सिद्ध हवइ=होजाते हैं ॥२५॥

'जया जोगे' इत्यादि। जब योगोंका निरोध करके शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होते है तब वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र, इन चार अघाति कर्मोंका क्षय करके सर्व कर्मोसे मुक्त होकर भगवान् मोक्षको प्राप्त होते है ॥ २४ ॥

जया जोगे ઇત્યાદિ જ્યારે યોગોનો નિરોધ કરીને શૈલેશી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે, ત્યારે વેદનીય, આયુ, નામ અને ગોત્ર એ ચાર અઘાતી કર્મોના ક્ષય કરીને સર્વ કર્મોથી મુક્ત થઇને ભગવાન્ મોક્ષને પ્રાપ્ત થાય છે (૨૪)

जलोपरिप्रतिष्ठाना भवति तथाऽष्टविधकर्मलेपसभारभराक्रान्त आत्मा जगज्जलधौ निमज्जति, तद्विरहितश्चोर्ध्वगतिधर्मत्वादूर्ध्वमेव गच्छति ।
तथा चोक्तं भगवता—

"[1]जह मिउलेवालित्त, गरुय तुंबं अहो वयइ एवं ।
आसवकयकम्मगुरू, जीवा वच्चंति अहरगइं ॥१॥
तं चेव तव्विमुक्कं, जलोवरिं ठाइ जायलहुभावं ।
जह तह कम्मविमुक्का, लोयग्गपइट्ठिया होंति ॥२॥" इति ।

१ छाया—"यथा मृल्लेपाऽऽलिप्तं, गुरुकं तुम्बमधो व्रजत्येवम् ।
आश्रवकृतकर्मगुरवो, जीवा व्रजन्ति अधरगतिम् ॥१॥
तदेव (तुम्ब) तद्विमुक्तं (मृल्लेपविमुक्तं), जलोपरि तिष्ठति जातलघुभावम् ।
यथा तथा कर्मविमुक्ता (सिद्धा॰) लोकाग्रप्रतिष्ठिता भवन्ति ॥२॥"

आजाती है। इसीप्रकार आठ कर्मरूपी लेपके भारसे भारी आत्मा ससाररूपी समुद्रमें डूबी रहती है। जब कर्मरूपी लेपसे रहित होजाती है तब ऊर्ध्वगमनका स्वभाव होनेसे ऊर्ध्वगमन करती है। भगवानने कहाभी है—

"जैसे मिट्टीके लेपसे लिप्त तुम्बी भारी होनेसे नीचेकी ओर जाती है वैसेही आस्रवसे उत्पन्न कर्मोंसे आत्मा अधोगतिको प्राप्त होती है ॥१॥ जैसे तुम्बी लेपसे मुक्त होनेपर लघु होकर जलके ऊपर आजाती है उसी प्रकार कर्मसे मुक्त होकर आत्मा लोकके अग्रभाग पर विराजमान हो जाती है ॥२॥"

એ તુંબડી નીચેથી ઉઠીને જળની ઉપર આવી જાય છે એજ પ્રકારે આઠ કર્મ રૂપી લેપના ભારથી ભારે એવો આત્મા સંસારરૂપી સમુદ્રમાં ડુબી રહે છે જ્યારે કર્મરૂપી લેપથી રહિત થઈ જાય છે ત્યારે ઊર્ધ્વગમનનો સ્વભાવ હોવાથી ઊર્ધ્વ ગમન કરે છે ભગવાને કહ્યુ પણ છે કે—

' જેમ માટીના લેપથી લિપ્ત તુંબડી ભારે હોવાથી નીચેની બાજુએ જાય છે, તેમજ આસ્રવથી ઉત્પન્ન થએલા કર્મોથી આત્મા અધોગતિને પ્રાપ્ત થાય છે (૧) જેમ તુંબડી લેપથી મુક્ત થતા લઘુ થઈને જલની ઉપર આવી જાય છે, તેમ કર્મથી મુક્ત થઈને આત્મા લોકના અગ્રભાગ પર વિરાજમાન થઈ જાય છે (૨)"

मवसीयते ? इति चेच्छ्रूयताम्-तेषां गुरुत्वगुणाभावान्नाधस्तात्, कायादियोगपर प्रेरणयोरभावाच्च न तिर्यग्गतिर्भवति,

यथा-नीरन्ध्रामतिशुष्कामनुपहतां चाऽलाबूं कुशादितृणैः परितः संवेष्ट्य तदुपरि स्निग्धमृत्तिकया सान्द्रं विलिप्याऽऽतपे संशोषयेत्, इत्थमष्टवारानुक्तक्रियया यथाक्रमं तृणवेष्टन मृल्लेपन-संशोषणादीनि विधायाऽगाधसलिले प्रक्षिप्ता साऽलाबू रष्टकृत्वोदत्तमृल्लेपजनितगौरवेणोर्ध्वसलिलतलमतिक्रम्य तदधस्ताद् भूतलसक्ता भवति, तदनु मन्दमन्दमनुक्रमवस्तेष्वष्टवारविनिहितमृल्लेपेषु सार्द्रतामुपगम्य विशीर्णेषु सत्सु मृत्तिकालेपजन्यभाररहित्येन लघुतामुपगता साऽलाबूरधोभूतलमतिक्रम्य

होती है ? नीचेकी ओर अथवा तिरछी गति क्यों नहीं होती ?

उत्तर-हे शिष्य ! नीचेकी ओर उसीकी गति होती है जिसमें गुरुत्व गुण (भारीपन) पाया जाता है। सिद्धोंमें गुरुत्व गुण नहीं है अत एव उनकी गति नीचेकी ओर नहीं होती। काय आदि योग और दूसरेकी प्रेरणा न होनेसे तिरछी गति भी नहीं होती।

जैसे-छिद्ररहित बिलकुल सूखी हुई, बिना टूटी फूटी तुम्बीको चारों ओर तृणपुञ्जसे बांध करके धूपमें सुखा ले, आठ बार ऐसा करके अगाध जलमें तुम्बीको डाल दे तो आठवारके लेपके भारीपनसे जलके तलमें पहुँचकर वह पृथ्वीसे लग जाती है। उसके पश्चात् गीलेपनसे जब धीरे-धीरे वह मिट्टीका लेप छूटने लगता तो क्रमशः मिट्टीके भारसे रहित होकर लघुता (हलकापन) पाकर वह तुम्बी नीचेसे उठकर जलके ऊपर

થાય છે ? નીચેની બાજુએ અથવા તિર્છી ગતિ કેમ નથી થતી ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! નીચેની બાજુએ તેની ગતિ થાય છે કે જેમા ગુરૂત્વ ગુણ (ભારેપણુ) હોય છે સિદ્ધોમા ગુરૂત્વ ગુણ નથી, તેથી તેમની ગતિ નીચેની બાજુએ નથી થતી કાય આદિ યોગ અને બીજાની પ્રેરણા ન હોવાથી તિર્છી ગતિ પણ થતી નથી

જેમ છિદ્રરહિત, બિલકુલ સુકાયલી, તૂટ્યા ફૂટ્યા વિનાની તુબડીને ચારે બાજુએ ઘાસ-તરણાથી બાધીને તેની ઉપર ચીકણી માટીનો સારી પેઠે લેપ કરીને તડકામા સૂકવી નાખે, આઠ વાર એમ કરીને અગાધ જળમા એ તુબડીને નાખી દે તો આઠ વારના લેપના ભારે પણાથી જળને તળીયે પહોચીને તે પૃથ્વીને અડીને રહે છે પછી જ્યારે લીલાપણાથી ધીરે ધીરે એ માટીનો લેપ છૂટવા લાગે છે ત્યારે ક્રમશ માટીના ભારથી રહિત થઈને લઘુતા (હલકાપણુ) પામીને

उक्तस्वरूपाः सिद्धाश्चरमशरीरतस्तृतीयभागन्यूना उत्कृष्टतो द्वात्रिंशदङ्गुलसमधिकत्रयस्त्रिंशदुत्तरशतत्रयधनुःपरिमिताः, जघन्यतोऽष्टाङ्गुलाधिकरत्निप्रमाणाः।

यच्च मरुदेवीदेहप्रमाणस्य सपादपञ्चशतधनुष्ट्वात्तृतीयभागे पातिते तस्याः सार्द्धत्रिशतधनुःपरिमिताऽवगाहना भवति तेनात्र न विरोधः, गजाधिरूढत्वेन वृद्धत्वेन वा शरीरसङ्कोचसम्भवात्।

यत्तु जघन्यतः सप्तहस्तोच्छ्रितानां सिद्धिः शास्त्रेषु श्रूयते तत्तीर्थकरापेक्षया,

सिद्धोंके चरम शरीरसे त्रिभाग कम, उत्कृष्ट तीनसौ तेंतीस (३३३) धनुप और वत्तीस (३२) अगुलकी, तथा जघन्य एकरत्नि और आठ अगुलकी अवगाहना होती है।

मरुदेवीके शरीरकी अवगाहना सवा पाँचसौ (५२५) धनुपकी थी, उसमेंसे तीसरा हिस्सा कम करनेसे साढे तीनसौ (३५०) धनुपकी अवगाहना होती है, किन्तु यहाँ पर उत्कृष्ट अवगाहना तीनसौ तेतीस धनुप और वत्तीस अगुलकी वताई गई है, इससे यहा विरोध नहीं समझना चाहिए, क्योंकि मरुदेवी हाथी पर आरूढ थी, इसलिए या वृद्धावस्थाके कारण शरीरका सिकुडना (सकुचित होना) सभव है।

यह जो आगममें सुना जाता है कि जघन्य सात हाथ ऊंचे शरीरवालोंको मोक्ष प्राप्त होता है सो यह नियम तीर्थकरोंकी अपेक्षासे समझना चाहिए। तीर्थकरोंके सिवाय अन्य भव्य जीव दो हाथ ऊँचे

સિદ્ધોના ચરમ શરીરથી ત્રિભાગ ઓછી, ઉત્કૃષ્ટ ત્રણસે તેત્રીસ (૩૩૩) ધનુષ અને બત્રીસ (૩૨) આગળની તથા જઘન્ય એક રત્નિ અને આઠ આગળની અવગાહના હોય છે

મરૂદેવીના શરીરની અવગાહના સવા પાચસો (૫૨૫) ધનુષ્યની હતી, તેમાથી ત્રીજો ભાગ ઓછો કરવાથી સાડા ત્રણસો (૩૫૦) ધનુષ્યની અવગાહના હોય છે કિન્તુ અહીં ઉત્કૃષ્ટ અવગાહના ત્રણસોને તેત્રીસ ધનુષ અને બત્રીસ આગળની બતાવી છે, તેથી વિરોધ સમજવો નહિ, કારણ કે મરૂદેવી હાથી પર આરૂઢ હતી તેને લીધે યા વૃદ્ધાવસ્થાને કારણે શરીરનુ સકુચિત થવુ એ સભવિત છે

આગમમા જે સભળાય છે કે-જઘન્ય સાત હાથ ઉચા શરીરવાળાઓને મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે તે નિયમ તીર્થકરોની અપેક્ષાએ સમજવો જોઇએ તીર્થંકરો સિવાયના બીજા ભવ્ય જીવો બે હાથ ઉચા શરીરવાળા હોવા છતા પણ મુક્ત

अथवा-यथा वातादिरूपबाधकविरहादूर्ध्वगतिस्वभावायाः प्रदीपकलिकाया', बीजबन्धविच्छेदाद्बीजकोशगतैरण्डबीजस्य चोर्ध्वगतिः सञ्जायते तथाऽऽत्मनोऽपि तादृशगतिस्वभावस्य विरोधिकर्मबन्धविच्छेदादूर्ध्वगतिरेवेति ।

यथैरण्डबीजमूर्ध्वं गत्वा पुनःपतति तथा तु न मुक्तात्मनः पातसम्भवः, अतः पतनहेतुभूतगुरुत्वगुणाभावादिति प्रागुक्तमेव ।

ननु शरीराभावात्तेषामात्मप्रदेशाः पारदद्रव्यवत् कथं न विकीर्णा भवन्तीति चेन्न, तद्विसर्पकनामकर्माभावात्प्रदेशवत्त्वगुणसद्भावाच्च ।

अथवा-जैसे हवा आदि किसी बाधकके न होनेसे दीपककी लौ ऊपरको जाती है, बीजकोषके बन्धके टूटनेपर एरण्डका बीज ऊपरको जाता है, उसी प्रकार आत्माके ऊर्ध्वगमनके विरोधी कर्मबन्धका सर्वथा अभाव होजानेसे आत्मा ऊर्ध्वगति करती है।

जैसे एरण्डका बीज पहले ऊपरको जाकर फिर नीचे गिर पड़ता है वैसे आत्मा नहीं गिर सकती, क्योंकि नीचे गिरानेका कारण गुरुत्वगुण आत्मामें नही है, यह पहले ही कह चुके हैं।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज। शरीरका अभाव होनेसे सिद्धोंके आत्माके प्रदेश पारेके समान फैल क्यों नहीं जाते?

उत्तर-हे शिष्य। आत्मप्रदेशोंको फैलानेवाले नामकर्मका अभाव होनेसे तथा प्रदेशवत्त्व गुणके सद्भावसे सिद्धोंके आत्मप्रदेश नहीं फैलते हैं।

અથવા, જેમ હવા આદિ કોઈ બાધક ન હોવાથી દીપકની જ્યોત ઉપર જ જાય છે, બીજકોષનો બંધ તૂટવાથી એરંડાનું બીજ ઉપર જ જાય છે, તેમ આત્માના ઊર્ધ્વગમનના વિરોધી કર્મબંધનો સર્વથા અભાવ થઈ જવાથી આત્મા ઊર્ધ્વગતિ જ કરે છે.

જેમ એરંડાનું બીજ પહેલાં ઉપર જઈને પછી નીચે પડી જાય છે, તેમ આત્મા પડી શકતો નથી કારણ કે નીચે પાડવાનું કારણ ગુરુત્વ ગુણ આત્મામાં નથી એ પહેલાં કહેવામાં આવેલું જ છે.

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! શરીરનો અભાવ હોવાથી સિદ્ધોના આત્માના પ્રદેશો પારાની પેઠે ફેલાઈ કેમ જતા નથી ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! આત્મપ્રદેશોને ફેલાવનારા નામકર્મનો અભાવ હોવાથી તથા પ્રદેશવત્ત્વ ગુણનો સદ્ભાવ હોવાથી સિદ્ધોના આત્મપ્રદેશ ફેલાતા નથી.

छाया—सुखास्वादकस्य श्रमणस्य, शाताकुलकस्य निकामशायिनः ।
उत्क्षालनाप्रधौतस्य, दुर्लभा सुगतिस्तादृशकस्य ॥२६॥

सुगति की दुर्लभता बतलाते हैं—

सान्वयार्थः-सुहसायगस्स=सुखकी आसक्ति रखनेवाले सायाउलगस्स=सुखके लिए व्याकुल रहनेवाले निगामसाइस्स=मर्यादासे अधिक सोनेवाले उच्छोलणापहोयस्स=शरीरकी विभूषा करनेवाले तारिसगस्स=ऐसे समणस्स=साधुको सुगई=सुगति दुल्लहा=दुर्लभ है ॥२६॥

टीका-सुखास्वादकस्य=सुखस्य=प्राप्तमनोरमशब्दाद्युपभोगस्य आस्वादकः=आसक्त्या ग्राहकस्तस्य, शाताकुलकस्य=शातार्थम्=सुखार्थम् आकुलकः=व्यग्रः उद्विग्नो वा तस्य, निकामशायिनः=निकामम्=अतिशयित मध्यवर्तियामद्वयादधिक रात्रौ, निष्कारण दिवसे वा शेते=स्वपिति तच्छीलो निकामशायी=सूत्रार्थमननादिसमयमुल्लङ्घ्य शयानस्तस्य, उत्क्षालनाप्रधौतस्य=उत्क्षालनया=प्रक्षालनया प्र=प्रकर्षार्थ=विभूषार्थं धौतानि=उज्ज्वलीकृतानि नयन-वदन-नख-कर-चरण-वस्त्रादीनि येन स तस्य शरीरादिविभूषाकारिण इत्यर्थः । तादृशकस्य=तीर्थकराऽऽज्ञाऽनाराधकस्य, श्रमणस्य=श्रमणब्रुवस्य वेशमात्रेण साधोः सुगतिः=सिद्धिलक्षणा गतिः दुर्लभा=दुष्प्रापा 'भवती'-ति शेषः ।

प्राप्त हुए मनोज्ञ शब्दादि उपभोगोंको आसक्तिपूर्वक ग्रहण करनेवाले, सुखप्राप्तिके लिए व्याकुल रहनेवाले, दो मध्य प्रहरोंसे अधिक रात्रिमें, या कारणविशेष विना दिनमें अर्थात् सूत्रार्थके मनन करनेके समयका उल्लघन होने तक सोनेवाले, तथा विभूषाके लिए आँख, मुख, नख, हाथ पैर, वस्त्र आदिको धोनेवाले अर्थात् शरीरको विभूषित करनेवाले, अतः तीर्थंकरकी आज्ञाके विराधक, ऐसे श्रमणको सिद्धिगतिकी प्राप्ति दुर्लभ है ।

પ્રાપ્ત થએલા મનોજ્ઞ શબ્દાદિ ઉપભોગોને આસક્તિપૂર્વક ગ્રહણ કરનારા, સુખપ્રાપ્તિને માટે વ્યાકુળ રહેનાર, બે મધ્ય પહેરોથી વધુ રાત્રિમા યા કારણ-વિશેષ વિના દિવસમા અર્થાત્ સૂત્રાર્થનું મનન કરવાના સમયનું ઉલ્લઘન થાય ત્યા સુધી સૂનારા તથા વિભૂષા (શોભા) ને માટે આખ, મુખ, નખ હાથ પગ વસ્ત્ર આદિને ધોનાર અર્થાત્ શરીરને વિભૂષિત કરનારા એટલે કે તીર્થંકરની આજ્ઞાના વિરાધક, એવા શ્રમણને સિદ્ધિગતિની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે

अन्ये तु द्विहस्तोच्छ्रिता अपि सिध्यन्ति, तदपेक्षया हि मोक्षस्वरूपा जघन्याऽवगाहनाऽऽसेया।

एवमुक्तस्वरूपो जन्म जरा-मरणा-ऽऽधि-व्याधि-बाधा-कल्लोलीकल्ङ्कलीभावगर्भनिवासत्राससन्ततिविनिष्क्रान्तः शाश्वतः सिद्धो भवतीत्यर्थः। 'शाश्वत' पदेन चात्र "सम्प्राप्तसिद्धिपदो ह्यात्मा न पुनः संसारित्वमवाप्नोति हेतोरभावात्, न च कारणमन्तरेण कार्योत्पत्तिर्जायते" इति बोधितम् ॥२५॥

उक्तं सुगतिरूपं धर्मफलं, सम्प्रति तत् यस्य दुर्लभं भवती?-ति दर्शयति-'सुहसायगस्स०' इत्यादि।

मूलम्-सुहसायगस्स[1] समणस्स,[6] सायाउलगस्स[2] निगामसाइस्स[3]।
उच्छोलणापहोयस्स,[4] दुल्लहा[8] सुगई[7] तारिसगस्स[5] ॥२६॥

शरीरवाले होनेपर भी मुक्त होजाते हैं। उनकी अपेक्षासे ही सिद्धोंकी जघन्य अवगाहना एक रत्नि और आठ अंगुलकी कही गई है।

ऐसे सिद्ध जन्म-जरा-मरण, आधि, व्याधि, बाधा, कलङ्कलीभाव (संसारपरिभ्रमण), गर्भवासके दुःखोंसे रहित शाश्वत सिद्ध होजाते हैं। यहाँ 'शाश्वत'पदसे यह बोधित किया है कि सिद्धि पदको प्राप्त आत्मा फिर संसारी अवस्थाको प्राप्त नहीं होती है, क्योंकि संसारमें आनेके कारणभूत कर्मोंका अभाव है। कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती ॥२५॥

यहाँ तक धर्मका सुगतिरूप फल कहा, यह फल किसे दुर्लभ होता है सो दिखाते हैं-'सुहसायगस्स' इत्यादि।

થઇ જાય છે એમની અપેક્ષાએ જ સિદ્ધોની જઘન્ય અવગાહના એક રત્નિ અને આઠ આંગળની કહેવામા આવી છે

એવા સિદ્ધો જન્મ-જરા-મરણ, આધિ-વ્યાધિ, બાધા, કલકલીભાવ (સંસાર-પરિભ્રમણ), ગર્ભવાસના દુઃખોથી રહિત શાશ્વત સિદ્ધ થઇ જાય છે અહીં 'શાશ્વત' શબ્દથી એમ બોધિત કરવામા આવ્યુ છે કે સિદ્ધિપદને પ્રાપ્ત થએલો આત્મા ફરી સંસારી અવસ્થાને પ્રાપ્ત થતો નથી, કારણ કે સંસારમા આવવાના કારણભૂત કર્મોનો અભાવ છે કારણ વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી (૨૫)

અહીં સુધી ધર્મનું સુગતિરૂપ ફળ કહ્યુ, એ ફળ કોને દુર્લભ થાય છે તે દર્શાવે છે-સુહસાયગસ્સ ઇત્યાદિ

शीघ्रम् अमरभवनम्=न म्रियन्त इत्यमरा=सिद्धा आयुषोऽभावात्, तेषा भवनम्= आलयः सत्ता वा तत् सिद्धक्षेत्र सिद्धस्वरूप वेत्यर्थः। यद्वा न म्रियते यत्र तद्-मरम्=अविनाशि तच्च तद् भवन स्थान तत् सिद्धपदमित्यर्थः। अथवा न म्रियन्ते अकालमृत्युना इत्यमराः=देवास्तेषा भवन तत् स्वर्गलोकमित्यर्थः। बहुवचन चोभ-यार्थद्योतनार्थम्, गच्छन्ति=यान्ति ॥२८॥

उपसहारमाह-'इच्चेय' इत्यादि।

मूलम्-इच्चेय छज्जीवणिय, सम्मदिट्ठी सया जए।
दुल्लह लहित्तु सामन्नं, कम्मुणा न विराहिज्जासि-त्तिबेमि ॥२९॥

छाया—इत्येत षड्जीवनिकाय, सम्यग्दृष्टिः सदा यतः।
दुर्लभ लब्ध्वा श्रामण्य, कर्मणा न विराधयेत् ॥२९॥ इति ब्रवीमि।

उपसहार करते हैं—

सान्वयार्थ-सम्मदिट्ठी=सम्यक्त्वी मनुष्य सया=सदैव जए=यतनावान् होकर दुल्लह=दुर्लभ ऐसे सामन्न=साधुपनेको लहित्तु=प्राप्त करके इच्चेय=इस पूर्वोक्त स्वरूपवाले छज्जीवणिय=पड्जीवनिकाय-छह प्रकारके जीवसमूह-की कम्मुणा=मन वचन कायके व्यापारसे न विराहिज्जासि=विराधना न करे, त्तिबेमि=श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि मैंने भगवान् महावीर स्वामीसे जैसा सुना है वैसा ही तुमसे कहता हूँ ॥२९॥

॥ इति चतुर्थाध्ययनस्य शब्दार्थ ॥४॥

समान फिर सयमको ग्रहण करके शीघ्रही अमरभवन-(सिद्धिस्थान अथवा स्वर्गलोक) को प्राप्त होते हैं।

'अमरभवन' के दो अर्थ होते है-(१) जहा मृत्यु नहीं होती ऐसा स्थान मोक्ष है, क्योंकि वहा आयुकर्मका सर्वथा अभाव है, और (२) अमरभवन स्वर्गलोकको भी कहते हैं, क्योंकि स्वर्गलोकमें अकाल मृत्यु नहीं होती ॥२८॥

उपसहार करते हैं-'इच्चेय' इत्यादि।

આર્દ્રકુમાર, પુડરીક આદિની પેઠે ફરી સયમને ગ્રહણ કરીને શીઘ્ર અમરભવન (સિદ્ધસ્થાન અથવા સ્વર્ગલોક) ને પ્રાપ્ત થાય છે

'અમરભવન'ના બે અર્થ થાય છે (૧) જ્યા મૃત્યુ હોતુ નથી એવુ સ્થાન મોક્ષ છે, કારણ કે ત્યા આયુકર્મનો સર્વથા અભાવ હોય છે અને (૨) અમર ભવન સ્વર્ગલોકને પણ કહે છે, કારણ કે સ્વર્ગલોકમા અકાલમૃત્યુ થતુ નથી (૨૮)

ઉપસહાર કરે છે-ઇચ્ચેય૦ ઇત્યાદિ

चारित्रस्य महत्त्वमाह–'पच्छावि ते' इत्यादि ।

मूलम्–पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं ।
जेसिं पिओ तवो संजमो य खंती य बंभचेरं च ॥२८॥

छाया—पश्चादपि ते प्रयाताः, क्षिप्रं गच्छन्त्यमरभवनानि ।
येषां प्रियं तपः संयमश्च, क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यं च ॥२८॥

चारित्र का महत्त्व बतलाते हैं—

सान्वयार्थः–जेसिं=जिनको तवो=तपस्या संजमो=संयम य=और खंती=क्षमा य=तथा बंभचेरं=ब्रह्मचर्य पिओ=प्रिय है, ते=वे पच्छावि=पश्चात्भी अर्थात् एकवार चारित्र खण्डित हो जानेपर वापस, अथवा वृद्धावस्थामें भी पयाया=आये हुए अर्थात् चढते परिणामोंसे संयम स्वीकार कियेहुए खिप्पं=शीघ्र अमरभवणाइं=स्वर्ग अथवा अपवर्ग–मोक्ष कोभी गच्छन्ति=प्राप्त हो जाते हैं ॥२८॥

टीका–येषां (श्रमणानां) तपः=अनशनादि द्वादशविधम्, संयमः=सावद्यव्यापारविरतिलक्षणः सप्तदशविधः, क्षान्तिः=अमर्षोत्पादकाऽऽक्षेपवचनादिसहनस्वरूपा, ब्रह्मचर्यं=विषयसेवनपरिहारलक्षणम्, चकाराः समुच्चयार्थाः, प्रियम्=अभीष्टं रुचिरमित्यर्थः, ते (श्रमणाः) पश्चादपि=चारित्रखण्डनानन्तरमपि वृद्धत्वेऽपि वा प्रयाताः=प्रवृद्धभावेन गृहीतसंयमाः सन्तः आर्द्रकुमार-पुण्डरीकादिवत्, क्षिप्रं=

चारित्रका महत्त्व दिखाते हैं–'पच्छावि ते–' इत्यादि ।

जिन श्रमणोंको अनशन आदि बारह प्रकारका तप, सावद्य व्यापारका त्यागरूप सत्रह प्रकारका संयम, क्रोधजनक आक्षेपपूर्ण वचनोंका सहन करनारूप क्षान्ति, सर्वथा मैथुनका परित्याग, ये प्रिय होते हैं, वे कदाचित् मोहकर्मके उदयसे खण्डित-चारित्र होकर भी, अथवा वृद्ध होनेपर भी चढते परिणामोसे आर्द्रकुमार, पुण्डरीक आदिके

ચારિત્રનું મહત્ત્વ બતાવે છે– पच्छावि ते० ઇત્યાદિ

જે શ્રમણોને અનશન આદિ બાર પ્રકારનો તપ, સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગરૂપ સત્તર પ્રકારનો સંયમ, ક્રોધજનક આક્ષેપપૂર્ણ વચનોને સહન કરવારૂપ ક્ષાન્તિ, સર્વથા મૈથુનનો પરિત્યાગ, એ પ્રિય હોય છે, તેઓ કદાચિત મોહકર્મના ઉદયથી ખંડિતચારિત્ર થઈને પણ અથવા વૃદ્ધ હોવા છતાં પણ ચડતા પરિણામોથી

शीघ्रम् अमरभवनम्=न म्रियन्त इत्यमरा'=सिद्धा आयुषोऽभावात्, तेषा भवनम्=आलयः सत्ता वा तत् सिद्धक्षेत्र सिद्धस्वरूप वेत्यर्थः। यद्वा न म्रियते यत्र तद्-मरम्=अविनाशि तच्च तद् भवन स्थान तत् सिद्धपदमित्यर्थः। अथवा न म्रियन्ते अकालमृत्युना इत्यमराः=देवास्तेषा भवन तत् स्वर्गलोकमित्यर्थः। बहुवचन चोभयार्थद्योतनार्थम्, गच्छन्ति=यान्ति ॥२८॥

उपसहारमाह-' इच्चेय ' इत्यादि।

७ ८ १ २ ३

मूलम्-इच्चेयं छज्जीवणिय, सम्मदिट्ठी सया जए।

४ ६ ५ ९ १० ११ १२

दुल्लह लहित्तु सामन्नं, कम्मुणा न विराहिज्जासि-त्तिवेमि ॥२९॥

छाया—इत्येत षड्जीवनिकाय, सम्यग्दृष्टिः सदा यतः।

दुर्लभ लब्ध्वा श्रामण्य, कर्मणा न विराधयेत् ॥२९॥ इति ब्रवीमि।

उपसहार करते हैं—

सान्वयार्थः-सम्मदिट्ठी=सम्यक्त्वी मनुष्य सया=सदैव जए=यतनावान् होकर दुल्लह=दुर्लभ ऐसे सामन्न=साधुपनेको लहित्तु=प्राप्त करके इच्चेय=इस पूर्वोक्त स्वरूपवाले छज्जीवणिय=षड्जीवनिकाय-छह प्रकारके जीवसमूह-की कम्मुणा=मन वचन कायके व्यापारसे न विराहिज्जासि=विराधना न करे, त्तिबेमि=श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि मैने भगवान् महावीर स्वामीसे जैसा सुना है वैसा ही तुमसे कहता हूँ ॥२९॥

॥ इति चतुर्थाध्ययनस्य शब्दार्थ ॥४॥

समान फिर संयमको ग्रहण करके शीघ्रही अमरभवन-(सिद्धिस्थान अथवा स्वर्गलोक) को प्राप्त होते हैं।

'अमरभवन' के दो अर्थ होते है-(१) जहा मृत्यु नहीं होती ऐसा स्थान मोक्ष है, क्योंकि वहा आयुकर्मका सर्वथा अभाव है, और (२) अमरभवन स्वर्गलोकको भी कहते हैं, क्योंकि स्वर्गलोकमें अकाल मृत्यु नही होती ॥२८॥

उपसहार करते हैं-'इच्चेय' इत्यादि।

આર્દ્રકુમાર, પુડરીક આદિની પેઠે ફરી સયમને ગ્રહણ કરીને શીઘ્ર અમરભવન (સિદ્ધસ્થાન અથવા સ્વર્ગલોક) ને પ્રાપ્ત થાય છે

'અમરભવન'ના બે અર્થ થાય છે (૧) જ્યા મૃત્યુ હોતુ નથી એવુ સ્થાન મોક્ષ છે, કારણ કે ત્યા આયુકર્મનો સર્વથા અભાવ હોય છે અને (૨) અમર ભવન સ્વર્ગલોકને પણ કહે છે, કારણ કે સ્વર્ગલોકમા અકાલમૃત્યુ થતુ નથી (૨૮)

ઉપસહાર કરે છે-ઇચ્ચેય૰ ઇત્યાદિ

टीका-सम्यग्दृष्टिः=सम्यक्-यथाऽवस्थितत्त्वेनाऽविपर्यस्ता दृष्टिः=तत्त्वरुचिरभिप्रायो वा यस्य स तथोक्तः, सम्यग्दर्शनवानित्यर्थः, सदा=नित्य यतः=यतनावान् दुर्लभं=दुष्प्राप, श्रामण्य=श्रमणमार्ग लब्ध्वा=सम्प्राप्य इत्येतम्=उक्तलक्षणम्, षड्जीवनिकाय कर्मणा=मनोवाक्कायव्यापारेण न विराधयेत्=देशतः सर्वतो वा न प्रमर्दयेत् न पीडयेदित्यर्थः। 'इति ब्रवीमी'-ति प्राग्वत् ॥२९॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-कलित-ललित-
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्ध-गद्य-पद्य नैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-
शाहूछत्रपति-कोल्हापुरराज प्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य-पद-भूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीदशवैकालिकसूत्र-
स्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्याया व्याख्याया चतुर्थं
'षड्जीवनिकाया'-ऽऽख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ ४ ॥



तत्त्वोंके यथार्थ स्वरूपका श्रद्धान करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव दुर्लभ श्रमणताको प्राप्त करके सदैव पहले कहे हुए स्वरूपवाले षडजीवनिकायकी मन वचन कायसे एकदेश या सर्वदेशसे कभी भी विराधना न करे-पीडा न पहुँचावे ॥ श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं-हे जम्बू! अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीरसे जैसा मैने सुना है वैसा ही तुझे कहा है-इत्यादि पहले के समान समझ लेना ॥२९॥

इति "षड्जीवनिकाया"-नामक चौथा
अध्ययनका हिन्दीभाषानुवाद समाप्त ॥४॥



તત્ત્વોના યથાર્થ સ્વરૂપનું શ્રદ્ધાન કરવાવાળો સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ દુર્લભ શ્રમણતાને પ્રાપ્ત કરીને સદૈવ પહેલા કહેલા સ્વરૂપવાળા ષડ્જીવનિકાયની મન વચન કાયાથી એકદેશ યા સર્વદેશે કરીને કદાપિ વિરાધના ન કરે પીડા ન ઉપજાવે શ્રીસુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે-હે જમ્બૂ! અંતિમ તીર્થંકર ભગવાન્ મહાવીર પાસેથી જેવું મે સાંભળ્યું છે તેવું જ તને કહ્યું છે-ઇત્યાદિ પહેલાની પેઠે સમજી લેવું (૨૯)

ઇતિ "ષડ્જીવનિકાયા" નામક ચોથા અધ્યયનનું
ગુજરાતીભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૪)

अथ पञ्चमाध्ययनम् ।

गतं चतुर्थाध्ययनम्, तत्र च षड्जीवनिकायरक्षणलक्षणो भिक्षोराचारः प्रतिपादितः, स हि शरीरस्थित्यधीनपालनकः, शरीरं चाक्षम्रक्षणमन्तरेण शकटमिव इङ्गालं विना वाष्पयन्त्रमिव जठरानलतापव्याधिबाधोपशमनौषधीभूतमाहारमन्तरेण वर्त्तितुमक्षममतोऽस्मिन् पञ्चमाध्ययने 'संयमिना कदा, कस्मात्, केन विधिना, कीदृगाहारो ग्रहीतव्यः" इति सविस्तरं प्रतिपादयितुमुपक्रमते—

यद्वा—चतुर्थाध्ययने मूलगुणाः सन्दर्शिताः, इह तु मूलगुणपोषकोत्तरगुणा-

पांचवां अध्ययन।

चौथे अध्ययनमें षड्जीवनिकायकी रक्षा-रूप भिक्षुका आचार प्रतिपादित किया गया है। इस आचारका पालन शरीरकी स्थिति पर निर्भर है। जैसे विना ओंगन (वागण) के गाडी नहीं चल सकती, विना कोयलेके रेलगाडी नहीं चल सकती, उसी प्रकार जठराग्निके सताप रूप व्याधिकी बाधाको शान्त करनेके लिए औषधिके समान आहारको ग्रहण किये विना शरीरकी स्थिति नहीं रह सकती। इसलिए पाचवें अध्ययनमें विस्तारसे यह प्रतिपादन करते हैं कि 'सयमीको कब, किससे, किस विधिसे, और किस प्रकारका आहार ग्रहण करना चाहिये" ।

अथवा-चौथे अध्ययनमें मूल गुणोंका वर्णन किया गया है, इस अध्ययनमें मूलगुणोको पुष्ट करनेवाले उत्तर गुणोंमेंसे पिण्डैषणाका

पाचमु अध्ययन

ચોથા અધ્યયનમા ષડ્જીવનિકાયની રક્ષારૂપ ભિક્ષુનો આચાર પ્રતિપાદિત કરવામા આવ્યો છે આ આચારનું પાલન શરીરની સ્થિતિ પર નિર્ભર છે જેમ ઉંજણુ વિના ગાડુ ચાલી શકતુ નથી અને કોયલા વિના રેલગાડી ચાલી શકતી નથી તેમ જઠરાગ્નિના સતાપ રૂપ વ્યાધીની બાધાને શાન્ત કર્યા વિના શરીરની સ્થિતિ રહી શકતી નથી તે માટે પાચમા અધ્યયનમા વિસ્તારથી એ પ્રતિપાદન કરવામા આવ્યુ છે કે 'સયમીએ ક્યારે, કોની પાસેથી, કેવી વિધિથી અને કેવા પ્રકારનો આહાર ગ્રહણ કરવો જોઇએ ?

અથવા-ચોથા અધ્યયનમા મૂળ ગુણોનું વર્ણન કરવામા આવ્યુ છે, આ અધ્યયનમા મૂળ ગુણોને પુષ્ટ કરનારા ઉત્તર ગુણોમાથી પિંડૈષણાનું કથન કરવામા આવે છે

न्तर्गता पिण्डैषणाऽभिधीयते। पिण्डैषणा च पिण्डस्य-समयभाषया प्रसिद्धस्यान्नपानस्यैषणारूपा, तत्र पिण्डनं पिण्ड'=एकत्र सम्मिलितबहुपदार्थसमुदायः, स द्विविधः'-द्रव्यपिण्डो भावपिण्डश्च, तत्र क्षुधाविघातकत्वेनाशनादिरूपो द्रव्यपिण्डः, कर्मविघातकत्वेन ज्ञानादिलक्षणः प्रशस्तभावपिण्डः, अप्रशस्तभावपिण्डस्त्वसंयमादिरूपः प्रकृतानुपयोगित्वादुपेक्षितः। द्रव्यपिण्डो हि प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकस्तं विना तस्या सम्पाद्यत्वात्, तथाहि-ज्ञानाद्यात्मकप्रशस्तभावपिण्डस्याराधना शरीरस्थित्यधीना, शरीरपरिस्थितिश्चाहारं विना न यथावत्साधनायालम्, आहारादिकञ्च द्रव्यपिण्ड एवेति सिद्धं द्रव्यपिण्डस्य प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकत्वम्। तस्य च सावद्यनिरवद्य

कथन करते हैं। 'पिण्ड' शास्त्रीय भाषामें अन्न-पान नामसे प्रसिद्ध है, उसकी एषणा करना 'पिण्डैषणा' है। एक स्थानपर बहुत पदार्थोंका समुदाय होना पिण्ड कहलाता है। पिण्ड दो प्रकारका है-(१) द्रव्यपिण्ड और (२) भावपिण्ड अशन आदिको द्रव्यपिण्ड कहते हैं, क्योंकि उससे क्षुधाका नाश होता है। ज्ञानादि प्रशस्त-भावपिण्ड है, क्योंकि वह कर्मोंका नाश करनेवाला है, अप्रशस्त-भावपिण्ड असंयमादिरूप है, उसका यहाँ अधिकार नहीं है।

द्रव्यपिण्ड, प्रशस्त-भावपिण्डका पोषक है, क्योंकि उसके विना प्रशस्त-भावपिण्डकी प्राप्ति नहीं होसकती, अर्थात् ज्ञानादिरूप प्रशस्त-भावपिण्डकी आराधना शरीरकी स्थितिके अधीन है, और शरीरकी स्थिति आहारके विना नहीं होसकती। आहार आदि द्रव्यपिण्ड ही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि द्रव्यपिण्ड प्रशस्त भाव

'પિંડ' શબ્દ શાસ્ત્રીય-ભાષામાં અન્નપાનના નામે ઓળખાય છે, તેની એષણા કરવી એ પિંડૈષણા કહેવાય છે એક સ્થાન પર ઘણા પદાર્થોનો સમુદાય હોવો એ 'પિંડ' કહેવાય છે પિંડ બે પ્રકારનો હોય છે, (૧) દ્રવ્ય-પિંડ અને (૨) ભાવપિંડ અશન આદિને દ્રવ્યપિંડ કહે છે કારણ કે તેથી ક્ષુધાનો નાશ થાય છે જ્ઞાનાદિ એ પ્રશસ્ત-ભાવપિંડ છે, કારણ કે તે કર્મોનો નાશ કરવાવાળું છે અપ્રશસ્ત-ભાવપિંડ અસંયમાદિરૂપ છે, એનો અહીં અધિકાર નથી

દ્રવ્યપિંડ એ પ્રશસ્ત-ભાવપિંડનો પોષક છે કારણ કે તેના વિના પ્રશસ્ત-ભાવપિંડની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ-રૂપ પ્રશસ્ત-ભાવપિંડની આરાધના શરીરની સ્થિતિને અધીન છે, અને શરીરની સ્થિતિ આહાર વિના હોઈ શકતી નથી આહારાદિ દ્રવ્યપિંડજ છે તેથી એ સિદ્ધ થયું કે દ્રવ્યપિંડ

भेदाभ्यां द्वैविध्येऽपि संयमिभिर्निरवद्यपिण्ड एव ग्राह्य इति तदेषणाधिकारः–'संपत्ते' इत्यादि।

मूलम्–संपत्ते[2] भिक्खकालम्मि[1], असंभंतो[3] अमुच्छिओ[4]।
इमेण[5] कमजोगेण[6], भत्तपाण[7] गवेसए[8] ॥ १ ॥

छाया—सम्प्राप्ते भिक्षाकालेऽसम्भ्रान्तोऽमूर्च्छितः।
अनेन क्रमयोगेन, भक्तपानं गवेषयेत् ॥१॥

॥ अथ पञ्चमाध्ययनम् ॥

सान्वयार्थः–मुनिको आहारपानी लेनेकी विधि कहते हैं—भिक्खकालम्मि= गोचरीका समय संपत्ते=होनेपर असंभंतो=उद्वेगरहित (और) अमुच्छिओ= आसक्तिरहित होकर इमेण कमजोगेण=इस आगे बताई जानेवाली विधिसे भत्तपाण=भात-पानीकी गवेसए=गवेषणा करे ॥

टीका—भिक्षाकाले=गोचरीसमये, सम्प्राप्ते=स्वाध्यायाद्यनन्तरं द्रव्यक्षेत्र-कालभावानुकूलतया समायाते 'मुनि'-रिति शेषः, असम्भ्रान्त'=यत्किञ्चिन्नि-मित्तजनितचित्तव्याक्षेपजन्यत्वरारहित -अनाक्षिप्तचित्त इत्यर्थः, ईर्योपयोगवानिति भावः, 'कदा कुत्र वाऽशनादिप्राप्तिर्भविष्यती' त्यादिचिन्ताऽऽहितचाञ्चल्यरहित इति

पिण्डका पोषक है। द्रव्यपिण्ड, सावद्य भी होता है और निरवद्य भी होता है। संयमीको निरवद्य पिण्ड ही ग्रहण करना चाहिए, इसलिए द्रव्यपिण्डकी एषणाका अधिकार आरम्भ किया जाता है 'संपत्ते' इत्यादि।

द्रव्यक्षेत्रकालभावके अनुसार स्वाध्याय आदि क्रियाओंके पश्चात् जब गोचरीका समय हो तब मुनि किसी कारणवश उत्पन्न हुए चित्त-विक्षेपजन्य भ्रान्तिरहित होकर, अर्थात् ईर्या (गमन) में उपयोग रखकर, अथवा 'कब और कहाँ अशन आदिकी प्राप्ति होगी ?' इस

પ્રશસ્ત ભાવપિંડનો પોષક છે દ્રવ્યપિંડ સાવદ્ય પણ હોય છે અને નિરવદ્ય પણ હોય છે સંયમીએ તો નિરવદ્યપિંડ જ ગ્રહણ કરવો જોઈએ એટલા માટે દ્રવ્ય પિંડની એષણાનો અધિકાર પ્રારંભવામાં આવે છે–संपत्ते भिक्खकालम्मि ઈત્યાદિ

દ્રવ્ય–ક્ષેત્ર–કાળ–ભાવને અનુસાર સ્વાધ્યાયાદિ ક્રિયાઓની પછી જ્યારે ગોચરીનો સમય થાય ત્યારે મુનિ કોઈ કારણવશ ઉત્પન્ન થએલા ચિત્તવિક્ષેપથી જન્મેલી ભ્રાન્તિથી રહિત થઈને અર્થાત્ ઈર્યા (ગમન)માં ઉપયોગ રાખીને, અથવા ક્યારે અને ક્યાં અશન આદિની પ્રાપ્તિ થશે ? એ પ્રકારની ચિંતાજન્ય

न्तर्गता पिण्डैषणाऽभिधीयते। पिण्डैषणा च पिण्डस्य समयभाषया प्रसिद्धस्यान्न-पानस्यैषणारूपा, तत्र पिण्डनं पिण्ड'=एकत्र समुच्चितबहुपदार्थसमुदायः, स द्विविधः-द्रव्यपिण्डो भावपिण्डश्च, तत्र क्षुधाविघातकत्वेनाशनादिरूपो द्रव्यपिण्ड', कर्मविघात-कत्वेन ज्ञानादिलक्षणः प्रशस्तभावपिण्ड', अप्रशस्तभावपिण्डस्त्वसंयमादिरूप' प्रकृतानुपयोगित्वादुपेक्षितः। द्रव्यपिण्डो हि प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकस्तं विना तस्या सम्पाद्यत्वात्, तथाहि-ज्ञानाद्यात्मकप्रशस्तभावपिण्डस्याराधना शरीरस्थित्यधीना, शरीरपरिस्थितिश्चाहारं विना न यथावत्साधनायालम्, आहारादिकश्च द्रव्यपिण्ड एवेति सिद्धं द्रव्यपिण्डस्य प्रशस्तभावपिण्डपरिपोषकत्वम्। तस्य च सावद्यनिरवद्य

कथन करते हैं। 'पिण्ड' शास्त्रीय भाषामें अन्न पान नामसे प्रसिद्ध है, उसकी एषणा करना 'पिण्डैषणा' है। एक स्थानपर बहुत पदार्थोंका समुदाय होना पिण्ड कहलाता है। पिण्ड दो प्रकारका है-(१) द्रव्यपिण्ड और (२) भावपिण्ड अशन आदिको द्रव्यपिण्ड कहते हैं, क्योंकि उससे क्षुधाका नाश होता है। ज्ञानादि प्रशस्त-भावपिण्ड है, क्योंकि वह कर्मोंका नाश करनेवाला है, अप्रशस्त-भावपिण्ड असंयमादिरूप है, उसका यहाँ अधिकार नहीं है।

द्रव्यपिण्ड, प्रशस्त-भावपिण्डका पोषक है, क्योंकि उसके बिना प्रशस्त-भावपिण्डकी प्राप्ति नहीं होसकती, अर्थात् ज्ञानादिरूप प्रशस्त-भावपिण्डकी आराधना शरीरकी स्थितिके अधीन है, और शरीरकी स्थिति आहारके बिना नहीं होसकती। आहार आदि द्रव्यपिण्ड ही है। इससे यह सिद्ध हुआ कि द्रव्यपिण्ड प्रशस्त भाव

'પિંડ' શબ્દ શાસ્ત્રીય-ભાષામાં અન્નપાનના નામે ઓળખાય છે, તેની એષણા કરવી એ પિંડૈષણા કહેવાય છે એક સ્થાન પર ઘણા પદાર્થોનો સમુદાય હોવો એ 'પિંડ' કહેવાય છે પિંડ બે પ્રકારનો હોય છે, (૧) દ્રવ્ય-પિંડ અને (૨) ભાવપિંડ અશન આદિને દ્રવ્યપિંડ કહે છે કારણ કે તેથી ક્ષુધાનો નાશ થાય છે જ્ઞાનાદિ એ પ્રશસ્ત-ભાવપિંડ છે, કારણ કે તે કર્મોનો નાશ કરવાવાળો છે અપ્રશસ્ત-ભાવપિંડ અસંયમાદિરૂપ છે, એનો અહીં અધિકાર નથી

દ્રવ્યપિંડ એ પ્રશસ્ત-ભાવપિંડનો પોષક છે કારણ કે તેના વિના પ્રશસ્ત-ભાવપિંડની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ-રૂપ પ્રશસ્ત-ભાવપિંડની આરાધના શરીરની સ્થિતિને અધીન છે, અને શરીરની સ્થિતિ આહાર વિના હોઇ શકતી નથી આહારાદિ દ્રવ્યપિંડજ છે તેથી એ સિદ્ધ થયું કે દ્રવ્યપિંડ

भेदाभ्यां द्वैविध्येऽपि संयमिभिर्निरवद्यपिण्ड एव ग्राह्य इति तदेषणाधिकारः-'संपत्ते' इत्यादि ।

मूलम्-संपत्ते[2] भिक्खकालम्मि[1], असंभंतो[3] अमुच्छिओ[4] ।
इमेण[5] कमजोगेण[6], भत्तपाणं[7] गवेसए[8] ॥ १ ॥

छाया—सम्प्राप्ते भिक्षाकालेऽसम्भ्रान्तोऽमूर्च्छितः ।
अनेन क्रमयोगेन, भक्तपानं गवेषयेत् ॥१॥

॥ अथ पञ्चमाध्ययनम् ॥

सान्वयार्थः-मुनिको आहारपानी लेनेकी विधि कहते हैं—भिक्खकालम्मि= गोचरीका समय संपत्ते=होनेपर असंभंतो=उद्वेगरहित (और) अमुच्छिओ= आसक्तिरहित होकर इमेण कमजोगेण=इस आगे बताई जानेवाली विधिसे भत्तपाणं=भात-पानीकी गवेसए=गवेषणा करे ॥

टीका—भिक्षाकाले=गोचरीसमये, सम्प्राप्ते=स्वाध्यायाद्यनन्तरं द्रव्यक्षेत्र-कालभावानुकूलतया समायाते 'मुनि'-रिति शेषः, असम्भ्रान्तः=यत्किञ्चिन्नि-मित्तजनितचित्तव्याक्षेपजन्यत्वरारहितः-अनाक्षिप्तचित्त इत्यर्थः, ईर्योपयोगवानिति भावः, 'कदा कुत्र वाऽशनादिप्राप्तिर्भविष्यती'त्यादिचिन्ताऽऽहितचाञ्चल्यरहित इति

पिण्डका पोषक है । द्रव्यपिण्ड, सावद्य भी होता है और निरवद्य भी होता है । संयमीको निरवद्य पिण्ड ही ग्रहण करना चाहिए, इसलिए द्रव्यपिण्डकी एषणाका अधिकार आरम्भ किया जाता है 'संपत्ते' इत्यादि ।

द्रव्यक्षेत्रकालभावके अनुसार स्वाध्याय आदि क्रियाओंके पश्चात् जब गोचरीका समय हो तब मुनि किसी कारणवश उत्पन्न हुए चित्त-विक्षेपजन्य भ्रान्तिरहित होकर, अर्थात् ईर्या (गमन) में उपयोग रखकर, अथवा 'कब और कहाँ अशन आदिकी प्राप्ति होगी'' इस

પ્રશસ્ત ભાવપિંડનો પોષક છે દ્રવ્યપિંડ સાવદ્ય પણ હોય છે અને નિરવદ્ય પણ હોય છે સંયમીએ તો નિરવદ્યપિંડ જ ગ્રહણ કરવો જોઈએ એટલા માટે દ્રવ્ય પિંડની એષણાનો અધિકાર પ્રારંભવામાં આવે છે—संपत्ते भिक्खकालम्मि ઇત્યાદિ

દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર-કાળ-ભાવને અનુસાર સ્વાધ્યાયાદિ ક્રિયાઓની પછી જ્યારે ગોચરીનો સમય થાય ત્યારે મુનિ કોઈ કારણવશ ઉત્પન્ન થએલા ચિત્તવિક્ષેપથી જન્મેલી ભ્રાન્તિથી રહિત થઈને અર્થાત્ ઈર્યા (ગમન)માં ઉપયોગ રાખીને, અથવા ક્યારે અને ક્યાં અશન આદિની પ્રાપ્તિ થશે ? એ પ્રકારની ચિંતાજન્ય

यावत्, अमूर्च्छितः=आहारादौ मनोरमशब्दादिविषयेषु वा नासक्तः सन् अनेन= वक्ष्यमाणेनैतदध्ययनव्यावर्णितस्वरूपेण क्रमयोगेन=प्रकारेण भक्तपान=भक्तं च पानं चेत्यनयोः समाहारे भक्तपानम्, भक्तम्=ओदनादिकम्, पानं=द्राक्षादिजलं मुनियोग्यं गवेषयेत्=अन्वेषयेत् (अन्विच्छेत्)। 'संपत्ते' इत्यनेन मुनिना यथासमयं कार्यं सम्पादनीय' मित्याविष्कृतम्। 'असंभंतो' इत्यतो मनःस्थैर्यं विधेयमित्युपदिष्टम्। 'अमुच्छिओ' इत्यनेन विषयानुरागमपाकृतम् ॥१॥

गवेषणाविधिमाह-'से गामे वा' इत्यादि।

मूलम्-से गामे वा नयरे वा, गोयरग्गगओ मुणी।
चरे मंदमणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा ॥ २ ॥

छाया—स ग्रामे वा नगरे वा, गोचराग्रगतो मुनिः।
चरेन्मन्दमनुद्विग्नोऽव्याक्षिप्तेन चेतसा ॥२॥

सान्वयार्थः-से=वह मुणी=साधु गामे=गाँव वा=अथवा नगरे=नगरमें वा= निश्चयसे गोयरग्गगओ=निर्दोष भिक्षाके लिए गया हुआ अणुव्विग्गो=उद्वेग

प्रकारकी चिन्ताजन्य चचलतासे रहित होकर आहार तथा मनोज्ञ शब्दादि विषयोंमें आसक्त न होता हुआ, जैसा इस अध्ययनमें वर्णन किया गया है उस विधिसे, मुनिके योग्य ओदन आदि भक्त तथा द्राक्ष आदिका धोवनरूप पानकी गवेषणा करे।

गाथामें 'संपत्ते' पदसे यह सूचित किया है कि मुनिको समय पर ही कार्य करना चाहिए। 'असंभंतो' पदसे यह प्रगट किया है कि साधुको मनकी स्थिरता रखनी चाहिए। 'अमुच्छिओ' पदसे विषयोंमें आसक्तिका निराकरण किया गया है ॥१॥

ચચલતાથી રહિત થઈને આહાર તથા મનોજ્ઞ-શબ્દાદિ વિષયોમાં આસક્ત ન થતા, આ અધ્યયનમાં વર્ણવ્યા પ્રમાણેની વિધિથી, મુનિને યોગ્ય ઓદન આદિ ભાત તથા દ્રાક્ષ આદિના ધોવણરૂપ પાનની ગવેષણા કરે

ગાથામાં संपत्ते શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે મુનિએ સમય પર જ કાર્ય કરવું જોઈએ असंभंतो શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે સાધુએ મનની સ્થિરતા રાખવી જોઈએ अमुच्छिओ શબ્દથી વિષયોમાં આસક્તિનું નિરાકરણ કરવામાં આવ્યું છે (૧)

रहित होता हुआ अव्यक्खित्तेण=शान्त-स्थिर चेयसा=चित्तसे मद्=इर्या-समिति सोधता हुआ चरे=जावे ॥२॥

टीका—से=अथ=पिण्डगवेषणासमये, यद्वा 'से' इति तच्छब्दस्य प्रथमैकवचनरूपं तेन सः=प्रक्रान्तः मुनि[1]=मुणति=प्रतिजानीते सर्वसावद्यव्यापारोपरतिमिति, मन्यते=जानाति जिनाज्ञयाऽनेकान्तात्मकजीवाऽजीवादिपदार्थसार्थमिति वा [1]मुनि=अनगारः, स च द्विविधः-द्रव्यतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतः-मुनिकर्त्तव्यक्रियाकलापविकलो लिङ्गमात्रोपजीवी, भावतस्तु-मोहनीयकर्मक्षय-क्षयोपशमसमुद्भूतज्ञानादिरत्नत्रयप्रकटीभूतात्मस्वरूपः, प्रकृते च भावमुनि प्रसङ्गगम्यः।

१ आद्ये 'मुण प्रतिज्ञाने' अस्मादौणादिक इन्, पृषोदरादित्वाण्णस्य न. । द्वितीये-'मन ज्ञाने' इति धातो. 'मनेरुच्चे'-त्यौणादिकसूत्रेण इन्प्रत्ययः स च कित् अकारस्योकारादेशश्च । यद्वा 'मुणी' इति प्राकृतसम. संस्कृत एव, शब्दसिद्धिरप्युक्तैव, तदा छायाया 'मुणि.' इत्यपि समावेशमर्हति ।

अब गवेषणाकी विधि बताते हैं-'से गामे वा०' इत्यादि ।

'मुनि' शब्दके अनेक अर्थ हैं-(१) जो समस्त सावद्य व्यापारके त्यागकी प्रतिज्ञा करते हैं उन्हे मुनि कहते हैं। (२) जिनेन्द्र भगवान्की आज्ञाके अनुसार जीव अजीव आदि पदार्थोंको अनेकान्तस्वरूप जानने वाले मुनि कहलाते हैं। मुनि दो प्रकारके होते हैं-(१) द्रव्यमुनि और (२) भावमुनि। मुनियोंके आचारका पालन न करनेवाला मुनिवेषधारी द्रव्यमुनि कहलाता है। मोहनीय कर्मके क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयके द्वारा जिनकी आत्माका स्वरूप प्रकट होगया है उन्हें भावमुनि कहते हैं। यहा भावमुनिका अधिकार समझना चाहिए।

હવે ગવેષણાની વિધિ બતાવે છે–સે ગામે વા૦ ઇત્યાદિ

મુનિ શબ્દના અનેક અર્થો છે (૧) જે સર્વ સાવદ્ય વ્યાપારના ત્યાગની પ્રતિજ્ઞા કરે છે-તેને મુનિ કહે છે (૨) જિનેન્દ્ર ભગવાનની આજ્ઞાને અનુસાર જીવ અજીવ આદિ પદાર્થોને અનેકાન્તસ્વરૂપ જાણવાવાળા મુનિ કહેવાય છે મુનિ બે પ્રકારના હોય છે (૧) દ્રવ્યમુનિ અને (૨) ભાવમુનિ મુનિઓના આચારનું પાલન ન કરનારા મુનિવેષધારી દ્રવ્યમુનિ કહેવાય છે, મોહનીય કર્મના ક્ષય અને ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થએલા સમ્યગ્જ્ઞાન સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ રત્નત્રયની દ્વારા જેના આત્માનું સ્વરૂપ પ્રકટ થઇ ગયું છે તેને ભાવમુનિ કહે છે અહીં ભાવમુનિનો અધિકાર સમજવો જોઇએ,

ग्रामे वा=अथवा नगरे, द्वितीय-'वा'-शब्दात् खेटकर्बटादौ, गोचराग्रगतः= गोरिव चरणं=यथायोग्यं स्वल्पस्वल्पग्रहणं गोचरः, अग्रः=आधाकर्मादिदोषरहित तया श्रेष्ठः, स चासौ गोचरश्चेति गोचराग्रः, आर्षत्वाद्विशेषणपूर्वनिपाताभावः, अग्रगोचर इत्यर्थः, तत्र गतः=वर्तमानः गोचराग्रगतः अव्याक्षिप्तेन=स्थिरेण भिक्षागतसकलदोषोपयोगवतेत्यर्थः, चेतसा=चित्तेन अनुद्विग्नः=अलाभादिपरीषह जनितक्षोभरहितः, मन्दं=शनैर्यथास्यात्तथा ईर्यापथं शोधयन्नित्यर्थः, चरेत्=गच्छेत्।

'गोयरग्गगओ' इत्यनेन नवकोटिविशुद्धाहारो ग्रहीतव्य इति सूचितम्। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इत्यनेन चित्तस्थैर्येणैव भिक्षाविशुद्धिर्भवतीति ध्वनितम्। 'अणुव्विग्गो' इत्यतः परीषहसहनसामर्थ्यं बोधितम् ॥ २ ॥

गोचरीगमनप्रकारानाह-'पुरओ' इत्यादि ।

वह भावमुनि पिण्ड-गवेषणाका समय होने पर ग्राम, नगर खेडा, कर्वट आदिमें यथायोग्य थोड़ा थोड़ा निर्दोष आहार ग्रहण करता हुआ भिक्षाके समस्त दोषोंका उपयोग रखनेवाले अर्थात् अव्याक्षिप्त चित्तसे अलाभ आदि परीषह जनित क्षोभसे रहित होकर ईर्यापथ शोधते हुए मन्दगतिसे चले।

'गोयरग्गगओ' पदसे यह सूचित हुआ है कि साधुको नवकोटि विशुद्ध आहार लेना चाहिए। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इससे यह द्योतित होता है कि चित्तकी स्थिरतासे ही भिक्षाकी शुद्धि निभ सकती है। 'अणुव्विग्गो' पदसे परीषह सहनेका सामर्थ्य प्रगट किया है ॥२॥

गोचरीके लिए गमनविधि बताते हैं-'पुरओ' इत्यादि ।

એ ભાવ મુનિ પિંડગવેષણાનો સમય થતા ગ્રામ, નગર, ગામડું, કર્વટ આદિમા યથાયોગ્ય થોડો થોડો નિર્દોષ આહાર ગ્રહણ કરતા, ભિક્ષાના બધા દોષોનો ઉપયોગ રાખવાવાળો અર્થાત્ અવ્યાક્ષિપ્ત-ચિત્તથી અલાભ આદિ પરીષહથી ઉત્પન્ન થતા ક્ષોભથી રહિત થઈને ઇર્યાપથ શોધતા મંદ ગતિએ ચાલે

गोयरग्गगओ શબ્દથી એમ સૂચિત થયું છે કે સાધુએ નવકોટિએ વિશુદ્ધ આહાર લેવો જોઈએ अव्वक्खित्तेण चेयसा એથી એમ પ્રકટ થાય છે કે ચિત્તની સ્થિરતાથી જ ભિક્ષાની શુદ્ધિ નભી શકે છે, अणुव्विग्गो શબ્દથી પરીષહ સહવાનું સામર્થ્ય પ્રકટ કર્યું છે (૨)

ગોચરીને માટે ગમનવિધિ બતાવે છે-पुरओ ઇત્યાદિ

३ १ ४ २ १०
मूलम्-पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिं चरे ।
९ ५ ६ ८ ७
वज्जंतो बीयहरियाइं, पाणे य दगमट्टियं ॥ ३ ॥

छाया—पुरतो युगमात्रया, प्रेक्षमाणो महीं चरेत् ।
वर्जयन् बीजहरितानि, प्राणांश्च दकमृत्तिकाम् ॥३॥

गोचरी में चलने की विधि कहते हैं—

सान्वयार्थः-पुरओ=सामने जुगमायाए=धूसर प्रमाण दृष्टिसे महिं=पृथिवीको पेहमाणो=देखता हुआ बीयहरियाइं=बीज, हरी, पाणे=द्वीन्द्रियादिक प्राणी य=और दगमट्टियं=सचित्त जल तथा सचित्त मिट्टीको वज्जंतो=वर्जता हुआ चरे=चले ॥३॥

टीका—युगमात्रया=जूसरप्रमाणया तत्प्रमाणप्रसृतयेत्यर्थः 'दृष्ट्ये'ति शेषः। वस्तुतस्तु 'क्वचिद्द्वितीयादेः' इति नियमादत्र द्वितीयार्थे षष्ठी, तेन 'जुगमायाए' इत्यस्य 'युगमात्रां'-मिति च्छाया, तथाच-युगमात्रां=प्रोक्तार्थां स्वशरीरप्रमितामिति भावः, महीं=भूमिं मार्गभूमिमिति भावः, पुरतः=स्वाग्रतः प्रेक्षमाणः=सम्यगवलोकयन् बीजहरितानि=प्रसिद्धानि, प्राणान्=द्वीन्द्रियादिप्राणिनः, दकमृत्तिका=सचित्त जल मृत्तिका च वर्जयन्=परिहरन् चरेत्=गच्छेत ॥३॥

३ ४ ५ ६ ७
मूलम्-ओवायं विसमं खाणुं, विजलं परिवज्जए ।
८ ९ १० २ १
संकमेण न गच्छिज्जा, विज्जमाणे परक्कमे ॥ ४ ॥

छाया—अवपातं विषमं स्थाणुं, विजलं परिवर्जयेत् ।
संक्रमेण न गच्छेत्, विद्यमाने पराक्रमे ॥४॥

सान्वयार्थः-परक्कमे=दूसरे मार्गके विज्जमाणे=होनेपर (साधु) ओवायं=जिस मार्गमें गिर पडनेकी शंका हो विसमं=खड्डे आदिके कारण विकट हो खाणुं=काटे हुए धान्यके डंठलोंसे युक्त (और) विजलं=कीचडवाला हो उस

अपने शरीर प्रमाण रास्ता सामने भली भाँति अवलोकन करता हुआ, बीज, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय आदि प्राणी सचित्तजल और सचित्त मृत्तिकाको बचाता हुआ गमन करे ॥३॥

પોતાના શરીર પ્રમાણ રસ્તા સામે સારી રીતે અવલોકન કરતા, બીજ, વનસ્પતિકાય, દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી, સચિત્ત જળ અને સચિત્ત માટીને બચાવી લેતા ગમન કરે (૩)

ग्रामे वा=अथवा नगरे, द्वितीय 'वा'-शब्दात् खेटकर्बटादौ, गोचराग्रगतः= गोरिव चरणं=यथायोग्यं स्वल्पस्वल्पग्रहणं गोचरः, अग्रः=आधाकर्मादिदोषरहित तया श्रेष्ठः, स चासौ गोचरश्चेति गोचराग्र, आर्षत्वाद्विशेषणपूर्वनिपाताभाव', अग्रगोचर इत्यर्थः, तत्र गतः=वर्त्तमानः गोचराग्रगतः अव्याक्षिप्तेन=स्थिरेण भिक्षागतसकलदोषोपयोगवतेत्यर्थः, चेतसा=चित्तेन अनुद्विग्नः=अलाभादिपरीषह जनितक्षोभरहितः, मन्दं=शनैर्यथास्यात्तथा ईर्यापथं शोधयन्नित्यर्थः, चरेत्=गच्छेत्।

'गोयरग्गगओ' इत्यनेन नवकोटिविशुद्धाहारो ग्रहीतव्य इति सूचितम्। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इत्यनेन चित्तस्थैर्येणैव भिक्षादिशुद्धिर्भवतीति ध्वनितम्। 'अणुव्विग्गो' इत्यतः परीषहसहनसामर्थ्यं बोधितम् ॥ २ ॥

गोचरीगमनप्रकारानाह-'पुरओ' इत्यादि ।

वह भावमुनि पिण्ड-गवेषणाका समय होने पर ग्राम, नगर खेडा, कर्वट आदिमें यथायोग्य थोड़ा थोडा निर्दोष आहार ग्रहण करता हुआ भिक्षाके समस्त दोषोंका उपयोग रखनेवाले अर्थात् अव्याक्षिप्त चित्तसे अलाभ आदि परीषह जनित क्षोभसे रहित होकर ईर्यापथ शोधते हुए मन्दगतिसे चले।

'गोयरग्गगओ' पदसे यह सूचित हुआ है कि साधुको नवकोटि-विशुद्ध आहार लेना चाहिए। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इससे यह द्योतित होता है कि चित्तकी स्थिरतासे ही भिक्षाकी शुद्धि निभ सकती है। 'अणुव्विग्गो' पदसे परीषह सहनेका सामर्थ्य प्रगट किया है ॥२॥

गोचरीके लिए गमनविधि बताते हैं-'पुरओ' इत्यादि ।

એ ભાવ મુનિ પિંડગવેષણાનો સમય થતા ગ્રામ, નગર, ગામડું, કર્વટ આદિમા યથાયોગ્ય થોડો થોડો નિર્દોષ આહાર ગ્રહણ કરતા, ભિક્ષાના બધા દોષોનો ઉપયોગ રાખવાવાળો અર્થાત્ અવ્યાક્ષિપ્ત-ચિત્તથી અલાભ આદિ પરી ષહથી ઉત્પન્ન થતા ક્ષોભથી રહિત થઈને ઈર્યાપથ શોધતા મંદ ગતિએ ચાલે

गोयरग्गगओ શબ્દથી એમ સૂચિત થયુ છે કે સાધુએ નવકોટિએ વિશુદ્ધ આહાર લેવો જોઇએ अव्वक्खित्तेण चेयसा એથી એમ પ્રકટ થાય છે કે ચિત્તની સ્થિરતાથી જ ભિક્ષાની શુદ્ધિ નભી શકે છે, अणुव्विग्गो શબ્દથી પરીષહ સહ વાનું સામર્થ્ય પ્રકટ કર્યું છે (૨)

ગોચરીને માટે ગમનવિધિ બતાવે છે-पुरओ ઇત્યાદિ

तत्र गच्छतो हानिमाह-'पवडते' इत्यादि।

२ ३ ६ १ ४ ५ ७
मूलम्-पवडते व से तत्थ, पक्खलते व सजए।
१२ ११ ८ १० ९
हिंसेज्ज पाणभूयाइं, तसे अदुव थावरे ॥५॥

छाया—प्रपतश्च स तत्र, प्रस्खलँश्च संयतः।
हिंस्यात्प्राणभूतानि, त्रसान् अथवा स्थावरान् ॥५॥

पूर्वोक्त मार्गसे जाने में दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः-से=उस मार्गसे जानेवाला वह सजए=साधु व=यदि तत्थ=वहां पवडते=गिर जाय व=अथवा पक्खलते=रपट पडे तो तसे=त्रस-द्वीन्द्रियादि अदुव=अथवा थावरे=स्थावर-पृथिव्यादि पाणभूयाइं=प्राणी भूतोकी हिंसेज्जा=हिंसा करे। अर्थात् ऐसे मार्गमें जानेसे साधुको आत्म और संयम दोनोकी विराधनाका संभव है ॥५॥

टीका—तत्र=तस्मिन् अवपातादौ प्रपतन् प्रस्खलँश्च स संयतः=साधुः त्रसान्=द्वीन्द्रियादिलक्षणान्, स्थावरान्=पृथिव्याद्येकेन्द्रियान्, अथवा प्राणभूतानि=त्रसस्थावरोभयविधान् प्राणिनो हिंस्यात्=मर्दयेत् पीडयेदिति यावत्। पतनादिना चाऽऽत्मविराधनाऽपि नियत भावीति भावः ॥५॥

मार्ग न हो तो यह निषेध नहीं है-अर्थात् अन्य मार्गके अभावमें ऐसे मार्गसे भी जा सकते हैं ॥४॥

ऐसे मार्गमें चलनेसे होनेवाली हानि बताते हैं-'पवडते०' इत्यादि।

यदि अवपात आदि पूर्वोक्त मार्गोंमें गमन करनेसे गिर पडे या रपट जावे तो द्वीन्द्रिय आदि त्रस या पृथिवीकायिक आदि स्थावर जीवोंकी अथवा दोनों प्रकारके जीवोंकी हिंसा होती है तथा गिरने आदिसे आत्मविराधना भी अवश्य होती है ॥५॥

તો એનો નિષેધ નથી-અર્થાત્ અન્ય માર્ગને અભાવે એવા માર્ગથી પણ જઈ શકાય છે (૪)

એવા માર્ગમા ચાલવાથી થનારી હાનિ બતાવે છે- પવડતે૦ ઇત્યાદિ

જો અવપાત આદિ પૂર્વોકત માર્ગોમા ગમન કરવાથી પડી જાય યા લપસી જાય તો દ્વીન્દ્રિયાદિ ત્રસ યા પૃથ્વીકાયિક આદિ સ્થાવર જીવોની અથવા બેઉ પ્રકારના જીવોની હિંસા થાય છે, તથા પડવાથી આત્મવિરાધના પણ અવશ્ય

मार्गको परिवज्जए=छोडे, तथा सकमेण=कीचड आदिके कारण जिस मार्गमें ईंट काठ आदि लांघनेके लिए रखे हों उसमें भी न गच्छेज्जा=नहीं जावे ॥४॥

टीका—'ओवायं०' इत्यादि। 'परकमे' इति आक्रमणमाक्रमः=अवलम्बन परश्चासावाक्रमश्च पराक्रमः परस्याऽऽक्रमो वा पराक्रमस्तस्मिन्, यद्वा 'परक्रमे' इतिच्छाया, ततश्च परश्चासौ क्रमश्च परक्रमस्तस्मिन् 'सर्वथा गत्यन्तरे' इत्यर्थस्तथा च-पराक्रमे अथवा परक्रमे उपाये विद्यमाने=वर्तमाने सति अवपातः[१]=स्खलन स्थान सत्यप्यालोके येन सञ्चरणे स्खलनमवश्यसम्भाव्य तम्, विषमं[२]=दुर्गमत्वा द्विकटं मार्गं स्थाणुं=लूनसस्यादिस्थुड तद्बहुल क्षेत्रादिमार्गमित्यर्थः, विजलं=विगतं जलं यस्मात्तत् तथोक्तं पङ्किलस्थलं परिवर्जयेत्=परित्यजेत्, सक्रमेण=सक्रम्यते= समुल्लङ्घ्यते जलकर्दमादिबहुलविषमस्थान येन स सक्रमः=इष्टका-काष्ठ-पाषाणादि- निर्मितमार्गविशेषस्तेन न गच्छेत्=न सञ्चरेत्। 'विज्जमाणे परकमे' इत्यनेनोपा यान्तराभावे नायं प्रतिषेध इत्यपवादः सूचितः ॥४॥

१ गर्त्तमयतया सभावितस्खलनकम्।
२ उन्नताऽवनतत्वाद्दुर्गमम्।

'ओवाय०' इत्यादि। पर अवलम्बको यहाँ पर परक्रम अथवा पराक्रमसे कहा गया है अत एव अर्थ यह है कि दूसरे मार्गके रहते हुए, जिसमे चलनेसे गिर पडनेकी सभावना हो, दुर्गम होनेके कारण विकट हो, जिसमे काटे हुए ज्वार आदिके डठल हों, और जो कीचड वाला हो, जल-कीचड आदिकी अधिकता होनेसे लाघनेके लिए ईंट, काष्ठ, पत्थर आदि रखे हुए हों, उस विषम मार्गसे गमन न करे।

'विज्जमाणे परकमे' इस पदसे यह सूचित किया है कि दूसरा

ओवाय० ઇત્યાદિ પર અવલબનને અહી પરકમ અથવા પરાકમથી કહેવામા આવેલ છે, એથી એવો અર્થ થાય છે કે બીજો માર્ગ હોવા છતા, જેમા ચાલ વાથી પડી જવાની સભાવના હોય, દુર્ગમ હોવાને લીધે વિકટ હોય, જેમા કાપેલી જુવાર આદિના ઠૂઠા હોય, અને જે કીચડવાળો હોય, પાણી કીચડ વગેરે વધુ હોવાના કારણે ઓળગવા માટે ઈંટ, લાકડુ કે પત્થર આદિ રાખેલા હોય, એવા વિષમ માર્ગથી ગમન ન કરે

विज्जमाणे परकमे એ શબ્દોથી એમ સૂચવ્યુ છે કે બીજો માર્ગ ન હોય

तत्र गच्छतो हानिमाह-'पवडते' इत्यादि ।

मूलम्-पवडते व से तत्थ, पक्खलते व सजए।
हिंसेज्ज पाणभूयाइ, तसे अदुव थावरे ॥५॥

छाया—प्रपतश्च स तत्र, प्रस्खलँश्च सयतः ।
हिंस्यात्प्राणभूतानि, त्रसान् अथवा स्थावरान् ॥५॥

पूर्वोक्त मार्गसे जाने में दोष बताते है—

सान्वयार्थः-से=उस मार्गसे जानेवाला वह सजए=साधु व=यदि तत्थ=वहा पवडते=गिर जाय व=अथवा पक्खलते=रपट पडे तो तसे=त्रस द्वीन्द्रियादि अदुव=अथवा थावरे=स्थावर-पृथिव्यादि पाणभूयाइ=प्राणी भूतोकी हिंसेज्जा= हिंसा करे। अर्थात् ऐसे मार्गमें जानेसे साधुको आत्म और सयम दोनोकी विराधनाका सभव है ॥५॥

टीका—तत्र=तस्मिन् अवपातादौ प्रपतन् प्रस्खलँश्च स सयतः=साधुः त्रसान्= द्वीन्द्रियादिलक्षणान्, स्थावरान्=पृथिव्याद्येकेन्द्रियान्, अथवा प्राणभूतानि= त्रसस्थावरोभयविधान् प्राणिनो हिंस्यात्=मर्दयेत् पीडयेदिति यावत् । पतनादिना चाऽऽत्मविराधनाऽपि नियत भावीति भाव' ॥५॥

मार्ग न हो तो यह निषेध नहीं है-अर्थात् अन्य मार्गके अभावमें ऐसे मार्गसे भी जा सकते हैं ॥४॥

ऐसे मार्गमें चलनेसे होनेवाली हानि बताते है-'पवडते०' इत्यादि।

यदि अवपात आदि पूर्वोक्त मार्गोंमें गमन करनेसे गिर पडे या रपट जावे तो द्वीन्द्रिय आदि त्रस या पृथिवीकायिक आदि स्थावर जीवोंकी अथवा दोनों प्रकारके जीवोंकी हिंसा होती है तथा गिरने आदिसे आत्मविराधना भी अवश्य होती है ॥५॥

તો એનો નિષેધ નથી—અર્થાત્ અન્ય માર્ગને અભાવે એવા માર્ગથી પણ જઈ શકાય છે (૪)

એવા માર્ગમા ચાલવાથી થનારી હાનિ બતાવે છે– પવડતે૦ ઇત્યાદિ

જો અવપાત આદિ પૂર્વોક્ત માર્ગોમા ગમન કરવાથી પડી જાય યા લપસી જાય તો દ્વીન્દ્રિયાદિ ત્રસ યા પૃથ્વીકાયિક આદિ સ્થાવર જીવોની અથવા બેઉ પ્રકારના જીવોની હિંસા થાય છે, તથા પડવાથી આત્મવિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે (૫)

अप्कायादियतनामाह—'न चरेज्ज' इत्यादि ।

मूलम्-न चरेज्ज वासे वासते, मिहियाए पडंतिए ।
महावाए व वायते, तिरिच्छसंपाइमेसु वा ॥ ८ ॥

छाया—न चरेद् वर्षे वर्षति, मिहिकायां पतन्त्याम् ।
महावाते वा वाति, तिर्यक्संपातेषु वा ॥८॥

अप्काय आदिकी यतना कहते हैं—

सान्वयार्थः-वासे वासते=वर्षा बरसते हुए मिहियाए पडंतिए=धूँअर कुहरा गिरते हुए व=तथा महावाए वायते=महावायु-आँधी-के चलते हुए वा=और तिरिच्छसंपाइमेसु=तीड-पतंगादिकोंके उडते हुए (साधु) न चरेज्ज=गोचरी न जावे ॥८॥

टीका—वर्षे वर्षति=वृष्टौ सत्याम्, मिहिकायां=धूमिकायां पतन्त्यां सत्यां महावाते=प्रचण्डपवने वाति=वहति सति, तिर्यक्सम्पातेषु=तिर्यक्पतनशीलेषु शलभादिषु सत्सु न चरेत् । 'वासे वासते' इत्यनेन शीकरपातसमयेऽपि गमननिषेधः तस्यापि वृष्ट्यन्तर्भावात् अप्कायविराधनासाधनत्वाच्च ॥८॥

उक्ता प्रथममहाव्रतविराधनाऽधुना चतुर्थमहाव्रतविराधनाया इतरमहाव्रतविराधना

अप्कायादिकी यतना कहते हैं-'न चरेज्ज वासे०' इत्यादि ।

जब वर्षा बरस रही हो, कुहरा (धूँअर) पड रहा हो, आँधी चल रही हो, टिड्डी आदि उड रहे हो, तब साधु गमन न करे। 'वासे वासते' इस पदसे यह भी ग्रहण कर लेना चाहिए कि जब फुहारे पड रहे हों तब भी गमन न करे, क्योंकि वह भी वर्षाहीमें अन्तर्गत है और उस समय जानेसे अप्कायकी विराधना होती है ॥८॥

प्रथम महाव्रतकी विराधना बतानेके बाद अब अन्य महाव्रतोंकी विराधना

અપ્કાયાદિની યતના કહે છે-न चरेज्ज वासे० ઇત્યાદિ જ્યારે વરસાદ વરસી રહ્યો હોય, ધુમસ (ઝાકળ) પડી રહ્યો હોય આંધી ચાલી રહી હોય, ટીડ ઉડી રહ્યા હોય, ત્યારે સાધુ ગમન ન કરે वासे वासते એ શબ્દથી એમ પણ ગ્રહણ કરી લેવું જોઇએ કે જ્યારે વરસાદની ફરફર પડી રહી હોય ત્યારે પણ ગમન ન કરે, કારણ કે તે પણ વરસાદમાં જ આવી જાય છે, અને તે સમયે જવાથી અપ્કાયની વિરાધના થાય છે (૮)

પ્રથમ મહાવ્રતની વિરાધના બતાવ્યા પછી હવે બીજા વિરાધનાના

हेतुभूततया तामाह–'न चरेज्ज वेस०' इत्यादि ।

मूलम्–न चरेज्ज वेससामंते, बंभचेरवसाणुए ।
बंभयारिस्स दंतस्स, हुज्जा तत्थ विसुत्तिया ॥ ९ ॥

छाया—न चरेद् वेशसामन्ते, ब्रह्मचर्यवशानुगः ।
ब्रह्मचारिणो दान्तस्य, भवेत्तत्र विस्रोतसिका ॥९॥

ब्रह्मचर्य ही सब व्रतो का कारण है, अतः चतुर्थव्रत की यतना कहते हैं—

सान्वयार्थः–बंभचेरवसाणुए=ब्रह्मचर्यकी रक्षा चाहनेवाला साधु वेससामंते=वेश्याके पाडे-मुहल्ले में न चरेज्ज=गोचरी नहीं जावे, (क्योंकि) तत्थ=वहा (गोचरी जानेसे) दंतस्स=इन्द्रिय और मनको काबूमें रखनेवाले बंभयारिस्स=ब्रह्मचारी साधुके भी विसुत्तिया=मानसिक विकार हुज्जा=पैदा हो जाता है, साधारण मनुष्यकी तो बातही क्या? अर्थात् उसके मानसिक विकार जरूर उत्पन्न हो जाता है ॥९॥ क्योंकि—

टीका—ब्रह्मचर्यवशानुगः=ब्रह्मचर्यं=कामवासनापरित्यागलक्षणव्रतं, वश=स्वायत्तताम् अनुगमयति=प्रापयतीति स तथोक्तः ब्रह्मचारीत्यर्थः । यद्वा 'ब्रह्मचर्यावसानके' इति, 'ब्रह्मचर्यवशाऽऽनये' इति वा संस्कृत, तस्य 'वेशसामन्ते' इत्यनेन विशेषणतया सम्बन्धस्तथा च–ब्रह्मचर्यस्यावसानम्=अन्तो यस्मात्स तस्मिन्–ब्रह्मचर्यविनाशके इति प्रथमस्यार्थः । ब्रह्मचर्यं वशमानयति=दर्शनादिना स्वाधीन करोतीति ब्रह्मचर्यवशानयस्तस्मिन् ब्रह्मचर्यभ्रंशके इति द्वितीयस्यार्थः । वेशसामन्ते=वेशः=वेश्यागृहम् 'वेशो वेश्यागृहे गृहे' इति कोशात्, तस्य सामन्ते=समीपे वेश्यापाटके वा न चरेत्=न गच्छेत् । का हानि? रित्याह–'ब्रह्मे'-ति, तत्र=वेशसामन्ते गमनेनेति प्रसङ्गलभ्यम् , दान्तस्य=जितेन्द्रियस्यापि

के कारण होनेसे चतुर्थ महाव्रतकी विराधनाका कथन करते हैं–'न चरेज्ज वेस०' इत्यादि ।

ब्रह्मचारी साधु गोचरीके लिए, ब्रह्मचर्यका नाश करनेवाले वेश्याघरके समीपमें या वेश्याके पाडे (मुहल्ले) मे न जावे । वहाँ जानेसे क्या हानि है? सो बताते हैं–वेश्याके पाडेमें गमन करनेसे जितेन्द्रिय ब्रह्म-

---

કારણ હોવાને લીધે ચતુર્થ મહાવ્રતની વિરાધનાનું કથન કરે છે न चरेज्ज वेस० ઇત્યાદિ

બ્રહ્મચારી સાધુ ગોચરીને માટે, બ્રહ્મચર્યનો નાશ કરવાવાળા વેશ્યાગૃહની સમીપે યા વેશ્યાઓના મહોલ્લામાં ન જાય ત્યાં જવામાં શી હરકત છે? તે હવે બતાવે છે–વેશ્યાના મહોલ્લામાં ગમન કરવાથી જિતેન્દ્રિય બ્રહ્મચારી

अप्कायादियतनामाह—'न चरेज्ज' इत्यादि ।

मूलम्-न चरेज्ज वासे वासते, मिहियाए पडंतिए ।
महावाए व वायंते, तिरिच्छसपाइमेसु वा ॥ ८ ॥

छाया—न चरेद् वर्षे वर्षति, मिहिकायां पतन्त्याम् ।
महावाते वा वाति, तिर्यक्संपातेषु वा ॥८॥

अप्काय आदिकी यतना कहते हैं—

सान्वयार्थः-वासे वासते=वर्षा बरसते हुए मिहियाए पडंतिए=धूँअर कुहरा गिरते हुए व=तथा महावाए वायंते=महावायु-आँधी के चलते हुए वा=और तिरिच्छसपाइमेसु=तीड-पतंगादिकोंके उडते हुए (साधु) न चरेज्ज=गोचरी न जावे ॥८॥

टीका—वर्षे वर्षति=वृष्टौ सत्याम्, मिहिकाया=धूमिकायां पतन्त्यां सत्यां महावाते=प्रचण्डपवने वाति=वहति सति, तिर्यक्संपातेषु=तिर्यक्पतनशीलेषु शलभादिषु सत्सु न चरेत् । 'वासे वासते' इत्यनेन शीकरपातसमयेऽपि गमननिषेधः तस्यापि वृष्टयन्तर्भावात् अप्कायविराधनासाधनत्वाच्च ॥८॥

उक्ता प्रथममहाव्रतविराधनाऽधुना चतुर्थमहाव्रतविराधनाया इतरमहाव्रतविराधना

अप्कायादिकी यतना कहते हैं-'न चरेज्ज वासे०' इत्यादि ।

जब वर्षा बरस रही हो, कुहरा (धूँअर) पड रहा हो, आँधी चल रही हो, टिड्डी आदि उड रहे हो, तब साधु गमन न करे। 'वासे वासते' इस पदसे यह भी ग्रहण कर लेना चाहिए कि जब फुहारे पड रहे हों तब भी गमन न करे, क्योंकि वह भी वर्षाहीमें अन्तर्गत है और उस समय जानेसे अप्कायकी विराधना होती है ॥८॥

प्रथम महाव्रतकी विराधना बतानेके बाद अब अन्य महाव्रतोंकी विराधना

અપ્કાયાદિની યતના કહે છે-न चरेज्ज वासे० ઇત્યાદિ જ્યારે વરસાદ વરસી રહ્યો હોય, ધુમસ (ઝાકળ) પડી રહ્યો હોય આંધી ચાલી રહી હોય, ટીડ ઉડી રહ્યા હોય, ત્યારે સાધુ ગમન ન કરે वासे वासते એ શબ્દથી એમ પણ ગ્રહણ કરી લેવુ જોઇએ કે જ્યારે વરસાદની ફરફર પડી રહી હોય ત્યારે પણ ગમન ન કરે, કારણ કે તે પણ વરસાદમા જ આવી જાય છે, અને તે સમયે જવાથી અપ્કાયની વિરાધના થાય છે (૮)

પ્રથમ મહાવ્રતની વિરાધના બતાવ્યા પછી હવે બીજા મહા... વિરાધનાના

छाया—अनायतने चरतः संसर्गेणाऽभीक्ष्णम् ।
भवेद् व्रतानां पीडा, श्रामण्ये च संशयः ॥१०॥

वेश्या के पाडे में एकवार जाने का दोष कह कर अब अनेक वार जानेका दोष कहते हैं—

सान्वयार्थः—अणायपणे=वेश्याके पाडेमें अथवा इस प्रकारके दूसरे अयोग्य स्थानोंमें चरतस्स=गोचरी जानेवाले साधुके अभिक्खणं=वारंवार संसग्गीए=संसर्ग होनेके कारण वयाणं=महाव्रतोंको पीला=पीडा हुज्ज=होती है अर्थात् वे दूषित हो जाते हैं। (इतना ही नहीं किन्तु उस साधुके) सामन्नम्मि य=चारित्र-साधुपने-में भी संसओ=सन्देह हो जाता है ॥१०॥

टीका—अनायतने=अयोग्यस्थाने वेश्यागृहसमीपादौ अभीक्ष्णं=वारंवारम् चरतः=पर्यटतः साधोः संसर्गेण=प्रेक्षणादिसंपर्केण (मूले प्राकृतत्वात्स्त्रीत्वम्) व्रतानां=ब्रह्मचर्यादीनां पीडा=विराधना, चकारोऽप्यर्थे, नैतावत्येव हानिः किन्त्वन्याऽपीत्याह-श्रामण्ये=चारित्रेऽपि संशयः=पालनीयतासन्देहो भवेत्, तथाहि—

"दुश्चरब्रह्मचर्यादेर्भविष्यति फलं न वा ?।
चेन्न जाने कियत् कीदृक्, कदा वा तद्भविष्यति ॥१॥
तथाऽप्राप्तसुखप्राप्ति-मुद्दिश्य विहितो मया।
उपस्थितसुखत्याग उचितः किं न वोचितः ॥२॥" इत्यादि।

वेश्या-घरके समीप या ऐसेही अन्य अयोग्य स्थानोंमें वार वार गमन करनेवाले साधुके वेश्याको देखने आदि संसर्गसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंमें पीडा होजाती है, अर्थात् व्रत दूषित होजाते हैं। यही एक हानि नहीं है किन्तु उसके श्रामण्य (चारित्र)में भी संदेह होजाता है कि—

"इस दुश्चर ब्रह्मचर्यका फल मिलेगा या नहीं ?, यदि मिलेगा भी तो न जाने कितना मिलेगा, कैसा मिलेगा, और कब मिलेगा ? ॥१॥

मैंने अप्राप्त सुखकी प्राप्तिके लिए प्राप्त सुखका त्याग कर दिया है सो यह-उचित किया है या अनुचित ? ॥२॥" इत्यादि।

વેશ્યાગૃહની સમીપે યા એવાજ અન્ય અયોગ્ય સ્થાનોમાં વારવાર જવાવડે વેશ્યાને જોવા આદિ સંસર્ગથી સાધુના બ્રહ્મચર્ય આદિ વ્રતોમાં પીડા થઈ જાય છે, અર્થાત્ વ્રત દૂષિત થઈ જાય છે આ એક જ હાનિ નથી પરન્તુ એના શ્રામણ્ય (ચારિત્ર)માં પણ સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે કે-"આ દુશ્ચર બ્રહ્મચર્યનું ફળ મળશે કે નહિ ?, જો મળશે તો પણ શી ખબર કેટલું મળશે, કેમ મળશે અને ક્યારે મળશે ? (૧) મેં અપ્રાપ્ત સુખની પ્રાપ્તિને માટે પ્રાપ્ત સુખનો ત્યાગ કરી નાખ્યો છે " ઇત્યાદિ,

ब्रह्मचारिणः=साधोः विस्रोतसिका=तद्रूपलावण्यावलोकनचिन्तनादिकचवरेण चेतो नलिकासमागच्छद्भावनासलिलप्रवाहनिरोधे श्रद्धाभूमिसमुत्पन्नब्रह्मचर्यमूलकाऽहिंसासत्याऽस्तेयाऽपरिग्रहरूपाऽऽलवालसंवर्द्धित-ज्ञान-क्रियास्कन्धसुदृढ-समितिगुप्त्यादिशाखाप्रशाखावितता-ऽष्टादशसहस्रशीलाङ्गपत्र ध्यान-कुसुमा-ऽपवर्ग फलसम्पत्समृद्धसंयमद्रुमशोषिणी चित्तविकृतिर्भवेदिति सूत्रार्थः ॥९॥

सकृद्गमनदोष मभिधायेदानीमसकृद्गमनदोषान् प्रदर्शयति-'अणाययणे' इत्यादि।

मूलम्-अणाययणे [1] चरतस्स, [3] संसग्गीए [4] अभिक्खणं [2]।
हुज्ज [10] वयाणं [5] पीला, [6] सामन्नम्मि [8] य [7] संसओ [9] ॥१०॥

१ 'कूड़ा-करकट' 'कचरा' इति भाषा ।

चारी साधुके भी मनमें विकार उत्पन्न होसकता है। अर्थात् वेश्याके रूप-लावण्यका अवलोकन करने और विचार करनेरूप कचरेसे चित्त-रूपी नलद्वारा आत्मामें आता हुआ विशुद्ध भावनारूप जलका प्रवाह रुक जाता है। भावना-जलका प्रवाह रुक जानेसे वह संयमरूपी तरु सूख जाता है, जो तरु श्रद्धारूपी भूमिमें उत्पन्न होता है, ब्रह्मचर्य जिसकी जड़े हैं, अहिंसा सत्य-अस्तेय-अपरिग्रह रूपी क्यारी है, जो ज्ञान और क्रियारूपी स्कन्धसे दृढ है, समिति-गुप्ति आदि शाखा-प्रशाखाएँ जिसकी फैली हुई हैं, अठारह हजार शीलाङ्ग जिसके पत्ते हैं, ध्यान ही जिसके पुष्प हैं, और मुक्ति सम्पत्तिही जिस वृक्षके फल है ॥९॥

एकबार गमन करनेके दोष बताकर बारबार गमन करनेके दोष कहते हैं-'अणायणे०' इत्यादि ।

સાધુના મનમાં પણ વિકાર ઉત્પન્ન થઈ શકે છે અર્થાત્ વેશ્યાના રૂપ-લાવણ્યનું અવલોકન, વિચાર, ઈત્યાદિરૂપ કચરાથી ચિત્તરૂપી નળદ્વારા આત્મામાં આવતા વિશુદ્ધ ભાવનાજળનો પ્રવાહ રોકાઈ જવાથી એ સંયમરૂપી તરૂ સુકાઈ જાય છે, કે જે તરૂ શ્રદ્ધારૂપી ભૂમિમાં ઉત્પન્ન થાય છે, બ્રહ્મચર્ય જેના મૂળ છે, અહિંસા સત્ય અસ્તેય અપરિગ્રહરૂપી કયારી છે, જે જ્ઞાન અને ક્રિયારૂપી થડ વડે દૃઢ છે, સમિતિ ગુપ્તિ આદિ શાખા પ્રશાખા જેની ફેલાઈ રહી છે, અઢાર હજાર શીલાંગ જેના પાંદડાં છે, ધ્યાન જ જેના પુષ્પ છે અને મુક્તિસંપત્તિજ તે તરૂના ફળ છે (૯)

એકવાર ગમન કરવાના દોષ બતાવીને વારંવાર ગમન કરવાના દોષ બતાવે છે-अणायणे० ઈત્યાદિ

लक्षण विज्ञाय=अवबुध्य एकान्तम्=एकः=अद्वितीयः अन्तो=निश्चयो व्रतरक्षणविषयको मोक्षप्राप्तिविषयको वा एकान्तस्तम् आश्रितः=आस्थितो मुनिः वेशसामन्तं=वेश्यापाटकगमनं वर्जयेत्=परित्यजेत् ।

'वियाणित्ता' इत्यनेन सम्यगवबोधमन्तरेण दोषपरित्यागो याथातथ्येन न सभवतीति, 'एगतमस्सिए' इत्यनेन च मुनिना सततं मोक्षैकलक्ष्येण भवितव्यमिति सूचितम् ॥११॥

मार्गयतनामेव विशिष्याऽऽह-'साण' इत्यादि ।

२ ३ ४ १ ५ ६ ७
मूलम्-साण सूइय गाविं, दित्तं गोण हय गय ।
८ ९ १० ११ १२
सडिब्भ कलह जुद्ध, दूरओ परिवज्जए ॥ १२ ॥

छाया-श्वान सूतां गां, दृप्तं गोणं हयं गजम् ।
सडिम्भं कलहं युद्ध, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१२॥

साधु जहाँ भिक्षा के लिये न जावे उन स्थानो को विशेष रूपसे कहते हैं-

सान्वयार्थ -साण=जहा काटनेवाला कुत्ता हो सूइय=थोडे कालकी व्याई हुई गाविं=गाय हो दित्त=मदमस्त गोण=गोधा साण्ड अथवा बैल (और) हय=घोडा (अथवा) गय=हाथी हो (तथा) सडिब्भ=जहा बच्चे खेल रहे हों कलह=परस्पर वाग्युद्ध-गाली-गलोच-हो रहा हो जुद्ध=शस्त्र आदिसे युद्ध होता हो (ऐसे स्थानको साधु) दूरओ=दूरसे ही परिवज्जए=वर्जे, अर्थात् ऐसी जगह साधु

जानकर व्रतोकी रक्षा और मोक्षकी प्राप्तिके निश्चयमे स्थित मुनि वेश्याके पाडे (चकले)मे भिक्षा आदिके लिए न जावे ।

'वियाणित्ता' पदसे यह सूचित किया है कि भलीभाँति जाने बिना दोषका अच्छी तरह परित्याग नही हो सकता। 'एगतमस्सिए' पदसे यह प्रगट किया है कि मुनिको सदा मोक्षप्राप्तिका लक्ष्य रखना चाहिये ॥११॥

मार्गकी यतनाको विशेषरूपसे बताते हैं- 'साण०' इत्यादि ।

જાણીને વ્રતોની રક્ષા અને મોક્ષની પ્રાપ્તિના નિશ્ચયમા સ્થિત મુનિએ, વેશ્યાના મહોલ્લામા ભિક્ષા આદિને માટે જવુ નહિ

वियाणित्ता શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે-સારી રીતે જાણ્યા વિના દોષોનો સારી પેઠે પરિત્યાગ થઇ શકતો નથી एगतमस्सिए શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે મુનિએ સદા મોક્ષપ્રાપ્તિનું લક્ષ્ય રાખવુ જોઇએ (૧૧)

માર્ગની યતનાને વિશેષરૂપે બતાવે છે **साण०** ઇત્યાદિ

यद्वा-'चकारादत्र' शङ्का विचिकित्सा-भेदो-न्माद दीर्घकालिकरोग केवलिप्रज्ञप्तधर्मभ्रंशादयो दोषाः संगृह्यन्ते ॥१०॥

उपसंहरति-'तम्हा एय' इत्यादि ।

१ २ ५ ४ ३
मूलम्-तम्हा एयं वियाणित्ता, दोसं दुग्गइवड्ढणं ।
१० ६ ८ ९ ७
वज्जए वेससामंतं, मुणी एगंतमस्सिए ॥११॥

छाया-तस्मादेतं विज्ञाय, दोषं दुर्गतिवर्द्धनम् ।
वर्जयेद्वेशसामन्तं, मुनिरेकान्तमाश्रितः ॥११॥

सान्वयार्थः-तम्हा=इसलिए दुग्गइवड्ढणं=दुर्गतिको बढानेवाले एयं=इस दोसं=दोषको वियाणित्ता=जानकर एगंतमस्सिए=मोक्षाभिलापी मुणी=मुनि वेससामंतं=वेश्याके पाडे-मोहल्ले-को वज्जए=वर्जे अर्थात् भिक्षादिके लिए वहां नहीं जावे । भावार्थ-इस प्रकारके संसर्गसे साधुका मन उद्विग्न हो जानेसे मनमें अनेक कुतर्कणाएं होने लग जाती हैं, तब उसका मन ज्ञान ध्यान-आदि शुभ कार्योंमें नहीं लगकर आर्त्त-रौद्र ध्यान करने लगता है। इसलिए साधु ऐसे संसर्गको ही टाले ॥११॥

टीका-तस्माद्धेतो. एतं=पूर्वोक्तं दुर्गतिवर्द्धनं=दुर्गतिप्रापकं दोपं=व्रतविराधनादि

अथवा गाथामें आये हुए 'च' शब्दसे विषयसेवनकी आकांक्षा, संयमसे घृणा, भेद, उन्माद, दीर्घकालिक रोग और केवलीप्ररूपित धर्मसे भ्रष्टता आदि अनेक दोष समझ लेना चाहिये । अर्थात् ऐसे अयोग्य स्थानोमें गमन करनेसे इत्यादि दोष होते हैं ॥१०॥

उपसंहार करते हैं-'तम्हा एय' इत्यादि ।

इसलिए इस दुर्गतिको बढानेवाले, व्रतोंकी विराधनारूप-दोषको

અથવા ગાથામા આવેલા च શબ્દથી વિષય-સેવનની આકાક્ષા, સયમથી ઘૃણા, ભેદ, ઉન્માદ, દીર્ઘકાલિક રોગ અને કેવળી પ્રરૂપિત ધર્મમાથી ભ્રષ્ટતા આદિ અનેક દોષો સમજી લેવા અર્થાત્ એવા અયોગ્ય સ્થાનોમા ગમન કરવાથી એ પ્રકારના દોષ થાય છે (૧૦)

ઉપસહાર કરે છે-तम्हा एय ઇત્યાદિ

એટલા મટે, એ દુર્ગતિને વધારવાવાળા, વ્રતોની વિરાધનારૂપ દોષને

लक्षण विज्ञाय=अवबुध्य एकान्तम्=एकः=अद्वितीयः अन्तो=निश्चयो व्रतरक्षणविषयको मोक्षप्राप्तिविषयको वा एकान्तस्तम् आश्रितः=आस्थितो मुनिः वेशसामन्त=वेश्यापाटकगमन वर्जयेत्=परित्यजेत् ।

'वियाणित्ता' इत्यनेन सम्यगवबोधमन्तरेण दोषपरित्यागो याथातथ्येन न सभवतीति, 'एगतमस्सिए' इत्यनेन च मुनिना सतत मोक्षैकलक्ष्येण भवितव्यमिति सूचितम् ॥११॥

मार्गयतनामेव विशिष्याऽऽह-'साण' इत्यादि ।

मूलम्-साणं[२] सूइय[३] गाविं[४], दित्तं[१] गोण[५] हय[६] गय[७] ।
संडिब्भ[८] कलह[९] जुद्ध[१०], दूरओ[११] परिवज्जए[१२] ॥ १२ ॥

छाया-श्वान सूता गा, दृप्त गोण हय गजम् ।
सडिम्भ कलह युद्ध, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१२॥

साधु जहाँ भिक्षा के लिये न जावे उन स्थानों को विशेष रूपसे कहते हैं-

सान्वयार्थ.-साण=जहा काटनेवाला कुत्ता हो सूइय=थोडे कालकी व्याई हुई गावि=गाय हो दित्त=मदमस्त गोण=गोधा साण्ड अथवा बैल (और) हय=घोडा (अथवा) गय=हाथी हो (तथा) सडिम्भ=जहा बच्चे खेल रहे हों कलह=परस्पर वाग्युद्ध-गाली-गलोच-हो रहा हो जुद्ध=शस्त्र आदिसे युद्ध होता हो (ऐसे स्थानको साधु) दूरओ=दूरसे ही परिवज्जए=वर्जे, अर्थात् ऐसी जगह साधु

जानकर व्रतोकी रक्षा और मोक्षकी प्राप्तिके निश्चयमें स्थित मुनि वेश्याके पाडे (चकले)में भिक्षा आदिके लिए न जावे ।

'वियाणित्ता' पदसे यह सूचित किया है कि भलीभाँति जाने विना दोषका अच्छी तरह परित्याग नहीं हो सकता। 'एगतमस्सिए' पदसे यह प्रगट किया है कि मुनिको सदा मोक्षप्राप्तिका लक्ष्य रखना चाहिये ॥११॥

मार्गकी यतनाको विशेषरूपसे बताते हैं- 'साण०' इत्यादि ।

જાણીને વ્રતોની રક્ષા અને મોક્ષની પ્રાપ્તિના નિશ્ચયમા સ્થિત મુનિએ, વેશ્યાના મહોલ્લામા ભિક્ષા આદિને માટે જવુ નહિ

वियाणित्ता શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે-સારી રીતે જાણ્યા વિના દોષોનો સારી પેઠે પરિત્યાગ થઇ શકતો નથી एगतमस्सिए શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે મુનિએ સદા મોક્ષપ્રાપ્તિનુ લક્ષ્ય રાખવુ જોઇએ (૧૧)

માર્ગની યતનાને વિશેષરૂપે બતાવે છે साण० ઇત્યાદિ

कदापि गोचरी नहीं जावे । भावार्थ-ऐसे स्थानमें गोचरी जानेसे कुत्ते आदिके काटखाने आदिके कारण तथा पात्रे फूटजाने आहार गिरजाने आदि अनेक प्रकारसे संयम और आत्मा दोनोंकी विराधना होती है ॥१२॥

टीका-श्वानं कुक्कुरं, 'दृप्त'-मितीहाऽपकृष्य सम्बध्यते, तथाच-दृप्तम्=उद्धतदशनस्वभावम् उन्मादिनं चेत्यर्थः, नवप्रसूतशुन्या अप्युपलक्षणमेतत् । सूता=नवप्रसूता गां=सौरभेयीं, नवप्रसूतमहिष्या अप्युपलक्षणाद् ग्रहणम् , दृप्तं=चण्डस्वभावं गोणं=वृषभं, हयं=घोटकं, गजं=हस्तिनं च, संडिम्भं=शिशुक्रीडनस्थानं, कलहं=वाग्युद्धं, युद्धम्=दण्डादण्डि-शस्त्राशस्त्रि-प्रभृतिकम् दूरतः परिवर्जयेत् , आत्मसंयमोभयविराधनाहेतुत्वात् ॥१२॥

गमनप्रकारमाह-'अणुन्नए' इत्यादि ।

मूलम्-अणुन्नए[1] नावणए[2] अप्पहिट्ठे[3] अणाउले[4] ।
इंदियाइं[6] जहाभागं[7] दमइत्ता[8] मुणी[5] चरे[9] ॥१३॥

छाया-अनुन्नतो नावनतोऽप्रहृष्टोऽनाकुलः ।
इन्द्रियाणि यथाभागं, दमयित्वा मुनिश्चरेत् ॥१३॥

जहां उन्मत्त (पागल-हड़क्या) या काटनेवाला कुत्ता, नयी बियाई हुई (प्रसूता) कुतिया, नवप्रसूता गाय या नवप्रसूता भैंस आदि, मदोन्मत्त बैल, घोड़ा हाथी हों उस स्थानको, तथा बच्चोंके खेलनेके, कलह (मुँहकी लडाई) के और युद्ध (शस्त्रकी लडाई) के स्थानको साधु दूरसे त्यागे । अर्थात् जहाँ ये सब हो वहां न जावे-दूर ही रहे, क्योंकि इससे आत्मविराधना संयमविराधना और उभयविराधना होती है ॥१२॥

चलनेका प्रकार कहते हैं-'अणुन्नए०' इत्यादि ।

જ્યાં ઉન્મત્ત (ગાંડો-હડકાયો) અથવા કરડનારો કૂતરો, નવી વીયાયલી (પ્રસૂતા) કૂતરી નવપ્રસૂતા ગાય યા નવપ્રસૂતા ભેંશ આદિ, મદોન્મત્ત બળદ ઘોડા હાથી ઈત્યાદિ હોય તે સ્થાનને, તથા બાળકોએ રમવાના, કલહ (મ્હોંની લડાઈ)ના અને યુદ્ધ (શસ્ત્રની લડાઈ)ના સ્થાનને સાધુ દૂરથી જ ત્યાગે, અર્થાત્ જ્યાં એ બધાં હોય ત્યાં ન જાય-દૂર જ રહે, કારણ કે તેથી આત્મવિરાધના, સંયમવિરાધના અને ઉભયવિરાધના થાય છે (૧૨)

ચાલવાનો પ્રકાર કહે છે-અણુન્નએ૦ ઇત્યાદિ

गोचरी में घूमते हुए साधु को किस प्रकार की चेष्टा रखनी चाहिये सो बताते हैं-

सान्वयार्थः-मुणी=गोचरीमें घूमता हुआ साधु अणुन्नए=द्रव्यसे ऊंचा नहीं देखनेवाला, भावसे जात्यादिगर्वरहित नावणए=द्रव्यसे शरीरको अत्यन्त नहीं नमानेवाला, भावसे दीनतारहित अप्पहिट्ठे=मिलनेवाले आहार आदिके विचारसे रहित अणाउले=इष्ट अनिष्ट आहार आदिकी प्राप्ति होना न होना आदि व्याकुलतासे रहित (साधु) इंदियाइ=श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका जहाभाग=यथाक्रम अर्थात् जिस समय जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित हो उस समय उस इन्द्रियका दमइत्ता=दमन-निग्रह-करके चरे=विचरे ॥१३॥

टीका-अनुन्नतः-अनुच्छ्रितः, स च द्रव्यत ऊर्ध्वानवलोकयिता, भावतो जात्यादिगर्वरहितः, नावनतः=नातिप्रह्वः, स द्रव्यतो नातीवनताङ्ग, भावतो दैन्यरहितः। अप्रहृष्टः=अप्रमुदितः उपलप्स्यमानाहारवस्त्रपात्रादिभावनाजन्यप्रमोदरहित इत्यर्थः। अनाकुलः=अक्षुब्धः इष्टाऽलाभाऽनभीष्टलाभभावनाजनितमनःक्षोभवर्जित इत्यर्थः, मुनिः इन्द्रियाणि=श्रोत्रादीनि यथाभाग=भज्यते-सेव्यते इति भागः= विषयः, भागमनतिक्रम्य यथाभाग=यथाविषय यस्येन्द्रियस्य यो विषयः सम्प्राप्त स्तमनुसृत्येत्यर्थः, दमयित्वा=निगृह्य मनोज्ञा ऽमनोज्ञशब्दादिविषयेषु रागापरागपरित्याग कृत्वेत्यर्थः, चरेत्।

मार्गमे चलते समय साधु अनुन्नत अर्थात् द्रव्यसे ऊपरकी ओर न देखता हुआ, और भावसे जाति कुल आदिके अभिमानसे रहित, नावनत अर्थात् द्रव्यसे अत्यन्त न झुका हुआ, तथा भावसे दीनतारहित, अप्रहृष्ट अर्थात् मिलनेवाले आहार आदिके विचारसे प्रमोदरहित, अनाकुल अर्थात् इष्टकी अप्राप्ति तथा अनिष्टकी प्राप्तिके विचारसे उत्पन्न होनेवाली व्याकुलतासे रहित मुनि जहाँ जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित हो वहाँ उस इन्द्रियका दमन करके अर्थात् मनोज्ञविषयमें राग और अमनोज्ञ विषयमे द्वेषका परित्याग करता हुआ भिक्षा आदिके लिए विचरे।

માર્ગમા ચાલતી વખતે સાધુ અનુન્નત અર્થાત દ્રવ્યથી ઉપરની બાજુએ ન જોતા અને ભાવથી જાતિકુળના અભિમાનથી રહિત, નાવનત અર્થાત્ દ્રવ્યથી અત્યન્ત ન નમ્યા વિના તથા ભાવથી દીનતા રહિત અપ્રહૃષ્ટ અર્થાત મળવાના આહારાદિના વિચારથી પ્રમોદરહિત, અનાકુલ અર્થાત ઇષ્ટની અપ્રાપ્તિ તથા અનિષ્ટની પ્રાપ્તિના વિચારથી ઉત્પન્ન થનારી વ્યાકુળતાથી રહિત જ્યા જે ઇંદ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત હોય ત્યા તે ઇંદ્રિયનું દમન કરીને અર્થાત્ મનોજ્ઞ વિષયમા રાગ અને અમનોજ્ઞ વિષયમા દ્વેષનો પરિત્યાગ કરતા, ભિક્ષા આદિને માટે વિચરે

'अणुन्नए' 'नावणए' इत्येताभ्यामीर्यायतनाऽहङ्कारवर्जनदैन्यराहित्यानि सूचितानि। 'अप्पहिट्ठे' इत्यनेन माध्यस्थ्यं बोधितम्। 'अणाउले' इतिपदेन साधो रसलोलुपत्वं निराकृतम्। 'जहाभागं' इत्यनेन च यत्र यस्येन्द्रियस्य विषय भासितस्तत्र तस्यैव दमनं वास्तविकमिन्द्रियदमनं, न तु दर्शनविषये कर्णपिधानमित्यादि बोध्यम् ॥१३॥

मूलम्-दवदवस्स न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे।
हसंतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावयं सया ॥१४॥

छाया—द्रुतद्रुतस्य न गच्छेत्, भाषमाणश्च गोचरे।
हसन् नाभिगच्छेत्, कुलमुच्चावचं सदा ॥१४॥

सान्वयार्थः-गोयरे=भिक्षाचरीमें (साधु) दवदवस्स=अति शीघ्रतासे दडवड़ दौडता हुआ य=तथा भासमाणो=बोलता हुआ न गच्छेज्जा=नहीं चले (और) हसंतो=हँसता हुआ भी नाभिगच्छेज्जा=नहीं जावे, (तथा) उच्चावयं= उच्च-द्रव्यसे सप्तभूमिक महलोंवाले, भावसे-धन-धान्यादिसे समृद्ध, नीच-द्रव्यसे घासफूसकी झोंपडीवाले, भावसे धन-धान्यादिरहित कुलं=कुलमें सया=हमेशा जावे। (२श्रु १अ २उ.) आचाराङ्गसूत्रमें बताये हुए सब कुलोंमें भिक्षाके लिए जावे

'अणुन्नए' और 'नावणए' इन दो पदोंसे ईर्याकी यतना, अहङ्कारका परिहार और दीनताका त्याग सूचित किया है। 'अप्पहिट्ठे' पदसे मध्यस्थता प्रगट की है। 'अणाउले' पदसे साधुकी रसलोलुपताका निराकरण किया है। 'जहाभागं' पदसे यह प्रदर्शित किया है कि जहाँ जिस इन्द्रियका विषय उपस्थित हो वहाँ उसका दमन करना ही वास्तवमें इन्द्रियदमन कहलाता है, किन्तु चक्षुइन्द्रियका विषय उपस्थित होनेपर यदि कान मूँद लिए जायँ तो इन्द्रिय दमन नहीं कहला सकता, इत्यादि॥१३॥

अणुन्नए અને नावणए એ બે શબ્દોથી ઈર્યાની યતના અહંકારનો પરિહાર અને દીનતાનો ત્યાગ સૂચિત કર્યો છે अप्पहिट्ठे શબ્દથી મધ્યસ્થતા પ્રગટ કરી છે अणाउले શબ્દથી સાધુની રસલોલુપતાનું નિરાકરણ કર્યું છે जहाभागं શબ્દથી એમ પ્રદર્શિત કર્યું છે કે જ્યાં જે ઇંદ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત હોય ત્યાં તેનું દમન કરવું એજ વસ્તુતઃ ઇંદ્રિયદમન કહેવાય છે, કિંતુ ચક્ષુ ઇંદ્રિયનો વિષય ઉપસ્થિત થતાં જો કાન સંકોચવામાં આવે તો તે ઇંદ્રિયદમન કહેવાતું નથી ઇત્યાદિ (૧૩)

अर्थात् जिस समय जिस देशमें जो कुल दुगुंछित न हो उन सब कुलोंमें गोचरी जावे, साधुको चाहिए कि ईर्यासमिति सोधता हुआ रागद्वेषरहित होकर भिक्षाके लिए विचरे ॥१४॥

टीका—गोचरे=भिक्षाया भिक्षार्थमित्यर्थः, द्रुतद्रुतस्य=शीघ्र-शीघ्रम् 'दवदवे' त्यस्याव्ययत्वेऽप्यार्षत्वात्सविभक्तिकत्वम्, यद्वा क्रियाविशेषणत्वेन द्वितीयान्तत्व[1]स्यौचित्येऽप्यार्षत्वात्षष्ठ्यन्तत्वम्, न गच्छेत्=न यायात्। भाषमाणः=सलपन् च=तथा हसन्=हास्य कुर्वन् नाभिगच्छेत्। उच्चावचम्=उदक् च अवाक् च इत्युच्चावचम्-('मयूरव्यंसकादयश्च' (२।१।७२) इति निपातनात्समासः सिद्धिश्च) उच्चनीचात्मकमनेकविधमित्यर्थः। 'उच्चावच नैकभेद'-मित्यमरः। कुल=गृहम्[2]। तत्र द्रव्यत उच्चगृह-सप्तभूमिकप्रासादादिकम्, शारदशशाङ्क घनसार-हार-नीहार कुन्दावदातसुधोज्ज्वलहर्म्यादिक मोत्तुङ्गतोरणादिक च। भावत उच्चगृह—धनधान्यादि-

१ धातूपात्तभावना प्रति फलाशस्य कर्मीभूततया फलसामानाधिकरण्ये द्वितीया।
२ 'कुल जनपदे गोत्रे, सजातीयगणेऽपि च। भवने च तनौ क्लीब'-मिति मेदिनी॥

'दवदवस्स०' इत्यादि। साधु गोचरीके लिए जल्दी२ (दड़बड़२) न चले। बातचीत करता हुआ, तथा हँसता हुआ भी गमन न करे। उच्चनीच अर्थात् धनवान् और निर्धन आदिके कुलोंमें सदा भिक्षाके लिए जावे।

उच्च कुल दो प्रकारका है—(१) द्रव्यसे उच्च और (२) भावसे उच्च। (१) सतमंजिला आदि, शरदऋतुके चन्द्रमा, कपूर, हार, बर्फ, या कुन्द पुष्पके समान स्वच्छ, कलई (चूना) पोतनेसे जगमगाता हुआ, और जिसका फाटक खूब ऊंचा हो ऐसे महल आदि द्रव्य-उच्च कहलाते हैं।

(२) धन-धान्यरूपी सम्पत्तिसे समृद्ध कुल भावसे उच्च कहलाता है। नीचा कुल भी दो प्रकारका है—

दवदवस्स० ઇત્યાદિ સાધુ ગોચરીને માટે ઉતાવળો ઉતાવળો ન ચાલે વાત ચીત કરતો કે હસતો હસતો પણ ન ચાલે ઉચ્ચ નીચ અર્થાત્ ધનવાન નિર્ધન આદિના કુળોમા સદા ભિક્ષાને માટે જાય

ઉચ્ચકુળ બે પ્રકારના છે (૧) દ્રવ્યથી ઉચ્ચ અને (૨) ભાવથી ઉચ્ચ (૧) સાત મજલા હોય, શરદ્ઋતુનો ચદ્રમા કપૂર, (મોતીનો) હાર, બરફ યા કુદપુષ્પની પેઠે સ્વચ્છ (શ્વેત) હોય, ચૂનો ધોળવાથી ઝગમગતો હોય અને જેનું ફાટક ખૂબ ઉચુ હોય એવો મહેલ આદિ દ્રવ્ય-ઉચ્ચ કહેવાય છે (૨) ધન ધાન્યરૂપી સપત્તિથી સમૃદ્ધ કુળ ભાવથી ઉચ્ચ કહેવાય છે

નીચકુળ પણ બે પ્રકારના હોય છે—

सम्पदा समृद्धम् । द्रव्यतो नीचगृह-धनधान्यादिरहित दरिद्रगृहम्, सदा=सर्वदा अभिगच्छेत्=चरेत् ।

अथवा उच्चावचशब्देन उग्रकुलादीनि गृह्यन्ते, तथाहि—

'उग्गकुलाणि वा भोगकुलाणि वा राइन्नकुलाणि वा खत्तियकुलाणि वा इक्खागकुलाणि वा हरिवंसकुलाणि वा एसियकुलाणि वा वेसियकुलाणि वा गंडागकुलाणि वा कोट्टागकुलाणि वा गामरक्खकुलाणि वा बुक्कासकुलाणि वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु कुलेसु अदुगुछिएसु अगरहिएसु असण वा४ फासुय जाव पडिगाहिज्जा (सू. ११- आचाराङ्ग २ श्रु० १ अ. २ उ)।

अत्र 'अदुगुछिएसु' 'अगरहिएसु' इति पदाभ्या यस्मिन् समये यत्कुल मजुगुप्सितमगर्हित भवेत्तदा तस्मिन्नेव कुले गन्तव्यमिति बोध्यते ।

अत्र 'दवदवस्से'-त्यादिना षट्कायरक्षणविचक्षणता समाख्याता ।

---

(१) द्रव्यसे नीचा, और (२) भावसे नीचा ।

(१) वास, लकडी, घास, फूससे बनेहुए झोंपडेको द्रव्यसे नीचा कहते हैं । (२) धन-धान्य आदि सपत्तिसे रहित निर्धनके कुलको भावसे नीचा कहते हैं । इन सब प्रकारके घरोंमें साधु भिक्षाके लिए जावे ।

अथवा 'उच्चावच' शब्दसे उग्रकुलादि समझ लेना चाहिए । वे बारह प्रकारके कुल आचाराग सूत्रमें (२श्रु०१अ०२उ०सू ११मे) भगवानने कहे हैं । आचाराग सूत्रमे आये हुए 'अदुगुछिए' और 'अगरहिए' पदसे यह सूचित किया है कि जिस देश और जिस समयमे जो कुल अनिन्दित और अगर्हित हो उसमें मुनि, भिक्षाके लिए जावे ।

यहा 'दवदवस्स' इत्यादि पदसे षटकायकी रक्षामे सावधानी प्रगट की है ।

---

(१) દ્રવ્યથી નીચુ અને (૨) ભાવથી નીચુ (૧) વાસ, લાકડા, ઘાસ—પાદડાથી બનેલા ઝુપડાને દ્રવ્યથી નીચુ કહે છે (૨) ધન ધાન્યાદિ સપત્તિથી રહિત નિર્ધનના કુળને ભાવથી નીચુ કહે છે એ સર્વ પ્રકારના ઘરોમા સાધુ ભિક્ષાને માટે જાય

અથવા **उच्चावच** શબ્દથી ઉગ્રકુળાદિ સમજી લેવા જોઇએ એ બાર પ્રકારના કુળો આચારાગ સૂત્રમા (૨શ્રુ૦૧અ૨ઉ સૂ૦૧૧મા) ભગવાને કહ્યા છે આચારાગ સૂત્રમા આવેલા **अदुगुछिए** અને **अगरहिए** શબ્દોથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે જે દેશ અને જે સમયમા જે કુલ અનિદિત અને અગર્હિત હોય તેમા મુનિ ભિક્ષાને માટે જાય

અહીં **दवदवस्य** ઇત્યાદિ શબ્દોથી ષટ્કાયની રક્ષામા સાવધાની પ્રકટ કરી છે

'भासमाणो' पदेनैकस्मिन् समये कार्यद्वय सोपयोग निष्पत्तु न सभवतीति, 'हसतो' इत्यनेन गाम्भीर्यम् , 'उच्चावच०' इत्यादिना प्रतिबन्धराहित्य समतासाहित्य च द्योतितम् ॥१४॥

मूलम्–आलोअं थिग्गलं दारं, संधिं दगभवणाणि य ।
चरंतो न विणिज्झाए, संकट्ठाण विवज्जए ॥१५॥

छाया—आलोक थिग्गल द्वार, सन्धि दकभवनानि च ।
चरन् न विनिर्ध्यायेत्, शङ्कास्थान विवर्जयेत् ॥१५॥

सान्वयार्थः–चरंतो=भिक्षाके लिए घूमता हुआ साधु आलोयं=जाली-झरोखेकी तरफ थिग्गलं=ईंट आदिसे भरे हुए भींतके छिद्रकी तरफ दारं=दरवाजेकी तरफ संधिं=भींतकी सांधकी तरफ अथवा चोरोंद्वारा किये हुए भींतके छेदकी तरफ य=तथा दगभवणाणि=पलेण्डा आदिकी तरफ न विणिज्झाए=टक टकी लगाकर नहीं देखे, (क्योंकि ये सब) संकट्ठाणं=शङ्काके स्थान हैं, (इसलिए इन्हें) विवज्जए=विशेषरूपसे त्यागे । भावार्थ=ऐसे स्थानोंको देखनेसे गृहस्थको साधुके प्रति चोर लम्पट आदिका सन्देह उत्पन्न हो जाता है, तथा एपणाकी यथोचित शुद्धि भी नहीं होती ॥१५॥

टीका—'आलोअ०' इत्यादि । चरन्=भिक्षितु गच्छन् मुनिः आलोक=वातायनजालिकाप्रभृति, थिग्गलं=देशीयभाषया प्रसिद्ध भित्त्यामिष्टकादिरचितम् ,

'भासमाणो' पदसे यह प्रगट किया है कि एक ही साथ दो कार्य उपयोगपूर्वक नहीं हो सकते । 'हसतो' पदसे गंभीरता द्योतित की है और 'उच्चावय०' इत्यादि पदसे प्रतिबंध (नेसराय)–रहितता और समतासे सहितता प्रगट की है ॥१४॥

'आलोय०' इत्यादि । भिक्षा लेनेके निमित्त गमन करता हुआ मुनि झरोखा, जाली, भीत, दरवाजा, सेंध (चोरों द्वारा दीवार में किया

भासमाणो શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે એકીસાથે બે કાર્યો ઉપયોગપૂર્વક થઈ શકતા નથી हसतो શબ્દથી ગભીરતા પ્રકટ કરી છે અને उच्चावय ઇત્યાદિ શબ્દોથી પ્રતિબંધ (નેસરાય) રહિતતા અને સમતાથી સહિતતા પ્રકટ કરી છે (૧૪)

आलोय ઇત્યાદિ ભિક્ષાને માટે ગમન કરતો મુનિ ઝરૂખો, જાળી, ભીંત, દરવાજો, ચોરે પાડેલુ બાકુ (ખાતરીયાથી પાડેલુ બાકોરૂ) અને ઉદકભવન અર્થાત

द्वार=विवरम्, सन्धि=तस्करादिखातभित्तिभाग दकभवनानि=जलस्थानानि, 'च' ति समुच्चये, न=नैव विनिर्ध्यायेत्=सविशेष विलोकयेत्। यत एतानि (आलोकादीनि) शङ्कास्थानानि=साधोराचारविषयकसन्देहोत्पादकस्थानानि, सूत्रे जातावेकवचनम्, अतस्तानि विवर्जयेत=विशेषेण परित्यजेत् ॥१५॥

मूलम्–रन्नो गिहवईणं च, रहस्सारक्खियाण य।
सकिलेसकर ठाण, दूरओ परिवज्जए ॥ १६ ॥

छाया—राज्ञो गृहपतीना च, रहस्यमारक्षकाणा च।
सक्लेशकर स्थान, दूरतः परिवर्जयेत् ॥१६॥

सान्वयार्थः—रन्नो=चक्रवर्ती आदि राजा महाराजाओंके च=तथा गिहवईण=शेठ आदि सद्गृहस्थोंके च=और आरक्खियाण=नगरके रक्षक-कोतवाल आदिके रहस्स=सलाह करनेके एकान्त स्थानको (साधु) दूरओ=दूरहीसे परिवज्जए=त्यागे; (क्योंकि ऐसे) ठाणं=स्थान सकिलेसकर=असमाधिको पैदा करनेवाले होते हैं। भावार्थ=राजा आदिकोंके एकान्त स्थानकी तर्फ देखनेसे अथवा वहा जानेसे उनको साधुके प्रति क्रोध अश्रद्धा होना आदि अनेक दोषोंकी सभावना है ॥१६॥

टीका:—'रन्नो०' इत्यादि। राज्ञः=चक्रवर्द्धचक्रिप्रभृतेः, गृहपतीना=गृहस्वामिना श्रेष्ठ्यादीनाम् आरक्षकाणा=नगररक्षिणा च रहस्य=रहसि=एकान्ते भव

हुआ छेद-सन्धि) और उदकभवन अर्थात् परेंडा आदि की तरफ दृष्टि न डाले, क्योंकि ये शकास्थान हैं, इनकी ओर देखनेसे लोगोंको साधुके चारित्रमें सन्देह उत्पन्न होता है, अतएव इन शकास्थानोका विशेष रूपसे परित्याग करना चाहिए ॥१५॥

'रन्नो०' इत्यादि। जिस एकान्त भवनमें चक्रवर्ती, अर्द्धचक्री, माण्डलिक आदि राजा, श्रेष्ठी (सेठ) आदि गृहस्थ और नगरकी रक्षा

પાણીઆરાની તરફ દૃષ્ટિ ન નાખે, કારણ કે એ બધા શકાસ્થાનો છે તેની તરફ જોવાથી લોકોને સાધુના ચરિત્રમા સદેહ ઉત્પન્ન થાય છે તેથી એ શકાસ્થાનોનો વિશેષરૂપે પરિત્યાગ કરવો (૧૫)

रन्नो० ઇત્યાદિ, જે એકાન્ત ભવનમા ચક્રવર્તી, અર્ધચક્રી, માડલિક આદિ રાજા, શ્રેષ્ઠી (શેઠ) આદિ ગૃહસ્થ અને નગરની રક્ષા કરનારા (કોટવાળ) વગેરે સલાહ

रहस्य=मन्त्रगृहम्, सक्लेशकरम्=असमाधिजनक स्थान हेतुगर्भमिद विशेषण तथा च सक्लेशकरत्वादित्यर्थः, दूरतः परिवर्जयेत्=सर्वथा सत्यजेत् ॥१६॥

मूलम्-पडिकुट्ठं कुलं न पविसे, मामग परिवज्जए ।
अचियत्तं कुल न पविसे, चियत्तं पविसे कुल ॥१७॥

छाया—प्रतिक्रुष्ट कुल न प्रविशेत्, मामक परिवर्जयेत् ।
अचियत्त कुल न प्रविशेत्, चियत्त प्रविशेत्कुलम् ॥१७॥

सान्वयार्थः-पडिकुट्ठं=शास्त्रनिषिद्ध कुलं=कुल घर-में न पविसे=प्रवेश नहीं करे, मामगं=कृपणके घरको परिवज्जए=वरजे-नहीं जावे, अचियत्तं=प्रतीति-रहित अथवा प्रीतिरहित कुलं=कुल घर-में न पविसे=प्रवेश न करे, (किन्तु) चियत्तं=प्रतीति और प्रीतिवाले कुलं=घरमें पविसे=प्रवेश करे ॥१७॥

टीका—'पडिकुट्ठ०' इत्यादि । प्रतिक्रुष्ट=निषिद्ध, कुलं=गृह न प्रविशेत्, मामकं='मा मदीय गृह श्रमणाः प्रविशन्तु'-इति प्रतिषेधकारिणो गृह तथा-सामयिकव्याख्यादर्शनात्, परिवर्जयेत्। अचियत्त=देशीयशब्दोऽयम् अप्रीतिमत्, यत्र साधुप्रवेशेन गृहिणामप्रीतिर्भवेत् तत्, अप्रतीतिमद्वा अविश्वस्तमित्यर्थः, यत्र गमनेन परेषा साधुविषयेऽप्यविश्वासो भवेत्, तादृश कुल न प्रविशेत्,

करनेवाले (कोटवाल) आदि सलाह करते हों उस भवन को दूरहीसे त्यागे, क्योंकि ऐसे स्थान असमाधिको उत्पन्न करनेवाले होते हैं ॥१६॥

'पडिकुट्ठ' इत्यादि । शास्त्रोंमें निषेध किये हुए घर मे साधु प्रवेश न करे। जिसने अपने घरमे आनेका निषेध कर दिया हो कि 'श्रमण निर्ग्रन्थ हमारे घर पर न आवें' उन घरोंका भी साधु त्याग करे। साधु के प्रवेश करनेसे जिस घरवालेको अप्रीति उत्पन्न हो, या जिस कुलमें विश्वास न हो ऐसे कुलमें भी प्रवेश न करे, क्योंकि इससे

(મંત્રણા) કરતા હોય, એ ભવનને મુનિ દૂરથી જ ત્યાગે, કારણ કે એવા સ્થાનો અસમાધિને ઉત્પન્ન કરવાવાળા હોય છે (૧૬)

પડિકુટ્ઠ ઇત્યાદિ શાસ્ત્રોમા નિષેધ કરેલા ગૃહમા સાધુ પ્રવેશ ન કરે જેણે પોતાના ઘરમા આવવાનો નિષેધ કર્યો હોય કે 'શ્રમણ નિર્ગ્રન્થે અમારા ઘરમા આવવુ નહિ' એવા ઘરોનો પણ સાધુ ત્યાગ કરે સાધુએ પ્રવેશ કરવાથી જે ઘરવાળાને અપ્રીતિ ઉત્પન્ન થાય, યા જે કુળમા વિશ્વાસ ન હોય એવા કુળમા પણ સાધુ પ્રવેશ ન કરે, કારણ કે એથી સાધુપરથી બીજાઓનો પણ વિશ્વાસ

गृहस्थाना सस्क्लेशसम्भवात् । नन्वेत्र तर्हि कुत्र प्रविशेत्तदाह–चियत्त=प्रीतिमत्
प्रतीतिमद्वा कुल प्रविशेत् ॥१७॥

मूलम्–साणीपावारपिहियं, अप्पणा नावपंगुरे ।
कवाड नोपणुल्लिज्जा, उग्गहं सि अजाइया ॥१८॥

छाया—शाणी-प्रावारपिहितम् आत्मना नाऽपवृणुयात् ।
कपाट नो प्रणुदेत्, अवग्रह तस्याऽयाचित्वा ॥१८॥

सान्वयार्थः-सि (से)=उस गृहस्वामी की उग्गहं=आज्ञा अजाइया=लिये विना साणीपावारपिहियं=सन आदिके वने हुए परदेसे ढके हुए घरको अप्पणा=साधु खुद नावपंगुरे=नहीं खोले, (तथा) कवाडं=किवाडको भी नोपणुल्लिज्जा=नहीं उघाडे, तात्पर्य यह है कि गृहस्वामीको पूछकर ही उघाडना चाहिए ॥१८॥

टीका—'साणीपावार०' इत्यादि । तस्य=गृहस्वामिनः अवग्रह=निदेशम्, अयाचित्वा=अगृहीत्वा आज्ञामन्तरेणेत्यर्थः, शाणीप्रावारपिहित=शाणी=शणवल्कलनिर्मितजवनिका, प्रावारः=ऊर्णादिरचितकम्बलादिस्ताभ्या पिहितम्=आवृतम्, यद्वा शणीप्रावारेण=शणरचितपरदया[1] स्थगित 'द्वार'-मितिशेषः, आत्मना=स्वयम् न अपवृणुयात्=नापसारयेत् । तथा कपाटम्=अररम् 'किवाडे'-ति भाषाप्रसिद्ध नो प्रणुदेद्=न प्रेरयेत् नोद्घाटयेदित्यर्थः, तदुद्घाटनस्य स्नानभोजनादिसमासक्तना

१ परदा–परान्=परपुरुषान् दर्शनादानेन द्यति=खण्डयतीति परदा ।

दूसरोंका साधुपरसे भी विश्वास हट जाता है । साधु उस घरमे प्रवेश करे जिसमें प्रवेश करनेसे गृहस्थको प्रीति और विश्वास हो ॥१७॥

'साणीपावार' इत्यादि । गृहस्वामीकी आज्ञा लिये विना टट्टर या कम्बल आदि किसी वस्तुसे ढँके हुए या सनके परदासे वद द्वारको तथा किवाडको स्वय न खोले, क्योंकि ऐसा करना स्नानादि

હઠી જાય છે સાધુ એ ઘરમા પ્રવેશ કરે કે જેમા પ્રવેશ કરવાથી ગૃહસ્થને પ્રીતિ અને વિશ્વાસ ઉપજે (૧૭)

साणीपावार० ઇત્યાદિ ગૃહસ્વામીની આજ્ઞા લીધા વિના ટાટ યા કામળી આદિ કોઇ વસ્તુથી ઢાંકેલુ યા સણના પડદાથી બધ કરેલુ એવુ દ્વાર તથા કમાડ, સાધુ પોતે ન ઉઘાડે, કારણ કે એમ કરવુ એ સ્નાનાદિ કરતી સ્ત્રી આદિને

स्त्र्यादीनामप्रतीतिकारणत्वात्, तादृशव्यवहारानौचित्याच्च, तस्मादावश्यकतायां तत्स्वामिनं पृष्ट्वैवोद्घाटयेदिति भावः ॥१८॥

मूलम्-गोयरग्गपविट्ठो य, वच्च-मुत्तं न धारए।
ओगासं फासुअं नच्चा, अणुन्नविअ वोसिरे ॥१९॥

छाया-गोचराग्रप्रविष्टश्च, वर्चो-मूत्रं न धारयेत्।
अवकाशं प्रासुकं ज्ञात्वा, अनुज्ञाप्य व्युत्सृजेत् ॥१९॥

सान्वयार्थः-गोयरग्गपविट्ठो=गोचरीमें गया हुआ मुनि वच्च-मुत्तं=मल और मूत्रको न धारए=नहीं रोके अर्थात् मल-मूत्र-की बाधा उपस्थित होनेपर उनके वेगका अवरोध न करे, (किन्तु) फासुयं=प्रासुक-जीवरहित ओगासं=स्थण्डिल-भूमिको नच्चा=जानकर अणुन्नविय=गृहस्थकी आज्ञा लेकर वोसिरे=मल मूत्रका त्याग करे ॥१९॥

टीका—'गोयरग्ग०' इत्यादि। पूर्वं निवृत्तबाधोऽपि गोचराग्रप्रविष्टो मुनिः पुनस्तद्बाधायामुपस्थितायां वर्चो-मूत्रं=मलं प्रस्रावं च न धारयेत्=नावरुन्ध्यात्। यत उक्तम्—

"जओ मुत्तनिरोहे चक्खुवघाओ भवति, वच्चनिरोहे जीवियोवघाओ

करती हुई स्त्री आदिको अप्रतीतिका कारण है, तथा लोकव्यवहारसे भी अनुचित है, अतः आवश्यकता होने पर उसके स्वामीको पूछ करके ही किवाड परदा आदि खोलना चाहिए ॥१८॥

'गोयरग्ग०' इत्यादि। गोचरी जानेके पहले लघुनीत और बडीनीतकी शंकाको निवृत्त करलेने पर भी यदि गोचरीके लिए चले जाने पर पुनः लघुशंका आदि की शंका होजाय तो मल-मूत्र को रोके नहीं, क्योंकि कहा है-

"मूत्रके निरोध करने से नेत्रोंको हानि होती है और मलका

અપ્રતીતિનું કારણ બને છે, તથા લોકવ્યવહારથી પણ અનુચિત છે તેથી જરૂર પડતા તેના સ્વામીને પૂછી લઈને જ કમાડ પડદો આદિ ખોલવા જોઈએ (૧૮)

ગોયરગ્ગ૦ ઇત્યાદિ ગોચરીએ જવા પહેલા લઘુનીતિ અને વડીનીતિની શંકાને નિવૃત્ત કરવા છતા પણ જો ગોચરી માટે નીકળી ગયા પછી ફરી લઘુ શંકા આદિની શંકા થઈ જાય તો મળમૂત્રને રોકવા નહિ, કારણ કે કહ્યું છે કે–

'મૂત્રનો નિરોધ કરવાથી નેત્રોને હાની થાય છે અને મળનો નિરોધ કરવાથી

गृहस्थानां सक्लेशसम्भवात्। नन्वेवं तर्हि कुत्र प्रविशेत्तदाह-चियत्त=प्रीतिमत् प्रतीतिमद्वा कुलं प्रविशेत् ॥१७॥

मूलम्-साणीपावारपिहियं, अप्पणा नावपंगुरे।
कवाडं नोपणुल्लिज्जा, उग्गहं सि अजाइया ॥१८॥

छाया--शाणी प्रावारपिहितम् आत्मना नाऽपवृणुयात्।
कपाटं नो प्रणुदेत्, अवग्रहं तस्याऽयाचित्वा ॥१८॥

सान्वयार्थः-सि (से)=उस गृहस्वामी की उग्गहं=आज्ञा अजाइया=लिये विना साणीपावारपिहियं=सन आदिके बने हुए परदेसे ढके हुए घरको अप्पणा=साधु खुद नावपंगुरे=नहीं खोले, (तथा) कवाडं=किवाडको भी नोपणुल्लिज्जा=नहीं उघाडे, तात्पर्य यह है कि गृहस्वामीको पूछकर ही उघाडना चाहिए ॥१८॥

टीका--'साणीपावार०' इत्यादि। तस्य=गृहस्वामिनः अवग्रहं=निदेशम्, अयाचित्वा=अगृहीत्वा आज्ञामन्तरेणेत्यर्थः, शाणीप्रावारपिहितं=शाणी=शणवल्कलनिर्मितजवनिका, प्रावारः=ऊर्णादिरचितकम्बलादिस्ताभ्यां पिहितम्=आवृतम्, यद्वा शणीप्रावारेण=शणरचितपरदया[1] स्थगितं 'द्वार'-मितिशेषः, आत्मना=स्वयम् न अपवृणुयात्=नापसारयेत्। तथा कपाटम्=अररम् 'किवाडे' ति भाषाप्रसिद्धं नो प्रणुदेत्=न प्रेरयेत् नोद्घाटयेदित्यर्थः, तदुद्घाटनस्य स्नानभोजनादिसमासक्ताना

१ परदा-परान्=परपुरुषान् दर्शनादानेन द्यति=खण्डयतीति परदा।

दूसरोंका साधुपरसे भी विश्वास हट जाता है। साधु उस घरमें प्रवेश करे जिसमें प्रवेश करनेसे गृहस्थको प्रीति और विश्वास हो ॥१७॥

'साणीपावार' इत्यादि। गृहस्वामीकी आज्ञा लिये विना टट्टर या कम्बल आदि किसी वस्तुसे ढँके हुए या सनके परदासे बंद द्वारको तथा किवाडको स्वयं न खोले, क्योंकि ऐसा करना स्नानादि

હઠી જાય છે સાધુ એ ઘરમાં પ્રવેશ કરે કે જેમાં પ્રવેશ કરવાથી ગૃહસ્થને પ્રીતિ અને વિશ્વાસ ઉપજે (૧૭)

साणीपावार० ઇત્યાદિ ગૃહસ્વામીની આજ્ઞા લીધા વિના ટાટ યા કામળી આદિ કોઈ વસ્તુથી ઢાંકેલું યા સણના પડદાથી બંધ કરેલું એવું દ્વાર તથા કમાડ, સાધુ પોતે ન ખોલે, કારણ કે એમ કરવું એ સ્નાનાદિ કરતી સ્ત્રી આદિને

नेत्याह-यत्र=यस्मिन् कोष्ठकादौ, अचक्षुर्विषयः=अत्र 'अ' 'चक्षुर्विषयः' इति पृथक् पदद्वयं, तत्र 'अ' इति निपातो नञर्थकः 'अभावे नह्य-ऽ-नो-नाऽपी'-त्यमरात्, तथाच-चक्षुर्विषयः=चक्षुरिन्द्रियजन्यव्यापारप्रसरः अ=न भवेदिति शेषः, ततः किमित्याह-प्राणाः=द्वीन्द्रियादयः दुष्प्रतिलेखकाः=दुर्निरीक्ष्या'भवन्ती'-ति शेषः, तत्र भिक्षां गृह्णतः साधोरीर्यै-षणयोः शुद्धिर्न जायते ॥२०॥

१ ३ ४ ५ २

मूलम्-जत्थ पुप्फाइं बीयाइ, विप्पइन्नाइं कुट्टए ।

६ ७ ८ ९ १०

अहुणोवलित्तं उल्लं, दट्ठूण परिवज्जए ॥ २१ ॥

छाया—यत्र पुष्पाणि बीजानि, विप्रकीर्णानि कोष्ठके ।
अधुनोपलिप्तमार्द्रं, दृष्ट्वा परिवर्जयेत् ॥२१॥

सान्वयार्थः-जत्थ=जिस कुट्टए=कोठेमें पुप्फाइ=फूल (और) बीयाइ=बीज विप्पइन्नाइं=बिखरे हुए हों उस कोठेको, तथा अहुणोवलित्त=तुरन्तके लिपे हुए उल्लं=गीले कोठेको दट्ठूण=देखकर परिवज्जए=वरजे ॥२१॥

टीका—'जत्थ' इत्यादि । यत्र कोष्ठके गृहे वा सचित्तानि पुष्पाणि बीजानि वा विप्रकीर्णानि=इतस्ततः प्रसृतानि भवेयुः, यद्वा तत्काललिप्तमत एवार्द्रं कोष्ठकादि तत् साधुः परिवर्जयेत्=तत्र न गच्छेदित्यर्थः ॥२१॥

ग्रहण न करे। तात्पर्य यह है कि जिस कोठेमें अन्धकारके कारण नेत्रोंकी प्रवृत्ति न होती हो, और इसीलिए द्वीन्द्रिय प्राणी सरलतासे दिखाई न देते हों उसमें भिक्षा लेनेसे ईर्या और एषणा की शुद्धि नहीं होती ॥२०॥

'जत्थ पुप्फाइ॰ इत्यादि। जिस कोठे आदिमें सचित्त पुष्प सचित्त बीज बिखरे हुए हों, तथा तत्काल लिपनेसे जो गीला हो उस कोठे या अन्य-गृह आदिमें प्रवेश न करे ॥२१॥

છે કે જે ઓરડામા અધકારને કારણે નેત્રો કામ ન કરી શકતા હોય અને તેથી કરીને દ્વીન્દ્રિયાદિ પ્રાણી સહેલાઈથી ન જોઈ શકાતા હોય તેમા ભિક્ષા લેવાથી સાધુની ઈર્યા તથા એષણાની શુદ્ધિ જળવાતી નથી (૨૦)

जत्थ पुप्फाइ॰ ઇત્યાદિ જે ઓરડા આદિમા સચિત્ત પુષ્પ સચિત્ત બીજ વેરાયલા હોય તથા તત્કાળ લીંપવામા આવ્યો હોવાથી લીલો હોય તે ઓરડામા યા ગૃહાદિમા પ્રવેશ ન કરવો (૨૧)

असोहणा य आयविराहणा इत्यादि।

नन्वेवं तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह-प्रासुकः=निर्जन्तुकं निरवद्यमित्यर्थः, अवकाशं=स्थण्डिलं ज्ञात्वा, अनुज्ञाप्य=गृहस्थं सम्पृच्छ्य तदाज्ञामादायेत्यर्थः, व्युत्सृजेत्=परित्यजेत् ॥१९॥

मूलम्-णीयदुवारं तमसं कुट्टगं परिवज्जए।
अचक्खुविसओ जत्थ, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥२०॥

छाया—नीचद्वारं तामसं, कोष्ठकं परिवर्जयेत्।
अचक्षुर्विषयो यत्र, प्राणाः दुष्प्रतिलेखकाः ॥२०॥

सान्वयार्थः-णीयदुवारं=नीचे द्वारवाले तमसं=प्रकाशरहित कुट्टगं=कोठेको परिवज्जए=वरजे अर्थात् वहां आहार-पानी नहीं लेवे, क्योंकि जत्थ=जहां अचक्खुविसओ=आँखका प्रसार नहीं होता (वहां) पाणा=द्वीन्द्रिय आदि प्राणियोंका दुप्पडिलेहगा=प्रतिलेखन नहीं हो सकता ॥२०॥

टीका—'णीयदुवार०' इत्यादि। नीचद्वारं=नीचं=निम्नं द्वारं=प्रवेश-निर्गममार्गो यस्य स तं तथोक्तम्, तादृशप्रदेशे प्रवेश-निर्गमाभ्यामात्मसंयमविराधनायाः संभवात्, तामसम्=तमोयुक्तमप्रकाशमित्यर्थः, कोष्ठकं=गृहाभ्यन्तरमपवरकादिकं परिवर्जयेत् न तत्राऽऽहारादिकं गृह्णीयादित्यर्थः। किं सामान्येनायं निषेधः?

निरोध करने से जीवन को हानि पहुंचती है, तथा बुरी तरह आत्म-विराधना होती है।"

तो क्या करे सो बताते हैं-जीवरहित (निरवद्य) स्थान देखकर गृहस्थकी आज्ञा लेकर उस स्थानमें मल मूत्रका त्याग करे ॥१९॥

'णीयदुवार०' इत्यादि। नीचे द्वारवाले कोठेमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिये, क्योंकि उसमें जाने आनेसे आत्मा और संयमकी विराधनाका संभव है। तथा अन्धकारयुक्त कोठेमें भी आहार आदि

જીવનને હાનિ પહોંચે છે, અને ખરાબ રીતે આત્મ વિરાધના થાય છે,'

તો શું કરવું, તે હવે બતાવે છે-જીવરહિત (નિરવદ્ય) સ્થાન જોઈને ગૃહસ્થની આજ્ઞા લઈને એ સ્થાનમાં મળ મૂત્રનો ત્યાગ કરે (૧૯)

णीयदुवार ઇત્યાદિ નીચા દ્વારવાળા ઓરડામાં ભિક્ષાને માટે ન જવું, કારણ કે તેમાં જવા આવવાથી આત્મા અને સંયમની વિરાધનાનો સંભવ છે તથા અંધકારયુક્ત ઓરડામાં પણ આહાર આદિ ગ્રહણ ન કરવા, તાત્પર્ય એ

प्रलोकेत=पश्येत्, अन्यथा रागादिसम्भवात्। अतिदूर=दातुरागमनप्रदेशात्पर नावलोकेत, साधौ तस्करतादिशङ्कासम्भवात्। उत्फुल्लं=स्मेरं यथा स्यात्तथा नेत्रे विस्फार्येत्यर्थः न विनिर्ध्यायेत्=न पश्येत्। कदाचिद्भिक्षाया अलाभे अजल्पन्= दैन्योपालम्भवचनानि अब्रुवन् निवर्त्तेत=प्रत्यावर्त्तेत।

'असंसत्त' इति पदेन दृष्ट्यनुरागोऽपाकृतः। 'नाइदूरा०' इत्यादिना साधौ चौरत्वाद्याशङ्का निराकृता। 'उप्फुल्ल०' इत्यादिना, वराकेणानेन साधुना नावलोकितो नाप्यनुभूत एतादृशो विभवोऽतोऽय दीनः' इत्याद्याशङ्का व्युदस्ता ॥२३॥

३ ४ ५ १ २
मूलम्–अइभूमिं न गच्छिज्जा, गोयरग्गगओ मुणी।
६ ७ ८ ९ १० ११
कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मियं भूमिं परक्कमे ॥२४॥

अवलोकन न करे। दाता जिस स्थानसे आता हो उस स्थानसे ज्यादा दूर न देखे, क्योंकि दूर तक देखनेसे किसीको ऐसी शका हो जाय कि 'यह चोर है' इत्यादि। किसी पदार्थकी ओर आखें फाड-फाड़ कर न देखे। यदि भिक्षाकी प्राप्ति न हो तो दीन वचन न बोले-न बडबडावे, किन्तु मौनसहित पीछा फिर जावे।

'असंसत्त' पदसे नेत्रविषयक अनुराग का त्याग प्रगट किया है। 'नाइदूरा०' इत्यादि पदसे यह सूचित किया है कि साधुको ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे किसीको चोर आदि होनेका सन्देह न हो। 'उप्फुल्ल०' इत्यादि पदसे इस सन्देह को दूर किया है कि कोई यह न समझे कि–'अरे! इस बेचारे साधुने ऐसी विभूति न कभी देखी है और न कभी भोगी है इसलिए यह बडा दीन है ॥२३॥

દાતા જે સ્થાનમાંથી આવતો હોય એ સ્થાનથી વધારે દૂર ન જોવું, કારણ કે દૂર સુધી જોવાથી કોઈને એવી શંકા આવી જાય કે 'આ ચોર છે' ઈત્યાદિ જો ભિક્ષાની પ્રાપ્તિ ન થાય તો દીન વચન ન બોલવાં, કે ન બડબડવું, પરન્તુ મૌનસહિત પાછા ફરવું

असंसत्त० શબ્દથી નેત્રવિષયક અનુરાગનો ત્યાગ પ્રકટ કર્યો છે नाइदूरा० ઈત્યાદિથી એમ સૂચિત કરવામાં આવ્યું છે કે સાધુએ એવું આચરણ કરવું જોઈએ કે જેથી કોઈને ચોર આદિ હોવાનો સંદેહ ન પડે उप्फुल्ल० ઈત્યાદિ શબ્દથી એ સંદેહ દૂર કર્યો છે કે કોઈ એમ ન સમજે કે 'અરે! આ બિચારા સાધુએ એવી વિભૂતિ નથી કોઈવાર જોઈ અને નથી કોઈવાર ભોગવી તેથી એ બહુ જ દીન છે (૨૩)

२ ३ ४ ५ ६ १०
मूलम्-एलग दारग साणं, वच्छगं चावि कोट्टए ।
७ ११ १२ ८ ९ १
उल्लंघिया न पविसे, विउहित्ताण व संजए ॥ २२ ॥

छाया—एडकं दारकं श्वानं, वत्सकं वाऽपि कोष्ठके ।
उल्लङ्घ्य न प्रविशेत्, व्यूह्य वा संयतः ॥२२॥

सान्वयार्थः-एलग=भेड दारक=बालक साण=कुत्ते वच्छग=बछडे अपिवा=इस प्रकार दूसरे अर्थात् बकरा-बकरी पाडा-पाडी आदिको उल्लंघिया=लांघ करके, वा=अथवा विउहित्ताण=हाथ आदिसे हटाकर संजए=साधु कोट्टए=कोठे-घर-में न पविसे=प्रवेश नहीं करे ॥२२॥

टीका—'एलग' इत्यादि । संयतः=भिक्षुः, एडकम्=मड्डकं, दारकम्=अर्भकम्=श्वानं=कुक्कुरं, वत्सकं=गोशिशुं वा, अपिशब्दादजामहिष्यादिशिशुग्रहणम्, उल्लङ्घ्य=अतिक्रम्य व्यूह्य=अपोह्य हस्तादिनाऽपसार्येत्यर्थः, कोष्ठके न प्रविशेत् ॥२२॥

१ २ ४ ३ ५
मूलम्-असंसत्तं पलोइज्जा, नाइदूरावलोयए ।
६ ७ ८ १० ९
उप्फुल्लं न विणिज्झाए, नियट्टिज्ज अयंपिरो ॥२३॥

छाया—असंसक्तं प्रलोकेत, नातिदूरमवलोकेत ।
उत्फुल्लं न विनिध्यायेत् निवर्त्तेताऽजल्पन् ॥२३॥

सान्वयार्थः-असंसत्तं=आसक्तिरहित होकर पलोइज्जा=देखे अर्थात् रागादि पूर्वक किसीको न देखे, नाइदूरावलोयए=अत्यन्त दूर दृष्टि डालकर लम्बी दृष्टिसे न देखे तथा उप्फुल्लं=आँखें फाड-फाडकर अथवा मुसकराता हुआ टकटकी लगाकर नविणिज्झाए=नहीं देखे, (भिक्षाकी प्राप्ति न हो तो) अयंपिरो=कुछभी नहीं बोलता हुआ अर्थात् बडबडाहट नहीं करता हुआ वहांसे नियट्टिज्ज=वापस लौट जावे ॥२३॥

टीका—'असंसत्त०' इत्यादि । असंसक्तम्=आसक्तिरहितं यथास्यात्तथा

'एलग०' इत्यादि । भेड तथा बकरा, बालक, कुत्ता, बछडा तथा पाडा-पाडी आदिका उल्लंघन करके, अथवा उनको हाथ आदिसे हटाकर साधु कोठे आदिमें प्रवेश न करे ॥२२॥

'असंसत्त०' इत्यादि । आसक्त होकर रागादिपूर्वक किसीका

एलग० ઈત્યાદિ ઘેટું તથા બકરૂ, બાળક, કૂતરૂ, વાછડો તથા પાડા પાડી આદિને ઓળંગીને અથવા તેને હાથ આદિથી હઠાવીને સાધુ ઓરડામાં પ્રવેશ ન કરે (૨૨)

असंसत्त० ઈત્યાદિ આસક્ત થઈને રાગાદિપૂર્વક કોઈનું અવલોકન ન કરવું

भूमिको पूजकर खडा रहे और सिणाणस्स=स्नानघरकी तर्फ य=तथा वच्चस्स= टट्टी-पेशाब घरकी तर्फ सलोग=दृष्टि परिवज्जए=न डाले ॥२५॥

टीका—'तत्थेव०' इत्यादि। विचक्षणः=निपुणः तत्रैव=स्वाधिष्ठानस्थान एव भूमिभाग प्रतिलिखेत्=सपश्येत्, स्नानस्य=स्नानगृहस्य वर्चसः=वर्चोगृहस्य च मलपरित्यागगृहस्येत्यर्थः, सलोकं=प्रेक्षण परिवर्जयेत्। 'विअक्खणो' इत्यनेनाऽगीतार्थस्य स्वतन्त्रतया गोचरीगमन निषिद्धम्। 'सिणाणस्स' इत्यादिना च नग्नस्त्र्यादिदर्शनाद्रागादिसभव इति सूचितम् ॥२५॥

मूलम्-दगमट्टियआयाणे, बीयाणि हरियाणि य।
परिवज्जतो चिट्ठिज्जा, सव्विदियसमाहिए ॥२६॥

छाया—दकमृत्तिकाऽऽदान, बीजानि हरितानि च ॥
परिवर्जयस्तिष्ठेत्, सर्वेन्द्रियसमाहितः ॥२६॥

सान्वयार्थ.-(और वहाभी) दगमट्टियआयाणे=सचित्त जल और मिट्टीयुक्त मार्गको बीयाणि=शालि आदि बीजोको य=और हरियाणि=हरित कायको परिवज्जतो=वरजता हुआ अर्थात् उससे हटकर सव्विंदियसमाहिए=सब इन्द्रियोको गोपता हुआ चिट्ठिज्जा=खडा रहे ॥२६॥

'तत्थेव०' इत्यादि। विचक्षण भिक्षु जिस मर्यादित भूमिपर खडा है वहाँके भूमिभागका प्रतिलेखन करे, स्नानघर तथा उच्चार आदिके स्थानकी ओर दृष्टि न डाले। 'वियक्खणो' पदसे अगीतार्थ साधुको स्वतन्त्र गोचरी करनेका निषेध किया गया है। 'सिणाणस्स' इत्यादि पदोंसे-'नग्नस्त्री आदि दीखजानेके कारण रागादि भाव उत्पन्न होना सभव है' यह सूचित किया गया है ॥२५॥

तत्थेव० ઇત્યાદિ વિચક્ષણ ભિક્ષુ જે મર્યાદિત ભૂમિ પર ઊભો હોય ત્યાના ભૂમિભાગનું પ્રતિલેખન કરે, સ્નાન-ઘર તથા ઉચ્ચાર આદિના સ્થાન (જાજરૂ)ની તરફ દૃષ્ટિ ન ફેકે वियक्खणो શબ્દથી અગીતાર્થ સાધુને સ્વતંત્ર ગોચરી કરવાનો નિષેધ કરવામા આવ્યો છે सिणाणस्स ઈત્યાદિ પદોથી 'નગ્ન સ્ત્રી આદિ દેખાઇ જવાને કારણે રાગાદિ ભાવ ઉત્પન્ન થવાનો સભવ છે'-એમ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે (૨૫)

छाया—अतिभूमिं न गच्छेत्, गोचराग्रगतो मुनिः ।
कुलस्य भूमिं ज्ञात्वा, मितां भूमिं पराक्रामेत् ॥२४॥

सान्वयार्थः-गोयरग्गगओ=गोचरीमें गया हुआ मुणी=साधु अइभूमिं=गृहस्थकी मर्यादित भूमिसे अगाडी उसकी आज्ञाके बिना न गच्छिज्जा=नहीं जावे, (किन्तु) कुलस्स=गृहस्थके घरकी भूमिं=मर्यादित भूमिको जाणित्ता=जानकर मियं भूमिं=जिस घरमें जहांतक जानेकी मर्यादा हो वहांतक ही परक्कमे=जावे ॥२४॥

टीका-'अइभूमिं०' इत्यादि। गोचराग्रगतो मुनिः अतिभूमिं=परमवेशाय गृहस्थाननुमतां भूमिमतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य न गच्छेत्। तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह-कुलस्य भूमिं=मर्यादां स्थित्यवधिं ज्ञात्वा मितां=परिच्छिन्नां स्वावस्थानयोग्यां भूमिं=स्थानं पराक्रामेत्=गत्वा तिष्ठेत्, विपरीताचरणे हि गृहस्थरोषादिसम्भवः ॥२४॥

मूलम्-तत्थेव पडिलेहिज्जा, भूमिभागं वियक्खणो ।
सिणाणस्स य वच्चस्स, संलोगं परिवज्जए ॥२५॥

छाया—तत्रैव प्रतिलिखेत्, भूमिभागं विचक्षणः ।
स्नानस्य च वर्चसः, संलोकं परिवर्जयेत् ॥२५॥

सान्वयार्थः-तत्थेव=जिस मर्यादित भूमिपर खडा है उसी भूमिभागं=भूमिभागको वियक्खणो=विचक्षण साधु पडिलेहिज्जा=प्रतिलेखन करे, अर्थात् वहांकी

'अइभूमिं०' इत्यादि। जिस घरमें भूमिकी जितनी मर्यादा हो उसे उल्लंघन करके मुनि गृहस्थकी आज्ञा बिना आगे नहीं जावे, किन्तु उस कुलकी मर्यादाको जानकर गमन करने योग्य परिमित स्थान तकही जाकर खडा हो जाय-अर्थात् किसीकी मर्यादाका उल्लंघन न करे। इसके विपरीत आचरण करनेसे गृहस्थको क्रोध आने आदिकी संभावना रहती है ॥२४॥

અઇભૂમિં૦ ઇત્યાદિ જે ઘરમાં ભૂમિની જેટલી મર્યાદા હોય એને ઉલ્લંઘીને મુનિ ગૃહસ્થની આજ્ઞા વિના આગળ ન જાય, પરન્તુ એ કુળની મર્યાદાને જાણીને ગમન કરવા યોગ્ય પરિમિત સ્થાન સુધી જ જઈને ઊભો રહે, અર્થાત્-કોઈની મર્યાદાનું ઉલ્લંઘન ન કરે, એથી વિપરીત આચરણ કરવાથી ગૃહસ્થને ક્રોધ આદિ ઉત્પન્ન થવાની સંભાવના રહે છે (૨૪)

गृहिण्यादिः पानभोजन=पान-पेय तिलतण्डुलादिधावनजलम् भोजन=भोज्यमन्ना-दिकम् आहरेत्=उपनयेत्-दद्यादित्यर्थः। तत्राय विशेषः=उपनतेषु पानभोजनादिषु अकल्पिक=कल्पितुमयोग्यमनेषणीयमित्यर्थं, न गृह्णीयात्=नाददीत, कल्पिक= कल्प्य निरवद्य प्रतिगृह्णीयात् ॥२७॥

मूलम्-आहरती सिया तत्थ, परिसाडिज्ज भोयण।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ २८ ॥

छाया-आहरन्ती स्यात्तत्र, भोजन परिशाटयेत्।
ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥२८॥

सान्वयार्थः-और-आहरती=आहार-पानी देती हुई वह-दात्री सिया=कदा-चित् अगर तत्थ=वहा भोयण=भोजन-पान परिसाडिज्ज=नीचे गिरावे तो दितिय=देती-हुई उस बाईसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहार-पानी मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥२८॥

टीका-'आहरती०' इत्यादि। आहरन्ती=भिक्षामानीय ददती गृहिणी स्यात्=कदाचित् तत्र स्थाने भोजनम्=आहार परिशाटयेत्=इतस्ततो विकिरेत् जानुप्रमाणोच्चप्रदेशात् कणादिमात्रमपि, तदधःप्रदेशाच्च निरन्तर पातयेदिति वृद्धाः, तदा ददतीं प्रति भिक्षुः आचक्षीत=ब्रूयात्, तादृशम्=उक्तप्रकारकमन्नादिक मे= मम न कल्पते=न-युज्यते न ग्राह्यमिति भावः।

आदि तिल तण्डुल आदिका धोवन, तथा अन्नादिक देवे तो उनमेसे अकल्पनीय (अनेषणीय) पदार्थोंका ग्रहण न करे, कल्पनीयका ग्रहण करे ॥ २७ ॥

'आहरती' इत्यादि। अशनादि देते समय दाताके हाथसे घुटनेसे ऊपरके प्रदेशसे यदि एक भी कण गिर जाय, अथवा घुटनेसे नीचेके प्रदेशसे निरन्तर गिर रहा हो तो भिक्षु दातासे कहे कि ऐसा अन्नादिक मेरे लिए ग्राह्य नहीं है।

તલ તંદુલ (ચોખા) આદિનું ધોવણ તથા અન્નાદિક આપે તો એમાથી અકલ્પનીય (અનેષણીય) પદાર્થોને ગ્રહણ ન કરે, કલ્પનીયને ગ્રહણ કરે (૨૭)

आहरती० ઇત્યાદિ અશનાદિ દેતી વખતે દાતાના હાથમાથી ઘુંટણની ઉપરના પ્રદેશથી જો એક પણ કણ પડી જાય, અથવા ઘુંટણથી નીચેના પ્રદેશથી નિરતર પડી રહ્યું હોય તો ભિક્ષુ દાતાને કહે કે એવા અશનાદિ મારે ગ્રાહ્ય નથી

टीका—'दगमट्टिय०' इत्यादि। 'दकमृत्तिकाऽऽदान=दक च मृत्तिका चेति दकमृत्तिके, आदीयते=आनीयतेऽनेनेत्यादान=मार्गः, दकमृत्तिकयोरादान दकमृत्तिकाऽऽदान=जलमृत्तिकाऽऽनयनमार्गस्तत्। बीजानि=सचित्तानि शाल्यादीनि, हरितानि=वनस्पतिमात्राणि, चकारादन्यान्यप्यकल्प्यवस्तुजातानि परिवर्जयन्=परित्यजन् सर्वेन्द्रियसमाहितः=तत्तदिन्द्रियविषयव्यासङ्गरहितस्तिष्ठेत्=अवस्थितिं कुर्यात् ॥२६॥

मूलम्—तत्थ से चिट्ठमाणस्स, आहरे पाणभोयणं।
अकप्पियं न गेण्हिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं ॥२७॥

छाया—तत्र तस्मै तिष्ठते, आहरेत्पान-भोजनम्।
अकल्पिक न गृह्णीयात, प्रतिगृह्णीयात्कल्पिकम् ॥२७॥

सान्वयार्थः-तत्थ=वहां चिट्ठमाणस्स=खड़े हुए तस्स=उस साधुके लिए (गृहस्थ) पाणभोयण=आहार-पानी आहरे=लाकर देवे तो (साधु उसमें) अकप्पिय=अकल्पनीय आहार आदि न गेण्हिज्जा=नहीं लेवे, (किन्तु) कप्पिय=कल्पनीय होवे तो पडिगाहिज्ज=लेवे ॥२७॥

टीका—'तत्थ से०' इत्यादि। तत्र=गृहस्थगृहे तिष्ठते तस्मै[2] भिक्षवे

१ दकशब्दो जलपर्यायवचनः—'प्रोक्त पाङ्गैर्भुवनमत जीवनीय दक च।' इति हलायुधकोशात्।

२ सूत्रे प्राकृतत्वाच्चतुर्थ्याः षष्ठी।

'दगमट्टिय०' इत्यादि। सचित्त जल और मृत्तिका लानेके मार्गका, और शालि आदि सचित्त बीज, वनस्पतिकाय तथा अन्य अकल्प्य पदार्थोंका वर्जन करता हुआ—उनसे दूर हट कर सब इन्द्रियोंका सयम करता हुआ खडा होवे ॥२६॥

'तत्थ से' इत्यादि। गृहस्थके घरमें खडे हुए साधुको गृहिणी (स्त्री)

दगमट्टिय० ઇત્યાદિ સચિત્ત જળ અને માટીનું અને શાલિ (ડાંગર) આદિ સચિત્ત બીજ, વનસ્પતિકાય તથા અન્ય અકલ્પ્ય પદાર્થોનું વર્જન કરતા તેનાથી દૂર હઠીને સર્વ ઇંદ્રિયોનો સયમ કરતા ઊભો રહે (૨૬)

तत्थ से ઇત્યાદિ ગૃહસ્થના ઘરમા ઊભેલા સાધુને ગૃહિણી (સ્ત્રી) આદિ

२ ३ ४ ५
मूलम्-साहट्टु निक्खवित्ताण, सचित्तं घट्टियाणिय ।
६ १ ७ ८
तहेव समणट्ठाए, उदगं संपणुल्लिया ॥ ३० ॥
९ १० १२ ११
ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहरे पाणभोयणं ।
१३ १४ १७ १५ १८ १६
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥३१॥

छाया—सहृत्य निक्षिप्य, सचित्त घट्टयित्वा ।
तथैव श्रमणार्थम्, उदक समणुद्य ॥३०॥
अवगाह्य चालयित्वाऽऽहरेत्पानभोजनम् ।
ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥३१॥

सान्वयार्थः-समणट्ठाए=साधुके लिए साहट्टु=सहरण करके अर्थात् एक वरतनसे दूसरे वरतनमें डालकरके, निक्खिवित्ताण=सचित्त वस्तु पर आहारादिको रखकर अथवा आहारादिके ऊपर सचित्त वस्तुको रखकर, सचित्तं=सचित्त वस्तुका घट्टियाणिय=सघट्टा स्पर्श-करके, तहेव=उसीप्रकार उदगं=सचित्त अप्कायको सपणुल्लिया=इधर-उधर रखकर, ओगाहइत्ता=वर्षासे आँगनमें भरे हुए पानीमें अवगाहन-प्रवेश-करके, चलइत्ता=रुके हुए जलको नालीद्वारा या हाथसे बाहर निकालकर यदि पाणभोयणं=आहार-पानी आहरे=देवे तो दिंतियं=देती हुई उस बाईसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारपानी मे=मुझे न कप्पइ=नही कल्पता है ॥३०-३१॥

टीका—'साहट्टु०' इत्यादि, 'ओगाहइत्ता' इत्यादि च । यदि श्रमणार्थं= भिक्षुनिमित्त सहृत्य=भाजनाद्भाजनान्तरे सहरण कृत्वा ,

---

अवस्थामे आहार लेनेसे मुझे भी इस हिंसाका भागी बनना पडेगा' ऐसा विचार करके मुनि उससे आहार न ले ॥२९॥

'साहट्टु०' इत्यादि, और 'ओगाहइत्ता०' इत्यादि । यदि श्रमणके लिए एक वर्त्तनसे दूसरे वर्त्तनमें सहरण करके (निकालकर), निक्षेपण

મારે પણ એ હિંસાના ભાગી બનવું પડશે' એવો વિચાર કરીને મુનિ તેના હાથથી આહાર લે નહિ

साहट्टु० ઇત્યાદિ, અને ओगाहइत्ता० ઇત્યાદિ જો શ્રમણને માટે એક વાસણમાંથી બીજા વાસણમાં સહરણ કરીને (કાઢીને), નિક્ષેપણ કરીને (એકને

पाकादिगृहकार्याणां प्रायः स्त्र्यधीनत्वेन तत्रोपस्थितिप्राधान्यात्तद्ग्रहणम् ।२८।

५ १ २ ३ ४
मूलम्-संमद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।
६ ७ ८ ९
असंजमकरिं नच्चा, तारिसं परिवज्जए ॥ २९ ॥

छाया—समर्दयन्ती प्राणान्, बीजानि हरितानि च ।
असंयमकरीं ज्ञात्वा तादृशीं परिवर्जयेत् ॥२९॥

सान्वयार्थः-तथा-पाणाणि=बेइन्द्रियादिक प्राणियोंको बीयाणि=शालि आदि बीजोंको य=और हरियाणि=हरी वनस्पतिकायको संमद्दमाणी=पैरोंसे कुचलती हुई (आहार-पानी देवे तो) उसे असंजमकरिं=साधुके लिये अयतना करनेवाली नच्चा=जानकर (साधु) तारिसं=सदोष आहार देने वाली उसे परिवज्जए=वरजे अर्थात् उसके हाथसे आहार-पानी नहीं लेवे ॥२९॥

टीका-'संमद्दमाणी०' इत्यादि । प्राणान् बीजानि हरितानि च समर्दयन्ती= पादसंघट्टनादिना पीडयन्ती अशनादिकं दद्यादिति शेषः, तदा असंयमकरीं=साधु-निमित्तमयतनाकारिणीम् ज्ञात्वा तादृशीम्=उक्तस्वरूपां सदोषमाहारादिकं ददतीं तां परिवर्जयेत्=प्रत्यादिशेत्, तद्धस्ततो नान्नादिकं गृह्णीयादित्यर्थः । इयं भिक्षादानार्थमागच्छन्ती प्राणादीनि मर्दयतीति तद्विराधना मय्यप्यापतेतेति भावयन् भिक्षां न गृह्णीयादिति भावः ॥२९॥

रसोईका काम प्रायः स्त्रियोंके अधीन रहता है और रसोईमें मुख्यतया स्त्री मौजूद रहती है, अत एव गाथामें स्त्रीका ग्रहण किया है ॥२८॥

'संमद्दमाणी०' इत्यादि । प्राण बीज वनस्पति आदि सचित्तको कुचलती-रौंदती हुई अन्नादि देवे तो साधुके लिए अयतना करनेवाली समझकर उसे त्याग देवे, अर्थात् उसके हाथसे अन्नादि ग्रहण न करे। तात्पर्य यह है कि-' यह भिक्षा देनेके लिए जो अयतना कर रही है ऐसी

રસોઇનું કામ પ્રાયઃ સ્ત્રીઓને અધીન રહે છે અને રસોઇમાં મુખ્યત્વે સ્ત્રી હાજર રહે છે, તેથી ગાથામાં સ્ત્રીને ગ્રહણ કરવામાં આવી છે (૨૮)

संमद्दमाणी० ઇત્યાદિ પ્રાણ બીજ વનસ્પતિ આદિ સચિત્તને કચડતી-રોળતી (સ્ત્રી) અન્નાદિ આપે તો સાધુને માટે અયતના કરનારી સમજીને તેને ત્યજી દે અર્થાત્ એના હાથથી અન્નાદિ ગ્રહણ ન કરે તાત્પર્ય એ છે કે-' આ ભિક્ષા આપવાને જે અયતના કરી રહી છે, એવી અવસ્થામાં આહાર લેવાથી

निक्षिप्य=एकस्योपर्यन्यस्य निक्षेपण कृत्वा। निक्षेपण च त्रिधा-सचित्तमचित्त मिश्र चेति, एतानाश्रित्य तिस्रश्चतुर्भङ्ग्यो भवन्ति। तत्र-

[१] सचित्ता-ऽचित्तयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्ते सचित्तस्य, (२) सचित्तेऽचित्तस्य, (३) अचित्ते सचित्तस्य, (४) अचित्तेऽचित्तस्य निक्षेपणम्। १।

[२] सचित्तमिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्त सचित्तस्य, (२) सचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रे सचित्तस्य, (४) मिश्रे मिश्रस्य निक्षेपणम्। २।

[३] अचित्त मिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) अचित्तेऽचित्तस्य, (२) अचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रेऽचित्तस्य, (४) मिश्रे

निक्षेपण दोष तीन प्रकारका है-(१) सचित्त, (२) अचित्त, और (३) मिश्र। इन तीनोंको आश्रित करके तीन चौभगियाँ होती हैं।

[१] सचित्त-अचित्तकी चौभगी-

(१) सचित्तपर सचित्तका, (२) सचित्तपर अचित्तका, (३) अचित्त पर सचित्तका, (४) अचित्तपर अचित्तका। १।

[२] सचित्त मिश्रकी चौभगी—

(१) सचित्त पर सचित्तका, (२) सचित्त पर मिश्रका, (३) मिश्रपर सचित्तका, (४ मिश्रपर मिश्रका निक्षेप करना। २।

[३] अचित्त-मिश्रकी चौभगी—

(१) अचित्त पर अचित्तका, (२) अचित्त पर मिश्रका। (३) मिश्रपर

નિક્ષેપણ દોષ ત્રણ પ્રકારનો છે (૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર એ ત્રણને આશ્રિત કરવાથી ત્રણ ચોભગીઓ થાય છે

[૧] સચિત્ત અચિત્તની ચોભગી

(૧) સચિત્ત પર સચિત્તનું, (૨) સચિત્તપર અચિત્તનુ, (૩) અચિત્ત પર સચિત્તનુ (૪) અચિત્તપર અચિત્તનું ।૧।

[૨] સચિત્ત મિશ્રની ચોભગી—

(૧) સચિત્ત પર સચિત્તનુ, (૨) સચિત્ત પર મિશ્રનુ, (૩) મિશ્ર પર સચિત્તનુ, (૪) મિશ્ર પર મિશ્રનું, નિક્ષેપણ કરવુ ।૨।

[૩] અચિત્ત મિશ્રની ચોભગી—

(૧) અચિત્ત પર અચિત્તનું, (૨) અચિત્ત પર મિશ્રનુ, (૩) મિશ્ર પર

(४) बह्वार्द्रे बहुशुष्कस्य संहरणम् ।

[४] 'आर्द्रे आर्द्रस्ये'-ति चतुर्थभङ्गस्य चतुर्भङ्गी यथा—

(१) अल्पार्द्रेऽल्पार्द्रस्य, (२) अल्पार्द्रे-बह्वार्द्रस्य, (३) बह्वार्द्रेऽल्पार्द्रस्य, (४) बह्वार्द्रे बह्वार्द्रस्य संहरणम् ।

आसु पूर्वोक्तभङ्गीषु प्रत्येकचतुर्भङ्ग्याः 'अल्पशुष्केऽल्पशुष्कस्य' 'बहुशुष्केऽल्पशुष्कस्ये-त्यादिरूपौ प्रथम तृतीयभङ्गौ कल्प्यौ शेषावकल्प्यौ, तथाग्रहणे पात्रोत्थापनादिना दातुः कष्ट पात्रस्फुटन तद्गतवस्तुविकरणाऽप्रीत्यादिसम्भवात् ।

---

(३) बहुत गीलेमें थोडे सूखेका, (४) बहुत गीलेमें बहुत सूखेका ।

[४] 'गीलेमें गीलेका' इस चौथे भगकी चौभगी—

(१) थोडे गीलेमें थोडे गीलेका (२) थोडे गीलेमें बहुत गीलेका। (३) बहुत गीलेमें थोडे गीलेका, (४) बहुत गीलेमें बहुत गीलेका ।

इन चारों चौभगियोंमेंसे 'थोडे सूखेमें थोडा सूखा मिलाना' और 'बहुत सूखेमे थोड़ा सूखा मिलाना' ये पहले और तीसरे भग ग्राह्य हैं। दूसरे और चौथे भग ग्राह्य नही हैं । इस प्रकारके ग्रहण करनेसे वर्त्तन उठानेके कारण दाताको कष्ट, वर्त्तनका फूटजाना, और वस्तुका बिखर-जाना, और अप्रीति होना आदि दूषण होते हैं। जैसे किसी दाताने बहुत गीलेका या बहुत सूखेका संहरण करनेके लिए बडा भारी वर्त्तन उठाया तो उसे कष्ट होगा।

---

(૩) બહુ લીલામા થોડા સૂકાનુ, (૪) બહુ લીલામા બહુ સૂકાનુ

[૪] લીલામા લીલાનુ ' એ ચોથા ભાગાની ચૌભગી—

(૧) થોડા લીલામા થોડા લીલાનુ, (૨) થોડા લીલામા બહુ લીલાનુ, (૩) બહુ લીલામા થોડા લીલાનુ, (૪) બહુ લીલામા બહુ લીલાનુ

આ ચાર ચૌભગીઓમાથી 'થોડા સૂકામા થોડુ સૂકુ મેળવવુ' અને 'બહુ સૂકામા થોડુ સૂકુ મેળવવુ' એ પહેલા અને ત્રીજા ભાગા ગ્રાહ્ય છે બીજા અને ચોથા ભાગા ગ્રાહ્ય નથી એ પ્રમાણે ગ્રહણ કરવાથી વાસણ ઉપાડવાને કારણે દાતાને કષ્ટ, વાસણ ફૂટી જવુ અને વસ્તુ વેરાઈ-ઢાળાઈ જવી, અને અપ્રીતિ થવી આદિ દૂષણ થાય છે, જેમકે કોઈ દાતાએ બહુ લીલાનુ યા બહુ સૂકાનુ સહરણ કરવાને માટે બહુ ભારે વાસણ ઉપાડ્યુ હોય તેને કષ્ટ થાય

निक्षिप्य=एकस्योपर्यन्यस्य निक्षेपण कृत्वा। निक्षेपण च त्रिधा-सचित्तमचित्त मिश्र चेति, एतानाश्रित्य तिस्रश्चतुर्भङ्ग्यो भवन्ति। तत्र-

[१] सचित्ता-ऽचित्तयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्ते सचित्तस्य, (२) सचित्तेऽचित्तस्य, (३) अचित्ते सचित्तस्य, (४) अचित्तेऽचित्तस्य निक्षेपणम्। १।

[२] सचित्तमिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) सचित्त सचित्तस्य, (२) सचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रे सचित्तस्य, (४) मिश्रे मिश्रस्य निक्षेपणम्। २।

[३] अचित्त मिश्रयोश्चतुर्भङ्गी यथा-

(१) अचित्तेऽचित्तस्य, (२) अचित्ते मिश्रस्य, (३) मिश्रेऽचित्तस्य, (४) मिश्रे

निक्षेपण दोष तीन प्रकारका है-(१) सचित्त, (२) अचित्त, और (३) मिश्र। इन तीनोको आश्रित करके तीन चौभगियाँ होती हैं।

[१] सचित्त-अचित्तकी चौभगी-

(१) सचित्तपर सचित्तका, (२) सचित्तपर अचित्तका, (३) अचित्त पर सचित्तका, (४) अचित्तपर अचित्तका। १।

[२] सचित्त-मिश्रकी चौभगी—

(१) सचित्त पर सचित्तका, (२) सचित्त पर मिश्रका, (३) मिश्रपर सचित्तका, (४ मिश्रपर मिश्रका निक्षेप करना। २।

[३] अचित्त-मिश्रकी चौभगी—

(१) अचित्त पर अचित्तका, (२) अचित्त पर मिश्रका। (३) मिश्रपर

નિક્ષેપણુ દોષ ત્રણ પ્રકારનો છે (૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) મિશ્ર એ ત્રણુને આશ્રિત કરવાથી ત્રણ ચૌભગીઓ થાય છે

[૧] સચિત્ત અચિત્તની ચૌભગી

(૧) સચિત્ત પર સચિત્તનું, (૨) સચિત્તપર અચિત્તનું, (૩) અચિત્ત પર સચિત્તનું (૪) અચિત્તપર અચિત્તનું ।૧।

[૨] સચિત્ત મિશ્રની ચૌભગી—

(૧) સચિત્ત પર સચિત્તનું, (૨) સચિત્ત પર મિશ્રનું, (૩) મિશ્ર પર સચિત્તનુ, (૪) મિશ્ર પર મિશ્રનું, નિક્ષેપણુ કરવુ ।૨।

[૩] અચિત્ત મિશ્રની ચૌભગી—

(૧) અચિત્ત પર અચિત્તનું, (૨) અચિત્ત પર મિશ્રનું, (૩) મિશ્ર પર

मिश्रस्य निक्षेपणमिति । ३ ।

पुनरपि पृथिव्यादिकायषट्कोपरि पृथिव्यादीनां निक्षेपणेन प्रथमचतुर्भङ्गीस्थितप्रथमभङ्गस्य 'सचित्ते सचित्तस्ये'-त्येवंरूपस्य षट्त्रिंशद्भेदा भवन्ति, तद्यथा–

(१) पृथिव्यां पृथिव्याः, (२) अपाम्, (३) तेजसः, (४) वायोः, (५) वनस्पतेः, (६) त्रसस्य निक्षेपणमिति षट् (६) ।

एवमप्कायादावपि प्रत्येककायस्य निक्षेपणेन षट्त्रिंशद् भेदा जायन्ते । एवं शेषभङ्गत्रयस्यापि प्रत्येकं षट्त्रिंशद् भेदा भवन्ति । सङ्कलनया प्रथमचतुर्भङ्ग्या-

---

अचित्तका, (४) मिश्रपर मिश्रका निक्षेप करना । ३ ।

फिर भी पृथिवी आदि षट्काय पर पृथिवीकायका निक्षेपण करनेसे प्रथम चतुर्भंगीके 'सचित्त पर सचित्तका' इस प्रथम भगके छत्तीस भग होते हैं । वे इस प्रकार हैं—

(१) पृथिवी पर पृथिवीका, (२) अप्का, (३) तेजका, (४) वायुका, (५) वनस्पतिका और (६) त्रसका निक्षेपण करना ।

इसी प्रकार अप्काय आदि पर पृथिवीकाय आदि छह कायोंका निक्षेपण करनेसे छत्तीस भग होते हैं, अर्थात् छह काय पर छह कायका निक्षेपण होता है अत छहसे छहका गुणन करनेसे प्रथम भगके छत्तीस भेदोंकी सख्या निकलती है । ऐसे 'सचित्त पर सचित्तका' 'सचित्त पर मिश्रका' मिश्र पर सचित्तका, और 'मिश्र पर मिश्रका' इन सब (४) भगोंकी छत्तीस छत्तीस सख्या जोड देनेसे(३६+३६+३६+३६)–

અચિત્તનું, (૪) મિશ્ર પર મિશ્રનું નિક્ષેપણુ કરવુ ।૩।

વળી પણ પૃથિવી આદિ ષટ્કાય પર પૃથિવીકાયનું નિક્ષેપણુ કરવાથી પ્રથમ ચઉભંગીના 'સચિત્ત પર સચિત્તનું' એ પ્રથમ ભાગાના છત્રીસ ભાગા થાય છે તે આ પ્રમાણે છે—

(૧) પૃથિવી પર પૃથિવીનું, (૨) અપ્ (જળ)નું (૩) તેજનુ (૪) વાયુનું, (૫) વનસ્પતિનું, (૬) ત્રસનું નિક્ષેપણુ કરવુ

એ રીતે અપ્કાય આદિ પર પૃથિવીકાય આદિ [illegible] કાયોનું નિક્ષેપણુ કરવાથી છત્રીસ ભાગા થાય છે, અર્થાત્ [illegible] કાય પર છકાયનું નિક્ષેપણુ થાય છે એટલે છને છએ ગુણવાથી પ્રથમ ભગના છત્રીસ ભેદોની સખ્યા નીકળે છે એમ 'સચિત્ત પર સચિત્તનું' 'સચિત્ત પર મિશ્રનું' 'મિશ્ર પર સચિત્તનું' અને 'મિશ્ર પર મિશ્રનું' એ બધા (૪) ભાગાની છત્રીસ છત્રીસ સખ્યા જોડી દેવાથી

श्चतुश्चत्वारिंशदुत्तरमेकशत भङ्गा भवन्ति । उक्तप्रकारेण शेपचतुर्भङ्गीद्विकस्यापि भङ्गसम्पादने सकलनया सर्वे भेदा द्वात्रिंशदधिकानि चतुःशतानि (४३२) सम्पद्यन्ते।

इमे एककायस्योपर्येकस्यैव कायस्य निक्षेपणभेदाः प्रदर्शिताः, किन्तु 'एक-काये कायद्वयस्य, कायद्वये चैकस्ये'-त्यादिनिक्षेपणेन चाऽन्येपामपि सभवः, यथा—

'पृथिव्या पृथिव्यप्काययो'-रित्यादि, पृथिव्यप्काययोर्वनस्पते'-रित्यादि च स्वयमवसेयमिति विस्तरभयाद्विरम्यते ।

पूर्वोक्तेपु भङ्गसमुदयेपु 'अचित्तेऽचित्तनिक्षेपण'-लक्षणभङ्गस्य कल्प्यत्वम् , शेपा

एकसौ चँवालीस (१४४) भग हो जाते हैं। दूसरी दो चौभगियोके भी इतने ही भग होते हैं, उनको जोडनेसे चारसौ बत्तीस (४३२) भग होते हैं।

ये चारसौ बत्तीस (४३२) भग एक काय पर एक कायका निक्षेपण करनेसे होते हैं, किन्तु एक काय पर दो कायका, जैसे—

पृथिवीकाय पर पृथिवीकायका और अप्कायका निक्षेपण करनेसे, तथा दो कायो पर एक कायका, जैसे पूर्वोक्त दो कायों पर वनस्पति आदि किसी एक कायका निक्षेपण करनेसे और भी बहुतेरे भग होते है। सयोगसे बननेवाले इन उत्तर भगोंको स्वय समझ लेना चाहिए, विस्तार भयसे यहाँ नही बताते।

पूर्वोक्त भगोंमेसे अचित्त पर अचित्तका निक्षेपण करनेरूप एक भग कल्पनीय है, अवशेप साक्षात् या पारम्परिक निक्षेपणरूप सब

(३६+३६+३६+३६) એકસો ચુંવાળીસ (૧૪૪) ભાગા થાય છે બીજી બે ચોભગીઓના પણ એટલાજ ભેદ થાય છે, એને જોડવાથી ચારસોને બત્રીસ (૪૩૨) ભાગા થાય છે

એ ૪૩૨ ભાગા એક કાય પર એક કાયનું નિક્ષેપણ કરવાથી થાય છે, પરન્તુ એક કાય પર બે કાયનું, જેમકે—

પૃથિવી કાય પર પૃથિવી કાયનું અને અપ્કાયનું નિક્ષેપણ કરવાથી, તથા બે કાયો પર એક કાયનુ જેમ પૂર્વોક્ત બે કાયો પર વનસ્પતિ આદિ કોઈ એક કાયનું નિક્ષેપણ કરવાથી બીજા પણ ઘણા ભાગા થાય છે એ સયોગથી થતા ઉત્તર ભાગા પોતાની મેળે સમજી લેવા, બહુ વિસ્તાર થવાને કારણે અહીં આપ્યા નથી

પૂર્વોક્ત ભાગામાથી અચિત્ત પર અચિત્તનું નિક્ષેપણ કરવારૂપ એક ભાગો

आनन्तर्यस्वरूपाः पारम्पर्यस्वरूपा वा निखिला अकल्प्या एवेति बोद्धव्यम् ।

सचित्त=सचित्तपृथिव्यादिकं घट्टयित्वा=संस्पृश्य संचाल्य वा, संस्पर्शनं सचित्ताऽचित्त मिश्रभेदात्त्रिविधं, तदपि पृथिव्यादिकायषट्केन भिद्यमानमष्टादशविधं पुनर्दातृ-देय-भेदाभ्यां द्विविधतया संकलनया षट्त्रिंशद् भेदा जायन्ते, एतेषामपि पुनः-आनन्तर्य-पारम्पर्यभेदाद् द्वासप्ततिर्भेदा भवन्ति । एवं कायद्वयकायत्रिकादिसंस्पर्शनेनोत्तरोत्तरभूरिभेदाः स्वयमूहनीयाः प्रेक्षावद्भिरिति ।

ननु पारम्परिकसंघट्टनेन दीयमानाऽऽहारादिवर्जने पृथ्वीसंघट्टनमनिवार्यमिति

भंग अकल्प्य हैं ।

संस्पर्शन तीन प्रकारका है-(१) सचित्त संस्पर्शन, (२) अचित्त संस्पर्शन, और (३) मिश्र संस्पर्शन । इन तीनोंके पृथिवी आदि षट्कायके भेदसे अठारह भेद होते हैं । दाता और देय (वस्तु) के भेदसे छत्तीस भेद होते हैं । और अनन्तर तथा परम्पराके भेदसे बहत्तर (७२) भेद होजाते हैं । इनके सिवाय दो कायका या तीन कायका स्पर्श करनेसे और भी भेद होजाते हैं, वे भेद बुद्धिमानोंको स्वयं विचार लेने चाहिए।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! यदि पारम्परिक संघट्टनसे दिये हुए आहार आदिका भी त्याग किया जायगा तो साधु कभी आहार नहीं ले सकेंगे क्योंकि पृथ्वीका संघट्टन अनिवार्य है-आहार आदि पृथिवीपर रहते हैं और सचित्त जल भी पृथ्वी पर रहता है, अतः सचित्त जलका पृथिवीका

કલ્પનીય છે, બાકીના સાક્ષાત્ યા પારંપરિક નિક્ષેપણરૂપ બધા ભાગા અકલ્પનીય છે

સંસ્પર્શન ત્રણ પ્રકારના છે-(૧) સચિત્ત સંસ્પર્શન, (૨) અચિત્ત સંસ્પર્શન, અને (૩) મિશ્ર સંસ્પર્શન એ ત્રણેના પૃથિવી આદિ ષટ્કાયના ભેદે કરીને અઢાર ભેદ થાય છે દાતા અને દેય (વસ્તુ)ના ભેદે કરીને છત્રીસ ભેદ થાય છે અને પછી તેવી જ પરંપરાના ભેદે કરીને બોતેર (૭૨) ભેદ થાય છે તે ઉપરાંત બે કાયનો યા ત્રણ કાયનો સ્પર્શ કરવાથી બીજા પણ ભેદ થાય છે તે ભેદો બુદ્ધિમાનોએ સ્વયં વિચારી લેવા

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! જો પારમ્પરિક સંઘટનથી આપેલા આહારાદિનો પણ ત્યાગ કરવામાં આવશે તો સાધુ કદાપિ આહાર લઈ શકશે નહિ, કારણ કે પૃથિવીનું સંઘટ્ટન અનિવાર્ય છે-આહારાદિ પૃથિવી પર રહે છે અને સચિત્ત જળ પણ પૃથિવી પર જ રહે છે એટલે સચિત્ત જળનું પૃથિવી સાથે સંઘટન છે

तत्सघट्टनेऽपि वर्जनप्रसक्तौ भिक्षुणा सर्वदाऽऽहारप्रतिषेधप्रसङ्ग इति चेन्न, पृथिव्या अचलतया तत्सञ्चलनाऽभावेन तत्सघट्टने जीवबाधाया असम्भवात्, तत्सघट्टिताऽऽहाराऽऽदान भिक्षूणामप्रतिषेध्यमिति भावः । उक्तपारम्परिकसघट्टिताऽऽहाराऽऽदानविषये प्रतिषेधश्चलाऽऽधारविषयः, तत्र प्राणिपीडासम्भवात् व्यवहारदोषाच्चेति भावः।

एतेषु मध्ये गाथोक्त सचित्तम्, अन्तर्गर्भितत्वान्मिश्र च सस्पृश्य सञ्चाल्य वा तथैव=पुनरपि उदकम्=अप्काय 'सचित्त'-मित्यनुवर्त्तते सम्प्रणुद्य=समेर्य इतस्ततः कृत्वेत्यर्थः ॥३०॥ तथा—

अवगाह्य=वर्षाकाले 'गृहाङ्गणप्रतिरुद्धजलान्त' प्रविश्य, चालयित्वा=प्रणालिकादिना निस्सार्य च पानभोजनमाहरेत् तदा ददतीमित्यादि पूर्ववत् ॥३१॥

पुरःकर्मदोपमाह-'पुरेकम्मेण' इत्यादि ।

१ 'गृहाङ्गने'ति तु सम्यक्, तवर्गपञ्चमान्तस्याङ्गनशब्दस्यैवाकरग्रन्थेषु निर्णीतत्वादिति श्रीलविपत्युपाध्यायाः ।

सघटा है और पृथिवीका आहारादिके साथ सघटा है, इसलिए आहारादिका तथा सचित्त जलका पारम्परिक सघटा होता ही है ।

उत्तर-हे शिष्य ! पृथिवी अचल है, उसका सचलन नही होता, अत एव ऐसे सघटेसे जीवोंको बाधा नही होती, इसलिए पृथिवीसे सघट्टित आहारका ग्रहण करना साधुओंके लिए निषिद्ध नही है । पहले पारम्परिक सघट्टित आहारका जो त्याग बताया गया है उसे चल-आधार विषयक ही समझना चाहिये, क्योंकि उस सघट्टनसे प्राणियोंको पीडा होती है तथा व्यवहारदोष भी लगता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अब पुर कर्म्मदोष कहते हैं-'पुरेकम्मेण०' इत्यादि

અને પૃથિવીનું આહારાદિ સાથે સઘટન છે, તેથી કરીને આહારાદિનુ તથા સચિત્ત જળનુ પારમ્પરિક સઘટન થતુ જ હોય છે

ઉત્તર-હે શિષ્ય ! પૃથિવી અચલ છે, તેનુ સચલન થતુ નથી, તેથી એવા સઘટનથી જીવોને બાધા થતી નથી એથી કરીને પૃથિવીથી સઘટિત આહારનું ગ્રહણુ કરવુ એ સાધુઓને માટે નિષિદ્ધ નથી પૂર્વે પારમ્પરિક સઘટિત આહારનો જે ત્યાગ બતાવવામા આવ્યો છે, તેને ચલ-આધાર વિષયક જ સમજવો જોઈએ, કારણુ કે એ સઘટનથી પ્રાણીઓને પીડા થાય છે તથા વ્યવહારદોષ પણુ લાગે છે (૩૦-૩૧)

હવે પુર કર્મદોષ કહે છે-પુરેકમ્મેણ૦ ઇત્યાદિ

आनन्तर्यस्वरूपाः पारम्पर्यस्वरूपा वा निखिला अकल्प्या एवेति बोद्धव्यम् ।

सचित्त=सचित्तपृथिव्यादिकं घट्टयित्वा=संस्पृश्य सचाल्य वा, संस्पर्शन सचित्ताऽचित्त-मिश्रभेदात्त्रिविध, तदपि पृथिव्यादिकायषट्केन भिद्यमानमष्टादशविध, पुनर्दातृ-देय-भेदाभ्या द्विविधतया संकलनया षट्त्रिंशद् भेदा जायन्ते, एतेषामपि पुनः-आनन्तर्य-पारम्पर्यभेदाद् द्वासप्ततिर्भेदा भवन्ति । एव कायद्वयकायत्रिकादि-संस्पर्शनेनोत्तरोत्तरभूरिभेदाः स्वयमूहनीयाः प्रेक्षावद्भिरिति ।

ननु पारम्परिकसंघट्टनेन दीयमानाऽऽहारादिवर्जने पृथ्वीसंघट्टनमनिवार्यमिति

भग अकल्प्य हैं ।

संस्पर्शन तीन प्रकारका है-(१) सचित्त संस्पर्शन, (२) अचित्त संस्पर्शन, और (३) मिश्र संस्पर्शन । इन तीनोंके पृथिवी आदि षट्कायके भेदसे अठारह भेद होते हैं । दाता और देय (वस्तु) के भेदसे छत्तीस भेद होते हैं । और अनन्तर तथा परम्पराके भेदसे बहत्तर (७२) भेद होजाते हैं । इनके सिवाय दो कायका या तीन कायका स्पर्श करनेसे और भी भेद होजाते हैं, वे भेद बुद्धिमानोंको स्वय विचार लेने चाहिए।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! यदि पारम्परिक संघट्टनसे दिये हुए आहार आदिका भी त्याग किया जायगा तो साधु कभी आहार नहीं ले सकेंगे क्योंकि पृथ्वीका संघट्टन अनिवार्य है-आहार आदि पृथिवीपर रहते हैं और सचित्त जल भी पृथ्वी पर रहता है, अत. सचित्त जलका पृथिवीका

કલ્પનીય છે, બાકીના સાક્ષાત્ યા પારંપરિક નિક્ષેપણરૂપ બધા ભાગા અકલ્પનીય છે

સંસ્પર્શન ત્રણ પ્રકારના છે-(૧) સચિત્ત સંસ્પર્શન, (૨) અચિત્ત સંસ્પર્શન, અને (૩) મિશ્ર સંસ્પર્શન એ ત્રણેના પૃથિવી આદિ ષટ્કાયના ભેદે કરીને અઢાર ભેદ થાય છે દાતા અને દેય (વસ્તુ)ના ભેદે કરીને છત્રીસ ભેદ થાય છે અને પછી તેવી જ પરંપરાના ભેદે કરીને બોતેર (૭૨) ભેદ થાય છે તે ઉપરાંત બે કાયનો યા ત્રણ કાયનો સ્પર્શ કરવાથી બીજા પણ ભેદ થાય છે તે ભેદો બુદ્ધિમાનોએ સ્વય વિચારી લેવા

પ્રશ્ન—હે ગુરુ મહારાજ ! જો પારમ્પરિક સંઘટ્ટનથી આપેલા આહારાદિનો પણ ત્યાગ કરવામા આવશે તો સાધુ કદાપિ આહાર લઈ શકશે નહિ, કારણ કે પૃથિવીનું સંઘટ્ટન અનિવાર્ય છે—આહારાદિ પૃથિવી પર રહે છે અને સચિત્ત જળ પણ પૃથિવી પર જ રહે છે એટલે સચિત્ત જળનું પૃથિવી સાથે સંઘટ્ટન છે

तत्सघट्टनेऽपि वर्जनप्रसक्तौ भिक्षूणा सर्वदाऽऽहारप्रतिषेधप्रसङ्ग इति चेन्न, पृथिव्या अचलतया तत्सञ्चलनाद्यभावेन तत्सघट्टने जीवबाधाया असम्भवात्, तत्सघट्टिताऽऽहाराऽऽदान भिक्षूणामप्रतिषेध्यमिति भावः । उक्तपारम्परिकसघट्टिताऽऽहाराऽऽदानविषये प्रतिषेधश्चलाऽऽधारविषयः, तत्र प्राणिपीडासभवात् व्यवहारदोषाच्चेति भावः।

एतेषु मध्ये गाथोक्त सचित्तम्, अन्तर्गर्भितत्वान्मिश्र च सस्पृश्य सञ्चाल्य वा तथैव=पुनरपि उदकम्=अप्काय 'सचित्त'-मित्यनुवर्त्तते सम्प्रणुद्य=समेर्य इतस्ततः कृत्वेत्यर्थः ॥३०॥ तथा—

अवगाह्य=वर्षाकाले [1]गृहाङ्गणप्रतिरुद्धजलान्तः प्रविश्य, चालयित्वा=प्रणालिकादिना निस्सार्य च पानभोजनमाहरेत् तदा ददतीमित्यादि पूर्ववत् ॥३१॥

पुरःकर्मदोपमाह-'पुरेकम्मेण' इत्यादि ।

---

१ 'गृहाङ्गने'ति तु सम्यक्, तवर्गपञ्चमान्तस्याङ्गनशब्दस्यैवाकरग्रन्थेषु निर्णीतत्वादिति श्रीरुचिपत्युपाध्यायाः ।

सघटा है और पृथिवीका आहारादिके साथ सघटा है, इसलिए आहारादिका तथा सचित्त जलका पारम्परिक सघटा होता ही है।

उत्तर-हे शिष्य! पृथिवी अचल है, उसका सचलन नहीं होता, अत एव ऐसे सघटेसे जीवोंको बाधा नहीं होती, इसलिए पृथिवीसे सघट्टित आहारका ग्रहण करना साधुओंके लिए निषिद्ध नहीं है। पहले पारम्परिक सघट्टित आहारका जो त्याग बताया गया है उसे चल-आधार विषयक ही समझना चाहिये, क्योंकि उस सघट्टनसे प्राणियोको पीडा होती है तथा व्यवहारदोष भी लगता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अब पुरःकर्म्मदोष कहते हैं-'पुरेकम्मेण०' इत्यादि

અને પૃથિવીનુ આહારાદિ સાથે સઘટન છે, તેથી કરીને આહારાદિનુ તથા સચિત્ત જળનુ પારમ્પરિક સઘટન થતુ જ હોય છે

ઉત્તર-હે શિષ્ય! પૃથિવી અચલ છે, તેનું સચલન થતુ નથી, તેથી એવા સઘટનથી જીવોને બાધા થતી નથી એથી કરીને પૃથિવીથી સઘટિત આહારનું ગ્રહણ કરવુ એ સાધુઓને માટે નિષિદ્ધ નથી પૂર્વે પારમ્પરિક સઘટિત આહારનો જે ત્યાગ બતાવવામા આવ્યો છે, તેને ચલ-આધાર વિષયક જ સમજવો જોઈએ, કારણ કે એ સઘટનથી પ્રાણીઓને પીડા થાય છે તથા વ્યવહારદોષ પણ લાગે છે (૩૦-૩૧)

હવે પુરઃકર્મદોષ કહે છે-પુરેકમ્મેણ૦ ઇત્યાદિ

आनन्तर्यस्वरूपाः पारम्पर्यस्वरूपा वा निखिला अकल्प्या एवेति बोद्धव्यम् ।

सचित्त=सचित्तपृथिव्यादिकं घट्टयित्वा=संस्पृश्य सचाल्य वा, संस्पर्शनं सचित्ताऽचित्त-मिश्रभेदात्त्रिविधं, तदपि पृथिव्यादिकायषट्केन भिद्यमानमष्टादशविधं, पुनर्दातृ देय-भेदाभ्यां द्विविधतया संकलनया षट्त्रिंशद् भेदा जायन्ते, एतेषामपि पुनः-आनन्तर्यं पारम्पर्यभेदाद् द्वासप्ततिर्भेदा भवन्ति । एवं कायद्वयकायत्रिकादि-संस्पर्शनेनोत्तरोत्तरभूरिभेदाः स्वयमूहनीयाः प्रेक्षावद्भिरिति ।

ननु पारम्परिकसंघट्टनेन दीयमानाऽऽहारादिवर्जने पृथ्वीसंघट्टनमनिवार्यमिति

भग अकल्प्य हैं ।

संस्पर्शन तीन प्रकारका है-(१) सचित्त संस्पर्शन, (२) अचित्त संस्पर्शन, और (३) मिश्र संस्पर्शन । इन तीनोंके पृथिवी आदि षट्कायके भेदसे अठारह भेद होते हैं । दाता और देय (वस्तु) के भेदसे छत्तीस भेद होते हैं । और अनन्तर तथा परम्पराके भेदसे बहत्तर (७२) भेद होजाते हैं । इनके सिवाय दो कायका या तीन कायका स्पर्श करनेसे और भी भेद होजाते हैं, वे भेद बुद्धिमानोंको स्वयं विचार लेने चाहिए।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! यदि पारम्परिक संघट्टनसे दिये हुए आहार आदिका भी त्याग किया जायगा तो साधु कभी आहार नहीं ले सकेंगे क्योंकि पृथ्वीका संघट्टन अनिवार्य है-आहार आदि पृथिवीपर रहते हैं और सचित्त जल भी पृथ्वी पर रहता है, अतः सचित्त जलका पृथिवीका

કલ્પનીય છે, બાકીના સાક્ષાત્ યા પારંપરિક નિક્ષેપણરૂપ બધા ભાગા અકલ્પનીય છે

સંસ્પર્શન ત્રણ પ્રકારના છે-(૧) સચિત્ત સંસ્પર્શન, (૨) અચિત્ત સંસ્પર્શન, અને (૩) મિશ્ર સંસ્પર્શન એ ત્રણેના પૃથિવી આદિ ષટ્કાયના ભેદે કરીને અઢાર ભેદ થાય છે દાતા અને દેય (વસ્તુ)ના ભેદે કરીને છત્રીસ ભેદ થાય છે અને પછી તેવી જ પરંપરાના ભેદે કરીને બોતેર (૭૨) ભેદ થાય છે તે ઉપરાન્ત બે કાયનો યા ત્રણ કાયનો સ્પર્શ કરવાથી બીજા પણ ભેદ થાય છે તે ભેદો બુદ્ધિમાનોએ સ્વયં વિચારી લેવા

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! જો પારમ્પરિક સંઘટનથી આપેલા આહારાદિનો પણ ત્યાગ કરવામાં આવશે તો સાધુ કદાપિ આહાર લઈ શકશે નહિ, કારણ કે પૃથિવીનું સંઘટન અનિવાર્ય છે—આહારાદિ પૃથિવી પર રહે છે અને સચિત્ત જળ પણ પૃથિવી પર જ રહે છે એટલે સચિત્ત જળનું પૃથિવી સાથે સંઘટન છે

तत्सघट्टनेऽपि वर्जनप्रसक्तौ भिक्षूणा सर्वदाऽऽहारप्रतिषेधप्रसङ्ग इति चेन्न, पृथिव्या अचलतया तत्सञ्चलनाद्यभावेन तत्सघट्टने जीवबाधाया असम्भवात्, तत्सघट्टिताऽऽहाराऽऽदान भिक्षूणामप्रतिषेध्यमिति भावः। उक्तपारम्परिकसघट्टिताऽऽहाराऽऽदानविषये प्रतिषेधश्चलाऽऽधारविषयः, तत्र प्राणिपीडासम्भवात् व्यवहारदोषाच्चेति भावः।

एतेषु मध्ये गाथोक्त सचित्तम्, अन्तर्गर्भितत्वान्मिश्र च सस्पृश्य सञ्चाल्य वा तथैव=पुनरपि उदकम्=अप्काय 'सचित्त'-मित्यनुवर्त्तते सम्प्रणुद्य=सप्रेर्य इतस्ततः कृत्वेत्यर्थः ॥३०॥ तथा—

अवगाह्य=वर्षाकाले [1]गृहाङ्गणप्रतिरुद्धजलान्तः प्रविश्य, चालयित्वा=प्रणालिकादिना निस्सार्य च पानभोजनमाहरेत् तदा ददतीमित्यादि पूर्ववत् ॥३१॥

पुरःकर्मदोषमाह–'पुरेकम्मेण' इत्यादि ।

---

१ 'गृहाङ्गने'ति तु सम्यक्, तवर्गपञ्चमान्तस्याङ्गनशब्दस्यैवाकरग्रन्थेषु निर्णीतत्वादिति श्रीरुचिपत्युपाध्याया ।

सघटा है और पृथिवीका आहारादिके साथ सघटा है, इसलिए आहारादिका तथा सचित्त जलका पारम्परिक सघटा होता ही है।

उत्तर–हे शिष्य! पृथिवी अचल है, उसका सचलन नहीं होता, अत एव ऐसे सघटेसे जीवोंको बाधा नहीं होती, इसलिए पृथिवीसे सघट्टित आहारका ग्रहण करना साधुओंके लिए निषिद्ध नहीं है। पहले पारम्परिक सघट्टित आहारका जो त्याग बताया गया है उसे चल-आधार विषयक ही समझना चाहिये, क्योंकि उस सघट्टनसे प्राणियोंको पीडा होती है तथा व्यवहारदोष भी लगता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अब पुरःकर्म्मदोष कहते हैं–'पुरेकम्मेण०' इत्यादि

અને પૃથિવીનુ આહારાદિ સાથે સઘટ્ટન છે, તેથી કરીને આહારાદિનુ તથા સચિત્ત જળનુ પારમ્પરિક સઘટન થતુ જ હોય છે

ઉત્તર–હે શિષ્ય! પૃથિવી અચલ છે, તેનુ સચલન થતુ નથી, તેથી એવા સઘટનથી જીવોને બાધા થતી નથી એથી કરીને પૃથિવીથી સઘટિત આહારનુ ગ્રહણ કરવુ એ સાધુઓને માટે નિષિદ્ધ નથી પૂર્વે પારમ્પરિક સઘટિત આહારનો જે ત્યાગ બતાવવામા આવ્યો છે, તેને ચલ–આધાર વિષયક જ સમજવો જોઈએ, કારણ કે એ સઘટનથી પ્રાણીઓને પીડા થાય છે તથા વ્યવહારદોષ પણ લાગે છે (૩૦–૩૧)

હવે પુરકર્મદોષ કહે છે–પુરેકમ્મેણ૦ ઇત્યાદિ

मूलम्-पुरेकम्मेण[1] हत्थेण[2], दव्वीए[3] भायणेण[4] वा[5] ।
दिंतिय[6] पडिआइक्खे[7], न[10] मे[8] कप्पइ[11] तारिसं[9] ॥३२॥

छाया—पुरःकर्मणा हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, तादृश मे न कल्पते ॥३२॥

पुरःकर्म दोष कहते हैं—

सान्वयार्थ-पुरेकम्मेण=साधुके आनेके पहले या सामने साधुके लिए सचित्त जलसे किया हुआ हस्तादिधावन पुरःकर्म कहलाता है, उस पुरःकर्म वाले हत्थेण=हाथसे दव्वीए=उस प्रकारकी कडछी अथवा चमचासे वा=अथवा भायणेण=दूसरे बरतनसे (आहारादि) दिंतिय=देती हुईको पडियाइक्खे=कहेकि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥३२॥

टीका—पुर.कर्मणा=पुरः=पूर्वम् अग्रतो वा कर्म=क्रिया पुरःकर्म, तेन पुरः कर्मणा, लक्षणया पुरःकर्मयुक्तेनेत्यर्थः, अस्य च हस्तादिभिस्त्रिभिः सम्बन्ध , हस्तेन= करेण, दर्व्या=खजाकया, भाजनेन=अमत्रेण वा ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ।

नन्वेव गृहस्थाना पचन-पाचनादिक्रियामन्तरेणाऽऽहारासभव इति साध्वा गमनात्प्राक् पचनादिक्रियाऽवश्य कर्त्तव्या, तथा सति पुरःकर्मदोषदूषितत्वेन

साधूके आनेसे पहले या सामने की जानेवाली क्रिया को पुर कर्म कहते हैं। पुर'कर्मयुक्त हाथसे, कुडछी (चमचा) से, अथवा वर्तनसे देनेवालीके प्रति साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है ।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! गृहस्थ जबतक पचन-पाचन आदि क्रिया न करे तब तक आहार बन नहीं सकता है, अत एव मुनिके आगमनके पहले पचन-पाचन आदि क्रिया अवश्य करनी पडती है । ऐसा करनेसे वह आहार पुर कर्मसे दूषित होगा तो भिक्षु कभी भिक्षा ग्रहण नहीं

સાધુ આવતાની પહેલા યા સાધુની સામે કરવામા આવતી ક્રિયાને પુર કર્મ કહે છે, પુર કર્મયુક્ત કડછીથી કે વાસણથી દેનારીની પ્રત્યે સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી

પ્રશ્ન-હે ગુરૂ મહારાજ ! ગૃહસ્થ જ્યાસુધી પચન પાચન આદિ ક્રિયા કરતો નથી, ત્યાસુધી આહાર બની શકતો નથી, એટલે મુનિના આગમન પહેલા પચન પાચનાદિ ક્રિયા જરૂર કરવી પડે છે એમ કરવાથી એ આહાર પુર કર્મથી દૂષિત થાય તો ભિક્ષુ કદાપિ ભિક્ષા ગ્રહણ કરી શકે નહિ સાધુની સામે કરવામા

साधूनामाहारग्रहणाप्रसक्तिः, साधुसमक्ष क्रियमाणाना क्रियाणा पुरःकर्मत्वे गृहस्थकृताऽभ्युत्थानादिक्रियाणामपि पुरःकर्मत्वापत्तौ तद्गृहस्थप्रदत्तभिक्षाया अपि पुरःकर्मदोषयुक्तत्वेन ग्रहणाभावप्रसङ्गः ? इति चेत्, अत्रोच्यते—

व्युत्पत्त्याऽभ्युत्थानगमनपचनपाचनादीनामपि पुर कर्मत्वसभवेऽपि समयपरिभाषाबलात् केवल भिक्षादानतः प्राक् साधुमुद्दिश्य सचित्तोदकेन हस्तभाजनादिप्रक्षालनस्यैव पुरःकर्मत्वेन सिद्धान्तितत्वम्, न तु पचन-पाचनाभ्युत्थानादेरपीति।

अत्र दातृ-द्रव्य गृहाण्याश्रित्याष्टौ भङ्गा भवन्ति यथा—

कर सकते, साधुके सामने की जानेवाली क्रियाको भी पुरःकर्म माना जाय तो गृहस्थकी अभ्युत्थान-वन्दन-आदि क्रियाएँ भी पुरःकर्म कहलायेंगी, इसलिए उसके द्वारा दिया हुआ पुरःकर्मसे दूषित आहार साधु कैसे ग्रहण करेंगे ?

उत्तर-हे शिष्य ! व्युत्पत्तिसे पचन-पाचन आदि क्रियाएँ भले ही पुरःकर्म कहलावें, किन्तु समय (शास्त्र)-की परिभाषासे भिक्षादानसे पहले साधुको उद्देश्य करके सचित्त जलसे हाथ या वर्त्तन आदिका प्रक्षालन करना ही पुरःकर्म कहलाता है, पचन-पाचन आदि क्रियाओंको अथवा खडे होने आदिको पुरःकर्म नहीं कहते ।

इस पुरःकर्मके, दाता, द्रव्य और गृहकी विवक्षासे आठ भग होते हैं, वे यहाँ बताते हैं—

આવનારી ક્રિયાને પણ જો પુર કર્મ માનવામા આવે તો ગૃહસ્થની અભ્યુત્થાન વદન આદિ ક્રિયાઓ પણ પુર કર્મ કહેવાશે, તો પછી તેને હાથે આપવામા આવેલો પુર કર્મથી દૂષિત આહાર સાધુ કેવી રીતે ગ્રહણ કરશે ?

ઉત્તર-હે શિષ્ય ! વ્યુત્પત્તિથી પચન પાચન આદિ ક્રિયાઓ ભલે પુર કર્મ કહેવાય, પરન્તુ સમય (શાસ્ત્ર) ની પરિભાષા પ્રમાણે ભિક્ષાદાનની પહેલા સાધુને ઉદ્દેશ્ય કરીને સચિત્ત જલથી હાથ યા વાસણ આદિ ધોવા એ જ પુર કર્મ કહેવાય છે પચન પાચન આદિ ક્રિયાઓ અથવા ઊભા થવા આદિની ક્રિયા એ પુર કર્મ કહેવાતા નથી

આ પુર કર્મના, દાતા, દ્રવ્ય અને ગૃહની વિવક્ષાએ કરીને આઠ ભાગા થાય છે. તે અહીં બતાવે છે-

१ २ ३ ४ ५
मूलम्-पुरेकम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
६ ७ १० ८ ११ ९
दिंतिय पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥३२॥

छाया—पुरःकर्मणा हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, तादृशं मे न कल्पते ॥३२॥

पुरःकर्म दोष कहते हैं—

सान्वयार्थः-पुरेकम्मेण=साधुके आनेके पहले या सामने साधुके लिए सचित्त जलसे किया हुआ हस्तादिधावन पुरःकर्म कहलाता है, उस पुरःकर्म-वाले हत्थेण=हाथसे दव्वीए=उस प्रकारकी कडछी अथवा चमचासे वा=अथवा भायणेण=दूसरे बरतनसे (आहारादि) दिंतियं=देती हुईको पडियाइक्खे=कहेकि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥३२॥

टीका—पुरःकर्मणा=पुरः=पूर्वम् अग्रतो वा कर्म=क्रिया पुरःकर्म, तेन पुरःकर्मणा, लक्षणया पुरःकर्मयुक्तेनेत्यर्थः, अस्य च हस्तादिभिस्त्रिभिः सम्बन्ध, हस्तेन=करेण, दर्व्या=खजाकया, भाजनेन=अमत्रेण वा ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत्।

नन्वेवं गृहस्थानां पचन-पाचनादिक्रियामन्तरेणाऽऽहारासंभव इति सा त्वागमनात्प्राक् पचनादिक्रियाऽवश्यं कर्तव्या, तथा सति पुरःकर्मदोषदूषितत्वेन

साधुके आनेसे पहले या सामने की जानेवाली क्रिया को पुरःकर्म कहते हैं। पुरःकर्मयुक्त हाथसे, कुडछी (चमचा) से, अथवा वर्तनसे देनेवालीके प्रति साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! गृहस्थ जबतक पचन-पाचन आदि क्रिया न करे तब तक आहार बन नहीं सकता है, अत एव मुनिके आगमनके पहले पचन-पाचन आदि क्रिया अवश्य करनी पडती है। ऐसा करनेसे वह आहार पुरःकर्मसे दूषित होगा तो भिक्षु कभी भिक्षा ग्रहण नहीं

સાધુ આવતાની પહેલા યા સાધુની સામે કરવામાં આવતી ક્રિયાને પુરઃકર્મ કહે છે, પુરઃકર્મયુક્ત કડછીથી કે વાસણથી દેનારીની પ્રત્યે સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી

પ્રશ્ન-હે ગુરૂ મહારાજ ! ગૃહસ્થ જ્યાસુધી પચન પાચન આદિ ક્રિયા કરતો નથી, ત્યાસુધી આહાર બની શકતો નથી, એટલે મુનિના આગમન પહેલા પચન પાચનાદિ ક્રિયા જરૂર કરવી પડે છે એમ કરવાથી એ આહાર પુરઃકર્મથી દૂષિત થાય તો ભિક્ષુ કદાપિ ભિક્ષા ગ્રહણ કરી શકે નહિ સાધુની સામે કરવામા

साधूनामाहारग्रहणाप्रसक्तिः, साधुसमक्ष क्रियमाणाना क्रियाणा पुरःकर्मत्वे गृहस्थ-कृताऽभ्युत्थानादिक्रियाणामपि पुरःकर्मत्वापत्तौ तद्गृहस्थप्रदत्तभिक्षाया अपि पुरः-कर्मदोपयुक्तत्वेन ग्रहणाभावप्रसङ्गः ? इति चेत्, अत्रोच्यते—

व्युत्पत्त्याऽभ्युत्थानगमनपचनपाचनादीनामपि पुर कर्मत्वसभवेऽपि समय-परिभाषाबलात् केवल भिक्षादानतः प्राक् साधुमुद्दिश्य सचित्तोदकेन हस्तभाजना-दिप्रक्षालनस्यैव पुरःकर्मत्वेन सिद्धान्तितत्वम्, न तु पचन-पाचनाभ्युत्थानादेरपीति।

अत्र दातृ-द्रव्य-गृहाण्याश्रित्याष्टौ भङ्गा भवन्ति यथा—

कर सकते, साधुके सामने की जानेवाली क्रियाको भी पुरःकर्म माना जाय तो गृहस्थकी अभ्युत्थान-वन्दन-आदि क्रियाएँ भी पुरःकर्म कहलायेंगी, इसलिए उसके द्वारा दिया हुआ पुरःकर्मसे दूषित आहार साधु कैसे ग्रहण करेंगे ?

उत्तर-हे शिष्य ! व्युत्पत्तिसे पचन पाचन आदि क्रियाएँ भले ही पुरःकर्म कहलावें, किन्तु समय (शास्त्र)-की परिभाषासे भिक्षादानसे पहले साधुको उद्देश्य करके सचित्त जलसे हाथ या बर्त्तन आदिका प्रक्षालन करना ही पुर.कर्म कहलाता है, पचन-पाचन आदि क्रियाओंको अथवा खडे होने आदिको पुरःकर्म नही कहते ।

इस पुर.कर्मके, दाता, द्रव्य और गृहकी विवक्षासे आठ भग होते है, वे यहाँ बताते हैं—

આવનારી ક્રિયાને પણ જો પુર કર્મ માનવામા આવે તો ગૃહસ્થની અભ્યુત્થાન વ દન આદિ ક્રિયાઓ પણ પુર કર્મ કહેવાશે, તો પછી તેને હાથે આપવામા આવેલો પુર કર્મથી દૂષિત આહાર સાધુ કેવી રીતે ગ્રહણ કરશે ?

ઉત્તર–હે શિષ્ય ! વ્યુત્પત્તિથી પચન પાચન આદિ ક્રિયાઓ ભલે પુર કર્મ કહેવાય, પરન્તુ સમય (શાસ્ત્ર) ની પરિભાષા પ્રમાણે ભિક્ષાદાનની પહેલા સાધુને ઉદ્દેશ્ય કરીને સચિત્ત જલથી હાથ યા વાસણ આદિ ધોવા એ જ પુર કર્મ કહેવાય છે પચન પાચન આદિ ક્રિયાઓ અથવા ઊભા થવા આદિની ક્રિયા એ પુર કર્મ કહેવાતા નથી

આ પુર કર્મના, દાતા, દ્રવ્ય અને ગૃહની વિવક્ષાએ કરીને આઠ ભાગા થાય છે, તે અહીં બતાવે છે–

१ २ ३ ४ ५
मूलम्-पुरेकम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
६ ७ १० ८ ११ ९
दिंतियं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥३२॥

छाया—पुरःकर्मणा हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, तादृशं मे न कल्पते ॥३२॥

पुरःकर्म दोष कहते हैं—

सान्वयार्थः-पुरेकम्मेण=साधुके आनेके पहले या सामने साधुके लिए सचित्त जलसे किया हुआ हस्तादिधावन पुरःकर्म कहलाता है, उस पुरःकर्म वाले हत्थेण=हाथसे दव्वीए=उस प्रकारकी कडछी अथवा चमचासे वा=अथवा भायणेण=दूसरे बरतनसे (आहारादि) दिंतियं=देती हुईको पडियाइक्खे=कहेकि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥३२॥

टीका—पुरःकर्मणा=पुरः=पूर्वम् अग्रतो वा कर्म=क्रिया पुरःकर्म, तेन पुरःकर्मणा, लक्षणया पुरःकर्मयुक्तेनेत्यर्थः, अस्य च हस्तादिभिस्त्रिभिः सम्बन्धः, हस्तेन=करेण, दर्व्या=खजाकया, भाजनेन=अमत्रेण वा ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत्।

नन्वेवं गृहस्थानां पचन-पाचनादिक्रियामन्तरेणाऽऽहारासंभव इति साध्वागमनात्प्राक् पचनादिक्रियाऽवश्यं कर्त्तव्या, तथा सति पुरःकर्मदोषदूषितत्वेन

साधूके आनेसे पहले या सामने की जानेवाली क्रिया को पुरःकर्म कहते हैं। पुरःकर्मयुक्त हाथसे, कुडछी (चमचा) से, अथवा वर्तनसे देनेवालीके प्रति साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है।

प्रश्न-हे गुरुमहाराज ! गृहस्थ जबतक पचन-पाचन आदि क्रिया न करे तब तक आहार बन नहीं सकता है, अत एव मुनिके आगमनके पहले पचन-पाचन आदि क्रिया अवश्य करनी पडती है। ऐसा करनेसे वह आहार पुरःकर्मसे दूषित होगा तो भिक्षु कभी भिक्षा ग्रहण नहीं

સાધુ આવતાની પહેલાં યા સાધુની સામે કરવામાં આવતી ક્રિયાને પુરઃકર્મ કહે છે, પુરઃકર્મયુક્ત કડછીથી કે વાસણથી દેનારીની પ્રત્યે સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી

પ્રશ્ન-હે ગુરૂ મહારાજ ! ગૃહસ્થ જ્યાંસુધી પચનપાચન આદિ ક્રિયા કરતો નથી, ત્યાંસુધી આહાર બની શકતો નથી, એટલે મુનિના આગમન પહેલાં પચનપાચનાદિ ક્રિયા જરૂર કરવી પડે છે એમ કરવાથી એ આહાર પુરઃકર્મથી દૂષિત થાય તો ભિક્ષુ કદાપિ ભિક્ષા ગ્રહણ કરી શકે નહિ સાધુની સામે કરવામાં

साधूनुद्दिश्य करदर्व्यादिप्रक्षालने पुरःकर्मनिमित्तको दोषो भवत्येवेति न तद्दिने तत्राशनादिकं ग्राह्यम् ।

ननु कस्मिंश्चिद्भवने येन पुरःकर्म्माचरितं तदितरस्य करतो भिक्षोपादाने कथं दोषः ? इति चेदुच्यते—

यथा येन विषाक्तमन्नं सम्पाद्यते तदितरस्य हस्तादप्युपादीयमानं तदेवान्नं महतेऽनर्थाय कल्पते, तथा पुरःकर्मदूषितमपि। अत्रायं विशेषः—यत्र गृहे पुरःकर्म समाचरितं तत्र तस्मिन् दिवसे सर्वं द्रव्यमकल्प्यमेव ॥३२॥

यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि यदि साधुके निमित्त हाथ या कुडछी आदिको धोया हो तो पुरःकर्म दोष लगता ही है, इसलिये उस घरमें साधु, भिक्षा नहीं लेवे।

प्रश्न—हे गुरुमहाराज ! किसी मकानमें एकने पुरःकर्म किया तो उससे आहार आदि न लेकर, दूसरे वर्त्तन या दूसरे व्यक्तिके हाथसे लिया जाय तो क्यों दोष लगता है ?

उत्तर—हे शिष्य ! जैसे—किसीने विष-मिश्रित आहार बनाया हो तो बनाने वालेसे न लेकर दूसरेके हाथसे लिया जाय तो भी वह आहार महान् अनर्थकारी होता है, उसी प्रकार, पुरःकर्म दूषित आहार आदि भी अनर्थकारक होता है।

इतनी फिर विशेषता समझनी चाहिये कि, जिस घरमें पुरःकर्म किया गया हो उस घरमें उस दिन सब द्रव्य अकल्प्य होते हैं ॥ ३२ ॥

એ વાત સદા યાદ રાખવી કે જો સાધુને નિમિત્તે હાથ યા કડછી આદિને ધોવા હોય તો પુરઃકર્મ દોષ લાગે છે જ, તેથી એ દિવસે એ ઘરમાં સાધુ ભિક્ષા લે નહિ.

પ્રશ્ન—હે ગુરૂ મહારાજ ! કોઈ મકાનમાં એકે પુરઃકર્મ કર્યું હોય તો ત્યાં તેનાથી આહારાદિ ન લેતાં, બીજા વાસણથી યા બીજી વ્યક્તિના હાથથી લેવામાં આવે તો કેમ દોષ લાગે ?

ઉત્તર—હે શિષ્ય ! જેવી રીતે કોઈએ વિષમિશ્રિત આહાર બનાવ્યો હોય તો બનાવનારના હાથથી ન લેતાં બીજાના હાથથી લેવામાં આવે તોપણ એ આહાર મહાન્ અનર્થકારી થાય છે, તેમ પુરઃકર્મદૂષિત આહારાદિ પણ અનર્થકારક થાય છે.

એટલી વિશેષતા સમજવી જોઈએ કે, જે ઘરમાં પુરઃકર્મ કરવામાં આવ્યું હોય તે ઘરમાં એ દિવસે બધાં દ્રવ્યો અકલ્પનીય બને છે (૩૨)

(१) स दाता (पुरःकर्मकर्ता), अन्यद् द्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।
(२) स दाता, अन्यद्रव्यम् तद्गृहम् (यत्र पुरःकर्म कृतम्) ।
(३) स दाता, तद्रव्यम् (यद्रव्यमुद्दिश्य पुरःकर्म कृतम्), अन्यद्गृहम् ।
(४) स दाता, तद्रव्य, तद्गृहम् ।
(५) अन्यो दाता, तद्रव्य, तद्गृहम् ।
(६) अन्यो दाता, तद्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।
(७) अन्यो दाता, अन्यद्रव्य, तद्गृहम् ।
(८) अन्यो दाता, अन्यद्रव्यम्, अन्यद्गृहम् ।

एष्वष्टसु भङ्गेषु प्रथमाऽष्टमौ भङ्गौ साधूना कल्प्यौ, तदितरे भङ्गा अकल्प्या ।

१—	वही (पुरःकर्म करनेवाला) दाता,	अन्य द्रव्य,	अन्य गृह ।
२—	वही दाता,	अन्य द्रव्य,	वही गृह ।
३—	वही दाता,	वही द्रव्य,	अन्य गृह ।
४—	वही दाता,	वही द्रव्य,	वही गृह ।
५—	अन्य दाता,	वही द्रव्य,	वही गृह ।
६—	अन्य दाता,	वही द्रव्य,	अन्य गृह ।
७—	अन्य दाता,	अन्य द्रव्य,	वही गृह ।
८—	अन्य दाता,	अन्य द्रव्य,	अन्य गृह ।

इन आठ भगोमेंसे पहला भग और आठवाँ भग साधुके लिये कल्प्य है और अन्य सब अकल्प्य हैं ।

१	એજ (પુરકર્મ કરનાર) દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય,	અન્ય ગૃહ
૨	એજ દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૩	એજ દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	અન્ય ગૃહ
૪	એજ દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૫	અન્ય દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૬	અન્ય દાતા,	એજ દ્રવ્ય,	અન્ય ગૃહ
૭	અન્ય દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય,	એજ ગૃહ
૮	અન્ય દાતા,	અન્ય દ્રવ્ય,	અન્ય ગૃહ

આ આઠ ભાગામાથી પહેલો ભાગો અને આઠમો ભાગો સાધુને માટે કલ્પનીય છે અને બીજા બધા અકલ્પનીય છે

विन्दुनिपातरहित इति यावत्, सरजस्कः=सचित्तरजोऽवगुण्ठितः, हस्तादिर्वोद्धव्यः, तथा मृत्तिका=साधारणसचित्तमृत्तिका, ऊपः=क्षारमृत्तिका, हरिताल=स्वनामप्रसिद्धपीतवर्णधातुविशेषः, हिङ्गुलकः=स्वनामख्यातपार्थिवरागद्रव्यविशेषः, मनः-शिला=स्वनामख्यातरक्तवर्णधातुविशेषः 'मेनसील' इतिप्रसिद्धः अञ्जन=सौवीराञ्जनम्, लवण=सचित्तसामुद्रिकलवणम्, गैरिक-वर्णिक-सेटिका-सौराष्ट्रिका-पिष्ट-कुक्कुसा इति, मूले आर्पत्वाल्लुप्तविभक्तिक पदम्, तत्र गैरिकः=स्वनामप्रसिद्धो धातुः, वर्णिका=पीतवर्णमृत्तिका, सेटिका=श्वेतमृत्तिका 'खडी' इतिभाषाप्रसिद्धा, सौराष्ट्रिका=गोपीचन्दन पिष्ट=गोधूमादिचूर्णम्, कुक्कुसः=तत्कालकण्डितधान्यतुपः, च=पुनः उत्कृष्ट=कूष्माण्डा-लाबू-त्रपुप-तरम्बुजादीना शस्त्रकृत श्लक्ष्णखण्डम्, एतैर्मृत्तिकादिभिरसंसृष्टः=साधवे भिक्षा ददामीतिकृत्वा ससर्गसम्मार्जनेन तदलिप्तः, संसृष्टः=तत्संसर्गसम्मार्जनेनापि तल्लिप्त एव कृतः=विहितो हस्तादिर्वोध्य'। पुरःकर्मयुक्तेन हस्तादिनेव उदकार्द्रादिहस्तादिना, तथा मृत्तिकादिसमृष्टहस्तादिक केनापि विधिना साधुनिमित्तमसंसृष्टीकृत्य सम्मार्ज्य, एव मृत्तिकादिसंसृष्टहस्तादिना च ददती प्रत्याचक्षीत–तादृश मे न कल्पत इति ॥३३॥३४॥

(हाथकी रेखा गीली हो), सचित्त रजसे सहित तथा साधारण सचित्त मिट्टी, खारी मिट्टी, हरताल, हिंगुल, मैनसील, अजन, सचित्त नमक, गेरू, पीली मिट्टी, खडिया मिट्टी, गोपीचन्दन, ताजा पीसा हुआ गेहूं आदिका आटा, तत्काल खाडा हुआ धान्यका तुप (बुस्सा), कुम्भडा (कद्दू), तुम्बा (ककडी), तथा तरबूजके छोटे२ खड, इन सबसे हाथ लिप्त हो अथवा किसी प्रकारसे साधुके लिये उसे (सचित्तसे लिप्त हाथको) अलिप्त किया हो और उस हाथसे भिक्षा देवे तो साधु कहे कि 'ऐसा आहार हमे नही कल्पता है' ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

રેખાઓ લીલી હોય,) સચિત્ત રજથી સહિત, તથા સાધારણ સચિત્ત માટી, ખારી માટી, હરતાલ, હિંગળો, મણસીલ, સુરમો, સચિત્ત મીઠું, ગેરૂ, પીળી માટી, ખડીની માટી, ગોપીચંદન, તાજા દળેલા ઘઉ આદિનો અટો, તાજા ખાડેલા ધાન્યના તુપ (ભૂસુ), કોહલુ, દૂધી તથા તડબૂચના કકડા, એ બધાથી હાથ લિપ્ત હોય, અથવા કોઈ પ્રકારે સાધુને માટે તેને (સચિત્તથી ખરડાયલા હાથને) અલિપ્ત કર્યા હોય અને એ હાથથી ભિક્ષા આપે તો સાધુ કહે કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી' (૩૩–૩૪)

मूलम्-एव उदउल्ले ससिणिद्धे ससरक्खे मट्टिया ऊसे ।
हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अंजणे लोणे ॥३३॥
गेरुय-वन्निय-सेडिय,-सोरट्ठिय-पिट्ठ-कुक्कुस कए य ।
उक्किट्ठ-मससट्ठे, ससट्ठे चेव बोद्धव्वे ॥ ३४ ॥

छाया—एवम् उदकार्द्रः सस्निग्धः, सरजस्को मृत्तिका ऊषः ।
हरिताल हिङ्गुलक, मनःशिलाऽञ्जन लवणम् ॥३३॥
गैरिक-वर्णिक -सेटिका,-सौराष्ट्रिका-पिष्ट-कुक्कुसाः कृतश्च ।
उत्कृष्टमसंसृष्टः, संसृष्ट एव बोद्धव्यः ॥३४॥

सान्वयार्थः-एव=इसी प्रकार उदउल्ले=टपकते हुए जलसहित ससणिद्धे=गीली रेखाओसे सहित या ससरक्खे=सचित्त रजसे गुण्ठित-सहित हाथ आदि हो, (तथा) मट्टिया=सचित्त मिट्टी ऊसे=साजीखार हरियाले=हरताल हिंगुलए=हिंगलू मणोसिला=मैनसिल अजणे=सौवीराञ्जन लोणे=सचित्त नमक ॥ गेरुय=गेरु वन्निय=पीली मिट्टी सेडिय=श्वेत मिट्टी-खड़ी सोरट्ठिय=सोरठी मिट्टी गोपी चन्दन पिट्ठ=तत्कालका पीसा हुआ आटा (तथा) कुक्कुस=तत्कालके खाडे हुए धान्यके तुष-भूसे-से भरे हुए य=और उक्किट्ठ=चाकूसे बनाये हुए कोळे, तूने, ककडी आदिके कोमल कोमल टुकडे, इन पूर्वोक्त किसी वस्तुसे भी असंसट्ठे=खरडे-लिपे-हुए हाथ आदिको साधुके लिए किसी प्रकारसे अलिप्त बनाया हो, धोकर या पूछकर साफ किया हो, ऐसे हाथको ससट्ठे=चेव कए लिप्तही बोद्धव्वे=जान लेवे, अर्थात् इस प्रकारके असंसृष्ट हाथ आदिसे अथवा इनसे संसृष्ट हाथ आदि से साधु आहार-पानी नहीं लेवे, यह प्रकरणगत सम्बन्ध है ॥३३-३४॥

टीका—'एवम् उदउल्ले०' इत्यादि । एवम्=इत्थमेव पुर कर्मवदित्यर्थः । उदकार्द्रं=गलत्सचित्तजलबिन्दुक , सस्निग्ध =ईषदार्द्र =आर्द्रीभूतहस्तरेखादिम् -

'एव उदउल्ले' इत्यादि, 'गेरुय' इत्यादि च ।
इसी प्रकार, गिरते हुए सचित्त जलकी बूंदोसे युक्त, थोडा, गीला

एव उदउल्ले ઇત્યાદિ ગેરુય ઇત્યાદિ
એ પ્રમાણે, પડતા સચિત્ત જળના બિંદુઓથી યુક્ત, થોડા લીલા (હાથની

सचित्तजलेन तत्करादिक्षालनसम्भवः, तच्च प्रक्षालनादिकं भिक्षुनिमित्तकमिति पश्चात्कर्मदोपो विज्ञेयः, यद्येवमि येनापि हस्तादिना स्वयं भुञ्जीतान्यस्मै वा परिवेपयेत्तदा न पश्चात्कर्मदोपः, तत्र पश्चाद्भाविनः प्रक्षालनादेर्भिक्षुनिमित्तत्वाभावात्, यत्र दर्व्यादौ पश्चात्कर्मदोपसम्भावनाया अभावस्तत्र नायं प्रतिपेध इत्याशयः ॥३५॥

मूलम्-ससट्ठेण य हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ॥ ३६ ॥

छाया—संसृष्टेन च हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
दीयमानं प्रतीच्छेत्, यत्तत्रैपणीयं भवेत् ॥३६॥

सान्वयार्थ'-ससट्ठेण=व्यञ्जनादिसे लिप्त हत्थेण=हाथ य=या दव्वीए=कटछी वा=अथवा भायणेण=बरतनसे दिज्जमाण=दियाजानेवाला आहारादि हो तत्थ=वहा उस आहारादिमे जं=जो एसणियं=उद्गम-उत्पादना-आदि दोप-रहित भवे=हो, उसे पडिच्छिज्जा=लेवे ॥३६॥

टीका—'ससट्ठेण' इत्यादि । टीका स्पष्टा ॥३६॥

और वह प्रक्षालन साधुके निमित्तसे होगा, इसलिये वहाँ पश्चात्कर्मदोप लगता है। यदि ऐसे (लिप्त किये हुए) ही हाथसे स्वयं भोजन करे या दूसरेको परोसे तो पश्चात्कर्मदोप नहीं लगता, क्योंकि बादमें होनेवाले उस प्रक्षालन आदि कर्मका निमित्त, साधु नही रहता है-अर्थात् जिस कुडछी आदिमें पश्चात्कर्म होनेकी सम्भावना न हो वहाँ यह निपेध नहीं है-यानी वह लेना कल्पता है ॥ ३५ ॥

'ससट्ठेण' इत्यादि। संसृष्ट हाथ, कुडछी और वर्त्तनसे दिये जानेवाले आहारमेंसे जो एपणीय अर्थात् उद्गम-उत्पादना-आदिदोपरहित हो वह साधु ग्रहण करें ॥ ३६ ॥

પ્રક્ષાલન સાધુના નિમિત્તે થાય, તેથી તેમાં પશ્ચાત્કર્મદોષ લાગે છે જો એવા (લિપ્ત કરેલા-ખરડાયેલા)જ હાથથી પોતે ભોજન કરે યા બીજાને પીરસે તો પશ્ચાત્કર્મદોષ લાગતો નથી, કારણ કે પાછળથી થનારૂ પ્રક્ષાલન-આદિ કર્મનું નિમિત્ત સાધુ રહેતો નથી અર્થાત્ જે કડછી આદિમાં પશ્ચાત્કર્મ થવાની સંભાવના નહિ હોય, ત્યાં એ નિષેધ નથી એટલે કે એ આહાર લેવો સાધુને કલ્પે છે (૩૫)

સસટ્ઠેણ ઇત્યાદિ સંસૃષ્ટ હાથ, કડછી અને વાસણથી આપવામાં આવતા આહારમાંથી જે એષણીય અર્થાત્ ઉદ્ગમ ઉત્પાદના આદિ દોષથી રહિત હોય તે સાધુ ગ્રહણ કરે (૩૬)

४ ५ ६ ७ ८
मूलम्--असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
९ १० ११ २ १ ३
दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे ॥३५॥

छाया---असंसृष्टेन हस्तेन, दर्व्या भाजनेन वा ।
दीयमानं नेच्छेत्, पश्चात्कर्म यत्र भवेत् ॥३५॥

सान्वयार्थः--जहिं=जहां पच्छाकम्मं=पश्चात्कर्म साधुको आहार आदि देनेके बाद सचित्त जलसे हाथ आदिका धोना भवे=होनेवाला हो उस प्रकारके असंसट्ठेण=व्यञ्जन शाक कढ़ी आदि-से अलिप्त याने साफ 'ऐसे' हत्थेण=हाथ दव्वीए=कडछी वा=अथवा भायणेण=बरतनसे दिज्जमाणं=दिये जानेवाले आहार आदिकी साधु न इच्छिज्जा=इच्छा न करे, अर्थात् उस आहारादिको साधु न लेवे ॥३५॥

टीका-पश्चात्कर्म-दोषमाह-'असंसट्ठेण०' इत्यादि । यत्र=हस्तादौ पश्चात्=दानानन्तरं कर्म भवेत्=सम्भवेत् तादृशेन असंसृष्टेन=व्यञ्जनादिनाऽलिप्तेन हस्तेन दर्व्या भाजनेन वा 'असंसृष्टेने'-त्येतत्प्रत्येकं सम्बध्यते, दीयमानमाहारादिकं नेच्छेत्=नाभिलषेत् मनसाऽपीत्यर्थात् । यत्र स्वार्थं व्यञ्जनादिना हस्तादिकं नोपलिप्तं किन्तु भिक्षुमुद्दिश्य भक्तादिदानार्थं हस्ताद्युपलेपो जायते, तत्र दानानन्तरं

अब पश्चात्कर्मदोष बताते हैं-'असंसट्ठेण' इत्यादि । भिक्षा देनेके अनन्तर गृहस्थको साधुके निमित्तसे सचित्त जल आदिके द्वारा हाथ आदि प्रक्षालन करनेकी सम्भावना हो तो साधु, ऐसे व्यञ्जन आदिसे अलिप्त हाथ, कुडछी अथवा बर्तनसे दिये जानेवाले आहारकी अभिलाषा न करे।

गृहस्थके हाथ अपनेलिये व्यञ्जन आदिसे लिप्त न हों तो उन हाथोंसे साधुको भिक्षा देवे, तदनन्तर सचित्त जलसे हाथका धोना सम्भव है

હવે પશ્ચાત્કર્મદોષ બતાવે છે-અસંસટ્ઠેણ ઇત્યાદિ

ભિક્ષા આપ્યા પછી સાધુને નિમિત્તે સચિત્ત જળ આદિ દ્વારા હાથ આદિ ધોઈ નાખવાની ગૃહસ્થને માટે સંભાવના હોય, તો સાધુ એવા વ્યંજન આદિથી અલિપ્ત હાથ, કડછી અથવા વાસણથી આપવામાં આવનારા આહારની અભિલાષા ન કરે

ગૃહસ્થના હાથ પોતાને માટે વ્યંજનાદિથી લિપ્ત ન હોય તો એ હાથથી સાધુને ભિક્ષા આપે, પછી સચિત્ત જળથી હાથ ધોવાનો સંભવ છે અને એ

२ ४ ३ ५ १ ६
मूलम्-दुण्ह तु भुंजमाणाणं, दोवि तत्थ निमंतए ।
११ १२ ८ ७ ९ १०
दिज्जमाणं पडिच्छिज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ॥३८॥

छाया —द्वयोस्तु भुञ्जानयो,-र्द्वावपि तत्र निमन्त्रयेताम् ।
दीयमानं प्रतीच्छे,-द्यत्तत्रैषणीयं भवेत् ॥३८॥

सान्वयार्थः-अगर-भुंजमाणाणं=भोजन या खाद्य पदार्थोंके रक्षण करते हुए दुण्हं=दोमेंसे तु=यदि तत्थ=वहां दोवि=दोनो ही निमंतए=निमन्त्रण करे-आहारादि देवें तो तत्थ=उस आहारादिमेंसे जं=जो एसणियं=एषणीय-निर्दोष हो वह दिज्जमाणं=दिया जानेवाला आहारादि पडिच्छिज्जा=लेवे ॥३८॥

टीका-यद्युभावपि निमन्त्रयेतां तदा तत्र यदेषणीयं तद् गृह्णीयादित्यर्थः ॥३८॥

१ २ ३ ४
मूलम्-गुव्विणीए उवण्णत्थं, विविहं पाणभोयणं ।
५ ६ ७ ८
भुंजमाणं विवज्जिज्जा, भुत्तसेसं पडिच्छए ॥३९॥

छाया—गुर्विण्यै उपन्यस्तं, विविधं पानभोजनम् ।
भुज्यमानं विवर्जयेद्, भुक्तशेषं प्रतीच्छेत् ॥३९॥

सान्वयार्थः-गुव्विणीए=गर्भवतीके लिए उवण्णत्थं=बनाकर रखा हुआ विविहं=नाना प्रकारका पाणभोयणं=खान पान (यदि वह) भुंजमाणं=खा रही हो तो (उस आहारादिको साधु) विवज्जिज्जा=वरजे न लेवे, (किन्तु) भुत्तसेसं=गर्भवतीके भोजन करलेनेके बाद जो शेष रहा हो तो उसे पडिच्छए=लेवे ॥३९॥

टीका-'गुव्विणीए०' इत्यादि। गुर्विण्यै=गर्भवत्यै, उपन्यस्तं=गर्भपोषणार्थं=तदीयरुच्यनुकूलतया सम्पादितं स्थापितं वा विविधं=नैकप्रकारं पान-भोजनं=

यदि वे दोनो आहार देनेको उद्यत हों और वह आहार एषणीय हो तो ग्रहण कर लेवे ॥३८॥

'गुव्विणीए०' इत्यादि। गर्भवती स्त्रीकी इच्छा के अनुसार अर्थात् उसके लिये बनाये हुए तथा गर्भको पुष्ट करनेवाले अनेक प्रकारके पान

જો આહાર આપવાના એ બેઉ ઉદ્યત હોય અને એ આહાર એષણીય હોય તો સાધુ તે ગ્રહણ કરે (૩૮)

ગુવ્વિણીએ૦ ઇત્યાદિ ગર્ભવતી સ્ત્રીની ઇચ્છાને અનુસરીને અર્થાત્ એને માટે બનાવેલા તથા ગર્ભને પુષ્ટ કરનારા અનેક પ્રકારના પાન અને ભોજન

२ ४ ३ ५ १ ६
मूलम्–दुण्ह तु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतए ।
७ ८ ९ ११ १० १२
दिज्जमाणं न इच्छिज्जा, छंदं से पडिलेहए ॥३७॥

छाया—द्वयोस्तु भुञ्जानयोः, एकस्तत्र निमन्त्रयेत् ।
दीयमानं नेच्छेत्, छन्दं तस्य प्रतिलेखयेत् ॥३७॥

सान्वयार्थः–तत्थ=वहां भुंजमाणाणं=भोजन करते हुए दुण्ह=दोनोंमेंसे तु=यदि एगो=एक आदमी निमंतए=निमन्त्रित करे–आहारादि देना चाहे तो दिज्जमाणं=वह दियाजानेवाला आहारादि (साधु) न इच्छिज्जा=न चाहे-न लेवे, (किन्तु) से=उस नहीं निमन्त्रण करनेवालेके छंदं=अभिप्रायको पडिलेहए=देखे ॥३७॥

टीका—'दुण्हं तु' इत्यादि । तत्र=तयोः=एकवस्तुस्वामित्वेन प्रसिद्धयोः, द्वयोः भुञ्जानयोः=(अत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी भुजधातुश्च पालनाभ्यवहारोभयार्थकस्ततश्च) पालयतोः, भोक्तुमुद्यतयोश्च मध्ये (पालनार्थकत्वे तु परस्मैपदं स्वयमूहनीयम्) (यदि) एकः=अन्यतरः निमन्त्रयेत्=दातुमुद्यतेत, तदा दीयमानम् (आहारादि) भिक्षुः नेच्छेत्, किन्तु तस्य=दानोद्यतेतरस्य छन्दम्=अभिप्रायं भ्रू नेत्रविकारादिरूपचिह्नैः प्रतिलेखयेत्=प्रेक्षेत-'दानमस्येष्टं न वे'-ति निश्चिनुयादित्यर्थः ॥३७॥

ततः किं कुर्यादित्याह–'दुण्हं तु' इत्यादि ।

'दुण्हं तु०' इत्यादि । यदि एक वस्तुके दो स्वामी हों तथा दो गृहस्थ भोजन करनेके लिये उद्यत हुए हों, और उन दोनोंमेंसे एक व्यक्ति आहार देनेके लिये उद्यत हो तो ऐसे आहारकी इच्छा भिक्षु न करे, किन्तु दूसरेके भौंह नेत्र आदि विकारसे अभिप्रायका अनुभव करे कि बहराने (देने)में इसकी सम्मति है या नहीं ? ॥ ३७ ॥

इसके पश्चात् क्या करे ? सो कहते हैं–'दुण्हं तु०' इत्यादि ।

दुण्हं तु० ઇત્યાદિ જો એક વસ્તુના બે સ્વામી હોય તથા બે ગૃહસ્થો ભોજન કરતા હોય અને એ બેમાંથી એક આહાર આપવા માટે ઉદ્યત હોય તો એવા આહારની ઇચ્છા ભિક્ષુ ન કરે પરંતુ બીજાના ભ્રમરો, નેત્ર, આદિના વિકારથી અભિપ્રાયનો અનુભવ કરે કે વહોરાવવામાં એની સંમતિ છે કે નહિ ? (૩૭)

એ પછી શું કરે ? તે કહે છે–दुण्हं तु० ઇત્યાદિ

त तु=तो वह भत्तपाण=आहार-पानी सजयाण=साधुओंके लिए अकप्पियं= अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दितिय=देनेवालीसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ।४०।४१।

टीका-'सिया य०' 'त भवे' इत्यादि । च=पुनः उत्थिता=दण्डवत्समवस्थिता, कालमासिनी=कालमासशब्देनात्र प्रसवकालमासो गृह्यते, स च सप्तमासादारभ्य सार्द्धसप्तरात्राधिक नवमास यावत्, तद्वती-प्राप्तप्रसवयोग्यसमयेत्यर्थः, गुर्विणी= गर्भवती, स्यात्=कदाचित्, श्रमणार्थं=साधुनिमित्त-सा नवे दातुमित्यर्थः, निषीदेत्= उपविशेत्, वा=अथवा, निषण्णा=उपविष्टा पुनरुत्तिष्ठेत्, तदा तत्=तया दीयमान भक्त-पान तु सयताना=सयमवताम् अकल्पिक(त)म्=अग्राह्यम्, अतो ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ।

'सर्वं वाक्य सावधारण भवती'-तिन्यायेन उत्थिता यदि दातुमुपविशेदेव,

---

'सिया य०' इत्यादि 'त भवे०' इत्यादि च । प्रसव-काल-मासवाली अर्थात् सातवें महीनेसे आरम्भ करके साढ़े सात रात सहित नववें महीनें तक, अर्थात् सातवें महीनेके बाद प्रसव होनेतकके समयवाली स्त्री, यदि खड़ी हुई हो और साधुको भिक्षा देनेके लिये बैठे, अथवा बैठी हुई हो किन्तु भिक्षा देनेके लिये उठे तो उसके द्वारा दिया जानेवाला आहार, सयमियोंके लिये कल्प्य नहीं है, अतः देनेवाली (स्त्री) से कहे कि 'ऐसा आहार हमें कल्पता नहीं है ॥'

सब वाक्य, 'सावधारण अर्थात् निश्चय करानेवाले होते हैं' इस न्यायके बलसे यहाँ पर यह तात्पर्य निकलता है कि यदि देनेवाली बैठी हो और खड़ी होकरके ही आहार देवे, या खडी हो किन्तु बैठ करके ही

सिया य० ઇત્યાદિ त भवे० ઇત્યાદિ પ્રસવકાળ માસવાળી અર્થાત્ સાતમા મહીનાથી આરંભીને સાડા સાત રાત સહિત નવમા મહીના સુધી, એટલે કે સાતમા મહિના પછી પ્રસવ થાય ત્યાંસુધીના સમયવાળી સ્ત્રી જો ઊભી હોય અને સાધુને ભિક્ષા આપવાને માટે બેસે, અથવા બેઠી હોય પરન્તુ ભિક્ષા આપ વાને માટે ઉઠે તો તેણે આપેલો આહાર સંયમીઓને માટે કલ્પનીય નથી, દેનારી સ્ત્રીને કહેવું કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી'

બધા વાક્યો 'સાવધારણ અર્થાત્ નિશ્ચય કરાવવાવાળા હોય છે' એ ન્યાયાનુસાર અહીં એ તાત્પર્ય નીકળે છે કે જો આપનારી બેઠી હોય અને ઊભી થઈને જ આહાર આપે યા ઊભી હોય પરન્તુ બેસીને જ આહાર આપે તો એ

पान=पेय-प्रपाणकादिक, भोजन=भोज्य मोदकादिक (तथा) भुज्यमानम्= उपभुज्यमान च विवर्जयेत्=न गृह्णीयात् यतस्तद र्थोपकल्पिताऽऽहारादिग्रहणे यथा रुच्याहाराद्यभावात्तदिच्छाभङ्गस्ततश्च गर्भपीडा-तत्पातादिसम्भवः । ननु तर्हि किं सर्वथा विवर्जयेदित्याह-'भुक्ते'ति-भुक्तशेष=भुक्तादवशिष्ट प्रतीच्छेत्= उपाददीत ॥३९॥

मूलम्-सिया य समणट्ठाए, गुव्विणी कालमासिणी ।
उट्ठिया वा निसीएज्जा, निसन्ना वा पुणुट्ठए ॥४०॥
तं भवे भत्तपाण तु, संजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४१॥

छाया—स्याच्च श्रमणार्थ, गुर्विणी कालमासिनी ।
उत्थिता वा निपीदेत्, निपण्णा वा पुनरुत्तिष्ठेत् ॥४०॥
तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४१॥

सान्वयार्थः-य=और कालमासिणी=नजदीक प्रसवकालवाली गुव्विणी= गर्भवती स्त्री सिया=यदि कदाचित् उट्ठिया वा=पहलेसे खडी हो (किन्तु) समणट्ठाए=साधुके लिए अर्थात् साधुको आहारादि देनेके लिए निसीएज्जा=बैठे वा=अथवा निसन्ना=पहलेसे बैठी हुई (साधुके लिए) पुण=फिर उट्ठए=ऊठे,

और भोजन (मोदक आदि) का और वह जिसका उपभोग कर रही हो उस आहारका (साधु) त्याग करे-ग्रहण न करे । क्योंकि उसके लिये बनाये हुए भोजनको ग्रहण करनेसे उसकी इच्छाका भग होकर गर्भको पीडा पहुँचेगी, और गर्भपात तक होनेका सम्भव हो जायगा । तो क्या वैसा आहार लेवे ही नही? सो कहते है-गर्भवती के भोजन कर लेने बाद जो आहार अवशेष रहे उसे ग्रहण करनेमे दोष नही है ॥३९॥

(મોદક આદિ)નો અને તે જેનો ઉપભોગ કરી રહી હોય તે આહારનો સાધુ ત્યાગ કરે-ગ્રહણ ન કરે, કારણ કે એને માટે બનાવવામાં આવેલા ભોજનને ગ્રહણ કરવાથી તેને રૂચિને અનુસાર ભોજન નહિ મળે, તેથી એની ઈચ્છાનો ભંગ થશે અને ગર્ભને પીડા પહોંચશે અને ગર્ભપાત પણ થઇ જવાનો સંભવ રહેશે તો શું એવો આહાર લેવોજ નહિ ? તે માટે કહે છે કે-ગર્ભવતી ભોજન કરી રહે ત્યારપછી જે આહાર અવશેષ રહે તેને ગ્રહણ કરવામાં દોષ નથી (૩૯)

छाया—स्तन्य पाययन्ती (च), दारक वा कुमारिकाम् ।
त निक्षिप्य रुदन्त,-माहरेत्पान-भोजनम् ॥४२॥
तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४३॥

सान्वयार्थः-दारग=लडके कुमारिय=लडकी वा=अथवा नपुसक किसीभी बच्चेको थणग=स्तन्य-दूध पिज्जमाणी=पिलाती हुई त=उस बच्चेको रोयत=रोते हुएको निक्खिवित्तु=भूमि आदि पर रखकर (यदि) पाण-भोयण=आहार-पानी आहरे=देवे, त तु=तो वह भत्तपाण=आहार-पानी सजयाण=साधुओके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दितिय=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ= नहीं कल्पता है ॥४२-४३॥

टीका—'थणग' इत्यादि । दारक=शिशुम्, कुमारिका=बालिकाम्, 'वा' शब्दात्सगृहीत नपुसकञ्च, स्तन्य=दुग्ध पाययन्ती, त=पिबन्त शिशुप्रभृतिक रुदन्त= क्रन्दन्त निक्षिप्य=भूम्यादौ निधाय पान-भोजनमाहरेत् तदा तद्भक्त-पान तु सयतानामकल्पिक(त) भवेत्, अतो ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पत इति ।

अत्रायमभिसन्धिः-यदि दारकादिः केवल स्तन्यपानोपजीवी स्तन्यपानान्न-भोजनोभयोपजीवी वा भवेत् त पाययन्ती स्तन्यपान सन्त्याज्य पानभोजन दद्यात्,

---

'थणग' इत्यादि, 'त भवे' इत्यादि ।

स्त्री यदि, लडके, लडकी या नपुसकको दूध पिलाती हो और उस पीनेवाले रोते हुए बालक आदिको, जमीन पर रख कर, पान-भोजन देवे तो साधु कहे कि 'ऐसा आहार, मुझे नही कल्पता है,' यहाँ तात्पर्य यह है कि, यदि बालक दूधमुहाँ हो अथवा दूध भी पीता हो और अन्न भी खाता हो, उस बालकको स्तनपान छुडा कर आहार पानी देवे,

---

थणग० ઇત્યાદિ, त भवे० ઇત્યાદિ

જો સ્ત્રી પુત્ર પુત્રી કે નપુસકને દૂધ પાતી હોય અને એ પીનારા રોતા બાળક આદિને જમીન પર મૂકીને ભોજનપાન આપે તો સાધુ કહે કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી ' અહીં તાત્પર્ય એ છે કે જો બાળક દૂધમુખ (દૂધ પર જ) હોય અથવા દૂધ પીતુ હોય તથા અન્ન પણ ખાતુ હોય, તો એવા બાળકને સ્તનપાન છોડાવીને આહાર પાણી આપે, અથવા કોઇ બાળક સ્તનપાન

उपविष्टा वोत्तिष्ठेदेव तदा दीयमानमाहारादिकमकल्पिक(त) स्यादिति । तत्तात्पर्याऽवधारणेनेदमायाति-उत्थिता तादृशी गर्भवती यथास्थितैव, उपविष्टा वोपविष्टैव दद्यात्तदा साधूना नाऽकल्पिक(त) किन्तु ग्राह्यमेवेति स्थविरकल्पिकापेक्षमिदम् । जिनकल्पिमिस्तु प्रथमदिवसादेव तया दीयमान न गृह्यते इति वृद्धाः ॥

'कालमासिनी' पदेन, षण्मासानन्तर गर्भस्य गुरुत्वेनोत्थानादिक्रियाया तत्सखलनादिना तस्या गर्भस्य च पीडाऽवश्यमाविनीति सूचितम् ॥४०॥४१॥

मूलम्-थणग पिज्जमाणी (य), दारगं वा कुमारियं ।
त निक्खिवित्तु रोयतं, आहरे पाण-भोयण ॥४२॥
त भवे भत्त-पाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४३॥

आहार देवे तो उससे दिया जानेवाला आहार अकल्प्य होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ऐसी गर्भवती स्त्री यदि बैठी हो और बैठी बैठी ही आहार देवे या खडी हो और खडी खडी ही आहार देवे तो साधुओंके लिये अकल्प्य नही है, किन्तु कल्पनीय ही है। यह बात, स्थविर-कल्पकी अपेक्षासे समझनी चाहिये। वृद्धोंका मत है कि जिनकल्पी महाराज, गर्भके प्रथम दिनसे ही गर्भवती स्त्रीके हाथसे दिया जानेवाला आहार सर्वथा नही लेते है ।

'कालमासिनी' पदसे यह सूचित किया है कि-छठे महीनेके बाद गर्भ भारी हो जाता है, इस कारण हिलने डोलनेसे गर्भवतीको तथा उसके गर्भको पीडा अवश्य होती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

રીતે આપવામા આવતો આહાર અકલ્પ્ય બને છે એનુ તાત્પર્ય એ થયુ કે એવી ગર્ભવતી સ્ત્રી જો બેઠી હોય તો બેઠી બેઠી જ આહાર આપે યા ઊભી હોય તો ઊભી ઊભી આહાર આપે તો સાધુને માટે તે અકલ્પ્ય નથી, પરતુ કલ્પનીય છે આ વાત સ્થવિરકલ્પની અપેક્ષાએ સમજવી જોઈએ વૃદ્ધોનો મત એવો છે કે જિનકલ્પી મહારાજ ગર્ભના પ્રથમ દિવસથી જ ગર્ભવતી સ્ત્રીના હાથથી આપવામા આવતો આહાર સર્વથા લેતા નથી

कालमासिनी એ શબ્દથી સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે છઠા મહીના પછી ગર્ભ ભારે થઇ જાય છે તેથી હીલચાલ કરવાથી ગર્ભવતી તથા એના ગર્ભને અવશ્ય પીડા થાય છે (૪૦-૪૧)

छाया—स्तन्य पाययन्ती (च), दारक वा कुमारिकाम् ।
त निक्षिप्य रुदन्त,-माहरेत्पान-भोजनम् ॥४२॥
तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४३॥

सान्वयार्थः-दारग=लडके कुमारिय=लड़की वा=अथवा नपुसक किसीभी वच्चेको थणग=स्तन्य दूध पिज्जमाणी=पिलाती हुई त=उस वच्चेको रोयत=रोते हुएको निक्खिवित्तु=भूमि आदि पर रखकर (यदि) पाण-भोयण=आहार-पानी आहरे=देवे, त तु=तो वह भत्तपाण=आहार-पानी सजयाण=साधु-ओके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दितिय=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ= नहीं कल्पता है ॥४२-४३॥

टीका—'थणग' इत्यादि । दारक=शिशुम्, कुमारिका=बालिकाम्, 'वा' शब्दात्सगृहीत नपुसकञ्च, स्तन्य=दुग्ध पाययन्ती, त=पिबन्त शिशुप्रभृतिक रुदन्त= क्रन्दन्त निक्षिप्य=भूम्यादौ निधाय पान-भोजनमाहरेत् तदा तद्भक्त-पान तु सय-तानामकल्पिक(त) भवेत्, अतो ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पत इति ।

अत्रायमभिसन्धिः-यदि दारकादिः केवल स्तन्यपानोपजीवी स्तन्यपानान्न-भोजनोभयोपजीवी वा भवेत् त पाययन्ती स्तन्यपान सन्त्याज्य पानभोजन दद्यात्,

---

'थणग' इत्यादि, 'त भवे' इत्यादि ।

स्त्री यदि, लडके, लडकी या नपुसकको दूध पिलाती हो और उस पीनेवाले रोते हुए बालक आदिको, जमीन पर रख कर, पान-भोजन देवे तो साधु कहे कि 'ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है,' यहाँ तात्पर्य यह है कि, यदि बालक दूधमुहाँ हो अथवा दूध भी पीता हो और अन्न भी खाता हो, उस बालकको स्तनपान छुडा कर आहार पानी देवे,

---

થણગ૦ ઇત્યાદિ, ત ભવે૦ ઇત્યાદિ

જો સ્ત્રી પુત્ર પુત્રી કે નપુસકને દૂધ પાતી હોય અને એ પીનારા રોતા બાળક આદિને જમીન પર મૂકીને ભોજનપાન આપે તો સાધુ કહે કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી' અહીં તાત્પર્ય એ છે કે જો બાળક દૂધમુખ (દૂધ પર જ) હોય અથવા દૂધ પીતુ હોય તથા અન્ન પણ ખાતુ હોય, તો એવા બાળકને સ્તનપાન છોડાવીને આહારપાણી આપે, અથવા કોઇ બાળક સ્તનપાન

उपविष्टा चोत्तिष्ठेदेव तदा दीयमानमाहारादिकमकल्पिकं(तं) स्यादिति । तत्तात्प र्याऽवधारणेनेदमायाति-उत्थिता तादृशी गर्भवती यद्युत्थितैव, उपविष्टा वोपविष्टैव दद्यात्तदा साधुना नाऽकल्पिकं(तं) किन्तु ग्राह्यमेवेति स्थविरकल्पिकापेक्षमिदम्। जिनकल्पिभिस्तु प्रथमदिवसादेव तया दीयमानं न गृह्यते इति वृद्धाः ॥

'कालमासिनी' पदेन, षण्मासानन्तरं गर्भस्य गुरुत्वेनोत्थानादिक्रियाया तत्सञ्चलनादिना तस्या गर्भस्य च पीडाऽवश्यभाविनीति सम्सूचितम् ॥४०॥४१॥

मूलम्-थणगं पिज्जमाणी (य), दारगं वा कुमारियं ।
तं निक्खिवित्तु रोयंतं, आहरे पाण-भोयणं ॥४२॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥४३॥

आहार देवे तो उससे दिया जानेवाला आहार अकल्प्य होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ऐसी गर्भवती स्त्री यदि बैठी हो और बैठी बैठी ही आहार देवे या खडी हो और खडी खडी ही आहार देवे तो साधुओंके लिये अकल्प्य नही है, किन्तु कल्पनीय ही है। यह बात, स्थविर-कल्पकी अपेक्षासे समझनी चाहिये। वृद्धोंका मत है कि जिनकल्पी महाराज, गर्भके प्रथम दिनसे ही गर्भवती स्त्रीके हाथसे दिया जानेवाला आहार सर्वथा नही लेते हैं।

'कालमासिनी' पदसे यह सूचित किया है कि-छठे महीनेके बाद गर्भ भारी हो जाता है, इस कारण हिलने डोलनेसे गर्भवतीको तथा उसके गर्भको पीडा अवश्य होती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

રીતે આપવામા આવતો આહાર અકલ્પ્ય બને છે એનુ તાત્પર્ય એ થયુ કે એવી ગર્ભવતી સ્ત્રી જો બેઠી હોય તો બેઠી બેઠી જ આહાર આપે યા ઊભી હોય તો ઊભી ઊભી આહાર આપે તો સાધુને માટે તે અકલ્પ્ય નથી, પરતુ કલ્પનીય છે આ વાત સ્થવિર કલ્પની અપેક્ષાએ સમજવી જોઈએ વૃદ્ધોનો મત એવો છે કે જિનકલ્પી મહારાજ ગર્ભના પ્રથમ દિવસથી જ ગર્ભવતી સ્ત્રીના હાથથી આપવામા આવતો આહાર સર્વથા લેતા નથી

कालमासिनी એ શબ્દથી સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે છઠા મહીના પછી ગર્ભ ભારે થઇ જાય છે તેથી હીલચાલ કરવાથી ગર્ભવતી તથા એના ગર્ભને અવશ્ય પીડા થાય છે (૪૦-૪૧)

टीका—'ज भवे०' इत्यादि। यद्भक्त-पान तु कल्प्याकल्प्ये=कल्प्य च अकल्प्यञ्चेति समाहारद्वन्द्वे कल्प्याकल्प्य तस्मिन्, भावप्रधानश्चाय निर्देशस्ततश्च कल्प्यत्वेऽकल्प्यत्वे चेत्यर्थः, कल्प्यत्वमुद्गमादिदोषरहितत्वमकल्प्यत्व च तत्सहितत्वम्, तत्र शङ्कित=शङ्का(सशय)युक्तत्वम् 'इद भक्तपान कल्प्यमकल्प्य वे'-त्येवविधसशयविषयीभूतमित्यर्थः, भवेत् तत् ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पत इति ॥४४॥

मूलम्-दगवारेण पिहिय, नीसाए पीढएण वा ।
लोढेण वा विलेवेण, सिलेसेण वि केणइ ॥४५॥
त च उब्भिदिआ दिज्जा, समणट्ठाए व दावए ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४६॥

छाया—दकवारेण पिहित, निश्रया पीठकेन वा ।
लोष्टेन वा विलेपेन, श्लेषेण वा केनापि ॥४५॥
तचोद्भिद्य दद्यात्, श्रमणार्थ वा दापयेत् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४६॥

सान्वयार्थ.-दगवारेण=जलके भरे हुए घडेसे नीसाए=पटीके पुडियेसे या पीसनेकी शिलासे वा=अथवा पीढएण=पीढेसे लोढेण=लोढेसे वा=अथवा विलेवेण=मिट्टी आदिके लेपसे वि=अथवा केणइ=दूसरे किसी प्रकारके सिलेसेण=मोम लाख आदि चिकने पदार्थसे पिहिय=आच्छादित या मुद्रित किया-हुआ अशनादिका बरतन हो, त च=उसे यदि समणट्ठाए=साधुके लिए उब्भिदिआ=उघाड (खोल) कर दिज्जा=खुद देवे वा=अथवा दावए=दूसरेसे दिलावे तो दितिय=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=ऐसा आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नही कल्पता है ॥४५-४६॥

'ज भवे' इत्यादि। 'यह भक्त पान कल्प्य है या अकल्प्य' इस प्रकार जिसमे सन्देह हो वह भक्त-पान देनेवालीसे साधु कहे कि ऐसा आहार मुझे ग्राह्य नही है ॥ ४४ ॥

જ ભવે૦ ઈત્યાદિ 'આ ભોજન પાન કલ્પ્ય છે કે અકલ્પ્ય?' એ પ્રકારનો જેમા સદેહ ઉત્પન્ન થાય તે ભોજન પાન આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને ગ્રાહ્ય નથી (૪૪)

अथवा य शिशुः स्तन्यमपिबन्नङ्के समीपे वा तिष्ठेत्त परित्यज्य दातु पृथग्भूताया तस्या यदि स रुयात् तदापि तया दीयमानमाहारादिक सयतानामकल्पिक(त)म्, शिशोराहारान्तराय-कर्कशहस्त-भूमि-मञ्चकादिस्पर्शजनितपीडा-मासाशि मार्जार-कुक्कुरादिजन्तुकृतोपघातादिसम्भवात्, दृश्यते हि क्वचन निर्जनादौ स्थाने शृगालादयो बालानपहृत्य पलायन्त इति ॥४२॥४३॥

१ ६ २ ३ ४ ५

मूलम्-ज भवे भत्तपाण तु, कप्पाकप्पंमि संकिय ।

७ ८ ११ १० १२ ९

दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४४॥

छाया--यद्भवेद्भक्त-पानन्तु, कल्प्याकल्प्ये शङ्कितम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४४॥

सान्वयार्थ'-ज=जो भत्तपाण तु=अशनादि कप्पाकप्पम्मि=कल्प्य अकल्प्यके विषयमें सकिय=शङ्कित शङ्कास्पद भवे=हो तो दिंतिय=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४४॥

या कोई बालक, स्तन पान न करता हुआ भी गोदमें या समीपमें बैठा हो, उसे छोडकर स्त्री आहार देनेके लिये जावे और बालक रोने लगे तो भी उसके द्वारा दिया जानेवाला आहार, सयमियोंको ग्राह्य नहीं है, क्योंकि इससे उसके बालकके आहारमें अन्तराय पडती है, मातृ-विरहजन्य दु.ख होता है, कठोर हाथ, भूमि, खाट आदिके स्पर्शसे पीडा होती है और मासभोजी बिलाव कुत्ते आदि जानवरोंके द्वारा उपघात होनेका सम्भव रहता है। कहीं२ (पहाडी प्रदेशोंमे) शृगाल (गीदड), बालकोंको उठा कर ले भागते है ऐसा देखा जाता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

न करतु होय पणु ખોળામા या समीपमा બેઠુ હોય, તેને છોડીને સ્ત્રી આહાર આપવાને માટે જાય અને બાળક રોવા લાગે તોપણુ તેણે આપેલો આહાર સ યમીઓને માટે ગ્રાહ્ય નથી, કારણુ કે તેથી તેના બાળકના આહારમા અ તરાય પડે છે, માતૃવિરહજન્ય દુ ખ થાય છે, કઠોર હાથ, ભૂમિ, ખાટલા આદિના સ્પર્શથી પીડા થાય છે અને માસભોજી બીલાડા કૂતરા આદિ જાનવરો દ્વારા ઉપઘાત થવાનો પણુ સ ભવ રહે છે કયાક કયાક (પહાડી પ્રદેશોમા) શિયાળ બાળકોને ઉઠાવી જાય છે, એવુ જોવામા આવે છે (૪૨-૪૩)

छाया—अशन पानक वापि खाद्य स्वाद्य तथा ।
यज्जानीयात् शृणुयाद्वा, दानार्थं प्रकृतमिदम् ॥४७॥
तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥४८॥

सान्वयार्थः-ज=जो असण=ओदन आदि अशन पाणग=दाख आदिका धोवन वावि=अथवा खाइम=केला आदि खाद्य तहा=और साइम=एलची लूग आदि स्वाद्य इम=यह 'दाणट्ठा' पथिकोको देनेके लिए पगड=उपकल्पित-निकाला हुआ है जो अपने या अपने कुटुम्बके लिए काममें नही लाया जावे ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसीसे सुन लेवे तो त=वह भत्तपाण तु=आहार-पानी सजयाण=साधुओके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतिय=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिस= इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४७-४८॥

टीका-'असण०' इत्यादि, 'त भवे०' इत्यादि च । यत् अशन=भोज्य-मोदन-पूरिकादिक, पानक=द्राक्षादिजलम्, अपिवा=अथवा खाद्य=कदलीफला-दिक, स्वाद्यम्=एला-लवङ्ग-कर्पूर-पूगीफलादिकम्, 'दानार्थं=देशान्तरादागतेन वणिगादिना साधुवादार्थं स्वकीयप्रशसानिमित्त दातुम्, इद प्रकृत=नियतरूपेणोप-कल्पितम्' इति जानीयात्=आमन्त्रणादिना अवगच्छेत्, शृणुयाद्वा=कुतश्चि-

'असण०' इत्यादि, तथा 'त भवे०' इत्यादि ।

ओदन आदि अशन, दाखका जल आदि पान, केला आदि खाद्य, लौंग, कपूर, इलायची, सुपारी आदि स्वाद्य, 'यह देशा तरसे आये हुए वणिक् आदिने अपनी प्रशसाके निमित्त देनेके लिये रक्खा है।' ऐसा जो समझे या किसीसे सुने तो वह अशनादि, सयमियोंको कल्पनीय नहीं है,

असण ઇત્યાદિ, તથા त भवे० ઇત્યાદિ

ઓદન આદિ અશન, દ્રાક્ષના ધોવણનું જળ આદિ પાન, કેળા આદિ ખાદ્ય, લવીંગ, કપૂર, ઇલાયચી, સોપારી આદિ સ્વાદ્ય, "આ દેશાન્તરથી આવેલા વણિક આદિએ પોતાની પ્રશસાને લીધે આપવાને માટે રાખેલ છે" એવુ જો સમજવામા કે કોઇ પાસેથી સાભળવામા આવે તો એ અશનાદિ સયમીઓને

टीका-'दगवारेण०' 'त च' इत्यादि । दकेति दक=जल (प्रोक्त प्राज्ञैर्भुवनममृत जीवनीय दक च' इति हलायुधः,) वारयति=बहिर्निःसरणतो निरुणद्धीति दक वारः=जलसभृत कलसादिभाजन तेन, निश्रया=घरट्टेन पेषणचक्रेण शिलापट्टेन (पेषणार्थपाषाणेन) वा, पीठकेन=काष्ठनिर्मिताऽऽसनेन, लोष्टेन=शिलादि खण्डेन, विलेपेन=मृत्तिकादिलेपेन, केनापि श्लेषेण=सिक्थ लाक्षादिना वा पिहितम्=आच्छादित मुद्रित वा यदन्नादिभाजनमिति प्रसङ्गलभ्य भवेत्, तच्च श्रमणार्थं मुद्भिद्य=उद्घाटय (स्वय) दद्याद्दापयेद्वा तदा गुरुतरवस्तूत्थापनक्लेशहिंसादि-सम्भावनया ददतीं प्रत्याचक्षीतेत्यादि पूर्ववत् ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मूलम्-असण पाणगं वा वि, खाइम साइम तहा ।
ज जाणेज्जा सुणेज्जा वा, दाणट्ठा पगडं इम ॥४७॥
त भवे भत्त-पाण तु, सजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥४८॥

'दकवारेण०' इत्यादि, 'त च' इत्यादि ।

जलसे भरेहुए बर्त्तनसे, चक्की के पुडसे, मसाला आदि पीसनेकी शिलासे, पीढे (बाजोट) से, लोढे (मसाला आदि पीसनेके वजनदार पत्थर) से ढके हुए, तथा मिट्टी आदिके लेपसे, अथवा अन्य किसीसे छादे या लाख आदिसे मुद्रित किया हुवा अन्न-पान, साधुके लिये उघाडकर स्वय देवे या दूसरेसे दिलावे तो क्लेश और हिंसाकी सम्भावनाके कारण देनेवालीको कहे कि ऐसा आहार हमे ग्राह्य नही है। तात्पर्य यह है कि, भारी वस्तुके उठानेमे स्व-पर--विराधना आदि अनेक दोषोंकी सम्भावना होनेसे यह निषेध किया गया है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

दकवारेण० ઇત્યાદિ, त च ઇત્યાદિ

જળથી ભરેલા વાસણથી, ઘટીના પડથી, મસાલો વાટવાના ઓરશિયાથી બાજોઠથી, મસાલો વાટવાના વજનદાર પત્થરથી, ઢાંકેલુ તથા માટી આદિના લેપથી અથવા અન્ય કોઈ પદાર્થથી છાદેલુ કે લાખ આદિથી બધ કરેલુ વાસણ સાધુને માટે ઉઘાડીને અન્ન-પાન પોતે આપે યા બીજા પાસે અપાવે તો કલેશ અને હિંસાની સભાવનાથી આપનારીને સાધુ કહે છે એવો આહાર મને ગ્રાહ્ય નથી તાત્પર્ય એ છે કે ભારે વસ્તુ ઉપાડવામા સ્વપર-વિરાધના આદિ અનેક દોષોની સભાવના હોવાથી એ નિષેધ કરવામા આવ્યો છે (૪૫-૪૬)

माणत्वादत्र दीनेभ्यो वितरणार्थमिदं प्रकृतम्=उपकल्पितम्-स्व-स्वपोष्यवर्गोभयोपभोग्यभिन्नतया स्थापितमिति यावत्' इति जानीयात् शृणुयाद्वा तद्भक्तपानमित्यादि पूर्ववत्। पूर्वगाथाया 'दाणट्ठा' इत्यत्र दान-शब्देन स्वप्रशसार्थं दानं गृह्यते, प्रकृते 'पुण्णट्ठा' इत्यत्र पुण्य शब्देन स्वप्रशसाव्यतिरिक्तफलाभिसन्धानेन दानं गृह्यते, इति दानपुण्ययोर्भेदः। 'महाव्रतधारिभ्य एव यद्दीयते तत्रैव पुण्यं न तु तदितरेभ्य' प्रदाने, तथा सति हि प्रत्युत पापकलापः समुत्पद्यते' इति केचिदाहुः, ('तेरहपथी' शब्देन प्रसिद्धाः साधव आहुः,) तद् भ्रान्तिविलसितम्,

---

देनेके लिये है-अर्थात् पुण्यार्थ बनाया गया है' ऐसा जाने या सुने तो वह सयमीके लिये ग्राह्य नहीं है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे कहे कि-'यह भक्त-पान लेना मुझे नहीं कल्पता है'। पहली गथामें आये हुए 'दाणट्ठा' पदके 'दान' शब्दसे 'अपनी प्रशसाके लिये दिया जानेवाला दान' अर्थ ग्रहण किया है, किन्तु इस गाथामें 'पुण्णट्ठा'के 'पुण्य' शब्दसे अपनी प्रशसाके सिवाय अन्य किसी प्रयोजनसे दिया जानेवाला दान' अर्थ होता है-दान और पुण्यमें यही अन्तर है।

'कोई कोई[1] कहते हैं कि-"महाव्रतधारी मुनियोको जो दान दिया जाता है उसीमें पुण्य है-दूसरोको देनेमें नहीं, दूसरोको देनेसे उलटा पाप लगता है"। उनका यह कहना भ्रान्ति-मूलक है, क्योंकि, भगवान्ने

---

१ तेरहपथी सम्प्रदाय के साधु।

માટે છે, અર્થાત્ પુણ્યાર્થ બનાવવામા આવ્યા છે" એવુ જાણવામા યા સાભળવામા આવે તો એ સયમીને માટે ગ્રાહ્ય નથી તેથી કરીને એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે-એ ભોજન પાન લેવા મને કલ્પતા નથી પહેલી ગાથામા આવેલા दाणट्ठा પદના दान શબ્દથી 'પોતાની પ્રશસાને માટે આપવામા આવતુ દાન' એવો અર્થ ગ્રહણ કર્યો છે, પણ આ ગાથામા पुण्णट्ठा માના पुण्य શબ્દથી 'પોતાની પ્રશસા સિવાયના અન્ય કોઈ પ્રયોજનથી આપવામા આવતુ દાન' એવો અર્થ થાય છે દાન અને પુણ્યમા એ અતર છે

[1]કોઈ કોઈ કહે છે કે-'મહાવ્રતધારી મુનિઓને જે દાન આપવામા આવે છે તેમા પુણ્ય છે બીજાઓને દેવામા પુણ્ય નથી, બીજાઓને દેવામા ઉલટુ પાપ લાગે છે" એમનુ એવુ કહેવુ ભ્રાતિમૂલક છે, કારણ કે ભગવાને पुण्णट्ठा पगड

---

૧ તેરહપથી સપ્રદાયના સાધુઓ।

दारूर्णयेद्वा तद्भक्तपानं तु संयतानामकल्पिकं भवेत्, अतस्तद्ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पत इति ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

२ ३ ५ ४ ६ ८ ७
मूलम्-असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
१ १२ १३ १४ ९ ११ १०
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, पुण्णट्ठा पगडं इमं ॥४९॥
१५ २० १९ १७ १८ १६
तं भवे भत्त-पाणं तु संजयाण अकप्पियं ।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५०॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
यज्जानीयाच्छृणुयाद्वा, पुण्यार्थं प्रकृतमिदम् ॥४९॥
तद्भवेद्भक्तपानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५०॥

सान्वयार्थः-जं असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान खादिम स्वादिम इमं पुण्णट्ठा पगडं='यह करुणाबुद्धिसे दीन हीन-जनोंके लिए पुण्यार्थ निकाल रखा है' इस प्रकार जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसी दूसरेसे सुन लेवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दितियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥४९॥-५०॥

टीका—'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च। यदशनादिकं 'पुण्यार्थं=पुण्याय=सुकृतायेदं दयाधिया,वनीय(प)क-श्रमणार्थोपकल्पितस्याग्रे वक्ष्य-

इसलिये ऐसा भक्त पान आदि देनेवाली से कहे कि यह मुझे नहीं कल्पता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि।

जो 'अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य दया बुद्धिसे दीन हीन जनोंको

માટે કલ્પનીય નથી તેથી એવા ભોજન પાન આદિ આપનારીને સાધુ કહે કે એ મને કલ્પતા નથી (૪૭-૪૮)

असणं० ઇત્યાદિ, તથા तं भवे० ઇત્યાદિ

"આ અશન, પાન, ખાદ્ય, સ્વાદ્ય, દયા બુદ્ધિથી દીનહીન જનોને આપવાને

माणत्वादत्र दीनेभ्यो वितरणार्थमिद प्रकृतम्=उपकल्पितम्-स्व-स्वपोष्यवर्गोभयोपभोग्यभिन्नतया स्थापितमिति यावत्' इति जानीयात् शृणुयाद्वा तद्भक्तपानमित्यादि पूर्ववत्। पूर्वगाथाया 'दाणट्ठा' इत्यत्र दान शब्देन स्वप्रशसार्थं दान गृह्यते, प्रकृते 'पुण्णट्ठा' इत्यत्र पुण्य शब्देन स्वप्रशसाव्यतिरिक्तफलाभिसन्धानेन दान गृह्यते, इति दानपुण्ययोर्भेदः। 'महाव्रतधारिभ्य एव यद्दीयते तत्रैव पुण्य न तु तदितरेभ्यः प्रदाने, तथा सति हि प्रत्युत पापकलापः समुत्पद्यते' इति केचिदाहुः, ('तेरहपथी' शब्देन प्रसिद्धा' साधव आहुः,) तद् भ्रान्तिविलसितम्,

देनेके लिये है-अर्थात् पुण्यार्थ बनाया गया है' ऐसा जाने या सुने तो वह सयमीके लिये ग्राह्य नहीं है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे कहे कि-'यह भक्त-पान लेना मुझे नहीं कल्पता है'। पहली गाथामे आये हुए 'दाणट्ठा' पदके 'दान' शब्दसे 'अपनी प्रशसाके लिये दिया जानेवाला दान' अर्थ ग्रहण किया है, किन्तु इस गाथामें 'पुण्णट्ठा'के 'पुण्य' शब्दसे अपनी प्रशसाके सिवाय अन्य किसी प्रयोजनसे दिया जानेवाला दान' अर्थ होता है-दान और पुण्यमें यही अन्तर है।

'कोई कोई कहते हैं कि-"महाव्रतधारी मुनियोको जो दान दिया जाता है उसीमें पुण्य है-दूसरोको दनेमे नहीं, दूसरोको देनेसे उलटा पाप लगता है"। उनका यह कहना भ्रान्ति-मूलक है, क्योंकि, भगवान्ने

१ तेरहपथी समदाय के साधु।

માટે છે, અર્થાત્ પુણ્યાર્થે બનાવવામા આવ્યા છે" એવુ જાણવામા યા સાભળવામા આવે તો એ સયમીને માટે ગ્રાહ્ય નથી તેથી કરીને એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે-એ ભોજનપાન લેવા મને કલ્પતા નથી પહેલી ગાથામા આવેલા दाणट्ठा પદના दान શબ્દથી 'પોતાની પ્રશસાને માટે આપવામા આવતુ દાન' એવો અર્થ ગ્રહણ કર્યો છે, પણ આ ગાથામા पुण्णट्ठा માના पुण्य શબ્દથી 'પોતાની પ્રશસા સિવાયના અન્ય કોઈ પ્રયોજનથી આપવામા આવતુ દાન' એવો અર્થ થાય છે દાન અને પુણ્યમા એ અતર છે

[1]કોઈ કોઈ કહે છે કે-"મહાવ્રતધારી મુનિઓને જે દાન આપવામા આવે તેમા પુણ્ય છે બીજાઓને દેવામા પુણ્ય નથી, બીજાઓને દેવામા ઉલટુ પાપ લાગે છે" એમનુ એવુ કહેવુ ભ્રાતિમૂલક છે, કારણ કે ભગવાને पुण्णट्ठा पगड

१ તેરહપથી સપ્રદાયના સાધુઓ।

भगवता हि 'पुण्णट्ठा पगडं' इत्यनेन 'पुण्यार्थमुपकल्पितं द्रव्यं साधूनामकल्प्यं' मिति बोधितं, तत्र महाव्रतधारकेतरेभ्यः प्रदानमुपकल्पितस्य द्रव्यस्य तन्मते पुण्यार्थत्वाभावेन 'पुण्णट्ठा पगडं' इति वाक्यं निर्विषयतामपद्येत ।

ननु पुण्यार्थोपकल्पितद्रव्यस्याकल्प्यत्वस्वीकारे साधोः शिष्टकुले भिक्षाग्रहणमेवाकल्प्यं स्यात्, पुण्यार्थमेव तेषां पाकप्रवृत्तेर्न तु क्षुद्रजन्तुवत्स्वोदरपूर्त्तिमात्रार्थमिति चेन्न, तथाहि-यद्यपि शिष्टकुले सम्पादितमन्नं पुण्यार्थमकृतं तथापि यदन्येभ्यो

'पुण्णट्ठा पगडं' इस कथनसे पुण्यके लिये निकाले हुए द्रव्यको साधुओंके वास्ते अकल्पनीय बताया है। यदि महाव्रतियोंको छोड़कर अन्य किसीको देनेमें पुण्य न हो तो भगवान्‌का किया हुआ यह निषेध किस पर लागू पडेगा ?, तात्पर्य यह है कि पुण्यके लिये निकाले हुए द्रव्यको, मुनियोंके लिये अकल्प्य बतानेसे यह सिद्ध होता है कि दूसरोंको दान देनेसे भी पुण्यकी प्राप्ति होती है।

शंका-यदि पुण्यार्थ निकाला हुआ द्रव्य, साधुओंको ग्राह्य नहीं है तो शिष्टकुलमे साधु, कभी भिक्षा ग्रहण कर ही नहीं सकते, क्योंकि शिष्ट जन, पुण्यके लिये ही रसोईका आरम्भ करते हैं, साधारण (क्षुद्र) प्राणियोंकी तरह अपने ही उदरकी पूर्त्तिके लिये नही।

समाधान-यद्यपि शिष्टकुलमे तैयार किया हुआ आहार पुण्यके लिये ही सपादित होता है तथापि जो आहार दूसरोंको ही देनेके लिये बनाया

એ કથન વડે પુણ્યને માટે કાઢેલા દ્રવ્યને સાધુઓને માટે અકલ્પનીય બતાવ્યું છે જો મહાવ્રતીઓ સિવાયના બીજાઓને આપવામા પુણ્ય ન હોય તો ભગવાને કરેલો એ નિષેધ કોને લાગુ પડશે ?, તાત્પર્ય એ છે કે પુણ્યને માટે કાઢેલા દ્રવ્યને મુનિઓને માટે અકલ્પ્ય બતાવ્યું હોવાથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે બીજાઓને દાન આપવાથી પણ પુણ્યની પ્રાપ્તિ થાય છે

શંકા-જો પુણ્યાર્થ કાઢેલું દ્રવ્ય સાધુઓને માટે ગ્રાહ્ય ન હોય તો શિષ્ટ કુળમા સાધુ કદાપિ ભિક્ષા ગ્રહણ કરી શકશે જ નહિ, કારણ કે શિષ્ટજન પુણ્યને માટે જ રસોઈનો આરંભ કરે છે સાધારણ (ક્ષુદ્ર) પ્રાણીઓની પેઠે માત્ર પોતાનુંજ ઉદર ભરવાને માટે નહિ

સમાધાન-જો કે શિષ્ટ કુળમા તૈયાર કરવામા આવતો આહાર પુણ્યને માટે જ સંપાદિત હોય છે, તોપણ જે આહાર બીજાઓને આપવાને માટે બનાવવામા આવે છે, પોતાના ઉપભોગને માટે નહિ, તે पुण्णट्ठा पगडं (पुण्यार्थ निष्पादित

दातुमेव निष्पादित न तु स्वोपभोगार्थं तदेवान्न 'पुण्यार्थप्रकृत'-शब्देनात्र गृह्यते, एतदेव देयमित्युच्यते। ईदृशस्यैव ग्रहणे प्रतिषेधः, आरम्भान्तरायादिदोषप्रसङ्गात्। यत्तु स्वस्य स्वपोष्यवर्गस्य चोपभोगार्थमुदारबुद्ध्या सम्पादित, तच्चानियतदानार्थत्वाददेयमित्युच्यते। अस्य ग्रहणे साधोर्नारम्भादिदोषप्रसङ्गः, साध्वर्थपाकप्रवृत्तेरभावात्। किञ्च-शास्त्रे, शिष्टकुले भिक्षाग्रहणस्य विधानान्न तथाविधाऽऽहारग्रहणे दोष इत्यल पल्लवितेन ॥ ४९ ॥ ५० ॥

२ ३ ५ ४ ६ ८ ७
मूलम्-असण पाणग वावि, खाइम साइम तहा।
१ १२ १३ १४ ९ ११ १०
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, वणिमट्ठा पगड इमं ॥५१॥

जाता है अपने उपभोगके लिये नही, वही 'पुण्णट्ठा पगड' (पुण्यार्थ निष्पादित) और वही 'देय' कहलाता है। इस प्रकारके आहारको ही ग्रहण करनेका निषेध किया गया है। क्योंकि, उसे लेलेनेसे आरभ और अन्तराय आदि दोषोंका प्रसग होता है।

जो आहार, अपने और अपने आश्रित जनोके उपभोगके लिये उदार बुद्धिसे निष्पन्न किया जाता है, वह अनियत दानके लिये होनेसे 'अदेय' कहलाता है। इस अदेय आहारको ग्रहण करनेसें साधुको आरम्भ-आदि दोष नही लगते हैं, क्योंकि वह साधुके निमित्त नहीं बनाया जाता है, तथा शास्त्रमें, शिष्टकुलमें भिक्षा ग्रहण करनेका विधान है, इसलिये भी शिष्टकुलमे आहार ग्रहण करनेमें दोष नहीं आसकता, इतना ही समाधान काफी है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

અને એજ 'દેય' કહેવાય છે એ પ્રકારના આહારને પણ ગ્રહણ કરવાનો નિષેધ કરવામા આવ્યો છે, કારણ કે એ લેવાથી આરભ અને અતરાય આદિ દોષોનો પ્રસગ ઉત્પન્ન થાય છે

જે આહાર પોતાને માટે અને પોતાના આશ્રિત જનોના ઉપભોગને માટે ઉદાર-બુદ્ધિથી નિષ્પન્ન કરવામા આવે છે તે અનિયત દાનને માટે હોવાથી 'અદેય' કહેવાય છે એ અદેય આહાર ગ્રહણ કરવાથી સાધુને આરભ આદિ દોષો લાગતા નથી, કારણ કે એ સાધુને માટે બનાવવામા આવેલા હોતો નથી તથા શાસ્ત્રમા શિષ્ટકુળમા ભિક્ષા ગ્રહણ કરવાનુ વિધાન છે, તેવી પણ શિષ્ટ કુળમા આહાર ગ્રહણ કરવામા દોષ લાગી શકતો નથી એટલુ જ સમાધાન પૂરતુ છે (૪૯-૫૦)

१५ २० १९ १७ १८ १६
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
२१ २२ २५ २४ २६ २३
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५२॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
यज्जानीयाच्छृणुयाद्वा, वनीय(प)-कार्थं प्रकृतमिदम् ॥५१॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५२॥

सान्वयार्थः-जं असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान खादिम स्वादिम इमं वणिमट्ठा पगडं=यह भिखारी और दरिद्रोंके लिए उपकल्पित है ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसी दूसरेसे सुन लेवे तो तं= वह भत्तपाणं तु=आहार-पानी संजयाण=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं= इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५१-५२॥

टीका-'असणं०' इत्यादि 'तं भवे०' इत्यादि च । यद् अशनादिकं वनीय-(प)कार्थम्=वनीय(प)क=याचकमात्र, यद्वा सिद्धान्नमात्रोपजीवी, अथवा वनी=स्वकीयदुरवस्थाप्रदर्शनपुरःसरं प्रियाऽऽलापादिना लभ्यद्रव्यं, तां याति= प्राप्नोतीति वनीयः, स एव वनीयकः, 'वनीपके'तिपाठपक्षे तु तां पूर्वोक्तां वनीं पिबति=आस्वादयतीति, पाति=रक्षति वा वनीपः, स एव वनीपकः, अथवा वनुते= प्रायो दातुः सम्माननीयेष्वात्मनो भक्तिं प्रकटयन् याचते इति वा, ('वनु याचने' अस्माद्धातोरौणादिकः ईपकप्रत्ययः ।) यदिवा व=सान्त्वन-बुभुक्षाजनिततापो-

'असण०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि ।

याचकमात्रको अथवा सिद्ध (तैयार) भिक्षा लेकर जीवन-निर्वाह करनेवालेको वनीयक कहते हैं, 'वनीपक' पाठपक्षमें-दाताके माननीय गुरु आदिमें भक्ति प्रकट करके लीजानेवाली भिक्षाको वनी कहते हैं, और ऐसी भिक्षा लेनेवाला 'वनीपक' कहलाता है, अथवा जो, भूखका ताप

असण० ઈત્યાદિ તથા तं भवे० ઈત્યાદિ

યાચક માત્રને અથવા સિદ્ધ (તૈયાર) ભિક્ષા લઈને જીવન નિર્વાહકર નારાને 'વનીયક' કહે છે वनीपक પાઠના પક્ષમા-દાતાના માનનીય ગુરૂઆદિમા ભક્તિ પ્રકટ કરીને લેવામા આવતી ભિક્ષાને वनी કહે છે, અને એવી ભિક્ષા લેનાર वनीपक કહેવાય છે અથવા જે ભૂખનો તાપ મિટાવીને સાત્વના આપે

पशमनलक्षण नयति=प्रापयतीति वनीः, यद्वा वन्यते=याच्यते=भिक्ष्यत इति वनी= भिक्षणीयद्रव्यम्, ('वनु याचने' अस्मादौणादिक इन् कृदिकारादिति ङीप्) ता पाति=उपकल्प्य रक्षतीति वनीपः=गृहस्थस्त कायति=प्रार्थयते प्रियोक्त्यादिनेति वनीपकस्तदर्थमिद प्रकृतमित्यादि पूर्ववत् ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

मूलम्-असण पाणगं वावि, खाइमं साइम तहा ।
ज जाणेज्ज सुणेज्जा वा, समणट्ठा पगडं इमं ॥५३॥
त भवे भत्त-पाण तु, सजयाण अकप्पियं ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तादिस ॥५४॥

छाया—अशन पानक वापि, खाद्य स्वाद्य तथा ।
यज्जानीयाच्छृणुयाद्वा, श्रमणार्थं प्रकृतमिदम् ॥५३॥
तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५४॥

सान्वयार्थः-ज असण पाणग वावि खाइम तहा साइम=जो अशन पान खादिम स्वादिम इम समणट्ठा पगड=यह निर्ग्रन्थ शाक्य तापस गैरिक और आजीवक, इन पाच प्रकारके श्रमणोंके लिए उपकल्पित है, ऐसा जाणेज्ज=जान लेवे वा=अथवा सुणिज्जा=किसी दूसरेसे सुन लेवे तो त=वह भत्तपाण तु= आहार-पानी सजयाण=साधुओंके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=होता है, (अत) दितिय=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५३-५४॥

मिटाकर सान्त्वना प्रदान करे उसे वनी (भिक्षा देनेके लिये रखा हुआ अन्नादि) कहते हैं, उसको सुरक्षित रखनेवाला गृहस्थ 'वनीप' कहलाता है, और उस वनीप (गृहस्थ)से प्रार्थना करके भिक्षा प्राप्त करने वालेको 'वनीपक' कहते हैं। उस वनीपकके लिये बनाया हुआ देवे तो देनेवालीसे कहे कि ऐसा आहार मुझे कल्पता नहीं है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

તેને વની (ભિક્ષા આપવાને રાખેલા અન્નાદિ) કહે છે એને સુરક્ષિત રાખનાર ગૃહસ્થ વનીપ કહેવાય છે, અને એ વનીપ (ગૃહસ્થ)ને પ્રાર્થના કરીને ભિક્ષા પ્રાપ્ત કરનારને વનીપક કહે છે એ વનીપકને માટે બનાવેલો આહાર આપે તો આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી (૫૧-૫૨)

टीका—'असणं०' इत्यादि, तथा 'त भवे०' इत्यादि। श्रमणार्थं=श्रमणाः लोकप्रसिद्ध्यनुरोधतो निर्ग्रन्थ शाक्य तापस-गैरिका-ऽऽजीवकभेदेन पञ्चधा, तत्र निर्ग्रन्थाः=पञ्चमहाव्रतधारिणः, शाक्याः=सौगताः, तापसाः=जटाधारिणः, गैरिका =रक्तवर्णधातुविशेषरञ्जितवस्त्रधारिण', परिव्राजका इत्यर्थः, आजीवकाः=गोशालकमतानुयायिनस्तदर्थमिद प्रकृतमित्यादि प्राग्वत् ॥५३॥५४॥

१ २ ३ ४ ४
मूलम्–उद्देसिय कीयगड, पूइकम्म च आहडं।
५ ६ ८ ९
अज्झोयरय पामिच्च, मीसजाय विवज्जए ॥५५॥

छाया—औद्देशिक क्रीतकृत, पूतिकर्म चाभ्याहृतम्।
अध्यवपूरक प्रामित्य, मिश्रजात विवर्जयेत् ॥५५॥

सान्वयार्थः—उद्देसिय=औद्देशिक-किसी एकको उद्देश करके वनाये हुए अशनादिको कीयगड=खरीदे हुएको पूइकम्म=आधाकर्मादिदोपसे दूषित ऐसे आहारसे मिले हुएको आहड=सामने लाये हुएको पामिच्च=उधार लाये हुएको च=और मीसजाए=अपने तथा साधुओंके लिए मिश्रित (भेला) करके वनाये हुए अशनादिको (साधु) विवज्जए=वरजे, अर्थात् ऐसा आहार हो तो नहीं लेवे ॥ ५५ ॥

'असण०' इत्यादि तथा 'त भवे०' इत्यादि।

लोकमें पॉच प्रकारके श्रमण होते हैं–(१) निर्ग्रन्थ (पच महाव्रतधारी), (२) सौगत (बुद्धके अनुयायी), (३) तापस (जटाधारी), गैरिक (गेरुआ वस्त्र पहिननेवाले), (५) आजीवक (गोशालके मतानुयायी)। इनके लिये जो आहार बनाया गया हो वह, सयमियोंके लिये कल्प्य नही है, अत एव ऐसा आहार देनेवालीसे साधु कहे कि मुझे नहीं कल्पता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

असण० ઇત્યાદિ તથા त भवे० ઇત્યાદિ

લોકમા પાચ પ્રકારના શ્રમણો હોય છે (૧) નિર્ગ્રંથ (પચમહાવ્રતધારી), (૨) સૌગત (બુદ્ધના અનુયાયી), (૩) તાપસ (જટાધારી) (૪) ગૈરિક (ગેરૂઆ વસ્ત્રો પહેરનારા), (૫) આજીવક (ગોશાળના મતાનુયાયી) એમને માટે જે આહાર બનાવવામા આવ્યો હોય તે સયમીઓને માટે કલ્પ્ય નથી, તેથી એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે તે મને કલ્પતો નથી (૫૩-૫૪)

टीका-'उद्देसियं०' इत्यादि। १-औद्देशिकम्=उद्देशनमुद्देशस्तेन कृतं मौद्देशिकम्। तद्द्विविधं-सामान्यौद्देशिकं विशेषौद्देशिकं च, तत्राद्य-प्रतिदिनं स्वार्थं सम्पाद्यते तावत्सम्पादनप्रवृत्तौ सत्यां 'भिक्षादानं गृहस्थाऽऽचार' इति बुद्ध्या 'यः कश्चित्साधुरागच्छेत्तस्मै देय'-मिति सामान्यत उद्दिश्य समधिकं निष्पादितम्। द्वितीयं-कमप्येकं साधुं व्यक्ति-विशेषरूपेणोद्दिश्य सम्पादितम्। २-क्रीतकृतं=क्रयणं गृहस्थकर्तृकं, तेन सम्पादितं क्रीतकृतं क्रीतमित्यर्थः, तत्त्रिविधं-द्रव्यक्रीतं, भावक्रीतं, मिश्रक्रीतञ्च, तत्र द्रव्यक्रीतं=स्वपरतदुभयभेदेन त्रिधा-स्वद्रव्यक्रीतं, परद्रव्यक्रीतम्, उभयद्रव्यक्रीतञ्च। तदपि सचित्ताऽ-चित्त-मिश्रभेदात्प्रत्येकं

'उद्देसियं०' इत्यादि। [१] किसीको उद्देश करके बनाया हुआ आहार, औद्देशिक कहलाता है। वह दो प्रकारका है-१-सामान्य-औद्देशिक और २-विशेष औद्देशिक। जितना आहार, प्रतिदिन गृहस्थ बनाता है उतना आहार बनाते समय ऐसा विचार करना कि 'भिक्षा देना गृहस्थका कर्त्तव्य है, इसलिये जो कोई साधु आवेगा उसे दे देंगे' ऐसा विचार कर बनाया हुआ आहार 'सामान्य-औद्देशिक' और किसी एक साधुके निमित्त बनाया हुआ आहार, 'विशेष-औद्देशिक' कहलाता है।

[२] खरीद किया हुआ आहार क्रीतकृत कहलाता है। वह तीन प्रकारका है (१)-द्रव्य क्रीत (२)-भावक्रीत (३)-मिश्रक्रीत। द्रव्यक्रीत तीन प्रकार का है- (१)-अपने द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-पराये द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)-दोनों द्रव्योंसे खरीदा हुआ। ये तीनों भेद तीन२ प्रकारके हैं। स्वद्रव्य

उद्देसियं० ઇત્યાદિ (૧) કોઇને ઉદ્દેશીને બનાવેલો આહાર ઔદ્દેશિક કહેવાય છે તે બે પ્રકારનો હોય છે (૧) સામાન્ય ઔદ્દેશિક અને (૨) વિશેષ ઔદ્દેશિક જેટલો આહાર પ્રતિદિન ગૃહસ્થ બનાવે છે એટલો આહાર બનાવતી વખતે એવો વિચાર કરવો કે 'ભિક્ષા આપવી એ ગૃહસ્થનું કર્તવ્ય છે, તેથી જો કોઇ સાધુ આવશે તો તેને આપીશ' એવો વિચાર કરીને બનાવેલો આહાર સામાન્ય ઔદ્દેશિક, અને કોઇ એક સાધુને નિમિત્તે બનાવેલો આહાર વિશેષ-ઔદ્દેશિક કહેવાય છે

(૨) ખરીદ કરેલો આહાર ક્રીતકૃત કહેવાય છે તે ત્રણ પ્રકારનો છે- (૧) દ્રવ્યક્રીત (૨) ભાવક્રીત, (૩) મિશ્રક્રીત દ્રવ્યક્રીત ત્રણ પ્રકારનો છે-(૧) પોતના દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) પરાયા દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બેઉ દ્રવ્યોથી ખરીદેલો

त्रिविध-सचित्तस्वद्रव्यक्रीतम्, अचित्तस्वद्रव्यक्रीत, मिश्रस्वद्रव्यक्रीत, सचित्तपर द्रव्यक्रीतम्, अचित्तपरद्रव्यक्रीत, मिश्रपरद्रव्यक्रीत, सचित्तोभयद्रव्यक्रीतम्, अचित्तोभयद्रव्यक्रीत, मिश्रोभयद्रव्यक्रीतञ्चेति। इत्थं द्रव्य क्रीत नवधा भवति।

भाव-क्रीत द्विविध-स्वभावक्रीत परभावक्रीतम्, तत्र स्वभावक्रीत-साधौ समुपागते तदर्थं गृहस्थेन स्वविद्या-[1]मन्त्रादि दत्त्वा क्रीतम्। परभावक्रीत-विद्या

१-विद्या-ससाधना रोहिणीप्रज्ञप्त्यादिरूपा, मन्त्रः-असाधनो वशीकरणादि।

क्रीतके भेद-(१) अपने सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-अपने अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)-अपने सचित्त और अचित्त, दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ।

परद्रव्यक्रीतके भेद-(१)-दूसरेके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-दूसरेके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३) दूसरेके दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ।

उभयक्रीतके भेद-(१)-दोनोंके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (२) दोनोंके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (३) दोनोंके सचित्त और अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ। ये सब द्रव्यक्रीत हैं।

भाव क्रीत, दो-प्रकारका है-(१)-स्व-भावक्रीत, (२)-पर-भावक्रीत। साधुके आने पर, साधुके लिये, अपनी विद्या या अपना मन्त्र दे कर, गृहस्थद्वारा खरीदा हुआ आहार स्व भावक्रीत है, दूसरेने विद्या मन्त्र

એ ત્રણે ભેદ ત્રણ ત્રણ પ્રકારના છે સ્વદ્રવ્યક્રીતના ભેદ-(૧) પોતાના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) પોતાના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) પોતાના સચિત્ત અને અચિત્ત બેઉ પ્રકારના દ્રવ્યથી ખરીદેલો

પરદ્રવ્યક્રીતના ભેદ-(૧) બીજાના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) બીજાના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બીજાના બેઉ પ્રકારના દ્રવ્યથી ખરીદેલો

ઉભયક્રીતના ભેદ-(૧) બેઉના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) બેઉના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બેઉના સચિત્ત અને અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો એ બધો દ્રવ્યક્રીત છે

ભાવક્રીત બે પ્રકારનો છે (૧) સ્વ ભાવક્રીત, (૨) પર ભાવક્રીત, સાધુ આવે ત્યારે સાધુને માટે પોતાની વિદ્યા યા પોતાનો મંત્ર આપીને ગૃહસ્થદ્વારા ખરીદેલો આહાર એ સ્વ ભાવક્રીત છે બીજાએ વિદ્યા મંત્ર આપી-સાધુને માટે

मन्त्रादि दत्त्वा साधुकृते परेण क्रीतमुपलभ्यान्येन गृहस्थेन दीयमान तदनेकविधं स्वयमूह्यम् ।

मिश्र-(द्रव्य-भावरूप)-क्रीतस्य च नव भङ्गाः, यथा—

१—स्वकीयेन द्रव्येण स्वकीयेन भावेन ।
२—स्वकीयेन द्रव्येण परकीयेण भावेन ।
३—परकीयेण द्रव्येण स्वकीयेन भावेन ।
४—परकीयेण द्रव्येण परकीयेण भावेन ।
५—स्वकीय-द्रव्य भावाभ्या परकीयेण द्रव्येण ।
६—स्वकीय-द्रव्य भावाभ्या परकीयेण भावेन ।

देकर, साधुके लिये आहार आदि खरीदा हो और साधुके आने पर उस आहारको दूसरा लेलेवे तो उसे परभाव-क्रीत कहते हैं, वह अनेक प्रकारका है सो स्वय समझ लेना चाहिये ।

मिश्र (द्रव्य-भावरूप) क्रीतके नौ भग होते हैं—

१-अपने द्रव्यसे अपने भावसे ।
२-अपने द्रव्यसे परके भावसे ।
३-परके द्रव्यसे अपने भावसे ।
४-परके द्रव्यसे परके भावसे ।
५-अपने द्रव्य-भावसे परके द्रव्यसे ।
६-अपने द्रव्य-भावसे परके भावसे ।

આહારાદિ ખરીદેલા હોય અને સાધુ આવે ત્યારે એ આહારને બીજો લઈ લે તો તે પરભાવક્રીત કહેવાય છે તે અનેક પ્રકારનો હોય છે તે પોતાની મેળે સમજી લેવુ

મિશ્ર (દ્રવ્ય ભાવરૂપ) ક્રીતના નવ ભાગા થાય છે
૧ પોતાના દ્રવ્યથી પોતાના ભાવથી
૨ પોતાના દ્રવ્યથી પરના ભાવથી
૩ પરના દ્રવ્યથી પોતાના ભાવથી
૪ પરના દ્રવ્યથી પરના ભાવથી
૫ પોતાના દ્રવ્ય ભાવથી પરના દ્રવ્યથી
૬ પોતાના દ્રવ્ય ભાવથી પરના ભાવથી

त्रिविध-सचित्तस्वद्रव्यक्रीतम्, अचित्तस्वद्रव्यक्रीत, मिश्रस्वद्रव्यक्रीत, सचित्तपर द्रव्यक्रीतम्, अचित्तपरद्रव्यक्रीत, मिश्रपरद्रव्यक्रीत, सचित्तोभयद्रव्यक्रीतम्, अचित्तोभयद्रव्यक्रीत, मिश्रोभयद्रव्यक्रीतञ्चेति। इत्थ द्रव्य क्रीत नवधा भवति।

भाव क्रीत द्विविध-स्वभावक्रीत परभावक्रीतम्, तत्र स्वभावक्रीत-साधौ समुपागते तदर्थं गृहस्थेन स्वविद्या-१मन्त्रादि दत्त्वा क्रीतम्। परभावक्रीत-विद्या

१-विद्या-ससाधना रोहिणीप्रज्ञप्त्यादिरूपा, मन्त्रः-असाधनो वशीकरणादि।

क्रीतके भेद-(१) अपने सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-अपने अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३)-अपने सचित्त और अचित्त, दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ।

परद्रव्यक्रीतके भेद-(१)-दूसरेके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (२)-दूसरेके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ, (३) दूसरेके दोनों प्रकारके द्रव्यसे खरीदा हुआ।

उभयक्रीतके भेद-(१)-दोनोंके सचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (२) दोनोंके अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ (३) दोनोंके सचित्त और अचित्त द्रव्यसे खरीदा हुआ। ये सब द्रव्यक्रीत हैं।

भाव क्रीत, दो-प्रकारका है-(१)-स्व-भावक्रीत, (२)-पर-भावक्रीत। साधुके आने पर, साधुके लिये, अपनी विद्या या अपना मन्त्र दे कर, गृहस्थद्वारा खरीदा हुआ आहार स्व भावक्रीत है, दूसरेने विद्या मन्त्र

એ ત્રણે ભેદ ત્રણ ત્રણ પ્રકારના છે સ્વદ્રવ્યક્રીતના ભેદ-(૧) પોતાના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) પોતાના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) પોતાના સચિત્ત અને અચિત્ત બેઉ પ્રકારના દ્રવ્યથી ખરીદેલો.

પરદ્રવ્યક્રીતના ભેદ-(૧) બીજાના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) બીજાના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બીજાના બેઉ પ્રકારના દ્રવ્યથી ખરીદેલો.

ઉભયક્રીતના ભેદ-(૧) બેઉના સચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૨) બેઉના અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો, (૩) બેઉના સચિત્ત અને અચિત્ત દ્રવ્યથી ખરીદેલો. એ બધો દ્રવ્યક્રીત છે

ભાવક્રીત બે પ્રકારનો છે (૧) સ્વ ભાવક્રીત, (૨) પર ભાવક્રીત, સાધુ આવે ત્યારે સાધુને માટે પોતાની વિદ્યા યા પોતાનો મંત્ર આપીને ગૃહસ્થદ્વારા ખરીદેલો આહાર એ સ્વ ભાવક્રીત છે બીજાએ વિદ્યા મંત્ર આ[illegible] સાધુને માટે

यानपि सुरासंसर्गः, यद्वा पायसादिपवित्रभोक्तव्यपदार्थे क्षतादिक्षरद्रक्त-पूयादि-बिन्दुमात्रस्यापि मिश्रणम्।

भावतः—विशुद्ध आहारादावाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादेः सिक्थमात्रेणापि मेलनम्, तदशनेन च साधूना चारित्रमालिन्यं भवतीति भावपूतिरभिधीयते।

दोषोऽयमाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादिसंसृष्टहस्तभाजनादिनिमित्तेनापि सम्भवति।

४-आहृत=साधुनिमित्त गृहादितोऽभिमुखमानीतम्। ५-'अज्झोयरय' इति लुप्त-विभक्तिक पदम्, 'अध्यवपूरक' मिति तच्छाया, स्वार्थं पाकक्रियाया समारब्धाया

खाने योग्य खीर आदिमें रक्त पीप आदि अपवित्र पदार्थका मिल जाना। (२) विशुद्ध आहार आदिमें आधाकर्मी आदि दोषोंसे दूषित अन्नका एक भी सीथ (कण) मिल जाना, भाव-पूतिकर्म है। ऐसा आहार लेनेसे मुनियोंके चारित्रमें मलिनता आजाती है, इस कारण इसे भावपूति कहते हैं।

आधाकर्मी दोषसे दूषित अन्न आदिसे भरे हुए हाथ या वर्त्तनके निमित्तसे भी यह दोष लग जाता है।

[४]–आहृत–साधुके लिये साधुके सामने लाया हुआ आहार आदि अभ्याहृत कहलाता है, ऐसा आहार लेना अभ्याहृत-दोष-दूषित आहार है।

[५] अध्यवपूरक–अपने लिये भोजन बनाना प्रारम्भ किया हो उस समय, 'गाँवमें साधु पधारे हैं' यह सुनकर और अधिक मिला कर

લોહી પરૂ આદિ અપવિત્ર પદાર્થનું પડી જવું (૨) વિશુદ્ધ આહારાદિમા આધાકર્મી આદિ દોષોથી દૂષિત અન્નનો એક પણ કણ મળી જવો એ ભાવપૂતિ કર્મ છે એવો આહાર લેવાથી મુનિઓના ચારિત્રમા મલિનતા આવી જાય છે તેથી તેને ભાવપૂતિ કહે છે

આધાકર્મી દોષથી દૂષિત અન્નાદિથી ભરેલા હાથ યા વાસણના નિમિત્તથી પણ એ દોષ લાગી જાય છે

(૪) આહૃત–સાધુને માટે સાધુની સામે લાવેલો આહાર આદિ અભ્યાહૃત કહેવાય છે એવો આહાર અભ્યાહૃત દોષ દૂષિત આહાર છે

(૫) અધ્યવપૂરક–પોતાને માટે ભોજન બનાવવાનો પ્રારંભ કર્યો હોય, તે સમયે 'ગામમા સાધુ પધાર્યા છે' એમ સાંભળીને બીજુ વધારે મેળવીને બના

७—परकीय-द्रव्य-भावाभ्यां स्वकीयेन द्रव्येण ।

८—परकीय-द्रव्य-भावाभ्यां स्वकीयेन भावेन ।

९—स्वकीय-द्रव्य-भावाभ्यां परकीय-द्रव्यभावाभ्याञ्च क्रीतम्, इति।

एष च दोष उद्गमदोषान्तर्गतत्वेन गृहस्थोत्थितः, उक्तञ्च—

"सोलस उग्गम-दोसे, गिहिणो उ समुट्ठिए वियाणाहि ।
उप्पायणा य दोसे, साहूओ समुट्ठिए जाण ॥ १ ॥ इति'

३-पूतिकर्म=पूतेः=अपवित्रस्य कर्म=मिलनरूपं पूतिकर्म लक्षणया तेन युक्तं पूतिकर्म । पूतिकरणं द्रव्यभावभेदाद्द्विप्रकारकम्, तत्र-

द्रव्यतो यथा-शुचिद्रव्येऽपवित्र-सम्मेलनं, यथा पेय-पयःपरिपूरितपात्रेऽल्पी

७-परके द्रव्य-भावसे अपने द्रव्यसे ।

८-परके द्रव्य-भावसे अपने भावसे ।

९-अपने द्रव्य भावसे और परके द्रव्य-भावसे खरीदा हुआ।

यह क्रीतकृत दोष, उद्गमदोषोंके अन्तर्गत है, इसलिये गृहस्थके द्वारा लगता है। कहा भी है—

"सोलह उद्गम दोष, गृहस्थके द्वारा लगते हैं और उत्पादना दोष, साधु द्वारा लगते हैं।"

[३] पूतिकर्म—पवित्र वस्तुमे अपवित्र वस्तुके मिल जानेको पूतिकर्म कहते हैं, यह दो प्रकारका है-(१)-द्रव्य पूतिकर्म और (२) भाव पूतिकर्म। (१)-पवित्र द्रव्यमें अपवित्र द्रव्य मिलाना द्रव्य पूति-कर्म है, जैसे पीने योग्य दूधसे भरे हुए वर्त्तनमें थोडीसी भी मदिराका मिलजाना, अथवा

७ પરના દ્રવ્ય ભાવથી પોતાના દ્રવ્યથી

૮ પરના દ્રવ્ય ભાવથી પોતાના ભાવથી

૯ પોતાના દ્રવ્ય ભાવથી અને પરના દ્રવ્ય ભાવથી ખરીદેલો.

એ ક્રીતકૃત દોષ ઉદ્ગમ દોષની અંદર રહેલો છે, તેથી કરીને ગૃહસ્થની દ્વારા લાગે છે કહ્યુ છે કે—"સોળ ઉદ્ગમદોષ ગૃહસ્થદ્વારા લાગે છે અને ઉત્પાદનાદોષ સાધુદ્વારા લાગે છે"

(૩) પૂતિકર્મ—પવિત્ર વસ્તુમા અપવિત્ર વસ્તુ મળી જાય તેને પૂતિકર્મ કહે છે એ પ્રકારનું છે (૧) દ્રવ્ય પૂતિકર્મ અને (૨) ભાવ પૂતિકર્મ (૧) પવિત્ર દ્રવ્યમા અપવિત્ર દ્રવ્ય મેળવવુ એ દ્રવ્ય–પૂતિકર્મ છે, જેમકે પીવા યોગ્ય દૂધથી ભરેલા વાસણમા થોડીક મદિરાનું મળી જવુ, અથવા પીવા યોગ્ય ખીર આદિમા

यानपि सुरासंसर्गः, यद्वा पायसादिपवित्रभोक्तव्यपदार्थे क्षतादिक्षरद्रक्त-पूयादि-बिन्दुमात्रस्यापि मिश्रणम्।

भावतः—विशुद्ध आहारादावाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादेः सिक्थमात्रेणापि मेलनम्, तदशनेन च साधूना चारित्रमालिन्य भवतीति भावपूतिरभिधीयते।

दोषोऽयमाधाकर्मादिदोषदूषितान्नादिसंसृष्टहस्तभाजनादिनिमित्तेनापि सम्भवति।

४-आहृत=साधुनिमित्त गृहादितोऽभिमुखमानीतम्। ५-'अज्झोयरय' इति लुप्त-विभक्तिक पदम्, 'अध्यवपूरक' मिति तच्छाया, स्वार्थं पाकक्रियाया समारब्धाया

खाने योग्य खीर आदिमें रक्त पीप आदि अपवित्र पदार्थका मिल जाना। (२) विशुद्ध आहार आदिमें आधाकर्मी आदि दोषोंसे दूषित अन्नका एक भी सीथ (कण) मिल जाना, भाव-पूतिकर्म है। ऐसा आहार लेनेसे मुनियोंके चारित्रमें मलिनता आजाती है, इस कारण इसे भावपूति कहते हैं।

आधाकर्मी दोषसे दूषित अन्न आदिसे भरे हुए हाथ या वर्त्तनके निमित्तसे भी यह दोष लग जाता है।

[४]—आहृत—साधुके लिये साधुके सामने लाया हुआ आहार आदि अभ्याहृत कहलाता है, ऐसा आहार लेना अभ्याहृत-दोष-दूषित आहार है।

[५] अध्यवपूरक—अपने लिये भोजन बनाना प्रारम्भ किया हो उस समय, 'गाँवमें साधु पधारे हैं' यह सुनकर और अधिक मिला कर

લોહી પરૂ આદિ અપવિત્ર પદાર્થનું પડી જવું (૨) વિશુદ્ધ આહારાદિમા આધાકર્મી આદિ દોષોથી દૂષિત અન્નનો એક પણ કણ મળી જવો એ ભાવપૂતિ કર્મ છે એવો આહાર લેવાથી મુનિઓના ચારિત્રમા મલિનતા આવી જાય છે તેથી તેને ભાવપૂતિ કહે છે

આધાકર્મી દોષથી દૂષિત અન્નાદિથી ભરેલા હાથ યા વાસણના નિમિત્તથી પણ એ દોષ લાગી જાય છે

(૪) આહૃત–સાધુને માટે સાધુની સામે લાવેલો આહાર આદિ અભ્યાહૃત કહેવાય છે એવો આહાર અભ્યાહૃત દોષ દૂષિત આહાર છે,

(૫) અધ્યવપૂરક–પોતાને માટે ભોજન બનાવવાનો પ્રારભ કર્યો હોય, તે સમયે 'ગામમા સાધુ પધાર્યા છે' એમ સાભળીને બીજું વધારે મેળવીને બના

ग्रामे साधुसमागमन निशम्य तदर्थमधिकनिक्षेपणेन सम्पादितमिति तदर्थः। इद मत्र हृदयम्-यदेतदन्यलिङ्गिनिमित्तमधिकं पूरितं, तत्र तद्दानानन्तरमवशिष्टमशनादिकं साधुभिर्ग्राह्यं, तत्रान्तरायदोषानवतारादिति। ६ प्रामित्य=साधुनिमित्तमुद्धाररूपेण कुतश्चिदानीय दीयमानम्।७ मिश्रजात=मिश्रेण मिश्रभावेन [1]पूर्वत एव दातृ भिक्षा चरोभयानुसन्धानेनेत्यर्थः जात=निष्पन्नम्। तद्विविध सामान्यमिश्रजात विशेषमिश्रजात चेति, तत्र-सामान्यमिश्रजात=सामान्यरूपेण स्वपोष्यवर्गार्थं गृहस्थागृहस्थ साधु-पाखण्डिप्रभृतिभिक्षाचरार्थञ्चैकत्र रन्धितम्, विशेषमिश्रजात यद्यन्निमित्त

१ पूर्वतः=पाकार्थं प्रवृत्तेः प्रागेव।

बनाया हुआ आहार अध्यवपूरक कहलाता है, तात्पर्य यह कि यदि अन्यलिङ्गियोंके निमित्त अधिक आहार मिला कर बनाया हो तो उन्हें दे देनेके बाद बचा हुआ आहार, साधुओंको ग्राह्य है, क्योंकि वहाँ अन्तराय दोष नहीं लगता।

[६] प्रामित्य साधुके निमित्त कहींसे उधार लेकर दिया जानेवाला आहार, प्रामित्य कहलाता है।

[७] मिश्रजात-पहलेसे ही दाता और भिक्षु दोनोंके लिये बनाया हुआ आहार, मिश्रजात है।

मिश्रजातके दो भेद हैं-(१) सामान्य मिश्रजात और (२) विशेष मिश्रजात। (१) साधारण तौर पर अपने पोष्यवर्गके लिये तथा गृहस्थ, अगृहस्थ, साधु, पाखण्डी आदिके लिये मिलाकर राधा हुआ आहार 'सामान्य मिश्रजात' कहलाता है। (२)-जो आहार आदि अपने लिये

બનેલો આહાર અધ્યવપૂરક કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે જો અન્યલિંગીઓ (અન્યધર્મીઓ)ને નિમિત્તે વધારે આહાર મેળવીને બનાવ્યો હોય તો તેને આપી દીધા પછી વધેલો આહાર સાધુઓને માટે ગ્રાહ્ય બને છે, કારણ કે તેમા અતરાય દોષ લાગતો નથી

(૬) પ્રામિત્ય-સાધુને નિમિત્તે કહીંથી ઉધાર લાવીને આપવામા આવેલો આહાર પ્રામિત્ય કહેવાય છે

(૭) મિશ્રજાત-પહેલા જ દાતા અને ભિક્ષુ બેઉને માટે બનાવેલો આહાર મિશ્રજાત છે મિશ્રજાતના બે ભેદ છે (૧) સામાન્ય મિશ્રજાત (૨) વિશેષ મિશ્રજાત (૧) સાધારણ રીતે પોતાના પોષ્યવર્ગને માટે તથા ગૃહસ્થ, અગૃહસ્થ, સાધુ પાખડી આદિને માટે એકઠો કરીને રાધેલો આહાર 'સામાન્ય મિ — કહેવાય છે

केवल[1] साधुनिमित्तञ्च सहैव निष्पन्नमन्नादिकम्, तद् विवर्जयेत्=परित्यजेत् न गृह्णीयादित्यर्थः, साधुरिति शेषः। औद्देशिका-ध्यवपूरक-मिश्रजातेषु परस्परमेष विशेषः-औद्देशिक-पाकप्रवृत्त्यनन्तरं साध्वागमनात्प्रागेकमेव साधुं सामान्यरूपेण विशेषरूपेण चोद्दिश्य सम्पादिते सम्भवति। अध्यवपूरक=साधुसमागमश्रवणसमनन्तरमधिकनिक्षेपेण जायते। मिश्रजात-पाकप्रवृत्तिसमय एव गृहस्थ-भिक्षाचरयोः कृते सम्मिश्रितेऽन्नादौ समुत्पद्यते ॥ ५५ ॥

मूलम्-उग्गमं से अ पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कडं?।
सुच्चा निस्संकियं सुद्धं, पडिगाहिज्ज संजओ ॥५६॥

छाया—उद्गमं तस्य च पृच्छेत्कस्यार्थं केन वा कृतम्?।
श्रुत्वा निःशङ्कितं शुद्धं, प्रतिगृह्णीयात्संयतः ॥५६॥

---

१ इतरभिक्षाचरव्यतिरेकेण।

और साधुके लिये मिलाकर बनाया जाय उसे 'विशेषमिश्रजात' कहते हैं। ऊपर कहे हुए सब प्रकारके आहारका अनगारको परिहार करना चाहिये।

औद्देशिक, अध्यवपूरक और मिश्रजात दोषोंमें यह भेद है-भोजन बनानेमें प्रवृत्त होनेके पश्चात् और साधुके आनेसे पहले, किसी भी एक साधुके लिये अथवा अमुक एक साधुके लिये बनाये हुए आहारमें औद्देशिक दोष होता है। आहार बनाते समय, साधुका आगमन सुन कर अधनमें अधिक डाल (डाल) कर बनानेसे अध्यवपूरक दोष होता है। भोजन बनाते समय, गृहस्थ और भिक्षु, दोनोंके लिये भोजन बनानेसे मिश्रजात दोष लगता है ॥५५॥

---

(२) જે આહાર આદિ પોતાને માટે અને સાધુને માટે એકઠો કરીને બનાવવામા આવે તેને વિશેષ મિશ્રજાત કહે છે ઉપર કહેલા બધા પ્રકારના આહારનો અણગારે પરિહાર કરવો જોઈએ

ઔદ્દેશિક, અધ્યવપૂરક અને મિશ્રજાત દોષોમા આ ભેદ છે-ભોજન બનાવવામા પ્રવૃત્ત થયા પછી અને સાધુ આવ્યા પહેલા, કોઇ પણ એક સાધુને માટે અથવા અમુક એક સાધુને માટે બનાવેલા આહારમા ઔદ્દેશિક દોષ લાગે છે આહાર બનાવતી વખતે સાધુનું આગમન સાભળીને આધણમા વધારે ઓરી દેવાથી અધ્યવપૂરક દોષ લાગે છે ભોજન બનાવતી વખતે ગૃહસ્થ અને ભિક્ષુ બેઉને માટે ભોજન બનાવવાથી મિશ્રજાત દોષ લાગે છે (૫૫)

ग्रामे साधुसमागमनं निशम्य तदर्थमधिकनिक्षेपणेन सम्पादितमिति तदर्थः। इद मत्र हृदयम्-यत्रैतमन्यलिङ्गिनिमित्तमधिकं पूरितं, तत्र तद्दानानन्तरमवशिष्टमन्नादिकं साधुभिर्ग्राह्यं, तत्रान्तरायदोषानवतारादिति। ६-प्रामित्य=साधुनिमित्तमुद्धाररूपेण कृतमिदानीय दीयमानम्। ७ मिश्रजात=मिश्रेण मिश्रभावेन 'पूर्वत एव दात भिक्षा चरोभयानुसन्धानेनेत्यर्थः जात=निष्पन्नम्। तद्द्विविधं सामान्यमिश्रजातं विशेषमिश्रजातं चेति, तत्र-सामान्यमिश्रजात=सामान्यरूपेण स्वपोष्यवर्गार्थं गृहस्थागृहस्थ साधु-पाखण्डिप्रभृतिभिक्षाचरार्थञ्चैकत्र रन्धितम्, विशेषमिश्रजातं यदागनिमित्त

१ पूर्वत.=पाकार्थं प्रवृत्तेः प्रागेव।

बनाया हुआ आहार अध्यवपूरक कहलाता है, तात्पर्य यह कि यदि अन्यलिङ्गियोंके निमित्त अधिक आहार मिला कर बनाया हो तो उन्हें दे देनेके बाद बचा हुआ आहार, साधुओंको ग्राह्य है, क्योंकि वहाँ अन्तराय-दोष नहीं लगता।

[६] प्रामित्य साधुके निमित्त कहींसे उधार लेकर दिया जानेवाला आहार, प्रामित्य कहलाता है।

[७] मिश्रजात-पहलेसे ही दाता और भिक्षु दोनोंके लिये बनाया हुआ आहार, मिश्रजात है।

मिश्रजातके दो भेद हैं-(१) सामान्य मिश्रजात और (२) विशेष मिश्रजात। (१) साधारण तौर पर अपने पोष्यवर्गके लिये तथा गृहस्थ, अगृहस्थ, साधु, पाखण्डी आदिके लिये मिलाकर राधा हुआ आहार 'सामान्य मिश्रजात' कहलाता है। (२)-जो आहार आदि अपने लिये

વેલો આહાર અધ્યવપૂરક કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે જો અન્યલિંગીઓ (અન્યધર્મીઓ)ને નિમિત્તે વધારે આહાર મેળવીને બનાવ્યો હોય તો તેને આપી દીધા પછી વધેલો આહાર સાધુઓને માટે ગ્રાહ્ય બને છે, કારણ કે તેમા અન્તરાય દોષ લાગતો નથી

(૬) પ્રામિત્ય-સાધુને નિમિત્તે કહીંથી ઉધાર લાવીને આપવામા આવેલો આહાર પ્રામિત્ય કહેવાય છે

(૭) મિશ્રજાત-પહેલા જ દાતા અને ભિક્ષુ બેઉને માટે બનાવેલો આહાર મિશ્રજાત છે મિશ્રજાતના બે ભેદ છે (૧) સામાન્ય મિશ્રજાત (૨) વિશેષ મિશ્રજાત (૧) સાધારણ રીતે પોતાના પોષ્યવર્ગને માટે તથા ગૃહસ્થ, અગૃહસ્થ, સાધુ પાખડી આદિને માટે એકઠો કરીને રાધેલો આહાર 'સામ ... કહેવાય છે

सान्वयार्थः-असण पाणग वावि खाइम तहा साइम=अशन पान खादिम तथा स्वादिम (यदि) पुप्फेसु=सचित्त फूलोसे बीएसु=शालि आदि बीजोसे वा=अथवा हरिएसु=हरित कायसे उम्मीस=मिश्रित होज्ज=हो तो त=वह भत्त-पाण तु=अशनादि सजयाण=साधुओके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=है, (अतः) दितिय=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५७॥-५८॥

टीका-'असण०' इत्यादि, 'त भवे०' इत्यादि च । यदशनादिक सचित्त-पुष्प-बीज-हरितकायैरुन्मिश्र=सयुक्त भवेत्तदकल्प्यमिति वाक्यार्थः । सूत्रे 'पुप्फेसु' इत्यादौ तृतीयार्थे सप्तमी ॥५७॥५८॥

१ २ ४ ३ ५ ६ ७

मूलम्-असणं पाणग वावि, खाइम साइम तहा ।

८ १२ ११ ९ १०

उदगम्मि होज्ज निक्खित्तं, उत्तिंगपणगेसु वा ॥५९॥

१३ १८ १४ १५ १६ १७

त भवे भत्तपाण तु, सजयाण अकप्पिय ।

१९ २० २३ २२ २४ २१

दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥६०॥

छाया—अशन पानक वापि, खाद्य स्वाद्य तथा ।
उदके भवेन्निक्षिप्तमुत्तिङ्गपनकेषु वा ॥५९॥
तद्भवेद्भक्त-पान तु, सयतानामकल्पिक(त) म् ।
ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६०॥

सान्वयार्थः-असण पाणग वावि खाइम तहा साइम=जो अशनादि चार प्रकारका आहार (यदि) उदगम्मि=सचित्त जलके ऊपर वा=अथवा उत्तिंगपणगेसु=कीडियोके दरके ऊपर या लीलन-फूलन पर निक्खित्त=रखा

'असण०' इत्यादि, तथा 'त भवे' इत्यादि । जो अशन पान आदि, सचित्त पुष्प, सचित्त बीज और हरितकायसे युक्त हो वह, सयमीके लिये कल्पनीय नहीं है, अत ऐसा आहार देनेवालीसे साधु कहे कि-ऐसा आहार मुझे नही कल्पता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

અસણ૦ ઇત્યાદિ, તથા ત ભવે૦ ઇત્યાદિ જે અશનપાન આદિ, સચિત્ત પુષ્પ, સચિત્ત બીજ અને હરિતકાય (વનસ્પતિ) થી યુકત હોય તે સયમીને માટે કલ્પનીય નથી, એટલે એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે-એવો આહાર મને કલ્પતો નથી (૫૭-૫૮)

सान्वयार्थः-से=उस आहारादिकी उग्गम=उत्पत्ति पुच्छिज्जा=पूछे कि-(यह अशनादि) कस्सट्ठा=किसके लिए वा=और केण=किसने कडं=बनाया है?, फिर सुच्चा=गृहस्थके मुखसे अशनादिकी उत्पत्ति सुनकर (यदि वह) निस्संकियं=औद्देशिक आदि शङ्कारहित य=और सुद्धं=निर्दोष हो तो संजए=साधु पडिगाहिज्ज=ग्रहण कर लेवे ॥५६॥

टीका—'उग्गम' इत्यादि । कस्यार्थे=किंनिमित्तम्, केन वा कर्त्रा कृतं=निष्पादितम्, अन्नादौ 'विशुद्धमविशुद्धं वे'ति संशये तन्निराकरणाय तस्य संशयितस्यान्नादेः उद्गमम्=उद्गमनमुद्गमस्तम् उत्पत्तिमित्यर्थः, पृच्छेत्=प्रतिवचनेन ज्ञातुमिच्छेत्, श्रुत्वा 'प्रतिवचन'-मितिशेषः, संयतः=शङ्किताऽऽहारग्रहणभीरुः साधुः, निःशङ्कितं=दोषशङ्कावर्जितम् अत एव शुद्धं=निरवद्यं प्रतिगृह्णीयात्-निरवद्यत्वेन निश्चये सतीति भावः ॥ ५६ ॥

१ २ ४ ३ ५ ७ ६
मूलम्-असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
८ १३ १२ ९ १० ११
पुप्फेसु होज्ज उम्मीसं, बीएसु हरिएसु वा ॥५७॥
१४ १६ १५ १९ १७ १८
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
२० २१ २४ २३ २५ २२
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥५८॥

छाया—अशनं पानकं वाऽपि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
पुष्पैर्भवेदुन्मिश्रं, बीजैर्हरितैर्वा ॥५७॥
तद्भवेद्भक्त-पानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥५८॥

'उग्गम०' इत्यादि । 'आहार अशुद्ध है या विशुद्ध है' इस प्रकारके सन्देह होने पर साधु, ऐसा पूछ लेवें कि यह आहार, किसके लिये बनाया गया है और किसने बनाया है?, इसका उत्तर सुन कर निरवद्यताका निश्चय करके निःशंकित अत एव निरवद्य आहार हो तो साधु, ग्रहण करे ॥५६॥

उग्गम० ઇત્યાદિ 'આહાર અશુદ્ધ છે કે વિશુદ્ધ છે' એ પ્રકારનો સંદેહ પડતાં સાધુ એવું પૂછી લે કે આહાર કોને માટે બનાવેલો છે અને કોણે બનાવ્યો છે ?, એનો ઉત્તર સાંભળીને નિરવદ્યતાનો નિશ્ચય કરીને નિઃશંકિત એટલે નિરવદ્ય આહાર હોય તો સાધુ ગ્રહણ કરે (૫૬)

खादिम स्वादिम तेउम्मि=तेजस्काय पर निक्खित्त=रखा हुआ हुज्ज=हो च= अथवा त=उस तेजस्कायको सघट्टिया=सघट्टा (छू) करके दए=देवे तो त=वह भत्तपाण तु=अशनादि सजयाण=साधुओके लिए अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=है, (अत) दितिय=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे न कप्पइ=नही कल्पता है ॥६१॥६२॥

टीका—'असण०' इत्यादि, 'त भवे०' इत्यादि च। यदशनादिक तेजसि=तेजस्कायोपरि निक्षिप्त=निहित भवेत्, यच्च तत्=तेजः-अग्निकायमित्यर्थः, सघट्टय=सस्पृश्य दद्यात्, तत्=उभयविध भक्तपान तु सयतानामकल्पिक(त) भवेत्, अतस्तद्ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पत इति ॥६१॥६२॥

मूलम्-एव उस्सिक्किया ओसिक्किया, उज्जालिया पज्जालिया ।
निव्वाविया उस्सिचिया,निस्सिचिया ओवत्तिया ओयारियादए॥६३॥
त भवे भत्त-पाण तु, सजयाण अकप्पियं ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥ ६४ ॥

छाया—एवम् उत्क्षिप्य अवक्षिप्य, उज्ज्वाल्य प्रज्वाल्य ।
निर्वाप्य उत्सिच्य, निषिच्य अपवर्त्य अवतार्य दद्यात् ॥६३॥
तद्भवेद्भक्त पान तु, सयतानामकल्पिक(त) म् ।
ददती प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६४॥

अग्निकायके साक्षात सघट्टेका निषेध करके अब परम्परा-सघट्टेका निषेध करते हैं—

सान्वयार्थ.=एव=जिस प्रकार अग्निकायको स्पर्श करके दिया जानेवाला अशनादि नहीं लेते, उसी प्रकार उस्सिक्किया=चूल्हे आदिमें इन्धनको अन्दर

'असण०' इत्यादि, तथा 'त भवे०' इत्यादि। जो अशन पान आदि, तेजस्काय पर रक्खा हो अथवा अग्निकायका सघट्टा करके देवे तो वह, साधुके लिये ग्राह्य नही है। अत देनेवालीसे कहे कि–'ऐसा आहार, मुझे नही कल्पता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

અસણ૦ ઇત્યાદિ, તથા त भवे० ઇત્યાદિ જે અશન પાન આદિ તેજસ્કાય પર રાખેલો હોય અથવા અગ્નિકાયનું સઘટન કરીને આપે તો તે સાધુને માટે ગ્રાહ્ય નથી એટલે તે આપનારીને સાધુ કહે કે 'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી' (૬૧-૬૨)

हुआ होज्ज=हो तो तं=वह भत्तपाणं तु=अशनादि संजयाणं=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=है, (अतः) दितियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे= कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥५९॥६०॥

टीका—'असणं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च । यदशनादिकमुदके= सचित्तजलोपरि, उत्तिङ्गपनकादिषु=उत्तिङ्गाः=भूमौ वर्तुलविवरविधायिनो गर्दभमुखाऽऽकृतयः क्षुद्रकीटविशेषाः, कीटिकानगरादयो वा, पनकः=अङ्कुरितोऽनङ्कुरितो वा पञ्चवर्णानन्तकायवनस्पतिविशेषः, तत्र निक्षिप्तं=स्थापितं भवेत्, तद्भक्तपानं संयतानामकल्पिक(त)-मित्यादि पूर्ववत् ॥५९॥६०॥

मूलम्-असणं पाणगं वावि, खाइमं साइमं तहा ।
तेउम्मि हुज्ज निक्खित्तं, तं च संघट्टिया दए ॥६१॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाणं अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ ६२ ॥

छाया—अशनं पानकं वापि, खाद्यं स्वाद्यं तथा ।
तेजसि भवेन्निक्षिप्तं, तच्च संघट्य दद्यात् ॥६१॥
तद्भवेद्भक्तपानं तु, संयतानामकल्पिक(त)म् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥६२॥

सान्वयार्थ—असणं पाणगं वावि खाइमं तहा साइमं=जो अशन पान

'असणं०' इत्यादि, तथा 'तं भवे०' इत्यादि । जो अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य सचित्त जल पर रखा हुआ हो तथा किडीनगर (चिउंटियोंके समूह) या लीलन फूलन पर रक्खा हो वह, संयमियोंके लिये कल्प्य नहीं है, अतः ऐसा आहार देनेवालीसे कहे कि 'ऐसा आहार मुझे कल्पता नहीं है' ॥ ५९ ॥ ६० ॥

असणं० ઈત્યાદિ, તથા तं भवे० ઈત્યાદિ જે અશન, પાન, ખાદ્ય, સ્વાદ્ય સચિત્ત જળ પર રાખેલો હોય, તથા કીડીનગર (કીડીઓનો સમૂહ) યા લીલન-ફૂલન પર રાખેલો હોય, તે સંયમીઓને માટે કલ્પનીય નથી એટલે એવો આહાર આપનારીને સાધુ કહે કે-'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી' (૫૯-૬૦)

निधाय, अवतार्य=अन्नादिसहितं भाजनमेवोत्तार्य वा दद्यात्, तद्भक्त-पानं तु संयतानामकल्पिक(त) भवेदतस्तद्ददतीं प्रत्याचक्षीत-'तादृशं मे न कल्पते' इति ६३॥६४॥

११ २ ५ ४ ३ ८ ७ ६ १
मूलम्-हुज्ज कट्ठं सिलं वावि, इट्टालं वावि एगया।
१० ९ १२ १३ १५ १४
ठवियं संकमट्ठाए, तं च होज्ज चलाचलं ॥६५॥
१६ १९ १८ २० २६ २४ २५
न तेण भिक्खू गच्छेज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो।
२२ २३ २१ १६
गभीरं झुसिरं चेव, सव्विंदिय-समाहिए ॥ ६६ ॥

छाया—भवेत्काष्ठं शिला वाऽपि, इष्टालं वाऽप्येकदा।
स्थापितं संक्रमार्थं, तच्च भवेच्चलाचलम् ॥ ६५ ॥
न तेन भिक्षुर्गच्छेद्दृष्टस्तत्रासंयमः॥
गम्भीरं शुषिरं चैव, सर्वेन्द्रिय-समाहितः ॥ ६६ ॥

सान्वयार्थ'—एगया=किसी समय अर्थात् वर्षा आदिके समय संकमट्ठाए=जाने-आनेके लिए कट्ठं=काठ वावि=या सिलं=शिला वावि=अथवा इट्टालं=ईंटका टुकडा ठवियं=रखा हुआ हुज्ज=हो च=और तं=वह (यदि) चलाचलं=अस्थिर-डग मगाता हुज्ज=हो तो तेण=उस मार्गसे तथा जो गभीरं=ऊंडा-गहरा और झुसिरं=पोला स्थान हो उससे सव्विंदियसमाहिए=समस्त इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला भिक्खू=साधु न गच्छेज्जा=नहीं जावे, (क्योंकि) तत्थ=वहां पर केवली भगवानने असंजमो=असंयम दिट्ठो=देखा है ॥६५॥६६॥

टीका—'हुज्ज कट्ठं०' इत्यादि, 'न तेण०' इत्यादि च। एकदा=एकस्मिन् काले वर्षादौ यत् काष्ठं=सञ्चरणोपयोगि दारु, अपिवा शिला=प्रस्तरखण्डम् अपिवा

बर्त्तनको नीचे उतार कर यदि आहार देवे तो वह आहार अनगारके लिये ग्रहण करने योग्य नहीं है। अतः देनेवालीसे कहे कि-'ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है' ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

'हुज्ज कट्ठं०' इत्यादि, तथा 'न तेण०' इत्यादि।

नदी आदिमें बरसात आदिके समय, जाने-आनेके लिये जो काठ,

ઉતારીને જો આહાર આપે તો તે આહાર અનગાર ને માટે ગ્રહણ કરવા યોગ્ય નથી એટલે તે આપનારીને સાધુ કહે કે-'એવો આહાર મને કલ્પતો નથી' (૬૩-૬૪)

हुज्ज कट्ठं० ઇત્યાદિ તથા न तेण० ઇત્યાદિ
નદી આદિમા વરસાદને વખતે આવવા જવા માટે જે લાકડા, પત્થર, ઈંટ

सरका कर ओमिथिया=अधिक इन्धनको चूल्हेके अन्दरसे बाहर निकालकर उज्जालिया=बुझी हुई अग्निको फूंक आदिसे उद्दीपित-सलगा-कर पज्जालिया=जलती हुई अग्निको अधिक प्रदीप्त कर निव्वाविया=अग्निको पानी आदिसे बुझाकर उस्सिचिया=अग्निपर पकते हुए अन्नादिको कुछ बाहर निकाल कर निस्सिचिया=उभरते हुए दुग्धादिमें जल छिडककर ओवत्तिया=अग्निपर रहे हुए अन्नादिको दूसरे बरतनमें निकालकर ओयारिया=अग्निपर रहे हुए अन्नादिके बरतनको नीचे उतारकर अर्थात् अग्निकायका परम्परासे संघट्टा करके दए=अशनादि देवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=अशनादि संजयाण=साधुओंके लिए अकप्पियं=अकल्पनीय भवे=है, (अत) दिंतियं=देती हुईसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥६३॥६४॥

टीका-'एवं०' इत्यादि, 'तं भवे०' इत्यादि च । एवम्=उक्तप्रकारेण तेजस्कायविषय इवेति भाव., उत्क्षिप्य='यावत्काल साधवेऽन्नादिकं ददामि तावत्काल मग्निर्मा प्रशाम्यतु' इति बुद्धया चुल्ल्यादाविन्धनमुत्सार्य, अवक्षिप्य=दाहभयादिन्धनं निःसार्य, उज्ज्वाल्य अनुज्ज्वलितं फूत्कारादिनोद्दीप्य, प्रज्वाल्य=उद्दीप्तं प्रकर्षेण सवर्ध्य, निर्वाप्य=प्रशान्तीकृत्य, उत्सिच्य=अग्न्युपरिस्थितमन्नादिकं किञ्चिद्बहिष्कृत्य, निषिच्य=उद्वलद्दुग्धादिकं जलेन प्रशाम्य, अपवर्त्य=भाजनान्तरे

'एवं उस्सिक्किया०' इत्यादि, तथा 'तं भवे' इत्यादि ।

'जब तक आहार देती हू तब तक, अग्नि न बुझ जाय' ऐसा विचार कर चूल्हेमें इधन सुलगाकर, अन्न आदि जलनेके भयसे इधन बाहर निकाल कर, फूँक आदिसे चूल्हा जला कर, जलती अग्निको तेज कर या बुझा कर, अग्नि पर पकते हुए आहारको कुछ एक ओर कर, तथा पानी डाल कर उबाल (उफान) को शान्त कर, अथवा अन्न आदि सहित

एवं उस्सिक्किया० ઈત્યાદિ, તથા तं भवे० ઈત્યાદિ

'જ્યા સુધી આહાર આપતી હોઉ, ત્યા સુધી અગ્નિ હોલવાઈ ન જાય,' એવો વિચાર કરીને ચૂલામા ઈધણા સળગાવીને, અન્નાદિ બળી જવાના ભયથી ઈધણા બહાર કાઢીને, ફુંક આદિથી ચૂલો સળગાવીને, બળતા અગ્નિને તેજ કરીને યા બુઝાવીને, અગ્નિ પર પાકતા આહારને કોઈ એક બાજુએ કરીને તથા પાણી નાખીને ઊભરાને શાંત કરીને, અથવા અન્નાદિ સહિત વાસણને નીચે

निधाय, अवतार्य=अन्नादिसहित भाजनमेवोचार्य वा दद्यात्, तद्भक्त-पान तु सयतानामकल्पिक(त) भवेदतस्तद्ददती प्रत्याचक्षीत-'तादृश मे न कल्पते' इति ६३॥६४॥

मूलम्-हुज्ज कट्ठ सिल वावि, इट्टालं वावि एगया।
ठवियं संकमट्ठाए, त च होज्ज चलाचल ॥६५॥
न तेण भिक्खू गच्छेज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो।
गभीरं झुसिर चेव, सव्विदिय-समाहिए ॥ ६६ ॥

छाया—भवेत्काष्ठ शिला वाऽपि, इष्टाल वाऽप्येकदा।
स्थापित सक्रमार्थं, तच्च भवेच्चलाचलम् ॥ ६५ ॥
न तेन भिक्षुर्गच्छेद्दृष्टस्तत्रासयमः ॥
गम्भीर शुषिर चैव, सर्वेन्द्रिय-समाहितः ॥ ६६ ॥

सान्वयार्थः-एगया=किसी समय अर्थात् वर्षा आदिके समय सकमट्ठाए=जाने-आनेके लिए कट्ठ=काठ वावि=या सिल=शिला वावि=अथवा इट्टाल=ईंटका टुकडा ठविय=रखा हुआ हुज्ज=हो च=और त=वह (यदि) चलाचल=अस्थिर-डग मगाता हुज्ज=हो तो तेण=उस मार्गसे तथा जो गभीर=ऊडा-गहरा और झुसिर=पोला स्थान हो उससे सव्विंदियसमाहिए=समस्त इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला भिक्खू=साधु न गच्छेज्जा=नहीं जावे, (क्योंकि) तत्थ=वहा पर केवली भगवानने असजमो=असयम दिट्ठो=देखा है ॥६५॥६६॥

टीका—'हुज्ज कट्ठ०' इत्यादि, 'न तेण०' इत्यादि च। एकदा=एकस्मिन् काले वर्षादौ यत् काष्ठ=सञ्चरणोपयोगि दारु, अपिवा शिला=प्रस्तरखण्डम् अपिवा

बर्त्तनको नीचे उतार कर यदि आहार देवे तो वह आहार अनगारके लिये ग्रहण करने योग्य नहीं है। अत. देनेवालीसे कहे कि-'ऐसा आहार मुझे नहीं कल्पता है' ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

'हुज्ज कट्ठ०' इत्यादि, तथा 'न तेण०' इत्यादि।

नदी आदिमें बरसात आदिके समय, जाने-आनेके लिये जो काठ,

ઊતારીને જો આહાર આપે તો તે આહાર અનગાર ને માટે ગ્રહણ કરવા યોગ્ય નથી એટલે તે આપનારીને સાધુ કહે કે-'એવા આહાર મને કલ્પતો નથી' (૬૩-૬૪)

हुज्ज कट्ठ० ઇત્યાદિ તથા न तेण० ઇત્યાદિ

નદી આદિમા વરસાદને વખતે આવવા જવા માટે જે લાકડા, પત્થર, ઇટ

इष्टालम्=इष्टकाशकलं, संक्रमार्थं=गमनागमनार्थं स्थापितम्=आरोपितं भवेत्, तत्र काष्ठादिकं यदि चलाचलम्=अस्थिरं कम्पमानं भवेत् तदा तेन काष्ठादिना सर्वेन्द्रियसमाहितः=वशीकृतसकलेन्द्रियो भिक्षुः=साधुः न गच्छेत्। 'चैव'-शब्दः समुच्चये अपिचेत्यर्थः, गम्भीरं-निम्नत्वेन प्रकाशशून्यं, शुषिरं=गहरवत्स्थानकाम 'प्रदेश' मिति शेषः, न गच्छेदिति पूर्वेण सम्बन्धः। अगमने हेतुमाह-तत्रेति, तत्र=तस्मिन् असंयमः=स्वपरविराधनादिरूपो दृष्टः=अवलोकितः केवलिभिरिति शेषः। चलाचलविशेषणककाष्ठादिपदेन प्रस्खलन पतनादिनाऽऽत्मविराधना, एकेन्द्रिय द्वीन्द्रियादिप्राणिगणोपमर्दनेन पर-विराधनासम्भावना च सूचिता। गम्भीरादिप्रदेशगमनेनापि प्रोक्तदोषसमधिकहिंस्रादिजन्तुजनितोपघातादिप्रचुरदोष सम्भवः सूचितः।

'सव्विंदियसमाहिए' इतिपदेन साधोरिन्द्रियविषयाऽऽसक्तिनिराकरण

पत्थर या ईंट आदि रोप दिया हो और यदि वह हिलता हो तो समाधिमान् संयमी, उस मार्गसे गमन न करे। और जो प्रदेश, नीचा होनेसे अन्धकारमय हो या खड्डेवाला हो उससे भी साधुको गमन नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसे मार्गमें गमन करनेसे स्व-पर-विराधना-रूप असंयम केवली भगवान्ने देखा है।

हिलते हुए काठ आदिपर चलनेसे रपटने या गिर पडनेसे आत्मविराधनाकी और एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि प्राणियोंके उपमर्दनसे पर-विराधनाकी सम्भावना सूचित की है। गहरे (नीचे) प्रदेशमें गमन करनेसे उक्त दोषोंके सिवाय हिंसक जन्तुओंसे उत्पन्न होनेवाला उपघात आदि बहुतसे दोषोंका होना सूचित किया है। 'सव्विंदियसमाहिए' पदसे यह

વગેરે રોપેલા હોય અને જો તે હલતા હોય તો સમાધિવાન સંયમી એ માર્ગે ગમન ન કરે અને જે પ્રદેશ નીચો હોવાથી અંધકારમય હોય યા ખાડાવાળો હોય તે માર્ગે પણ સાધુએ ગમન કરવું ન જોઈએ, કારણ કે એવા માર્ગે ગમન કરવાથી સ્વ પર વિરાધનારૂપ અસંયમ કેવળી ભગવાને જોયો છે

હલતા લાકડા આદિ પર ચાલવાથી લપસી જવાથી યા પડી જવાથી આત્મ વિરાધનાની અને એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય પ્રાણીઓના ઉપમર્દનથી પર વિરાધનાની સંભાવના સૂચિત કરી છે નીચાણવાળા પ્રદેશમાં ગમન કરવાથી ઉક્તદોષો ઉપરાંત હિંસક જંતુઓથી ઉત્પન્ન થનારો ઉપઘાત આદિ ઘણા દોષો હોવાનું સૂચિત કર્યું છે सव्विंदियसमाहिए પદથી એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે સાધુઓએ

परायणता प्रतिपादिता । 'भिक्खु' पदेन च यमनियमपूर्वकमेव भिक्षाग्राहित्वमिति बोधितम् ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

मूलम्-निस्सेणिं फलगं पीढं, उस्सवित्ताणमारुहे ।
मचं कीलं च पासायं, समणट्ठाए व दावए ॥ ६७ ॥
दुरूहमाणी पवडेज्जा, हत्थं पायं च लूसए ।
पुढवीजीवेवि हिंसेज्जा, जे य तन्निस्सिया जगे ॥ ६८ ॥
एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो ।
तम्हा मालोहडं भिक्खं, न पडिगिण्हंति संजया ॥ ६९ ॥

छाया—निश्रेणिं फलकं पीठम्, उत्सृज्य आरोहेत् ।
मञ्चं कीलञ्च प्रासादं, श्रमणार्थमेव दायिका ॥६७॥
दुरा (रू) रोहन्ती प्रपतेत्, हस्तौ पादौ च लूषयेत् ।
पृथ्वीजीवानपि हिंस्या,-द्यानि च तन्निःश्रितानि जगन्ति ॥६८॥
एतादृशान्महादोषान्, ज्ञात्वा महर्षयः ।
तस्मान्मालापहृतां भिक्षां, न गृह्णन्ति संयताः ॥६९॥

सान्वयार्थ-दावए=दान देनेवाली स्त्री यदि समणट्ठा एव=साधुके लिएही निस्सेणिं=नसैनी-निसरणी-सीढी फलगं=पाटे पीढं=पीढे मचं=खाट व=और कीलं=कीलेको उस्सवित्ताण=ऊचा-खडा करके पासायं=प्रासाद-मंजिल पर आरुहे=चढे तो दुरूहमाणी=इस प्रकार कष्टसे चढती हुई वह पवडेज्जा=शायद गिर जायगी व=और अपना हत्थं=हाथ पायं=पैर लूसए=तोड़ बैठेगी तथा पुढवीजीवे अवि=पृथिवीकायके जीवोंको भी च=और जे=जो तन्निस्सिया= उस पृथ्वीकी नेसरायमें रहे हुए जगे=द्वीन्द्रियादि जीव हैं उन्हें भी हिंसेज्जा=मारेगी ॥६७॥६८॥

प्रकट किया गया है कि साधुओंको इन्द्रिय चपलताका त्याग करना चाहिये । 'भिक्खु' पदसे द्योतित किया गया है कि साधुओंको यम-नियमोंका पालन करते हुए ही भिक्षा ग्रहण करना चाहिये ॥६५॥६६॥

ઇન્દ્રિય ચપલતાનો ત્યાગ કરવો જોઈએ ભિક્ખુ શબ્દથી એમ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે સાધુઓએ યમ નિયમોનું પાલન કરતા જ ભિક્ષા ગ્રહણ કરવી જોઈએ (૬૫-૬૬)

इष्टालम्=इष्टकाशकलं, सङ्क्रमार्थं=गमनागमनार्थं स्थापितम्=आरोपितं भवेत्, तच्च काष्ठादिकं यदि चलाचलम्=अस्थिरं कम्पमानं भवेत् तदा तेन काष्ठादिना सर्वेन्द्रियसमाहितः=वशीकृतसकलेन्द्रियो भिक्षुः=साधुः न गच्छेत् । 'चेव'-शब्दः समुच्चये अपिचेत्यर्थः, गम्भीर-निम्नत्वेन प्रकाशशून्यं, शुषिरं=गह्वरवत्मान्तरालं 'प्रदेश'-मिति शेषः, न गच्छेदिति पूर्वेण सम्बन्धः । अगमने हेतुमाह-तत्रेति, तत्र=तस्मिन् असंयमः=स्वपरविराधनादिरूपो दृष्टः=अवलोकितः केवलिभिरिति शेषः । चलाचलविशेषणककाष्ठादिपदेन प्रस्खलन पतनादिनाऽऽत्मविराधना, एकेन्द्रिय द्वीन्द्रियादिप्राणिगणोपमर्दनेन पर-विराधनासम्भावना च सूचिता । गम्भीरादिप्रदेशगमनेनापि प्रोक्तदोषसमधिकहिंस्रादिजन्तुजनितोपघातादिप्रचुरदोष-सम्भवः सूचितः ।

'सव्विंदियसमाहिए' इतिपदेन साधोरिन्द्रियविषयाऽऽसक्तिनिराकरण

पत्थर या ईंट आदि रोप दिया हो और यदि वह हिलता हो तो समाधिमान् संयमी, उस मार्गसे गमन न करे। और जो प्रदेश, नीचा होनेसे अन्धकारमय हो या खड्डेवाला हो उससे भी साधुको गमन नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसे मार्गमें गमन करनेसे स्व-पर-विराधना-रूप असंयम केवली भगवान्ने देखा है ।

हिलते हुए काठ आदिपर चलनेसे रपटने या गिर पडनेसे आत्मविराधनाकी और एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि प्राणियोंके उपमर्दनसे पर विराधनाकी सम्भावना सूचित की है । गहरे (नीचे) प्रदेशमें गमन करनेसे उक्त दोषोंके सिवाय हिंसक जन्तुओंसे उत्पन्न होनेवाला उपघात आदि बहुतसे दोषोंका होना सूचित किया है । 'सव्विंदियसमाहिए' पदसे यह

વગેરે રોપેલા હોય અને જો તે હલતા હોય તો સમાધિવાન સંયમી એ માર્ગે ગમન ન કરે અને જે પ્રદેશ નીચો હોવાથી અંધકારમય હોય યા ખાડાવાળો હોય તે માર્ગે પણ સાધુએ ગમન કરવું ન જોઈએ, કારણ કે એવા માર્ગે ગમન કરવાથી સ્વ પર વિરાધનારૂપ અસંયમ કેવળી ભગવાને જોયો છે

હલતા લાકડા આદિ પર ચાલવાથી લપસી જવાથી યા પડી જવાથી આત્મ વિરાધનાની અને એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય પ્રાણીઓના ઉપમર્દનથી પર વિરાધનાની સંભાવના સૂચિત કરી છે નીચાણવાળા પ્રદેશમાં ગમન કરવાથી ઉક્તદોષો ઉપરાંત હિંસક જંતુઓથી ઉત્પન્ન થનારો ઉપઘાત આદિ ઘણા દોષો હોવાનું સૂચિત કર્યું છે સव्विंदियसमाहिए પદથી એમ કહેવામાં આવ્યું છે કે સાધુઓએ

श्रितानि जगन्ति=प्राणिनस्तानि हिंस्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः तस्मात्=यतो निश्रेण्यादिना समारोहणे पतनादिद्वारा दातुः स्व-परोभयविराधना सम्भवति अतः कारणात् एतादृशान्=उक्तलक्षणान् महादोषान्=दातृप्रभृतीनां मृत्योरपि सम्भवेन दारुणकर्मविपाकहेतुत्वात्प्रकृष्टदूषणानि ज्ञात्वा संयताः=सकलसावद्ययोगसमुपरताः महर्षयः=घोरपरीषहोपसर्गसहिष्णुत्वान्महामुनयः, मालापहृता=मालो[1] भूमिकावाची देशीयशब्दः, ततः अपहृताम्=आनीतां भिक्षां न प्रतिगृह्णन्ति=न स्वीकुर्वन्ति।

मालापहृता भिक्षा भूमिकाया ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्भेदेन त्रिविधा-ऊर्ध्वमालापहृता, अधोमालापहृता, तिर्यङ्मालाऽपहृता चेति। तत्रो र्ध्वमालापहृता पूर्वं व्याख्याता। अधोमालाऽपहृता=यस्या भूमिकाया निश्रेण्यादिनाऽवरुह्य आनीता। तिर्यङ्माला-

१ मालः 'मजिल' इति भाषाप्रसिद्धः।

तथा जो प्राणी, पृथ्वीपर सञ्चार कर रहे हों उनकी भी हिंसा होजाय, इसलिये ऐसी अवस्थामें स्व, पर और उभयकी विराधनाका होना सम्भव है, यहाँ तककि दाताकी मृत्यु भी हो जा सकती है, अतः इन महादोषोंको अत्यन्त दुःखदायी जान कर, संयमी महामुनि, नसैनी (सीढ़ी) आदि द्वारा माला (मजिल) से उतारा हुआ आहार आदि स्वीकार नहीं करते॥

मालाके भेदसे मालापहृत भिक्षा, तीन प्रकारकी है-(१) ऊर्ध्व-माला पहृत (२)-अधो-मालापहृत और (३)-तिर्यग्मालापहृत। इनमें, ऊर्ध्व-मालापहृत भिक्षाका विवेचन, पहले कह आये हैं। ऊपरके मजिलसे नीचेकी ओर नसैनी (निसरणी) लगाकर, लाई हुई भिक्षा, अधोमाला-

વિરાધના થાય, તથા જે પ્રાણી પૃથ્વી પર સંચાર કરી રહ્યા હોય તેમની પણ હિંસા થઈ જાય, તેથી એવી અવસ્થામાં સ્વ, પર અને ઉભયની વિરાધના થવી સંભવિત છે, એટલે સુધી કે દાતાનું મૃત્યુ પણ થઈ જઈ શકે છે, તેથી કરીને એ મહાદોષોને અત્યંત દુઃખદાયી જાણીને સંયમી મહામુનિ નીસરણી આદિદ્વારા માળથી ઉતારેલો આહાર આદિ સ્વીકારે નહિ

માળ મજલાના ભેદે કરીને માલાપહૃત ભિક્ષા ત્રણ પ્રકારની છે (૧) ઉર્ધ્વ માલાપહૃત, (૨) અધોમાલાપહૃત અને (૩) તિર્યગ્ માલાપહૃત એમાં ઉર્ધ્વ માલાપહૃત ભિક્ષાનું વિવેચન પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે ઉપરના મજલાથી નીચેની માળનો નીસરણી લગાવીને લાવેલી ભિક્ષા અધોમાલાપહૃત કહેવાય છે

तम्हा=इसीलिए एयारिसे=ऐसे पूर्वोक्त प्रकारके महादोसे=दाताको मृत्यु तक होनेकी सम्भावनाके कारण महादोषोंको जाणिऊण=जानकर संजया= सकल सावद्य व्यापारसे विरत हुए महेसिणो=महर्षि लोग मालोहडं=मालापहृत (मालसे लाई हुई) भिक्खं=भिक्षाको न पडिगिण्हंति=नहीं लेते हैं ॥६९॥

टीका—मालापहृतभिक्षादोषमाह-'निस्सेणिं' इत्यादि। 'दावए' इत्यत्र प्राकृतत्वाल्लिङ्गव्यत्ययस्तथा च दायिका=दात्री, श्रमणार्थमेव=साधुनिमित्तमेव साधवे भिक्षादानार्थमेवेत्यर्थः, निश्रेणिं=वंशादिनिर्मित सोपान, फलकं=शयनोपयोगि दारुमयाऽऽसन, पीठ=काष्ठनिर्मितोपवेशनोपयोगि लघ्वासन 'पीढा' इति प्रसिद्ध, मञ्च=खट्वा वंशदलादिरचितोच्चासन वा, कील=शङ्कु, चकारान्मुसलादिकम् उत्सृज्य=ऊर्ध्वीकृत्य, प्रासादम्=उच्चगृहं तत्रानेकभूमिकासम्भवेनाऽऽरोहणादिकं युज्यत इति तद्भूमिकाया लक्षणा, तथा च-उच्चगृहभूमिकामित्यर्थः, आरोहेत्=उपलक्षणया गच्छेदित्यर्थः। तेन त्रिसृषु वक्ष्यमाणासु मालापहृतासु भिक्षासु समन्वयः। निश्रेण्यादिना सदुःखमारोहणं भवतीत्यत आह-दुरा (दू) रोहन्ती=सदुःखमूर्ध्वप्रदेशमासादयन्ती सती प्रपतेत्, हस्तौ पादौ च लूषयेत्= त्रोटयेत्, पृथ्वीजीवानपि हिंस्यात्=पीडयेत्, यानि च तन्निःश्रितानि=पृथिव्या

मालापहृत भिक्षाके दोष बताते हैं-'निस्सेणिं' इत्यादि, 'दुरूहमाणी' इत्यादि, तथा 'एयारिसे' इत्यादि।

दाता, यदि साधुके लिये नसैनी, सीढी (निसरणी), पाटा, पीढा (बाजोट), माचा, खूटी अथवा मूसल आदिको ऊँचा करके ऊँचे मकानकी दूसरी मंजिल पर चढ कर, आहार लावे तो वह आहार आदि, मालापहृत कहलाता है। नसैनी (सीढी) आदि पर चढनेसे यदि गिर पडे तो हाथ पैर टूट जायँ, पृथ्वीकाय आदि जीवोंकी विराधना होजाय

હવે માલાપહૃત ભિક્ષાના દોષો બતાવે છે—निस्सेणिं ઇત્યાદિ, दुरुहमाणी• ઇત્યાદિ, તથા एयारिसे ઇત્યાદિ

જો દાતા સાધુને માટે સીઢી (નીસરણી), પાટ, બાજોઠ, માચો, ખૂટી અથવા મૂશળ (સાંબેલુ) આદિને ઉંચા કરીને ઉંચા મકાનના બીજા મજલા પર ચઢીને આહાર લાવે તો તે આહાર માલાપહૃત કહેવાય છે સીડી આદિ પર ચડવાથી જો પડી જાય તો હાથ-પગ તૂટી જાય, પૃથ્વીકાય આદિ જીવોની

श्रितानि जगन्ति=प्राणिनस्तानि हिंस्यादिति पूर्वेण सम्बन्धः तस्मात्=यतो निश्रेण्यादिना समारोहणे पतनादिद्वारा दातुः स्व-परोभयविराधना सम्भवति अतः कारणात् एतादृशान्=उक्तलक्षणान् महादोषान्=दातृप्रभृतीनां मृत्योरपि सम्भवेन दारुणकर्मविपाकहेतुत्वात्मकृष्टदूषणानि ज्ञात्वा संयताः=सकलसावद्ययोगसमुपरताः महर्षयः=घोरपरीषहोपसर्गसहिष्णुत्वान्महामुनयः, मालापहृता=मालो[1] भूमिकावाची देशीयशब्दः, ततः अपहृताम्=आनीता भिक्षा न प्रतिगृह्णन्ति=न स्वीकुर्वन्ति।

मालापहृता भिक्षा भूमिकाया ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्भेदेन त्रिविधा-ऊर्ध्वमालापहृता, अधोमालापहृता, तिर्यङ्मालाऽपहृता चेति। तत्रो र्ध्वमालापहृता पूर्वं व्याख्याता। अधोमालाऽपहृता=यस्या भूमिकाया निश्रेण्यादिनाऽवरुह्य आनीता। तिर्यङ्माला-

१ मालः 'मजिल' इति भाषाप्रसिद्धः।

तथा जो प्राणी, पृथ्वीपर सञ्चार कर रहे हों उनकी भी हिंसा होजाय, इसलिये ऐसी अवस्थामें स्व, पर और उभयकी विराधनाका होना सम्भव है, यहाँ तककि दाताकी मृत्यु भी हो जा सकती है, अतः इन महादोषोंको अत्यन्त दुःखदायी जानकर, संयमी महामुनि, नसैनी (सीढ़ी) आदि द्वारा माला (मजिल) से उतारा हुआ आहार आदि स्वीकार नहीं करते॥

मालाके भेदसे मालापहृत भिक्षा, तीन प्रकारकी है-(१) ऊर्ध्व-माला पहृत (२)-अधो-मालापहृत और (३)-तिर्यग्मालापहृत। इनमें, ऊर्ध्व-मालापहृत भिक्षाका विवेचन, पहले कह आये हैं। ऊपरके मजिलसे नीचेकी ओर नसैनी (निसरणी) लगाकर, लाई हुई भिक्षा, अधोमाला-

વિરાધના થાય, તથા જે પ્રાણી પૃથ્વી પર સચાર કરી રહ્યા હોય તેમની પણ હિંસા થઈ જાય, તેથી એવી અવસ્થામા સ્વ, પર અને ઉભયની વિરાધના થવી સભવિત છે, એટલે સુધી કે દાતાનું મૃત્યુ પણ થઇ જઇ શકે છે, તેથી કરીને એ મહાદોષોને અત્યત દુખદાયી જાણીને સયમી મહામુનિ નીસરણી આદિદ્વારા માળથી ઉતારેલો આહાર આદિ સ્વીકારે નહિ

માળ મજલા ના ભેદે કરીને માલાપહૃત ભિક્ષા ત્રણ પ્રકારની છે (૧) ઉર્ધ્વ-માલાપહૃત, (૨) અધોમાલાપહૃત અને (૩) તિર્યગ્ માલાપહૃત એમા ઊર્ધ્વ-માલાપહૃત ભિક્ષાનું વિવેચન પહેલા કરવામા આવ્યુ છે ઉપરના મજલાથી નીચેની બાજુએ નીસરણી લગાવીને લાવેલી ભિક્ષા અધોમાલાપહૃત કહેવાય છે

तम्हा=इसीलिए एयारिसे=ऐसे पूर्वोक्त प्रकारके महादोसे=दाताकी मृत्यु तक होनेकी संभावनाके कारण महादोषोंको जाणिऊण=जानकर संजया=सकल सावद्य व्यापारसे विरत हुए महेसिणो=महर्षि लोग मालोहडं=मालापहृत (मालसे लाई हुई) भिक्खं=भिक्षाको न पडिगिण्हंति=नहीं लेते हैं ॥६९॥

टीका—मालापहृतभिक्षादोषमाह—'निस्सेणिं' इत्यादि । 'दावए' इत्यत्र प्राकृतत्वाल्लिङ्गव्यत्ययस्तथा च दायिका=दात्री, श्रमणार्थमेव=साधुनिमित्तमेव-साधवे भिक्षादानार्थमेवेत्यर्थः, निश्रेणिं=वंशादिनिर्मितं सोपानं, फलकं=शयनोपयोगि दारुमयाऽऽसनं, पीठं=काष्ठनिर्मितोपवेशनोपयोगि लघ्वासनं 'पीढा' इति प्रसिद्धं, मञ्चं=खट्वां वंशदलादिरचितोच्चासनं वा, कीलं=शङ्कुं, चकारान्मुसलादिकम् उत्सृज्य=ऊर्ध्वीकृत्य, प्रासादम्=उच्चगृहं तत्रानेकभूमिकासम्भवेनाऽऽरोहणादिकं युज्यत इति तद्भूमिकाया लक्षणा, तथा च-उच्चगृहभूमिकामित्यर्थः, आरोहेत्=उपलक्षणया गच्छेदित्यर्थः । तेन तिसृषु वक्ष्यमाणासु मालापहृतासु भिक्षासु समन्वयः । निश्रेण्यादिना सदुःखमारोहणं भवतीत्यत आह—दुरा (दू) रोहन्ती=सदुःखमूर्ध्वप्रदेशमासादयन्ती सती प्रपतेत्, हस्तौ पादौ च लूषयेत्=त्रोटयेत्, पृथ्वीजीवानपि हिंस्यात्=पीडयेत्, यानि च तन्निःश्रितानि=पृथिव्या

मालापहृत भिक्षाके दोष बताते हैं-'निस्सेणिं' इत्यादि, 'दुरुहमाणी' इत्यादि, तथा 'एयारिसे' इत्यादि ।

दाता, यदि साधुके लिये नसैनी, सीढी (निसरणी), पाटा, पीढा (बाजोट), माचा, खूटी अथवा मूसल आदिको ऊँचा करके ऊँचे मकानकी दूसरी मंजिल पर चढ़ कर, आहार लावे तो वह आहार आदि, मालापहृत कहलाता है । नसैनी (सीढी) आदि पर चढनेसे यदि गिर पडे तो हाथ पैर टूट जाएँ, पृथ्वीकाय-आदि जीवोंकी विराधना होजाय

હવે માલાપહૃત ભિક્ષાના દોષો બતાવે છે—निस्सेणिं ઇત્યાદિ, दुरुहमाणी ઇત્યાદિ, તથા एयारिसे ઇત્યાદિ

જો દાતા સાધુને માટે સીઢી (નીસરણી), પાટ, બાજોઠ, માચો, ખૂંટી અથવા મૂશળ (સાંબેલુ) આદિને ઉંચા કરીને ઉંચા મકાનના બીજા મજલા પર ચઢીને આહાર લાવે તો તે આહાર માલાપહૃત કહેવાય છે સીડી આદિ પર ચડવાથી જો પડી જાય તો હાથ-પગ તૂટી જાય, પૃથ્વીકાય આદિ જીવોની

टीका—'कद' इत्यादि । कन्द, मूलम्, इमे प्राग्व्याख्याते, वा=अथवा प्रलम्ब=तालादिफलम् आमम्=अपक्व-सचित्तमित्यर्थः । च=पुनः छिन्न=कर्तितमपि सन्निर=पत्रशाक-वास्तूकादिक, तुम्बकम्=अलाबूविशेष, शृङ्गबेरम्=आर्द्रक चकारादन्यदपि प्रत्येकसाधारणवनस्पतिमात्रम् आमकम्=अपक्व सचित्त परिवर्जयेत्=त्यजेत्-न गृह्णीयादित्यर्थः ॥७०॥

मूलम्-तहेव सत्तुचुन्नाइ कोल-चुन्नाइं आवणे ।
सक्कुलि फाणिय पूअ, अन्न वावि तहाविह ॥७१॥
विक्कायमाण पसढं, रएण परिफासिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥७२॥

छाया—तथैव सक्तु-चूर्णानि, कोल-चूर्णानि आपणे ।
शष्कुली फाणित, पूपमन्यद्वापि तथाविधम् ॥७१॥
विक्रीयमाण प्रसह्य, रजसा परिस्पृष्टम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७२॥

सान्वयार्थ'-तहेव=जिसप्रकार सचित्त कन्दादि अग्राह्य है उसीप्रकार सत्तुचुन्नाइ=भुने हुए जौ या चनेका आटा-सत्तू कोलचुन्नाइ=बेरोका चूरा सक्कुलिं=तिलपापडी फाणिय=गीला गुड पूय=मालपूवा (तथा) तहाविह=उसीप्रकारके अन्न वावि=औरभी पदार्थ जो आवणे=दुकानपर विक्कायमाण=बेचनेके लिए रखे हुए है वे (यदि) पसढ=वस्त्रसे आच्छादित होनेपर भी रएण=सचित्त सूक्ष्म रजसे परिफासिय=व्याप्त हो तो दितिय=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि

'कद' इत्यादि । सचित्त कन्द, मूल, ताड फल आदि तथा कटा हुआ भी सचित्त पत्तोका शाक बथुआ आदि, और सचित्त तुम्बा तथा अदरख भी साधु ग्रहण न करे । 'च' शब्दसे यह भी समझना चाहिये कि इनके सिवाय कोई भी सचित्त-प्रत्येक या साधारण वनस्पति, साधुको नहीं कल्पती है ॥ ७० ॥

कद० ઈત્યાદિ સચિત્ત કંદ, મૂળ, તાડફળ આદિ તથા કાપેલા હોવા છતા સચિત્ત પાદડાનું શાક-બથુઆની ભાજી આદિ અને સચિત્ત તુંબી આદિ તથા આદુ પણ સાધુ ગ્રહણ ન કરે च શબ્દથી એમ પણ સમજવુ કે તે ઉપરાત કોઈ પણ સચિત્ત-પ્રત્યેક યા સાધારણ વનસ્પતિ સાધુને કલ્પતી નથી (૭૦)

पद्दता तु यस्यां भूमिकायां दायिका तिष्ठेत्तस्यामेव, तथाऽन्यं जन्मान्तराऽऽवरोधिसेतु बन्निश्रेण्यादिकं तिर्यक् संस्थाप्य तद्वारा अपरभूमिभागे गमनागमनेनाऽऽनीता। दुष्पापशिक्यादिस्थस्यातिगम्भीरकूमूलादिस्थस्य वाऽशनादेर्ग्रहणे चरणोन्नमनादिनाऽनेकविधकष्टसम्भवादेवंविधापि भिक्षा वदन्तमेवेति ॥६७॥६८॥६९॥

मूलम्–कंदं मूलं पलंबं वा, आमं छिन्नं च सन्निरं।
तुंबागं सिंगबेरं च, आमगं परिवज्जए ॥ ७० ॥

छाया—कन्दं मूलं प्रलम्बं वा, आमं छिन्नं च सन्निरम्।
तुम्बकं शृङ्गबेरञ्च, आमकं परिवर्जयेत् ॥७०॥

सान्वयार्थः–आम=सचित्त कंदं=सूरण आदि कन्द मूलं=विदारिकादि मूल पलंबं=ताल आदिके फल वा=तथा छिन्नं च=काटी हुई भी सन्निरं=बथुए आदिकी भाजीको (तथा) आमगं=सचित्त तुंबागं=तूंबे च=और सिंगबेरं=अदरख–आदे–को साधु परिवज्जए=वरजे ॥७०॥

पहृत कहलाती है। जिस मंजिलमें देनेवाली मौजूद हो उसीकी बराबरी पर, दूसरी ओर जानेके लिये पुलकी तरह नसैनी (निसरणी) या लकड़ी आदिको तिरछा रख कर चढे तो वहाँसे लाई हुई भिक्षा, तिर्यग् मालापहृत कहलाती है। बडी कठिनाईसे पहुँचने योग्य छींके या आलेमें तथा गहरी कोठरीमे रक्खी हुई भिक्षा ग्रहण करनेसे पैर उठाने आदि अनेक कष्ट होते हैं इसलिये, ऐसी भिक्षा भी इसी मालापहृत भिक्षामें अन्तर्गत समझनी चाहिये। यह सब प्रकारकी भिक्षा साधुको अकल्प्य है ॥ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

જે મજલામા ભિક્ષા આપનારી હાજર હોય, તેની બરાબર બીજી બાજુએ જવાને માટે પૂલની પેઠે નીસરણી યા લાકડુ પાટિયુ તીછું રાખીને ચડે તો ત્યાથી લાવેલી ભિક્ષા તિર્યગ્માલાપહૃત કહેવાય છે બહુ મુશ્કેલીથી પહોચી શકાય એવા સીકા, યા છાજલીમા તથા ઉડી કોટડીમા નાખેલા અશનાદિ ગ્રહણ કરવાથી પગ ઉપાડવા આદિના અનેક કષ્ટો પડે છે, તેથી એવી ભિક્ષા પણ આ (માલાપહૃત) ભિક્ષામાજ સમાયલી સમજી લેવી એ સર્વ પ્રકારની ભિક્ષા સાધુને માટે અકલ્પ્ય છે (૬૭–૬૮–૬૯)

टीका—'कद' इत्यादि। कन्द, मूलम्, इमे प्राग्व्याख्याते, वा=अथवा प्रलम्ब=तालादिफलम् आमम्=अपक्व-सचित्तमित्यर्थः। च=पुनः छिन्न=कर्त्तितमपि सन्निर=पत्रशाक-वास्तूकादिक, तुम्बकम्=अलाबुविशेष, शृङ्गबेरम्=आर्द्रक चकारादन्यदपि प्रत्येकसाधारणवनस्पतिमात्रम् आमकम्=अपक्व सचित्त परिवर्जयेत्=त्यजेत्-न गृह्णीयादित्यर्थः ॥७०॥

मूलम्-तहेव सत्तुचुन्नाइं कोल-चुन्नाइं आवणे।
सक्कुलिं फाणिय पूअ, अन्न वावि तहाविह ॥७१॥
विक्कायमाण पसढ, रएण परिफासियं।
दिंतिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिस ॥७२॥

छाया—तथैव सक्तु-चूर्णानि, कोल-चूर्णानि आपणे।
शष्कुली फाणित, पूपमन्यद्वापि तथाविधम् ॥७१॥
विक्रीयमाण प्रसह्य, रजसा परिस्पृष्टम्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७२॥

सान्वयार्थः-तहेव=जिसप्रकार सचित्त कन्दादि अग्राह्य हैं उसीप्रकार सत्तुचुन्नाइं=भुने हुए जौ या चनेका आटा-सत्तू कोलचुन्नाइं=बेरोंका चूरा सक्कुलिं=तिलपापडी फाणिय=गीला गुड पूय=मालपूवा (तथा) तहाविहं=उसीप्रकारके अन्न वावि=औरभी पदार्थ जो आवणे=दुकानपर विक्कायमाण=बेचनेके लिए रखे हुए हैं वे (यदि) पसढं=वस्त्रसे आच्छादित होनेपर भी रएण=सचित्त सूक्ष्म रजसे परिफासियं=व्याप्त हो तो दिंतियं=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि

'कद' इत्यादि। सचित्त कन्द, मूल, ताड-फल आदि तथा कटा हुआ भी सचित्त पत्तोंका शाक बथुआ आदि, और सचित्त तुम्बा तथा अदरख भी साधु ग्रहण न करे। 'च' शब्दसे यह भी समझना चाहिये कि इनके सिवाय कोई भी सचित्त-प्रत्येक या साधारण वनस्पति, साधुको नहीं कल्पती है ॥ ७० ॥

कद० ઈત્યાદિ સચિત્ત કંદ, મૂળ, તાડફળ આદિ તથા કાપેલા હોવા છતા સચિત્ત પાંદડાનું શાક-બથુઆની ભાજી આદિ અને સચિત્ત દૂધી આદિ તથા આદુ પણ સાધુ ગ્રહણ ન કરે च શબ્દથી એમ પણ સમજવું કે તે ઉપરાંત કોઈ પણ સચિત્ત-પ્રત્યેક યા સાધારણ વનસ્પતિ સાધુને કલ્પતી નથી (૭૦)

तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥७२॥

टीका—'तहेव' इत्यादि, 'विक्कायमाणं' इत्यादि च। तथैव=यथा पूर्वोक्त सचित्तकन्दादिकमग्राह्य तेनैव प्रकारेण सक्तु-चूर्णानि=सक्तव एव चूर्णानि तानि सक्तूनित्यर्थः, भृष्टयवादिचूर्णान्येव सक्तव उच्यन्ते, कोल-चूर्णानि=बदरीफलचूर्णानि, शष्कुलीं=तिलपर्पटिका, फाणितं=द्रुतगुड, पूपम्=अपूपम्, तथाविधं=तादृशम् अन्यदपि वा दध्यादिकम्, आपणे=क्रय विक्रयस्थाने, विक्रीयमाण=विक्रयार्थं स्थाप्यमान, रजसा=सचित्तरेणुना, प्रसह्य=हठात् वस्त्रादिनाऽऽच्छादनेऽपि यथाकथञ्चित्प्रकारेणेति भाव, परिस्पृष्टं=व्याप्त-वायुसमुत्थितरजःसंस्पृष्टम् ददतीं प्रत्याचक्षीत-'तादृश मे न कल्पते' इति ॥७१॥७२॥

मूलम्—बहुअट्ठिय पुग्गल, अणिमिसं वा बहुकंटयं।
अत्थियं तिंदुयं बिल्लं, उच्छुखंडं व सिंबलिं ॥७३॥
अप्पे सिया भोयणजाए, बहु उज्झणधम्मिए।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥७४॥

'तहेव' इत्यादि, तथा 'विक्कायमाणं' इत्यादि।

जैसे, सचित्त कन्द, मूल आदि त्याज्य हैं वैसेही सत्तू, बेरोंका चूर्ण, तिलपापडी, पिघला हुआ गुड, पूआ तथा ऐसी दही आदि अन्यान्य वस्तुएँ, बेचनेके लिये दुकानमें रक्खी हों, और सचित्त रजसे व्याप्त हों, अर्थात् वस्त्रसे ढँक रखने पर भी पवनके द्वारा पहुँची हुई सूक्ष्म सचित्त रजसे युक्त हों तो वह आहार कल्पनीय नही है। इसलिये साधु, देनेवालीसे कहे कि 'ऐसा आहार, मुझे नही कल्पता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

तहेव ઇત્યાદિ તથા વિક્કાયમાણ ઇત્યાદિ

જેમ સચિત્ત કંદમૂળ આદિ ત્યાજ્ય છે, તેમજ સત્તૂ, બોરનું ચૂર્ણ તલપાપડી, નરમ ગોળ, તથા એવા પ્રકારની બીજી દહીં આદિ નરમ વસ્તુઓ વેચવાને માટે દુકાનમાં રાખી હોય અને સચિત્ત રજથી વ્યાપ્ત હોય અર્થાત્ વસ્ત્રથી ઢાંકી રાખ્યા છતાં પવનદ્વારા પહોંચેલી સૂક્ષ્મ સચિત્ત રજથી યુક્ત હોય તો તે આહાર કલ્પનીય નથી તેથી સાધુ તે આપનારીને કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી (૭૧ ૭૨)

छाया—बह्वस्थिकं पुद्गलम्, अनिमिषं वा बहुकण्टकम्।
अक्षीवं तिन्दुकं बिल्वम्, इक्षुखण्डं वा शाल्मलिम् ॥७३॥
अल्पं स्याद्भोजनजातं, बहूज्झनधर्मिकम्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥७४॥

सान्वयार्थः–बहुअट्ठियं=बहुबीजा अर्थात् सीताफल अणिमिसं=अनन्नास बहुकटयं=पनस-कटहल अच्छियं=शोभाञ्जनकी फली, जो 'मुनगा' नामसे प्रसिद्ध है, तिंदुयं=तेन्दु बिल्लं=बेल सिंबलिं=सेमल इन नामके पुग्गलं=फलोंको व=और उच्छुखंडं=गन्ने-शेरडी-के टुकडोंको, तथा जिस पदार्थमें भोयणजाए=खानेयोग्य अंश अप्पे सिया=थोडा हो और उज्झणधम्मिए=डालदेनेयोग्य अंश बहु=बहुत हो ऐसे फल आदि दिंतियं=देनेवालीसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहारादि मे=मुझे (लेना) न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥७३॥७४॥

टीका–'बहुअट्ठियं०' इत्यादि, 'अप्पे सिया' इत्यादि च। बह्वस्थिकम्=बहूनि, अस्थीनि=बीजानि-अस्थि=बीजमिति रायमुकुटः, वैद्यकश्चेति शब्दकल्पद्रुमः, यस्मिन्, यद्वा बहूनि अस्थिकानि 'अस्थिकं=बीजे मेदोजधातौ चेति राजनिघण्टुः' इति वैद्यकशब्दसिन्धुः, यस्मिंस्तत्, बहुबीजक-योगरूढमेतत्, सीताफलादिकमित्यर्थः —

'बहुअट्ठियं' इत्यादि तथा 'अप्पे सिया' इत्यादि। 'अस्थि' शब्दका अर्थ, बीज होता है, रायमुकुट तथा वैद्यकोषोंमें 'अस्थि' शब्दका बीज ही अर्थ है, ऐसा 'शब्दकल्पद्रुम' अभिधानमें भी लिखा है। अत एव बह्वस्थिक शब्दका अर्थ है बहुत बीजोंवाला। यह शब्द योगरूढ है, अत एव सीताफल अर्थ होता है। निघण्टुमें भी सीताफल (सरीफा)के इतने नाम गिनाये हैं–

बहुअट्ठियं० ઇત્યાદિ, તથા અપ્પે સિયા૦ ઇત્યાદિ 'અસ્થિ' શબ્દનો અર્થ બીજ (બીયો) થાય છે રાયમુકુટ તથા વૈદ્યકોષોમાં અસ્થિ શબ્દનો બીજ એવો જ અર્થ છે, એમ શબ્દકલ્પદ્રુમ' માં પણ લખ્યું છે એટલે બહ્વસ્થિક શબ્દનો અર્થ થાય છે બહુ બીજો વાળુ, એ શબ્દ યોગરૂઢ છે, એટલે સીતાફળ અર્થ થાય છે નિઘંટુમાં પણ સીતાફળના આટલા નામ ગણાવ્યા છે–

"सीताफलं गण्डमात्रं, वैदेहीवल्लभं तथा ।
कृष्णबीजं चाग्रिमाख्यमातृप्यं बहुबीजकम् ॥१॥" इति निघण्टुकोषः।

यद्वा 'बहुअट्ठियं' इत्यस्य 'बह्वष्ठिक' मिति च्छाया, 'फलबीजे पुमानष्ठि' इति कोषात्, अर्थस्तूक्त एव। पुद्गलम्=रसाद्यात्मकपूरणपरिपाकानन्तरावश्यपतनात्मकगलनधर्मकत्वात्पुद्गलः फलसामान्य तम्, अग्रेऽप्यस्य सम्बन्धः, सीताफलाऽऽग्निनामकं फलमिति भावः। अनिमिषम्=अनन्नासम् अन्तर्बहिःसकण्टक वङ्गादिदेशप्रसिद्धम्। बहुकण्टकं=कण्टकिफल-पनस 'कटहर' इत्यनेन प्रसिद्धम्, अस्य त्वग्भागे, सर्वावयवावच्छेदेन कण्टकव्याप्त्या बहुकण्टकत्वं सिध्यति, अनिमिषपदार्थस्य त्वन्तर्बहिः सकण्टकत्वेऽपि विरलत्वादस्माद्भेदः। अत्थियं=शोभाञ्जनम् फलप्रकरणात्तत्फलिकाम्, त्वचः स्थौल्य कार्कश्याधिक्यदोषेभ्यो बीजानां बाहुल्याच्चास्याधिकत्याज्यभागां 'मुनिगा' इति देशविशेषप्रसिद्धाम्। तिन्दुकम्=अण्डाकृतिक फलविशेषम् अल्पाकारस्याप्यस्य फलस्य बीजानां स्थौल्यबाहुल्यादिह त्याज्यांशबहुलं 'तेंदु' इति

"सीताफल, गण्डमात्र, वैदेहीवल्लभ, कृष्णबीज, अग्रिम, आतृप्य और बहुबीजक ॥१॥"

इनमें 'बहुबीजक' शब्द भी सीताफलके लिये आया है, और यह ऊपर बताया ही जा चुका है कि 'अस्थि' शब्दका अर्थ बीज होता है। इसलिये बहुबीजक और बहस्थिक एक ही है, अतः बहस्थिकका अर्थ सीताफल ही है। अथवा 'अट्ठिय' की छाया, 'अष्ठिक' होती है, कोषमें लिखा है कि फलके बीजको 'अष्ठि' कहते हैं। इससे भी पूर्वोक्त अर्थ ही सिद्ध होता है, इसलिये, सीताफलको तथा बंग आदि अन्य अन्य देशोंमें प्रसिद्ध अनन्नाश (अनास) फलविशेष, कटहर, मुनिगा (सोहिजन) की फली, तेन्दु, बेल, गन्नेका खण्ड

"સીતાફળ, ગડમાત્ર, વૈદેહીવલ્લભ, કૃષ્ણબીજ અગ્રિમ, આતૃપ્ય અને બહુબીજક"

એમાં 'બહુબીજક' શબ્દ પણ સીતાફળને માટે આવ્યો છે, અને ઉપર બતાવવામાં આવ્યું જ છે કે 'અસ્થિ' શબ્દનો અર્થ 'બીજ' થાય છે એટલે બહુબીજક અને બહ્વસ્થિક એક જ છે, અર્થાત્ બહ્વસ્થિકનો અર્થ સીતાફળ જ છે અથવા અટ્ઠિય ની છાયા અષ્ઠિક થાય છે, કોષમાં લખ્યું છે કે ફળના બીજને 'અષ્ઠિ' કહે છે તેથી પણ પૂર્વોક્ત અર્થ જ સિદ્ધ થાય છે એ રીતે સીતાફળ, તથા બંગ આદિ અન્ય-અન્ય દેશોમાં પ્રસિદ્ધ અનનાસ, કટહર, મુનિગાની (એક પ્રકારની) ફળી, તેન્દુ, બિલ્વફળ, (બીલા) શેરડીની કાતળી સેમલ આદિ ફળ, જેમાં ખાદ્ય

प्रसिद्धम्। विल्वम्, इक्षुखण्ड, शाल्मलिं च, एतानि प्रसिद्धार्थकानि। तथा यत्र भोजनजात=भोज्याशः अल्प=स्वल्पम्, उज्झनधर्मिक=त्याज्याशः वहु=अधिक स्यात्=भवेत् तत्फलादिकमन्यदपि ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृश मे न कल्पते इति। सामान्यलक्षणेन त्याज्यफलादिज्ञान शिष्याणा दुष्कर स्यादिति प्रथम विशेषरूपेण कतिचित्फलानि प्रदर्श्य त्याज्यसामान्यलक्षण निरूपित तेन न पूर्वगाथायास्तात्पर्यानुपपत्तिरिति दिक् ॥७३॥७४॥

मूलम्-तहेवुच्चावय पाण, अदुवा वार-धोयण।
ससेइम चाउलोदग, अहुणाधोय विवज्जए ॥७५॥

एव सेमल आदि फल, जिनमें खाद्य अंश कम हों तथा त्याज्य अंश अधिक हो उन सब फल आदिको देनेवालीसे कहे कि ऐसा आहार, मुझे नहीं कल्पता है।

अनन्नासमें भीतर भी काँटे होते हैं और बाहर भी, और कटहरके छिलकेमें सर्वत्र काँटे ही काँटे होते हैं। दोनों बहुकण्टक हैं, किन्तु अनन्नासमें काँटे कम और तीखे होते हैं, अतः वह कटहरसे भिन्न है। अन्य भेद लोकप्रसिद्ध ही हैं।

सामान्य लक्षण करनेसे त्यागने योग्य फलोंका ज्ञान शिष्योंको कठिनतासे होता, अत. पहले कुछ विशेष फलोंके नाम गिना कर, उस प्रकारके सभी फलोंका त्याग बताया है। इसलिये, पहली गाथासे इसका सम्बन्ध ठीक बैठता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

અશ ઓછો હોય તથા ત્યાજ્ય અશ વધારે હોય એ બધા ફળ આદિ આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર મને કલ્પતો નથી

અનન્નાસમા અદર કાટા હોય છે અને બહાર પણ હોય છે, અને કટહરના છોતરામા સર્વત્ર કાટા જ હોય છે બેઉ બહુકટક છે, પરન્તુ અનન્નાસમા કાટા ઓછા અને તીખા હોય છે, તેથી તે કટહરથી જૂદુ ફળ છે અન્ય ભેદ લોકપ્રસિદ્ધ છે

સામાન્ય લક્ષણ બતાવવાથી ત્યાગવા યોગ્ય ફળોનુ જ્ઞાન શિષ્યોને મુશ્કેલીથી થાય છે, એટલે પહેલા કેટલાક વિશેષ ફળોના નામ ગણાવીને એ પ્રકારના બધા ફળોનો ત્યાગ બતાવ્યો છે તેથી પહેલી ગાથાથી આનો સબધ ઠીક બધ બેસ છે (૭૩-૭૪)

"सीताफलं गण्डमात्रं, वैदेहीवल्लभं तथा ।
कृष्णबीजं चाग्रिमाख्यमातृप्यं बहुबीजकम् ॥१॥" इति निघण्टुकोष
यद्वा 'बहुअट्ठियं' इत्यस्य 'बहट्ठिक' मितिच्छाया, 'फलबीजे पुमानष्ठिः' इति कोषात्, अर्थस्तूक्त एव। पुद्गलम्=रसपुद्गलात्मकपूरणपरिपाकानन्तरादःपतनाम्ना धर्मवत्त्वात्पुद्गलः फलसामान्यं तम्, अग्रेऽप्यस्य सम्बन्धः, सीताफलादिनाम फलमिति भावः। अनिमिषम्=अनन्नासम् अन्तर्बहिःसकण्टक बङ्गादिदेशप्रसिद्धम् बहुकण्टकं=कण्टकिफलं-पनस 'कटहर' इत्यनेन प्रसिद्धम्, अस्य त्वगभावे, सर्वावयवानच्छेदेन कण्टकव्याप्त्या बहुकण्टकत्वं सिध्यति, अनिमिषपदार्थस्य त्वन्तर्बहिः सकण्टकत्वेऽपि विरलत्वादस्माद्भेदः। अस्तीरं=शोभाञ्जनम् फलप्रकरणात्तत्फलिकाम् त्वचः स्थौल्य कार्कश्याधिक्यदोषेभ्यो बीजानां बाहुल्याच्चात्यधिकत्याज्यभाग 'मुनिगा' इति देशविशेषप्रसिद्धाम्। तिन्दुकम्=अण्डाकृतिकं फलविशेषम् अल्पाकारस्याप्यस्य फलस्य बीजानां स्थौल्यबाहुल्यादिह त्याज्यांशबहुल 'तेंदु' इति

"सीताफल, गण्डमात्र, वैदेहीवल्लभ, कृष्णबीज, अग्रिम, आतृप्य और बहुबीजक ॥१॥"

इनमें 'बहुबीजक' शब्द भी सीताफलके लिये आया है, और यह ऊपर बताया ही जा चुका है कि 'अस्थि' शब्दका अर्थ बीज होता है। इसलिये बहुबीजक और बहस्थिक एक ही हैं, अतः बहस्थिकका अर्थ सीताफल ही है। अथवा 'अट्ठिय' की छाया, 'अष्ठिक' होती है, कोषमें लिखा है कि फलके बीजको 'अष्ठि' कहते हैं। इससे भी पूर्वोक्त अर्थ ही सिद्ध होता है, इसलिये, सीताफलको तथा बंग आदि अन्य अन्य देशोंमे प्रसिद्ध अनन्नाश (अनास) फल विशेष, कटहर, मुनिगा (सोहिंजन) की फली, तेन्दू, बेल, गन्नेका खण्ड

"સીતાફળ, ગ ડમાત્ર, વૈદેહીવલ્લભ, કૃષ્ણબીજ અગ્રિમ, આતપ્ય અને બહુબીજક'
એમા 'બહુબીજક' શબ્દ પણ સીતાફળને માટે આવ્યો છે, અને ઉપર બતાવવામા આવ્યુ જ છે કે 'અસ્થિ' શબ્દનો અર્થ 'બીજ' થાય છે એટલે બહુબીજક અને બહસ્થિક એક જ છે, અર્થાત્ બહુસ્થિકનો અર્થ સીતાફળ જ છે અથવા અટ્ઠિય ની છાયા અષ્ઠિક થાય છે, કોષમા લખ્યુ છે કે ફળના બીજને 'અષ્ઠિ' કહે છે તેથી પણ પૂર્વોક્ત અર્થ જ સિદ્ધ થાય છે એ રીતે સીતાફળ, તથા બ ગ આદિ અન્ય-અન્ય દેશોમા પ્રસિદ્ધ અનનાસ, કટહર, મુનિગાની (એક પ્રકારની) ફળી, તેન્દુ, બિલ્વફળ, (બીલા) શેરડીની કાતળી ગેમલ આદિ ફળ, જેમા ખદ્ય

मुहूर्त्तान्तर्धौत चेदित्यर्थस्तदा विवर्जयेत्-न गृह्णीयात् । उपलक्षणमेतत्, उक्तञ्चाऽऽचाराङ्गे श्रीभगवता—

"से[1] भिक्खू वा२ जाव अणुपविट्ठे समाणे से ज पुण पाणगजाय जाणेज्जा, त जहा-उस्सेइम वा ससेइम वा चाउलोदग वा अन्नयर वा तहप्पगार पाणगजात अहुणाधोय अणविल अवोक्कत अपरिणत अविद्धत्थ अफासुय जाव णो पडिगाहेज्जा । अह पुण एव जाणेज्जा चिराधोय अविल वोक्कत परिणत विद्धत्थ फासुय जाव पडिगाहेज्जा । से भिक्खू वा२ जाव अणुप्पविट्ठे समाणे से ज पुण पाणगजात

छाया-१-"अथ भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा यावत्-अनुप्रविष्टः सन् स यत्पुनः पानकजात जानीयात्, तद्यथा-उत्स्वेदिम वा सस्वेदिम वा तण्डुलोदक वा अन्यतरद् वा तथाप्रकार पानकजातम् अधुनाधौतम् अनम्लम् अव्युत्क्रान्तम् अपरिणतम् अविध्वस्तम् अप्रासुक यावत् नो प्रतिगृह्णीयात् । अथ पुनरेव जानीयात्-चिरधौतम् अम्ल व्युत्क्रान्त परिणत विध्वस्त प्रासुक यावत् प्रतिगृह्णीयात् । अथ भिक्षुर्वा २ यावत्अनुप्रविष्टः सन् स यत्पुनः पानकजात जानीयात्, तद्यथा-तिलोदक वा

इनको ग्रहण न करे । ये तो उपलक्षण मात्र हैं, आचाराग सूत्रमे भगवानने कहा है—

"साधु अथवा साध्वी पानीके लिए गृहस्थके घरमे प्रवेश करके-आटेके बरतनका धोवन, शाक आदिका बाफा हुआ पानी, चावलोंका धोवन तथा इस प्रकारका और भी कोई पानी तुरतका धोया हुआ हो, स्वादसे चलित न हुआ हो अर्थात् जिसका धोवन हो उस वस्तुका स्वाद न आता हो, जिसका वर्ण रस गन्ध स्पर्श न बदला हो-सर्वथा अचित न हुआ हो, शस्त्र परिणत न हो तो ग्रहण न करे । यदि तुरतका धोया हुआ न हो-बहुत देरका धोया हुआ हो, स्वादसे चलित हो गया हो

અર્થાત્ અતર્મુહૂર્તની અદર અદરની ધોએલા હોય તો તેને ગ્રહણ કરવા નહિ એ તો ઉપલક્ષણમાત્ર છે આચારાગ સૂત્રમા ભગવાને કહ્યુ છે કે—

"સાધુ અથવા સાધ્વી પાણીને માટે ગૃહસ્થના ઘરમા પ્રવેશ કરીને, આટાના વાસણનુ ધોવણ શાક આદિ જેમા બાફેલા હોય તે પાણી, ચોખાનું ધોવણ, તથા એ પ્રકારનું બીજુ પણ કોઈ પાણી તુરતનુ ધોએલુ હોય, સ્વાદથી ચલિત થયુ ન હોય, અર્થાત્ જેનુ ધોવણ હોય તે વસ્તુનો સ્વાદ ન આવતો હોય, જેના વર્ણ રસ ગધ સ્પર્શ ન બદલાયા હોય સર્વથા અચિત્ત ન થયુ હોય, શસ્ત્રપરિણત ન હોય, તો તે ગ્રહણ ન કરે જો તુરતનુ ધોએલુ ન હોય બહુ વખતનુ ધોએલુ હોય, સ્વાદથી ચલિત થયુ હોય, અને શસ્ત્રપરિણત હોય તો

छाया—तथैवोच्चावचं पानं, अथवा वारकधावनम् ।
संस्वेदिमं तण्डुलोदकम्, अधुनाधौतं विवर्जयेत् ॥७५॥

अब पान ग्रहण करने की विधि बताते हैं—

सान्वयार्थः-तहेव=जैसे अशन उसीप्रकार पाणं=पान उच्चावयं=उच्च सुन्दर वर्णादिसे युक्त, जैसे दाख आदिका धोवन, अवच-सुन्दर वर्णादिसे रहित जैसे मेथी केर आदिका धोवन वारधोयणं=गुडके घडेका धोवन संसेइमं=भाजीका तथा आटेकी थालीका धोवन अदुवा=अथवा चाउलोदगं=चाँवलोंका धोवन (ये सब यदि) अहुणाधोयं=तुरन्तका धोया हुआ हो तो उसे (साधु) विवज्जए= वर्जे-न लेवे ॥७५॥

टीका—अशनग्रहणविधेरनन्तरं पानग्रहणविधिमाह-'तहेवुच्चावयं' इत्यादि । तथैव=यथाऽशनं तेनैव प्रकारेण, पानं=पेयं, कर्मणि ल्युट्, उच्चावचमिति-उदक् च अवाक् च उच्चावचम्-अनेकप्रकारम्, उत्कृष्टानुत्कृष्टमित्यर्थः, तत्र उत्कृष्टं=रुचिर वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तं द्राक्षादिधावनजलं प्रपाणकादिकं च, अनुत्कृष्टं=रुचिर वर्णादिहीनं मेथिका करीर-शमीफलिका-तिलादिधावनजलम् । वारकधावनं=गुड घट-घृतघटादि धावनजलं, संस्वेदिमं=क्वथितशाकादिजलं पिष्टस्थालीप्रक्षालनजलञ्च, तण्डुलोदकं=तण्डुलधावनजलम् । एतत्सर्वम् अधुनाधौतम्=तत्कालं धौतम् अन्त

अशन ग्रहण करनेकी विधि बताकर अब पान ग्रहण करनेकी विधि दिखाते हैं-'तहेवुच्चावय' इत्यादि ।

उच्च (उत्कृष्ट) मनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाला दाख आदिका धोवन तथा शर्बत आदि पान, अवच (अनुत्कृष्ट) अमनोज्ञ वर्ण गन्ध रस स्पर्शवाला मेथी केर साँगरी तथा तिल छाछ आदिका धोवन आदि पान, गुड या घीके घडेका धोवन, औटाये (उबाले) हुए हरा शाक आदि का पानी, आटेकी थाली आदिका धोवन, चावलका धोवन । ये सब यदि तत्कालके धोये हुए हों अर्थात् अन्तर्मुहूर्त्तके अभ्यन्तरके धोये हों तो

અશન ગ્રહણ કરવાની વિધિ બતાવીને હવે પાન ગ્રહણ કરવાની વિધિ બતાવે છે—तहेवुच्चावय ઇત્યાદિ

ઉચ્ચ (ઉત્કૃષ્ટ) મનોહર વર્ણ ગંધ રસ સ્પર્શવાળું દ્રાક્ષ આદિનું ધોવણ તથા શરબત આદિ પાન, અવચ (અનુત્કૃષ્ટ) અમનોજ્ઞ વર્ણ ગંધ રસ સ્પર્શવાળું મેથી, કેર, ખીજડાની ફળી (સાંગરિઓ) તથા તલ છાશ આદિનું ધોવણ આદિ પાન, ગોળ યા ઘીના ઘડાનું ધોવણ, ઉકાળેલા લીલા શાક આદિનું પાણી આટાની થાળી આદિનું ધોવણ, ચોખાનું ધોવણ, એ બધા જો તત્કાલ ધોએલા હોય

¹"तिलतड्डुल-उसणोदय,-चणोदय-तुसोदय-अविद्धत्थ ।
अण्ण तहाविह वा, अपरिणद णेव गेण्हिज्जा ॥४७३॥" इति ।
इति गाथार्थः ॥७५॥

तर्हि कीदृश पान गृह्णीयात ? इत्यत आह—'ज जाणेज्ज' इत्यादि, 'अजीव' इत्यादि च ।

मूलम्—ज जाणेज्ज चिराधोय, मईए दसणेण वा ।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, ज च निस्सकिय भवे ॥७६॥
अजीव परिणयं नच्चा, पडिगाहिज्ज संजए ।
अह सकिय भविज्जा, आसाइत्ताण रोयए ॥७७॥

छाया—यज्जानीयाच्चिराद्धौत, मत्या दर्शनेन वा ।
प्रतिपृच्छ्य श्रुत्वा वा, यच्च निश्शङ्कित भवेत् ॥७६॥
अजीव परिणत ज्ञात्वा, प्रतिगृह्णीयात्सयतः ।
अथ शङ्कित भवेत्, आस्वाद्य रोचयेत् ॥७७॥

सान्वयार्थः—मईए=बुद्धिसे वा=अथवा दसणेण=देखनेसे पडिपुच्छिऊण=

छाया—१ तिलतण्डुलोष्णोदक चणकोदक तुपोदकम् अविध्वस्तम् ।
अन्यत् तथाविध वा, अपरिणत नैव गृह्णीयात् ॥४७३॥

"तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, चनेका पानी, तुपका पानी, तथा इस प्रकारका और भी जल यदि अविध्वस्त (सचित्त) हो और शस्त्रपरिणत न हो तो ग्रहण नही करना चाहिए अर्थात् शस्त्रपरिणत हो तो लेना कल्पता है ॥१॥" (मूलाचार गा (४७३) ॥७५॥

कैसा धोवन ग्रहण करना चाहिए ? सो बताते हैं—'ज जाणेज्ज' इत्यादि, 'अजीव' इत्यादि ।

¹ તિલોદક, તન્દુલોદક, ઉષ્ણોદક, ચણાનુ પાણી, તુપનુ પાણી તથા એ પ્રકારનુ બીજુ પણ જળ જો અવિધ્વસ્ત (સચિત્ત) હોય અને શસ્ત્રપરિણત ન હોય તો ગ્રહણ કરવુ ન જોઇએ અર્થાત્ શસ્ત્રપરિણત હોય તો લેવુ કલ્પે છે (મૂલાચાર ગા ૪૭૩) (૭૫)

કેવુ ધોવણ ગ્રહણ કરવુ જોઇએ ? તે બતાવે છે —जं जाणेज्ज० ઇત્યાદિ, તથા अजीव ઇત્યાદિ

जाणेज्जा तंजहा–तिलोदगं वा तुसोदगं वा जवोदगं वा आयामं वा सोवीरं वा सुद्धवियडं वा अण्णयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं पुव्वामेव आलोएज्जा-आउसोत्ति वा० ७। से भिक्खू वा२ जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा तंजहा–अंबपाणगं वा अंबाडगपाणगं वा कविट्ठपाणगं वा माउलिंगपाणगं वा मुद्दियापाणगं वा दालिमपाणगं वा खज्जूरपाणगं वा नालिकेरपाणगं वा करीरपाणगं वा कोलपाणगं वा आमलगपाणगं वा चिंचापाणगं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं"इत्यादि।

उक्तं दिगम्बराचार्येण वट्टकेरस्वामिनाऽपि मूलाचारे—

तुषोदकं वा यवोदकं वा आयामं वा सौवीरं वा शुद्धविकृतं वा अन्यतरद् वा तथाप्रकारं पानकजातं पूर्वमेव आलोचयेत्–आयुष्मन्! इति वा ७। अथ भिक्षुर्वा२ यावत् अनुप्रविष्टः सन् स यत्पुनर्जानीयात्, तद्यथा–आम्रपानकं वा आम्रातकपानकं वा कपित्थपानकं वा मातुलुङ्गपानकं वा मृद्वीकापानकं वा दाडिमपानकं वा खर्जूरपानकं वा नालिकेरपानकं वा करीरपानकं वा कोलपानकं वा आमलपानकं वा चिञ्चापानकं वा, अन्यतरद्वा तथाप्रकारं पानकजातम्" इत्यादि।

और शस्त्रपरिणत हो तो ग्रहण करे। तिलोदक, तुषोदक, यवोदक, ओसामण, सोवीर (अगछण), उष्णोदक तथा इस प्रकारका और भी पानी गृहस्थका दिया हुआ कल्पता है। साधु यदि आमका धोवन, अंबाडगका धोवन, कविठ (कैथ)का धोवन, बिजौरेका धोवन, द्राक्षका धोवन, अनारका धोवन, खजूरका धोवन, नारियलका पानी (धोवन), केरका धोवन, बेरका धोवन, आँवलेका धोवन, इमलीका धोवन, अथवा इस प्रकारका और भी धोवन जाने और यदि वह अत्यम्ल न हो, तुरतका धोया हुआ न हो, स्वादचलित हो और शस्त्रपरिणत हो तो कल्पता है।"

दिगम्बराचार्य वट्टकेर–स्वामीने भी मूलाचारमें कहा है—

ग्रहण करे तिलोदक, तुषोदक, यवोदक, ओसामण, सोवीर उष्णोदक तथा अे प्रकारनु बीजु पण पाणी गृहस्थे आपेलु होय ते कल्पे छे जो साधु केरीनु धोवण अंबाडग (आंबोळियानु) धोवण, कोठानु धोवण, बीजोरानु धोवण द्राक्षनु धोवण अनारनु धोवण, खजूरनु धोवण, नारियेळनु पाणी (धोवण) केरानु धोवण, बोरनु धोवण, आमळानु धोवण, आमलीनु धोवण, अथवा अे प्रकारनु बीजु पण धोवण जाणे अने जो ते बहु अम्ल (खाटु) न होय तुरतनु धोअेलु न होय, स्वादचलित होय अने शस्त्रपरिणत होय तो कल्पे छे"

दिगंबराचार्य वट्टकेर–स्वामीअे पण मूलाचारमा कह्यु छे —

१"तिलतंडुल-उसणोदय,-चणोदय-तुसोदय-अविद्धत्थ ।
अण्णं तहाविहं वा, अपरिणदं णेव गेण्हिज्जा ॥४७३॥" इति ।

इति गाथार्थः ॥७५॥

तर्हि कीदृशं पानं गृह्णीयात् ? इत्यत आह-'जं जाणेज्ज' इत्यादि, 'अजीवं' इत्यादि च ।

मूलम्-जं जाणेज्ज चिराधोयं, मईए दंसणेण वा ।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, जं च निस्संकियं भवे ॥७६॥
अजीवं परिणयं नच्चा, पडिगाहिज्ज संजए ।
अह संकियं भविज्जा, आसाइत्ताण रोयए ॥७७॥

छाया—यज्जानीयाच्चिराद्धौतं, मत्या दर्शनेन वा ।
प्रतिपृच्छ्य श्रुत्वा वा, यच्च निश्शङ्कितं भवेत् ॥७६॥
अजीवं परिणतं ज्ञात्वा, प्रतिगृह्णीयात्संयतः ।
अथ शङ्कितं भवेत्, आस्वाद्य रोचयेत् ॥७७॥

सान्वयार्थः-मईए=बुद्धिसे वा=अथवा दंसणेण=देखनेसे पडिपुच्छिऊण=

छाया-१ तिलतण्डुलोष्णोदकं चणकोदकं तुषोदकम् अविध्वस्तम् ।
अन्यत् तथाविधं वा, अपरिणतं नैव गृह्णीयात् ॥४७३॥

"तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, चनेका पानी, तुषका पानी, तथा इस प्रकारका और भी जल यदि अविध्वस्त (सचित्त) हो और शस्त्रपरिणत न हो तो ग्रहण नहीं करना चाहिए अर्थात् शस्त्रपरिणत हो तो लेना कल्पता है ॥१॥" (मूलाचार गा. (४७३) ॥७५ ॥

कैसा धोवन ग्रहण करना चाहिए ? सो बताते हैं-'जं जाणेज्ज ' इत्यादि, 'अजीव ' इत्यादि ।

१ तिलोदक, तन्दुलोदक, उष्णोदक, चणानुं पाणी, तुषनुं पाणी, तथा એ પ્રકારનું બીજું પણ જળ જો અવિધ્વસ્ત (સચિત્ત) હોય અને શસ્ત્રપરિણત ન હોય તો ગ્રહણ કરવું ન જોઈએ અર્થાત્ શસ્ત્રપરિણત હોય તો લેવું કલ્પે (મૂલાચાર ગા. ૪૭૩) (૭૫)

કેવું ધોવણ ગ્રહણ કરવું જોઈએ ? તે બતાવે છે —जं जाणेज्ज० ઇત્યાદિ, તથા अजीव ઇત્યાદિ

पूछकर वा=अथवा सुच्चा=श्रवण करते हुए सुनकर जं=जिस धोवनको चिराधोयं=चिरधौत बहुत देरका धोया हुआ जाणेज्जा=जाने, य=तथा जं=जो निस्संकियं='इससे तृषा शान्त होगी या नहीं?' इस प्रकारकी शङ्कारहित भवे=हो तो उस अजीवं=जीवरहित-अचित्त-और परिणयं=शस्त्रपरिणत नच्चा=जानकर संजए=साधु पडिग्गाहिज्जा=लेवे; अह=अथ-अगर यह संकियं='इससे तृषा बुझेगी या नहीं?' इस प्रकारकी शङ्कासे युक्त भविज्जा=हो तो उसे आसाइत्ताण=चख करके रोयए=निर्णय करे ॥७६॥७७॥

टीका—मत्या=बुद्ध्या दर्शनेन=दृष्ट्या वा धौतजले तदीयवर्णादिपरिज्ञानाय तत्राऽऽगमानुगामिन्या मनीषया दृष्टिनिपातेन चेति भावः, प्रतिपृच्छ्य=सम्यक् पृष्ट्वा श्रुत्वा वा तत्प्रतिवचनं प्रश्नमन्तरेणाऽपि कस्यचिन्मुखाद्वा निशम्य यत् चिरधौतं जानीयात्, यच्च निश्शङ्कितम्=अनुपयोगित्वशङ्कारहितं भवेत् तद् अजीवं=प्रासुकं परिणतं=स्वपरशस्त्रादिनाऽवस्थान्तरं प्राप्तं ज्ञात्वा संयतः=साधुः प्रतिगृह्णीयात्।

ये तु 'घटिकाद्वयानन्तरं धावनजलं सचित्तं भवतीति मुहूर्त्तात्परं तद्धोवनमनुपादेय' मित्याहुः, तन्न समीचीनम्, व्यञ्जनाद्युपलिप्तकरदर्वीधावनार्थं पात्रप्रदेशे पूर्वं

आगमानुसार बुद्धि अथवा दृष्टिसे धोवनका वर्ण आदि जान कर पूछ कर अथवा किसीसे सुन कर धोवन बहुत देरका धोया हुआ हो तो ग्रहण करे। तथा 'उपयोगी है या अनुपयोगी?' इस प्रकारकी शंकाका निर्णय करके प्रासुक तथा अवस्थान्तरको प्राप्त होगया जानकर साधु ग्रहण करे।

जो लोग यह कहते हैं कि–' धोवन जल दो घडीके बाद सचित्त होनेसे अग्राह्य है ' यह उनका कहना ठीक नहीं, क्योंकि, यदि दो घडीके बाद धोवन जल सचित्त हो जाय तो शाक आदिसे लिप्त हाथ

આગમાનુસાર બુદ્ધિ અથવા દૃષ્ટિથી ધોવણના વર્ણાદિ જાણી પૂછીને અથવા કોઇ પાસેથી સાભળીને ધોવણ બહુ વખતથી ધોએલુ હોય તો તે ગ્રહણ કરે તેમજ 'ઉપયોગી છે કે અનુપયોગી?' એ પ્રકારની શકાનો નિર્ણય કરીને પ્રાસુક તથા અવસ્થાતરને પ્રાપ્ત થએલુ જાણીને સાધુ તે ગ્રહણ કરે

જે લોકો કહે છે કે–' ધોવણનુ પાણી બે ઘડી પછી સચિત્ત હોવાથી અગ્રાહ્ય છે ' તે તેમનુ કહેવાનુ બરાબર નથી કારણ કે જો બે ઘડી પછી ધોવણનુ જળ સચિત્ત થઇ જાય તો શાક આદિથી ખરડાયલા હાથ યા કડછી આદિ

स्थापितजलस्य मुहूर्त्तानन्तरं तन्मते सचित्ततायां तदानीं तदुदकक्षालितकरदर्व्यादिना निरवद्याशनग्रहणमपि तेषां दोषावहं भवेत्, तत्संमतसचित्तजलसंसृष्टकरदर्वीसंसर्गवत्त्वात्। मुहूर्तात्परमेव धावनजलस्य सचित्तत्वाङ्गीकारे 'अहुणाधोयं विवज्जए' इति प्रकृतसूत्रस्य 'जं जाणेज्ज चिराधोयं' इति प्रकृतसूत्रस्य च विरोधापत्तिः, तथाहि-अधुनाधौतस्य मुहूर्त्तान्तर्गततया तत्र तन्मते सचित्ततायां अभावे तद्वर्जनोपदेशाऽसङ्गतिः, चिराद्धौतस्य च मुहूर्त्तानन्तरं तन्मते सचित्ततया तदुपादानोपदेशस्य चासङ्गतिः स्यात्, तस्मात् पिपासापनोदनशक्तिशालिनश्चिराद्धौतस्य ग्रहणं शास्त्रसंमतमित्यत्र ध्येयम्।

या कुडछी आदि धोनेके लिए गृहस्थ (रसोया) रसोईके समय अपने पास एक पानीका बरतन रखता है, उस जलसे हाथ और कुडछी को धो कर दाल आदि परोसता है, ऐसी दशामें उक्त मतसे देर तक रक्खे रहनेके कारण यदि वह हाथ या कुडछी आदिका धोवन सचित्त हो जाता है तो उस धोवनमें धोयी हुई कुडछी या हाथसे दिया जानेवाला निरवद्य अन्नादि भी उनको अग्राह्य हो जायगा। 'तहेवुच्चावयं' इस गाथाके अन्तिम चरणमें 'अहुणाधोयं विवज्जए' यह कह कर भगवानने यह स्पष्ट कर दिया है कि तुरतका धोया हुआ जल अग्राह्य है, और इसीको 'छिर्वद्धं सुबद्धं भवति' इस न्यायसे 'जं जाणेज्ज चिराधोयं' इस गाथासे सुस्पष्ट कर दिया है कि देरका धोया हुआ धोवन ग्रहण करना चाहिए। अतः दो घडीके बाद धोवनमें जीवोंकी उत्पत्ति मानना जैनागमसे विरुद्ध है और उत्सूत्र-प्ररूपणाका भागी बनना है।

धोवाने माटे गृहस्थ (रसोईयो) रसोईने समये पोतानी पासे पाणीनुं एक वासण राखे छे, ए जळथी हाथ अने कडछी धोई-धोईने दाळ आदि पीरसे छे, एवी दशामां उक्त मत प्रमाणे केटलाक समय सुधी रहेलुं होवाने कारणे जो ए हाथ या कडछी आदिनुं धोवण सचित्त थई जाय तो ए धोवणमां धोएली कडछी या हाथथी आपवामां आवतुं निरवद्य अन्नादि पण एमने अग्राह्य बनी जाय. तहेवुच्चावय ए गाथाना अंतिम चरणमां अहुणाधोय विवज्जए एम कहीने भगवाने ए स्पष्ट करी आप्युं छे के तुरतनुं धोएलुं जळ अग्राह्य छे, अने एने छिर्वद्धं सुबद्धं भवति ए न्याये करीने जं जाणेज्ज चिराधोयं ए गाथाथी सुस्पष्ट करी आप्युं छे के केटलाक समय पहेलानुं धोएलुं धोवण ग्रहण करवुं जोईए. एटले बे घडी पछी धोवणमां जीवोनी उत्पत्ति मानवी ए जैनागमथी विरुद्ध छे अने उत्सूत्रप्ररूपणाना भागी बनवुं छे

अथ शङ्कित='पिपासाऽपनोदकं न वा?' इति संशयविषयो भवेत्तदा आस्वाद्य=उक्तसंशयापनोदयार्थं किञ्चित्पीत्वा रोचयेत्=निर्णयेत् ॥

"अजीव"-मित्यनेन जीवराहित्य 'परिणत'-मित्यनेन च सर्वथाऽचित्तत्व सूचितम् ॥७६॥७७॥

आस्वादनविधिं प्रदर्शयन् निर्णयप्रकारमाह-'थोव०' इत्यादि।

मूलम्-थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहि मे।
मा मे अच्चबिलं पूयं, नालं तिण्हं विणित्तए ॥७८॥

छाया—स्तोकमास्वादनार्थं, हस्तके देहि मे।
मा मे अत्यम्लं पूति, नालं तृष्णां विनेतुम् ॥७८॥

सान्वयार्थः-(निर्णय करनेके लिए साधु दातासे कहे कि-हे आयुष्मन्!) आसायणट्ठाए=चखनेके लिए थोवं=थोड़ासा धोवन मे=मेरे हत्थगम्मि=हाथमें दलाहि=दो, (हाथमें लेकर चखने पर यदि निश्चय हो जाय कि वह धोवन) अच्चबिलं=अत्यन्त खट्टा पूयं=दुर्गन्धित और तिण्हं=प्यास विणित्तए=बुझानेके लिए नालं=समर्थ नहीं है इसलिये यह मे=मेरे लिए उपयोगी मा=नहीं है॥७८॥

तथा 'इससे प्यास मिट जायगी या नहीं?' ऐसा सन्देह उत्पन्न हो जाय तो उस सन्देहको दूर करनेके लिए थोडासा पानी चख कर निर्णय करे।

'अजीव' पदसे जीवराहित्य और 'परिणयं' पदसे मिश्रकी शंकाका अभाव सूचित किया है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

आस्वादन (चखने) की विधि बताते हुए निर्णय करनेका प्रकार बताते हैं-'थोव०' इत्यादि।

તેમજ 'એથી તરસ મટશે કે નહિ?' એવો સંદેહ ઉત્પન્ન થાય તો એ સંદેહ દૂર કરવાને થોડું પાણી ચાખીને નિર્ણય કરવો. अजीव શબ્દથી જીવરાહિત્ય અને परिणय શબ્દથી મિશ્રની શંકાનો અભાવ સૂચિત કર્યો છે (૭૬-૭૭)

આસ્વાદન (ચાખવા)નો વિધિ બતાવતા નિર્ણય કરવાનો પ્રકાર બતાવે છે-थोव० ઇત્યાદિ

टीका—आस्वादनार्थम्=उपयोगित्वाऽनुपयोगित्वज्ञानार्थं स्तोकं स्वल्पं तिल-तण्डुलादिजलं मे=मम हस्ते 'देहि' इति दात्रीमुद्दिश्य वदेदिति भावः। तद्दत्तं धौतजलमास्वाद्य निश्चिनुयात्-इदम् अत्यम्लं पूतिं=अनिष्टगन्धयुक्तं तृष्णां=पिपासां विनेतुम्=अपाकर्तुं नालं=न समर्थम्, इति मे=मम मा=नहि उपयोगीति शेषः॥७८॥

निश्चयानन्तरं कर्त्तव्यमाह-'तं च' इत्यादि।

मूलम्-तं च अच्चंबिलं पूयं, नालं तिण्हं विणित्तए।
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ ७९॥

छाया—तच्चाऽत्यम्लं पूतिं, नालं तृष्णां विनेतुम्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम्॥७९॥

तब वह साधु क्या करे?, सो बताते हैं—

सान्वयार्थ'—अच्चंबिलं=अत्यन्त खट्टे पूयं=दुर्गन्धियुक्त और तिण्हं विणित्तए नालं=प्यास मिटानेके लिए असमर्थ तं च=उस धोवनको दिंतियं=देनेवालीसे साधु पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका धोवन मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है॥७९॥

टीका—तच्च धौतजलमत्यम्लं पूतिं तृष्णां विनेतुं नालमिति ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं मे न कल्पते इति॥७९॥

'धोवन उपयोगी है या नहीं?' इस शंकाका निवारण करनेके लिए देनेवाली बाईसे साधु कहे कि-'मेरे हाथमें थोडासा पानी दो।' उस दिये हुए धोवनका आस्वादन करके निश्चय करे कि-'यह बहुत खट्टा है, दुर्गन्धवाला है, प्यास शान्त करनेके लिए समर्थ नहीं है अतः मेरे लिए उपयोगी नहीं है॥७८॥'

ऐसा निश्चय करके क्या करना चाहिए? सो कहते हैं-'तं च' इत्यादि।

उस बहुत खट्टे, दुर्गन्धित और प्यास बुझानेमें असमर्थ धोवनको देनेवाली बाईसे कहे कि ऐसा धोवन मुझे नहीं कल्पता है॥ ७९॥

'धोवण उपयोगी छे के नहि?' ए शंकानुं निवारण करवाने माटे धोवण आपनारी बाईने साधु कहे के "मारा हाथमां थोडुं पाणी आपो' ए आपेला धोवणनुं आस्वादन करीने निश्चय करे के 'आ बहु खाटुं छे, दुर्गंधवाळुं छे, तरस शांत करवा माटे समर्थ नथी, तेथी मारे माटे उपयोगी नथी' (७८)

एवो निश्चय करीने शुं करवुं जोईए? ते हवे कहे छे-तं च० इत्यादि

एवा बहु खाटा, दुर्गंधित अने तरस छीपाववामां असमर्थ धोवणने आपनारी बाईने साधु कहे के एवुं धोवण मने कल्पतुं नथी (७९)

१ २ ६ ३ ४ ५
मूलम्-तं च होज्ज अकामेण, विमणेण पडिच्छियं ।
७ ८ ९ १० ११ १३ १२ १४
तं अप्पणा न पिबे, नो वि अन्नस्स दावए ॥८०॥

छाया—तच्च भवेद् अकामेन, विमनसा प्रतिगृहीतम् ।
तद् आत्मना न पिबेत्, नो अपि अन्यस्मै दापयेत् ॥८०॥

सान्वयार्थः—तं=वह उस प्रकारका धोवन यदि अकामेण=विना इच्छासे दाताके अनुरोधसे च=तथा विमणेण=मनके दूसरी तरफ होनेके कारण पडिच्छियं=लेलिया गया हो तो तं=उस धोवनको न=न तो अप्पणा=अपने खुद पिबे=पिये और नो=न अन्नस्स अवि=दूसरोंकोभी दावए=देवे ॥८०॥

टीका—'तं च' इत्यादि। तच्च धौतजलं यदि अकामेन=स्वानिच्छया, दात्रनुरोधेनेति भावः, विमनसा=अन्यमनस्कतया, 'हेतौ तृतीया' प्रतिगृहीतं तद् आत्मना स्वयं न पिबेत् नो अपि अन्यस्मै दापयेत् ॥८०॥

तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह-'एगंत०' इत्यादि ।

१ २ ३ ४
मूलम्-एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया ।
५ ६ ७ ८
जयं परिट्ठविज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥ ८१ ॥

छाया—एकान्तमवक्रम्याऽचित्तं प्रत्युपेक्ष्य ।
यतं परिष्ठापयेत्, परिष्ठाप्य प्रतिक्रामेत् ॥ ८१ ॥

उस धोवनका क्या करे ? सो बताते हैं—

सान्वयार्थः-एगंतं=एकान्त स्थानमें अवक्कमित्ता=जाकरके अचित्तं=एकेन्द्रियादिप्राणीरहित अचित्त स्थानको पडिलेहिया=पूंजकर उस धोवनको जयं=

'तं च' इत्यादि । यदि ऐसा पानी अनिच्छापूर्वक दाताके अनुरोधसे अथवा विना ध्यानसे ग्रहण कर लिया हो तो स्वयं उसे न पिये और न दूसरेको पिलावे ॥ ८० ॥

फिर क्या करे सो कहते हैं-'एगंत०' इत्यादि ।

तं च ઈત્યાદિ જો એવું પાણી અનિચ્છાપૂર્વક દાતાના અનુરોધથી અથવા બે-ધ્યાનથી ગ્રહણ કરી લીધું હોય તો પોતે તે ન પીએ અને ન બીજાને પીવડાવે (૮૦)

પછી શું કરે તે કહે છે-एगंत० ઈત્યાદિ

यतनासे परिट्ठविज्जा=परिठवे-डाले, परिट्ठप्प=परिठवके आकर पडिक्कमे=इरियावहिया पडिक्कमे-करे ॥८१॥

टीका—एकान्त विविक्तप्रदेशम्, अवक्रम्य=गत्वा तत्र अचित्तम्=एकेन्द्रियादिप्राणिवर्जित प्रत्युपेक्ष्य=निरीक्ष्य यत=सयत्न यथास्यात्तथा परिष्ठापयेत्, सविधि "वोसिरे" इति त्रिरुच्चार्य व्युत्सृजेत् । परिष्ठाप्य=परिष्ठापनानन्तर ग्रामाद्बहिर्वहिर्वाऽऽसन्नभूमिमागत्य प्रतिक्रामेत्=ऐर्यापथिकीं कुर्यात् ॥८१॥

अशनपानग्रहणविधेरनन्तर भोजनविधिमाह—'सिया' इत्यादि, 'अणुन्नवित्तु' इत्यादि च ।

मूलम्—सिया[1] य[2] गोयरग्गगओ[3], इच्छिज्जा[5] परिभुत्तुउ[4] ।
कुट्ठग[7] भित्तिमूल[8] वा[9], पडिलेहित्ताण[10] फासुयं[6] ॥८२॥
अणुन्नवित्तु[11] मेहावी[14], पडिच्छन्नम्मि[12] सवुडे[13] ।
हत्थग[16] सपमज्जित्ता[17], तत्थ[18] भुजिज्ज[19] सजए[15] ॥८३॥

छाया—स्याच्च गोचराग्रगत॰ इच्छेत् परिभोक्तुम्
कोष्ठक भित्तिमूल वा, प्रत्युपेक्ष्य प्रासुकम् ॥८२॥
अनुज्ञाप्य मेधावी, प्रतिच्छन्ने सवृते ।
हस्तक सप्रमृज्य तत्र भुञ्जीत सयत॰ ॥८३॥

एकान्त स्थानमें जाकर एकेन्द्रिय आदि प्राणियोंसे रहित स्थान देखकर यतनापूर्वक "वोसिरे" ऐसा तीन वार उच्चारण करके परिठवे। परिठवनेके पश्चात् गाँवमें या गाँवके बाहर ठहरनेके स्थान पर आकर इरियावहियाका प्रतिक्रमण करे ॥ ८१ ॥

अशन-पान ग्रहण करनेकी विधि बतानेके बाद आहार करनेकी विधि बताते हैं—'सिया य' इत्यादि, 'अणुन्नवित्तु' इत्यादि ।

એકાત સ્થાનમા જઈને એકેન્દ્રિય આદિ પ્રાણીઓથી રહિત સ્થાન જોઈને યતનાપૂર્વક 'वोसिरे' એવુ ત્રણવાર ઉચ્ચારણ કરીને પરિઠવે પરિઠવ્યા પછી ગામમા યા ગામની બહાર રહેવાના સ્થાન પર આવીને ઇરિયાવહિયાનુ પ્રતિક્રમણ કરે (૮૧)

અશન-પાન ગ્રહણ કરવાની વિધિ બતાવ્યા બાદ આહાર કરવાની વિધિ બતાવે છે-सिया य ઇત્યાદિ તથા अणुन्नवित्त ઇત્યાદિ

सान्वयार्थः-गोयरग्गगओ=गोचरीमें गया हुआ मेहावी=सामाचारीका जानकार संजए=साधु सिया य=कदाचित् अगर बाल्यावस्थाके अथवा ग्लानपनेके कारण वहीं परिभुत्तुउं=आहार करना इच्छिज्जा=चाहे तो वहां फासुयं=प्रासुक-एकेन्द्रियादिप्राणी रहित कुट्ठग=कोठेको वा=अथवा भित्तिमूलं=भींतके समीपके स्थानको पडिलेहित्ताण=पूजकर तथा दृष्टिसे देखकर अणुन्नवित्तु=गृहस्थकी आज्ञा मागकर तत्थ=वहा पडिच्छन्नम्मि=ऊपरसे छाये हुए और संवुडे=चारों तर्फसे घिरे हुए स्थानमें हत्थगं=हाथोंको अथवा अपने शरीरको संपमज्जित्ता=पूजकरके (साधु) भुंजिज्ज=आहार करे ॥८२॥८३॥

टीका—स्याच=कदाचित् गोचराग्रगतः=भिक्षामनुप्रविष्टो मुनिः, बाल्य-ग्लानत्व-पिपासादिकारणवशात्परिभोक्तुमिच्छेत् तदा प्रासुकम्=एकेन्द्रियादिप्राणिविवर्जितं कोष्ठकम्=अन्तर्गृहादिकं वा=अथवा भित्तिमूलं=कुड्यसमीपवर्तिप्रदेशं प्रत्युपेक्ष्य=दृष्ट्वा विलोक्य अनुज्ञाप्य=तत्स्वामिनोऽनुज्ञामादाय तत्र प्रतिच्छन्ने=ऊर्ध्वं तस्तृणादिभिराच्छादिते, संवृते=समन्ततः आवृते किन्तु प्रकाशयुक्ते प्रदेशे, यद्वा 'संवृतः' इति प्रथमान्तं संयतस्य विशेषणं तेन, मेधावी=साधुसामाचारीकुशलः संयतः=साधुः संवृतः=मनोवाक्कायगुप्तः सन् हस्तकं=हस्तौ संप्रमृज्य=संशोध्य, अथवा 'हस्तकम्' इति तृतीयार्थे प्रथमा, तथा च-हस्तकेन=हस्त कायति=वातुना

यदि भिक्षाके लिए गये हुए भिक्षुको बालकपन, ग्लानता अथवा प्यास आदि किसी कारणसे आहार करनेकी इच्छा हो जाय तो वहाँ प्रासुक कोठा अथवा भीतके पास कोने आदिकी प्रतिलेखना करके मकानके स्वामीकी आज्ञा लेकर ऊपरको तृण आदिसे छाये हुए चारों ओरसे बन्द किन्तु प्रकाशयुक्त स्थानमें स्थित होकर मन वचन कायकी सम्यक् प्रकार प्रवृत्ति करता हुआ साधुसामाचारीका ज्ञाता मुनि हाथोंको

જો ભિક્ષાને માટે ગએલા ભિક્ષુને બાળકપણું, ગ્લાનતા અથવા તરસ આદિ કોઇ કારણે આહાર કરવાની ઇચ્છા થઇ જાય તો ત્યાં પ્રાસુક કોઠો અથવા ભીંતની પાસે ખૂણા આદિની પ્રતિલેખના કરીને મકાનના સ્વામીની આજ્ઞા લઇને ઉપર ઘાસ આદિથી છાએલા ચારે બાજુથી બંધ પરન્તુ પ્રકાશયુક્ત સ્થાનમાં રહીને મન વચન કાયાની સમ્યક્ પ્રકારે પ્રવૃત્તિ કરતા સાધુસમાચારીના જ્ઞાતા મુનિ હાથને પ્રમાર્જિત કરીને (સાફ કરીને) યા હસ્તક (હસ્તગત રજોહરણ)થી

मनेकार्थत्वात्प्राप्नोतीति हस्तकम्, ('आतोऽनुपसर्गे कः' इति कप्रत्ययः,) रजोहरणं तेन, तस्य धारणे हस्तस्य सर्वथा निमित्तत्वात्, प्रायः कक्षप्रदेशे धारणेऽपि हस्ताश्रयं विना तदीयधारणासम्भवाच्च। सम्प्रमृज्य=तत्स्थानं कायं च संशोध्य भुञ्जीत=अभ्यवहरेत्।

यत्तु "हस्तकं मुखवस्त्रिकारूपमादाय तेन कायं सम्प्रमृज्य" इति व्याख्यानं तदयुक्तं, 'हस्तक' पदार्थस्य 'सम्प्रमृज्य' पदार्थेऽन्वयसम्भवे'आदाये'-ति पदान्तराक्षेपपूर्वकमन्यपदार्थेऽन्वयकल्पनाया अनौचित्यात्। किञ्च कोष-व्याकरणादिषु हि हस्तकशब्दो मुखवस्त्रिकारूपेऽर्थे न दृश्यते। शास्त्रेऽपि-"मुहपत्तिं पडिलेहित्ता" इत्यादि दृश्यते न तु 'हत्थगं पडिलेहित्ता' इत्यादि।

यच्च "विधिना तेन मुखवस्त्रिकारूपेण हस्तकेन कायं प्रमृज्य तत्र भुञ्जीत"

प्रमार्जित (साफ) करके या हस्तक अर्थात् हस्तगत रजोहरणसे काय और स्थानकी प्रमार्जना करके आहार करे।

किसी-किसीने 'हस्तक सम्प्रमृज्य' का ऐसा अर्थ किया है कि 'मुखवस्त्रिका लेकर उससे शरीर-प्रमार्जना करे' ऐसा अर्थ करना ठीक नहीं है, क्योंकि मुखवस्त्रिकाके साथ प्रमार्जन करनेका सम्बन्ध मिलते न देख उन्हें एक 'आदाय' शब्द (लेकर) अपनी ओरसे मिला दिया है। इस प्रकार सम्बन्ध मिलाना उचित नहीं है। इसके सिवाय कोषोंमें कहीं 'हस्तक' शब्दका अर्थ मुखवस्त्रिका नहीं किया है और न व्याकरणमें ही ऐसा देखाजाता है। आगमोंमें 'मुहपत्तिं पडिलेहित्ता' इत्यादि पद देखे जाते हैं, किन्तु 'हत्थग पडिलेहित्ता' कहीं नहीं देखा जाता।

तथा "मुखवस्त्रिकारूप हस्तकसे कायकी प्रमार्जना करके आहार करे"

કાયા અને સ્થાનની પ્રમાર્જના કરીને આહાર કરે

કોઈ કોઈએ हस्तक सम्प्रमृज्य નો એવો અર્થ કર્યો છે કે—'મુખવસ્ત્રિકા લઈને તેથી શરીરની પ્રમાર્જના કરે,' પણ એવો અર્થ કરવો એ બરાબર નથી, કારણ કે મુખવસ્ત્રિકાની સાથે પ્રમાર્જન કરવાનો સંબંધ મળતો નહિ જોવાથી તેમણે એક आदाय શબ્દ (લઈને) પોતાની તરફથી મિલાવી દીધો છે આ પ્રમાણે સંબંધ મિલાવી દેવો એ ઉચિત નથી વળી કોષોમા ક્યાય 'હસ્તક' શબ્દનો અર્થ મુખવસ્ત્રિકા કર્યો નથી અને વ્યાકરણમા પણ એવો અર્થ જોવામા આવતો નથી, આગમોમા मुहपत्तिं पडिलेहित्ता ઇત્યાદિ પદ જોવામા આવે છે, કિન્તુ हत्थग पडिलेहित्ता ક્યાય જોવામા આવતુ નથી

તથા 'મુખવસ્ત્રિકારૂપ હસ્તકથી કાયની પ્રમાર્જના કરીને આહાર કરે"

इति व्याख्यानं तदप्ययुक्ततरम् । हस्ते मुखवस्त्रिकाधारणे मुखवस्त्रिकाधारणोद्देश्यभूतायाः सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवहिंसानिवृत्तेरसिद्धया मुखवस्त्रिका मुख एव धारणीयेत्याशयस्य जागरूकत्वात्, अत एव भगवताऽपि सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवाऽयतनानिवृत्तये मुखोपरि धारणीयसदोरकाष्टपुटमुखप्रमाणवस्त्रखण्डरूपेऽर्थे मुखवस्त्रिकाशब्दः प्रयुक्तो, न तु हस्तवस्त्रिकाशब्द इति कथमपि हस्तकशब्देन मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थो न लभ्यते । एवं च तेन कायप्रमार्जनकथनं सर्वथाऽऽगमविरुद्धमेवेति बोध्यम् ॥८२॥८३॥

ऐसी व्याख्या करना भी अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि मुखवस्त्रिका धारण करनेका प्रयोजन सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी हिंसाका परिहार करना है। मुखवस्त्रिकाको हाथमें रखनेसे उक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि मुखवस्त्रिका मुखपर ही धारण करनी चाहिए। इसलिए मुखके निमित्तसे होनेवाली, सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम और वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनाकी निवृत्तिके लिए मुख पर धारण करने योग्य उस मुख परिमाण सदोरक और आठ पुडवाले वस्त्रखण्डको भगवानने 'मुखवस्त्रिका' शब्दसे कहा है, 'हस्तवस्त्रिका' शब्दका प्रयोग कहीं नहीं किया, अत एव 'हस्तक' शब्दसे मुखवस्त्रिकाका अर्थ किसीभी प्रकार नहीं निकल सकता। इस प्रकार 'उससे कायकी प्रमार्जना करना' यह अर्थ आगमसे सर्वथा विरुद्ध है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

એવી વ્યાખ્યા કરવી એ પણ અત્યંત અયુક્ત છે, કારણ કે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાનું પ્રયોજન સૂક્ષ્મ વ્યાપી, સમ્પાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની હિંસાનો પરિહાર કરવો એ છે મુખવસ્ત્રિકાને હાથમાં રાખવા ઉક્ત પ્રયોજન સિદ્ધ થતું નથી એથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર જ ધારણ કરવી જોઇએ તેથી મુખના નિમિત્તે થનારી સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સંપાતિમ અને વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાની નિવૃત્તિને માટે મુખ પર ધારણ કરવા યોગ્ય એ મુખ પરિમાણ દોરા સાથેના અને આઠ પડવાળા વસ્ત્રખંડને ભગવાને 'મુખવસ્ત્રિકા' કહી છે, 'હસ્તવસ્ત્રિકા' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો નથી એટલે હસ્તક' શબ્દથી મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ કોઈ પણ પ્રકારે નીકળી શકતો નથી એ રીતે 'મુખવસ્ત્રિકથી કાયાની પ્રમાર્જના કરવી' એ અર્થ આગમથી સર્વથા વિરુદ્ધ છે (૮૨-૮૩)

१ ३ २ ४ ५ १२
मूलम्-तत्थ से भुंजमाणस्स, अट्ठिय कटओ सिया ।
८ ७ ६ ९ १० ११
तण-कट्ठ-सक्कर वावि, अन्नं वावि तहाविहं ॥८४॥
१३ १४ १५ १६ १७ १८ १९
तं उक्खिवित्तु न निक्खिवे, आसएण न छड्डए ।
२१ २० २२ २३ २४
हत्थेण त गहेऊण, एगतमवक्कमे ॥ ८५ ॥

छाया—तत्र तस्य भुञ्जानस्य, अष्ठिक कण्टकः स्यात् ।
तृण-काष्ठ-शर्कर वाऽपि, अन्यद्वापि तथाविधम् ॥८४॥
तद् उत्क्षिप्य न निक्षिपेत्, आस्येन नोज्झेत् ।
हस्तेन तद् गृहीत्वा, एकान्तमपक्रामेत् ॥८५॥

सान्वयार्थः-तत्थ=वहा कोठे आदिमें भुजमाणस्स=आहार करते हुए से=उस साधुके (आहारमें) अट्ठिय=बीज कटओ=काटा तण=तिनका कट्ठ=काठ वावि=और सक्कर=छोटा ककर वा=तथा अन्न वावि=औरभी तहाविह=उस प्रकारका पदार्थ सिया=आगया हो तो त=उसे उक्खिवित्तु=निकालकर न निक्खिवे=इधर-उधर नहीं डाले, तथा आसएण=मुखसे भी न छड्डए=न फेंके-न थूँके (किन्तु) त=उसे हत्थेण=हाथसे गहेऊण=लेकर एगत=एकान्त स्थानमें अवक्कमे=जावे ॥८४॥८५॥

टीका—'तत्थ से' इत्यादि, 'त उक्खिवित्तु' इत्यादि च। तत्र कोष्ठकादिस्थाने भुञ्जानस्य तस्य भिक्षोर्भोजने अष्ठिक=बीज, कण्टक=तीक्ष्णाग्रो द्रुम-गुल्म लताद्यङ्गविशेषः, अपिवा तृण-काष्ठ-शर्कर=तृण च काष्ठ च शर्करा चैतेषा समाहारः। तत्र तृण=कुशादिक, काष्ठ=खदिरादिसमुद्भव दारु, शर्करा=क्षुद्रपाषाणखण्डम्। अन्यदपि वा तथाविध=तज्जातीय स्यात्=भवेत् तद्=अष्ठिकादिकम् उत्क्षिप्य न निक्षिपेत्=उत्क्षेपण कृत्वा यत्र तत्र न क्षिपेत्, आस्येन=मुखेनापि नोज्झेत्=थूत्कृत्य

'तत्थ से' इत्यादि, 'त उक्खिवित्तु' इत्यादि। उस कोठे आदिमें आहार करनेवाले भिक्षुके भोजनमें बीज, काँटा, तिनका, लकडी, किरकिरी-ककर या और कोई उस प्रकारकी वस्तु हो तो उसे निकाल कर जहाँ तहाँ न डाले तथा मुखसे भी न थूके किन्तु उसको हाथमें

तत्थ से० ઇત્યાદિ, તથા त उक्खिवित्तु० ઇત્યાદિ એ કોઠામા આહાર કરનારા ભિક્ષુના ભોજનમા બીજ, કાટા, તણખલા લાકડુ, કાકરી કાકરા યા એવા પ્રકારની બીજી કોઈ વસ્તુ હોય તો તે કાઢી નાખી જ્યા ત્યા નાખે નહિ, તથા

इति व्याख्यात तदप्ययुक्ततरम्। हस्ते मुखवस्त्रिकाधारणे मुखवस्त्रिकाधारणोद्देश्यभूतायाः सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवहिंसानिवृत्तेरसिद्धया मुखवस्त्रिका मुख एव धारणीयेत्यागमस्य जागरूकत्वात्, अत एव भगवताऽपि सूक्ष्मव्यापिसम्पातिमवायुकायादिजीवाऽयतनानिवृत्तये मुखोपरि धारणीयसदोरकाष्टपुटमुखप्रमाणवस्त्रखण्डरूपेऽर्थे मुखवस्त्रिकाशब्दः प्रयुक्तो, न तु हस्तवस्त्रिकाशब्द इति कथमपि हस्तकशब्देन मुखवस्त्रिकारूपोऽर्थो न लभ्यते। एव च तेन कायप्रमार्जनकथन सर्वथाऽऽगमविरुद्धमेवेति बोध्यम् ॥८२॥८३॥

ऐसी व्याख्या करना भी अत्यन्त अयुक्त है, क्योंकि मुखवस्त्रिका धारण करनेका प्रयोजन सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम तथा वायुकाय आदि जीवोंकी हिंसाका परिहार करना है। मुखवस्त्रिकाको हाथमें रखनेसे उक्त प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि मुखवस्त्रिका मुखपर ही धारण करनी चाहिए। इसलिए मुखके निमित्तसे होनेवाली, सूक्ष्म, व्यापी, सम्पातिम और वायुकाय आदि जीवोंकी विराधनाकी निवृत्तिके लिए मुख पर धारण करने योग्य उस मुख परिमाण सदोरक और आठ पुडवाले वस्त्रखण्डको भगवानने 'मुखवस्त्रिका' शब्दसे कहा है, 'हस्तवस्त्रिका' शब्दका प्रयोग कहीं नहीं किया, अत एव 'हस्तक' शब्दसे मुखवस्त्रिकाका अर्थ किसीभी प्रकार नही निकल सकता। इस प्रकार 'उससे कायकी प्रमार्जना करना' यह अर्थ आगमसे सर्वथा विरुद्ध है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

એવી વ્યાખ્યા કરવી એ પણ અત્યંત અયુક્ત છે, કારણ કે મુખવસ્ત્રિકા ધારણ કરવાનું પ્રયોજન સૂક્ષ્મ વ્યાપી, સમ્પાતિમ તથા વાયુકાય આદિ જીવોની હિંસાનો પરિહાર કરવો એ છે મુખવસ્ત્રિકાને હાથમાં રાખવા ઉક્ત પ્રયોજન સિદ્ધ થતું નથી એથી એમ સિદ્ધ થાય છે કે મુખવસ્ત્રિકા મુખ પર જ ધારણ કરવી જોઇએ તેથી મુખના નિમિત્તે થનારી સૂક્ષ્મ, વ્યાપી, સંપાતિમ અને વાયુકાય આદિ જીવોની વિરાધનાની નિવૃત્તિને માટે મુખ પર ધારણ કરવા યોગ્ય એ મુખ પરિમાણ દોરા સાથેના અને આઠ પડવાળા વસ્ત્રખંડને ભગવાને 'મુખવસ્ત્રિકા' કહ્યા છે, 'હસ્તવસ્ત્રિકા' શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો નથી એટલે 'હસ્તક' શબ્દથી મુખવસ્ત્રિકાનો અર્થ કોઇ પણ પ્રકારે નીકળી શકતો નથી એ રીતે 'મુખવસ્ત્રિકથી કાયાની પ્રમાર્જના કરવી' એ અર્થ આગમથી સર્વથા વિરૂદ્ધ છે (૮૨-૮૩)

विनयेन प्रविश्य, सकाशे गुरोर्मुनिः ।
ऐर्यापथिकीमादाय, आगतश्च प्रतिक्रामेत् ॥८८॥

सान्वयार्थः-सिया य=अगर भिक्खू=साधु सिज्ज=वसति उपाश्रयमें ही आगम्म=आकर भुत्तुउ=आहार करना इच्छिज्जा=चाहे तो सपिंडवाय=भिक्षाके सहित आगम्म=आकर विणएण='मत्थएण वदामि निस्सीहि' इस प्रकार बोलनेरूप विनयसे पविसित्ता=उपाश्रयमें प्रवेश करके से-वहा उड्डुय=भोजनके स्थानको पडिलेहिया=अच्छी तरह देखकर गुरुणो=रत्नाधिकके सगासे=समीप आगओ य=आया हुआ मुणी=मुनि इरियावहिय=इरियावहियाका पाठ आयाय=लेकर पढकर पडिक्कमे=कायोत्सर्ग करे। तात्पर्य यह है कि प्रबल पिपासा आदि खास कारण के विना तो उपाश्रयमें आकर ही साधुको आहार करना चाहिये किन्तु गृहस्थके घरमें नही करे ॥८७॥८८॥

टीका—'सिया य' इत्यादि, 'विणएण' इत्यादि च। भिक्षुः=साधुः शय्या=वसतिं स्यात्=एव आगम्य भोक्तुमिच्छेत्। 'अत्र स्यादित्यव्ययमवधारणार्थं तेन 'प्रबलपिपासादिकारणाभावे वसतिं विहायाऽन्यत्र न भोक्तव्य'मिति तात्पर्यं गम्यते। तदा सपिण्डपात=पिण्डपातो-भिक्षालाभस्तेन सहाऽऽगम्य विनयेन=" मत्थएण वदामि निस्सीहि " इतिपठनलक्षणेन प्रविश्य उपाश्रयमिति शेषः, से=सः, यद्वा सेशब्दो मगधदेशप्रसिद्धः 'तत्र'-शब्दार्थे वर्त्तते तेन से=तत्र उन्दुक=स्थान प्रत्यु-

'सिया य' इत्यादि, 'विणएण' इत्यादि। साधु उपाश्रयमें आकर ही आहार करनेकी इच्छा करे। यहाँ 'स्यात्' अव्यय निश्चय-बोधक है इससे यह तात्पर्य प्रगट होता है कि पिपासा आदि किसी प्रबल कारणके विना उपाश्रयके सिवाय अन्यत्र आहार नही करना चाहिए। अत एव भिक्षा लाकर "मत्थएण वदामि निस्सीहि" यह पाठ उच्चारण करके उपाश्रयमे प्रवेश करे फिर भोजन करनेके स्थानकी

सिया य० ઇત્યાદિ, તથા विणएण ઇત્યાદિ સાધુ ઉપાશ્રયમા આવીને જ આહાર કરવાની ઈચ્છા કરે, અહીં स्यात् અવ્યય નિશ્ચયબોધક છે, તેથી એ તાત્પર્ય પ્રકટ થાય છે કે તરસ આદિ કોઈ પ્રબળ કારણ વિના ઉપાશ્રય સિવાય અન્યત્ર આહાર ન કરવો જોઈએ એટલે ભિક્ષા લાવીને मत्थएण वदामि निस्सीहि એ પાઠ ઉચ્ચારીને ઉપાશ્રયમા પ્રવેશ કરે પછી ભોજન કરવાના સ્થાનની સમ્યક્

न क्षिपेत्। तर्हि किं कुर्यात्? इत्याह—तद् हस्तेन गृहीत्वा एकान्तमपक्रामेत्= गच्छेत् ॥८४॥८५॥

मूलम्-एगंतमवक्कमित्ता, अचित्त पडिलेहिया।
जय परिट्ठविज्जा, परिट्टप्प पडिक्कमे ॥ ८६ ॥

छाया—एकान्तमपक्रम्याऽचित्ता प्रत्युपेक्ष्य।
यत परिष्ठापयेत्, परिष्ठाप्य प्रतिक्रामेत् ॥८६॥

एकान्त में जाकर क्या करे? सो बताते हैं—

सान्वयार्थ—एगत=एकान्त स्थानमें अवक्कमित्ता=जाकरके अचित्त=एकेन्द्रियादिप्राणीरहित अचित्त स्थानको पडिलेहिया=पूजकर उस धोवनको जय= यतनासे परिट्ठविज्जा=परिठवे डाले, परिट्टप्प=परिठवके आकर पडिक्कमे=इरियावहिया पडिक्रमे-करे ॥८६॥

टीका—'एगत०' इत्यादि। विजनप्रदेशं गत्वा अचित्ता भूमिं चक्षुषा निरीक्ष्य बीजादिकं सयत्नं व्युत्सृजेत्, तदनु स्थानमागत्य प्रतिक्रामेत्=ऐर्यापथिकीं कुर्यादिति भावः।

मूलम्-सिया य भिक्खू इच्छिज्जा, सिज्जमागम्म भुत्तुउ।
सपिडपायमागम्म उड्डुअ से पडिलेहिया ॥ ८७ ॥
विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे ॥ ८८ ॥

छाया—स्याच्च भिक्षुरिच्छेत्, शय्यामागम्य भोक्तुम्।
सपिण्डपातमागम्य, उन्दुकं से (तत्र) प्रत्युपेक्ष्य ॥८७॥

लेकर एकान्त स्थानमे जावे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

'एगत०' इत्यादि। एकान्तमें जाकर अचित्त भूमि देख कर वहाँ यतनाके साथ उस बीज काँटे आदिको डाले। फिर अपने स्थान पर आकर ईर्यावहियाका प्रतिक्रमण करे ॥ ८६ ॥

મુખથી પણ થૂકે નહિ, પરતુ તેને હાથમા લઇને એકાન્ત સ્થાનમા જાય (૮૪-૮૫)

एगत० ઇત્યાદિ એકાન્તમા જઇને અચિત્ત ભૂમિ જોઇને ત્યા યતનાપૂર્વક એ બીજ કાટા આદિને નાખે પછી પોતાના સ્થાન પર આવીને ઇરિયાવહિયાનું પ્રતિક્રમણ કરે (૮૬)

टीका—संयतः=कायोत्सर्गस्थो मुनिः, गमनागमने=गतागते चैव भक्ते पाने च सञ्जात निश्शेष=समग्रम् अतिचार=मुनिमर्यादालङ्घनलक्षणम् यथाक्रमम् आभोग्य=सोपयोग विचिन्त्य ऋजुप्रज्ञः=सरलबुद्धिः अनुद्विग्नः=प्रशान्तः, अव्याक्षिप्तेन=अव्याकुलेन चेतसा=मनसा गुरुसकाशे=शुद्ध प्रमादादिवशेनाऽशुद्ध वा यद् यस्माद् यत्र वा यथा गृहीत भवेत् तदपि गुरुसमीपे कथयेदित्यर्थं ।

'उज्जुप्पन्नो' इत्यनेनाऽकुटिलमतिरेव सम्यगालोचयतीति सूचितम्। 'अणुव्विग्गो' अनेन क्षुधादिपरिषहजेतृत्वमावेदितम्। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' इत्यनेन 'एकाग्रचित्तेनैवाऽतिचारस्य सम्यक् स्मरण भवती'-ति स्पष्टीकृतम् ॥८९॥९०॥

कायोत्सर्गमें स्थित होकर गमनाऽऽगमनमें, तथा-आहार पानीके लेनेमें जो अतिचार लगे हों उन सबका क्रमशः चिन्तन करके सरलबुद्धि शान्त चित्तवाला सयमी व्याकुलतारहित चित्तसे गुरुके समीप आलोचना करे। प्रमाद आदिके वशसे जहा जैसा शुद्ध या अशुद्ध आहार आदि लिया गया हो वह भी गुरुसे निवेदन करे।

'उज्जुप्पन्नो' पदसे यह सूचित किया है कि कुटिलतारहित बुद्धिवाला ही यथार्थ आलोचना कर सकता है। 'अणुव्विग्गो' पदसे क्षुधा आदि परीषहोंका जीतना प्रगट किया है। 'अव्वक्खित्तेण चेयसा' पदसे यह सूचित किया है कि एकाग्र-चित्तसे ही अतिचारोंका अच्छी तरह स्मरण हो सकता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

કાયોત્સર્ગમા સ્થિર થઈને ગમનાગમનમા, તથા આહારપાણી લેવામા જે અતિચાર લાગ્યા હોય તે સર્વનું ક્રમશ ચિંતન કરીને સરલબુદ્ધિ શાન્ત-ચિત્તવાળો સયમી વ્યાકુળતા-રહિત ચિત્તથી ગુરૂની સમીપે આલોચના કરે પ્રમાદ આદિને વશ થઈને જ્યા જેવો શુદ્ધ યા અશુદ્ધ આહાર આદિ લેવામા આવેલ હોય તે પણ ગુરૂને નિવેદન કરે

उज्जुप्पन्नो શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે કુટિલતારહિત બુદ્ધિવાળો જ યથાર્થ આલોચના કરી શકે છે, अणुव्विग्गो શબ્દથી ક્ષુધા આદિ પરીષહોને જીતવાનું પ્રકટ કરવામા આવ્યુ છે अव्वक्खित्तेण चेयसा શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે એકાગ્ર-ચિત્તથી જ અતિચારોનું સારી રીતે સ્મરણ થઈ શકે છે (૮૯-૯૦)

पेक्ष्य=सम्यक् निरीक्ष्य गुरोः=रत्नाधिकस्य सकाशे आगतश्च मुनिः ऐर्यापथिकीम् "इच्छामि पडिक्कमिउं" इत्यादिलक्षणाम् आदाय=पठित्वा प्रतिक्रामेत्=कायोत्सर्गं कुर्यात् ॥८७॥८८॥

तत्र (कायोत्सर्गे) किं कुर्यात्? इत्याह–'आभोइत्ताण' इत्यादि, 'उज्जुप्पन्नो' इत्यादि च ।

मूलम्–आभोइत्ताण नीसेसं, अइयारं जहक्कमं ।
गमणागमणे चेव, भत्ते पाणे य संजए ॥ ८९ ॥
उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
आलोए गुरुसगासे, जं जहा-गहियं भवे ॥ ९० ॥

छाया—आभोग्य निःशेषम्, अतिचारं यथाक्रमम् ।
गमनागमने चैव, भक्ते पाने च संयतः ॥८९॥
ऋजुप्रज्ञः अनुद्विग्नः, अव्याक्षिप्तेन चेतसा ।
आलोचयेद् गुरुसकाशे, यद् यथा गृहीतं भवेत् ॥९०॥

सान्वयार्थः–संजए=कायोत्सर्गमें रहा हुआ मुनि गमणागमणे=जानेआनेमें चेव=और भत्ते=आहार य=तथा पाणे=पानीके ग्रहण करनेमें (लगे हुए) नीसेसं=सब प्रकारके अइयारं=अतिचारोंको, तथा जं=जो अशनादि जहा=जिस प्रकार गहियं भवे=ग्रहण किया हुआ हो उसे भी, जहक्कमं=यथाक्रम अनुक्रमसे आभोइत्ताण=उपयोगसहित चिन्तन करके, उज्जुप्पन्नो=सरल बुद्धिवाला अणुव्विग्गो=उद्वेगरहित वह मुनि अव्वक्खित्तेण=विक्षेपरहित-एकाग्र चेयसा=चित्तसे गुरुसगासे=गुरुके समीप आलोए=आलोवे ॥८९॥९०॥

सम्यक् प्रकार प्रतिलेखना करके दीक्षामें बडे मुनिके समीप आकर "इच्छामि पडिक्कमिउं" इत्यादि ईरियावहियाका पाठ बोल करके कायोत्सर्ग करे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

कायोत्सर्गमें क्या करना चाहिए सो कहते हैं–'आभोइत्ताण' इत्यादि, 'उज्जुप्पन्नो' इत्यादि ।

પ્રકારે પ્રતિલેખના કરીને દીક્ષામાં મોટા મુનિની સમીપે આવીને इच्छामि पडिक्कमिउं ઈત્યાદિ ઈરિયાવહિયાનો પાઠ બોલીને કાયોત્સર્ગ કરે (૮૭-૮૮)

કાયોત્સર્ગમાં શું કરવું જોઈએ તે કહે છે–आभोइत्ताण० ઈત્યાદિ તથા उज्जुप्पन्नो० ઈત્યાદિ

छाया—अहो ! जिनैः असावद्या, वृत्तिः साधुभ्यो देशिता ।
मोक्षसाधनहेतोः, साधुदेहस्य धारणाय ॥९२॥

सान्वयार्थः-अहो=आश्चर्य है कि-मोक्खसाहणहेउस्स=मोक्ष प्राप्तिके निमित्तभूत साहुदेहस्स=साधुशरीरके धारणा=निर्वाह-स्थितिमात्र-के लिए साहूण=मुनियोंको जिणेहिं-तीर्थङ्कर भगवानने असावज्जा=निर्दोष वित्ती= भिक्षावृत्ति-(आचार) देसिया=बताई है ॥९२॥

टीका—अहो=आश्चर्यं मोक्षसाधनहेतोः=अपवर्गसिद्धिनिमित्तभूतस्य साधु-शरीरस्य धारणाय=स्थितिमात्रार्थं साधुभ्यः=मुनीनुद्दिश्य जिनैः=तीर्थङ्करैः, असा-वद्या=दोषरहिता वृत्तिः=भिक्षालक्षणा देशिता=उपदिष्टा ॥९२॥

मूलम्-णमुक्कारेण पारित्ता, करित्ता जिणसंथवं ।
सज्झायं पट्ठवित्ताणं, वीसमेज्ज खणं मुणी ॥९३॥

छाया—नमस्कारेण पारयित्वा, कृत्वा जिनसंस्तवम् ।
स्वाध्यायं पठित्वा, विश्राम्येत् क्षणं मुनिः ॥९३॥

सान्वयार्थः-कायोत्सर्ग में पूर्वोक्त प्रकार से चिन्तन करनेके बाद मुणी=साधु नमुक्कारेण=नमस्कार मन्त्रसे पारित्ता=कायोत्सर्गको पार-समाप्त करके जिण-संथवं="लोगस्स उज्जोयगरे" इत्यादि संपूर्ण जिणसंथव (जिन भगवान्की स्तुति) करित्ता=करके तथा सज्झायं=सज्झाय-क्रमसे कम मूलशास्त्रकी पांच गाथाओंका स्वाध्याय पट्ठवित्ता=पढकर खणं=क्षणभर 'जितनेमें दूसरे मुनिराज भी शामिल हो जाते हैं' इस अभिप्रायसे कुछ देर वीसमेज्ज=विश्राम करे ॥९३॥

टीका—'णमुक्कारेण' इत्यादि। मुनिः संयतः नमस्कारेण='णमो अरिहंताणं' इत्युच्चारणलक्षणेन कायोत्सर्गमिति शेषः, पारयित्वा=समाप्य जिनसंस्तवं"लोगस्स

अहो! यह शरीर मोक्षकी सिद्धिका कारण है अतः इसकी स्थितिके लिए तीर्थङ्कर भगवानने साधुओंको निर्दोष भिक्षा लेनेका उपदेश दिया है ॥ ९२ ॥

'णमुक्कारेण' इत्यादि। मुनि 'णमो अरिहंताणं' पदका उच्चारण करके कायोत्सर्गको समाप्त करे। फिर 'लोगस्स उज्जोयगरे' इत्यादि

અહો! આ શરીર મોક્ષની સિદ્ધિનું કારણ છે, એટલે એની સ્થિતિને માટે તીર્થંકર ભગવાને સાધુઓને નિર્દોષ ભિક્ષા લેવાનો જ ઉપદેશ આપ્યો છે (૯૨)

णमुक्कारेण ઇત્યાદિ મુનિ णमो अरिहंताणं પદનું ઉચ્ચારણ કરીને કાયો-ત્સર્ગને સમાપ્ત કરે, પછી लोगस्स उज्जोयगरे ઇત્યાદિ જિનસંસ્તવ પૂર્ણ કરીને

८ १ ७ ६ २ ३ ४ १ ५
मूलम्-न सम्ममालोइय हुज्जा, पुव्विं पच्छा व ज कडं।
११ १२ १० १३ १५ १४
पुणो पडिक्कमे तस्स वोसट्टो चिंतए इमं ॥९१॥

छाया—न सम्यगालोचित भवेत्, पूर्वं पश्चाद्वा यत्कृतम्।
पुनः प्रतिक्रामेत्तस्य, व्युत्सृष्टश्चिन्तयेदिदम् ॥९१॥

सान्वयार्थः-ज=जो अतिचार पुव्विं=पहले व=तथा पच्छा=पीछे कड=किया है वह सम्म=सम्यक् प्रकारसे-अच्छी तरह याने-'पहले लगे हुए पापको पहले आलोवे और पीछे लगे हुए पापको पीछे आलोवे' इस प्रकार आलोइय=आलोचित न हुज्जा=नहीं किया हो तो तस्स=उस अतिचारको पुणो=फिरसे पडिक्कमे=आलोचे, (और) वोसट्टो=कायोत्सर्गमें रहा हुआ साधु इम=इस-'आगे कहा जानेवाला' प्रकार चिंतए=चिन्तन करे ॥९१॥

टीका—'न सम्म०' इत्यादि। यत्=यस्माद्धेतोः पूर्वं पश्चाद्वा कृतमतिचार सम्यक्=प्राक्कृत मागालोचितव्य पश्चात्कृत च पश्चादालोचितव्यमिति क्रमेण आलोचित=प्रकाशित न भवेच्चेदतः तस्य=अतिचारस्य (सम्बन्धसामान्ये षष्ठी) पुनः प्रतिक्रामेत्। व्युत्सृष्टः=कायोत्सर्गस्थः इद=वक्ष्यमाण चिन्तयेत् ॥९१॥

तदेवाऽऽह-'अहो' इत्यादि।

१ ६ ७ ८ ५ ६
मूलम्-अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया।
२ ३ ४
मोक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥९२॥

'न सम्म०' इत्यादि। आगे पीछे किये हुए अतिचारोंकी सम्यक् प्रकार अर्थात् पहले किये हुए अतिचारोंकी पहले और पश्चात् किये हुएकी पश्चात्-आलोचना न की गई हो तो अतिचारोंका पुन प्रतिक्रमण करना चाहिए और कायोत्सर्गमे स्थित होकर ऐसा (अगली गाथामें कहे जानेवाला) विचार करे ॥९१॥

उसी विचारको कहते हैं-'अहो' इत्यादि।

न सम्म० ઇત્યાદિ આગળ પાછળ કરેલા અતિચારોની સમ્યક્ પ્રકારે અર્થાત્ પહેલા કરેલા અતિચારોની પહેલા અને પાછળ કરેલા અતિચારોની પાછળ આલોચના ન કરવામા આવી હોય તો અતિચારોનો પુન પ્રતિક્રમણ કરવુ જોઈએ, અને કાયોત્સર્ગમા સ્થિત થઈને એવો (આગવી ગાથામા કહેવામા આવનારો) વિચાર કરે (૯૧)

એ વિચાર હવે કહે છે-અહો૦ ઇત્યાદિ

एवं विचिन्त्य स पूर्वं स्वभागमन्नादिकं ग्राहयितु सर्वेषु मुनिषु रत्नाधिकं प्रार्थयेत्। यदि गृह्णीयात्तर्हि सम्यक्, नाङ्गीकुर्याच्चेदेवं निवेदयेत्-"आर्यपादाः! कस्मैचिन्मुनये भवद्भिः स्वयमेव वितीर्यता"-मिति। अथ रत्नाधिको यथेच्छं दद्यात्। यदि चाऽदत्वा रत्नाधिकः 'त्वमेव यथेच्छं प्रयच्छे'-ति ब्रूयात् तदा तेन शिष्येण किं कर्त्तव्यम्? इत्याह-'साहवो' इत्यादि।

मूलम्-साहवो तो चियत्तेण, निमंतिज्ज जहक्कमं।
जइ तत्थ केइ इच्छिज्जा, तेहिं सद्धिं तु भुंजए ॥९५॥

छाया—साधून् ततः चियत्तेण, निमन्त्रयेद् यथाक्रमम्।
यदि तत्र केऽपि इच्छेयु., तैः सार्द्धं भुञ्जीत ॥९५॥

कर्मोंकी निर्जराका अभिलाषी साधु विश्राम करते समय इस मुक्ति रूप हितके करनेवाले अर्थका चिन्तन करे-यदि कोई मुनिराज मुझ पर अनुग्रह करके मेरे भागके अन्न आदिको ग्रहण करे तो मैं इस दुस्तर भवसागरसे तिर जाऊँ ॥ ९४ ॥

ऐसा विचार करके प्रथम सब मुनियोंमे जो रत्नाधिक (दीक्षामें बडे) हों उनसे अपना भाग ग्रहण करनेकी प्रार्थना करे। यदि ग्रहण करे तो अच्छा ही है। न ग्रहण करे तो ऐसा निवेदन करे-'हे भदन्त! आप ही किसी मुनिको यह आहार वितीर्ण कीजिए' फिर रत्नाधिक इच्छानुसार देदेवें। यदि वे न देकर यह आज्ञा देवें कि-'तुम्ही इच्छानुसार देदो' तो शिष्यको क्या करना चाहिए? सो बताते हैं-'साहवो' इत्यादि।

કર્મોની નિર્જરાનો અભિલાષી સાધુ વિશ્રામ કરતી વખતે આવા મુક્તિરૂપ હિતના કરવાવાળા અર્થનું ચિંતન કરે-જો કોઈ મુનિરાજ મારા પર અનુગ્રહ કરીને મારા ભાગના અન્ન આદિને ગ્રહણ કરે તો હું આ દુસ્તર ભવસાગરથી તરી જઉં (૯૪)

એવો વિચાર કરીને પહેલા બધા મુનિઓમાં જે રત્નાધિક (દીક્ષામાં વડા) હોય તેમને પોતાનો ભાગ ગ્રહણ કરવાની પ્રાર્થના કરે જો તે ગ્રહણ કરે તો સારૂ, ન ગ્રહણ કરે તો એવું નિવેદન કરે કે-'હે ભદંત! આપ જ કોઈ મુનિને આ આહાર વહેંચી આપો' પછી રત્નાધિક ઇચ્છાનુસાર આપે જો તે ન આપતા એવી આજ્ઞા કરે કે 'તમે ઇચ્છાનુસાર આપી દો' તો શિષ્યે શું કરવું જોઈએ? તે બતાવે છે-साहवो० ઇત્યાદિ

उज्जोयगरे" इत्यादिलक्षणं सम्पूर्णं कृत्वा=विधाय स्वाध्याय="धम्मो मंगलमुक्किट्ठं०" इत्यादिगाथापञ्चकादन्यूनं मूलशास्त्रं पठित्वा क्षणं=क्षणमात्रं 'मण्डलेऽन्यमुनयोऽपि समागत्य सम्मिलिता भवन्तु' इत्याशयेन विश्राम्येत्=विश्रान्तिं कुर्यात् ॥९३॥

विश्राम्यन् मुनिः किं कुर्यात् ? इत्याह—

मूलम्-वीसमंतो इमं चिंते, हियमट्ठं लाभमट्ठिओ ।

जइ मे अणुग्गहं कुज्जा, साहू हुज्जामि तारिओ ॥९४॥

छाया—विश्राम्यन् (मुनिः) इदं चिन्तयेत्, हितमर्थं लाभार्थिकः ।

यदि मम अनुग्रहं कुर्यात्, साधुर्भवामि तारितः ॥९४॥

विश्रामके समय मुनि क्या करे ? सो बताते हैं—

सान्वयार्थः-वीसमंतो=विश्राम करता हुआ लाभमट्ठिओ=कर्मनिर्जराका अभिलाषी साधु इमं=इस इसी गाथाके उत्तरार्द्धमें कहेजानेवाले प्रकार हियं= मोक्षप्राप्तिरूप हितके करनेवाले अट्ठं=भारी प्रयोजनको चिंते=चिन्तन करे, जैसे जइ=यदि-अगर साहू=कोईभी मुनिराज मे=मेरे ऊपर अणुग्गहं कुज्जा=अनुग्रह करें अर्थात् मेरे भागके आहारमेंसे कुछ आहार लेलें तो मैं तारिओ हुज्जा= इस संसार-समुद्रको तैर जाऊं पार कर जाऊं ॥९४॥

टीका—विश्राम्यन्=विश्रान्तिं कुर्वाणो लाभार्थिकः=कर्मनिर्जराभिलाषी इदं= गाथोत्तरार्द्धे वक्ष्यमाणं हितं=मुक्त्यवाप्तिरूपम् अर्थं=भाविप्रयोजनं चिन्तयेत्=विचारयेत्, यदि कोऽपि साधुः=मुनिः मम=मदुपरि अनुग्रहं=मया मदर्थं वोपनीतस्याशनादेर्ग्रहणलक्षणं कुर्यात् तर्हि अहं तारितः=दुस्तरभवसागरतः समुत्तारितो भवामीत्यर्थः ॥९४॥

जिन संस्तव पूर्ण करके 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' इत्यादि कमसे कम पांच गाथाओंकी मूल शास्त्रकी सज्झाय करके थोडी देर विश्राम करे कि जिससे अन्य मुनि भी आकर शामिल हो जावें ॥ ९३ ॥

विश्राम करता हुआ मुनि क्या करे सो कहते हैं-'वीसमंतो' इत्यादि ।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं ઇત્યાદિ ઓછામાં ઓછી પાંચ ગાથાઓની મૂળશાસ્ત્રની સજ્ઝાય કરી થોડીવાર વિશ્રામ કરે કે જેથી અન્ય મુનિ પણ આવીને શામિલ થઇ જાય (૯૩)

વિશ્રામ કરતા મુનિ શું કરે તે કહે છે-વીસમંતો० ઇત્યાદિ

छाया—अथ कोऽपि न इच्छेत्, ततो भुञ्जीत एककः ।
आलोके भाजने साधुः, यतम् अपरिशातयन् ॥९६॥

सान्वयार्थः—अह=अथ-यदि कोइ=कोई न इच्छिज्जा=आहार लेना नहीं चाहे तो तओ=फिर साहू=वह साधु एगओ=अकेला-द्रव्यसे स्वय एक ही, भावसे राग-द्वेष-सग-रहित आलोए=प्रकाशयुक्त-चौडे मुहवाले भायणे=पात्रमें जय=यतनापूर्वक अर्थात् माडलेके दोषोको टालकर अपरिसाडिय=सीथ-कणका विन्दु मात्र भी आहार नहीं गिराता हुआ भुजिज्ज=आहार करे ॥९६॥

टीका—'अह' इत्यादि। यदि कोऽपि ग्रहीतु नेच्छेत् तदनन्तर साधु एककः=द्रव्येण स्वयमेव, भावेन रागद्वेषरहितः आलोके प्रकाशमाने भाजने मशकादि-क्षुद्रजन्तवो यथा दृष्टिपथमागच्छेयुस्तदर्थमिति भावः। यत=सयतन मण्डलदोष-भावानुसन्धानपूर्वकम् अपरिशातयन् सिक्थादिकमविकिरन् भुञ्जीत ॥९६॥

२ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ ११ १०
मूलम्-तित्तग च कडुय च कसायं, अविल च महुर लवणं वा।
१२ १४ १३ १५ १६ १७ १
एय लद्धमन्नट्ठपउत्तं, महुघय व भुंजिज्ज सजए ॥९७॥

छाया—तिक्तक च कटुक च कषायम्, अम्ल च मधुर लवण वा ।
एतल्लब्धमन्यार्थप्रयुक्त, मधु-घृतमिव भुञ्जीत सयतः ॥९७॥

सान्वयार्थः—वह आहार यदि—तित्तग=तीखा कडुय=कडवा च=और कसाय=कषायला च=और अविल=खट्टा च=और महुर=मीठा वा=अथवा

'अह' इत्यादि। यदि कोई भी मुनि आहार ग्रहण करने की इच्छा प्रकाशित न करे अर्थात् न लें तो अकेला रागद्वेपरहित वह साधु, ऐसे पात्रमे भोजन करे जिसमे प्रकाश पड रहा हो। प्रकाश-युक्त पात्रमें आहार करनेका विधान इसलिए किया है कि मच्छर आदि सूक्ष्म जन्तु दीख सके। मण्डल दोषोंका विचार करता हुआ सीथ मात्र भी अन्नादि न विखेरता हुआ आहार करे ॥ ९६ ॥

અહ૦ ઇત્યાદિ જો કોઈ પણ મુનિ આહાર ગ્રહણ કરવાની ઇચ્છા પ્રકાશિત ન કરે અર્થાત્ ન લે તો એકલા—રાગદ્વેષરહિત તે એવા પાત્રમા ભેજન કરે કે જેમા પ્રકાશ પડતો હોય પ્રકાશયુકત પાત્રમા આહાર કરવાનું વિધાન એટલા માટે કર્યું છે કે મચ્છર આદિ સૂક્ષ્મ જતુ દેખી શકાય મડલ દોષોનો વિચાર કરતા એક કણ જેટલુ પણ અન્ન ન વેરાવા દેતા આહાર કરે (૯૬)

पूर्वोक्त प्रकार से चिन्तन करके अपने हिस्से का अशनादिको लेनेके लिये सब मुनियोंमें से रत्नाधिक-दीक्षा में बड़े मुनिसे पहले प्रार्थना करे, यदि वे लें तो अच्छा ही है, अगर वे न लें तो उनसे कहे-'हे भगवन्! आपही अपने हाथ से किसी दूसरे सन्त को दीजिये'। ऐसा कहने पर यदि वे अपने हाथ से किसीको दें तो ठीक ही है, यदि खुद न देकर उसीसे यह दें कि 'तुमही तुम्हारी इच्छाके अनुसार जो लेवे उसको दे दो' तब उसे क्या करना चाहिये, सो बताते हैं—

सान्वयार्थः-तो=इस प्रकार गुरु महाराजकी आज्ञा प्राप्त होने पर वह साधु साहवो=सब सन्तोंको चियत्तेण=त्याग बुद्धिसे अर्थात् उदार चित्तसे जहक्कमं= रत्नाधिकके क्रमानुसार निमंतिज्ज=निमन्त्रण करे-आहार थामे, जइ=यदि-अगर तत्थ=उनमेंसे केइ=कोई साधु इच्छिज्जा=आहार लेना चाहें तो (उन्हें देकर) तेहिं सद्धिं तु=उनके साथ बैठकर भुंजए=खुद भी आहार करे ॥९५॥

टीका—तो=ततः गुरोरादेशाऽनन्तरम् असौ साधून् चियत्तेण=देशीयशब्दोऽयम्' परमप्रीत्या उदारचेतसेत्यर्थ, यथाक्रम=रत्नाधिकक्रममनुसृत्य निमन्त्रयेत्= स्वभागग्रहणाय प्रार्थयेत्-'इद गृहीत्वाऽनुगृह्यता'-मिति वदेदित्यर्थः। यदि तत्र= मुनीना म ये केऽपि मुनय इच्छेयु'=ग्रहीतुमभिलषेयुस्तदा तेभ्योऽपि वितीर्य तै' सार्द्धं स्वयमपि भुञ्जीत='चपड चपडे' ति शब्दमकुर्वन्नभ्यवहरेत् ॥९५॥

१ २ ३ ४ ५ १२ १३
मूलम्-अह कोइ न इच्छिज्जा, तओ भुंजिज्ज एगओ ।
८ ६ ९ १० ११
आलोए भायणे साहू, जयं अपरिस्साडियं ॥ ९६ ॥

गुरुकी आज्ञा मिलनेके अनन्तर प्रसन्न चित्तसे उदारताके साथ दीक्षामें बड़े-छोटेके क्रमसे साधुओंको अपना भाग ग्रहण करनेकी प्रार्थना करे, अर्थात् 'यह आहार ग्रहण करनेका अनुग्रह कीजिए' ऐसा कहे। उन मुनियोंमेंसे कोई ग्रहण करनेकी इच्छा करें तो उन्हें वितीर्ण करके उनके साथ आप भी चपड चपड शब्द न करता हुआ आहार करे ॥ ९५ ॥

ગુરૂની આજ્ઞા મળ્યા પછી પ્રસન્ન ચિત્તથી ઉદારતાની સાથે દીક્ષામા મોટા નાનાના ક્રમે કરીને સાધુઓને પોતાનો ભાગ ગ્રહણ કરવાની પ્રાર્થના કરે અર્થાત 'આ આહાર ગ્રહણ કરવાનો અનુગ્રહ કરો' એમ કહે એ મુનિઓમાથી કોઈ ગ્રહણ કરવાની ઇચ્છા કરે તો તેમને વહેંચી આપીને તેમની સાથે પોતે પણ ચપડચપડ અવાજ કર્યા વિના આહાર કરે (૯૫)

यद्वा अर्द्धस्विन्नमाषः 'उडदवाकुला' इति भाषाप्रसिद्ध । एतत् पूर्वोक्तं सर्वम् उत्पन्न=शास्त्रमर्यादयोपलब्ध, प्रासुक=निर्जीव, मुधालब्ध=मन्त्रतन्त्रादिप्रकारमन्तरेण प्राप्त, तद् यदि अल्प=स्वल्प सरसमन्नादिकं, वा=अथवा बहु प्रचुरम् असारमशनादिकम्, उपलक्ष्येति शेषः, नातिहीलयेत्=न निन्देत् । अल्पीयसि सरसवस्तुनि लब्धे-"कथमेतावतैवौदरपूर्त्तिर्भवेत्" इति, एवमसारवस्तुनि प्रचुरतरे लब्धे सति "किमनेन प्रचुरतरेणापि निष्प्रयोजनेने"-त्येवरूपा निन्दा न कुर्यादिति हृदयम् । किन्तु मुधाजीवी=मुधा-व्यर्थ-निष्प्रयोजन शरीरेन्द्रियपुष्टिप्रयोजनविकल जीवितु शीलमस्येति सः, सयमयात्रानिर्वाहार्थमेव भिक्षाग्रहणशील इति भावः । यद्वा मुधाजीवी=निर्दोषभिक्षाजीवी-जात्याद्यनाविष्करणपूर्वकभिक्षाग्राहक इत्यर्थः, दोषवर्जित=सयोजनादिमण्डलदोषा यथा न भवेयुस्तथा भुञ्जीत । 'उत्पन्न' इत्यनेन

भोजन । ये सब यदि शास्त्रोक्त विधिसे प्राप्त हुए हों, प्रासुक हों, मत्र-तत्र आदिका प्रयोग किये विना मिले हों, थोडे हों या बहुत हों अर्थात् सरस अन्नादि थोड़ा हो और नीरस आहार बहुत हो तो मुधाजीवी-अर्थात् सयमयात्राके निर्वाहके लिए जीवन धारण करनेवाला, अथवा निर्दोष अर्थात् जाति-आदिको न प्रगट करके भिक्षा लेनेवाला साधु उस आहारकी अवहेलना न करे । तात्पर्य यह है कि-सरस आहार कम मिले तो ऐसा न कहे कि-'इतने थोडे आहारसे उदरपूर्त्ति कैसे होगी ।' नीरस आहार अधिक मिले तो ऐसा न कहे कि-'इस बहुतेरे व्यर्थ आहारसे क्या लाभ ? ।' इस प्रकार आहारकी निन्दा न करे, किन्तु आहारके सयोजना आदि मण्डल दोषोंको टाल कर भोगे।

અથવા કળથી યા અડદના બાકળાનું ભોજન, એ સર્વ જો શાસ્ત્રોક્ત વિધિથી પ્રાપ્ત થયા હોય, પ્રાસુક હોય, મત્રતત્ર આદિનો પ્રયોગ કર્યા વિના મળ્યા હોય, થોડા હોય યા વધારે હોય, અર્થાત્ સરસ અન્નાદિ થોડુ હોય અને નીરસ આહાર વધારે હોય, તો મુધાજીવી-અર્થાત સયમયાત્રાના નિર્વાહને માટે જીવન ધારણ કરનારો અથવા નિર્દોષ અર્થાત્ જાતિ આદિને પ્રકટ કર્યા વિના ભિક્ષા લેનારો સાધુ એ આહારની અવહેલના કરે નહિ, તાત્પર્ય એ છે કે-સરસ આહાર થોડો મળે તો એમ ન કહે કે 'આટલા થોડા આહારથી ઉદરપૂર્તિ કેવી રીતે થશે ?' નીરસ આહાર વધારે મળે તો એમ ન કહે કે 'આ ઘણા બધા વ્યર્થ આહારથી શો લાભ ?' એ પ્રમાણે આહારની નિન્દા ન કરે, પરન્તુ આહારના સયોજના આદિ મડળ દોષોને ટાળીને ભોગવે

छाया—अरस विरस वाऽपि, सूचित वा असूचितम् ।
आर्द्र वा यदि वा शुष्क, मन्थु-कुल्माष-भोजनम् ॥९८॥
उत्पन्न नातिहीलयेत्, अल्प वा बहु प्रासुकम् ।
मुधालब्ध मुधाजीवी, भुञ्जीत दोषवर्जितम् ॥९९॥

सान्वयार्थः-अरस=नमक आदि रसरहित वावि=तथा विरस=अधिक दिनोंकी बनी हुई विरस-बासी-सूखी-रोटी आदि या पुराने चाँवल आदिका भोजन सूइय=हींग आदिका बघार (छौंक) दिया हुआ वा=अथवा असूइय= नहीं बघार दिया हुआ शाक आदि उल्लं=गीला करबा, राइता आदि वा=तथा सुक्क=सूखा-भुने हुए चने मूगडे-आदि जइवा=अथवा मथुकुम्मासभोयण=बेरके चूरेका भोजन या कुलथीका भोजन अथवा उड़दका बाकुला (यह पूर्वोक्त सब प्रकारका अशनादि) उप्पण्ण=जो गोचरीके समय शास्त्रमर्यादासे मिल गया वह अप्प=थोड़ा हो वा=या बहु=बहुत हो उसकी नाइहीलिज्जा=अवहेलना न करे, किन्तु फासुय=प्रासुक-अचित्त और मुहालद्धं=निष्काम-बिना किसी प्रत्युपकारके प्राप्त हुए-उस अशनादिको मुहाजीवी=निष्काम-सिर्फ सयम यात्राका निर्वाहसे जीनेवाला अर्थात् निरपेक्ष भिक्षा लेनेवाला साधु दोसवज्जिय=भोजनके सयोजनादि दोषोको टालकर भुजिज्जा=भोगवे ॥९८॥९९॥

टीका-'अरस' इत्यादि, 'उप्पण्ण' इत्यादि च । अरस=लवणादिरसरहितम्, अप्राप्तरस वालचणकादिनिष्पादित वा, अपिवा विरस=चिरकालनिष्पादितत्वेन विगतरस, पुराणौदनादिक वा, सूचित=हिङ्ग्वादिसस्कृत वा=अथवा असूचित= तद्वर्जितम्, आर्द्र=करम्भादिक, शुष्क=भर्जितचणकादिकम् । मन्थुकुल्माषभोजन= मन्थुश्च कुल्माषश्चाऽनयो. समाहारे मन्थुकुल्माष, तद्, भुज्यते यत्तद्भोजन, मन्थुकु ल्माष च तद्भोजन चेति विग्रह., तत्र मन्थु.=बदरचूर्णादिकम्, कुल्माषः=कुलत्थः,

'अरस' इत्यादि, 'उप्पण्ण' इत्यादि च । नमकरहित तथा बाल चणक आदि अरस या बहुत पुराना ओदन आदि विरस, हींग आदि द्वारा छौंका हुआ या न छौंका हुआ, गीला करबा आदि, सूखे भुने हुए चने आदि, बेरका चूर्ण आदि, अथवा कुलथी या उड़दके बाकलाका

અરસ ઈત્યાદિ, તથા ઉપ્પણ્ણ૰ ઈત્યાદિ મીઠાથી રહિત તથા બાલ ચણા આદિ અરસ યા બહુ જૂનો ઓદન-આદિ વિરસ, હીંગ આદિથી વઘારેલુ યા ન વઘારેલુ, ઢીલો કરબો આદિ, સૂકા-ભૂંજેલા ચણા આદિ, બોરનું ચૂર્ણ આદિ

रखकर-निरपेक्ष-लेनेवाले भी दुल्लहा=दुर्लभ हैं, क्योंकि मुहादाई=निष्काम देनेवाले और मुहाजीवी=निष्काम-निरपेक्ष लेनेवाले दोवि=ये पूर्वोक्त दोनो ही सुग्गइ=मोक्षगतिको गच्छंति=प्राप्त होते हैं। श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं कि हे जम्बू! त्ति=भगवान् महावीर स्वामीने जैसा फरमाया है वैसा ही तुझे बेमि=मैं कहता हूं ॥१००॥

॥इति श्रीदशवैकालिक सूत्रके पाचवें अध्ययनके पहले उद्देशका सान्वयार्थ सपूर्ण॥

टीका—'दुल्लहाओ' इत्यादि । मुधादातारः=प्रत्युपकारानभिलाषिणो दायकाः दुर्लभाः=दुष्प्रापास्तादृशाना विरलत्वात्, मुधाजीविनोऽपि=दातृकार्यानपेक्षनिरपेक्षभिक्षाग्राहिणोऽपि दुर्लभाः, मुधादातारः मुधाजीविनश्च द्वावपि=दाता भिक्षुश्च उभावप्युक्तविधौ सुगतिं=सिद्धगतिं गच्छतः=प्राप्नुतः। 'मुधादातारः' 'मुधाजीविनः' इत्यत्र बहुवचनं व्यक्तिविवक्षया। 'द्वावपि' इत्यत्र द्विवचनं तु मुधादातृत्व-मुधाजीवित्वोभयधर्मगतद्वित्वसंख्याविवक्षयेति बोध्यम्॥ इति ब्रवीमीति प्राग्वत् ॥१००॥

। इति श्री दशवैकालिकसूत्रस्याऽऽचारमणिमञ्जूषाख्याया व्याख्याया पञ्चमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकः समाप्तः ॥ ५-१ ।

'दुल्लहाओ' इत्यादि। प्रत्युपकार (बदला) की आशा न रखनेवाले दाता दुर्लभ हैं, और दाताका कार्य न करके भिक्षा ग्रहण करनेवाले साधु भी विरले होते हैं। प्रत्युपकारकी चाह न रखनेवाले दाता और किसीका कार्य बिना किये भिक्षा ग्रहण करनेवाला आत्मार्थी साधु, इन दोनोंको मोक्षगतिकी प्राप्ति होती है।

श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं-हे जम्बू! चरम जिनेश्वर भगवान् महावीर स्वामीने जैसा उपदेश दिया है वैसा मैंने कहा है ॥१००॥

इति दशवैकालिक सूत्रके पाँचवें अध्यनके पहले उद्देशका हिन्दी-भाषानुवाद समाप्त ॥५-१ ॥

दुल्लहाओ० ઇત્યાદિ નિષ્કામ પ્રત્યુપકાર (બદલા)ની આશા ન રાખનાર દાતા દુર્લભ છે અને નિષ્કામ-દાતાનું કાર્ય ન કરતા ભિક્ષા ગ્રહણ કરનાર-સાધુ પણ વિરલ જ હોય છે પ્રત્યુપકારની ઇચ્છા ન રાખનાર દાતા અને કોઇનું કાર્ય કર્યા વિના ભિક્ષા ગ્રહણ કરનાર આત્માર્થી સાધુ, એ બેઉને મોક્ષ ગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે

શ્રી સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે કે-હે જમ્બૂ! ચરમ જિનેશ્વર ભગવાન્ મહાવીર સ્વામીએ જેવો ઉપદેશ આપ્યો છે તેવો જ મેં કહ્યો છે (૧૦૦)

ઇતિ દશવૈકાલિકસૂત્રના પાચમા અધ્યયનનો પહેલા ઉદ્દેશાનો ગુજરાતી-ભાષાનુવાદ સમાપ્ત (૫-૧)

शास्त्रमर्यादयैव गीतार्थेनाऽऽहारादि ग्राह्यमिति सूचितम् । 'फासुय' अनेन सचित्तमचित्त वेति परीक्ष्य ग्रहीतव्यमिति दर्शितम् । 'मुहालद्ध' इतिपदेन दातुरुपकारं विधाय भिक्षाग्रहणे आधाकर्मादयो बहवो दोषाः समापतन्तीति तथा नोपादेयमिति प्रकटितम् । 'दोसवज्जिय' इतिपदेन निर्दोषभिक्षामाप्तावपि मण्डलदोषवत्त्वेन सदोषत्वं दुर्निवारमिति मण्डलदोषरहितं भोक्तव्यमिति प्रादुष्कृतम् ॥९८॥९९॥

मूलम्-दुल्लहाओ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी, दोवि गच्छंति सुग्गइं ॥१००॥
॥ तिबेमि ॥

छाया—दुर्लभा मुधादातारः, मुधाजीविनोऽपि दुर्लभाः ।
मुधादातारः मुधाजीविनः, द्वावपि गच्छतः सुगतिम् ॥१००॥
इति ब्रवीमि ॥

सान्वयार्थः-मुहादाई=निष्काम-प्रत्युपकारकी आशा न रखकर-देनेवाले दुल्लहाओ=दुर्लभ हैं और मुहाजीवीवि=निष्काम-दाताके कार्यकी अपेक्षा न

'उप्पन्नं' पदसे यह सूचित किया है कि गीतार्थ साधुको शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार ही आहार ग्रहण करना चाहिए । 'फासुय' पदसे सचित्त-अचित्तकी परीक्षा करके ग्रहण करना द्योतित किया है । 'मुहालद्ध' पदसे यह दर्शाया है कि दाताका उपकार करके भिक्षा ग्रहण करनेसे आधाकर्म आदि बहुतसे दोष आते हैं, अतः ऐसी भिक्षा नहीं लेनी चाहिए । 'दोसवज्जिय' पदसे यह प्रगट किया है कि निर्दोष भिक्षा उपलब्ध होजाने पर भी मण्डल दोष लगनेसे वह भिक्षा अवश्य दूषित होजाती है, इसलिए उनका परिहार करके ही आहार करना चाहिए ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

उप्पन्न शब्दथी એમ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે ગીતાર્થ સાધુએ શાસ્ત્રની મર્યાદાને અનુસાર જ આહાર ગ્રહણ કરવો જોઈએ फासुयं શબ્દથી સચિત્ત અચિત્તની પરીક્ષા કરીને ગ્રહણ કરવાનુ કહેવામા આવ્યુ છે मुहालद्ध શબ્દથી એમ દર્શાવવામા આવ્યુ છે કે દાતાનો ઉપકાર કરીને ભિક્ષા ગ્રહણ કરવાથી આધાકર્મ આદિ ઘણા દોષો લાગે છે, તેથી એવી ભિક્ષા ન લેવી જોઈએ दोसवज्जिय શબ્દથી એમ બતાવવામા આવ્યુ છે કે નિર્દોષ ભિક્ષા ઉપલબ્ધ થતા પણ મ ડલ દોષ લાગવાથી એ ભિક્ષા અવશ્ય દૂષિત થઈ જાય છે, તેથી એનો પરિહાર કરીને જ આહાર કરવો જોઈએ (૯૮-૯૯)

निष्पादित शीतमुष्ण वाऽन्नम्, अम्लतक्रपाचितशलुचणकचूर्णनिष्पादित शीतमुष्ण वा शाकविशेषादिक, पर्युषिततक्रादिरूप पान च, तेषाममनोज्ञगन्धवत्त्वादिति भावः। सुगन्ध=सुरभिगन्धयुक्त वा घृतपूरपायसादि तस्यैलालवङ्गकेसरकर्पूरादिमनोज्ञगन्धवत्त्वादिति भावः। सर्व=मनोज्ञामनोज्ञरूपं सकल भुञ्जीत न तु मुञ्चेत्=परित्यजेत्-नावशेषयेदिति भावः ॥ १ ॥

मूलम्-सेज्जा[1] निसीहियाए,[2] समावन्नो[5] य[4] गोयरे[3] ।
अयावयट्ठा[6] भुच्चाणं,[7] जइ[8] तेण[9] न[10] सथरे[11] ॥ २ ॥
तओ[12] कारणमुप्पण्णे,[13] भत्तपाण[14] गवेसए[20] ।[21]
विहिणा[18] पुव्वउत्तेण[15] इमेणं[16] उत्तरेण[17] य[18] ॥ ३ ॥

छाया—शय्यायां नैषेधिक्यां, समापन्नश्च गोचरे ।
अयावदर्थं भुक्त्वा, यदि तेन न सस्तरेत् ॥ २ ॥
ततः कारणे उत्पन्ने, भक्त-पान गवेषयेत् ।
विधिना पूर्वोक्तेन, अनेन उत्तरेण च ॥ ३ ॥

सान्वयार्थः—सेज्जा=वसति-उपाश्रय-में निसीहियाए=आहार करनेके स्थान पर य=अथवा गोयरे=भिक्षाचरीमें समावन्नो=प्राप्त हुआ मुनि अयावयट्ठा=जरूरीसे कम अर्थात् थोड़ा भुच्चाण=खाकर-खालेनेपर जइ=यदि-अगर तेण=उस अशनादिसे न सथरे=न सरे अर्थात् सयमयात्राका निर्वाहके लिए पर्याप्त -पूरा न हो तओ=तो कारण=क्षुधा वेदनीयकी शान्ति न होनेरूप कारण के उप्पण्णे=उत्पन्न होनेपर साधु पुव्वउत्तेण=पूर्वोक्त-" सपत्ते भिक्खकालम्मि"

खट्टी छाछकी बनी-हुई ठढी या गर्म कढी आदि शाक, पर्युषित (बासी) खट्टी छाछ आदि पान, ये अमनोज्ञ गन्धवाले होते हैं। और घेवर पायस आदि, एलची लवग केसर आदिके मिश्रित होनेसे मनोज्ञ गन्धवाले होते हैं, इन सबको समभावसे भोगवे ॥१॥

ચણા આદિની બનાવેલી ઠંડી યા ગરમ રોટલી આદિ અન્ન, ખાટી છાશની બનેલી ઠંડી યા ગરમ કઢી આદિ શાક, પર્યુષિત ખાટી છાશ આદિ પાન, એ બધા અમનોજ્ઞ ગંધવાળા હોય છે અને ઘેબર, પાયસ (દૂધપાક) આદિ, એલચી, લવીંગ કેસર આદિથી મિશ્રિત હોઇને મનોજ્ઞ ગંધ વાળા હોય છે, એ બધાને સમભાવે ભોગવે (૧)

॥ अथ पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ॥

प्रथमोद्देशकथितपिण्डैषणाया अवशिष्टविधिमाह–'पडिग्गह' इत्यादि।

मूलम्–पडिग्गह संलिहित्ताणं, लेवमायाइ संजए।
दुगंधं वा सुगंधं वा, सव्वं भुंजे न छड्डए ॥ १ ॥

छाया—प्रतिग्रहं संलिह्य, लेपमर्यादया संयतः।
दुर्गन्धं वा सुगन्धं वा, सर्वं भुञ्जीत न छर्दयेत् ॥ १ ॥

सान्वयार्थः–पडिग्गहं=पात्रको लेवमायाए=लेपकी मर्यादासे अर्थात् जब तक छाछ आदिका लेप लगा रहे तब तक संलिहित्ताणं=अंगुलीसे पोंछकर संजए=साधु दुगंधं वा=अनिष्ट गन्धवाला हो चाहे सुगंधं वा=सुरभि गन्धवाला पदार्थ हो उस सव्वं=सबको भुंजे=भोगवे; किन्तु न छड्डए=कुछभी न छोडे जूठन न डाले ॥१॥

टीका—प्रतिग्रहं=पात्रं लेपमर्यादया=लेपं मर्यादीकृत्य यथा लेपसम्बन्धः पात्रे नावतिष्ठेत तथा संलिह्य पात्रस्थं तक्रादिलेपमङ्गुल्यादिना निश्शेषं प्रोञ्छ्य संयतः=मुनिः, दुर्गन्धम्=अनिष्टगन्धयुक्तं पुरातनगोधूमवर्जरिकावल्लचणकादि

। पांचवाँ अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

प्रथम उद्देशमें कही हुई विधिके अतिरिक्त-अवशिष्ट पिण्डैषणाकी विधि इस दूसरे उद्देशमें कहते हैं–'पडिग्गहं' इत्यादि।

आहार करनेके पात्रमें जो लेप लगा रह जाय उसे अंगुली–आदि द्वारा पोंछकर मुनि अमनोज्ञ गन्ध या मनोज्ञ गन्धवाले समस्त अन्न पानको भोगे, उसे छोडे नहीं, अर्थात् सीथ मात्र भी जूठा न डाले। पुराने गेहूँ, बाजरे, बाल, चने आदिकी बनी हुई ठंडी या गर्म रोटी आदि अन्न,

અધ્યયન પાંચમું–ઉદ્દેશ બીજો

પ્રથમ ઉદ્દેશમાં કહેલી વિધિ ઉપરાંત અવશિષ્ટ પિંડૈષણાની વિધિ આ બીજા ઉદ્દેશમાં કહે છે—पडिग्गहं ઈત્યાદિ

આહાર કરવાના પાત્રમાં જે લેપ લાગેલો રહી જાય, તેને આંગળી આદિ વડે લૂછીને મુનિ અમનોજ્ઞ ગંધ યા મનોજ્ઞ ગંધવાળાં બધાં અન્નપાનને ભોગવે, તેને છોડે નહિ, અર્થાત્ જરા પણ બાકી ન રાખે. જૂના ઘઉં, બાજરી, વાલ,

तमेव विधिमुपदर्शयन् कालयतनामाह-'कालेण' इत्यादि ।

मूलम्-कालेण णिक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे ।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ॥ ४ ॥

छाया-कालेन निष्क्रामेद् भिक्षुः, कालेन च प्रतिक्रामेत् ।
अकालं च विवर्ज्य, काले कालं समाचरेत् ॥ ४ ॥

अब भिक्षा लेने की विधि बताते हैं—

सान्वयार्थः-भिक्खू=मुधाजीवी मुनि कालेण=गोचरीके समयसे-जिस देशमें जो समय भोजनका हो उस समयके होनेसे णिक्खमे=भिक्षाके लिए जावे, य= और कालेण=समयसे ही-वापस आनेका उचित समय हो जानेसे पडिक्कमे= वापस लौट आवे, च=और अकालं=भिक्षाके अनुचित समयको विवज्जित्ता= छोडकर काले=उचित समयमें कालं=भिक्षादिक समायरे=आचरे-गोचरीके लिए घूमे ॥ ४ ॥

टीका-भिक्षुः=मुधाजीवी मुनिः कालेन=भिक्षोचितसमयेन यस्मिन् देशे यो गृहस्थानां भोजनसमयः स एव भिक्षूणां भिक्षाकालस्तेनेत्यर्थः निष्क्रामेत्=निर्गच्छेत्, भिक्षायै इति शेषः, कालेनैव=प्रत्यागमनोचितसमयेनैव, यथा स्वाध्यायप्रतिबन्धो न भवेत् तथा भिक्षां गतस्य साधोः परावर्त्तनसमयो निर्दिष्टस्तेनैवेति भावः । (करणे सहार्थे वा तृतीया) । 'चकारोऽत्र 'एव'-कारार्थकः' प्रतिक्रामेत्=प्रत्यागच्छेत् । अकालं=भिक्षानुचितसमयं विवर्ज्य=परित्यज्य काले=भिक्षोचितवेलायां कालं=लक्षणया तत्कालोचितकृत्यं भिक्षादिकं समाचरेत्=भिक्षार्थं

उसी विधिको दिखाते हुए कालकी यतना कहते हैं-'कालेण' इत्यादि ।

जिस देशमें गृहस्थोंके भोजनका जो समय हो वही समय भिक्षुको भिक्षाके लिए उचित है, अत एव भिक्षाके लिए उसी समय जाना चाहिए और गोचरीके लिए गये हुए साधुको ऐसे उचित समय पर लौट आना चाहिए, जिससे स्वाध्याय आदि क्रियाओंमें अन्तराय न पडे।

એ વિધિને બતાવતા કાળની યતના કહે છે -'કાલેણ૦' ઇત્યાદિ

જે દેશમાં ગૃહસ્થોના ભોજનનો જે સમય હોય તે સમય ભિક્ષાને માટે ઉચિત છે, તેથી ભિક્ષાને માટે તે સમયે જવું જોઈએ અને ગોચરીને માટે ગયેલા સાધુએ એવા ઉચિત સમયે પાછા ફરવું જોઈએ કે જેથી સ્વાધ્યાય આદિ ક્રિયાઓમાં અંતરાય ન પડે તથા જે સમય ભિક્ષાને

इत्यादिरूप विधिसे च=तथा इमेण=इस उत्तरेणं=आगे कहे जानेवाली-"कालेण णिक्खमे भिक्खू" इत्यादिरूप विधिसे भत्तपाण=आहार-पानी गवेसए=गवेषे अर्थात् भिक्षा लेनेके लिए जावे ॥२॥३॥

टीका—'सेज्जा' इत्यादि, 'तओ' इत्यादि च। शय्याया=वसती, नैषेधिक्या=निषदनस्थाने स्वाध्यायभूमिकायामित्यर्थः, गोचरे=भिक्षाचर्याया च=वा समापन्न =सम्प्राप्तो मुनिः, उपलब्धमन्नादिकम् अयावदर्थम्=अपरिसमाप्तम् अल्प=क्षुधोपशमनानर्हमित्यर्थः संयमनिर्वाहार्थं यावताऽन्नादिकेन भाव्य तावन्नेति यावत्, भुक्त्वा यदि तेन भोजनेन न संस्तरेत्=संयमयात्रा निर्वोढु न शक्नुयात् ।२।

तत =तदनन्तर कारणे=प्रयोजने आर्षत्वात्सप्तम्यर्थे प्रथमा, उत्पन्ने सति=क्षुधावेदनोपशमनाभावे पूर्वोक्तेन=" संपत्ते भिक्खकालम्मि " इत्यादिरूपेण अनेन उत्तरेण=" कालेण णिक्खमे भिक्खू० " इत्यादिवक्ष्यमाणलक्षणेन विधिना=प्रकारेण भक्तपान गवेषयेत्=अन्वेषयेत् पुनर्भिक्षार्थं गच्छेदिति सूत्रार्थः ।३।

'सेज्जा' इत्यादि, 'तओ' इत्यादि । उपाश्रयमें बैठनेके स्थानमें अर्थात् स्वाध्याय भूमिमे तथा गोचरीमें गए हुए मुनिको अल्प, अर्थात् क्षुधाकी शान्ति न हो सकने योग्य अन्न आदि मिला हो और उससे संयमयात्राका निर्वाह न हो सके, अर्थात् लाया हुआ आहार पर्याप्त न हो तो ऐसा कारण उत्पन्न होने पर, अर्थात् क्षुधावेदनीयके शान्त न होने पर "संपत्ते भिक्खकालम्मि" इत्यादि पूर्वोक्त विधिसे, तथा "कालेण णिक्खमे भिक्खू" इस गाथासे प्रारम्भ करके आगे बताई जानेवाली विधिसे भक्त पानकी गवेषणा करे, अर्थात् भिक्षाके लिए फिर गमन करे ॥ २ ॥ ३ ॥

सेज्जा० ઇત્યાદિ, તથા तओ० ઇત્યાદિ ઉપાશ્રયમા બેસવાના સ્થાનમા અર્થાત્ સ્વાધ્યાયભૂમિમા તથા ગોચરીમા ગએલા મુનિને અલ્પ અર્થાત્ ક્ષુધાની શાંતિ ન થઇ શકે અર્થાત્ લાવેલો આહાર પૂરતો ન હોય, તો એવું કારણ ઉત્પન્ન થતા અર્થાત્ ક્ષુધાવેદનીય શાન્ત ન થવાને લીધે संपत्ते भिक्खकालम्मि ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત વિધિથી, તથા कालेण णिक्खमे भिक्खू એ ગાથાથી પ્રારંભ કરીને આગળ બતાવવામા આવનારી વિધિથી ભક્તપાનની ગવેષણા કરે અર્થાત્ ભિક્ષાને માટે ફરીથી ગમન કરે (૨-૩)

पडिलेहसी=नहीं देखते, अतः अप्पाणं=आत्माको किलामेसि=किलामना-खेद-पहुचाते हो च=और सनिवेस=गामकी गरिहसि=निन्दा करते हो। तात्पर्य यह हुआ कि गोचरीका समय हुए विना घूमनेसे साधु भगवानकी आज्ञाका विराधक होता है, और दीनता प्रगट करनेके कारण उसके चारित्रमें मलिनता होती है; अतः जिस देशमें जो भिक्षाका समय हो उसी समयमें साधुको भिक्षाके लिए जाना चाहिये ॥५॥

टीका—हे भिक्षो ! त्वम् अकाले=असमये चरसि=भिक्षार्थं गच्छसि किन्तु कालं=भिक्षोचितसमयं न प्रत्युपेक्षसे=नाद्रियसे, तेन च हेतुनाऽऽत्मानं क्लमयसि=पीडयसि भिक्षालाभाभावेन भ्रमणाधिक्येन चेति भावः। सनिवेशं=ग्रामं च पुनः गर्हसे=निन्दसि। भगवदाज्ञाविराधकत्वेन दैन्यप्रकाशनेन च चारित्रमालिन्यं जायते, ततोऽनुचितकाले भिक्षार्थं न गन्तव्यमिति ॥ ५ ॥

मूलम्-सइ काले चरे भिक्खू, कुज्जा पुरिसकारियं ।
अलाभु-त्ति न सोइज्जा, तवु-त्ति अहियासए ॥ ६ ॥

छाया—सति काले चरेद् भिक्षुः, कुर्यात्पुरुषकारम् ।
अलाभ इति न शोचेत्, तप इति अधिसहेत ॥ ६ ॥

सान्वयार्थः-भिक्खू=साधुको काले=भिक्षाका समय सइ=होनेपर चरे=गोचरीके लिए घूमना चाहिए और पुरिसकारियं=उत्साह पूर्वक घूमनेरूप

हे भिक्षु ! आप असमयमे भिक्षाके लिए जाते हैं, समयका खयाल नहीं रखते। इसी कारण अधिक भ्रमण करनेसे या भिक्षाके न मिलनेसे तुम अपनी आत्माको पीडित करते हो, और ग्राम नगरकी निन्दा करते हो। अकालमें भिक्षाके लिये गमनरूप भगवानकी आज्ञाकी विराधना करनेसे तथा दीनता प्रगट करनेसे चारित्रमें मलिनता आती है इसलिए अनुचित समयमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिए ॥५॥

હે ભિક્ષુ ! આપ અસમયમા ભિક્ષાને માટે જાઓ છો, સમયનો ખ્યાલ રાખતા નથી એ કારણે વધારે ફરવાથી યા ભિક્ષા ન મળવાથી તમે તમારા આત્માને પીડિત કરો છો અને ગ્રામ નગરની નિંદા કરો છો અકાળે ભિક્ષાને માટે જવારૂપી ભગવાનની આજ્ઞાની વિરાધના કરવાથી તથા દીનતા પ્રકટ કરવાથી ચારિત્રમા મલિનતા આવે છે, તેથી અનુચિત સમયે ભિક્ષાને માટે જવુ ન જોઈએ (૫)

क्रामेदित्यर्थः। बहुशः कालशब्दोपादानं 'मुनीनां यथाकालमेव सकलं कृत्यं विधेय'-मिति ध्वनयति ॥ ४ ॥

अकालचारित्वेनाऽप्राप्तभिक्षो भिक्षुः केनचित्साधुना "भोः! भिक्षा त्वया लब्धा न वा" इति पृष्टो वदति-"कुतोऽत्र मितम्पचानां हीनदीनानां ग्रामे भिक्षालाभः?" तदाऽसौ अकालचारिणं कथयति-'अकाले' इत्यादि।

मूलम्-अकाले चरिसी भिक्खू, कालं न पडिलेहिसि।
अप्पाणं च किलामेसि, संनिवेसं च गरिहसि ॥५॥

छाया—अकाले चरसि भिक्षो!, कालं न प्रत्युपेक्षसे।
आत्मानं च क्लमयसि, सन्निवेशं च गर्हसे॥५॥

अकालचारी होने के कारण भिक्षा नहीं मिलने पर असन्तुष्ट हुए साधुको कालचारी साधु पूछता है-हे साधु! आपको भिक्षा मिली कि नहीं?, तब वह कहता है-इस कजूसों के गाम में भिक्षा कहाँ पड़ी है। इस पर वह कालचारी साधु उससे कहता है—

सान्वयार्थः-भिक्खू=हे भिक्षु! आप अकाले=असमयमें भिक्षाका समय न होनेपर ही चरिसी=गोचरी फिरते हो, च=और कालं=गोचरीका समय न

तथा जो समय भिक्षाके लिए उचित न हो उसका परिहार करके द्रव्य क्षेत्र काल भावसे उचित समय पर ही भिक्षाके लिए जाना चाहिए। गाथामें बहुत वार काल शब्दका प्रयोग करनेसे यह आशय प्रगट होता है कि-साधुओंको प्रत्येक क्रिया उचित समय पर ही करनी चाहिए ॥ ४ ॥

कोई साधु असमयमें भिक्षाके लिए जानेवाले दूसरे साधुसे पूछा गया कि-'हे भिक्षु! तुम्हें भिक्षाका लाभ हुआ या नहीं?' तब उसने कहा-'इन कंगाल कजूसोंके गाँवमें भिक्षा कहाँ प्राप्त होसकती है?'। तब वह अकालमे गोचरी करनेवालेके प्रति कहता है-'अकाले०' इत्यादि।

माटे उचित न होय तेनो परिहार करीने द्रव्य क्षेत्र काळ भावथी उचित समये ज भिक्षाने माटे जवु जोइए गाथामा घणीवार काल शब्दनो प्रयोग करवाथी ए आशय प्रकट थाय छे के-साधुओए प्रत्येक क्रिया उचित समये ज करवी जोइए (४)

कोई साधु असमयमा भिक्षाने माटे जनारा बीजा साधुने पूछ्यु के-'हे भिक्षु! तमने भिक्षानो लाभ थयो के नहि?' त्यारे तेणे कह्यु 'आ कंगाल कंजूसोना गाममा भिक्षा क्याथी प्राप्त थई शके?' त्यारे ए अकाळे गोचरी करनारा साधु प्रत्ये कहे छे-अकाले० ईत्यादि

क्षेत्रयतनामाह-'तहेवु०' इत्यादि।

मूलम्-तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया।
त उज्जुयं न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे ॥ ७ ॥

छाया—तथैवोच्चावचाः प्राणाः, भक्तार्थं समागताः।
तेषामृजुकं न गच्छेत्, यतमेव पराक्रामेत् ॥ ७ ॥

सान्वयार्थः-तहेव=उसीप्रकार उच्चावया=उच्च जातिके हंसादिक अवच-नीच जातिके कौए आदि पाणा=प्राणी (यदि) भत्तट्ठाए=चुगा-पानीके लिए समागया=आये हो-इकट्ठे हुए हो तो त उज्जुयं=उन प्राणियोके सामने न गच्छिज्जा=नही जावे, (किन्तु) जयमेव=यतनापूर्वक ही आसपाससे अथवा अन्य मार्गसे अर्थात् जिस तरह उन प्राणियोंको किसी प्रकारका त्रास न पहुचे उसीतरह परक्कमे=जावे ॥७॥

टीका—तथैव=तद्वत् उच्चावचाः=तत्र उच्चाः=उच्चजातीया हंसादयः, अवचाः=नीचजातीयाः काकप्रभृतय', यद्वा उच्चावचाः=अनेकविधाः, "उच्चावच नैकभेद"-मित्यमरात्, प्राणा =प्राणिनः भक्तार्थम्=अन्न-पानार्थं मार्गादौ समागताः=समायाता भवन्ति चेत् 'त'-तेषाम्, आर्षत्वात् षष्ठीबहुत्वे प्रथमैकवचनम्, ऋजुकं=सम्मुख न गच्छेत्, तेषामन्नपानान्तरायादिप्रचुरदोषापातात्। तर्हि किं कुर्यात्? यतमेव=सयतनमेव=यथा तेषा सत्रासो न भवेत्तथा पराक्रामेत्=चरेत् अन्यमार्गेण

अब क्षेत्रकी यतना हैं-'तहेवु० इत्यादि।

हंस-आदि उच्च-जातीय और काक-आदि नीच-जातीय प्राणी यदि भोजन पानके लिए रास्तेमें आये हों तो उनके सामने न जावें। सामने जानेसे उनके चुगे-पानीमे विघ्न पड जानेके कारण भक्त पानकी अन्तराय आदि अनेक दोष लगते है, अतः यतना-पूर्वक, अर्थात् जिससे वे भयभीत न हों उस प्रकार दूसरे मार्गसे या एक किनारेसे गमन करें।

હવે ક્ષેત્રની યતના કહે છે-તહેવુ૦ ઇત્યાદિ

હંસ-આદિ ઉચ્ચ-જાતીય અને કાગડા-આદિ નીચ જાતીય પ્રાણી જો ભોજન-પાનને માટે રસ્તામા આવેલા હોય તો તેની સામે ન જવુ સામે જવાથી તેમને પાણી પીવા ચણવા વગેરેમા વિઘ્ન પડવાથી ભકત પાનની અતરાય આદિ અનેક દોષો લાગે છે એટલે યતનાપૂર્વક અર્થાત્ જે રીતે તેઓ ભયભીત ન થાય એ રીતે બીજે માર્ગે યા એક બાજુએથી ગમન કરવુ તાત્પર્ય એ છે કે

पुरुषार्थ भी कुज्जा=करना चाहिये, और भिक्षा न मिलनेपर वह अलाभु=आज मुझे भिक्षा नहीं मिली त्ति=इस प्रकार न सोइज्जा=सोच न करे, किन्तु तवु= आज मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप हुआ है त्ति=इस प्रकार सोचकर अहियासए=क्षुधा परीषहको सहन करे-सन्तुष्ट रहे। तात्पर्य यह है कि-साधु ओंको सिर्फ भिक्षाके ही लिए गोचरीमें घुमना नहीं है किन्तु वीर्याचारके लिए भी भगवान्‌ने गोचरीमें घुमना कहा है ॥६॥

टीका—'सइ' इत्यादि। भिक्षुः काले=भिक्षोचितसमये प्राप्ते सति, यद्वा 'सइकाले' इत्यस्य 'स्मृतिकाले' इतिच्छाया तत्र स्मर्यन्ते साधवो दातृभिर्दानार्थं यस्मिन् समये तस्मिन्नित्यर्थ, चरेत्=भिक्षार्थं गच्छेत्। पुरुषकार=पराक्रमम् उत्साहपूर्वकभिक्षार्थभ्रमणलक्षण कुर्यात्=विदध्यात्। कदाचिदलाभे सति अलाभ = अद्य भिक्षालाभो न सजात इति न शोचेत्=न परितपेत्, किन्तु तपः= अद्य मेऽनशनात्मौदरिकादिरूप तप' सम्पन्नमिति कृत्वा अधिषहेत=सन्तुष्येत्। भिक्षाया अलाभेऽपि वीर्यचारो मया सम्यगाराधित', यतो न केवलमन्नाद्यर्थमेव भिक्षाचरण भिक्षुणा, किन्तु वीर्याचारार्थमपि भगवता समादिष्टमिति भावार्थः ॥ ६ ॥

'सइ काले' इत्यादि। भिक्षु उचित समय प्राप्त होनेपर ही भिक्षाके लिए जावें। उत्साहपूर्वक भिक्षार्थ भ्रमणरूप पुरुषार्थ करे। कभी भिक्षाका लाभ न हो तो ऐसा सोच न करें कि-'आज मुझे भिक्षा नही मिली,' किन्तु ऐसा विचार करके सन्तुष्ट रहे कि-आज भिक्षा न मिली तो सहज ही मेरे अनशन आदि तप होगया, अर्थात् भिक्षाका लाभ न होनेपर भी मैंने भली भाँति वीर्याचारका आराधन किया है। साधु केवल अन्नादिककी प्राप्तिके लिए भिक्षाचरी नही करते किन्तु वीर्याचारकी आराधनाके लिए भी भिक्षाचरीमें जाना भगवान्‌ने बताया है ॥६॥

सइ काले० ઇત્યાદિ ભિક્ષુ ઉચિત સમય થતા જ ભિક્ષાને માટે જાય ઉત્સાહપૂર્વક ભિક્ષાર્થ ભ્રમણરૂપ પુરૂષાર્થ કરે કોઈવાર ભિક્ષાનો લાભ ન થાય તો એવો વિચાર ન કરે કે 'આજ મને ભિક્ષા ન મળી ' પરંતુ એવો વિચાર કરીને સતુષ્ટ રહે કે-'આજ ભિક્ષા ન મળી તો સહેજે મારાથી અનશન આદિ તપ થઇ ગયુ અર્થાત્ ભિક્ષાનો લાભ ન થવાથી પણ મે ભલીપેઠે વીર્યાચારનુ આરાધન કર્યું છે' સાધુ કેવળ અન્નાદિની પ્રાપ્તિને માટે જ ભિક્ષાચરી કરતા નથી, કિન્તુ વીર્યાચારની આરાધનાને માટે પણ ભિક્ષાચરીમા જવુ ભગવાને બતાવ્યુ છે (૬)

क्षेत्रयतनामाह-'तहेवु०' इत्यादि।

मूलम्-तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया।
त उज्जुयं न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे ॥ ७ ॥

छाया—तथैवोच्चावचाः प्राणाः, भक्तार्थं समागताः।
तेषामृजुकं न गच्छेत्, यतमेव पराक्रामेत् ॥ ७ ॥

सान्वयार्थः-तहेव=उसीप्रकार उच्चावया=उच्च जातिके हंसादिक अवच-नीच जातिके कौए आदि पाणा=प्राणी (यदि) भत्तट्ठाए=चुगा-पानीके लिए समागया=आये हों-इकट्ठे हुए हों तो त उज्जुयं=उन प्राणियोंके सामने न गच्छिज्जा=नहीं जावे, (किन्तु) जयमेव=यतनापूर्वक ही आसपाससे अथवा अन्य मार्गसे अर्थात् जिस तरह उन प्राणियोंको किसी प्रकारका त्रास न पहुचे उसीतरह परक्कमे=जावे ॥७॥

टीका—तथैव=तद्वत् उच्चावचाः=तत्र उच्चाः=उच्चजातीया हंसादयः, अवाञ्चः=नीचजातीयाः काकप्रभृतय, यद्वा उच्चावचाः=अनेकविधाः, "उच्चावच नैकभेद"-मित्यमरात्, प्राणा =प्राणिनः भक्तार्थम्=अन्न-पानार्थं मार्गादौ समागताः=समायाता भवन्ति चेत् 'त'-तेषाम्, आर्षत्वात् षष्ठीबहुत्वे प्रथमैकवचनम्, ऋजुकं=सम्मुखं न गच्छेत्, तेषामन्नपानान्तरायादिप्रचुरदोषापातात्। तर्हि किं कुर्यात्? यतमेव=सयतनमेव=यथा तेषां सत्रासो न भवेत्तथा पराक्रामेत्=चरेत् अन्यमार्गेण

अब क्षेत्रकी यतना हैं-'तहेवु०' इत्यादि।

हंस-आदि उच्च-जातीय और काक-आदि नीच-जातीय प्राणी यदि भोजन पानके लिए रास्तेमें आये हों तो उनके सामने न जावें। साम्ने जानेसे उनके चुगे पानीमें विघ्न पड जानेके कारण भक्त-पानकी अन्तराय आदि अनेक दोष लगते हैं, अत यतना-पूर्वक, अर्थात् जिससे वे भयभीत न हों उस प्रकार दूसरे मार्गसे या एक किनारेसे गमन करें।

હવે ક્ષેત્રની યતના કહે છે-તહેવુ૦ ઇત્યાદિ

હંસ-આદિ ઉચ્ચ-જાતીય અને કાગડા-આદિ નીચ જાતીય પ્રાણી જો ભોજન-પાનને માટે રસ્તામા આવેલા હોય તો તેની સામે ન જવુ સામે જવાથી તેમને પાણી પીવા ચણવા વગેરેમા વિઘ્ન પડવાથી ભકત પાનનો અતરાય આદિ અનેક દોષો લાગે છે એટલે યતનાપૂર્વક અર્થાત્ જે રીતે તેઓ ભયભીત ન થાય એ રીતે બીજે માર્ગે યા એક બાજુએથી ગમન કરવુ તાત્પર્ય એ છે કે

पुरुषार्थ भी कुज्जा=करना चाहिये, और भिक्षा न मिलनेपर वह अलाभु=आज मुझे भिक्षा नहीं मिली त्ति=इस प्रकार न सोइज्जा=सोच न करे, किन्तु तवु= आज मेरे अनशन ऊनोदरी आदि तप हुआ है त्ति=इस प्रकार सोचकर अहियासए=क्षुधा परीषहको सहन करे-सन्तुष्ट रहे। तात्पर्य यह है कि-साधु ओंको सिर्फ भिक्षाके ही लिए गोचरीमें घुमना नहीं है किन्तु वीर्याचारके लिए भी भगवान्ने गोचरीमें घुमना कहा है ॥६॥

टीका—'सइ' इत्यादि। भिक्षुः काले=भिक्षोचितसमये प्राप्ते सति, यद्वा 'सइकाले' इत्यस्य 'स्मृतिकाले' इतिच्छाया तत्र-स्मर्यन्ते साधवो दातृभिर्दानार्थं यस्मिन् समये तस्मिन्नित्यर्थः, चरेत्=भिक्षार्थं गच्छेत्। पुरुषकारं=पराक्रमम् उत्साहपूर्वकभिक्षार्थभ्रमणलक्षणं कुर्यात्=विदध्यात्। कदाचिदलाभे सति अलाभ = अद्य भिक्षालाभो न संजात इति न शोचेत्=न परितपेत्, किन्तु तपः= अद्य मेऽनशनावमौदरिकादिरूपं तपः सम्पन्नमिति कृत्वा अधिसहेत=सन्तुष्येत्। भिक्षाया अलाभेऽपि वीर्याचारो मया सम्यगाराधितः, यतो न केवलमन्नाद्यर्थमेव भिक्षाचरणं भिक्षूणा, किन्तु वीर्याचारार्थमपि भगवता समादिष्टमिति भावार्थः ॥ ६ ॥

'सइ काले' इत्यादि। भिक्षु उचित समय प्राप्त होनेपर ही भिक्षाके लिए जावें। उत्साहपूर्वक भिक्षार्थ भ्रमणरूप पुरुषार्थ करे। कभी भिक्षाका लाभ न हो तो ऐसा सोच न करें कि-'आज मुझे भिक्षा नहीं मिली,' किन्तु ऐसा विचार करके सन्तुष्ट रहे कि-आज भिक्षा न मिली तो सहज ही मेरे अनशन आदि तप होगया, अर्थात् भिक्षाका लाभ न होनेपर भी मैने भली भाँति वीर्याचारका आराधन किया है। साधु केवल अन्नादिककी प्राप्तिके लिए भिक्षाचरी नहीं करते किन्तु वीर्याचारकी आराधनाके लिए भी भिक्षाचरीमे जाना भगवान्ने बताया है ॥६॥

सइ काले० ઇત્યાદિ ભિક્ષુ ઉચિત સમય થતા જ ભિક્ષાને માટે જાય ઉત્સાહપૂર્વક ભિક્ષાર્થ ભ્રમણરૂપ પુરૂષાર્થ કરે કોઈવાર ભિક્ષાનો લાભ ન થાય તો એવો વિચાર ન કરે કે 'આજ મને ભિક્ષા ન મળી' પરતુ એવો વિચાર કરીને સતુષ્ટ રહે કે-'આજ ભિક્ષા ન મળી તો સહેજે મારાથી અનશન આદિ તપ થઈ ગયુ અર્થાત્ ભિક્ષાનો લાભ ન થવાથી પણ મે ભલીપેઠે વીર્યાચારનુ આરાધન કર્યું છે' સાધુ કેવળ અન્નાદિની પ્રાપ્તિને માટે જ ભિક્ષાચરી કરતા નથી, કિન્તુ વીર્યાચારની આરાધનાને માટે પણ ભિક્ષાચરીમા જવુ ભગવાને બતાવ્યું છે (૬)

छाया—वनीपकस्य वा तस्य, दायकस्योभयोर्वा।
अप्रीतिकं स्याद् भवेत्, लघुत्वं प्रवचनस्य वा ॥ १२ ॥

पूर्वोक्त विधिके अपालन में दोष बताते हैं-

सान्वयार्थः-(ऐसा न करनेसे) सिया=कदाचित्-शायद तस्स=उस वणीमगस्स=श्रमणादि वनीपक पर्यन्तको वा=अथवा दायगस्स=दाताको वा=या उभयस्स=दोनो-दाता और याचक को अप्पत्तियं=अप्रीति द्वेष या मनमें खेद हो जाती है, वा=और पवयणस्स=जिनशासनकी लहुत्तं=लघुता हुज्जा=होती है॥ १२ ॥

टीका—स्यात् कदाचित् वनीपकस्य=याचकविशेषस्य वा=अथवा तस्य=श्रमणादेः, दायकस्य=दातुर्वा, उभयोः=दातृ-याचकयोर्वा अप्रीतिकं=द्वेषः, मनः-खेदो वा भवेत्, प्रवचनस्य=जिनशासनस्य लघुत्वं=लघुता वा भवेदिति सम्बन्धः॥ १२ ॥

कदा गन्तव्य ?-मित्याह-'पडिसेहिए' इत्यादि।

मूलम्-पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओ तम्मि नियत्तिए।
उवसंकमिज्ज भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए ॥ १३ ॥

छाया—प्रतिषेधिते वा दत्ते वा, ततस्तस्मिन् निवृत्ते।
उपसंक्रामेत् भक्तार्थं, पानार्थं वा संयतः॥ १३॥

कब जाना चाहिये, सो बताते हैं-

सान्वयार्थः-पडिसेहिए=दाताके निषेध कर देने पर व=अथवा दिन्ने=अन्नादिके दिये जाने पर वा=या दाताके मौन साधने पर तओ=उस स्थानसे

सम्भव है, उन्हें उल्लङ्घन करके जानेसे या उनके सामने खडे रहनेसें उस वनीपक या दाताको अथवा दोनोंको द्वेष तथा खेद उत्पन्न होजाय। तथा प्रवचनकी लघुता होती है। अत. उन्हें उल्लंघन करके जाना साधुका कल्प नहीं है ॥ १२॥

कब जाना चाहिए ? सो कहते हैं-'पडिसेहिए' इत्यादि।

सम्भवित छे तेमने ओळंगीने जवाथी या एमनी सामे ऊभा रहेवाथी ए वनीपक या दाताने अथवा बेउने द्वेष तथा खेद उत्पन्न थई जाय तथा प्रवचननी लघुता थाय छे, एटले एमने ओळंगीने जवु ए साधुनो कल्प नथी (१२)

क्यारे जवु जोईए ? ते कहे छे-पडिसेहिए० ईत्यादि

सान्वयार्थः-सजए=साधु भत्तट्ठा=अन्नके लिए और पाणट्ठा एव=पानीके लिए ही उवसकमत=गृहस्थके घर पर आते हुए समण=निर्ग्रन्थ मुनिको वावि= अथवा माहण=ब्राह्मणको किविण=कृपण वा=अथवा वणीमग=दरिद्री भिखारीको (देखकर) त=उन श्रमणादिको अइक्कमित्तु=लाघकर न पविसे= गृहस्थके घरमें न जावे, नवि=और न चक्खुगोयरे=उनके दृष्टिगोचर दृष्टिमार्गमें चिट्ठे=ठहरे, (किन्तु) एगत=एकान्त स्थानमें-जहा उनकी दृष्टि न पडती हो ऐसी जगह अवक्कमित्ता=जाकर सजए=इन्द्रियोंका सयम करता हुआ-चुपचाप तत्थ=वहा चिट्ठे=खडा रहे ॥१०॥११॥

टीका—'समण' इत्यादि, 'तमइ०' इत्यादि च। सयतः, गृहस्थद्वारे भक्तार्थमेव पानार्थमेव, एवशब्दस्योभयत्र सम्बन्धः। उपसक्रामन्त=समीपमायान्त यान्त वा श्रमणादिक दृष्ट्वेति शेषः। तत्र वनीपकः=याचकविशेषः, अन्यत् सुग मम्। त=श्रमणादिकम् अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य तस्याग्रतो भूत्वेत्यर्थः गृहस्थगृह न प्रविशेत्, एतावदपि न, तेषा चक्षुर्गोचरेऽपि=दृष्टिपथेऽपि न तिष्ठेत किन्तु स सयत एकान्त=यत्र तेषा दृष्टिर्न पतेत् त प्रदेशम् अवक्रम्य=गत्वा तत्र तिष्ठेत् ॥१०॥११॥

पूर्वोक्तविधेरपालने दोषमाह–'वणीमगस्स' इत्यादि।

मूलम्–वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा।
अप्पत्तियं सिया हुज्जा, लहुत्त पवयणस्स वा ॥१२॥

'समण' इत्यादि, 'तमइ०' इत्यादि। श्रमण, ब्राह्मण, कृपण और वनीपकको गृहस्थके दर्वाजे पर भोजन या पानीके लिए आया देखकर साधु उसे उल्लङ्घन करके गृहस्थके घरमें प्रवेश न करें, इतना ही नहीं, जहाँ उनकी दृष्टि पडती हो ऐसे स्थान पर भी खडे न हो, किन्तु एकान्त प्रदेशमें जाकर स्थित होवें, जहा उनकी दृष्टि न पहुँचे॥१०॥११॥

ऐसा न करनेमें दोष कहते हैं—'वणीमगस्स' इत्यादि।

समण० ઇત્યાદિ તથા तमइ० ઇત્યાદિ શ્રમણ, બ્રાહ્મણ, કૃપણ અને વનીપકને ગૃહસ્થના દરવાજા પર ભોજન યા પાણીને માટે આવેલા જોઈને સાધુ એમને ઓળંગીને ગૃહસ્થના ઘરમા પ્રવેશ ન કરે, એટલુ જ નહિ, જ્યા એમની દૃષ્ટિ પડતી હોય એવા સ્થાન પર પણ ઊભો ન રહે, કિન્તુ એકાંત પ્રદેશમા જઈને ઊભો રહે કે જ્યા એમની દૃષ્ટિ પહોંચે નહિ (૧૦-૧૧)

એમ ન કરવામા દોષ કહે છે—'वणीमगस्स०' ઇત્યાદિ

टीका—'उप्पल' इत्यादि 'त भवे' इत्यादि च। उत्पल=श्यामल-धवल-लोहित-भेदेन त्रिविध कमलम्, अपिवा पद्म=सूर्यविकासि कमल, कुमुद=चन्द्र-विकासि कमल वा=अथवा मगदन्तिका=मालतीपुष्पम्, अन्यद्वा पुष्पसचित्त= पुष्पेषु सचित्त पुष्पसचित्त सचित्तपुष्पमात्रमित्यर्थः, तच्च सलुञ्च्य=सछिद्य यदि दात्री भक्त-पान दद्यात्, तर्हि तद् भक्तपान तु सयतानामग्राह्यं भवेदिति ददतीं प्रत्याचक्षीत—तादृश=दोषयुक्त मे=मम न कल्पत इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

मूलम्-उप्पलं पउमं वावि कुमुयं वा मगदंतियं ।
अन्न वा पुप्फसचित्तं, त च समद्दिया दए ॥ १६ ॥
त भवे भत्तपाणं तु, सजयाण अकप्पियं ।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ १७ ॥

छाया—उत्पल पद्म वाऽपि कुमुद वा मगदन्तिकाम् ।
अन्यद्वा पुष्पसचित्त तच्च समर्द्य दद्यात् ॥ १६ ॥
तद् भवेद् भक्तपान, तु सयतानामकल्पिकम् ।
ददती प्रत्याचक्षीत न मे कल्पते तादृशम् ॥ १७ ॥

सान्वयार्थः—उप्पल=नील कमल पउमं=रक्त कमल वावि=अथवा कुमुयं= चन्द्रविकासी कमल वा=या मगदंतियं=मालती-मोगरेके फूलको वा=अथवा अन्नं=दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुप्फसचित्तं=सचित्त पुष्प हैं तच=उनको भी (अगर) समद्दिया=पैरो आदिसे कुचलकर दए=देवे तो तं=वह भत्तपाण तु=

'उप्पल' इत्यादि, 'त भवे' इत्यादि। दाता नीला सफेद और लाल कमल, सूर्यविकासी कमल, चन्द्रविकासी कमल, मालतीका फूल तथा अन्य सचित्त पुष्प तोड कर आहारपानी देवे तो वह सयमियोंके लिए ग्राह्य नहीं है इसलिए देनेवालीसे कहे कि ऐसा दोषयुक्त आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

उप्पल० इत्यादि तथा त भवे० ઈત્યાદિ જો દાતા, નીલું સફેદ યા લાલ કમળ, સૂર્યવિકાસી કમળ, ચન્દ્રવિકાસી કમળ, માલતીનું ફુલ તથા અન્ય સચિત્ત પુષ્પ તોડીને પછી આહાર પાણી આપે તો તે સયમીઓને માટે ગ્રાહ્ય નથી તેથી તે આપનારીને સાધુ કહે કે એવો દોષયુકત આહાર મને કલ્પતો નથી (૧૪-૧૫)

तम्मि=उन श्रमणादिकोंके नियत्तिए=चले जाने पर सजए=साधु भत्तट्ठा=आहार व=अथवा पाणट्ठाए=पानीके लिए उवसकमिज्ज=जावे ॥१३॥

टीका—प्रतिषेधिते=दात्रा प्रतिषेध प्राप्ते वा=अथवा दत्ते अन्नादिके, वाशब्दाद्दातुस्तूष्णीभावावलम्बनाद् विलम्बादिनिमित्तवशाद्वा ततः=तत्स्थानात् तस्मिन्=वनीपकादौ निवृत्ते प्रतिनिवृत्ते सति सयतः भक्तार्थं पानार्थं वा उपसक्रामेत्=भिक्षा ग्रहीतु गच्छेत् ॥ १३ ॥

मूलम्—उप्पलं पउम वावि, कुमुय वा मगदंतियं ।
अन्न वा पुप्फसच्चित्त, त च सलुंचिया दए ॥ १४ ॥
त भवे भत्तपाण तु, संजयाण अकप्पिय ।
दितिय पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ १५ ॥

छाया—उत्पल पद्म वाऽपि, कुमुद वा मगदन्तिकाम् ।
अन्यद्वा पुष्पसचित्त, तच्च सलुञ्च्य दद्यात् ॥ १४ ॥
तद् भवेद् भक्तपान तु सयतानामकल्पिकम् ।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥ १५ ॥

सान्वयार्थः—उप्पल=नील कमल पउम=रक्त कमल वावि=अथवा कुमुय=चन्द्रविकासी कमल वा=या मगदतिय=मालती-मोगरेके फूलको वा=अथवा अन्न=दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुप्फसचित्त=सचित्त पुष्प हो तच=उनको भी (अगर) सलुचिया=लोच करके दए=देवे तो त=वह भत्तपाण तु=आहारपानी सजयाण=सयमियोंको अकप्पिय=अकल्पनीय भवे=होता है, अत दितिय=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिस=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नही कल्पता है ॥१४॥१५॥

दाताके वनीपक आदिको दान देनेकी मना कर देने पर, अथवा अन्न आदिके दे देने पर या मौन साध लेने पर, अथवा विलम्ब होने आदिके कारणसे जब वह वनीपक आदि उस घरसे लौट जाय तब सयमीको भक्त पानके लिए उस घरमे जाना चाहिए ॥ १३ ॥

દાતાએ વનીપક આદિને દાન દેવાની મનાઈ કર્યા પછી અથવા અન્ન આદિ આપી ચૂકયા પછી યા મૌન સાધી લીધા પછી અથવા વિલબ [illegible] ઇત્યાદિને કારણ જ્યારે એ વનીપક આદિ એ ઘરથી [illegible] ભકત પાનને માટે એ ઘરમા જવુ જોઇએ (૧૩)

टीका—'उप्पल' इत्यादि 'तं भवे' इत्यादि च। उत्पलं=श्यामल-धवल-लोहित भेदेन त्रिविध कमलम्, अपिवा पद्मं=सूर्यविकासि कमलं, कुमुदं=चन्द्रविकासि कमलं वा=अथवा मगदन्तिका=मालतीपुष्पम्, अन्यद्वा पुष्पसचित्तं=पुष्पेषु सचित्तं पुष्पसचित्तं सचित्तपुष्पमात्रमित्यर्थः, तच्च सलुञ्च्य=सछिद्य यदि दात्री भक्त-पान दद्यात्, तर्हि तद् भक्तपानं तु संयतानामग्राह्यं भवेदिति ददतीं प्रत्याचक्षीत-तादृशं=दोषयुक्तं मे=मम न कल्पत इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

मूलम्-उप्पलं पउमं वावि कुमुयं वा मगदंतियं।
अन्नं वा पुप्फसचित्तं, तं च संमद्दिया दए ॥ १६ ॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ १७ ॥

छाया—उत्पलं पद्मं वाऽपि कुमुदं वा मगदन्तिकाम्।
अन्यद्वा पुष्पसचित्तं तच्च समर्द्य दद्यात् ॥ १६ ॥
तद् भवेद् भक्तपानं, तु संयतानामकल्पिकम्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत न मे कल्पते तादृशम् ॥ १७ ॥

सान्वयार्थः-उप्पलं=नील कमल पउमं=रक्त कमल वावि=अथवा कुमुयं=चन्द्रविकासी कमल वा=या मगदंतियं=मालती-मोगरेके फूलको वा=अथवा अन्नं=दूसरे भी इसी प्रकारके जो पुप्फसचित्तं=सचित्त पुष्प हैं तं च=उनको भी (अगर) संमद्दिया=पैरों आदिसे कुचलकर दए=देवे तो तं=वह भत्तपाणं तु=

'उप्पल' इत्यादि, 'तं भवे' इत्यादि। दाता नीला सफेद और लाल कमल, सूर्यविकासी कमल, चन्द्रविकासी कमल, मालतीका फूल तथा अन्य सचित्त पुष्प तोड कर आहारपानी देवे तो वह संयमियोंके लिए ग्राह्य नहीं है इसलिए देनेवालीसे कहे कि ऐसा दोषयुक्त आहार मुझे नहीं कल्पता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

उप्पल० ઇત્યાદિ તથા तं भवे० ઇત્યાદિ જો દાતા, નીલું સફેદ યા લાલ કમળ, સૂર્યવિકાસી કમળ, ચન્દ્રવિકાસી કમળ, માલતીનું ફુલ તથા અન્ય સચિત્ત પુષ્પ તોડીને પછી આહાર પાણી આપે તો તે સંયમીઓને માટે ગ્રાહ્ય નથી તેથી તે આપનારીને સાધુ કહે કે એવો દોષયુક્ત આહાર મને કલ્પતો નથી (૧૪-૧૫)

आहार-पानी सजयाण=संयमियोंको अकप्पियं=अकल्प्य भवे=होता है, (अतः) दिंतियं=देनेवालीसे पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार मेंं= मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥१६॥१७॥

टीका—'उप्पल' इत्यादि, 'त भवे' इत्यादि च। उत्पलादिकं समर्द्य= करचरणादिना तत्संमर्दनं कृत्वा, अशनादि दद्यात् तद् भक्त-पानं तु संयतानाम- ग्राह्यमित्यादि पूर्ववद् व्याख्येयम्। अत्र 'समर्द्य' शब्देन समर्दनं यथा कथञ्चि त्स्पर्शमात्रमपि गृह्यते, उत्पलादिगतसूक्ष्मजीवाना तावताऽपि पीडोत्पत्तेरवश्यम्भा वात्। 'समदमाणी पाणाणि बीयाणि हरियाणि य' इत्यस्यैव प्रथमोद्देशके समस्तवनस्पतीनां ग्रहणेऽपि पुनरत्रोत्पलादीनां ग्रहणं न पुनरुक्तिदोषजनकं, पूर्वत्र सामान्यरूपेणाऽत्र च विशेषरूपेणोपादानादिति बोध्यम् ॥ १६ ॥ १७ ॥

'उप्पल' इत्यादि, 'त भवे' इत्यादि। पूर्वोक्त उत्पलादिकोंमेंसे किसी सचित्त फूलको मर्दन करके अथवा संघटा मात्र भी करके आहार देवे तो देनेवालीसे साधु कहे कि ऐसा आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है॥ यहा 'मर्दन' शब्दसे स्पर्शमात्रका भी ग्रहण होता है, क्योंकि कमल आदिके जीवोंको स्पर्श करनेसे भी अवश्य पीडा होती है। प्रथम उद्देशमे "समदमाणी पाणाणि बीयाणि हरियाणि य' इस पदसे ही सब वनस्पतिकायका ग्रहण कर लिया था, यहाँ फिर उत्पल आदिका ग्रहण किया है यह पुनरुक्ति दोष नहीं समझना चाहिए, क्योंकि पहले सामान्यरूपसे निषेध किया था और यहा विशेषरूपसे निषेध किया है ॥ १६ ॥ १७ ॥

उप्पल ઇત્યાદિ, તથા त भवे ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત કમળ આદિમાંથી કોઈ સચિત્ત ફૂલનું મર્દન કરીને અથવા માત્ર સંઘટ્ટન પણ કરીને આહાર આપે તો આપનારીને સાધુ કહે કે એવો આહાર લેવો મને કલ્પતો નથી અહીં 'મર્દન' શબ્દથી સ્પર્શ-માત્રનું પણ ગ્રહણ થાય છે, કારણ કે કમળ આદિના જીવોને સ્પર્શ કરવાથી પણ અવશ્ય પીડા થાય છે પ્રથમ ઉદ્દેશમા समदमाणी पाणाणि बीयाणि हरियाणि य એ પદથી જ બધી વનસ્પતિકાયનું ગ્રહણ કરવામા આવ્યું હતું, અહીં ફરીથી કમળ આદિનું ગ્રહણ કર્યું છે, એ પુનરુક્તિ દોષ સમજવો નહિ, કારણ કે પહેલા સામાન્યરૂપે નિષેધ કર્યો હતો, અને અહીં વિશેષરૂપે નિષેધ કર્યો છે, (૧૬-૧૭)

मूलम्-सालुयं वा विरालियं, कुमुयं उप्पलनालियं ।
मुणालियं सासवनालियं, उच्छुखडं अनिव्वुडं ॥१८॥
तरुणगं वा पवालं, रुक्खस्स तणगस्स वा ।
अन्नस्स वावि हरियस्स, आमगं परिवज्जए ॥ १९ ॥

छाया—शालूकं वा विरालिकां, कुमुदम् उत्पलनालिकाम् ।
मृणालिकां सर्षपनालिकाम्, इक्षुखण्डम् अनिर्वृतम् ॥ १८ ॥
तरुणकं वा प्रवालं, वृक्षस्य, तृणकस्य वा ।
अन्यस्य वाऽपि हरितस्य, आमकं परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥

सान्वयार्थः-सालुयं=कुमुदादिका मूल विरालियं=पलासका कन्द-साधारण वनस्पतिविशेष कुमुयं=चन्द्रविकासी श्वेत कमल उप्पलनालियं=कमलनाल मुणालियं=कमलतन्तु सासवनालियं=सरसोंकी भाजी या कान्दल वा=अथवा उच्छुखडं=गन्नेके टुकडे, (ये सब यदि) अनिव्वुडं=शस्त्रपरिणत-अचित्त-न हो तो, (तथा) रुक्खस्स=इमली आदि वृक्षके वा=अथवा तणगस्स=मधुर तृणादिकोंके वा=और अन्नस्सवि=दूसरे प्रकारके भी हरियस्स=हरित कायके तरुणगं=कोंपल पत्ते आदि वा=अथवा पवालं=कच्ची कोंपल-नहीं खिले हुए पत्ते-आदि आमगं=सचित्त हों तो उन्हें परिवज्जए=वरजे-नहीं लेवे ॥१८॥१९॥

टीका—'सालुयं' इत्यादि 'तरुणगं' इत्यादि च। शालूकं=कुमुदादिमूलं, विरालिकां=पलाशकन्दं साधारणवनस्पतिजातिविशेषं, कुमुदं=चन्द्रविकासिश्वेतकमलम्, उत्पलनालिकां=कमलनालं, मृणालिकां=बिसं 'भे' इति भाषाप्रसिद्धां, सर्षपनालिकां=सर्षपपत्रशाकं, सर्षपकन्दलीं वा, इक्षुखण्डम्=इक्षुशकलं वा, एतत्सर्वम् अनिर्वृतम्=शस्त्राऽपरिणतम् । तथा वृक्षस्य=अम्लिकादेः वा=अथवा

'सालुय' इत्यादि, 'तरुणग' इत्यादि । कमलका मूल, पलाश (ढाक) का मूल अर्थात् साधारण वनस्पतिकी जातिविशेष, तथा सफेद कमल, कमलकी नाल, सरसोंके पत्तेका शाक, गन्नेका खण्ड, ये सब

सालुय० ઇત્યાદિ, તરુણગ० ઇત્યાદિ કમળનું મૂળ, પલાશનું મૂળ, અર્થાત્ સાધારણ વનસ્પતિની જાતિ વિશેષ, તથા સફેદ કમળ, કમળની નાળ, સરસવના પાંદડાંનું શાક, શેરડીની કાતળી, એ બધાં જો શસ્ત્રથી પરિણત ન હોય તો એનો

तृणकस्य=मधुरतृणादे', अन्यस्य हरितस्यापि वा हरितकायमात्रस्य तरुणकं=तरुण-दशाऽऽपन्न पत्रादिकं, प्रवालं=सुकुमार पत्रादिकं वा, आमकं=सचित्त परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥ १९ ॥

१ ५ ७ ६ ४ ३
मूलम्-तरुणियं वा छिवाडिं, आमियं भज्जियं सइं।
७ ८ ११ १० १२ ९
दिंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥ २० ॥

छाया—तरुणिका वा छिवाडीम्, आमिका भर्जिता सकृत्।
ददतीं प्रत्याचक्षीत, न मे कल्पते तादृशम् ॥ २० ॥

सान्वयार्थः-तरुणियं=कच्ची जिसके बीज पके नहीं हों ऐसी वा=अथवा सइं=एक बार भज्जियं=भुनी हुई आमियं=सचित्त छिवाडिं=फलीको दिंतियं=देनेवालीसे (साधु) पडियाइक्खे=कहे कि तारिसं=इस प्रकारका आहार मे=मुझे न कप्पइ=नहीं कल्पता है ॥ २० ॥

टीका—'तरुणियं' इत्यादि। तरुणिकाम्=अपरिपक्वबीजाम् अपरित्यक्तत्वक्-सम्श्लेषावस्थापन्नामित्यर्थः, छिवाडीं=' देशीयोऽयं शब्द.' मुद्ग चवल तुवरिका-दिफलिका सकृद्भर्जिताम्=एकवार भृष्टां वा=अथवा आमिकां=सचित्तां ददतीं प्रत्याचक्षीत तादृशं मे न कल्पत इति। ॥२०॥

यदि शस्त्रसे परिणत न हों तो इनका, तथा-इमली आदि वृक्षके, मधुर तृण आदिके तथा अन्य हरेक वनस्पतिके पत्ते कोंपल आदि जो सचित्त हों तो उनका त्याग करना चाहिए ॥ १८ ॥ १९ ॥

'तरुणियं' इत्यादि। जिसके बीज न पके हो ऐसी मूँग, चवला, तुअर (अरहर) आदिकी फली एक बार भूँजी हुई हो तथा सचित हो तो देनेवाली बाईसे साधु कहे कि यह लेना मुझे नहीं कल्पता है ॥ २० ॥

તથા આંબલી આદિના વૃક્ષના મધુર તૃણ આદિના, તથા બીજી બધી વનસ્પતિના પાંદડાં, કુંપળ, આદિ જો સચિત્ત હોય તો એનો ત્યાગ કરવો જોઇએ (૧૮) (૧૯)

तरुणियं ઇત્યાદિ જેના બીજ પાકયા ન હોય એવા મગ, ચોળા, તુવેર આદિની સીંગ એકવાર ભૂંજેલી હોય તથા સચિત્ત હોય તો તે આપનારી બાઇને સાધુ કહે કે એ લેવી મને કલ્પતી નથી

मूल्म्-तहा कोलमणुस्सिन्न, वेलुयं कासवनालिय ।
तिलपप्पडग नीम, आमगं परिवज्जए ॥ २१ ॥

छाया—तथा कोलमनुत्स्विन्न, वेणुक काश्यपनालिकाम् ।
तिलपर्पटक नीपम्, आमक परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

सान्वयार्थ'-तहा=उसी प्रकार अणुस्सिन्न=विना उबाले हुए कोल=बेर तथा वेलुय=करेर या बासकी कोपल कासवनालिय=श्रीपर्णीका फल तिल-पप्पडग=तिलपापड़ी नीम=कदम्बका फल (ये सब यदि) आमग=सचित्त हों तो उन्हें परिवज्जए=वर्जे ॥२१॥

टीका—'तहा' इत्यादि । तथा=तद्वत् अनुत्स्विन्न=सलिलानलसयोगेनाऽनुत्कालितम् - अकथितमित्यर्थः, कोल=बदरीफलम्, आमकम्=अशस्त्रोपहतम्, अस्य वेणुकादौ सर्वत्र सम्बन्ध', वेणुक=वशकरीर वशाङ्कुरमित्यर्थः, काश्यप-नालिका=श्रीपर्णीफलम्, अत्र - 'आमग'-मित्यस्य लिङ्गविपरिणामेनान्वयः । तिलपर्पटक प्रसिद्धमेव, [1]नीप=कदम्बफल परिवर्जयेत् ॥ २१ ॥

मूल्म्-तहेव चाउल पिट्ठ, वियड वा तत्तनिव्वुड ।
तिल-पिट्ट पूइ-पिन्नागं, आमगं परिवज्जए ॥२२॥

छाया—तथैव ताण्डुल पिष्ट, विकट वा तप्तनिर्वृतम् ।
तिलपिष्ट पूतिपिण्याकम्, आमक परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

सान्वयार्थः-तहेव=उसी प्रकार चाउल पिट्ठ=चॉवलोका आटा तथा और भी किसी तरहका आटा वा=अथवा तत्तनिव्वुड=पहले गर्म किया हुआ किन्तु

१ 'नीम' इत्यत्र 'नीपाऽऽपीडे मो वा' (प्रा. ८।१।२३४) इति प्राकृतसूत्रेण पस्य मः॥

'तहा कोल०' इत्यादि । इसी प्रकार जल और अग्निमें नहीं उबाले हुए बेर, सचित्त बॉसके अकुर तथा काश्यपनालिका (गभारीफल) तिलपापडी और कदम्बके फल ये सब यदि सचित्त हों तो इनका त्याग करे-ग्रहण न करे ॥ २१ ॥

तहा कोल० ઇત્યાદિ એ પ્રમાણે જળ અને અગ્નિમા નહિ ઉકાળેલા બોર, સચિત્ત વાસના અકુર તથા કશ્યપનાલિકા (ગભારી ફળ), તલપાપડી અને કદમ્બના ફળ જો સચિત્ત હોય તો એનો ત્યાગ કરવો-ગ્રહણ કરવા નહિ (૨૧)

फिर ठंडा होया हुआ वियड=पानी तिलपिट्ठ=तिलकुट्टा पूइपिन्नाग=सरसोंकी खल (ये) आमग=सचित्त हों तो परिवज्जए=वरजे ॥२२॥

टीका—'तहेव' इत्यादि। तथैव=तेनैव प्रकारेण तण्डुल=तण्डुलसम्बन्धि पिष्ट=चूर्णम्, उपलक्षणमेतद्गोधूमादेरपि, वा=अथवा तप्तनिर्वृत=पूर्वं तप्त पश्चान्निर्वृत=शीतल यत्तत्तथोक्तम्, उष्णोदकं यदा शैत्यापन्नं ततः कालादारभ्य ग्रीष्मे यामपञ्चकादूर्ध्वं शीतकाले यामचतुष्टयात्पर, वर्षाकाले च प्रहरत्रयानन्तर सचित्त जायते। अत्रेय सङ्ग्रहगाथा—

"जम्मि[1] समयम्मि उण्हो,-दगं च सीयं भवे तओ पच्छा।
पंच चउ तिय-जामा, गिम्हे हेमंत पाऊसे ॥ १ ॥" इति ॥

विकट=समयपरिभाषया सलिलं, तिलपिष्ट=तिलकुट्ट प्रसिद्ध, पूतिपिण्याकं=सर्षपकल्कम् आमकं=सचित्त परिवर्जयेत् ॥ २२ ॥

---

१ छाया-"यस्मिन् समये उष्णोदकं च शीतं भवेत्तत पश्चात्।
पञ्चचतुस्त्रियामाः, ग्रीष्मे हेमन्त-प्रावृषो ॥ १ ॥

'तहेव' इत्यादि। इसी प्रकार तत्कालका पीसा हुआ चाँवल गेहूँ आदिका आटा तथा पहले अचित्त होने पर भी कालकी मर्यादा व्यतीत होने पर पुनः सचित्त हुआ जल, तुरतका बना हुआ तिलकुट, तत्कालकी सरसों आदिकी खली, इन सचित्त वस्तुओंको ग्रहण न करे। गर्म पानीके अचित्त रहनेकी मर्यादा—ठंढा होजाने पर ग्रीष्म ऋतुमें पांच पहर, शीतकालमें चार पहर और वर्षाकालमें तीन पहरकी होती है, उसके बाद वह (जल) सचित्त होजाता है। इस विषयमें एक सग्रह गाथा है जो संस्कृत-टीकामें लिखी गई है ॥ २२ ॥

तहेव० ઇત્યાદિ એ જ પ્રમાણે તત્કાળનો દળેલો ચોખા ઘઉં આદિનો આટો, તથા પહેલા અચિત્ત હોવા છતા પણ કાળની મર્યાદા વ્યતીત થતા પુનઃ સચિત્ત થએલુ જળ, તુરતનો બનાવેલો તલકુટ, તુરતની સરસવ આદિની ખોળ એ સચિત્ત વસ્તુઓને પણ ગ્રહણ ન કરે ગરમ પાણી અચિત્ત રહેવાની મર્યાદા ઠંડુ થઇ ગયા પછી ગ્રીષ્મ ઋતુમા પાચ પહોર, શીયાળામા ચાર પહોર અને વર્ષાઋતુમા ત્રણ પહોરની હોય છે, ત્યારબાદ એ જળ સચિત્ત બની જાય છે એ વિષયમા એક સગ્રહગાથા છે તે સસ્કૃત ટીકામા લખી છે (૨૨)

मूलम्-कविट्ठ माउलिंग च, मूलगं मूलगत्तियं ।
आमं असत्थपरिणयं, मणसावि न पत्थए ॥ २३ ॥

छाया—कपित्थं मातुलिङ्गं च, मूलकं मूलकर्तिकाम् ।
आमम् अशस्त्रपरिणतं, मनसाऽपि न प्रार्थयेत् ॥ २३ ॥

सान्वयार्थः-कविट्ठं=कैथ-कविठ माउलिंगं=बिजौरा मूलगं=मूला च=और मूलगत्तियं=मूलेके कन्दका टुकडा आमं=कच्चा असत्थपरिणयं=स्वकाय परकाय आदि शस्त्रसे परिणत न हुआ हो तो उसे मणसावि=मनसे भी न पत्थए=न चाहे ॥२३॥

टीका—'कविट्ठ' इत्यादि। कपित्थं 'कैथ कविठ' इति भाषाया, मातुलिङ्गं=बीजपूरकं 'बिजौरा नीबू' इति भाषाया, मूलकं=सपत्रं, मूलकर्तिका=मूलककन्दखण्डम्, आमम्=अपक्वम्, अशस्त्रपरिणतम्=अलब्धस्वपरकायादिशस्त्रयोग मनसाऽपि न प्रार्थयेत्-एतद्विषयिणीमिच्छामपि न कुर्यादित्यर्थः। 'आमम्' इत्यस्य 'अशस्त्रपरिणतम्' इत्यस्य च लिङ्गविपरिणामेन 'मूलकर्तिका'-मित्यत्र सम्बन्धः। मूलकस्याऽनन्तकायत्वात् शस्त्रपरिणतिर्दुष्करेति बोधयितुमेकार्थकस्याऽऽमादिशब्दद्वयस्योपादानम् ॥ २३ ॥

मूलम्-तहेव फलमंथूणि, बीयमंथूणि जाणिय ।
बिहेलगं पियालं च, आमगं परिवज्जए ॥ २४ ॥

छाया—तथैव फलमन्थून् बीजमन्थून् ज्ञात्वा ।
बिभीतकं पियालं च, आमकं परिवर्जयेत् ॥ २४ ॥

'कविट्ठ' इत्यादि। कैथ (कविठ) बिजौरा नीबू, मूला और मूलेके खण्ड यदि अचित्त-शस्त्रपरिणत न हों तो इन्हें ग्रहण करनेकी इच्छा भी नहीं करनी चाहिए। मूला अनन्तकाय है, अतः उसका शस्त्रपरिणत होना कठिन है इसीसे यहां एक अर्थवाले 'आमक' और 'अशस्त्रपरिणत' ये दो शब्द दिये हैं ॥ २३ ॥

कविट्ठ- ઇત્યાદિ કોઠુ, બીજોરા-લીંબુ, મૂળા અને મૂળાના કકડા જો અચિત્ત-શસ્ત્રપરિણત ન હોય તો તે ગ્રહણ કરવાની ઇચ્છા પણ ન કરવી જોઇએ મૂળો અનંતકાય છે એટલે એ શસ્ત્રપરિણત થવો કઠિન છે, તેથી અહીં એક અર્થવાળા 'આમક' અને 'અશસ્ત્ર પરિણત' એવા બે શબ્દો આપેલા છે (૨૩)

सान्वयार्थः-तहेव=इसी प्रकार फलमथूणि=बेर आदि फलोंका चूर्ण-चूरा बीयमथूणि=शालि आदि बीजोंका चूर्ण-चूरा विहेलग=बहेडा च=और पियाल=रायण अथवा दाख (इन्हें) आमग=सचित्त जाणिय=जानकर=जाने तो परिवज्जए=वरजे-न ले ॥ २४ ॥

टीका—'तहेव फल०' इत्यादि। तथैव=तद्वत् फलमन्थून=बदरादिचूर्णान्, बीजमन्थून=फलबीजचूर्णान्, बिभीतक 'बहेडा' इति प्रसिद्ध, च=पुनः मियाल=राजादनफल 'रायण' इति भाषाप्रसिद्धम्। यद्वा 'मियाला'-मिति च्छाया, मियाला=द्राक्षाम्, आमकं=सचित्त ज्ञात्वा परिवर्जयेत्, सचित्त चेन्न गृह्णीयादित्यर्थः। यद्वा 'जाणिय' इत्यस्य 'याँश्च'-ति च्छाया, याँश्च बीजमन्थूनित्यन्वयः ॥ २४ ॥

मूलम्-समुयाण[५] चरे[६] भिक्खू[१], कुल[४] उच्चावय[३] सया[२]।
नीय[७] कुलमइक्कम्म[८,९,१०], ऊसढ नाभिधारए[११] ॥ २५ ॥

छाया—समुदान चरेद् भिक्षु, कुलमुच्चावच सदा।
नीच कुलमतिक्रम्य, उच्छ्रित नाभिधारयेत् ॥२५॥

सान्वयार्थ -भिक्खू=साधुको सया=हमेशा उच्चावय=ऊच-नीच अर्थात् धनवान और गरीब कुल=कुल-घर-मे समुयाण=शुद्ध भिक्षाका अनुसन्धान पूर्वक चरे=घूमना चाहिए, (किन्तु) नीय=गरीब कुल=कुल घर को अइक्कम्म=छोडकर ऊसढ=धनवानके घरपर नाभिधारए=नही जाना चाहिए ॥२५॥

टीका-'समुयाण' इत्यादि। भिक्षुः सदा=नित्यम् उच्चावचम्=उदक्=उच धनधान्यादिसमृद्धम्, अवाक्=अवचं=तद्विकल कुल प्रति समुदान=गृहस्थ

'तहेव फल०' इत्यादि। इसीप्रकार बेर आदिका चूरा, फलके बीजोंका चूरा, तथा बहेडा, रायण अथवा दाख, ये सचित्त हों तो ग्रहण न करे ॥ २४ ॥

'समुयाण' इत्यादि। भिक्षु सदा धन-धान्य आदिसे समृद्ध कुलोंमें तथा धन-धान्यहीन कुलोंमें समुदानी भिक्षाके लिए गमन करें। एकही

तहेव फल० ઈત્યાદિ એ પ્રકારે બોર આદિનું ચૂર્ણ, ફળના બીજોનું ચૂર્ણ તથા બહેડા, રાયણ અથવા દ્રાક્ષ એ સચિત્ત હોય તો ગ્રહણ કરવા નહિ (૨૪)

समुयाण० ઈત્યાદિ ભિક્ષુ સદા ધન ધાન્ય આદિથી સમૃદ્ધ કુળોમા તથા ધન ધાન્યથી હીન કુળોમા સમુદાની ભિક્ષાને માટે ગમન કરે એક જ ઘરથી

समुदायसम्बन्धि भैक्ष्य, न त्वेकस्मिन्नेव गृहे तत्राऽऽधाकर्मादिदोषसम्भवादिति भावः, चरेत्=गच्छेत् । नीच=विभवविधुर कुलम् अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य परित्यज्येति यावत्, उच्छ्रितं=समृद्ध कुल नाभिधारयेत्=न गच्छेत् प्रचुरसरसभक्तपानादि-लिप्सया निर्धन विहाय विभवसपन्न सदन नाभिगच्छेत्, किन्तु उभयत्रापि यायादिति भावः । 'समुयाण' इति-पदेनाऽनेकगृहतः स्वल्प-स्वल्प ग्रहणाद् भिक्षाया निर्दोषता सूचिता । 'उच्चावय' इति-पदेन समभावो व्यक्तीकृतः । 'नीय कुल' इत्युत्तरार्द्धेन रसलोलुपतापरित्याग आविष्कृत इति ॥ २५ ॥

मूलम्-अदीणो वित्तिमेसिज्जा, न विसीएज्ज पडिए ।
अमुच्छिओ भोयणम्मि, मायन्ने एसणारए ॥ २६ ॥

छाया—अदीनः वृत्तिमेषयेत्, न विषीदेत् पण्डितः ।
अमूर्च्छितो भोजने, मात्राज्ञ एषणारतः ॥२६॥

सान्वयार्थः-पडिए=बुद्धिमान् साधु भोयणम्मि=भोजनमें अमुच्छिओ=गृद्धि-लोलुपता-रहित मायन्ने=आहार-पानीकी मात्राको जाननेवाला एसणारए=आहारकी शुद्धिमें तत्पर अदीणो=दीनता नहीं दिखलाता हुआ वित्तिं=भिक्षा-गोचरी की एसिज्जा=गवेषणा करे, (किन्तु भिक्षा न मिलने पर)न विसीएज्ज=खेद न करे ॥२६॥

घरसे भिक्षा न लें, क्योंकि आधाकर्म आदि दोष लगनेकी सभावना है । निर्धन कुलको छोडकर सरस भक्त पानकी लालसासे सम्पत्तिशाली कुलमें भिक्षाके लिए नहीं जाना चाहिए ।

'समुयाण' पदसे यह सूचित किया है कि अनेक कुलोंसे थोडी-थोड़ी भिक्षा लेनेसे ही भिक्षाकी निर्दोषता होती है । 'उच्चावय' पदसे समभाव सूचित किया है । 'नीय कुल' इत्यादि उत्तरार्द्धसे रसलोलुपताका त्याग व्यक्त किया है ॥ २५ ॥

भिक्षा न ले, કારણ કે આધાકર્મ આદિ દોષ લાગવાનો સભવ છે નિર્ધન કુળને છોડીને સરસ ભક્ત પાનની લાલસાથી સપત્તિશાળી કુળમા ભિક્ષાને માટે જવુ ન જોઈએ

समुयाण પદથી એમ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે અનેક કુળોમાથી થોડી થોડી ભિક્ષા લેવાથી જ ભિક્ષાની નિર્દોષતા જળવાય છે उच्चावय શબ્દથી સમભાવ સૂચિત કર્યો છે नीय कुल ઇત્યાદિ ઉત્તરાર્ધથી રસ-લોલુપતાનો ત્યાગ વ્યક્ત કર્યો છે (૨૫)

टीका-'अदीणो' इत्यादि। पण्डितः=सकलभिक्षादोषज्ञः साधुः भोजने=आहारे अमूर्च्छितः=अगृध्नुः मात्राज्ञः=मात्रा=भक्तपानेन स्वकीयोदरपूर्त्तिप्रमाणं भुक्तिनिमित्तकवेदनीयप्रशमनैकसाधनप्रमाणं वा जानातीति मात्राज्ञः, प्रमाणाधिकभोजनेन प्रमादादिदोषोद्भवस्य सम्भवेन साधूनामाहारप्रमाणमवश्यं विज्ञेयमिति। एषणारतः=उद्गमादिदूषणव्यतिरिच्यमानगवेषणपरायणः, अदीनः=दैन्यरहितः सन् वृत्तिं=भिक्षालक्षणाम् एषयेत्=अन्वेषयेत्, अलाभे सति न विषीदेत्=न खिद्येत्। 'अदीणो' इति-पदेन स्वदैन्याऽऽविष्करणेनाऽऽत्मनोऽधःपतनं शासनलघुता च प्रसज्यते, इति व्यज्यते। 'न विसीएज्ज' अनेन भिक्षाया अलाभेऽपि स्वात्मप्रसन्नता न परित्यजेदिति द्योतितम्। 'पण्डिए' इत्यनेन सर्वथापरिशुद्ध

'अदीणो' इत्यादि। भिक्षाके समस्त दोषोंका ज्ञाता मुनि आहारमें मूर्च्छा न रखें और आहारके परिमाणका ख्याल रखें। जितने आहारसे क्षुधावेदनीय उपशान्त होजाय वही आहारका परिमाण है, उससे अधिक आहार करनेसे प्रमाद आदि दोष उत्पन्न होते हैं, इसलिए साधुओंको आहारका परिमाण अवश्य करना चाहिए। साधु उद्गम आदि दोषोंको न लगाते हुए दीनताका त्याग करके भिक्षाकी गवेषणा करें, और भिक्षाका लाभ न हो तो खेद न करें।

'अदीणो' पदसे यह प्रगट होता है कि दीनता दिखानेसे आत्माका अधःपतन और जिनशासनकी लघुता होती है। 'न विसीएज्ज' पदसे यह सूचित किया है कि आहार-लाभ न हो तो भी आत्मिक प्रसन्नताका परित्याग न करना चाहिए। 'पडिए' पदसे सर्वथाशुद्ध भिक्षा ग्रहण

अदीणो० ઇત્યાદિ ભિક્ષાના બધા દોષોના જ્ઞાતા મુનિ આહારમાં મૂર્છા ન રાખે અને આહારના પરિમાણનો ખ્યાલ રાખે જેટલા આહારથી ક્ષુધા વેદનીય ઉપશાન્ત થઈ જાય તે જ આહારનું પરિમાણ છે એથી વધારે આહાર કરવાથી પ્રમાદ આદિ દોષ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી સાધુઓએ આહારનું પરિમાણ અવશ્ય કરવું જોઇએ સાધુ ઉદ્ગમ આદિ દોષો ન લાગવા દેતાં દીનતાનો ત્યાગ કરીને ભિક્ષાની ગવેષણા કરે, અને ભિક્ષાનો લાભ ન થાય તો તેથી ખેદ ન કરે

अदीणो શબ્દથી એમ પ્રકટ થાય છે કે દીનતા બતાવવાથી આત્માનું અધઃપતન અને જિનશાસનની લઘુતા થાય છે न विसीएज्ज શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે આહારલાભ ન થાય તો પણ આત્મિક પ્રસન્નતાનો પરિત્યાગ ન કરવો જોઇએ पडिए શબ્દથી સર્વથા શુદ્ધ ભિક્ષા ગ્રહણ કરવાની યોગ્યતા

भिक्षाग्रहणयोग्यताऽऽवेदिता। 'अमुच्छिओ' इतिपदेनाऽऽहारादिलोलुपता निराकृता। 'मायन्ने' इत्यनेन निर्दोषसरसभक्तपानादौ प्राचुर्येण दीयमानेऽपि प्रमाणाधिकं न ग्राह्यमिति स्पष्टीकृतम्। 'एसणारए' इति-पदेनाऽऽधाकर्मादि-सकलभिक्षादोषानुसन्धानेनैव विशुद्धभिक्षाग्रहणं भवितुमर्हतीत्याविष्कृतम् ॥२६॥

मूलम्-बहु परघरे अत्थि विविहं खाइमं साइमं।
न तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा देज्ज परो न वा ॥ २७ ॥

छाया—बहु परगृहे अस्ति विविधं खाद्यं स्वाद्यम्।
न तत्र पण्डितः कुप्येत्, इच्छा दद्यात् परो न वा ॥२७॥

सान्वयार्थ—परघरे=गृहस्थके घरमें विविहं=नाना प्रकारका खाइमं=दाख पिस्ता बादाम आदि खाद्य साइमं=एलची लवंग आदि स्वाद्य बहु=बहुत अत्थि=हैं, (किन्तु) इच्छा=इच्छा मरजी है कि परो=गृहस्थ देज्ज-देवे वा=अथवा न=न देवे। नहीं देने पर तत्थ=उस गृहस्थ पर पंडिओ=बुद्धिमान् साधु न कुप्पे=कुपित न होवे ॥२७॥

टीका-'बहु' इत्यादि। परगृहे=गृहस्थभवने विविधं=नैकप्रकारं खाद्य=द्राक्षा-पिस्तबादामादिकं, स्वाद्यम्=एलालवङ्गादिकम् बहु=प्रभूतमस्ति, किन्तु इच्छा चेत्

करनेकी योग्यता व्यक्त होती है। 'अमुच्छिओ' पदसे आहार आदिकी लोलुपताका त्याग ध्वनित होता है। 'मायन्ने' पदसे यह सूचित किया है कि निर्दोष और सरस आहार अधिक प्राप्त हो रहा हो तो भी प्रमाणसे अधिक नहीं ग्रहण करना चाहिए। 'एसणारए' पदसे यह द्योतित किया है कि आधाकर्म आदि भिक्षाके समस्त दोषोंका अनुसन्धान करनेसे ही विशुद्ध भिक्षाका ग्रहण होना सम्भव है ॥ २६ ॥

'बहु' इत्यादि। गृहस्थके घरमें भाँति-भाँतिके खाद्य और भाँति-भाँतिके स्वाद्य विद्यमान रहते हैं, उसकी इच्छा हो तो देवे, न हो तो

વ્યકત થાય છે अमुच्छिओ શબ્દથી આહાર આદિની લોલુપતાનો ત્યાગ ધ્વનિત થાય છે मायन्ने શબ્દથી એજ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે નિર્દોષ અને સરસ આહાર વધારે પ્રાપ્ત થઇ રહ્યો હોય તો પણ પ્રમાણથી વધારે ગ્રહણ ન કરવો જોઇએ एसणारए શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે આધાકર્મ આદિ ભિક્ષાના બધા દોષોનુ અનુસધાન કરવાથી જ વિશુદ્ધ ભિક્ષાનુ ગ્રહણ સભવિત છે (૨૬)

बहु० ઇત્યાદિ ગૃહસ્થના ઘરમા તરેહ તરેહના ખાદ્ય અને ભાત ભાતના સ્વાદ્ય વિદ્યમાન હોય છે, તેની ઇચ્છા હોય તો આપે અને ન હોય તો ન આપે

परः=गृहस्थः दद्यात् न वा दद्यात्, तत्र=दातरि, यद्वा तत्र=याचने स्वार्थे तु अनीयमाने सति न कुप्येत्=न क्रुप्येत्–'कीदृशोऽयमविवेकी ? प्रचुरेऽपि बहुविधखाद्यादिके विद्यमाने साधवे न ददातीति क्रोधावेशदूषितान्तःकरणो न भवेत्। अत्र 'पडिए' इति पदेन सदसद्विवेकशालित्व, तेन च मनोविजयित्वमावेदितम् ॥२७॥

एतदेव प्रपञ्च्यते–'सयणा०' इत्यादि।

मूलम्–सयणासणवत्थ वा, भत्त पाण व सजए।
अदितस्स न कुप्पेज्जा, पच्चक्खेवि य दीसउ ॥ २८ ॥

छाया—शयनासनवस्त्र वा, भक्त पान वा सयतः।
अददतो न कुप्येत्, प्रत्यक्षेऽपि च दृश्यमाने ॥२८॥

पूर्वोक्त विषय को ही विशद करते हुए कहते हैं—

सान्वयार्थः–सयणासणवत्थ–शयन वसति, आसन-पाटलादिक, वस्त्र-चादर आदि वा=अथवा भत्त=आहार व=तथा पाण=पानी आदि किसी भी वस्तुके पचक्खेवि य=प्रत्यक्ष-सामने पड़ी दीसउ=दीखने पर भी अदितस्स=नहीं देते हुए गृहस्थ पर सजए=साधु न कुप्पेज्जा=कोप न करे, (क्योंकि)–"इच्छा देज्ज परो न वा" देवे न देवे गृहस्थकी मरजी है, ऐसा पूर्व गाथासे सबध है ॥२८॥

टीका—सयतः शयनासनवस्त्र=शयन च आसन च वस्त्र चेत्येषा समाहारः, तत्र शय्यतेऽस्मिन्निति शयन वसतिः, आस्यते=उपविश्यतेऽस्मिन्निति आसन=पीठफलकादिक, वस्यते=आच्छाद्यते शरीरमनेनेति वस्त्र=शाटकादिक, भक्त=

न देवे। यदि न दे तो साधुको ऐसा क्रोध न करना चाहिए कि–' यह कैसा अविवेकी है कि इतना बहुत खाद्य स्वाद्य मौजूद होने पर भी साधुको नहीं देता।' यहाँ 'पडिए' पदसे सत् और असत्का विवेक प्रगट किया है और उससे मनको जीतना सूचित किया है ॥ २७ ॥

इसीका विस्तार पूर्वक कथन करते हैं–'सयणा०' इत्यादि।

यदि कोई गृहस्थ शय्या, आसन, वस्त्र, भक्त या पान सामने

જો ન આપે તો સાધુએ એવો ક્રોધ ન કરવો જોઈએ કે, 'આ કેવો અવિવેકી છે કે 'આટલા બધા ખાદ્ય સ્વાદ્ય હાજર હોવા છતાં પણ સાધુને આપતો નથી' અહીં पडिए શબ્દથી સત્ અને અસત્નો વિવેક પ્રકટ કર્યો છે, અને તેથી મનને જીતવાનું સૂચિત કર્યું છે (૨૭)

એનું વિસ્તારપૂર્વક કથન કરે છે–सयणा० ઇત્યાદિ

જો કોઈ ગૃહસ્થ શય્યા, આસન, વસ્ત્ર, ભક્ત યા પાન સામે દેખાતા

भोज्य, पान=पेयम् अददतः=अप्रयच्छतः, (अत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठी,) प्रत्यक्षेऽपि दृश्यमाने शयनादौ न कुप्येत्=कोपावेशेन चित्तविकृतिं न कुर्यादिति सूत्रार्थः॥२८॥

१ ४ ३ २ ५ ६ ७
मूलम्-इत्थियं पुरिसं वावि, डहरं वा महल्लगं ।
८ ९ १० १४ १२ ११ १३ १५
वंदमाणं न जाएज्जा, नो अ णं फरुसं वए ॥ २९ ॥

छाया—स्त्रियं पुरुषं वाऽपि, डहरं वा महान्तम् ।
वन्दमानं न याचेत, नो च तं परुषं वदेत् ॥ २९ ॥

सान्वयार्थः—इत्थियं=स्त्री वावि=अथवा पुरिसं=पुरुष डहरं=छोटा-बालक वा=या महल्लगं=बडा-जुवान या वृद्ध हो वंदमाणं=वन्दना करते हुएको न जाएज्जा=न जाँचे-उससे भिक्षाके लिए याचना न करे, (और दूसरे समय याचना करने पर यदि किसी कारण वश वह भिक्षा न दे तो) णं=उस गृहस्थके प्रति साधु फरुसं=कठोर वचन नो य=नहीं वए=बोले ॥२९॥

टीका—'इत्थियं' इत्यादि। स्त्रियम् अपिवा पुरुषं डहरं=बालकं, 'देशीयोऽयं शब्दः' जन्मतः पञ्चदशवर्षं यावत्, वा=अथवा महान्तं=तरुणं स्थविरं वा वन्दमानं= वन्दनां कुर्वन्तं न याचेत=न-भिक्षेत। वन्दनप्रवृत्तस्य गृहस्थस्य याचनाया चित्त-विक्षेपादिना वन्दनान्तरायः, चित्तवैरस्यप्रसङ्गश्च - 'कीदृशोऽयं कुक्षिम्भरिः साधु-र्यद्वन्दनसमयेऽपि न धैर्यं दधाति, भिक्षायामेव दत्तचित्तो रङ्कवं'—दित्यादि।

दिखाई देनेपर भी साधुको न दे तो भी साधु क्रोध न करे ॥ २८ ॥

'इत्थियं' इत्यादि। स्त्री, बालक, युवक (जुवान) या वृद्ध, वन्दना कर रहा हो तो उससे उस समय भिक्षाकी याचना नहीं करनी चाहिए। कोई वन्दना कर रहा हो और उससे याचना करे तो वन्दनामें अन्तराय पडती है, और गृहस्थके मनमें ऐसा विचार आता है कि—'देखो यह साधु कैसा पेटू (पेट-भरा) है कि वन्दना करते समय भी धीरज नहीं

હોવા છતાં પણ સાધુને ન આપે તો પણ સાધુ ક્રોધ ન કરે (૨૮)

इत्थियं० ઇત્યાદિ સ્ત્રી, બાળક, જુવાન યા વૃદ્ધ વંદના કરી રહ્યા હોય તો તે વખતે તેમની પાસે ભિક્ષાની યાચના કરવી ન જોઈએ કોઈ વંદના કરી રહ્યા હોય અને તેમની પાસે યાચના કરવામાં આવે તો વંદનામાં અંતરાય પડે છે, અને ગૃહસ્થના મનમાં એવો વિચાર આવે છે કે 'જુઓ, આ સાધુ કેવો પેટ ભરો છે કે વંદના કરતી વખતે પણ ધીરજ ધરતો નથી, રંકની પેઠે

अन्यदा याचितेऽपि भक्तपानाद्यभावाददाने तं च गृहस्थं परुष=निष्ठुरवाक्यं न वदेत् मुनिरिति शेषः । यथा व्यर्थेयं त्वद्वन्दनचेष्टा, नालं साधुतोषाय, केवलं किंशुककुसुमवद्बाह्यरमणीयतामात्रमाकलयसी' त्यादि ॥२९॥

१ २ ३ ५ ४ ६ ७ ८ ९

मूलम्-जे न वंदे न से कुप्पे, वंदिओ न समुक्कसे ।

१० ११ १२ १३

एवमन्नेसमाणस्स, सामन्नमणुचिट्ठई ॥ ३० ॥

छाया—यो न वन्दते न तस्य कुप्येत्, वन्दितो न समुत्कर्षयेत् ।

एवमन्वेषमाणस्य, श्रामण्यमनुतिष्ठति ॥ ३० ॥

सान्वयार्थः-जे=जो गृहस्थ न वंदे=साधुको वन्दना न करे तो से=उस पर न कुप्पे=क्रोध न करे (और) वंदिओ=वन्दना किया हुआ न समुक्कसे=गर्वित न होवे-घमंड न करे। एव=इस प्रकार अन्नेसमाणस्स=जिनशासनकी आराधना करनेवालेके सामन्नं=साधुपना चारित्र अणुचिट्ठइ=आराधित स्थिर-होता है, अर्थात् मान अपमानमें समान रहनेवाले मुनिको ही सम्यक् प्रकारसे चारित्रकी आराधना होती है ॥३०॥

टीका-'जे' इत्यादि । यो गृहस्थः साधुं न वन्दते से=तस्य अवन्दमानस्य न कुप्येत्=कीदृगयं विवेकविकलः, यन्मामुपस्थितं साधुमवमन्यते' इति कृत्वा

धरता, रंककी तरह केवल भिक्षाकी चिन्ता कर रहा है। अन्य समय याचना करने पर भी यदि गृहस्थ भिक्षा न दे तो कठोर वचन न बोले कि-'बस रहने दे, तेरी वन्दना वृथा है, इससे साधुओंको सन्तोष नहीं हो सकता, तू टेसू (पलाश-केसूडा) के फूलकी नाईं दिखावटी रमणीयता (नम्रता) धारण करता है' इत्यादि ॥ २९ ॥

'जे' इत्यादि। कोई साधुको वन्दना न करे तो उसे उसपर कुपित न होना चाहिए कि-'यह कैसा अविवेकी है कि सामने उपस्थित साधुका

કેવળ ભિક્ષાની ચિંતા કરી રહ્યો છે ' બીજા સમયે યાચના કરતા પણ જો ગૃહસ્થ ભિક્ષા ન આપે તો સાધુ કઠોર વચન ન બોલે કે ' બસ, રહેવા દો, તારી વંદના વૃથા છે, તેથી સાધુઓને સંતોષ નથી થઈ શકતો, તું કેસૂડાના ફૂલની પેઠે દેખાડવાની રમણીયતા (નમ્રતા) ધારણ કરનારો છે,' ઇત્યાદિ (૨૯)

જે૦ ઇત્યાદિ કોઈ સાધુને વંદના ન કરે તો સાધુએ તેના પર કુપિત ન થવું જોઇએ કે ' આ કેવો અવિવેકી છે કે સામે ઊભેલા સાધુનો અનાદર કરે છે ! '

कोपावेशेन मनो विकृतं न विदध्यात् । वन्दितः=सार्वभौमादिनाऽपि नमस्कृतश्च न समुत्कर्षयेत् आत्मानमिति शेषः, 'अहमेतादृशो माननीयो जगति, यदेतादृशा नरेन्द्रादयोऽपि मम चरणौ प्रणमन्ती'-त्यात्मभिमानं न कुर्यादित्यर्थः । एवम्= उक्तप्रकारेण अन्वेषमाणस्य=जिनशासनमनुतिष्ठतः साधोः श्रामण्यं=साधुत्वं चारित्रमिति यावत् अनुतिष्ठति=स्थिरीभवति, मानापमानसमानमानसस्यैव साधोर्निरतिचारचारित्रं सम्पद्यत इति भावः ॥ ३० ॥

स्वपक्षे चौर्यं निषेधयति-'सिया' इत्यादि ।

मूलम्-सिया एगइओ लद्धुं, लोभेण विणिगूहइ ।
मामेयं दाइयं संतं, दट्ठूण सयमायए ॥ ३१ ॥

छाया—स्यात् एककः लब्ध्वा, लोभेन विनिगूहते ।
ममेदं दर्शितं सत्, दृष्ट्वा स्वयमाददीत ॥ ३१ ॥

अब स्वपक्ष-साधुपक्ष में चोरी का निषेध बताते हैं—

सान्वयार्थः-सिया=कदाचित् अगर एगइओ=जघन्यप्रकृतिवाला अकेला गोचरी गया हुआ साधु लद्धुं=सरस अशनादि पाकर लोभेण=खानेके लोभसे (उसे) विणिगूहइ=छिपा लेवे-नीरस वस्तुको ऊपर रखकर सरस वस्तुको उसके नीचे दबा रखे, क्योंकि मम=मेरी दाइयं संतं=दिखलाई हुई एयं=इस वस्तुको दट्ठूण=सरस देखकर सयं=स्वयं आचार्य आदि खुद आयए=लेलेंगे अर्थात् मुझे नहीं देंगे या थोड़ी देंगे ॥३१॥

अनादर करता है ?, तथा चक्रवर्त्ती आदि राजा महाराजा भी वन्दना करें तो आत्मप्रशंसा (घमंड) न करे कि-'मैं संसारमें ऐसा माननीय हूँ कि ऐसे राजा महाराजा भी मेरे चरणोंमें गिरते हैं । इस प्रकार जिन शासनमें स्थित साधुका चारित्र स्थिर (दृढ) रहता है, अर्थात् सत्कार और तिरस्कार होने पर अन्तःकरणमें विकार न करनेवाले अनगारका आचार निरतिचार पलता है ॥ ३० ॥

स्वपक्षमें चौर्यका निषेध करते हैं-'सिया' इत्यादि ।

तथा चक्रवर्ती आदि राजा महाराजा पण वंदना करे तो आत्मप्रशंसा (घमंड) न करे के हुं जगतमां एवो माननीय छुं के एवा राजा महाराजा पण मारा चरणोमां पडे छे' ए रीते जिनशासनमां स्थित एवा साधुनुं चारित्र स्थिर (दृढ) रहे छे, अर्थात् सत्कार अने तिरस्कार थतां पण अंतःकरणमां विकार न करनारा अनगारनो आचार निरतिचार पणे पळे छे (३०)

स्वपक्षमां चौर्यनो निषेध करे छे-सिया इत्यादि

टीका—स्यात्=कदाचित् एककः=कश्चिज्जघन्यप्रकृतिकः साधुः लब्ध्वा= प्राप्य आहारादिकमिति शेषः लोभेन=उत्कृष्टसरसवस्तुलिप्सया विनिगूहते=संवृणुते नीरसवस्तुजातमुपरि कृत्वोत्कृष्टरसवद्वस्तु समपह्नुते । अपह्नवे हेतुमाह—ममेदमुत्कृष्टं वस्तु 'दाइयं'=दर्शितं सत् दृष्ट्वा आचार्यादिः स्वयमेवाऽऽददीत=गृह्णीयात्, न मह्यं दास्यति अल्पं वा दास्यतीति भावः ॥ ३१ ॥

अपह्नवकरणस्य दोषमाह—'अत्तट्ठा' इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ५
मूलम्-अत्तट्ठागुरुओ लुद्धो, बहुं पावं पकुव्वई ।
८ ७ ६ ९ १० ११ १२ १३
दुत्तोसओ य से होइ, निव्वाणं च न गच्छई ॥ ३२ ॥

छाया—आत्मार्थगुरुको लुब्धः, बहुपापं प्रकुरुते ।
दुस्तोषकश्च स भवति, निर्वाणं च न गच्छति ॥ ३२ ॥

पूर्वोक्त आचरण करनेवाले साधु की क्या दशा होती है? सो बताते हैं—

सान्वयार्थ:–अत्तट्ठागुरुओ=अपने स्वार्थ साधनमें लगा हुआ लुद्धो= जिह्वाका लोलुपी से=वह साधु बहुं=बहुत पावं=पाप पकुव्वई=करता है, य= और (इस भवमें) दुत्तोसओ=असन्तोषी होइ=बना रहता है, च=तथा निव्वाणं= मोक्षको न गच्छइ=नहीं पाता है, अर्थात् अनन्तसंसारी होकर चतुर्गतिमें भटकता है ॥ ३२ ॥

टीका—आत्मार्थगुरुकः=आत्मनः अर्थः=प्रयोजनमित्यात्मार्थः स एव गुरुः= प्रधानं यस्य स तथोक्तः स्वार्थसाधनसमर्थ इत्यर्थः, यद्वा आत्मार्थमेव गुरु=प्रधानं वस्तु यस्य स तथोक्तः अन्याऽलक्षितोत्कृष्टसरसवस्तुजाताऽऽस्वादकः अत एव लुब्धः=मनोरमरसाभिलाषी सन् बहु=प्रचुरं पापम्=आत्ममालिन्यजनकं दुष्कर्म

जो क्षुद्रप्रकृतिवाला साधु उत्कृष्ट सरस आहार प्राप्त करके इस विचारसे उसे छिपा लेता है कि–मैं इसे दिखा दूंगा तो आचार्य आदि इसे ले लेंगे–मुझे न देंगे अथवा थोडासा देंगे ॥ ३१ ॥

'अत्तट्ठा' इत्यादि । वह दूसरोंसे छिपाकर सरस आहार करनेवाला स्वार्थ साधनमें समर्थ साधु मनोज्ञ रसका अभिलाषी होकर अत्यन्त ही

જે ક્ષુદ્ર પ્રકૃતિવાળો સાધુ ઉત્કૃષ્ટ સરસ આહાર પ્રાપ્ત કરીને એવા વિચારથી એને છુપાવે કે–હું એને બતાવીશ તો આચાર્ય આદિ એ લઈ લેશે, મને નહિ આપે અથવા થોડો જ આપશે' (૩૧)

अत्तट्ठा० ઇત્યાદિ એ બીજાથી છુપાવીને સરસ આહાર કરનારો સ્વાર્થ સાધનમાં સમર્થ સાધુ મનોજ્ઞ રસનો અભિલાષી થઈને અત્યંત પાપકર્મનું

करोति=विधत्ते, स चाऽस्मिन् जन्मनि दुस्तोषकः=अन्तप्रान्ताद्याहारेण दुःसम्पादनीयतोषः–असन्तोषी भवति, निर्वाणं=मोक्षं च न गच्छति=नोपैति ।

'अत्तट्ठागुरुओ' इत्यनेन पुद्गलानन्दित्वं, 'लुद्धो' अनेन मायापरत्वं तस्करवृत्तित्वं च प्रकटितम्, 'दुत्तोसओ' इत्यनेन चेप्सितवस्त्वप्राप्तौ सन्तोषाभावः सूचितः ॥ ३२ ॥

गुरुसमक्षापहारकमुक्त्वा गुरुपरोक्षतोऽपहारकमाह–'सिया' इत्यादि ।

मूलम्–सिया[1] एगइओ[2] लद्धुं[5], विविहं[3] पाण-भोयणं[4] ।
भद्दगं[6] भद्दगं[7] भोच्चा[8] विवन्नं[9] विरसमाहरे[10, 11] ॥३३॥

छाया––स्यात् एककः लब्ध्वा, विविधं पान-भोजनम् ।
भद्रकं भद्रकं भुक्त्वा, विवर्णं विरसमाहरेत् ॥ ३३ ॥

सान्वयार्थः–एगइओ=अकेला पूर्वोक्त स्वभाववाला रसलोलुपी साधु गोचरी गया हुआ सिया=कदाचित्-कोई वक्त ऐसा भी करे कि विविहं=नाना प्रकारके पाण-भोयणं=आहार-पानीको लद्धुं=पाकर (उसमेंसे) भद्दगं-भद्दगं=अच्छे-अच्छे सरस आहारको भुच्चा=वहीं कहीं एकान्त स्थानमें खाकर विविन्नं=विकृत वर्ण-

पापकर्मका उपार्जन करता है। वह इस जन्ममें साधारण, नीरस आहारसे कभी सन्तुष्ट नहीं होता, न मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

'अत्तट्ठागुरुओ' इस पदसे पुद्गलानन्दीपन, 'लुद्धो' पदसे मायाचारमें परायणता तथा तस्करवृत्ति (चोरी) और 'दुत्तोसओ' पदसे अभीष्ट वस्तु न मिलने पर असन्तोष सूचित किया है ॥ ३२ ॥

गुरुसमक्षका अपहार कहकर अब गुरुके परोक्षका अपहार कहते हैं–'सिया' इत्यादि ।

ઉપાર્જન કરે છે તે આ જન્મમાં સાધારણ નીરસ આહારથી કદાપિ સંતુષ્ટ ન થતાં મોક્ષને પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી.

अत्तट्ठागुरुओ એ પદથી પુદ્ગલાનંદીપણું, लुद्धो પદથી માયાચારમાં પરાયણતા તથા તસ્કરવૃત્તિ (ચૌર્યવૃત્તિ) અને दुत्तोसओ પદથી અભીષ્ટ વસ્તુ ન મળવાથી ઉપજતો અસંતોષ સૂચિત કર્યો છે (૩૨)

ગુરૂ સમક્ષનો અપહાર કહીને હવે ગુરુની પરોક્ષનો અપહાર કહે છે–सिया० ઇત્યાદિ

वाले वाल चने आदिका बना हुआ तुप आदि जिसमें बहुत हों ऐसे (तथा) विरस=लवणादि रस सहित अशनादिको आहरे=उपाश्रयमें लावे ॥३३॥

टीका—स्यात्=कदाचित् एककः=कश्चित् रसलोलुपी विविध पान भोजन लब्ध्वा भिक्षाचर्यायामेव यत्र कुत्रचिदलक्षितप्रदेशे भद्रक भद्रकम्=उत्कृष्टमुत्कृष्ट बहुविधान्नादिषु प्रशस्त प्रशस्तमेव घृतपूराऽपूपादिकं भुक्त्वा विवर्ण=विकृतवर्ण वल्लचणकादिनिष्पन्न तुषादिबहुल विरस=लवणादिरसवर्जितमन्नादिकम् आहरेत्=आनयेत् वसताविति शेषः ॥३३॥

एव करणे किं प्रयोजनम् ? इत्याह–'जाणतु' इत्यादि ।

मूलम्–जाणतु[12] ता[1] इमे[2] समणा,[3] आययट्ठी[6] अय[4] मुणी[5]
सतुट्ठो[7] सेवई[11] पत,[10] लूहवित्ती[8] सुतोसओ[9] ॥३४॥

छाया—जानन्तु तावत् इमे श्रमणाः आत्मार्थी अय मुनिः ।
सन्तुष्टः सेवते प्रान्त, रूक्षवृत्तिः सुतोषकः ॥ ३४ ॥

वह ऐसा क्यों करता है ? इसमें कारण कहते है—

सान्वयार्थ,–ता=प्रथम इमे=ये-उपाश्रयमें रहे हुए दूसरे समणा=साधु (मुझे इस प्रकार) जाणतु=जानें कि अय=यह मुणी=साधु आययट्ठी=मोक्षार्थी आत्मार्थी है, सतुट्ठो=जैसा मिला उसीमें सन्तोष करनेवाला लूहवित्ती=सरस स्निग्धादि आहारकी अभिलापारहित सुतोसओ=थोडे आहारसे भी सतोपी है और पत=वासी कुसी तथा निस्सार अन्नादिका सेवई=सेवन करता है ॥३४॥

कदाचित् कोई रसलोलुपी साधु विविध प्रकारका पान भोजन पाकर अच्छा-अच्छा भोजन भिक्षाचरीमें ही किसी एकान्त स्थानमें खावे, और वाल चणक आदि अन्त-प्रान्त तथा विना नमक मसालेका ठढा आहार उपाश्रयमे ले आवे ॥ ३३ ॥

ऐसा करनेका प्रयोजन कहते हैं–'जाणतु' इत्यादि ।

કદાચિત્ કોઈ રસલોલુપી સાધુ વિવિધ પ્રકારના પાન ભોજન મેળવીને સારૂ-સારૂ ભોજન ભિક્ષાચરીમા જ કોઈ એકાત સ્થાનમા ખાઈ લે અને વાલ ચણા આદિ અત-પ્રાત તથા મીઠા મરચા વિનાનો નીરસ ઠડો આહાર ઉપાશ્રયમા લઈ આવે (૩૩)

એમ કરવાનુ પ્રયોજન કહે છે–जाणतु० ઇત્યાદિ

टीका—तावत्=निश्चयेन इमे=मानसप्रत्यक्षविषयाः उपाश्रयस्थाः श्रमणाः= साधवः- 'अयमुनिः आत्मार्थी=आत्महितार्थी सन्तुष्टः=यथालब्धसन्तोपी रूक्षवृत्तिः= सरसाऽनभिकाङ्क्षी सुतोषक'=अल्पेनापि परितोषशीलः प्रान्त=पर्युषित निस्सार वाऽन्नादिक सेवते' इति मा जानन्तु ॥ ३४ ॥

किमर्थं स्वदोषगोपनमाचरती ?-त्याह—'पूयणट्ठा' इत्यादि ।

मूलम्-पूयणट्ठा[1] जसोकामी[2], माणसम्माणकामए[3]।
बहु[4] पसवई[6] पाव[5], मायासल्ल[7] च[8] कुव्वइ[9] ॥ ३५ ॥

छाया—पूजनार्थः यशःकामी, मानसम्मानकामुकः ।
बहु प्रसूते पाप, मायाशल्य च कुरुते ॥३५॥

उपर्युक्त साधु के दोष बताते हैं—

सान्वयार्थ'-पूयणट्ठा=वस्त्र-पात्रादिसे सत्कार चाहनेवाला जसोकामी= अपने महत्त्व और प्रसिद्धिका इच्छुक माणसम्माणकामए=मान-सम्मानका अभिलापी साधु बहु=बहुत पाव=पाप मोहनीयादि को पसवई=पैदा करता है, च=और मायासल्ल=कपटरूप भावशल्यको कुव्वइ=उत्पन्न करता है । तात्पर्य यह है कि हृदयमें खुबे हुए बाणके अग्रभागरूप द्रव्य शल्यकी तरह हृदयमें रहा हुआ यह मायारूप भाव-शल्य मनुष्यको, अनन्त दुस्सह दुःखोका कारणभूत चतु-र्गतिक ससारमें घूमाता हुआ अविचलशान्तिमय सुखसे वञ्चित कर देता है ॥३५॥

ये उपाश्रयमें स्थित साधु मुझे ऐसा समझें कि-' यह साधु आत्मार्थी है, जैसा मिला उसीमें सन्तोपी है, सरस आहारकी आकाङ्क्षा नहीं करता, थोडे ही आहारसे सन्तुष्ट हो जाता है और साररहित ठढा अन्त-प्रान्त आहारका सेवन करता है' ॥३४॥

अपना दोष छिपाता क्यो है? सो कहते हैं-'पूयणट्ठा' इत्यादि ।

આ ઉપાશ્રયમા રહેલા સાધુ મને એવો માને કે-'આ સાધુ આત્માર્થી છે, જેવો આહાર મળ્યો તેમા સતોષ માનનારો છે, સરસ આહારની આકાક્ષા કરતો નથી થોડા જ આહારથી સતુષ્ટ થઈ જાય છે, અને સારરહિત ઠડા અત પ્રાત આહારનુ સેવન કરે છે,' (૩૪)

પોતાના દોષ કેમ છુપાવે છે ? તે કહે છે—પૂયણટ્ઠા૦ ઇત્યાદિ

टीका—पूजनार्थः=पूजनं=वस्त्र पात्रा ऽन्न पानादिना सत्कारः स एवार्थः=प्रयोजनं यस्य स तथोक्तः प्रशस्तवस्तूपभोगार्थीत्यर्थः, अत एव यशःकामी=यशः=स्वमहत्त्वप्रसिद्धिस्तत्कामयते=इच्छतीति 'अहो! अयमेव सः' इत्येवं प्रशंसावचनाभिलाषीत्यर्थः, मानसम्मानकामुकः=मानश्च सम्मानश्चेति मानसम्मानौ तयोः कामुक इति विग्रहः, तत्र मानः=अभ्युत्थानादिलक्षण आदरः, सम्मानः=गुणोत्कीर्तनेन गौरवप्रकटनम्, आदरगौरवाभिलाषुक इत्यर्थः। एवं कुर्वन् साधुः किं सम्पादयती? त्याह बहु=प्रभूतं पापं=दुष्कृतं प्रसूते=जनयति, च=पुनः मायाशल्यं=माया=शाठ्येन मनोवाक्कायप्रवृत्तिः, सैव शल्यं=शल्यते=बाध्यते पीड्यते आत्माऽनेनेति विग्रहः, मायालक्षणं भावशल्यं कुरुते=उत्पादयति, हृदयनिखातत्रुटितबाणाग्ररूपद्रव्यशल्यवदिदं मायारूपं भावशल्यं हृदयस्थितं सत् निरन्तराऽनन्तदुस्सहदुःखकारणीभवत् चतुर्गतिकसंसारे भ्रामयत् अविचलशान्तिसुखाद् दूरतरीकरोति तादृशं साधुमिति भावः ॥३५॥

अच्छे-अच्छे वस्त्र पात्र अन्न पान आदिसे अपना सत्कार चाहनेवाला, प्रशस्त वस्तुओंके भोगका लोलुपी, 'अहो! यह वही है' ऐसे यशका अभिलाषी, मान (आनेपर खड़ा होजाना) तथा सम्मान (गुणगान द्वारा गौरव प्रगट करना) की इच्छावाला साधु बहुत पापोंको तथा कपटरूप मायाशल्यको उत्पन्न करता है। छातीमें घुसकर वहीं टूट जानेवाले द्रव्य-शल्य (तीरकी नोंक) की तरह हृदयमें स्थित मायारूप भाव-शल्य निरन्तर असीम व्यथाका कारण होता है, तथा चतुर्गति संसारमें इधर-उधर भटकाता हुआ अविचल शान्तिमय सुखसे उस साधुको वञ्चित (अलग) कर देता है ॥३५॥

સારા-સારા વસ્ત્ર પાત્ર અન્ન પાન આદિથી પોતાનો સત્કાર ચાહનાર, પ્રશસ્ત વસ્તુઓનાભોગનો લોલુપી–'અહો! એ આ જ છે' એવા યશનો અભિલાષી, માન (આવતા જ ઉભા થઈ જવુ) તથા સમ્માન (ગુણગાનદ્વારા ગૌરવ પ્રકટ કરવુ) ની ઇચ્છાવાળો સાધુ ઘણા પાપોને તથા કપટરૂપ માયા શલ્યને ઉત્પન્ન કરે છે છાતીમા પેસીને ત્યા જ તૂટી જનારા દ્રવ્ય શલ્ય (તીરની અણી) ની પેઠે હૃદયમા રહેલુ માયારૂપ ભાવ શલ્ય નિરતર અસીમ વ્યથાનું કારણુ બને છે, તથા ચતુર્ગતિ સ સારમા અહીં-તહી ભટકાતા અવિચલ શાન્તિમય સુખથી એ સાધુને વ ચિત (રહિત) કરી નાખે છે (૩૫)

मद्यपानप्रतिषेधमाह-'सुरं वा' इत्यादि ।

मूलम्-सुरं वा, मेरगं वावि, अन्नं वा मज्जगं रसं ।
ससक्खं न पिवे भिक्खू, जसं सारक्खमप्पणो ॥ ३६ ॥

छाया—सुरां वा मेरकं वाऽपि, अन्यद् वा माद्यकं रसम् ।
ससाक्षि न पिबेद् भिक्षुः, यशः संरक्षन् आत्मनः ॥३६॥

अब मद्यपान का दोष बताते हैं—

सान्वयार्थः-भिक्खू=साधु अप्पणो=अपने जसं=संयमको सारक्खं=बचाता हुआ सुरं=गौडी, माध्वी और पैष्टी, इन तीनों प्रकारकी मदिराको वा='वा' शब्दसे अथवा बारहों प्रकारकी मदिराको वावि=तथा मेरगं=सरकेको अन्नं वा=और भी दूसरे प्रकारके मज्जगं=मदजनक भंग गांजा अफीम चरस आदि मादक रसं=रस द्रव्य को ससक्खं=केवली भगवान्की साक्षीसे अर्थात् उनका ज्ञान सर्वव्यापक होनेसे एकान्तमें भी न पिवे=नहीं पिये ॥ मदिराके बारह भेद इस प्रकार हैं-(१) महुआ, (२) फणस, (३) द्राख, (४) खजूर, (५) ताड (ताडी), (६) गन्ना=शेरडी, (७) धावडीके फूल, (८) मक्खियोंकी शहद, (९) मैठ (कठोती), (१०) मधु (अन्य प्रकारकी शहद), (११) नारियल, और (१२) पिष्ट (आटा), मदिरा इन बारह वस्तुओंसे बनती है ॥३६॥

टीका—भिक्षुः आत्मनः=स्वस्य यशः=संयमं संरक्षन् सुरां=मदिरां, सा च त्रिविधा गौडी, माध्वी, पैष्टी चे'-ति । तत्र गौडी=गुडनिष्पादिता, माध्वी=मधु-(महुडा) संपादिता, पैष्टी=व्रीह्यादिपिष्टनिर्वृत्तेति । यद्वा 'पिट्ठेण सुरा होइ' इति

मद्यपानका निषेध करते हैं-'सुरं वा' इत्यादि ।

जो साधु अपने संयमकी रक्षा करना चाहते हैं उन्हें मदिरा या सिरका एकान्तमें भी कदापि न पीना चाहिए। मदिरा तीन प्रकारकी है (१) गौडी (२) माध्वी और (३) पैष्टी। गुडसे बनाई हुई गौडी, महुआसे बनाई हुई माध्वी तथा धान्य आदिके पिष्ट (आटे) से बनाई हुई पैष्टी कहलाती है । 'पिट्ठेण सुरा होइ' इस वचनसे यही जान पडता है कि-

---

મદ્યપાનનો નિષેધ કહે છે-સુરં વા૦ ઇત્યાદિ

જે સાધુ પોતાના સંયમની રક્ષા કરવા ઇચ્છે છે, તેણે મદિરા યા સરકો એકાંતમાં પણ કદાપિ પીવો ન જોઇએ મદિરા ત્રણ પ્રકારની છે (૧) ગૌડી, (૨) માધ્વી, (૩) પૈષ્ટી ગોળમાંથી બનાવેલી ગૌડી, મહુડામાંથી બનાવેલી માધ્વી તથા ધાન્ય આદિના પિષ્ટ (આટા) માંથી બનાવેલી પૈષ્ટી કહેવાય છે

वचनाद् व्रीह्यादिपिष्टनिर्वृत्तैव सुरेत्युच्यते। चन्द्रहासाभिध मद्यमिति वा। मेरक= सरकानामधेय मद्यम्। अन्यद्वा मादक=मदजनक रसम्। मादकत्वेन द्वादशविध मद्यस्य तदितरस्य विजयादेश्च सर्वस्य सग्रहः, तदुक्तमितरत्र मदहेतुद्रवद्रव्य मद्य मित्यभिधीयते' इति। द्वादशविधमद्यानि यथा—

" माध्वीक पानस द्राक्ष, खार्जूर तालमैक्षवम्।
मैरेय माक्षिक टाङ्क, माधूक नारिकेलजम् ॥१॥
मुख्यमन्नविकारोत्थ, मद्यानि द्वादशैव च।" इति।

एतत्सर्वं सुरादिक ससाक्षि न पिबेत्, साक्षिभिः केवल्यादिभिः सहेति ससाक्षि

धान्य आदिके आटेसे मदिरा बनती है। अथवा पैष्टी मदिरा 'चन्द्रहास' नामकी मदिरा समझनी चाहिए। इनके सिवाय भंग गाँजे आदि और कोई भी नशीली वस्तुका साधुको सेवन नहीं करना चाहिए जैसा कि कहा है—'मदके कारण-स्वरूप पिघले हुए पदार्थको मद्य कहते हैं।' मद्य बारह प्रकारके समझने चाहिएँ वे ये हैं—

"(१) महुआका, (२) पनसका, (३) दाखका, (४) खजूरका, (५) ताडका (ताडी), (६) साठेका, (७) मैरेय-धौ-धावडीके फूलका, (८) माक्षिक (मक्खियोंकी शहद) का, (९) टक (कवीठ कैथ) का, (१०) मधुका, (११) नारियलका और (१२) पिष्ट (आटे) का बना हुआ मद्य। ये मद्यके मुख्य भेद बारह हैं।"

इन सबको केवली भगवानकी साक्षीसे न पिये। केवल भगवानकी

પિટ્ઠેણ સુરા હોઇ એ વચનથી એમ માલુમ પડે છે કે—ધાન્ય આદિના આટાથી મદિરા બને છે અથવા પૈષ્ટી મદિરા 'ચન્દ્રહાસ' નામની મદિરા સમજવી જોઇએ તે ઉપરાત ભાગ, ગાજો, બીજી બીજી કોઈ /પણ કેફી વસ્તુનું સેવન સાધુ ન કરે, જેમકે કહ્યુ છે કે—

'મદના કારણ સ્વરૂપ પીગળેલા પદાર્થને મદ્ય કહે છે' મદ્ય બાર પ્રકારના સમજવા, તે નીચે મુજબ—

"(૧) મહુડાનો, (૨) ફણસનો, (૩) દ્રાક્ષનો (૪) ખજૂરનો (૫) તાડનો (તાડી), (૬) શેરડીનો, (૭) મૈરેય ધાવડીના ફૂલનો, (૮) માક્ષિક—મધનો (૯) ટક (કોઠા)નો, (૧૦) મધુનો, (૧૧) નારિએળનો, અને (૧૨) પિષ્ટ (આટા) નો બનેલો મદ્ય એમ મદ્યના મુખ્ય ભેદ બાર છે

એ બધાને કેવળી ભગવાનની સાક્ષીએ પીએ નહિ કેવળી ભગવાનની સાક્ષી

कैवल्यादीना साक्षित्व कदापि कश्चिदपि प्रतिरोद्धुमशक्य, तेषा सर्वज्ञत्वात्सर्वदर्शित्वाच्च, तेन एकान्तेऽपि न पिबेदित्यर्थ. ॥३६॥

मूलम्-पियए एगओ तेणो, न मे कोई वियाणइ ।
तस्स पस्सह दोसाइ, नियडिं च सुणेह मे ॥ ३७ ॥

छाया—पिबति एकक. स्तेनः, न मे कोऽपि विजानाति ।
तस्य पश्यत दोषान, निकृतिं च शृणुत मे ॥३७॥

सान्वयार्थ –तेणो=जो भगवानकी आज्ञाके विना ग्रहण करनेवाला होनेके कारण चोर साधु एगओ=अकेला, एकान्तमें रहा हुआ अर्थात् अपने सहचर धर्मको भी छोडा हुआ, 'मे=मेरे-इस मदिरापान-को या मुझे कोई=कोईभी न वियाणइ=नही जानता है' (ऐसा समझ कर) पियए=मदिरा पीता है, तस्स=उस साधुके दोसाइ=सयममें मलिनता पैदा करनेवाले दोषोको पस्सह=देखो, च=और नियडिं=एक कपटको छिपानेके लिए किये जानेवाले दूसरे कपटको मे=मेरेसे सुणेह=सुनो ॥३७॥

टीका—'पियए' इत्यादि । य' स्तेन. तीर्थङ्करानादिष्टत्वेनाऽदत्ताऽऽदायित्वाच्चौरः, एककः=एकान्तस्थितः आत्मसहचर धर्ममपि विहाय वर्तमानः सन् 'न मे=न मा, न मम सुरादिपान वा कोऽपि विजानाति' इति मत्वा पिबति=लालसाध.सयोगानुकूलव्यापारविषय करोति सुरादिकमिति शेषः, तस्य=द्रव्यलि-

साक्षी कभी कहीं नहीं रुक सकती, क्योंकि वे सर्वदर्शी है, अतः तात्पर्य यह हुआ कि एकान्तमें भी मद्य न पिये ॥ ३६ ॥

'पियए' इत्यादि । हे शिष्य ! भगवान् तीर्थङ्करकी आज्ञाके विना ग्रहण करनेवाला, अत एव चोर, आत्माके सहचर धर्मको भी त्याग कर एकान्तमे स्थित होकर ऐसा समझता है कि-'मुझे या मेरे मदिरा-पानको कोई नहीं जानता' ऐसा जानकर मदिरा पान करता है, उस द्रव्यलिंगी

કદાપિ ક્યાય રોકાતી નથી, કારણ કે તે સર્વદર્શી છે, એટલે તાત્પર્ય એ છે કે એકાતમા પણ મદ્ય પીવો નહિ (૩૬)

પિયએ૦ ઇત્યાદિ હે શિષ્ય ! ભગવાન્ તીર્થંકરની આજ્ઞા વિના ગ્રહણ કરનાર એટલે ચોર, આત્માના સહચર ધર્મને પણ ત્યાગીને એકાતમા સ્થિત થઈને એમ સમજે છે કે–'મારા આ મદિરાપાનને કોઈ જાણતુ નથી' એમ સમજીને જે મદિરાપાન કરે છે તે દ્રવ્યલિગી સાધુના સયમને દૂષિત કરનારી ચેષ્ટાઓ

ह्निनः साधोः दोषान्=संयममालिन्यकारिचेष्टाविशेषान् पश्यत=ज्ञानविषयीकुरुत, च=पुनः निकृतिं=पूर्वकृतकपटावरणाय कपटान्तरकरणलक्षणां मायां, प्रथमकपट सुरापानं, द्वितीयमनृतभाषणेन तत्संगोपनमिति भावः, मे=मम निरूपयतः सकाशात् शृणुत=श्रवणगोचरीकुरुत । गुरुः शिष्यानामन्त्र्य कथयतीति भावः ॥३७॥

पूर्वप्रतिज्ञातदोषानुपदर्शयति-'वड्ढई' इत्यादि ।

मूलम्-वड्ढई सुंडिया तस्स, माया मोसं च भिक्खुणो ।
अयसो य अनिव्वाणं, सययं च असाहुया ॥ ३८ ॥

छाया—वर्द्धते शौण्डिका तस्य, माया मृषा च भिक्षोः ।
अयशश्च अनिर्वाणं, सततं च असाधुता ॥३८॥

सान्वयार्थः-तस्स=उस मदिरा पीनेवाले भिक्खुणो=साधुकी सुंडिया=मद्यपान सवन्धी आसक्ति माया=कपट च=और मोसं=झूठ अयसो=अपकीर्ति य=तथा अनिव्वाणं=अतृप्ति, ये सब दोष सययं=निरन्तर वड्ढइ=बढते रहते हैं च=और (आखिर उसके) असाहुया=असाधुता हो जाती है, अर्थात् वह असाधुपनको प्राप्त हो जाता है, यानी चारित्रसे भ्रष्ट हो जाता है ॥३८॥

टीका-तस्य=सुरापायिनः भिक्षोः=साधोः सततं=निरन्तरं शौण्डिका=मद्यपानविषयासक्ति', च=पुनः, माया=निकृतिः, मृषा=असत्यभाषणम् , यद्वा 'माया

साधुके संयमको दूषित करनेवाली चेष्टाओं (दोषों) को तो देखो ! एक तो मदिरापानका मायाचार, फिर उसे छुपानेके लिए दूसरे अनेक मायाचार और मृषावाद आदिका सेवन किया जाता है सो मुझसे सुनो, अर्थात् गुरुमहाराज शिष्यको आमन्त्रित करके कथन करते हैं॥३७॥

पूर्वप्रतिज्ञात दोष कहते हैं-'वड्ढई' इत्यादि ।

मदिरापान करनेवाला साधु सदा मदिरा पीनेमें ही मग्न रहता है। वह मायाचार करता है, मृषा बोलता है, अथवा कपट-सहित झूठ

(દોષો)ને તો જુઓ ! એક તો મદિરાપાનનો માયાચાર, વળી તેને છુપાવવા માટે બીજા અનેક માયાચાર અને મૃષાવાદ આદિનું સેવન કરવામાં આવે છે તે મારી પાસેથી સાંભળો-અર્થાત્ ગુરૂ મહારાજ શિષ્યને આમંત્રિત કરીને કથન કરે છે (૩૭)

પૂર્વપ્રતિજ્ઞાત દોષો કહે છે-વડ્ઢઇ૰ ઇત્યાદિ

મદિરાપાન કરનાર સાધુ સદા મદિરા પીવામાં જ મગ્ન રહે છે તે માયાચાર કરે છે, મૃષા બોલે છે, અથવા કપટસહિત જૂઠું બોલે છે દુરાચારી હોવાને

मोम' इत्येक पद तेन मायया सह मृपा मायामृपा=परप्रतारणपूर्वकमसत्यभापण-मित्यर्थः, च=पुनः, अयशः=असदृग्तत्वेनाऽपकीर्त्तिः, अनिर्वाणम्=अनुपशान्तिरतृप्तिः उत्तरोत्तरस्पृहावर्द्धनात्, च=तथा असाधुता=असयतत्व साधूचिताचाराद्धित्येन साधुपदाऽनर्हत्वमित्यर्थः, वर्द्धते=वृद्धिं गच्छति ।

'सुडिया' इत्यनेन मद्यपायिनो मद्यासक्तिरपरिहार्या भवतीति सूचितम् । मद्यासक्तौ सत्या माया मृपा च कदापि त न विजहाति, मायामृपावृद्धौ स्वपरपक्षे निन्दाऽवश्यम्भाविनी, निन्दायामपि सत्या मद्यपानासक्तस्याऽनिर्वृतिः साहचर्यं न मुञ्चति, तथा सति सर्वथा साधुपदानधिकारित्वमुपजायतेऽत' सर्वानर्थमूल मद्यपानमिति नो यम् ॥३८॥

बोलता है । दुराचारी होनेके कारण उसकी अपकीर्त्ति फैल जाती है । उसकी लोलुपता अधिकाधिक बढती चली जाती है–उसे कभी तृप्ति नहीं होती । तथा मुनिके योग्य आचरणसे हीन होनेके कारण वह साधु कहलाने योग्य नही रहता, अतः उसकी असाधुता बढती है ।

'सुडिया' पदसे यह सूचित किया है कि शराबीकी शराब पीनेकी आदत छूटनी कठिन होती है । मदिरामे आसक्ति होने पर माया मृपा मदिरापायीका काना पीछा नहीं छोडती, अर्थात् वह माया-मृपा दोषोंमें तत्पर रहता है । माया और मृपाकी वृद्धि होनेपर स्वपक्ष परपक्षमें निश्चय ही निन्दा होती है और निन्दा होनेपर भी मदिरा पानमें मस्त होकर मदिरा-पान नही त्यागता । ऐसी अवस्थामें वह साधु कहलाने योग्य बिलकुल ही नही रहता ॥ ३८ ॥

કારણે તેની અપકીર્તિ ફેલાઈ જાય છે, એની લોલુપતા અધિકાધિક વધતી જાય છે, તેથી કદાપિ તૃપ્તિ થતી નથી મુનિને યોગ્ય આચરણથી હીન હોવાને કારણે એ સાધુ કહેવાવાને યોગ્ય નથી રહેતો, એટલે એની અસાધુતા વધે છે

'सुडिया' શબ્દથી એમ સૂચિત કર્યું છે કે શરાબીની શરાબ પીવાની આદત છૂટવી કઠિન હોય છે મદિરામા આસક્તિ થતા માયા મૃષા મદિરાપાન કરનારનો પીછો છોડતી નથી, અર્થાત્ એ માયા મૃષા દોષોમા તત્પર રહે છે માયા અને મૃષાની વૃદ્ધિ થતા સ્વ પક્ષ પર પક્ષમા જરૂર નિંદા થાય છે, અને નિંદા થતા છતા પણ મદિરાપાનમા મસ્ત થઈને તે મદિરાપાન ત્યાગતો નથી એવી અવસ્થામા તે જરાએ સાધુ કહેવાવાને યોગ્ય રહેતો નથી (૩૮)

उक्तमेवार्थं प्रकारान्तरेण द्रढयति-'निच्चुव्विग्गो' इत्यादि ।

४ १ २ ३ ६
मूलम्-निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्तकम्मेहिं दुम्मई ।
५ ७ ९ ८
तारिसो मरणंतेऽपि, नाराहेइ संवरं ॥ ३९ ॥

छाया—नित्योद्विग्नः यथा स्तेनः, आत्मकर्मभिर्दुर्मतिः ।
तादृशः मरणान्तेऽपि, न आराधयति संवरम् ॥ ३९ ॥

सान्वयार्थः-जहा=जिस प्रकार तेणो=चोर अत्तकम्मेहिं=अपने किये हुए दुश्चरित्रोंसे निच्चुव्विग्गो=हमेशा व्याकुल बना रहता है, उसी तरह तारिसो=मदिरा पीनेवाला वह दुम्मई=दुर्बुद्धि साधु भी नित्य उद्विग्न बना रहता है, फिर वह मरणंतेवि=मरण समय तक भी संवरं=संवरधर्म-चारित्रको नाराहेइ=नहीं आराध सकता है, अर्थात् वह साधु जिन्दगीभर चारित्रसे वञ्चित रहता है ॥३९॥

टीका—यथा स्तेनः=तस्करः आत्मकर्मभिः=स्वकीयदुश्चरितैः नित्योद्विग्नः= सदा व्याकुलः चित्तोपशान्तिरहितो भवति, तादृशः=स्तेनसदृश', यथा चौरः- 'मदीयमिदं दुश्चरितं कोऽपि मा विद्यात्, अन्यथा राजगृहीतस्य मम प्राणापहारो भवे'-दिति चिन्तया कदाचिदपि चेतसि नोपशान्तिं गच्छति, तथा मद्यसेवी साधुरपि स्वकीये दुश्चरिते प्रकटिते सति पूजाप्रतिष्ठादिप्रतिघातशङ्कया स्वकृत-

---

इसी विषयको दूसरी तरहसे कहते हैं-'निच्चुव्विग्गो' इत्यादि।

जैसे चोर अपने कुकर्मोंके कारण सदा व्याकुल बना रहता है अर्थात् उसे सदा यही भय बना रहता है कि मेरे कुकर्मको कोई जान न ले, नहीं तो राजा मुझे पकड लेगा और प्राणोंसे हाथ धोना पडेगा। इस प्रकारकी चिन्तासे चोरके चित्तमें सदा धुक धुकी (खल बली) मची रहती है। उसी प्रकार मदिरा पान करनेवाले मुनिके मनमें हमेशा असमाधि रहती है कि-कहीं मेरा मदिरा पानका दुराचार प्रगट न हो जाय, नहीं तो मान सम्मान सब मिट जायगा। इस प्रकारकी आशंकासे वह

એ વિષયને બીજી રીતે કહે છે-निच्चुव्विग्गो० ઇત્યાદિ

જેમ ચોર પોતાના કુકર્મોને કારણે સદા વ્યાકુળ રહ્યા કરે છે, અર્થાત તેને સદા એવો ભય રહે છે કે મારા કુકર્મને કોઈ જાણી ન લે નહિ તો રાજા મને પકડી લેશે અને પ્રાણ ગુમાવવા પડશે એ પ્રકારની ચિંતાથી ચોરના ચિત્તમાં સદા ખળભળાટ મચ્યા કરે છે એજ રીતે મદિરાપાન કરનાર મુનિના મનમાં હમેશાં અસમાધિ રહે છે કે-ક્યાંક મારો મદિરાપાનનો દુરાચાર પ્રકટ ન થઈ જાય, નહિ તો માન સન્માન બધું નાશ પામશે એ પ્રકારની આશંકાથી તે

दुष्कृतसगोपनाय नवनवमायामृषाकल्पितवचनरचनादिनानाप्रकारकोपायमनुसदधानो न जातु सयमसमाधिमधिगच्छतीति भावः । दुर्मतिः=विपर्यस्तबुद्धिः साधुः, मरणान्तेऽपि मरणावधिसमयेऽपि सवर=सर्वसावद्यविरतिलक्षण चारित्र कदापि नाराधयति=न निष्पादयति, चारित्रसाधकशुद्धपरिणामाभावात् ।

'निच्चुव्विग्गो' इत्यनेन पापात्मना नित्यशङ्कितत्व सूचितम् । 'दुम्मई'-पदेन व्यसनिना मतिमालिन्यमवश्यम्भावीत्याविष्कृतम् ॥ ३९ ॥

मूलम्-आयरिए नाराहेइ समणे आवि तारिसो ।
गिहत्था वि णं गरिहंति, जेण जाणंति तारिसं ॥ ४० ॥

छाया—आचार्यान् नाराधयति, श्रमणाँश्चापि तादृशः ।
गृहस्था अपि त गर्हन्ते, येन जानन्ति तादृशम् ॥४०॥

सान्वयार्थः-तारिसो=उस पूर्वोक्त-प्रकारका दुराचारी साधु आयरिए=रत्नाधिकोको अवि य=तथा समणे=साधुओंको भी नाराहेइ=विनय वैयावच्च आदिसे नहीं आराध सकता है, जेण=जिस कारणसे गिहत्था वि=गृहस्थ भी णं=

अपने किये हुए दुराचारको छिपानेके लिए मायाचार और असत्य आदिके नये नये उपाय सोचा करता है। उसकी सयम सम्बन्धी समाधि किसी प्रकार भी नहीं रहती। ऐसा दुर्बुद्धि साधु मृत्युकी अवधिके समय भी सर्वसावद्ययोगके त्यागरूप सवर की आराधना नहीं करता, क्योंकि उसके वैसे विशुद्ध भाव नहीं होते।

'निच्चुव्विग्गो' इससे ऐसा सूचित किया है कि पापी सदा सशक रहता है। 'दुम्मई' पदसे यह प्रगट किया है कि कुव्यसनीकी मतिमें मलिनता अवश्य आजाती है ॥ ३९ ॥

પોતાના દુરાચારને છુપાવવાને માયાચાર અને અસત્ય આદિના નવા નવા ઉપાયો વિચાર્યા કરે છે એની સયમ સબધી સમાધિ કોઈ પ્રકારે રહેતી નથી એવો દુર્બુદ્ધિ સાધુ મૃત્યુની અવધિના સમયે પણ સર્વસાવદ્યયોગના ત્યાગરૂપ સવરની આરાધના કરતો નથી, કારણ કે તેના એવા વિશુદ્ધ ભાવ થતા નથી

निच्चुव्विग्गो શબ્દથી એમ સૂચિત કરવામા આવ્યુ છે કે પાપી સદા સશક રહે છે दुम्मई શબ્દથી એમ પ્રકટ કર્યું છે કે દુર્વ્યસનીની મતિમા મલિનતા અવશ્ય આવે છે (૩૯)

उसे तारिस=उस प्रकारका अर्थात् मद्य पीनेवाला जाणंति=जानलेते हैं (अतः वे उसकी) गरिहंति=निन्दा करते हैं ॥४०॥

टीका—'आयरिए' इत्यादि । तादृश'=पुरोदीरितदुराचारशीलः साधुः आचार्यान् अपिच श्रमणान्=रत्नाधिकान साधून नाराधयति कलुषितान्तः-करणत्वादिति भाव, येन हेतुना गृहस्था अपि तादृश=तथाविध दुराचारिण जानन्ति तेन हेतुना ण=त साधु गर्हन्ते=निन्दन्ति, स सकलजननिन्दनीयो भवतीति सूत्रार्थः ॥ ४० ॥

अकृत्यसेविदोषानुपसहरन्नाह-'एव तु' इत्यादि ।

१ २ ३ ४ ५ ६

मूलम्-एव तु अगुणप्पेही, गुणाण च विवज्जए ।

७ ८ १० ९

तारिसो मरणतेवि, नाराहेइ सवर ॥ ४१ ॥

छाया—एव तु अगुणप्रेक्षी, गुणाना च विवर्जकः ।

तादृशः मरणान्तेऽपि, नाराधयति सवरम् ॥४१॥

सान्वयार्थ'-एव तु=इस प्रकार अगुणप्पेही=प्रमादादि दोषोंको ग्रहण करनेवाला च=और गुणाण=ज्ञानादि गुणोंका विवज्जए=त्यागी तारिसो=उस प्रकारका साधु मरणतेवि=मरणकालमें भी सवर=सवर चारित्र की नाराहेइ=आराधना नहीं कर सकता ॥४१॥

टीका—एवम्=उक्तरीत्या तु अगुणप्रेक्षी=दोषदर्शी प्रमादादिदोषनिरत

'आयरिए' इत्यादि। ऐसा दुराचारी साधु आचार्य तथा रत्नाधिक श्रमणकी भी आराधना नहीं करता, क्योंकि उसका अन्तःकरण कलुषित होजाता है, जिससे कि गृहस्थ भी उस साधुको पहचान लेते हैं और उसकी निन्दा करते हैं। तात्पर्य यह है कि ऐसा साधु सबका निन्दनीय बन जाता है॥ ४० ॥

'एव तु' इत्यादि । प्रमाद आदि दोषोंमे लीन, सम्यग्ज्ञान-दर्शन-

आयरिए० ઇત્યાદિ એવો દુરાચારી સાધુ આચાર્ય તથા રત્નાધિક શ્રમણની પણ આરાધના કરતો નથી, કારણ કે એનુ અતકરણ કલુષિત થઇ જાય છે, જેથી ગૃહસ્થ પણ એ સાધુને પિછાણી લે છે અને એની નિદા કરે છે તાત્પર્ય એ છે કે એવો સાધુ સૌને નિદનીય બની જાય છે (૪૦)

एव तु० ઇત્યાદિ પ્રમાદ આદિ દોષોમા લીન, સમ્યગ્જ્ઞાન દર્શન-ચારિત્ર

इत्यर्थः, गुणानां च=ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणानां क्षान्त्यादीनां वा विवर्जकः=परित्याजकः गुणाऽनाराधक इत्यर्थः, तादृशो मरणान्तेऽपि संवरं नाराधयतीति व्याख्यातपूर्वं सुगमं चेति ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्तदोषपरित्यागिनो गुणानाह–'तवं' इत्यादि ।

५ ६ ३ ७ ६ ८

मूलम्–तवं कुव्वइ मेहावी, पणीयं वज्जए रसं ।

२ १ ४

मज्जप्पमायविरओ, तवस्सी अइउक्कसो ॥ ४२ ॥

छाया—तपः कुरुते मेधावी, प्रणीतं वर्जयति रसम् ।

मद्यप्रमादविरतः, तपस्वी अत्युत्कर्षः ॥४२॥

सान्वयार्थः–मज्जप्पमायविरओ=जो मद्य और प्रमादसे रहित तवस्सी=तपस्वी साधु मेहावी=आगमोक्त मर्यादामें चलनेवाला अइउक्कसो=घमंड नहीं करता हुआ तवं=तपस्या कुव्वइ=करता है, (और) पणीयं=स्निग्ध रसं=रसवाले पदार्थ घी दूध घेवर आदिको वज्जए=त्यागता है ॥४२॥

टीका—यः तपस्वी=साधुः मद्यप्रमादविरतः=माद्यति=विवेकविकलीकरोत्यात्मानमिति मद्यं=मादकद्रव्यं, तदेव प्रमादजनकत्वात्प्रमाद इति मद्यप्रमादस्तस्माद्विरतस्तद्वर्जक इत्यर्थः, मेधावी=आगमोक्तविध्यनुस्मरणशीलः संयममर्यादाऽवस्थित इत्यर्थः, अत्युत्कर्षः=उत्कर्षः='अहं तपस्वी'-त्याद्यभिमानस्तमतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य=परित्यज्य वर्त्तत इति अत्युत्कर्षः, तपःप्रधानगुणाभिमानशून्यः सन् तपः=

चारित्र तथा क्षान्ति आदि गुणोंका त्याग करनेवाला ऐसा साधु मृत्युसमय भी संवरकी आराधना नहीं करता ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्त दोषोंके त्यागीके गुण कहते हैं–' तवं ' इत्यादि ।

जो तपस्वी साधु आत्माको विवेक-विकल बनानेवाले शराबसे विरत रहते हैं, प्रवचन-प्रतिपादित संयम मर्यादामें स्थित हैं, ' सबसे बड़ा तपस्वी मैं ही हूँ ' ऐसा तपका दर्प (अभिमान) नहीं करते हुए चतुर्थ

તથા ક્ષાન્તિ આદિ ગુણોનો ત્યાગ કરનાર એવો સાધુ મૃત્યુ સમયે પણ સંવરની આરાધના કરતો નથી (૪૧)

પૂર્વોક્ત દોષોના ત્યાગીના ગુણ કહે છે–તવ૦ ઇત્યાદિ

જે તપસ્વી સાધુ આત્માને વિવેકવિકળ બનાવનાર શરાબથી વિરત રહે છે, તે પ્રવચન પ્રતિપાદિત સંયમમર્યાદામાં સ્થિત રહે છે, 'સૌથી મોટો તપસ્વી હું છુ' એવો તપનો દર્પ (અભિમાન) ન કરતા ચતુર્થભક્ત આદિ તપ કરે છે,

चतुर्थभक्तादिक करोति पुनरपि प्रणीत=गलत्स्नेहबिन्दुक गृहस्नेह वा भोज्य, स्नेहावगाढ कृशरादि, गृहस्नेह घृतपूरादिक, रस=घृतदुग्धादिक वर्जयति=परित्यजति ॥४२॥

१ ६ ५ २
मूलम्–तस्स पस्सह कल्लाणं, अणेगसाहुपूइय ।
३ ४ ७ ६ ८
विउल अत्थसजुत्त, कित्तइस्स सुणेह मे ॥ ४३ ॥

छाया—तस्य पश्यत कल्याणम्, अनेकसाधुपूजितम् ।
विपुलार्थसयुक्त, कीर्त्तयिष्यामि शृणुत मे ॥४३॥

सान्वयार्थः–तस्स=उस साधुके अणेगसाहुपूइय=अनेक मुनियोंके वन्दनीय विउल=मुक्तिपदका साधक होनेसे महान् अत्थसजुत्त=मोक्षरूप अर्थ प्रयोजनसे युक्त ऐसे कल्लाण=कल्याण सयम को पस्सह=देखो, (और मैं उसके गुणोंका) कित्तइस्स=वर्णन करूगा, (तुम) मे=मुझसे सुणेह=सुनो ॥४३॥

टीका—'तस्स' इत्यादि । तस्य=उक्तगुणवत साधो अनेकसाधुपूजित=मुनिवृन्दवन्दित विपुल=महत् मुक्तिपदसाधकत्वात्, अर्थसयुक्तम्=अर्थ'=मुमुक्षूणा प्रयोजन मोक्षलक्षण तेन सयुक्त=सवलित तत्फलदातृत्वात्, कल्याण=नितान्तसुखावहत्वात्सयम पश्यत=अवलोकयत भोशिष्या' ! इति शेष' । कीर्त्तयिष्यामि=तद्गुणान् वर्णयिष्यामि मे=मम सकाशात् शृणुत=आकर्णयत ॥४३॥

भक्त आदि तप करते हैं, तथा घेवर आदि प्रणीत भोजनको और घी दूध आदि पुष्टिकर रसोंको त्याग देते है ॥ ४२ ॥

'तस्स' इत्यादि । हे शिष्य ! उस उक्तगुणविशिष्ट साधुके अनेक-मुनि-समूहसे प्रशसित, मुक्तिपदका साधक होनेसे महान्, मोक्षरूपी अर्थसे युक्त, अनन्त सुखदाता कल्याण अर्थात् सयमको देखो । मैं उसके गुणोंका वर्णन करूगा, तुम मुझसे सुनो ॥ ४३ ॥

તથા ઘેવર આદિ પ્રણીત ભોજનને અને ઘી દૂધ આદિ પુષ્ટિકારક રસોને ત્યાગે છે (૪૨)

તસ્સ૰ ઇત્યાદિ હે શિષ્ય ! ઉકતગુણવિશિષ્ટ એવા સાધુના અનેક-મુનિ-સમૂહથી પ્રશસિત, મુક્તિપદનો સાધક થવાથી મહાન્, મોક્ષરૂપી અર્થથી યુકત, અનતસુખદાતા કલ્યાણ અર્થાત્ સયમને જુઓ હુ એના ગુણોનું વર્ણન કરીશ, તે તમે સાભળો (૪૩)

कहेता दुगच्छा मोहनी २, मिथ्यात्व मोहनी १, कषाय १६ अनतानुबधीक्रोध, मान, माया, लोभ, ४ एम अप्रत्याख्यानी ४ पछी प्रत्याख्यानी ४ सज्वलन ४, ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ४, अतराय ५, ए सर्व सडताळीस ४७ प्रकृति ध्रुवबधि छे ए मध्ये नव नामकर्मनी ९ ओगणीश मोहनीनी १९ पाच ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी च्यार ४, पाच अतराय ५, एव ४७ सुडताळीस ध्रुवबधी जाणवी द्वार १ ॥ २ ॥

तणुवगोंगिईसंघयण, जाईं गईं खगईं पुँवि जिणसास।
उज्जोयाँ यवं परघाँ, तसवीसाँ गोयं वेयणिय ॥३॥

अर्थ—हवे अध्रुवबधि ७३ कहे छे, तिहा तणु कहेता शरीर १, औदारिक १, वैक्रिय २, आहारक ३ तैजस, कार्मण ध्रुवबधिमे गण्या छे माटे इहा न कह्या उपाग ३, अने सस्थान ६ सघयण ६, जाति ५, गति ४, खगति कहेता विहायोगति २, आनुपूर्वी ४, जिननाम १, उश्वास १, उद्योतनाम १, आतप १, पराघात १, त्रस दशक थावरनी दस एव वीस गोत्र २, वेदनीयकर्म २, हास्य रतिनो जोडो १, अरति शोकनो जोडो एव जुगल ॥ ३ ॥

हासाइजुयलदुगं, वेयं आउं तेवुत्तरीअधुवबधी[७३]। दार[२]।
भगा अणाइ साइ, अणत सतुत्तरा चउरो ॥ ४ ॥

अर्थ—हास्यादि जुगल बे, वेद ३, आउखा ४ च्यार ए ७३ अध्रुवबधि ते कोइवार बधाय कोइवार न बधाय, ए मध्ये ७ प्रकृति मोहनीनी, २ वेदनीयनी, २ गोत्रनी, ४ आ-

युनीं, ५८ नामकर्मनी छे एव ७३ छे अने ध्रुवबंधि ४७ अध्रुवबंधी ७३ मिळ्या १२० एकसोवीस प्रकृति थइ, हवे चउ ४ भगी अणाइ कहेता अनादि १, साइ सादि २ तथा अनत तथा सात जोडीये, तिवार अनादिअनत १, प्रथमभग अनादि सान्त ए द्वितीयभग, सादि अनत ए त्रीजो भग सादिसान्त ए चोथो भग, ए चोभगी जाणवी ॥ ४ ॥

पढमबियाधुवउदइसु, धुवबंधिसु तइय वज्जभग तिग।
मिच्छंमि तिन्निभगा, दुहावि अधुवा तुरिय भगा॥५॥

अर्थ—तिहा ध्रुवउदयी प्रकृतिमध्ये प्रथम १, तथा २, बीजो ए बे भागा छे—अनादि सान्त भव्यमे २, ए बे भगा छे तथा ध्रुवबधि प्रकृतिनेविषे त्रीजो वर्जीने तीन भग छे तिहा अभव्य आश्रयि अनादि अनत छे जे कारणे अनादि-काल बाधे छे, अने ते सदाकाल बाधे तिणे अनतबध छे, भव्यजीवने अनादि सान्त छे, ए योग्यतानो सूत्र छे सादि अनत ए भग कर्म स्वरुपे सभवे नहीं अने सादिसान्त भग जीव उपशम श्रेणिए चढी इग्यारमे गुणठाणे सर्व प्रकृतिनो अबंध थयो, ते वळी पाछो पडीने सर्व बध करे ते सादि, अने ते जीव वळी कर्म क्षय करीने सिद्ध थाय तिवारे सान्त थाय, ए तीन भग छे, मिथ्यात्वने ध्रुवोदये तीन एहिज भग छे, तथा अध्रुवबध तथा अध्रुवोदयनेविषे एक चोथो भागो सादिसान्त ए छे ॥ ५ ॥

निमिणं थिरं अथिरं अगुरुयं, सुहं असुहं तेअ कम्म चउवन्नां।
नाणं तरायं दसणं, मिच्छं धुवउदय सगवीसां ॥६॥

कहेता दुगच्छा मोहनी २, मिथ्यात्व मोहनी १, कषाय १६ अनतानुबंधीक्रोध, मान, माया, लोभ, ४ एम अप्रत्याख्यानी ४ पछी प्रत्याख्यानी ४ सज्वलन ४, ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ४, अतराय ५, ए सर्व सडताळीस ४७ प्रकृति ध्रुवबधि छे ए मध्ये नव नामकर्मनी ९ ओगणीश मोहनीनी १९ पाच ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी च्यार ४, पाच अतराय ५, एव ४७ सुडताळीस ध्रुवबधी जाणवी द्वार १ ॥ २ ॥

तणुवगोंगिईसंघयण, जाई गई खगई पुँवि जिणसासं। उज्जोयौ यवं परघा, तसवीसाँ गोयं वेयणिय ॥३॥

अर्थ—हवे अध्रुवबधि ७३ कहे छे, तिहा तणु कहेता शरीर १, औदारिक १, वैक्रिय २, आहारक ३ तैजस, कार्मण ध्रुवबधिमे गण्या छे माटे इहा न कह्या उपाग ३, अने सस्थान ६ सघयण ६, जाति ५, गति ४, खगति कहेता विहायोगति २, आनुपूर्वी ४, जिननाम १, उश्वास १, उद्योतनाम १, आतप १, पराघात १, त्रस दशक थावरनी दस एव वीस गोत्र २, वेदनीयकर्म २, हास्य रतिनो जोडो १, अरति शोकनो जोडो एव जुगल ॥ ३ ॥

हासाइजुयलदुगं, वेयं आउं तेवुत्तरीअधुवबधी[५३]। दार[२]। भगा अणाइ साइ, अणत सतुत्तरा चउरो ॥ ४ ॥

अर्थ—हास्यादि जुगल बे, वेद ३, आउखा ४ च्यार ए ७३ अध्रुवबधि ते कोइवार बधाय कोइवार न बधाय, ए मध्ये ७ प्रकृति मोहनीनी, २ वेदनीयनी, २ गोत्रनी, ४ आ-

युनी, ५८ नामकर्मनी छे एव ७३ छे अने ध्रुवबधि ४७ अध्रुवबधी ७३ मिळ्या १२० एकसोवीस प्रकृति थइ, हवे चउ ४ भगी अणाइ कहेता अनादि १, साइ सादि २ तथा अनत तथा सात जोडीये, तिवार अनादिअनत १, प्रथमभग अनादि सान्त ए द्वितीयभग, सादि अनत ए त्रीजो भग सादिसान्त ए चोथो भग, ए चोभगी जाणवी ॥ ४ ॥

पढमवियाधुवउदइसु, धुवबधिसु तइय वज्जभग तिगं।
मिच्छंमि तिन्निभगा, दुहावि अधुवा तुरिय भगा॥५॥

अर्थ—तिहा ध्रुवउदयी प्रकृतिमध्ये प्रथम १, तथा २, बीजो ए बे भागा छे-अनादि सान्त भव्यमे २, ए बे भगा छे तथा ध्रुवबधि प्रकृतिनेविषे त्रीजो वर्जीने तीन भग छे तिहा अभव्य आश्रयि अनादि अनत छे जे कारणे अनादि-काळ बाधे छे, अने ते सदाकाल बाधे तिणे अनतबध छे, भव्यजी ने अनादि सान्त छे, ए योग्यतानो सून छे सादि अनत ए भग कर्म स्वरुपे सभवे नही अने सादिसान्त भग जीव उपशम श्रेणिए चढी इग्यारमे गुणठाणे सर्व प्रकृ-तिनो अबध थयो, ते वळी पाछो पडीने सर्व बध करे ते सादि, अने ते जीव वळी कर्म क्षय करीने सिद्ध थाय तिवारे सान्त थाय, ए तीन भग छे, मिथ्यात्वने ध्रुवोदये तीन एहिज भग छे, तथा अध्रुवबध तथा अध्रुवोदयनेविषे एक चोथो भागो सादिसान्त ए छे ॥ ५ ॥

निमिणं थिरं अथिरं अगुरुयं, सुहं असुहं तेअ कम्म चउवन्नां।
नाणं तरायं दसणं, मिच्छं धुवउदय सगवीसा ॥६॥

अर्थ—निर्माण नाम १, स्थिरनाम १, अगुरुलघु नाम १, शुभ नाम १, अशुभनाम १, तैजसशरीर १, कार्मणशरीर १, वर्णनाम १, गन्धनाम १, रसनाम १, स्पर्शनाम १, एव १२, बार नाम कर्मनी प्रकृति पाच ज्ञानावरणी ५, पाच अतराय ५, च्यार दर्शनावरणी ४, एक मिथ्यात्व मोहनी १, ए सत्तावीस २७, प्रकृति ध्रुवउदयी जाणवी ते मध्ये वर्ण गध रस, स्पर्श, ४, नी ए रीत छे, जे पाच वर्ण मध्ये कोइक वर्ण नियमा मुख्यताए उदय होवे, तिणे ध्रुवउदयी इम गधादिकनो जाणवो ए सत्तावीस मध्ये ज्ञानावरणी पाच, अतराय पाच, दर्शनावरणी ४, मोहनी १, नाम कर्मनी १२, एव २७ छे ॥ ६ ॥

थिरं सुभिं अरं विणु अधुव-,वधाँ मिच्छ विणुमोह धुववधाँ ।
निदोँवघाये मीसे, सम्म पण नवइँ अधुवुदया ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे अध्रुवोदयी कहे छे-जे अध्रुवबधि प्रकृति ७३, ते मध्ये थिर १, अथिर २, शुभ ३, अशुभ ४, ए ४, च्यारविना ६९ लेवी, अने मोहनीनी १९ ध्रुवबधि कही छे, तेमायी मिथ्यात्व मोहनी वरजीने शेष १८, रहे ते पिण अध्रुवोदयमे गणी छे शरीर ३, उपाग ३, सस्थान ६, सघयण ६, जाति ४, गति ४, विहायोगति २, आनुपर्वी ४, जिननाम १, श्वासोच्छ्वास १, उद्योत १, आतप १, पराघात १, थिर १, शुभविना त्रसादि ८, अथिर अशुभविना थावरादि ८, गोत्र २, वेदनीय २, हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, वेद १, आउ ४, ए ६९, सोळ कसाय भय १,

दुगछा १, निद्रा ५, उपघात १, मिश्र १, सम्यक्त्वमोहनी १, ए ९५ अध्रुवउदयी सर्व गतिना जीवने सर्वकाले उदय न हुवे ते माटे अध्रुवकहीजे ए मध्ये दर्शनावरणी, ५, वेदनीय २, मोहनीय २७, आयु ४, नामकर्मनी ५५, गोत्र २, ए ९५, अध्रुवोदयि जाणवी ॥ ७ ॥

तसवन्नवीसं–सगतेयकम्मं धुववधिसेसं वेयतिगं ।
आगिइतिगं वेयणियं, दुजुयलं सगउरलं सासचउ ८॥

अर्थ—हवे ध्रुवसत्ता–त्रसवीस कहेता त्रस १०, थावर १०, वर्ण २०–५, वर्ण २, गध ५, रस ८, स्पर्श, एव २०, तैजसकार्मण ७ तैजसशरीर, तैजसबधन २, तैजससघातन ३, कार्मणशरीर ४, कार्मणबधन, ५, कार्मणसघातन ६, तैजसकार्मणबधन ७, शेष ध्रुवबधि ४१, ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी नव ९, मोहनीय १९, अगुरुलघु १, निर्माण १, उपघात १, अतराय ५, एव ४१, वेद ३, आकृतित्रिक ३, तेहनी प्रकृति १७ सस्थान ६, सघयण ६, जाति ५, एव १७, वेदनीय २, हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, ए च्यार औदारिक सात–औदारिक शरीर १, औदारिकउपाग २, औदारिकबधन ३, औदारिक तैजसबधन ४, औदारिक तैजसकार्मणबधन ५, औदारिक सघातन ६, औदारिककार्मणबधन ए ७, एव सात श्वासोच्छ्वासथी च्यार ४,–श्वासोश्वास १, उद्योत १, आतप १, परावात १, ए च्यार ॥ ८ ॥

खगई तिरिदुगं नीयं, धुवसंता सम्ममीसमणुयदुग ।
विउविक्काराजिणाऊ, हारसगुचा अधुवसता ॥ ९ ॥

अर्थ—निर्माण नाम १, स्थिरनाम १, अगुरुलघु नाम १, शुभ नाम १, अशुभनाम १, तैजसशरीर १, कार्मणशरीर १, वर्णनाम १, गधनाम १, रसनाम १, स्पर्शनाम १, एव १२, बार नाम कर्मनी प्रकृति पाच ज्ञानावरणी ५, पाच अन्तराय ५, च्यार दर्शनावरणी ४, एक मिथ्यात्व मोहनी १, ए सत्तावीस २७, प्रकृति ध्रुवउदयी जाणवी ते मध्ये वर्ण गध रस, स्पर्श, ४, नी ए रीत छे, जे पाच वर्ण मध्ये कोइक वर्ण नियमा मुख्यताए उदय होवे, तिणे ध्रुवउदयी इम गधादिकनो जाणवो ए सत्तावीस मध्ये ज्ञानावरणी पाच, अतराय पाच, दर्शनावरणी ४, मोहनी १, नाम कर्मनी १२, एव २७ छे ॥ ६ ॥

थिर सुभि अर विणु अधुव–,वधी मिच्छ विणुमोह धुववधी ।
निदो वघाय मीस, सम्म पण नवइ अधुवुदया ॥ ७ ॥

अर्थ—हवे अध्रुवोदयी कहे छे–जे अध्रुवबधि प्रकृति ७३, ते मध्ये थिर १, अथिर २, शुभ ३, अशुभ ४, ए ४, च्यारविना ६९ लेवी, अने मोहनीनी १९ ध्रुवबधि कही छे, तेमायी मिथ्यात्व मोहनी वरजीने शेष १८, रहे ते पिण अध्रुवोदयमे गणी छे शरीर ३, उपाग ३, सस्थान ६, सघयण ६, जाति ४, गति ४, विहायोगति २, आनुपूर्वी ४, जिननाम १, श्वासोच्छ्वास १, उद्योत १, आतप १, पराघात १, थिर १, शुभविना त्रसादि ८, अथिर अशुभविना थावरादि ८, गोत्र २, वेदनीय २, हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, वेद १, आउ ४, ए ६९, सोळ कसाय भय १,

दुगछा १, निद्रा ५, उपघात १, मिश्र १, सम्यक्त्वमोहनी १, ए ९५ अध्रुवउदयी सर्व गतिना जीवने सर्वकाळे उदय न हुवे ते माटे अध्रुवकहीजे ए मध्ये दर्शनावरणी, ५, वेदनीय २, मोहनीय २७, आयु ४, नामकर्मनी ५५, गोत्र २, ए ९५, अध्रुवोदयि जाणवी ॥ ७ ॥

तसवन्नवीसँ–सगतेयकम्मँ धुववधिसेसँ वेयतिगँ ।
आगिइतिगँ वेयणिय, दुजुयलँ सगउरलँ सासचउ ८॥

अर्थ—हवे ध्रुवसत्ता–त्रसवीस कहेता त्रस १०, थावर १०, वर्ण २०–५, वर्ण २, गध ५, रस ८, स्पर्श, एव २०, तैजसकार्मण ७ तैजसशरीर, तैजसबधन २, तैजससघातन ३, कार्मणशरीर ४, कार्मणबधन, ५, कार्मणसघातन ६, तैजसकार्मणबधन ७, शेष ध्रुवबधि ४१, ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी नव ९, मोहनीय १९, अगुरुलघु १, निर्माण १, उपघात १, अतराय ५, एव ४१, वेद ३, आकृतित्रिक ३, वेहनी प्रकृति १७ सस्थान ६, सघयण ६, जाति ५, एव १७, वेदनीय २, हास्य १, रति १, अरति १, शोक १, ए च्यार औदारिक सात–औदारिक शरीर १, औदारिकउपाग २, औदारिकबधन ३, औदारिक तैजसबधन ४, औदारिक तैजसकार्मणबधन ५, औदारिक सघातन ६, औदारिककार्मणबधन ए ७, एव सात श्वासोच्छ्वासयी च्यार ४,–श्वासोश्वास १, उद्योत १, आतप १, परावात १, ए च्यार ॥ ८ ॥

खगई तिरिदुगँ नीयँ, धुवसँताँ सम्ममीसमणुयदुग ।
विउव्विक्काराजिणाऊ, हारसगुच्चा अधुवसता ॥ ९ ॥

अर्थ—खगतिदुग–शुभविहायोगति १, अशुभविहायोगति २, तिरिदुग कहेता तिर्यंचगति १, तिर्यंचानुपूर्वी २, नीचगोत्र १, ए त्रणे प्रकृतिओ मळी… पुरुसोर्मांस ध्रुवसत्ता जाणवी ज्ञानावरणी ५, दर्शनावरणी ९, वेदनी २, मोहनीय २६, नामकर्मनी ८२, गोत्र १, अंतराय ५, एवं १३० ध्रुवसत्ता जाणवी ध्रुव जे च्यार ४ गतिना जीवमा सदा छती पामीये ते ध्रुव कहीने हवे अध्रुवसत्ता २८ ना नाम कहे छे सम्कीतमोहनी १, मिश्र मोहनी २, मनुष्यगति १, मनुष्यानुपूर्वी २ वैक्रिय शरीर १, वैक्रिय उपाग २, वैक्रिय बंधन ३, वैक्रियतैजसबंधन ४, वैक्रियकार्मणबंधन ५, वैक्रियतैजसकार्मणबंधन ६, वैक्रिय संघातन ७, नरकगति १, नरकानुपूर्वी २, देवगति १, देवानुपूर्वी २, एवं ११, जिननाम १२, आयु ४, आहारक ७, आहारक शरीर १, आहारक उपांग २, आहारक संघातन ३, आहारक बंधन ४, आहारकतैजसबंधन ५, आहारककार्मणबंधन ६, आहारकतैजसकार्मणबंधन एवं ७ मिळ्या २८ अठ्ठावीस अध्रुवसत्ता ए मध्ये २ मोहनी, २१ नामकर्मनी, ४ आउखो, १ गोत्र, एवं २८ अध्रुवसत्तानी प्रकृती जाणवी ॥ ९ ॥

पढमतिगुणेसुमिच्छं, नियमा अजयाइ अट्ठगे भज्जं।
सासाणे खलु सम्मं, संतं मिच्छाइ दसगे वा ॥१०॥

अर्थ—हवे सत्तामें भागा कहे छे—पढमतिगुणेसु–पेहेला तीन गुणठाणा मध्ये मिथ्यात्व मोहनीनी सत्ता नियमा छे, एतले मिथ्यात्व गुणठाणे मिथ्यात्वनो उदय नियमा छे, तेहनी सत्तापिण नियमा छे, सास्वादन गुणठाणे २८ नी सत्ता नि-

यमा छे ने मिश्र गुणस्थाने २८, २७ ने २४ ए त्रण सत्तामा मिथ्यत्व अवश्य होय माटे, तथा अयत कहेता चोथा गुणठाणाथी ११ मा गुणठाणा लगे आठ गुणठाणे भजना जाणवी तिहा उपशम समकीतीने तथा क्षयोपशमकीतीने मिथ्यात्वनी सत्ता छे अने क्षायिक समकीतीने सप्तक क्षय गयो छे तेहने ए मिथ्यात्वनी सत्ता नथी सास्वादन गुणठाणे समकीत मोहनी नियमा सत्ताये होय हवे मिथ्यात्वथी माडी उपशान्तमोह पर्यंत दस गुणठाणे समकीत मोहनी सत्तानी भजना जाणवी तिहा अनादि मिथ्यात्व तथा समकीत मोहनी उद्वेली हुवे ते जीवने मिथ्यात्व गुणठाणे वर्त्तते समकीत मोहनीनी सत्ता नथी, अने जे त्रिपुजीकरण करीने मिथ्यात्वे आव्या छे तेहने छे सम्यकत्वमोह उवेलीने जे मिश्र गुणठाणे आव्या छे, त्या तेहने समकीत मोहनीनी सत्ता नथी उवेलया विना जे मिश्र गुणठाणे आव्या छे, तेहने सत्ता छे अने चोथा गुणठाणाथी इग्यारमा पर्यंत, तथा उपशमीने समकीत मोहनीनी सत्ता छे क्षायिकसमकीतीने त्रणे मोहनीनी सत्ता नथी ते माटे भजना जाणवी ॥ १० ॥

सासणमीसेसु धुव, मीस मिच्छाइ नवसु भयणाए।
आइदुगे अण नियमा, भइया मीसाइ नवगम्मि ॥११॥

अर्थ—सास्वादन गुणठाणे, मिश्र गुणठाणे ध्रुव नीश्चयथी मिश्रमोहनीयनी सत्ता छे, जे कारणे कृतत्रिपुजी जीव ए गुणठाणे आवे, अने मिथ्यात्व १, अविरति समकीतथी उपला ८ उपशान्तमोह सुधी एव ९ नव गुणठाणे भजना जाणवी हवे न होवे तिहा अनादि मिथ्यात्वी छवीस सत्तावत छे,

तेहने मिथ्यात्व गुणठाणे उता मिश्रमोहनीनी सत्ता नथी, अने जे निपुजीकरण करीने पड्या जे मिथ्यात्व गुणठाणे आया छे तेहने मिथ्यात्वनी सत्ता हुवे ए भजना, ए अविरति समकीतथी मांडी उपशान्तमोह पर्यंत ८ गुणठाणे उपशम समकीतीने मिश्रनी सत्ता होय क्षायिक समकीतीने सप्तक क्षय थयो छे, ते माटे मिश्रमोहनीनी सत्ता नथी ते माटे भजना जाणवी आईदुगे-मिथ्यात्व, सास्वादन ए बे गुणठाणे अनतानुबंधीनी सत्ता नियमा होवे अने मिश्रादिक नव गुणठाणे भजना जाणवी तिहा मोहनी कर्मनी २४ सत्तावाळो क्षयोपशमसमकीती जीव चोथायी पडीने मिश्रे आव्यो, तेहने मिश्र गुणठाणे अनतानुबंधीनी सत्ता नथी, अने जे २८ अट्ठावीस सत्तावत क्षयोपशमसमकिती चोथायी पडी मिश्रे आव्यो, ते अथवा २८ सत्तावत मिथ्यात्वी मिथ्यात्व मुकी मिश्रे आव्यो, तेहने अनतानुबंधीनी सत्ता छे, तथा अविरतिथी उपशान्तमोह सुधी क्षायिकसमकीतीने नथी, तथा उपशमीने छे ए भजना जाणवी ॥११॥

आहारगसत्तगवा, सव्वगुणेबितिगुणे विणा तित्थ।
नोभयसंतेमिच्छो, अंतमुहुत्तं भवे तित्थे ॥ १२ ॥

अर्थ—आहारकसप्तकनी सत्ता सर्व गुणठाणे १४ गुणठाणानेविषे वा कहेता भजना होय अथवा न होय जे जीव ७ तथा ८ गुणठाणे आहारक बांधीने ते पड्यो अथवा चड्यो, तेहने तो आहारकनी सत्ता होय, अने जे जीव आहारक बांध्याविना पडे अथवा चडे तेहने न होय अथवा आहारक [illegible] करी उवेली काढ्यो तेहने

पण आहारक ७ नी सत्ता नथी तथा तित्थे–तीर्थंकर नामनी सत्ता बीजे सास्वादने त्रीजे मिश्र गुणठाणे सर्वथा नथी मिथ्यात्व तथा अविरति समकीती प्रमुख अयोगी पर्यंत १२ बार गुणठाणे भजना जाणवी जिणे जीव ४, तथा ५, तथा ६, तथा ७ मेने ८ में गुणठाणे जिननाम बाधी ए १२ गुणठाणे आव्या होवे, तेहने जिननामनी सत्ता पामीजे जिणे बाध्यो न होय अथवा बाधीने उवेली आव्यो होय, तेहने जिननामनी सत्ता न होये तथा जिननाम, आहारकनी युगपत् सत्ता जेहने होय, ते उभय सत्तावत मिथ्यात्व गुणठाणे न आवे तथा जेहने तीर्थंकर नाम विपाकी सत्ता होय, ते जो मिथ्यात्व गुणठाणे (नरकायुना) निकाचित उदय माटे आवे, ते पिण अतर्मुहूर्तकाल मिथ्यात्वपणे रहे, पिण वधतो काल रहे नहीं इम जाणवो ॥ १२ ॥

केवलजुयलावरणा, पणनिद्दा बारसाइमकसाया ।
मिच्छं ति सव्वघाई, चउनाणं ति दसणावरणा ॥१३॥

अर्थ—हवे घातीमध्ये २०, सर्व घाती कहे छे–केवलजुगल केहेता २, केवलज्ञान १, तथा केवलदर्शन २, तेहना आवरण–केवलज्ञानावरणी १, तथा केवलदर्शनावरणी २, पाच निद्रा ५, आदि बुरला १२, कषाय अनतानुबधी ४, अप्रत्याख्यानी ४, प्रत्याख्यानी ४, ए १२, मिथ्यात्व १, ए २०, वीस सर्वघाती जाणवी, तथा देशघाती २५, पचीस प्रकृति छे ते कहे छे, च्यार ४, ज्ञानावरणी ४, त्रण्य दर्शनावरणी ॥१३॥

सजलण नोकसाया, विग्घ इअ देसघाइयं अघाई ।
पत्तेय तणुट्टाऊ, तसवीसा गोअदुग वण्णा ॥ १४ ॥

अर्थ-सजलणा ४, नोकषाय ९, अतराय ५, एम पूर्वोक्त मेळवता २५, पचीस ए देशघाती छे तथा अघाती ७५, छे तिहा पराघात १, उश्वास १, आतप १, उद्योत १, निर्माण १, अगुरुलघु १, तीर्थंकर १, उपघात १, तणु आठनी प्रकृति ३५, शरीर ५, उपाग ३, सस्थान ६, सघयण ६, जाति ५, गति ४, खगति २, आनुपूर्वी ४, आउखा ४, त्रस १०, थावर दस १०, गोयदुग-बे गोत्र २, वेदनी बे २, वर्ण १, गध, २, रस ३, स्पर्श ४, ए ७५, अघाती प्रकृति जाणवी, जे गुणनो घात न करे ते अघाती कहेवी ॥१४॥

सुरनरतिगुच्चसाय, तसदस तणुवग वइर चउरस ।
परघासग तिरिआउ, वन्नचउ पणिदि सुभखगई॥१५॥

अर्थ—हवे पुन्यप्रकृतिना ४२, भेद कहे छे-सुरत्रिक-देवगति १, देवायु २, देवानुपूर्वी ३, तथा मनुष्यगति १, मनुष्यानुपूर्वी २, मनुष्यायु ३, नरत्रिक मळी ६, उंचेगोत्र ७, सातावेदनी ८, त्रसदशक, १८, शरीर पाच २३, उपाग त्रण २६, वज्ररुषभनाराच २७, समचोरस सस्थान २८, पराघात सप्तक पराघात २९, उश्वास ३०, आतप ३१, उद्योत ३२, अगुरुलघु ३३, निर्माण ३४, तीर्थंकरनामकर्म ३५, तिर्यचआयु ३६, शुभवर्ण ३७, गध ३८, रस ३९, स्पर्श ४०, पचेन्द्री जाति ४१, शुभविहायोगति ४२, ए ४२, बेताळीस पुण्यप्रकृति जाणवी जेहना विपाक भोगवता मीठा लागे ते पुन्यप्रकृति ॥ १५ ॥

वायालपुन्नपगंई, अपढम सठाणं खगंइ सघयंणा।
तिरिदुंग असायं नीओ-वंघाय इगं विगंल निरयंतिग१६

अर्थ—४२, पुण्यप्रकृति थइ हवे ८२, पाप प्रकृति कहे छे, अपढम–पेहेलु सस्थान, पेहेली खगति–विहायोगति, सघयण ए ३ वर्जीने वीजी सर्व पाप प्रकृति छे न्यग्रोध सस्थान १, सादि, २, वामन, ३, कुब्ज, ४, हुड ५, ए पाच सस्थान, तथा अशुभविहायोगति ६, तथा रुषभनाराच सघयण ७, नाराच ८, अर्धनाराच ९, कीलिका १०, छेवठ्ठो ११, तिरिदुग–तिर्यंचगति १२, तिर्यंचानुपूर्वी १३, असातावेदनी १४, नीचगोत्र १५, उपघात १६, एकेन्द्रीनी जाति १७, विगलतिग द्वीन्द्रिय १८, त्रीन्द्रिय १९, चौरेन्द्रीनी जाति २०, नरकत्रिक ते नरकगति २१, नरकानुपूर्वी २२, नरकायु २३, ॥ १६ ॥

थावर दसं वन्नचउक्क, घाइपणयालसहिअ वासीई ।
पावपयडित्ति दोसुवि वन्नाइगहा सुहा असुहा ॥१७॥

अर्थ—थावरनो दशक ३३, अशुभवर्ण ३४, रस ३५, गध ३६, स्पर्श ३७, तथा घातीनी ४५, ते ज्ञानावरणी ५, मोहनी २६, अतराय ५, एव ४५, सहीत करीये, एटले ८२, प्रकृति पापनी जाणवी इहा पापना ८२, भेद, तथा पुण्यना ४२ भेद, ने मेळता १२४, ... ते वर्ण तो १२०, छे ? ते नो उत्तर–जे शुभवर्णादि ४, पुण्यमा गवेष्या, अशुभवर्णादि पापमे गवेष्या, वे माटे दुवारे (बेवार) गणता १२४, थाय छे इमज ॥ १७ ॥

नामधुववधिं नवग, दंसणं पणनाणं विग्घं परघाय।
भय कुच्छ मिच्छ सास, जिणगुणतीसा अपरिअत्ता १८

अर्थ—हवे अपरावर्त्तमान प्रकृति कहे छे–नामनी ध्रुवबंधी ९, वर्णादि ४, निर्माण १, अगुरुलघु १, उपघात १, तैजस १, कार्मण १, ए ९, तथा दर्शनावरणी ४, पणनाण–ज्ञानावरणी पाच, विग्घ–अंतराय पाच, पराघात १, भय, दुगछा, मिथ्यात्व, उश्वास, जिननाम ए इगुणतीस २९, ए अपरावर्त्तमान जाणवी अपरावर्त्तमान एटले जे प्रकृति कोनो बंध तथा उदय रोक्या विना पोताना हेतु सद्भावे बंधाय, तथा उदय आवे, ते अपरावर्त्तमान कहीये ॥१८॥

तणुअट्ठ वेअं दुजुअल, कसाय उज्जोअ गोअं दुगनिद्दा।
तसवीसा उं परित्ता, खित्तविवागणुपुव्वीओ ॥१९॥

अर्थ—परावर्त्तमान प्रकृति ९१, कहे छे, जे तणुअट्ठ–शरीर ३, उपाग ३, संस्थान ६, संघयण ६, जाति ५, गति ४, खगति २, आनुपूर्वी ४, एव ३३, तथा वेद त्रण ३६, दुजुयल–हास्य रति, तथा शोक अरति ४०, कषाय सोळ ५६, उद्योत ५७, आतप ५८, गोत्र बे ६०, वेदनीय बे ६२, निद्रा पाच ६७, त्रस थावरना दसकानी मळी वीस ८७, चार आउखा ९१, ए एकाणु परावर्त्तमान प्रकृति जाणवी जे ए बंध तथा उदयमा एकने रोकीने बंधाय अथवा उदये आवे ते परावर्त्तमान कहीजे हवे क्षेत्रविपाकी–क्षेत्र कहेता आकाश तिहा जेहनो विपाक जे ते क्षेत्रविपाकी च्यार ४, आनुपूर्वी छे, जे एक भवथी बीजे भव जता वाटे विपाके

उदय पामीये छीये, जो प्रदेशोदय न मानीयेतो एहनी स्थिति किहा भोगवाये ते माटे ॥ १९ ॥

घणघाई दु गोअ जिणा, तसिअरतिग सुभग दुभग चउ सास ।
जाइ तिग जियविवागा[७८], आऊ चउरो भवविवागा ॥ २० ॥

अर्थ—हवे जीवविपाकीनी ७८, प्रकृति कहे छे तिहा जे कार्मण वर्गणापणे जे बाध्यो कर्म, ते मुख्यपणे जीवनेज विपाक देखाडे, ते जीवविपाकी कहीये तिहा घनघाती ४७, जे ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी नव, मोहनी अठ्ठावीस, अतराय पाच, ए ४७, दुगोय बे गोत्र, बे वेदनीय ४, जिननाम १, त्रसत्रिक त्रस १, बादर २, पर्याप्त ३, इअर—थावरत्रिक थावर १, सूक्ष्म २, अपर्याप्त ३, सुभगचउ—सुभग १, सुस्वर २, आदेय, जश ४, दुभगचउ—दुर्भग १, दु स्वर २, अनादेय ३, अजश ४, श्वासोश्वास १, जातित्रिक कहेता—जाति ५, गति ४, खगति २, ए ११ इग्यार ए सर्व मिळी ७८ प्रकृति जीवविपाकी जाणवी तथा आउखा च्यार ४ भवविपाकी जाणवा आउखा पोताना भवमेज उदये आवे, पण बीजे भवे सक्रमण तथा ‾देशपणे पिण उदय न आवे, ते माटे भवविपाकी कह्या ॥ २० ॥

नामधुवोदये चउतणु, वघाय साहारणियर जोयतिग।
पुग्गलविवागि बधो, पयइठिइ रस पएसत्ति ॥२१॥

अर्थ—नामकर्मनी ध्रुवोदयी १२, वर्णादि ४, तैजस १, कार्मण १, निर्माण १, अगुरुलघु १, थिर १, अथिर १, अशुभ १, ए १२ चउतणु–शरीर ३, उपाग ३, संस्थान ६, संघयण ६, ए १८ तथा उपघात १, साधारण १, प्रत्येक १, उद्योतनिव–उद्योत १, आतप २, पराघात ३ एवं ३६ छत्रीस प्रकृति पुद्गलविपाकी जाणवी पुद्गलविपाकी कहेता जे बंधकाले कार्मण वर्गणापणे बांध्या, ते उदयकाले शरीरप्रत्ये विपाक देखाडे, ते पुद्गलविपाकी कहीजे इहां कोई पूछस्ये जे कार्मणनी तो वर्गणा नवि लेवाये, ते पिण सोलगुणी छे, तो उश्वासनीपरे जीवविपाकीमें का गणता नथी? तेहने उत्तर जे.–कार्मणवर्गणा तो आहारपर्याप्तिने बले लेवाये, ते माटे पुद्गल विपाकी छे श्वासोश्वास, सुस्वर, ते तो उश्वासपर्याप्ति तथा भाषापर्याप्तिने उदयबले ले छे ते माटे जीवविपाकी गणी छे हवे बंधना भेद ४ च्यार कहे छे प्रकृतिबंध १, स्थितिबंध, २, रसबंध ३, प्रदेशबंध ४ तिहां पेहेला प्रकृतिबंधना भेद कहे छे ॥ २१ ॥

मूलपयडीण अड सत्त, छेग बंधेसु तिन्निभूगारा ।
अप्पत्तरा तिअ चउरो, अवट्ठिआ न हु अवत्तवो॥२२॥

अर्थ—मूळ कर्म आठ छे, तिहां मूळ आठ प्रकृति एक समे एक जीव बांधे जे नवा भवनो आउखो बांधतो हुवे ते आठ बांधे, जे जीव आउखो न बांधतो हुवे ते सात बांधे, तथा दसमे गुणठाणे वर्त्तता मुनिने आउखो, मोहनी, न बांधे तिवारे छ ६ बंधाये, तथा इग्यारमे, बारमे, तेरमे गुणठाणे एक सातावेदनीय बांधे, ते माटे एकविध बंध छे

एतले मूळ बंधना थानक ४ च्यार छे इहा तीन ३ भूयस्कार जाणवा, इग्यारमे गुणठाणे एक बंधक हतो, ते इग्यारमाथी पडी दशमे आवी ६ छ बाधे, तिवारे १ भूयस्कार, वळी नवमे गुणठाणे आवे तिवारे ७ सात बाधे, ते बीजो भूयस्कार, तथा ते जीव जीवारे आठ बाधे तिवारे त्रीजो भूयस्कार जाणवो, अल्पतर तीन छे, ते जे आठनो बंधक ते सात बाधे तिवारे एक अल्पतर, सातथी छ बाधे ते बीजो अल्पतर, अने ६ थी एक बाधे तिवारे त्रीजो अल्पतर, ए तीन अल्पतर जाणवा तथा आठनो १, अवस्थित सातनो बीजो अवस्थित, छनो त्रीजो अवस्थित, एकनो चोथो अवस्थित, ए ४ च्यार अवस्थित जाणवा मूळ बंधे अवक्तव्य बंध नथी, जे मूळथी अबंधक थइने पाछो बंधक थतो नथी ॥ २२ ॥

एगादहिगे भूओ, एगाईऊणगम्मि अप्पतरो ।
तम्मत्तोऽवट्ठियओ, पढमे समये अवत्तवो ॥ २३ ॥

अर्थ—एकादिक अल्पबंधथी जे अधिको बंध बाधे ते भूयस्कार बंध कहीये जिम एक बंध करतो तिणे वळी एक अधिको बाध्यो, तिणे पहेले समये भूयस्कार कहीये, अने जे पूर्व बंधथी एक तथा घणा पिण ऊणा बाधे ते अल्पतर जिम आठनोबंध करतो ते सात बाधे ए अल्पतर जाणवो, अने जे थानक बांधतो हतो तेहिज बीजे समे बाधे, ते अवस्थित कहीये, ते मात्र ते ते प्रमाणेज बाधे ते अवस्थित बंध जाणवो, अने अबंध थइ प्रथम समये जे बाधे तेहने अवक्तव्य कहीये, जिम दसमे, इग्यारमे, मोहनी कर्मनो अबंधक हतो, ते पडता नवमे गुणठाणे आवे

अर्थ—नामकर्मनी ध्रुवोदयी १२, वर्णादि ४, तैजस १, कार्मण १, निर्माण १, अगुरुलघु १, थिर १, अथिर १, अशुभ १, ए १२ चउतणु–शरीर ३, उपाग ३, सस्थान ६, सघयण ६, ए १८ तथा उपघात १, साधारण १, प्रत्येक १, उद्योतनिक–उद्योत १, आतप २, पराघात ३ एव ३६ छत्रीस प्रकृति पुद्गलविपाकी जाणवी पुद्गलविपाकी कहेता जे बधकाले कार्मण वर्गणापणे ग्राव्या, ते उदयकाले शरीरप्रत्ये विपाक देखाडे, ते पुद्गलविपाकी कहीजे इहा कोई पूछस्ये जे कार्मणनी तो वर्गणा नवि लेवाये, ते पिण सोलगुणी छे, तो उश्वासमनोपरं जीवविपाकीमे का गणता नथी? तेहने उत्तर जे.–कार्मणवर्गणा तो आहारपर्याप्तिने बले लेवाये, ते माटे पुद्गल विपाकी छे श्वासोश्वास, सुस्वर, ते तो उश्वासपर्याप्ति तथा भाषापर्याप्तिने उदयबले ले छे ते माटे जीवविपाकी गणी छे हवे बधना भेद ४ च्यार कहे छे प्रकृतिबध १, स्थितिबध, २, रसबध ३, प्रदेशबध ४ तिहा पेहेला प्रकृतिबधना भेद कहे छे ॥ २१ ॥

मूलपयडीण अड सत्त, छेग बधेसु तिन्निभूगारा ।
अप्पत्तरा तिअ चउरो, अवट्ठिआ न हु अवत्तवा॥२२॥

अर्थ—मूळ कर्म आठ छे, तिहा मूळ आठ प्रकृति एक समे एक जीव बाधे जे नवा भवनो आउखो बाधतो हुवे ते आठ बाधे, जे जीव आउखो न बाधतो हुवे ते सात बाधे, तथा दसमे गुणठाणे वर्त्तता मुनिने आउखो, मोहनी, न बाधे तिवारे छ ६ बधाये, तथा इग्यारमे, बारमे, तेरमे गुणठाणे एक सातावेदनीय बाधे, ते माटे एकविध बध छे

छट्टो ५ नो, सातमो ४ नो, आठमो ३ नो, नवमो २ नो, दसमो १ नो, ए दस बधस्थानक जाणवा, इहा नव भूयस्कार बध छे तिहा एकथी बे बाधे ते पेहेलो भूयस्कार, बेथी तीन बाधे ते बीजो भूयस्कार, तीनथी च्यार ४ बाधे ते त्रीजो भूयस्कार, च्यारथी पाच बाधे ते चोथो भूयस्कार, पाचथी नवनो पाचमो, नवथी तेरनो छट्टो, तेरथी सत्तरनो सातमो, सत्तरथी एकवीसनो आठमो, एकवीसथी २२ नो नवमो भूयस्कार जाणवो, अल्पतरमा बावीसथी २१ एकवीसनो बध करे नही, जे माटे मिथ्यात्वथी सास्वादन गुणठाणे जीव न आवे, ते माटे बावीसथी सत्तरनो पेहेलो अल्पतर, सत्तरथी १३ नो बीजो, तेरथी ९ नो त्रीजो, नवथी पाचनो, पाचथी ४ नो, ४ थी ३ नो, ३ थी बेनो, बेथी एकनो, ए ८ अल्पतर जाणवा तेह दस स्थानक ते दस अवस्थित जाणवा ते जे मुनि इग्यारमें चढी मोहनीकर्मनो अबधक थयो, ते पडतो नवमे आवी पेहेले समये १ लोभ बाधे, ते माटे एकनो अवक्तव्य बाधे ते पेहेलो अवक्तव्य, एह कोथी अधिको नथी अल्प नथी अने अबध थइ प्रथम बाध्यो ते माटे १ नो अवक्तव्य कहीये, तथा जे जीव इग्यारमें काल करे ते चोथे गुणठाणे आवी १७ सत्तर बाधे ए बीजो अवक्तव्य, इहा भूयस्कार, तथा अल्पतर, तथा अवक्तव्य बधनो एक समय काल छे शेष सर्व अवस्थितनो काल छे ॥ २४ ॥

ति[२३] पण[२५] छ[२६] अट्ठ[२८] नव[२९]हिया, वीसा तीस[३०]ग[३१]तीस इग[१] नामे
छस्सग अट्ठ तिं बधा, सेसेसु य ठाण मिक्किक ॥२५॥

पयडिबधो समत्तो ॥

एक बाधे एहने अवक्तव्यबंध कहीये, कोयथी अधिको नथी तिणे भूयस्कार नहीं, कोयथी ऊणो नथी, तिणे अल्पतर नथी, तेनो ते पण नथी ते माटे अवस्थितपण नथी ए अवक्तव्य कहीये ॥ २३ ॥

नव छ च्चउ दसे दु दु, ति दु मोहे दु इगवीस सत्तरस।
तेरस नव पण चउ ति दु, इक्को नव अट्ठ दस दुन्नि ॥२४

अर्थ—हवे दर्शनावरणी कर्मना बंधस्थानक ३ तीन छे पेहेलो नवनो स्थानक छे, ए मिथ्यात्व, सास्वादन गुणठाणे छे पछे सास्वादनने अते थीणद्धी तीन काढीजे तिवारे, मिश्रथी माडी आठमा गुणठाणा सीम छनो बंध स्थानक छे, तथा आठमाना बीजा भागथी माडी दसमा गुणठाणाना सीम च्यार ४ नो बंध इम थानक च्यार ४ नो छे, दर्शनावरणी कर्मने भूयस्कार बे छे जे दसमे गुणठाणे च्यार ४ बाधतो हतो ते आठमे आव्ये ६ छ बाधे ते एक भूयस्कार, छथी सास्वादनमे आवी नव बाधे ते बीजो भूयस्कार, ए बे भूयस्कार जाणवा अथवा नव बाधी छ बाधे ए पेहेलो अल्पतर, तथा ६ बाधी, ४ बाधे ते बीजो अल्पतर, तथा ९, तथा ६, तथा ४ ए तीन अवस्थित, तथा कोइ जीव इग्यारमे गुणठाणेथी पडी १० मे आवे ते अबंधक थइ च्यार ४ बाधे ते पेहेलो अवक्तव्य, अथवा इग्यारमे मरण पामीने चोथे आवी ६ बाधे ए बीजो अवक्तव्य जाणवो

हवे मोहनीय कर्मना बंधस्थानक १० छे ते प्रथम २२ नो बीजो २१ नो, त्रीजो १७ नो, चोथो १३ नो, पाचमो ९ नो,

वीसयरकोडिकोडी, नामे गोएय सत्तरी मोहे ।
तीसयरचउसुउदही, निरय सुराउमि तित्तीसा॥२६॥

अर्थ—हवे मूळ कर्म आठ त्हेनी उत्कृष्ट स्थिति छे ते कहे छे—वीसयर—वीसकोडाकोडी सागर नामकर्म तथा गोत्रकर्मनी उत्कृष्टी स्थिति छे ते जाणवी, मोहनीकर्मनी ७० सीत्तेर कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति छे, चउसु—ज्ञानावर्णी, १ दर्शनावर्णी २, वेदनीय ३, अतराय ४, ए च्यार ४ कर्मनी ३० कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति जाणवी नरकना आयु तथा देवताना आउखानी उत्कृष्टी स्थिति, तेत्रीस सागरोपमनी जाणवी उत्कृष्ट स्थिति उत्तर प्रकृतिनी पिण इहायी गणज्यो हवे मूल कर्मनी जघन्य स्थिति कहे छे, मुत्तु—अकषायवेदनीयनी स्थिति, वर्जिने शेष सकषायीजीव, वेदनीयकर्मनी स्थिति जघन्य अतमूहूर्त्तनी बंध छे अथवा १२ मूहूर्तनी बाघे छे ए दसमे गुणठाणे जावे इहा दसमा गुणठाणाना आदि अध्यवसायें॥२६

मुत्तुंअकसायठिइ, वारमुहुत्ता जहन्न वेअणिए ।
अट्ठट्ठनामगोए—सु सेसएसु मुहुत्ततो ॥ २७ ॥

अर्थ—अकषायी ते ११ मु, १२ मु, १३ मु, ए ३ गुणठाणामा काषायिक स्थिति जे छे तेने मुकीने एटले १० दसमे गुणठाणे जे जीव छे ते जीवने वेदनीयनी स्थिति १२ बार मुहूर्त्त जघन्यथी होय, दसमा गुणठाणाना पेहेले अध्यवसाये मुहूर्त्त मोटो लेवो, अत्यअध्यवसाय मुहूर्त्त न्हानो लेवो, तथा क्षपकथी उपशमश्रेणिमा बिमणो बंध जाणवो, नामकर्म, गोत्रकर्मनी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त्तनी छे शेष जे ज्ञानावरणी तथा दर्शना-

अर्थ—हवे नामकर्मना स्थानक ८ आठ छे, तिहा पेहेलो त्रेवीसनो, बीजो २५ नो, त्रीजो २६ छवीसनो, चोथो अठ्ठावीस २८ नो, पाचमो २९ नो, छठ्ठो ३० नो, सातमो एकत्रीसनो ३१ नो, आठमो एक १ नो, ए भूयस्कार ६ छ जाणवा, तेवीसथी पचवीसनो पेहेलो भूयस्कार, पचवीसथी २६ नो बीजो, २६ थी २८ नो त्रीजो, २८ थी २९ नो चोथो, २९ थी ३० नो पाचमो, ३० थी ३१ नो छठ्ठो, भूयस्कार छे अल्पतर ७ छे ते ३१ थी १ नो पेहेलो अल्पतर, ३१ थी ३० नो बीजो अल्पतर, इहा कोइक जीव ३० थी १ नो बंध करे, पिण ते एकना अल्पतर मध्येज गण्यो तिणे जुदो गणवो नथी, तथा ३० थी २९ नो त्रीजो, २९ थी २८ नो चोथो, २८ थी २६ नो पाचमो, २६ थी २५ नो छठ्ठो, २५ थी २३ नो सातमो अल्पतर जाणवो, बधस्थानक तेहज ८ अवस्थित जाणवा इहा अवक्तव्य ३ तीन छे—ते जे मुनि इग्यारमे गुणठाणे नामकर्मनो अबधक छे, ते इग्यारमाथी पड्या १० मे आवी १ बाधे, ए पेहेलो अवक्तव्य, तथा जे इग्यारमे काल करे ते चोथे आवे ते देवप्रायोग्य २८ बाधे ए बीजो, अथवा कोइक जीव २९ जिननाम सहित बाधे ए त्रीजो अवक्तव्य, ३१ थी १ नो पहेलो, ३१ थी ३० नो बीजो, ३० थी २९ नो त्रीजो, ए नामकर्मना ३ अवक्तव्य जाणवा शेष जे ज्ञानावरणी आयु, वेदनीय, गोत्रकर्म अतराय, ए पाच कर्मनो एकेक बधस्थानक, वेदनीय विना ४ च्यार कर्मने अवस्थित तथा अवक्तव्य ए बे बध छे, वेदनी कर्मने एक अवस्थित बध छे, वेदनीयनो अबधक थइ बध करे नही, ते माटे अवक्तव्य नथी ए प्रकृतिबध अधिकार कह्यो, इति प्रकृतिबध समाप्त द्वा० १७ ॥२५॥

वीसयरकोडिकोडी, नामे गोएय सत्तरी मोहे ।
तीसयरचउसुउदही, निरय सुराउमि तित्तीसा॥२६॥

अर्थ—हवे मूळ कर्म आठ त्हेनी उत्कृष्ट स्थिति छे ते कहे छे-वीसयर-वीसकोटाकोडी सागर नामकर्म तथा गोत्र-कर्मनी उत्कृष्टी स्थिति छे ते जाणवी, मोहनीकर्मनी ७० सीत्तेर कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति छे, चउसु-ज्ञानावर्णी, १ दर्शनावरणी २, वेदनीय ३, अतराय ४, ए च्यार ४ कर्मनी ३० कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति जाणवी नरकना आयु तथा देवताना आउखानी उत्कृष्टी स्थिति, तेत्रीस सागरोपमनी जाणवी उत्कृष्ट स्थिति उत्तर प्रकृतिनी पिण इहाथी गणज्यो हवे मूल कर्मनी जघन्य स्थिति कहे छे, मुत्तु-अकषायवेदनीयनी स्थिति, वर्जिने शेष सकषायीजीव, वेदनीयकर्मनी स्थिति जघन्य अतमूहूर्तनी बाध छे अथवा १२ मूहूर्तनी बाधे छे ए दसमे गुणठाणे बाधे इहा दसमा गुणठाणाना आदि अध्यवसायें ॥२६

मुत्तुअकसायठिइ, वारमुहुत्ता जहन्न वेअणिए ।
अट्ठट्ठनामगोए-सु सेसएसु मुहुत्ततो ॥ २७ ॥

अर्थ—अकषायी ते ११ मु, १२ मु, १३ मु, ए ३ गुण-ठाणामा काषायिक स्थिति जे छे तेने मुकीने एटले १० दसमे गुणठाणे जे जीव छे ते जीवने वेदनीयनी स्थिति १२ बार मुहूर्त्त जघन्यथी होय, दसमा गुणठाणाना पेहेले अध्यवसाये मुहूर्त्त मोटो लेवो, अत्यअध्यवसाय मुहूर्त्त न्हानो लेवो, तथा क्षपकथी उपशमश्रेणिमा बिमणो बध जाणवो, नामकर्म, गोत्रकर्मनी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त्तनी छे. शेष जे ज्ञानावरणी तथा दर्शना-

अर्थ—हवे नामकर्मना स्थानक ८ आठ छे, तिहा पेहेलो त्रेवीसनो, बीजो २५ नो, त्रीजो २६ छवीसनो, चोथो अट्ठावीस २८ नो, पाचमो २९ नो, छट्ठो ३० नो, सातमो एकत्रीसनो ३१ नो, आठमो एक १ नो, ए भूयस्कार ६ छ जाणवा, तेवीसथी पचवीसनो पेहेलो भूयस्कार, पचवीसथी २६ नो बीजो, २६ थी २८ नो त्रीजो, २८ थी २९ नो चोथो, २९ थी ३० नो पाचमो, ३० थी ३१ नो छट्ठो, भूयस्कार छे अल्पतर ७ छे ते ३१ थी १ नो पेहेलो अल्पतर, ३१ थी ३० नो बीजो अल्पतर, इहा कोइक जीव ३० थी १ नो बध करे, पिण ते एकना अल्पतर मध्येज गण्यो तिणे जुदो गणवो नथी, तथा ३० थी २९ नो त्रीजो, २९ थी २८ नो चोथो, २८ थी २६ नो पाचमो, २६ थी २५ नो छट्ठो, २५ थी २३ नो सातमो अल्पतर जाणवो, बधस्थानक तेहज ८ अवस्थित जाणवा इहा अवक्तव्य ३ तीन छे—ते जे मुनि इग्यारमे गुणठाणे नामकर्मनो अबधक छे, ते इग्यारमाथी पडया १० मे आवी १ बाधे, ए पेहेलो अवक्तव्य, तथा जे इग्यारमे काल करे ते चोथे आवे ते देवमायोग्य २८ बाधे ए बीजो, अथवा कोइक जीव २९ जिननाम सहित बाधे ए त्रीजो अवक्तव्य, ३१ थी १ नो पहेलो, ३१ थी ३० नो बीजो, ३० थी २९ नो त्रीजो, ए नामकर्मना ३ अवक्तव्य जाणवा शेष जे ज्ञानावरणी आयु, वेदनीय, गोत्रकर्म अतराय, ए पाच कर्मनो एकेक बधस्थानक, वेदनीय विना ४ च्यार कर्मने अवस्थित तथा अवक्तव्य ए बे बध छे, वेदनी कर्मने एक अवस्थित बध छे, वेदनीयनो अबधक थइ बध करे नही, ते माटे अवक्तव्य नथी ए प्रकृतिबध अधिकार कह्यो, इति प्रकृतिबध समाप्त द्वा० १७ ॥२५॥

सागरनी स्थिति जाणवी, मिउ–मृदुस्पर्श सित–उजळो वर्ण, मधुर–मीठो रस, ए ७ प्रकृतिनी दस कोडाकोडी सागरोपमनी उत्कृष्टी स्थिति जाणवी, तथा हवे एक वर्णे एक रसे अढी कोडाकोडी वधारवी एटले हालिद्द–पीळोवर्ण, अंबिल–खाटो रस तेहनी साडाबार १२॥ कोडाकोडी सागरनी स्थिति जाणवी, रातो वर्ण, कसायलो रस, तेनी पनर कोडाकोडि स्थिति, नीलोवर्ण, कडुवो रस तेहनी १७॥ साडासत्तर कोडाकोडी सागर स्थिति, काळोवर्ण, तीखोरस तेनी वीस कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति जाणवी ॥ २९ ॥

दससुहविहगइ उच्चे, सुरदुगथिरछक्कपुरिसरइहासे।
मिच्छे सत्तरि मणुदुग, इत्थीसाएसु पण्णरस ॥३०॥

अर्थ—शुभ विहायोगति १, उच्चगोत्र १, सुरदुग–देवगति, देवतानुपूर्वी २, थिरछक्क–थिर १, शुभ २, सुभग ३, सुस्वर ४, आदेय ५, यश ६, ए छ थिरछक्क पुरुषवेद १, रति १, हास्य १, ए १३, तेर प्रकृतिनी दस कोडाकोडी सागर उत्कृष्टी स्थिति छे मिथ्यात्व मोहनीनी सित्तेर ७०, कोडाकोडी सागरनी उत्कृष्टी स्थिति छे, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, स्त्रीवेद, सातावेदनी ए ४ नी पन्नर १५ सागर कोडाकोडी स्थिति छे ॥ ३० ॥

भयकुच्छ अरइ सोए, विउव्वि तिरि उरल निरयदुग नीए।
तेयपण अथिर छक्के, तस चउ थावर इगपणिंदि ३१

अर्थ—भयमोहनी १, कुच्छ–दुगंछा १, अरति १,

वरणी, आउखो तथा मोहनी, तथा अतरायनी जघन्य स्थिति १ एक अतर्मुहूर्त्तनी जाणवी ॥ २७ ॥

विग्घा वरणं असाए, तीस अट्ठार सुहुम विगलतिगे। पढमागिइं सघयंणे, दसदुसुचरिमेसु दुगवुड्ढी ॥२८॥

अर्थ—हवे उत्तर प्रकृतिनी उत्कृष्ट स्थिति जणावे छे अतराय पाच ५, ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी नव एव आवरण १४ असातावेदनीय १ ए वीस प्रकृतिनी तीस कोडाकोडी सागर उत्कृष्ट स्थिति जाणवी तथा सूक्ष्मत्रिक, विकलत्रिक, ए ७ प्रकृतिनी अढार कोडाकोडी, प्रथम सघयण वज्रऋषभनाराच, प्रथम सस्थान समचउरसनी उत्कृष्ट स्थिति दस कोडाकोडी सागर, पछी उपरले एक सघयणे एक सस्थाने दुग केहेता बे कोडाकोडी सागरनी स्थिति वधारवी, एटले ऋषभनाराच सघयणे तथा न्यग्रोध सस्थाने बार कोडाकोडी सागरनी स्थिति, तथा नाराच सघयणे, सादि सस्थाने चउद १४ कोडाकोडी सागरनी स्थिति, अर्द्ध नाराचसघयणे, वामनसस्थाने १६ सोळ कोडाकोडी सागरोपमनी स्थिति, किलीकासघयणे, कुब्ज सस्थाने अढार १८ कोडाकोडी सागरनी स्थिति, छेवट्ठ सघयण, हुडक सस्थाननी स्थिति वीस कोडाकोडीनी जाणवी ए गाथा मध्ये ३८ प्रकृतिनी स्थिति कही ॥ २८ ॥

चालीसकसाएसु, मिउ लहु निद्धुण्ह सुरहि सिय महुरे। दस दोसड्ढ समहिया, ते हालिद्दविलाईण ॥२९॥

अर्थ—सोळ १६ कषायनी स्थिति ४० चाळीस कोडाकोडी

आहारक दुगनी स्थिति उत्कृष्टी जाणवी तथा अवाधा प्रदेशोदयनी भिन्नमुहु—अतर्मुहूर्तनी जाणवी जघन्य स्थिति सख्यात गुण ऊणी वे जे अत कोडाकोडी स्थिति छे तेहने सख्यातगुणी ऊणी करीये, जेटली थाय तेटली ऊणी जघन्य स्थिति जाणवी एटले असख्याता अध्यवसायनो फेर पडे छे नर—मनुष्यनु आयु तथा तिर्यचायुनी उत्कृष्टी स्थिति तीन ३ पल्योपमनी जाणवी ॥ ३३ ॥

इगविगलपुव्वकोडि, पलियाऽसखस आउचउ अमणा।
निरुवकमाण छ मासा, अवाह सेसाण भवतसो ३४

अर्थ—हवे जे जीवो आवता भवनो आयु जेटलो वाधे ते कहे छे एकेन्द्रि तथा विकलेन्द्रिय आवता भवनु, आयु उत्कृष्ट वाधे तो पूर्वकोडि १ एकनो वाधे एथी अधिक न वाधे. तथा अमणा असज्ञि पचेन्द्रितिर्यच पर्याप्ता च्यार ४ गतिनो आउखो वाधे तो उत्कृष्टो पल्योपमने असख्यातमें भाग प्रमाण वाधे, निरुपक्रम आउखावाळा देवता तथा नारकी तथा युगलिया एटला छ मास शेष थकी नवा भवनो आउखो वाधे. शेष जे सोपक्रमी तथा निरुपक्रमी मनुष्य तिर्यचनु आयुष्य ते, भवने त्रीजे भागे शेषे वाधे पिण पेहेला वे भाग मध्ये न वाधे, जो त्रीजे भागे न बवाय तो नवमा भागे, अथवा २७ मे भागे इम त्रिभाग करता शेष अतर्मुहूर्ते पिण वाधे. वर्णादिक वीसनी जुदी स्थिति कही तिणे एकसोछवीस प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थितिकही हवे जघन्य स्थितिकहे छे ॥३४॥

लहु ठिइवधो सजलण, लोहपणविग्घनाण दसेसु।
भिन्नमुहुत्त ते अट्ठ, जसुच्चे वारस य साए॥३५॥

शोकमोहनी १, वेक्रिय शरीर, वैक्रिय उपाग, ए बे, तिर्यंचगति तिर्यंचानुपूर्वी, ए बे, औदारिक शरीर, औदारिक उपाग ए बे, नरकगति, नरकानुपूर्वी ए बे, नीचैर्गोत्र १ तैजस पाच–तैजस १, कार्मण २, अगुरुलघु ३, निर्माण ४, उपघात ५, ए पाच अथिरछक्क ते अथिर १, अशुभ २, दुर्भग ३, दुःस्वर ४, अनादेय ५, अजस ६, ए छ त्रस ४, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक ए च्यार ४, थावर १, एकेन्द्री १, पचेन्द्री १ ॥ ३१ ॥

नपुकुखगइसासचउ, गुरु कक्खड रुक्खसीय दुग्गधे।
वीस कोडाकोडी, एवइआवाहवाससया ॥ ३२ ॥

अर्थ—नपुसकवेद १, अशुभविहायोगति १, श्वासोश्वास चतुष्क–४, उश्वास १, उद्योत १, आतप १, पराघात १, गुरु–भारेफरस १, कर्कश फरस १, रुक्ष–लूखो फरस १, शीत–टाढो फरस १, दुर्गंध १, ए ४२ बेताळीस प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति वीस २० कोडाकोडी सागरनी जाणवी एवइया एटला वरस सय–सो वर्ष अबाधा जाणवी एटले जे कर्मनी जेटली कोडाकोडी स्थिति तेटला सो वरसनी अबाधा बाध्या पछी तेटला सो वरस सीम (सुधी) उदय न आवे ते अबाधा कहीये ॥ ३२ ॥

गुरु कोडि कोडिअतो, तित्थाहाराणभिन्नमुहुबाहा।
लहुठिइसखगुणूणा, नरतिरियाणाउपल्लतिग ॥३३॥

अर्थ—गुरु केहेता उत्कृष्टी अतो केहेता माही एटले काइक उणी एक कोडाकोडी सागर तीर्थंकर नामनी तथा

आहारक द्विकनी स्थिति उत्कृष्टी जाणवी तथा अन्नावा प्रदेशोदयनी भिन्नमुहूर्त—अंतर्मुहूर्त्तनी जाणवी जघन्य स्थिति संख्यात गुण ऊणी ते जे अंत कोटाकोडी स्थिति छे तेहने संख्यातगुणी ऊणी करीये, जेटली थाय तेटली ऊणी जघन्य स्थिति जाणवी एटले असंख्याता अध्यवसायनो फेर पडे छे नर–मनुष्यनु आयु तथा तिर्यंचायुनी उत्कृष्टी स्थिति तीन ३ पल्योपमनी जाणवी ॥ ३३ ॥

इगविगलपुव्वकोडिं, पलियाऽसंखंस आउचउ अमणा।
निरुवकमाण छ मासा, अबाह सेसाण भवतंसो ३४

अर्थ—हवे जे जीवो आवता भवनो आयु जेटलो बांधे ते कहे छे एकेन्द्रि तथा विकलेन्द्रिय आवता भवनु, आयु उत्कृष्ट बांधे तो पूर्वकोडि १ एकनो बांधे एथी अधिक न बांधे. तथा अमणा असंज्ञि पचेन्द्रितिर्यंच पर्याप्ता च्यार ४ गतिनो आउखो बांधे तो उत्कृष्टो पल्योपमने असंख्यातमें भाग प्रमाण बांधे, निरुपक्रम आउखावाळा देवता तथा नारकी तथा युगलिया एटला छ मास शेष थकी नवा भवनो आउखो बांधे. शेष जे सोपक्रमी तथा निरुपक्रमी मनुष्य तिर्यंचनु आयुष्य ते, भवने त्रीजे भागे शेषे बांधे पिण पेहेला बे भाग मध्ये न बांधे, जो त्रीजे भागे न बंधाय तो नवमा भागे, अथवा २७ मे भागे इम त्रिभाग करता शेष अंतर्मुहूर्त्ते पिण बांधे. वर्णादिक वीसनी जुदी स्थिति कही तिणे एकसोछत्रीस प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थितिकही हवे जघन्य स्थितिकहे छे. ॥३४॥

लहु ठिइबंधो संजलण, लोहपणविग्घनाण दंसेसु।
भिन्नमुहुत्त ते अट्ठ, जसुच्चे बारस य साए ॥३५॥

अर्थ—जे सज्वलन लोभ १, तथा पाच अतराय ५, तथा पाच ज्ञानावरणी तथा दर्सेसु च्यार ४, दर्शनावरणी १५ पनर, प्रकृतिनी जघन्य स्थिति अतर्मुहूर्त्तनी जाणवी तथा जसनामकर्म, उँचगोत्र १ नी आठ मुहूर्त्तनी जघन्य स्थिति जाणवी सातावेदनीयनी जघन्य स्थिति बार मुहूर्त्तनी ते दसमे गुणठाणे बाधे, इग्यारमे, बारमे, तेरमे गुणठाणे साता बधाय ते बे समयनी बधाय ॥ ३५ ॥

दो इग मासो पक्खो, सजलणतिगेपुमट्ठवरिसाणि।
सेसाणुक्कोसाओ, मिच्छत्तठिइंए ज लद्ध ॥ ३६ ॥

अर्थ—सज्वलनना क्रोधनी जघन्य स्थिति मास बेनी छे सज्वलननामाननी १, एक मासनी छे, सज्वलन मायानी पक्ष १, ते पदर दिवसनी छे, तिहा जे प्रकृति नवमे गुणठाणे वेहेली खपे तेहनी स्थिति जघन्यपणे कही हवे जे मोडी खपे तेहनी जघन्य स्थिति थोडी जाणवी पुरुषवेद खपे तिहा सर्व प्रकृतिनी स्थिति एटलीज बधाय छे, पुरुषवेदनी स्थिति जघन्य छे, हवे शेष जे एकसोएक प्रकृति वर्णादिक वीसनी उत्कृष्टी स्थितिने मिथ्यात्वनी उत्कृष्टी स्थितिथी भाग आपता ज्या जे आवे ते त्या प्रकृतिनी जघन्य स्थिति जाणवी तिहा निद्रा पाचनी जघन्य स्थिति सागर १ एकना जे सात भाग एहवा तीन भागनी जाणवी असातावेदनीय पिण सात इया तीन भागनी जाणवी, बार कषायना जघन्ये सातइया ४ च्यार भागनी जाणवी हास्य १, रतिनी सातइया बे भाग भय, दुगछा, अरति, शोक ए च्यार ४ प्रकृतिनी जघन्य स्थिति बे भाग, नपुसकवेदनी स्थिति सातइया बे भाग,

स्त्रीवेदनी स्थिति सातइयो दोढ भाग, नामकर्ममध्ये देवगति देवानुपूर्वीनी एक हजार भाग नरकगति, नरकानुपूर्वीनी सातइया वे हजार भाग, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वीनी दोढ भाग एकेन्द्री जाति, पचेन्द्री जातिनी जघन्य स्थिति सातइया वे भाग, विकलत्रिकनी सातइया पोंणा वे भाग झाझेरा, औदारिक शरीर, औदारिक उपागनी वे भाग, वैक्रिय शरीर वैक्रिय उपागनी वे हजार भाग, तैजसकार्मणना वे भाग, प्रथम सघयण प्रथम सस्थाननी सातइयो १, एक भाग, बीजो सघयण बीजा सस्थाननी स्थिति ३५ सीया छ ६ भाग, त्रीजो सघयण त्रीजो सस्थान ३५, सीया ७, भाग चोथे सघयणे चोथे सस्थाने पात्रीसीया (३५ या) ८, भाग पाचमो सघयण पाचमो सस्थानना पात्रीसीया नव ९ भाग, छट्ठो सघयण, छट्ठो सस्थानना पात्रीसीया दस भाग, एटले सातइया वे भाग श्वेतवर्ण मधुररसनी १, भाग पीतवर्ण खाटारसनी सवा भाग रातावर्ण कसायला रसनी दोढ भाग नीलोवर्ण, कडुयो रस पोणावे भाग, काळोवर्ण, तीखारसनी वे भाग सातइया, सुरभिगध, मृदुस्पर्श, लघुस्पर्श, स्निग्धस्पर्श, उष्णस्पर्श, नो सातइयो १, भाग शुभविहायोगतिनो जघन्य सातइयो १, एक भाग अशुभविहायोगति, पराघात, उश्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, निर्माण, उपघात, त्रस, अथिरछक, थावरनाम ए सर्वना सातइया वे भाग, आहारक शरीर, आहारक उपागनी, जिन नामनी एक कोडाकोडी सागर केटलाएक सागरोपमना सेंकडा ओछा, सूक्ष्मत्रिकनी सातइया पोंणा वे भाग झाझेरा, थिर ५ नो सातइयो १, भाग जघन्य स्थिति जाणवी ॥ ३६ ॥

अयमुक्कोसो गिंदिसु, पलियाऽसखस हीणलहुबधो।
कमसो पणवीसाए, पन्ना सय सहस्स सगुणिओ॥३७॥

अर्थ—एक भाग ॰ भाग तीनभाग प्रमुख स्थिति कही ते एकेन्द्रीने उत्कृष्ट स्थिति जाणवी, बादर पर्याप्तो उत्कृष्टी बांधे, ए जे एकेन्द्रीयनी उत्कृष्ट स्थिति कही, ते माहेथी पल्योपमनो असख्यातमो भाग हीण कहेता ओछो करीये, तिवारे एकेन्द्रीयनी जघन्य स्थिति जाणवी कमसो अनुक्रमे पणवीसाए एकेन्द्रीयी बेन्द्री पचवीस गुणी स्थिति बांधे, तेन्द्री पचासगुणी स्थिति बांधे, चोरेन्द्री १०० सोगुणी बांधे, अने असज्ञि पचेन्द्री हजारगुणी स्थिति बांधे ॥ ३७ ॥

विगलि असन्निसुजिट्ठो, कणिट्ठओ पल्लसखभागूणो
सुर निरयाउ समादस, सहस्स सेसाउ खुड्ड भव ॥३८॥

अर्थ—विकलेन्द्री (बेन्द्री, तेन्द्री, चौरेन्द्री) ने, असज्ञिने ए स्थिति उत्कृष्टी जाणवी कणिट्ठओ—जघन्य स्थिति पल्यनो सख्यातमो भाग ऊणी, करवी ते पल्यनो सख्यातमो भाग ऊणो कीजे तिवारे बेन्द्रीयादिकनी जघन्य स्थिति जाणवी सुर देवतानो आउखो, नरय—नारकीना आउखानी जघन्य स्थिति हजार १० दस हजार वरसनी जाणवी शेष जे मनुष्य तिर्यंचना आउखानी जघन्य स्थिति क्षुल्लक भव प्रमाण, क्षुल्लक भव २५६ आवलीनी छे ते जघन्य जाणवी ॥३८॥

सव्वाणवि लहुबधे, भिन्नमुहु अबाह आउजिट्ठेवि।
केइ सुराउसमजिण, मतमुहू विंति आहार ॥३९॥

अर्थ—सर्व प्रकृतिना जघन्य स्थितिबंधे जघन्य अबाधा अतर्मुहूर्त्तनी जाणवी एटले सर्वजघन्य स्थितिनी जघन्य अबाधा अंतर्मुहूर्त्तनी ते उपर स्थिति कंडक एक वधे एक समय अबाधा वधे इम उत्कृष्ट स्थितिमा उत्कृष्ट अबाधा जाणवी, अने आउखा च्यारनी उत्कृष्टी स्थिति जघन्य अबाधा हुवे, इहां चोभंगी छे, आउखो उत्कृष्टे अबाधा उत्कृष्टी १, आउखे उत्कृष्टे अबाधा जघन्य २, आउखो जघन्य अबाधा उत्कृष्ट ३, आउखो जघन्य अबाधा जघन्य ४ जाणवी वळी वाचनान्तर कहे छे कोइक आचार्य जिन नामनो जघन्य स्थितिबंध देवताना आयु प्रमाण जाणवो, एटले आठमा गुणठाणाना छट्ठा भागना चरम समये जीननामकर्मनो जघन्य स्थितिबंध १० हजार वर्ष प्रमाणनो होय छे आहारक दुगनी विपाकनी जघन्य स्थितिबंध अतर्मुहूर्त्तनी छे, जे आठमा गुणठाणाना छट्ठा भागना चरम समये—आहारकनो जघन्य स्थितिबंध अतर्मुहूर्त होय छे ॥ ३९ ॥

सत्तरसमहियाकिर, इगाणुपाणुंमिहुतिखुड्डभवा।
सगतीस सयतिहुत्तर, पाणू पुण इग मुहुत्तंमि ॥४०॥

अर्थ—हवे क्षुल्लकभवनो मान कहे छे एक आणपाण श्वासोश्वास मध्ये सत्तर भव पुरा अढारमा भवना १३९५ भाग अधिक एटले सत्तर भव झाझेरा एक श्वासोश्वास माहे थाय. ए क्षुल्लक भव जाणवो, क्षुल्लक एटले सर्वथी न्हानो भव ए भाग उश्वासना ३७७३ भाग करीये तेहवा १३९५ भाग लेवा, सडत्रीसमे तिहुत्तर ३७७३ पाणू, पुण कहेता श्वासोश्वास गये एक मुहूर्त्त थाय. ॥ ४० ॥

पणसट्ठि सहसपणसय, छत्तीसाइगमुहुत्त खुड्डभवा।
आवलियाण दोसय, छप्पन्ना एग खुड्डभवे॥४१॥

अर्थ—एक मुहूर्त ते बे घडी प्रमाणमे पेंसठहजार पाचसे छत्रीस भव थाये, सूक्ष्मनिगोदीयाथी माडी समुर्च्छिम मनुष्य पर्यंत ए प्रमाण जाणवो, तथा क्षुल्लक भव मध्ये आवली, २५६ जाये एटले मुहूर्तमे एक कोडि सडसठ लाख सित्तोत्तर हजार दोयसेने सोळ आवली जाणवी ॥ ४१ ॥

अविरयसम्मोतित्थं, आहारदुगामराउ अपमत्तो।
मिच्छद्दिट्ठि बंधइ, जिट्ठंठिइ सेस पयडीण ॥४२॥

अर्थ—हवे उत्कृष्टी स्थितिबंधना स्वामी कहे छे तीर्थंकर नामनी उत्कृष्टी स्थिति अविरति समकीतीबंधक, समकितथी माडी अपूर्वकरणना छठ्ठा भाग पर्यंत छे, ते सर्व जीवथी अधिक कषायी अविरति समकीती छे, ते अधिक कषायी तेथी स्थिति ते उत्कृष्टी बाधे आहारकदुग–२ आहारक शरीर तथा उपाग ए बे अमर–देवतानो आउखो उत्कृष्ट स्थिति अप्रमत्त गुणठाणे बाधे, तिहा आहारक अप्रमत्त अति सक्लेशना अध्यवसाये बंधक उत्कृष्ट स्थिति बधे देवायु अप्रमत्त विशुद्धाध्यवसाये उत्कृष्ट स्थिति बाधे, शेषप्रकृति वर्णादिक वीस भिन्नगवेखेतो, ११२, तथा वर्णादि ४, गवेखीयेतो ११६, नी उत्कृष्टी स्थिति सज्ञीपचेन्द्री पर्याप्तो मिथ्यादृष्टि बाधे ॥ ४२ ॥

विगलसुहुमाउतिगं, तिरिमणुया सुरविउव्वि निरयदुग
एगिंदिथावरायव, आईसाणा सुरुक्कोस ॥ ४३ ॥

अर्थ—हवे मिथ्यात्वे च्यार ४ गतिना छे ते ते मध्ये जे बांधे ते लिखीये छे विगल ३ सूक्ष्म ३ तिर्यंचायु १, मनुष्यायु १, नरकायु १, ए ३ आउखा देवगति १ देवानुपूर्वी, १ ए देवद्विक, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय उपांग, ए वे वैक्रियदुग, नरगति, नरकानुपूर्वी, ए नरकद्विक, ए १५ प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति संज्ञिपंचेन्द्रीपर्याप्तमिथ्यात्वी तिर्यंच मनुष्य बांधे एना बंधक एज छे तथा एकेन्द्रीजाति, थावरनाम, आतपनाम, ए तीन प्रकृति आइसाणा–भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी, सुधर्म, इशान देवलोक पर्यंतना देव उत्कृष्टी स्थिति बांधे, आकरे तीव्र अशुद्धता ए परिणम्यो ए जीव एकेन्द्रीपणो उपार्जे बीजी त्रीणी गतिमा एने जतु नथी ते माटे ॥ ४३ ॥

तिरिउरलदुगुज्जोअं, छिवट्ठ सुरनिरय सेसचउगइया।
आहारजिणमपुव्वो, अनियट्टि संजलण पुरिसलहु ।४४।

अर्थ—तिर्यंचदुग, औदारिकदुग, उद्योतनाम, छेवठोसंघयण, ए ६ प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति मिथ्यात्वी देवता अथवा मिथ्यात्वी नारकी बांधे, शेष १०८ एकसो आठ, प्रकृतिनी उत्कृष्टी स्थिति च्यार गतिना मिथ्यात्वी बांधे, संज्ञिपर्याप्ता बांधे

अथ जघन्य स्थितिना स्वामी कहे छे आहारक तथा जिननामनी जघन्य स्थिति अपूर्वकरण गुणठाणे बांधे, ए प्रकृतिना बंधक मध्ये अति निर्मल परिणाम अहिज छे अनिवृत्ति गुणठाणे संजलना कषाय च्यार, पुरुषवेद, ए पांच प्रकृतिनी जघन्य स्थिति बांधे ॥ ४५ ॥

सांय जंसुच्चावरणा, विग्घ सुहुमो विउवि छ असन्नि।
सन्नीवि आँउ बायर, पज्जेगिंदी उ सेसाण ॥४५॥

अर्थ—सातावेदनीय १, जसनाम २, उंचेगोत्र १, ज्ञानावरणी पाच ५, दर्शनावरणी ४, अतराय पाच ५, ए १७ प्रकृतिनी जघन्य स्थिति सूक्ष्मसपराय दसमे गुणठाणे बाधे देवद्विक २, नरकद्विक २, वैक्रियाद्विक २, ए ६ ज प्रकृतिनी जघन्य स्थिति असज्ञिपचेन्द्री पर्याप्तो बाधे, जे कारणे एहनो प्रथमबध एहिज छे, आउखा ४, नी जघन्य स्थितिनो बधक सज्ञीपण छे असज्ञीपिण छे एहनो बध परिणामनी तीव्रमदताये छे, शेष १०१, अथवा ८५, प्रकृतियोनी जघन्य स्थितिना बधक बादरपर्याप्ता एकेन्द्री जाणवा स्थितिबधमें सूक्ष्मसपरायी साधुथी बीजे बोले स्थितिबधक एकेन्द्री पर्याप्तो छे ॥४५॥

उक्कोसजहण्णीयर, भगासाई अणाइ धुवअधुवा।
चउहा सग अजहन्नो, सेसतिगे आउ चउसु दुहा॥४६॥

अर्थ—हवे स्थितिबधना भागा कहे छे—तिहा उत्कृष्ट १, जघन्य १, इतर अनुत्कृष्ट अजघन्य १, ए ४, च्यार भागा छे तिहा जे प्रकृतिनी जे उत्कृष्टि स्थिति छे ते बाधे ते उत्कृष्टबध कहेवाय, उत्कृष्टबध एक जीवने लागट रहे तो अतर्मुहूर्त रहे ते माटे ए सादि अध्रुव छे, तथा जे प्रकृतिनी जघन्य स्थिति जे बाधे ते जघन्य बधक कहीये ते एकएक समयमाज बाधे, एहने पिण सादि अध्रुव भेदज लागे, तथा उत्कृष्टी नही ते अनुत्कृष्ट, ते इहा

उत्कृष्टोबंध सादि अध्रुव जे हुवे पर ए अर्थ इहा लीधो नथी (टबामा लीधो नथी एम छे) इहा तो जघन्य बंधकथी बीजो बंध ते सर्व अजघन्यमें गवेख्यो छे, अने प्रथम अर्थ करीये तो पिण अनादि सूक्ष्मनिगोदीया जीवने सदा अजघन्य बंध छे जे जघन्य बंध तो बादर एकेन्द्रीने छे, अथवा गुणाधिकने छे ते माटे ए भागे ४, भेद भासे छे, सातकर्म (आउखा विना) अजघन्य स्थिति बांधेतो सादि एक १, अनादि २, ध्रुव ३, अध्रुव ४, ए च्यारभेदे बांधे जे ७ कर्मनो जघन्य बंध १०, मे गुणठाणे, मोहनी कर्मनो जघन्य बंध नवमे गुणठाणे अंत्य अध्यवसाय क्षपकश्रेणिने, अने उपशमश्रेणि वे क्षपकथी बमणी स्थितिबांधे, ते माटे अजघन्य बंधक छे, तेहने इग्यारमे आव्ये अबंध थयो, ते अध्रुव, पाछो पडी वळी बांधे ते सादि, ए गुणठाणे आव्यो नथी तेहने अनादि, अभव्यने ध्रुव भव्यने अध्रुव ए रीते जाणज्यो १, सर्व जीवने अजघन्य बंध ते ए गुणठाणे चढ्या पड्याने सादी, चडस्ये तेहने अध्रुव, तथा अभव्यने अनादि ध्रुव छे, तेथी एज सातकर्म उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य ए तीन भागे सादि अध्रुव बंध छे, ए ३, ना बंधनो काल अल्प छे, तथा आउखो कर्म उत्कृष्ट जघन्य, अजघन्य, ए ४, च्यारे भागे स्थिति बांधे तो सादि अध्रुवकालज बांधे, जे कारणे भवमें आयु एकवार तथा अंतर्मुहूर्त सीम बंधाय ते माटे बे भेदज छे, शेष तीन उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट जघन्य १, अनुत्कृष्ट भागे बांधे तो सादि अध्रुवकालसीम बांधे, जे कारणे जघन्यबंधनो एक समय काल छे, उत्कृष्टबंधनो १, समयकाल छे, अनुत्कृष्ट ते उत्कृष्ट पछी थाय ते माटे सादि अध्रुव छे, उत्कृष्टथी एक समये ऊणबांधे ते अनुत्कृष्ट बंध,

कहीये ए पिण उत्कृष्ट नवक थया पछी न्नावे ते माटे सादि अध्रुव लाभे, तथा जघन्यनवक पइने एक समय अधिक अधिक बधाय ते अजघन्य गणीये तो ॥ ४६ ॥

चउभेओ अजहन्नो, सजलणावरणनवगविग्धाण।
सेस तिगिसाइ अधुवो, तहचउहा सेसपयडीण ॥४७॥

अर्थ—अजघन्यबंध च्यार भेदे पामीये, सजलण च्यार ४, ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी ४, ए नव, अतराय पाच, ए १८ प्रकृतिनी अजघन्य स्थिति च्यार ४, भेदे छे, जे ए १८ प्रकृतिनो जघन्यबंध नवमे, दसमे, गुणठाणे छे तेहथी बीजा जीव सर्व अजघन्यबंधक छे, तेहमा जे ए गुणठाणे चढी पड्या छे तेहने सादि अध्रुव छे, अभव्यने अनादि ध्रुव छे एहिज अढार प्रकृतिना, शेष तिग—शेष ३ भाग सादि १, अध्रुव २, भेदे छे, भावना पूर्ववत् शेष १०२ प्रकृतिनी, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य, ए च्यार ४ प्रकारनी स्थिति सादि अध्रुव भागे बधाय, तिहा ७३ प्रकृति तो अध्रुव बंधिज छे ते माटे किवारे बधाये किवारे न बधाये ते माटे सादि अध्रुव छे, २९ ध्रुवबंधिमाहेली छे ते सदा बधाय, पिण ए २९ नो जघन्यबंधक पिण एकेन्द्रीय छे, ते एकेन्द्रीयपणामे जघन्यबंध करे ते माटे जघन्य कर्या पछी अजघन्यबंध ते पिण सादि अध्रुव छे, ते माटे ए २९ प्रकृतिने सादि अध्रुव छे ॥ ४७ ॥

साणाई अपुव्वते, अयरतो कोडि कोडिओ नहिगो,
बधो न हु हीणो नय, मिच्छे भवियर सन्निमि ॥४८॥

अर्थ—हवे गुणठाणे स्थिति कहे छे. सास्वादन गुणठाणाथी माटी अपूर्वकरण पर्यंत अयर—सागरोपम अतो—कोडाकोडी एक काइक ऊणी स्थिति बाधे, एटले ए ७ गुणठाणे १ कोडाकोडी देशे उणी स्थिति बाधे, पिण नहिगो—अधिकी न बाधे, समकीतीथी देश विरति नवपल्य ओछी बाधे, तेथी सर्वविरति केटला सागर ओछी बाधे, तेथी अपूर्वकरण सख्याता सागरना सेंकडा ओछी बाधे, तथा मिथ्यात्व गुणठाणे अत कोडाकोडीयी ओछी न बाधे, अनादि मिथ्यात्वी जघन्य अत कोडाकोडी, उत्कृष्ट ७० कोडाकोडी बाधे ए मिथ्यात्वी भव्य तथा अभव्य सज्ञी आश्रयि कह्यो छे ॥ ४८ ॥

जइ लहुबधो बायर, पज्जअसखगुण सुहुम पज्जहिगो।
एसिं अपज्जाण लहू, सुहुमेअर अपज्जपज्जगुरु ॥४९॥

अर्थ—हवे ३६ बोलना स्थितिनो अल्पबहुत्व कहे छे सर्वथी यती लहु—जघन्य स्थिति बधके सूक्ष्मसपराय चरमसमयी सर्वथी थोडी १ बाधे १ अतर्मुहूर्त्त बाधे छे तेहथी बादर पर्याप्तो जघन्य स्थितिबधक असख्यातगुणी बाधे, ए सागरना भागनो बधक छे ते असख्यातो काल छे ते माटे तेहथी सूक्ष्म एकेन्द्री पर्याप्तो जघन्यबधक काइक अधिकी बाधे, एहने थोडो काल वधे छे, एहज बे अपर्याप्ता लहु—जघन्यबधकना बे बोल कहेवा तेहथी बादर पर्याप्तो जघन्यबधक स्थिति अधिकी बाधे ४, तेहथी सूक्ष्मअपर्याप्तो जघन्यबधक अधिकी बाधे ५, तेहथी सूक्ष्म अपर्याप्तो उत्कृष्टबधक अधिकी बाधे ६, तेहथी बादर अपर्याप्तो उत्कृष्ट स्थितिबधक अधिकी बाधे ७, तेहथी सूक्ष्म अपर्याप्तो उत्कृष्टबधक अधिकी बाधे ८,

तेहथी बादर पर्यासो उत्कृष्टबंधक स्थिति अधिकी बांधे एके-न्द्रीपणामे एज उत्कृष्टबंधक छे ९ ॥ ४९ ॥

लहु विअ पज्ज अपज्जे, अपज्जेयर विअ गुरु हिगो एव्व।
तिचउ असन्निसु नवर, सखगुणो विअ अमणपज्जे ५०

अर्थ—लहु–जघन्यबंधक बेन्द्री पर्यासो सख्यातगुणी बांधे १० तेहथी बेन्द्री अपर्यासो जघन्यबंधक अधिकी बांधे, ११ तेहथी बेन्द्री अपर्यासो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे. १२ तेहथी बेन्द्री पर्यासो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे १३ इहा एकेन्द्रीथी बेन्द्रीने २५ गुणो बंध, ते माटे पेहेले बोले सख्यातगुणो कह्या पछी ते पल्यना असख्यातमे भागे वृद्धि छे, ते माटे अधिकी बांधे एव–ए रीते च्यार ४ बोल कहेवा तिहा १४ मे बोले तेन्द्री पर्यासो जघन्यबंधक स्थिति अधिकी बांधे, तेहथी १५ मे बोले तेन्द्री अपर्यासो जघन्यबंधक स्थिति अधिकी बांधे, तेहथी तेन्द्री अपर्यासो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे १६ तेहथी तेन्द्री अपर्यासो उत्कृष्टबंधक ते अधिकी बांधे १७ तेहथी चौरेन्द्री पर्यासो जघन्यबंधक अधिकी बांधे १८ तेहथी चोरेन्द्री अपर्यासो जघन्यबंधक अधिकी बांधे, १९ तेहथी चोरेन्द्री अपर्यासो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे २० तेहथी चो-रेन्द्री पर्यासो उत्कृष्टबंधक अधिकी बांधे, २१ तेहथी असज्ञि पचेन्द्री पर्यासो जघन्य बे० सख्यात गुणबंधक छे ते २२ ए हजारगुणी बांधे ते चोरेन्द्रीथी नवगुणी साधिक थइ छे ते माटे तेहथी असज्ञि पचेन्द्री अपर्यासो जघन्यबंधक अधिकी बांधे २३ तेहथी असज्ञि पचेन्द्री अपर्यासो उत्कृष्टबंधक अ-धिकी बांधे २४ तेहथी असज्ञि पचेन्द्री पर्यासो उत्कृष्टी

बधक अधिकी बाधे २५ नवर-विशेष एटलो फेर छे जे बेन्द्री तथा असज्ञि पर्याप्तो तेनो पाठ ते सख्यातगुणो कहेवो ॥५०॥

तोजइ जिट्ठो वंधो, सखगुणो देसविरयहस्सिअरो ।
सम्मचउ सन्निचउरो, ठिइवधाऽणुकम सख्गुणा ५१

अर्थ—तेहथी प्रमत्त गुणठाणे वर्त्तमान ते मुनिपणामे उत्कृष्ट बधक छे सख्यात गुणी स्थितिबाधे २६ ॥ केटलाएक सागर उणी एक कोडाकोडीना बधक छे, तेहथी देशविरति जघन्यबधकनी सख्यातगुणी स्थिति वृद्धि तो थोडी छे ते पर स्थितिस्थानक कषायनी चोकडीना बध्या, माटे असख्यातगुणा बधे छे ते माटे असख्यातगुणपणे लीधी छे २७। तेहथी देशविरति उत्कृष्ट बधक असख्यात गुणीबाधे २८। तेहथी समकीतीना च्यार बोल कहेवा, तिहा समकिति पर्याप्तो जघन्य बधक सख्यातगुणी बाधे २९। तेहथी समकिती अपर्याप्त जघन्यबधकने सख्यातगुणी बधाय ३०। तेहथी समकिती अपर्याप्तो उत्कृष्ट बधक सख्यातगुणी बाधे ३१। तेहथी समकिती अपर्याप्तो उत्कृष्टबधक सख्यातगुणी ३२। तेहथी समकिती पर्याप्तो उत्कृष्टबधक अधिकी बाधे, तेहथी सज्ञी पर्याप्तो जघन्यबधक सख्यातगुणी बाधे ३३। तेहथी सज्ञी अपर्याप्तो जघन्यबधक सख्यातगुणी बाधे ३४। तेहथी सज्ञी अपर्याप्तो उत्कृष्टबधक सख्यातगुणी बाधे ३५। तेहथी सज्ञी पर्याप्तो उत्कृष्टबधक सख्यातगुणी बाधे ३६। एम स्थितिबध सख्यातगुणा छे ।५१।

सव्वाणवि जिट्ठठिई, असुहा ज साइ सकिलेसेण ।
इअरा विसोहिओ पुण, मुत्तु नरअमर तिरिआउ ५२

अर्थ—सर्व प्रकृतिनी जिट्ठ–उत्कृष्टी स्थिति ते अशुभ जाणवी, जे साईं–ते अति सक्लेश परिणामे एटले जिननामनो बध चोथा गुणठाणाथी मांडी आठना गुणठाणा लगे छे, पिण चोथे स्थिति उत्कृष्टी बांधे तेमें शुद्ध परिणाम छे ते माटे जघन्य बांधे ए सर्व प्रकृतिनी इ–रा–जघन्य स्थितिने विशुद्ध परिणामे बांधे, एक तीन प्रकृति नर–मनुष्यायु, देवायु, तिर्यंचायु, ए तीन प्रकृति मूकीने, एटले ए तीन प्रकृतिनी जघन्य स्थिति सक्लेश परिणामे बांधे, उत्कृष्टी स्थिति विशुद्ध परिणामे बांधे ॥ ५२ ॥

सुहुमनिगोआइखणप्प-जोगवायर य विगलअमणमणा
अपज्जलहु पढमदुगुरू, पजहस्सिअरो असखगुणो।५३॥

अर्थ—हवे २८ बोलना योगबलनो अल्पबहुत्व कहे छे सूक्ष्मनिगोदादि प्रथम क्षणे प्रथम समये उपनो अपर्याप्त पणाथीज आव्यो तेहनो सर्वथी योगबल अल्प जाणवो १ तेहथी बादर एकेन्द्री अपर्याप्तो प्रथम समय उपनो अपर्याप्तो अपर्याप्तपणाथीज आव्यो, तेहनो सर्वथी योगबल अल्प जाणवो १ तेहथी बादर एकेन्द्री अपर्याप्तो प्रथम समय उत्पन्न जघन्ययोगीनो योगबल असख्यातगुणो, २, तेहथी बेन्द्री अपर्याप्ता जघन्ययोगीनो योगबल असख्यातगुणो, ३ तेथी तेन्द्री० ४ तेथी चोरेन्द्री० ५ तेहथी अमण–असज्ञि अपर्याप्तानो जघन्य योगबल असख्यातगुणो, ६ तेहथी मणा–सज्ञि अपर्याप्तानो जघन्य योगबल असख्यातगुणो ७, तेहथी पढम–पेहेला बे बोल गुरु–उत्कृष्टबधक एटले सूक्ष्म अपर्याप्तानो उत्कृष्ट योगबल असख्यातगुणो, ८ तेहथी बादर अपर्याप्तानो

उत्कृष्ट योगबल असख्यातगुणो ९ सूक्ष्म पर्याप्त जघन्य योगीनो योगबल असख्यातगुणो १० तेहथी बादर पर्याप्त जघन्य योगीनो योगबल असख्यातगुणो, ११ तेहथी सूक्ष्म पर्याप्त उत्कृष्ट योगीनो योगबल असख्यातगुणो १२ तेहथी बादर पर्याप्त उत्कृष्ट योगीनो योगबल असख्यातगुणो १३ ॥५३॥

असमत्ततमुक्कोसो, पज्जजहन्नियर एव ठिइठाणा ।
अपज्जेयर सखगुणा, परमऽपजबीए असंखगुणा॥५४॥

अर्थ—असमत्त–अपर्याप्त ५, नो उत्कृष्ट योगीनो योगबल असख्यातगुणो ते पछी त्रस ५, पर्याप्ता जघन्य योगीनो योगबल असख्यातगुणो, तेथी त्रसना ५, पर्याप्ता उत्कृष्टयोगीनो असख्यातगुणो योग छे ते कहे छे–चौदमे बोले अपर्याप्त बेन्द्रि उत्कृष्टयोगीनो योगबल असख्यातगुणो १५, तेहथी अपर्याप्त चौरेन्द्रिनो उत्कृष्टयोग असख्यातगुणो, १६, तेहथी अपर्याप्त असज्ञिपचेंन्द्रिनो उत्कृष्ट योगबल असख्यातगुणो १७ तेहथी अपर्याप्त सज्ञिपचेन्द्रिनो उत्कृष्टयोग असख्यातगुणो १८, तेहथी पर्याप्त बेइन्द्रिनो जघन्ययोग असख्यातगुणो १९, तेहथी पर्याप्त तेइन्द्रिनो जघन्ययोग असख्यातगुणो २०, तेहथी पर्याप्ता चौरेन्द्रिनो जघन्ययोग असख्यातगुणो २१, तेहथी पर्याप्ता असज्ञिपचेन्द्रिनो जघन्ययोग [illegible]ख्यातगुणो २२, तेहथी पर्याप्ता सज्ञिपचेन्द्रिनो जघन्य योग असख्यातगुणो, २३ तेहथी पर्याप्त बेन्द्रिनो उत्कृष्टयोग असख्यातगुणो, २४ तेहथी तेन्द्रिपर्याप्तो तेनो उत्कृष्ट योग असख्यातगुणो, २५ तेथी चौरेन्द्रि पर्याप्तानो उत्कृष्ट योग असख्यातगुणो, २६ तेहथी असज्ञिपचेन्द्रि पर्याप्तानो उत्कृष्ट योग असख्यातगुणो, २७ तेथी सज्ञिपचेन्द्रि

पर्याप्तानो उत्कृष्ट योग असख्यानगुणो २८ ए रीते स्थिति स्थानकनो अल्पबहुत्व २८ बोलनो जाणवो, वीर्यनी वृद्धिए स्थितिनी तीव्रमदताना भेद पडे ते इहा लेज्यो अपर्याप्तार्थी इअर-पर्याप्ताना स्थितिस्थानक असख्यातगुण छे, इहा जीव भेद एकें स्थिति जघन्य मिथ्यात्वनी एकसागर पल्यने असख्यातमे भागें ऊणी बाधे, पिण कोइक तीव्र बाधे, कोइक जीव मद तथा मदतर रीतें एक स्थितिस्थानकमें ते स्थिति बाधवाना अध्यवसाय स्थानक असख्यात थाये एहवा एक जीवभेद सूक्ष्म अपर्याप्तने बाधवाना अध्यवसाय स्थानक असख्यात छे तेहथी सूक्ष्मपर्याप्ताना बधाध्यवसाय सख्यातगुणा छे, तेथी बादर अपर्याप्ताना सख्यातगुणा छे, तेथी बेइन्द्रि अपर्याप्ताना बधाध्यवसाय असख्यातगुणा छे, तेथी बेन्द्रिपर्याप्ताना बधाध्यवसाय सख्यातगुणा छे इम १४ जीवभेदें कहेता पण एटलो भेद जे बेइन्द्रि अपर्याप्ताना असख्यातगुणाज त्रसपणानो वीर्य तेहने वाध्यो ते माटे तथा इहा स्थिति अपेक्षाए पहेला (१) ॥५४॥

पइ खण मसखगुणविरिय, अपज्जपइठिइमसखलोगसमा ।

अज्झवसाया अहिया, सत्तसु आउसु असखगुणा ५५॥

अर्थ—हवे जीवने क्षयोपशमी वीर्य जे उपजवाने प्रथम समये छे ते असख्यातो छे ते पछी पइखण-प्रतिसमये एटले समय समयमे असख्यातगुणो वीर्य वधे पण अपर्याप्तावस्थासीम इम वीर्यवृद्धि जाणवी एटले पेहेला समयथी बीजे समये असख्यातगुणो वीर्य वधे, त्रीजे समये असख्यातगुणो

वीर्य वधे, अने वळी पइठिइ–प्रतिस्थितिए (स्थितें) अध्यवसाय असंख्याता छे, ते अलोकमध्ये लोक जेहवा असंख्याता खड कल्पीये तेहना प्रदेश जेटला एकस्थितिस्थानक स्थितिबधना अध्यवसाय छे, ते ए सर्व जीवभेदें जाणज्यो कषायना तरतमयोगें अध्यवसायना भेद जाणवा, ए अध्यवसाय अनंतजीवमा पण पामीये अने कोइक वेळा असख्याता अध्यवसाय जीव रहित पिण पामीये हवे सातकर्मनी जघन्य स्थिति बाधे तेहना अध्यवसाय असख्याता छे, अने एक समयाधिक बाधे तेहना पुठ्ळी स्थितिना अध्यवसायथी काइक अधिक जाणवा इम तृतिय समयाधिकना अध्यवसाय अधिका इम वधारते २ उत्कृष्ट स्थितिस्थानकसीम अधिकाधिक कहेवा, आउखाकर्मना जघन्य स्थितिस्थानकथी समयाधिकनो जे स्थितिस्थानक तेहना अध्यवसाय असख्यातगुणा कहेवा, सर्व वर्त्ततो आउखो बाधे पिण आउखानी स्थिति थोडी तिणे स्थितिस्थानक थोडा अने कषायस्थानकने वेंहचता असख्यातगुणा आवे, इम सात कर्मने पण स्थितिस्थानके करी कषायस्थानकनो अल्प बहुत्व कहेवो, हवे जे प्रकृति जेटला काल अबध रहे ते प्रकृतिनो अबधकाल कहे छे तिहा ४७ प्रकृति तो ध्रुवबधि छे ते निरतर बधाये छे, तेथी बीजानी भावना करीये छे ॥५५॥

तिरिनिरय ति जोयाण, नरभव जुअ स चउ पल्ल तेसट्ठ।
थावर चउ इग विगलाय–,वेसु पणसीइ सयमयरा ५६

अर्थ—तिहा तिर्यच ३, नरक ३, उद्योतनामकर्म ए ७ सात प्रकृतिनो उत्कृष्ट मनुष्यभवयुक्त पल्योपम च्यार अने एकसो तेसठ सागरोपम पर्यंत बाधे नहीं, तिहा भावना–कोइ

युगलपणे तीन पल्योपम रही सौधर्म देवलोके एक पल्यने आउखे उपनो, तिहा समकित रहीत, ते माटे ए प्रकृति ७ न बाधी तिहायी मनुष्यपणे समकित सहित विरतिपणे रही अच्युतनो २२, सागरनो आउखो बाधी देवलोक गयो, तिहायी मनुष्य, वली बारमे देवलोक, तिहायी मनुष्य, वली ३१ सागरने आउखे नवमे ग्रैवेयके, तिहायी मनुष्य, ३३ सागरने आउखे अनुत्तर विमाने, इम एकसोनेसठ १६३ सागर पल्य ४ च्यार केटलाएक मनुष्यभव अधिककालसीम ए ७ सात प्रकृति न बाधे तथा थावर ४, एकेन्द्रि जाति १ विगल ३ आतपनाम ए नव प्रकृति एकसो पच्यासी १८५ सागर पल्य ४ केटलाएक मनुष्यभव अधिककालसीम न बाधे तिहा भावना— जे छट्ठी नरकें नारकीपणे २२, सागरने आउखे समकितीपणे रही त्यांथी चवी मनुष्य थयो ते युगलीयो पल्य ३ नें आउखे, तिहायी पल्य १ ने आउखे देवता, तिहायी मनुष्य, तिहायी अच्युत, एम एकातरे ३ वार मनुष्य ३ वार अच्युते जइ मनुष्य थइ ३१ सागरने आउखे नवमग्रैवेयके जाय तिहायी मनुष्य थइ ३३ सागरने आउखे विजयादिविमाने, तिहायी मनुष्य थइ ३३ सागरने आउखे विजयादिविमाने जाय इम सर्वे भवें १८५ एकसो पच्यासी सागर, पल्य ४ नरभव अधिककाल सीम ए नव प्रकृति जाणवी ॥ ५६ ॥

अपढमसघयणागिइ, खगई अण मिच्छ दुभगथीण तिग ।
नियनपु इत्थि दुतीस, पर्णिदिसु अबंध ठिइ परमा ५७

अर्थ—पेहेला सघयण विना पाच सघयण, पेहेला सस्थान

विना पाच सस्थान, अशुभविहायोगति १, अनतानुनधी ४, मिथ्यात्वमोहिनी १, दुर्भग ३, थीणद्धी ३, नीचगोन १, नपुसकवेद १, स्त्रीवेद १, ए पचीस प्रकृति १३२ सागर, पल्य ४ नरभव अधिककालसीम न बाधे तिहा कोइक युगलिओ पल्य ३ आयुवाळो ते देवता पल्य १ ने आउखे उपजे, ते मनुष्य थइ तीनवार बारमे देवलोकें २२ सागरने आउखे जाय, ए ६६ सागर थाय, वळी मनुष्यभव करी विजयादिविमाने जाय इम सर्व भवे एकसोबत्रीस सागर पल्य ४ मनुष्यभव प्रमाण अधिककाल थाय ए सर्व पचेन्द्रीपणे रहे ते जीवने ए प्रकृति ४१ नी अनव स्थिति परमा—उत्कृष्टी कही जघन्यें सर्वनो अबधकाल एक समय १ नो छे, शेष प्रकृतिनो उत्कृष्ट काल गवेख्यो नथी ते नीयमित नथी ते माटे इम धारवो ॥५७॥

विजयाइसुगेविज्जे, तमाइ दहिसय दुतीस तेसट्ठ ।
पणसीइ सयय वधो, पल्लतिगं सुरविउव्वि दुगे ॥५८॥

अर्थ—विजयाइसु—बे भवे विजयादिविमानननी, आदि शब्दथी तीन भव अच्युतना भेळा करीये तो १३२ सागर कालमान थाय, ते बारमाना ३ भव कर्या पछी १ भव नवमा ग्रैवेयकनो थाय तो एकसोत्रेसठ सागरनो मान थाय, अथवा तमाइ—तमा ६ छट्ठी नरकथी आदि भव माडी अच्युतना ३ भव, ग्रैवेयकनो १ भव विजयादिकना बे भव, इम गवेखायतो १८५ एकसोपच्यासी सागरमान काल थाय ए रीते सर्व भावज्यो हवे ७३ अध्रुवबधीनो सतत—निरतर बधकालनो मान कहे छे—तिहा सुर—देवदुग, वैक्रियदुग, ए ४ प्रकृतिनो पल्य ३ तीन सीम निरतर बंधाये, जे ३ पल्यने

आउखे युगलिया तेहने बीजी गति आवो नथी ते माटे निरंतर ए ४ प्रकृति बांधे ॥ ५८ ॥

समयादसंखकाल, तिरिदुगनीएसुआउअंतमुहू।
उरलि असंखपरट्टा, सायट्टिठइ पूवकोडूणा ॥५९॥

अर्थ—**समया**–जघन्ये १ समय उत्कृष्ट असंख्यातोकाल, तिरिदुग २, नीचगोत्र, ए ३ तीन प्रकृति निरंतर बंधाय, जे कारणे सातमी नरकनो नारकी ३३ सागर सीम ए प्रकृति निरंतर बांधे, जे मिथ्यात्वी होय तेहने बीजी गति, उच्चगोत्रनो बंध नथी, आउखो जघन्ये तथा उत्कृष्टे अंतर्मुहूर्त्त सीम निरंतर बांधे, जघन्य मुहूर्त्तथी उत्कृष्ट मुहूर्त्त मोटो जाणवो, औदारिक शरीर, असंख्याता पुद्गलपरावर्त्त सुधी निरंतर बांधे, सूक्ष्म, बादर, निगोद, प्रत्येक, एकेन्द्रि मळीने गवेखी जोज्यो जासीम (ज्यां सुधी) वेदनीयनो बंध तासीम अंतर्मुहूर्त्तथी अधिककाल ए बे माहेली प्रकृति बंधाय नहीं परावर्त्तन छे ते माटे, सातावेदनी देशेऊणी पूर्वकोडि सीम निरंतर बांधे ए सयोगी केवळी गुणठाणानी अपेक्षाए छे ॥ ५९ ॥

जलहिसय पणसीय, परघुस्सासे पणिंदितसचउगे।
बत्तीस सुहविहगइ, पुम सुभगतिगुच्च चउरंसे ॥६०॥

अर्थ—पूर्व रीते १८५ एकसोपच्यासी सागर, पल्य ४ नरभव अधिक कालमान सीम, पराघात, उश्वासनाम, पचेन्द्रि जाति, त्रसच्यार ४, (त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक) एम ए ७ प्रकृति निरंतर बंधाये तथा आगळ कहेशे ते प्रकृति एकसोबत्रीस कालमान निरंतर बांधे १३२ सागरोपम पूर्वोक्त रीते

निरतर बाघे शुभविहायोगति १, पुरुषवेद १, सुभगत्रिक ३, उच्चगोत्र १, समचौरस १ ॥ ६० ॥

असुहखगइ जाइ आगिइ, सघयणाहारनिरयुजोयदुगं।
थिरसुभजसथावरदस, नवुइत्थीदुजुअलमसाय ॥६१॥

अर्थ—अशुभविहायोगति १, एकेन्द्रि, विकलत्रिक, ए जाति ४ अशुभ सस्थान पाच, अशुभ सघयण पाच, आहारकद्विक, नरकद्विक, २ उद्योत, आतप, २, स्थिरनाम १, शुभनाम १, जसनाम १, थावरदसक १०, नपुसकवेद १, स्त्रीवेद १, दुजुयल—हास्य, रति, २ अरति, शोक, २ ए ४ असातावेदनीय १ ॥६१॥

समयादतमुहुत्त, मणुदुगजिणवइरउरलुवगेसु,
तेत्तीसयरा परमो, अतमुहू लहु वि आउ जिणे ॥६२॥

अर्थ—ए सुडताळ स (टबामा ४१ लखी छे) प्रकृति जघन्य एक समय बाघे, उत्कृष्ट अतर्मुहूर्तमान काल बाघे, मनुष्य दुग—मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी २, जिननाम १, वज्र-ऋषभनाराच सघयण १, औदारिक उपाग १, ए पाच प्रकृति तेत्रीस सागरोपम सीम निरतर बाघे, समकिती सर्वार्थसिद्ध विमाने रह्यो निरन्तर बाघे ते अपेक्षाए उत्कृष्ट काल जाणवो, जघन्य बधकाल, आउखा ४, जिननाम १, ए पाच प्रकृति, जघन्य पण एक अतर्मुहूर्त कालमान जाणवो शेष प्रकृति ६८ नो जघन्य बधकाल एक समय जाणवो ॥ ६२ ॥

ए स्थितिबध अधिकार पूरो थयो हवे रसबध अधिकार कहे छे इति सततबध द्वा० १८

तिव्वो असुहसुहाण, संकेसविसोहिओविवज्जयओ। मंदरसो गिरि महिरय, जलरेहा सरिसकसाएहिं॥६३॥

अर्थ—तिव्वो–तिव्र उत्कृष्टे अशुभनो तीव्ररस संक्लेश परिणामे बाधे, शुभनो तीव्ररस विशुद्ध परिणामे बाधे, विपर्ययपणे मदरस बाधे, जिहा अशुभनो तीव्ररस बाधे तिहा शुभनो मदरस बाधे, जिहा शुभनो तीव्र बाधे तिहा अशुभनो मदरस बाधे, इहा दृष्टात जे अनतानुबधि कषाय गिरिरेखा समान तेथी चोठाणीयो रस, तथा अप्रत्याख्यान कषाय महीरेखा समान एथी त्रिठाणीयो रस, प्रत्याख्यानी रजरेखा समान एथी बेठाणीयो रस, सज्वलनो जलरेखा समान तेथी एकठाणीयो रस जाणवो ए दृष्टान्ते जाणवो ॥ ६३ ॥

चउठाणाई असुहो, सुहन्नहा विग्घ देसघाइआवरणा। पुम सजलणिग दुति-चउट्ठाणरसासेस दुगमाई६४

अर्थ—चउट्ठाणी–चोठाणीयादि (प्रमुख) रस अशुभनो तेथी अन्यथा बीजी रीते शुभ, एटले जिहा अशुभनो चोठाणीयो तिहा शुभनो बेठाणीयो, जिहा अशुभनो त्रिठाणीयो तिहा शुभनो बेठाणीयो, जिहा अशुभनो बेठाणीयो तिहा शुभनो त्रिठाणीयो, जिहा अशुभनो एकठाणीयो तिहा शुभनो चोठाणीयो एग भाववु

तिहा विग्घ–पाच अतराय, तथा देशघाती आवरण ज्ञानावरणी ४, दर्शनावरणी ३, ए सात, पुरुषवेद १, सजलणाकषाय ४ ए १७ प्रकृति तेनो एकठाणियो रस बाधे, तथा बेठाणीयो बाधे, तथा त्रिठाणीयो बाधे, चोठाणीयो बाधे,

शेष—बाकी रही जे १०३ प्रकृति, तेहनो दुगमाइ—बे ठाणीयो, तिठाणीयो, चोठाणीयो, ए ३ जातिनो रस बांधे ॥ ६४ ॥

निंवुइच्छुरसो सहजो, दु तिचउ भाग कढिइक्क भागतो ।
इगठाणाई असुहो, असुहाण सुहो सुहाणं तु ॥६५॥

अर्थ—अशुभ प्रकृतिनो रस लींबडाना रससमान जाणवो तथा शुभ प्रकृतिनो रस इक्षु सेलडीना रससमान जाणवो, तिहा सहज मूलगो रस ते इकठाणीयो जाणवो, ते मध्ये बे भाग कढीय—उकाळ्यो एटले अर्द्ध उकाळ्यो, अर्द्ध रह्यो ते बेठाणीयो रस जाणवो तथा तिठाणीयो रस ते तीन भाग कढी उकाळ्यो ने १ भाग रह्यो ते तिठाणीयो रस, अने चउभाग—जे मध्ये च्यार ४ भाग उकाळ्यो अने एक भाग रह्यो ते चोठाणीयो रस जाणवो, ए अशुभ कर्मनो जेम रस वधे तेम अशुभ थाय, शुभ कर्मनो रस शुभ थाय, ए सर्व अशुभ कषाये अशुभ रस बांधे, शुभ कषाये शुभ रस बांधे ॥ ६५ ॥

तिव्वमिग थावरायव, सुरमिच्छा विगल सुहुम निरयतिग ।
तिरि मणुआउ तिरि नरा, तिरि दुग छेवट्ठ सुरनिरया ॥ ६६ ॥

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसबंध स्वामी कहे छे—तीव्र उत्कृष्टो रस एकेन्द्री जाति १, थावर नाम १, आतप नाम, ए तीन

तिव्वो असुहसुहाण, सकेसविसोहिओविवज्जयओ ।
मदरसो गिरि महिरय, जलरेहा सरिसकसाएहि॥६३॥

अर्थ—तिव्वो-तिव्र उत्कृष्टो अशुभनो तीव्ररस सक्लेश परिणामे बाधे, शुभनो तीव्ररस विशुद्ध परिणामे बाधे, विपर्ययपणे मदरस बाधे, जिहा अशुभनो तीव्ररस बाधे तिहा शुभनो मदरस बाधे, जिहा शुभनो तीव्र बाधे तिहा अशुभनो मदरस बाधे, इहा दृष्टात जे अनतानुबधि कषाय गिरिरेखा समान तेथी चोठाणीयो रस, तथा अप्रत्याख्यान कषाय महीरेखा समान एथी त्रिठाणीयो रस, प्रत्याख्यानी रजरेखा समान एथी बेठाणीयो रस, सज्वलनो जलरेखा समान तेथी एकठाणीयो रस जाणवो ए दृष्टान्ते जाणवो ॥ ६३ ॥

चउठाणाई असुहो, सुहन्नहा विग्घ देसघाइआवरणा।
पुम सजलणिग दुति-चउट्ठाणरसासेस दुगमाई ६४

अर्थ—चउट्ठाणी—चोठाणीयादि (प्रमुख) रस अशुभनो तेथी अन्यथा बीजी रीते शुभ, एटले जिहा अशुभनो चोठाणीयो तिहा शुभनो बेठाणीयो, जिहा अशुभनो त्रिठाणीयो तिहा शुभनो बेठाणीयो, जिहा अशुभनो बेठाणीयो तिहा शुभनो त्रिठाणीयो, जिहा अशुभनो एकठाणीयो तिहा शुभनो चोठाणीयो एम भाववु

तिहा विग्घ—पाच अतराय, तथा देशघाती आवरण ज्ञानावरणी ४, दर्शनावरणी ३, ए सात, पुरुषवेद १, सजलणा-कषाय ४ ए १७ प्रकृति तेनो एकठाणियो रस बाधे, तथा बेठाणीयो बाधे, तथा त्रिठाणीयो बाधें, चोठाणीयो बाधे,

शेष–बाकी रही जे १०३ प्रकृति, तेहनो दुगमाइ–वे ठाणीयो, तिठाणीयो, चोठाणीयो, ए ३ जातिनो रस बांधे ॥ ६४ ॥

निंबुइच्छुरसो सहजो, दु तिचउ भाग कढिइक्क भागतो ।
इगठाणाई असुहो, असुहाण सुहो सुहाणं तु ॥६५॥

अर्थ—अशुभ प्रकृतिनो रस लींबडाना रससमान जाणवो तथा शुभ प्रकृतिनो रस इक्षु सेलडीना रससमान जाणवो, तिहा सहज मूलगो रस ते इकठाणीयो जाणवो, ते मध्ये बे भाग कढीय–उकाळ्यो एटले अर्द्ध उकाळ्यो, अर्द्ध रह्यो ते बेठाणीयो रस जाणवो तथा तिठाणीयो रस ते तीन भाग कढी उकाळ्यो ने १ भाग रह्यो ते तिठाणीयो रस, अने चउभाग–जे मध्ये च्यार ४ भाग उकाळ्यो अने एक भाग रह्यो ते चोठाणीयो रस जाणवो, ए अशुभ कर्मनो जेम रस वधे तेम अशुभ थाय, शुभ कर्मनो रस शुभ थाय, ए सर्व अशुभ कषाये अशुभ रस बांधे, शुभ कषाये शुभ रस बांधे ॥ ६५ ॥

तिव्वमिग थावरायव, सुरमिच्छा विगल सुहुम निरयतिग ।
तिरि मणुआउ तिरि नरा, तिरि दुग छेवट्ठ सुरनिरया ॥ ६६ ॥

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसबंध स्वामी कहे छे–तीव्र उत्कृष्टो रस एकेन्द्री जाति १, थावर नाम १, आतप नाम, ए तीन

प्रकृतिनो सुरमिच्छा–मिथ्यात्वी देवता उत्कृष्ट रस बांधे, तथा विगल ३, सूक्ष्म २, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण ए ३, नरकगति १, नरकानुपूर्वी २, नरकायु ३, ए नरकत्रिक तथा तिरिआयु १, मनुष्यायु १, ए ११ प्रकृतिनो उत्कृष्टो रस तिर्यंच तथा मनुष्य मिथ्यात्वी बांधे, तथा तिर्यंच दुग–तिर्यंच गति १, तिर्यंचानुपूर्वी ए बे अने छेवठो संघयण ए ३ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस देवता, नारकी मिथ्यात्वी बांधे ॥ ६६ ॥

विउवि सुराहारग दुग, सुखगइ वन्न चउ तेय जिण साय
समचउपरघा तसदस, पणिंदि सासुच्च खवगा उ ॥६७

अर्थ—वैक्रिय दुग–वैक्रिय शरीर १, वैक्रिय उपांग २, देवद्रिक २, आहारकद्विक २, शुभ विहायोगति १, वर्णादि ४, तैजस शरीर १, कार्मण १, अगुरुलघु १, निर्माण १, जिननाम १, सातावेदनीय १, समचौरस संस्थान १, पराघात १, त्रसनो दशको १०, पचेन्द्री जाति १, श्वासोश्वास १, उच्चगोत्र १, ए बत्रीस ३२ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस खवगाउ–क्षपकश्रेणिमा बांधे तिहां साता वेदनीय १, उच्चगोत्र १, यशनाम १, ए ३ तीन प्रकृतिनो सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे उत्कृष्ट रस बांधे, शेष २९ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस अपूर्वकरण गुणठाणे बांधे ॥ ६७

तमतमगा उज्जोय, सम्मसुरा मणुय उरलदुग वइर।
अपमत्तो अमराउ, चउगइमिच्छा उ सेसाण ॥६८॥

अर्थ उद्योतनामकर्मनो उत्कृष्ट रस तमतमगा–तमतमा नरकना नारकी बांधे, मनुष्यदुग २, औदारिकदुग २, वज्रऋषभनाराचसंघयण १, ए पांच प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस सम-

किती सुरा-देवता उत्कृष्ट रस बाधे, तथा अमराउ-देवतानो आउखो उत्कृष्टरसे अप्रमत्त गुणठाणे बाधे, शेष ६४ प्रकृतिनो उत्कृष्ट रस च्यार ४ गतिना मिथ्यात्वी तीव्रकषायी बाधे ए उत्कृष्ट रसना स्वामी कह्या ॥ ६८ ॥

थीणतिग अण मिच्छ, मदरस संजमुम्मुहो मिच्छो।
वियतियकसाय अविरय, देसपमत्तो अरइ सोए॥६९॥

अर्थ—हवे जघन्य रसना स्वामी कहे छे—थिणद्धी तीन निद्रानिद्रा १, प्रचलाप्रचला २, थिणद्धी ३, ए तीन, अनतानुबधी ४, मिथ्यात्वमोहनी १, ए आठ प्रकृति मदरसे सयमने सन्मुख मिथ्यात्वी बाधे, एह प्रकृतिना बधकमे विशुद्ध परिणामी एहिज जीव छे, वियकषाय-बीजो कषाय अविरय-अविरति समकीती बाधे, त्रीजो कषाय जघन्य रसे देशविरति बाधे, अरति, शोक, ए बे प्रकृति प्रमत्त गुणठाणे मुनि जघन्यरसे बाधे ॥ ६९ ॥

अपमाइ हारगदुग, दुनिद्द असुवन्न हास रइ कुच्छा।
भयमुवघायमपुव्वो, अनियट्टी पुरिससजलणे॥७०॥

अर्थ—अप्रमत्त गुणठाणाना आदि समये आहारकदुग जघन्यरसे बाधे, बे निद्रा, निद्रा १, तथा प्रचला २, अशुभवर्णादि ४, हास्य, रति, दुगछा, भय, उपघात, ए इग्यार ११ प्रकृतिनो अपूर्वकरण गुणठाणे जघन्यरस बाधे, पुरुषवेद, सजलणा ४, ए पाच प्रकृति अनिवृत्तिबादर गुणठाणे जघन्यरसे बाधे ॥ ७० ॥

विग्घावरणे सुहुमो, मणुतिरिआ सुहुम विगलतिगआऊ
वेउवि छक्कममरा, निरया उज्जोय उरलदुग ॥ ७१ ॥

अर्थ—विग्ध—अतराय पाच, आवरण—ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी ४, ए ९, एम नवी मळी १४, चौद प्रकृतिनो **सुहुमो**—सूक्ष्मसपराय गुणठाणे जघन्य रस बांधे, तथा सूक्ष्मत्रिक ३, विकलत्रिक ३, आउखा ४, वैक्रियषट्क—देवद्विक २, नरकद्विक २, वैक्रियद्विक २, ए ६, ७ मळी सर्व १६, प्रकृति **मणुतिरिय**—मनुष्य ने तिर्यंच जघन्यरसे बाधे, उद्योतनाम, औदारिक २, अमरा—देवता निरया—नारकी जघन्य रसे बाधे॥७१

तिरिदुग निय तमतमा, जिण मविरय निरयविणिग थावरय ।
आसुहु मायव सम्मो, वसाय थिर सुह जसा सियरा७२

अर्थ—तिर्यंचद्विक २, नीचगोत्र १, ए ३ प्रकृतिनो जघन्य रस तमतमानारक ७ मीना नारकी बाधे जिननामकर्मनो जघन्य रस अविरति समकिती बाधे, एकेन्द्री जाति थावरनामकर्म, नरकगतिविना तीन गतिना जीव जघन्य रसे बाधे, आतपनामकर्म आसुहुमा—सौधर्म देवलोक पर्यतना देवता, जघन्य रसे बाधे, सौधर्म कहेवाथी इशान पिण ग्रहवो, **सम्मोवसाय**—सातावेदनी १, थिरनाम १, शुभनाम १, जश १, ए ४, प्रकृति समकिती पडतो जघन्यरसे बाधे सियरा—एहथी इतर असाता, अथिर, अशुभ, अजश, ए ४, प्रकृति समकिती चढतो होय त्यारे जघन्यरसे बाधे ॥ ७२ ॥

तस वन्न तेअ चउ मणु,खगइ दुग पणिंदि सास परघुच्चं।
सघयणा गिइ नपु थी, सुभगिअर ति मिच्छचउ गइआ ॥७३॥

अर्थ—त्रस, बादर, प्रत्येक, ए ४, तथा वर्णादि ४, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ४ मणुअदुग–मनुष्यद्विक २, खगईदुग–शुभ, तथा अशुभविहायोगति, पचेन्द्रीजाति, श्वासोश्वास, पराघात, उच्चैर्गोत्र, सघयण ६, सस्थान ६, नपुसकवेद १, स्त्रीवेद १, सुभगत्रिक ३, इअर–दुर्भगत्रिक ३, एव ४० चाळीस प्रकृति मिच्छ–मिथ्यात्वी च्यार गतिना जघन्य रसे बाधे इहा भावना कहीये छीये–शुभ प्रकृति जिहा प्रथमथी बधाय तिहा उत्कृष्टरसे बाधे, अने अशुभप्रकृति प्रथम बधाये तिहा उत्कृष्टरसे बाधे अने जिहा खपे तिहा जघन्यरसे बाधे, ए रीते विचारवो. ॥ ७३ ॥

चउ तेय वन्न वेअणि, अनामणुक्कोस सेस धुवबधी ।
घाईण अजहन्नो, गोए दुविहो इमो चउहा ॥७४॥

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसबधना भागा कहे छे–चउतेय तैजस च्यार ४ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ए ४, तथा वर्णादि ४, च्यार ४, वेदनीय शब्दे साता वेदनीय, नास कहेता जसनाम अणुक्कोस–अनुत्कृष्ट बाघेतो चउहा–च्यारभेदे–सादि १, अनादि २, ध्रुव ३, अध्रुव ४, ए च्यार भेदे बाधे तिहा ए प्रकृतिनो उत्कृष्टरस क्षपकश्रेणि ए चढतो जीव बाधे, तथा बीजा जीव सर्व अनुत्कृष्टरस बाधे, ते अभव्यने अनादि ध्रुव छे भव्यने घोलना परिणामे सादि छे,

विग्घावरणे सुहुमो, मणुतिरिआ सुहुम विगलतिगआऊ
वेउवि छक्कममरा, निरया उज्जोय उरलदुग ॥ ७१ ॥

अर्थ—विग्ध—अतराय पाच, आवरण—ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी ४, ए ९, एम नवी मळी १४, चौद प्रकृतिनो सुहुमो—सूक्ष्मसपराय गुणठाणे जघन्य रस बाधे, तथा सूक्ष्मत्रिक ३, विकलत्रिक ३, आउखा ४, वैक्रियषट्क—देवद्रिक २, नरकद्रिक २, वैक्रियद्रिक २, ए ६, ए मळी सर्व १६, प्रकृति मणुतिरिय—मनुष्य ने तिर्यच जघन्यरसे बाधे, उद्योतनाम, औदारिक २, अमरा—देवता निरया—नारकी जघन्य रसे बाधे॥७१

तिरिदुग निय तमतमा, जिण मविरय निरयविणिग
थावरय ।
आसुहु मायव सम्मो, वसाय थिर सुह जसा सियरा७२

अर्थ—तिर्यचद्रिक २, नीचगोत्र १, ए ३ प्रकृतिनो जघन्य रस तमतमानारक ७ मीना नारकी बाधे जिननामकर्मनो जघन्य रस अविरति समकिती बाधे, एकेन्द्री जाति थावरनामकर्म, नरकगतिविना तीन गतिना जीव जघन्य रसे बाधे, आतपनामकर्म आसुहुना—सौधर्म देवलोक पर्यंतना देवता, जघन्य रसे बाधे, सौधर्म कहेवाथी इशान पिण ग्रहवो, सम्मोवसाय—सातावेदनी १, थिरनाम १, शुभनाम १, जश १, ए ४, प्रकृति समकिती पडतो जघन्यरसे बाधे सियरा—एहथी इतर असाता, अथिर, अशुभ, अजश, ए ४, प्रकृति समकिती चढतो होय त्यारे जघन्यरसे बाधे ॥ ७२ ॥

**तस वन्न तेअ चउ मणु,खगइ दुग पणिंदि सास परधुचं।
सघयणा गिइ नपु थी, सुभगिअर ति मिच्छचउ
गइआ ॥७३॥**

अर्थ—त्रस, बादर, प्रत्येक, ए ४, तथा वर्णादि ४, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ४ मणुअदुग—मनुष्यद्विक २, खगईदुग—शुभ, तथा अशुभविहायोगति, पचेन्द्रीनीजाति, श्वासोश्वास, पराघात, उच्चेर्गोत्र, सघयण ६, सस्थान ६, नपुसकवेद १, स्त्रीवेद १, सुभगत्रिक ३, इअर—दुर्भगत्रिक ३, एव ४० चालीस प्रकृति मिच्छ—मिथ्यात्वी च्यार गतिना जघन्य रसे बाधे इहा भावना कहीये छीये—शुभ प्रकृति जिहा प्रथमथी बधाय तिहा उत्कृष्टरसे बाधे, अने अशुभप्रकृति प्रथम बधाये तिहा उत्कृष्टरसे बाधे अने जिहा खपे तिहा जघन्यरसे बाधे, ए रीते विचारवो. ॥ ७३ ॥

**चउ तेय वन्न वेअणि, अनामणुक्कोस सेस धुवबधी।
घाईण अजहन्नो, गोए दुविहो इमो चउहा ॥७४॥**

अर्थ—हवे उत्कृष्ट रसबधना भागा कहे छे—चउतेय तैजस च्यार ४ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण, ए ४, तथा वर्णादि ४, च्यार ४, वेदनीय शब्दे साता वेदनीय, नाम कहेता जसनाम अणुक्कोस—अनुत्कृष्ट बाधेतो चउहा—च्यारभेदे—सादि १, अनादि २, ध्रुव ३, अध्रुव ४, ए च्यार भेदे बाधे तिहा ए प्रकृतिनो उत्कृष्टरस क्षपकश्रेणि ए चढतो जीव बाधे, तथा बीजा जीव सर्वे अनुत्कृष्टरस बाधे, ते अभव्यने अनादि ध्रुव छे भव्यने घोलना परिणामे सादि छे,

अने अनव थशे ते माटे अध्रुव छे, ने घाती ध्रुवबधी जे १९ ओगणीस अने मोहनी पाच, ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी ९, अतराय पाच ए ३० नो, अजघन्यरस ४, च्यारेभेदे नवाय, इहा पण जघन्यथी बीजो ते सर्व अजघन्य, ते ए ३८ प्रकृतिनो जघन्य बध जिवारे प्रकृतिनो नव टळे तेहथी प्रथम समये छे, तेतो एक समये बध छे, तेहथी पेहेला अजघन्यरस बध छे, ते अभव्यने अनादि ध्रुव छे, भव्यने घोलना परिणामे सादि छे, अने अनव थये अध्रुव छे, तथा गोत्रकर्ममध्ये उच्चगोत्रनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, पूर्वेनीपेरे जाणवो, नीचगोत्र अजघन्यरसे सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, ए च्यार ४ भेदे छे, घातीनीपेरे भावना करवी तथा इहा पयडीने आशये अर्थ लिखीये छीये–जे वेदनीय नामकर्म ए मूळकर्मनी अपेक्षाये अनुत्कृष्ट रस च्यार ४, प्रकारे कहेवो पण–उत्तर प्रकृतिमा वर्णादि ४, तेजस च्यार ४, ए आठनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, कहेवो, ध्रुवबधी छे ते माटे पण जशनाम सातावेदनीयना कोईभागे च्यार ४, प्रकार न कहेवा अध्रुव बधी छे ते माटे बे सादि, अध्रुवपणोज पामीये, इम गोत्रकर्मनो पिण मूळकर्मनी अपेक्षाये च्यार ४, भेद कहेवा पिण उच्चगोत्र, नीचगोत्र, ए बे अध्रुव बधी छे ते माटे सादि अध्रुव बे भेदे पामीये इम जाणवो, एटले सात मूळकर्ममा च्यार भेद कह्या इम जाणज्यो ॥७४॥

सेसम्मि दुहा (अनुभाग बधो समत्तो) इग दुग,
णुगाइजाअभवणत गुणिआणू ।
खधा उरलोचिअवग्गणाउ, तह अगहणतरिया ॥७५

अर्थ—सेसम्मि–तैजसादि १०, प्रकृतिनो उत्कृष्ट, जघन्य, ए तीन ३, भागे रस बाधे, ते दुहा सादि, अध्रुव, ए बे भेदे बाधे, जे एहनो बधकाल अल्प छे ते माटे, तथा घाती ३८ नो उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्यरस, सादि, अध्रुव बे भेदे बधाये तथा उच्चगोत्रनो, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्यरस सादि अध्रुव बे प्रकारे बधाय छे, तथा नीचगोत्रनो उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट, जघन्य ए तीन भागे रस बाधे ते सादि अध्रुव बाधे तथा शेष प्रकृति ७२ नो जघन्य, अजघन्य, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट ए च्यारे ४, प्रकारनोरस ते सादि, अध्रुवभेदे बाधे, इहा पयडीने आशये शेषप्रकृति ७४ ग्रहे छे, गोत्रनी प्रकृति पिण अध्रुव बधी छे ते माटे तथा उपघात १, ध्रुवबधी छे, पर ए प्रकृतित्रने ध्रुवबधी छे ते माटे ए अनुभाग रसबधनो अधिकार कह्यो

हवे प्रदेशबध अधिकार कहे छे–तिहा प्रथम वर्गणानु स्वरुप कहे छे–इग–एकपरमाणु दुग–बे परमाणुआनो स्कध, इम त्र्यणुक, इम सख्याताणुक, असख्याताणुक, अनतापरमाणु मिले ते अभव्यथी अनतगुणा मिले जे खध नीपजे तिवारे उरलोचिअ–औदारिकने उचित कहेता ग्रहेवा योग्य वर्गणा जघन्य थाय, तह–तिमहीज अतरित–एथी पाछली ते सर्व अग्रहण जाणवी ए औदारिक वर्गणा बादर वीसगुणी छे ॥ ७५ ॥

एमेव विउव्वा हार, तेय भासा णुपाण मण कम्मे ।
सुहुमा कमावगाहो, ऊणूणगुल असखसो ॥७६॥

अर्थ—एमेव–इमही विउव्व–वैक्रिय वर्गणा, बीजी २, अने त्रीजी आहारक वर्गणा ३, तैजस वर्गणा ४, भाषावर्गणा

अने अनध थशे ते माटे अध्रुव छे, ने घाती ध्रुवबंधी जे १९ ओगणीस अने मोहनी पाच, ज्ञानावरणी पाच, दर्शनावरणी ९, अतराय पाच ए ३० नो, अजघन्यरस ४, च्यारभेदे बधाय, इहा पण जघन्ययी वीजो ते सर्व अजघन्य, ते ए ३८ प्रकृतिनो जघन्य बंध जिवारे प्रकृतिनो बंध टळे तेहथी प्रथम समये छे, तेतो एक समये बंध छे, तेहथी पेहेला अजघन्यरस बंध छे, ते अभव्यने अनादि ध्रुव छे, भव्यने घोलना परिणामे सादि छे, अने अनध थये अध्रुव छे, तथा गोत्रकर्ममध्ये उच्चगोत्रनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, पूर्वनीपेरे जाणवो, नीचगोत्र अजघन्यरसे सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, ए च्यार ४ भेदे छे, घातीनीपेरे भावना करवी तथा इहा पयडीने आशये अर्थ लिखीये छीये–जे वेदनीय नामकर्म ए मूळकर्मनी अपेक्षाये अनुत्कृष्ट रस च्यार ४, प्रकारे कहेवो पण–उत्तर प्रकृतिमा वर्णादि ४, तेजस च्यार ४, ए आठनो अनुत्कृष्टरस सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, कहेवो, ध्रुवबंधी छे ते माटे पण जशनाम सातावेदनीयना कोईभागे च्यार ४, प्रकार न कहेवा अध्रुव बंधी छे ते माटे बे सादि, अध्रुवपणोज पामीये, इम गोत्रकर्मनो पिण मूळकर्मनी अपेक्षाये च्यार ४, भेद कहेवा पिण उच्चगोत्र, नीचगोत्र, ए बे अध्रुव बंधी छे ते माटे सादि अध्रुव बे भेदे पामीये इम जाणवो, एटले सात मूळकर्ममा च्यार भेद कह्या इम जाणज्यो ॥७४॥

सेसम्मि दुहा (अनुभाग बंधो समत्तो) इग दुग, णुगाइजाअभवणत गुणिआणू ।
खधा उरलोचिअवग्गणाउ, तह अगहणतरिया ॥७५

ए ४ छे शेष ४ नथी तैजसवर्गणा किहाएक सुक्ष्म कही छे ॥ ७६ ॥

इक्किक्कहियासिद्धा–णतंसो अंतरेसु अग्गहणा।
सव्वत्थ जहन्नुचिया, नियणंतसाहिआ जिट्ठा ॥७७॥

अर्थ—जे वर्गणा मोटी थाये ते पिण सिद्धने अनंतमे भागे जेटला परमाणुआ थाये एक वर्गणाना, एम अनंती-वर्गणा जे एक समयमा अनंत प्रमाण दलिक थाय एह अनंता दलिक एक समय मध्ये जीव ग्रहण करे, ग्रहणने आंतरे विचाले ते अग्रहण जाणवी, कार्मण उत्कृष्ट थाय पिण अधिका ते अग्रहण जाणवा सर्वे जघन्य वर्गणाथी निय–पोताने अनंतमे अंशे अधिक ते उत्कृष्ट वर्गणा जाणवी ॥ ७७ ॥

अंतिम चउफास दुगंध, पंचवन्नरस कम्मखंधदलं।
सव्वजियणंतगुणरस, अणुजुत्त मणंतयपएसं ॥७८॥

अर्थ—हवे कर्मपणे जे परमाणुआ लेवराये तेहनो स्वरूप कहे छे—अंतिम छेहेला जे च्यार स्पर्श–टाढो, उन्हो, लूखो, चीकणो, तिमहीज बे गंध तथा पांच वर्ण तथा पांच रस संयुक्त सोल गुणी खंध तेहनो समूह ते कर्मपणे लेवा योग्य दल जाणवो बे दलना जे परमाणुआ तेमाहे जे रस कषाय प्रत्ययी ते सर्व जीवथी अनंतगुणो रस एक एक परमाणुमा हुवे ते अणुयुक्त–परमाणुआयुक्त अनंत प्रदेशी कहेता अनंता परमाणुआनो खंध ते कर्मपणे लेवाने योग्य जाणवो. ॥ ७८ ॥

५, श्वासोश्वासवर्गणा ६, मनोवर्गणा ७, कार्मणवर्गणा ८, ए आठवर्गणा कमा–अनुक्रमे–सूक्ष्म छे–एटले औदारिकथी वैक्रिय सूक्ष्म, भाषाथी उश्वास सूक्ष्म, उश्वासथी मन सूक्ष्म, मनथी कार्मण सूक्ष्म जाणवी, अवगाहना एक वर्गणानी अंगुलने असंख्यातमे भागे छे, एकथी बीजी वर्गणानी तेहथी ऊणी अवगाहना छे, एक एक परमाणु वधारता जे औदारिक जघन्य ग्रहणयोग्य वर्गणा तेहने अनतमे भागे जेटला परमाणुआ तेटला परमाणुआ वधे, तिवारे औदारिक उत्कृष्ट ग्रहणयोग्य वर्गणा थाय, ते वर्गणामध्ये एक परमाणु वधे ते वर्गणा औदारिकने मोटा पडे, वैक्रियादिकने न्हाना पडे ते माटे अग्रहणयोग्य जाणवी, इम ओदारिक उत्कृष्ट ग्रहणयोग्य वर्गणाथी अनतगुणा परमाणु वधे एहवो जे खध ते वैक्रीयनी जघन्य ग्रहण योग्य वर्गणा जाणवी ते वैक्रिय जघन्य ग्रहणयोग्य वर्गणा एक एक परमाणुए वधता (वधारता) जिवारे वैक्रिय जघन्य वर्गणाथी अनतमा भाग जेटला परमाणुआ वधे ते वैक्रीयने उत्कृष्ट ग्रहणयोग्य वर्गणा थाये तेहथी उपरात ते अग्रहणयोग्य जाणवी ते वैक्रीय उत्कृष्ट ग्रहण वर्गणाथी अनतगुण परमाणुआ वधे, तिवारे आहारकनी जघन्य ग्रहणयोग्य वर्गणा थाये आहारक जघन्य ग्रहणयोग्य वर्गणाथी अनतमे भागे वधे, तिवारे आहारकनी उत्कृष्ट ग्रहणयोग्य वर्गणा थाये, ते जिवारे अनतगुणी वधता सीम अग्राह्य पछी तैजसनी ग्रहण योग्य थाये,ए रीते ते कार्मणपर्यंत वर्गणा केहेवी ए मध्ये औदारिक १, वैक्रिय २, आहारक ३, तैजस ४, ए च्यारे वर्गणा बादर वीसगुणी छे, अने भाषा, उश्वास, मन, कार्मण, ४ ए च्यार वर्गणा सूक्ष्म, सोलगुणी छे, स्पर्श–रूक्ष, स्निग्ध, शीत, उष्ण,

नाम गोत्रनी स्थिति घणी ते माटे घणा दल आवे, इहा कोई पूछस्ये जे आउखार्थी नामनी स्थिति सख्यातगुणी छे तो ते सख्यातगुणो भाग का न कह्यो ? इहा उत्तर जे ए दलिक भोगवता काल वधतो लागे, आउखाना दलिक भोगवता काल थोडो लागे ते माटे, तथा सक्रम्या दल ७ मध्ये घणा छे, घणी स्थिति सीम पहोचे पर दलिक अधिका लेवे पर सख्यातगुणा न लेवे एम सर्वत्र भावज्यो ए अर्थ ॥ ८० ॥

निअजाइलद्धदलिआ–णतसो होइ सवघाईण ।
वज्झतीण विभज्जइ, सेस सेसाण पइसमयं ॥८१॥

अर्थ—हवे उत्तरप्रकृतिनो वहेचवो कहे छे तिहा निय–पोतानी जे जाति ज्ञानावरणी आदिक तेहने भाग प्रमाण लीधा जे दल तेहनो अनतमो भाग ते सर्वघातीने आवे, शेष रहे ते बाकती प्रकृतिने आवे, तिहा जे ज्ञानावरणीने भागे आव्या जे दल तेहनो अनतमो भाग अति रसवत ते केवलज्ञानावरणीपणे परिणमे, शेष रह्या जे दल ते च्यार ४ भागे मतिज्ञानावरणी प्रमुखने आवे, तथा दर्शनावरणीने ६ भागे आवे, शेष रह्यो ते चक्षुदर्शनावरणी प्रमुखने ३ भागे आवे मोहनीने जे भाग आव्यो तेहना बे भाग थाय, तेमाथी एक भागनो तेने मले तथा मोहनीनु अर्ध दल मिथ्यात्वने मळे छे, ए प्रमाणे तेमाहे जे स्थानके जेटला बधाता हुवे तेटले भागे आवे, शेष रही जे ते जेटली देशघाती बधाती हुवे तेटला भाग पडे, अतरायने सर्वघाती नथी, तिणे एहना ५ भाग पडे नामकर्मनो भाग जे काले २३ थी ३१

एगपएसागाढ, निअसव्वपएसओ गहेइ जिओ ।
थेवो आउ तदंसो, नामे गोए समो अहिओ ॥७९॥

अर्थ—एक प्रदेश अवगाह्यो जे कर्मदल तेने आत्मा सर्व प्रदेशने बले करीने ग्रहण करे, एटले एक प्रदेशे छे तो अ-सख्याते लेवराय, अने एक प्रदेशनो कर्म ले तो वीर्य चलनानो कपन सर्व प्रदेशनो थाय, ते माटे सर्व प्रदेशे ग्रहे इम कह्यो छे ते जे आकाशप्रदेशे कर्मदल ते प्रदेशे जे आत्मप्रदेश हुवे (होये) ते आत्मप्रदेशे ग्रहे, भिन्न प्रदेशी दल न ग्रहे, हवे ते जीव एक समये आठ कर्म बांधे, ते कर्मदलिकनो वेहेंचण कहे छे जे सर्वथी थोडा दल आउखाने भागे आवे, तेथी नाम कर्म तथा गोत्रकर्मने अधिका दल आवे पिण बेने माहो-माहे समान आवे ॥ ७९ ॥

विग्घावरणे मोहे, सव्वोवरिवेअणीइ जेणप्पे ।
तस्स फुडत्त न हवइ, ठिई विसेसेण सेसाण ॥८०॥

अर्थ—नाम गोत्रथी विग्घ–अतराय तथा ज्ञानावरण, दर्श-नावरणीने अधिक आवे, ए तीनने परस्पर समान आवे, एहथी मोहनीकर्मने दल अधिक आवे सर्व सात कर्मथी उपरि कहेता अधिका दल वेदनीय कर्मने आवे, जे कारणे तस्स–ते वेदनीय कर्मनो फुड–प्रगट उदयपणो थोडे पुद्गले थाय नही, जे बीजा कर्मथी वेदनीनो विपाक–व्यक्त छे, शेष जे सात कर्म तेहने जे दलनो भाग आव्यो ते स्थितिने विशेषे एटले आउखानी स्थिति थोडी तिणे सर्वथी थोडा दल आवे. तेथी

गीकेवली तेरमागुणठाणा रुप श्रेणि १०, इग्यारमी अयोगीके-वलीयें चौदमा गुणठाणारुप श्रेणि ११ ए इग्यारे श्रेणि जा-णवी ॥ ८२ ॥

गुणसेढी दलरयणा, णुसमयमुदया दसखगुणणाए।
एअगुणा पुण कमसो, असखगुण निज्जरा जीवा ॥८३॥

अर्थ—गुणसेढी—गुणश्रेणि ते दलरचना कहीये, दलनो वेहेचवो एटले दलसनवपणें हतो ते चल करी जुदा जावा योग्य करवा ते दलरचना कहीजे, तथा श्रेणिमध्ये जे दल उदय आवे ते प्रथम समयथी वीजे समये असख्यातगुणा दल उदय करे अने श्रेणि वर्त्तते जीवने ज्ञानादिकने असख्यात गुणा वधारे निरावरण थाये वळी श्रेणि चढ्यो जीव प्रतिसमयें असख्यातगुण निर्जरा करे, इम श्रेणि पेहेलीथी वीजीए अस-ख्यातगुणी निर्जरा थाय, इम सर्वश्रेणिमा जाणज्यो हवे गुण-ठाणानो अतर कहे छे—१४ चौद गुणठाणामे बारमो, तेरमो, चौदमो गुणठाणो जीव एकवार पामे, वीजीवार कोइ जीवने स्पर्शवो न पडे, तिणे तेहने अतर न कहेवाये, अने ११ गुणठाणा एक जीव अनेकवार पामे ते माटे ते इग्यार गुणठाणानो अतर कहुछु ॥ ८३ ॥

पलियासखसमुहू, सासणइअरगुणअतरहस्स।
गुरुमिच्छि वे छसट्ठी, इयरगुणे पुग्गलद्धतो ॥८४॥

अर्थ—पलियासखस—पल्योपमनो असख्यातमो भाग -सासणि—सास्वादन गुणठाणानो अतर हस्स—जघन्य आतरो छे जे कारणे सास्वादनथी मिथ्यात्वे आवेला जीवने सम्यक्-

सुधीना नवस्थानमा जेटली प्रकृतिनु नवस्थान वर्ते तेटला भाग पडे, तेमा नधन सघातनने शरीर नामकर्ममार्या भाग मले, तथा वर्णादि मूल प्रकृतिना भागमा आवेला दलिक ते पोतानी उत्तर प्रकृतिमाज वहेंचाय कारणके एक समये सर्व वर्णगन्धादि नधाय छे तथा गत्यादि पीड प्रकृतिओना भागमा आवेलु दलिक ते सर्व एकेक प्रकृतिनुज होय, कारणके एक समयमा गत्यादि एकज प्रकृति बधाय छे तथा गोत्र वेदनीयने आयुष्य ए त्रण मूलकर्मनो भाग नधातां एकेक प्रकृतिनेज मले ए सर्व वहेंचण जे समये बाधे तेज समये करे छे एटले बध-समयेज वहेंचे छे ते सर्व कार्य एक समये थाय छे

सम्म देस (दर) सव्वविरई, उअणविसजोअ दंस खवगेअ ।
मोह सम सत खवगे, खीण सजोगीअर गुणसेढी ८२

अर्थ—हवे ११ श्रेणि कहे छे–तिहा प्रथम सम्म–समकितनी श्रेणि १, बीजी देशविरतिनी श्रेणि २, त्रीजी सव्वविरइ–सर्व विरतिनी श्रेणि ३, चोथी अण–अनतानुबधी सत्तामाथी काढवा खपाववानी ते श्रेणि ४, पाचमी दस–दर्शनमोहनी ३ खपाववा रूप श्रेणि ५, तथा छट्ठी ते मोहनीनी २१ प्रकृति शमाववा रुप आठमागुणठाणाथी दसमाना अतलगें मोहशमरुप श्रेणि ६, सातमी सर्व मोह उपशमी रह्यो एहवी ११ गुणठाणा रूप श्रेणि ७, आठमी खवग–मोहनीनी २१ प्रकृति खपाववारुप आठमाथी दशमापर्यंत श्रेणि ८, नवमी सर्वमोह खप्यो ते रुप क्षीणमोह गुणठाणारुप श्रेणि ९, दशमी सयो-

समये एक केश-वालाग्र अवहारो-(काढता) योजननो कुवो खाली थये उद्धार (पल्योपम) थाय, तथा सो वरसे एक वालाग्र काढीये तो कुवो खाली थये अद्धा पल्योपम थाय, तथा एक समये योजन प्रमाण कुवानो एक आकाश प्रदेश काढीये कुवो खाली थये क्षेत्र पल्योपम थाय तिहा द्वीप समुद्रनो गिणवो ते उद्धार पल्योपमे करवो पचवीस कोटा-कोडी पल्योपमना जेटला समय थाय तेटला द्वीप समुद्र छे आउखो ते अद्धा पल्योपमे गिणवो, त्रस जीवनो मान ते क्षेत्रपल्योपमे गिणवो, जिम पल्योपमना ३ तीन भेद तिम सागरोपमना तीन भेद जाणवा ॥ ८५ ॥

हवे पुद्गल परावर्त्तनो स्वरूप कहे छे

दव्वे खित्ते काले, भावे चउह दुह वायरो सुहुमो।
होइ अणतुस्सप्पिणि, परिमाणो पुग्गलपरट्टो ॥८६॥

अर्थ—ते पुद्गल परावर्त्तनना भेद आठ छे तिहा द्रव्य पुद्गल परावर्त्तन १, क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन २, काल पुद्गल परावर्त्तन ३, भाव पुद्गल परावर्त्तन ४, ए च्यार ४ भेद ते एकेकना वे भेद छे—द्रव्य पुद्गल परावर्त्तन वादर १, द्रव्य पुद्गल परावर्त्तन सूक्ष्म २ ए वे, इम क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन वादर १, क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन सूक्ष्म २, काल पुद्गल परावर्त्तन वादर १, काल पुद्गल परावर्त्तन सूक्ष्म २, भाव पुद्गल परावर्त्तन वादर १, भाव पुद्गल परावर्त्तन सूक्ष्म २, ए आठे भेद जाणवा, वादर पुद्गल परावर्त्तन ते न्हानो छे, सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तन ते मोटो छे अनत उत्सर्प्पिणी, अवसर्प्पिणी प्रमाणे पुद्गल परावर्त्तनतु मान थाये ८६॥

त्व ने मिश्रपुज अवश्य सत्तामा होय, ते नम्रे पुजने मिथ्यात्वे प्रथम समयथी उवेल्वा माडे ते यावत् पल्योपमना असख्यातमे भागे उवेली रहे, ने ज्यासुधी ए बे पुज सत्तामा होय त्या सुधी पुन उपशम पामे नहि, ने सास्वादने पण न आवी शके, ते माटे जघन्य अतर पण पल्योपमनो असख्यातमो भाग पडे, तथा इयरगुण–बीजा जे गुणठाणा–मिथ्यात्व १, मिश्रादिक उपशान्तमोह पर्यंत नव १० गुणठाणे जघन्य अतर अतर्मुहूर्त्तनो पडे, जे कारणे ए गुणठाणे चढतो तथा पडतो पिण आवे ते माटे तथा गुरु–उत्कृष्टो अतर मिथ्यात्व गुणठाणानो बे छसट्ठी–१३२ एकसोबत्रीस सागरोपमनो उत्कृष्टो अतर पडे, जे कारणे छासठ सागर क्षयोपशम समकितपणे रहे, पछी अतर्मुहूर्त्त मिश्रपणे रही वळी छासठ सागरोपम क्षयोपशम समकितपणे रहे तिवारे मनुष्यभव साधिक १३२ सागर काल पर्यंत मिथ्यात्व स्पर्शे नही, ते मिथ्यात्वनो अतर इयर–सास्वादनादिक दश गुणठाणानो उत्कृष्ट अतर अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तकाल देश ऊणो जे एटलो काल समकीतथी पड्यो मिथ्यात्वमे रही पछी पाछो समकित पामी मोक्षे जाय ते माटे अतर कह्यो ॥ ८४ ॥

उद्धार अद्ध खित्त, पलिय तिहा समयवाससयसमए।
केस वहारो दीवो, दहि आउतसाइ परिमाण ॥८५॥

अर्थ––हवे पुद्गल परावर्त्तननो मान कहेवा माटे पल्योपमनो स्वरुप कहे छे पल्योपमना ३ त्रण भेद छे उद्धारपल्योपम १, अद्धापल्योपम २, क्षेत्रपल्योपम ३ ए पल्योपमना ३ तीन भेद छे, तिहा उद्धार पल्योपमनो मान समये

अनुक्रमे बधो लोक मरणे स्पर्शे ते आवा पाछा प्रदेशे जे मरण थाये ते न गणीये, इम सपूर्ण लोक स्पर्शे त्यारे क्षेत्रथी सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्त थाय तथा एहनो जघन्य अतर २५६, आवळीनो उत्कृष्ट अतर अनतकालनो तथा उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीने प्रथम समये जन्म पाम्यो, तेहिज वळी किहाक मरण पाम्यो, इम जे क्षेत्रे जे प्रदेशमे मरण पाम्यो, इम अनुक्रम विना जे हरकोइ स्थानकनो प्रदेश स्पर्श्यो, तिम उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीना समय मरणे स्पर्शे तिवारे कालथी बादर पुद्गल परावर्त्त थाये तेहज कोइ उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीना प्रथम समये मरे पछी जघन्ये वीस कोडाकोडी सागर जाय तिवारे वळी बीजा कालचक्रनो बीजो समय आवे तिवारे मरण पामे अथवा अनतेकाले अनतमा कालचक्रने बीजे समये मरण, वळी जघन्ये वीस कोडाकोडी सागर पछी अथवा अनताकाल पछी त्रीजे समये मरण, इम अनुक्रमे मरण करता उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीना समयो मरणे करी स्पर्शे अनुक्रमे, तिवारे कालथी सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तन थाये, इम रसबधना स्थानक जे मरणे करी जेम तेम स्पर्शे ते भावथी बादर पुद्गलपरावर्त्त थाये, तेहिज रसबधना स्थानक अनुक्रमे, मरणे स्पर्शे त्यारे भावथी सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन थाये ते भाव पुद्गल परावर्त्त कोइ जीवने थयो नथी इम आठ भेद जाणवा ॥ ८८ ॥

अप्परपयडिबधी, उक्कडजोगी अ सन्निपज्जत्तो ।
कुणइ पएसुक्कोस, जहन्नयं तस्स वच्चासे ॥ ८९ ॥

अर्थ—जे जीव अप्पयर–अल्पतर थोडी प्रकृति बाधे, उक्कडयोगी–योगे उत्कृष्ट योगी हुवे अ कहेता च शब्दे सज्ञि

उरलाइ सत्तगेण, एग जिओ मुअइ फुसिय सव्वअणु। जित्तिअ कालि स थूलो। दव्वे सुहुमो सगऽन्नयरा॥८७॥

अर्थ—हवे द्रव्य पुद्गल परावर्त्तननो मान कहे छे उरलाइ-ओदारिकादिक सात वर्गणा, आहारक विना, ते एक विना ते एक जीव सर्व पुद्गल ए ७ सात वर्गणाए फुसीय-स्पर्शीने मुइय-मूक्या जे सर्व परमाणु पिण अनुक्रमे नहीं जिवारें जे, फरसे ते तिवारे गणीये तेहनो जे काल लागे ते द्रव्यें बादर पुद्गल परावर्त्तन थाये तथा सर्व परमाणु सगन्नयरा-सात वर्गणापणे अन्यतर एक एक वर्गणापणे फरसे ते विचें बीजी वर्गणापणे फरसे ते स्पर्शना गणवी नही, इम अनुक्रमें एक एक वर्गणापणे सर्व पुद्गल फरसी मुके तिवारे द्रव्यथी सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तन थाये ॥ ८७ ॥

लोगपएसोसप्पिणि, समयाअणुभागबंधट्ठाणा य। जह तह कममरणेण, पुट्ठाखित्ताइथूलियरा ॥८८॥

अर्थ—लोकप्रदेश सर्व स्पर्शे क्षेत्रपुद्गलपरावर्त्त, उत्सर्पिणी अवसर्प्पिणीना समय स्पर्शे ते काल पुद्गल परावर्त्त, अनुभाग बधना स्थानक स्पर्शे भावपुद्गलपरावर्त्त, ते जहतह-जेम तेम स्पर्शे तो ए ३ तीने थूल-बादर पुद्गलपरावर्त्त, अनें अनुक्रमे स्पर्शे तो सूक्ष्म थाये ते देखाडे छे जे लोकना प्रदेशमा लोकना अतप्रदेशे मरण पामे, इम जेम तेम आगल पाछल करीने बधो लोक मरणे करी स्पर्शे तिवारें क्षेत्रथी थूल-बादर पुद्गलपरावर्त्तन थाये, तेहज जे लोकने अत्यप्रदेशे मरण करी वळी ते प्रदेशथी लगते प्रदेशे मरण करे ते भव गणवो, इम

अर्थ—सजलणा ४, पुरुषवेद १, ए पाच प्रकृति अनिवृत्ति गुणठाणे उत्कृष्ट प्रदेशे बाधे, शुभविहायोगति १, मनुष्यायु १, सुरत्रिक ३, सुभगत्रिक ३, वैक्रियदुग २, समचौरस सस्थान १, असातावेदनीय १, वज्रऋषभनाराच सघयण १, ए १३ प्रकृतिनो उत्कृष्ट प्रदेशबध मिथ्यात्वी बाधे अथवा समकिती बाधे ॥ ९१ ॥

निद्दा पयला दुजुअल, भयकुच्छातित्थ सम्मगो सुजई।
आहारदुग सेसा, उक्कोस पएसगा मिच्छो ॥९२॥

अर्थ—निद्रा १, प्रचला १, दुजुअल–हास्य १, रति २, अरति १, शोक २, भय १, दुगछा १, तीर्थंकर नाम १, ए नव प्रकृति समकिती उत्कृष्ट प्रदेशबधे बाधे, सुजई–जे अपूर्वकरणी अथवा अप्रमत्त, आहारक दुगनो उत्कृष्ट प्रदेशबध बाधे, शेष ६६ छासठ प्रकृतिना उत्कृष्ट प्रदेश सज्ञि मिथ्यात्वी बाधे ॥ ९२ ॥

सुमुणी दुन्नि असन्नी, नरयतिग सुराउ सुरविउवि दुगं।
सम्मो जिणे जहन्न, सुहुमनिगोआइखणि सेसा ॥९३॥

अर्थ–हवे जघन्य प्रदेशबध बाधे ते कहे छे सुमुणी–भलो मुनि अप्रमादी, दुन्नी–आहारक दुगनो जघन्यबध बाधे, असज्ञी बाधे, नरकत्रिक ३, देवत्रिक ३, वैक्रियदुग (टबामा सुराउनो अर्थ नथी लख्यो माटे देवत्रिकने ठेकाणे देवायु पछी देवद्विक अने वैक्रियद्विक, एम बेसे छे, तत्त्व बहुश्रुत जाणे) ए ६ प्रकृतिनो जघन्य प्रदेशबध असज्ञी पर्याप्तो बाधे, जिन नामनो जघन्य प्रदेशबध समकिती बाधे, शेषा–शेष १०९

पर्याप्तो कुणई-करे, प्रदेशबंध उत्कृष्टपणे बांधे, एटले थोडी प्रकृति बांधे तेहने भाग थोडा उत्कृष्ट योगबलथकी प्रदेश लेवे, घणा ते माटे, उत्कृष्टयोग वाला जे जीव ते अने अतिशये अल्प प्रकृति बंध करे, जहन्नयं-तेहथी विपर्यासे जघन्य प्रदेश बांधे, जे प्रकृति घणी बांधतो हुवे, योग मंद हुवे, असंज्ञि पर्याप्तो हुवे ते प्रदेशबंध जघन्य बांधे इम भावनो ॥८९॥

मिच्छ अजय चउ आऊ, वि ति गुणविणु मोहि सत्त मिच्छाइ ।

छण्ह सतरस सुहुमो, अजया देसा वि ति कसाए॥९०॥

अर्थ—हवे प्रदेसबंध उत्कृष्टना स्वामी कहे छे-मिथ्यात्व गुणठाणे अजयचउ-चोथा गुणठाणाथी मांडी ४ च्यार गुणठाणा एटले मिथ्यात्व १, अविरति १, देशविरति १, प्रमत्त १, अप्रमत्त १, ए पांच गुणठाणे आउखा कर्मनो उत्कृष्ट प्रदेश बांधे, बीजा त्रीजा गुणठाणाविना मिथ्यात्व १, अविरति १, देशविरति १, प्रमत्त १, अप्रमत्त १, अपूर्व १, अनिवृत्ति १, ए ७ सात गुणठाणे मोहनीकर्मना उत्कृष्ट प्रदेश बांधे मूल कर्म छनो, तथा उत्तर प्रकृति ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणी ४ च्यार, अंतराय पांच, सातावेदनी १, उच्चगोत्र १, यशनाम १, ए १७ सत्तर प्रकृतिनो उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्म संपराय गुणठाणे बांधे, तथा अविरति गुणठाणे बीजी चोकडीनो उत्कृष्ट प्रदेश बांधे, देशविरतित्रीजी चोकडीनो उत्कृष्ट प्रदेश बांधे ॥ ९० ॥

पणअनिअट्टी सुखगइ, नराउ सुर सुभगतिग विउविदुग

समचउरस मसाय, वइर मिच्छो व सम्मो वा ॥९१॥

अर्थ—सजलणा ४, पुरुषवेद १, ए पाच प्रकृति अनिवृत्ति गुणठाणे उत्कृष्ट प्रदेशे बाधे, शुभविहायोगति १, मनुष्यायु १, सुरत्रिक ३, सुभगत्रिक ३, वैक्रियदुग २, समचौरस सस्थान १, असातावेदनीय १, वज्रऋषभनाराच सघयण १, ए १३ प्रकृतिनो उत्कृष्ट प्रदेशबध मिथ्यात्वी बाधे अथवा समकिती बाधे ॥ ९१ ॥

निद्दा पयला दुजुअल, भयकुच्छातित्थ समगो सुजई। आहारदुग सेसा, उक्कोस पएसगा मिच्छो ॥९२॥

अर्थ—निद्रा १, प्रचला १, दुजुअल–हास्य १, रति २, अरति १, शोक २, भय १, दुगछा १, तीर्थंकर नाम १, ए नव प्रकृति समकिती उत्कृष्ट प्रदेशबधे बाधे, सुजई–जे अपूर्वकरणी अथवा अप्रमत्त, आहारक दुगनो उत्कृष्ट प्रदेशबध बाधे, शेष ६६ छासठ प्रकृतिना उत्कृष्ट प्रदेश सज्ञि मिथ्यात्वी बाधे ॥ ९२ ॥

सुमुणी दुन्नि असन्नी, नरयतिग सुराउ सुरविउवि दुगं। सम्मो जिणे जहन्न, सुहुमनिगोआइखणि सेसा ॥९३॥

अर्थ–हवे जघन्य प्रदेशबध बाधे ते कहे छे सुमुणी–भली मुनि अप्रमादी, दुन्नी–आहारक दुगनो जघन्यबध बाधे, असज्ञी बाधे, नरकत्रिक ३, देवत्रिक ३, वैक्रियदुग (टबामा सुराउनो अर्थ नथी लख्यो माटे देवत्रिकने ठेकाणे देवायु पछी देवद्विक अने वैक्रियद्विक, एम वेसे छे, तत्त्व बहुश्रुत जाणे) ए ६ प्रकृतिनो जघन्य प्रदेशबध असज्ञी पर्याप्तो बाधे, जिन नामनो जघन्य प्रदेशबध समकिती बाधे, शेषा–शेष १०९

पर्याप्तो कुणई-करे, प्रदेशबंध उत्कृष्टपणे बांधे, एटले थोडी प्रकृति बांधे तेहने भाग थोडा उत्कृष्ट योगबलथक प्रदेश लेवे, घणा ते माटे, उत्कृष्टयोग वाला जे जीव ते अने अतिशये अल्प प्रकृति बंध करे, जघन्नयं-तेहथी विपर्यासे जघन्य प्रदेश बांधे, जे प्रकृति घणी बांधतो हुवे, योग मंद हुवे, असंज्ञि पर्याप्तो हुवे ते प्रदेशबंध जघन्य बांधे इम भावनो ॥८९॥

मिच्छ अजय चउ आऊ, वि ति गुणविणु मोहि सत्त मिच्छाइ ।

छण्ह सतरस सुहुमो, अजया देसा वि ति कसाए॥९०॥

अर्थ—हवे प्रदेसबंध उत्कृष्टना स्वामी कहे छे-मिथ्यात्व गुणठाणे अजयचउ-चोथा गुणठाणाथी मांडी ४ च्यार गुणठाणा एटले मिथ्यात्व १, अविरति १, देशविरति १, प्रमत्त १, अप्रमत्त १, ए पांच गुणठाणे आउखा कर्मनो उत्कृष्ट प्रदेश बांधे, बीजा त्रीजा गुणठाणाविना मिथ्यात्व १, अविरति १, देशविरति १, प्रमत्त १, अप्रमत्त १, अपूर्व १, अनिवृत्ति १, ए ७ सात गुणठाणे मोहनीकर्मना उत्कृष्ट प्रदेश बांधे मूल कर्म छनो, तथा उत्तर प्रकृति ज्ञानावरणी पांच, दर्शनावरणी ४ च्यार, अंतराय पांच, सातावेदनी १, उच्चगोत्र १, यशनाम १, ए १७ सत्तर प्रकृतिनो उत्कृष्ट प्रदेशबंध सूक्ष्म संपराय गुणठाणे बांधे, तथा अविरति गुणठाणे बीजी चोकडीनो उत्कृष्ट प्रदेश बांधे, देशविरतित्रीजी चोकडीनो उत्कृष्ट प्रदेश बांधे ॥ ९० ॥

पणअनिअट्टी सुखगइ, नराउ सुर सुभगतिग विउविदुग

समचउरस मसाय, वइर मिच्छो व सम्मो वा ॥९१॥

सेढिअसखिज्जसे, जोगट्ठाणाणिपयडिठिइभेआ।
ठिइबंधज्झवसाया, णुभागठाणा असखगुणा ॥९५॥

अर्थ—घनीकृत लोकनी सातराजनी एकप्रदेशी श्रेणि तेहने असख्यातमे भागे जेटला आकाश प्रदेश तेटला योग स्थानक छे, तेथी प्रकृतिना स्थानक तीव्र मदता रुप असख्यात गुणा छे, तेथी स्थितिभेद स्थितिना स्थानक असख्यातगुणा छे, तेथी स्थितिबधना अध्यवसाय जीवभेदें तीव्र मदतारुप ते असख्यातगुणा छे, जे एकेके स्थितिस्थानके स्थितिबधना अध्यवसाय असख्यात छे, ते माटे ४ तेथी रसबधना स्थानक असख्यातगुणा छे, जे छठाणवृद्धिरुप रसबधना स्थानक अग्निकायनी सुइ छ दिशा फरतीना आकाशप्रदेश प्रमाण छे ॥ ९५ ॥

तत्तो कम्मपएसा, अनतगुणियातओरसच्छेआ(या)।
जोगापयडिपएस, ठिइ अणुभाग कसायाओ ॥ ९६ ॥

अर्थ—ते माटे तेहथी कर्मवर्गणाना एकसमयगृहीत परमाणुआ अनतगुणा छे, ६ तेहथी कर्मबधपणे जे परमाणुआ बधाणा तेमा जे एक परमाणु तेमाहे कषायप्रत्ययी रसना छेद ते अनतगुणा छे, जे कारणे सर्व जीवथी अनतगुणो रस हुवे (होय) तेहिज कर्मपणे बधाय ७, ते माटे, तथा प्रकृतिबध, १ ते योगथी बधाय, स्थितिबध तथा रसबध ते कषायथी बाधे, मिथ्यात्व, अविरत ते दृढीकरणनो हेतु छे ॥ ९६ ॥

चउदसरज्जूलोगो, बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जु घणो।
तद्दीहेग पएसा, सेढी पयरो अ तव्वग्गो ॥ ९७ ॥

अर्थ—हवे श्रेणिनो स्वरुप कहे छे—चौदराज प्रमाण लोक छे, बुद्धियें करीये तिवार सातराज प्रमाण घन थाय तेहनी दीर्घ लांबी एकप्रदेशनी श्रेणिने सेढी कहीये, ते सेढीनो वर्ग एटले तद्गुणो—गुणाकार करीये ते प्रतर थाय, तेहने वर्ग करे घन थाय ॥ ९७ ॥

अणदस नपुंसि त्थी, वेअ छक्क च पुरिसवेअ च ।
दो दो एगतरिए, सरिसे सरिस उवसमेइ ॥९८॥

अर्थ—हवे उपशम श्रेणि कहे छे—इहा उपशम श्रेणें उपशम समकिती लीधो छे, ते कहे छे—प्रथमथी चोथाथी माडी सातमा गुणठाणा सीम अनतानुबधी ४ उपशमावे, पछे दर्शन मोहनी ३ तीन उपशमावे, पछी आठमे गुणठाणे आवी स्थिति घातादिक पाच ५ करण करीने नवमे गुणठाणे आवी नपुसकवेद उपशमावे, १ पछी स्त्रीवेद उपशमावे १, पछी हास्यछक्क ६ उपशमावे, पछी पुरुषवेद उपशमावे, पछे वे बे कषाय उपशमावे, पछे एक उपशमावे (१) आतरे अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी कोध २, उपशमावे, पछे सजलणो क्रोध, १ उपशमावे पछे अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी मान उपशमाव्या पछी सजलणमान उपशमावे पछी अप्रत्याख्यानी, प्रत्याखानी माया उपशमावे, पछी सजलणनी माया उपशमावे, पछी प्रत्याख्यानी अप्रत्याख्यानी लोभ उपशमावी, सजलना लोभनी किट्टी करे, तेहनो अनतमो भाग सजलना लोभनो ते दसमे गुणठाणे उपशमावे ए रीते सरखु सरखु उपशमावे पछी उपशातमोही थाय. हवे क्षपकश्रेणिनो क्रम कहे छे ॥ ९८ ॥

अणमिच्छ मीससम्मं, तिआउ इग विगल थीण तिगुजोअ ।
तिरि निरय थावर दुग, साहारायव अड नपु त्थी ॥९९॥

अर्थ—जे कोइ जीव लाधे स्वकृत्व रसे ससारोद्विग्न आत्मालवी थको चोथे तथा पाचमे, छट्ठे, सातमे गुणठाणे क्षयोपशम, अनतानुवधी ४ खपावे, पछी मिथ्यात्वमोहिनी खपावे, पछी सिश्रमोहिनी खपावे, पछी समकितमोहनी खपावे, पछी देवता १, नारकी १, तिर्यंच १, ना आउखा खपावे, खपावीने नवमे गुणठाणे चढे पछी नवमाने बीजे भागे इग—एकेन्द्रीजाति, विगल ३, थीणद्धी ३, उद्योत १, तिर्यंचद्विक २, नरकद्विक २, थावर, सूक्ष्मद्विक २, साधारण १, आतप १, ए १० सोळ प्रकृति नवमाने बीजे भागे खपे, अड—आठ कषाय खपावे, त्रीजे भागे, तेथी पछी चोथे भागे नपुसकवेद खपावे, पाचमे भागे स्त्रीवेद खपावे ॥ ९९ ॥

छग पु सजलणा दो, निद्दाविग्घावरण खए नाणी ।
देविदसूरि लिहिअ, सयगमिणं आय सरणट्ठा ॥१००

इति शतकनामा पचमकर्मग्रथः समाप्त. ॥ ५ ॥

अर्थ—पछे छट्ठे भागे हास्य ६ छ खपावे, पछी पुरुषवेद खपावे, पछी आठमे भागे सज्वलन क्रोध खपावे, नवमे भागे सज्वलन मान खपावे, नवमा गुणठाणाने अते सज्वलननी माया खपावी दसमे सूक्ष्मसपरायगुणठाणे आवी सज्वलननो लोभ खपावी बारमे गुणठाणे आवे तिहा बे निद्रा

खपावे, पछी नारमाने अंते अंतराय पाच, ५, ज्ञानावरणी, ५, दर्शनावरणी च्यार, ४, ए १४ चौदने खपे आत्मा नाणी-केवलज्ञानी थाये-लोकालोक प्रत्यक्ष देखे, ए देवेन्द्रसूरि आचार्य महाराजे लिख्यो शतक नामे कर्मग्रंथ पिण आप-पोताने स्मरणार्थ-संभारवाने अर्थे इति पंचम कर्मग्रंथ टबार्थ समाप्त १००

अथ टबाकार प्रशस्तिकार काव्यम्

श्रीमत् पाटक राजसारकृतिना शिष्या जिनाज्ञापरा ।
श्रीमत् पाटक ज्ञानधर्मप्रवरा श्रीदीपचन्द्राह्वया ।
अर्हन् मार्गसुपाटका गुणलया तद्वाक्यसेवानुग ।
स्वार्थं गणिदेवचन्द्रमतिमान् सदर्शयन् शोभते ॥१॥ इति ॥५॥

संवत् १८६८ श्रावण शुक्लाष्टम्या (श्रावण सुदि ८) रविवासरे लिपिकृते सकल पंडित सिरोमणि भट्टारक तपागच्छाधिराज पुरंदरप्रभु भट्टारक श्रीश्रीश्री १०८ श्रीश्रीश्रीश्रीश्रीश्री कीर्तिरत्नसूरीश्वरान् चिरजीवी तत्शिष्य प० बुद्धिरत्नेन लिपिकृते तत् शिष्य मुनि कान्तिरत्न पठनार्थं पठित श्रीसूर्यपुरवरे श्री शान्तिनाथचरणप्रसादात् श्रीकल्याणमस्तु (ए जे उपरथी प्रेसकॉपी थई ते प्रति लिख्यानी शाल विगेरे तेमाथी लीधेल छे)

इतिश्रीपंचम शतकाख्य कर्मग्रंथस्यटबार्थः समाप्तः ॥

श्रीमद् देवचंद्रजी कृत

विचार रत्नसार.

प्रणम्य श्रीमहावीर, शंकर परमेश्वर ।
विचाररत्नसारस्य, क्रियते वालवोधक ॥ १ ॥

श्री जीनवाणीमहिमा वर्णन.

श्रीवीतरागनी वाणी भववेलकृपाणी, ससारसमुद्र तारिणी, महामोहान्धकार दिनकरानुकारिणी, क्रोधदावानलोपशमिनी, मुक्तिमार्गप्रकाशिनी, कलिमलप्रलयिनी, मिथ्यात्वछेदिनी, त्रिभुवनपालिनी, पापविशोधिनी, मन्मथस्तंभिनी, अमृतरस आस्वादिनी, हृदय आल्हादिनी, आगमोद्गारिणी, चतुर्विध संघमनोहारिणी, भव्यजनकर्णामृतश्राविणी, सकल कुमतिनिवारिणी, सर्वसंशय निवारिणी, योजनप्रमाण विस्तारिणी, एहवी श्रीवीतरागनी वाणी महा प्रभाविक अतिशयवंत जाणवी

ते वाणी भव्य प्राणीओए अवश्य सद्गुरु पासे सांभळवी, केमके १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आस्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ बंध, ९ मोक्ष, १० धर्म, ११ अधर्म, १२ हेय, १३ ज्ञेय, १४ उपादेय, १५ निश्चय, १६ व्यवहार, १७ उत्सर्ग, १८ अपवाद, १९ आस्रव, २० परिस्रव, २१ अतिचार, २२ अनाचार, २३ अतिक्रम, २४ व्यतिक्रम, इत्यादि सांभळ्या विना शास्त्रना भेद न जणाय.

परतु पुण्यानुबंधी पुण्य विना श्रीजिनवाणी सांभळवानी रुचि जीवने थती नथी, केम जे सुठाम, सुगाम, सुजात, सुभ्रात, सुतात, सुमात, सुत्रात, सुकुळ, सुबळ, सुस्त्री, सुपुत्र, सुपात्र, सुक्षेत्र, सुदान, सुमान, सुरुप, सुविद्या, सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, सुवेश, सुदेश, ए बावीश प्रकारनी उत्तम जोगवाइ सुपुण्य विना न पमाय, अने ते पुण्यवत्र तो सत्सगसेवन तथा कुसगना त्यागवडेज थाय छे, माटे सुमति, शीलवत, सतोषी, स्वजन, साचाबोला, सत्पुरुष, सुमेला, सुलक्षण, सुकुळीन, गभीर, गुणवत, गुणज्ञ, एहवा पुरुषोनो सग करीए तो धर्म पामीए, तथा चुगल, चोर, ठगग्राही, अधर्मी, अधम, अविनीत, अधिकबोला, अनाचारी, अन्यायी, अधीर, अघुरा, नि स्नेही, कुलक्षणा, कुबोला, कुपात्र, कूडाबोला, कुशीलिया, कुशासनी, कुलखपण, मूढा, मूळ एहवा पुरुषोनो सग न कीजे

प्रश्नोत्तर रत्नसार

१ प्र०—जीव धर्म केम पामे ?

उ०—जीव त्रण प्रकारे धर्म पामे—१ गुरुना उपदेशथी, २ पूर्वभवना अभ्यासथी, ३ सहज स्वभावे वैराग्यादि सयोगे पामे एम उपदेशसार नदीपच्चीशीमा कह्यु छे

२ प्र०—अभ्यास केटला प्रकारना छे ?

उ०—चार प्रकारना—१ सूत्रअभ्यास, २ अर्थ अभ्यास, ३ वस्तु अभ्यास, ४ अनुभव अभ्यास,

३ प्र०–जीवने पुण्य, पाप, अने वैर केवी रीते बधाय छे, अने ते केवा फळरूपे परिणमे छे ?

उ०–जीवने दयावडे पुण्य उपजे छे, अने हिंसावडे पाप निपजे छे, छकायना जीवने हणवाना परिणाम थाय, त्या पाप निपजे, ते छकायना जीवने त्रिकरण योगे हणता, वैर अने पाप बे निपजे, त्यां पापना उदये अशाता, आकुळता, उद्वेगता, अस्थिरता उपजे, तथा वैरना योगे ते जीव आवी यथायोगे पीडे

४ प्र०–धर्म, पुण्य, अने पाप कर्म शायी उपजे ?

उ०–त्रण प्रकारे–१ दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशमथी धर्म उपजे, २ चारित्रमोहनीयना उदयथी पुण्य पाप उपजे, तेमा अविरतिनो उदय मद थाय तथा क्षयोपशम थाय त्यारे विरतिनो उदय थाय, ते वारे षट्कायना जीव उपर दया परिणाम उपजे, तेथी पुण्य उपजे, ३ अविरतिना तीव्र उदये पाप निपजे

हवे जे पुण्य पाप छे, ते चारित्रमोहनीयना उदयना मदपणाए तीव्रपणाए होय; अने धर्म, दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशम के क्षयथी होय; तथा पुण्य पापना फळ भोगवावे, ते वेदनीय कर्म तेना उदय वेदावे (फळ देखाडे), तथा पुण्य पापनो बध पडे ते मोहनीय कर्मनी मुझवणे; पुण्य पाप परिणमे ते अतराय कर्मने क्षयोपशमे

ज्या राजा न्यायी अने सौम्यदृष्टि होय, अने आचार्य निस्पृही होय, त्या जैन धर्म विशेष प्रकारे प्रवर्त्ते छे

५ प्र०–देशना कोने कहिये ?

उ०—ज्या मिथ्यात्वनी पुष्टि न थाय, मार्ग विरुद्ध न प्रकाशे, आत्मस्वरूप उपादेयपणे प्ररूपे, तथा शुभ क्रियाने अत्यादरपणे प्ररूपे, शुभ क्रियाना फळनी वाछा न करावे, पापनी आमेरना टाळे, तिरस्कार रखावे इत्यादि आगमोक्तरीते शुद्ध प्ररुपणा ते देशना कहीये

६ प्र०—पुण्य क्रिया अत्यादरपणे सेवनी, पण तेना फळनी वाछा न करवी तेनु रहस्य शु ?

उ०—जो पुण्यक्रिया शुभ व्यापारे शुभयोगे न आदरे तो मार्ग विरुद्ध थाय, परपराए पण वीतराग मार्गे न जोडाय, अने जो पुण्यना फळनी वांछा करे तो निदान (नियाणा) रूप मिथ्यात्व परिणमे, जो सहजस्वरूपे शुभ क्रिया करे तो कर्मनो काट निवारी शीघ्र मुक्तिपद पामे, ए रहस्य छे

७ प्र०—हेय, ज्ञेय, उपादेय एटले शु ?

उ०—समभावे हेय, यथार्थे ज्ञेय, स्वरूपे उपादेय, साराश के आत्मा स्वभावमा रहेता सर्व अनात्मिक परभावनो हेय एटले त्याग थाय छे, यथार्थ ज्ञान थये ज्ञेय एटले जाणवा योग्य पदार्थोनु ज्ञान थाय छे, अने ज्ञान दर्शनादि गुणोने अनुयायी चेतना थये स्वरूप ग्रहणरुप उपादेय थाय छे, एटले आत्मानु पोतानु स्वरूप आत्माए ग्रहण करवु ते उपादेयनो भावार्थ छे

८ प्र०—काउस्सग्गनु विशेष स्वरुप कहो ?

उ०–काउस्सग्ग द्रव्य अने भाव बे प्रकारे कह्यो छे उव-
वाइ सूत्रमा द्रव्य काउस्सग्ग चार प्रकारना छे —
शरीर काउस्सग्ग, २ उपधि काउस्सग्ग, ३ भत्तपाण
काउस्सग्ग, अने क्रोधादि चार कषायना त्याग रूप
काउस्सग्ग (कषायकायोत्सर्ग)

भाव काउस्सग्ग त्रण प्रकारे छे –१ कषाय काउ-
स्सग्ग, २ ससार काउस्सग्ग, ३ कर्म काउस्सग्ग, ते
मध्ये कषाय काउस्सग्ग क्रोधादि चार प्रकारना छे,
ससार काउस्सग्गने (देव, मनुष्य, तिर्यंच, अने नरक
ए गतिनी इच्छा रहितपणा रुप) चार प्रकारनो
जाणवो, कर्म काउस्सग्ग आठ प्रकारनो; ते ज्ञाना-
वरणीयादि आठ कर्मना भेदे आठ प्रकारनो जाणवो

९ प्र०–विधि अने अविधिए करेली क्रिया यथाक्रमे केवा
फळ रूपे परिणमे ?

उ०–शुभ क्रिया जे विधिनी छे ते स्वभावरुपे परिणमे,
त्या निर्जरा निपजे, तथा शुभ क्रिया जे अविधिनी
छे ते बधरुपे परिणमे, ते लौकिक यश सौभाग्यादि
फळरुप परिणमे, तथा पुण्यरुप परिणमे ते बधरुप
थाय, अने तेथी ससार भ्रमण विशेष निपजे

१० प्र०–जीवने खेद उपन्यो केम टळे ?

उ०–जीवने खेद निवारवाने अर्थे पूर्वकृत कर्म सभारीए
जेवा जीवे पूर्वे कर्म बाध्या छे, तेवा उदये आवे
छे, ते मध्ये केटलाएक कर्म प्रदेशथी वेदीने खेरवे
छे, केटलाएक निविड कर्म बाध्या ते विपाके (रसो-

दये) वेदीने खेरवे, पण दृष्टिमान् ज्ञानी तो, ते कर्मोने समभावे भोगवता थका उदयने निष्फळ करे छे, आलोइ, निंदी, पश्चात्ताप करे, तेथारे अल्पबंध थाय, बहु निर्जरा करे, ते माटे बंध निवारवाने अर्थे उदय निष्फळ करे, एटले कर्मनो विपाक समभावे भोगवे, अने शुद्धोपयोगे स्वरूप विचारे त्यारे बंध अल्प करे

११ प्र०—धर्म कथा केटला प्रकारनी ?

उ०—चार प्रकारनी —१ आक्षेपिणी, २ विक्षेपिणी, ३ निर्वेदिनी ४ संवेदिनी, त्या सत्य मार्गने विषे जीवने जोडावे ते आक्षेपिणी, अने मिथ्यात्व मार्गथी निवर्तावे ते विक्षेपिणी, तथा निर्वेदिनी ते वैराग्य उपजावे एटले संसार जे विषयकषायनी मलीनपरिणति ते थकी जीवने उद्विग्न रखावे, अने संवेदिनी ते मोक्षाभिलाष उत्पन्न करावे

१२ प्र०—भावथकी नव निधान कया ?

उ०—केवळीआश्रिने नव क्षायिक लब्धि उपजे ते नव निधान जाणवा, अने मुनिआश्रि पांच इंद्रियना विषयना विकारथकी, तथा क्रोधादिक चार कषाय थकी जे निवर्त्या ते महाभागने भाव थकीअखुट नव निधान प्रगट्या जाणवा

१३ प्र०—पांच इंद्रियोना विकार मटे त्यारे कया गुण निर्मळ थाय ?

उ०—चक्षु इंद्रियनो विकार मटे त्यारे हृदयने विषे निर्मळ

ज्ञानचक्षु प्रगटवारुप गुण निपजे, श्रोत्रेन्द्रियनो विकार मटता जिन वचन श्रवण प्रीतिसहित प्रतीति पूर्वक थाय, जीन्हा इंद्रिय विकार मटता आत्मिक अनुभव रसस्वाद प्रगटे, घ्राणेन्द्रिय विकार मटता आत्मिक गुण सुवासना प्रगटे, स्पर्शेंद्रिय विकार गये आत्मप्रदेशे स्वभाव परिणति स्पर्शन गुण प्रगटे

१४ प्र०—क्रोध, मान, माया, लोभ गये कया गुण प्रगटे ?

उ०—क्रोध गये समता गुण प्रगटे, मान गये मार्दव गुण प्रगटे, माया गये आर्जव गुण प्रगटे, लोभ गये संतोष गुण नीपजे

१५ प्र०—चार प्रकारे मिथ्यात्व छे ते केवी रीते ?

उ०—१ प्रदेश मिथ्यात्व, २ परिणाम मिथ्यात्व, ३ प्ररूपणा मिथ्यात्व, ४ प्रवर्तन मिथ्यात्व, ते मध्ये जीव व्यवहार समकित पामे त्यारे प्ररुपणा तथा प्रवर्तन मिथ्यात्व टळे, अने ग्रथिभेद थई उपशम, क्षयोपशम, समकित पामे त्यारे परिणाममिथ्यात्व टळे, अने क्षायिक समकित पामे त्यारे प्रदेश मिथ्यात्व टळे

१६ प्र०—देशना केटला प्रकारनी छे ?

उ०—१ धर्म देशना, २ गति देशना, ३ बंध देशना, ४ मोक्ष देशना, ते मध्ये धर्म एटले जीवनी शुद्धात्मपरिणति तेनी सन्मुख जीव जेथी थाय, तत्त्वाभिलाष जेथी प्रगटे, एवो उपदेश ते धर्म देशना, जे थकी जीवने विषय कषायनी मलीन परि-

णति नचे, चतुर्गति भ्रमण विस्तार पामे एवी सावद्य देशना ते गति देशना, जे उपदेशथकी जीवने नाना प्रकारना कर्मोनो नच पडे एवी प्रवृति करवानु मन थाय ते नच देशना, जे साभळवाथी जीव वैराग्य परमरस पामी, यथार्थ बोध लही पोतानु शुद्ध आत्मस्वरूप जे सकळ कर्मथी रहित मोक्षरुप छे, ते निपजाववानी तीव्र रुचि प्रगटे ते मोक्ष देशना कहिए

१७ प्र०—अनर्थ दंडना चार प्रकार कया ?

उ०—१ अपध्यान एटले आर्त अने रौद्र ध्यान, २ प्रमादाचरण, ३ हिंसकशस्त्रप्रदान, अनर्थ दंड एटले जीव हिंसाना साधनो शस्त्रादि पूरा पाडवा ते, ४ पापनो उपदेश देवो

१८ प्र०—आठ प्रकारना वचन परिसह कया ?

उ०—१, हीलणा परिसह ते मुनिनी पूर्व गृहस्थाश्रम अवस्था हीन जात्यादि दूषणो काढी कठोर मर्म वचने साधुने हीले निंदे ते, २ खिंसणा परिसह ते साधुना पूर्व कृत कर्म (जनित) अवगुण उघाडा पाडी निंदे, ३ निंदण परिसह ते साधुपुरुषनो निरादर करे दुगछादि दर्शावे, ४ गर्हणा परिसह ते साधुओना समक्ष छता अछता अवगुणो बोले, ५ ताडणा परिसह ते साधुने मारे, कुटे, ६ तर्जना परिसह ते साधु प्रत्ये अतिशय आक्रोश करी अत्यत कठोर वचन कहे, भयकरता दर्शावे, ७ पराभव

परिसह ते साधुना वस्त्र पात्रादिक सजम उपकरणो हरे, भागे, तोडे, फोडे ८ एपणा परिसह ते साधुने भातपाणी प्रमुखनो अतराय पाडवानो भय देखाडी त्रास उपजावे, ए आठ वचन परिसह, साधु पुरुषे सम्यक् प्रकारे सहन करवा, पण धर्मथी चलायमान थवु नहि

१९ प्र०–१ सिज्झइ, २ बुज्झइ, ३ मुच्चइ, ४ परिनिव्वाइ एटले शु ?

उ०–१ सिज्झइ एटले परिणामनी निर्मळतावडे कर्मनु ओछु करवु, आत्मप्रदेशथकी कर्मांश पुद्गलो घटाडवा ते २ बुज्झइ एटले वस्तु स्वरूपनु तदनतर ज्ञान थवु ते ३ मुच्चइ एटले कर्मपुद्गलोनु आत्मप्रदेशथी क्षय थवु, कर्म सत्तानो नाश थवो, फरी तेवो बध कदी न पडे तेवा परिणाम ते ४ परिनिव्वाइ एटले आत्मा ठरणपणाने पाम्यो, निजस्वरुप आलबि समाधिष्ठ थयो ते

२० प्र०–बुद्धे, मुत्ते, पडिनिव्वुडे, अडगडे शब्दोनो भावार्थ कहो ?

उ०–१ बुद्धे एटले आत्मा सपूर्ण ज्ञानस्वरूपी थयो ते २ मुत्ते एटले सर्व कर्मथी मुकाणो माटे मुत्ते ३ पडिनिव्वुडे एटले सर्व कर्म शिथिलभूत एटले जरजरित थया ते ४ अड्डगडे एटले अतकृवे कहेता ससारनो अत कर्यो भवे स्थिति सदतर नाश करी ते

२१ प्र०—चार प्रकारे धर्म केवी रीते छे? ते तेना फळ परिणाम सहित यथार्थ समजावो

उ०—१ आचार धर्म ते रुडा आचारनु सेवन करवु जेथी अनाचारनो त्याग थाय २ दया धर्म ते सर्व प्राणीमात्रने आत्मवत् जाणी सर्व प्रत्ये समान मनोभाव दर्शावी, यथाशक्ति उपकारादि करी, तेमनु निरतर भलु चिंतववु, पण अतर्मा कदापिकाळे अपराधी उपर पण बुरु चिंतववाना द्वेषपरिणाम न राखे, तेम वेपरवाइ प्रवृत्ति पण न दाखवे ३ क्रिया धर्म ते सामायिक, पोसह, प्रतिक्रमण, पूजादि शुभ करणी विधिए आदर सहित करे, जेथी कर्मनो काट उतरे, भवसतति घटे, परपराये मुक्ति मार्गे जोडाय अने ४ वस्तुधर्म ते जे थकी वस्तु एटले आत्म स्वरूपानुगत पूर्ण बोध उपजे, स्वरूपाचरण स्वरूपरमण थाय अने शुभाशुभ समस्त कर्म निर्जरे तेवो सर्वोत्तम धर्म, एम ए धर्मना चार प्रकार वस्तुगते परमात्माए प्रकाश्या छे, अने तेना कारणरुप चार व्यवहार धर्म ते दान, शियळ, तप अने भाव धर्मो छे, आ चार धर्मवडे अनाचार दूर थाय, लौकिकयश प्रतिष्ठा पामे, अन्य तीर्थिओ पण जैनधर्मनी प्रशशा करे, जैनाचार अनुमोदे, माटे आचार प्रथमो धर्मे इति वचनात्, दयाधर्मवडे हिंसक कर्म प्रवृत्ति टळे, शुभ पुण्य पुष्ट करी परपराये जीव मुक्तिने योग्य थाय, ए रीते फळ परिणाम पूर्वक धर्मना

चार प्रकारने यथाशक्ति सविनय सेवम करी कोइ परस्पर दुहवाय नहि, एम जे उत्तम प्राणी यथार्थ स्याद्वाद रीते जाणीने पाळे ते सुलभबोधी थइ वहेलो सिद्धि वरे, एवीज रीते जे प्राणी क्रियाविधि आदरे, ध्यानपूर्वक उपयोग शुद्ध राखे, ते प्राणीना सर्व मनोवाछित पूर्ण यत्ना साथे शीघ्र परमात्मस्वरूपने पामे

२२ प्र०—त्रण प्रकारना कर्मनु स्वरूप समजावो ?

उ०—द्रव्य कर्म ते ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मोनी पुद्गल-दलिक वर्गणा, २ नोकर्म ते औदारिकादि पाच शरीर ३ भावकर्म ते आत्मानी अनादि काळनी प्रदेशे लागेली रागद्वेषनी अशुद्ध परिणति, ते मध्ये द्रव्यकर्म तथा नोकर्म पुद्गलाश्रित छे, भावकर्म आत्माश्रित छे, पहेला बे कर्म विनाशी छे केमजे अनादि अनत अभव्याश्रि अने भव्याश्रि अनादि तथा सादि सात भागे आत्मप्रवृत्तिरुप होवाथी छे, तथा हर्षोल्लास ते भावकर्म आश्रित छे अहि दृष्टातथकी आ वात विशेष स्पष्ट थशे तेथी कहीए छीए —के जेम एक चोखा नामना धान्यनी कोठी छे, तेमा धान्य जे छे ते द्रव्य कर्म, अने कोठी ते नोकर्म, अने चोखाने लागेलो जे मिणो ते समान भावकर्म चीकासरुप आत्मानी अशुद्ध परिणति जाणवी

२३ प्र०—अरिहतादि नव पदनो भावार्थ तथा ते प्रत्येकनु

तन्मय ध्यान करता थका शुं ? शुं ? गुण निपजे ते भिन्न भिन्न कहो ?

उ०—अरिहंतादि पंचपरमेष्ठिमहाराजनुं स्मरण करता उदयकर्मनुं निवारण थाय, अरिहंतादिनुं द्रव्यथी शरण करे तो द्रव्यथी उदय आवना सर्व पाप निष्फळ थाय, विपाक वेदना पण अल्प थाय, इत्यादि घणो गुण निपजे, सर्व द्रव्यपापनो नाश थाय, एम आत्मा आत्मानुं स्मरण करे, ध्यानगत् वज्रपिंजरवत् पोताने स्वरूपे परिणमे, त्यारे सर्व कर्मनो नाश करे, एम आत्मस्मरण तथा निमित्तस्मरणनुं स्वरूप जाणवुं, हवे अरिहंतने संभारता, समरता, परिणमता आत्माने जे गुण निपजे ते कहिए छीए, १, अरि एटले रागद्वेषरूप भावशत्रु तेनो नाश थाय, अने वीतराग स्वरूप प्राप्त थाय, २ तेम सिद्धपदनुं तन्मय ध्यान धरता आत्मा निष्पन्न अरुपि परमात्मभावने पामे, ३ तेम आचार्यपदनुं ध्यान धरता शुद्ध पंचाचार प्रवर्तन शुलभ उदय आवे, भवांतरे आचार्य गणधरादिपद पामे, ४ उपाध्यायपदनुं ध्यान धरता शास्त्रार्थ सूत्रार्थ सुलभ थाय, अध्यापक शक्ति भवांतरे प्रगटे, साधुपदनुं ध्यान धरता मुक्तिमार्गनी साधना सुगम थाय, सुलभबोधिपणुं प्रगटे, वळी चारित्र सुकर थाय, गजसुकुमालनी पेठे शीघ्र मुक्तिपद पामे, ६, दर्शनपद आराधता सम्यक्त्व निर्मळ करे, वस्तु प्रतीति दृढ थाय, परमात्मस्वरूपनो

अवगाढ पुष्ट परिचय निपजे, ७ ज्ञानपद आराधता बोधशुद्धि थाय, तत्त्वभासन प्रकाश विस्तरे, ८ चारित्रपद आराधता निरतिचारपणे पच महाव्रतनी शुद्ध प्रतिपालना पूर्वक सामायकादि पाच भावचारित्र परिणति थाय, स्वरूप रमणता सुलभ थाय, ९ तपपद आराधता इच्छा निरोध थाय, समस्त पौद्गलिक पीपासा टळे, तृष्णा दाह उपशमे, अने ममत्वभाव मळ गळी जाय इति भाव

२४ प्र०—कर्मनो उदय तथा बंध जीवने केवी रीते थाय छे ? ते स्पष्ट समजावो

उ०—बाध्या कर्म उदय आवे छे, जेवे रसे बाध्या होय, तेवेज रसे तथाविध द्रव्य क्षेत्र काळ भाव पामीने, प्रदेशे तथा विपाके भोगवे, ते भोगवता जेवा नवा बधाय पण समभावे वेदेतो निर्जरा थाय, अने विषम भावे एटले रागद्वेषादि मलीनभावे वेदे तो नवा बधाय तथा विषमभावे भोगवीने पछी पश्चात्ताप करे तो कर्मबंधनो रसघात करी चीकास मटाडे, ते उदयकाळे सुगमतायी खरी जाय, अने जो कर्म विषमभावे भोगवे, दुर्ध्यान करे तो, उदयकाळे अत्यत दोहिला भोगवीने खपावे, वळी वेदता थका नवा कर्मनो गाढ बंध करे

२५ प्र०—बोध अने समाधिनु स्वरूप समजावो

उ०—सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र, रत्नत्रयी सुगम प्राप्ति ते बोध, अने अहिं तेम भवान्तरने विषे निर्वेदन-

पणे तेनी सुलभता ते समाधि, एटले चित्तनी स्थिरता विश्रांतिभाव जाणवो

२६ प्र०—वैराग्य अने संवेगमां शो फेर ?

उ०—संसार एटले विषय कषायादि महा मलीनताना कारणरुप शरीर, स्वजन परिवार, भोग वैभवादिथकी विरक्त बुद्धि एटले रागनो त्याग तेने वैराग्य कहीए अने एकांत मोक्षबीज अभिलाषा, शास्वत स्वाभाविक चिदानंदघनमय परमात्मप्राप्तिबीज इच्छा तेने संवेग कहीए, अने एवा संवेगे करीने सहित होय तेज खरासंवेगी जाणवा

२७ प्र०—दान, शील, तप अने भाव ए चार कया साधनना बळवडे प्राप्त थाय ?

उ०—दान, धनबळथी । शील, मनबळथी । तप, तनबळ वडे । अने भाव, सुज्ञान वडे

२८ प्र०—कइ वस्तुनी प्राप्ति खरा भाग्योदयवडे थाय ?

उ०—१ सद्गुरुनी देशना, २ सुदेवनी सेवना, ३ अने सुधर्मनी आराधना

२९ प्र०—तिर्यक् परिचय अने ऊर्ध्व परिचय कोने कहिए ?

उ०—धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्यो जे सप्रदेशी छे, तेनी तिर्यक् परिचय संज्ञा छे, अने अप्रदेशी एक काळद्रव्यने ऊर्ध्व परिचय संज्ञा छे

३० प्र०—धर्मनु स्वरूप चतुर्विध कह्यु छे ते केवी रीते ?

उ०—१ वस्तुनो मूळ स्वभाव ते धर्म, २ क्षमादि दशविध

यति धर्म, ३ दर्शन ज्ञान चारित्ररुप रत्नत्रयीधर्म, ४ छकाय जीवनी रक्षारुप धर्म

३१ प्र०—मुनिने चतुर्विध सयम छे ते शी रीते ?

उ०—१ प्राण सयम, ते षट्कायजीववधनी अविरति टळी माटे, २ इद्रिय सयम ते पाच इद्रियोना विषय विकारोने टाळे माटे, ३ कषाय सयम ते त्रण कषायनी चोकडीना उदय मट्या माटे, ४ मन सयम ते द्रव्य तथा भाव मनना विकल्प सवर्या माटे

३२ प्र०—द्रव्य मन अने भावमननो अर्थ समजावो

उ०—द्रव्य मन ते पाच इद्रियोना विषयरुप, मनोवर्गणा दलिकने अवलबन मनन शक्ति, मनोयोगद्वाराए चिंतन परिणाम, निर्विकारी निर्विकल्पी शक्ति विशेष ते केवळीने पण होय भावमन ते व्यक्ताव्यक्त सकल्प विकल्परुप विकारी मोहजनित, शुभाशुभ परिणामरूप छे

३३ प्र०—स्वभावे तथा विभावे आत्मानु परिणमन थाय त्या शु शु फळ निपजे ?

उ०—आत्मा स्वभावे परिणमे तिहा सम्यकत्व गुण निपजे, तेना फळ ज्ञान अने आनद ए बे उपजे, अने ज्यारे आत्मा देहगेहादि परभावे परिणमे तिहा मिथ्यात्व निपजे, तेना फळ विषय कषायरूप मलीन परिणति, चतुर्गति भ्रमणरूप ससार सतति छे सुख दु खरूप छे, एम जाणी उत्तम जीवोए विभावदशानो त्याग करी जेम बने तेम सत्सगे रही स्व-

आलंबन, स्वभाव परिणमन, शुद्धोपयोगे करवा प्रयत्न करवो

३४ प्र०—जीवना द्रव्य गुण पर्यायना घातक कोण छे?

उ०—१ अज्ञानपणु ते आत्मद्रव्य घातक छे, २ मिथ्यात्व ते आत्मगुण घातक छे, ३ अविरति ते आत्मिक सुख पर्याय घातक छे, ४ तथा अज्ञान अने मिथ्यात्व ते आत्मानु जीवपणु दावे छे, आत्मस्वभाव परिणति रुधे छे, अने अविरति दोष, आत्मिक सुख रुधे छे

३५ प्र०—जीव द्रव्यनिर्जरा अने भावनिर्जरा केवी रीते करे?

उ०—जीव शुद्ध ज्ञानोपयोगे भावनिर्जरा करे छे, अने वैराग्यभाव उदासीनताए द्रव्यनिर्जरा करे छे

३६ प्र०—पौद्गलिक इच्छा तथा मूर्छाभावे करी जीव शु पुष्ट करे?

उ०—इच्छाए अज्ञानपणु, अने मूर्छाए मिथ्यात्व पुष्ट करे

३७ प्र०—गुण पर्यायना घातक कोण? तेनु स्वरूप कहो

उ०—आत्माना गुणपर्यायना घातक—१ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ मोहनीय, ४ अतराय ए चार घनघाती कर्म छे अने शेष वेदनीय आदि मूळ तो अघाती छे, पण मोहमिश्रित थये ते पण घातकपणे परिणमे छे, ते मध्ये अतिप्रबळ मोह कर्म छे, तेनी अठ्ठावीस प्रकृतियो छे ते मोह, राग अने द्वेष ए त्रण भागे वहेचीए त्या मोहशब्दे मिथ्यात्व मोहनीय जाणवी, राग, द्वेष शब्दे चारित्र मोहनीय जाणवी,

प्रथमनी मिथ्यात्वमोहनीयनी त्रण प्रकृति छे, ते निर्मळ सम्यक्त्व गुणनी घातक छे, अने बीजी चारित्रमोहनीय कर्मनी पचीस प्रकृतियो छे, ते मध्ये क्रोध मान ए बे चार चोकडीनी लेता आठ थाय, अने नव नोकषायमाथी अरति, शोक, भय अने दुगछा ए चार गणता सर्वे मळी ए बार प्रकृति द्वेषना घरनी वा अथवा रागद्वेष जनित छे, अने शेष माया लोभादि आठ कषाय अने हास्य, रति, अने त्रण वेद ए पाच मळीने तेर प्रकृतिओ रागना घरनी छे

३८ प्र०–शरीरगति, परिणामगति, श्रद्धागति, जे रीते परिणमे छे ते रीते कहो ?

उ०–१ शरीरनीगति औदयिकभावे वेदनीय मध्ये छे, २ परिणामगति, विषय कषायनी प्रवृत्ति मध्ये इष्टानिष्टरूपे छे, श्रद्धानी गति, तत्त्व अतत्त्व विवेचन कर्णरुपे छे

३९ प्र०–जीवना द्रव्य, गुण, अने पर्याय शाथी समरे एटले सुधरे ?

उ०–दर्शन, ज्ञान, अने चारित्र गुणे करी अनुक्रमे समरे

४० प्र०–ते शी रीते छे, ते विस्तारथी स्पष्ट समजावो ?

उ०–आत्मा द्रव्य असख्यात प्रदेशी छे, तेनो जिन वचन प्रतीते तथा अनुमाने करी अनुभव करे ते दर्शन, तथा परोक्ष अने प्रत्यक्षे जे प्रतीतात्मक धर्म भासन थयो, जे आत्मद्रव्य दर्शन द्वाराए

आत्मन, स्वभाव परिणमन, शुद्धोपयोगे करवा प्र-
यत्न करवो

३४ प्र०–जीवना द्रव्य गुण पर्यायना घातक कोण छे?

उ०–१ अज्ञानपणु ते आत्मद्रव्य घातक छे, २ मि-
थ्यात्व ते आत्मगुण घातक छे, ३ अविरति ते
आत्मिक सुख पर्याय घातक छे, ४ तथा अज्ञान
अने मिथ्यात्व ते आत्मानु जीवपणु दाबे छे, आ-
त्मस्वभाव परिणति रुधे छे, अने अविरति दोष,
आत्मिक सुख रुधे छे

३५ प्र०–जीव द्रव्यनिर्जरा अने भावनिर्जरा केवी रीते करे?

उ०–जीव शुद्ध ज्ञानोपयोगे भावनिर्जरा करे छे, अने
वैराग्यभाव उदासीनताए द्रव्यनिर्जरा करे छे

३६ प्र०–पौद्गलिक इच्छा तथा मूर्च्छाभावे करी जीव शु पुष्ट
करे?

उ०–इच्छाए अज्ञानपणु, अने मूर्च्छाए मिथ्यात्व पुष्ट करे

३७ प्र०–गुण पर्यायना घातक कोण? तेनु स्वरूप कहो

उ०–आत्माना गुणपर्यायना घातक–१ ज्ञानावरणीय, २
दर्शनावरणीय, ३ मोहनीय, ४ अतराय ए चार
घनघाती कर्म छे अने शेष वेदनीय आदि मूळ तो
अघाती छे, पण मोहमिश्रित थये ते पण घातकपणे
परिणमे छे, ते मध्ये अतिप्रबळ मोह कर्म छे, तेनी
अठ्ठावीस प्रकृतियो छे ते मोह, राग अने द्वेष ए
त्रण भागे वहेचीए त्या मोहशब्दे मिथ्यात्व मोह-
नीय जाणवी, राग, द्वेष शब्दे चारित्र मोहनीय जाणवी,

४१ प्र०—योगप्रत्ययिक सत्तागत, मिथ्यात्वप्रत्ययिक अने अविरतिप्रत्ययिक बंधकृतकर्मो शी रीते टळे ?

उ०—अशुभ योगे बांधेला कर्म तप संजमादि शुभ क्रिया व्यापारवडे, सत्तागत कर्मो शुद्धोपयोगे, स्वद्रव्य पर्याय परिणाम वडे, स्वभावाचरण शुद्ध ध्यानालंबनवडे निर्जरे, सम्यक्दर्शनवडे मिथ्यात्व प्रत्यइया टळे, अने अविरति प्रत्यइया, विरति परिणामे टळे, ते विषे कह्यु छे जे —

दुहा

आगमे अध्यातमतणा, कह्या घणा ग्रंथ,
द्रव्यगुणयोगे परिणमे, तो सोहु अने सुगंध

४३ प्र०—कषाय, प्रमाद, इंद्रियविषयराग, अने योग प्रत्यइया बांधेला कर्म टाळवाना उपाय कया ?

उ०—कषाय प्रत्यइया, उपशमादि समताभावे टळे, प्रमादे बांधेला अप्रमाद दशावडे टळे, विषय राग प्रत्यइया तपस्यावडे टळे, अने योग प्रत्यइया अयोगी दशाए शैलेशीकरणे प्रवर्तता टळे

४४ प्र०—निश्चयनय अने व्यवहारनय जीवने शुं गुणकारी छे ?

उ०—सम्यक्दृष्टि जीव श्री जिणप्रणीत स्याद्वादना जाण, जैनशैलिना उपयोगी बोधवान भव्यप्राणीओने निश्चयनय दृढता, आस्तिकना करणहेतु छे, अने व्यवहारनय ते जीवना पर्याय शुभाशुभ कर्मरूपे जे भर्या छे, तेने समाव्वाना हेतुरूप छे, व्यवहारनय केडे उद्यम छे, अने निश्चयनय केडे चित्तनी स्थि-

भास्यो दिठो ते ज्ञान, ते सम्यक्दर्शन गुणे करी आत्मद्रव्य समरे, सम्यक्दर्शन गुण हेतु ते द्रव्य दर्शन, तथा ते प्रतीतात्मक धर्मरूप अनत गुणनु जाणपणु थयु ते गुण हेतु सम्यग्ज्ञान जाणनु, तथा द्रव्य अने गुणरूपे जे उपयोगना पल्टणपणा रूप परिणमन थाय तेने पर्याय कहिये, ते पर्यायनो हेतु स्वरूपाचरण चारित्र गुण हेतु छे, अर्थात् जीवना पर्याय चारित्र गुणे करी समरे, अने ज्ञान गुणे जीवना गुण समरे, तथा दर्शनगुणे आत्म द्रव्य समरे, खुचरे ए भाव जाणवो

४१ प्र०—जन्म, जरा, अने मरणनु दुःख केम टळे ?

उ०—शुद्ध रत्नत्रयीनी प्राप्तिए, ते आवी रीते के जीवे पूर्वे सम्यक्त्व पाम्या पहेला अनत पुद्गल परावर्तन काळ सुधी जन्म कर्या ते हवे सम्यक्दर्शन पाम्यो, माटे उत्कृष्ट कदाच जन्म करे तोपण अर्ध पुद्गल परावर्तन काळ उपरात जन्म न करे, माटे दर्शन-गुणे जन्मनी पीडा टळे, तथा जरा जे शुभाशुभ कर्म उदयागते आवे छे ते सुखदुःखरूप वेदावे, वेदनीय विपाकते सम्यक्ज्ञान गुणे टळे, अने स्वरूपा चरण एटले शुद्ध व्रताचरण रूपे चारित्र गुणे मरण पर्याय, गत्यतर जन्म टळे एटले चारित्रगुणे मरण वेदना टळे साराश के सम्यक्दर्शने जन्मनी, ज्ञान गुणे जरावस्थानी, अने चारित्र गुणे मरणनी वेदना टळे छे, ए भाव जाणवो

४१ प्र०—योगप्रत्ययिक सत्तागत, मिथ्यात्वप्रत्ययिक अने अविरतिप्रत्ययिक नवकृतकर्मो शी रीते टळे ?

उ०—अशुभ योगे बाधेला कर्म तप संजमादि शुभ क्रिया व्यापारवडे, सत्तागत कर्मो शुद्धोपयोगे, स्वद्रव्य पर्याय परिणाम वडे, स्वभावाचरण शुद्ध ध्यानालंबनवडे निर्जरे, सम्यग्दर्शनवडे मिथ्यात्व प्रत्यइया टळे, अने अविरति प्रत्यइया, विरति परिणामे टळे, ते विषे कह्यु छे जे —

दुहा

आगमे अध्यातमतणा, कह्या घणा प्रबंध,
द्रव्यगुणयोगे परिणमे, तो सोनु अने सुगंध

४३ प्र०—कषाय, प्रमाद, इंद्रियविषयराग, अने योग प्रत्यइया बाधेला कर्म टाळवाना उपाय कया ?

उ०—कषाय प्रत्यइया, उपशमादि समताभावे टळे, प्रमादे बाधेला अप्रमाद दशावडे टळे, विषय राग प्रत्यइया तपस्यावडे टळे, अने योग प्रत्यइया अयोगी दशाए शैलेशीकरणे प्रवर्तता टळे

४४ प्र०—निश्चयनय अने व्यवहारनय जीवने शु गुणकारी छे ?

उ०—सम्यक्दृष्टि जीव श्री जिणप्रणीत स्याद्वादना जाण, जैनशैलिना उपयोगी बोधवान भव्यप्राणीओने निश्चयनय दृढता, आस्तिकना करणहेतु छे, अने व्यवहारनय ते जीवना पर्याय शुभाशुभ कर्मरूपे जे भर्या छे, तेने सभाळाना हेतुरूप छे, व्यवहारनय केडे उद्यम छे, अने निश्चयनय केडे चित्तनी स्थि-

रता, दृढता छे, एम ए जे नयो आत्मद्रव्यने समा-
खामा समकाळे गौणता मुख्यनाए गुणकारी छे,
माटे एमायी एकपण नयने उत्थापे के एकाते
निपेधे तो जीव एकातवादी मिथ्यात्वी जाणवो,
एम श्री जिनेश्वर भगवतनी वाणी छे, ते यथार्थ
सद्दहवी

४५ प्र०—निश्चय अने व्यवहारनु सम्यक् स्वरूप स्पष्ट समजावो ?

उ०—श्री जिनवाणी प्रतीते ग्रहिने षट् द्रव्यना यथार्थ-
पणे गुणपर्याय धारे, अनुभव प्रत्यक्षे स्वरूपने वेदे,
तथा गुणपर्यायनु विलेखन करे, तथा पुद्गलादिक
कर्म पर्यायमा तदाकार न परिणमे, पाच इद्रियना
भोग विषयो इष्टानिष्टरूप न वेदे, पोताना स्वरूपने
भेद रत्नत्रयीरूपे आराधे, तेने व्यवहार सम्यक्त्वी
कहिये, तथा पोताना गुण गुणी पर्याय अभेदरूपे
रत्नत्रयरूपे, निर्विकल्प समाधि परिणमे तेहने नि-
श्चयसम्यक्त्वी कहीए, त्या व्यवहार सम्यक्त्व ते
निश्चय सम्यक्त्वनु कारण छे, अने निश्चय सम्यक्त्व
ते केवळज्ञाननु कारण छे

४६ प्र०—पूर्वोक्त उभय सम्यक्त्वीने व्यवहार प्रवृत्तिए शु
लाभ थाय ?

उ०—नवतत्त्व, षड्द्रव्यादिकनु आस्तिकभावे दृढ श्रद्धान,
देव गुरु धर्मनु यथार्थ श्रद्धान, तत्त्व बुद्धिना विशेष
प्रकाशे करी तत्त्वातत्त्वनु नयभगरूपे, अनेकात
मार्ग विशेष रीते अवलबन थता आगळ परपराए

वस्तु व्यवहारसम्यक्त्व जे पूर्वे कह्यु छे, ते रूपने मेळवी आपे

५७ प्र०–धर्म, कर्म, पुण्य अने पाप केवी रीते थाय छे, अने तेना भिन्न भिन्न फळ शा शा छे ? ते बराबर कहो

उ०–जीव शुद्धोपयोगे वर्तता एटले पोताना द्रव्यगुण पर्यायथी तन्मयपणे परिणमे त्या ते धर्म करे, अने रागद्वेषमय अशुद्धोपयोगे वर्तता कर्म बाधे, एम शुद्धोपयोगे धर्म अने अशुद्धोपयोगे कर्म निपजे छे, तथा शुद्धोपयोगे शुभयोगे पुन्य बाधे, अर्थात् मन वचन कायाना योग प्रशस्तभावे तथाविध गुणानुरागे पूजा, सामायक, प्रतिक्रमण, पोसह, सिद्धात श्रवण, अभ्यास, मनन, दानादि शुभ योगे प्रवर्तता जीव पुण्यानुबधी पुण्यनो रस ढाळे तेमज वळी अशुभ मन वचन कायाना योगे विषयादि प्रवृत्तिए, अप्रशस्तभावे, तदाकार असिरूपे परिणमता जीव निबिड पापबध करे, हवे तेना फळ कहिये छीए–पुन्यथी शुभ गति, शुभ सामग्री, शाता, अनुकुळतादि शुभ सयोग जीव पामे, तथा शुद्धोपयोगी धर्मवडे कर्मनी निर्जरा करी मुक्तिपद पामे, तथा अशुद्धोपयोगे वर्तता पाप बाधे, तेथी जीव ससारमा घणो काळ रहे, घणा भव करे, अशुभोपयोगे कठीन पापबध करीने जीव ज्या त्या घणी अशाता पामे, साराश जे पापे अशाता, पुण्ये शाता, कर्मे ससार अने धर्मे मोक्ष थाय छे

४८ प्र०–अल्प पापबंध अने अल्प कर्मबंध शी रीते थाय ? ते तेनी चौभंगी सहित कहो

उ०–पांच इंद्रिय अने त्रण योगना अशुभ व्यापारमां तदाकारपणे न परिणमे, सखेद प्रवर्ते तो अल्प पापबंध थाय, ते आलोयणे निंदागर्हा करतां छूटे, तथा शुद्धोपयोगे जे कर्म बंध नीपजे ते भोगवे छुटे, पाप प्रवृत्ति करतां तीव्र मलीन परिणामे तन्मय थतां तीव्ररसे घणा निविड कर्म बांधे, अने घणी अशुभ योगनी हलचले पाप पुद्गल घणा मेळवे, पण तदाकारपणे तीव्र कषाय अनुबंध न होय तो शिथिल बंध करे, एम कोइ जीवने पाप घणु अने कर्मबंध अल्प, कोइने कर्मबंध बहु अने पाप अल्प, कोइने पाप घणु अने कर्मबंध पण घणो, अने कोइने पापबंध कर्मबंध एके नहि, एम कर्मबंध अने पापबंध आश्रि चौभंगी जाणवी

४९ प्र०–धर्म, कर्म अने भर्म शाथी नीपजे ?

उ०–शुद्धोपयोगे धर्म अने क्रियाए कर्म अने मिथ्यात्वे भर्म निपजे

५० प्र०–पाप, पुण्य अने धर्म ए एक वस्तु छे के जुदी ?

उ०–धर्म, पुण्य अने पाप ए त्रणे वस्तुभिन्न, गतिभिन्न, उपयोगे भिन्न अने फळपणे भिन्न भिन्न छे, धर्म क्षमादि दशविध यति धर्मरूप छे, शुद्धोपयोग परिणति ए संवररूप छे, अने तेनु फळ मोक्ष छे, पुण्य नव प्रकारे बंधाय छे शुभ परिणामे करी, ते

बेताळीश भेदे अनुकुळपणे शाताफळरूपे भोगवाय छे, पुण्य पौद्गलिक जड वस्तु सोनानी बेडी रूप विनाशी ससार हेतुरूप होवाथी मुनिने निश्चयनय त्याज्य छे, पाप अशुभ परिणामे अढार प्रकारे नवाय छे, बीयासी प्रकारे प्रतिकुळपणे अशाता फळरूपे दुःखदायिपणे लोढानी बेडी समान भोगवाय छे, ते तो सर्वथा प्रकारे हेय छे एम धर्म स्वभाव जनित आत्मिक छे, अने पुण्य पाप कर्म जनित पौद्गलिक छे, धर्म उपादेय छे सर्वथा प्रकारे, शुभ कर्म व्यवहारे, अपवादे उपादेय छे, निश्चय स्वरूपे हेय छे, अने अशुभ कर्म तो सर्वथा प्रकारे अने नये हेय एटले त्यागवा योग्य छे.

५१ प्र०—धर्म जीवने शाथी निपजे ?

उ०—ज्या सुधी आत्मा परिणाम सकल्प विकल्पमा वर्ते छे, त्या सुधी शुभाशुभ कर्मबंध निपजे, अने ज्यारे निर्विकल्प दशामा परिणमे, प्रवर्ते त्यारे शुद्ध धर्म प्रगटे, एम विकल्पे कर्म लाभ अने निर्विकल्पे धर्मलाभ जाणवो

५२ प्र०—स्वाभाविक रत्नत्रयी गुणनु लक्षण स्वरूप कहो ?

उ०—बोधप्रकाश अने विलक्षण विचक्षणताए ज्ञाननु स्वाभाविक लक्षण जाणवु, दृढ आस्तिकता, प्रतीतात्मक श्रद्धानगुण ते स्वाभाविक दर्शन लक्षण जाणवु, तथा चित्तनी स्थिरता, अनुकुळता, स्वरूप रमणता ते स्वाभाविक चारित्र लक्षण जाणवु, एम

४८ प्र०—अल्प पापबंध अने अल्प कर्मबंध शी रीते थाय ? ते तेनी चौभंगी सहित कहो

उ०—पांच इंद्रिय अने त्रण योगना अशुभ व्यापारमां तदाकारपणे न परिणमे, सखेद प्रवर्ते तो अल्प पापबंध थाय, ते आलोयणे निंदागर्हा करतां छूटे, तथा शुद्धोपयोगे जे कर्म बंध नीपजे ते भोगवे छुटे, पाप प्रवृत्ति करतां तीव्र मलीन परिणामे तन्मय थतां तीव्ररसे घणां निबिड कर्म बांधे, अने घणी अशुभ योगनी हलचले पाप पुद्गल घणां मेळवे, पण तदाकारपणे तीव्र कषाय अनुबंध न होय तो शिथिल बंध करे, एम कोइ जीवने पाप घणुं अने कर्मबंध अल्प, कोइने कर्मबंध बहु अने पाप अल्प, कोइने पाप घणुं अने कर्मबंध पण घणो, अने कोइने पापबंध कर्मबंध एके नहि, एम कर्मबंध अने पापबंध आश्री चौभंगी जाणवी

४९ प्र०—धर्म, कर्म अने भर्म शाथी नीपजे ?

उ०—शुद्धोपयोगे धर्म अने क्रियाए कर्म अने मिथ्यात्वे भर्म निपजे

५० प्र०—पाप, पुण्य अने धर्म ए एक वस्तु छे के जुदी ?

उ०—धर्म, पुण्य अने पाप ए त्रणे वस्तुभिन्न, गतिभिन्न, उपयोगे भिन्न अने फळपणे भिन्न भिन्न छे, धर्म क्षमादि दशविध यति धर्मरूप छे; शुद्धोपयोग परिणति ए स्वरूप छे, अने तेनुं फळ मोक्ष छे,. पुण्य नव प्रकारे बंधाय छे शुभ परिणामे करी, ते

मूळ बे भेद छे—१ ज्ञानचेतना, २ अज्ञान-
चेतना, ते मध्ये अज्ञानचेतना बे प्रकारे छे ते
१ कर्मचेतना, २ कर्मफळ चेतना, तेमा कर्मचेतना
ते रागद्वेषादिने विषे जीवनु परिणमन जाणवु, अने
शुभाशुभ कर्मफळनु वेदवु ते कर्मफळ चेतना जा-
णवी, ज्ञानचेतनानो कोइ भेद छे नहि, ते आ-
त्माना शुद्धोपयोगरुप शुद्ध परिणति स्पर्शन ज्ञानरूप
छे, ते सम्यगदृष्टि आत्माने होय छे, अने अज्ञान-
चेतना अशुद्धोपयोगना घरनी विभाविकपरिणतिरूप
मोहितमिथ्यादृष्टि जीवने होय छे, ज्ञानचेतना जीवने
प्रगटे त्यारे ते कर्मचेतना तथा कर्मफळ चेतनारुप
अज्ञानचेतना टळे

५५ प्र०—त्रणे काळे जीव जे पापकर्मनो बंध करे छे तेना
निवारण हेतु कया ?

उ०—गया काळना पापकर्म ते प्रतिक्रमणे मटे, अने वर्त-
मानकाळना पापकर्म ते आलोयणे मटे, अने अना-
गतकाळना पापकर्म पच्चख्खाणे टळे

५६ प्र०—चार प्रकारे व्यवहार छे ते कया ?

उ०—१ अनुपचरित सद्भूतव्यवहार ते अनंत ज्ञान,
अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य आदे दइने
आत्मानी अनंत गुणात्मक शुद्धतारूप जाणवो, २
उपचरित सद्भूत व्यवहार ते क्षयोपशमिकज्ञान-
दर्शन, चारित्रादिरूप जाणवो, ३ अनुपचरित्त अ-
सद्भूत व्यवहार ते जीवना अनादि कर्मसंबंध ए-

ए सामान्यपणे रत्नत्रयीनु वस्तुगते लक्षण जाणवु, विशेष प्रकारे तो, वस्तु अनन्त धर्मात्मक सामान्य अने विशेष स्वभावगत समकाळे छे, तेमा जे विशेषात्मक धर्म एटले वस्तुने जाति क्रियादि अनेक विशेषणोयुक्त यथार्थ जाणवी ते ज्ञानगुण, अने वस्तुगते सामान्याववोध ते दर्शन गुण, तथा स्वपर वहेंचण भेदज्ञानरूप जे विवेक, सदाचरण, अपि तु, स्वरूपाचरण ज ज्ञानना फलरूप विरति परिणति गुण छे ते चारित्र लक्षण जाणवु

५३ प्र०–धर्म साभळवो, जाणवो, अने आदरवो ते केवी रीते ?

उ०–वीतरागनी वाणी स्याद्वादरूपे छे तेने आत्मस्वरूप प्ररुपणानी मुख्यताए, जे धर्मनो सद्गुरु महाराज उपदेश करे छे, ते धर्मने अत्यादर सहित साभळवो, स्वसमय एटले स्वशास्त्रानुसार अने परसमय एटले परशास्त्राववोध एम स्वपरज्ञान परीक्षापूर्वक जेम शुद्धाशुद्ध धर्मनो प्रकाश भासन थाय, तेम ते शुद्ध रत्नत्रयी आराधनरूप धर्मने विवेक बुद्धिए जाणवो, तथा जेने पोताना द्रव्यगुण पर्याय पोतानाज शुद्धात्म द्रव्य गुण पर्यायपरिणतिरूपे परिणम्या छे, तेनो प्ररुपेलो धर्म आदरवो इतिभाव

५४ प्र०–चेतना एटले शु ?

उ०–ज्ञान दर्शन स्वभावरूप आत्मलक्षण एटले सुखदु खनु जे भान थवु, चेतवु एटले सुखे दु खे जे चेते तेने चेतना कहिये ते जीवनु लक्षण छे हवे ते चेतनाना

५९ प्र०–त्रिविध मोक्षभेद समजावो ?

उ०–१ भावमोक्ष सम्यग्दृष्टिने होय, २ द्रव्य मोक्ष साधुने होय, ३ गुणमोक्ष ते तेरमा चौदमा गुणस्थानि केवळी भगवतने होय

६० प्र०–त्रिविध चेतना केवी रीते कोने होय ? ते कहो

उ०–१ कर्मचेतना त्रसजीवने, २ कर्मफळ चेतना एकेंद्रियादिकने, ३ ज्ञान चेतना सम्यग्दृष्टिनेज होय

६१ प्र०–त्रिविध ससारी जीवनु स्वरूप समजावो ?

उ०–१ भवाभिनदी जीव ते जेने ससारने विषे देह, गेह, स्त्री, पुत्र, धनादि परिग्रह उपर तन्मय राग आनद वर्तवारूप ससाराभिमुखपणु मस्तपणे होय, विषय कषायादिमलीनपरिणतिमा ऐक्यता वर्ते, अने धर्मध्यानादि साधनमा भेदभाव रहे एवु भवाभिनदीपणु मिथ्यादृष्टि मोहमूढ जीवोने होय छे, तेना नाम–लोभि, कृपण, दयामणो, कपटी, मत्सरी एटले अदेखो, विकण एटले सदा भयवान, अज्ञानि जेना सघळा आरभ कामो निष्फळ थाय छे एवो ते कठोर जाणवो, २ पुद्गलानदि, जीव ते सम्यक्त्विने कहिये, केम जे तेने शुभाशुभ कर्मोदयो पुद्गलनेविषे रति वेदावे एटले उपरथी सारा लागे, पण अतर्मा सुखरूप वेदवापणु न होय, खेद थाय, केम जे ससारमा तेने काइपण खरेखरा आनदरूप नथी, एम एणे जिनवचनानुसार अतरग प्रतीतिपूर्वक जाण्यु छे माटे तेने ससार प्रवृत्ति करता अनादि भववा-

टले ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मपुद्गलोनु आत्मप्रदेशे अवस्थान छे ते जाणवो, ४ उपचरित असद्भूत व्यवहार ते लौकिक मान्यनारूप देशाचार रुढिरूप, ज्ञाति, पच विगेरेना कल्पित कायदा, नियमरूप, तथा अनादिकाळथी जीवने लागेली परवस्तुनेविषे मारापणानी बुद्धिरूप स्त्री, पुत्र, बंधु, माता, पिता, स्वजनपरिवार, मित्र, शत्रु, घर, हाट, वस्त्रादि सर्व परिग्रह ममतानी मिथ्या कल्पनारूप उपचरित असद्भूतव्यवहार जाणवो

५७ प्र०—त्रिविध कर्मनु स्वरूप समजावो ?

उ०—१ द्रव्यकर्म ते ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मपुद्गलो जे आत्मप्रदेशे लागेला छे ते, २ भावकर्म ते रागद्वेषादि आत्मानी अशुद्धविभाविक परिणति, ३ नोकर्म ते औदारिकादि पाच शरीररूप जाणवा

५८ प्र०—चतुर्विध दयानु स्वरूप कहो ?

उ०—१ द्रव्यदया ते मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीवने होय ते परपौद्गलिकभावरूप परहस्ते वेचाणी, रागद्वेषे हणाइ ते नथी जाणतो एवी जे अनुपयोगरूप नाम मात्र दयास्वरूप ते द्रव्यदया एक रीते परदयाभा, पण अतर्भवे छे, २ परदया ते खट्काय जीवरक्षारूप विरतिवंत जीवने होय ते सम्यक्दृष्टि अने मिथ्यादृष्टि बनेने संभवे छे, ३ भावदया ते शुद्धात्मोपयोगरूप सम्यग्दृष्टिने ज होय, केम जे पोतानो आत्मा दयारूपज छे एम जाणीने ते प्रवर्ते छे, ४ स्वदया ते सम्यग्दृष्टि मुनि, क्षपकश्रेणि आरुढने होय छे.

उ०—घणो काळ रहे ते रोग कहिए, अने तत्काळ प्राणघात करे ते आतंक

६४ प्र०—बळ, वीर्य, अने पराक्रममा शुं फेर ?

उ०—शारीरिक शक्ति ते बळ, अने आत्मिक शक्ति ते वीर्य अने शुभाशुभ कर्मोदयानुसार पराक्रम जाणवुं

६५ प्र०—सम्यक्त्वी अने मिथ्यात्वीने मोहादिकर्मबंध स्थितिमा शो फेर छे ?

उ०—सम्यक्त्व ते जीवनी सत्तारुप स्वद्रव्य तत्त्वमत छे, ते ज्यारे पोतानो समय पामीने पडे तोपण तेने मिथ्यात्व पर्याय, द्रव्यगुणरुपे न परिणमे तेथी तेने मोहादिकर्मनी उत्कृष्ट स्थिति बंधाती नथी, माटे तेने मिथ्यात्व पर्याय परिणमता तीव्रकषायोदये पण सम्यक्त्व प्राप्तने एक कोटाकोड सागरोपम माठेरो स्थितिबंध थाय छे, एम समजाएल छे, पछीतो ज्ञानवंत बहुश्रुत कहे ते सत्य, अने अनादि गाढ मिथ्यादृष्टिने तो तिव्रकषायोदये उत्कृष्ट सित्तेर कोडाकोडी सागरोपमनो मोहनीयबंध पडे छे

६६ प्र०—हवे पुद्गल ते कर्म छे, अने जीव ते पण कर्म छे, ते शी रीते ?

उ०—पुद्गल परमाणु विभागरूपे परिणमे त्यारे द्वयणुकादि स्कंधकर्म निपजे, अने जीवपण पोतानो स्वभाव म्हेलीने विभावरूपे परिणमे त्यारे ते पण कर्मरूप थइ पुद्गल कर्मवर्गणाने ग्रहे, तेथी जीव पण परमार्थे

सना आवी जयारुप पुद्गलानंद होय पण भवाभि-
नदिपणु टळ्यु छे माटे सम्यग्दृष्टि जीवने पुद्गला-
नदि कहिये, ३ आत्मानदि जीव ते जेने केवळ
आत्मिक आनद, शुद्ध रत्नत्रय धर्म, तन्मयपणे, स्वरूप
लीनताए, समस्त व्याकुळता रहित, सहजस्वभाव विला-
सिपणारूप मुनि महात्माओने-योगीश्वरोने होय छे

६२ प्र०-सद्गति अने दुर्गति ते शार्थी थाय छे ? ते विस्ता-
रथी स्पष्ट समजावो

उ०-शुभोपयोगे सद्गति, अने अशुभोपयोगे दुर्गति, अशुभोपयोगे ससार लाभ अने शुद्धोपयोगे एटले स्वभाव परिणतिए तन्मयपणे परिमणता मुक्ति थाय, कारण के शुभ प्रकृतिने उदये जीवना योग शुभ वर्ते, तेथी धर्म हेतु शुभ क्रिया साधना करे, तेथी पुण्य बाधे अने तेथी सद्गति थाय छे, तथा अ-शुभोपयोगे अशुभ कर्मनो उदय थता योग अशुभ वर्ते, तेथी अशुभ क्रिया विषयादि सेवे तेथी पाप बधाय छे, अने तेथी दुर्गति थाय छे, ते माटे पुण्य पाप शुभाशुभयोगने आयत छे, अने धर्माधर्म ते शुद्धाशुद्ध उपयोगने आयत छे, अर्थात् राग, द्वेष, मोहजनित अशुद्धोपयोगे अधर्म छे, तेज मिथ्यात्व छे, अने अशुद्धोपयोग ते रत्नत्रयरूप शुद्धात्म परिणति, वीतरागभाव तेज धर्म छे, अने तेज सम्यक्त्व छे

६३ प्र०-रोगातक ते शु ? अथवा रोग अने आतक एटले शु ?

गुण, ४ अधोगति, सक्लेशरूप अशातादि दुःख आपे ते पापनो गुण, ५ शुभाशुभ कर्मनु आववु ते आस्रवनो गुण, ६ शुद्धोपयोगे शुभाशुभ कर्म आ-श्रवनो निरोध ते सवरनो गुण, ७ नवा कर्म पूर्व कर्मनी साथे मळीने बधाय ते बधनो गुण, ८ शु-भाशुभकर्म, आत्मप्रदेशथी साटन थाय, देशथकी ते निर्जरे ते निर्जरानो गुण, ९ आत्मप्रदेशथी सर्वांगे कर्म पुद्गलोनो क्षय ते मोक्षनो गुण जाणवो

६९ प्र०–केवा श्रावकने स्वसमय परसमयना जाण कहिये ?

उ०–जीवाजीवादिक नवतत्त्वने यथार्थ जाणे एटले जीव निर्जरा, सवर अने मोक्षने उपादेयरूपे जाणी आदरे, अने अजीव पुण्य, पाप, आस्रव, अने बधने हेयरूपे जाणी तेनो त्याग करे तथा नव तत्त्वने चार प्रमाणे, साते नये, चार निक्षेप, द्रव्य-भाव भेदे, स्याद्वादशैलिए षट् द्रव्यादि तेना गुण पर्यायना यथार्थ स्वरूप भासन पूर्वक जेणे भले प्रकारे जाण्या छे तेने ज्ञानी श्रावक कहिये

७० प्र०–कर्ताए कर्म अने क्रियाए बध ते शी रीते ?

उ०–जेवो कर्ता होय तेवु कर्म निपजे, तथा ज्या जेवा हेतु त्या तेवी क्रिया थाय, अने ते शुभाशुभ क्रियाए शुभाशुभ कर्म बध नीपजे, कह्यु छे के –

दुहो

कर्ता परिणामी द्रव्य, कर्मरूप परिणाम,
क्रिया परजायकी फेरे, वस्तु एक त्रय नाम

कर्मरूप जड अजीवज कहेवाय, ते ज्यारे सम्यक्त्व पामे त्यारे पोतापणु ओळखे, परथी पोताने न्यारो लखे अने तेथी ते परपराये अकर्मरूप थाय छे, माटे तेने पुद्गलकर्म पुद्गल प्रत्यक्षथी उदयआश्रि रह्या पण आत्मप्रतक्षथा गया ए भाव जाणवो

६७ प्र०—चार प्रकारे नव तत्त्वनु स्वरुप विस्तारथी कहो ?

उ०—१ नामथी एटले जीव अजीव पुण्य पापादि नव तत्त्वना नाम सूत्रथी गाथानुसार जाणे, २ गुणथी एटले जीवाजीवादि नव तत्त्वना गुण भेदादिक अर्थथी जाणे, लक्षण, स्वरूप लक्षणथी एटले जीवनु लक्षण चेतना, अजीवनु लक्षण अचेतनपणु इत्यादि लक्षण स्वरूपे नव तत्त्व ओळखे, ४ परिणामथी एटले जीव जीवरूपे परिणमे, अजीव अजीवरूपे परिणमे इत्यादि नवे तत्त्व आप आपरूपे परिणमे ते परिणामथी चोथो भेद जाणवो

६८ प्र०—नवे तत्त्वोनु टुक लक्षण स्वरूप कहो

उ०—१ जीव असख्यात प्रदेशी, अनत गुणमय ते शुद्ध चेतनागुण ते जीवनु लक्षण जाणवु, २ वर्णादि पाच अजीवना गुण ते जेम धर्मास्तिकायनो गुण चलण सहायकता, आकाशास्तिकायनो गुण अवगाहन दान समर्थता, काळनो गुण समयवर्तना लक्षण अने पुद्गलास्तिकायनो सडण, पडण, नाश, मिलण, विखरणादि वर्ण गध रसादिरूप जाणवो, ३ तथा उर्ध्वगति, इद्रियसुख, शाता आपे ते पुण्यनो

जीव परिणामे द्रव्य छे, तेने सगे जीवने बुद्धि-
पूर्वक निज परिणाम देखाया –वादळे ढाकेलो सूर्य
मेघ घटाए आच्छादित छे, तोपण सूर्यप्रभा प्रगट
अनुमाने करी जाणी लोको दिवस अने रात्रिनो
विभाग समजी शके छे, तेथी सूर्य दीठो जेम
तेम आत्मा पण जिन
परिणामद्वाराए निर्मळ
जेम धूम दिठे अ
आत्मा, सम्यग्दृ
अनुभवरूपे देखे
छे, एवीज रीते
पण थाय तेने
निज स्वरूपे एकाते
जाण्यो, तेवोज रागद्वेषे
स्वरूपाचरण चारित्र प्र

पूआइसु वयसहिय पू
मोहकोहविहीणो, परि

ए स्वरूप चोथा गुणठाणेथ
विशुद्धतर, विशुद्धतम थाये
(६२ प्रश्न)

७३ प्र०–निर्जरानु स्वरूप, द्रव्यथी तथा
अने मिथ्यादृष्टिने जेम होय ते

उ०–निर्जरा एटले कर्मनु साटन करवु,
मिथ्यादृष्टिने निर्जरा, आस्रवक्रपूर्व

माटे श्री जैन दर्शन, उपयोगे तथा अक्रियभावे छे जैन दर्शन श्रद्धान शुद्धोपयोगे छे, अने शुद्धोपयोग आत्मभावे छे, अक्रियभावे छे, अने बीजा योगे क्रिया धर्म छे, एम स्याद्वाद शैली पूर्णतारूप सर्वोत्कृष्ट सर्वोत्तम रीते महा कल्याणदायक श्री जिनशासन जयवंतु वर्ते छे, तेने हे चेतन ।।। तु अत्यंत आदरपूर्वक स्विकार ।

७१ प्र०—संवरतत्त्वनु स्वरूप द्रव्यथी अने भावथी कहो ?

उ०—योग प्रत्ययिक कर्मने मुनि तप संजमादिके करी निर्जरावे छे, अने बीजा आवता कर्मनो रोध करे छे, तथा अशुद्धोपयोग प्रत्ययिक कर्मने रत्नत्रयीरूप आत्मिकधर्मने विषे प्रणमावी शुद्धोपयोगे करी आत्मसत्ताने शुद्ध करी कर्म मळथी मुक्त थाय छे एम योगसंवर आराधक मुनि, उदय आवता कर्मने निष्फळ करे, रोके ते द्रव्यसंवर, अने उपयोग संवरे करी मुनि आत्मसत्ता शोधे एटले प्रदेशथी कर्म क्षय करे ते भावसंवर, अर्थात् योग संवर ते द्रव्य अने उपयोग संवर ते भाव

७२ प्र०—छद्मस्थ सम्यक्दृष्टि, प्रत्यक्ष स्वरूप केम देखे ?

उ०—परोक्ष प्रत्यक्ष अनुभवगोचर अनुमान प्रमाण प्रतीते प्रत्यक्ष वस्तु स्वरूप देखे एटले माने, ते आवी रीते—पोताना परिणाम जे शुभाशुभ कर्म जनित छे ते रागद्वेषद्वारे, सम्यक् बुद्धिमार्गे ते परिणामने पोते यथार्थ लखे, ते प्रत्यक्ष देखवु कहिये ते परिणाम आत्मद्रव्यथी शाथी उठे छे ? तो के

उ०—आत्मद्रव्यमा द्रव्यनी शक्ति ते सम्यग्दर्शन, गुणनो प्रकाश ते सम्यग्ज्ञान, अने पर्यायनु टरणपणु अर्थात् स्थिरता ते सम्यक्चारित्र जाणवु, एमज दर्शन गुणे द्रव्य शक्ति प्रगटे, ज्ञानगुणे गुणो प्रकाशे अने चारित्रगुणे स्थिरता गुण एटले स्वरूप रमणता प्रगटे, वधे

७६ प्र०—उपयोग एटले शु ? ते केटला छे, वगेरे फळ भेद स्वरूप स्पष्ट कहो

उ०—चेतनानु शुद्धाशुद्ध परिणमन, तेने उपयोग कहिये ते वे प्रकारे छे, एक शुद्ध अने बीजो अशुद्ध, शुद्धोपयोगे सिद्धिगति एटले मोक्ष थाय, अने अशुद्धोपयोगना वे भेद छे, एक शुभ अने बीजो अशुभ, त्या दान पूजादि परिणाम ते शुभोपयोग कहिये, तेणे करी पुण्यबंध थाय, अने तेथी सद्गति पामे, अने हिंसादि पापपरिणाम ते अशुभोपयोग कहिये, तेथी पापबध थाय, अने तेथी जीव दुर्गति पामे (प्र ६८)

७७ प्र०—पूर्वोक्त शुद्धाशुद्धोपयोग सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि आश्रि केवी रीते होय ? ते समजावो

उ०—शुद्धोपयोग सम्यक्त्व पाम्या पछी होय छे, माटे ते सम्यक्दृष्टिने जाणवो, ते चोथा गुणठाणाथी बारमा सुधी शुभोपयोग मिश्रित होय छे, पछी तेरमे पूर्ण पद थाय छे, अशुद्धोपयोग सर्व ससारी मिथ्यादृष्टि जीवोने होय छे, ते मध्ये मिथ्यादृष्टिने

दृष्टिने सवरपूर्वक द्रव्यभावनिर्जरा होय, केमजे तेने ज्ञानशक्ति अने वैराग्यनु बळ छे तेथी, त्या ज्ञानशक्ति ते शुद्ध स्वरूपनो अनुभव, अने वैराग्यबळ ते अशुद्धोपयोगनु निवारण, हवे ज्ञानोपयोगे भाव निर्जरा शी रीते थाय ? ते देखाडे छे —राग, द्वेष मोहादि मलीनपरिणतिने घटाडवी ते भाव निर्जरा अने कर्मवर्गणानु घटाडवु थाय त्या द्रव्य निर्जरा जाणवी, एटले जे उदय आवे ते निर्जरे, तेवा पाछा न बधाय, बध अल्प अने निर्जरा घणी, एवी रीते ज्ञानशक्तिये वैराग्यबळे सम्यग्दृष्टि, द्रव्य भाव निर्जरा करे छे, मिथ्यादृष्टिने कर्म निर्जरा अल्प अने फरी बध घणो थाय छे मार्गानुसारी सन्मुखभावी पण कर्म निर्जरा अवसरे अल्प बध करे, तोपण वस्तुगते सत्ता एटले कर्म शक्तिनी निर्जरा तो सम्यग्दृष्टिने ज थाय छे (प्रश्न पा ६४)

७४ प्र०–आत्मप्रदेशे गुण पर्यायनी घटना शी रीते छे ?
उ०–आत्माना असख्यात प्रदेश छे, एकेक प्रदेशे अनता ज्ञानादि गुणो, अनत शक्ति छे, वळी एकेक प्रदेशे उपयोग पलटणरूप ज्ञानादि गुणोना अनत पर्यायो छे, आवी शुद्धात्मप्रदेशे घटना जाणवी, अने अशुद्ध आत्मप्रदेशे पूर्वोक्त गुण पर्यायो एकेक प्रदेशे रहेली अनत कर्म वर्गणायुक्त छे, तेथी अशुद्ध संसारीपणे वर्ते छे (पा प्र ६९)

७५ प्र०–दर्शन, ज्ञान, चारित्रनी प्राप्ति, आत्माना द्रव्य गुण पर्यायथकी सिद्ध करो

छे के चढी गयो छे, ते जाणवा माटे ते टोपमाथी एक चोखो तपासी जोता सर्वेनी खात्री थाय छे, तेम लक्षणेलक्षित सम्यग्दर्शननु स्वरूप जाणवु

७९ (पा प्र ७०) प्र०—सम्यग्दृष्टि देशविरति तथा सर्वविरति महात्माओ सम्यग्दर्शनवडे आत्मानो अनुभव केवी रीते करे ?

उ०—जेम वस्तु विचारता, ध्यान धरता मन विश्राम पामे छे, रस स्वाद सुख उपजे छे, परिणाम ठरे छे, ते अनुभव प्रत्यक्ष जाणवु, जेम साकरना एक गागटाने चाखी जोता हजार मण साकरनो अनुभव थाय छे, तेम सम्यग्दृष्टि जीव असे आत्माने वळी केवळी सदृश प्रत्यक्ष अनुभवे तेथीज कह्यु छे जे —

असे होय इहा अविनाशी पुद्गल तमासीरे,
चिदानद घन सुजश विलासी, केम होय जगनो आसीरे
ए गुण वीरतणो न विसारु, सभारु दिन रातरे,
पशु टाळी सुररूप करे जे, समकितने अवदातरे १

८० (पा प्र ७०) प्र०—मुनिने सम्यग्दर्शनना बळे आत्मा स्वरूप प्रत्यक्ष अनुभवगोचर केवी रीते होय ?

उ०—ज्या द्रव्य गुण पर्याय एकीभूत अभेद रत्नत्रयरूपे मुनि प्रणमे, त्या स्वरूप निजपद कद प्रत्यक्ष देखे, स्वरूप रमण सुखास्वादन अनुभवे

८१ प्र०—दर्शन अने ज्ञानमा मूळ शु फेर छे ? तथा छद्मस्थ सम्यग्दर्शनी अने केवळदर्शनी ए बेना देखावामा शो फेर ?

शुभ क्रिया होय पण शुभोपयोग नहि, केमजे शुभो-
पयोग तो शुद्धना वरनो छे, ते तो सम्यग्दृष्टिने
अणइच्छकरूपे निर्नकभावे होय छे, अने मिथ्या-
त्वीने शुभोपयोग शुभ क्रियारूप, शुभाचाररूप होय
पण नियाणारूप एटले पौद्गलिक सुख आशारूप होय,
ते माटे अशुभ जाणवो (प्रत्यन्तरमा प्र ६९)

७८ प्र०—सम्यग्दर्शननु स्वरूप अनुमाने तथा लक्षणे सिद्ध करो

उ०—श्री वीतराग देवना वचननी दृढ प्रतीति एटले श्री जिने भाख्यु तेज सत्य ते कदापि काळे अन्यथा न होय, भले मारी बुद्धिमा नथी आवतु तोपण वीतराग देवने मिथ्या कथन करवानु कइ पण प्रयोजन दिसतु नथी, जेवु पोते केवळज्ञाने दीठु छे, तेवुज योग्य प्राणियोने केवळ हित बुद्धिए परम-करुणाभावे प्रकाश्यु छे, माटे सुइनी अणी जेटला प्रदेशमा अनता जीवो पण तेज वचन प्रतीतिरूप आगम अने अनुमान प्रमाणे सम्यक्त्वी माने छे तेवीज रीते आत्मा पण साक्षात् दीठो माने छे, वळी जीव चेतना लक्षणवत छे, चेतना ते सुख दु खनु भान, अने सुख दु खनो अनुभव वेदनीय कर्म द्वारे प्रत्यक्ष छे, तेथी ते लक्षणे सुख दु खनो जाणनार आत्मा छे, एम प्रतीति करे छे एम अश प्रत्यक्षे सर्व प्रत्यक्ष थयो, जेम एक मोटा टोपमा एक खाडी भात रधायेल तैयार थयो छे, ते काचो

छे के चढी गयो छे, ते जाणवा माटे ते टोपमाथी एक चोखो तपासी जोता सर्वेनी खात्री थाय छे, तेम लक्षणेलक्षित सम्यग्दर्शननु स्वरूप जाणवु

७९ (पा प्र ७०) प्र०—सम्यग्दृष्टि देशविरति तथा सर्वविरति महात्माओ सम्यग्दर्शनवडे आत्मानो अनुभव केवी रीते करे ?

उ०—जेम वस्तु विचारता, ध्यान धरता मन विश्राम पामे छे, रस स्वाद सुख उपजे छे, परिणाम ठरे छे, ते अनुभव प्रत्यक्ष जाणवु, जेम साकरना एक गागटाने चाखी जोता हजार मण साकरनो अनुभव थाय छे, तेम सम्यग्दृष्टि जीव असे आत्माने वळी केवळी सदृश प्रत्यक्ष अनुभवे तेथीज कह्यु छे जे—

असे होय इहा अविनाशी पुद्गल तमासीरे,
चिदानद घन सुजश विलासी, केम होय जगनो आसीरे
ए गुण वीरतणो न विसारु, सभारु दिन रातरे,
पशु टाळी सुररूप करे जे, समकितने अवदातरे १

८० (पा प्र ७०)प्र०—मुनिने सम्यग्दर्शनना बळे आत्मा स्वरूप *प्रत्यक्ष अनुभवगोचर केवी रीते होय ?*

उ०—ज्या द्रव्य गुण पर्याय एकीभूत अभेद रत्नत्रयरूपे मुनि प्रणमे, त्या स्वरूप निजपद कद प्रत्यक्ष देखे, स्वरूप रमण सुखास्वादन अनुभवे

८१ प्र०—दर्शन अने ज्ञानमा मूळ शु फेर छे ? तथा छद्मस्थ सम्यग्दर्शनी अने केवळदर्शनी ए बेना देखावामा शो फेर ?

शुभ क्रिया होय पण शुभोपयोग नहि, केमजे शुभोपयोग तो शुद्धना घरनो छे, ते तो सम्यग्दृष्टिने अणइच्छकरूपे निर्जकभावे होय छे, अने मिथ्यात्वीने शुभोपयोग शुभ क्रियारूप, शुभाचाररूप होय पण नियाणारूप एटले पौद्गलिक सुख माटेरूप होय, ते माटे अशुभ जाणवो (प्रत्यन्तरमा प्र ६९)

७८ प्र०—सम्यग्दर्शननु स्वरूप अनुमाने तथा लक्षणे सिद्ध करो

उ०—श्री वीतराग देवना वचननी दृढ प्रतीति एटले श्री जिने भाख्यु तेज सत्य ते कदापि काळे अन्यथा न होय, भले मारी बुद्धिमा नथी आवतु तोपण वीतराग देवने मिथ्या कथन करवानु कइ पण प्रयोजन दिसतु नथी, जेवु पोते केवळज्ञाने दीठु छे, तेवुज योग्य प्राणियोने केवळ हित बुद्धिए परमकरुणाभावे प्रकाश्यु छे, माटे सुइनी अणी जेटला प्रदेशमा अनता जीवो पण तेज वचन प्रतीतिरूप आगम अने अनुमान प्रमाणे सम्यक्त्वी माने छे, तेवीज रीते आत्मा पण साक्षात् दीठो माने छे, वळी जीव चेतना लक्षणवत छे, चेतना ते सुख दुखनु भान, अने सुख दुखनो अनुभव वेदनीय कर्म द्वारे प्रत्यक्ष छे, तेथी ते लक्षणे सुख दुखनो जाणनार आत्मा छे, एम प्रतीति करे छे एम अश प्रत्यक्षे सर्व प्रत्यक्ष थयो, जेम एक मोटा टोपमा एक खाडी भात रधायेल तैयार थयो छे, ते काचो

तथा काययोगे षट्कायनी दयारूपे जयणापूर्वक प्रवर्तन छे जयचरेजयचिट्ठे, इत्यादि

८३ प्र०–मुनि, रत्नत्रयना शुद्धाराधनथी जन्म जरा अने मरणना भय शी रीते टळे ?

उ०–सम्यग्दर्शनथी घणा जन्म मटे, सम्यगज्ञानथी जरा दु ख जे वेदना ते मटे, तथा सम्यग्चारित्र गुणे मरण भय टळे, एम त्रण गुणे जन्म जरा मरणना भय मटे

८४ (७१) प्र०–आगमप्रमाण, अनुमानप्रमाण, उपमाप्रमाण, अने प्रत्यक्षप्रमाणे, आत्मानी सिद्धि दाखवो, अने ते प्रत्येक प्रमाण मानता जे फळ थाय ते कहो

उ०–१ आगमप्रमाणे, षड्द्रव्य, षट्कायस्वरूपे जे वीतरागे भाख्या छे ते वचनोने तहत्ति करी मानवा, पण सदेह के युक्तायुक्तपणु न करवु, ते मानता आत्माने प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन धर्मनी पुष्टि थाय, २ अनुमानप्रमाणे लक्ष्य लक्षणे निर्धार थाय, जेम सुख दु ख वेंदता' आत्मानु चेतना लक्षण जणाय छे, तथा जेम धूम्र दिठे अग्नि होयानी प्रतीति थाय छे, अहि आत्माने वस्तुगते अनुभवीने वस्तुना गुणनो अशे प्रत्यक्ष अनुभव थाय, ३ उपमा कहेवी ते, जेम " आजने काळे सम्यक्त्व पाम्यो ते जाणे केवलज्ञान पाम्यो " एम, ए मानता आत्माने विनयगुणनी पुष्टि थाय, ४ प्रत्यक्ष प्रमाणे जेवा परमात्माए कह्या छे, तेवाज अने पुण्य पापना

उ०—छद्मस्थने प्रथम देखवु एटले दर्शन उपयोग अने पछी जाणवु एटले ज्ञानोपयोग होय, उउमथ्थाण दंसणपुव-नाण ॥ दर्शन ते सामान्यबोध, अने ज्ञान ते विशेषावबोध जाणवो, दर्शन ते सामान्यावबोध छे झात्काररूप प्रतिभास थाय थोडो काल रहि पछे ज्ञान माहे मले ज्ञान विशेषावबोध छे घणो काल रहे ते माटे आत्मदर्शन जेणे कर्यु ' तेणे मुद्यो भवभय कूपर " एम श्रीयशोविजयजीए पण कयु छे तथा " प्रवचन अजन जो सद्गुरु करे तो देखे परमनिधान जिनेशर एवु श्री लाभानदजीए पण कयु छे छद्मस्थ सम्यगदृष्टि आत्मस्वरूपने देखे, पण साक्षात् करामलकवत् एटले हाथनी हथेळीमा रहेला पाणीमाजे हथेळीनी रेखाओ स्पष्ट देखाय तेम साक्षात् असख्यात प्रदेशी, अरूपी आत्माने केवळदर्शनी ज देखे, पण छद्मस्थ तो प्रतीते, अनुमाने अनुभवे, स्वरूपे देखे एटले जिनवचनप्रतीते आत्मद्रव्य स्वरूप दिठु, अनुमाने चेतनालक्षणगुणे प्रत्यक्ष दिठो, अनुभवे ते परिणमनपर्यायरूपे अने स्वरूपे ते अभेद-रत्नत्रयात्मकनिजपदकद दिठो ए रीते आत्मस्वरूपनु दर्शन छद्मस्थ सम्यग्दृष्टिने सभवे छे

८२ प्र०—मुनिने त्रणयोग रत्नत्रयरूपे केवी रीते परिणमे छे ?

उ०—मनयोगे दर्शन श्रद्धानरूपे छे, जे वस्तुना निर्धारथी चळे नहि, वचनयोगे ज्ञान भणवु, यथार्थ उपदेश करे छे, सत्य प्ररूपणा ज्ञानरूप परिणमन होय,

तथा काययोगे षट्कायनी दयारूपे जयणापूर्वक प्रवर्तन छे जयचरेजयचिट्ठे, इत्यादि

८३ प्र०—मुनि, रत्नत्रयना शुद्धाराधनथी जन्म जरा अने मरणना भय शी रीते टळे ?

उ०—सम्यग्दर्शनथी घणा जन्म मटे, सम्यगज्ञानथी जरा दु ख जे वेदना ते मटे, तथा सम्यग्चारित्र गुणे मरण भय टळे, एम त्रण गुणे जन्म जरा मरणना भय मटे

८४ (७१) प्र०—आगमप्रमाण, अनुमानप्रमाण, उपमाप्रमाण, अने प्रत्यक्षप्रमाणे, आत्मानी सिद्धि दाखवो, अने ते प्रत्येक प्रमाण मानता जे फळ थाय ते कहो

उ०—१ आगमप्रमाणे, षड्द्रव्य, षड्कायस्वरूपे जे वीतरागे भाख्या छे ते वचनोने तहत्ति करी मानवां, पण सदेह के युक्तायुक्तपणु न करवु, ते मानतां आत्माने प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन धर्मनी पुष्टि थाय, २ अनुमानप्रमाणे लक्ष्य लक्षणे निर्धार थाय, जेम सुख दु ख वेदता आत्मानु चेतना लक्षण जणाय छे, तथा जेम धूम्र दिठे अग्नि होयानी प्रतीति थाय छे, अहि आत्माने वस्तुगते अनुभवीने वस्तुना गुणनो अशे प्रत्यक्ष अनुभव थाय, ३ उपमा कहेवी ते, जेम " आजने काळे सम्यक्त्व पाम्यो ते जाणे केवलज्ञान पाम्यो " एम, ए मानता आत्माने विनयगुणनी पुष्टि थाय, ४ प्रत्यक्ष प्रमाणे जेवा परमात्माए कह्या छे, तेराज अने पुण्य पापना

प्रत्यक्ष फळ देनारीए छीए, इत्यादि जाणवु, ए मानता आत्माने भववैराग्यता गुणनी पुष्टि थाय, विषय कषायथकी निवर्ते एणी रीते चार प्रमाणे आत्माने गुण नीपजे

८५ प्र०—त्रिविध कर्मरोग कयो ?

उ०—१ द्रव्यकर्म ते आठ कर्मनी वर्गणा, २ भावकर्म ते अशुद्धोपयोग एटले आत्मानी रागद्वेषादि अशुद्ध परिणति, ३ नोकर्म ते औदारिकादि पाच शरीर, द्रव्यकर्मनी समीपे कारण कार्यभावे रह्या माटे तेने नोकर्म कहिये, ते त्रण कर्मरोगना वैद्य श्री परमात्मा तथा गणधरादि महात्माओ छे, तेओ पण त्रिविध औषधरूप त्रण प्रकारनी देशना आपे छे— १ यथार्थवाद, २ विधिवाद, ३ चरितानुवाद, तेनो अर्थ —१ यथार्थवाद देशनामध्ये जीवाजीवादिक स्वरूप वार्या, परिणम्या तेथी वस्तु तत्त्वनो प्रकाश थाय, तेणे करी, भावकर्म रोग मटे, रागद्वेषादि विपर्यासपणु टळे, अज्ञाननो उच्छेद थाय, २ विधिवाद देशना मध्ये देशविरतिपणु, सर्वविरतिपणु इत्यादि क्रियानो आदर, शुभोपयोगे आचरतो, प्राणीनो द्रव्यकर्म रोग नाबुद थाय, अनादि कर्मकाट उतरे, आत्मप्रदेश निर्मळता निपजे, तेथी जीवने घणी शाति प्रवर्ते, ३ तथा चरितानुवाद देशना मध्ये शरीर सबधी काम भोग विषयकषायादि मलिनताइ निवर्तन थाय, जेम जबुस्वामी, सुदर्शन

शेठ, मेतार्यजी आदि महात्माओना चारित्र साभळे थके परम वैराग्य शात रस प्रगटे, तेथी नोकर्मनो रोग टळे

८६ प्र०—दर्शनादि अनत चतुष्क प्राप्तिना कारण तथा स्थान कहो

उ०—१ धर्म रूचिथी साभळवो, तथा ज्ञानाभ्यासमा उद्यम रूचि होय तेटलायी सम्यग्दर्शन गुण प्रगटे, २ तत्त्वातत्त्वगवेषक बुद्धि होय तेथी सम्यग् ज्ञानगुण प्रगटे, ३ पाच इन्द्रिय विषय विकार, क्रोधादि कषाय, पाच प्रमाद इत्यादिनी जे त्याग बुद्धि होय तेथी चारित्रगुण निपजे, ४ वस्तुगते, स्वरूपानुभव लग्नता, तल्लीनता होय तेथी वीर्यगुण प्रगटे, हवे ते चारेना स्थान कहे छे—दर्शनगुणनु स्थान चक्षु, ज्ञानगुणनु स्थान हृदय, चारित्रगुणनु स्थान चरण, अने उत्साह इच्छादिरूप वीर्यगुणनु स्थान बाहु छे

८७ प्र०—अहिंसानु स्वरूप तथा तेना विविधभेदो दृष्टात सहित समजावो उ० मूळ जूनी हस्तलिखित प्रतिमा हिंसाना भेदो सबधी प्रश्न छे स्वरूप हिंसा, अनुबध हिंसा, द्रव्य हिंसा, भाव हिंसा, बाह्य हिंसा, परिणाम हिंसा, योग हिंसा, इत्यादि हिंसाना घणा भेद छे साधुजी नदी उतरे छे पण मोक्षवर्ति (मुख्यताए) हिंसाना परिणाम नथी तेथी ते स्वरूप हिंसा जाणवी तथा सम्यग्दृष्टिने देव पूजा, गुरुवदना, साधुने आहारदान इत्यादि कार्ये हिंसा अल्पस्वरूप छे ते माटे ते स्वरूप हिंसा कहेवी,

रागद्वेष परिणामे जे मदबुद्धियी छकाय जीवोने हणे
ते तरतमअध्यवसाये महाकर्मबंध करे तेना अशुभ
विपाक उदये आवे ते अनुबन्ध हिंसा जाणवी अ-
नुपयोगे द्रव्यहिंसा अने तीव्र परिणामे भाव हिंसा
थाय स्वरूप हिंसामांहे बाह्य हिंसा तथा योग
हिंसा भळे छे तथा एक जीवमे हिंसा अल्प पण
उदयकाले दुःख विशेष पामशे ते शेणे ? दुष्ट अध्य-
वसायना अभावे उदय आव्या कर्म निष्फल करे छे
दृढ प्रहारीनी पेठे इत्यादि चोभगीजो अहिंसा अष्टक
ग्रन्थमध्ये विस्तारे छे यथा एकस्यात्पाहिंसा ददाति
काले तथा फलमनल्प अन्यस्यमहाहिंसा स्वल्पफला-
भवतिपरिपाके इत्यादि ॥

उ०—१ स्वरूप अहिंसा, ते जीववध न करवो, तेनु बीजु
नाम बाह्य अहिंसा के योग अहिंसा पण छे, २
हेतु अहिंसा ते जयणाए प्रवर्तन, छकाय जीवनी
रक्षा प्रवृत्ति, ३ अनुबंध अहिंसा ते रागद्वेषादि म-
लिन अध्यवसाय, तीव्र विषय कषायना परिणामे
हिंसानो त्याग जेथी फळ विपाकरूपे आकरो कर्म-
बंध न पडे ते, ४ द्रव्यअहिंसा एटले अनुपयोग
हिंसानो त्याग, ५ परिणाम अहिंसा के भाव अ-
हिंसा ते उपयोग पूर्वक परिणमीने इरादाथी जे हिंसा
करवी तेनो त्याग इत्यादि अनेक भेद जाणवा, हवे
क्रिया फळ भेदरूप चौभगी देखाडे छे —१ हिंसा
अल्प, फळ विपाक अल्प, २ हिंसा अल्प, फळ
विपाक तीव्र, ३ हिंसा तीव्र, फळ विपाक अल्प,

४ हिंसा तीव्र, अने फळ विपाक तीव्र, ए भेद जीवना अध्यवसाय भेद विशेषे, विपाक फळनो पण भेद जाणवो, अहि जमाली, दृढप्रहारी, चिलाती पुत्र कुर्गडुजी इत्यादि दृष्टांतो यथासंभवे भाववा

८८ प्र०—इच्छादिक त्रण योगनु स्वरूप समजावो

उ०—१ इच्छायोग ते शुभ करणी व्रतादि आदरवानी उत्साह इच्छा, दश प्रकारे यतिधर्म आदरवानी इच्छा २ शास्त्रयोग ते हेय, ज्ञेय अने उपादेय मध्येथी उपादेय ते अगीकार करवु ते प्रमाणे शास्त्रानुसार विधिपूर्वक व्रतादि पाळवु ते, ३ सामर्थ्ययोग ते कोइ आत्मा, ज्ञान अने वैराग्यनी प्रबळ शक्तिये अनत काळ भोगववा योग्य जे कर्म तेने थोडा काळमा भोगवी क्षय करे, योगदृष्टिसमुच्चय ग्रन्थे त्रण योगनी व्याख्या करी छे श्री गजसुकुमालजीनी पेठे, कह्यु छे जे —

दुहा

क्रियायोग अभ्यास हे, फळ हे ज्ञान अबध,
दोनुकु ज्ञानी भजे, एकमति मतिअंध १
इच्छा शास्त्र समर्थता, त्रिविध योग हे सार,
इच्छा निज शक्ति करी, विकल योग व्यवहार २
शास्त्रयोग गुणठाणको, पूरण विधि आचार;
पद अतीत अनुभव कह्यो, योग तृतीय विचार ३
रहे यथाबळ योगमे, ग्रही सकळ नय सार,
भावजैनता सो लहे, चहे न मिथ्याचार ४

८९ प्र०—द्रव्य, गुण, पर्याय, शार्यी जगड्या छे ?

उ०—द्रव्य, ज्ञानावरणादि कर्मना आवरणे, तथा गुण, रागद्वेष विभावपरिणतिए, अने पर्याय, मनोयोग कल्पनाए विकारभावने पाम्या छे

९० प्र०— मति तथा श्रुतज्ञानी अने अज्ञानी जे जिनवाणी साभळे तेने शी रीते परिणमे ?

उ०—मति अज्ञानीने विकल्परूपे तथा डामाडोळपणे परिणमे, तथा मतिज्ञानीने निर्विकल्पपणे तथा निर्धारतारूपे परिणमे, श्रुत ज्ञानीने वैराग्यरूपे तथा आस्तिकपणे परिणमे, श्रुत अज्ञानीने विषयरूप तथा नास्तिकरूपे परिणमे, एटले (माटे) सम्यग्दृष्टि जीवो जिनवाणी साभळवाना अधिकारी जाणवा

९१ प्र०—जीव कर्म साथे केवी रीते मळेल छे ? ते दृष्टांत सहित समजावो

उ०—द्रव्यार्थिकनये जीव, तुबीमृत्तिका न्याये कर्म सगाथे मळेल छे, एटले जेम तुबडी उपर माटीनो थर लाग्यो होय पण तुबडीनी अदर कई बगाड न होय तेम आत्माने कर्मनो सबंध जाणवो, तथा पर्यायार्थिकनये आत्मा, कर्म सगाथे खीरनीरपरे, एकरूपे लोलिभूत थयो थको चतुर्गति भ्रमण करे छे

९२ प्र०—सोळ सज्ञा ते कइ अने तेमाथी कया जीवने केटली होय ते कहो ?

उ०—१ आहार, २ भय, ३ मैथुन, ४ परिग्रह, ५ क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ, ९ ओघ, १० लोक,

११ सुख, १२ दुःख, १३ मोह, १४ वितिगिच्छा, १५ शोक, १६ धर्म, ए सोळ सज्ञाओमायी पेहेली दस सज्ञा एकेन्द्रियने, तथा ओघ सिवाय बाकीनी पदर बेन्द्रियादिकने होय अने पचेन्द्रियने सोळे सज्ञा होय

९३ प्र०—क्रोधादि दोषोनी मुख्यता जीवभेद विशेषताए कहो

उ०—चारगतिमा, क्रोध, नरकमा, मान मनुष्यमा, माया तिर्यंचमा अने लोभ देवगतिमा मुख्य होय छे, हवे मनुष्य जातिमा क्रोध रजपुतने, मान क्षत्रियादि कुळवानने, माया गणिका तथा वणिकने, लोभ ब्राह्मणने, राग स्नेही मित्रादिने, खेद तथा द्वेष ते कायर क्लेशी, अदेखा, तथा दीनदुःखीआ सोगीने होय, शोक जुगारीने, चिन्ता चोरनी माताने, भय ते कायरने तथा कृपणादिने विशेष होय

९४ प्र०—धर्म अने कर्म विषे यथायोग्य खुलासो करो

उ०—धर्म ते आत्मभावे शुद्धोपयोगे होय, अने कर्म ते अशुद्धोपयोगे करणी क्रियाए तथा शुभाशुभभावे भवितव्यताए थाय, कर्म ते क्रियाए अने धर्म ते अक्रियारूपे होय जेवी शुद्धोपयोगनी तीव्रता तेवी धर्मनी वृद्धि जाणवी

९५ प्र०—जिनना चार निक्षेपाना स्थान शरीरमा क्या छे ?

उ०—नाम जिननु स्थान जीभमा छे, स्थापना जिननु चक्षुमा, द्रव्यजिननु मनोयोगमा, केम जे श्रद्धा मनमध्ये छे तेथी, अने भावजिननु स्थानक हृदयमा छे

८९ प्र०—द्रव्य, गुण, पर्याय, शायी जगड्या छे ?

उ०—द्रव्य, ज्ञानावरणादि कर्मना आवरणे, तथा गुण, रागद्वेष विभावपरिणतिए, अने पर्याय, मनोयोग कल्पनाए विकारभावने पाम्या छे

९० प्र०— मति तथा श्रुतज्ञानी अने अज्ञानी जे जिनवाणी साभळे तेने शी रीते परिणमे ?

उ०—मति अज्ञानीने विकल्परूपे तथा डामडोळपणे परिणमे, तथा मतिज्ञानीने निर्विकल्पपणे तथा निर्धारतारूपे परिणमे, श्रुत ज्ञानीने वैराग्यरूपे तथा आस्तिकपणे परिणमे, श्रुत अज्ञानीने विषयरूप तथा नास्तिकरूपे परिणमे, एटले (माटे) सम्यग्दृष्टि जीवो जिनवाणी साभळवाना अधिकारी जाणवा

९१ प्र०—जीव कर्म साथे केवी रीते मळेल छे ? ते दृष्टांत सहित समजावो

उ०—द्रव्यार्थिकनये जीव, तुबीमृत्तिका न्याये कर्म सगाथे मळेल छे, एटले जेम तुबडी उपर माटीनो थर लाग्यो होय पण तुबडीनी अदर कई बगाड न होय तेम आत्माने कर्मनो सबध जाणवो, तथा पर्यायार्थिकनये आत्मा, कर्म सगाथे खीरनीरपरे, एकरूपे लोलिभूत थयो थको चतुर्गति भ्रमण करे छे

९२ प्र०—सोळ सज्ञा ते कइ अने तेमाथी कया जीवने केटली होय ते कहो ?

उ०—१ आहार, २ भय, ३ मैथुन, ४ परिग्रह, ५ क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ, ९ ओघ, १० लोक,

११ सुख, १२ दुःख, १३ मोह, १४ वितिगिच्छा, १५ शोक, १६ धर्म, ए सोळ सञ्ज्ञाओमाथी पेहेली दस सञ्ज्ञा एकेन्द्रियने, तथा ओघ सिवाय बाकीनी पदर बेन्द्रियादिकने होय अने पचेन्द्रियने सोळे सञ्ज्ञा होय

९३ प्र०—क्रोधादि दोषोनी मुख्यता जीवभेद विशेषताए कहो

उ०—चारगतिमा, क्रोध, नरकमा, मान मनुष्यमा, माया तिर्यचमा अने लोभ देवगतिमा मुख्य होय छे, हवे मनुष्य जातिमा क्रोध रजपुतने, मान क्षत्रियादि कुळवानने, माया गणिका तथा वणिकने, लोभ ब्राह्मणने, राग स्नेही मित्रादिने, खेद तथा द्वेष ते कायर क्लेशी, अदेखा, तथा दीनदुःखीआ सोगीने होय, शोक जुगारीने, चिन्ता चोरनी माताने, भय ते कायरने तथा कृपणादिने विशेष होय

९४ प्र०—धर्म अने कर्म विषे यथायोग्य खुलासो करो

उ०—धर्म ते आत्मभावे शुद्धोपयोगे होय, अने कर्म ते अशुद्धोपयोगे करणी क्रियाए तथा शुभाशुभभावे भवितव्यताए थाय, कर्म ते क्रियाए अने धर्म ते अक्रियारूपे होय जेवी शुद्धोपयोगनी तीव्रता तेवी धर्मनी वृद्धि जाणवी

९५ प्र०—जिनना चार निक्षेपाना स्थान शरीरमा क्या छे?

उ०—नाम जिननु स्थान जीभमा छे, स्थापना जिननु चक्षुमा, द्रव्यजिननु मनोयोगमा, केम जे श्रद्धा मनगम्ये छे तेथी, अने भावजिननु स्थानक हृदयमा छे

९६ प्र०—द्रव्येंद्रिय तथा भावेंद्रियनो भेद समजावो तथा ते शायी भरेल छे ? ते कहो

उ०—द्रव्येंद्रिय ते आकार विशेष जाणवी ते मळ, मूत्र, रुधिर, मासादि अशुभ पुद्गल्थी भरी छे, भावेंद्रिय ते इद्रियद्वाराए उपलब्ध विकारी ज्ञान ते रागद्वेषादि विकारोथी भर्यु छे

९७ प्र०—आहारादि चार सज्ञानु स्वरुप सविस्तर कहो

उ०—१ आहारसज्ञायकी जीव अनादिकाळनो पुद्गल खानपानादि वासनाथी निरतर भरेलो अतृप्त वर्ते छे, २ भयसज्ञाए चारे गतिमा सदा कपतो रहे छे, ३ मैथुनसज्ञाए इद्रिय विषयभिलाषिपणे भमतो फरे छे, ४ परिग्रहसज्ञाए धन, स्त्री, पुत्रादिनी निरतर ममताए मेळवु मेळवु करी रह्यो छे, तेणे करीनेज सदा कषायतापे तपेलो, ससारमा ढोकळानी पेठे सीजाय छे, छता सुख मानी रह्यो छे, ए चार सज्ञामध्येथी पहेली आहारसज्ञा ते वेदनीय कर्मजनित छे, शेष त्रण मोहनीयजनित छे, वळी आहारसज्ञाए शरीरपरत्वे हिंसादि अनेक पापकर्म हेतु प्रवर्ते छे, हिंसाथी कर्मो घणा थाय छे, एथी पापबध वधे छे, अने तेथीज अशाता वेदनीय प्रबळ पामे छे, तथा भयसज्ञाए कल्पना कर्मयोगे व्यक्ताव्यक्तकर्म बधाय छे, तथा मैथुनसज्ञाए विषयना अने परिग्रहसज्ञाए कषाय वृद्धिना घणा तीव्र कर्म बधाय छे, एम चारने जोरे जीव अधोगतिए

जाय छे, ससार परिभ्रमण घणो थाय छे, वळी बीजी रीते विचारीए तो आहारसज्ञाए शरीरपुष्टि तेणे करी हिंसक प्रवत्ति, तेणे करी दुःख प्राप्ति, तेथी आर्तध्याननी वृद्धि तेथी दुर्गतिमा अनतोकाळ जीव भमे छे, माटे उत्तम जीवोने आहार अने निद्रा अल्पज होय छे, एमज भयसज्ञाए कल्पनाजाळ वधे छे, तेथी रागद्वेषादि मलिनपरिणति वधे छे, तेथी अष्टकर्मनो निविडबध थाय छे, चतुर्गतिभ्रमण वारवार थाय छे, वेमज मैथुनसज्ञाए विषय सेवे, तेथी पोताना रत्नत्रयी गुणने आवरे, तेथी जीव ससारमा सर्वत्र हीणअकल, मूढ, दरिद्री थयो थको घणी अशाता सर्वत्र पामे, एवी रीते परिग्रह सज्ञाए कषायबध घणो थाय, तेथी ससार दीर्घ थाय, एम आ ससारना मूळ हेतुरूप जीवने आ महा बाधककारी अनादिकाळनी लागेली भववासना टाकणोरूप चार सज्ञाओ छे, तेने जेम बने तेम उत्तम जीवे ज्ञान ने वैराग्य शक्तिये, परमात्माना शरणे जइने वश करवानो प्रयत्न करवो, ए चारमाथी पहेली बे आहार अने भय सज्ञा साधुने छठ्ठा सातमा गुणठाणाथी निवर्तेछे मैथुनसज्ञा नवमे गुणठाणे निवर्ते छे, अने परिग्रह, लोभ, ममतादि दसमे गुणठाणे निवर्ते छे, माटे गुणठाणानी विशुद्ध परिणति पामवा माटे ए चार सज्ञानी मदता थवी जोइए, तेनी तीव्रताए जीव निगोद सुधी जाय छे, अने मदताए उर्ध्वगतिए चढे छे, केम जे जीवने

मूळ ज्ञान, दर्शन अने चारित्र ए मुख्य गुण छे, तेमा दर्शन तो सामान्य अवबोधरूप होवाथी ते विशेष अवबोधरूप ज्ञानगुणमा समाय छे, तेथी ज्ञान अने चारित्र ने रह्या, तेमा ते निमित्त कारण, अने चारित्र ते उपादान कारणरूप छे, ते उपादान कारण सेवनरूपे चार राजानी मदताए जीव उचो चढे छे

९८ प्र०—सिद्धना जीवने अनता गुण छे, ते समपणे छे के विषमपणे छे ?

उ०—निरावरणआश्रयी समगुणे छे, पण आप आपणा गुणना पर्याय धर्माश्रयीविषमपणे छे

९९ प्र०—प्राणेकरी जे जीवे तेने जीव कहिए तो सिद्धने जीव केम कहेवामा आवे छे ?

उ०—सिद्धने द्रव्यप्राण नथी, पण भावप्राण चार छे, तेना नाम —१ अनतज्ञान, २ अनतदर्शन, ३ अनतसुख, अने ४ अनत वीर्य, ए चार भावप्राणे सिद्ध जीवे छे, तेथी सिद्धने जीव कहीए, ए भावप्राण आवरणे द्रव्यप्राण सापडे छे, ते कर्मजनित छे केम जे स्वाभाविक अनतदर्शनरूप भावप्राणने आवरणे इंद्रियप्राण थया, तेमज स्वज्ञानरूप भावप्राणने आवरणे श्वासोश्वास प्राण उपज्यो, स्वाभाविकसुखरूप भावप्राणने आवरणे आयुप्राण उपज्यो, स्वाभाविक अनतबळ वीर्यप्राणने आवरणे मनोबळ, वचनबळ, कायबळ, ए विभाविक प्राण उपज्या ए अधिकार अध्यात्मसार ग्रन्थ मध्ये कह्यो छे

१०० प्र०—लेश्या कया कर्मयोगे छे ?

उ०—लेश्या, योग प्रत्ययिक नामकर्मजनित छे, अने शुभाशुभ परिणामरूप लेश्या भावकर्मजनित छे

१०१ प्र०—वीस विहरमान तीर्थंकरो सबधी जघन्य, मध्यम, अने उत्कृष्ट, समकाळे जन्म दीक्षा, ज्ञानादि हकीकत सविस्तर समजावो

उ०—महाविदेहक्षेत्रमा श्री विहरमान तीर्थंकरो केवळीपणे विचरे छे, वळी कोइ बाळकपणे, कोइ राज्यावस्थाए, कोइ गर्भमा होय, त्यारे जघन्यकाळे अढीद्वीपमा १६० विजयमा १६८० होय, हवे हाल वीस प्रभु छे, ते जेवारे जन्मथकी एक लाख पूर्व आयुना थाय त्यारे बीजा प्रभु जन्मे, वळी गर्भमा पण होय, एम गर्भना तीर्थंकर प्रभु न गणाय, तेथी चोरासी लाख पूर्वायुमा तीर्थंकरना जीवो बाल्यावस्थामा, युवास्थामा, राज्यावस्थामा तथा श्रमणावस्थामा तथा केवळी अवस्थामा सर्वे मळी ८३ तीर्थंकरो होय, ते संख्याने वीसगुणा करीए त्यारे १६६० थाय, ते मध्ये वीस विचरता मेळीए त्यारे १६८० थाय, अने ज्यारे उत्कृष्टपणे अढी द्वीपमा १७० प्रभु केवलिपणे विचरे छे, त्यारे एकएकना अवतारमाहे ८३ तीर्थंकर उपजे, तेने १६० गुणा करिए त्यारे १३२८० थाय तेमा १७० वर्तता मेळीए त्यारे १३४५० थाय एटलु अचलगच्छ नायके कह्यु छे, जिम साभळ्यु तिम लख्यु छे पछे तो जेम केवलज्ञानीए प्रकाश्यु तेम सत्य,

मूळ ज्ञान, दर्शन अने चारित्र ए मुख्य गुण छे, तेमा दर्शन तो सामान्य अवबोधरूप होवाथी ते विशेष अवबोधरूप ज्ञानगुणमा समाय छे, तेथी ज्ञान अने चारित्र ने रह्या, तेमा ते निमित्त कारण, अने चारित्र ते उपादान कारणरूप छे, ते उपादान कारण सेवनरूपे चार सज्ञानी मदताए जीव उचो चढे छे

९८ प्र०–सिद्धना जीवने अनता गुण छे, ते समपणे छे के विषमपणे छे ?

उ०–निरावरणआश्रयी समगुणे छे, पण आप आपणा गुणना पर्याय धर्माश्रयीविषमपणे छे

९९ प्र०–प्राणेकरी जे जीवे तेने जीव कहिए तो सिद्धने जीव केम कहेवामा आवे छे ?

उ०–सिद्धने द्रव्यप्राण नथी, पण भावप्राण चार छे, तेना नाम –१ अनतज्ञान, २ अनतदर्शन, ३ अनतसुख, अने ४ अनत वीर्य, ए चार भावप्राणे सिद्ध जीवे छे, तेथी सिद्धने जीव कहीए, ए भावप्राण आवरणे द्रव्यप्राण सापडे छे, ते कर्मजनित छे केम जे स्वाभाविक अनतदर्शनरूप भावप्राणने आवरणे इंद्रियप्राण थया, तेमज स्वज्ञानरूप भावप्राणने आवरणे श्वासोश्वास प्राण उपज्यो, स्वाभाविकसुखरूप भावप्राणने आवरणे आयुप्राण उपज्यो, स्वाभाविक अनतबळ वीर्यप्राणने आवरणे मनोबळ, वचनबळ, कायबळ, ए विभाविक प्राण उपज्या ए अधिकार अध्यात्मसार ग्रन्थ मध्ये कह्यो छे

आटमायकी नथी वळी, एम सित्तेरादि थाय,
परपरा पूर्वे जेम कही, लेवी एम सदाय ११
दशवीशना एकूण समे, जिनवर जन्म कहात,
भरतैरवते दिन हुए, पाच विदेहे रात १२
आगमे एणिपरे भाखियु, च्यवन जन्म अवरात,
भरतैरवत रजनि होय, दिवस विदेह विख्यात १३
वीश सिंहासन सहु, दोय मेरु पच लाव,
दो दो पूर्व पश्चिमे, एक दक्षिण उत्तर साथ १४
चार जन्म एक विदेह मत्ये, पाचे मळीने वीश,
भरतैरवते दश हुए, एक समये जन्म लहीश १५
वीश वीश जन्मे विदेहे सही, साठसो विजय पुराय,
लाख चोराशी पूर्वायु तस, धनुष्य पाचसें काय १६
चढते दोय पडते नणे, आरे धर्म कहाय,
भरतैरवत ते सही, विदेहे धर्म सहाय १७
परावर्तन काळ भरहेरवय, लेखो इहायी लेय,
चोथो नित्य विदेहमा, आणदरुचि भणेय १८
जिनवर ए नित्य समरता, लहिये सपद कोट,
पडित पुण्यरुचि गुरु, शिष्य कहे करजोड १९

१०२ प्र०—चक्रवर्तिना १४ रत्न कया अने ते कया उपजे ?

उ०—१ चक्र, २ असि, ३ छत्र, अने ४ दड ए चार रत्नो आयुधशाळामा उपजे, ५ मणि रत्न, ६ कागणी रत्न, ७ चर्म रत्न, ए त्रण निधानमा निपजे ८ पुरोहित ९ सेनापति, १० गाथापति, ११ वार्धिक, ए चार रत्नो पोताने नगरे उपजे १२ स्त्री

गाथा—सत्तरिसयमुक्कोस, जहन्न वीस विहरमाण जिणा,
समयखित्ते दस ना, जम्मणइ वीसदसग ना ॥ ए प्रवचन
सारोद्धार ग्रन्थनी गाथा जाणवी तथा दोहरानी गाथानो
भाव जाणवो

विहरमान जिन चैत्यवंदन

विवरो ए गाथातणो, करि लेज्यो सभाल,
सित्तरिसो जिनवर हुवे, कहे के अड काल १
चढते काळ उत्सर्पिणी, बार अष्टम जिन,
एकसो सित्तर जिनवर हुवे, एणीपरे सुणो सज्जन २
पाच विदेहे मेळवी, साठसो विजय उप्पन,
भरतैरवत दस मीळे, सित्तेरसो होय जिन ३
पडते काळे अवसर्पिणी, सोलम जिन लगे हुत,
भरतैवरते जिन हुवे, साठसो विदेह लहत ४
केवळी कइ बाळ परण्या, वयणे एहज सोय,
आठमा जिनथी सोलम लगे, विरह विदेह न होय ५
सोलमा जिन साथे सहु, मुक्ते जाय जिन भाण,
विरहसमे सहु क्षेत्रमा, अक्षर एह पिछाण ६
सत्तरमा जिन होय भरह, पच औरवत मळी दश,
समयक्षेत्र दश कह्या, लेहवा एह अवश्य ७
सत्तर अढारह जिन वचे, जन्मे वीश विदेह,
वीस एकवीसमा वचे, सयम केवळ देह ८
भरतैरवत दश मळे, मध्यम साम्प्रत वीश,
चोवीशमा जिन शिव गये, विदेह विचरे वीश ९
अनागत चोवीशी सातमा, आठमा वचे निर्वाण,
विरह पडे सहु क्षेत्रमा, अष्टमे न होय जिनभाण १०

उ०–जघन्यथी साडाबार लाख अने उत्कृष्टथी साडीबार क्रोड सोनैया वरसावे

अद्धतेरस कोडी, उक्कोसा तत्थ होई वसुधारा ।
अद्धतेरस लक्खा, जहन्निया होई वसुधारा ॥ १ ॥

१०५ प्र०–चउद मोटी विद्याना नाम कहो ?

उ०–१ नभोगामिनी, एटले आकाशमा गमन करवानी विद्या, २ परशरीर प्रवेशिनी, ३ रूप परावर्तिनी, ४ स्तम्भिनी, ५ मोहिनी ६ सुवर्ण सिद्धि, एटले सोनु बनाववानी विद्या, ७ रजत सिद्धि, एटले रुपु बनाववानी विद्या, ८ रससिद्धि, एटले रसकूपिकादि रस करवानी विद्या, ९ बध मोक्षिणी, एटले गमे तेवा बधनमाथी मुक्त करवानी विद्या, १० शत्रु पराभविनी, ११ वश्य करणी, १२ भूतादि दमिनी, एटले सर्व अग्निना उपद्रवने समावनारी विद्या, १३ सर्व सपरकरी, १४ शिवपद प्रापिणी

१०६ प्र०–आचार्य महाराज आत्मस्वरूप पच प्रस्थानने ध्यावे एटले शु ?

उ०–ध्याननी पाच अवस्था साधवामा सावधान आचार्य भगवत, पचपद आराधे छे, तेना नाम १ अभय, ते अरिहतनु ध्यान, २ अकरण, ते सिद्धनु ध्यान, ३ अहर्मिंद्र, ते आचार्यनु ध्यान, ४ तुल्य एटले उपाध्यायनु ध्यान, ५ कल्प एटले साधुनु ध्यान, ते समान अवस्थाए पच प्रस्थानमय आचार्यजी छे

रत्न ते राजकुळे उपजे, गजरत्न अने अश्वरत्न ए
वे वैताढ्य पर्वत उपर उपजे

१०३ प्र०—नव निधान ते क्या अने ते क्या प्रगटे ?

उ०—गंगानदीने तटे नवनिधाननी नव पेटी प्रगटे छे, ते प्रत्येक पेटी १२ योजन लांबी, नव योजन पहोळी, अर्ध योजन उंची, ते योजन आत्मांगुल प्रमाण जाणवा, अने नवनिधि मंजुसने आकारे छे, वैडुर्यमणिरत्नमय कमाड छे, तेना तथा तेमानी वस्तुना नाम कहे छे—१ नैसर्प्पिक, तेमा नगर निवेस ग्रामादि उत्पादक विधि छे, २ पांडुक, तेमा धान्य बीजादिकनी सर्व संपत्ति छे, ३ पिंगळ, तेमा नर नारी हय गयना विविध आभरणो छे ४ महापद्म, तेमा चउदे जातिना रत्नो छे, ५ मल्लि, तेमा विविध प्रकारनी सुगंधि पुष्पादि विगेरे वस्तुओ छे, ६ काळ, तेमा त्रिकाळ ज्ञानना पुस्तको छे, ७ महाकाळ, तेमा सोनु, रुपु, झवेरात, लोह विगेरे सर्व द्रव्य अखूट छे, ८ माणक नामे तेमा राजनीति, युद्धनीति अने सर्व हथीयार युद्धनी नीति छे; ९ सुखनिधि, तेमा चतुर्विध नाटकादि संगीत शास्त्रादिना ग्रंथो छे, ते प्रत्येक निधाने एक हजार व्यंतर देवो अधिष्ठायक छे, तेनु आयु एक पल्योपमनु छे

१०४ प्र०—प्रभु ज्या पारणु करे त्या धनवृष्टि देवताओ केटली करेछे ?

पामे, अने अविरति उदये चारित्र गुणस्थान न पामे, पण ज्यारे जीवने तथाविध परिणमन उपयोग एकाग्रता थाय, त्यारे ते सुखरूप ज्ञानचारित्रमय संपूर्ण धर्मने पामे

११० प्र०—द्वादशांगीना केटला पदो छे?

उ०—" कोटीशतं द्वादशश्चै व कोट्यो लक्षाण्यशीति अधिकानिचैव पञ्चशदष्टौ च सहस्र संख्यामेतत् श्रुत पञ्चपदननामि " ॥ १ ॥ एटला पद छे,

" एकावन्न कोडीओ, लक्खा अट्ठे व सहस्स चुलसिही। सयछक्क साढा, एक्कवीस पयगया ॥ १ ॥'

एटला एक पदना श्लोकनी संख्या जाणवी

१११ प्र०—चौद पूर्वना नाम तथा ते प्रत्येकना पदनी संख्या कहो?

उ०—१ उत्पाद पूर्व, पदसंख्या ११ क्रोट, २ अग्रायणीय पूर्व, तेमां ९६ लाख पद छे, ३ वीर्यप्रवाद पूर्व तेमां ७० लाख पद छे, ४ अस्ति नास्ति प्रवाद पूर्व, तेमां ६० लाख पद छे, ५ ज्ञान प्रवाद पूर्व, तेमां ३६ क्रोड पद छे, ६ सत्य प्रवाद पूर्व, तेमां एक क्रोड अने ६० लाख पद छे, ७ आत्म प्रवाद पूर्व, तेमां ३६ क्रोड पद छे, ८ कर्मप्रवाद पूर्व, तेमां एक क्रोड आठ लाख पद छे," ९ प्रत्याख्यान प्रवाद पूर्व तेमां ८४ लाख पद छे, १० विद्या प्रवाद पूर्व तेमां ११००१५००० पद छे, ११ कल्याण प्रवाद पूर्व, तेमां ६२ क्रोड पद छे, १२ प्राणवाद पूर्व, तेमां एक क्रोड ५६ लाख पद छे, १३ क्रियाविशाल

१०७ प्र०—जीवने मिश्रगुणठाणु चढता के पडता कोने केवी रीते आवे ते कहो

उ०—अनादि मिथ्यात्वी होय तेने चडता न आवे केमजे ते प्रथम उपशम सम्यक्त्व पामे, ग्रंथिभेद करी चोथे आवे, माटे अनादि मिथ्यात्वी पहेलेथी चोथे आवे, माटे तेने त्रीजु मिश्र चढता न आवे, अने सादि मिथ्यात्वी जीव सम्यक्त्व पामीने पडयो होय ते पाछो क्षयोपशम सम्यक्त्व पामे, तेने त्रीजु चढता पडता आवे

१०८ प्र०—समोहिया, असमोहिया, मरण ते कोने कहीए ?

उ०—समोहिया मरण ते जीव आहिंथी नीकळे त्यारे समकाळे सर्व प्रदेशे नीकळी परभवे जाय, जेम सीधो दटो फेंकता दडाना प्रदेश एक वखते दडा साथेज जाय छे तेम जाणवु, अने असमोहियामरण ते जीवना प्रदेश श्रेणिबद्ध आगळथी जाय, एटले आहि तथा परभवे आत्म प्रदेशनी मरणावसरे श्रेणि मडाय ते जेम पतगनी दोरी हाथने अने पतगने लागेली छे तेमी पेठे जीव प्रदेश नीकळे ते

१०९ प्र०—जीवनो शुद्धोपयोग गुण जे सम्यक्त्व, तथा ठरण गुण ते चारित्र तेने आवरवाने कोण बळवत्तर छे ?

उ०—आत्मोपयोग गुण, आत्मवस्तु जीवन गुण जे सम्यक्त्व छे, तेने आवरवाने मिथ्यात्व समर्थ छे, अने एनु परिणमनसुख एटले स्थिरता गुण आवरवाने अविरति समर्थ छे, माटे मिथ्यात्वोदये समकित न

ते तेमज क्षायिकसमकितीने तथा क्षयोपशमसमकितीने बीजु त्रीजु न होय पण उपशमसमकिती पडता बीजे त्रीजे आवे तेने जिननामनो बंध नथी, बीजे त्रीजे सत्ताए १४७ प्रकृति होय, उपशम समकित आखा भवमा पाच वखत आवे छे, तेमा चारवार श्रेणिगत अने पाचमीवार पडता आठमे गुणठाणे अटकी क्षपकश्रेणि माडीने केवळज्ञान पामे

११३ प्र०—क्षयोपशम, उपशम अने क्षायिक सम्यक्त्वनु स्वरूप तेना भेद सहित टुकमा कहो

उ०—क्रोधादि चार अनतानुबंधी चारित्रमोहनी प्रकृति अने मिथ्यात्वमोहनीनी त्रण प्रकृति, ए सातने उपसमावे त्यारे उपशमसमकित अने सातेनो क्षय करे त्यारे क्षायिक अने सात प्रकृतिना उदयनो क्षय करे अने उदयमा न आवेला उपशमावे तेने क्षयोपशम सम्यक्त्व कहे छे हवे ते विषे जे काइ विशेष जाणवा योग्य छे ते कहे छे —

दुहो

चार खपे त्रण उपशमे, पच क्षय उपशम दोय,
षट् उपशम एक एम, क्षयोपशम त्रिक होय

अथवा

क्षयोपशम वरते त्रिविध, वेदक चार प्रकार,
क्षायिक उपशम युगल युत, नवधा समकित धार

दुहानो खुलासोः—

सात प्रकृति मध्ये चार चारित्रमोहनीनी छे, त्रण प्रकृति

एवं तेना नव क्रोड पद छे, १४ लोक बिंदुसार तेमा साडातेर क्रोड पद छे, त्या एक पदमा ५१८८८४० अक्षर छे

११२ प्र०-वीजे गुणठाणेजिननामकर्मसत्तावन्त जीव केम न आवे ?

उ०-क्षयोपशम समकिती, जिननाम बांधी पडता पहेले आवेछे, तेने सत्ताए १४८ प्रकृति होय छे, कर्मग्रंथनी अवचूर्णिमध्ये कह्यु छे सतेअडयालसय जाउवसमविजिणु वियतइय—अस्यार्थ सत्ता ए कर्मनी प्रकृति १४८ मिथ्यात्व गुणठाणाथाडी यावत ११ अगियारमा सुधी होय, पण वीजे त्रीजे गुणठाणे जिन नामकर्म विना १४७ प्रकृति सत्ताए होय ते केम ? तेनो अभिप्राय कहे छे चोथे गुणठाणे क्षयोपशम समकित छे ते जिन नामकर्म बांधे ते बांधीने पाछो पडे समकितथी पडेतो ते मिथ्यात्वे आवे पण वीजे त्रीजे गुणठाणे नावे तेमाटे मिथ्यात्व गुणठाणे १४८ प्रकृति होय अने सासादन गुणठाणु ते उपशम भाव आश्रयी छे, अने उपशम समकित छता जिन नामकर्म न बांधे चोथे गुणठाणे ज्या सुधी उपशम समकित होय त्या सुधी जिन नामकर्म न बांधे स्तोतकाल माटे, क्षयोपशम तथा क्षायिकसमकित छते जिननाम बांधे ते पाछो वमे ते क्षयोपशम समकितथी पडतो जिन नामकर्मवाळो प्रथम गुणस्थानके आवे पण बीजे त्रीजे नावे, तिहा १४८ प्रकृति सत्ताए होय तेथी

जिनवचन मध्ये शकाकखादि काइक विभ्रमतारूप चित्त मलिनता करावे ते तथा अनतो छे अनुबध कर्मविपाकरस जेनो तेने अनतानुबधि कषाय कहिये

११४ प्र०—सापेक्ष अने निरपेक्ष ते केवी रीते ?

उ०—सापेक्ष एटले अपेक्षा सहित एटले कार्य पडे त्यारे कदाच प्रसगने लइने ताटना तर्जनादि करवु पडे तोपण ते अतरथी के बहारथी निर्दयपणे, अविचारी रीते न करे, जीवने कोइ व्यथा न उपजे तेनी सभाळ राखीने काम जेटलो आक्रोशादि होय ते करे, अने तेथी विपरीतपणे, निर्दय रीते निष्कारण गमे तेम मादु बोले तथा करे ते निरपेक्षव्यवहार जाणवो, वळी धर्मने विषे सापेक्ष एटले वस्तु स्वरूपनी अपेक्षा राखीने उत्सर्गने तथा निश्चयने पामवा माटे जे अपवाद के व्यवहारनु सेवन करवु ते, अने ते थकी रहित एकात व्यवहारप्रवृति, अविवेके आचरे ते निरपेक्ष जूठो व्यवहार जाणवो, अने ज्या व्यवहार जूठो छे, त्या धर्म तो होयज क्याथी ।।। कह्यु छे जे—

वचन निरपेक्ष व्यवहार जूठो कह्यो,
वचन सापेक्ष व्यवहार साचो,
वचन निरपेक्ष व्यवहार ससार फळ,
साभळी आदरी काइ राचो

११५ प्र०—समदृष्टिनु स्वरूप उपादान अने निमित्तथी कहो

उ०—सम्यक्‌दृष्टिने उपादानपणे रागद्वेषनी हलचलधारानु

मिथ्यात्वमोहनीनी छे ते मध्ये ७ पहेली ते नावण जेहवी छे, एक सम्यक्तमोहनी ते सुनरी सरीखी छे तेहनो विचरो ए सात प्रकृति जिहा उपशमे तिहा उपशम समकीत कहिए ए साते प्रकृति सत्तामाहिंथी क्षय करे तिहा क्षायिक समकीत ए सातमाहिंथी काइक खपे काई उपशमे तिहा क्षयोपशम समकित कहिए ज्या ए सातमानी चार खपे, वे उपशमे, अने एक वेदे ते पहेलो भेद, तथा ए सातमानी पाच खपे, एक उपशमे अने एक वेदे ते वीजो भेद, एम वे प्रकारे क्षयोपशम वेदक छे, तथा हवे त्रण प्रकारे क्षयोपशम समकित छे, ते कहे छे ते आवी रीते—१ चार खपे त्रण उपशमे, २ पाच खपे वे उपशमे, ३ छ खपे एक उपशमे, एम ए त्रिविध क्षयोपशमसमकित अने पूर्वोक्त द्विविध वेदक भावनों मळी क्षयोपशम पचविध स्वरूप कह्यु, हवे क्षायिकवेदकनो एक भेद ते किम ? ७ खपावे, एक वेदे ते क्षायिकवेदक कहिये तथा ७ उपशमावे अने एक वेदे ते उपशमवेदक कहिये, तथा सातने क्षये क्षायिक अने सातने उपशमे, उपशमिक एम सम्यक्त्व नव प्रकारे कह्यु

११४ प्र०—मोहनीयकर्मनु लक्षणस्वरूप कहो

उ०—१ जे विभ्रमपणे आत्मस्वरूपने विपरीत जाणे, जेम छीपने रूपु कहे ते मिथ्यात्व मोहनी, २ मिश्रमोहनी ते काइक डामाडोळपणे, सदेहयुक्त, अनिर्धारपणे जाणे, पण आत्मज्ञान प्रते पामवा न दे, ३ सम्यक्त्व मोहनी ते सम्यग् वस्तु उपर मोह उपजावे, देवगुरुआदिपर मारापणारूप ममता करावे,

मोहनु दरिद्रपणु जाय, चरण करण गुण प्रगटे तथा कर्मनु देवु एटले करज टळे ते जाती रीते के- दर्शनगुणे जन्म करवा रूप भवपरंपरा मटे, ज्ञा- नगुणे जरानी वेदना मटे, चारित्रगुणे मरण भय मटे, तेथी अमरपद पामी सिद्धिवरे, एम दर्शनगुणे ज्ञान चारित्र बेउ अनुक्रमे प्रगटे अने ए रत्नत्र- यना लाभे जन्मजरामरणादि भय टळे, जेम कोइ निर्धनने लक्ष्मी घणी मळे, त्यारे तेनु देवु अने दरिद्रपणु बने टळे छे, रत्नत्रय प्राप्तिथी आत्मधर्म- रूप धन प्रगटे, रागद्वेष मोहरूप दरिद्रपणु जाय, अने जन्म जरा मरणरूप करजना भय टळे

११८ प्र०–मोहराजानो मूळ मंत्र कयो ? अने तेथी जीव ज प्रकारे घणा कर्मो बांधे छे ते केवी रीते ?

उ०–रागद्वेष ते जीवना परिणाममां वर्ते छे, तेथी कर्म बांधे, ते उदय आवे त्यारे आर्त्त अने रौद्र ध्यान थाय, तेथी विषय कषाय सेवे, तेथी वळी घणा कर्म बंधाय, तेथी भव परंपरा जीवने टळे नहि, ए मो- हनो मूळभवबीज जाणवो

११९ प्र०–सम्यग्दृष्टिनो शब्दार्थ तथा लक्षण कहो.

उ०–सम्यक् कहेता यथार्थ, दृष्टि कहेता श्रद्धान, सम्यग् ज्ञान ते यथार्थ जाणवु, सम्यक् चारित्र ते यथार्थ आचरवु, तथा उदयकाळे सम्यक् प्रकारे सहन करे, अने स्वरूपे जोवु ए लक्षण. सम्यग्दृष्टि श्रा— साधुना। जाणवा

समपणु थयु, परिणति मध्यस्थ थइ तथा निमित्त-
पणे पुण्य पापना उदय काळे हर्ष के खेद न करे,
मध्यस्थ साक्षिरूप रहे

११६ प्र०—जिननी चार निक्षेपे भक्ति शी रीते करवी ?

उ०—पवित्रतार्थी एकाग्रचित्तआशातना टाळी, जिननु
नाम जपीए ते नाम निक्षेपे जिनभक्ति, २ स्थापना
निक्षेपे जिनप्रतिमाजीनी अष्ट प्रकारी, सत्तर भेदी
आदि पूजा भक्ति विधियी करता भावपूजा तन्मय
थइ परिणमे ते, ३ तथा द्रव्यनिक्षेपे जिनभक्ति ते,
जिनना जीव तेना गुणे भावे जिनना जीव जाणी
तेमनी भावथकी वदनादि करवु ते, ४ तथा भाव
निक्षेपे जिनभक्ति ते, विगटे बेठा समोसरणे अनेक
भव्यजीवोने प्रतिबोध आपता एवा जेम हाल श्री
सीमधरादि स्वामी छे तेमने वदना नमस्कार गुण
स्तुति इत्यादि करवी ते

११७ प्र०—जीवने कर्म सबधी करज तथा कर्म जनित भाव-
दरिद्रपणु केम टळे ?

उ०—जीव अनादि काळनो राग द्वेष मोहे परिणमे छे,
तेने देवु तथा दरिद्रपणु बेउ वधे छे, ते टाळवानो
उपाय ए छे जे समकित गुणनी प्राप्ति थए, शुद्ध
रत्नत्रय धर्म प्रगटवाथी टळे, ते आवी रीते के
दर्शनगुण थए द्वेषभाव टळे समभाव प्रगटे, तेथी
ज्ञान गुण प्रगटे माटे, तेथी पुद्गलादि परवस्तु उपर मोह
टळे, वैराग्य प्रगटे, तेथी चारित्रगुण प्रगटे, तेथी

परमार्थी, शुभमति, एकांत निस्पृही, निर्ममत्वी, निरभिमानी, संपूर्ण रीते सरळ, प्रौढपणे गभीर, परम-समान, दृष्टिमंत, दयाळु, कृपाळु, पोताना आश्रितोने विषे पूर्ण विश्वासी, सर्वमिथ्याभ्रम रहित थया थका सदानंदपणे प्रवर्तमान होय पण हा ! इति खेदे आ विषम काळना प्रभावे उपर कह्या तेवा सुशिष्यो तथा सुगुरुओ मळवा दुर्लभ छे, अने ज्या होय त्या तेओ निश्चय कल्पवृक्ष समान जाणवा

१२१ प्र०—शाता, अशाता, सुख, दुःख विषे निमित्त तथा उपादान कारण समजावो

उ०—शाताऽशातासुखदुःखयोश्चाय विशेष शाताऽशाताऽनुक्रमेण उदयप्राप्ताना वेदनीयकर्मपुद्गलाना अनुभवरूप तथा सुखदुःखेन परोदीर्यमाणवेदनीय अनुभवरूप शातादि पूर्वोक्त चारे अनुक्रमे उदयप्राप्त शातादि वेदनीय कर्मना पुद्गलोनो शाता, अशाता, सुख, दुःखरूप अनुभव छे, तथा सुख दुःखने उदयमा लावनारा उदीरणारूप जे मूळ हेतु ते वेदनीयकर्म अनुभवरूप शातादि उपादान कारण छे, अने शाता अशाता उदय आव्या जे कर्मपुद्गलो तेनु वेदवु, भोगववु ते अशुद्ध उपादानरूप छे, अने सुख, दुःख तेहना फळ छे, ते फळ पाक्या एटले उदय आव्या ते वेदनीयकर्मनु भोगववु ते भोगवटो निमित्तरूप थयो, अर्थात् सुख दुःखने भोगवता थका जो हर्ष शोक करे, मदोन्मतता के झूर्णा

१२० प्र०–गुणग्राही, गुणगवेषी, सहजकारी (सहायकारी) ते शु ?

उ०–१ गुणग्राही एटले जे जीव सद्गुरु पासे सूत्र सिद्धान्त साभळीने घणी प्रशसा करे, कीर्ति करे, गर्वादिकना कोइ कर्म औदयिक अवगुण देखीने तेने द्वेष न उपजे, केमके जो खेद के अरुचि थाय तो भक्ति विनयादि रुचिकर मन भग्न थइ जाए, तेथी आगळ गुण यतो अटके, अने होय ते पण कदाच वमी नाखे, २ गुणगवेषी एटले गुर्वादिमाहे कोइपण उपकारादि गुण होय ते सभारीने आक्रोशादिकने लीचे खेदाय नहि, कदाच माठु लागे पण पाछु तेमथी हित बुद्धि, प्रीति, विश्वास, कृपादि अनेक निस्पृहिपणे करेला उपकारने सभारी मन निर्मळ थाय, अवगुण, दृष्टिमा न आवे, तेथी विनयादि भक्ति चूके नहि, ३ सहायकारि ते गुर्वादिकने अन्न, पाणी, वस्त्र, औषधादियी घणी सहाय करे, पोते गाठथी, खरचे, गाठे न होय तो कोइ योग्य जीव पासेथी लावीने गुरुनी सहाय करे, तथा सेवा, भक्ति, वैयावच्च, पोते जाते त्रिकरण शुद्धिए करी महा शाता उपजावे, प्रसन्नता करावे, जेने परिणामे पोताने अनत पापनी निर्जरा अने ज्ञानादिकनी परम शुद्धि तथा वृद्धि थाय, जेम शिष्योमा गुर्वादि उपर अतरग प्रेम, भक्ति, रुचि, विशेष रसिकता सहित दीप्तिमान दिन प्रतिदिन अधिकने अधिक थता जाय तेम उत्तम

ते अभ्युपगामिनी वेदना अने एक उदीरणाइ करी उदय लावीने वेद कर्मना पुद्गल समभावे वेदी खपावे ते उपक्रामिकी वेदना जाणवी ए भाव,

१२३ प्र०—देशना शुद्ध स्याद्वादे जेनधर्मनी छे एम क्यारे कहेवाय ?

उ०—जिनवचनानुसार देशना चतुर्विध छे—१ कारण कार्यरूप, २ निमित्त उपादान सहित, ३ द्रव्य भाव युक्त, ४ *निश्चय व्यवहारनययुक्त*

१२४ प्र०—बावीस परिषहमा शीत केटला अने उष्ण केटला ? शीत अने उष्ण ते शु ? अनुकुळ अने प्रतिकुळ केटला, अष्ट कर्मना विभागे कया कर्मना कया कया परिषहो छे ?

उ०—स्त्री अने सत्कार ए बे शीत एटले मनने शाताकारी माटे अनुकुळपरिषहो छे, बाकीना उष्ण एटले मनने सतापकारी माटे प्रतिकुळ छे, एम आचारागे तृतीयाध्ययनेबृहटीकामध्ये कह्यु छे तथा उत्तराध्ययनसूत्रमा कह्यु छे हवे ज्ञानावरणीयना क्षयोपशमे प्रज्ञा अने ज्ञानावरणना उदये अज्ञान ए बे छे, वेदनीयना उदये—१ क्षुधा, २ पिपासा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ डस, ६ चर्या, ७ मळ, ८ सज्जा, ९ वध, १० रोग, ११ तृण स्पर्श, मोहनीयना उदये —१ अचेलक, २ स्त्री, ३ अरति, ४ आक्रोश, ५ याचना, ६ निसिहिया, ७ सत्कार अने ८ सम्यक्त्व परिषह ते मिथ्यात्वमोहना उदये

करे तो फरी तेनाज शाता अशातारूप वेदनीकर्म नावे, ते नव उपादान कारण जाणवु, अने पूर्वोक्त हर्ष शोकादि प्रवृत्ति ते निमित्त पणु जाणवु, एम कारण कार्य निमित्तथी उपादान अने उपादानथी निमित्त एम जेवा वृक्ष तेवा फळ तथा जेम बीज-माथी वृक्ष अने वृक्षमाथी बीज नीपजे छे तेम कर्मथी शाता अशातादि जीव पामे छे, अने फरी अज्ञानपणे समभावे न रहेवाथी एवाज बाधी स-सार परपरामा भमे छे, शाता अशाता आत्माश्रित जीवविपाकी प्रकृति छे, अने सुख दु ख पुद्गलाश्रित होवाथी पुद्गलविपाकी प्रकृति छे

१२२ प्र०—वेदना केटला प्रकारनी, कइ, तेनु स्वरूप दृष्टातथी समजावो

उ०—१ वेयणादुविहा, अभ्भोपगमिया उवक्कमिया, स्वय-मभ्युपगम्यते वेद्यते यथा साधव केशलुञ्चनातापना-दिभि वेदयन्तीति अभ्युपगमिकी वेदना, उपक्रामिकी तु स्वयमुदीर्णस्योदीरणाकरणेन च उदय उपनीतस्य वेद्यस्य अनुभव इत्यर्थ, जे वेदनीयकर्म काळ परि-पाके स्वयमेव सहज उदय आवे ते समभावे वेदीने खपावे ते उपक्रामिकी, अने २ जेम साधुमहाराजा केशलोच आतापनादि परिषह वेदनाने पोते उदीर-णाए उदीरी समभावे वेदी कर्मनी निर्जरा करे छे ते वेदनाने अभ्युपगामिकी कहिये तथा पाठान्तरे जूनी प्रतिभा नीचे प्रमाणे छे—एक वेदनीकर्मकाळे पाकीस्वभावे उदय आवे ते समभावे वेदीने खपावे

अक्कोसेअरईइत्यी, निसिहिआचेव जायणाचेव,
सक्कारपुरस्सक्कारो, ईक्कारसवेयणिज्जम्मि ॥ २ ॥
पचेवअणुपुर्वी, चरियासिज्जातहेवजल्लेय ।
वहरोगतणुफासा, सेसेसुनत्यिविचारो ॥३॥ इति भाव

१२८ प्र०–उपसर्ग अने परिषहमा शो फेर छे ?

उ०–उपसर्ग ते आत्मकर्मजनित छे, उपसमीपे सृष्ट उपसर्ग ते माटे, तथा परिषह ते परजनित छे परना निमित्तथी कह्या ते सहेवु 'परिसमन्तात्सह्यते इति परिषह' इति उपसर्ग परिषहनो अर्थ विचारवो इति भाव

१२९ प्र०–चार प्रमाणे करी वीर परमात्मा मळ्या क्यारे गणाय ? ते सिद्ध करो

उ०–जूनी प्रतिमा नीचे प्रमाणे पाठ छे "तद्यथा अथ प्रमाण च्यार अनुयोगसूत्रे कह्या छे, अनुमान प्रमाण १, उपमान प्रमाण २, आगम प्रमाण ३, प्रत्यक्ष प्रमाण ४, ते मध्ये आज श्री वीर स्वामी प्रत्यक्ष प्रमाणे किम मले ? ते थापना निक्षेपाथी मले ते किम ? समभाव शात मुद्रापर्यंकासननो उत्पादे अने रागद्वेषनो विनाश एहवी असलनी नकल (थापना) जिनप्रतिमा ते देखीने भावथी श्रीवीरस्वामी प्रत्यक्ष प्रमाणे मिले जिन प्रतिमा ते जिन सरिखी ते जिनप्रतिमानी भक्ति जिनभावे कीधाना फल श्रावकने महानिसिथसूत्रे कह्यु छे 'अयकपुसढो, इति वचनात्, तिहवारे जिन प्रतिमानी भक्ति कीधी

होय, तथा अलाभ ते अनरायना उदये होय ते सर्वे मुनिमहाराजा शुद्धात्मोपयोगस्वरूप विचारी महा वैराग्यभावने भावतायका सम्यक्प्रकारे सहे पण अस्थिरता के खेदादि कांई न करे, तथा परिषह एटले समस्त प्रकारे समभावे सहवुं, जे कर्मोदये आवे ते, अने उपसर्ग ते स्वकृत या परकृत पीडा जे प्रगटे ते समभावे सहेवी, अथवा मतांतरे उप एटले समीपे अने सर्ग एटले आवीने उपजे जे ते उपसर्ग स्वाश्रित छे अने पराश्रित परिषह छे

१२५ प्र०—बंध, उदय, उदीरणा अने सत्ता ए चारमां केटली आत्मिक अने केटली पोद्गलिक छे ?

उ०—उदय अने सत्ता पौद्गलिक, बंध अने उदीरणा आत्माश्रित छे

१२६ प्र०—अष्ट पुद्गल वर्गणानुं अल्प बहुत्व कहो

उ०—आठ वर्गणामांहे औदारिकना थोडा, तेथी अनंतगुणा वैक्रिय, तेथी घणा आहारक, तेथी घणा तैजस, तेथी घणा भाषाना, तेथी घणा श्वासोच्छ्वासना, तेथी घणा मनना अने तेथी घणा कार्मणनी वर्गणाना पुद्गलो जाणवा

१२७ प्र०—बावीश परिषह पैकी कया कया परिषहो कया कया कर्मथी उपजे छे ?

उ०—ज्ञानावरणीथी २, मोहनीना ८, वेदनीना ११, अंतरायनो १, ए कर्मथी उपजे अत्र गाथा

दसणमोहेदसण परिसहोपनाणनाण पढमम्मि ।
चरिमेअलाभ परिसहसत्तेव चरित्तमोहम्मि ॥ १ ॥

परिषह उपसर्ग सहन करवामा निर्भय, साहसिक, केसरि सिंहसमान पराक्रमी, वीरपरमात्मा उपमा प्रमाणे पण सिद्ध थया जाणवा, ४ प्रत्यक्ष प्रमाणे जिनप्रतिमा जिन सरखी होवाथी वीरपरमात्मा-स्थापना निक्षेपे सिद्ध थया, कारण जे समभाव, शांत मुद्रा, विशुद्ध पर्यंकासन इत्यादिनो उत्पाद, रागद्वेषनो व्यय, अने मूळस्वरूपे ध्रुव, सच्चिदानंद घनमय एवी असलनी नकल श्री जिन प्रतिमाजी छे ते देखी भावथी श्री वीरपरमात्मा प्रत्यक्ष सिद्ध थया जाणवा, स्थापनाजीनी भक्ति ते साक्षात्‌नी बराबरज छे, कारणे कार्य उपचारे सत्य छे

१३० प्र०—जीव अष्टकर्मवर्गणादलिक केवी रीते वहेची आठे कर्मने आपे छे ?

उ०—समय समय जीव कर्मवर्गणा ग्रहे छे, ते आठे कर्मने वहेची आपे छे ते आवी रीते—सर्वथी थोडा आयुकर्मने, तेथी विशेषाधिक नाम अने गोत्रने, ते बेउमा माहोमाहे सरखा, तेथी १ ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ तथा अंतराय ए त्रणने विशेषाधिक पण माहोमाहे सरखा दळ आपे, तेथी मोहनीयने संख्यातगुणाधिक, तेथी वेदनीयने अधिक, एम वेदनीयकर्मने सर्वथी अधिक दळ मळे छे, केम जे वेदनीय विपाक जीवने थोडा दळे प्रगटपणे जणाय नहि तेथी इति भगवतीसूत्रे कह्यु छे

१३१ प्र०—जीव विग्रहगति करे तो तेनो उत्कृष्ट काळ केटलो ?

ते जिननी कीर्ची इम 'कारणे कार्योपचारात्' इम जिननी स्थापनाथी आज प्रत्यक्ष प्रमाणे श्री वीर मत्या कहीए 'अत्र सदेहोनास्ति' इति भाव " तथा छापेली प्रतिमा नीचे प्रमाणे पाठ छे

अविरोध, अस्खलित, अविसवादि, नि स्वार्थ, एकात, दयामय, सपूर्ण सत्य, मधुर, प्रिय, गभीर, अमर्म प्रकाशक, सर्वज्ञ अने सर्वदर्शिपणाना लक्षणोए पूर्ण, तथा मुद्राकारे शात सुधारसमय रागद्वेषादि चिन्ह रहित इत्यादि अनेकशास्त्रवचन गोचर वीरपरमात्मा आगमपणे सिद्ध करीए २ अनुमान प्रमाणे जेम धूम्र दिठे अग्निनो निश्चय थाय तेम पूर्वापर महात्माओना ऐतिहासिक सबध तेना विधविध उत्कृष्ट सदाचार प्रवर्त्तक पुरूषोना प्रमाणोए ज्यारे ऐसी नेवु वातो अनुभवथी सत्य सिद्ध थाय तो तेनी शेष दस वातो पण सत्यज मानी लेवाय छे, अने होय छे पण तेमज एवीज रीते श्री वीर परमात्माना अनेक वचनो अत्यारे बीजा अन्य दर्शनिना वचनो करता सत्य, अविरोधी, अने प्रमाणभूत थाय छे, तो कोइक सूक्ष्म, अगम, अगोचर वात छद्मस्थ मदबुद्धिना ग्राह्यमा न आवी शके, तोपण बीजी घणी वात मळे छे तेने अनुसरे ते पण सत्यज होवी जोइए, एम वीरप्रभुना वचनो पण युक्ति तथा न्याय सिद्ध सत्य होवाथी वीरपरमात्मास० अनुमानपणे पण सिद्ध थया, ३ उपमा प्रमाणे पुरिससीहासिहाणु एटले तप तेजे तथा

करे तो अधिक गुणठाणी कहेवाय, नहितो भावनी शुद्धाशुद्ध तारतम्यता कहेवाय

१३४ प्र०—सम्यक्त्व मोहनीयने कोण वेदे, अने क्या सुधी वेदे, अने तेनु स्वरूप शु ?

उ०—क्षयोपशम समकितीने समकित मोहनीनो उदय होय अने उपशमिक अने क्षायिकने ते न होय, तेमज वेदकने एक समयनोज अतिसूक्ष्म काळ होवाथी गणत्रींमा लीधु नथी, सम्यक्त्व मोहिनी ते क्षयोपशमीने होय तथा उपशमीने सत्ताए होय, तेथी प्रदेशे अने रसे अनुक्रमे, ते सकाकखादि सहज विभ्रमता वेदे, कोइक जिनप्रणीत सूक्ष्म अर्थभाव मध्ये मुझाय ते सम्यक्त्वमोहनीयनु स्वरूप जाणवु

१३५ प्र०—उत्सर्ग अने अपवादनु शु स्वरूप छे ?

उ०—उत्सर्ग ते व्यवहारमार्ग अपवाद ते निश्चयमार्ग यथा साधुने पृथ्वीकायादि षट्कायनी विराधना निषेधी छे कदाचित् कारणे नदी उतरवी पडे तथा आहारादिकने अर्थे गुरुदेव वदनाने अर्थे चालता विराधना थाय ते उत्सर्ग ते माटे अपवावादे पच्चक्खाण महाव्रतना होई अने काइक अण कारण पडे उत्सर्गमार्ग होय, तथा वाचानान्तरे कोइक ग्रन्थे उत्सर्ग ते उत्कृष्टो निश्चयमार्ग कह्यो छे. अने —अपवाद ते कोमलमार्ग माटे व्यवहारमार्ग—कह्यो छे, तेहनो स्वरूप आगे लख्यो छे ए भाव, उत्सर्ग मार्गनी चर्चा घणी छे, पण इहा तो अल्पबुद्धिए जेहवु जाण्यु तेहवु लख्यु छे इति भाव

उ०—त्रसनाडी नहार एकेंद्रियथावरकायजीव विदिशीए उपजनारने पाच समय लागे छे

१३२ प्र०—अभिसधिवीर्य अने अनभिसधिवीर्य ते शु ?

उ०—अभिसधि वीर्य ते उपयोग पूर्वक आत्मवीर्य, अने अनुपयोग आत्मवीर्य ते अनभिसधिवीर्य

१३३ प्र०—समकिती श्रावकने गृहस्थपणे छट्ठु गुणठाणु स्पर्शे के नही ?

उ०—सम्यग्दृष्टिए देशविरति गृहस्थावास छता कोइ जाणस्ये जे ते चोथा पाचमा गुणठाणावालाने निर्मल अध्यवसाए ध्यानदशाए शुभयोगे शुभ धर्मध्याने छट्ठा सातमा गुणठाणाना परिणाम आवे पछे ते कालान्तरे अतर्मुहूर्तमात्र रहीने पछे मटी जाय पोताना गुणठाणा माफक परिणाम रहे एवु कहे ते असत्य स्वमति कल्पना पण कोइ ग्रन्थोक्त नही तनोत्तर चोथा पाचमाथी भावचारित्र गुण आवे चढते १३ मा १४ सुधी चढीने मरुदेव्यादिनीपरे पुण्याढ्यराजानीपरे सिद्धिवरे पाछो ते गुणठाणा फरसीने पडे नहि गृहस्थवासी गमे तेवो उत्कृष्ट श्रावक होय, तोपण तेने गुणठाणु पाचमुज होय छे, पण छट्ठु सातमु न कहेवाय, केमजे गुणठाणानी प्राप्ति कषायना क्षयोपशमने आधीन छे, अने अध्यवसायनी निर्मळता ते निज परिणतिने आधीन छे, ते परिणति पोताना अध्यवसायनी निर्मळताए कषायनो क्षयोपशम करीने अधिक उचा गुणठाणानी परिणतिरूप

करे तो अधिक गुणठाणी कहेवाय, नहि तो भावनी शुद्धाशुद्ध तारतम्यता कहेवाय

३४ प्र०—सम्यक्त्व मोहनीयने कोण वेदे, अने क्या सुधी वेदे, अने तेनु स्वरूप शु ?

उ०—क्षयोपशम समकितीने समकित मोहनीनो उदय होय अने उपशमिक अने क्षायिकने ते न होय, तेमज वेदकने एक समयनोज अतिसूक्ष्म काळ होवाथी गणत्रीमा लीधु नथी, सम्यक्त्व मोहिनी ते क्षयोपशमीने होय तथा उपशमीने सत्ताए होय, तेथी प्रदेशे अने रसे अनुक्रमे, ते सकाकखादि सहज विषमता वेदे, कोइक जिनप्रणीत सूक्ष्म अर्थभाव मध्ये मुझाय ते सम्यक्त्वमोहनीयनु स्वरूप जाणवु

१३५ प्र०—उत्सर्ग अने अपवादनु शु स्वरूप छे ?

उ०—उत्सर्ग ते व्यवहारमार्ग अपवाद ते निश्चयमार्ग यथा साधुने पृथ्वीकायादि षट्कायनी विराधना निषेधी छे कदाचित् कारणे नदी उतरवी पडे तथा आहारादिकने अर्थे गुरुदेव वदनाने अर्थे चालता विराधना थाय ते उत्सर्ग ते माटे अपवादे पच्चक्खाण महाव्रतना होई अने काइक अण कारण पडे उत्सर्गमार्ग होय, तथा वाचानान्तरे कोइक ग्रन्थे उत्सर्गे ते उत्कृष्टो निश्चयमार्गे कह्यो छे. अने अपवाद ते कोमलमार्ग माटे व्यवहारमार्ग कह्यो छे, तेहनो स्वरूप आगे लख्यो छे ए भाव. उत्सर्ग मार्गनी चर्चा घणी छे, पण इहा तो अल्पबुद्धिए जेहवु जाण्यु तेहवु लख्यु छे. इति भाव.

१२६ प्र०—दीवा प्रमुख ज्योतिमय पदार्थोना प्रकाश पडे छे, ते दीवामध्ये रहेला अग्निकाय जीवना पर्याय छे ?

उ०—दीवा मध्ये जे अग्निना जीव छे, ते माहेज परिणमी रह्या छे, पण दाहकरूप पर्याय छे ते बाहेर नीकळे नहि, तथा दीवाना प्रकाशरूप पुद्गल जे बाहेर दीसे छे, तेतो विस्रसा पुद्गलनी पर्याय छाया छे तथा दीवानी बाहेर जे प्रकाशरूप पुद्गल दीसे छे ते, तथा प्रकाशरूप पुद्गलना निमित्ते, अपर विस्रसा पुद्गल श्रेणिबद्ध जमाव थाय छे ते अचित्त दीसे छे पण ते अग्निकाय जीवना पर्याय नहि, तेना (अग्निना) गुण पर्याय तो दाहक रूपे छे, ते ज्या व्यापे त्या बाळी भस्म करे, माटे बाहिर् पटतो प्रकाश विस्रसा पुद्गल पर्याय (अचित) जाणवा, जेम आरसीमा मुख जोता आपणा शरीर समान सर्व प्रतिबिंबित पुद्गल दीसे छे, ते काइ आपणा शरीरना पर्याय, आरसीमा जता नथी, पण ते आरसीनु निमित्त पामीने त्या शरीर मुखादि जेवा विस्रसा पुद्गल, तत्काल श्रेणिबद्ध तद्रूप परिणमिने जमाव थाय छे, पण ते जीवना पर्याय न जाणवा, एवीज रीते शरीरनी छाया विगेरे विस्रसा पुद्गलजमाव जाणवो, तेम दीवा प्रमुखना प्रकाशादिमा पण जाणवु *

* श्रीमद् देवचन्द्रजीए दीवाना प्रकाशने विस्रसा पुद्गल मानी अचित कह्यो छे आ बाबतमा बे मत छे केटलाक मुनियो श्रीमद् देवचन्द्रजीनी पेठे दीपकना प्रकाशने विस्रसा पुद्गल मानी अचित गणे छे

१३७ प्र०—वक्ता तथा श्रोताना चौद चौद गुण कया कया छे ते कहो

उ०—वक्ताना चौद गुणो —१ आगमोक्त सोळबोलना जाण, २ शास्त्रार्थ विस्तारवत, ३ वाणीमा मीठाश, ४ प्रास्ताविक अवसर ओळखे, ५ सत्य बोले, ६ साभळनारना सदेह छेदे, ७ बहु शास्त्रवेत्ता गीतार्थ उपयोगी होय, ८ अर्थ विस्तारी सवरी जाणे, ९ व्याकरण रहित कठिनभाषा के अपशब्द न बोले, १० वाणीए सभाने रीझावे, ११ वाणी साभळीने श्रोता रसस्वाद पामे, १२ प्रश्नार्थवत, १३ अहकार रहित, १४ सतोपादिधर्मवत श्रोताना चौद गुणो — १ भक्तिवत, २ प्रियभाषी, ३ निरभिमानी, ४ साभ-

अने रात्रे उपाश्रयमा दीपकना प्रकाशमा पुस्तको वाचे छे शरीरपर प्रकाश पडे छे ते अग्राह्य विस्रसा पुद्गलरूप छे एम माने छे अनन्त परमाणुओनो स्कन्ध बने छे तेनी अवश्य छाया होय छे. अग्निकायना पुद्गलोनी, मणिनी छायानी पेठे छाया पडे छे दीवानी चारे तरफ प्रकाश मय विस्रसा पुद्गलो छे, तेज अग्निना छाया—प्रतिबिंब पुद्गलो छे माटे छाया प्रतिबिंब पुद्गलो छे ते विस्रसारूप होई अचित्त छे अन्य सचित्त मनुष्य वगेरे छकायना प्रतिबिंब छाया पुद्गलोनी पेठे—ए प्रमाणे आगमोक्तयुक्तियो अनेक जणावे छे श्रीमद् देवचन्द्रजी बहुश्रुत गीतार्थ द्रव्यानुयोगी हता तेमना गुरुआना परपरापण ए मान्यतावाळी होवी जोईए तपागच्छमा पण कटलाक मुनियोनी तेवी मान्यता तथा प्रवृत्ति सभळाय छे बीजा पक्षवाळाओ दीवाना पुद्गलोनी उजेही माने छे तेओ ग्रथना पाठनी साक्षी आपे छे (तत्त्व केवलिगम्यम्) शो बु सू

माण, ३ काळथी अनादिअनत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण चलणसहायक

२ अधर्मास्तिकाय—१ द्रव्यथी एक, २ क्षेत्रथी लोकप्रमाण, ३ काळथी अनादिअनत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण स्थिरतासहायक

३ आकाशास्तिकाय—१ द्रव्यथी एक, २ क्षेत्रथी लोकालोकप्रमाण, ३ काळथी अनादिअनत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण अवकाशदानसमर्थ

४ काळ—१ द्रव्यथी अनेक एटले अनताअनत, २ क्षेत्रथी मनुष्य लोक मध्ये, ३ काळथी अनादिअनत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण नवा, पुराणा, वर्तना लक्षण

५ पुद्गलास्तिकाय—१ द्रव्यथी अनेक एटले अनता, २ क्षेत्रथी लोक मध्ये, ३ काळथी अनादिअनत, ४ भावथी रूपी एटले वर्णादियुक्त, ५ गुण पुरण, गलण, मिलण, विखरण, सडण, पडण, विध्वसन, धर्मलक्षण

६ जीवास्तिकाय—१ द्रव्यथी अनेक एटले अनत, २ क्षेत्रथी लोक मध्ये, ३ काळथी अनादिअनत, ४ भावथी अरूपी (अवर्णादि), ५ गुण चेतनाउपयोगवत

एवी रीते षद्द्रव्यना द्रव्यादि अपेक्षाए, त्रीश भेद दर्शाव्या प्रकारातरे, प्रकारातरे निश्चयव्यवहारनये द्रव्य क्षेत्र काल भावे कथचित् सप्रदेशी, कथचित् अप्रदेशी, एम भजनाए विध विध अपेक्षाए अनेक भेद स्वरूप विस्तारित ग्रथातरथी गुरुगम्य जाणी लेवु जूनी प्रत्यन्तरे नीचे मुजब छे

पुनरपि द्रव्यथी क्षेत्रथी कालथी भावथी स्यु ? ते कहे छे १ द्रव्यथी अप्रदेशी, बीजु क्षेत्रथी अप्रदेशी २, त्रीजें कालथी अप्रदेशी ३, चोथे भावथी अप्रदेशी ४, हवे क्षेत्रथी ते नियमा अप्रदेशी ते द्रव्यथी स्यात् सप्रदेशी अप्रदेशी ४ हवे कालथी स्यात् सप्रदेशी अप्रदेशी कालथी पण भजना, क्षेत्रथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी, हवे भावथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी एणी रीते लेजो ए भाव, हवे जे द्रव्यथी सप्रदेशी ते क्षेत्रथी सप्रदेशी छे, जे कालथी सप्रदेशी छे ते भावथी सप्रदेशी छे ४ हवे सप्रदेशी ते क्षेत्रथी स्यात् सप्रदेशी, अप्रदेशी ते द्रव्यथी सप्रदेशी नियमा ते द्रव्यथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी ते द्रव्यथी सप्रदेशी छोड़ने अप्रदेशी पण छे हवे अप्रदेशी कालथी स्यात् सप्रदेशी, सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी, कालथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी, ते क्षेत्रथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी, हवे भावथी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी भावथकी भजना भावथकी स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी ने कालथी पण स्यात् सप्रदेशी स्यात् अप्रदेशी इति भाव

१४२ प्र०—षट्द्रव्यना गुणपर्यायनु शुद्धाशुद्ध स्वरूप यथार्थ विस्तारे समजावो

उ०—षट्द्रव्यमध्ये प्रथम जीवद्रव्य लइए, ए जीव बे प्रकारे छे, एक शुद्ध अने बीजो अशुद्ध, द्रव्यकर्म, भावकर्म अने नोकर्मादि सर्व कर्मकलंके रहित शुद्ध निष्पन्न, स्वरूपी सिद्धालये अनादि तथा सादि अनंत भागे, लोकाग्रे बिराजता सिद्धपरमात्माओना

जीवद्रव्य शुद्ध जाणवा, तथा कर्मावरणे सहित मलिन आत्मप्रदेशी, रागद्वेषादि भाव मलिन परिणतिवंत चतुर्गति भ्रमण लक्षणरूप अशुद्ध जीवद्रव्य जाणवा, हवे तेना गुण अने पर्याय विषे लखीए छीए —जीवना गुण पण बे प्रकारे छे. १ शुद्ध, २ अशुद्ध, त्या शुद्धगुण ते केवळज्ञानादि अनंतगुणलक्ष्मीरूप परमशुद्धक्षायिक भावना गुण ते तथा मतिज्ञानादि दश भेद शुद्धाशुद्ध क्षायोपशमिक भावना गुण ते अशुद्ध जाणवा हवे जीवना पर्याय पण बे भेदे छे, एक व्यजनपर्याय अने बीजा अर्थ पर्याय, वळी व्यजन पर्याय पण बे भेदे छे, एक शुद्ध अने बीजा अशुद्ध, त्या शुद्ध व्यजन पर्याय ते चरम शरीर प्रमाण किंचित् उणी अवगाहनावत, सिद्धावस्थावत ते शुद्ध व्यजन पर्यायवत जीव जाणवा, तथा नरनारकादि चतुर्गतिरूप अशुद्ध व्यजनपर्याय जाणवा, अर्थ पर्याय पण बे भेदे छे —एक शुद्ध अने बीजा अशुद्ध त्या आपणी गुणश्रेणि मध्ये षड्गुणहानिवृद्धिरूप अगुरुलघुपर्याय ते शुद्धअर्थपर्याय, अने मतिज्ञानादि अवलोकन अवस्थिति एक अक्षरने अनतमे भागे पर्यायरूप जे ज्ञानादि चेतन्न उपयोग स्थिति ते अशुद्ध पर्याय जाणवो, तथा उत्पाद व्ययध्रुवरूप जीवना शुद्धाशुद्ध द्रव्यगुणपर्याय जाणवा, जेम मतिज्ञान उपयोगनो व्यय, श्रुतज्ञानोपयोगनो उत्पाद अने ज्ञानगुण ध्रुव ते शुद्ध भेद,

तथा मनुष्यगतिनो व्यय, देवगतिनो उत्पाद अने जीवद्रव्य तो शाश्वत ध्रुवरूपे छे, ते अशुद्धभेद जाणवो हवे पुद्गलद्रव्यना गुणपर्याय विचारीए, त्या ते पुद्गलद्रव्य पण बे भेदे छे, एक शुद्ध अने बीजो अशुद्ध, आकाशप्रदेशे रहेल शुद्ध अविभागी अच्छेद अभेदरूप परमाणुओ ते शुद्ध पुद्गलद्रव्य, अने द्व्यणुक त्र्यणुकादि परमाणुओना बनेला जे स्कंधो ते अशुद्ध पुद्गलद्रव्य, हवे पौद्गलिक गुण पण बे भेदे छे, एक शुद्ध अने बीजो अशुद्ध, त्या शुद्ध ते निर्विभागी वीसगुणयुक्त पुद्गलद्रव्यगुण जाणवा वीसगुणादि सहित अनत गुणमिश्रित द्व्यणुकादि स्कंधरूप मुख्य गमन रूपान्तर गुणनी गौणता अने सत्तागुणनी मुख्यता तेने अशुद्धपुद्गल गुण कहीए, वळी पुद्गलपर्याय पण शुद्ध अने अशुद्ध एम बे भेदे छे, ते पण व्यजन अने अर्थना भेदे द्विविध छे, त्या शुद्ध आकाशप्रदेशे अविभागी षड्गुणहानिवृद्धिरूप शुद्ध परमाणु पर्याय ते अने अशुद्धव्यजनपर्याय ते स्थूल सूक्ष्म परिणामरूप द्व्यणुकादि स्कंध पर्याय ते, वळी शुद्धअर्थपर्याय ते पोतानी गुणश्रेणि मध्ये षड्गुणहानिवृद्धिरूप परिणमन पर्याय ते, तथा अशुद्धअर्थपर्याय ते द्व्यणुकादि स्कंधरूप गुणविगति, तीव्र मन्द तारतम्यभेद परिणमन पर्याय ते, जेम पूर्व स्कंधनो व्यय, वर्तमाननो उत्पाद

अने पुद्गल द्रव्य तो शाश्वत छे, एटले जेम सोनानो कदोरो भागीने सोनाना बाजुबन्ध कराव्या त्या कदोरानो व्यय, बाजुबन्धनो उत्पाद अने सोनु ते ध्रुव हवे धर्मास्तिकायना द्रव्य गुण पर्याय विचारे छे धर्मास्तिकाय शुद्धद्रव्य लोकप्रमाण, असख्यात प्रदेशी, अखड, एक आकृतिरूप अरुपि शुद्धव्यजन पर्यायरूप धर्मास्तिकायद्रव्य जाणवु, तथा पोतानी गुणश्रेणि मध्ये षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिणमन करे त्या शुद्ध अर्थपर्याय धर्मास्तिकायना कहिये, गुण ते जीव पुद्गलने गतिसहायकरूप, तथा उत्पादव्ययध्रुवपणे षट्गुणहानिवृद्धिरूप पर्याय जाणवा —जेम चलणगतिनो उत्पाद, स्थितिनो व्यय अने द्रव्यसत्ता ध्रुव शाश्वत जाणवी, एवीज रीते अधर्मादि बीजा त्रण द्रव्योनु पण किंचित् स्वरूप लखीए छीए —अधर्मनो गुण जे पुद्गलने स्थितिसहायक, असख्यातप्रदेशी, लोकप्रमाण, अखड, षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिणाम, ते शुद्ध पर्याय, त्या अखडआकृतिरूप शुद्ध व्यजनपर्याय जाणवो अने ज्या षट्गुणहानिवृद्धि करे त्या शुद्ध अर्थपर्याय जाणवो, जेम स्थितिनो उत्पाद, गतिनो व्यय, अने द्रव्यसत्ता ध्रुव जाणवी, काळ द्रव्यनो गुण वर्तना लक्षण, पचद्रव्यनो वर्तना पर्याय सर्व द्रव्यनो पर्याय, असख्यात लोकप्रमाण शुद्ध पर्याय कहीए वर्तमान समयनो व्यय, अनागत समयनो

उत्पाद, द्रव्य सत्ता ध्रुव, उपचारे एक कालद्रव्य आकृति ते शुद्ध व्यजनपर्याय, हवे आकाशद्रव्यनो गुण अवकाशदानलक्षण, लोकालोकप्रमाण, अनतप्रदेशी, घटाकाशनो उत्पाद, पूर्वघटाकाशनो व्यय अने द्रव्य सत्ता ध्रुव जाणवी तथा लोकालोक प्रमाण अखटआकृतिरूप शुद्धव्यजनपर्याय कहीये, एम षद्द्रव्यनु पर्यायादि किंचित् स्वरूप कहिने तेमा जे काइ विशेष जाणवा योग्य छे ते कहे छे —

गाथा—परिणामी जीवमुत्ता, सपएसा एगखित्तकिरियाय
णिच्चकारणकत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे (१)

१ जीव अने पुद्गल परिणामी, शेष चार अपरिणामी, २ जीवद्रव्य ते जीव चेतनरूप अने शेष पाच अजीव अचेतन जडरूप छे, ३ पुद्गल रूपी मूर्तिमत छे, शेष पाच अरूपी छे, ४ काल, अप्रदेशी छे, शेष पाच सप्रदेशी छे, धर्म, अधर्म अने आकाश ए त्रण एक अने शेष त्रण अनेक, ६ आकाश क्षेत्र छे, अने शेष पाच क्षेत्री छे, ७ जीव अने पुद्गल बे सक्रिय छे, शेष चार अक्रिय छे, ८ जीव अने पुद्गल बे व्यवहारथी अनित्य शेष चार नित्य छे, ९ जीव अकारणरूप अने शेष पाच कारणरूप छे, १० जीव कर्ता अने शेष पाच अकर्ता छे, ११ आकाश सर्वगत छे, अने शेष पाच असर्वगत छे.

अने पुद्गल द्रव्य तो शाश्वत छे, एटले जेम सोनानो कदोरो भागीने सोनाना बाजुबन्ध कराव्या त्या कदोरानो व्यय, बाजुबन्धनो उत्पाद अने सोनु ते ध्रुव हवे धर्मास्तिकायना द्रव्य गुण पर्याय विचारे छे धर्मास्तिकाय शुद्धद्रव्य लोकप्रमाण, असख्यात प्रदेशी, अखड, एक आकृतिरूप अरुपि शुद्धव्यजन पर्यायरूप धर्मास्तिकायद्रव्य जाणवु, तथा पोतानी गुणश्रेणि मध्ये षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिणमन करे त्या शुद्ध अर्थपर्याय धर्मास्तिकायना कहिये, गुण ते जीव पुद्गलने गतिसहायकरूप, तथा उत्पादव्ययध्रुवपणे षट्गुणहानिवृद्धिरूप पर्याय जाणवा—जेम चलणगतिनो उत्पाद, स्थितिनो व्यय अने द्रव्यसत्ता ध्रुव शाश्वत जाणवी, एवीज रीते अधर्मादि बीजा त्रण द्रव्योनु पण किंचित् स्वरूप लखीए छीए—अधर्मनो गुण जे पुद्गलने स्थितिसहायक, असख्यातप्रदेशी, लोकप्रमाण, अखड, षट्गुणहानिवृद्धिरूप परिणाम, ते शुद्ध पर्याय, त्या अखडआकृतिरूप शुद्ध व्यजनपर्याय जाणवो अने ज्या षट्गुणहानिवृद्धि करे त्या शुद्ध अर्थपर्याय जाणवो, जेम स्थितिनो उत्पाद, गतिनो व्यय, अने द्रव्यसत्ता ध्रुव जाणवी, काळ द्रव्यनो गुण वर्तना लक्षण, पचद्रव्यनो वर्तना पर्याय सर्व द्रव्यनो पर्याय, असख्यात लोकप्रमाण शुद्ध पर्याय कहीए वर्तमान समयनो व्यय, अनागत समयनो

कथन स्वरूप, ३ गणितानुयोग ते द्वीप, समुद्र, क्षेत्रादिनु, क्षेत्रफळादिमापनु गणित कथन स्वरूप, ४ चरणकरणानुयोग ते क्रियानुष्ठान चारित्रादि व्रत पच्चखाण नियमादि विधि कथनस्वरूप

१४७ प्र०–जीव दुर्लभबोधिपणु केटला कारणे पामे ?

उ०–छहिठाणेहिंदुल्लभबोहिमाणकम्मपकरति अरिहताणअवन्नवयमाणे ॥१॥ अरिहतपन्नत्तस्सधम्मस्सअवन्नवयमाणे ॥२॥ आयरियाण अवन्नवयमाणे ॥३॥ उवज्झायाण अवन्नवयमाणे ॥४॥ चाउवन्नस्ससघस्स अवन्नवयमाणे ॥५॥ समद्दीठीदेवाण अवन्नवयमाणे ॥ ६ ॥

१ श्रीअरिहत, २ तथा तेमनो भाखेलो जे धर्म तथा तेमनी प्रतिमाजी तथा तेमना वचनरूप जे सिद्धात इत्यादिक अरिहत सबधी अवर्णवाद निंदा, द्वेषादि करवारूप अविनयादि कारण थकी, ३ जिन आज्ञाकारी, जिनशासनस्थभरूप श्रीआचार्यभगवतनो अवर्णवाद करवा थकी, ४ श्रीसूत्रसिद्धातना पारगामी आचार्यपदने योग्य, अनेक शिष्योने सारणावारणादि हित शिक्षा, सूत्रसिद्धातार्थ अभ्यासना दाता श्रीउपाध्यायजी भगवतनो अवर्णवाद करवा थकी, ५ ज्ञाने करीने एकात मोक्षमार्गनाज साधक श्रीसाधु मुनिमहाराजानो अवर्णवाद करवा थकी, ६ जिन आज्ञाकारी सुशील श्रीअरिहतादिकने [illegible] पूजनिक एवो श्रीचतुर्विधसघ तेनो अवर्ण- [illegible]थी, जीव दुर्लभबोधिपणु पामे, अर्थात्

१४३ प्र०—वेदना सबंधी चौभगी कहो

उ०—१ अल्पवेदना अल्पनिर्जरा ते देवताओने, २ महावेदना अल्पनिर्जरा ते नारकीने, ३ महावेदना महानिर्जरा ते अप्रमत्त साधुने, गजसुकुमालनीपरे, ४ अल्पवेदना महानिर्जरा ते शैलेशीकारकमहात्मा चौदमा गुणठाणी परमात्मस्वरूप सन्मुखी जाणवा

१४४ प्र०—सम्यक्त्व अने मिथ्यात्वनी चौभगी भिन्न भिन्न जीवाश्रित कहो

उ०—अनादिअनतमिथ्यात्व अभव्यने, २ अनादिसात मिथ्यात्व भव्यने, ३ सादिसातमिथ्यात्व प्राप्त सम्यक्त्वत्रमनारने, ४ सादि अनत भागो शून्य छे

१४५ प्र०—व्रतअगीकार तथा पालनमा सिंहपणा तथा शियाळपणानी चौभगी दृष्टात सहित कहो

उ०—१ सिंहपरे व्रत ग्रहे अने सिहनी परे पाळे ते जबुस्वामी स्थूलभद्रादिनी परे, २ सिहपरे ग्रहे अने शियाळनीपरे पाळे, ते मरिचादिवत्, ३ शियाळपरे ग्रहे अने सिहनी परे पाळे, ते मेतार्यमुनिआदिवत्, ४ शियाळपरे ग्रहे अने शियाळपरे पाळे ते अगारमर्दकाचार्य, कुलवालुकादिवत् जाणवा

अर्थपय।
ग्योग ते कया
व्यय, अने
गुण वर्तना लक्षणे, षद्द्रव्य विषयक गुणपर्याय स्वरूप
द्रव्यनो पर्याय, असंख्य विवेचनमुख्याधिकार, २ धर्म-
कहीए वर्तमान समय सती महात्माओना चरित्रोनु

कथन स्वरूप, ३ गणितानुयोग ते द्वीप, समुद्र, क्षेत्रादिनु, क्षेत्रफळादिमापनु गणित कथन स्वरूप, ४ चरणकरणानुयोग ते क्रियानुष्ठान चारित्रादि व्रत पच्चखाण नियमादि विधि कथनस्वरूप

१४७ प्र०—जीव दुर्लभबोधिपणु केटला कारणे पामे ?

उ०—छहिठाणेहिंदुल्लभबोहिमाणकम्मपकरति अरिहताणअवन्नवयमाणे ॥१॥ अरिहतपन्नत्तस्सधम्मस्सअवन्नवयमाणे ॥२॥ आयरियाण अवन्नवयमाणे ॥३॥ उवज्झायाण अवन्नवयमाणे ॥४॥ चाउवन्नस्ससघस्स अवन्नवयमाणे ॥५॥ समदीठीदेवाण अवन्नवयमाणे ॥ ६ ॥

१ श्रीअरिहत, २ तथा तेमनो भाखेलो जे धर्म तथा तेमनी प्रतिमाजी तथा तेमना वचनरूप जे सिद्धात इत्यादिक अरिहत सबधी अवर्णवाद निंदा, द्वेषादि करवारूप अविनयादि कारण थकी, ३ जिन आज्ञाकारी, जिनशासनस्थभरूप श्रीआचार्यभगवतनो अवर्णवाद करवा थकी, ४ श्रीसूत्रसिद्धातना पारगामी आचार्यपदने योग्य, अनेक शिष्योने सारणावारणादि हित शिक्षा, सूत्रसिद्धातार्थ अभ्यासना दाता श्रीउपाध्यायजी भगवतनो अवर्णवाद करवा थकी, ५ ज्ञाने करीने एकात मोक्षमार्गनाज साधक श्रीसाधु मुनिमहाराजानो अवर्णवाद करवा थकी, ६ जिन आज्ञाकारी सुशील श्रीअरिहतादिकने पण पूजनिक एवो श्रीचतुर्विधसघ तेनो अवर्णवाद करवा थकी, जीव दुर्लभबोधिपणु पामे, अर्थात्

अनंतकाळ संसारपरिभ्रमण करता थका पण धर्म सामग्रीनी जोगवाइ पामवी महादुर्लभ थइ पडे, तो पछी धर्म प्राप्तिनी दुर्लभतानी वातनु तो कहेवुज शु ?

१४८ प्र०—आठ प्रकारना आत्मा ते कया ?

उ०—१ द्रव्यात्मा एटले असंख्यातप्रदेशी शुद्धजीव-द्रव्य स्वगुणपर्यायसहित सत्ताए छे ते शुद्ध द्रव्यात्मा, अने तेना ज्ञानदर्शनादि उपयोगे रहित ते अशुद्धद्रव्यात्मा कहीये, २ कषायात्मा, सोळ कषाय तथा नव नोकषाय प्रवर्तमान जीव ते कषायात्मा, ३ मनवचनादि योगप्रवर्तमान आत्मा ते योगात्मा, ४ ज्ञान अज्ञानादि उपयोगी आत्मा ते उपयोगात्मा, ५ ज्ञानात्मा एटले जीवाश्रित सच्चिदानंदघन ज्ञानस्वरूपे प्रवर्तमान आत्मा ते, ६ दर्शनात्मा ते सम्यग्दृष्टिजीव ते, ७ चारित्रात्मा ते सत्तागत स्वरूपरमणरूपस्थिरतागुणे प्रवर्तमान जे जीव ते, ८ वीर्यात्मा, मन वचन कायादिना बळ पराक्रमरूप अशुद्ध वीर्यात्मा कहीए, पण आत्मसत्तागत रहेल अनंतशक्तिनी स्फुरतिए शुद्धात्मोपयोगे प्रवृति करी अनादि अनंतकाळना कर्म मळने निकंदन करणरूपशक्तिनी व्यक्ति ते शुद्धवीर्यात्मा कहीए

१४९ प्र०—पूर्वोक्त अष्टविध आत्माओमाथी कइ गतिमा केटला होय ते कहो

उ०—नारकी तथा देवताओ मध्ये सात आत्मा होय, पण चारित्रात्मा न होय, तथा एकेंद्रिय मध्ये छ आत्मा

सभवे पण ज्ञानात्मा अने चारित्रात्मा नहि, तथा तिर्यंचपचेंद्रिय अने मनुष्यगतिमध्ये आठे आत्मा होय, तथा पचमगतिमध्ये एटले श्रीसिद्धपरमात्माने अनतगुणभाजनरूप शुद्ध जीवद्रव्य ते श्रीसिद्ध भगवतनु छे, तेने विषे चतुर्विधआत्मा छे, ते ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा, उपयोगात्मा तथा शुद्ध द्रव्यात्मा

१५० प्र०–अष्टविध त्रसजीवो छे ते कया ? ते दृष्टात सहित कहो

उ०–१ अडजा ते पक्षीआदि, २ पोतजा ते गजादि, जरादि ते गवादि, ४ रसजा ते कीटकादि, ५ स्वेदजा ते यूकादि, ६ सम्मूर्च्छिम ते पतगादिक, ७ उद्भिज ते गिंगोटादि, ८ उत्पादिका ते देव नरकादि

१५१ प्र०–जीवना दस प्रकारना परिणाम ते कया ?

उ०–१ गति, २ इद्रिय, ३ कषाय, ४ लेश्या, ५ योग, ६ उपयोग, ७ ज्ञान, ८ अज्ञान, ९ दर्शन, १० चारित्र इति पन्नवणा सूत्रना १३ मा पद मध्ये छे।

१५२ प्र०–जीवपरिणमन केटला प्रकारे छे ?

उ०–" बधण १ गई २ सठाणा ३ भेय ४ वन्न ५ गध ६ रस ७ फास ८ अगुरुलघु १० परिणामा ए दसहुतिअजीवा ॥ १ ॥

१ बधन, २ गति, ३ सस्थान एटले आकृति, ४ जाति, ५ वर्ण, ६ गध, ७ रस, ८ स्पर्श, ९ अगुरुलघु, १० शब्द, ए दस रीते परिणमे छे

१५३ प्र०–अतर्मुहूर्त कोने कहीए ?

अनतकाळ ससारपरिभ्रमण करता थका पण धर्म सामग्रीनी जोगवाइ पामवी महादुर्लभ थइ पडे, तो पछी धर्म प्राप्तिनी दुर्लभतानी वातनु तो कहेवुज शु ?

१४८ प्र०—आठ प्रकारना आत्मा ते कया ?

उ०—१ द्रव्यात्मा एटले असख्यातप्रदेशी शुद्धजीव-द्रव्य स्वगुणपर्यायसहित सत्ताए छे ते शुद्ध द्रव्या-त्मा, अने तेना ज्ञानदर्शनादि उपयोगे रहित ते अशुद्धद्रव्यात्मा कहीये, २ कषायात्मा, सोळ कषाय तथा नव नोकषाय प्रवर्तमान जीव ते कषायात्मा, ३ मनवचनादि योगप्रवर्तमान आत्मा ते योगात्मा, ४ ज्ञान अज्ञानादि उपयोगी आत्मा ते उपयोगात्मा, ५ ज्ञानात्मा एटले जीवाश्रित सच्चिदानदघन ज्ञानस्वरूपे प्रवर्तमान आत्मा ते, ६ दर्शनात्मा ते सम्यग्दृष्टिजीव ते, ७ चारित्रात्मा ते सत्तागत स्वरूपरमणरूपस्थिरतागुणे प्रवर्तमान जे जीव ते, ८ वीर्यात्मा, मन वचन कायादिना बळ पराक्रम-रूप अशुद्ध वीर्यात्मा कहीए, पण आत्मसत्तागत रहेल अनतशक्तिनी स्फुरतिए शुद्धात्मोपयोगे प्रवृत्ति करी अनादि अनतकाळना कर्म मळने निकदन कर-णरूपशक्तिनी व्यक्ति ते शुद्धवीर्यात्मा कहीए

१४९ प्र०—पूर्वोक्त अष्टविध आत्माओमाथी कइ गतिमा केटला होय ते कहो

उ०—नारकी तथा देवताओ मध्ये सात आत्मा होय, पण चारित्रात्मा न होय, तथा एकेंद्रिय मध्ये छ आत्मा

अचानक सर्व साभरी आवे, अने तेथी पोते पूर्वे कोण हतो तथा क्या एवीरीते वगेरे समस्त निजपणानु भान थइ आवे तेने जातिस्मरण कहे छे, ते बे प्रकारे छे, एक शुद्धक्षयोपशमानुसार ते पूर्वभवना सम्यग्दृष्टि गाढ धर्माभ्यासी महात्माओने थाय ते, जेम श्रीवज्रस्वामी प्रमुखने, अने बीजु अशुद्धक्षयोपशमानुसार ते पूर्वभवना मोहादि विषय कषायादि चेष्टादि स्मरण रागद्वेषजनित निरर्थक जाणवु, जातिस्मरणमा जघन्यथी एक बे त्रण भव देखे, मध्यम चार पाच छ आदि अने उत्कृष्ट नव भव सुधी देखे (इति पन्नवणादि वचनात्) *

१५५ प्र०--पुण्य अने धर्ममा शु फेर ?

उ०--पुण्य ते शुभकर्मपुद्गल प्रकृति छे, ते जीवना शुभ परिणामे एटले सुपात्रने अन्नपानादि भक्ति नमस्कारादि करवे करीने नव प्रकारे बधाय छे, तेना नाम अन्नपुण्णे १ पाणपुण्णे २ लेहणपुण्णे ३ सयणपुण्णे ४ वत्थपुण्णे ५ मनपुण्णे ६ वयणपुण्णे ७ कायपुण्णे ८ नमोक्कारपुण्णे ९ ए नव भेद पुण्यना कह्या अने बेंतालीस प्रकारे शातादिरूपे भोगवाय छे,

* जूनी प्रतिमा चउद रत्ननो प्रश्न छे तेना उत्तरमा

गाथा—" चक्कअसिछत्तदंडा, आयुहसालाइहुतिचत्तारि ।
चम्ममणिकागणीनिहि, सिरिगेहेचक्कीणोहुति ॥१॥
सेणावईगाहावई, पुरोहियवड्ढईनीयथनगरे ।
थीरयणरायकुले, वेअड्ढतटेगयतुरया ॥ २ ॥

उ०—" जीवेणकहविफासिय, अनमुहुत्तपिजेणसमत्त । नियमाअवढ्ढपुग्गल, परियट्टोचेवससारो " ॥ १ ॥ पुद्गलानापरावर्त्त पुद्गलपरावर्त, अपकृष्ट किंचिन्न्यूनोऽर्द्धपुद्गल परावर्त्त अर्द्धपुद्गलपरावर्त्त अथ अन्तर्मुहूर्त्तंतु प्रमाण. अन्तर्मुहूर्त्त अष्टसमयोर्द्धयटिद्वय यावदित्यर्थ तद्यसम्यक्त्वोपशमिक अत्रक्षेत्रपुद्गलपरावर्त्तनाधिकार न द्रव्यादि पुद्गलपरावर्त्तेत्युपदेशकम् ।

एक चपटी वगाडीए अथवा आख मींचीने उघाडीए तेटला वखतमा असख्यातासमय थाय तेवा नव समयथी माडीने एक मुहूर्त जे एक सामायिकनो काल वेघडी प्रमाण छे, तेमा एक समय ओछो, तेटला कालने अतर्मुहूर्त कहीए, अर्थात् जघन्यथी नवसमय, उत्कृष्ट वे घडीमा एक समय ओछो, अने ए बेनी वचमा जेटला समयनी सख्या ते सर्वे मध्यमअतर्मुहूर्त जाणवा, एवी रीते अतर्मुहूर्तना असख्याता भेद थाय छे

१५४ प्र०—जातिस्मरण ते शु ? तेना केटला भेद अने तेमा केटला भवनु ज्ञान थाय ?

उ०—अत्रगाथा " पुव्वभवासोपिछई, एकदोतिन्निजावनवगवा उवरितस्सअविसओ, सभावओजाईसमरणस्स ॥ १ ॥

कोइपण वस्तु शब्दरूपादि जे पूर्वे भवातरमा गाढ परिचितअभ्यास सहवासरूप थएल होय एवा घर, हाट, वाडी, वस्त्र, भूषणादि आकृति मात्र देखता, शब्द मात्र सामळता थका, पूर्वभवसबधि जे

अर्थ—सर्वार्थसिद्धविमानवासि देवताओ निश्चयथी एक भवमा सिद्धि पामे छे अने विजयादि विमान वासि देओनी स्थिति सख्याताभवनी होय छे

१६० प्र०—श्रावक जघन्य पदे केटला लामे ?

उ०—क्षेत्रपल्योपमने असख्यातमे भागे इति आवश्यक-निर्युक्तो जबूद्वीपमन्ये 'कोटिकानहव्य अथवा नरा-नहव तयोत्तर यदासमूर्च्छिमाणा विरह तदाकोटिका-स्तोकानरानहव

१६१ प्र०—चार सामायिक ते कया, अने ते प्रत्येकमा कयु समकित तथा गुणठाणु होय ते कहो

उ०—१ श्रुतसामायिकमा दीपकसमकित अने पहेलु गुणठाणु होय, ते अभव्यने पण होय, कारण जे जिनवचनानुसार प्ररूपणा करे तेथी परने मार्ग दीपावे, धर्म पमाडे पण पोताने अधारु होय, अ-पितु श्रद्धा, पाप, नासादि न होय तेथी, २ दर्शन सामायिक सम्यग्दृष्टि चोथागुणठाणीने होय, ३ देशविरतिसामायिक पाचमे गुणठाणे श्रावकने होय, ४ सर्वविरतिसामायिक ते छठ्ठसातमेगुणठाणे वर्तता मुनिमहाराजने होय, ए सर्व गुणठाणानी परिणतिरूप कषायना क्षयोपशमने लीधे होय छे

१६२ प्र०—छकाय जीवोनी महाविराधनारूप पाच स्थान कया कह्या छे ?

उ०—१ घटी स्थान, २ चूला स्थान ते रसोडु, ३ पाणी-आरु, ४ वासिंदु, ५ उखण मूसळादि खाडण

ज्यारे धर्मतो शुद्धात्मपरिणतिरूप चित्तनी निर्मळता, विषयकषायादिरहित शुद्धज्ञानानंदीआत्मारामरूप छे

१५६ प्र०—बारउपयोगमा रूपी केटला अने अरूपी केटला, अने ते शा माटे ?

उ०—केवलज्ञान अने केवलदर्शन ए बे आत्मगुणरूप होवाथी अरूपी छे, अने शेष दस आत्मपुद्गलाश्रित मिश्रित होवाथी रूपी छे.

१५७ प्र०—पाच समकितमा, रूपी केटला अने अरूपी केटला? ते कारण सहित कहो

उ०—पाच मध्ये एक क्षायिक ते शुद्धात्मगुण प्राप्ति भणी अरूपी छे, अने शेपचार पुद्गल उपष्टभी अल्पकालिक किंचित् पराधीनता भणी रूपी छे

१५८ प्र०—छआवश्यकमध्ये केटला रूपी अने केटला अरूपी ? तथा तेमा संवरमा केटला अने निर्जरमा केटला ?

उ०—सामायिकादि पाचआत्मगुण भणी अरूपी छे, अने एक प्रतिक्रमण आवश्यक पापनिंदा, गर्हारूप आत्म सन्मुखी पण मंदता भणी रूपी छे, तथा सामायिक चउवीसत्थो तथा वांदणा ते त्रण संवरतत्त्वमा छे, अने शेष त्रण निर्जरातत्त्वमा छे

१५९ प्र०—सर्वार्थसिद्ध विमानना देवताओ अने विजयविमानना देवताओ केटला भवमा सिद्धि पामे

उ०—" सव्वट्ठाओनियमाएगभिभवमिसिज्झईअवस्स । विजयादिविमाणेहिय, संखिज्जभवाओनायव्वा ॥ १ ॥

लक्षणे लक्षित, स्वसपदाए पूर्ण, परसगे परिणम्यो थको ससार उभो कर्यो, स्वज्ञानादिगुणे परिणम्यो थको सिद्धता करे, एवा आत्मद्रव्यथी ओळखाण अनतनये, अनतनिक्षेपे थाय ए रीते जे आत्मप्रतीति करे तेने जैनमार्गी जैनमार्गमा गणे छे, एवो आत्मा अनेकातपणे जैनमार्गी छे, एनी जे प्रतीति ते सम्यग्दर्शन, एनु जे ज्ञान ते सम्यग्ज्ञान, एमा जे रमवु ते सम्यक्चारित्र कहीए

१६४ प्र०—द्रव्यास्तिकनयना छ सामान्य स्वभाव कहो

उ०—१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ प्रदेशत्व, ६ अगुरुलघुत्व

१६५ प्र०—वस्तुना अग्यार विशेष स्वभाव कहो

उ०—१ नित्य, २ अनित्य, ३ एक, ४ अनेक, ५ सत्य, ६ असत्य, ७ वक्तव्य, ८ अवक्तव्य, ९ भेद, १० अभेद, ११ परम स्वभाव

१६६ प्र०—प्रकारातरे बीजा नव आत्मवस्तुस्वभाव कहो

उ०—१ स्वप्रदेश, २ अप्रदेश, ३ चेतन, ४ अचेतन, ५ मूर्तिमत, ६ अमूर्तिमत, ७ कर्तृत्व, ८ भोक्तृत्व, ९ परिणामिक

१६७ प्र०—षड्द्रव्यमध्ये प्रत्येकना चार चार गुण छे ते कहो

उ०—१ धर्मास्तिकायना—अरूपी, अचेतन, अक्रिय अने गतिसहायक

२ अधर्मास्तिकायना—अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने स्थिरसहायक

पीसण स्थान, ए पाच उत्साप हिंसाना स्थान, त्या उत्तमजीवो नि शकपणे न वर्तता अतिपतनाए वर्ते छे, तेथी आकरो कर्मबंध पडतो नथी

१६३ प्र०—आत्मस्वरूप सूचक केटलाएक अन्वय अने व्यतिरेकभावे विशेषणो कहो

उ०—असख्यातप्रदेशी, अनतज्ञानमयी, अनतदर्शनमयी, अनतचारित्रमयी, अनतदानमयी, अनतवीर्यमयि, अनतलाभमयी, अनतभोगमयी, अनतउपभोगमयी, अरूपी, अखड, अगुरुलघुमयी, अक्षय, अजर, अमर, अशरीरी, अतेन्द्री, अणाहारी, अलेशी, अनुपाधिक, अरागी, अद्वेषि, अक्रोधी, अमानी, अमायी, अलोभी मिथ्यात्वरहित, अविरतिरहित, कषायरहित, योगरहित, अयोगी, सिद्धस्वरूपी, ससाररहित, स्वात्मसत्तावत, परसत्ता रहित, परभाव अकर्ता, स्वभाव कर्ता, परभाव अभोक्ता, स्वभाव भोक्ता, क्षायिक वेत्ता, स्वक्षेत्रावगाहि, परक्षेत्र अनावगाहि, लोकप्रमाण अवगाहनवत, धर्मास्तिकायथी भिन्न, अधर्मास्तिकायथी भिन्न, आकाशास्तिकायथी भिन्न, पुद्गलथी भिन्न, परकालथी भिन्न, स्वद्रव्यवत, स्वक्षेत्रवत, स्वकालवत, स्वभाववत, अवस्थानपणे स्वगुणथी अभिन्न, कार्यभेदे भिन्न, अवस्थितसत्तावत, परिणमनसत्तावत, द्रव्यास्तिकपणे नित्य, पर्यायास्तिकपणे नित्यानित्य, द्रव्यपणे एक, गुण पर्यायपणे अनेक, अनतद्रव्यास्तिकधर्मवत, अनत पर्यायास्तिकधर्मवत इत्यादि स्वसपदामयी, चेतन

लक्षणे लक्षित, स्वसपदाए पूर्ण, परसगे परिणम्यो थको ससार उभो कर्यो, स्वज्ञानादिगुणे परिणम्यो थको सिद्धता करे, एवा आत्मद्रव्ययी ओळखाण अनतनये, अनतनिक्षेपे थाय ए रीते जे आत्मप्रतीति करे तेने जेनमार्गी जैनमार्गमा गणे छे, एवो आत्मा अनेकातपणे जैनमार्गी छे, एनी जे प्रतीति ते सम्यग्दर्शन, एनु जे ज्ञान ते सम्यग्ज्ञान, एमा जे रमवु ते सम्यक्चारित्र कहीए

१६४ प्र०—द्रव्यास्तिकनयना ६ सामान्य स्वभाव कहो

उ०—१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ प्रदेशत्व, ६ अगुरुलघुत्व.

१६५ प्र०—वस्तुना अग्यार विशेष स्वभाव कहो

उ०—१ नित्य, २ अनित्य, ३ एक, ४ अनेक, ५ सत्य, ६ असत्य, ७ वक्तव्य, ८ अवक्तव्य, ९ भेद, १० अभेद, ११ परम स्वभाव

१६६ प्र०—प्रकारातरे बीजा नव आत्मवस्तुस्वभाव कहो

उ०—१ स्वप्रदेश, २ अप्रदेश, ३ चेतन, ४ अचेतन, ५ मूर्तिमत, ६ अमूर्तिमत, ७ कर्तृत्व, ८ भोक्तृत्व, ९ परिणामिक

१६७ प्र०—षड्द्रव्यमध्ये प्रत्येकना चार चार गुण छे ते कहो

उ०—१ धर्मास्तिकायना—अरूपी, अचेतन, अक्रिय अने गतिसहायक

२ अधर्मास्तिकायना—अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने स्थिरसहायक.

३ आकाशास्तिकायना–अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने अवकाशदानगुण

४ पुद्गलास्तिकायना–रूपी, अचेतन, सक्रिय, अने पूरणगलण

५ कालना–अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने वर्तना

६ जीवना–अरूपी, चेतन, सक्रिय, चेतनालक्षणवत

१६८ प्र०–पर्यायास्तिकनयना ६ भेद कहो, तथा तेनु किंचित् विशेषकथन गुणपर्यायस्वरूप कहो

उ०–१ पर्यायत्व, २ भव्यत्व, ३ सिद्धत्व, ४ अभव्यत्व, ५ कारणत्व, ६ कार्यत्व

वळी प्रकारातरे गुणपर्याय स्वरूप कहे छे —

द्रव्यव्यजनपर्याय असख्यप्रदेशत्व, गुणपर्याय गुणातरभेद क्षायादिभेद, गुणव्यजनपर्याय, एक गुणना अनतपर्याय, स्वभाव पर्याय, ते षड्गुणहानि वृद्धिरूप, अने विभावपर्याय ते नर नरकादिपर्यायास्तिक सामान्य पारिणामिक, अखड, अलख, असहायी, सक्रियना अनतगुणपर्याय समुदायनो बादर द्रव्यभेद कहीए

१६९ प्र०–द्रव्य अभेदी ते शु ?

उ०–द्रव्यना बे भाग न थाय माटे

१७० प्र०–भेद द्रव्य ते केम ?

उ०–गुण गुणना करनार जुजुवा भणी भेदस्वरूपी कहीए जेम के–ज्ञान गुण, दर्शन गुण, चारित्र गुण, सुख

गुण, दान गुण, लाभ गुण, भोग गुण, वीर्य गुण, इत्यादि अनतगुणभेदे भेदस्वरूपी कहीए

१७१ प्र०—सम्यक्त्वना पर्यायनामो कहो

उ०—आस्ता, श्रद्धा, प्रतीति, निर्धार, रूचि, अभिलाष, वहुमान, अर्थिपणु, तत्त्वइहा, गुण अद्भुतता, गुण गुणी आश्चर्यता, तद्विरहाकारकता, वस्तु प्रेम, तत्त्वार्थ सद्दहणा, इत्यादि

१७२ प्र०—सम्यग्ज्ञानना पर्यायनामो कहो

उ०—अवलोकन, भासन, परिच्छेदन, विवेचन, अमूर्त्तिचेतनत्व, सर्ववेत्ता, अप्रतिपातित्व निरावरणत्व, ज्ञायकता, स्वरूपओळखाण, स्वरूपानुभव इत्यादि

१७३ प्र०—सम्यक्चारित्रना पर्याय नामो कहो

उ०—स्थिरता, तत्त्वरमण, निश्चयत्वानुभूति, परमक्षमा, परममार्दव, परमआर्जव, परमनिर्लोभता, अकामता, अनासगता, सुख, स्वरूपविलास, ठरणता, सतोप, समता, स्वरूपस्वादता, स्वरूपानद, सहजता, स्वाधीनता, इत्यादि

१७४ प्र०—सम्यक्त्वनी दशरुचि कहो

उ०—१ निसर्ग रुचि, २ उपदेश रुचि, ३ ज्ञान रुचि, ४ सूत्र रुचि, ५ वीज रुचि, ६ अभिगम रुचि, ७ विस्तार रुचि, ८ क्रिया रुचि, ९ सक्षेप रुचि, १० धर्म रुचि

१७५ प्र०—सम्यक्त्वना पाच लक्षण कहो

उ०–१ शम एटले उपशम कहेता पारमार्थिक अकषायि-
पणु एटले अपराधिशत्रुनु पण चित्तमा अतरग
परिणामे कदी मातु चितवे नहि, २ संवेग ते
एकात शुद्धपरमात्मस्वरूपसुखनीज अभिलाषा,
३ निर्वेद ते ससार थकी उदासीनता तीव्रउद्वि-
ग्नता, ४ अनुकपा, ते प्राणीमात्रने आत्मवत्
लेखी कोइ उपर पण मारातारापणानो भिन्नभाव
न गणे, लुखा व्यवहारे वर्ते, अतरगथी सदा न्यारो
रखे छता सर्वउपर आप समान दया भाव दृष्टि,
५ आस्तिकता ते शुद्ध जिनवचन उपर एकात
दृढ चित्त प्रतितस्वरूप श्रद्धा, गाढ सत्य मान्यता

१७६ प्र०–आत्मा बधक छे, अनवक छे, भोक्ता छे, अभोक्ता
छे, कर्ता छे, अकर्ता छे ते शु ?

उ०–निश्चयनये अनधक, व्यवहारनये बधक, एमज
भोक्ता कर्तादि व्यवहारे आत्मा जाणवो, अने
निश्चये एटले मूळस्वरूपे अपरिणामिकपणे एटले
स्वरूपपरिणामे अभोक्ता, अकर्ता, स्वरूपभोक्ता
स्वरूप कर्ताज कहिये

१७७ प्र०–त्रणआत्मानु मूळस्वरूप कहो

उ०–१ बहिरात्मा ते देहादिकने आत्मबुद्धिएं अहभावे
एकाते बाह्यदृष्टिए पोतारूप समजे, जेवु देखे ते-
वुज माने, पण अतरगदृष्टिए कई विचारे नहि के
समजे नहि ते एकातमिथ्यादृष्टि पहेलेगुणठाणे
जाणवा, २ अतरात्मा ते आत्मा अने देहादिक

पौद्गलिक भावने भिन्नभिन्न लखे स्वरूप गवेखे प-
र्थी उदासीनता चितवे इत्यादिभेदज्ञानी चोथेथी
बारमा गुणठाणा सुधी जाणवा, ३ परमात्मा ते
अतिनिर्मळ, शुद्धस्वरूपानुभवी, निष्कल्की निरा-
वरणी सच्चिदानदघनस्वरूपमय, अतरात्माने ध्येय
ध्यानरूप जाणवा ज्ञनि प्रतिमा त्रण आत्मानु स्व-
रूप नीचे प्रमाणे छे

हवे आत्मानो स्वरूप लखे छे आत्मा त्रण प्र-
कारे ते आत्मानो स्वरूप सम्यग्दृष्टिए राखवो जेम
स्थिरता थाय ते लखे छे ते त्रण प्रकार ते कया ?
एक बहिरात्मा १, एक अतरात्मा २, एक परमात्मा
३ हवे बहिरात्मा कहे छे शरीर, कुटुम्ब, माल,
धन, घर, परिवार, नगर, देश, रागद्वेष, मिथ्यात्व,
मे मार्यो, मे जीवाड्यो, मे सुखी कर्यो, में दुःखी
कर्यो, रसेविमोहप्रमुख ए सर्व निजस्वभाव जाणे
तेहने बहिरात्मा कहिए तेहने बहिर्दृष्टि होइ ते
प्रथम मिथ्यात्वगुणठाणे होवे १ अथ अतरात्मा-
नो स्वरूप कहे छे प्रथम कर्मनाश्यानो कारण
जाणे ते लखे छे मिथ्यात्व ५ अविरति १२ कषाय
२५ योग १५ ए सत्तावन हेतु एजीव कर्मबाधे ते
वल्ता भोगवे ते भोगवता मोहनीकर्मना जोरे दुःख
पामे तिहारे इम जाणे जे मारो स्वभाव नहि किसी
वस्तु जाइ तथा मरण आवे तिहारे इम जाणिजे
माहरा प्रदेशथी काइ जातो नथी, हु सर्व वस्तुथी

भिन्न छु किवारे कुलाभ पामे तिवारे जाणे जे ए वस्तुथी सम्र रुळ्यो छे वेदनादिक दृष्टि आने समभावे राखे परभव पुद्गलादिक आत्माथी भिन्न जाणवो उज्वानीखपक्षी परमात्मानी वाञ्छा करे ध्यान सज्झाय विशेष करे भावना खीणखीण भावे सवर आदरे निज स्वभावे जे ज्ञान तेहने विशेषे इम मन रहे ते अतरात्मा ध्यान करवा परमात्माने जोग्य चोथा गुणठाणाथी बारमा गुणठाणा सुधि अतरात्मा जाणवो, एहवो जे अतरात्मा ओळखे तिवारे परमात्मा पामे, परमात्मानो स्वरूप लखिए छीए साक्षात् पोतानो स्वरूप देखे कर्मनी उपाधि रहित ते परमात्मा तेरमे तथा चौदमे गुणठाणे होय तथा सिद्ध जाणवा ए परमात्मा ध्यान योग्य, अतरात्मा ध्याववा योग्य ता ध्येय ते परमात्मा ध्यान ते एकाग्रता एम त्रणआत्माना स्वरूप जाणवा इति भाव

७८ प्र०—सद्दहणा, फरसणा अने प्ररूपणा, सबधी अष्टभगी दृष्टात सहित कहो

उ०—सद्दहणा, फरसणा अने प्ररूपणा, एटले जाणे आदरे अने पाळे, ते भागे श्री गौतमादि महात्मा जाणवा, २ सद्दहणा, फरसणा, पण प्ररुपणाए असमर्थ ते जे सामान्य साधु उपदेश देवाने असमर्थ छे, पण पोते पाळे छे तेने जाणवो, ३ सद्दहणा पण फरसणा, प्ररुपणा नहि, ते अनुत्तर विमानवासी देवने, जाणे न आदरे पण पाळे ते भागे जाणवु, ४ सद्दहणा

तथा प्ररुपणा पण फरसणा नहि ते संवेगपाक्षिकने जाणे, आदरे पण पाळवा असमर्थ ते भागे जाणवु ५ फरसणा पण सद्दहणा ने प्ररुपणा नहि, ते बाळ तपस्वी प्रमुखनेन जाणे पण आदरे अने पाळे ते भागे जाणवु, ६ प्ररुपणा होय पण सद्दहणा अने फरसणा नहि, ते आदरे पण न जाणे अने न पाळे ए भागो असजयति सन्यासी आदिने, ७ फरसणा तथा प्ररुपणा होय पण सद्दहणा नहि, ते न जाणे पण आदरे पाळे ते भागो पासत्थादिकने तथा अभव्यदीपकसमकितीने पण होय, ८ असद्दहणा, अप्ररुपणा ते अनादिमिथ्यात्विने, न जाणे न आदरे न पाळे ए भागो जाणवो, ते निगोदिया प्रमुख एकेंद्रियादिकने होय

१७१ प्र०—श्रीतीर्थंकर प्रभुना दानाधिकार संबधी ७ अतिशयो वर्णवो

उ०—प्रतिदिन एकक्रोड अने आठलाख सोनैया आपे, ते सोनैयो आठरत्ति के मतातरे ऐंसीरत्तिनो पण कह्यो छे, ७ घडी दहाडो चढता आपवा माडे ते पोणाबेपहोर सुधी जमवानी वेळा पर्यंत मनवाछित दान सौने भाग्यप्रमाणे प्रभु आपे, सोनैयामा प्रभुनु तथा प्रभुना मातपिताना नाम होय, ते एक दिवसना दानना सोनैया नवहजार मण थाय, चालीस मणनु एक गाडु भरता कुल २२५ गाडा भराय, ते गाडा तथा मण वगेरे सर्वे

भिन्न छु किनारे कुलाभ पामे तिवारे जाणे जे ए वस्तुथी सबध रूच्यो छे वेदनादिक दृष्टि आने समभावे राखे परभव पुद्गलादिक आत्माथी भिन्न जाणतो छद्मानीखपकरी परमात्मानी वाछा करे ध्यान सज्झाय विशेष करे भावना खीणखीण भावे सवर आदरे निज स्वभावे जे ज्ञान तेहने विशेषे इम मन रहे ते अतरात्मा ध्यान करवा परमात्माने जोग्य चोथा गुणठाणाथी बारमा गुणठाणा सुधि अतरात्मा जाणवो, एहवो जे अतरात्मा ओलखे तिवारे परमात्मा पामे, परमात्मानो स्वरूप लखिए छीए साक्षात् पोतानो स्वरूप देखे कर्मनी उपाधि रहित ते परमात्मा तेरमे तथा चौदमे गुणठाणे होय तथा सिद्ध जाणवा ए परमात्मा ध्यान योग्य, अतरात्मा ध्याववा योग्य ता ध्येय ते परमात्मा ध्यान ते एकाग्रता एम त्रणआत्माना स्वरूप जाणवा इति भाव

१७८ प्र०–सद्दहणा, फरसणा अने प्ररूपणा, सबधी अष्टभगी दृष्टात सहित कहो

उ०–सद्दहणा, फरसणा अने प्ररूपणा, एटले जाणे आदरे अने पाळे, ते भागे श्री गौतमादि महात्मा जाणवा, २ सद्दहणा, फरसणा, पण प्ररुपणाए असमर्थ ते जे सामान्य साधु उपदेश देवाने असमर्थ छे, पण पोते पाळे छे तेने जाणवो, ३ सद्दहणा पण फरसणा, प्ररुपणा नहि, ते अनुत्तर विमानवासी देवने, जाणे न आदरे पण पाळे ते भागे जाणवु, ४ सद्दहणा

' अप्पाणभावेमाणेविहरई ' इम आतमध्यान करे छे ते सर्व कर्म खपाववाने अर्थे ते किहा कर्म खपावे, खपाववाना तो त्रण कर्म छे, उदयकर्म अने नवकर्म ने सत्ताकर्म, उदीरणाकर्म तो उदयना पेटा मध्ये गवेखीए, तथा कर्म ते मध्ये उदय सेणे खपावे छे, तथा सत्ताकर्म सेणे शोषे छे, इति नवकर्म किम मटे ?

उ०–शुभयोगे पाच महाव्रत सवररूपक्रियाए नवा बध पडे ते कर्मनिवारे ते माटे बधकर्म निवारे ते व्रतादिक शुभक्रियाए तथा पाच प्रकारना सज्झाय ध्याने उदयकर्म खपावे छे, ते निष्फल करे छे, तथा शुद्धोपयोगे आतमध्याने सत्ताए जे कर्म छे ते सोषे खपावे इम मुनि आतमगुणे निर्मल करी सिद्धि वरे ए भाव

१८१ प्र०–ज्ञानीने आस्रव ते सवररूपे केवी रीते परिणमे छे

उ०–ज्ञानीने शुद्धोपयोगे आत्मपरिणामे आस्रवना कारण ते सवररूपे थाय छे आचाराग सूत्रना चोथा अध्ययने द्वितीयोद्देशके समकितना अध्ययन मध्ये " आसवा ते परिसवा " एवी गाथा छे

१८२ प्र०–हवे श्रीजीवाभिगमसूत्र मध्ये निर्लेपपदे श्रीगौतमे पुछयु के स्वामिन् ? पाच स्थावरना जीव हमणा वर्तमानमा जेटला छे ते निर्लेप थाशे गत्यन्तरे जाशे ?

उ०–एक वनस्पतिकायविना पाचकायना जीव निर्लेप थाशे पृथ्वीअप्पतेउवाउत्रसकायना जीव सर्वस्या-

माप जे जे समयमा प्रभु थया होय ते ते समय तथा ते ते देशना जाणवा, सम्वत्सरी दानना सोनैया सौंधर्म इन्द्रोना आदेशे वैश्रमण देवता आठसमयमा निपजावी प्रभुना गृहभंडारमा भरे, हवे ते दानना ७ अतिशय कहे छे—१ तीर्थंकरना हाथने विषे सौधर्मेंद्र एवी स्थिति करे के जेथी प्रभु दान देता थाके नहि, जोके प्रभुतो अनत शक्तिना धणी छे, तोपण आ उत्सव अवसरे ए प्रथमइद्रनो अधिकार ल्हावो लेवारूप छे, ते अनादिनी एवी मर्यादा जाणवी, इशानेंद्र सुवर्णमय रत्नजडित छडी, दड लइ उभो रहे अने चोसठइद्र सिवाय बीजा सामानिक प्रमुख देवोने दान लेता निवारे, अने याचकना भाग्यानुसार इशानेंद्र तेना मुखे बोलावे अने २ चमरेंद्र तथा बलीन्द्र प्रभुनी मुठीमा वधारे होय तो पाडी नाखे, अने ओछु होय तो पूरु करी आपे, सामानी प्राप्तिने अनुसारे मळे, ३ भुवनपतिदेवता भरतक्षेत्रना मनुष्यने तेडी आवे, ४ अने वाणव्यतर देवो तेमने पाछा मूकी आवे, ५ ज्योतिषी देवो, विद्याधरोने प्रभुना दाननी खबर आपे, ६ तथा प्रभुना पिता त्रण मोटी दानशाळा करावे, एकमा भरतक्षेत्रना मनुष्यने अन्नपानादि खाद्य वस्तु आपे, बीजीए वस्त्र आपे, अने त्रीजीए आभरण आपे

१८० प्र०—हवे साधु सज्झाय करे छे- शुभयोगे व्रतादिकनी शुभक्रिया करे छे तथा शुद्धोपयोगे, शुद्ध स्वभावे

चरवळो, ५ पटलाइ ते गोचरीए जाता पात्रा उपर कपड राखे ते, ६ रयत्ताण ते पात्रवींटवानु लूगडु, ७ गुछओ ते कनलमयखड पानाउपर वांटेछे ते, ए सात पात्राना उपगरणो जाणवा, तथा ८, ९, १० वे सुतराउ कपडा, अने एक उनतु मळी त्रण कपडा राखे, ११ ओघो, १२ मुहपत्ति, ए बार जिन कल्पिने होय, तथा १३ मातरीउ, १४ चोलपटो एव चउदस्थविरकल्पने जाणवा

१८६ प्र०—श्री युगप्रधानआचार्यना विहार शोभा लक्षण कहो.

उ०—काव्य येषाहिवस्त्रे न पतति यूका,
न राष्ट्रभङ्गो न च देशचिन्ता ।
गदा प्रणश्यतिपदोदकेन,
युगप्रधाना (मुनिवृन्दपूज्या.) ॥ १ ॥

उत्तम शारीरिकसौंदर्यबळयुक्त, आचार्यना छत्रीस गुणे सहित, तथा ज्या विचरे त्या अढीयोजन प्रमाण मरकीप्रमुखनो उदद्रव न थाय, उत्कृष्टपणे दशविध यतिधर्म पाळता पळावता, निजकाळने विषे सर्वथी श्रेष्ठपुरुष एकावतारी महात्मा युग प्रधान आचार्य-भगवत जाणवा

१८७ प्र०—नीचे जणावेला शब्दोनो अर्थ कहो
भावना, अध्यात्म, मुनि, मैत्री, कारुण्य, मध्यस्थ, अने प्रमोद भावनाओ

उ०—जूनि प्रतिमा नीचे प्रमाणे लखेल छे
दुर्गतौप्रपतज्जन्तूनधारयतीतिधर्मं,
सयमादिदशविधसर्वज्ञोक्तोभवति ॥ १ ॥

नान्तरे निर्लेप थाशे, पण वनस्पतिकायनिगोदगोलकना जीव निर्लेप " नत्थितत्थअत्थिअणता जीवा जेहिंनपत्तोतसाई परिणामो। उववन्तियचयतियपुणोवितत्थेवतत्थेव ॥ १ ॥ एणे न्याये वनस्पतिकायना जीव निर्लेप न थाय ए भाव

१८३ प्र०—बादरअप्पकाय उपरदेवलोकमा क्या सुधी छे ? तथा तेउकाय केटले सुधी छे ?

उ०—बादरअप्पकाय बारमादेवलोक सुधी अने बादरतेउकाय तीर्छा मनुष्यलोकरूपअढीद्वीपमाहे, उंची मेरुपर्वतनी चुलिका सुधी

१८४ प्र०—सातमी तथा छट्ठी नरकमा, कुमिमा उपजवानु थाय छे के आलियामा थाय छे

उ०—सातमी तथा छट्ठी नरके आलीया छे जेम नदीनी भेखडे बील होय छे एटले सूला छे ते उपर शरीर विंधाय तिवारे पडे एम साभळ्यु छे ए भाव.

१८५ प्र०—साधुना १४ उपगरणो ते कया कया

उ०—पत्तपत्ताबंधो, पायठवणचपायकेसरिया ।
पडलाईरयत्ताण, गोच्छओपायनिज्जोगो ॥ १ ॥
तिन्नेवयपत्च्छागा, रयहरणचेवहोइमुहपत्ती ।
एसोदुवालसविहो, उवहीजिणकप्पियाणतु ॥ २ ॥
एएचेवदुवालस, मत्तगअइरेगचोलपट्टोउ ।
एसोचउदसरुवो, उवहिपुणत्थेरकप्पमि ॥ ३ ॥

पत्त कहेता पात्रु, २ पत्ताबंध ते झोळी, ३ पायठवण ते काबळीनो कडको, ४ पायकेसरीया ते

चरवळो, ५ पटलाइ ते गोचरीए जाता पात्रा उपर कपड राखे ते, ६ रयत्ताण ते पात्रवींटवानु ल्गड, ७ गुळओ ते कजलमयखड पात्राउपर वांटेछे ते, ए सात पात्राना उपगरणो जाणवा, तथा ८, ९, १० वे सुतराउ कपडा, अने एक उनतु मळी त्रण कपडा राखे, ११ ओवो, १२ मुहपत्ति, ए बार जिन कल्पिने होय, तथा १३ मातरीउ, १४ चोलपटो एव चउदस्थविरकल्पने जाणवा

१८६ प्र०—श्री युगप्रधानआचार्यना विहार शोभा लक्षण कहो.

उ०—काव्य येपाहिवस्त्रे न पतति यूका,
न राष्ट्रभङ्गो न च देशचिन्ता ।
गदा प्रणश्यतिपदोदकेन,
युगप्रधाना (मुनिवृन्दपूज्या) ॥ १ ॥

उत्तम शारीरिकसौंदर्यबळयुक्त, आचार्यना छत्रीस गुणे सहित, तथा ज्या विचरे त्या अढीयोजन प्रमाण मरकीप्रमुखनो उद्द्रव न थाय, उत्कृष्टपणे दशविध यतिधर्म पाळता पळावता, निजकाळने विषे सर्वथी श्रेष्ठपुरुष एकावतारी महात्मा युग प्रधान आचार्यभगवत जाणवा

१८७ प्र०—नीचे जणावेला शब्दोनो अर्थ कहो
भावना, अध्यात्म, मुनि, मैत्री, कारुण्य, मध्यस्थ, अने प्रमोद भावनाओ

उ०—मुनि प्रतिमा नीचे प्रमाणे लखेल छे
दुर्गतोप्रपतज्जन्तून्धारयतीतिधर्म,
सयमादिदशविधसर्वज्ञोक्तोभवति ॥ १ ॥

नान्तरे निर्लेप थाशे, पण वनस्पतिकायनिगोदगोलकना जीव निर्लेप " नत्थितत्थअत्थिअणता जीवा जेहिंनपत्तोतसाई परिणामो। उववन्तियचयतियपुणोवितत्थेवतत्थेव ॥ १ ॥ एणे न्याये वनस्पतिकायना जीव निर्लेप न थाय ए भाव

१८३ प्र०—बादरअप्पकाय उपरदेवलोकमा क्या सुधी छे ? तथा तेउकाय केटले सुधी छे ?

उ०—बादरअप्पकाय बारमादेवलोक सुधी अने बादरतेउकाय तीर्छा मनुष्यलोकरूपअढीद्वीपमाहे, उंची मेरुपर्वतनी चुलिका सुधी

१८४ प्र०—सातमी तथा छट्ठी नरकमा, कुभिमा उपजवानु थाय छे के आलियामा थाय छे

उ०—सातमी तथा छट्ठी नरके आलीया छे जेम नदीनी भेखडे बील होय छे एटले सूला छे ते उपर शरीर विधाय तिवारे पडे एम साभळ्यु छे ए भाव.

१८५ प्र०—साधुना १४ उपगरणो ते कया कया.

उ०—पत्तपत्ताबधो, पायठवणचपायकेसरिया ।
पडलाईरयत्ताण, गोच्छओपायनिज्जोगो ॥ १ ॥
तिन्नेवयपत्च्छागा, रयहरणचेवहोइमुहपत्ती ।
एसोदुवालसविहो, उवहीजिणकप्पियाणतु ॥ २ ॥
एएचेवदुवालस, मत्तगअइरेगचोलपट्टोउ ।
एसोचउदसरुवो, उवहिपुणत्थेरकप्पमि ॥ ३ ॥

पत्त कहेता पात्र, २ पत्ताबध ते झोळी, ३ पायठवण ते काबळीनो कडको, ४ पायकेसरीया ते

इशान देवलोके, अने नवथी सोळ सुधीना प्रभुना पिता त्रीजा सनत्कुमारदेवलोके, अने सत्तरथी चोवीस सुधीना पिता चोथा महेंद्रदेवलोके प्राप्त थया छे प्रथमना आठजिननी माताओ मोक्षे, नवथी सोळसुधीना जिननी माताओ त्रीजा सनत्कुमार देवलोके, अने शेष सत्तरथी चोवीस सुधीना आठ जिननी माताओ चोथा महेंद्रदेवलोकने प्राप्त थएल छे

१८९ प्र०—श्रीजिनवाणीश्रवण, चारघातीकर्मना क्षयोपशमे केवी रीते थाय?

उ०—१ अंतरायकर्म तथा दर्शनावरणीयकर्मना क्षयोपशमे जिनवाणी सांभळवानी रुचि थाय, २ दर्शनावरणीय तथा ज्ञानावरणीयकर्मना क्षयोपशमे वाणी काने सांभळे तथा समजे, अने ३ मिथ्यात्वमोहनीयना क्षयोपशमे जिनवचन आत्मस्वरूप ज्ञानरूप यथार्थसद्दहणामां आवे

१९० प्र०—श्री जिनवाणीनु ध्यानरूप एकाग्रमणमन महाफल दायक क्यारे थाय?

उ०—धर्मान्तरायना क्षयोपशमे संयमफलपामीने एकाग्रतारूपध्यानमांहि सिद्धि वरे, तथा चारकर्म क्षायिक भावे थये थके केवळज्ञान अने केवळदर्शनादि अनंतलक्ष्मी प्रगट करी महानंदपद पामे

१९१ प्र०—चारप्रकारनी बुद्धिनु स्वरूप टुंकमां दृष्टांत सहित समजावो

उ०—१ औत्पातिकी बुद्धि ते मतिज्ञानावरणीयकर्मना क्षयो-

हवे–आत्मानभानयतीतिभानना, आत्मानअधिकृत्यकरोतीति अध्यात्म, मन्यतेजगत तत्त्व, स मुनि प्रकीर्तित सम्यक्त्वमेवतन्मौन, सम्यक्त्वतत्त्वमेव ॥ १ ॥

इतियोगविन्दुग्रन्थे हरिभद्रसूरिणा अध्यात्मभावनाचतुर्धाकथिता यथा ॥

परहितचिंतामैत्री, परदु खविनाशिनीतयाकरुणा । परसुखतुष्टिर्मुदिता, परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥१॥ ए भाव, हवे छद्मस्थजीवानाध्यानकथित, अतमुहुत्तमित्त, चिंतावत्थाणमेगवत्थुमि, च्छउमत्थाणज्झाण, योगनिरोहोजिणाणतु इतिध्यानम् ।

आत्माप्रत्ये भाववु अने आत्मचिन्तवन करवु ते भावना, आत्माने अधिकारीपणे कार्य करनार ते अध्यात्मपचास्तिकायरूपजगत्तत्त्वने जे यथार्थ माने तेने मुनि कहीए, परहित चिंता ते मैत्री भावना, परदु ख विनाशनी इच्छा ते कारुण्य भावना, परसुखदिठे सतोष तथा प्रमोद आणे ते प्रमोद भावना, पर दोषनी उपेक्षा ते मध्यस्थ भावना

१८८ प्र०–वर्तमानचोवीसजिनना मातपितानी गति कहो.

उ०–उसभपियानागेसु, सेसाणसत्तहुतिईसाणे ।
अट्ठय सणकुमारे, माहिंदे अट्ठ बोधव्वा ॥ १ ॥
अट्ठण जणणीओ, तित्थयराण हुति सिद्धिओ ।
अट्ठय सणकुमारे, माहिदेअट्ठबोधव्वा ॥ २ ॥

प्रथमतीर्थकरना पिता श्री नाभिराजा ते नागकुमार मध्ये; बीजाथी आठमा सुधीना प्रभुना पिताओ बीजा

एटने आत्मिकएकाग्ररूप परिणमे तिवारे ए सुखरूप सुखमय सपूर्णवर्म पामे ए भाव।

१९५ प्र०–भावकर्म, द्रव्यकर्म, अने नोकर्म ते शु ?

उ०–अनादिअशुद्धोपयोगरूप विभावताइ रागद्वेषमोहरूप आत्मा परिणमे ते भावकर्म, ते आकर्षणेकर्मरूप वर्गणा ग्रहाय ते द्रव्यकर्म, ते वर्गणा जेवारे पाच शरीररूपे परिणमे ते नोकर्म कहिए एम त्रण प्रकारे कर्मनी वक्तव्यता जाणवी

१९६ प्र०–अविरतिसमकिती, देशविरति तथा प्रमत्त अप्रमत्तादि मुनि सम्यक्त्व वमी मिथ्यात्वे जाए तो तेओ प्रत्येककर्मनी स्थिति उत्कृष्ट केटली बाधे ?

उ०–अविरतिसमकिती, वमीने मिथ्यात्वे उत्कृष्ट स्थिति आयुवर्जिने शेष सातकर्मनी एकपल्योपमने असख्यातमेभागे अतर्मुहूर्त्तन्यूनएककोडाकोडीसागरोपममाहे बाधे, तथा देशविरति उत्कृष्ट नव पल्योपमन्यूनएककोडाकोडीसागरोपम उत्कृष्ट बध करे, पण तेथी अधिक न करे जिनि प्रतिमा नीचे प्रमाणे छे सम्यग्दृष्टिजीव मिथ्यात्वने उदये समकितवमीने पाछो मिथ्यात्वगुणठाणे जाय तोपण आयुवर्जित सातकर्मनी स्थिति पल्योपमने असख्यातमेभागे ऊणा एककोडाकोडीसागरनो बध करे, उत्कृष्टो बध एटलो करे, देशविरति नवपल्योपम ऊणा एककोटाकोडीसागरनो बध उत्कृष्टो करे तथा मुनिपणु पामीने पडे पाछो मिथ्यात्वे जाय,

पशमे कषाय पण न दिढु होय न साभव्यु होय छता सहज स्वभावे पोतानी बुद्धिने जोरे समयसूचककार्य करी शके, ते अभयकुमार तथा रोहानी परे, २ वैनयिकी ते गुर्वादिकनो विनय बहुमान करता मतिज्ञानावरणीयकर्मनो क्षयोपशम थइने बुद्धि उपजे ते नागार्जुनादिकनी परे, ३ कार्मणिकी ते विज्ञान, कळा, व्यापारादिनो अभ्यास करता करता जे बुद्धि प्रगटे ते, ४ पारिणामिकी ते वृद्ध अनुभवी पुरुषोनी सगवे रहेवाथी तथा वयना परिपाके जे बुद्धि उत्पन्न थाय ते

१९२ प्र०—जातिस्मरणज्ञान अने विभगज्ञान ते शामा समाय छे?

उ०—जातिस्मरणज्ञाननो मतिज्ञानमा समावेश थाय छे, अने विभगज्ञाननो अवधिदर्शनमा समावेश थाय छे

१९३ प्र०—राशिगतसूर्य प्रश्न

उ०—मेषराशिनो सूर्य होय त्यारे कन्याराशिना सूर्यनी तथा चन्द्रनी चाल उत्तरभणी थाय, तथा तूलाराशि थकी माडी मीनराशि सुधिना चन्द्रनी चाल दक्षिणदिशा तरफ थाय छे

१९४ प्र०—मिथ्यात्वअविरतिना हेतुनो प्रश्न,

उ०—जेहवो आत्मानो शुद्धोपयोग वस्तु आवरवाने जेम मिथ्यात्वबलवत्तर छे, तेम आत्माना परिणमन सुख निवारवाने अविरति बलवत्तर छे, अविरतिनो उदय टळवाथी आत्मानु विरतिपरिणमन थाय छे ने तेथी सुखमय आत्मा स्वस्वरूपे परिणमे छे

एहने आत्मिकएकाग्ररूप परिणमे तिवारे ए सुखरूप सुखमय सपूर्णधर्म पामे ए भाव।

१९५ प्र०—भावकर्म, द्रव्यकर्म, अने नोकर्म ते शु ?

उ०—अनादिअशुद्धोपयोगरूप विभावताइ रागद्वेपमोहरूप आत्मा परिणमे ते भावकर्म, ते आकर्षणेकर्मरूप वर्गणा ग्रधाय ते द्रव्यकर्म, ते वर्गणा जेवारे पाच शरीररूपे परिणमे ते नोकर्म कहिए एम त्रण प्रकारे कर्मनी वक्तव्यता जाणवी

१९६ प्र०—अविरतिसमकिती, देशविरति तथा प्रमत्त अप्रमत्तादि मुनि सम्यक्त्व वमी मिथ्यात्वे जाए तो तेओ प्रत्येककर्मनी स्थिति उत्कृष्ट केटली बाधे ?

उ०—अविरतिसमकिती, वमीने मिथ्यात्वे उत्कृष्ट स्थिति आयुवर्जिने शेष सातकर्मनी एकपल्योपमने असख्यातमेभागे अतर्मुहूर्त्तन्यूनएककोडाकोडीसागरोपममाहे बाधे, तथा देशविरति उत्कृष्ट नव पल्योपमन्यूनएककोडाकोडीसागरोपम उत्कृष्ट बध करे, पण तेथी अधिक न करे जूनि प्रतिमा नीचे प्रमाणे छे सम्यक्दृष्टिजीव मिथ्यात्वने उदये समकितवमीने पाछो मिथ्यात्वगुणठाणे जाय तोपण आयुवजित सातकर्मनी स्थिति पल्योपमने असख्यातमेभागे ऊणा एककोडाकोडीसागरनो बध करे, उत्कृष्टो बध एटलो करे, देशविरति नवपल्योपम ऊणा एककोडाकोडीसागरनो बध उत्कृष्टो करे तथा मुनिपणु पामीने पडे पाछो मिथ्यात्वे जाय,

तोपण आयुवर्जित सातकर्मनो स्थितिबंध नवसागरे ऊणा एककोडाकोडीसागरोपमनो उत्कृष्ट बंध करे तथा उपशमश्रेणिथी पडीने मिथ्यात्वे जाय तेपण आयुवर्जित सातकर्मनी उत्कृष्टि स्थिति बांधे तो नव हजारसागरोपममे ऊणी एककोडाकोडीसागरनो उत्कृष्टो बंध करे इति भुवनभानुचरित्रे कह्यु छे

११७ प्र०—जीव मार्गाभिमुखथइ समकित क्यारे पामे ?

उ०—भवितव्यताने योगे अकामनिर्जराए कर्मखपावता बे पुद्गलपरावर्तकाल ससार रहे, त्यारे जीव आस्तिकपणे जिनमार्गसन्मुखी थाय, पछी त्याथी ससारपरिभ्रमण करतो जीव उचो आवे त्यारे ते मार्गपतित दोढ-पुद्गलपरावर्तससार रहे त्यारे जिनोक्त मार्गे रुचिवत थाय, वळी कर्मयोगे त्याथी पडी ससारभ्रमण करतो ज्यारे एकपुद्गलपरावर्तकालससार रहे, त्यारे जीव मार्गानुसारीपणु पामे, त्या मित्रादिकदृष्टि प्रगटे, न्यायसपन्नविभवादि पात्रीशगुणयुक्त थाय, त्या जि-नोक्त मार्गे चाली मिथ्यात्व मद करतो करतो नदी गोळपाषाण न्याये घचना घोळपरिणामे (एटले जेम नदी काठेथी छुटो पड्यो एक पत्थर, ते जेम पाणीनी छोळमा अथडातो कुटातो पोतानी मेळे गोळ थइ जाए एम) ज्यारे जीव अर्धपुद्गलपरावर्तकाल माहे आवे त्यारे आर्यदेश, सज्ञीपचेन्द्रियमनुष्य उत्तम जैनकुल सपन्न थइ सद्गुरु उपदेशे के सहजस्वभावे कोइ निमित्तपामीने यथाप्रवृत्तिकरण लही उज्वल आत्म-

वीर्योल्लास थकी अपूर्वकरणे रागद्वेषनी ग्रथि भेदी मिथ्यात्वमोहनीयनी सातप्रकृतिने उपशमावतो अतरकरणमा थइ अनिवृत्तिकरणे आवी सम्यग्दृष्टि थाय, त्यारे जीवने मार्गप्राप्त कहीए, वस्तु सत्ता धर्म अशे प्रगट कर्यो त्या तेनी केवी दृष्टि वर्ते तो कहु छे के —

काव्य

अशे होय इहा अविनाशी, पुद्गल जाल तमाशी,
चिदानदघन स्वरूप विलासी, केम होय जगनो आसी,
ए गुण वीरतणो न वीसारु सभारु दिन रातरे,
पशु टाळी सुररूप करे जे, समकितने अवदातरे १

१९८ प्र०—साधुने जे त्रणयोग छे ते रत्नत्रयगुणे प्रणम्या छे ते केवी रीते ?

उ०—मनोयोग ते सम्यग्दर्शनगुणे दृढासक्तिकरूपे परिणमे छे, तथा वचनयोग ते जिनवाणीमाहे ज्ञानगुणे प्रणम्यो छे, तथा काययोग ते चारित्रगुणे "जयचरे जयचिट्ठे जयमासे जयसये " इत्यादिकरूप प्रगट्यो छे तेथी यावज्जीवसुधि सावद्ययोगथी निवर्त्तीने मुनि सयमयोगे परिणमे छे इतिभाव

१९९ प्र०—ससारमा जीव भव्यअभव्यादि त्रणप्रकारना छे ते कया ? तेनु स्वरूप दृष्टातसहित स्पष्ट समजावो

उ०—१ भव्य, २ अभव्य, ३ भव्याभव्य अथवा जातिभव्य, त्या भव्य त्रणप्रकारे छे—निकटभवी, मध्यमभवी, अने दुर्भवी, निकटभवी सोहागण स्त्री समान, ते जेम सोहागणी स्त्री पतिसमागमे ७ मासमा गर्भ

प्राप्त थइ पुनप्राप्ति फळ ल्हे, तेम निकटभवी सद्गुरु उपदेश योगपामी शुद्ध श्रद्धा ल्हीं, शुद्ध चारित्र पाळी तत्काळ सिद्धि वरे, बीजा मध्यमभवि ते कोइ स्त्रीने पति समागमे बे चार वर्षे गर्भ रही पुनप्राप्ति थाय तेम मध्यमभवी थोडा सख्याता भवमा सिद्धि वरे, अने त्रीजा दुर्भवि ते जेम कोइ स्त्रीने घणे कष्टे घणे काळे पतियोगे गर्भ रही पुत्र प्राप्ति थाय तेम धर्मविराधक, पडवाइ बहुलकर्मी भारेकर्मीपणाने लीधे घणे काले, घणे कष्टे, घणे उपदेशे कर्मखपावी सिद्धि वरे

२ अभव्यस्वरूप वाझणी स्त्री समान जाणवु, एटले जेम वंध्यादोषवत स्त्रीने पतिनो समागम छता पुत्र प्राप्ति थायज नहि, तेम अभव्यने मुक्तिगमन योग्यतास्वभाव न होवाथी गमे तेटली धर्म सामग्रीनी जोगवाइ मळे, तोपण शुद्ध श्रद्धारूप खरेखरु ससार थकी उद्विग्नपणु, स्वपरओळखाणपणु भेद ज्ञान न थाय पण पौद्गलिकआशीभावे चारित्रादिक पाळे, नवमा ग्रैवेयक सुधी जाय छे, पण तेनु सघळु फोक निष्फळ जाय छे, केम जे तेना ज्ञानक्रियादि मोक्षने अर्थे यथार्थ न होय तेथी

३ तथा भव्याभव्य जीवने सत्ताए भव्य समान योग्यता धरावे छे, तोपण कोइ भवितव्यताज ज्ञानीए एवी दिठेली के तेनो स्वभाव व्यवहारराशिमा आववारूप न थाय अत्र गाथा—

" सामग्गी अभावाओ ववहाररासीअप्पवेसाओ ।
भव्वावितेअणता, जे सिद्धिसुहनपावति ॥ १ ॥ "

अर्थात् ते अव्यवहारराशियोज जीव रह्यो थको अनताअनतकाळ बाळविधवा स्त्रीनी परे सूक्ष्मनिगोदादिमा जन्ममरण करतो रहे, जेम बाळविधवा स्त्रीने सुकुलीनताने लीधे कदी पण भरथारनो योग न थाय तेथी पुन प्राप्ति न सभवे एम जाणवु

२०० प्र०—अध्यात्मसारग्रन्थमा त्रणप्रकारना जीव कह्या छे ते कया ?

उ०—भवाभिनदी ते मिथ्यादृष्टि १ बीजो पुद्गलानदी, ते चोथा पाचमा गुणठाणावाळा सम्यग्दृष्टि, २ आत्मानदी ते मुनि, ३ इतिभाव

२०१ प्र०—वैराग्यना त्रणप्रकारनु टुक स्वरूप कहो

उ०—दु खगर्भित वैराग्य, त्या जीव ससारमा नानाविध दु ख क्लेश पामतो विषयकषायथी विरक्तबुद्धिवाळो थइ धर्मसन्मुखी थाय पण सम्यग्ज्ञान न होवाथी पाछु पौद्गलिकसुख मळता वैराग्य नष्ट थवानो सभव छे, तेने दु खगर्भितवैराग्य कहीए, पण ते जो धर्म साधन करता थका सद्गुरु उपदेशयोगे भेदज्ञान पामे तो पछी तेनो वैराग्य सत्य स्थायी ज्ञानगर्भित कहेवाय, एटले ज्ञानगर्भित वैरागी परमार्थे ससारनो एकात त्यागी होय, लूखी वृत्तिए ससारमा रहे अने पूर्णमोक्षाभिलाषी होय, ज्यारे मोहगर्भितवैरागी कोइ स्त्री, पुत्र, धनादि

वस्तुना अभावे मोहमयविषयकषाययुक्तमलिन परि-
णतिवत थयो थको मोहितदुःखना भारने लीघे
संसारथी उद्विग्न रहे, पण ते साचो दुःखगर्भित वैराग्य
भागे पण न गणाय

२०२ प्र०—चतुर्विध संसारीप्राणीनु स्वरूप दृष्टांतथी समजावो

उ०—१ सघनरात्रि समान, एटले घन कहेता जे मेघनी घमघोर घटाए आच्छादित थएली अमासनी रात्रिमा काइपण सूझ न पडे तेम जीवने गाढमिथ्यात्वना उदये तीव्रमोहनी प्रबलताए कइपण हिताहित सत्यासत्य के कृत्याकृत्यनी सूझ न पडे तेवा प्रथम गुणठाणी भवाभिनंदी मिथ्यात्वदृष्टि जीव जाणवा, २ अघनरात्रि समान ते जेम मेघना वादळा रहित रात्रिमा घटपटादिक सूझे, तेम जीव काइक मिथ्यात्वनी मंदताए मोहादिकना किंचितूक्षयोपशमे धर्ममार्गसन्मुखी मार्गानुसारीजीव अघनरात्रि समान जाणवा, ३ सघनदिन समान ते जेम वादळाए आच्छादितसूर्यवाळा दिवसमा निर्मळ रात्रि करता विशेष स्पष्ट घटपटादि पदार्थो सूझे छे, तेम मिथ्यात्वनय क्षयोपसमादि गुणेकरी सम्यग्दृष्टि चोथा गुणठाणाथी बारमा गुणठाणा सुधीना परमात्माना मार्गप्राप्त ज्ञानिमहात्माओ जाणवा, ४ अने अघनदिन समान एटले मेघरहित निर्मळसूर्यवत दिवसनी परे पूर्णज्ञान प्रकाशवत केवळज्ञानी भगवतो जाणवा.

२०३-प्र०—संसारीजीवने आठ दृष्टि कहि छे तेना नाम कहो

उ०–१ मित्रा, २ तारा, ३ बला, ४ दीप्रा, ५ स्थिरा, ६ कांता, ७ प्रभा, ८ परा, ए आठ दृष्टि कहि तेनो विस्तार योगदृष्टिसमुच्चयथकी जाणवो

२०४ प्र०–सर्वपदार्थमानमा चारकारण छे ते दृष्टांतथी कहो

उ०–१ उपादानकारण ते जेम घटमा मृत्तिका, २ निमित्तकारण ते जेम घटनी उत्पत्तिमा चक्र, दंड, चीवरादि छे तेम जाणवु, ३ असाधारणकारण ते जेम घट निष्पन्न करवामा कुंभार हेतुभूत छे तेम जाणवु, ४ अपेक्षा कारण ते वस्तु जेम छे तेमनी तेम रहे पण तेना आलंबने, सहायताए आश्रये आपणु कार्य करीए, जेम घट नीपन्यो तेमनो तेम रहे पण तेहनी साहाये जलभरणपानरूप काम नीपजे, तथा जेम सूर्य दीपे छे, तेनी साहाये आपणा काम करीए छीए तेम जाणवु, वळी बीजा पण त्रण कारण कह्या छे–समवायिकारण ते सहचारी सबंध कारण जेम घटनु उपादान मृत्तिका छे तेम, २ असमवायिकारण ते असहचारी भिन्ननिमित्त, जेम घटनी उत्पत्तिमा कुंभार छे तेम, ३ निमित्तकारण ते चक्रदंडचीवरादिरूप जाणवु

२०५ प्र०–सर्ववस्तु, द्रव्यार्थिकनय अने पर्यायार्थिकनय वडे प्ररूपाय छे ते माहेथी सातनय ते कया ?

उ०–१ नैगम, २ संग्रह, ३ व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र, ५ शब्द, ६ समभिरूढ, ७ एवंभूत ए सात नय तेहना उपनय ए विस्तारनयचक्रथी जाणवो, तथा

कषाय उपने पूर्वकोडिनु पाल्युचारित्र क्षय कर ते उपर गाथा आचारगनी दीपिका मध्ये छे यत " सामणमणुचरनस्स, कसायजस्सउक्कडाहुति, मन्नामि-इक्षुपुप्फव, निष्फलतस्ससामण्णम्॥१॥ जअजियचरित, देसूणएविपूव्वकोडीए तपिकसायमित्तोहारेईनरोमुहुत्तेण ॥ २ ॥"

२०६ प्र०—आबिल एटले शु ?

उ०—आवश्यकनी टीका मध्ये कह्यु छे के आय कहेता ओसामण काढ्यु होय ते मध्येथी जेम अन्न काढीए ते रीते काढीने आहार करवो, अने जे आम्ल जे खाटोरस षट्विगय ए बे वर्जिने ते आबिल कहिए

२०७ प्र०—नियाणानो प्रश्न

उ०—नियाणानव प्रकारे दशाश्रुतस्कध मध्ये कह्या छे, तथा जे नियाणु समकितघ्न छे, अने बीजु अव्रतघ्न छे ए बे मध्ये जे समकितनो घात करी नियाणु बाधे ते समकित पामवो दुर्लभ करे, तथा अविरतघ्नु भोगप्रतियुनियाणु बाधे ते भोग पूरा थये व्रत उदये आवे जेम द्रौपदीना जीवे भोगप्रतियु नियाणु बाध्यु ते पाच भर्त्तारी थइ भोग पुरा थया पछी व्रत उदये आव्यु ते माटे अविरतिआसरीनियाणु कहीये पण ते समकितनो —ी इत्यर्थ

२०८ प्र०—चार प्रकारना सामा

उ०—१ श्रुतसामायिक, २

सामायिक, ४ ,

लाभ ते भव्यमिथ्यात्विने होय अभव्यने पण द्रव्ययी श्रुतनो लाभ थाय, तथा समकितसामायिक ते सम्यग्दृष्टिने होय पाचमे गुणठाणे देशविरतिसामायिकनो लाभ होय, सर्वविरतिसामायिक ते छठ्ठा गुणठाणाथी मुनिने होय

२०९ प्र०—व्यवहार अने निश्चय समकितीनु टुक स्वरूप कहो

उ०—जिनवाणी प्रतीतेग्रहीने प्रत्यक्षस्वरूपने वेदे, गुण पर्यायनो विलछन करे, भेदरूप रत्नत्रयने आराधे, तेने व्यवहारसमकिती कहीए, तथा जेने जिनवाणी गुण पर्यायअभेदरूपरत्नत्रये द्रव्य द्रव्यरूपे निर्विकल्प समाधिपणे परिणमे तेने निश्चयसमकिती कहीए, ते आगळ जता व्यवहारे प्रवर्तता वस्तुधर्मरूप शुद्धात्मनिश्चयपरिणतिरूप समकितने मेळवे

२१० प्र०—कया ज्ञानथी अने कइक्रियाथी मोक्ष थाय ?

उ०—क्रिया वेप्रकारनी छे—१ योगक्रिया ते शुभाशुभ बधरूप छे, अने उपयोगक्रिया ते पोताने स्वरूपे परिणमे, त्या कर्म निर्जरा थाय, योगक्रिया जाते आस्रवरूप होइ कर्मबध निपजावे, अने उपयोग क्रिया ते स्वरूप प्रकटावे, एटले योगक्रिया कर्म ग्रहण त्यागरूप मुलट पुलट छे, परतु सर्वथा मोक्षार्थे नथी, केम जे सर्वथा मोक्षरूप धर्म ते शुद्धोपयोगे छे, माटे उपयोगशून्यक्रिया आस्रवरूप मोक्षनी एटले आत्मस्वरूपनी कत्तरणी एटले आच्छादन करनारी छे (नाश करनारी छे)

रुपाय उपने पूर्वकोडिनु पात्युचारित्र क्षय करे ते उपर गाथा आचारगनी दीपिका मध्ये छे यत " सामणमणुचरतस्स, कसायजस्सउक्कडाहुंति, मन्नामिइंलुपुप्फव, निप्फलतससामण्णम्॥ १॥ जअजियचरित, देसूणएविपूव्वकोडीए तपिकसायमित्तोहारेईनरोमुहुत्तेण ॥ २ ॥ "

२०६ प्र०—आविल एटले शु ?

उ०—आवश्यकनी टीका मध्ये कह्यु छे के जाय कहेता ओसामण काढ्यु होय ते मध्येथी जेम अन्न काढीए ते रीते काढीने आहार करवो, अने जे आम्ल जे खाटोरस पट्विगय ए बे वर्जिने ते आविल कहिए

२०७ प्र०—नियाणानो प्रश्न

उ०—नियाणानव प्रकारे दशाश्रुतस्कध मध्ये कह्या छे, तथा जे नियाणु समकितनु छे, अने बीजु अव्रतनु छे ए बे मध्ये जे समकितनो घात करी नियाणु बाधे ते समकित पामवो दुर्लभ करे, तथा अविरतनु भोगप्रतिबुनियाणु बाधे ते भोग पूरा थये व्रत उदये आवे जेम द्रौपदीना जीवे भोगप्रतिबु नियाणु बाध्यु ते पाच भर्त्तारी थइ भोग पुरा थया पछी व्रत उदये आव्यु ते माटे अविरतिआसरीनियाणु कहीये पण ते समकितनो नथी इत्यर्थ

२०८ प्र०—चार प्रकारना सामायिक कया ?

उ०—१ श्रुतसामायिक, २ समकितसामायिक, ३ देशविरतिसामायिक, ४ सर्वविरतिसामायिक ते मध्ये श्रुतसामायिकनो

२१३ प्र०—स्थावर पर्याप्तानी निश्राए अपर्याप्त जीव केटला होय?

उ०—पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति प्रत्येक एटले स्थानके एकेका पर्याप्तानी निश्राए असख्याता अपर्याप्त होइ पण सूक्ष्म निगोदीया पर्याप्तानी निश्राये अनता अपर्याप्ता न होइ, ते अनता अपर्याप्ताना शरीर जूदा तेहनो पण आयु बसेंछपन आवलिनु होय पण अपर्याप्तो मरे इम नहोय सर्व क्षुल्लक भविया छे ते माटे तथा पर्याप्तानु आयु एटलु पण तेटला माहे पर्याप्ति पुरीने मरे एहवु वार्यु छे इति तत्त्वम्

२१४ प्र०—व्यवहारराशियोजीव निगोदमा जाय तो त्या उत्कृष्ट केटलो काळ रहे?

उ०—ते क्षेत्रथकी अढीपुद्गलपरावर्तनकालप्रमाण पछी सूक्ष्मबादरनिगोदमा आवी वळी जाय तो उत्कृष्ट अढीपुद्गलपरावर्तन, वळी त्यायी नीकळी एकेंद्रियादि चक्रमा भ्रमण करी पाछो जायतो वळी उत्कृष्ट एटलो काळ रहे एम आव जा करता सर्व काळ तिर्यंचगति आश्रिने गणीए तो उत्कृष्ट असख्याता पुद्गलपरावर्तन काळ रहे, ते केटला? स्तोके एक आवलीना असख्यातमे भागे जेटला समय थाय तेटला असख्याता प्रमाण पुद्गल परावर्तन जाणवा एम पन्नवणा मध्ये तथा कायस्थितिस्तोत्रनी टीका मध्ये कह्यु छे.

२११ प्र०—नवअनताए जे जे पदार्थो छे ते कहो

उ०—प्रथमना त्रणअनते कोइ पदार्थ न होवाथी शून्य छे, अने चोथेअनते अभव्यजीवराशि छे, पाचमे अनते मध्यम भागे सम्यक्त्व पडवाइ छे, वळी तेहज पाचमे अनते शुद्ध सिद्धना जीवो छे, पण ते पूर्वोक्त पडवाइओथी अनतगुणा जाणवा, पछी छठ्ठो अनतो शून्य, सातमु शून्य पछी आठमे अनते सर्व निगोदीयाजीवो, तथा तेथी अनता अनतगुणा पुद्गलपरमाणु, तेथी काळ, तेथी सर्व आकाश प्रदेश, तेथी केवळज्ञान तथा केवळदर्शनना पर्याय, ए सर्व एक एकथी अनतगुणा पण आठमे अनते छे, नवमेअनते कोइ वस्तु विशेष नथी, माटे शून्य जाणवो

२१२ प्र०—सर्व समकितमा पहेलु कयु समकित उत्पन्न थाय छे ?

उ०—सिद्धान्त आगममाहि प्रथम क्षयोपशम सम्यक्त्व पामे, उपशमनो तत नहि ते श्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणनी कीधेली समकित पचवीसी मध्ये कह्यु छे, जे पहिलो क्षयोपशम सम्यक्त्व पामे उपशमनो तत नहि तथा कर्मग्रन्थमध्ये पहिलो उपशम समकित पामे त्यारपछी क्षयोपसमकित पामे उपशमनो तत नहि एहवो आचार्यनो मत छे अथ त्यारपछी कालसित्तरी ग्रन्थमध्ये कालिकाचार्य त्रण जुदा कह्या छे तथा कल्की ,यास्ये ए अधिकार पण कालसित्तरी मध्ये छे

२१३ प्र०—स्थावर पर्याप्तानी निश्राए अपर्याप्त जीव केटला होय?

उ०—पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति प्रत्येक एटले स्थानके एकेका पर्याप्तानी निश्राए असख्याता अपर्याप्त होइ पण सूक्ष्म निगोदीया पर्याप्तानी निश्राये अनता अपर्याप्ता न होइ, ते अनता अपर्याप्ताना शरीर जूदा तेहनो पण आयु बेसेंछपन आवलितु होय पण अपर्याप्तो मरे इम नहोय सर्वे क्षुल्लक भविया छे ते माटे तथा पर्याप्तानु आयु एटलु पण तेटला माहे पर्याप्ति पुरीने मरे एहवु थायुं छे इति तत्त्वम्

२१४ प्र०—व्यवहारराशियोजीव निगोदमा जाय तो त्या उत्कृष्ट केटलो काळ रहे?

उ०—ते क्षेत्रथकी अर्द्धपुद्गलपरावर्तनकालप्रमाण पछी सूक्ष्मबादरनिगोदमा आवी वळी जाय तो उत्कृष्ट अर्द्धपुद्गलपरावर्तन, वळी त्याथी नीकळी एकेंद्रियादि चक्रमा भ्रमण करी पाछो जायतो वळी उत्कृष्ट एटलो काळ रहे एम आव जा करता सर्व काळ तिर्यंचगति आश्रिने गणीए तो उत्कृष्ट असख्याता पुद्गलपरावर्तन काळ रहे, ते केटला? स्तोके एक आवलीना असख्यातमे भागे जेटला समय थाय तेटला असख्याता प्रमाण पुद्गल परावर्तन जाणवा एम पन्नवणा मध्ये तथा कायस्थितिस्तोत्रनी टीका मध्ये कह्यु छे.

२१५ प्र०—दर्शननी क्षपक श्रेणि कया गुणठाणाथी माडे अने चारित्रनी क्षपक श्रेणि कया गुणठाणाथी माडे ?

उ०—दर्शननी क्षपक श्रेणि ते चोथा गुणठाणाथी माडे, चारित्रनी क्षपक श्रेणि आठमाथी माडे

२१६ प्र०—ज्ञानावरणीय कर्मनो जघन्य अने उत्कृष्टबंध केटलो?

उ०—कर्मनोबंध जघन्यथी एक समयनो, जघन्य स्थिति ते अंतर्मुहूर्ताइ भोगवे, उत्कृष्ट ज्ञानावरणीय कर्मनी वीस कोडाकोडी इम ए रीते छे

२१७ प्र०—सर्व जीवोनी मूळ भूमिका कइ ?

उ०—भव्य, अभव्य, सर्व जीव सूक्ष्म निगोदथी नीकळ्या छे मूल भूमिका ते जाणवी

२१८ प्र०—जघन्य अने उत्कृष्ट योगनो काल केटलो छे ?

उ०—मनोयोगनो जघन्यकाल एक समयनो, उत्कृष्टो अंतर्मुहूर्त्तनो काल एम वचनयोगनो पण काल ए रीते छे एम धार्यु छे

२१९ प्र०—वस्तुने विषे षड्गुण हानि वृद्धिनु स्वरूप टुकामा कहो

उ०—गुण पर्याय सहित जे वस्तु तेने द्रव्य कहीए, ते उत्पाद, व्यय अने ध्रुवरूप त्रण अवस्थाए सहित छे, परिणामी छे, ते परिणमन उत्पाद व्ययरूप पर्यायरूपे परिणमन, जघन्य, मध्यम, अने उत्कृष्ट स्वरूपे छे, तेने लइने वस्तुमा षड्गुण हानि वृद्धिरूप अगुरुलघु पर्याय जे दरेक वस्तु मात्रमा निरंतर वर्ते छे, ते निपजे छे, ते आवी रीते --

११६

सख्यातगुण वृद्धि, २ असख्यातगुण वृद्धि, ३ अनत गुण वृद्धि, ४ अनत भाग हानि, ५ असख्यात भाग हानि, ६ सख्यात भाग हानि, एम द्रव्यथी द्रव्य परिणमन षड्गुण हानि वृद्धि रूप अगुरूलघु पर्याय सिद्धमा पण छे

२२० प्र०—आठ कर्मनी वर्गणा अने कार्मण शरीरमा शो फेर छे?

उ०—कार्मण शरीर ते नामकर्मनी प्रकृति ते नामकर्मनी वर्गणारूपे कार्मण शरीर जाणीए, बाकी बीजा सात कर्मनी वर्गणा ते एहने विषे छे इम आधाराधेय भावे छे जेम कणनी गाठडी पिण वस्त्रभिन्नतिम कर्मोनी वर्गणा जुदी ते किम जाणीइ? जिम केवली भगवतने ज्ञानावरणीयादि चार कर्मनी वर्गणा मूलथी गइ पण तोहि कार्मण शरीर छे त्यारे ते अनुमाने अन्य कर्मनी वर्गणाभिन्न, कार्मण शरीर ते भिन्न, इम कार्मण शरीरनो स्वरूप जाणवो, पछी तो जेम तीर्थंकर देवे कह्यु ते सत्य सद्दह्यो छे इति भाव।

२२१ प्र०—चतुर्विध बध हेतु पूर्वक कहो

उ०—योग अने कषाय प्रतैया बध चार प्रकारे छे, त्या एकला योगनी हलचले प्रकृतिबध अने प्रदेशबध थाय छे, अने कषाये करी स्थितिबध अने रसबध निपजे छे

२२२ प्र०—केवळी भगवतने योग प्रतैयो शाताबध छे, ते शी रीते?

उ०—केवली भगवतने काइ शुभ संकल्परूप व्यवहार नथी, तेमने एक शुक्ल लेश्यानो उदय छे, ते योगद्वारे परिणमे छे, अने योगनु परिणमन ते औदयिक भावे जइ परिणमे, केम जे पुद्गलने पुद्गलनो विश्राम छे, तेथी ते लेश्याए योग प्रत्यइक एक साता प्रकृतिनो एक समयनो बंध छे, ते बीजे समये संक्रमे, अने त्रीजे समये खेरवे अर्थात् उत्तम पुद्गल ग्रहे, बीजे समये तेने वेदे अने त्रीजे समये खेरवे एटले खपावे

२२३ प्र०—सम्यग्दृष्टिने अने मिथ्यादृष्टिने शुभाचार अने शुभ उपयोग केवी रीते होय छे ?

उ०—मिथ्यादृष्टिजीवने शुभाचार होय पण शुभोपयोग न होय, अने सम्यग्दृष्टि जीवने शुद्धोपयोग होय तेहने शुभोपयोग आचरणरूपे होय पण आदर न होय अने मिथ्यादृष्टि जीवने शुभाचाररूप होय पण अशुद्धोपयोगना घरनो अशुभोपयोग होय पण अशुभोपयोग उपचारे कहिए इति भाव, हवे चोथे गुणठाणे सम्यग्दर्शन पामे अनंतानुबंधिया रागद्वेष तथा मिथ्यात्वमोहनोक्षय तथा क्षयोपशम थाय

२२४ प्र०—भामंडल करवानी शी जरूर छे ?

उ०—आणंद श्रावकनी संधि खरतरगच्छे मुनिश्रीसारनी कीधी गाथा त्रणसेने एकासीमी छे ते मध्ये अष्ट-प्रतिहार्य अधिकारे देवता भामंडल किम करे छे ? तत्र गाथा—तेज अरिहंत अतिघणो ए, खमी न शके नरनारी । ते तेज लइ सुख करे ए, पुठे भामंडलसार ॥ १ ॥ परमउदारिक शरीरना तेज

विशेष छे ते तेजना पुद्गल सहरीने प्रभुने पुठे भामडल करे इति भाव।

२२५ प्र०–आनन्द श्रावकने पाचसे हल्वडे मनि खेटवानु मान केवी रीते हतु ?

उ०–तत्र गाथा–क्षेत्र खेटयु हल पाचस्ये, मुझने अविरति एतिरे । वरवरनी पण मोकली, एक सानी वरती जे तिरे ॥ १ ॥ तेनी वरतीनो अर्थ लखीए छीए दशमि हस्तैरकोवंश निगत्यानशे एकोनिस्तंन पञ्चशतं निवर्त्तने एकदल इदशी हलमूमिका पञ्चशत-म्मीघरवरीनी जावी एतद मूमिका घर रहेवानी छे टाकी पाचसे हलमूमीका हल खेटवानी छे उवाडी इतिभाव।

२२६ प्र०–कर्मचतुर्थकतपनी विधि केवी रीते छे ?

उ०–पूर्व अष्टम १, चतुर्थ ८०, प्रान्ते अष्टम इति तपोदिन ६६, पारणक दिन ६२, उभयदिन मळीने दिन १२८ इति कर्मचतुर्थतपयतोवसुदेव हिंटीसापउमाअज्जिया, तेनीज्जाएसयासोओ । कम्मचउत्थ उववणा, दुगितिरित्ताणी सट्ठिचउत्थाणिति ॥ १ ॥ ते पदमाआर्याए ते नणे आर्याद्नेसमीपेकर्म चउत्थतप कीधो, इति शान्तिनाथ भवाधिकारे, इडुषेणर्विदुषेण भवाधिकारे गुणीकाने भवे ए तप कीधो इतिभाव।

२२७ प्र०–धर्मचक्रवाल तपनी विधि केवी रीते छे ?

उ०–अष्टम १, एकातर चतुर्थ ३७, प्राते अष्टम इति धर्म चक्रवाल तपनी विधि जाणवी, अथ विधि प्रथम

उ०—केवली भगवतने काइ शुभ सकल्परूप व्यवहार नथी, तेमने एक शुक्ल लेश्यानो उदय छे, ते योगद्वारे परिणमे छे, अने योगनु परिणमन ते औदयिक भावे जइ परिणमे, केम जे पुद्गलने पुद्गलनो विश्राम छे, तेथी ते लेश्याए योग प्रत्यइक एक साता प्रकृतिनो एक समयनो बंध छे, ते बीजे समये सक्रमे, अने त्रीजे समये खेरवे अर्थात् उत्तम पुद्गल ग्रहे, बीजे समये तेने वेदे अने त्रीजे समये खेरवे एटले खपावे

२२३ प्र०—सम्यग्दृष्टिने अने मिथ्यादृष्टिने शुभाचार अने शुभ उपयोग केवी रीते होय छे ?

उ०—मिथ्यादृष्टिजीवने शुभाचार होय पण शुभोपयोग न होय, अने सम्यग्दृष्टि जीवने शुद्धोपयोग होय तेहने शुभोपयोग आचरणरूपे होय पण आदर न होय अने मिथ्यादृष्टि जीवने शुभाचाररूप होय पण अशुद्धोपयोगना घरनो अशुभोपयोग होय पण अशुभोपयोग उपचारे कहिए इति भाव, हवे चोथे गुणठाणे सम्यग्दर्शन पामे अनतानुबंधिया रागद्वेष तथा मिथ्यात्वमोहनोक्षय तथा क्षयोपशम थाय

२२४ प्र०—भामडल करवानी शी जरूर छे ?

उ०—आणद श्रावकनी सधि खरतरगच्छे मुनिश्रीसारनी कीधी गाथा त्रणसेने एकासीमी छे ते मध्ये अष्टप्रतिहार्य अधिकारे देवता भामडल किम करे छे ? तत्र गाथा—तेज अरिहत अतिघणो ए, खमी न शके नरनारी । ते तेज लइ सुख करे ए, पुठे भामडलसार ॥ १ ॥ परमउदारिक शरीरना तेज

हना नाशवडे झेर टळे, वळी मुनिने उष्टा गुणठा-
णायी आगळ विषयराग उदयमायी टळे विषय,
कषाय, उत्सूत्रप्ररूपणा दोषो दूर थाय, अने राग-
द्वेष अने मोह सत्तामाथी टळता आत्मा परमात्मा
वीतराग स्वरूपी केवळज्ञानी केवळदर्शी आदि अन-
तगुणी अनतसुखमय बने छे

२३१ प्र०—उद्वेगता, अस्थिरता, असाता, आकुळता ए चार
जीवने शाथी उपजे छे ?

उ०—१ अज्ञान अने मिथ्यात्वना उदये उद्वेगता, २ वेदनी
कर्मना उदये अशाता, ३ अविरति तथा चारित्र
मोहना उदये आकुळता अने ३ वीर्यांतरायना उ-
दये अस्थिरता जीवने उपजे छे

२३२ प्र०—१ अपात्रदान, २ कुपात्रदान, ३ पात्रदान, ४ सु-
पात्रदान ते कोने कहीए ?

उ०—१ अपात्रदान ते श्वानादि पशु तथा बदिवानादिने
आपवु ते, तेनु फळ आ लोकनेविषेज यश प्र-
तिष्ठारूप लेशमात्र फळ छे २ कुपात्रदान ते वेरागी
सन्यासी, कापडी, तापसादिकने आपवु ते, तेनु फळ
परभवे राज्यादिक प्राप्ति करी पापानुबधिपुण्य बाधी
कुगति दळ मेळवी ससार भ्रमण वधारे, ३ पात्रदान
ते सम्यगदृष्टि देशविरति साधर्मी प्रमुखने भक्ति ब-
हुमानथी पोषवा ते, तेथी पुण्यानुबधी पुण्य उपार्जन
करी भवभ्रमण घटाडे, ४ सुपात्रदान ते महामुनि
गणधर तीर्थंकरादि योगी महात्मारूप पात्रने बहु

षष्ठ तत एकान्तरोपवास ६ इति प्रकार द्वयेन धर्मचक्रवाल तपनीविधि तत्र प्रथम प्रकारे दिन सर्वाग्र ८२ द्वितीय प्रकारे दिन सर्वाग्र १२३

२२८ प्र०—तीर्थंकरनी माता चउद स्वप्नने मुखमा पेसता देखे ?

उ०—शान्तिनाथ चरित्राधिकारे तीर्थंकरनी माता १४ स्वप्न मुखमाहे पेसता देखे यत चतुर्दश महास्वप्नान् सुख सुप्ता तदाचसा मुखे प्रविशतोपश्यन्ती तत्तस्याकारधारिण, इतिश्री उत्तराध्ययनेभाव विजयनी टीका मध्ये तथा शान्तिनाथ चरित्राधिकारे कह्यु छे आवश्य चूर्णौ पञ्चाशकवृतौ योगशास्त्रवृत्तौ नवपदप्रकरण वृत्तौ, श्राद्धदिनकृतौ श्राद्धविधि प्रमुखे छे।

२२९ प्र०—श्रावकनो दिग्व्रत सबधी प्रश्न ?

उ०—प्रथम सामायिक पश्चात् इर्यावथिकी श्रावकने दिग्व्रत होय पण साधुने नहीं मेरुरुचक जवा माटे इत्यर्थ ।

२३० प्र०—चोथे गुणठाणे सम्यक्त्व गुण प्रगटे अने खार, वैर, अने झेररूप अवगुण टळे ते शी रीते ?

उ०—सर्व गुणमा अग्रेसरी गुण सत्य स्थायी गुण, परपराए, परमात्म स्वरूपने पमाडनार, ज्ञान व्रतादि अनेक गुणने खेची लावनार, अने ते गुणना प्रतिपक्षी अनेक दोषने टाळनार, जीवने परम हितकारी सदा सर्वदा एक सम्यग् दर्शनरूप समकित गुण छे, ते गुण प्रगटे थके खार टळे, सम्यग् ज्ञानगुणे वैरभाव टळे, अने मिथ्यात्व मोह अने चारित्रमो-

प्रमाण अतर छेटेथी आवेला पुद्गलोनो अष्ट प्रकारे स्पर्श छे तेना विकारो ९६ छे, २ रसेन्द्रियनी आकृति सरपलो तथा कमळना पन सरीखी छे, नव योजन अतरे रहेला पुद्गलोनो स्वाद वायुथी खेंचाइ आवे थके थाय, तेना छ रसरूप छ विषयना ७२ विकारो छे, ३ घ्राणेन्द्रियनी आकृति तलना फूल सरखी छे, तेनो विषय क्षेत्रफळ नव योजननो तेना विषय २ अने विकार १२ छे, ४ चक्षुइंद्रिय, तेनी आकृति मसुरनी दाळ समान, एक लाख योजन विषय क्षेत्रफळ, तेना विषय पाच अने तेना विकार ६०, काननो बार योजन आत्मागुल प्रमाणे चार गाउनो योजन जाणवो तथा सूर्यनो बिंब तो आत्मागुल प्रमाणे घणा लाख योजन थाय ते माटे चक्षुनो एटलो विषय नथी तो सूर्यनो बिंब किं, देखाय छे तत्रोत्तर सूर्यनो विमान देवका एक योजनना एकसठिया अट्टालीस भागनो छे तेना आपणा गाउ १३०० ने आशरे मोटो विमान छे. ते सपूर्ण आखे देखातो नथी पण तेना विमानना तळीयाना तेजनो आभासमान झलक काति दिसे छे पण सपूर्ण विमान आखे न देखाय ते माटे आत्मागुल प्रमाणेनो लाख योजन विषय कहेवो श्रोत्रेन्द्रियनी आकृति अगथीआ वृक्षना फूल समान, तेनो १२ योजन विषय क्षेत्र, तेना विषय ३ अने विकार १२ एम एकदर पाच इद्रिय विषय २३ अने विकार २५२ ते विकारो रहित मात्र

मानथी अन्न पानादिनु दान देता थका जीव महा पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जीने देव मनुष्यादि उत्तम भव करता थका शीघ्र सिद्धि वरे

२३३ प्र०—छकायना गोत्रना नाम कया ?

उ०—१ इंदियावरकाय, २ बंभीथावरकाय, ३ सिपिथावरकाय, ४ समुइथावरकाय, अससिथावरकाय, जगम थावरकाय, इन्द्रियथावरकायनु पृथ्वीकाय गोत्र, पीतवर्ण पुढवीनाम जीव, इन्द्र देवता, बंभी थावरनो अपकायगोत्र, श्वेतवर्ण ब्रह्म देवता अपकाय जीव, सिपीथावरकायनो ते जसगोत्र रक्तवर्ण शिल्प देवता तेउकाय जीव, समुइथावरकायनो गोत्र, वायुकाय, हरितवर्ण समुद्रदेवता वायुकाय जीव, आवशाइथावरकायना वनस्पतिगोत्र, नानावर्ण पातालदेवता, वनस्पति जीव, सात नरकना गोत्रनी पेठे ए पण जाणवा

२३४ प्र०—दश प्रकारना सत्य ते कया ?

उ०—१ जनपद सत्य, २ समय सत्य, ३ स्थापना सत्य, ४ नाम सत्य, ५ रूप सत्य ६ प्रत्येय सत्य, ७ व्यवहार सत्य, ८ भाव सत्य, ९ योग सत्य, १० उपमा सत्य गाथा—

जपावयण समयवणा, नामेरूवेपडुच्च सच्चे य ।
ववहारभाव योगे, दसमे उवमसच्चे य ॥

२३५ प्र०—पाच इन्द्रियोनी आकृति तेमनो विषय क्षेत्र, तथा विषय विकार, केटला अने कया कया छे ते कहो

उ०—१ स्पर्शेन्द्रियनो आकार अने प्रकारे छे, नव योजन

गध, स्पर्शादि ग्रहण शक्ति उपजे तेनी उपयोग उपलब्धि ते भावेन्द्रिय कहेवाय छे, अने आकृति ते द्रव्य इद्रिय जाणवी एम पन्नवणामा कयु छे— मनुष्य थको सिजे तेने आठ इन्द्रिय जाणवी नारकी थकी मनुष्य थइ सिजे तेने १६, सोळ इन्द्रिय जाणवी तिर्यंचथकी तथा पृथिवीथकी मनुष्य थइ सिजे तेने १७, सत्तर इन्द्रिय तथा देवताथकी पृथिवी मनुष्य थइ सिजे तेने १७ सत्तर इन्द्रिय जाणवी तथा पृथिवी, पाणी वनस्पति माहेथी मनुष्य थइ सिजे तो ९ नव इन्द्रिय तथा इम सर्व विचार पन्नवणा मध्ये कह्यो छे पण एनो अर्थ आम्नाय गीतार्थगुरुथी जाणवो

२३७ प्र०—आत्मबोधरूप सम्यक्त्व प्राप्तिमा पाच लब्धिनी आवश्यकता छे, ते पाच लब्धिनु स्वरूप कहो

उ०—१ काळ लब्धि, ते आयुवर्जित शेष सात कर्मनी उत्कृष्ट स्थितिने घटाडी एककोडाकोडी सागर प्रमाण करे, एवा यथाप्रवृत्तिकरणपूर्वक चर्मावर्ते जीव आव्यो त्यारे काळलब्धि पाकी कहीए, पहेली लब्धि पाम्या पछी छेली एकठी एकसमे प्रगटे २ इद्रिय लब्धि ते सज्ञि पचेंद्रियपणु, ३ उपदेश लब्धि ते सद्गुर्वादिकना योगे उपदेश पामी बूझे, ४ उपशम लब्धि ते निर्मळ परिणामनी धाराए चढतो विषय कषायनी उपशाति भावमा अपूर्वकरणे करी ग्रथिभेद करे, ५ प्रयोग लब्धि, पछी अत करण पूर्वक अनिवृत्तिकरणना परिणामे रह्यो थको स्वपर भेदज्ञानरूप

इन्द्रियोना आकार युक्त पोताना आत्मधर्मनु एकाते प्रतिपालन करता थका, दशविध सयम धर्मनो उत्तम रीते निर्वाह करता, एवा जे महा मुनि महाराजो, तेमने मारो त्रिकरणशुद्धिये नमस्कार छे त्रण प्रकारना शब्द शुभ, अशुभ भेदे छ भेद थया राग अने द्वेप ए चार भेद चक्षु इन्द्रियथी पाचवर्ण तेने शुभ अशुभ वे भेदे गुणता दश तेने सचित्त अचित्त ए त्रणे गुणता ३०, रागद्वेपे गुणता साठ थाय सुरभिदुरभिगधने सचित्तादि त्रण भेदे गुणता ६ थाय तेने रागद्वेपे गुणता बार भेद थाय दशने शुभ अशुभे गुणता बार थाय तेने सचित्तादि त्रण भेदे गुणता ३६ थाय तेने रागद्वेपे गुणता ७२ थाय आठ प्रकारना स्पर्श तेने सचित्तादि त्रण भेदे गुणता २४ थाय, तेने शुभाशुभे गुणता ४८ थाय तेने रागद्वेपे गुणता ९६ थाय सर्वे सख्याए २५२ थाय गाथा–

जारसहितो सोतस्स, सेसाण नवहिजोयणेहिंतो ।
गिण्हतोपत्तगथ्थ, एतो परतोनगिण्हति ॥

२३६ प्र०–पाच इद्रियोनु द्रव्य तथा भावथी स्वरूप कहो

उ०–१ द्रव्येन्द्रिय, बे प्रकारे छे सूक्ष्म अने बादर, बादर ते बाहेर दिसे छे, आकृतिरूप छे ते, सूक्ष्म ते विषय ग्रहणव्यापारे आभ्यतर प्रवृत्तिरूप, जघन्यथी अंगुळनो असख्यातमो भाग, अने उत्कृष्ट पूर्वे कह्यु छे तेटलो विषय क्षेत्र जाणवु, २ भावेन्द्रियपण ते जीवने दर्शनावरणीकर्मना क्षयोपशमे शब्द, रूप, रस,

जाणे ते अनष्टविय ४, कोइक तुरतग्रहे ते क्षिप्र ५, कोइक शेषग्रहे ते वीर कहीये ६, कोइक धूमादिक लिंगे करी अग्न्यादिक जाणे ते सलिंग ७ तथा जे लिंग विना जाणे ते अलिंग ८, एक सदेहालो जाणे ते सदिग्ध कहीए ९, सदेह रहित जाणे ते असदिग्ध १०, कोइकवेला कह्यु ते बीजीवेलाए अणकह्ये ते जाणे ते ध्रुव कहीए ११, कोइक वारवार जणावे जाणे ते अध्रुव १२, एम अवग्रहादिक २८ भेद ते बार गुणा करता ३३६ भेद थाय एटला श्रुतनिश्रितना भेद तथा अश्रुतनिश्रितना ४ भेद ते १ ओत्पातिकीबुद्धि, २ वैनयिकीबुद्धि, ३ कर्म्मीया ते कार्मणिकीबुद्धि, ४ परिणामिया ते पारिणामिकीबुद्धि, एव ते अश्रुतनिश्रित सर्व मळी मतिज्ञानना ३४० भेद कर्मग्रथनी टीका मध्ये कह्या छे

२४० प्र०—ज्योतिष देवतामा कया जीवो न उपजे ?

उ०—पन्नवणा सूत्रना छठ्ठा वक्रातिपद मध्ये कह्यु छे के ज्योतिषि देवतामाहे समूर्च्छिममनुष्यअसज्ञियो तथा तिर्यच असज्ञियो समूर्च्छिम असख्यात आयुष्यवाळा युगलिया पखी तथा अतरद्वीप युगलिया मनुष्य एटला माहेथी आव्यो ज्योतिषि देवतापणे न उपजे

२४१ प्र०—एक योजननु प्रमाण परमाणुथी माडीने शी रीते थाय छे ? ते कहो

सम्यक्त्व पामे, त्यारे वीतराग धर्मनी रुचिपूर्वक प्रतीतात्मक धर्मरूप शुद्ध तत्त्वार्थ श्रद्धाने आत्मस्वरूपनु दर्शनज्ञान, स्वरूपाचरणरूपे जीवने थाय

२३८ प्र०—आत्मांगुल उच्छेदांगुल प्रमाणांगुलना मान क्या केवा छे ?

उ०—आवश्यक निर्युक्तिमा तेनु मान नीचे प्रमाणे कह्यु छे

गाथा—उस्सेहंगुलमेगं, हवइ पमाणांगुल सहसगुणं ।
तचेव दुगणीयखलु, वीर सायंगुल भणियं ॥१॥
आयंगुलनवथ्थु, सरीर मुस्सेहंगुलेण तहा ।
नग पुढवी विमाणाइ, मिणसुयमाणंगुलेणतु ॥२॥

२३९ प्र०—मतिज्ञानना केटला भेद छे ?

उ०—मतिज्ञानना श्रुतनिश्रित अने अश्रुतनिश्रित ते मध्ये श्रुतनिश्रितना ४ भेद अवग्रह, १ ईहा, २ अपाय, ३ धारणा ४ अवग्रहना वे भेद १ व्यजनावग्रह, २ अर्थावग्रह व्यजनावग्रहना ४ भेद १ स्पर्शेद्रिय, २ रसेंद्रिय, ३ घ्राणेंद्रिय, ४ श्रोत्रेंद्रिय, अर्थाग्रहना ६ भेद पाच इद्रिय छट्ठु मनएम छ चोक चोवीस अने ४ व्यजनावग्रहना इम ईहा अपाय धारणा करता एव २८ एम ऐकेकना १२ भेद थाय १ बहु, २ अबहु, ३ बहुविध, अबहुविधादिक बार भेद तिहां अनेक जीव वाजिंत्रना शब्द सांभळे छे ते मध्ये क्षयोपशमिक विचित्रताए करी कोइक जीव घणा शब्दग्रहे ते बहु १, कोइक जीव थोडाग्रहे ते अबहु २, कोइक शब्दना व्यापार माहे इत्यादिक घणा विशेष जाणे ते बहुविध ३, कोइक थोडा विशेष

काढता जेटला समयमा ते पल्य खाली थाय तेटला कालने एकबादरउद्वारपल्योपम कहिए, ते सख्यातो कहिए केमके वालाग्रखडसख्याता थाय माटे पछी ते वाळाग्रखटना एक एकना असख्याताखड कल्पिए, अने ते कल्पनाखड समय समय काढता जेटला काळमा खाली थाय तेटला समयने एक सूक्ष्मउद्वारपल्योपम कहिए, एवा पचीस कोडाकोडीउद्वारपल्योपम एकअढीउद्वारसागरोपम प्रमाणे तिर्च्छालोके द्वीप अने समुद्र असख्य छे, २ पछी पूर्वोक्त वाळाग्रखड एक एकने सो सो वरसे काढता ज्यार खाली थाय तेटला समयने एक बादरअद्धापल्योपम कहिए, अने ते वाळाग्रखटना, असख्याताखट कल्पिने प्रत्येक खड सो सो वरसे काढता जेटला समयमा पल्य खाली थाय तेटला वखतने एक सूक्ष्मअद्धापल्योपम कहिए, तेवा दशकोडाकोडीपल्योपमे एक सागरोपम, तेवा दसकोडाकोडीसागरोपमे एक अवसर्पिणी ने उत्सर्पिणी काळ, ते बे मळीने वीसकोडाकोडीसागरोपम प्रमाण एक कालचक्र, एवा अनताकाळचक्रे एक पुद्गलपरावर्त्तनकाल प्रमाण आ जीव ससार मध्ये निगोदादिकथी माडीने जन्म मरण करतो करतो अकाम निर्जराए कुटातो पीटातो, कोइ महापुण्यना उदये शुभपरिणामे करी नदी गोळपाषाणना घचनाघोळ न्याये करी आ अत्यतदुर्लभ एवो उत्तम कुळ सयोगवाळो उत्तम निरोगी देहसहित मनुष्यभव पाम्यो छे, छता

उ०—अनंता सूक्ष्म परमाणुए एक व्यवहार परमाणु, आठ त्रसरेणुए एक उर्ध्वरेणु, आठ उर्ध्वरेणुए एक रथ रेणु, आठ रथ रेणुए उत्तर कुरु युगलीयाना तुरत जन्मेला बाळकनो एक वाळाग्र, एवा आठ वालाग्रे एक महा हिमवन्त क्षेत्र युगलीक बाळ वाळाग्र, एवा आठ वाळाग्रे, एक महाविदेह क्षेत्र मनुष्य वाळाग्र, एवा आठ वाळाग्रे एक भरतक्षेत्र मनुष्य वाळाग्र, एवा आठ वाळाग्रे एक लीख, आठ लीखे एक जु, आठ जुए एक जव, आठ जव एक आगळ, २४ आगळनो एक हाथ, चार हाथनो एक धनुष, अने बे हजार धनुषे एक कोश, एवा चार कोशनो एक योजन जाणवो

२४२ प्र०—षड्विध पल्योपमनु स्वरूप कहो

उ०—उद्धार, अद्धा, क्षेत्र पल्योपम, सूक्ष्म अने बादर भेदे करीने छ प्रकारे छे ते आवी रीते—१ पूर्वोक्त योजन चार प्रमाणे लांबो पहोळो, अने उंडो कुवो कल्पिए तेने पल्य कहिए, तेनी छे उपमा ते जेने तेने पल्योपम कहिए ते पल्यने देवकुरु उत्तरकुरु क्षेत्रना युगलिक तुर्त जन्मेला बाळकना वाळाग्र एकना आठ आठ खड सातवार करीए, ते वाळाग्र खडे करी ठासी ठासीने भरवो, एवो के ते उपरथी चक्रवर्तिनी सेना चाली जाय, तथा गंगा नदीनो प्रवाह पूर जोरथी ते उपरथी वहन करे, तोपण एक पण वालाग्र तेमाथी खसे नहि, एवो ठासीने भरीए, पछी ते वालाग्रने समय समय एक एक

वादमा एकेंद्रिय के त्रसादि जीव सख्यानुमान कराय छे ए असख्यातउत्सर्प्पिणी प्रमाणे इम त्रण सूक्ष्म-पल्यो शास्त्रने विसे उपयोगी होइ तिन वादर कह्या ते सूक्ष्मनो सुखावबोधार्थ इहा प्राय घणो अद्धा-पल्योपमनो प्रयोजन छे, इम कोटाकोडी सागरोपमें एककालचक्र तेणे अने ते कालचक्रे पुद्गलपरावर्त्त होइ ते आठ प्रकारना छे ते त्यायी जो जो अस्य गाथा–उद्धार अद्धखित्त, पलियतिहा समय वा समय समए किसववहारोदीवोदही, आउसस्साइ परिमाण ॥ १ ॥ ॥ पाचमें कर्म ग्रन्थे उक्त

२४३ प्र०–आत्मसमअवस्थानउपयोगरूप ध्यानदशा केवी रीते पमाय ?

उ०–मोहवशे जीव परभावअनुयायि प्रवृत्ति करे छे मिथ्या सुखनी तृष्णाए भूल्यो थको ससार भ्रमण करे छे,

ज्यारे मोहस्थिति घटे त्यारे परप्रवृत्ति छुटे, अने ज्यारे परप्रवृति टळे त्यारे विषयथकी विरक्त बुद्धि थाय, अने तेणे करी मनोरोध थाय, केमजे कारण विना कार्य बनतु नथी, मनने भमवानु कोइ कारण के ठाम न होवाथी ते सकल्प विकल्प श्याना करे ? जेम तृण विनानी भूमिमा एटले उखर भूमिमा पडेलो अग्नि केने बाळे, अर्थात् पोतानी मेळे उपशमी जाय छे, तेम विषय वाळा टळवाथी मन पोतानी मेळेज स्थाय अने मन रुधायाथी मननी चचळता मटे, तेवारे मन एकाग्र थइने आ-

अनादिकाळना अज्ञान, मोह, मिथ्यात्व, प्रमादादि रूपभववासनाना जोर आगळ उत्तम योगवाइवाळो मनुष्यभवनु लेशमात्र पण नुकसान नथी आवतु, हा । इति खेदे केवी अफसोसनी वात छे, माटे हे चेतन । आ परमात्माना वचने करीने हवे चेत। अने जे कुळमा उत्तम कुळना प्रभावे करीने हिंसानो आचारज नथी तेवा अहिंसक कुळनी प्राप्ति छता श्रीजिनेश्वरभगवतनो धर्म पाळवामा प्रमादने छोड, अने तारु खरु कर्तव्य आ मनुष्य भवमा शुं छे, तेनो विचार करी विषयकषायनी प्रवृत्तिनो जेम बने तेम सकोच कर, अने तत्त्वमार्गने आदर, सुदेव, सुगुरु, अने सुधर्मने ओळख, अने ते ओळखाण पूर्वक शुद्धक्रियानु सेवन कर, अने सरळता, कोमळता, विनयादि गुण धारण करता शीख जेथी परपराये तारा आत्मानु चिरकाळ कल्याण थशे, तथास्तु शुभभवतु, शाति शाति शाति । पूर्वोक्त सूक्ष्मअद्धा काळे करी आयुष्यमान, कर्मस्थिति, कायस्थिति, तथा अन्य काळमानादिनु प्रमाण थाय छे, ३ पूर्वोक्त वाळाग्रखड स्पर्श्या जे आकाश प्रदेश तेने प्रत्येकने समय समय काढता जेवारे पल्यवाळाग्रथी खाली थाय तेटला काळने बादरक्षेत्रपल्योपम कहिए, अने वाळाग्रने स्पर्श्या सर्व आकाश प्रदेश पल्यना समय समय खाली करता जेवारे पल्य निर्लेप थाय एटला काळने सूक्ष्मक्षेत्रपल्योपम कहिए, तेणे करी दृष्टि-

२४४ प्र०—उत्सर्ग अने अपवाद मार्ग परमार्थे एकज आत्मार्थिपणारूप मोक्ष साधक दशाज छे, ते शी रीते ?

उ०—उत्सर्गमार्ग घणो कठीण, घोरतपस्या शुद्धब्रह्मचर्यादि पाळे, जिनकल्पिपणे प्रवृत्ते ते जाणवो, अने अपवादमार्ग ते पूर्वोक्त उत्सर्गनी अपेक्षाए एटले ज्यारे ते उत्सर्गदशामा न टकी शकाय, त्यारे तेमा पाछा स्थिर थवाने माटे, जे काइक कोमळ मार्गनु अवलम्बन साधनादि करवु एटले मुनि पचमहाव्रत शुद्ध पाळे, उग्रविहार तपस्यादि करी शरीर गाळे, जेथी विषय कषायादि मोहवासना गाळे, शिष्य, गच्छ, शास्त्रादिनी धारणा करे, ते प्रत्ये परस्पर स्वाध्याय करे करावे, भव्यप्राणीओने धर्मोपदेश आपी स्वपर महानिर्मलता करे करावे, पोते उत्तम मार्गे चाले बीजाने चलावे, अने चालता होय तेने अनुमोदनरूप उपष्टभ एटले सहायतादि दइ स्थिर करे, इत्यादि अपवादमार्गनु सेवन करी, मुनि पाछा उत्सर्गमार्गमा लीन रहे छे, एम परमार्थे उत्सर्ग अने अपवादमार्गो आत्मार्थीज छे, उभय मार्ग शास्त्रानुसार छे, पण जे निष्कारण दूषित मार्गनु सेवन करे, अने कहे जे अमे उत्सर्गने माटे अपवाद सेवीए छीए, ते चारित्रघातीनी मिथ्या वात छे, केमजे मुनिने कोइ अतिचाररूप दूषण प्रासगिक लागीजवारूप सभव छे, पण मन थकी अतिचार सेवनकरवारूप प्रमादादि कदापि काळे न

त्माने विषे प्रवर्त्ते, यत जोरुनेइ मोहखलु, सोविसय विरत्तो मणो णिरुभित्ता। समवट्ठिदोसाभावे, सो अप्पाण हवई झाया ॥ १ ॥ इति उक्त प्रवचनसारे, आतम-भावनानी गाथा-त्रण लखीए छीए एगोहहोमिपरे सिं, ण मे परे णत्थि मज्झमिहकिंवि। इय आय भावणाए, रागदोसाविल्य जति ॥ १ ॥ णाणस्सनिसुद्धिए, अ-प्पा एगतउ ण ससुद्धो। जम्मानाणअप्पा, अप्पाणच अ-णत्ता ॥२॥ आयासामाइए, आयासामाइयस्सअठोत्ती । तेणेव इमसुत्त, भासइं आयपरिणाम ॥ ३ ॥ ए सूत्रे पण चारित्रनें आतमपरिणामरूपज कहीए छीए पण बाह्यक्रियारूप नथी कह्यु तत्र काव्य-येषानचेतो ललनासुलभ्र, मग्न न साहित्यसुधासमुद्रे। ज्ञास्यति ते किंममहाप्रयासा-नन्धो यथा वारवधूविलासान् ॥ इत्यर्थ ॥ त्यारे शुद्धात्मोपयोगअवस्थानरूप निर्मळ ध्यानदशानी परम शीतळ शात सुगधिनी अनुभवलेहेरीओनु आतमा आस्वादन करे, ते सुख आपणे पौद्गलिक सुखना भीखारीओ शु जाणीए, कह्यु छे जे —

सघळु परवश ते दु ख लक्षण, निजवश ते सुख लहिए,
ए दृष्टे आतमगुण प्रगटे, कहो सुख ते कोण कहीएरे
भविका वीरवचन चित्त धरीए १
नागर सुख पामर नवी जाणे, वल्लभ सुख न कुमारी,
अनुभव विण तेम ध्यानतणु सुख, कोण जाणे नरनारीरे भ २
विषय भोग क्षय शात वाहिता, शिव मारग ध्रुव नाम,
कहे असग क्रिया इहा योगी, विमल सुजस परिणामरे भ ३

पक्रमि तथा निरुपक्रमिभेदे जघन्यथी अंतर्मुहूर्त्त अने उत्कृष्ट ३३ सागरोपम सुधीनु अध्यवसायनी तारतम्यताए भिन्न भिन्न जीवने नानाविध बंधाय छे, त्या देवता नारकीने आ भव आयु छमास बाकता बाकी रहेता परभवायु बंधाय, तथा युगलिक मनुष्यो तथा तिर्यंच तेमज तीर्थंकरादि त्रिषष्टि शलाकापुरुष अने चरमशरीरी एटलानु आयु निरुपक्रमि बंधाय, शेषने सोपक्रमी आयुबंध होय, त्या उपक्रम एटले उपघातादि कारण विशेषे आयु त्रूटे, एवो मंद मंदतरादि परिणामविशेषे जीवे आयुबंध कर्यो होय, तेवो उपक्रम पण आयुना बंधनी साथेज बंधाय छे, एथी जेम तेले करीने वाट सहित संपूर्ण रीते दीवानु कोडीउ भरेलु होय, ते दीवाने कोइपण पवनादि उपघात न लागे तो तो ते ठेठ सुधी सारी रीते बळे छे, नहि तो पवनना एक सखत सपाटाग उते तेले अने वाटे टरी पण जाए, एम सोपक्रम आयुना बंध पण एवाज ढीला जाणवा, ते व्यवहारे विष, शस्त्र, अकस्मातादि सात कारणे त्रूटे छे, पण निश्चये तो जीवे तेवीज रीतनु तेटलाज समयकाळनु बांधेलु ज्ञानीनी दृष्टिए दीठेलु भोगवे छे, एक समयमात्र पण आघु पाछु करवाने कोइ पण समर्थ नथी, देव नारकीआदि शिवायना सोपक्रमी आयुवंत प्राणीओ घणु करीने पोताना भव आयुना अंतमा अंतर्मुहूर्त्त थाकता परभव आयु बांधे छे, ते बांधता जीवने अंतर्मुहूर्त्त लागे छे, ते बंध

होय स्थविरकल्पमा पण आ कालमा सापेक्ष अ-
पराद्नी मुख्यताए चारित्र छे

२४५ प्र०—पाच नोधर्म्मीया प्राणी कह्या छे ते कया ?

उ०—भट्ठोदेवायघ्घो, विसयासत्तो अज्जियापुत्तो । गुरु देवा-
यणदुट्ठो, नोधम्मा पचपन्नत्ता ॥ १ ॥ अस्यार्थ —
१ भ्रष्ट ज्ञात कुळथी वठेला जीव, २ देवादिक धर्म-
खाताना नि शूक मने हराम दानते पगार खानारा
पूजारादिक तथा देव गुर्वादिक द्रव्यना खानारा,
३ विषयाशक्त लोलुपी लपटी, ४ व्यभिचारवडे
साध्वीने पेटे अवतरेल पुत्र, ५ देव, गुरु, धर्मादि-
कनो निंदक, घातक उत्थापक ए पाच अधर्मी एटले
नोधम्मिया जाणवा, ते वीतराग भाषित धर्मथी
पराङ्मुख रहे

२४६ प्र०—समूर्च्छिममनुष्य मरी केटला दडकमा जाय छे ?

उ०—दशदडकमा जाय छे ५ पाच थावरमा ३
विकलेन्द्रियमा ९ पचेन्द्रियमनुष्यमा १० पचेन्द्रिय
तिर्यंचमा जाय पण युगलियो न थाय तथा ए
दशदडकमा तेउकाय वायुकाय ए बे दडक वर्जिने
बीजा आठ दडकना आव्या समूर्च्छिममनुष्य थाय

२४७ प्र०—जीवने परभवआयु शी रीते बधाय छे, अने ते
केटला प्रकारनु छे ?

उ०—जीवने आयुकर्म परभवसबधिनु आ भव भोगवता
थका एकजवार निकाचितपणे त्रण आकर्षे करी सो-

३, आरंभिकी ४, मायाप्रत्ययिकी ५, ए पांच क्रियावंती जीवोनुं अल्पबहुत्व कहो

उ०—मिथ्यात्वप्रत्ययिकीक्रियावाळा सर्वथी थोडा, १ ते थकी अपच्चख्खाणीक्रियावंतजीव असंख्यातगुणा अधिक केमजे तेमां अविरति भळ्या, २ ते थकी परिग्रहिकीक्रियावंतजीवो असंख्यातगुणाधिक जे भणी तेमां देशविरति भळ्या माटे, ३ ते थकी आरंभिकीक्रियावंत असंख्यातगुणाधिक जे भणी सर्वविरति छठ्ठा गुणठाणाना मुनि तेमां भळे तेथी, ४ मायाप्रत्ययिकीक्रियावंत तेथी संख्यातगुणाधिक जे भणी तेमां नवमा गुणठाणावंति मुनि वध्या तेथी ए भाव पन्नवणासूत्रमध्ये छे इति।

२५० प्र०—देवगतिने विषे छ लेश्या आसरी अल्पबहुत्व कहो

उ०—१ शुक्ललेश्यावंतदेवताओ सर्वथी थोडा, २ ते थकी पद्मलेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ३ तेथी कृष्णलेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ४ ते थकी नीललेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ५ ते थकी कापोतलेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ६ ते थकी तेजोलेश्यावंत ज्योतिषीदेवो असंख्यातगुणाधिक जाणवा

२५१ प्र०—सोपक्रमिआयुष्यवंतजीव आयु पुरु भोगवता थका पण अकाळे चेवजीवियाओववरोविया—॥ मरण पाम्यो एम कहे छे तेनुं शुं समजवुं ?

उ०—जेम राजाए कोइएक चोरने पकडीने शूळीये के फासीए दीधो, त्यां ते जीवे सर्व आयु कर्मना दळ

दरमियाने त्रण आकर्ष (ड्चका) करे छे, जेम गाय पाणी पीती वीसामे वीसामे पीये, तेम जीव पण आयुकर्मना पुद्गल्ने लेइ आकर्षे राखे, त्या मति तेवी गति अथवा गति तेवी मति अनुसारना परिणाम विशेपे त्रय पडे

२४८ प्र०—आकुट्टी, दर्प, प्रमाद अने कल्प ए चार शब्दार्थ कहो

उ०—आकुट्टीकया अनाभोगतयाउपेत्यसात्रद्यकरणोत्साहोत्मिका १, दर्प्पोधावनप्लवनादिक वल्गनादिक । हास्यजनको वा नाट्यादिकदर्प्परूपोवा २, प्रमादो रात्रौ दिवाप्रतिलेखनाप्रमार्जनाद्यनुपयुक्तता ३, कल्पकारणे दर्शनादिचतुर्विंशतिरूपेसति गीतार्थस्यकृतयोगी उपयुक्तस्य अयतनतया आधाकर्माद्यादानरूपा ४, इति । अस्यार्थ ।

आकुट्टी एटले अनाभोगे उपयोग रहित सहसात्कारे उद्धतपणे सावद्यकार्य प्रवृत्ति, २ दर्प एटले अहकारे वा इर्ष्याए चडसाचटसीए नाटक कौतकादि जोवा जता वाटमा अश्ववृषभादिने ,खूब दोडाववा वगेरे अयत्नाए निर्दय सावद्य कर्माचरण, ३ प्रमाद एटले रात्रे वा दिवसे प्रमार्जन प्रतिलेखनादि सावद्य क्रिया अयत्नाए जेम तेम बेदरकारीथी करवी ते ४ कल्प एटले गीतार्थ बहुश्रुतादिना वचन निरपेक्षपणे निष्कारण आधाकर्मादि दूषित आहार ग्रहण करवो वगेरे मार्गथी भ्रष्ट आचार प्रवृत्ति ते

२४९ प्र०—मिथ्यात्वप्रत्ययिकी १, अप्रत्याख्यानिकी २, परिग्रहिकी

३, आरंभिकी ४, मायाप्रत्ययिकी ५, ए पांच क्रियावंतनो जीवोनु अल्पबहुत्व कहो

उ०–मिथ्यात्वप्रत्ययिकीक्रियावाळा सर्वथी थोडा, १ ते थकी अपच्चख्खाणीक्रियावंतजीव असंख्यातगुणा अधिक केमजे तेमां अविरति भळ्या, २ ते थकी परिग्रहिकीक्रियावंतजीवो असंख्यातगुणाधिक जे भणी तेमां देशविरति भळ्या माटे, ३ ते थकी आरंभिकीक्रियावंत असंख्यातगुणाधिक जे भणी सर्वविरति छठ्ठा गुणठाणाना मुनि तेमां भळे तेथी, ४ मायाप्रत्ययिकीक्रियावंत तेथी संख्यातगुणाधिक जे भणी तेमां नवमा गुणठाणावर्ति मुनि वध्या तेथी ए भाव पन्नवणासूत्रमध्ये छे इति।

२५० प्र०–देवगतिने विषे ६ लेश्या आसरी अल्पबहुत्व कहो

उ०–१ शुक्ललेश्यावंतदेवताओ सर्वथी थोडा, २ ते थकी पद्मलेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ३ तेथी कृष्णलेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ४ ते थकी नीललेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ५ ते थकी कापोतलेश्यावंत असंख्यातगुणाधिक, ६ ते थकी तेजोलेश्यावंत ज्योतिषीदेवो असंख्यातगुणाधिक जाणवा

२५१ प्र०–सोपक्रमिआयुष्यवंतजीव आयु पुरु भोगवता थका पण अकाळे चेवजीवियाओववरोविया–॥ मरण पाम्यो एम कहे छे तेनु शुं समजवुं ?

उ०–जेम राजाए कोइएक चोरने पकडीने शूळीये के फासीए दीधो, त्या ते जीवे सर्व आयु कर्मना दळ

हता ते आत्मप्रदेशोदये भोगवी, आयुकर्म नाच्यु हतु तेटलु पूरु भोगवी लीधु, तया काळ आसरी अकाळे मुओ एटले जे आयु सुखे समावे जीव विपाकोदये भोगवीने मरत, ते थोडा काळमा ते आयुना दळने प्रदेशोदये वेदीने खपावीने मुओ तेथी तेने अकाळमरण कहे छे अर्थात् जेटलु आयुष नाच्यु हतु तेटलु प्रदेशोदये भोगवीने पूरु कीधु तेथी सपूर्ण आयुषे मुओ तेम कहेवाय अने घणा काळे विपाकोदये भोगववानु आयु कर्म थोडा काळमा भोगवीने खपाव्यु माटे अकाळ मरण कहिये

२५२ प्र०—कोने सवनी बहार काढवो तथा कोने दीक्षा न आपवी जोइए ?

उ०—अथ प्रास्ताविक गाया—

जो भणईनत्यिधम्मो, न सामाइय न चेव वयाइ ।
सो समणसंघबज्झो, कायव्वो समणसंघेण ॥ १ ॥
अट्ठारसपुरिसेसु, वीसइत्थीसु दसनपुंसेसु ।
जिणपडीकुतित्थियाओ, पव्वावेउ न कप्पति ॥२॥
बालेवुड्ढेनपुंसयेय, किवेजडेयबाहिए ।
तेणेरायावगारिय, उमत्ते य अदसणे ॥ ३ ॥
दासेदुट्ठेअमूढेय, अणतेजुगए एय ।
अवबधए यभिएय, सेहेनिप्फोडीयाइय ॥ ४ ॥
एटलाने दीक्षादेवी न कल्पे,

२५३ प्र०—सोळ सज्ञाओ कइ ?

उ०—गाथा—

आहारभयपरिग्गह, मेहुणतह कोहमाणमायाए ।
लोहोहलोगसण्णा, दससन्नाहुतिसव्वेसिं ॥ १ ॥
सुहदुहमोहसना, वितिगिच्छाचउद समुणेयव्वा ।
सोगे तहधम्मसन्ना, सोलस ए इति मणएसु ॥ २ ॥

२५४ प्र०—दश सज्ञा कया कया जीवोमा छे

उ०—गाथा—

रुक्खाणजलाहारो, सकोयणीयाभएण सकुयइ ।
नीयततुएण वेढइ, वलीरुक्खेण परिग्गहेय ॥ ३ ॥
इत्थीपरिरमेण, कुरुवकतरुणोफलती मेहुणे ।
तहकोकनदस्सकदो, हुकारोमुयइ कोहेण ॥ ४ ॥
माणेण झरईरुदती, च्छायई वल्ली फलाईमायाए ।
लोहेबीछपलासा, खिवतिमूले धणाणुवरिं ॥ ५ ॥
रयणीए सकोओ, कमलाण होईलोगसन्नाह ।
ओहे चईत्तु मग्ग, चढति रुखेसु वल्लीओ ॥ ६ ॥
इति १० सज्ञाना उदाहरण ।

२५५ प्र०—अढार भावदशा तथा अढार द्रव्यदशानु स्वरूप कहो

उ०—तत्र गाथा—

तिरियामणुआकाया, तह अग्गवीयाय चउरो ।
देवाय नेरइया—अट्ठारसभावरासीओ ॥ १ ॥
बेरेन्द्रिय, तेरेन्द्रिय, चोरेन्द्रिय, पचेन्द्रिय, ए चार तथा समूर्च्छिममनुष्य कर्मभुमिजा अकर्मभुमिजा

अंतरद्वीपना, हवे अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, स्कंधबीज, ए चार वनस्पतिना भेद पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय, एव चार तथा देवता अने नारकी एव अढार १८ भावदिशा आचारांग सूत्रमध्ये शस्त्रपरिज्ञाअध्ययनमांहे भावदिशा वखाणी छे तथा अढार द्रव्यदिशा चारदिशि, चारविदिशि, आठदिशि, विदिशिना आंतरा ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा ए १८ द्रव्यदिशा जाणवी

२५६ प्र०—नीलीगलीए रंगेला वस्त्रमां केटला वखतमां जीव पडे छे ?

उ०—नीलीगलीए रंगेला वस्त्रथी मनुष्यसंसर्गे तत्काल कुंथुप्रमुख त्रसजीव घणा उपजे छे एम रत्नसंचय ग्रन्थमां कह्यु छे

२५७ प्र०—लब्धिपर्याप्तानु तथा करणपर्याप्तानु केवु स्वरूप छे ?

उ०—पर्याप्तिद्विधा लब्धि करणश्च तत्र ये स्वयोगपर्याप्ति सर्वाअपि समर्थ्या म्रियन्ते न अर्वाग् ते लब्धिपर्याप्ता ये पुन करणानि शरीरेन्द्रियादीनि निर्वर्तन्त ते करणपर्याप्ता इति, ननुचास्यशरीरपर्याप्तौ च शरीरभविष्यति किं प्राग् अभिहितेन शरीरनाम्ना ? नैतदस्ति साध्यभेदात् तथा जयसोमकृत बालावबोधमां एम लख्यु छे

२५८ प्र०—छ पर्याप्तिनु स्वरूप कहो

उ०—जे कर्मना उदयथी आरंभी पर्याप्ति पूरी कर्या विना न मरे ते पर्याप्तिनामकर्म, तेणे एकेन्द्रियने चार

विगलेन्द्रिय तथा असज्ञीपचेन्द्रियने भाषा होय सज्ञीपचेन्द्रियने मन होय उत्पत्ति प्रथम समयथी आरभी पर्याप्ति पूरी कर्या विना न मरे पूरी करीने मरे ते लब्धिपर्याप्तो जाणवो शरीर इन्द्रिय पर्याप्ति पूरी न थाय त्या सुधी तेने अकरणपर्याप्तो कहेवो अथवा जे जे पर्याप्ति पूर्ण नथी थइ तेनी अपेक्षाए अकरणपर्याप्तो जाणवो जे जे पर्याप्ति पूरी करी ते अपेक्षाए करणपर्याप्तो जाणवो जे कर्मना उदये आरभेली पर्याप्ति पूरी कर्या विना मरे ते लब्धिअपर्याप्त नामकर्म पुद्गलना उपचयथी थयो पुद्गल परिणमन हेतु शक्ति विशेष ते पर्याप्ति विषय भेदे छे

२५९ प्र०—पर्याप्ति ने प्राणमा शो फेर छे ?

उ०—पर्याप्ति ते उपजतीवेलाए होय अने प्राण ते जावजीव लगे होय

२६० प्र०—सम्यग्दृष्टिनी केवी दशा होय ?

उ०—गाथा—

बधोअविरइहेउ, जाणतो रागदोसदुक्खच ।
विरइसुह इच्छतो, विरइ काउ च असमत्यो ॥ १ ॥
एस असजयसम्मो, निदतोपावकम्मकरणच ।
अहिगयजीवाजीवो, अचलियदिट्ठीचलियमोहो ॥२॥
सम्मदसणसहिओ, गिण्हतोविरइमप्पसत्तिए ।
एगवइयचरमो, अणुमइमित्तत्तिदेसजई ॥ ३ ॥

अनरद्वीपना, हवे जग्रनीज, मूलनीज, पर्वनीज, स्कधनीज, ए चार वनस्पतिना भेद पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय, एव चार तथा देवता अने नारकी एव अढार १८ भावदिशा आचाराग सूत्रमध्ये शस्त्रपरिज्ञाअध्ययनमाहे भावदिशा वखाणी छे तथा अढार द्रव्यदिशा चारदिशि, चारविदिशि, आठदिशि, विदिशिना आतरा ऊर्ध्वदिशा, अधोदिशा ए १८ द्रव्यदिशा जाणवी

२५६ प्र०–नीलीगलीए रगला वस्त्रमा केटला वखतमा जीव पडे छे ?

उ०–नीलीगलीए रगेला वस्त्रथी मनुष्यससर्गे तत्काल कुथुमसुख त्रसजीव घणा उपजे छे एम रत्नसचय ग्रन्थमा कह्यु छे

२५७ प्र०–लब्धिपर्याप्तानु तथा करणपर्याप्तानु केवु स्वरूप छे ?

उ०–पर्याप्तिद्विधा लब्धि करणश्च तत्र ये स्वयोगपर्याप्ति सर्वाअपि समर्था म्रियन्ते न अर्वाग् ते लब्धिपर्याप्ता ये पुन करणानि शरीरेन्द्रियादीनि निवर्तन्त ते करणपर्याप्ता इति, ननुचास्यशरीरपर्याप्तौ च शरीरभविष्यति कि प्राग् अभिहितेन शरीरनाम्ना ? नैतदस्ति साध्यभेदात् तथा जयसोमकृत बालावबोधमा एम लख्यु छे

२५८ प्र०–छ पर्याप्तिनु स्वरूप कहो

उ०–जे कर्मना उदयथी आरभी पर्याप्ति पूरी कर्या विना न मरे ते पर्याप्तिनामकर्म, तेणे एकेन्द्रियने चार

सतो जीव सिद्धि गतिए जाय, पण वचमा विषम श्रेणिना आकाशप्रदेश न फरसे माटे ते अपेक्षाए सिद्धनी अफुसमाणगति कहिए, तथा समश्रेणिए आकाशप्रदेश फरसतो फरसतो जाय, ते अपेक्षाए क्षेत्रआश्रिफुसमाणगति कहीए, अने एक समयथी बीजा समयना अतरने न फरसे ते माटे आश्रि अफुसमाण गति कहे छे

२६५ प्र०—त्रणप्रकारना पुद्गलो दृष्टांतथी समजावो

उ०—विश्रसा ते स्वभावे कोइ निमित्त पामी तदाकार थाय, जेम इद्रधनुष्यादि अभ्रवत्, २ प्रयोगसा ते जीव व्यापारे, उद्यमे करीने जे निपजे, जेम भवन, घटपटादि, ३ मिश्रसा ते काइक सहज स्वभावे अने काइक प्रयोगे जेम ते माणसे जुनो पटो बान्यो अथवा जुनी पाघडी बाधी इत्यादिमा पुद्गलोनु जीर्णपणु थवु ते स्वभावे कहीए, अने बधनकर्म ते मनुष्यना प्रयोगवडे थाय छे, एम स्वभाव अने प्रयोगे मळी थनेल वस्तुने मिश्रसा पुद्गल कहे छे

२६६ प्र०—श्रीतीर्थंकरना जन्मादिककल्याणक वखते साते नरके केटलु अजवाळु थाय ते कहो

उ०—पहेली नरके सूर्यसमान उद्योत, २ बीजीए वादळे ढाकेला सूर्यसमान, ३ त्रीजीए पूनमना चद्रसमान, ४ चोथीए वादळे ढाकेला चद्रमासमान, ५ पाचमीए ग्रहोना उद्योत समान, ६ छठीए नक्षत्रना उद्योत समान, ७ सातमीए ताराना उद्योत समान

ए गाथानो गुरुगमर्थी अर्थ धारज्यो सम्यग्दृष्टिने उदयस्थिति प्रतियोनव होय पण आत्मप्रतियोत्रव न होय

२६१ प्र०—छद्मस्थ कोने कहे छे ?

उ०—छाद्यते केवलज्ञानदर्शने आत्मन अनेनेतिछद्म-ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीयान्तरायकर्मोदयेसति तस्य केवलज्ञानदर्शनस्यानुत्पादात् तदपगमानन्तर चोत्पादात् ज्ञानावरणादिछद्मनि तिष्ठतीतिछद्मस्थ ॥ केवलज्ञान विना बाकीना चार ज्ञान प्रगटता पण छद्मस्थ गणाय छे

२६२ प्र०—मुनिने अप्रमत्तदशाए समय समय अनतगुणविशुद्धि कही छे ते शी रीते ?

उ०—आत्मोपयोग एकाग्रध्यान भणी मुनिने आत्मप्रदेशे रहेल अनतीकर्मवर्गणानी निर्जरा थता आत्मानी अनती विशुद्धि समय समय थाय छे

२६३ प्र०—आहारकआहारक मिश्र जीव किम करे ?

उ०—जेवारे पूर्वधरे सदेह पुछवा निमित्ते आहारकशरीर मोकल्यु होय तिहा ज्ञानवत नही तिवारे तिहाथी वली बीजु आहारक करे ते करती वेलाए पूर्वआ-हारक सघाते मिश्र होय ते माटे इति भावार्थ।

२६४ प्र०—सिद्धने अफुसमाण के फुसमाण गति शी रीते समजवी ?

उ०—एक समयमा समश्रेणिना सर्वआकाशप्रदेश, फर-

रनी छाया उता उायटो घूमाडा वगेरेना पुद्गलो नजरे देखाय छे, पण हाथमा ग्रहवाय नहि, माटे बादरसूक्ष्म, ४ सूक्ष्मबादर ते गध, रस, स्पर्श शब्दादिकना पुद्गलो आखे देखाता नथी, परतु स्पर्शादिके लक्षणे जणाय छे, माटे तेने सूक्ष्मबादर कहिए, ५ सूक्ष्म ते अष्टकर्मवर्गणाना पुद्गलो चार स्पर्शवाळा छे ते नजरे देखाता नथी माटे, ६ सूक्ष्मसूक्ष्म ते छुटो शुद्धपरमाणुपुद्गल ते बे स्पर्शवाळा अत्यतसूक्ष्म छे माटे ए रीते छ प्रकारना पुद्गल ससारमध्ये व्यापी रह्या छे, जेम छ कायना जीव व्यापी रह्या छे तेम जाणवा

२६८ प्र०—ज्ञानावरणीयादिकर्मनो बध, उदय, उदीरणा, सत्ता केटला गुणठाणा सुधी होय

उ०—ज्ञानावरणीयनो बध गुणठाणा १० मासुधी, दर्शनावरणीयनो बध १० मा सुधी, वेदनीयनो बध गुणठाणा १२ मा सुधी, मोहनीयनो बध गुणठाणा नवमा सुधी, आयुकर्मनो बध गुणठाणा सातमा सुधी, नामकर्मनो बध गुणठाणा १० सुधी, गोत्रकर्मनो बध गुणठाणा दशमा सुधी, अतरायकर्मनो बध गुणठाणा दशमा सुधी, हवे ज्ञानावरणीयकर्मनो उदय गुणठाणा १२ मा सुधी, दर्शनावरणीयकर्मनो उदय गुणठाणा १२ मा सुधी, वेदनीयकर्मनो उदय गुणठाणा १४ मा सुधी, मोहनीयकर्मनो उदय गुणठाणा १० मा सुधी, आयुकर्मनो उदय गुणठाणा १४ मा सुधी,

अथ प्रास्ताविक गाथा—

कालेसुपत्तदाण, समत्तविसुद्धिबोहिलाभ च ।
अते समाहिमरण, अभव्वजीवा न पावति ॥ १ ॥
अखडियचउत्थो, वयगहणाउ जोय गीयत्थो ।
तस्स सगासे दसण, वयगहणसोहिगहण च ॥ २ ॥
कत्थय जीवो बलीओ, कत्थय कम्माइ हुति बलीआइ ।
जीवस्सय कम्मस्सय ॥ ३ ॥
कालसहावोनियइ, पुव्वकयपुरसकार ए गता ।
मिच्छ तत चेवओ, समासओ होतिसमत्त ॥ ४ ॥
नव हि जीववहकरण, करायण अणुमोदिय जोगेहि ।
कालतिएहिगुणीए, पाणीवहदुस्सवेयाल ॥ ५ ॥ अस्यार्थ

साधुने पहेलानतना नवकोटी पच्चक्खाण छे पण तेहना भागा २४३ थाय इम २७ करवाना २७ कराववाना २७ अनुमोदवाने विषे निषेधे इम ८१ थाय ते काले त्रणेगुणेगुणी त्रिगुणाकरता २४३ भेदे साधुने पच्चक्खाण होय जावजीवलगे इत्यर्थ ।

२६७ प्र०—छ प्रकारना पुद्गलनु स्वरूप कहो

उ०—१ बादर ते खडी माटी पाषण प्रमुख जाणवा, केमजे ते पदार्थोने छेद्या थका तेना खडो एकमेक न रहे, पण भिन्नभिन्न नजरे देखाय छे, माटे बादर बादर ते पहेलो भेद, २ बादर ते घी, दूध, पाणी, तेल, मध, गोळ, खाड इत्यादिकना पुद्गलने बादर कहिये, केमजे तेमने छेद्या थका भिन्न ■ थाय एकमेक मळेलाज रहे छे ३ बादरसूक्ष्म ते शरी-

माहेली एकनिगोद लइए ते निगोदमा अनता जीव छे, ते माहेलो एकजीव लइए तेमा असख्याता प्रदेश छे, ते एकजीवने प्रदेशे प्रदेशे अनतीकर्मवर्गणा छे, ते माहेली एक कर्मवर्गणा लीजीए ते माही अनतापुद्गलपरमाणुआ छे, ते माहेलो एक परमाणु लीजीए, ते माही अनता पर्याय समकाळे परिणमे, एवी जीव अने पौद्गलिक शक्तिनी अत्यतसूक्ष्मता जाणवी, एवु श्रीवीतराग वचन तहत्ति करी मानीए हवे निगोदीआ जीवना भवनी सख्या काळ मान विचारे छे—असख्यात समयनी एक आवली थाय, २५६ आवलिनो एक निगोदीआ जीवनो क्षुल्लक भव थाय, एक श्वासोच्छ्वासमाहे चुवालीससेने साडीच्छेतालीस आवली थाय तेवा भव निगोदीओ जीव एक श्वासोच्छ्वासमा १७ भव झाझेरा करे, एटले ते जीव सत्तरवार मरे अने अढारमी वार उपजे, केमजे एक श्वासोच्छ्वासमा १७ भव अने ९४॥ आवली जेटलो काळ थाय छे ते प्रमाणे गणता वे घडीमा ३७७३ श्वासोच्छ्वास थाय छे, तेटलामा निगोदिआ भव ६५५३६ थाय, ए लेखे एक दिवसमा श्वासोच्छ्वास ११३१९० अने तेमा भव एटला श्वासोच्छ्वास निरोगी युवान पुरुषना थाय, तेवा एक दिवसमा १९६६०८० भव निगोदिओ जीव करे, ते हिसावे एक मासना श्वासोच्छ्वास ३३९५७०० गणता निगोदीआ भव ५ क्रोट ८९ लाख ८२ हजार अने ८०० थाय,

वान् समुद्घात आठ समयनो करे पण बीजा नहि, पछी एम पोताना आत्मप्रदेशे चौदेराजलोकमा रहेल प्राणीमात्रना आत्मप्रदेश साथे मेळवी प्रदेशोदये कर्म भोगवीने दंड, कपाट, मथानादि अनुक्रमे संवरीने अयोगी थया थका सिद्धि वरे इत्यादि स्वरूप विस्तारे, ग्रंथान्तरथी (लोकप्रकाशग्रन्थे कह्यु छे) गुरुगमथी जाणवु

२७० प्र०–निगोदनु स्वरूप कहो तथा जीव अने पुद्गलनी शक्तिनी सूक्ष्मता जिनवचनानुसार दर्शावो

उ०–असख्यातप्रदेशी लोक ते प्रमाणे गोला पण असख्याता छे, गोलो ते शु ? असख्याति निगोदे एक गोलो इति ते उपर गाथा–

लोएअसखजोयण, माणेपईय जोयणगुला सख्खा ।
पइत असखअसा, पइअमसखया गोला ॥ १ ॥
गालो असख निगोओ, सोअणअसखपईपएस ।
कम्माणवग्गणाणता ॥ २ ॥
पइवग्गणाअणता, अणुअ पइअणत पज्जाया ।
एव लोगसरुव, भाविज्ज तहत्तिजिणवुत्त ॥३॥ अस्यार्थ –

चौदराजलोक असख्याती कोडाकोडी जोजननो छे, ते मध्ये एक जोजन लइए, तेना अगुल असख्याता थाय, ते मध्येथी एक अगुल लीजीए, तेना असख्यातमा भागप्रमाण, एकभाग लइए, ते माहे असख्याता गोळा छे, ते माहेलो एकगोळो लइए ते एकगोळामाहि असख्याति निगोद छे, ते

माहि आव्या छे अनताकदादिक माहे छे तथा जेटला जीव सूक्ष्मनिगोदगोलकमाहेथी निकल्या छे ते व्यवहारराशिमाहे आव्या ते कालादिक लब्धि पामी सिद्धिवरे तेटला अव्यवहारनिगोदमाहेथी नीकळी उचा व्यवहारराशिमाहे आवे पण व्यवहारराशि तो ओछा न थाय, कदापि मुक्ति जावानो विरहकाल होय तेटला काल सुधी सूक्ष्म अव्यवहारराशि निगोदनो जीव कोइ व्यवहारराशिमा न आवे एहवु उपमितिभवप्रपचग्रथमाहे कह्यु छे

२७१ प्र०—बादरसाधारणवनस्पतिकायमाथी जीव मरीने सूक्ष्म गोळकनिगोदमा जाय तो त्या केटलो काळ उत्कृष्ट रहे

उ०—अढीपुद्गलपरावर्तन, मतातरे असख्याति उत्सर्पिणी अवसर्पिणी सुधी पण कह्यु छे, त्याथी नीकळी बादर निगोद कदमूळ माहि उत्कृष्ट ७० कोडाकोडी सागरोपम सुधी रहे, एकनिगोदनो गोळो असख्याताआकाशप्रदेश अवगाही रह्यो छे, तथा अव्यवहारराशिया निगोदीआ जीव जे गोलकमा छे ते भवस्थितिपाकता उचा आवे ते एकसमये उत्कृष्ट केटला नीकळे ? तोके जेटला अढीद्वीप माहीथी सकळकर्म खपावी एकसमये जेटला जीव सिद्धि वरे, तेटला सूक्ष्मनिगोदमाथी नीकळी व्यवहारराशीमा आवे, ते जघन्य एकसमयमा एक, बे, त्रणथी उत्कृष्ट १०८, अने तेटलाज सूक्ष्म

अने एक वरसमा ४ क्रोड, ७ लाख, ४८ हजार, अने ८०० गणता तेने विषे निगोदीओ जीव ७० कोडी ७७ लाख ८८ हजार अने ८०० वार जन्ममरणरूप भव करे, एवा भव पूर्वे आ जीवे असख्यातेकाले असख्याता अधिक भव कीधा, एम अनताकाले अनता भव कीधा, अनता अतीतकाळमा अनताअनत भव कर्या, वे श्री वीतराग परमात्माउ वचन सद्दहिने, हे चेतन । तु मनमा काइक पापनो नास आण अने आ तारा पोताना जीवनी दया चिंतवीने तेने आवा भयकर जन्ममरणना फेरामायी मुक्त करवानो श्रीजिन प्रणीत मार्ग छे, तेने अप्रमत्तपणे यथार्थ आदर इतिभाव जूनी प्रतिमा नीचे प्रमाणे पाठ छे तथा एक गोलामाहे असख्याति निगोद छे निगोदशरीर एकशरीरे अनता जीव छे, एटले अनते जीवे मळीने एक शरीर बाध्यु छे, आप आपणा तेजसकार्मण जूदा छे औदारिक एक छे साथे आहारनिहार साथे मरण २५६ आवलीनो आयु भोगवी पर्याप्ति पूरी करीने मरे तेहनी निश्राए बीजा कोइ अपर्याप्ता होय नही ते अनत केटला छे ? जेटला कदमूल मध्ये अनता छे ते कदमूल चौदराज प्रमाणे ढग करीए तेमाहे पण सूक्ष्मनिगोदना एकशरीरना अनता निकल्या तेमाहे न समाय एहना अनताअनत भव घणा छे. तिहाना निकळ्या तेमाहेज समाय, तथा कदमूलना ते बादरनिगोदिया छे व्यवहारराशि-

सिद्धपरमात्माओ विराजे छे, तेमने मारो त्रिकरण शुद्धिए नमस्कार हो

२७३ प्र०–अष्टमहासिद्धिना नाम अर्थसहित कहो

उ०–प्रथमलघिमा ते शरीरनु हलवापणु थाय जलपुष्प उपरि तथा कटकउपर मुनि चाले पण किलामना न पामे १, बीजी वसिमासिद्धि तेहथी सिंह, सर्प, देवमनुजादिक वश्य थाय २, त्रीजी सत्यसिद्धि परमैश्वर्यपणु पामे चक्रवर्त्ति इद्रादिक थकी अधिकी ऋद्धिविकुर्वे ३, चोथी काम्यसिद्धि तेथी अत्यत बलसपदाहोय, पृथ्वीपर्वतादिक उपाडे आचिंतित पराक्रमी होय ४, पाचमी महिमासिद्धि तेथी मोड लाखजोजन शरीर करे ५, छट्ठी अणिमासिद्धि तेथी नाहनु कुथुआ जेवडु रूप करीने भींतमाथी तथा पर्वतमाथी निकळे अने पोते विघ्न न पामे ६, सातमी यत्रकामावसायित्वसिद्धि तेथी जिहा उपयोग दे तिहा जाणे निर्मल श्रुतज्ञान अवधिज्ञानने योगे ७, आठमी प्राप्तिसिद्धि तेथी सकल मोटीवस्तु प्रत्यक्षपणे देखे रूपिवस्तु देखे अवधिज्ञानदर्शन त्रण योगे ८, ए अष्टमहासिद्धि मुनिराजने होय तेहना शब्दार्थ जाणवा

२७४ प्र०–क्षणमात्र सुख अने बहुकाळ दुःख ते शी रीते ?

उ०–आ जीव आ ससारना अनुकुळ इद्रिय विषयना भोगादिकने विषे लुब्ध थयो थको मधुबिंदुआना दृष्टाते क्षणमात्र सुख अने बहुकाळ दुःख भोगव्या

तो अनता सुधी एकसमये निकळे पण अव्यवहारिया ते एकसमये उत्कृष्टे १०८ निकळे तेमाहे भव्य अभव्य वे होय ते सूक्ष्मनिगोदना अनता निकळ्या नादरमाहि समाय वीजामा नहीं, तथा एक सूक्ष्मनिगोदमाहे अनताजीव केटला छे ते त्रण काल्ना समय अनता छे तेहथी अनताजीव एक निगोदमाहे छे, तेणेकरी जेवारेजेवारे पुछीए तेवारे जिनेश्वर कहे छे जे " एकस्सनिगोअस्स अणत तमो भागो य सिद्धिगओ " एटले सूक्ष्मनिगोदथी बादरनिगोदमाहे निरतर आवे छे ते ते आवे तो एकसमये १०८ सुधी उत्कृष्टे आवे तथाचोक्त–सिज्झति य तियाखलु, इहय ववहाररासिमज्झाओ। इतिअणाईवणस्सईमज्झाओ, तित्तियाचेव ॥ १ ॥ इतिश्रीभुवनभानुकेवली चरित्रमध्ये उक्त एम निगोदनो विचार लख्यो छे

२७२ प्र०–सिद्धशिलानु किंचित् स्वरूप वखाणो

उ०–जेम साबुनो गोळो उपर जाडपणे समो अने नीचे टेकरारूपे विस्तरतो तेम अथवा उंधी उघाडी राखेल अर्धछत्रआकारे, श्वेत, सुवर्णमय, स्फटिकरत्नमय सरखी निर्मळ मध्ये आठजोजन जाडी परिधिविस्तारमा ४५ लाख जोजन प्रमाणे अढीद्वीपरूप मनुष्यक्षेत्रनी उपरे ढाकण समान, छेडे जाता माखीनी पाख समान पातळी, लोकना अग्रभागे रहेली अतिनिर्मळ सिद्धशिला शोभी रही छे, जेनी उपर ⅙ गाउए एटले एक गाउने छठे भागे अनता

सिद्धपरमात्माओ विराजे छे, तेमने मारो त्रिकरण शुद्धिए नमस्कार हो

२७३ प्र०—अष्टमहासिद्धिना नाम अर्थसहित कहो

उ०—प्रथमलघिमा ते शरीरनु हलवापणु थाय जलपुष्प उपरि तथा कंटकउपर मुनि चाले पण किलामना न पामे १, बीजी वसिमासिद्धि तेहथी सिंह, सर्प, देवमनुजादिक वश्य थाय २, त्रीजी सत्यसिद्धि परमैश्वर्यपणु पामे चक्रवर्त्ति इद्रादिक थकी अधिकी ऋद्धिविकुर्वे ३, चोथी काम्यसिद्धि तेथी अत्यत बलसपदाहोय, पृथ्वीपर्वतादिक उपाडे आचिंतित पराक्रमी होय ४, पाचमी महिमासिद्धि तेथी मोटु लाखजोजनु शरीर करे ५, छट्ठी अणिमासिद्धि तेथी नाहनु कुथुआ जेवडु रूप करीने भींतमायी तथा पर्वतमायी निकळे अने पोते विघ्न न पामे ६, सातमी यत्रकामावसायित्वसिद्धि तेथी जिहा उपयोग दे तिहा जाणे निर्मल श्रुतज्ञान अवधिज्ञानने योगे ७, आठमी प्राप्तिसिद्धि तेथी सकल मोटीवस्तु प्रत्यक्षपणे देखे रूपिवस्तु देखे अवधिज्ञानदर्शन त्रण योगे ८, ए अष्टमहासिद्धि मुनिराजने होय तेहना शब्दार्थ जाणवा

२७४ प्र०—क्षणमात्र सुख अने बहुकाळ दुःख ते शी रीते ?

उ०—आ जीव आ ससारना अनुकुळ इद्रिय विषयना भोगादिकने विषे लुब्ध थयो थको मधुबिंदुआना दृष्टाते क्षणमात्र सुख अने बहुकाळ दुःख भोगव्या

करे छे, ए मथना एकटीपानी तृष्णामा पोतानी आसपास अनंतगणु व्यापी रहेलु दु ख हिसाबमा गणतो नथी, तेम स्त्रीसेवनमा जाणे साक्षात् अमृतसार महास्वादिष्टभोजन प्राप्त न थयु होय, तेवो लोलुपी थयो थको भुड सुकरनी पेठे निज स्वरूपने तद्दन विसारीने अथवा उवेखीने खरज खणवाना स्वादना परे अथवा मधुलिप्त खड्गधाराने चाटवानी परे प्रथम सेवन करता सुख वेदे, अने पाछळथी तत्काळ एकक्षणवारमा शरीर वीर्य क्षय थता घाभरा जेवो थइपडी निर्माल्य नपुसकरूप अनुभवे छे, अने त्यारेज ते पोतानी भुडसुकरपणानी निर्लज्ज बाळचेष्टाने अतरदृष्टिए धिक्कारे छे, तेम आ ससारने विषे चक्रवर्ति आदिना विषयना उत्कृष्ट पौद्गलिक सुख नर्कादिकने विषे तेना विपाककाळ आगळ तुच्छ अल्पकालिक क्षणिक छे, छता हा। इति खेदे आ भवनी अनादि काळनी विषय वासना जाणताने पण बाळरूप करनार एवी महामोहमय प्रबळताथी चेतनने सावधान रहेवानु छे, जुओ बारमा ब्रह्मदत्त चक्रवर्तिनु आयुष्य मात्र ७०० वरसनु हतु ते भोगवीने नरके गयो, तिहा ३३ सागरनु आयु भोगवे छे तेटलो काल विषयसुख भोगव्या ते उपर केटलु दु ख तेहनी विगत वर्ष १०० दिवस ३६००० थाय तेवारे ७०० वर्षना दिवस २५२००० थाय

तेहना मुहूर्त ७५६००० ते एकमुहूर्त्तना ३७७३ श्वासोच्छ्वास थाय ७५६००० ते गुणा करता २८५२३८८०००० एटले ७०० वर्षना एटला श्वासोच्छ्वास थाय तथा सागरोपम ३३ ना पल्योपम त्रणसेत्रीसकोडाकोडी थाय तेहना आक ३३०००००००००००००० तेवारे एकश्वासोच्छ्वास सुधी संसारमध्ये विषयना सुख भोगव्या ते उपरे ११५६९८५ ईग्यारलाख छपन्नहजार नवसेंने पचासी एटला पल्योपम थाय सातमी नरके दुःख भोगवे छे एटले "खणमित्तसुखबहुकालदुरकम्" ए पद सूत्रे कह्यु छे तेहनो ए भावार्थ जाणवो अने तेटलामा अतिअधर्मपणे नि शूकताथी भोगवेला जे विषयभोगो तेना दारूणविपाको ते सातमी नरकने विषे ज्या आख मीचीने उघाडीए एटली वार पण जीवने लेशमात्र सुख नथी तेने विषे जीव एकलो निराधारपणे भोगवी रह्यो छे माटे ज्ञानी कहेछे जे--

प्रभाति

विषयवासना त्यागो चेतन, साचे मारग लागोरे,
तप जप क्रिया दानादिक सहु, गीणाति एक न आवेरे,
इद्रिय सुखमे झल्यु ए मन, वक्र तुरग ज्यु धावेरे इत्यादि

एम जाणी आ ससारना मूळ जे विषय कषाय मोहादि छे तेनो जय करवाने माटे परमात्माना वचनमा ज्ञानपूर्वक विरक्तबुद्धि राखी इद्रियोनो जय करवो, जेथी विषय त्यागे पचमहाव्रतादि प्रव्रज्या उदय आवे, कषायनी मदताए गुण-

ठाणानी श्रेणिए चढे अने स्वरूपाचरण चारित्ररूप शुद्धात्मोपयोग तीव्र वर्ते

२७५ प्र०—मिथ्यादृष्टि अने सम्यग्दृष्टिना आचार तथा उपयोगने सरखावो

उ०—मिथ्यादृष्टिजीवने शुभाचार होय पण शुभोपयोग न होय, अने सम्यग्दृष्टिजीवने शुद्धोपयोग होय तेने शुभोपयोग आचरणरूपे होय पण आदरण न होय, अने मिथ्यादृष्टिजीवने शुभआचाररूप होय, पण ते अशुद्धोपयोगना घरनो अशुभोपयोग होय छता तेने शुभोपयोग उपचारे कहिये

२७६ प्र०—युगप्रधानना गुणो कहो

उ०—युगप्रधानना गुणो १४ छे तत्र गाथा—

पडिरुवोतेयस्सि, जुगप्पहाणागमोमहुरवक्को ।
गंभीरोधीमतो, उवएसपरोयआयरिओ ॥ १ ॥
अपरिस्सविसामो, सगहसिलो अभिग्गहमईय ।
अविकत्थणोअचवलो, पसंतहियओगुरुहोई ॥२॥
एव चतुर्दशगुणा भवन्ति ।

२७७ प्र०—कया ठेकाणे त्रणथोयो करवी

उ०—भद्रबाहुस्वामीकृत ओघनिर्युक्तिमा ७२ मी गाथामा त्रणथोयो करवी कही छे. यथा—

अवस्सगतुकाओ, जिणोवइठ्ठगुरुवएसेण ।
तिन्निथुई पडिलेहा, कालस्सविहिइमोतत्थ ॥ १ ॥

२७८ प्र०—तपदान अने अनशनतु शु फल छे ?

उ०—तवसयमेण मुक्खो, दाणेणहुतिउत्तमाभोगा ।
देवचणेणरज्ज, अणसणमरणेणईदत्त ॥ १ ॥

२७९ प्र०—अभव्यजीवो शु नथी पामता

उ०—इदत्त चक्कीत्त, पचोत्तरविमाणवासित्त ।
लोगतादेवत्त, अभव्वजीवा नपाववति ॥ १ ॥

२८० प्र०—कया अभव्यजीवो थया

उ०—सगमकालयसूरि, कविलाअगारपालयादोवि ।
एएसत्तअभव्वा, उदाइनिवमारओचेव ॥ १ ॥

२८१ प्र०—तुच्छनु स्वरूप कहो

उ० तुच्छभत्तपाणु, तुच्छानिंदाय तुच्छमारभो ।
तुच्छा जह्वा कसाया, ताह तुतुच्छससारे ॥ १ ॥

२८२ प्र०-कया जीव अहींथी मरीने महाविदेहमा नवमे वर्षे केवली थाय छे ?

उ०—इहभरहेकेइजीया, मिच्छादिट्ठीभद्दयाभव्वा ।
तेमरीउणनवमे, वरसे होहतिकेवलीणो ॥ १ ॥

२८३ प्र०—चमरेन्द्रनो केवो परिवार छे ?

उ०—चमरेन्द्रने पाचअग्रमहिषी छे आठआठसहस्र देवीनो परिवार एम ४० सहस्र देवीओथी भोग भोगवतो विचरे छे

२८४ प्र०—षट्दर्शनना नाम कहो

उ०—१ बौद्ध, २ नैयायिक, ३ सांख्य, ४ जैन, ५ वैशेषिक, तथा ६ चार्वाकदर्शन ए छ दर्शनना नाम,

ठाणानी श्रेणिए चढे अने स्वरूपाचरण चारित्ररूप शुद्धात्मोपयोग तीव्र वर्ते

२७५ प्र०–मिथ्यादृष्टि अने सम्यग्दृष्टिना आचार तथा उपयोगने सरखावो

उ०–मिथ्यादृष्टिजीवने शुभाचार होय पण शुभोपयोग न होय, अने सम्यग्दृष्टिजीवने शुद्धोपयोग होय तेने शुभोपयोग आचरणरूपे होय पण आदरण न होय, अने मिथ्यादृष्टिजीवने शुभआचाररूप होय, पण ते अशुद्धोपयोगना वरनो अशुभोपयोग होय छता तेने शुभोपयोग उपचारे कहिये

२७६ प्र०–युगप्रधानना गुणो कहो

उ०–युगप्रधानना गुणो १४ छे तत्र गाथा—

पडिरुवोतेयस्सि, जुगप्पहाणागमोमहुरवक्को ।
गंभीरोधीमतो, उवएसपरोयआयरिओ ॥ १ ॥
अपरिस्सविसामो, सगहसिलो अभिग्गहमईय ।
अविकत्थणोअचवलो, पसंतहियओगुरुहोई ॥२॥
एव चतुर्दशगुणा भवन्ति ।

२७७ प्र०–कया ठेकाणे त्रणयोयो कर्वी

उ०–भद्रबाहुस्वामीकृत ओघनिर्युक्तिमा ७२ मी गाथामा त्रणथोयो कवी कही छे. यथा–

अवस्सगतुकाओ, जिणोवइठ्ठगुरुवएसेण ।
तिन्निथुईपडिलेहा, कालस्सविहिइमोतत्थ ॥ १ ॥

२७८ प्र०–तपदान अने अनशननु शु फल छे ?

उ०-तवसयमेण मुक्खो, दाणेणहुतिउत्तमाभोगा ।
देवचणेणरज्ज, अणसणमरणेणईदत्त ॥ १ ॥

२७९ प्र०-अभव्यजीवो शु नथी पामता

उ०-इदत्त चक्कीत्त, पचोत्तरविमाणवासित्त ।
लोगतादेवत्त, अभव्वजीया नपावति ॥ १ ॥

२८० प्र०-कया अभव्यजीवो थया

उ०-सगमकालयसूरि, कविलाअगारपालयादोवि ।
एएसत्तअभव्वा, उदाइनिवमारओचेव ॥ १ ॥

२८१ प्र०-तुच्छनु स्वरूप कहो

उ० तुच्छभत्तपाण, तुच्छानिदाय तुच्छमारभो ।
तुच्छा जहा कसाया, ताह तुतुच्छससारे ॥ १ ॥

२८२ प्र०-कया जीव अहींथी मरीने महाविदेहमा नवमे वर्षे केवली थाय छे ?

उ०-इहभरहेकेइजीया, मिच्छादिट्ठीभद्दयाभव्वा ।
तेमरीउणनवमे, वरसे होहतिकेवलीणो ॥ १ ॥

२८३ प्र०-चमरेन्द्रनो केवो परिवार छे ?

उ०-चमरेन्द्रने पाचअग्रमहिषी छे आठआठसहस्र देवीनो परिवार एम ४० सहस्र देवीओथी भोग भोगवतो विचरे छे

२८४ प्र०-षट्दर्शनना नाम कहो

उ०-१ बौद्ध, २ नैयायिक, ३ सांख्य, ४ जैन, ५ वैशेषिक, तथा ६ चार्वाकदर्शन ए छ दर्शनना नाम,

ठाणानी श्रेणिए चढे अने स्वरूपाचरण चारित्ररूप शुद्धात्मोपयोग तीव्र वर्ते

२७५ प्र०—मिथ्यादृष्टि अने सम्यग्दृष्टिना आचार तथा उपयोगने सरखावो

उ०—मिथ्यादृष्टिजीवने शुभाचार होय पण शुभोपयोग न होय, अने सम्यग्दृष्टिजीवने शुद्धोपयोग होय तेने शुभोपयोग आचरणरूपे होय पण आदरण न होय, अने मिथ्यादृष्टिजीवने शुभआचाररूप होय, पण ते अशुद्धोपयोगना घरनो अशुभोपयोग होय छता तेने शुभोपयोग उपचारे कहिये

२७६ प्र०—युगप्रधानना गुणो कहो

उ०—युगप्रधानना गुणो १४ छे तत्र गाथा—

पडिरुवोतेयस्सि, जुगप्पहाणागमोमहुरवक्को ।
गंभीरोधीमतो, उवएसपरोयआयरिओ ॥ १ ॥
अपरिस्सविसामो, सगहसिलो अभिग्गहमईय ।
अविकत्थणोअचवलो, पसंतहियओगुरुहोई ॥२॥
एव चतुर्दशगुणा भवन्ति ।

२७७ प्र०—कया ठेकाणे त्रणयोयो करवी

उ०—भद्रबाहुस्वामीकृत ओघनिर्युक्तिमा ७२ मी गाथामा त्रणयोयो करवी कही छे. यथा—

अवस्सगतुकाओ, जिणोवइट्ठगुरुवएसेण ।
तिन्निथुई नडिलेहा, कालस्सविहिइमोतत्थ ॥ १ ॥७२

२७८ प्र०—तपदान अने अनशनतु शु फल छे ?

४४४५३२८००००००००००००००० त्यारपछी एकलाखपूर्व दीक्षाकेवलपणे रह्या तेहना केटला वर्ष सित्तेरहज्जारकोडाकोडी पाचसेकोडाकोडी ते उपरे ६० कोडाकोडी तेहना आंक ७०५६००००००००००००००० एटला वर्ष थया एम सर्व चोरासीलाखपूर्वना वर्ष सरवाले ५९ लाखकोडाकोडी २७ हज्जारकोडाकोडी ते उपरे वली ४० कोडाकोडी एटला वर्ष जीव्या एटला वर्ष श्रीऋषभदेव सर्वायु जीव्या, एकडा उपर १९ मींडा आवे त्यारे कोडाकोडी थाय एकडा उपर २१ मींडा आवे त्यारे कोडाकोडीकोडाकोडी थाय तथा एकडा उपर २९ मींडा आवे तेवार कोडाकोडीकोडाकोडी थाय इत्यर्थ ८४ लक्षपूर्वनो जाणवो

२८७ प्र०--प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, रसबंध, तथा प्रदेशबंध क्यारे क्यारे नीपजे ?

उ०--योगे प्रदेशबंध प्रकृतिबंध नीपजे ते कर्मवर्गणापुद्गलनो संचय थाय, तथा योगनें लेश्या बे एकठा मले त्यारे प्रकृति ने प्रदेशबंध नीपजे, तथा स्थानकषाय ए बे मले त्यारे स्थितिबंध रसबंध नीपजे, तथा जिहा कषायस्थान आवे त्यारे च्यार मेला थाय इत्यर्थ ।

२८८ प्र०--शास्त्रमा कहेला भारनु प्रमाण कोटक कहो ?

उ०--ठसरसनो एक जव, ३ जवनी एक गुंजा (च-

२८५ प्र०–त्रेसठशलाकापुरुषोना जीवो केटला तथा माता पिताना जीवोनी संख्या केटली छे?

उ०–त्रेसठशलाका पुरुषोना जीव ५९ छे. तेहनी विगत–त्रणजीव चक्रवर्त्तिनी पदवीना ओछा थया तथा एक वासुदेव थया ए ४ जीवो घट्या तेथी ५९ थया तथा ५९ जीवना माता ६० पिता ५१ कह्या छे तेहनी विगत २४ जिननी माता, ९ चक्रीनी माता, ९ वासुदेवनी माता, ९ बलदेवनी माता, ९ प्रति वासुदेवनी माता एव ६० माता जाणवी हवे पिता ५१ तेहनी विगत, २४ जिनना पिता, ९ चक्रीना पिता, ९ वासुदेव तथा बलदेवना पिता, ९ प्रतिवासुदेवना एव ५१ पिता जाणवा एणी रीते पदवी ६३, जीव ५९, माता ६०, पिता ५१ ए रीते अर्थ

२८६ प्र०–श्रीऋषभदेवस्वामी केटला वर्षनो काल गृहस्थाश्रमे वस्या तथा सर्वायु केटला वर्ष जीव्या

उ०–ऋषभदेवस्वामी वीसलाखपूर्व कुमारपणे रह्या तेहना वर्ष केटला चौदलाखकोडाकोडी इग्यारहजारकोडाकोडी वली बसेंकोडाकोडी१४११२०००००००००००००००० एटला वर्ष कुमारपणे रह्या त्यारपछी ६३ लाखपूर्व राज्यावस्था भोगवी तेहना वर्ष केटला? चुवालीसलाख कोडाकोडी पीस्तालीसहज्जारकोडाकोडी बत्रीसें कोडाकोडी एसीकोटाकोडी तेहना आक

ते स्त्रीओने समागमे पचिस पचिस छोकरा रूप नानाविध रोगोनी उत्पत्ति छे, पूर्वोक्त प्रत्येक रोगने २५ गुणा करता १०० रोग थाय, ते मध्ये आठ बीजा रोग भेळीए तेवारे वैदकशास्त्रमा वर्णवेल १०८ रोगनी सख्या थाय छे तेनी चिकित्सा निपुण नाडीपरीक्षाना अनुभवी वैद्य यथार्थ करी शके, पण ते सर्वद्रव्यरोग, अने तेना मटाड-नार पण द्रव्यवैद्य जाणवा, पण जे थकी ते द्रव्यरोगो उत्पन्न थाय छे ते भावरोग जीवनी विषयकषायरूप अनादिकाळनी मलिन विकारी परिणति छे, तेना वैद्य तो सनत्कुमार सरखा परि-णतिवत महात्माओ गणधर तीर्थंकरादि जाणवा, जे सर्वऔषधना जाण, तथा सर्वरोगना मटाडनारा छे, माटे हे चेतन । तु मिथ्या शारीरादिकनी ममताने छोडीने तेओने शरणे जा, तेमना वचनने आदरथी स्वीकार अने तेमने मार्गे चालतो अनादि अनतअव्याबाध सुखने अचलपणे अनुभवीश

२९२ प्र०—एकसौधर्मेंद्रना आउखामा केटली इद्राणीओ चवे ?

उ०—कोडाकोडी दुविस, पचासीलक्खाइतिकोडीओ ।
इगुत्तरीसहसाकोडी, चत्तारिसयायतहकोडी ॥ १ ॥
अट्ठावीसकोडी, सत्तावन्नहवतिलक्खाइ ।
सहस्साचउदससया, च्छासीइदेगजमित्थि ॥ २ ॥
इयसक्खादेवीओ, चवतिइगइदजम्ममि ॥ ३ ॥

इद्र विषयसुख भोगवता एकलाख अठावीस

गोठी), ३ गुजानो एक वाल, सोळवालनो एक गदीआणो, दशगदीआणे एक पल, दोढसोपले एकमण, दशमणनी एकधडी, दश धडीनो एक भार जाणवो

२८९ प्र०–अढारभारवनस्पति कहेवाय छे त्या भारनु प्रमाण केटलु, तथा ते वनस्पति अढारभार कइ कइ छे ते कहो

उ०–३ क्रोड, ८१ लाख १२ हजार नवसें सीतोतेर मणे एकवनस्पतिभार थाय छे, तथा प्रत्येक जातनी वनस्पतिनु एक एक पान लइने एकठो ढगलो करीए, ए प्रमाणमा चारभार वनस्पति केवळ फुलमय छे, तथा आठभार वनस्पति फळ फुलपानमय छे तथा छभार वनस्पति वेलनी छे, एम एकदर १८ भार वनस्पति जाणवी

२९० प्र०–मुनिराज कया चोविसपरिग्रहना त्यागी होय

उ०–क्षेत्रवास्तुधनधान्यद्विपदचतुष्पदयानशय्यासयन भाण्ड कुप्यचेति बहिर्दश, मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट्कषाय चतुष्टयरागद्वेषावाभ्यतरा चतुर्दश ॥

२९१ प्र०–महारोग केटला तथा तेनो सतानपरिवार केटलो कह्यो छे ?

उ०–चार मोटा रोग कह्या छे —१ ज्वर, २ भगदर, ३ कोढ, ४ धातुक्षय तेनी चार स्त्रीओना नाम — तावनी स्त्री तरस, भगदरनी स्त्री हेडकी, कोढनी स्त्री भूख, धातुक्षयनी स्त्री निद्रा तथा ते —

उदय न आवे, आठमाना घणीने सर्वविरति उदय न आवे, नवमाना धणीने मुक्ति न थाय

२९५ प्र०—पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुसकवेद, पचेंद्रियपणु, अने त्रसपणु, कायस्थितिए लागलगाट तेने तेज पर्याये रहे तो उत्कृष्ट केटलो काळ रहे ?

उ० १ पुरुषवेद, उत्कृष्ट ६०० सागरोपम झाझेरा,
२, स्त्रीवेद, ११० पल्योपम ६ क्रोडपूर्व सुधी,
३, नपुसकवेद, अनती उत्सर्पिणी अवसर्पिणी सुधी,
४, पचेन्द्रियपणु, १००० सागरोपम झाझेरा,
५, त्रसपणु, २००० सागरोपम झाझेरा,

प्र० २९६—पाचज्ञान त्रणअज्ञान कालथकी जघन्य तथा उत्कृष्ट केटलो काल रहे

उ०—मतिज्ञान अने श्रुतज्ञाननोकाल जघन्यथी एकसमय उत्कृष्ट ६६ सागरोपझाझेरो, अवधिज्ञान एकसमय ते केम ? विभगज्ञान समकित पडवजे तेवारे विभग फीटी अवधिज्ञान थाय त्यारे एकसमय रहिं वली पडे, विभगज्ञाननो विभगज्ञानेज आवे एम अवधिज्ञान जघन्यथी एकसमय होय, मन पर्यज्ञान-जघन्यथी एकसमय उत्कृष्टे देशेउणा पूर्वकोडी एक समय ते किम ? जेवारे अप्रमत्तगुणठाणे वर्तता मन पर्यवज्ञान उपजीने जाय, तिहा एकसमय जाणवो, केवलज्ञानना धणीने सादिअनतोकाल जाणवो हवे मतिअज्ञानने श्रुतअज्ञानना भागा कालआसरी त्रण-जाणवा, एकअनादि ने अनतए अभव्यने १ अनादि

हजाररूप विकुर्वे, तेनी आठअग्रमहिषीओ प्रत्येक १६ हजाररूप विकुर्वे, त्यारे ते हिसाबे इंद्रनु आयुष्य जे बेसागरोपमनु छे तेमा २२ कोडाकोडी ८५ लाख ७१ हजार चारसो अठावीस कोडी ५७ लाख १४ हजार त्रसो छीयासी उपर आठ गुणी एटली देवागनाओ एकइंद्रना आयुष्यमाहि चवे

२१३ प्र०—पाच स्थावर, विगलेन्द्रि, तथा पचेन्द्रिय क्या क्या होय

उ०—एगेन्दियपचेंदीया, उड्ढेअहेयतिरियलोएय ।
विगलेंन्दियजीवापुण, तिरियलोएसु मुणेयव्व ॥ १ ॥
पुढवीआउवणस्स, बारसकप्पेसु सत्तपुढवीसु ।
पुढवीजा सिद्धसिला, तेउनरखित्तितिरियलोए ॥ २ ॥
सुरलोए वावीमज्झे, मच्छअनत्थीजलयराजीवा ।
गेविज्झेनउवावि, वाविअभावेजलनत्थी ॥ ३ ॥

२१४ प्र०—नवनियाणानु स्वरूप तथा ते नियाणाना करनारने केवा हीनफळनी प्राप्ति थाय छे ते कहो

उ०—१ राजादिक थवानी इच्छा, २ अमात्य थवानी इच्छा, ३ स्त्री थवानी इच्छा, ४ देवभोगनी इच्छा, ५ देवीभोगनी इच्छा, ६ भोग न पामवानु नियाणु, ७ श्रावक थवानी इच्छा, ८ दरिद्र थवानी इच्छा, ९ कर्मरहित थवानी इच्छारूपनियाणु, प्रथमना ७ नियाणाना धणी दुर्लभबोधी थाय, प्राय धर्म सद्दहे नहि, सातमानियाणाना धणीने देशविरति

आत्मा अतद्वापरद्वाचेव ५ सापराधने निरापराधे करी वसा २॥ अपराधे हणे पण निरापरावे नहीं २॥ सापेक्षने दया निरपेक्षे वसो १। रहे तथा अन गाथा,

तसाथावराय जीवा, सकप्पारभओभवे दुविहा ।
सावराहनिरावराहा, सावक्खा चेव निरवक्खा ॥ १ ॥

जीव बे प्रकारे सूक्ष्म ने बादर जे मध्ये सूक्ष्मना १० भेद तथा १० बादरना, सूक्ष्मना १० ते पाच स्थावर पर्याप्ता ने अपर्याप्ता, एव १० नी दया श्रावकने न होय, एव १० बादर ते किहा ? बेइद्रि १ तेंद्रि २ चौरिंद्रि ३ पचेन्द्रि ४ ए पर्याप्ता ने अपर्याप्ता एव भेद ८ पचेन्द्रिसज्ञीनो ९ ने असज्ञीनो १० एव भेद बादरना थया, ते मध्ये श्रावकने सकल्पी न मारवु आरभे जयणा एव ५ भेद रह्या, ते मध्ये अपरावे हणे निरपराधे नहीं एटले २॥ वसा रह्या, ते मध्ये सापेक्ष अने निरपेक्ष निर्दयपणे न हणे एव १। वसानी दया श्रावकने त्रसजीवनी रही इति प्राणापातनी जीवदया १। वसानी इति। मृषावाद-अणुव्रत २ समस्तमृषावादनियम साधुने २० वसा सूक्ष्म ने बादर करता वसा १० उपयोगे अनुपयोगे "अतद्वापरद्वा" आत्मपर एव ५ स्वजन परजन करता एव २॥ धर्म अपर अधर्म परमार्थे १। तत्र गाथा—

सुहुमबायरमलीय, अप्पाणपरमेयग भवे दुविह ।
सयण परग च तहा, धम्मत्थ केवलपरमत्थ ॥ १ ॥

गुण ८, आचार्यना ३६, "पचिंदियसवरणो" इत्यादि गाथा नेथी जाणज्यो, उपाध्यायना २५ इग्यार अग भणे भणावे एम १२ उपाग भणे भणावे तथा चरणसित्तरि करणसित्तरि आराधे एम २५ हवे साधुना २७गुण ते छव्रत पाले छकायरक्षपाले १२ पचेन्द्रियनो निग्रह १७ लोभनिग्रहसाचर १८ क्रोधनिग्रहक्षमागुण एव १९ भावविशुद्ध २० पडिलेहणाविशुद्ध २१ सग्रहयोगयुक्त २२ मनवचनकायत्रु कुशलपणु २५ शितादिक पीडानो सहवो २६ मरणात उपसर्गनो सहवो २७ ए सर्व मळी १०८ गुण पचपरमेष्ठिना तेहनी नोकारवाली कहिए इत्यर्थ इति ।

प्र० ३०१—साधु सोएवसा पचमहाव्रत पाले अने श्रावक सवाछ वसाए पचअणुव्रत पाले ते केवी रीते

उ०—पहेलु प्राणातिपात श्रावकने अणुव्रत तिंहा दया श्रावकने वसा १। नी होय पाचस्थावर ते सूक्ष्म ने बादर एव १० ते पर्याप्ताने अपर्याप्ता एव २० एम एणि रिते साधु सोवसाए पचमहाव्रतपाले, श्रावकने पाचअणुव्रतमळीने सवाच्छवसा इत्यर्थ, तथा वळी पाच अणुव्रत श्रावकने होय तेहनो विवरो लखीए छीए, स्थूलबेंद्रियादिक त्रसजीव निरापराध उपेतकरणी न हणे ए प्राणातिपात अणुव्रतनी दया वसा १। नी होय ते पूर्वे लख्यु छे तेहथी जो जो, तथा बीजा अणुव्रत मध्ये आपणे काजे स्वसाधुने समस्तजीव रक्षा वसा २० सूक्ष्म ने बादर वसा १० काढ्याने परने

यल साधु पाले तिहा वसा १। नु होय श्रावकने इति । अथ परिग्रहअणुव्रत पाचमु साधु ते समस्त विरमण २० अभ्यन्तरने बाह्य करता १० " अतङ्गा य परङ्गा " ए वे भेदे ५ स्त्रीपिहरआत्मनिश्चानु २ ॥ स्त्री आत्मदत्त एव वसा १ । तत्र गाथा—

अब्भतरबाहिर परिगहो परसकीयगाचेवईत्थी ।
पियअप्पोईत्थी नियदत्तनीउय ॥ १ ॥

धनधान्य १ खेतवत्थु २ रुपुसोनु ३ कुवइते वासण ४ द्विपद चतुष्पद एव ५ ते बाह्यने अभ्यतरे १० ते इच्छामुर्च्छारूपे २० ते मध्ये श्रावकने वसा १ । परिग्रहपले इति पूर्ण । अथ गाथा—

तसाथावरायजीवा, सकप्पारभओ भवे दुविहा ।
सावराहानिरावराहा, सावक्खा चेव निरवक्खा ॥१॥

इति प्राणातिपातविरमण ।

सुहुमबायरमलीय, अप्पाणपरभेयग भवे दुविह ।
सयण परगचतहा, वमत्थ केवलपरमत्थ ॥१॥इति।२॥

सुहुमथुलमदिन्नदाण, निवरायदड कारिय ।
रायगहकारियपुण, दुविहकहियसुरुजणेहिं ॥ १ ॥

नविराह० १ इति ३, मणवयकायमेहुण० १ इति ४ । अब्भ० १,५ । स्वजनकाजे धर्मकाजे मुकी परकाजे बोलवानियम ए मृषावादअणुव्रत समस्तमृषा नियम २० सूक्ष्मने बादरभेदे १० आत्मकाजे परकाजे ५ स्वजनपरकाजे २॥ धर्मपरकाजे १। एव द्वितीय, हवे तृतीयअणुव्रत राजनिग्रहकारिउ परायु

पाच मोटकाजूटा ते सूक्ष्म ने बादर एव १० ते उपयोगे ने अनुपयोगे एव २० वसानु मृषावाद साधु न बोले पण श्रावकने १। वसानु मृषावाद श्रावकथी पले इति भाव । अथ अदत्तादानअणुव्रत ३ समस्त अदत्तविरमणसाधुने २० वसा सूक्ष्म बादर भेद थइने वसा १० सराजनिग्रह ने निराजनिग्रहथी ५ आत्मनिमित्त परनिमित्तथी २॥ याच्यु तथा अणयाच्यु १। वसा तत्र गाथा—

सुहुमथुलमदिन्नदाण, निवरायदडकारिय ।
रायनिगहकारियपुण, दुविहकहिय गुरुजणेहिं॥ १ ॥
नविराहनिगहकर, अप्पाणमेयग दुविह ।
दिन्नमदिन्नच पर, भासियव निउणबुद्धिहिं ॥ २ ॥

अदत्त पाच स्थूलजीव अदत्त १ जिन २ गुरु ३ स्वामी ४ सागारिअदत्त ५ ते सूक्ष्म ने बादर एव १० उपयोगे तथा अनुपयोगे एव २० वीसगुणी ए इति । हवे मैथुनअणुव्रततुर्य ४ साधुने समस्त मैथुनविरमण २० मनवचनकाया ३ एव १० स्वदारा परस्त्री करता एव पाच वेश्या तथा परस्त्री २॥ कुमारी तथा अपरस्त्री १ । तत्र गाथा—

मणवयकायमेहुण, मविनियमअविरई ।
ईत्थीओवेसापरत्थीओ, कुमारीपरईत्थीनियमो य ॥१॥

स्वदारा १ परस्त्री २ वेश्या ३ दासी ४ कुमारी ५ एव ते मनवचन तथा कायाए करी एव १० ते सुपने तथा जागृतपणे एव वीस २० वसानो शी-

स्त्रीआत्मा एव स्त्रीआत्मादत्तआत्मा १। अभ्यन्तर परिग्रह क्रोधमानादिकनो नहीं पळे अने बाह्य परिग्रह १० प्रकारनो ते ते पलसे एव १० बाह्य परिग्रहमाहि वे भेद ते किया ? एक आत्मपरिग्रह अने परपरिग्रह ते मध्ये आत्मपरिग्रहनो नहा पळे, परपरिग्रहनो पलसे एव ५ वली परिग्रहमा वे भेद ते किया ? आत्मनियोग अने स्त्रीपिहरआत्मनियोग अने स्त्रीपिहरआत्मनियोग ते शु कहीए ? जे वाणोतरादिकनो जे गर्व ते आत्मनियोग पलसे अने स्त्रीना पिहरनो जे परिग्रह ते आत्मनियोगनो नही पळे एव २॥ स्त्रीना पिहरनो परिग्रह तेहना वे भेद ते किया ? एक स्त्रीदत्त अने अस्त्रीदत्त एव १। सवावसो थयो इति पचाणुव्रतानि एम श्रावकने ५ अणुव्रते १। सवावसानो होय ते विवरण कह्यु इति सपूर्ण।

३०२ प्र०—ससारमा सार शु ?

उ०—ससार पोतेतो नि सार छे, एटले ससार जे विषय कषायनी परिणति तेमा आत्माने काइपण सारभूत नथी, अने अधर्म मार्गमा सम्यग्दर्शनरूप धर्म सार छे, तेमा पण सम्यग्ज्ञान सार छे, वळी तेमा पण सम्यक्चारित्र सारभूत छे, तेमा निर्वाणपद जे मोक्ष ते सारभूत छे

३०३ प्र०— चौदपूर्वी आहारकशरीर केटलीवार करे ?

अणदिधु लेवा नियम समस्तअदत्तादानपच्चरखाण २० सूक्ष्मबादरभेदे १० सराजनिग्रह निराजनिग्रह ५ आत्मकाजनिग्रह परकाजनिग्रह २॥ पियारी दिधी पियारीअणदीधी १। एम राजनिग्रह पडे तेहनो पच्चक्खाण ते सराजनिग्रहमाहि बे भेद एक आत्मराजनिग्रह परराजनिग्रह कहिए, हवे ते आत्मराजनिग्रह ते मोकळो, परराजनिग्रहनु पच्चरखाण, हवे परराजनिग्रहना बे भेद ते किया ? एक पियारी दीधी, पीयारीअणदीधी परकीयवस्तु आणी आपे ते कोइनी दृष्टि वची न लीये एटले सवावसो वीजा व्रतनो जाणवो, अथ चतुर्थ स्वदारासंतोष परदारा विवर्जनारूप ए माहे सर्व फलामणी छे, समस्त मैथुनविरमण मनवचनकाया १० स्वदारा परस्त्री ५ वेश्या अपरस्त्रीमाहे बे भेद ते किया ? वेश्याने अपरस्त्री ते मध्ये वेश्यानो नहीं पले, अपरस्त्रीनो पलसे एव २॥ अपरस्त्रीमाहि बे भेद छे ते किया ? कुमारी अने परणी अपरस्त्री ते कुमारी नहीं पले परणीस्त्रीनो पलसे कुमारीश्या माटे मोकळी ? जे विवाह मल्यो छे परण्या नथी ने ते उपरे स्त्रीनो अभिलाष धरे ते माटे एटले सवावसो रह्यो " आणद श्रावकस्य सपादो विशेषाधिक " अथ पाचमे आपणोपरिग्रह स्त्रीयादिकनो करी आपणे कार्ये आण्यो होय ए परिग्रहअणुव्रत तिहा समस्तपरिग्रहविरमण २० अभ्यन्तर ने बाह्य परिग्रह विश्वा १० घरआत्म एव ५ स्त्रीमिहर आत्मा एव २॥

उ०—यथा एटले जेवा कर्म उदय आवे तेवा प्रवृत्ति एटले वेदीने खेरवे, करण एटले शुभ परिणामे करी, अर्थात् यथाप्रवृत्तिकरणमा जीव अकाम निर्जराए तथा कषायनी मदताए पूर्वना औदयिककर्मने खपावे, पण नवा रागद्वेषप्रत्ययिक बध न करे एम यथाप्रवृत्तिकरणमा जीव अकाम निर्जराए तथा कषायनी मदताए पूर्वना औदयिककर्मने खपावे, पण नवा रागद्वेष प्रत्ययिक बध न करे एम यथाप्रवृत्तिकरणे तो अभवीजीव पण असख्यातीवार गठीदेश सुधी आवे, पण ते गठीने भेदवाना अपूर्वकरणरूपी परिणाम न थाय तेथी पाछो पडे, इहा गठी ते अनादिरागद्वेषनी निविडगाठ, जेम कोइ वृक्षना काष्ठप्रमुखनी निविडगाठ भेदी न जाय, तेम आत्मानो पुद्गल उपर तन्मय एकीभावरूप ममता ते ग्रथि जाणवी ते अपूर्वकरणपरिणामविशेषे भेद प्रारभे तेहने अते भेदाने अनिवृत्तिकरण पामे ए सर्व क्रियाअतर्मुहूर्तनी त्यारपछी मिथ्यात्वनो जाणवो उपशम समकितनु थवु ते अतरकरण एकसमयनो इति ४ करणनो भावार्थ ।

३०९ प्र०—सम्यक्त्वनी प्राप्तिए शु पामे शु समरे

उ०—समकित पामे थके जीवनो शुद्धोपयोग समर्यो, ते उपयोग समरे, जीव समर्यो, जीव समरे योग समर्यो, योग समरे परिणाम समर्या, परिणाम समरे अध्यवसाय समर्या, वळी बीजी रीते कहीए तो

उ०—गाथा—

धतारियनाराओ, चउदसपुर्वा करेइ आहार ।
ससारमिनसतो, एकभवे हुतिनाराओ ॥ १ ॥

३०४ प्र०—आहारकशरीरनु जघन्य अने उत्कृष्ट आतरु केटलु ?
समयोजहन्नमतर, उक्कोसेणजावछमासा ॥

उ०—आहारसरीराण, उक्कोसेण तु नवसहस्सा ॥ २ ॥

३०५ प्र०—पाच प्रकारना समकित जिनेश्वरे कया प्ररुप्या छे ?

उ०—खइउ खओवसमीय, वेयगमुवसामीय च सासाण ।
पचविह समत्त, पररुवियजिणवरदेहिं ॥ १ ॥

३०६ प्र०—क्षेत्र अने कालमायी सूक्ष्म कोण छे

उ०—सुहुमोयहोइकालो, ततोसुहुमतरहवइखित्ते ।
अगुलसेढीमित्ते, उसप्पिणीओअसखिज्जा ॥ १ ॥

३०७ प्र०—अभव्य, दुर्भव्य, अने निकटभव्य, ए त्रणने ग्रथि-
भेदथी पाछा पाडवामा मुख्य हेतु कोण छे ?

उ०—अनादिमिथ्यात्वनी वासनाए पतितपणु ते अभव्यने
होय तथा विषय लालसाए पतितपणु दुर्भव्यने होय,
कर्मवर्गणामाथी कोइककर्मोदये पतितपणु निकट
भवीने यथाप्रवृत्तिकरणग्रथिदेश थकी कोइ कर्मना
उदये पतित थाय, पण विषयवासनाए के लाल-
साए नहि, आमा अभव्यने मदता यथाप्रवृत्तिकरणे
करी तीव्रभाव एटले उत्साहने पामे, निकटभवीनी
मदता क्षयोपशमभावने पामे

३०८ प्र०—यथाप्रवृत्तिकरणनो शब्दार्थ कहो

रसातिरेकयोजनसहस्रमानत्वादौदारिक, वैक्रियद्विधा भवधारणीय उत्तरवैक्रिय च यदेकमूत्वा अनेकभवति अनेकमूत्वा एकचभवति शेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रमाण वैक्रिय ॥ उक्तच ॥

कज्जमि समुप्पन्ने, सयकेवलिणाविसुद्धलद्धिए ।
जएत्थआहारिज्जइ, भणियआहारक ततु ॥१॥ अथतैजस
सव्वससिद्धरसाइ, आहारपाकजणगच ।
तेयगलद्धिनिमित्त, तेयग होइ नायव्व ॥ १ ॥

भुक्ताहारपरिणमनकारण ३। अत्यतशुभवैक्रियत्वात् इत्याहारक ४। कर्मणाजातकार्मण कर्मपरिणामच आत्मप्रदेशसहक्षीरनीरवत्, कर्मणो विकार कार्मण इतिवा, यदुक्त यत ॥

कम्मविगारोकम्मण, मट्ठविहचित्त कम्मनिप्पन्न ।
सव्वेसिं सरीराण, कारणभूतमुणेयव्व ॥ १ ॥

३१४ प्र०—मिथ्यात्व अने चारित्रमोहनो तात्त्विक अर्थ कहो

उ०—शुद्धआत्मादि नवतत्त्वने विषे जे विपरीतबुद्धि तेज मिथ्यात्व, निर्विकारी आत्मज्ञानथकी विपरीत प्रवर्तन, अर्थात् वीतरागचारित्रने विषे मुझवण, विकळता ते चारित्र मोह

३१५ प्र०—रागद्वेष ते कर्मजनित छे के जीवजनित छे

उ०—एकदेशे शुद्धनिश्चयनये ते कर्मजनित छे, अने अशुद्धनिश्चयनये जीवजनित छे, पण वास्तविक रीते शुद्ध परम अर्थ ग्रहता वस्तुगते, रागद्वेष ए नथी पुद्गलनो स्वभाव, के नथी जीवनो स्वभाव मूळरूपे, पण ते बनेना सयोगिकभावथकी एक नवीन वर्ण-

जीवत्व समरे शुद्धोपयोग समरे, अने तेथी शुद्ध श्रद्धानरूप समकित पामे, तेथी योग समरे, तेथी व्रतपच्चक्खाणादि रुडी रीते उदय आवे तेथी परिणाम सारा थाय, तेथी अप्रमत्तता जीवने आवे, अने तेथी जीवना अध्यवसाय समरे, अने शुक्लध्यान प्रगटे, अने तेने योगे क्षपकश्रेणिआरोही कर्मक्षय करी केवळज्ञान पामी मुक्तिपद वरे, एम परिपाटि सुधारा अने नगाडार्नी उलट पुलट जाणवी

३१० प्र०–पर्याप्ति अने प्राणमा शु फेर ?

उ०–भवोत्पत्तिकाले अतर्मुहूर्तमा जीव जे करे ते पर्याप्ति, पछी जीवेत्यासुधी सहचारी रहे ते प्राण कहिए, अर्थात् भवभव प्रत्ये उपग्रहण थाय ते पर्याप्ति अने सहचारी भवोपग्राही सबब ते प्राण जाणवा

३११ प्र०–परमाणु अने प्रदेशमा शु विशेष ?

उ०–स्वाभाविक ते परमाणु, अने विभाविक ते प्रदेश, जे परमाणु स्कधने वळग्यो छे, त्यासुधी प्रदेश कहेवाय, छुटो पडे तेने परमाणु कहिए.

३१२ प्र०–श्रीआदीश्वर भगवान् सिद्धाचळजी पूर्वनवाणु वार आव्या तेनी अक सख्या लखो ?

उ०–६९ कोडाकोडी ८५ लाख ने ४४ हजार क्रोडवार आव्या, एने पूर्वनवाणुवार कहिए

३१३ प्र०–पाच शरीरनो शब्दार्थ कहो

उ०–पन्नवणानी टीका मध्ये कह्यु छे, यत उदार प्रधान शरीरमौदारिक तीर्थंकरगणधरमधिकृत्य तथा उदा-

रसातिरेकयोजनसहस्रमानत्वादौदारिक, वैक्रियद्विधा भवधारणीय उत्तरवैक्रिय च यदेकमत्वा अनेकभवति अनेकमत्वा एकचभवति शेषशरीरापेक्षया बृहत्प्रमाण वैक्रिय ॥ उक्तच ॥

कज्जमि समुप्पन्ने, सयकेवलिणाविसुद्धलद्धिए ।
जएत्थआहारिज्जइ, भणियआहारक ततु ॥१॥ अथतैजस
सव्वरससिद्धरसाइ, आहारपाकजणगच ।
तेयगलद्धिनिमित्त, तेयग होइ नायव्व ॥ १ ॥

भुक्ताहारपरिणमनकारण ३। अत्यतशुभवैक्रियत्वात् इत्याहारक ४। कर्मणाजातकार्मण कर्मपरिणामच आत्मप्रदेशसहक्षीरनीरवत्, कर्मणो विकार कार्मण इतिवा, यदुक्त यत ॥

कम्मविगारोकम्मण, मट्ठविहचित्त कम्मनिप्पन्न ।
सव्वेसि सरीराण, कारणमत्तमुणेयव्व ॥ १ ॥

३१४ प्र०—मिथ्यात्व अने चारित्रमोहनो तात्त्विक अर्थ कहो

उ०—शुद्धआत्मादि नवतत्त्वने विषे जे विपरीतबुद्धि तेज मिथ्यात्व, निर्विकारी आत्मज्ञानथकी विपरीत प्रवर्तन, अर्थात् वीतरागचारित्रने विषे मुझवण, विकळता ते चारित्र मोह

३१५ प्र०—रागद्वेष ते कर्मजनित छे के जीवजनित छे

उ०—एकदेशे शुद्धनिश्चयनये ते कर्मजनित छे, अने अशुद्धनिश्चयनये जीवजनित छे, पण वास्तविक रीते शुद्ध परम अर्थ ग्रहता वस्तुगते, रागद्वेष ए नथी पुद्गलनो स्वभाव, के नथी जीवनो स्वभाव मूळरूपे, पण ते बनेना सयोगिकभावथकी एक नवीन वर्ण-

शक्र उत्पत्ति छे, तेयाज जे जीव रागद्वेषी छे तेओ
वर्णशकरूप देखाव ससारमा करे छे, अने तेओने
गव्हीलावनभरनास्वने विषे मग्न जोड़ रह्या छे

३१६ प्र०—श्री युगप्रधान आचार्यजी महात्मांना चार मुख्य अ-
तिशय कया ?

उ०—१ जेमना वस्त्रमा जू न पडे, २ ज्या विचरे ते देशनो
भग न थाय, ३ तथा ते देशमा चिंता न उपजे,
४ तेमना पग धोइने पीए तेना सर्व रोग नाश पामे

३१७ प्र०—उत्सेधागुल, आत्मागुल, अने प्रमाणागुल नो अर्थ
कहो, तथा तेणे करी कइ कइ वस्तुओ मपाय छे
ते पण कहो

उ०—१ उत्सेधागुल एटले स्वदेशे, स्वक्षेत्रे, स्वकाळे पोतानु
जेवडु शरीर होय तेना प्रमाणनो एकआगुल
जाणवो तेणे करी शरीरादिक मपाय छे २ आ-
त्मागुल ते उत्सेधागुलथी बमणो जाणवो, अने तेणे
करी घर, हाट वगेरे मपाय छे, ३ आत्मागुलथी
हजारगुणो प्रमाणआंगुल जाणवो, तेणे करी पृथ्वी,
पर्वत, विमानादि मपाय छे

३१८ प्र०—भावना, अध्यात्म मौनपणु, मुनि अने सम्यक्त्व
तेनो टुक तात्त्विकशब्दार्थ कहो

उ०—१ आत्माने ज्ञानादिकेकरी भावीए ते भावना, २
आत्माने अधिकारी करीने जे करीए ते अध्यात्म
३ सत्य यथार्थ जिनवचनानुसार बोलवु, ते खरु
मौन एटले मुनिपणु जाणवु तथा ४ जगतूतत्त्वने

पचास्तिकायने यथार्थ माने तेने मुनि कहीए, अने जे मुनिपणु छे तेज खरु सम्यक्त्व कहिये

३१९ प्र०—दीक्षाने अयोग्य केवा प्राणीओ कह्या छे

उ०—१८ प्रकारना पुरुष, २० प्रकारनी स्त्रीओ, तथा १० प्रकारना नपुसक जातिना प्राणीओने दीक्षा आपवाने जिनराजे वर्जन कर्यु छे, तेमा प्रथम १८ प्रकारना पुरुष कया ते कहे छे—१ बाळ, २ वृद्ध, ३ क्लीब ते नपुसक, ४ जड ते मूर्ख, ५ रोगिष्ट, ६ चोर, ७ राजानो अपराधी, ८ उन्मत्त, ९ अध, १० दास एटले कोइनो गोलो प्रमुख, ११ दुष्ट कषायवत एटले अत्यतक्रोधी मानी वगेरे, १२ मूढ ते मोहमयी, १३ करजदार, १४ हीनजातिवत, १५ विषयादिक कोइपण गूढस्वार्थरागवत, १६ भिक्षुक मागीखानार निर्लज्ज प्रमुख, १७ चोरीने के भरमावीने के अन्य कोईपण अयोग्य प्रकारे मेळवेला शिष्यने, १८ हीनसत्त्ववत ते बीकण प्रमुख, ए रीते ए अढारदोषवत पुरुष तथा १९ गर्भवती स्त्री तथा २० स्तनपान करनार बाळकवत स्त्री ते धावप्रमुखस्त्री एम ए बे युक्त वीशदोषवत स्त्री जातिना प्राणीओ दीक्षाने अयोग्य कह्या छे, वळी एज रीते दशप्रकारना नपुसक पण ग्रथातरथी जाणी लेवा

३२०, प्र०—कोइ जे अल्पससारी छे ते कया लक्षणथी जाणीये

उ०—अल्पआहार, अल्पनिद्रा, अल्पआरभ, तथा अल्पकषाय होय ते नियमा अल्पससारी जाणीये

३२१ प्र०–साम, दाम, भेद अने दड ए चार नीतिनो टूक शब्दार्थ कहो
उ०–१ साम ते प्रेमगाळु मधुर वचन, २ दाम ते दड आपीने झवडो मटाडवो समोवडो ते, ३ भेद ते शत्रुवर्गमा कोइ उळभेदकरी लाच रुशवतादिके पुरुषोने फोडी शत्रुनी अदरने अदर फाटफुट पडाववी ते, अथवा एकपक्षनी सामे बीजापक्षनी तरफेण करीने भेद पडाववो ते, ४ दड पूर्वोक्त गणयी न माने तो छेवटे युद्धादि करी शिक्षा आपवी ते

३२२–आजकाल कोइने पण सम्यक्त्वगुण प्रगट्यो छे, तेनी कोइ पण शीघ्र जणाय एवी कोइ परीक्षा रीति छे तेनी खात्री शी रीते करी शकाय ?
उ०–वीतरागपरमात्मा श्रीअरिहत जिनेश्वरदेवनु नाम साभळता जे जीवने रोमाच खडा थाय, तीव्र शोकावस्थामा पण जेमनु गुण स्वरूप साभळता, मुद्रा नीहाळता तमाम शोक दु ख पीडादि मूली जइने अतरग अने बहार अत्यत हर्षोल्लास प्रगटे, ए परमात्मा उपर परिणतिनु शीघ्र परखाय एवु खास लक्षण चिह्न छे

इति श्रीविचाररत्नसारग्रन्थसिद्धान्तना प्रश्न ।

प श्री देवचन्द्रजीकृत प्रश्न समाप्तम् ॥

श्रेय स्यात् सवत् १८७५ ना वर्षे माहसुदि २ दिने बुधवारे लि प श्रीरूपचन्द्रजीगणि तच्छिष्य रत्नचन्द्रेण श्रीमत्खरतरगच्छे भट्टारकक्षेमशाखाया श्रीअहमदावादे घाचीनीपोल मध्ये श्रीसभवनाथप्रसादात् लिपीचक्रे अधिकहीननामिथ्यादुष्कृतम् ॥ ग्रन्थाक २५२७ ॥

श्री देवचंद्रजीकृत छूटक प्रश्नोत्तर ग्रन्थ

॥ अथ छुटक प्रश्नोत्तर लिख्यते ॥ श्री खरतरगच्छे प प्र महाराज श्रीदेवचद्रजीने श्रावके प्रश्न कर्या तेना उत्तर दिधा ते प्रश्नोत्तर अमोए देवचद्रजी महाराजनी चोपडीमाहे दीठा ते लख्या छे राधनपुरना सघे प्रश्न पूछ्यु जे श्रावक सूत्र वाचे अथवा न वाचे ? तेहनो उत्तर=आगम रीते जे छे ते लिखीए छीए, जे सूत्र नदीसूत्रमध्ये जेटलाना नाम छे तथा ठाणगे पण सूत्र ४ ना नाम छे ए सूत्रमध्ये श्री ४५ योगनी विधि श्री अनुयोगद्वारचूर्णिमध्ये छे तेहथी मोळज्यो तथा अनुयोगद्वारसूत्र मध्ये सूत्र भणवानी विधिना बोल छे ते चूर्णीमध्ये ए अधिकार छे तथा योगवही सूत्र भणवा ए परमार्ग छे श्रीउत्तराध्ययन सूत्रे कह्यो छे ॥ गाथा ॥

सवगुरूकुलेनिचे, जोगवहउवहाणव ।
पीयकरे पीयवाई, चेसिरक लद्धुमरिहइ ॥ १ ॥

इहा योगवत उपधानव्रत ते शीखवा योग्य छे तथा श्रीठाणागे " तिहिंठाणेहिंसपन्नेअणगारे अणाइय अणवदग्गदीहमद्ध चाउरतससारकतारविइवएज्झा त अणिदाणयाए, दिठिसपन्नयाए, जोगवाहियाए " इहा जोग वहेवाना अक्षर छे केइक दुर्मतिजीव इहा योगशब्दे मनवचनकायाना योग कहे तेहने कहीए जे मनवचनकाया विना सज्ञी जीव कोण छे ? तो योगवाही ए पद किम उपजे ? तथा शुभयोगपणे ते शुभपद

तो सूत्रमध्ये दीसतो नथी तथा ठाणांगसूत्रमें दशमेठाणांगे कयु छे "दसहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसिभद्दत्ताएकम्म पगरेति त अनिदाणयाए, दिठीसपनयाए, योगवाहीययाए, खंतीखमणयाए, जीइंदियाए, अमाइल्लयाए, अपासत्थयाए, सुसामनयाए, पवयण-वछल्लयाए, पवयणउज्झावणयाए तथा उत्तराध्ययने पण कयु छे

नीयावत्तीअचवले, अमाइ अकुतूहले ।
विणीय विणएदते, जोगवं उवहाणव ॥ १ ॥

इत्यादि वचन अनेक छे नत्तीसयोगसंग्रहमध्ये पिण सूत्र भणवानो मनोरथ कह्यो नथी तथा सर्व सूत्रे श्रावक लद्दहा कह्या छे, पण आचारांगादिकसूत्रना पारगामी किहाइ कह्या नथी तथा उत्तराध्ययने १३ मा अध्ययनमाहे गाथा छे जे ॥

महत्थरूवा वयणप्पभूआ, गाहाणुगीयानरसंघमज्झे ।
ज भिक्खुणो सीलगुणोवनेया, इहज्जयंतेसमणोमिजाओ

ए गाथामें कह्यो एहवी गुणवंत गाथा ते भिक्षु भणे ते माटे हु पिण श्रमण थयो इहा पण सूत्र भणवाना अधिकारी मुनि दीसे छे, तथा सुगडांगे १४ मा अध्ययने कह्यो छे

गथ विहाय इहसिखमाणा, उठायसुबभचेरे वसिज्जा ।
उवयकाराविणयसिरके, जे छेएवि पमायनकुज्जा ॥१॥

ए गाथाइ पण ग्रथ छे ते मुनि योग्य छे इम छे, इम अनेक सूत्रे पाठ छे, तथा समवायांग सूत्रे" सेणअगढायाएपढमे

अगेदोसुअरवधापणवीस अज्झयणापचासी उदेसणकाला, पचासी-समुदेसणकाला," इम सर्व आगमनाउद्देशासनाकालग्रहण कह्या छे ते पिण कालग्रहण ते जोगवह्ये थाय ते माटे योग वह्या विना सूत्र भण्या नथी कह्या इम नंदी तथा भगवतीसूत्र मध्ये पाठ छे 'तथा व्यवहारसूत्रे सर्व आगमनना भणवानो पर्याय कह्यो छे दीक्षाथी वीस वरस पर्याय, सर्व आगम भणे तथा निशीथ सूत्रमाहे कह्यो छे " जेमिरकु अणत्थियवागारत्थिय वा वाएइय तसाइज्जइ तस्सचाउम्मासीयपरिहारठाण " इहा जे गृहस्थने वाचनादे अथवा ग्रहस्थने वाचता अनुमोदन करे तेहने च्यार मासनो पाल्योचारित्र जाय इत्यादि प्रगटाक्षर छे ते माटे गृहस्थने सूत्र भणवो वाचवो नही तथा प्रश्नव्याकरण सूत्रे कह्यो छे " त सव भगव तित्थगरसुभासिअ दसविह चउदसंपुव्वेह पाहुडत्थपवेदिअ महारिसीणसमप्पदिन देविंदनरिंदाणभासीअत्थ " इहा पण साधुने सूत्र दीधो, अर्थ देविंद्रनरिंद्रने दीधो तथा कोइ कहेसे जे सुबुद्धीमत्रीये च्यार महाव्रतरूपधर्म कह्यो ते माटे अम्हे कहु छु तेतो सुबुद्धीमत्रीये वातरूप उपदेस कह्यो, पण अंगादिक वाच्या नथी ज्ञाताधूने सुबुद्धीमत्रीने अधि-कारे दीक्षा लीधा पछे आचारागादि भण्या, जो गृहस्थपणे आचारादि भण्या होत तो दीक्षा लीधा पछे स्याने भणे ? ते विचारज्यो तथा वली कोइक कहेस्ये जे श्रावक सुअपरिग्ग-हिआ, कह्या छे तेतो फक्त शब्दे आवश्यकादिक तथा अर्थ-नोधारणतेपिणश्रुत छे ते माटे सुअपरिग्गहिआ कह्या छे शुभज्ञानी समकिती देशविरतीने कहा छे, आचारागादि सूत्र नी ना छे तथा ठाणगे तो " अवायणिज्जापन्नत्ता तजहा अवि-णीए, विगयपडिबद्धे अंवुसिआ पाहुडे, विगयपडिबद्धेनो अर्थ

तो सूत्रमध्ये दीसतो नथी तथा ठाणागसूत्रमे दशमेठाणागे कह्यु छे. " दसहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसिभद्दत्ताएकम्म पगरेंति त अनिदाणयाए, दिठीसपन्नयाए, योगवाहीययाए, खतीखमणयाए, जीइंदियाए, अमाइल्लयाए, अपासत्थयाए, सुसामन्नयाए, पवयण-वछल्लयाए, पवयणउज्झावणयाए तथा उत्तराध्ययने पण कह्यु छे

नीयावत्तीअचवले, अमाइ अकुतूहले ।
विणीय विणएदत्ते, जोगवं उवहाणव ॥ १ ॥

इत्यादि वचन अनेक छे नत्तीसयोगसग्रहमध्ये पिण सूत्र भणवानो मनोरथ कह्यो नथी तथा सर्व सूत्रे श्रावक लद्धट्ठा कह्या छे, पण आचारांगादिकसूत्रना पारगामी किहाइ कह्या नथी तथा उत्तराध्ययने १३ मा अध्ययनमाहे गाथा छे जे ॥

महत्थरूवा वयणप्पभूआ, गाहाणुगीयानरसघमज्झे ।
ज भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहज्जयतेसमणोमिजाओ

ए गाथामे कह्यो एहवी गुणवत गाथा ते भिक्षु भणे ते माटे हु पिण श्रमण थयो इहा पण सूत्र भणवाना अधिकारी मुनि दीसे छे, तथा सुगडागे १४ मा अध्ययने कह्यो छे

गथ विहाय इहसिखमाणा, उठायसुबभचेरे वसिज्जा ।
उवयकासविणुयसिरके, जे छेएवि पमायनकुज्जा ॥१॥

ए गाथाइ पण ग्रथ छे ते मुनि योग्य छे इम छे. इम अनेक सूत्रे पाठ छे तथा समवायाग सूत्रे॥ सेणअगट्ठायाएपढमे

अगेदोसुअरवधापणवीस अज्झयणापचासी उदेसणकाला, पचासी-समुदेसणकाला," इम सर्व आगमनाउद्देशासनाकालग्रहण कह्या छे ते पिण कालग्रहण ते जोगवह्ये थाय ते माटे योग वह्या विना सूत्र भण्या नयी कह्या इम नदी तथा भगवतीसूत्र मध्ये पाठ छे 'तथा व्यवहारसूत्रे सर्व आगमनना भणवानो पर्याय कह्यो छे दीक्षाथी वीस वरस पर्याय, सर्व आगम भणे तथा निशीथ सूत्रमाहे कह्यो छे " जेभिरकु अणत्थियवागारत्थिय वा वाएइय तसाइज्जइ तस्सचाउम्मासीयपरिहारठाण " इहा जे गृहस्थने वाचनादे अथवा ग्रहस्थने वाचता अनुमोदन करे तेहने च्यार मासनो भाल्योचारित्र जाय इत्यादि प्रगटाक्षर छे ते माटे गृहस्थने सूत्र भणवो वाचवो नहीं तथा प्रश्नव्याकरण सूत्रे कह्यो छे " त सव भगव तित्थगरसुभासिअ दसविह चउदसपुवेह पाहुडत्थपवेदिअ महारिसीणसमप्पादिन देविदनारिंदाणभासीअत्थ " इहा पण साधुने सूत्र दीधो, अर्थ देविंद्रनरिंद्रने दीधो तथा कोइ कहेसे जे सुबुद्धीमत्रीये च्यार महाव्रतरूपधर्म कह्यो ते माटे अम्हे कहु छु तेतो सुबुद्धीमत्रीये वातरूप उपदेस कह्यो, पण अंगादिक वाच्या नयी ज्ञातासूत्रे सुबुद्धीमत्रीने अधिकारे दीक्षा लीधा पछे आचारागादि भण्या, जो गृहस्थपणे आचारांदि भण्या होत तो दीक्षा लीधा पछे स्याने भणे ? ते विचारज्यो तथा वली कोइक कहेस्ये जे श्रावक सुअपरिग्गहिआ, कह्या छे तेतो फक्त शब्दे आवश्यकादिक तथा अर्थनोधारणतेपिणश्रुत छे ते माटे सुअपरिग्गहिआ कह्या छे शुभज्ञानी समकिती देशविरतीने कहा छे, आचारागादि सूत्रनी ना छे तथा ठाणगे तो " अवायणिज्जापन्नत्ता तजहा अविणीए, विगयपडिबद्दे अवुसिआ पाहुडे, विगयवड्डिबद्धेनो अर्थ

तो सूत्रमध्ये दीसतो नथी तथा ठाणांगसूत्रमे दशमेठाणांगे कह्यु छे " दसहिं ठाणेहिं जीवा आगमेसिभद्दत्ताएकम्म पगरेंति त अनिदाणयाए, दिठीसपन्नयाए, योगवाहीययाए, खतीखमणयाए, जीइंदियाए, अमाइल्लयाए, अपासत्थयाए, सुसामन्नयाए, पवयण-वछल्लयाए, पवयणउज्झावणयाए तथा उत्तराध्ययने पण कह्यु छे

नीयावत्तीअचवले, अमाइ अकुतूहले ।
विणीय विणएदते, जोगवं उवहाणव ॥ १ ॥

इत्यादि वचन अनेक छे नत्तीसयोगसग्रहमध्ये पिण-सूत्र भणवानो मनोरथ कह्यो नथी तथा सर्व सूत्रे श्रावक लद्धठ्ठा कह्या छे, पण आचारांगादिकसूत्रना पारगामी किहाइ कह्या नथी तथा उत्तराध्ययने १३ मा अध्ययनमाहे गाथा छे जे ॥

महत्थरूवा वयणप्पभूआ, गाहाणुगीयानरसघमज्झे ।
ज भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहज्जयतेसमणोमिजाओ

ए गाथामे कह्यो एहवी गुणवत गाथा वे भिक्षु भणे ते माटे हु पिण श्रमण थयो इहा पण सूत्र भणवाना अधिकारी मुनि दीसे छे, तथा सुगडागे १४ मा अध्ययने कह्यो छे

गथ विहाय इहसिक्खमाणा, उठायसुबभचेरे वसिज्जा ।
उवयकाराविणयसिरके, जे छेएवि पमायनकुज्जा ॥१॥

ए गाथाइ पण ग्रथ छे ते मुनि योग्य छे इम छे इम अनेक सूत्रे पाठ छे, तथा समवायाग सूत्रे" सेणअगट्ठायाएपढमे

साधुने पिण उपदेश देवानी प्रनाहरीति नथी, तो गृहस्थलिंगे उपदेश करे ते किम पाल्वे ? घणु स्यु लखीइ ? आगमगर्भीरमुखे मिल्या अनेकअर्थ कहेवाये इम मीठ्ज्यो

तथा कटुकमती कहे छे जे पोरसीप्रमुखपच्चक्खाणे जो पहोरथी वधतो काल थाय तो दोष छे तेहनो उत्तर जे पच्चक्खाणनी शुद्धि ६ कही तिहा तीरीयसमदायकाल ए पाठ आवश्यकनिर्युक्ति-प्रवचनसारोद्धार पच्चखाणभाष्यने विषे छे वली भगवती टीका-मध्येखदाधिकारे तीरइतिप्रर्णेपि भवइ्वो स्तोककालावस्थानात्ए पाठ छे

तथा केइकगच्छना चउसठ अठम तपने अधिकारे आगल पाछल बे एकासणा करे तेवारे चउत्थादिक तप थाय ते माटे अनेक कुयुक्ति करे छे तेहनो उत्तर श्रीभगवती टीकामध्ये खदाधिकारे चउत्थचउत्थेण विचतुर्थभक्तयावद्भक्तत्यज्यते यत्रच-तुर्थमियचोपवासस्यसज्ञाएव पष्ठादिकमुपवासद्वयादेरिति

तथा केइक सडासा पूजवो मानता नथी तिहा श्रीभगव-तीसूत्र टीकामध्ये एवनिसीइ्यवति निषितव्य उपवेष्टव्य सदसकभू-मिप्रमार्जनादिन्यायेनेत्यर्थ

तथा श्रीनवानगरना सघे मह० अमरचदशेठ जादवजी सा मदन मह० रायचद भ० डोसा मह० मीम मह० माहवीजे प्रमुखे नवानगरथी पूछाव्या तेहनो आगमशाखें उत्तर लीखीइ छे. प्रश्न पुछ्यु जे देवता शय्यामे उपजे ते देवतानो मूलगो शरीर शय्यामे रहे के न रहे ? तेहनो उत्तर जे देवता शय्यामे उपन्या पछी रहे नही देवता देवलोक मध्ये जे कार्य करे ते मूलगे रूपे करे छे तिहा श्रीरायपश्रेणिसूत्रे कह्यु छे " तयाणसेसुरीयाभेदेवे तेसिं सरिसावव-

ठाणंगे टीकामें उपधानतप विना निगपप्रतिबद्ध ते अबाध नीक छे ते माटे योग उपधानवंतने सूत्र भणवा कह्या छे तथा कोइक कहेस्ये जे यतिलिंगे योगवह्या विना सूत्र वाचे छे ते किम वाचे छे ? तेहनो उत्तर जे योगवह्या विना जे सूत्र वाचे तेहने अरिहंत आणानी विराधना छे जो पोताने ज्यो करे तेने कोण कहे ? पण जो पोताने तथा श्रोताने लाभना अर्थ होय ते तो आज्ञा प्रमाणे वर्ते श्रीअनुयोगद्वार टीकाए जे अविधिकरी सूत्र वाचे ते पोते ज्ञानावरणीयकर्म चीकणो करे छे, अने जे सांभले छे ते दर्शनावरणीय कर्म चीकणो करे छे तथा साठिसो प्रकरणे कह्यो

उस्सुत्तभासगाणं, बोहीनासोअणंतसंसारो ।
पाणचएवि धीरा, उस्सुत्तं त न भासंति ॥ १ ॥

इमजाणी उत्सूत्र न बोलवो तथा जीतव्यवहारेसर्वनेयोग-वहीनेज सिद्धांत भणवा एहनी हुंडी तथा हीरप्रश्न तथा विधि-प्रपाप्रमुख अनेकग्रंथे अधिकार छे इहां कोइकधन्नोअणगार वेरस्वामीप्रमुखनो दृष्टांत देइने कुयुक्ति करे ते पोताना आ-त्माने अहित करे छे धन्नोअणगारप्रमुखआगम व्यवहारे छे तेहने जीतनो निर्धार नहीं, पण हवणां तो जीतनो व्यवहार छे ते माटे योगवही सिद्धांत वांचे तेपिण नयप्रमाणसप्तभंगी निक्षेपातथाद्रव्यभावतथा निमित्तउपादान उत्सर्ग अपवादनाजाण हुवे ते प्रश्नव्याकरणमे बोल कह्या तेहनो जाण हवे ए सि-द्धांतनो उपदेश करे ए मार्ग छे मुख्यपणे अर्थना कथक आचार्य, सूत्रना दायक उपाध्याय गुणवंतने आज्ञा छे श्रीजा

प्रगट छे तेपण तुम्हे जोज्यो तथा विचरता तीर्थंकरने फूले पूजे एहमे शक्का आणे तेहनी बुद्धिनो दोष छे, उववाइमध्ये अप्पेगरयापूयणवत्तीया ए वचन छे ते ए पदनी टीका पूजनपुष्प-मालादिना ए अर्थ कह्यो छे, अभयदेवसूरिकृत टीकामध्ये पाठ दीसे छे

तीर्थंकरसचित्तने अडके नहीं इम कहे तेपण समझता नथी केवलीना पगथी तीतरना बचा कुकडाना बचा पारेवाना बचा मरे तोपण संपरायकीकिरिया न लागे ए पाठ भगवतीसूत्र-मध्ये प्रगट छे ते जोजो तो भक्तो फूल चढावे तेमध्ये स्यो दोष छे ? ।

तथा बुचे पाणी पीता अरधो पाणी कलसीयामे रहे ए मध्ये समूर्छिम उपजवानो तत दीसतो नथी पन्नवणा टीकाने आसयैइम जणाय छे पिण ए चालकरवो नहीजी

तथा राते तो अपकायजीवनी तमसकायथी वृष्टि थाय छे ते अगासे थाए एतो निरधार दीसे छे अने ते वृष्टि में बीजा जीव तो जाण्या नथी अने किहाइक ग्रथे अन्यजाति मध्ये उपजता पण कह्या छे योगशास्त्र टीकामे ए चरचा लिखी छे, ते माटे उपजता पिण जणाय छे, शीतस्पर्शने योगे रसीया उपजवानी हा दीसेतो छे पिण घणेकाल गये योनिपलटे उपजे परभाते रविकिरण उवडे ते हणाय छे ए जाणवो पिण आगमरीते तमसकायिया टरे छे

तथा आहारकशरीर करे प्रदेशनीछेभागे जे दिशे केव-लीने निर्धार ते दिशे नीकले छे, दसमाद्धारनो काइ प्रयोजन नथी किहाइ पाठ पण नथी अने मुख्यपणे हृदय प्रमुख आगला

गाणदेवाण अतीयेणूयमटसोचा निसम्महट्टतुटेजाव राणिआउ अ-
म्भुठेइ अम्भुठियत्ता उववायसभाए पुरिच्छिमिल्लेण दारेण नि-
ग्गछेइ जेणेवदारे तेणेवउवागच्छति हरयअणुप्पदाहिणीकरमाणे
पुरिखिमिलेण तोरणेण अणुप्पविसति" इत्यादि पाठे नवांवैक्रिय
कर्या विना सर्व पाठ छे ते माटे शय्यामध्ये कोइ देवतानो
शरीर न रहे तो शय्या खाली रहे छे, ए पाठ जीवाभिगम
मध्ये विजयदेवाधिकारे छे तथा भगवतीसूत्रे चमरोत्पातअधिकारे
सौधर्म्मेंद्रे वज्र मुक्या पछी श्रीवीरनिआसातना जाणी तेवारे
वज्रने लेवा माटे उत्तरवैक्रिय अणकरे पडतो मुक्यो इहा पण
उत्तरवैक्रियनो पाठ नथी तेमाटे देवलोकमध्ये मूलगेरूपेज प्रवर्त्ते
पण उत्पात शय्यामध्ये मूलगोरूप रहे ए पाठ कोहाइ नथी

तथा बीजे प्रश्नेसगमाने देवलोकथी मूलगेशरीरे काढियो छे
जेसगमानी देवागनाए इद्र आगल विनती करी जे अम्हने
सी आज्ञा छे तेवारे इद्रे कह्यु जे तुम्हे मेरु जावो अने वली
पाछा इहा मुखे आवज्यो पिण सगमाने देवलोकमध्ये आण-
स्योमा इणेकरी जाणीये छे जे ते मूलगो शरीर तिहा रह्यो
हवे तो देवागनाने स्याने जावो पडे तेमाटे मूलगा शरीरे
काढ्यो छे ए कल्पकिरणावलिमध्ये अधिकार छे

तथा केवलीसमुद्घात जे केवलीने छ मासनो शेष आउखो
हवे ए अवसरे केवलज्ञान उपजे ते नियमा समुद्घात नियमा
करे तेहथी अधिक आउखा वाला केवलीने समुद्घातनी भजना
छे करे अथवा न करे ए अधिकारपन्नवणा टीका तथा गुण-
स्थानक्रमारोह टीका मध्ये छे ॥ ३ ॥

तथा पुष्प परोवानो पाठ पचासकमध्ये तथा हीरप्रश्न मध्ये

तथा साधुजीने चोथे कर्मग्रंथ मध्ये भगवती २५ मे शतके लेश्या ७ दीसे छे ते माटे तेजससमुद्घाते परने बालवाने तेजो लेश्या मूके ते काले कृष्णलेश्या पण हवे बीजी पिण हवे जा सीम शासनकामे करे ता सीम प्रशस्त लेश्या हवे पछी परिणाम पलटे अप्रशस्तपणे परिणमे तो अप्रशस्त लेश्या पिण हवे इम थारवोजी ए प्रश्ननी शाखतो पुस्तकथी जोइ लेजो

नवानगरना श्रावक भणसाली डोसाए प्रश्न पछ्या तेना उत्तर लख्या छे—समवसरणमध्ये फूलनी वृष्टि थाय छे ते उपर साधुजी किम चाले छे तेहनो उत्तर तंदुलवेयाली पयन्नानी टीका मध्ये लिख्या छे ते कोइक आचार्य कहे छे जेविचे मारग रहे छे जिम वाडी मध्ये जेम क्यारी करे छे तिम मारग रहे छे पिण ए उत्तर पचागीने लेखे ठहरतो नथी ते वली एहज टीका मध्ये कह्यो छे जे फूलतो सर्वत्र व्यापीने वृष्टि करी छे ते उपर साधु चाले छे तिहा ते टीका मध्ये पूछ्यु छे जे फूलने किलामना उपजे के न उपजे ? तिहा इम उत्तर छे, जे कोइक समवसरणे देवना विकुर्व्या फूल करे से तो अचित्त छे अने समवायागने पाठे सचित्त फूल छे पण देवताने सामर्थे वेदना थाती नथी तथा कदापि थाय तो पण साधुजीने प्राणातिपातकी क्रिया न लागे तथा जिन-भक्ते हिंसानो बध न थाय इम जाणवो, गुरु साहमा सूत्र सुण्याना फल उत्तराध्ययनमध्ये कह्यो छे ते श्रीअरिहत विचरता ते गुरुतत्त्वमध्ये छे उपदेशक माटे तथा वली पूछ्यो जे समवसरण उपाडे तेवारे फूलनो किम थाय छे ? तेहनो उत्तर जे फूल सचित्त छे तेतो कमलाय एटले देवता विखेरी

प्रदेशथी निकले छे इम अधिकार छे ए अधिकार चरितानुवाद मध्ये छे अने कर्मग्रथना आशयथी पिण इम जणाय छे

तथा महीयपुइए ए पाटनो अर्थ नदीटीकामे नथी ते नदीटीका तो अम्ह पासे नथी पण अनुयोगद्वार आवश्यक वृतिमध्ये ए पाटना अर्थ कह्या छे तेहथी जाण्या छे नदी टीका मध्ये बीजो कोइ अर्थ लीख्यो नथी सुगम माटे स्थुलबे ए रीते धारज्यो

तथा अष्टापदना चैत्यनो तथा निंन भराव्यानो अधिकार आवश्यकनिर्युक्तिमध्ये तथा बावीसहजारीमध्ये छे तथा भगवती टीकामध्ये विरपरचीयो सिगोयमा ए आलावामें अधिकार छे

तथा चक्रवर्तिने कोइकने मिथ्यात्वगुणठाणो छे अने भरतादिक जीवोने चोथो छे वली परिणाम वधे तो मुनिपणो सातमो तथा छठो गुणठाणो थाय पण पाचमो फरसे नहीं ए अधिकार पदवीना लाभना अधिकार पन्नवणाटीकाप्रमुखे ते वली अवसरे सभारवुजी

पलाल्याधानमध्ये अनताजीव उपजे ते ए प्रत्येक छे तेम मध्ये साधारण किम उपजे तथा" सवोकिंसलयखलु उगवमाणोअणत उ भणीओ" इहा पहिला अनतकाय छे ते मध्ये पछी प्रत्येक उपजे इम पिण छे तेहनो उत्तर जे मनुषणीना शरीरे योनि मध्ये असख्यातासमूर्छिमनीयोनिचलू छे पिण अवसरे गर्भज जीव पण उपजे छे ते माटे अन्यनी, योनिपणो थाय छे सुगडागसूत्रे पृथवीप्रमुख स्थावरमध्ये अपप्रमुखस्थावर तथा समूर्छिमनी योनि कही छेजी

इहा सख्यानो नियम कह्यो छे पण भव्य अभव्य नियम नथी ते माटे पचागीनी रीते इम जणाय छे पछी तो श्री केवलीना जाण्यामे हुवे ते प्रमाण छेजी तथा समवसरण मध्ये फूलनी वृष्टि थाय छे ते सचित्तफूलनी छे श्री यशोविजय उपाध्यायजी प्रतिमाशतकमध्ये पण ए घणो चर्च्यो छेजी इम सद्दहवो जे कारणे प्रशस्तमार्ग जे करे ते मध्ये आस्रव नथी ए सूत्रनी परिपाटी छेजी कोइक प्रगटाक्षरमार्ग तो उत्तराध्ययन सूत्रे मृगी पुत्राध्ययने कह्यो छे

अपसत्थेहिदारेहि, सव्वओपिहीयासवो ।
अज्झप्पज्झाणजोगेहि, पसत्थदमसासणो ॥ १ ॥

इत्यादिक अनेकआचारादिसूत्रे घणा पाठ छे ते जोइ लेजो तथा प ज्ञानकुसलनो प्रश्न जे सूत्रे द्रव्य छ कह्या छे तथा विशेषावश्यक मध्ये पाचज द्रव्य कह्या छे तेहनो स्वरूप लिखीये छे जे वस्तुगते विचारता कालनो वस्तुपणो पिंडरूप द्रव्यपणो नथी ते माटे आस्तिकायपणो नथी आस्तिकायपणो बहुप्रदेश मिले बहुपरमाणु मिले थाये ते कालने नथी कोइक कालना रेणु असख्याता माने छे लोकाकाशप्रदेशप्रमाण माने छे पिण ए वात प्रमाण नथी जे रेणुआमान्या अस्तिकायपणो थाय कदापि रेणुआने भिन्नद्रव्य मानीये तो कालद्रव्य असख्याता थाये अने सूत्रे कालद्रव्य अनतो मान्यो छे ते माटे रेणुआनो मानवो तो सभवे नहीं तथा सूत्र परपाटीये श्रीजीवाभिगमसूत्रे पण इम दिसे छे " जे किमयभतेकालोत्तिवुच्चइ गोयमा जीवाचेव अजीवाचेव" एटले जीव

नाखे छे, अने प्रभु विहार करी पण निरोगी नाखे छे तथा फल समोसरणमांहे सचित्तनी मुग्पना छे इम जाणजोजी तथा त्रीजे प्रश्न पूछ्यो जे प्रभुनी मानाए सरोवर दीठो ते किहां छे ते कल्पनी टीकामध्ये तथा जंबूद्वीपपन्नत्तिनी अपेक्षाये तो चुल्हेमवत उपर पद्मद्रहवे जणाय छेजी. जेम कमलप्रमाण ए रीतनो सर्व वर्णव्यो छेजी. तथा पाचमे प्रश्ने जे व्यवहार रासी मध्ये जेटला जीव मोक्ष जाय तेटला अव्यवहारीनिगोदमांथी नीकले ए पाठ छे तेहना उत्तर माटे लिखीये छे जे अव्यवहारीनिगोदमध्ये पिण भव्य तथा अभव्य वे जीव छे व्यवहारराशिमध्ये पिण भव्य अभव्य वे जातिना जीव छे ते मध्ये भुवनभानुकेवली चरित्रे भवभावनीटीका तथा उपमितिभव प्रपचामध्ये अनादिनिगोदथी अभव्य नीकली व्यवहारराशिमध्ये आवे छे ए प्रगट अक्षर छे ते माटे इहा पूछस्ये जे भव्यजीव तो व्यवहारराशिमाथी अवसरे मोक्ष जाय छे तिणे वधे नही पिण अभव्य जे व्यवहारीया थया ते तो व्यवह[illegible]शिमध्ये छता पामीये तेहनो उत्तर जे घणो काल तो भ[illegible]ले छे अने कोइक वेला १० जीव मोक्ष जाय तेवारे [illegible]रीनिगोदथी १० जीव नीकले ९ भव्य १ अभव्य [illegible] निकले छे केइक कहस्ये जे ए रीते करता व्यव[illegible]शि वधती जणाय छे तेहनो उत्तर जे मूल तो इम वधे नही कदापि कोइ कला उपजे तो पिण अल्प माटे गिण्या नथी तथा ॥

सिज्जतिजित्तीयाकिर, गुणयोगेणविवहाररासीओ।
एइतितित्तियाकिर, अणाइनिगोयरासीओ ॥ १ ॥

इम पाठ छे पण मूलद्रव्यानुयोगमध्ये नजर देता तथा जीवाभिगम अनुयोगद्वारसूत्र तथा पन्नवणा भगवतीना अल्प बहुत्व विचारता कालद्रव्य जूदो नथी पचास्तिकायनी वर्त्तना छे, तिहा कोइ पूछस्ये जे जेवारे पचास्तिकायनीवर्त्तनाने काल मानीये तेवारे कालने एकलो अरूपीपणोटहरे नहि जे पुद्गलास्तिकायनी वर्त्तना रूपी जोईये, तेहनो उत्तर जे पुद्गलनी वर्त्तना मुख्यपणे रूपी सभवे पिण वर्त्तना ते पिंड नहीं वर्णादिक तथा अगुरुलघुनो पलटण उत्पादव्ययरूप छे ते व्यक्तअवस्था थाये नही तेमाटे अरूपीज बहु यतिये गिण्यो तथा कोइक पूछस्ये जे काल जेवारे जीवनी वर्त्तना गवेषीये तेवारे कालने चेतनपणो आवस्ये तेने कहे छे जे जेवारे पर्यास्तिकनयनी भेद व्याख्या करे तेवारे चारित्रादिक गुणमध्ये ज्ञानगुणनी नास्ति कहीइ जे सर्वगुणस्वरूपे अस्ति छे पररूपे नास्ति छे तो वर्त्तनापर्यायने चेतनपणो किम कहेवाये ? तेमाटे कालद्रव्यने पिण अचेतनज कह्यो, इम कालने उपचारे निक्षेपा द्रव्यादिक च्यार गुण पर्याय सर्व कहेवा, पिण मूलव्याख्याये काल ते पचास्तिकायनी वर्त्तना छे सूत्र तथा निर्युक्ति तथा भाष्यकार सर्व गीतार्थ तथा गणधर सर्वनी एहिज व्याख्या छेजी, तथा पुछे जे द्रव्य छ छे के पाच छे? ते जीवाभिगमसूत्रे तो द्रव्य पाच कह्या छे अने भगवतीप्रमुखमध्ये द्रव्य ६ कह्या छे, पिण सूत्रना वचन विरोधी हुवेज नही तेहनो परमार्थ धारवो पण जिहा उत्तराध्ययन भगवती तथा टीकाप्रमुख सर्वत्र जिहा ६ द्रव्य एहवो पाठ तिहा नियमापचास्तिकायनी वर्त्तना तेहने उपचारे भिन्न व्याख्याये भिन्न द्रव्य कह्यो ते सर्वत्र उपचार जाणज्यो तथा कोइक कहेस्ये जे एहनी साख किहा छे तेहने कहीये

अजीवनी वर्त्तनारूपकारण माटेज पर्याय वर्त्तना ते काल जाणवो ए सूत्र वचन छे तथा उत्तराध्ययने २८ अध्ययने" अननाणिय दव्वाणिकालो पुग्गलजनवो" ए पाठ छे ए पाठे कालद्रव्य अनंता कह्या ते जीवअजीवद्रव्य अनंतानी जुदी जुदी वर्त्तना तेहने कालद्रव्य मानीने अनंतद्रव्य कह्या छे ते माटे कालद्रव्य छतो वस्तुगते जूदो नथी अने पर्याय ते वस्तुनो आरोप करीये तो एहने द्रव्यपणे कहीये जिम घटद्रव्य ते घट छे ते पुद्गलनो खंध छे ते विभाग पर्याय छे ते पिण उपचारे द्रव्य कहीइ छे तिम ए पिण जाणवो तथा कोइ पूछे जे काल ए छतो छे के अछतो छे? उत्तर-जे कालवर्त्तनारूप पर्याय पंचास्तिकायमध्ये छतो छे, पण पंचास्तिकायथी भिन्न नथी ते माटे इम कहेवो अने जे भगवतीसूत्रे छठो कालद्रव्य छे ते अढीद्वीपप्रमाण ज्योतिश्चक्रने वारे जे व्यवहारकाल तेहने कालपणे मानीने ए वचन कह्यो छे ते माटे व्यवहारनये छ कहीजे, निश्चयनये तो पंचास्तिकाय छे तथा तत्त्वार्थटीका मध्ये कह्यु छे जे द्रव्यास्तिकायनयन गवेषीये तो पर्यायास्तिकायने द्रव्य मानीये तेवारे कालद्रव्य कहीये, तेमाटे ए श्रद्धा राखवी तथा सिद्धांतना आलावा तथा द्रव्यानुयोगनीपरिणति सर्व इम ठरे छे तथा धर्मसंग्रहणीमध्ये बे मत कह्या छे तत्त्वार्थकारे पिण" सोऽनंतसमय" ए सूत्रसद्दहवो ते काल छ द्रव्य अनंतसमय रूप छे इम कह्यो तथा श्री हेमाचार्ये पिण कालना रेणुक कह्या ते पाठ जो जो ॥

लोकाग्रप्रदेशस्याभिन्ना कालाणवस्तुयेभावानां ।
परिवर्त्तापिमुख्य. कालसउच्यते ॥ १ ॥ (?)

ऋतुस्वभावादि बोल्या ए सर्व व्यवहारनय तथा आदित्यादिगति परिछित्तिरूप बाह्यकाल लेइने बोल्या छे, ते परमार्थे नथी ते श्रीभगवतीसूत्रे प्रश्न छे जे केटलीक वनस्पति उष्णकाले फले ते स्वामि कीम छे ? तेवारे श्रीवीतराग कहे छे ए जीवने उष्ण फरसी पुद्गलनो आहार घणो लेवराय छे तेमाटे उनाले फले छे तिहा जीवनो उदीतकर्मकारण छे, पिण एकात कालनी मुख्यता नथी वली काल अपरिणामी अकर्त्ताद्रव्य छे ते स्याने परमव्ये परिणमे स्याने परकार्य करे, तेमाटे वृक्षादिकनो जीव पुद्गलद्रव्य छे तेमाटे ते फलजीव पुद्गल मध्ये एहनी वर्त्तना मान्याज सर्व समो पडे, पिण भिन्नद्रव्य मान्या कोइ समो पडे नही, वली कोइक पूछसे जे धर्मास्तिकायपण अपरिणामी अक्रिय अकर्त्ताद्रव्य छे ते किम चलणसहायी थाय छे ? तेहनो उत्तर जे गति परिणामी जीवद्रव्य तथा पुद्गल द्रव्यने सहायी थाय छे पिण ते धर्मास्तिकायरूप छे अने काल ते अस्तिकाय नथी तथा भावप्रकरणे "कालोऽतिकलन काल एव द्विधा वर्त्तना लक्षण १ समयावलिकादिलक्षणश्च अतस्तत्रवर्त्तंतेभवति भावास्तेनतेन रूपेण तान् प्रतियोजकत्व वर्तना सा लक्षणलिंगऽस्येतिवर्तना लक्षण अथ समस्तद्रव्यक्षेत्रभावव्यापीति" १ एहनो अर्थ जेवर्ते थाये ते रूपे प्रतियोगी सहकारीपणे ते वर्त्तना कहीये, ते वर्त्तमानज छे लक्षण जेहनो ते वर्तनालक्षण काल कहीये द्रव्य धर्मादिक क्षेत्र सर्वना प्रदेश भाव सर्व द्रव्यना गुणपर्याय ते मध्ये व्यापकपणे छे एटले पचास्तिकायनी वर्त्तना तेहज निश्चयकाल कह्यो, ए मध्ये जूदा कालद्रव्यनी ना थई बीजो समयावलिकालक्षण ते व्यवहारकाल जाणज्यो ते समय वर्तमान एक छतो भिन्नद्रव्य मानीये

जे जीवाभिगम तथा महाभाष्यथी जुदी वात कोनी मागो छो? वली पूछये जे पूठे ठेकाणे ६ द्रव्य कह्या छे तो पाच किम मनाय? तेहने कहीये जे जीवाभिगम तथा भाष्यकारे ते ए अक्षर सर्व जाण्या हता तेहथी अजाण्या नहीं अनयोगद्वारे अनादिसिद्ध कह्या ते पण ए उपयोगेज कह्या छे, तथा वाच्यवाचकभावे कालनो नियम जूदो कह्यो छे तेमाटे द्रव्य जूदो वाच्यमा संभवतो घटे छे, तेहने उत्तर संवरतत्त्ववाचक नाम जूदो कह्यो छे, तेहनो वाच्यज्ञान चारित्रादिक पण छे तेमाटे संवरपदार्थ कह्यो पण संवर ते जीवनी परिणति छे पण पिंडपणे जीवथी संवर जूदो नहीं तथा वली कहेस्ये जे संवरने द्रव्य कह्यो नथी पण द्रव्यथी प्राणातिपातादिक कह्या तथा प्राणातिपातादिविरमण पण द्रव्यभाव आगम मध्ये कह्या, तेमाटे ए सर्वथी काइ द्रव्य जूदो थाय नहीं तथा कोइक पूछस्ये जे ए ५ समान छठो द्रव्य कह्यो, तिहा उत्तर जे पचमहाव्रत भेलो छठो रात्रीभोजनव्रत कह्यो, पिण अपेक्षाए कह्यो, तेमाटे रात्रीभोजन काइ मूलगुण महाव्रतरूप न थाये सर्व गुण, सर्व पर्याय, सर्व परिणाम, सर्ववाच्यवाचकभाव, संयुक्त छे तेमाटे भिन्नपिंडी द्रव्यपणो न पामे अने पर्यायने द्रव्य कहीये एहवे नये पिण जैन बोले, ए दीक्षा लेवा माटे कालने छठो द्रव्य कह्यो ते रीते कहीये, यावत्मात्र अभिलाप्यभाव होवे ते वाच्यवाचकभावसंयुक्तज होवे, तेमाटे द्रव्यपणो न पामे, जिम धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायनो देशपणो तथा पुद्गलास्तिकायनो देशपणो कदापि खधथी जूदो नथी, अने अजीवना भेद करता जूदो कह्यो, तेमाटे ते रीते एपण मानज्यो प्रवचनसारोद्धारमध्ये तथा पचकारणमध्ये जे वसतादिकना

ऋतुस्वभावादि बोल्या ए सर्व व्यवहारनय तथा आदित्यादिगति परिछित्तिरूप व्यावकाल लेइने बोल्या छे, ते परमार्थे नथी ते श्रीभगवतीसूत्रे प्रश्न छे जे केटलीक वनस्पति उष्णकाले फले ते स्यासि कीम छे ? तेवारे श्रीवीतराग कहे छे ए जीवने उष्ण फरसी पुद्गलनो आहार घणो लेवराय छे तेमाटे उनाले फले छे तिहा जीवनो उदीतकर्मकारण छे, पिण एकात कालनी मुख्यता नथी वली काल अपरिणामी अकर्त्ताद्रव्य छे ते स्याने परमध्ये परिणमे स्याने परकार्य करे, तेमाटे वृक्षादिकनो जीव पुद्गलद्रव्य छे तेमाटे ते फलजीव पुद्गल मध्ये एहनी वर्त्तना मान्याज सर्व समो पडे, पिण भिन्नद्रव्य मान्या कोइ समो पडे नहीं, वली कोइक पूछस्ये जे धर्मास्तिकायपण अपरिणामी अक्रिय अकर्त्ताद्रव्य छे ते किम चलणसहायी थाय छे ? तेहनो उत्तर जे गति परिणामी जीवद्रव्य तथा पुद्गल द्रव्यने सहायी थाय छे पिण ते धर्मास्तिकायरूप छे अने काल ते अस्तिकाय नथी तथा भावप्रकरणे "कालोऽतिकलन काल एव द्विधा वर्त्तना लक्षण १ समयावलिकादिलक्षणश्च अतस्तत्रवर्त्ततेभवति भावास्तेनतेन रूपेण तान् प्रतियोजकत्व वर्तना सा लक्षणलिगऽस्येतिवर्तना लक्षण अय समस्तद्रव्यक्षेत्रभावव्यापीति" १ एहनो अर्थ जेवर्ते थाये ते रूपे प्रतियोगी सहकारीपणे ते वर्त्तना कहीये, ते वर्तमानज छे लक्षण जेहनो ते वर्तनालक्षण काल कहीये द्रव्य धर्मादिक क्षेत्र सर्वना प्रदेशभाव सर्व द्रव्यना गुणपर्याय ते मध्ये व्यापकपणे छे एटले पचास्तिकायनी वर्त्तना तेहज निश्चयकाल कह्यो, ए मध्ये जूदा कालद्रव्यनी ना थई बीजो समयावलिकालक्षण ते व्यवहारकाल जाणज्यो ते समय वर्तमान एक छतो भिन्नद्रव्य मानीये

तो ते समयनो क्षेत्र किहा मानीये, जिहा मानीये तिहा एक प्रदेश मध्ये रह्यो जोइये तेवारे सर्वलोक अलोक मध्ये उत्पादव्ययनी वर्तना किम थाये ? तेमाटे पचास्तिकायनी वर्तना ते कालज मान्यो पूर्वे कह्यो नवजीरणना एपण काललोलक्षण स्थूल छे नवजीरणधर्म सदनो छे अने कालनी वर्तना सर्वद्रव्य मध्ये छे ते पुद्गलपरमाणु तो नवजीरण थतो नथी तेवारे ए व्यवहारकालनी अपेक्षाए जाणवो, तथा नवजीरणता पुद्गलपरमाणुनोपर्याय छे इम लिख्यो ते ए परमाणु तो एकलानो पर्याय छे नही, खधनो उत्पन्न पर्याय छे, जिम शब्दपणो छे तिम छे, अन तेहने एम छे तेमाटे वर्त्तमान समय एक छे ते सर्व जीव पुद्गलादिकमें वर्ते छे, ते माटे कालद्रव्य अनतो कहेवाय छे, जो अणुकादिक कोइ काल मानीये तो "जीवापुग्गलसमवा" ए गाथा द्रव्यानुयोगना अल्पबहुत्वनी भगवती टीकामध्ये छे तथा पन्नवणासूत्रे "एसिणभते-तीणपुग्गलाण" इत्यादि प्रश्नसूने उत्तर कह्यो छे "सबथोवाजीवा पुग्गलाअणतगुणा अद्धासमया अणतगुणा सव्वदव्वाविसेसाहीया" ए पाठ छे, तेह जीव अनता, तेहथी पुद्गल अनतगुणा, तेहथी कालसमयअनतगुणा, ते सर्वथी काल अनतगुणो, द्रव्यवर्त्तना गवेखीये तोज पूरवे (पालवे) जो काल भिन्नद्रव्य मानीये तो पूरवे जे कारणे जे एक आकाशप्रदेशे अनताकाल द्रव्य मानीये तो पूरवे जे कारणे जे एक आकाशप्रदेशे अनताकाल द्रव्य मानीये तो अस्तिकायपणो वई (टली) जाये, अने एक आकाशप्रदेशे एकएक काल द्रव्य मानीये तो असख्यातो द्रव्य थाय, पण अनतो न थाय तेवारे सूत्रनो अल्पबहुत्व किम मिले ? तेमाटे जीव तथा पुद्गल धर्म अधर्म आकाशनीवर्त्तना मान्याज

पूर्वे ए सूत्रनो पण एहज आशय छे, जिहा "ठदवापन्नत्ता" इत्यादिक सूत्र पण व्यवहारकालने उपचार मानी ठ कह्या ए आशयसहित छे, तेमाटे एहि आशय सिद्धातकारनो छे सिद्धातवादी पण इमज कहे छे इहा जूदो पोतानी मतिना दोपे समझण विना सिद्धातवादीपणो जूदो माने तेहने ससार वधे, अने सिद्धातअनुयायी सिद्धातवादी श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमणथी वधतो बीजो कोइ नथी, सिद्धातनी खरी आज्ञा प्रमाणजीव छे तेहथी वधतो हीनो चित्तमा विकल्प करे तेहने ससार वधे इम वारज्यो, एटले आवलिकादि व्यवहारकाल ते सर्व लौकिक छे परमार्थे पचास्तिकायनीवर्त्तनाने काल कहीये छे पण जूदो नथी, अने कालद्रव्य कह्यो ते उपचारे छे, तिहा वली पूछे जे उपचार वस्तुनी ठती राखीने कह्यो छे के वस्तु पाचज छे? तेहनो उत्तर जे वस्तुपणे मूलसूत्रने प्रमाण पाचज वस्तु छे ठठो वस्तुपणे नथी, अने पचास्तिकायमध्ये स्वकालरूप एक स्वभावपर्याय छे, तेहने काल मान्यो छे ते स्वकालरूप पर्याय ते पचास्तिकायमध्ये छतो छे तेमाटे ठत्तनो उपचार छे इहा कोइ पूछस्ये जे ठतो तेहने उपचार छे किम कहीये? तेहनो उत्तर जे, जिम छे तेहथी वधती अवस्या कहेवी ते उपचार, जे वर्त्तना ते पर्याय स्वभाव हतो तेहने द्रव्यपणो कहेवो ते उपचार छे एटले द्रव्यपणो अठतो छे, इम वारवो, तथा अजीवना १४ भेदमध्ये तथा ५६० भेदमध्ये अठतो होवे तो किम गण्यो? तेहनो उत्तर जे धर्मास्तिकायदेश १ अधर्मास्तिकायदेश २ ए भेद अठता छे, पण ए भेद मध्ये गण्या छे तेमाटे ए भेद सर्व वस्तुगति तथा उपचार ए बे मेलीनेज प्ररूप्या छे, पाचसेसाठ भेदमध्ये

बीजा पण उपचारी भेद घणा छे, सिद्धांतनो भाष्यकारनो आशय पकडज छे, अने व्याख्यानेद छे नया रोइ कहेस्ये जे कोइक गीतार्थ पोतानो आशय पोषे, ते तो जे पोयानो आशय पोषे ते गीतार्थ नवा गीतार्थने तो सिद्धांतना सर्व आलावा अनावक रहे ते अर्थने मुरय करे बीजा कोइक ग्रथे अर्थ कह्या हुवे तो ते कहे पण तेपणे कहे ए रीत छे इहा पचारितकाय मध्ये, स्वकाल तेहज काल छे, पण जूदो नथी, उत्पाद व्यय ते सर्व द्रव्यमा समये समये थाय छे ते समय जूदो मानीये तेवारे सिद्धनो तथा धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायमा आकाशमा काल भिन्न द्रव्यथी उत्पादव्यय मानवो पडे तेवारे सिद्धादिकनो उत्पादव्यय परअपेक्षाये (थाय) ते परअपेक्षाये उत्पादव्यय मानता उत्पादव्यय ध्रुवता ते द्रव्यनो लक्षण (परापेक्षाए थाय) जे लक्षण होवे ते स्वरूपेज होवे परअपेक्षाये थाय नहीं (स्वस्वरूपेणलक्षणनपरस्वरूपेणलक्षण) तथा तुह्मे सूत्रनी साक्षी मागी ते जीवाभिगममध्ये "किमिदभतेअद्धासमएत्तिवुचेइ गो० जीवाचेव अजीवाचेव " ए पदमध्ये ए आव्यु छे तथा जिहा छ द्रव्य कह्या तिहा लगतोज पूछ्यो जे " कतिणभते अत्थिकायापन्नत्ता ? गो० पचअत्थिकाया पन्नत्ता " ए पदमध्ये अस्ति ते छतानो नाम छे, तेटला छता पिंडपणे केटला छे ? तो कह्यु जे पाच छे एटले एथी वधतो अक्षर स्यो मागो छो ? तथा उपचार हस्ये तो किवारे कैलोक थई जस्ये, सिद्धमे ससारीपणो थास्ये ते एहवी कल्पना स्याने करीये ? जे धणीये तथा पूर्वाचार्ये जे उपचार कर्यो ते करीये पण नवा न कल्पीये अने उपचार करीये ते पण कोइक कार्य माटे करीये सिद्ध

कह्या ते उपचारे, इम अनेक उपचार छे ते केटला लिखीये, असतूस्थापनादिक ए सर्व उपचार छे, पण कार्य माटे छे तथा कोइक चापी बोलाय ते मध्ये कोइ जीवने लाभ नहींजी तेमाटे एटलो बोलवानो मन करीये, पण खींचाताण मध्ये न पेसीये तथा श्रीभगवतीसूत्रमध्ये धर्मास्तिकायना नामपर्याय कह्या छे, तिहा धर्मास्तिकाय कहीये प्राणातिपातसवर कहीये इम अढारसवर ते धर्मास्तिकायना नाम कह्या तथा अढार पापस्थानने अधर्मास्तिकायना नाम कह्या ते पण सर्व उपचारे कह्यो छे तेमाटे एहवा उपचार सूत्रे अनेक छे तेमाटे पचास्तिकायनी वर्तना तेहजने काल कह्यो छे अन श्रीतीर्थंकरदेवे पण छ द्रव्य कह्या, तेपण आशय मध्ये एहज उपयोगे कह्या छे बीजो कोइये नवे ए आशय न कह्यो " अणागयद्धाजीयद्धा जीवाजीवइ " इत्यादिक जोज्यो तथा श्रीजिनाशयथी भिन्न कह्यो नथी वीरमुखथी सुधर्मास्वामीए अर्थ इमहीज धार्यो हतो ते परपराये चउदपूर्वधारी भद्रबाहु स्वामी निर्युक्ति मध्ये पण एहज जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण तेपण दशपूर्वधर छे ए वात गणधरसार्धशतक गणधरदोढसा-वृत्ति तथा कल्पचूर्णि मध्ये सुणी छे व्याख्यात छे तेह सुखे करीये पण आशयमूलगो राखीने करीये इम धारवो तेमाटे ए व्याख्या ए रीतेज करज्यो जे वस्तुपिंडपणे पाच छे, अने पाचना स्वकालपर्यायने कालद्रव्य कही बोलाव्यो छे, ते आरो-पेज छे ए आरोप ते जिम निश्चयअर्थावग्रह एक समयनो छे अने व्यवहारे अर्थावग्रह असख्यात समयी लोकने बो-धवा माटे मान्यो, तिम मानज्यो तथा वली जे प्रमाणप्रत्यक्ष मध्ये वस्तुगते केवलज्ञान ते सर्व प्रत्यक्ष मान्यो अवधिमन,

पर्यवने देशप्रत्यक्ष मान्यो तथी लोकव्यवहार उपचार करीने पोता इंद्रियसंनिकर्षथी जे ज्ञान थयो तेहने पण व्यवहारे प्रत्यक्ष मान्यो ए वे रीत नंदीसूत्रादिक मध्ये छे तेपण कारणे छे तिम कालनी ने व्याख्या कारणे छे. पण मूल व्याख्याने निजरार्थीने सर्व व्याख्या करीये ए रीते कल्याण छे तथा विशेषावश्यके "नतुपश्यतिक्षेत्र कालावधौ तयोरमूर्तत्वादवधिश्च मूर्त्तविषयत्वात्, वर्त्तनारूपतु कालपश्येत्तद्द्रव्यपर्यायत्वात्, तस्येति" इहा पुद्गलनीवर्त्तनानी अपेक्षायेकालने रूपीगवेस्यो छे तथा नावीसहजारीमध्ये तथा "कालस्यवर्त्तनादिरूपत्वात्, द्रव्यपर्यायत्वात्, द्रव्योपक्रमणेोपचारात्," श्रीभगवतीसूत्रे १३ मे शतके उद्देसे ४ थे कालस्पर्शनाधिकारे नत्थिइक्केणवि ए अधिकारे टीकामध्ये पुद्गलादिकनी वर्तना तेहिज काल गवेष्यो छे रावनपुरथी प वीरचद गणीए पूछ्यु तेहनो पडुत्तरजे वेक्रियशरीर करे तेवारे, अथवा आहारकशरीर करे तेवारे सर्वप्रदेश आहारकशरीर मध्ये छे पण ओदारिक मध्ये नथी तेहनो उत्तर जे आहारकवेक्रियलब्धिकाले ठाणागवृत्ते त्रण शरीर छे तथा कर्मग्रथ कम्मपयडीमध्ये पण उत्तरवैक्रिय तथा आहारक करता उदयस्थानक नामकर्मना कह्या छे "आहारक सयताना उदयस्थानानि भवति तद्यथापचविंशति सप्तविंशति अष्टाविंशति एकोनत्रिंशत्" "तत्र आहारकमाहारकोपागसमचतुरस्रसस्थान उपघातप्रत्येकइति पचप्रकृतय प्रागुक्तायामनुष्यगतिप्रायोग्याया मेकविंशतौ प्रक्षिप्यते मनुष्यानुपूर्वीचापनीयते ततोजातापचविंशति" रित्यादिपाठे, आहारकवालाने औदारिकोदय दीसतो नथी वली जो एहने औदारिकउदय होवे तो सघयणनो पण उदय जोइये तेमाटे ते आहारकशरीरकाले औदारिक उदय

दीसतो नथी तथा कोइ पूछस्येजे औदारिकशरीर छतो देशनादेतो दीसे छे ते एहनो आशय छे, जे आहारकनो अन मुंहूर्त्त नान्हो जणाय छे ते लोकने खबर पडे नहीं तथा जो ए शरीर मध्ये आत्मप्रदेश छे तेपण तैजसकार्मणशरीरी छे, पण औदारिकावगाही नथी अने जो ए शरीरे आत्मप्रदेश सर्वथा न मानीए तो आहारकशरीरनो सकेलो सभवे नहीं तथा तिहा उत्तर साभलताज आहारक टली जाय छे अने आत्मप्रदेशो ओदारिकशरीरमध्ये समाय छे तथा कोइक पूछस्ये जे मूलगे शरीरथी जास्ये आहारक जाइ तां सीम आत्मप्रदेशनी श्रेणि छे ते तैजसकार्मणवत छे, जे समी अवगाहनापन्नवणा सूत्रे पाचराजनी कही छे कार्मणनी अवगाहना १४ राजनी कही छे उत्कृष्टथी जघन्य अगुलने असख्यातमे भागे कही छे, अने आहारक करता शरीरादि पर्याप्ति नवी करवी पडे छे ते कर्मग्रथटीकामध्ये कह्यु छे "शरीरपर्याप्तापर्याप्तस्यसप्तविंशति " इत्यादि तथा जे आहारकनी अवगाहनामुड हस्ते छे तेमाटे मध्यप्रदेशे तैजसकार्मण छे इम जाणवु तथा औदारिकशरीरवंत प्रथमथी आहारकपुद्गलग्रहे तेपण औदारिकशरीरथी लेतो नथी, जे औदारिकआहारकबधन नथी तेमण आत्मप्रदेशगत आहारकनामकर्मनी प्रकृति तेपण कार्मणवर्गणारूप जे उदय थइ तेहने उदये आहारकसमुद्घात करे, तेणे प्रदेश बाह्य नीकले ते प्रदेश तैजसकार्मणशरीर छे ते शरीरथी नवा आहारकवर्गणाना पुद्गल आहारे ते सर्वप्रदेशे आहारे ते पछे सर्व प्रदेशे आहारकशरीर छे एक अष्टप्रदेश ते अचल छे तथा श्रेणिगत प्रदेश सर्वने तैजसकार्मण शरीर छे ते पछे आहारकशरीर उदय छे इम जणाय छे, इहा किहा औदारिक उदय मान्यो हवे तेजो प्रशस्तआचार्य वचन

ए तेजोप्रदेशोदयरूप गणवो पण विपाकी नथी तथा वैक्रिय शरीरने पण इमहीज जाणवो इहां कोइ पूछस्ये जे, चक्रवर्ति भोगकाले ६४ हजाररूप करे छे तिहां स्त्रीरत्न साथे भोग मूलगेरूप करे छे ते मूलगो औदारिक शरीर छे? तिहां इम छे जे चक्रवर्ति ६४ हजाररूप करे छे ते वहुरूपिणी विद्यानी पेरे औदारिक शरीरनाज छे पण वैक्रिय नथी तथा श्रीभगवतीसूत्रे "घडाओघडसहस्स वडाओवडसहस्स" ए पाठे घडा एकमाथी हजारनव घटा काढे ए पण वैक्रिय नथी अवकरीया भेदे घडामाथी घटा काढे छे तिम औदारिक शरीरमाथी औदारिक शरीर काढे छे ए अक्षर पण ग्रथातरे दीठा छे पण ते ग्रथ पासे नथी आहारक करतिवका पूर्वशरीरमध्ये आत्मप्रदेश छे ते तैजसकार्मणशरीरी छे पण औदारीक शरीरी नथी अने आहारक करे तेपण इहां २ वर्गणानो करे छे तथा आहारकशरीरी करता औदारिकमिश्र मान्यो छे ते पूर्वग्रहीत औदारिक पुद्गल जे छे, अने नवा ग्रह्या जे आहारक पुद्गल ते मेला थया माटे मिश्र छे पर आहारकथी औदारिक ग्रहण नथी आहारक मूकताकाले पण प्रथमथी औदारिकपुद्गल ते कार्मणथी लेवराइ छे इम जणाय छे, पछे तो आगम अनत छे तथा तुम्हे विष्णुकुमार आश्री लिख्यु ते वैक्रियशरीर करता औदारिक शरीर ते पण वैक्रिय माहेज समाणो छे अने ते औदारिक पुद्गल ते वैक्रियने उदयबले वैक्रियपणे परिणमे, पुद्गलनो पलटणस्वभाव छे तेमाटे जे वैक्रियसमुद्घात करता सोल जाति रत्नना पुद्गल तेह पलटावी वैक्रियपणे परिणमावी लेवे छे, अने जे वैक्रियशरीर घणा करे छे तेहने औदारिक मध्ये जे प्रदेश छे-तेहनी बे परिपाटी छेजी मूलगा शरीर पण पलटीने

वैक्रिय थयो छे, अने लोक औदारिक जेह्वो देखे तेतो शक्ति विशेष छे, जिम इंद्र कालिकाचायपासे निगोदस्वरूप पूछवा आव्या वृद्धद्विजरूप करीने ते शरीर वैक्रिय हतो पण लोके औदारिकपणे दीठो, आचार्य पण पछे उपयोग दीधे जाण्यो तिम मनुष्य वैक्रिय करे ते मूल शरीर पण वैक्रिय छे, अने बीजा शरीर तेपण वैक्रिय छे ए वैक्रियसमुद्घातनी उत्कृष्ट अवगाहना लाख योजननी छे तेमाटे अने जे लाख योजनथी उपरात छे ते तो मूल शरीरे तथा अतरालवर्त्ती प्रदेश सर्वमध्ये तैजसकार्मणशरीर छे, समुद्घातगत केवली शरीरपरे पण औदारिकशरीर नथी जे उत्तरवैक्रियकाले औदारिकना उदयनी ना कही छे कर्मग्रथने विषे तेमाटे इहा कोइ कहे जे एकरूपे २ शरीर कह्या छे पण रूपभेदे वैक्रियादिक हवे तेहने उत्तर जे कर्म उदय न हवे ते सर्व प्रदेशेज हवे पण कोइ प्रदेश हवे कोइ प्रदेशे न हवे इम हवे नही यद्यपि शुभनामकर्म अशुभनामकर्म तेना "भुवरिसिराइसुह" ए पाठे नाभिसीम नाभिथी हेटले अशुभ इम उदय कह्यो छे पर तिहा तत्त्वार्थ टीकाकारे कह्यो छे जे नाभिपर्यंत शुभनो विपाकोउदय अने नाभिथी हेटल शुभनामकर्मनो प्रदेशोदय छे अशुभनो उदय छे इम जाणवो पण कर्म उदय हवे तेदल थोडावणा चीकणा लूखानो फेर हवे पण कोइ प्रदेशे न हवे इम न हवे, तेमाटे इम जाणवुजी तथा तुम्हे पूछयु जे मनुष्यगतिमार्गणा तथा तिर्यंचगतिमार्गणा मध्ये औदारिकद्विक नरकद्विक वज्रऋषभनाराचसघयण ए पाच ५ प्रकृति मूलओघे नथनर्या तो औदारिकमिश्रकाययोगनी मार्गणाए चोथे गुणठाणे ७५ प्रकृतिनो बध तेमध्ये ए ५ प्रकृति गवेषी ते स्यू? तेहनो उत्तर परपराइ इम

साभल्यो छे, मनुष्यगति तिर्यंचगति मार्गणामा उत्तरवैक्रिय करे ते काले वैक्रिय करता वैक्रियद्विक देवद्विक न बाधे पण उत्तरवैक्रिय काल गवेषयोज नथी उपाधिकृत ते कारणिक छे ते गवेखना नथी, इम जणायो छे, अने जे मनुष्यतिर्यच उत्तरवैक्रियपणे वर्त्तमान ते वैक्रियथी वैक्रियद्विक न बाधे, तेवारे औदारिकद्विकनरद्विक बाधे, अने औदारिक प्रत्यये प्रथमसघयण पण समकितीपणा माटे बाधे, ते जीव वैक्रियशरीर मूकता वली औदारिकशरीरी थाता औदारिकमिश्रकाय योगी थाइ ते कोइककाल सीम ए पाच प्रकृति बाधे ते ए आशय जणाववाने ए पाच गवेखी छे, वैक्रिय मूकता औदारिक मिश्र थाइ ए सिद्धातनो मत छे सभारवाने सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयनो आशय छे, ए अक्षर किहाइ दीठा नथी, परपरामध्ये साभल्यो छे तथा जयसोम पन्यासे कर्मग्रथ विषमपदपर्याय्यना पत्र १०–१२ कर्या छे ते मध्ये लिख्यो छे तिहा बृहद्बधस्वामित्वटीकानी साख लिखी छे ए पण एकवार जीर्णश्रुतधर पासे धारयो छे पण अक्षर दीठा नथीजी ए प्रश्नपडुत्तर तथा कइआमती शा लाधा ए प्रश्न पछ्योजे, आत्माना मध्ये आठप्रदेश किम रह्या छे ? अथवा सावरण छे, निरावरण छे ? तेहनो उत्तर आठ प्रदेश छे ते च्यार उपर छे, ने च्यार हेठल छे ते निर्मल छे निरावरण छे तेहनी साख लिखीइ छे मध्यात्मप्रदेशाष्टकस्य न कर्मबध यदुक्त श्रीआचारागटीकाया लोकविजयाध्ययने प्रथमोदेशकस्यादौ " तदनेन पचदशविधेनापियोगेनात्माऽष्टौ प्रदेशान्विहायतप्तभाजनोदकवद्उद्वर्त्तमानै सर्वैरेवात्मप्रदेशैरात्मप्रदेशावष्टब्धाकाशदेशस्थ कार्मणशरीरयोग्य कर्मदलिक यद्बध्नाति तत्प्रयोगकर्मेत्युच्यते" एहवा पाठथी आठ प्रदेशनिरा-

वरण छे सिद्धसमान छे केवलज्ञानादिक अनतगुण निरावरण छे, तिहां वळी पूछयो जे आठप्रदेश निरावरण, केवलज्ञानमयी छे तो लोकालोक का जाणता नयी ? तिहा उत्तर जे पचास्तिकाय मध्ये जड च्यार अस्तिकाय छे. ते अकर्त्ता छे, जे सर्वप्रदेशे कार्य भिन्नभिन्नपणे करे छे, अने जीवद्रव्य कर्त्ता छे ते एक जीवना असख्याता प्रदेश बधा मिलीने जाणवारूप कार्यने करे छे, ते सर्व प्रदेश मिल्या जाणपणो करी शके तेमाटे आठ प्रदेश निरावरणा छे पण केवलज्ञानमयी, छे पण सर्व पदार्थ जाणी न शके जे आठ निर्मला पण असख्याता सावरण छे तेह प्रदेशे तो केवलज्ञानादिगुण अवराणा छे ते प्रवृत्ति करी शकता नयी आठ प्रदेशे सर्व भाव जाणी शके नहीं वली कोइ पूछस्ये जे ए आठ प्रदेश निरावरण केम रह्या ? तेहनो उत्तर जे भगवती सूत्रे जे "एअइ वेअइ चलई फदई से बधई" ते जे प्रदेशचलपणे वर्ते ते बधाये तेमाटे ए आठ प्रदेश निश्चल छे तत्त्वार्थवृत्तौ "क्रियावत्व पर्यायोपयोगिता प्रदेशाष्टकनिश्चलता एवमकारा· सति भूयास " तथा भगवती सूत्रे अनादिअनत सबध कह्यो छे, तिणे ए आठ प्रदेश अचल छे, बीजा, सर्व प्रदेश कटाहगत तेल उकालता जिम·तेल उपरनो नीचे आवे छे, नीचायी उपर आवे छे तिम सर्व प्रदेश चली रह्या छे, प्रदेशने चल्वे वीर्यनी चलता छे जेकेइ एकला वीर्यनी चलता, माने ते न घटे, जे द्रव्यनोक्षेत्र जे प्रदेश ते मुकीने गुणने अन्यक्षेत्रे जवो घटे नहीं, ए तत्त्वार्थकारनो आशय छे तिहा कम्मपयडीमध्ये वीर्यविभागने अधिकारे आत्मप्रदेशे वीर्यनो तरतमपणो कह्यो छे ते क्षयोपशमज ए रीते छे, परकोइ प्रदेशनो वीर्यकोइ मध्ये आव्यो

साभल्यो छे, मनुष्यगति तिर्यंचगति मार्गणामा उत्तरवैक्रिय करे ते काले वैक्रिय करता वैक्रियद्विक देवद्विक न बाधे पण उत्तरवैक्रिय काल गवेरयोज नथी उपाधिकृत ते कारणिक छे. ते गवेखता नथी, इम जणाव्यो छे, अने जे मनुष्यतिर्यंच उत्तरवैक्रियपणे वर्त्तमान ते वैक्रियथी वैक्रियद्विक न बाधे, तेवारे औदारिकद्विकनरद्विक बाधे, अने औदारिक प्रत्ययि प्रथमसवयण पण समकितीपणा माटे बाधे, ते जीव वैक्रियशरीर मूकता वली औदारिकशरीरी थाता औदारिकमिश्रकाय योगी थाइ ते कोइककाल सीम ए पाच प्रकृति बाधे ते ए आशय जणाववाने ए पाच गवेखी छे, वैक्रिय मूकता औदारिक मिश्र थाइ ए सिद्धातनो मत छे सभारवाने सूक्ष्म ऋजुसूत्रनयनो आशय छे, ए अक्षर किहाइ दीठा नथी, परपरामध्ये साभल्यो छे तथा जयसोम पन्न्यासे कर्मग्रथ विषमपदपर्यायना पन्न १०–१२ कर्या छे ते मध्ये लिख्यो छे तिहा वृहद्बधस्वासित्वटीकानी साख लिखी छे ए पण एकवार जीर्णश्रुतधर पासे धार्यो छे पण अक्षर दीठा नथीजी ए प्रश्नपडुत्तर तथा कडूआमती शालाया ए प्रश्न पूछ्योजे, आत्माना मध्ये आठप्रदेश किम रह्या छे ? अथवा सावरण छे, निरावरण छे ? तेहनो उत्तर आठ प्रदेश छे ते च्यार उपर छे, ने च्यार हेठल छे ते निर्मल छे निरावरण छे तेहनी साख लिखीइ छे मध्यात्मप्रदेशाष्टकस्य न कर्मबध यदुक्त श्रीआचारागटीकाया लोकविजयाध्ययने प्रथमोदेशकस्यादौ ” तदनेन पचदशविधेनापियोगेनात्माऽष्टौ प्रदेशान्विहायतप्तभाजनोदकवदुद्वर्त्तमानै सर्वैरेवात्म प्रदेशैरात्मप्रदेशावष्टब्धाकाशदेशस्थ कार्मणशरीरयोग्य कर्मदलिक यद्बध्नाति तत्प्रयोगकर्मेत्युच्यते” एहवा पाठथी आठ प्रदेशनिरा-

न हुवे तो सर्व प्रदेशने इंद्रियज्ञान वेत्तापणो किम थाये ? तेमाटे इम सदहवोनिर्धार छे इहा इंद्रियक्षयोपशमना माननो अधिकार छे, तेह मध्ये युक्ति अनेक उपजे पण नव भेदे धारवा ते सर्व आगम रीते सापेक्ष छेजी अथवा " यद्यपि अभिलाप्याना भावानामनतभाग एवश्रुतनिबद्धस्तथापिप्रसगत सर्वेऽप्यभिलाप्या श्रुतविषय न जानाति इति उच्यते" ए पाठ भगवती टीका मध्ये आठमे शतके उद्देशे २ छे सा हरखचद दड्डा प्रश्न पूछ्यो मकमूदाबादथी जे पुद्गलपरमाणुने विषे वर्णादिक परिणमे छे ? तेहनो उत्तर " कारणमेवतदत्यसूक्ष्मनित्यश्चभवति परमाणु एकरसवर्णगंधाद्विस्पर्शे कार्यलिंगीच " ए तत्त्वार्थवृत्तिनो वचन छे, जे सर्वखधनो अत्य कहेता छेहलो कारण छे एटले द्व्यणुकादि सर्वखध परमाणुथी नीपजे पण परमाणुनो कोइ कारण नथी ए अनादिअनत शास्वत सिद्धद्रव्य छे ते सूक्ष्म छे तेहनो परमार्थ जे एक जीवनो एक प्रदेश, तथा आकाशनो एक प्रदेश तथा परमाणु एक सर्वनी अवगाहना तुल्य छे पण एक आकाशप्रदेशमध्ये एक जीवना असख्याता अने अनताजीवना अनताप्रदेश मावे, एक प्रदेशे कर्मवर्गणापणे परिणम्या अनता परमाणु समाइ रहे ते माटे आकाशप्रदेशथी आत्मप्रदेश समाय वे सूक्ष्म छे, अने आत्मप्रदेशथी परमाणु समाय वे सूक्ष्म छे, तेमाटे सर्वथी परमाणु सूक्ष्म छे, तथा ते परमाणु द्रव्यपणे नित्य छे ते एक परमाणुमे एकवर्ण, एक रस, वे फरस हुवे, ते मध्ये फरस लूखो तथा चीकणो, उन्हो तथा टाढो, ए च्यार माहेला वे हुवे लुखो उन्हो ए वे अथवा लुखो टाढो ए वे अथवा चीकणो उन्हो ए वे, अथवा चीकणो टाढो ए बे ए रीते हुवे तेजे परमाणु श्वेत वर्ण हुवे ते विश्रसापरि-

नथी तिहा कोइ पूछे जे, कार्याभ्यासे सर्व प्रदेशनो वीर्य मिली कार्य करे छे, ते इहा आत्मानो वर्त्तापणो सर्व प्रदेश मिल्याज छे ते माटे सर्व प्रदेशनो वीर्य स्वस्व प्रदेशे खो साहाय्य करे छे, पण परक्षेत्रीगुण थाय नहीं तथा वली पूछयोजे "अक्खरस्स अणतमो भागो निच्चुग्घाडीयो चिट्ठइ" तेएस्यू छे ? तेहनो उत्तर जे आत्माने असख्यात प्रदेशे अक्खर कहेता ज्ञानगुण तेहनो अनतमो भाग जेम तेनो अश तथा श्रुतनो अश ते सदा उघाडो छे ते क्षयोपशमी छे, एटले ए अनतमोभाग जे उघाडो थयो छे, ते एकेन्द्रियथी माडी पचेन्द्रियपर्यंत वेत्तापणो करे छे वली कोइ पूछस्येजे ए अनतमोभाग जे उघाडो ते सदा उघाडो ? तेहने उत्तर जे अनतमो भाग उघाडो तेतो वली अयथार्थपरभावानुयायी प्रवृत्तिकार तो जे मतिज्ञानावरणी बधाणी तेहने उदये अवराय छे, पण जे आत्मानो वीर्यक्षयोपशमी छे ते वली बीजा मतिज्ञानाशने क्षयोपशम करे छे, इम सतति रीते सदा ज्ञाननो अनतमोभाग प्रतिप्रदेशे क्षयोपशमी उघाडो पामीये छे तेहनी साखश्रीविशेषावश्यकथी लिखीये छीए " तनह्यक्षर शब्देनाविशेषितएवज्ञान अभिप्रेततथापिरूढिवशात् " तथात्राप्यऽक्षर शब्दोवर्णएववर्त्तते इत्यादि पाठथी जोइ लेज्यो 'सर्व प्रदेश क्षयोपशम प्रतिपादकसूत्र इत्यादि तथानद्या तदपिवाक्षर द्विधाज्ञान आकारादिवर्णजात च इहा नदीटीकामध्ये अधिकार घणो छे वर्णश्रुत ए विशेषावश्यक वचनथी श्रुतज्ञाननो अनतमो अश गवेख्यो छे ते श्रुतज्ञाननो क्षयोपशम ते सर्व प्रदेशीय हवे ए कम्मपयडी प्रमुखथी जोइ लेज्यो तेमाटे अक्षरनो अनतमोभाग ते सर्व क्षयोपशमी छे जो सर्व प्रदेशे

न हुवे तो सर्व प्रदेशने इंद्रियज्ञान वेत्तापणो किम थाये ? तेमाटे इम सद्दहवोनिर्धार छे इहा इंद्रियक्षयोपशमना माननो अधिकार छे, तेह मध्ये युक्ति अनेक उपजे पण नव भेदे थारवा ते सर्व आगम रीते सापेक्ष छेजी अथवा " यद्यपि अभिलाप्यानां भावानामनंतभाग एवश्रुतनिबद्धस्तथापिप्रसंगत सर्वेऽप्यभिलाप्या श्रुतविषय न जानति इति उच्यते" ए पाठ भगवती टीका मध्ये आठमे शतके उद्देशे २ छे सा हरखचंद दढा प्रश्न पूछ्यो मकसूदाबादथी जे पुद्गलपरमाणुने विषे वर्णादिक परिणमे छे ? तेहनो उत्तर " कारणमेवतदंत्यसूक्ष्मनित्यश्चभवति परमाणु एकरसवर्णगंधाद्विस्पर्शः कार्यलिंगीच " ए तत्त्वार्थवृत्तिनो वचन छे, जे सर्वखंधनो अंत्य कहेता छेहलो कारण छे एटले द्व्यणुकादि सर्वखंध परमाणुथी नीपजे पण परमाणुनो कोइ कारण नथी ए अनादिअनंत शास्वत सिद्धद्रव्य छे वे सूक्ष्म छे तेहनो परमार्थ जे एक जीवनो एक प्रदेश, तथा आकाशनो एक प्रदेश तथा परमाणु एक सर्वनी अवगाहना तुल्य छे पण एक आकाशप्रदेशमध्ये एक जीवना असंख्याता अने अनंताजीवना अनंताप्रदेश मावे, एक प्रदेशे कर्मवर्गणापणे परिणम्या अनंता परमाणु समाइ रहे ते माटे आकाशप्रदेशथी आत्मप्रदेश समाय वे सूक्ष्म छे, अने आत्मप्रदेशथी परमाणु समाय वे सूक्ष्म छे, तेमाटे सर्वथी परमाणु सूक्ष्म छे, तथा ते परमाणु द्रव्यपणे नित्य छे ते एक परमाणुमे एकवर्ण, एक रस, बे फरस हवे, ते मध्ये फरस लूखो तथा चीकणो, उन्हो तथा टाढो, ए च्यार माहेला बे हवे लुखो उन्हो ए बे अथवा लुखो टाढो ए बे अथवा चीकणो उन्हो ए बे, अथवा चीकणो टाढो ए बे ए रीते हवे तेजे परमाणु श्वेत वर्ण हवे ते विश्रसापरि-

णामेज कालो थयो श्वेतपणानो व्यय कालापणानो उत्पाद, इत्यादिक थारवो, तथा तुम्हे पूछ्यो जे ए परमाणुमें पूरणगलन ते किम छे ? तेहनो उत्तर एकपरमाणुमें जे वर्णादिक गुण हवे ते एकगुणो हवे ते समयमा ते संखगुण थाय अथवा असंखगुण थाय, अथवा अनंतगुण थाय, अथवा अनंतगुणो हवे, ते असंखगुण संखगुणा एकगुण थइ जाये कोइक समये वर्ण इम थया, कोइक समे वर्ण ते प्रमाणेज रहे तो गधादिक वधे घटे, कदाकाले वर्णादिक च्यार तेह प्रमाणे तेहनो तेज रहे पण अगुरुलघुगुणतो एकसमयथी बीजे समये षट्गुणहानि अथवा वृद्धिपणे नियमापरिणमे ते पूरणगलनतानियमा छे पण अगुरुलघुनी पूरणगलनतागवेखी नथी वर्णादिकनी जे गवेखी छे तथा परमाणुमध्ये एक परमाणु अन्यथी मिलवारूप स्निग्धता छे तेपण घटेवधे छे "द्वाभ्याद्वाभ्या अधिकाभ्या संबध" ए तत्त्वार्थनो वचन छे ते रस शब्दे तीखा कडुआ माहिली नथी, तथा फरस माहिलो नथी जे रस मध्ये स्वाद धर्म छे, पण मिलवानो धर्म नथी तथा फरस माहिला स्निग्धता लेवे तो "रुखस्सरुखेण दुयाहिण्ण" एटले लुखो परमाणुओ बीजा लुखा परमाणुथी द्विगुण अधिकने मिले ए पाठ न ठरे किम तेमाटे मिलवो कारणरूपज स्निग्धता ते पूरणगलनगुणनी छे ते पण घटेवधे छे, जे पुराणु ते पूरण, घटे ते गलन थयो, तथा एक परमाणु एक लाभे अस्तिकाय कहेवाय छे ते स्यामाटे जे अन्य परमाणुथी मिलाय तेहनो कारण पूरण गलननी आद्रता ते परमाणुमध्ये छे तेमाटे आस्तिकायना छे जे अगुरु [illegible] सर्व द्रव्यमा छे तेमाटे तेहनो पूरण [illegible] वर्णादिक ४ नी तथा

पूरणगलननी जे हानिवृद्धि ते पूरणगलनपणे लेवी ए रीते ते वळी पुद्गलद्रव्य छे, तेपण नित्यादिक अनतस्वभावी छे, अनतगुणपर्यायी छे, सदाकाल छे कडुकमतीगच्छे सा लाद्धा कृत प्रश्नमे वीरस्वामीनो जीव सातमीनरकथकी सिंहपणे उपन्यो ते किम ? तेहनो उत्तर "सप्तम्या उद्वृत्त तिर्यच्येव उत्पद्यते" प्रायोमत्स्येण तथा श्रीविशेषावश्यकमध्ये "सत्तममहिनेरईया ते उववाउ अणतरुवटा नयपावेइमणुस" इतिवचनात् तिरिजचमध्येउपजेमत्स्यतोकाइनियामकनहीं तथा सिंहथी नरके गये पण सर्वसिंह नरके जाये ए नियम नथी उक्तंच "वालादादीपरकीहवति नरगागयाउ अइकूराजति पुणोनिरएसुमहुल्लेण न उण नियमो" ते माटे नियम नथी मनुष्य मरी चक्रवर्ति थया ते किम घटे ? तथाच कल्पटीकायासमयसुदरोपाध्याये "सुरनेरइएहिचियहवतिहरि अरिहचक्किवलदेवाइत्युक्तत्वात्कथमनुष्योमृत्वाचक्रवर्त्तिर्जात" तनोत्तर "यथास्मिन्क्षेत्रेदशाश्चर्याणिजातानि तथा तास्मिन्क्षेत्रेइदमाश्चर्यमध्येगणितमस्ति पुनस्तत्रनागकुमारतस्तीर्थकरोजातोस्तिइद विस्तारार्थिनादेवभद्रकृतवीरचरित्रद्रष्टव्य" तथा स्त्रीमचानुत्तरविमानआश्री पूछ्यु तेहनो उत्तर जे "श्रीनेमिनाथस्य सप्तमेभवे स्वयवरा यशोमती भार्या, तथा द्वावपि अपराजितेमहाविमानेदेवत्वेनोत्पन्नौ" इति भवभावनाटीकाया तथा स्त्रीने वज्रऋषभनाराचसहननअस्ति "तनाक्षराणिपचसग्रह कम्मपयडीग्रथे नामकर्मोदयभगाधिकारमनुष्यस्त्रीषुषट्सहनन तस्यभगकाकृता, दिगबराम्नायेपि गोमट्टसारे एवमेववाक्य च मणुस्सणीसु छसपयणा इतिवाक्यात्, तथादिग्पटीयर्निभग्गायोनिमतीस्त्रीक्षपकश्रेणिस्वरूप तत्रप्रथमनपुसकवेदसत्ताक्षय पश्चात्पुरुषवेदसत्ताक्षय उदितवेदस्यप्रातेक्षतिरितिनीति" दडकने अधिकारे सक्षेप विस्तर व्याख्या

दिखाडवाने अर्थे ए कथन करयो छे राजनपुरी श्राविका आणदबाईकृत प्रश्नोत्तराणिपुलाकचारित्रीयाने श्रुत जघन्य नवमा पूर्वना तीनवस्तु उत्कृष्टे नवपूर्व पुरा श्रीभगवती २५ मे शतके कह्यो छे, ते पुलाकचारित्रीयाने द्रव्यलिंग तीन कह्या छे, गृहलिंग, अन्यलिग, स्वलिग ते गृहलिंगी अन्यलिंगी पूर्वकिमभणे ? तेहनो उत्तर जे श्रीभगवतीसूत्रेकह्या छे जे " भावलिंग पडुचनियमासलिंगेहुज्झा " ए पाठना आशयथी जे जे द्रव्यथी तीनलिंग कह्या ते वैक्रियलब्धिकरता कारणे साधु गृहस्थलिंग अन्यलिंग करेपरे ते साधु छे पण गृहस्थ नथी तथा बीजे प्रश्ने भगवतीसूत्रे वजनो उदयनो नीम छे पर सत्तानो नाम नथी ते भगवतीसूत्रे सर्वअधिकार समकाल कहे ते नियामक नथी पर पन्नवणा तथा समवायांगे सत्तानो पाठ छे तथा तीजे प्रश्ने धर्मलाभनो पाठ किहा छे? तेहनो उत्तर जे भवभावना टीका तथा उपमितिभवप्रपचादिक ग्रन्थे पाठ छे चोथे प्रश्ने आलोयणनो तुम्हे कह्यो ते किहा कह्यो छे ? तेहनो उत्तर जे परपरा जीत दीसे छे तथा नादि माडे तिहा अखीयाणा मुकवानो अधिकार विधिप्रपाप्रमुखविधि ग्रथमे छे तथा स्त्रीनी असज्झाई चोवीसपहोरनो मान, आवश्यकनिर्युक्ति तथा प्रवचनसारोद्धारटीका मध्ये छे तथा तिर्यंचणीनी असज्झाइनो जीत दीठो नथी तथा सिद्धातरासामध्ये कह्यो छे तिर्यंचणीनी असज्झाइकालेदुहली धातु झरे छे पण रुधिर झरतो नथी ते माटे धातु झरे, असिज्झाइ नथी तथा मनुष्यने धातु झरवा काले पाणीयेसुचि करे ते समूर्च्छिमनी उपज टालवाने ... नथी तिर्यंचना धातुप्रमुखमलथी सम... जे कुयुक्ति करी जे जीत

उथापे तेहने जीतनी श्रद्धा नथी पण आगमनी आज्ञाये इम छे जे गीतार्थनो करयो जीत मानवो तिहा साख छे

असढाइन्नवणज्झ, गीअत्थअवारीयतिमज्झत्था ।
आयरणाविहुआणति, वयणओसुवहुमन्नंति ॥१॥

ए वचनथी उत्तम आचार्ये जे जीत करयो ते प्रमाण छे तथा चूर्णिकार टीकाकारना कीधा जे बीजा ग्रथ ते मध्ये जे वचन ते पण पचागीनेपरे प्रमाण करवो इति तथा थिरादनासघे सा टोकर प्रमुखे पूछ्यो प्रश्न तेहनो उत्तर जे तुम्हे पूछ्यु जे पुस्तकनी आगमनी पूजा किम छे ? केटला प्रकारनी छे तेहनो उत्तर जे जलनी तो पूजा पुस्तकनी नथी अने परपरागत ज्ञानपूजानी गाथा छे ते गाथा ।

नमतसामतमहीवनाह, देवेहिपुज्झसुविहीयपुव ।
भत्तिहिमुत्तित्तेमणिदामएहि, मदारपुप्फपसवेहि-
नाण ॥ १ ॥
तहेवसद्धामणिमुत्तिएहि, सुगंधपुप्फेहिवरसुएहि ।
पूयति वदति नमति नाण, नाणसलाभायभवक्खयाय ॥ २ ॥

आशयथी मणि कहेता रत्नजाति, पुष्फ कहेता फूलजाति असुकवस्त्रजाति मोतीनीजातिना पूजाना अक्षर छे तथा श्रीपालचरित्रे तथा नवपदप्रकरण श्रीरत्नप्रभसूरिकृतमध्येसिद्धचक्रनी पूजामध्ये ज्ञानपदनी पूजा अष्टप्रकारी करी छे तथा शत्रुजयमहात्ममध्ये धनेश्वरसूरिजीए सोनाने कमले ज्ञानपूजानो

अधिकार छे तथा रूपानाणे सोनईये गौतमपदनी पूजानो अधिकार छे तथा ज्ञानपचमीनी कथामध्ये तथा पूजापटल, श्री तत्त्वार्थकारकृत छे, तेमध्ये वासपूजा, नाणानीपूजा, मोतीनी, वीटणानी, दीवानी, धूपनी, एटली पूजा लिखी छे तथा जीतकल्पचूर्णिमध्ये जिहा आचार्यादिक पुस्तक वाचे तिहा वासपूजा वीटणा निमित्त वस्त्रपूजा रूपा सोनाना फल तथा नाणो तथा श्रीफल तथा दीप तथा धूपनी पूजा ज्ञाननी करवी पण गुरु आचार्य ते सचित्तने अडकता नथी जे पुस्तकथी गुरुने अटकवो पडे तेह पुस्तकने तो वासनी तथा सोनारूपाना फलनी तथा नाणानी रत्ननी तथा लगटानी एटली पूजा करवी ए जीत छे धूपपूजा श्रावक पोते गुरुने अडकवा विना करे तथा गुरुपूजा गुरुने नव अगे रत्नेकरी नाणेकरी सोनारूपाने फूले करी करवी ए अधिकार हीरप्रश्नमध्ये साखसहित छे तथा गुरुने तथा पुस्तकने वधावने चोखे तथा मोतीए तथा सोनारूपाने फूले वधाववा एटलानो जीत छे वधतो जीत नथी तथा गृहलीनो अधिकार श्रीविशेषावश्यकमध्ये गणधरस्थापना अधिकारे इद्राणीए करी छे ए सर्व पचागीने रीते लिख्यो छेजी "यत जेणेव वसायसभाणेव उवागच्छति लोमहत्थगपरासुसति पोत्थयरयण लोमहत्थएण पमज्जातिदिवएदगधाराअगेहिवरेहि गधेहि यमलेहि अचेति" ए पाठथी पाणीनी धारा फूलनी पूजानो अक्षर सूरीयाभने अधिकारे छे शाह लाधाजीना पूछ्या प्रश्ननो उत्तर तुम्हे पूछ्यु जे वायुकायने वैक्रियशरीर छे ते लब्धिप्रत्ययी छे भवप्रत्ययी नथी जे पन्नवणानो वचन छे तिरिगति मनुष्यने लब्धिप्रत्ययी वैक्रियज हुवे तेमाटे वायुकाय-ते तिरियचना ४८ भेदमध्ये छे तथा जे पूठलेभवे जे

वैक्रियद्धुग वाव्यो हवे एहवो पचेंद्री तिरियच मनुष्य मरीने
बादरएकेन्द्रिपर्याप्तामे उपन्या छे औदारिकशरीरने उदये
भोगवता पछे लब्धिरूप उदय थाइ तथा सर्व विजयमध्ये ३२
हजार देश छे आर्य २५ जणाय छे पण अक्षर दीठा नथी
तथा महानिशीथे सुमतिप्रष्ट थया ने परमाधार्मि थया ते अनेक
पुद्गलपरावर्त्त ससारभम्यो ते जे समकीतितो अर्धपुद्गलपरावर्त्त
ससारभमे अधिकोभमे नहीं ते किम मिल्यो ? एहनो पडुत्तर
जे पडवाइने अर्धपुद्गलपरावर्त्त कह्यो ते कालपुद्गलपरावर्त्त लीधो
छे अने जिहा अनेक पुद्गलपरावर्त्त कह्या छे ते कालपुद्गलप-
रावर्त्तमध्ये द्रव्यपुद्गलपरावर्त्त अनेक थाइ तथा अभव्यजीव
आश्री श्रीभुवनभानुकेवलीचरित्रमध्ये अव्यवहारराशिमध्येथी
निकल्या ए पाठ दीठो ते अव्यवहारमध्ये अभव्य छे इम ठहरथा
छेजी तथा मासआश्री लिख्यो ते आचारागटीकामध्ये तथा
आचारागचूर्णिमध्ये तथा निशीथचूर्णिमध्ये एहज अर्थ करयो
ते बीजे कोणे नवो कल्पायेजी तथा जे साधु अव्यापकपणे
जे असुज्झताआहारादिक करे तेहने बध नहीं आत्मानो
कर्त्तापणो स्वरूपानुयायी हवे तेवारे जे हिंसादिक ते प्रशस्त
छे अने प्रशस्तआस्रवनी आलोयण नथी वदित्तुमध्ये "आयरि-
यमप्पसत्थे" इत्यादि पाठ जोज्यो ए चर्चा मुहडामुहडे कहेवराइ

॥ कर्मसंवेधप्रकरण ॥



॥६०॥ ऐंनम ॥ श्रीमज्जिनकुशलसूरिसद्गुरुभ्योनम ॥ सिरिवीरनाहनाण । वदिअपभ्भठकम्मरयगण । गुणमग्गणठाणेसु अ । भणामि कम्माणसवेह ॥ १ ॥ नाणतरायदुगभग । दसेइक्कार खीणमोहजा । केवलदुगेअभावो । वेअणसता अट्ठरकाए ॥ २ ॥ गोयम्मि सत्तभगा । अठयभगाहवतिवेअणीए । पण नव नव पण भगा । आउचउक्केवि अणुक्कमसो ॥ ३ ॥ चउछसुदुन्निसत्तसु एगेचउगिणसुवेअणीअभगा । गोएपणचउदोतिसु । एगठसुदुन्निइक्कम्मि ॥ ४ ॥ अट्ठच्छाहिगवीसा । सोलसवीसचबारछदोसु । दोचउसुतीसुइक्क । मिछाइसुआउएभगा ॥ ५ ॥ दोदोतिन्निअदोदो । दुगछगदुगसतखीणमोहजा । गुणपच्चईयाभगा । मग्गणठाणेसुणेयव्वा ॥ ६ ॥

दर्शनावरणीयभगा		मार्गणास्थानेषुभगा	
म ग पर्चे १ त्रस १ यो ३ चक्षु अचक्षु द २ शुक्ल १ भव्य १ सज्ञी १ आहा १॥ १२	११	अज्ञान ३ लेश्या ५ अनाहारक १ अ १ गति ३॥ १३	४
वेद ३ कसाय ४॥ ७	७	यथाख्यात १	४
ज्ञान ४ अ. द १ क्षाय	९	केवल २	०

होज्झा ॥ १२ ॥ इक्कगठक्किक्कारस दससत्तचउक्कइक्कगचेव एए चउवीसगया चोविसदुगिक्कम्मिइक्कारा ॥ १३ ॥ मिछेसगाइचउरो सासणमीसेसगाइतिन्नुदया उपचचउरचउगाइ चउचउउदयापमत्तता ॥ १४ ॥ चउगइतिन्निपुव्वे दुगइक्कोबायरेइगोसुहुमे भगाणचपमाण पुव्वुहिट्ठेणनायव ॥ १५ ॥ इक्कठडिक्कारिक्कारसेवइक्कारसेवतिन्नि एएचउवीसगया जारदुगिपचइक्कम्मि ॥ १६ ॥ अटगचउचउचउरठ, गाय चउरोय हुतिचोवीसा, मिछइअपुव्वतो, बारसपणगचअनियट्टी ॥ १७ ॥ अट्ठट्ठीवत्तीस नत्तीस सट्ठिमेवबावन्ना चोआलदोसु वीसा, गुणेसुपयसखचोवीसा ॥ १८ ॥

मार्गणासु गोत्र भगा		मार्गणासुआयु कर्मभगा	
गति २ इद्री ४ याव ५ अस १२	३	मनुष्यगति	९
गतिदेव २ वे ३ ले ५ अज्ञान ३ क ४ अवि १ अभ १ मि १ १९	भ ५	नरकगति	५
म ग १ पचेंद्रीय १ त्रस १ भव्य अनाहारक १॥५	७	तिर्यंचगति	९
सा १ छेद १ परि १ सूक्ष्म १ । ४	१	देवगति	५
यो ३ चक्षु १ अचक्षुद शुक्ल १ सज्ञी १ आहा ८	६	इन्द्रिय ४ पृ १ अप १ वनस्पति १ ७	५
देसवि सिश्र । २	२	तेज १ वायु १ २	३
		पचेंद्री १ त्रस १ योग ३ क ४ दर्श २ लेश्या ६ अज्ञा ३ अच १ मि १ भव्य १ अभ.सज्ञी १॥२५	२८

या ५ इंद्रिय ४ अभ १ अस १ मि १ सा १॥१३	२	उपशम १	६
सामायक १ छेदोप २	५	सूक्ष्म सपराय १	३
परिहारविशुद्धि १	२	वे स मिश्र देशवि ३	२

मार्गणासुवेदनीयभगा		
म ग पचेन्द्रिय १ त्रस १ क्षायिक अनाहारक १॥	५	८
केवल २ यथाख्यात १॥	३	६
सूक्ष्मसपराय १		२
शेषमार्गणा ५३		४

बावीसइक्कवीसा। सत्तरस(स)तरसेवनवपच। चउतिगदुगचइक्क। बधठाणाणिमोहस्स ॥ ७ ॥ छब्बावीसेवेअति। हासदुगअरइदुगन्नतमगुणीआ। चउइगवीसिअसढा। अणिछिदुगभगसतरतिगे ॥ ८ ॥ पचाइसु विणुजुअल। भगेक्क मोहणिज्झउदयाइ। इग दो चउ पण छ सग अड नव दस इयपयाइ नव ॥ ९ ॥ दसबावीसे नवइग। वीसेसत्ताइ उदयठाणाणि। छाइनवसत्तरसे। तेरेपचाइअठेव ॥ १० ॥ चत्तारिआइनवबधएसु उक्कोससत्तमुदयसा पचहिबधगेपुण उदउदुण्हमुणेयव्वो ॥ ११ ॥ इत्तोचउबधाई इक्किक्कुदयाहवतिसव्वेवि बधोचरमेवितहा उदयाभावेविवा-

रइअणहारगेदुवीसतिग, छाईपणेगवीसाई, अठगुदयातेअअन्नाणे ॥३४॥ सतेचउवीसचउ तेउपम्हासुनवगजावबंधे चउराईदसउदये इगवीसडवीस जा सते ॥३५॥ मणसामाइयछेए नवओइगजावबं-धइउदए इगसत्तजासते, छवीससगवीसविणुसेसा ॥३६॥ परि-हारेनवबंधो चोराइसत्तवेअइसते, इगदुगतिगचउअडजुअवीसा सुहमेनबंधस्स, ॥३७॥ उदयइगसतेइग, चउअटयअवीसइग, अहरकाएअणुदयइगसतविणा, देसेबंधस्सतेरेव ॥३८॥ पचाईअ-डउदए सतेइगदुतिचउठजुयवीसा तिरिएदुवीसओतेरपणओ दस-एगवीसओवरिमा ॥३९॥ उवसमगेसत्तराई इगजावबंधेयएगओ-अडजा, चउअडवीसासते खवगे नउदयएमेव ॥४०॥ सतेदुगवी-साइ छगविणुसवेअवेअगेबंधो सतराईनवणओ नवजादुतिचउड-वीसता ॥४१॥ मीसेसतरसबंधो सगअटनवउदयचउसगठयआ-वीसा वीसासतसापुण सासाणेबंधइगवीस ॥४२॥ उदयएसगठ-नवग सतेअडवीसमग्गणाठाणे, बंधाइतिगमोहस्स भणिअभगाय-पुवुत्ता ॥४३॥ तेवीसपन्नवीसा छवीसाअठवीसागुणतीसा तीसे-गतीसमेग बंधठाणाणिनामस्स ॥४४॥ चउपणवीसासोलस नव-बाणईसयायअडयाला एयालुत्तरछायाल सयायइक्किक्कबंधविहा ॥४५॥ धुवबंधिनवगतिरिदुग एगिंदीअजाइउरलतणुहुड थावर-मपइझमथिर असुभमणाइझ्झदुगबंधे ॥४६॥ एगिदिगमणजुग्गो थूलओपरित्तइयरवाजोगे बंधइमिच्छेअणिरय सुहमओदेवविणुदुगइ ॥४७॥ परघुस्सासक्खेवे पणवीसइच्छपरित्तथूलाओ थिरसुभजस-इयरेसु भगठयतिगाइपच्चइया ॥४८॥ बायरसाहारणओ सुहम-पत्तेअईयरओभगा जसविणुचउइगजुग्गा दुगडआवीसमिच्छत्ते ॥४९॥ तेवीसबंधठाणे थावरएगिंदिविणुठविझ्झतस उवरिमजाइ-सुअणा छेवठोरलउवंगच ॥५०॥ चउभगाजाइह्नितिचउरिं निरि-

गुणस्थानेशु मोह सत्तास्थानानि

मि	२८।२७।२६	अप्र	२८।२४।२३।२२।२१
सा	२८	अपू	२८।२४।२१
मि	२८।२७।२४	अनि	२८।२४।२१।१३।१२। ११।५।४।२।१
अ	२८।२४।२३।२२।२१		
दे	२८।२४।२३।२२।२१	सूक्ष्म	२८।२४।२१।१
प्र	२८।२४।२३।२२।२१	उपश	१८।२४।२१

छवीसातिगदसगे नवगेगावीसछक्कअडगेअ इगवीसाइसत्तग सत्तेछवीसविणुएए ॥ २५ ॥ तेछपणगेछसगवीसविणुचउक्किइगचउवीस अडचउइगवीसतेरस बारसइक्कारसचदुगे ॥ २६ ॥ इगतिगछगसगवीस तेरसदुगविणुइगेयसमसता छवीसातिगदुवीसे इगवीसेअठवीसाति ॥ २७ ॥ विणुछव्वीसइगवीसछक्क, सत्तरसेतेरसेनवेपच, सगवीसविणापणगे, अडचउइगवीसतेरातिग ॥ २८ ॥ अटचउइगवीसातिग इक्कारसपचउचउगबधे तिगबवाइसुतिगसत, सतदुगखवगपन्नइआ ॥ २९ ॥ नरतसपणदिसुक्का, चक्खुदुआहारभवसन्नी, सुयोअकसाएवेऍ, सबेबधुदयसतसा ॥३०॥ बावीसिगवीसिबधे, भूजलइगविगलतरुअसन्नीसु, सगअडनवदसउदये, सतेअटसगछहिअवीसा ॥ ३१ ॥ गइतससिठदुगवीसअठछवीसता, बधेदुवीससते छावीसिगसेसपुव ॥३२॥ नाणतिगओहिदसे, बावीसिगवीसहीणअडबधे दसविणुउदयासते, तेरसकेवलदुगेनत्थि ॥३३॥ लेसतिगदेवनिरये, अवि-

बंधप्रा	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	
एकेन्द्रिय	४	२०	१६						
वेन्द्रिय		१			८	८			
तेन्द्रिय		१			८	८			
चोरिन्द्रिय		१			८	८			
तिर्यंचपंच		१			४६०८	४६०८			
मनुष्य		१			४६०८	८		१	
देवता				८	८	१	१		
नारकी				१					
सर्व	४	२५	१६	९	९२४८	४६४१	१	१	१३९४५

इगविगलथावरेसु अजिणविउव्वाअनाणतिरिएसु मिच्छअसन्नीअभव्वे अजिणाहारा सजिणअजए ॥ ६७ ॥ अविगलविउव्विनिरए अविरयजासम्मनाणुवहिदमे चरणतिदेसेसुरजा अहरकायदुकेवलेनात्थि ॥ ६८ ॥ देवपरित्तबायर तिरीअनरासेसयासुठाणभवा भगामग्गणठाणे बंधठाणाणनेयव्वा ॥ ६९ ॥ अणहारेनिरयभवा आहारगतणुभवायनोभगा मणनाणेसामईआभगसखाभुणेयव्वा ॥ ७० ॥ मिच्छेतेवीसाइ । साणाइसुअट्ठवीसओबंधे । छतिन्निदोतिदोदो । चउपणसेसेसुजसबंवो ॥ ७१ ॥ मिच्छेअजिणाहारा । अवियलनिरछेवट्ठुडसासाणे । दुहगतिसघयणागिइ । चउविणुदुगइज्जमीसदुगे ॥ ७२ ॥ सजिणासमत्ताओ, देसदुगेदेवजायसाहारा जपमत्तदुगेभगा अनिअट्टिदुगेयइक्किक्क ॥७३॥ देवभवादेसदुगे अपमत्तदुगेअदेवनरजुग्गा,

आणातिरिदुगविहीण मणुदुगजुत्तमणुए एगभगापणअपज्झे २५च। २५भ॥ ॥५१॥ नायरपरित्तपणवीस मज्झेजायारजुअठवीसनि अहनाउज्जोअजुअ भगाअडदुगणइगजुगा ॥५२॥ जुवनवपण-दितसचउ परवावेउविदेनदुगजुगइ समथिरइयरठगेवा देवउवीसेट-पुव्वता ॥५३॥ मिच्छेदसअपसत्वेहिं इगभगोनिरयजुगअडवीसे पिवविअलेपणवीसे जुखगइपइझत्तपरिनदुगदुसर ॥५४॥ असम-त्तहीणनवीसा भगाचोवीसवियलपच्चइंया नजइतिरिनरमिच्छा जुवतिरिपरवायउरलदुग ॥५५॥ तसचउपणदिवीसे, सवयणागि-इसुअन्नतमदुतय थिरमथिरनाउक्क, खगईइगसव्वगुणतीस ॥५६॥ यसओसगपयदुगणा सवयणगुणायआगइगुणआ छयालसयपठभगा तिरीएमणुएविएमेव ॥५७॥ देवटवीसेजिणजुअ भगठगसम्मओ-अपुव्वजा विअलपणदीयतिरिजुग गुणतीसेजोअजुअतीस ॥५८॥ पुव्विवभगसामीअ नरगुणतीसेसजिणअडभगा सुरअडवीसेसाहार भगसिगनरअपुव्वजा ॥५९॥ आहारतीसजिणजुअ बधइसुमुणी-अएगजसपगइ एगविहवधठाणे, अपुव्वओसुहुमठाणजा ॥६०॥ इगविगलथावरेसु अडविसिगतीसएगविणुपच, देवेसुतीसगुणतीस छवीसपणवीसतेवीसा ॥६१॥ तसजोअकसाएसु चक्खुदुआहार-भव्वनरसन्नी पचदीयविएसु सव्वेदेसेनवडवीसा ॥६२॥ तिरिअ विरयअन्नाणे आइतिलेसेअभव्वअणहारे मिच्छअसन्निसुठाणा णेया-इगतीसएगविणा ॥६३॥ एगविणातेउए तिवीस छव्वीसहीणप-म्माए सासाणेअटवीसतिअ इगतीसजुयचपरिहारे ॥६४॥ ना-णचउओहिदसे, उवसमखवगेअछेअसामाइए आइतिबध विणायण एगविणावेअगेएए ॥६५॥ अहखायकेवलदुगे अबधसुहुमेएग-विहबधो गुणतीसतीसनिरये मीसेअडवीसगुणतीस ॥६६॥

सुक्काएतेवीसगछवीसहीणाय तेउएभगानिरविगलसुहमतिगे-हीणाइगविणपम्माआतिरिसुक्का ॥१॥ इति मा० बधस्वा० ॥

सामाय छद्मस्थ ३	०	०	०	८	८	१	१	१	१९
परि १	०	०	०	८	८	१	१	०	१८
सूक्ष्म	०	०	०	०	०	०	०	१	१
देस	०	०	०	८	८	०	०	०	१६
मिश्र	०	०	०	८	१६	०	०	०	२४
सासा	०	०	०	८	६४००	३२००	०	०	९६०८
लेश्या ३	४	२५	१६	९	९२४८	४६४१	०	०	१३९४२
लेश्या ते	१	१०	१६	८	९२२४	९६१७	१	०	१३८७७
अनहारक	४	२५	१६	८	९२४८	४६४०	०	०	१३९४१
के २ यथा	०	०	०	०	०	०	०	०	०
लेश्या प	०	२	०	८	८२२४	४६१७	१	०	१३८५२
लेश्या शु	०	१	०	८	४६१६	९	१	१	४६३६
अवि	४	२५	१६	९	९२४८	४६४०	०	०	१३९४१

बंधस्थानानिमार्गणासु	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१	
म प त्र यो ३ वे ३ क ४ दर्श २ आहाभ सज्ञा १ शुक्ल॥ १६	४	२५	१६	९	९२४८	४६४१	१	१	१३९४५
था ५ इग १ विग ३	४	२५	१६	०	९२४०	४६३२	०	०	१३९१७
ति १ मि असअभ ८ अज्ञा ३	४	२५	१६	९	९२४०	४६३२	०	०	१३९२६
सम ३ अवधि ७ द नाण ३	०	०	०	८	१६	९	१	१	३५
देव १	१	१	१६	०	९२१६	४६१६	०	०	१३८५०
नारकी १	०	०	०	०	९२१६	४६१६	०	०	१३८३२

भगणाइज्ज सुहमेयरदुहअजसेण थूलपज्जत्तजसपच ॥ ७७ ॥ एगिंदिअइगवीसे, अदुयात्तरइगवितसथूलजुअ पज्जेजसअजसेणय, अजसापज्जेविगल्नवग ॥७८॥ नामधुवोदयतिरिदुग पणिंदितसथूलओअ इगभगोलद्धिपज्जे असमत्तदुभगणाइज्जअजसेण करणअपज्जेपज्जे असमत्तगचउगसेअरेणट्ठ तिरिदुगठाणेनरदुग खेवेनवभगपुव्विव ॥ ८० ॥ नामधुवमणुअपणतस थूलपज्जत्तसुभगआइज्ज जसवीसेभगेग कम्मणगेकेवलीअजिणे ॥८१॥ जिणजुअइगवीसते भगेगतत्थमणुअइगवीसे अनरदुसुरदुगजोगे अडनिरयेअसुहइगभगो ॥८२॥ एगिंदिअ इगवीसे पुव्विविणुउरलहुडउववाया पत्तेगेअरबादस थुलपवणेविउव्विइग ॥८३॥ इगचउवीसेसपरिघ पणवीसथूलओपरित्तिअरे जसअजसेचउसुहुमे परित्तजुअभगअटगति ॥८५॥ एवनरखेउव्वे अटसाहारेपसत्थइगभगो देवेअडनिरयेइग भगाइगवीसउदउव्व ॥ ८६ ॥ इगपणवीसेउसास अहदुउज्जोअवारपुव्विव पवणेइगइगवीसे विअलेतिरिपुव्विअवहारे ॥८७॥ उरलदुगहुडछेवट्ठ परित्तउववायसहिअनवभगा तिरिइगवीसेपुव्वी हरखिवउववायपत्तेअ ॥८८॥ उरलदुगागिइछक्के छगसवयणेसुअन्नतमदुतय सवयणागिइगुणिया अडभगादुसयअडसीइ ॥८९॥ अपजत्तेइगअसुहो एवमणुए सुदुसयगुणनवइ बायरइगछ्वीसे आयवउज्जोअ अन्नछग ॥९०॥ वेउव्विअपणवीसे तिरीएपरघासुगइजुअअट्ठ एवनराभगा पणवीसुदउव्वनेअव्वा॥९१॥ विअलछवीसेकुखगइ परवाजुअअट्ठवीसभगछग तिरिछ्वीसेपरवाखगइसुअअन्नतमएगा ॥९२॥ पुव्वुत्तदुसयअटसीखगई दुगुणा वेउव्विसगवीसेतिरीयेउसासेवा उज्जोएभगसोलसग ॥९३॥ तिरिअव्वउरलमणुए वेउवेसत्तवीसउस्सासे खित्तेअटउज्जोए इगआहारेदुभगसुद्दा ॥ ९४ ॥ सुरसगवीसेउसास उज्जोएवासोलइगनिरये-

उदयस्थान	२३	२५	२६	२८	२९	३०	३१	१
मिथ्यात्व	४	२५	१६	९	९२४०	४६३२	०	०
सासा	०	०	०	८	६४००	३२००	०	०
मिश्र	०	०	०	८	८	०	०	०
अवि	०	०	०	८	१६	८	०	०
देस	०	०	०	८	८	०	०	०
प्रमत्त	०	०	०	८	८	०	०	०
अप्रमत्त	०	०	०	८	८	१	१	०
अपूर्व	०	०	०	८	८	१	१	१
अनिवृत्ति	०	०	०	०	०	०	०	१
सूक्ष्म	०	०	०	०	०	०	०	१

सजिणाहाराभंगा, अनिअट्टिदुगे अ इक्किक्क॥७३॥ वीसिग-वीसाचउवीसगाउ, एगाहीआअइगतीसा उदयट्ठाणाणिभवे नवअट्ठ यहुतिनामस्स ॥ ७४ ॥ एगबियालिक्कारस तित्तीसाछस्सयाणि-तित्तीसा बारससत्तरससया णहिगाणिबिपचमीईहिं ॥७५॥ अउ-णित्तीसिक्कारस सयाणहिअसतरपचसट्ठीहि इक्किक्कगचवीसा दट्ठु-दयतेसुउदयविही ॥७६॥ नामधुवोदयतिरिदुग थावरएगिंदिदु-

प्रायोग्यउदय	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८
एकेन्द्रिय	०	५	१	७	१३	६						
बेन्द्रिय	०	३			३		२	४	६	४		
तेन्द्रिय		३			३		२	४	६	४		
चौरेन्द्रिय		३			३		२	४	६	४		
प्रा तिर्यंच		९			२८९		५७६	११५२	१७२८	११५२		
तिर्यं वैक्रि				८		८	१६	१६	८			
मनुष्य		९			२८९		५७६	५७६	११५२			
मनुष्यवैक्री				८		८	९	९	१			
आहा				१		१	२	२	१			

उसासेअपसत्थो १२०।२२८ गुणतीसेनिरिअजादुगुणा ॥९५॥ विअलेतिरिअर्डवीसे उसासोज्जोअअननमखेने वेउव्वीअतिरीएपुण सगवीसेसुसरऊसासे ॥९६॥ ऊसासेउज्जोए खित्तेनासोल मणुअ अर्डवीसे ऊसासणपणसय ऊसयरिनेउ जीए ॥९७॥ आहार २ देव १६ निरए १ अटावीसुन्नभग २९ तीगुदये नियल्हावीसे-खिवसास १ सरअननचउभगा ॥९८॥ भासाअपज्जत्ताण सासो-ज्जोएसुभगदुगमेव भगाद्वारसविअले सोसासेतिरिअगुणतीसे ॥९९॥ सुसरेवादुसरेवा सहीएनानविगारसयभगा वणसयछसयरि मुसरेसोज्जोएतिरिअगुणतीसे ॥१००॥ वेउव्विअसगवीसे सोसा-सोज्जोअसरपुअडभगा मणुएउज्जोअविणा नावविकासयभगा १०१ वेउव्विअसगवीसे ऊसासोज्जोअसरयुअ एगमुहभगआहारे एव-देवेसुअडभगा ३० ॥१०२॥ उज्जोअरहीअतिसे उज्जोएणेवहो-दुइगतीस भगानारसविअले वावविकारसयतिरिए ३१ ॥१०३॥ केवलिअसमुग्घाए वासेसुपिवज्जउरल्दुगरिसह उववायपत्तेअ सट्ठा-ण६इपछवीसुदओ ॥१०४॥ एसुहवतिअतीस परवा १ ऊसास ९ खगइदुसुरयोए वयणनिरोहेसरविणु २९ गुणतीसटवीससासविणा २८ ॥१०५॥ इगवीससत्तवीसा इगतीसाजिणवराणतिछज्जुआ योगनिरोहेतेसि तीसगुणतीसगानेआ ॥१०६॥ मणुअगईजाइतस बायरचपद्यत्तसुभगआइज्ज जसतिठयरइयनव अडजिणरहीआअ-योगगुणे ॥१०७॥ उदयभगासम्मत्ता ॥ बधेउदयस्थानानि ॥ तिप-णछअहिअवीसेउदया ९ इगवीसओअडइगतीसा एवगुणतीसतीसे चउवीसविणायअर्डवीसे ॥१०८॥ इगतीसेएगेपुण तीसमबधेसु-सेसदसट्ठाणा चउपणवीसयरहिआ भगानेआयपुव्वत्ता ॥१०९॥ तिरिगइइक्कसायअन्नाण८अचखुअविरयअभव्वचउसेसे मिछअसन्नी-असढे १८ उदयानववीसअट्ठविणा ॥११०॥ वेचउवीसविणाअड-

सासाणेइगचउपण उनवन्नीसायतीसइगतीसा विणुअडनवतणुयोए सुक्काएतेअचउव्वीसा २ ॥११६॥ इतिमार्गणासुउदयस्थानानि ॥ अथमार्गणासुभगका ॥ मणुआइचउगईसु । तिगईविणुनिअगईभवाभगा एगेंदिअनायाला पुढवीगुण चत्तअविउव्वा ६ ॥११७॥ तावविणावणउदगे तेउसज्जोअहीणसविउव्वा पवणेविअलेविअला तसेसुएगिंदिभगविणा ८ ॥११८॥ इगविगलविणासगले कसायचउगे जिणट्ठभगविणा ससुएभगानयणे मणवेएतेअविगलविणा ७ ॥११९॥ इगविगलनिरयजिणविणु पुरिसेइत्थीसुहारविणुतेविआहारतिळसुरविणु सढेतिगनाणुवहिदसे ॥१२०॥ इगविगलदिअजिणविणु पज्जचउगइभवायसामईए छेएनरपज्जसुहा मणपरहारेअणाहारा ॥११॥१२१॥ सुहमेदुसयरितीसा सजिणाहक्खायगेअअन्नाणे २ मिच्छभवेहारग तिळविणासव्वभव्वेसु ७ ॥१२२॥ केवलदुगिजिणज्झुग्गा तिरिनरसुहेदेससयमेभगा मिछुभ्भवपज्जत्ता इगविगलविणाविभंगम्मि ४ ॥१२३॥ अजिणाहाराअजए साहाराळेसतिगअचक्खू सुचक्खुसु इगवितिइदियजिणविणु वेअगितिनाणुव्व ७ ॥ १२४ ॥ खवगेतेजिणजुत्ता मीसदुगेठाणगायसन्नीसु जिणविणुपणदिभगा अडवीसजानरअपज्जा ४ ॥१२५॥ सयणागइपणविणु विउव्विविणुतिरिअज्जअसन्निसु सेलेससमुग्घायग तणुअपज्जअणाहारे २ ॥१२६॥ पम्हासुनिरयइगजिण विगलविणतिउगेअइगजुत्ता सुक्कासुसजिणइगविणु नाणुव्वाहारविणुवसमे ४ ॥२७॥ नवअडविणुतणयोए मिच्छेआहारतित्यविणुवीए बायर२ विगल ६ गतिरि ८ नर ८ सुर८ पज्जाहुतिनत्तीस ॥१२८॥ दोपुणबायरपज्जा पणवीसेअट्ठदेवपचईया छव्वीसे ५८२ एगिंदिय १३ अपज्ज ५ विणुनवइगुणतीसे ॥ १२९ ॥ तिसेतिरि ११५२ नर ११५२ सुर ८ जा इगतीसेतिरयजायपज्जत्ता तईए अणेगविगला

केवली	१	१				१		१	१	१	१	१
देवता		८		८		८	१६	१६	८			
नारकी		१		१		१	१	१				
सर्व	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१	१

२३।२५।२६	२१।२४।२५।२६।२७। २८।२९।३०।३१
२८	२१।२५।२६।२७।२८। २९।३०।३१
२९।३०	२१।२४।२५।२६।२७। २८।२९।३०।३१
३१।१	३०
अबंध	२०।२१।२६।२७।२८। २९।३०।३०।३१।१।८

नाणतिगचक्खुओहिवेअदुगे उवसमवेअगसा ।पम्हाअसुए असग-
पणवीसा ॥१११॥ निगले छगतेनिरये इगपणसगअटनवहिआ-
वीसा देवेते ६ तीसयुआ सुहमेपरिहारगेतीस ७ ॥११२॥ पण
सगअटनवसहिआ वीसातीसमणे १ दुसामईए २ देसेइगतीस-
युआ ६ गुणतीसतिसीसमणनयणे ७ ॥११३॥ सव्वेभव्वे १
नरतस पणदिखवरोसुनच्छिचउवीस इगवीसाईज्झा सगवीसाइग-
थावरेपच ११ ॥११४॥ दसचउपणदीसाविण केवलदुगिसुद्धस-
जमेउदया वीसिगवीसनवअड ४अणहारेसेस ८ आहारे॥११५॥

तेज		५	१०	६	६								३३
पवन		५	११	७	७								३६
त्रस	१	३७	०	२६	५८७	२७	१२०२	१७८५	२११७	११६५	१	१	७७४९
कषाय ४	०	४१	११	३३	६००	३२	१२०२	१७८४	२१११	११६४			७७८३
वचन								१७	२१११	११६५			४०१३
मन								१७	२८११	११५३			४०६१
पु	०	२६	०	२५	५७८	२५	११९५	१७७१	२८१८	११५२	०	०	७६७०
स्त्री		२६	०	२४	५७८	२४	११९३	१७६९	२८१७	११५२			७६६३
नपुसक १		३३	११	२४	६००	२३	११८४	१७६६	२९०७	११६४	०	०	७७१२
ज्ञा ३अ द १ वेदक १।५		२७		२६	५७६	२६	११९६	१७७२	२८१८	११५२	०	०	७६७५

मार्गणासुउदयस्थानानि	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८	
मनुज १	१	१०	०	९	२८९	१०	५८७	५८८	११५५	१	१	१	२६५२
तिर्यंच १	०	२३	११	१५	३११	१४	५९८	११८०	१७५४	११६४	०	०	५०७०
देवता १	०	८	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	६४
नारकी १	०	१	०	१	०	१	१	१	०	०	०	०	५
एकेन्द्रिय	०	५	११	७	१३	६							४२
विगल		९			९		६	१२	१८	१२			६६
पचेन्द्रिय	१	२८	०	२६	५७८	२७	११९६	१७७३	२८९९	११५३	१	१	७६८३
मू		५	१०	६	१२	६							३९
जलवण		५	१०	६	१२	३							३६

चक्षु	०	३०	०	२६	५८१	२६	११९८	१७७६	२९०४	११५६			७६५७
अचक्षुलेशा ३	०	४१	११	३३	६००	३२	१२०२	१७८४	२९१६	११६४	०	०	७७८३
तेज	०	३०	१०	३१	५९०	३१	११९५	१७७१	२८९८	११५२			७७०८
पद्म	०	२६	०	२५	५७८	२५	११९५	१७७१	२८९८	११५२			७६७०
शुक्ल	१	२७	०	२५	५७८	२६	११९५	१७७२	२८९९	११५३	०	०	७६७६
भव्य	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१	१	७७९१
उपशम	०	२७	०	२५	५७८	२५	११९४	१७७०	२८९७	११५२	०	०	७६६८
क्षायिक	१	२८	०	२६	५७८	२७	११९६	१७७३	२८९९	११५३	१	१	७६८३
मिश्र								१७७०	२९१७	११५२	०	०	५८१९
सा	०	३२	२	८	५८२	०	०	१	२३१२	११५२			४०९७

मनपर्याय १				१	[illegible]	१	७४	७४	१४५				२९५
केवल २	१	१			१	१	१	२	२	१	१	१	१२
अज्ञान ३ मिछ १ अभव्य। ५	१०	४१	११	३२	६००	३१	१२००	१७८२	२९१५	११६४	०	०	७७७६
विभग				१६		१६	२४	१७६१	२८९६	११५२	०	०	५८७३
सामा छे २	०	०	०	२	०	२	७६	७६	१४६				३०२
परिहार १									१४५				१४५
सूक्ष्म १									७२				७२
यथाख्यात	१	१			१	१	१	२	७४	१	१	१	८४
देशविरति				२	०	२	१८४	२२०	३६२	१४४			८७८
अविरतति	०	४१	११	३२	६००	३१	१२००	१७८२	२९१५	११६४	०	०	७७७६

दुगअट्ठवसुरदुग रहिआठलसीइअट्ठअसीईयूआनिरयसुरउक्कअसई उव्वलिआतेणउक्केण ॥ १३८ ॥ तेअनरदुअडसयरी उवसमसता- निरयतिरिदुचऊजाई यावरआयव दुग साहारणविणासीई॥१३९॥ जिणविणतेगुणसीई ते आहारगविहीणछसयरी जिणविणतेपणस- यरी अडनवसताविउदउव्व ॥१४०॥ तेवीसतिगेरणग अडवी- सेचउगसत्तगुणतीसे तीसेइगतीसइग इग नवेअटसतसा ॥१४१॥ उदयेसत्तास्थानानि ॥ दुगअडपणसगनवसग अडनवनवपणतिग- तिगचकमा वीसाइसुउदएसु सतठाणाणिनेआणि ॥१४२॥ तिदु- नउईगुणनऊई अठयछलसीअसीईअडसयरी अविरयपणलेसासुअ- तिनउईविणमिछअन्नाणे १० ॥१४३॥ तेविणुगुणनवई इगया- वरविगलामणेसुतिरिए असव्वेतसपणभव्वे अणहारेनवडविणुयोए १८ ॥१४४॥ अडसयरिविणामणुए ११ नवठविणुदसकसायच- चक्खुदुगे सुक्काहारगसन्नीअ वेएसुय १२ नाणुवहिदसे ॥१४५॥ छलसीअडसयरीविणुअटपवेअगदेसदेवपरिहारे उवसमगेतिदुनवई गुणनवईचेवअडसीई ५ ॥१४६॥ गुआसीगुणसीई छपणसय- रीहिंसुहुमसामईए छेएनवडसहीआ खवगाहक्खावगेनेआ ५ ॥१४७॥ तिनवईचउविणुकेवल दुगिछठाणादुसासणेमीसे दोन- वईअडसीईगुणनवईयुआयतेनिरए ५ ॥१४८॥ अडसीछलसीसीई अडसयरीमिछसभवाभव्वे १ उगदुगदुगचउपचसु दुसुअडतिसु- चउछगमेग ॥१४९॥ उदसुदीरणाए सामित्ताएनविज्जईविसेसो मूत्तूणयइगुयाल सेसाणसव्वपयडीण ॥१५०॥ नवउदओअयोगे उईरणातेरमेअवुछिन्नामणुआउवेअणीए उईरणाअपमत्तजा ॥१५१॥ सेसाणपयडीण छेअसमयाउआलिगामोत्तू पडगहीआणयसमग अपडिग्गहीआणविसमति ॥१५२॥ अविभागवग्गफड्डग अतर- ठाणचकडगायकमा लोगासखगुणाते योगठाणादलनिमित्त॥१५३॥

सञ्ज्ञी	०	२७	०	२६	१२७८	२६	११९६	१७७२	२८९८	११५२			७६[illegible]५
असञ्ज्ञी		३२	११	७	४०	६	३८	४४	६६	४४	०	०	२४८
आहार	०	०	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२११७	११६५	०	०	८७४६
अनाहार	१	४२									१	१	४५
का यो १	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२११७	११६५	०	०	७७८१

अजएमेवदेसेवि ॥१३०॥ सुरनिरयदुहगतिविणा सुहसाहारामणुअजाछट्टे अणहाराअपमत्ते पुवेसनपण-तिविणाते ॥१३१॥ इक्किक्कगचपरओ ठाणाइगवीस माइनवमिच्छे चउवीसविणासम्मे गुणतीसानिमीसिसा-साणे ॥१३२॥ इगवीसाइसत्तग सगट्टवीसविणएगतीसजा देसेसगवीसाई पणपणवीसेणयुत्तावे ॥१३३॥ इगतीसविणुपमाए गुणतीसदुअप्पमत्तगिअपुवा खीणजातीसेग अयोगिनवअट्टदुगट्टाणा ॥१३४॥ योगी-जिणेवीसडुग बावीसग छचअट्ठठाणाइ-अपज्जत्तभवाभगा निविखिआनत्यिमयभेजा ॥१३५॥ तिदुनउई-गुणनवई छलसीअसीइगुणसीइ अठयछपन्नत्तरिनवअट्टयनामसताणि ॥ १३६ ॥ तिनुइसन्नेसम्मे जिणवज्जुवसतजावदुनउई आहारचेगविणगुण नवइअटसीईजिणरहिआ ॥ १३७ ॥ निरयसु-

सुहमनिगोआइखणप्पजोगबायरविगलअमणमणा अपज्जलहुपढमदुगुरु पज्जहसीअरोअसखगुणो ॥१५४॥ असमत्ततसुक्को सो पज्ज जहनिअरएवटइठाणा इगओणपएसा–अभव्वओणतगुणीअदला ॥१५५॥ सिद्धाणणतभाए उरलाईवग्गणातीअगुणओ सव्वेतेअगमाई चउफासविहीणणतगुणा ॥१५६॥ धुवअधुवायअचित्ता सुन्नापत्तेअबायरेसुहुमे गुरुखधेअवगाहो ऊणुणगुलअसखसो ॥१५७॥ जजाइलद्धदलीअ णतसोसव्वदेसवाईण तत्तोअघायवाण रसभेएअप्पबहुगाति ॥१५८॥ अप्पेपयडीबधे योगठाणेगुरूअगेगुरूओ लहुएलहुओबधो दलमाणेदव्वमाणमिण ॥१५९॥ अवगाहणायखित्त फुसणाअगुलअसखभागोअ सुहमा-

उदयेसत्तास्थानानि

२३।२५।२६	५	९२।८८।८६ ८०।७८
२८	४	९२।८९।८८ ८६
२९	७	९३।९२।८९ ८८।८६।८० ७८
३०	७	९३।९२।८९ ८८।८६।८० ७८
३१	१	९३
९	८	९३।९२।८९ ८८।८०।७९ ७६।७५

२०	२	७९।७५
२१	८	९३।९२।८९।८८।८६। ८०।७८।७६
२४	५	९२।८८।८६।८०।७८
२५	७	९३।९२।८९।८८।८६। ८०।७८
२६	९	९३।९२।८९।८८।८६। ८०।७९।७८।७५
२७	७	९३।९२।८९।८८।८६। ८०।७६
२८	८	९३।९२।८९।८८।८६। ७९।७५।८०
२९	९	९३।९२।८८।८६।८०। ८९।७९।७६।७५
३०	९	९३।९२।८९।८८।८६। ८०।७९।७६।७५
३१	५	९२।८८।८६।८०।७६
९	३	८०।७६।९
८	३	७९।७५।८

गुणस्थानेषुउदय-स्थाना	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८
मिथ्यात्व	०	४१	११	३२	६००	३१	१२००	१७८०	२९१५	११६४	०	०
सासादन	०	३२	२		८५८२			९	२३१२	११५२	०	०
मिश्र								१७७०	२८९७	११५२		
अविरत	०	२५	०	२५	५७६	२५	११९४	१७७०	२८९७	११५२		
देशविरत				२		२	१४८	२२०	३६२			
प्रमत्त				२		२	७६	७६	१४६			
अप्रमत्त								७२	१४४			
अपूर्व									७२			
अनिवृत्ति									७२			
सूक्ष्मसपराय									७२			
उपशातमोह									७२			
क्षीणमोह									२४			
सयोगि	१	१	१	१	१	१	१	२	२	१		
अयोगि											१	१

॥ प्रतिमापुष्पपूजासिद्धि ॥

(आगमसारनो अन्तर्भाग–जूनी आगमसारनी प्रतियोमा आ विषय छे)

ऐंनम सवत् १८०० ना वर्षे पूजाउपरि फूलनी चर्चा ते उपरे श्रीपडित श्रीदेवचद्रजीकृत प्रश्नोत्तराणि लिख्यते ॥ तथा कोइ पूछे जे प्रतिमानी पूजा तो पहेला आश्रवमध्ये लखी छे तेतो तुम्हे मृषावाद बोलो छो इहा प्रश्न व्याकरणसूत्रमा पाठ इम छेनही तिहा पाठ छे ते लिखीये छे ॥ अविजाणओ परिजाणओ विसयहेउ इमेहिंकारणेहिंकिंते करीसणपोरकरणीवा विवप्पणीकूवसरतलागचितिवेतिखाति आरामविहार, थूभपागार, दारगोपूर अट्टालगचरीय सेतुसकमपासायविकप्पभवणघरसरणिलेणआवणचेइयदेवकुलचित्तसभाएवाआयतणवसई भूमिवरमडवाणकएहींसति=इहा पाच थावरना पाच आलावा छे तेहने छेहडे कोहा माणा, माया, लोभा, हिंसा, रती इत्यादि पाठ छे ते जे जीव इद्रीना सवादने माटे चेइअकहेता प्रतिमादिक करे ते आश्रवखाते ए पाठ छे पण पूजानो पाठ नथी ते मृषा स्ये (शा माटे) बोलो छो तथा प्रश्न व्याकरणसूत्रे बीजे सवरद्वारे जे आलावो छे ते लिखीये छे खवगयवत्ति आपरीय उवज्झायसेह साहमीपुतवसिसिसवुद्धकुलगणसघचेईयट्ठेनिज्झरठी वेयावच्च अणस्सीओदशविहबहुविहकरेई एआलावे आचारज प्रमुखचेईय कहेता जिनप्रतिमानो वैयावच्च करे निज्जराना अर्थी अणस्सीओ कहेता जस कीर्तिनी वाछारहितपणे वैयावच्च दश प्रकार तथा अनेक

गुरुआलोओ कालोट्ठिइटाणमाणत ॥१६०॥ अनमणकालो अणुदयकालोअणाकालोप सत्ताणुणनभागे लोगग्गअगमभागे ॥१६१॥ मोहेनगगोमीसो चउआ गुअट्ठकम्मगुअमेसा भावा-पुणजहसभव मग्गणटाणेगुनेअन्ना ॥१६२॥ चउञ्जुगतिगपण-चउतिग, तीसातीसासगठ दुगनीसा, नीसगुणनीसतेरस बारसभावा-गुणटाणे ॥१६३॥ वोनाणुगाउसचे नामेगोणुसमोजअहिओअ तत्तोनिग्वानरण दुअहिओमोहेतजोअहीओ ॥१६४॥ तत्तोनयने अणिज्ज अहिअगुणमग्गणासुपोसाओ उद्धरीअसमयाओ कम्मस-वेहगवमिण ॥ १६५ ॥ इयकम्मनयनन्ना तन्नेआणओअसुहदु-हुपत्ता तत्थयसमभावत्थ कम्मसरुवंनिभावेज्जा ॥१६६॥ परम-प्पानाणपुण झाणटाणचसिवपयनिहाण तपुणकम्मविगेगे कम्म-विवेगोअतनाणे ॥१६७॥ अप्पगहोपरचाओ मज्जत्थत्तचधम्म-ज्झाणच आयमसुक्कहनई कम्मसरूवस्सनाणेण ॥१६८॥ अग्गा-हणीअपुव्वाओ उद्धरीआपगईसगहागया तत्तोदेविंदेण कम्मग-थाकयासुकया ॥१६९॥ ततोऊद्धरिऊण नवाईसुकम्मभगसवेह सिरिजिणचदमुनिसर रज्जेभणीअसमासेण ॥१७०॥ सुविहियख-रयरगच्छे ॥ युगवरजिणचदसुरिसाहाए पाटगपुन्नपहाणा तस्सी-सासुमइसागरापुज्जा ॥ १७१ ॥ वरसाहुरगवायग तस्सीसापाठ-गासुयसमुद्दा सिरिएयसारअज्जा पुज्जाविज्जानिहाणाण ॥१७२॥ सुयवायगागुणड्ढा नाणधम्मा सुनाणधम्मधरा निवईणविसपुज्जा रायहसागणिप्पवरा ॥१७३॥ तस्सीसेणयभणीअ देवचदेणआ-यसरणट्ठा नाणच्छ(पाययेपाय) सावगवरदेवरायस्स ॥ १७४ ॥ इतिश्रीकर्मसवेधभगप्रकरण समाप्त ॥ शुभभवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥

स १९७१ वर्षे द्वि आषाढ सुदि १ दिने श्रीजेसलमेर महादुर्गमध्ये लिखित भोजक किशोरचद श्रीमद् विक्रमपुरवास्तव्य

धम्मायरीया ए पाठ जुदो छे ज्ञाननो अर्थ करे ते सुयए पाठ जुदो छे तेमाटे चेइय शब्दे जिनप्रतिमानो अर्थ छे तथा तुम्हे पुछो जे द्वारका राजग्रहमें देहरा तथा प्रतिमानो पाठ किहा छे ? तेहनो उत्तर नदीसूत्रे अणुत्तरोववाइ तथा अतगडना नोंधनो पाठ जोज्यो तथा तुम्हे कहेस्यो इतला बोल उपासकदशाप्रमुखे दीसता नथी तेहनो उत्तर जे नदी तथा समवायागमे जे पाठ तेहनो कोण उत्थापि शके ते जोज्यो तथा पुछ्यु जे किणे श्रावके प्रतिमा पुजी छे ? तेहनो उत्तर घणे श्रावके प्रतिमा पुजी छे ते पाठ श्रीभगवतीसूत्रे तुगीया नगरीना श्रावको वरणव्या तिहा अभिगयजीवाजीवा इत्यादिक पाठ घणा छे तिहा एहवो पाठ छे असहिज्झदेवासुरनागसुवन्नजरकरक्कसाकिन्नरकिंपुरिसगरुलगधव महोरगादीएहिं देव गणेहिं निग्गथाओपावयणाओ अणतिकम्मणिज्झा निग्गथे पावयणेनिस्सकीयानिक्कखीयालद्धट्ठागहीयट्ठा इत्यादि जे श्रावक कोई जातिना देवतानो सहाज वाछता नथी तो कोई बीजा देवतानी पूजा किम करे ? एहवा श्रावक जे देवने देव बुद्धि मानता हवे तेहनेज पूजे ते श्रावक थिवर आव्या तेवारे एकवार सर्व एकठा मिल्या एहवो विचार कह्यो जे एहवानिग्रथनो नाम साभल्यानो पिण महा लाभ छे तो तेहने वादवा जाता सेवा करता तो महानिर्ज्झरा महापर्यवसान कहेता मोक्ष थयो इम विचारी पोते पोताने घरे गया पछी सूत्रे पाठ छे ण्हायाकयबलिकम्माकयकोउयमगलपायछित्तासुद्धप्पावेसाइमगलपरिहीआ अप्पमहग्वाभरणालकीयशरीरा सयाओगिहाओपडिनिरकमति तिहा नाह्या ते अघोल कीवा, कयबलिकम्माते देवपूजा कीधी कयकोउयमगल ते तिलकादिक कर्या पछी वस्त्र पेहरीने

प्रकारनो रूर, इहा चेइय कहेना प्रतिमा छे तो खोटी कल्पना स्पामाटे करो छो ? तथा बीजे प्रश्ने पुछयो जे अहिंसाना ६० नाम कह्या छे अभओराप्रसातिअनाराओतुरकायत्तीग्पाविमलप्पभा निम्मलकरांति पुन माइणीनियगुणनिम्मियाइ पज्जयनामाणिहुतिअहिंसाए ॥ तिहा प्रतिमा तथा पूजानो नाम नथी तेहनो उत्तर तिहा अहिंसानो नाम जाणो तेहनो अर्थ देवपूजा छे पुजा एहनो दयानो नाम छे तो अजाण्योइमसर्व प्ररुपणाकरो छो ? बीजु पूजातो श्रीअरिहत प्रतिमानी ते तो विनय तथा वेयावच्च ते अभिंतर तपना भेद छे ते तप मोक्षनो मार्ग छे श्रीउत्तराध्ययन सूत्रे २८ मे अध्ययने तप ने मोक्षना च्यार कारण कह्या ते मध्ये गण्यो छे तथा तो परये पुछयो जे तोलनी खबर नहवे ते विचारी बोलीये तथा श्रावके कोणे देहरा कराव्या ? तथा प्रतिमा पूजी ? तेहनो उत्तर श्रीसमवायागसूत्रे तथा नदीसूत्रे सर्व आगमनो नूध छे तेमध्ये ए पाठ छे तिहा उपासकदशानो नोंध छे ते आलावो छे ते लखीये छे सेकिंतउवासगदसाओ उवासगदसासुणसमणोवासगाण नगराईउज्झाणाइ चेइआइवणसडाइ समोसरणाइरायाणोअम्मापियरो धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइआपारलोईया इड्ढिविसेसा भोगापरीआउ सुअपरिग्गहीआ तवोवहाणाइसीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्झणापडिमाओ उवसग्गसलिहणाओ भत्तपच्चक्खाणइयाउवगमण देवलोगगमण सुकुलपच्चायापुणबोहिलाभो अतकिरीयाआघविज्झति ए पाठ छे इहा चेइयाइशब्दे देहरा तथा जिन प्रतिमा जाणज्यो इहा चेइय एहनो अर्थ बीजो थाये नही, जेवननो अर्थ करे तेतो उद्यानवनखडनो पाठ जूदो छे कोइ साधुनो अर्थ करे ते

सूत्रमध्ये गुरुनी पाटनी आशातना टाल्वी कही छे, ते पाट अजीव छे तेपीण सर्व गुरुनो बहुमान छे, प्रतिमाने बहुमानें सिद्धनो बहुमान छे तथा सुधर्मा सभामाहि जिननी दाढा छे ते वदनी पूजनीक छे, तेतो अजीव स्कध छे तथा तुमे लख्यो जे परदेशी राजाए प्रतिमा का न करी ? ते परदेशी श्रावक थया पछी केटलोक जीव्या छे ते तथा सर्व श्रावक एकज करणी करे ए स्यो नियम छे ? तथा परदेशीए तथा आणद श्रावके कोइक साधुने पडिलाभ्या नथी तेमाटे तुझे साधुनी वीहराव्यामे दोष मानस्यो ? ए विचारी ज्योज्यो तथा लख्यु छे जे सूरीयाभे जे प्रतिमा पूजी ते राजधानीना मगलीक माटे पूजा करी तेतो खोटु बोलो छो, ए पाठ सूत्रमें नथी सूत्रमें तो एहवो पाठ छे "हीयाए सुहाए खेमाए निस्सेसाए आणुगामीयत्ताए भविस्सइ निश्रेयस कहेता मोक्षभणी ए अर्थ छे तथा पच्छा शब्दे जे इहलोकनो अर्थ छे इम कहे छे ते मूढ छे, दर्दुर देवताने अधिकारे पछा शब्दे आवता भवनो अर्थ छे तथा आचारागसूत्रे जस्सपूविवियिनो तस्सपछायिनो इहा पूर्व शब्दे पूठलो भव पछा शब्दे आवतो भव लीधो छे तथा ए भवे समकितनो लाभ ते घणो छे तथा तीर्थंकर बाद्याना फलनो पाठ उवायि मध्ये तथा पचमहाव्रत पाल्यानो पाठ आचाराग मध्ये तिहा पण हियाए इत्यादिक पाठ छे ते बे ठेकाणे लाभ मानो छो तो जिनप्रतिमा ठामे ना स्याने कहो छो अने किहा जिनप्रतिमा पूजानो पाप कह्यो नथी अने होय तो देखाडो तुमे लिख्यु जे भगवते हिंसानी ना कही छे तेतो अमे किहा कहुछु जे हिसा करवी, पण भगवते किसे सूत्रे प्रतिमा पूजानी ना कही नथी प्रतिमानी १७ प्रकारनी पूजा सूत्रे कही छे तथा तुमे

आभरणअलंकार पहेर्या, घरथी निकल्या ए राते सिद्धार्थ राजा तथा रुसभदत्त, सुदरशन शेठ शुम सुमद पुन श्रावकशखपुष्कली श्रावक कार्तिक शेठ नादना गया छे तेवारे कयबलिकम्मा तथा पठी घरे आवी साहमीवछल करीने दाक्षा लेवा निकल्या तेवारे न्हाया कयवलिकम्मा ए पाठ छे, इत्यादिक श्रावक अन्य देवनी पुजा न करे गोत्रज न पुजे, अरिहत देवनेज पूजे, तथा कोइ कहेस्ये कयबलिकम्मा पाठ कठीयारा प्रमुख अनेक थानके छे तेमा स्याना छे ? पोते जेहने देवबुद्धि माने ते तेहने पुजे तथा देवदत्त बालके कीम पुजा करी हशे तेतो बालकने मावीने पुजा करावी तो का न करे ? आज पण बालक पुजा करता दीसे छे तो कयवलीकम्मा ए पाठनो बीजो अर्थ शाने करो छो ? तथा दीक्षा महोच्छव घणा दीसे छे पण तिहा देहरा प्रतिमानो पाठ नथी तेहनो उत्तर जे दीक्षाने उतावला थयो तेवा, साधुने वहोराव्या रह्या नथी तो देहरा कराववा तो घरे स्याने रहे ? अने पहेला देहरा प्रतिमा छे तेतो नदीसूत्रे आगमनो घणो पाठ जोस्यो तो सर्व समो पडशे तथा तुम्हे पुछ्यु जे तीर्थंकरग्रहस्थपणे छता साधु साध्वी श्रावक श्राविकाए वाद्या नथी तेनो उत्तर घणा वाद्या छे ते पाठ ज्ञातासूत्रमा छे तथा तुमे लख्यो जे प्रतिमा एकेन्द्रिदल छे तेहवो वचन ससारनो जेहने भय नहुवे ते बोले ? जे कारणे श्रीभगवतीजी तो जिणपडीमा कही बोलावी छे देहराने सिद्धायतन कही बोलाव्यो तो तुमे कटोर वचन स्याने बोलो छो तथा तुमे दिसीवदना करो छो ते दीसी तो अजीव छे तो कीम वादो छो ? तिहा तुम्हे कहेस्यो जे अम्हारा मनमें तो सिद्ध छे तो जिनपडिमा वादतां पिण अमारा मनमा सिद्ध छे तथा

नाणन्नाओजिणवरेहिं ॥१॥ एहनो अर्थ गीतार्थ होय वे पोते विहार करे अथवा गीतार्थनी निश्राये विहार करवो एथी तिजो विहार अरिहते आज्ञा दीधी नथी ते माटे तुमे किस्या गीतार्थनी निश्राये विहार करो छो, तथा योग उपधानवहीने सिद्धांत भणे तेपण श्रावक आचारागादिक सूत्र भणे नही ते निशीथमा कह्यो छे जे भिक्खुअन्नत्थीय वागारत्थियवावायण वायजत्त साइज्जाति तस्सचोमासीयपरिहारठाण जे ग्रहस्थने सूत्र वचावे अथवा वाचताने अनुमोदे तेहने चारमासनो पाल्यो चारित्र जावे तथा प्रश्न व्याकरणसूत्रे अट्केरिसीयपुणसवनुभासियव जत्थदव्वेहिगुणेहिंपज्जवेहि कम्मेहि बहुविहेहिं आगमेहि नामरकाय निवाय उवसग्ग तद्धिअ समास सधिपद जोग उणादि कीरियावीहीणसर धाउ सर विभत्ति वन्न जुत्त भासियवे तथा अनुयोगद्वारे ७ नय ४ निक्षेपाकाल तिन, लिंग तीन, जाण्या पछी उपदेश देवो ते मारग नथी इत्यादिक अनेक बोल छे ते गीतार्थनी सेवनाथी पामीये इतिभद्र ॥ जे केइ श्रीजिनप्रतिमानी प्रजा मध्ये फूल पूजानी शका करे तेहने कहीये जे श्रीरायपसेणीसूत्रे १७ भेद प्रजाना पाठ छे पुप्फारुहण १ मालारुहण २ तहवन्नयारुहण ३ तथा पुप्फपगिहुपुप्फपगर एतलीपूजा फूलनी छे ८ तेमाटे पूजा फूलनी ते प्रमाण छे तथा श्रीभगवतीसूत्रे पण सूरीयाभनी पेरे पूजानी भलामणना पाठ अनेक छे तथा ज्ञातासूत्रे द्रौपदीने अधिकारे १७ प्रकारी पूजाना पाठ छे तथा समवायागसूत्रे चोत्रीस अतिशयने अधिकारे “ जलय थलय भासुरदसद्धवन्नेणजाणुस्सेहप्पमाणमित्तेण पुप्फपजोवयारकरइ इत्यादि पाठ छे” इहा समवायाग सूत्रमे देवता मनुष्यनो नाम कह्यो नथी तथा श्रीउववाईसूत्रे

प्रतिमानी पूजा हिंसामे गणो छो ते इम नथी प्रतिमानी पूजा तो विनय तथा वेयावच धर्ममा छे. तथा पूजा हिंसामे गणी तो ठाणागे नदीमे पडती साध्वीने साधु काढे तेमा हिंसा गणी नहीं, तथा आचारागसूत्रे बीजा साधु अजाणे पण शर्करानी भूले लूण वीहरीने पछे जाणे जे लूण वीहराव्यो ते जाणी ते पोते खावे ते पोते पीये तथा बीजा साधुसभोगीने आपे ते खायेपीए तथा साधु विषमवाटे वेलने रूपने लताने गृह्याना अवलबी उत्तरे जे ए पाठ आचारागसूत्रे छे तथा भगवती सूत्रमे साधुना हरस काढे तेहने क्रियाकर्म लागे नहीं तथा मल्लिनाथजी पुतलीमे कवला मूक्या तेमाटे धर्म माटे हिंसा करी तथा सुबुद्धि मंत्रिए पाणी पलटाव्यो ते धर्म माटे करी पिण मदबुद्धी न कह्या ते भगवतीसूत्रे २५ मे शतके साधु शासन माटे तेजोलेश्या मुके तेहने आराधक कह्यो, तथा जबूद्वीपपन्नत्तीए निर्वाण महोछव कर्यो छे थूभकर्यातेजिणभत्तिए धम्मेत्तिए पाठ छे इम केटला पाठ लीखीये ? अनेक पाठ छे ॥ तथा नदी सूत्रे जे आगम कह्या ते उत्थापीने ३२ मानो छो ते केनी आज्ञा छे ? तथा आवश्यक सूत्रपडिकमणा विना साधुपणो श्रावकपणो हुवेज नही ते तुम्हे आवश्यक सूत्रपडिकमणो मानता नथी तो श्रावकपणो ने साधुपणो केम धरो छो ? धरावो छो ? श्रीभगवतीसूत्रे साधु साध्वी श्रावक श्राविका पचमआराना छेहडा पर्यंत कह्या छे ते तुमारी श्रद्धामें हिवणा साधु साध्वी कोण छे ? तथा सूत्रे आचारज उपाध्याय कुलगणनीनिश्राये विचरे ते आराधक ते तमे कोनी निश्राये विचरो छो ? ते लिखज्यो, तथा श्रीभगवतीसूत्रे गाथा छे ॥ पढमोगीयत्थवीहारो बीयोगीयत्थयनिसीओभणीओ इत्तोतइयविहारो

नाणन्नाओजिणवरेहिं ॥१॥ एहनो अर्थ गीतार्थं होय ते पोते विहार करे अथवा गीतार्थनी निश्राये विहार करवो एथी तिजो विहार अरिहते आज्ञा दीधी नथी ते माटे तुमे किस्या गीतार्थनी निश्राये विहार करो छो, तथा योग उपधानवहीने सिद्धांत भणे तेपण श्रावक आचारागादिक सूत्र भणे नही ते निशीथमा कह्यो छे जे भिक्खुअन्नत्थीय वागारत्थियववाणयण वायजत्त साइज्जति तस्सचोमासीयपरिहारठाण जे ग्रहस्थने सूत्र वचावे अथवा वाचताने अनुमोदे तेहने चारमासनो पाल्यो चारित्र जावे तथा प्रश्न व्याकरणसूत्रे अट्केरिसीयपुणसवनुभासियव जत्थदद्येहिगुणेर्हिपज्जवेर्हिं कम्मेंहि बहुविहेर्हिं आगमेहि नामरकाय निवाय उवसग्ग तद्धिअ समास सधिपद जोग उणादि कीरियावीहीणसर धाउ सर विभत्ति वन्न जुत्त भासियवे तथा अनुयोगद्वारे ७ नय ४ निक्षेपाकाल तिन, लिग तीन, जाण्या पछी उपदेश देवो ते मारग नथी इत्यादिक अनेक बोल छे ते गीता-नी सेवनाथी पामीये इतिभद्र ॥ जे केइ श्रीजिनप्रतिमानी प्रजा मध्ये फूल पूजानी शका करे तेहने कहीये जे श्रीरायपसेणीसूत्रे १७ भेद पूजाना पाठ छे पुप्फारुहण १ मालारुहण २ तहवन्नयारुहण ३ तथा पुप्फपगिहपुप्फपगर एतलीप्रजा फूलनी छे ८ तेमाटे पूजा फूलनी ते प्रमाण छे तथा श्रीभगवतीसूत्रे पण सूरीयाभनी पेरे पूजानी भलामणना पाठ अनेक छे तथा ज्ञातासूत्रे द्रौपदीने अधिकारे १७ प्रकारी पूजाना पाठ छे तथा समवायागसूत्रे चोत्रीसे अतिशयने अधिकारे " जलय थलय भासुरदसद्धवन्नेणजाणुस्सेहप्पमाणमित्तेण पुप्फपजोवयारक्करेइ इत्यादि पाठ छे" इहा समवायाग सूत्रमे देवता मनुष्यनो नाम कह्यो नथी तथा श्रीउववाईसूत्रे

प्रतिमानी पूजा हिंसाम गणो छो ते इम नथी प्रतिमानी पूजा तो विनय तथा वेयावच्च धर्ममा छे. तथा पूजा हिंसामे गणो तो ठाणागे नदीमे पडती साध्वीने साधु काढे तेमा हिंसा गणी नहीं, तथा आचारागसूत्रे बीजा साधु अजाणे पण शर्करानी भूले लूण वीहरीने पछे जाणे जे लूण वीहराव्यो ते जाणी ते पोते खावे ते पोते पीये तथा बीजा साधुसंभोगीने आपे के खायेपीए तथा साधु विषमवाटे वेलने रूपने लताने गूछाना अवलंबी उत्तर जे ए पाठ आचारागसूत्रे छे तथा भगवती सूत्रमे साधुना दूरस वाढे तेहने क्रियाकर्म लागे नहीं तथा मल्लिनाथजी पुतलीमे कवला मूक्या तेमाटे धर्म माटे हिंसा करी तथा सुबुद्धि मंत्रिए पाणी पलटाव्यो ते धर्म माटे करी पिण मंदबुद्धी न कह्या ते भगवतीसूत्रे २५ मे शतके साधु शासन माटे तेजोलेश्या मुके तेहने आराधक कह्यो, तथा जम्बूद्वीपपन्नत्तीए निर्वाण महोछव कर्यो छे थूभकर्या तेजिणभत्तिए धम्मेत्तिए पाठ छे इम केटला पाठ लीखीये ? अनेक पाठ छे ॥ तथा नदी सूत्रे जे आगम कह्या ते उत्थापीने ३२ मानो छो ते केनी आज्ञा छे ? तथा आवश्यक सूत्रपडिकमणा विना साधुपणो श्रावकपणो हुवेज नही ते तुम्हे आवश्यक सूत्रपडिकमणो मानता नथी तो श्रावकपणो ने साधुपणो केम धरो छो ? धरावो छो ? श्रीभगवतीसूत्रे साधु साध्वी श्रावक श्राविका पचमाआराना छेहटा पर्यंत कह्या छे ते तुमारी श्रद्धामें हिवणा साधु साध्वी कोण छे ? तथा सूत्रे आचारज उपाध्याय कुलगणनीनिश्राये विचरे ते आराधक ते तमे कोनी निश्राये विचरो छो ? ते लिखज्यो, तथा श्रीभगवतीसूत्रे गाथा छे ॥ पढमोगीयत्थवीहारो बीयोगीयत्थयनिसीओभणीओ इत्तोतइयविहारो

स्सीओजावअण्णेबहवेवाणमतरादेवादेवीउ अप्पेगतियाउप्पलहत्थगताजावसतसहस्सपत्तहत्थगयाविजयदेवपिठ्ठओअणुगच्छइरत्ता "

इहा फूल चूंटी लीधा छे ए आलावे विजयदेवे पोते वावडीमें उतरीने फूल चूंटी लीधा तथा सामानिक देवता तथा बीजे देवताये पिण फूल पोताना हाथथी लीधा छे इहा कोइ पूछस्ये जे तिहा कोइ माली नथी ते माटे पोते लिधा तेहनो उत्तर जे माली नथी पिण देवता चाकर लोक घणा छे तेहनेज पासे का न मगावे जो पुष्प आण्यानो विधि होवे तोपण पोताना हाथथी लीधानो विधि छे तेमाटे पोते वावडी मध्ये उतरी लीधा छे तथा श्रीरायपसेणीसूत्रे सूरीआभाधिकारे

" ततेण से सूरियाभेदेवे पोत्थरयणगिण्हइ, पो २ गि त्ता पोत्थरयणमुयइ, पोत्थरयणविहाडेइ, त्ता २ पोत्थरयणवाएति, त्ता २ धम्मियववसायगिण्हइ, २ त्ता पोत्थरयणपडिणिक्खमति २ त्ता सीहासणाओअब्भट्ठेइ २ त्ता ववसायसभाओपुरत्थिमिल्लेण दारेण पडिणिक्खमइ २ त्ता जेणेव णदापोक्खरिणि तेणेव उवागच्छइ २ त्ता णदापोक्खरिणी पुरत्थिमल्लेण तोरणेणतिसोयाणपडिरूवेण पच्चोरुहत्ति २ त्ता हत्थपायपक्खालेइ २ त्ता आयते चोक्खे परमसुइभूए एगसेयमहरययामय विमलसलि लपुण्ण मत्तगयमुहागितिसमाणभिंगार पगिण्हति पच्चोरुहइ २ त्ता जाइतत्थउप्पलाइजावसयसहस्सपत्ताइगिण्हति णदाओ पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेगमणाए तएण त सूरियाभदेव चत्तारिसामाणियसाहस्सीओ जाव सोलसआयरक्खदेवसाहस्सीओ अण्णेयबहवेसूरियाभविमाणे जाव देवा देवीओअप्पेगइया उप्पलहत्थगया जावसत्तसहस्सपत्तहत्थगया सूरियाभ देवपिठ्ठओसमणुगच्छति ततेण सूरियाभदेवबहवेआभिओगिय

कोणिकने अधिकार श्री ीर समोसर्या तेवार अनेकजन चपार्या निकल्या जे "अप्पेगइयावन्दणवत्तियाए अप्पेगइयापूयणवत्तियाए अप्पेगइयागुपणुयस्सामो अप्पेगइयाविउलाइ अट्ठाओदेओआई असिणाइगहिस्सामो" इत्यादि पाठ छे तिहा पूयणवत्तीयाए ए पाठनो अर्थ टीकामध्ये पूजनपुप्पमालादिना इम कह्यो छे इहा श्रीतीर्थकरने पूष्फनी पुजा दीसे छे ए पाठर्या श्रीभगवतीसूत्रे पण छे तथा नदीसूत्रे श्रुतज्ञाने पाठे जेम अरिहतेहिं भगवतेहिं उप्पन्नाणदसणधरेहिं निल्लुक्कनिरक्खीय महीअपूइगह पाटनो अर्थ टीकाकार पिण महीय शब्दे चदनादि पुइएहिंपुप्फमालादिके करीने ए पाठ अनुयोगद्वारमध्ये पण छे इम पुप्फपूजाना अनेक पाठ छे, ते माटे सका न करवी वली केइक इम कहे छे जे फूल वेचाता जडे ते चढाववा पण पोते चूटी चढाववा नही तेपण अजाण्यु कहे छे जे " श्रीजीवाभिगमसूत्रे "ततेणसेविजएदेवेपोत्थयरयणगिण्हइ पो २ गि पोत्थयरयणमुयति पो २ त्ता पोत्थयरयणविहाडेति पो २ त्ता पोत्थयरयणवाइए पो २ त्ता धम्मियववसायपिगेण्हेति ध २ त्ता पोत्थयरयणपडिनिक्खमति पो २ त्तासीहासणतोअम्भुट्ठेति सी २ त्ताववसायसभातोपुरत्थिमिल्लेणदारेणपडिनिक्खमइ प २ त्ता जेणेवणदापुक्खरणीतेणे व उवागच्छति २ त्ताणदापुक्खरिण अणुप्पयाणिकरमाणे पुरत्थिमिल्लेण तोरणेण अणुपविसति २ त्ता पुरत्थिमिल्लेण तिसोपाणेपडिरूवेण पच्चोरुहति २ त्ता हत्थपाद पक्खालेति ह २ त्ता एगमहसेतरजतामय विमलसलिलपुण्णमत्तगयमहामुहागिइ समाणभिंगार पगिण्हति प २ त्ता जाइतत्थउप्पलाइपउमाइजावसत्तपत्ताइसहस्सपत्ताइताइगिण्हति २ त्ता णदातोपुक्खरिणिओपच्चुत्तरेइ प २ त्ता जेणेवसिद्धायतणेतेणेवपाहारेत्थगमणाइतएणतविजयदेवचत्तारि सामाणियसाह-

स्सीओजावअण्णेबहवेवाणमतरादेवादेवीउ अप्पेगतियाउप्पलहत्थगताजावसतसहस्सपत्तहत्थगयाविजयदेवंपिट्ठओअणुगच्छइत्ता "

इहां फूल चूटी लीधा छे ए आलावे विजयदेवे पोते वावडीमें उतरीने फूल चूटी लीधा तथा सामानिक देवता तथा बीजे देवताये पिण फूल पोताना हाथथी लीधा छे इहां कोइ पूछस्ये जे तिहां कोइ माली नथी ते माटे पोते लिया तेहनो उत्तर जे माली नथी पिण देवता चाकर लोक घणा छे तेहनेज पासे का न मगावे जो पुप्फ आण्यानो विधि होवे तोपण पोताना हाथथी लीधानो विधि छे तेमाटे पोते वावडी मध्ये उतरी लीधा छे तथा श्रीरायपसेणीसूत्रे सूरीआभाधिकारे

" ततेण से सूरियाभेदेवे पोत्थरयणगिण्हइ, पो र गि त्ता पोत्थरयणमुयइ, पोत्थरयणविहाडेइ, त्ता २ पोत्थरयणवाएति, त्ता २ धम्मियववसायगिण्हइ, २ त्ता पोत्थरयणपडिणिकखमति २ त्ता सीहासणाओअब्भुट्ठेइ २ त्ता ववसायसभाओपुरत्थिमिल्लेण दारेण पडिणिकखमइ २ त्ता जेणेव णदापोरकरिणि तेणेव उवागच्छइ २ त्ता णदापोकखरिणी पुरत्थिमल्लेण तोरणेणतिसोयाणपडिरूवेण पच्चोरुहत्ति २ त्ता हत्थपायपकखालेइ २ त्ता आयते चोक्खे परमसुइभूए एगसेयमहरययामय विमलसलि लपुण्ण मत्तगयमुहागितिसमाणभिगार पगिण्हति पच्चोरुहइ २ त्ता जाइतत्थउप्पलाइजावसयसहस्सपत्ताइगिण्हति णदाओ पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ २ त्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेगमणाए तएण त सूरियाभदेव चत्तारिसामाणियसाहस्सीओ जाव सोलसआयरक्खदेवसाहस्सीओ अण्णेयबहवेसूरियाभविमाणे जाव देवा देवीओअप्पेगइया उप्पलहत्थगया जावसत्तसहस्सपत्तहत्थगया सूरियाभ देवपिट्ठओसमुणुगच्छति ततेण सूरियाभदेवबहवेआभिओगिय

देताप देवीओय अण्णेगइयाण्त्सहत्थगयाओ जावअण्णेगइया यू नरूडच्छहत्थगया दृट्टतुट्टाजावआगुरियाभ देवपिट्ठओसमणुगच्छति तेतेण णे सूरियाभेदेवे चउहि सामाणिपसाहस्सीहिजावअण्णेहियन हुहिवरियागविमाणवासीहिं देवेहि देवीहियसद्धिसपरिवुडेसव्वडीए जावणाइयरवेण जेणेव सिद्धायपणे तेणेव उवागच्छइ सिद्धायणपुर त्थिमिल्लेग दारेणे अणुपविसति २त्ता जेणेव देवच्छए जेणेव जिण पडिमाउ तेणेव उवागच्छइ जिगपडिमाणआलोए पणामकरेति २त्ता लोमहत्थगगिण्हइ २ त्ता जिणपडिमाण लोमहत्थएण पमज्जइ २ त्ता जिणपडिमाओसुरभिणागधोदएणण्हाणेनि ण्हाणित्तासरसेण गोसीसचदणेणगायाण अणुलिप्पइ २ त्ता जिणपडिमाणअहि याइदेवदूसाइ जुयलाइ णियसेइ २ त्ता पुप्फारुहण मल्लारुहण चुण्णारुहण गवारुहण वण्णारुहण चुण्णरुहण वत्थारुहण आभरुहण करेइ करेत्ताआसत्तासत्तविउलववग्घारियमल्लदामक लाव करेइ २ त्ता कयग्गहगहित्तकरयल पभट्ठ विप्पमुक्केण दस द्धवण्णेण कुसुमेण सुक्कपुप्फ पुजोवयारकलिय करेति करेत्ता जि णपटिमाण पुरतोअच्छेहिंसण्हेहिंसेएहिंरयणामएहिं अच्छरसतदुले हिं, अट्ठमगलेआलिहइ तजहासत्थियजावदप्पणतयाण तरचणचद प्पहरयणवइरवेरुलियविमलदडकचणमणिरयणभत्तिचित्तकालागुरुप वरकुदरक्क तुरुक्कधूवमघमघतगवत्तामाणुचिट्ठति धूववट्टिविणिमुयत वेरुलियमयकडुछयपग्गहियपयतेणधूवदाऊण जिणवराण अट्ठसय विसुद्धगथजुत्तेहिंअपुणरुत्तेहि महावित्तेहि सथूणइ सत्तट्ठपयाहि पच्चोसक्कइ २त्ता वामजाणुअचेइ दाहिण जाणुधरणितलसिनिहट्टु तिक्खूत्तोमुद्धाण धरणितलसि णिव्वोडेचि २ त्ता इसपच्चूण्णमइ इसिंपच्चूणमित्ता करयलपरिग्गहियसिरसावत्त मत्थएयज एव वयासी णमोत्थुणअरिहताणजावसपत्ताणवदति णमसइ २ त्ता

ए रायपसेणीसूत्रे पाठ छे सूरीयामे पोते हाथे फूल चुटी लीधा छे, सामानीक प्रमुख पासे मगाव्या नथी तथा जबुद्वीपपन्नतीमे जन्माभिषेक जेणेवरखीरोदसमुद्दे तेणेव आगमखीरोदग गिण्हति २ त्ता जाइतत्थउप्पलाइ पउमाइ जावसहस्सपत्ताइ तावगिण्हति २त्ता इत्यादि सूत्रमे पाठ हाथना चूट्या फूल लेवाना छे तथा कोइक कहेसे जे एतो चूट्या नथी सहेजे पड्या लीधा छे तेहने कहीये छे, जे हजारगमे सहेजे चूट्या वावडीमध्ये हवेज नही, तथा निगाइने अधिकारे निगाइ राजाए आगानी माजरीयो पोते चुटी लीधी तेवारे कटक बधे चुटी लीधी ते पाठ उववायीमध्ये जोजो अन्नयाणुजुत्तनिग्गओपेछइ कुसुमाचूअराइणायेगामजरागहीयाएवरकवात्तरेणलयसेण मजरीपत्त पवाललयाइ कट्ठानिसेसो कओ पडिनियत्तओपुच्छइ कहे सोरुक्खोअमन्नणादसाओ कहए सयावेत्थोभणइ तुम्हेहि एगामजरीगहीयापच्छसव्वणगहेतेण एवकओ ॥ इहा गहीय शब्दे चूट्यानो अर्थ छे, तथा कोइ कहेस्ये जे एतो देवताये कर्यो छो ते श्रावके करयानो किहा पाठ नथी तेहने कहीये जे जो देवतानी करणी ताहरे न करवी तो शक्रस्तव किम करे छे ? तथा स्नान केम मानो छो ? स्नान नो कलस ढोलो छो ते देवतानी करणीज छे, तथा सूरीयाभनी पूजानी भलामण द्रौपदीने पाठे छे देव अने पूजाकरणी तथा मनुष्यनो पाठ एकज छे तेमाटे देवतानी करणी श्रावक करे ए श्रद्धाप्रमाण छे तथा जे फूल चुटवानी ना कहे ते बीजनी जीवनि कामना माटे तेवारे फलनी पूजा किम करी शके ? अने फलनी पूजानो तो सूत्रे पाठ छे तथा जे पूजाने हिंसामे गणे तेहने कहीये जे श्री प्रश्नव्याकरण सूत्रे प्रथम संवरद्वारे अहिंसाना ६० नाम कह्या

छे तिहां पूजा ते दया कही छे ते पाठ लिखीइ छे. अभउसत्वसत्तिजनाराओ गुणकापवत्तीपपानिमलप्पभानिम्मलकगत्ति एनमाइणिनियगुणनिम्मियाइपज्झायनामाणिहुंति अहिंसाए भगवइए इत्यादि पाठे पूजा ते अहिंसामे गणी छे, तो तुम्हे हिंसामे किम गणो छो ? तथा भगवती सूत्रे " शुभयोगपवृत्त्य-अणारभा " ए पाठ शुभयोग प्रवृत्तिने आरभनी ना कही छे विनय तथा वैयावच्च ते तपना भेद छे तप ते मोक्षमार्ग-मध्ये श्रीउत्तराध्ययने २८ मे अध्ययने कह्या ते तुमे हिंसामें केम कहो छो ? तथा विवहारसूत्रे सिद्धवेयावच्चेण महानिज्ज-रामहापज्जवसाणभवति" तेमाटे सिद्धवेयावच्च ते पूजा छे तथा कोइ पूछे जे श्रावके प्रतिमा किहा पुजी छे तेहने केहवो जे श्रीभगवतीसूत्रे तूगीया नगरीने श्रावके पुजा करी छे शख पुष्कलीये पूजा करी छे तथा समवायागसूत्रे द्वादशागीनी हूडीने अधिकारे उपासकदशानी हूडीमध्ये दश श्रावकना चैत्य एहवो पाठ छे ए पाठमे चैत्य तो साधु थाय नहीं, ज्ञान थाय नही, वृक्ष थाय नही ते सर्वना पाठ जुदा छे, तथा नदीसूत्रे पिण पाठ छे तथा नदीमध्ये जे आगम कह्या ते सर्व माने तेज समकिती जाणवो श्रीअनुयोगद्वारसूत्रे नि-र्युक्तिनी हा कही छे ते निर्युक्तिमध्ये पूजाना अनेक अधि-कार छे, तथा तदूलवेयालीपयन्नानी टीकामध्ये समवसरणना फूल सचित्त ते उपर साधु साध्वी चाले प्रवचनसारोद्धार टीकाये पण ए मत छे तथा कोइ कहेश्ये जे फूलने प्रोइ नहीं तेहने कहीये जे हीरप्रश्नमध्ये कह्यु छे ते पाठ ॥ श्राद्धदिनकृत्य तथा पचास-कमध्ये फुल प्रोवानो पाठ छे तेह हीरप्रश्नमध्ये जोइ लेज्यो ॥

॥ गुणठाणाअधिकार ॥

(आगमसारान्तर्गत)

प्रथम गुणठाणानो विचार लखीइ छे प्रथम मिथ्यात्वगुणठाणु १, सास्वादनगुणठाणु २, मिश्रगुणठाणु ३, अविरत समकित गुणठाणु ४, देशविरति गुणठाणु ५, प्रमत्तगुणठाणु ६, अप्रमत्तगुणठाणु ७, अपूर्वकरण गुणठाणु ८, अनिवृत्तिबादर गुणठाणु ९, सूक्ष्मसंपराय गुणठाणु १०, उपशांतमोह गुणठाणु ११, क्षीणमोह गुणठाणु १२, सयोगीकेवली गुणठाणु १३, अयोगिकेवलि गुणठाणु १४, अरिहंतनाभाख्या वचन साचा करी सद्दहेनहि ते मिथ्यात्व गुणठाणो कहीइ, तेहना भेद पाच छे अभिग्गहिय मिथ्यात्व जे लीधो हठ मुकी सके नही १, अनभिग्रहिक मिथ्यात्व जे देव तथा कुदेव तथा गुरु तथा कुगुरु धर्म, अधर्म सरिखा करी माने परीक्षाबुद्धीनही २, अभिनिवेशमिथ्यात्व जे खोटाने खोट जाणे पण हठ मुकि सके नहीं ३, सांशयिक मिथ्यात्व जे केवलिनाभाख्या वचन तेमा संशय उपजे प्रीपरतीत आवे नही ४, अनाभोग मिथ्यात्व जे काई जाणपणु उपजे नहि एकेंद्रीविकलेंद्रीनी पेरे तथा श्रीठाणागसूत्रे मिथ्यात्वना दसबोल कह्या छे, जीवने अजीव करी माने ते मिथ्यात्व १, तथा अजीवने जीव करी माने ते मिथ्यात्व २, तथा धर्मने अधर्म करी माने ते मिथ्यात्व ३ तथा अधर्मने धर्म करी माने ते मिथ्यात्व ४, मोक्षनोमार्ग ज्ञानदर्शन चारित्रतप तेहने मोक्षमार्ग न माने ते मिथ्यात्व ५, तथा मोक्षनो मार्ग नथी संसारनो हेतु छे तेहने मोक्षमार्ग करि माने ते मिथ्यात्व ६, तथा मोक्ष गया नथी तेहने मोक्ष माने

ते मिथ्यात्व ७, जे मोक्ष गया तेहने मोक्ष न माने ते मिथ्यात्व ८, जे साधु विषयादिकना त्यागी तेहने असाधु माने ते मिथ्यात्व ९, तथा जे साधु नथी तेहने साधु करी माने ते मिथ्यात्व १० ते मिथ्यात्वनो चाल तीन प्रकारनो छे देवगत मिथ्यात्व ते कुदेव सरागि तेहने देव करी माने १, बीजो गुरुगत जे कुगुरुने गुरु करी माने त्रीजो धर्मगत मिथ्यात्व संसारिधर्मने धर्मनाधर्म करी माने ते मिथ्यात्व ते मिथ्यात्वनी स्थिति तीन प्रकारनी छे अनादि अनंतनी अभव्य जीवने, अनादि सांत भव्यजीवने, सादिसांत पडवाइने, ते जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्टी अर्द्धपुद्गलपरावर्त्त काइंक उणी छे बीजु गुणठाणु सास्वादन ते कोईक जीव उपसमकितथी पडतो मिथ्यात्व गुणठाणे पोतो नथी वचे छआवलिका रहे ते सास्वादन गुणठाणु कहीइ तेहनो दृष्टांत छे कोइ पुरुष खीरखाड घृत जमीने तुरत वमतो होइ ते वमता काईक स्वाद आवे तिम समकितियी पडता पिण काइक वासना रहे तेहने सास्वादन कहिइ २ त्रीजो गुणठाणो मिश्र कोइ जीव क्षयोपशम समकितथी पडी मिश्रमोहनीने उदये मिश्रगुणठाणे आवे अथवा मिथ्यात्वथी निकली समकित गुणठाणे आवता वचे मिश्रमोहनीने उदये मिश्र गुणठाणे आवे ते जीव अंतमुहूर्त्तकालसीम रहे एहने समकित मिथ्यात्वदृष्टि कहीइ एहनो दृष्टांत कहे छे जे कोई जीव नालियरदीपमा वसतो होइ ते नालियरखाइ तेहने अनदीठे राग न उपजे तेम द्वेष पण न उपजे तिम ए जीवने जिनधर्म साचो सांभलता राग पण न उपजे द्वेष उपजे नही एहवा जीवने मिश्रगुणठाणु कहीइ एहनी स्थिति अंतमुहूर्त्तनी ३ चोथो अविरत समकित, तेहना बे भेद छे त्रण छे, तेहनो

पेहलो भेद उपसमसमकित जे जीव अनादि मिथ्यात्व सन्नी पचेंद्री पर्याप्तो कोई कारण पामीने ससारथी उभगे नरक निगोदथी ते पामे, जनमभरणना दुःखथी बीहे तेवारे ए सर्व ससार खोटो जाणे, धर्म जाणवानी रुचि घणी करे, दयापाले, दानदे, तप करे, श्रावकना बार व्रत पाले, साधुना महाव्रत पाले ते जीव यथाप्रवृतिकरणे वर्तता कहीइ, एतली करणीसुधी भव्य तथा अभव्य जीव आवे, नवग्रैवेयकसुधी जाए पण समकित पाम्यो नथी ते माटे लेखामा नावे, तोपण कोई जीव वैराग्य परिणाम सहित ससारने असार जाणतो साचा धर्मनी परीक्षा करतो सातकर्मनी थीति उत्कृष्टी खपावे, एक कोडाकोडी सागरोपम बाकी थीति सातकर्मनी रहे तेवारे अपूर्वकरण करे तेवारे एक ज्ञान मार्ग साचो करी माने, ऋद्धिमदमभाव जाणवानी विशेष थाइ तेवारे पछे एक आत्मा पोताना शरीरने विषे रह्यो, पण अशरीरि छे अरुपी छे, अविनासी छे, अनतज्ञानमयी अनतदर्शनमयी, अनतचारित्रमयी, अनतअगुरुलघुमयी, अनततपमयी, अनतवीर्यमयी, निर्मल अलेप अखड छे, तेहना प्रदेश असख्याता छे, प्रदेशे २ अनता गुण अनता पर्याय छे, उपयोग लक्षण ते माहरो धर्म छे, ए धर्म जे जे करता प्रगट थाये, गुणीश्री, अरिहत, सिद्ध, आचारज, उपाध्याय, साधु तथा सिद्धात तेहनो विनय तथा वैयावच्च करवो, अरिहतना आगम प्रमाणप्रतीत राखे ते समकित कहीइ, ते समकितना तिन भेद छे उपसम समकित १ क्षयोपशम समकित २ क्षायकसमकित तिहा अनतानुबधिकषाये मिथ्यात्वमोहनी, मिश्रमोहनी, समकितमोहनी एसातप्रकृति उदये आवे ते खपावी अने उदये नथी आवी ते विपाकेउपसमावी छे, प्रदेसे उदये छे, समकितमोहनी उदय

ते मिथ्यात्व ७, जे मोक्ष गया तेहने मोक्ष न माने ते मिथ्यात्व ८, जे साधु निरपरिग्रहार त्यागी तेहने असाधु माने ते मिथ्यात्व ९, तथा जे साधु नथी तेहने साधु करी माने ते मिथ्यात्व १० ते मिथ्यात्वनी चाल तीन प्रकारनी छे देवगत मिथ्यात्व ते अदेव सरागि तेहने देव करी माने १, बीजो गुरुगत जे कुगुरुने गुरु करी माने बीजो धर्मगत मिथ्यात्व ससारिधर्मने धर्मनापर्व करी माने ते मिथ्यात्व ते मिथ्यात्वनी स्थिति तीन प्रकारनी छे अनादि अनतनी अभव्य जीवने, अनादि सात भव्यजीवने, सादिसात पडवाइने, ते जघन्य अतर्मुहूर्त उत्कृष्टी अर्द्धपुद्गलपरावर्त्त काइक उणी छे बीजु गुणठाणु सास्वादन ते कोइक जीव उपसमकितथी पडतो मिथ्यात्व गुणठाणे पोतो नथी वचे छआवलिका रहे ते सास्वादन गुणठाणु कहीइ तेहनो दृष्टात छे कोइ पुरुप खीरखाड घृत जमीने तुरत वमतो होइ ते वमता काइक स्वाद आवे तिम समकितिथी पडता पिण काइक वासना रहे तेहने सास्वादन कहिइ २ त्रीजो गुणठाणो मिश्र कोइ जीव क्षयोपशम समकितथी पडी मिश्रमोहनीने उदये मिश्रगुणठाणे आवे अथवा मिथ्यात्वथी निकली समकित गुणठाणे आवता वचे मिश्रमोहनीने उदये मिश्र गुणठाणे आवे ते जीव अतमुहूर्त्तकालसीम रहे एहने समकित मिथ्यात्वदृष्टि कहीइ एहनो दृष्टात कहे छे जे कोई जीव नालियरदीपमा वसतो होइ ते नालियरखाइ तेहने अनदीठे राग न उपजे तेम द्वेष पण न उपजे तिम ए जीवने जिनधर्म साचो साभलता राग पण न उपजे द्वेष उपजे नही एहवा जीवने मिश्रगुणठाणु कहीइ एहनी स्थिति अतमुहूर्त्तनी ३ चोथो अविरत समकित, तेहना बे भेद छे गण छे, तेहनो

साचा जाणे ते निसर्गरुचि १ अभिगमरुचि जे जिनागमनासूक्ष्म अर्थ जाणवानी रुचि गुरुना मुखथी उपदेशथी जाणे ते उपदेशरुचि २ श्रीअरिहंतकेवलीना कह्या वचननी आणा प्रमाण करे ते आणारुचि ३ सूत्ररुचि जिनसूत्र साभलता साचा मारगनी परतीत उपजे समकित पामे ४ बीजरुचि सिद्धांतनु एकपद साभलता घणाबोलनु जाणपणु आवे श्रद्धासमीथाइ ५ अभिगमरुचि जे ११ अगादिक ८४ आगम तथा निर्युक्तिभाष्य चूर्णिटीकाना अर्थ जाणे सर्व बोलना परमार्थ जाणवानी रुचि ६ विस्ताररुचि ६ द्रव्यनाभाव ४ निक्षेपेसातनये करी च्यार प्रमाणे करी जाणे ७ क्रिया रुचि जे जीव जिनशासननी क्रिया साची करी सूत्रमा कही ते रीते कर आघीपाछी न करे ८ सक्षेपरुचि, जे जीव सिद्धातना जाणगीतार्थ आगमने अनुसारे जे अर्थ कहे ते साचा करी माने ९ धर्मरुचि, आतमानो धर्म ज्ञानदर्शन चारित्रमयी अरूपी आतमानो परिणाम भावदया प्रमुख गुणी श्री अरिहंतादिकनो बहुमान वेयावच्च ते धर्म करी माने बीजा बाह्य तपबाह्य किरिया जे आगमना कह्या परमाणे करे ते धर्मनो कारण करी माने ते धर्मरुचि समकित मोक्षमार्ग मूल छे, समकित विना जे करणि ते ससार खाते छे (पण) मोक्षमारगनी न जाणे ए चोथो गुणठाणो कह्यो ४ पाचमो देशविरति गुणठाणो इहा जीवने व्रतपच्चखाण आवे जघन्ये एक नवकारसीपच्चरकाण तथा कदमूलना पच्चखाण साची श्रद्धा सहीत थया होवे तेहने श्रावक कहीइ उत्कृष्टे इद्रीसुखनी वाछा विना श्रावकना बारव्रतपाले ते उत्कृष्टो श्रावक कहीइ बारव्रतना नाम १ स्थूलप्राणाति पात विरमण, जे त्रस जीवने निरापराध हणे नहि २ स्थूलमृषावाद विरमण, जे मोटका पाच

आवरो छे तेणे समकितमा अतिचार लागे छे तेहने क्षयोपशम समकित कहीइ, एहनी थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त छे उत्कृष्टि ६६ साठठिसागरोपम केवलाएक मनुष्यभव अधिक एतली स्थिति रहे ए समकितने पाच अतिचार लागे तेहना नाम ॥ संका जे आगममा कह्यो ते साचो पिण काईक संदेह उपजे १, अतिचार ॥ कंखा बीजा मतना शास्त्र तथा देव हरिहरादिक सरागि तथा ते मन गुरुमतिस्तारे तेहने काईक रूडापणे जाणि वांछा करिए २ अतिचार, वितिगछाजे धर्मअरिहतनो कह्यो करीइ पण एहनो फल थासे के नही थाय अथवा जिन सासनथी बीजा काईक बीजा मतनी करणी रुडी छे एहवो परिणाम आवे ते त्रीजो ३ अतिचार पसस जे परमतनी परससा करे जे बीजा मतना देव तथा लिंगीयाता कष्टकरणी तथा कोई चमत्कार देखीने ते उपरे राग आवे तेहने पगे लागे तेहना गुण बोले ए चोथो ४ अतिचार जाणवो ॥ सथवो जे बीजा मतना देव तथा गुरु तथा ते मतना जे सेवक तेहनो परिचय मेलाप घणो करे बीजा मतनी वात करे साभले पाचमो अतिचार ॥ ए क्षयोपशम समकित एक जीवने असख्यातीवार आवे अने वली असख्यातीवारजाए, जे आगमने आधारे राखे तेहने रहे तेपछे क्षायिक समकित थाइ ते क्षायिकनो अर्थ लिखीइ छे अनतानुबधी च्यार ४ मिथ्यात्व मोहनी १ मिश्रमोहनी २ समकितमोहनी ३ ए सात प्रकृति सर्वथा जे जीव खपावीने निरमलीपरतीतकिधी ते क्षायिकसमकिती कहीइ ए आव्या पछे जाय नही ए समकितवाला जीवने दस जातिनी रुचि उपजे ते लिखीइ छे निसर्गरुचि नव तत्त्व ९ छे द्रव्य तेहना ४ निक्षेपा सातनय पोतानी बुद्धिथी

साचा जाणे ते निसर्गरुचि १ अभिगमरुचि जे जिनागमनासूक्ष्म अर्थ जाणवानी रुचि गुरुना मुखथी उपदेशथी जाणे ते उपदेशरुचि २ श्रीअरिहतकेवलीना कह्या वचननी आणा प्रमाण करे ते आणारुचि ३ सूत्ररुचि जिनसूत्र साभल्ता साचा मारगनी परतीत उपजे समकित पामे ४ बीजरुचि सिद्धातनु एकपद साभलता बधाबोल्नु जाणपणु आवे श्रद्धासमीथाइ ५ अभिगमरुचि जे ११ अगादिक ८४ आगम तथा निर्युक्तिभाष्य चूर्णिटीकाना अर्थ जाणे सर्व बोलना परमार्थ जाणवानी रुचि ६ विस्ताररुचि ६ द्रव्यनाभाव ४ निक्षेपेसाननये करी च्यार प्रमाणे करी जाणे ७ क्रिया रुचि जे जीव जिनशासननी क्रिया साची करी सूत्रमा कही ते रीते कर आघीपाछी न करे ८ सक्षेपरुचि, जे जीव सिद्धातना जाणगीतार्थ आगमने अनुसारे जे अर्थ कहे ते साचा करी माने ९ धर्मरुचि, आतमानो धर्म ज्ञानदर्शन चारित्रमयी अरूपी आतमानो परिणाम भावदया प्रमुख गुणी श्री अरिहतादिकनो बहूमान वेयावच्च ते धर्म करी माने बीजा बाह्य तपबाह्य किरिया जे आगमना कह्या परमाणे करे ते धर्मनो कारण करी माने ते धर्मरुचि समकित मोक्षमार्ग मूल छे, समकित विना जे करणि ते ससार खाते छे (पण) मोक्षमारगनी न जाणे ए चोथो गुणठाणो कह्यो ४ पाचमो देशविरति गुणठाणो इहा जीवने व्रतपच्चखाण आवे जघन्ये एक नवकारसीपच्चख्काण तथा कदमूलना पच्चखाण साची श्रद्धा सहीत थया होवे तेहने श्रावक कहीइ उत्कृष्टे इद्रीसुखनी वाछा विना श्रावकना बारव्रतपाले ते उत्कृष्टो श्रावक कहीइ बारव्रतना नाम १ स्थूलप्राणाति पात विमरण, जे त्रस जीवने निरापराध हणे नहि २ स्थूलमृषावाद विरमण, जे मोटका पाच

रूप्यालीक १, गवालीक २, भोमालिक ३, थापिणमोसो ४, कुडीसाख नबोले ५ ॥ ३ थूलअदत्तादान विरमण, जे चोरी कीधे राजा दंडे तथा च्यार लोक मांणस ठरको दे अथवा पोताने भय लागे अथवा सामाना जीवने त्रास्को पडे ते मोटी चोरी करवी नहि ४ थूलमैथुन विरमणव्रत, जे परस्त्री मनुष्यणी तथा तिर्यंचणी तथा देवतानी भोगवा नहीं पाच इंद्रीना स्वाद घणा मगनपणे सेवे नही ५ थूलपरिग्रह विरमण जे धनादिक नव भेदनो परिग्रहनो पच्चखाण करे, इंछा परिमाण करे अथवा पोता पासे जे धन होइ ते राखी बीजानो पच्चखाण करे ६ दिक परिमाणव्रत जे च्यार दिश तथा ऊचो तथा नीचो दिसी जावानो मान करे ७ भोगोपभोग परिमाण व्रत जे नीम साचवे पन्नर कर्मादान न करे, जे पोताने खावेपीवे तथा वस्त्रोनु मान राखे ८ अनर्थ दंड विरमणव्रत, ते जे मोटका पाप रगवा खेतर खेडवा, भाठी जे चूना प्रमुखनी करवाना पच्चखाण करे ९ सामायिकव्रत जे जघन्य २ घडी सुद्धी ससारना काम मूकी कुटुंब धननो राग तजी कोइथी द्वेष न करवो एहवो समपरिणाम राखवो ते सामायिक कहिइ १० देसावगासिकव्रत जे बे घडीथी च्यार पोहोरथी उणुकाल दिसनु मानकरि थीरचित्तसमतापणे रहेवु ते देसावगासिकव्रत जाणवु ११ पोषधव्रत च्यार पोहर अथवा आठ पोहोर सूधी समतापणे साधुपेरे श्रावकवरते, मन वचन काया समताइ राखे ते पोषधव्रत कहीइ १२ अतिथिसविभाग बारमुव्रत जे श्रावक जे ते साधुने विहरावीने पछे जिमवु जो तेहवा साधुनो योग न मिले तो सावर्मिक श्रावकने जीमाडीने जमवा बेसवु बेठा पछे थोडीसीक्वार साधुजीनी वाटजोवी इम करता

साधूजी नाव्या तो एहवी भावना भाववी जे वन ते श्रावक जे साधुजीने वहोरावीने जिमता हृस्ये इम करता चितवी जिमवा वेसे ए बारव्रत धरे ते श्रावक कहीइ श्रावकने जघन्य ३ वार उत्कृष्टे ७ वार चैत्यवंदन करवु, अरिहंतदेवसिद्ध भगवतने वदना करवी तथा नित्य पडिक्कमणु बे वार करवु जो नित्य न थाये तो पाखीनो पडिकमणु नियमा करवु तथा पच्चरकाण प्रभातना नोकारसी, अवस्य साचववी, रात्रिचउविहार तिविहार दुविहार ए ३ माहि एक पच्चरकाण अवस्य करवु ए पाचमा गुणठाणानी स्थिति जघन्य अतमुहूर्त्त उत्कृष्टे उणी पूर्वकोडी वर्षनी जाणवी ए जीव अढार पाप स्थानक आलोइने निर्मल थयो चारित्रफरसे ते कहे छे, अथ अढारे पाप स्थान लिखीइ छे कोइ भव्य जीव अवसर पामीने जैनागम सुणता ससारथी उभग्यो थको मोक्ष सुखनो अभिलाष करे पण आलबन विना कार्य नीपजवो दुक्कर छे तेथी प्रथम देवतत्त्व श्री वीतराग अनत ज्ञानमय अनतदर्शनमय शुद्ध स्वरूपी आत्म रुद्धिभोगी आत्मालबी आत्मपरणामी जेहने अवलबीने अनता जीव अव्याबाध सुख वरे ते देवतत्व तेहने सेववे सर्व जीव ससारभयथी छुटे तथा निग्रथपच महाव्रतधारी सवरस्वरूपी एक निर्मल मोक्षमार्गने विषे जेहनी दृष्टि छे, शरीर इद्रीय, कषाय, जोगनी प्रवृत्तिजापता मुनिराज अतीतकाल विषय सभालता नथी, वर्त्तमानविषे रम णता नथी, अनागतकाल विषयनी आससा नथी, पोताना अनतगुणपर्याय निर्मल करवाने उत्कृष्ट उद्यमवत छे ते साधु महात्मा गुरुपणे धारवा, तथा धर्मतत्त्व जे जीव द्रव्य असख्यात प्रदेशी स्याद्वाद रीते पोतानी गुणपर्याय परणति ते धर्म श्री

कूडपाडीक १, गवालीक २, भोमालिक ३, थापणमोसो ४, कुडीसाख नबोले ५ ॥ ३ थूलअदत्तादान विरमण, जे चोरी कीवे राजा दंडे तथा च्यार हजा माणस ठगको दे अथवा पोताने भय लागे अथवा सामाना जीवने त्रासको पडे ते मोटी चोरी करवी नहि ४ थूलमैथुन विरमणव्रत, जे परस्त्री मनुष्यणी तथा तिर्यंचणी तथा देवतानी भोगवा नहीं पाच इंद्रीना स्वाद घणा मगनपणे सेवे नहीं ५ थूलपरिग्रह विरमण जे धनादिक नव भेदनो परिग्रहनो पच्चखाण करे, इंडा परिमाण करे अथवा पोता पासे जे धन होइ ते राखी बीजानो पच्चखाण करे ६ दिग परिमाणव्रत जे च्यार दिश तथा ऊंचो तथा नीचो दिसी जावानो मान करे ७ भोगोपभोग परिमाण व्रत जे नीम साचवे पन्नर कर्मादान न करे, जे पोताने खावेपीवे तथा वस्त्रोतु मान राखे ८ अनर्थ दंड विरमणव्रत, ते जे मोटका पाप रगवा खेतर खेडवा, भाठी जे चूना प्रमुखनी करवाना पच्चखाण करे ९ सामायिकव्रत जे जघन्य २ घडी सुद्धी ससारना काम मूकी कुटुंब धननो राग तजी कोइथी द्वेष न करवो एहवो समपरिणाम राखवो ते सामायिक कहिइ १० देसावगासिकव्रत जे बे घडीथी च्यार पोहोरथी उणुकाल दिसतु मानकरि थीरचित्तसमतापणे रहेवु ते देसावगासिकव्रत जाणवु ११ पोषधव्रत च्यार पोहर अथवा आठ पोहोर सूधी समतापणे साधुपेरे श्रावकवरते, मन वचन काया समताइ राखे ते पोषधव्रत कहीइ १२ अतिथिसंविभाग बारमुव्रत जे श्रावक जे ते साधुने विहरावीने पछे जिमवु जो तेहवा साधुनो योग न मिले तो सार्धर्मिक श्रावकने जीमाडीने जमवा बेसवु बेठा पछे थोडीसीक्वार साधुजीनी वाटजोवी इम करता

तेउकाय, वाउकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय हण्या, सताप्या छेद्या भेद्या, तपाव्या, परने सक्लेश उपजाव्यो, परणति सकल्पे प्रवर्त्ते हे श्रीवीतराग तुमे सर्व जाणो छो, ते हिसाने धर्म करी मान्यो हिसामध्ये राच्यो ए रीते हिसा जो ते ए भने पाछले अनतेभवे जे जे हिसा परणति करी, करावी, करता, अनुमोदि मने वचने कायाए ते सर्व श्रीप्रभुजीनीसाखे गुरुसाखे मिच्छामिदुक्कड ए प्रथम पापस्थान १ हवे बीजो पापस्थान ते मृषावाद जे जुठु बोलवु, लौकिक ससारमध्ये लोकोत्तर धर्मकार्यमध्ये ते पिण भाव मृषावाद स्वस्वरूपशुद्ध अध्यात्मभाव पोतानी परणतिने पोतानी न माने, शरीर इन्द्रिय धन कुटुब ते परभाव ससार हेतु दुष्टता मूल तेहने पोताना कहे क्रोधेमृषा बोले, भयेमृषा बोले, लोभेमृषा बोले ते सर्व माहरे जीवे ससार भमता चार गतीमाही जे मृषावाद बोल्या होय, बोलाव्या होय, बोलता अनुमोद्या होय, ते मने वचने कायाए ते सर्व श्रीप्रभुजीनीसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कड २ हवे त्रीजो पापस्थानक अदत्तादान ते जे पारकी वस्तु अणदीधा लेवी ते लौकिक जे ससारी असयमीना धनकचन द्विपद चतु पद आदिक अणदी धा लेवा, लोकोत्तरते जे चैत्यउपगरण पूजाउपगरण चारित्रउपगरण तेहनो चोखो ते द्रव्य ग्राह्य वस्तुनो लेवो भाव तप जीवपर पुद्गल खधादिकनो आत्मानेविषे ग्राहकतारुप परिणमन कर्यो हवे, कराव्यो, हवे, करता अनुमोद्यो हवे, ते मन वचन कायाए ते सर्व श्रीप्रभुजीनी साखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कड ३ हवे चोथो पापस्थान मेथुन जे कामी भोगीपणे इस्त्री विषे पुद्गलना वर्णादिकनो भोगवतो लोकोत्तर धर्मलिगे धर्मी महाजन स। [illegible] सा वी धर्मोपकरण चैत्यादिने विषे [illegible]नी पो-

सिद्ध भगवानने प्रगट छे, मो …इत उत्कृष्टो आचार ते धर्म साधवाने ज्ञानादिक … छे, … ते धर्मनी पोषणा करे छे, … ते धर्म साधवाने राज्य तजी … … … … अथवा एकला वासी वनवासी गुफानिवासी … … उपर उनाले आतापना शीतकाले … … … छे, … … पकपणे रागद्वेष … … … छे तथा देशविरति ने शुद्ध धर्म प्रगट … … … लेइ सर्वविरतीनी इहा करतो संसार कार्य ते निविषयनीनी पेर उदासीनपणे करे छे, सम्यग्दृष्टि ते धर्मनी इहा करता

काईयासिद्धीलमो कईयासवेगुणनिरावणा
कईयाअवाबाह सुहसमुहमयेसिज्जे ॥१॥
कईयापुग्गलरहियो रमामिसिवमयल
निरुवमसहावो,पासतोसवपय भुजतोअप्पणोभाव२॥

ए भावना भाविने धर्मनो अभिलाप करता संसारप्रवृत्ती तप्त लोहपट्ट धरवानी रीते करी छे संसारसंपदा बालक रमवाना धूलघर समान जाणे छे, ते धर्म प्रगट करवानी रुचि सर्व जीवे करवी, पण ते धर्म आठ कर्म आवर्यो छे ते आठ कर्मने क्षये प्रगटे ते आठ कर्मनो क्षय, पापस्थान आलोचता थाये ते पापस्थानननी आलोयणा करवी जे माहरे जीवे संसार भमता स्वस्वरूपनी भूले हिंसा पापस्थान कर्यो आपना ज्ञानादिक प्राण हण्या ते भावहिंसा अने रागद्वेषे असयमे परना प्राण हण्या ते द्रव्यहिंसा ते लौकिक रीते पृथ्वीकाय अप्काय

पापस्थान मान, अहंकार रुपनो, धननो, राज्यनो, परिवारनो, बल-
नो, तपनो, विद्यानो, कुलनो तथा गुणी नहीं ते गुणीनो मान
आचार्य उपाध्याय साधुपणानो अभिमान संसारकार्ये यशाभि-
लाषे मान धर्मकार्ये सयानाचैत्य प्रमुखनो कराव्या रखवाल्या-
नो मान कर्यो हवे, लौकिक बाह्यलोकोत्तर गुणनो गुणीथी,
महत्व कर्यो हवे ते सर्व मने वचने कायाइ करि कर्यो हवे
कराव्यो होवे करता अनुमोद्यो होवे ते श्रीप्रभुजीनी साखे
आत्म साखे मिच्छामिदुक्कड ७ हवे आठमो पापस्थान माया
कपट नियडि वक्रता जे कोइथी वचननो द्रोह ठगाई करवी ते
माया अलौकिक संसारी संबधथी लोकोत्तर आचार्य साधु सा-
धर्मिकथी धर्म पद्धतिनो कपट कर्यो ते द्रव्यत कोइने वचवो
भावत आर्ज्जवता रहित परिणामे जे माहरे जीवे कर्यो कराव्यो
करता अनुमोद्यो ते मने वचने कायाये करी श्रीजगवत्सल परम
करुणानिधिनी साखे गुरु यथार्थवादिनी साखे, आत्म साखे मि-
च्छामि दुक्कड ८ हवे नवमो पापस्थान लोभ, लालच परिणाम
इच्छा गृध्रता ते लौकिक बाह्य पोताने इष्ट वस्तु तेहनी लालच
जे घणी जडे इंद्रीय सुख प्रमुख आवे एहवो परिणाम ते
लोभ ते लोकोत्तर धर्मलिंगे धन विषय जसनो लाभ वांछे
तथा द्रव्यत कह्यु जे भावत परभावाभिलाष सर्व ते जे मा-
हारे जीवे कर्यो कराव्यो करता अनुमोद्यो ते मने करि वचने
करि कायाये करि श्रीप्रभुजीनी साखे गुरु साखे आत्म साखे
मिच्छामिदुक्कड ९ हवे दसमो पापस्थान रागप्रीत परिणाम वा-
ल्हारसे जीव पोताने विषे पोषणीये लौकिक तथा लोकोत्त-
रथी द्रव्य तथा भावथी ते राग परणति अनंती आत्माथी
उपनी अन्य द्रव्यने विषे रागनी रीजवे माहारे जीवे करी

गणा करी ते सर्वो द्रव्यथी वेद ३ उदये जे कामविकारपणे भोगविलासादिक, भावथी आत्मपरणति परभोगीपणे पर वस्तु अशुचिपरिणाममध्ये रमणीकता ते माहारे जीवे, एकेन्द्रिपणे बेरिन्द्रिपणे, तेरिन्द्रिपणे, चोरिन्द्रिपणे, पंचेन्द्रिपणे फरसन १ रसन २ घाण ३ चक्षु ४ श्रोत्रेन्द्रिय ६ इन्द्रीना त्रेवीस विषये वाञ्छ्य। सेव्या सेवाया सेवता अनुमोद्या होइ ते मन वचन कायाए करी श्रीप्रभुजीनी साखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कड ४ हवे पाचमो पापस्थान परिग्रह जे कोई आत्मधर्मथी अन्यभाव सरक्षणा परिणामे राखवा ते लौकिक परिग्रह द्विपद चतुष्पद धनधान्य गृहक्षेत्र वस्त्रप्रमुख, लोकोत्तर परिग्रह सम्यक्त्वनो हेतु मोक्षकारण श्रीअरिहंतनो चैत्य तथा जिनबिंब तथा ज्ञाननो कारण पुस्तक नवकारवाली प्रमुखचारित्रना उपगरण तेहने ममत्वभावे गृहे द्रव्य परिग्रह पुद्गल खधादि ममत्वभावे ग्रहे भावपरीग्रह क्रोधादिक अशुद्ध परिणाम परभावस्वामित्व-ग्राहकत्वादिक परिणति ते परिग्रह राख्यो हवे परद्रव्यनी इच्छा करे हवे, परिग्रह सुख मान्यो हवे, परिग्रह वासते धर्मआचरण कर्यो हवे ते परिग्रह पापस्थान मने वचने कायाए करी सेव्यो होये सेवता अनुमोद्यो होवे ते श्रीअरिहतनी साखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कड ५ हवे छठो पापस्थानक क्रोधतत्त्व परिणाम क्षमानो रोधक ते लौकिक भाई पिता प्रमुख कुटुंब उपर तथा अन्य जीव उपर क्रोध परिणाम लोकोत्तर देवगुरु साधर्मिक उपर क्रोध परिणामते द्रव्यत तथा सकठोरता भाव तथा रुद्र परिणाम ते जो कोई रीतनो अप्रशस्त क्रोध कर्यो होवे कराव्यो होवे करता अनुमोद्यो होवे तेथी त्रिभुवनपति निरंजन देवनीसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिछामिदुक्कट ६ हवे सातमो

बोलवो ते बोलयो होने बोलाव्यो होवे बोलताने अनुमोद्यो होवे ते मन वचन कायाए करीने श्रीप्रभुजीनी साखे गुरु साखे आतम साखे मिछामिदुक्कड १४ पन्नरमो पापस्थान रति तथा अरति उपजे असाता दु खवियोग हानि प्रमुख उपजे ने अरति आकुल्ता किहाइ सुहाय नही ते अरति लौकिक विपेनी ऊणी असुहामणे तथा लोकोत्तर आगम सुणता देवयात्राये तप सामायकपोसह भणवो प्रमुख ते मध्ये अरति करि होवे तथा रति, इद्री विपे–मध्येरीझ सुहामण रक्तता विश्राम ते रति लौकिक तथा लोकोत्तर चैत्य पुस्तकादिकनी शुद्धता देखीने जे इद्री विषे रीझ पामे ते रीझ ए नवा कर्म बाधवाने आकरिचिकणता जे माहरे जीवे करी, करावी, करता अनुमोदी ते मने वचने कायाये करी श्रीपरमात्मानी साखे गुरुनी साखे आतम साखे मिछामिदुक्कड १५ हवे सोलमो पापस्थान पैशुन्य पारकी चाडी करवी ते जे द्वेपे थाये आगल्या जीवनेकष्ट असातानो हेतु राजा तथा आचार्यादिक अधिक आगले तेह्ना छता अथवा अछता दोप कही तेहनो आश्रय भाजवो ते पैशुन्य कहिये ते जे माहारे जीवे करयो कराव्यो करता अनुमोद्यो मनेवचने कायाए करी श्रीप्रभुजीनी साखे, आत्मसाखे गुरुसाखे मिछामिदुक्कड १६ हवे सत्तरमो पापस्थान माया मृषा कपटे परने ठगवा वास्ते मिठु बोले, कोइ कपटलिंग बगलानी पेरे देखाडीने गुणी नहि ने गुणी रीते वदाववो, पूजाववो मनाववो कराववो अथवा लौकिक वचने व्यापार प्रमुख मध्ये कपटे मृषा बोले तथा धर्मचाले जैनागम मध्ये कपट रीते प्रवृत्ति करवी ते लिगी जीव प्रमुख करवा ते जे माहारे जीवे करया कराव्या करता अनुमोया ते मने वचने कायाए करी श्रीप्रभुजीनी साखे

करावी करता अनुमोदि ते मने वचने कायाए करी श्रीअरिहंतना मारा गुरुना मारे मिच्छामि दुक्कड १० हवे अग्यारमो पापस्थानक द्वेष नामांतरे पारयान जीव तथा अजीव उपर पोतानी निपयादिक इच्छाये अणगमता जे अमूल्लणा ते लौकिक उपर द्वेष तथा लोकोत्तर उपर द्वेष जे कर्यो होवे करायो होये करनाप्रते अनुमोद्यो होय ते मन वचने कायाये करी ते श्रीअरिहंतजनी मारा गुरु सारे मिच्छामि दुक्कड ११ हवे बारमो पापस्थान कलह विवाद कोईथी द्रव्य वासते जस ल-डाई वासते आक्रोश कुवचनादिक करता तथा धर्म मन्येना-मार्ग वासते कुयुक्ति पोतानो मन थापवाने जे कलह करवे प्रशस्त करता अप्रशस्त थयु होय ते सर्व मने वचने कायाए करी कर्यु कराव्यु अनुमोद्यु ते देवसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कट १२ तथा तेरमो पापस्थान अभ्याख्यान कुडोआल देवोद्वेषे तथा हास्ये गुणीना गुण ओलववा, आगलाने सहसा-त्कारे हिणो वचन कहेवो तथा वस्तुगते लोपीने फरकार क-रवो ते लौकिक अन्यजीवने ससारी रीते लोकोत्तर अरिहत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु साधर्म्मिक देशविरति समकिती तेहनी औदयि चाल देखी कलक देवो ते अभ्याख्यान कर्या होवे कराव्या होवे करता अनुमोद्या होवे ते मने वचने कायाए करी श्रीप्रभुजीनीसाखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामिदुक्कड १३ हवे चउदमो पापस्थान परपरिवाद पारकी निंद्या ते द्वेषे पारका अवगुण कह्या, कोइना अपजस वासती पारकी कुथली करी अथवा सामा मनुषने खिसाणो पाडवा वासते जे निंद्या करी ते मध्ये लौकिक ते जे ससारी जीवनी लोकोत्तर गुणी जैनमार्ग अवलबता मार्गानुसारिथी माडी सिद्धभगवान लगे जे अवर्णवाद

पोताना आत्माने तथा अन्य ससारी जीवने सिण (स्नेह) सरागता, परिग्रहता हिंसादिकनो हेतु थाये तिणे गुणीनी भक्ति जोडतो निरधिश्रणी थाये ते माटे जे अरिहतनी भक्ति कारजे कर्यो जे धनादिक ते देवक्रो कहिये ते जे खाधो होवे अथवा पोते विणसाड्यो होवे अथवा उवेख्यो होवे ते सर्व देवकाना दूषण थयो ते माटे देवका दोषनी आलोयणा करवी ते लखीये छे जे माह्यरे जीवे एकेंद्री पृथवीकायपणे जिनबिंबादिकनी आसातना करी अथवा पृथवीकायपणे मृत्या जे शरीर तेहथी जे गुणी अथवा गुणीनी थापना चैत्यादिक तेहने व्याघात थयो तथा अपकायपणे पाणिमे चैत्य वहराव्या पड्या जिन बिंब वहाव्या तथा अग्निकायपणे जे चैत्यबिंबादिक बाल्या होवे, तथा वायुकायपणे चैत्य पड्यो होवे तथा वनस्पतिकायपणे जे चैत्य मध्ये रुखडा झाड खापणे उगीने चैत्य पड्या होवे, त्रसकायपणे चैत्यमध्ये मालादिक करी रह्या हवे परभीने भवे चैत्य तथा जिनबिंब उपर वेसी असमजस आचरण करचा होवे, तथा देवकाद्रव्य मनुष्यपणे जाणि तथा जाण्या विना खाधा होवे अथवा अवधि वावर्या होवे तथा देवका उपर अन्याय हुकम कर्या होवे, अथवा देवकी वस्तु वावरीने पोताना यश बोलाव्या होवे, देवका दोकडा व्याजे राखे थोडो व्याज भरी आप्यो होवे अने घणो लाभ लीधो होवे, तथा बीजो पण देवथी इद्री सुख यशवडाई प्रमुख जे करी होवे तथा अरिहत देव प्रते सासारिक कामे मान्या ईछा होवे ते मने वचने कायाए करी मिछामिदुक्कड हिवे माहारे ए कार्य अशुद्धाचरणरूप न करवु आज पछी माहारो आत्मा अनतगुणमयी प्रगट करवानी रुचि करवी श्रीअरिहतनो कर्यो मार्ग तहत्त करी सद्दहवो,

गुरु साखे आतम साखे मिछामिदुक्कडं १७ हवे अढारमो पापस्थान मिथ्यात्व जे कुदेव विषयी कषायीन परग्रहना कुप्रकृति भोगि तेहने देव माने, कुगुरु चारित्रधर्म रहित जे अन्य लिंगी तथा स्वलिंगी गुणभ्रष्ट परग्रहनो लोभी अढार पापस्थान भरया ते गुरु करी माने, धर्म यथार्थ आत्मपरणति विना अथवा तेहना साधन विना धर्म माने तथा जीवादिक नव तत्त्व जिम वस्तुमें वस्तुपणे पोतानी परगति छे षट्द्रव्ये जिम पोतानी परणति गुणपर्याय स्वभाव स्याद्वाद रीते जिम छे तिम न सद्दहे कल्पित रीते सद्दहे तेने मिथ्यात्व कहे छे, तेहना मूल भेद ५ अभिग्रहमिथ्यात्व खोटोकदाग्रह झाल्यो मूके नहि १ अनभिग्रह मिथ्यात्व गुणअवगुणना परख्या विना सर्व सरिखा माने २ अभिनिवेश मिथ्यात्व जाणीने खोटो कदाग्रह खेंचे ३ संशयमिथ्यात्व जे सर्व संशय मध्ये रहे ४ अनाभोग मिथ्यात्व जे काइ जाणे नहि तथा साध्य साधननिमित्त तथा उपादान उत्सर्ग अपवाद विपर्यास रीते करि एहवी अशुद्ध सद्दहणा जे वेदांतादिकनी ते सर्व मिथ्यात्व जाणवो, ते जे सेव्यो होवे, सेवाव्यो होवे सेवतां अनुमोद्यो होवे मने वचने कायाए करीने ते श्रीप्रभुजीनी साखे गुरुसाखे आत्मसाखे मिच्छामि दुक्कडं, ते मिथ्यात्व जीवने महादुःखकारी छे, अनादि संसारनो बीज छे, लोकोत्तर श्रीजिनेंद्रनो कह्यो शुद्धमार्ग जीव पामे नही ते मिथ्यात्व महापापस्थान छे ते थका धर्म करणी पिण साधक न थाये ते माटे मिथ्यात्वनो पश्चात्ताप घणो करवो ते मिथ्यात्व टलतो नथी ते जे पूर्वे जीवे गुणीनी आशातना तथा गुणनो अनादर कर्यो छे ते महागुणी अरिहंत देव तेहनी भक्तिने काजे उत्तम भव्यजीवे जे धनादिक रह्यो थको

यतिना धर्मना पालयका निराशसी एक आतमा निरमल करवाना उद्यमयकी विचरे ते पच महाव्रत तिहा पहेलो, महाव्रत सव्वाओपाणाईवायाओविरमण" विवहारे छकायना जीवना द्रव्य प्राण १० हणे नही हणावे नहीं हणताने अनुमोदे नही मन वचन कायाए करीने निश्चयथी ज्ञानदर्शन चारित्र सुख प्रमुख भावप्राण पोताना परना कर्म आवरणपणे हणे नहि, हणावे नहि, हणता अनुमोदे नही, तथा बीजे महाव्रते, सव्वाओ मोसा वायाओ वेरमण द्रव्यत क्रोधि मानने भये लोभी सूक्ष्मबादर लौकिक तथा लोकोत्तर जूठु पोते बोले नही बोलावे नहि बोलता अनुमोदे नहि मन वचन कायाए करी भावथी सर्व द्रव्य पर्यायनो यथार्थ जाणवो, सत्य भासनरूप ज्ञायकता शक्ति साधि ज्ञान सत्यपणे पाले तथा श्री वीतरागना आगम प्रमाणे अर्थ भाव छे तेहनी सझाय करि जेहथी पोताना ज्ञानदर्शन चारित्र निर्मल थाये ते भाषा बोले त्रीजो महाव्रत सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमण जे द्रव्य ते त्रणतुस मात्र पण अण दीधो लेवे नही, लेवरावे नही, जे लेवे तेहने सारो कहे नही, मने वचने कायाए करीने लौकिक चोरी जे ससारी जीवनी वस्तु चोरी लेवी, लोकोत्तर चोरी जे तीर्थंकर आणमे जे न लेवानो कह्यो ते लेवो ते चोरी न करे, भावथी आत्मानी ग्राहकता शक्ति ते स्वरूप ग्रहणरूप कार्यना कर्ता छे ते अनादिनी परभाव ग्राहकता करी रह्यु छे ते निवारीने स्वरूप ग्राहकपणे परणमावे, ते अदत्तादान विमरणव्रत थयो ते अदत्तादान चार भेदे छे ते तीर्थंकर अदत्तजे तीर्थंकरनी आणामे न लेवो कह्यो सर्व परभाव ते लेवे १ बीजो गुरुअदत्त जे गुरु परपरा विनासूत्र अर्थ कहेवा २ तीजो स्वामी अदत्त जे वस्तुनो जे

अन्य सर्व मिथ्या, श्रीजिनरागे कह्यो निश्चय आचर्या समकिती जीने सम्यो श्रीगणधर देवे आगम भन्ने गुन्थो शुद्ध धर्म माहरो तथा सर्व जीवनो हित छे ते माहारे प्रमाण ने सदहनो. ते जाणवो ते आदरवो ते नीपजावयो जे समये समये गुणस्थान चडी कर्मक्षय करी सलेशी अने पोतानी सिद्ध सपदा प्रगट थास्ये ते समयसार मानवो अने जेने ए मारगनी परतीत प्रगटी तेने शरणे रहेवो तथा गाध्य शुद्धसत्ता साधन गुणठाणे चडी ते रत्नत्रयी परणमनी ए मार्ग माहरो सदा अविहड होज्यो इति ॥

॥ दूहा ॥

परम अध्यातमने लखे, सद्‌गुरुकेरे सग,
तिणकु भव सफलो होवे, अविहड प्रगटे रग १
धर्मध्यानको हेत यह, शिव साधनको खेत,
ऐसो अवसर कब मिले, चेत सके तो चेत २
वक्ता श्रोता सम मिले, प्रगटे निजगुणरूप,
अक्षय खजानो ज्ञानको, तीन भुवनको भूप ३
एह पद अनुपहे, समझे जे चित्तलाय,
देवचद्र कवि इम कहे, निज आतम थिर थाय ४

इति अढार पापस्थान जाणवा सारु हवे छठो गुणठाणो प्रमत्त साधु एहवे नामे कहीये जे प्रत्याख्यानी चोकडीनो उदय टल्यो सर्व विरति प्रगटी, सयम साधन माटे पौद्‌गलिक भावे ग्रहेपण पुद्‌गलने भोगिपणे पुद्‌गलीक थाय नही स्वरूपरमणी आतमधर्म थिरता रुप सर्वपरभाव उपर अग्राहकतारूप चारित्रधर्म प्रगट्यो छे ते साधु उत्सर्ग अपवाद मार्गेपचमहाव्रत पाले छे, तिहा द्रव्यभाव पच महाव्रत सहित पाच समिति तीनगुपतिना दश

तीन पहोर लगे वेसवु नहीं, चोथी वाडे स्त्रीनु रूप नजर जोडीने जोवु नहीं पाचमी वाडे जिहा स्त्री भरतार काम भोग भोगवता होवे ते भींतने अतरे ब्रह्मचारीये राते रहेवु नहीं, तेहना शब्द काने पडवा देवा नहीं छट्ठी वाडे गृहस्थपणे जे भोग भोगव्या ते सभारवा नहीं सातमी वाडे सरस आहार जेहथी काम दीपे ते आहार करवो नहीं, आठमी वाडे अतिमात्राए आहार करवो नहीं, नवमी वाडे शरीर सिणगार लूगडाना तथा घरेणानो करवो नहीं, सनान उगटणा न करवा, एकली स्त्री साथे एकलु वाटे चालवु नहीं, तथा नानु बालक तथा बालिकाथी एक शय्याए सुवु नहीं, सात वरस पछी, पाचमे महाव्रते सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण जे द्रव्यथी परिग्रह सूक्ष्मबादर राखे नहीं रखावे नहीं राखे तेहने अनुमोदे नही जे सयम पालवा माटे सुखे सिझाय थाये तेमाटे उपगरण १४ राखे, कारणे अधिको जोइए तो गृहस्थनायका पाडेरु वावरे एथि थिरकल्पीनो विवहार छे, जिनकल्पी कोई उपगरण न राखे, अपवादे दस उपगरण राखे, बार कषाय उदय टल्या तेहने छटो गुणठाणो कहीये साधु कहीये पण ५ परमाद सेवे निद्रा १ विकथा २ आहार ३ अल्पविषय ४ मानादिक ५ ए अल्प सेवे अनाभोगे जाणे, सेवे नहीं, ए छट्ठा गुणठाणानी स्थिती जघन्ये एक समय उत्कृष्टे अतर्मुहूर्त ए गुणठाणे तीन चारित्र, सामायक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि ए तीन चारित्र छे. तेहनो स्वरूप जे परभाव परत्यागे स्वरूप एकत्वते चारित्र कहीये, ते मध्ये जे तजवा योग्य भाव तजे ते द्वेष विना अने रत्नत्रयीज आत्मधर्म ते ग्रहे स्वधर्म माटे पण लौकिकादिक इष्टता राग विना एहवो समपरिणाम ते

धणी होवे तेहनी आण दीधी जे वस्तु लेवी ते ३ चोथु जीव अदत्त जे कोइ जीवे पण कह्यो नथी जे माहरा प्राण हणो अने पोताने स्वारथ माटे परजीवना प्राणहणे ते जीव अदत्त ४ तथा प्रशस्त काम करता कोइ जीवना प्राणघात थाये ते श्रीभगवते हींसा कही नथी, ते विनय तथा वैयावच मागण्यु छे ए द्रव्यभाव अदत्तादान त्रिविधि त्रिविधिपणे होवे चोथे महाव्रते सव्वाओ मेहूणाओ वेरमण जे द्रव्यथी पाच इंद्रिना त्रेवीस विषे सेवे नही, सेवता अनुमोदे नहीं, मनुष्य तिर्यंच देवताना विषयनी वाछा न करे, न करावे, अनुमोदे नही, भावथी जे आत्मा द्रव्य आत्म गुणनो भोगी छे ते पण करम करवा माटे परभावने भोगवे ते भाव मैथुन छे, ते सर्व परभाव भोगीपणे भोगवे नही, ते आत्मानि कर्मा करवा माटे परभाव साधनपणे ग्रहे पण अभोग्य अग्राह्यपणे अरमणिक माने जे माहरो आत्मा आत्मानदनो भोगी ते परभाव अनत जीवे अनतवार लेइ भोगवीने वम्यो ते मने ग्रहवो भोगववो घटे नही ए अनत जीवे अनतीवार भोगवीजे अैठ जडचल तेहने हु भोगवु नहीं इम सर्व परभाव भोगीपणो तजी स्वभाव भोक्तापणे रहेवो ते द्रव्यथी मैथुनना कारणरूपी खध तथा रूपी खध मिल्या जीवनो, खेत्रथी मैथुन तीन लोकने विषे इंद्रीना सवादनी ईच्छा, कालथी मैथुन दिवस तथा रात्री, भावथी मैथुन रागथी तथा द्वेषथी ते सर्वथी सेववो नहीं तेहनी वाड नवे पालवी १ वाडे जे थानके स्त्री पशु पडक रहे ते थानके ब्रह्मचारी रात्रीये रहेवु नहीं बीजी वाडे स्त्री साथे हासि तथा कामकथा करवी नहीं, त्रीजी वाडे जे पीठ पाटले स्त्री बेठी होये ते पाटले बे घडी लगे ब्रह्मचारी पुरुषे बेसवु नहीं, स्त्रीये

फोरवे तेनु साधुपणु जाय नहीं ७ आठमो अपूर्वकरण गुणठाणो जे जीव भावनाभावतो आत्मानो स्वरूप अनतज्ञानमयी, अनतदर्शनमयी, अनतचारित्रमयी, अनतदानमयी, अनतलाभमयी, अनतभोगमयी, अनतउपभोगमयी, अनतवीर्यमयी, अनतअव्याबाधसुखमयी, परमआनदमयी, अरूपी, अवेदी, अकषाई, अलेसी, अशरीरी, अनाहारी, सर्वआनदरूप माहरो धर्म छे ए शरीर, आहारतेहुनहीं, एहवी भावनामाहे परणम्यो जीव शुक्लध्याननो पेहलो पायो ध्यावे, इहा पाच अपूर्वकरणकर पूर्वे किंवारे नकरचा होय ते कर तेहना नाम पहेलो अपूर्वकरण थितिघात जे जीव कने असख्याता थिन स्कधना थोकडा हता ते कर्मथिति सघली खपावी अथवा उपशमावी बीजो अपूर्वरसघात जे कर्मना रस चीकणास हती ते खपावी पातलु करवु त्रीजो अपूर्वगुण श्रेणि जे जीवने सत्तामाहे करमदल हता ते सर्वे विखेरी नाखवा, चोथो अपूर्वगुणसक्रम आत्माना गुणमे रमवो पाचमो अपूर्व जे नवोस्थितिबध न करवो एहवा परिणामथी कषाय खपावीने आतमा शीतल परिणामे परणम्यो करम निर्जरा करे ते ए गुणठाणे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अर्तमुहूर्तनी स्थिति छे, ए गुणठाणे चारित्र सामायिक तथा छेदोपस्थापनीय ए बे छे ८ नवमो गुणठाणो अनिवृत्तिबादर छे ते शुक्ल ध्याननो पहलो पायो तेथी आवे, ए गुणठाणे वर्तता जीव एक अध्यवसाये जेटला होवे तेटला सर्वनो एक सरखो परिणाम एक सरखो सवर, एकसरखी निर्जरा, एहने सामायिक तथा छेदोपस्थापनीय ए बे चारित्र होवे, एहने अते तीन वेद जाये तथा तीन कषाय सजलनो क्रोधमान माया लोभ जाये ए गुणठाणे सख्याता जीव होये ए गुणठाणानी स्थिति जघन्य

सामायक कहीए, तथा जे सामायक मध्ये सज्वलनना तीव्रोदये जे आकरा अतिचारे अथवा चार कषायने उदये आजमपरिणाम फले जे पूर्व पर्याय छेदीने अभिनव निर्मल पर्यायनो अंगीकार करवो ते छेदोपस्थापनीय कहीये, अने छेदोपस्थापनीयचारित्र भरत ५ तथा ऐरवत ५ ते मध्ये प्रथम चरम तीर्थंकरना साधुजीने होवे तथा तीर्थंकर तथा गणधरजीना शिष्य नव पूर्वथी उपरात श्रुतवत मध्य युगानवयि प्रथम सघयणे अढार मासनो उग्रतप ते अप्रमादी निद्रा रहित नवजणा वनवासी थका जे तप करे ते परिहार विशुद्ध चारित्र कहिजे, दशमे गुणठाणे शुक्लध्यान सुक्ष्म लोभनो उदय छे ते सूक्ष्म सपराय चारित्र कहिजे, तथा सर्वथा कषायनो उदय नथी ते यथाख्यात चारित्र कहीये ते मध्ये ११ मे गुणठाणे उपशात यथाख्यात छे १२, १३, १४ मे गुणठाणे क्षायिक यथाख्यात छे, हवे सातमो अप्रमत्त गुणठाणो लिखीये छे, छठे गुणठाणे जे भाव साधुजीना कह्या ते सर्व होवे पण पाच प्रमाद न होवे, ते माटे अप्रमाद ए छठे गुणठाणे वरततो साधुजन शासनने कामे लब्धि फोरवे पण सातमे गुणठाणे वरततो साधु लब्धि न फोरवे, एहनी स्थिति जघन्य एक समे उत्कृष्ट अतर्मुहूर्तनी छे छठ्ठे तथा सातमे गुणठाणे मिलीने साधु देशे उणी पूर्व कोडी रहे श्री भगवती सूत्रे ए बे गुणठाणानी देशे उणी पूर्व कोडी स्थिति जूदी कही छे ते व्यवहार नये छे समे तथा बे समे वच्चे गुणठाणो पलटे ते गवेख्यो नथी तेमाटे अतर्मुहूर्तनी स्थिति कही छठ्ठे बे गुणठाणे सामायक तथा छेदोपस्थापनीय तथा परिहार विशुद्धि चारित्र छे, तथा सातमे गुणठाणे साधु लब्धि फोरवे नहीं अने छठ्ठा गुणठाणाना साधु जिनशासनने काजे लब्धि

फोरवे तेनु साधुपणु जाय नहीं ७ आटमो अपूर्वकरण गुणठाणो जे जीव भावनाभावतो आत्मानो स्वरूप अनतज्ञानमयी, अनतदर्शनमयी, अनतचारित्रमयी, अनतदानमयी, अनतलाभमयी, अनतभोगमयी, अनतउपभोगमयी, अनतवीर्यमयी, अनतअव्याबाधसुखमयी, परमआनदमयी, अरूपी, अवेदी, अकषाई, अलेसी, अशरीरी, अनाहारी, सर्वआनदरूप माहरो धर्म छे ए शरीर, आहारतेहुनहीं, एहवी भावनामाहे परणम्यो जीव शुक्लध्याननो पेहलो पायो ध्यावे, इहा पाच अपूर्वकरणकर पूर्वे किवार नकरचा होय ते कर तेहना नाम पहेलो अपूर्वकरण थितिघात जे जीव कने असरयाता थित स्कधना थोकडा हता ते करमथिति मनली खपावी अथवा उपशमावी बीजो अपूर्वरसघात जे करमना रस चीकणास हती ते खपावी पातलु करवु त्रीजो अपूर्वगुण श्रेणि जे जीवने सत्तामाहे करमदल हता ते सरवे विखेरी नाखवा, चोथो अपूर्वगुणसक्रम आत्माना गुणमे रमवो पाचमो अपूर्व जे नवोस्थितिबध न करवो एहवा परिणामथी कषाय खपावीने आतमा शीतल परिणामे परणम्यो करम निर्जरा करे ते ए गुणठाणे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अतमुहूर्तनी स्थिति छे, ए गुणठाणे चारित्र सामायिक तथा छेदोपस्थापनीय ए बे छे ८ नवमो गुणठाणो अनिवृत्तिबादर छे ते शुक्ल ध्याननो पहेलो पायो तेथी जाने, ए गुणठाणे वर्तता जीव एक अध्यवसाये जेटला होवे तेटला सर्वनो एक सरखो परिणाम एक सरखो सवर, एकसरखी निर्जरा, एहने सामायिक तथा छेदोपस्थापनीय ए बे चारित्र होवे, एहने अते तीन वेद जाये तथा तीन कषाय सजलनो क्रोधमान माया लोभ जाये ए गुणठाणे सख्याता जीव होये ए गुणठाणानी स्थिति जघन्य

एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्तनी छे ९ दशमो गुणठाणो सूक्ष्म संपराय इहा सूक्ष्म संज्वलनो लोभ उदय होय इहा बे जातना जीव पामीये, उपशम श्रेणि तथा क्षपक श्रेणि कर्मने उपशमावे देपखपावनो जाए क्षपकश्रेणि कर्म मोहनीने खपावे, ए गुणठाणे एक सूक्ष्म संपराय चारित्र होवे, ध्यान शुक्ल होवे परिणाम निरमल होवे, ते अवेदी छे एहनी स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्तनी छे १० इग्यारमो गुणठाणो उपशातमोह तिहा जे जीव उपशमश्रेणि आठमे उनोवोलना परणामशान मोह कर्मनी प्रकृतिउपशमावनो जाय, तेहनो उठाणगुणबीज उपशमावानो छे ते नवमे आवी मोहप्रकृति उपशमावी दशमे लोभ उपशमावीने कषायना उदयरहीत छे ते इग्यारमे आवे ते यथाख्यात चारित्र पामे, एहने चोवीस संपरायकी क्रिया उतरी एकइरियावहिकी क्रिया रहे प्रकृति तथा परदेश ए बे बंध रह्या छे हेतु न रहे, बंध एक सातावेदनीनो छे, ध्यान शुक्ल छे ए गुणठाणे जे जीव मरण पाम्या पछी चोथे गुणठाण आवे ते देवना लवसत्तमीया थाए, एकावतारी थाए, अथवा कोइक जीव अगीयारमे गुणठाणे उपशात अद्धा ते जई पाछो पडे ते इग्यारमाथी दशमे आवे दशमाथी नवमे आवे नवमेथी आठमे आवे, आठमेथी सातमे आवे सातमेथी छट्ठे आवे, इहाथी पाछो पडे नचढे तो पाछो पाचमे गुणठाणे आवे, पाचमाथी चोथे आवे, जोक्षायक समकिती होए तो चोथे गुणठाणे टके अने उपशम समकिती होए तो चोथाथी पडी बीजे सास्वादन गुणठाणे थईने पहेले मिथ्यात्व गुणठाणे आवे, कोई एक जीव अंतमुहूर्त्त रहे, कोइक जीव देश ओणोअर्ध पुद्गल परावर्त्त मिथ्यात्वीपणे रहे, पछे

समकित पामे, एअगीयारमो गुणठाणो एक जीव च्यारवार पामे, एक जीव एकभवमाहि बेवार पामे, एहनी स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तनी छे एअगीयारमो, हवे बारमो क्षीणमोह गुणठाणो ने जे जीव आठमा गुणठाणाथी कर्म खपावतो तीव्र वीर्ज निरमल उपयोग शुद्ध शुक्ल ध्यानने बले नवमे दशमे गुणठाणे मोहनी कर्म खपावी बारमे गुणठाणे आवे, एहशुद्ध शुक्ल ध्याननो बीजो पायो एकत्ववितर्क अप्रविचार ध्यावे, एहथी आयु बले घनघाती तीन कर्म ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय अनराय खपावे, एहनी स्थिति अंतर्मुहूर्तनी छे १२ तेरमो गुणठाणो सयोगी केवली जे जीव बारमाने अंते ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, अनराय, ए खपे केवलज्ञान केवलदर्शन प्रगटे, लोक अलोकना सर्व भाव अतीनकाल अनागनकाल वर्तमानकाल सर्व प्रत्यक्ष आत्मबले इन्द्रिय विना जाणे देखे, इहा जे अनगट केवली होवे ते केवली समुद्घात करीने मोक्ष जाय अने जे केवलीनो आऊखो घणो होवे ते अनेक जीवने उपगार करता अनेकदेशना देता विचर दशे उणीपूर्व कोडी लगे विचर तथा जे तीर्थंकरदेव केवलीपण विचरे ते चोत्रीश अतिशय तथा आठ प्रातिहार्ज विराजमान थका नवा सोनाना कमले पग थापता चाले योजनप्रमाण भाटलेसमोसरणे सोनाने सिंहासने तीन छत्र माथे वीगजना बे पासे चामरनी जोट विंझता हजार राजा इन्द्रराजा लहेकता देशना देता जघन्य बहोतेर वरसने आऊखे उत्कृष्ट चारासी लाख पूरवने आऊखे विचर, अनेक जीवने धरम उपदश दे, गणधर थापना कर, साधु साध्वी श्रावक श्राविका ए च्यार संघ थापे, द्वादशागी सिद्धान्त प्ररूपे, अने सामान्य केवलीने

अनिशय नहीं ने केवे आयुजी कर्म कर पछी जो आउखो थोडो बीजा कर्म सरखा होवे तो केवली समुद्घात न करे, अने जो आउखाथी कर्म घणा होय तो केवली समुद्घात करे तेहने आठ समय लागे ए तेरमा गुणठाणानी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्तनी छे उत्कृष्ट देश उणी पूर्व क्रोडी वर्षनी छे १३ चउदमे गुणठाणे अयोगी केवली ते जे जीव तेरमे गुणठाणे जोगरोध करता थका, सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती शुक्ल ध्याननो त्रीजो पायो ध्यावतो ने चउदमे गुणठाणे चढे तिहां प्रथमथी बादर मनोजोग रोके पछी बादर वचनजोग रोके पछी बादर कायाजोग रोके पछी सूक्ष्म मनोयोग रोके पछी सूक्ष्म वचनजोग रोके पछी सूक्ष्म कायाजोग रोके शरीररहित थाए जेटलो देहमान होवे जघन्य बे हाथनो उत्कृष्टो पांचसे धनुषनो त्रीजे भागे घटाडे, तेवार जघन्य बत्रीस आंगुलनी उत्कृष्ट तीनसेतेत्रीस धनुष बत्रीस आंगुलनी अवगाहना रहे, तेवार आत्मा अयोगी अक्रिय, अलेसी, अनाहारी, अशरीरी, शुक्ल ध्याननो चोथो पायो थईने अघाती करम च्यार, वेदनीकर्म १ आउखोकर्म २ नामकर्म ३ गोत्रकर्म ४ नो क्षय करीने मोक्ष जाय ॥ इतिश्री चउदमु गुणस्थानक सपूर्णम ॥

श्रीमद् देवचन्द्र प्रथमभागनुं अशुद्धि शुद्धिपत्रक



पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
१	७	सागरोपग	सागरोपम
२	२५	जीवाने	जीवोने
३	८	वीजु	बीजु
४	१	पहेलो	पहेला
६	१४	अमे	अने
८	७	प्रमाणखद्य	प्रमाणखद्य
८	१८	शिष्य	शिष्य
१७	१	सगृह	सग्रह
१९	१०	द्वयणुक	द्व्यणुक
२०	७	निश्रय	निश्चय
२०	१९	अनगत	अनागत
२१	२५	घोढा	घोडा
२४	५	नाणीहि	नाणीहिं
२४	९	विना	विणा
२४	१७	प्रकृति	प्रवृत्ति
२५	१५	सुतत्थो	सुत्तत्थो
२५	१५	निजुत्ति	निज्जुत्ति
२५	१९	सुतत्थो	सुत्तत्थो
२५	२३	सुतत्थो	सुत्तत्थो
२९	१४	ससारे	सथारे
३३	२१	भाग	भागो

पृ	पं	अशुद्धि	शुद्धि
३५	५	बीजी	बीजो
३५	२३	धर्मास्तिकानो	धर्मास्तिकायनो
३६	६	धर्मास्किाय	धर्मास्तिकाय
३७	२४	इक्रिक्रमि	इक्रिक्रम्मि
३८	९	मुहूर्तमा	मुहूर्त
४१	१५	कहेतुं	कहेवो
४२	८	सत्वगुण	सत्वगुणा .
४४	२४	निश्चयी	निश्चयपर्यी
४६	१८	व्रतत्याग	त्यागव्रत
,,	२५	टाळीने	टाळीने
५०	१८	अनमी	अनामी
५३	८	क्रियानुवृत्ति	क्रियानिवृत्ति
५६	१४	राखवो	राखवी
५७	२५	उवराइ	उववाइ
५८	२	वन्हिदिशा	वन्हिदसा
,,	८	उत्तराध्यन	उत्तराध्ययन
६०	१०	निरवेद	निर्वेद
६१	२	परच्छ	परमत्थ
६३	५	अनेअने	अने
६७	१२	यणाहा	अणाहा
,,	९	आराधक	आधार
६८	१३	सहा	सहाव
६९	३	प्रमुए	प्रमुखे

नयचक्र.

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
७४	४	अव्याबाबाधा	अव्याबाधा
,,	९	र्णादि	वरणादि
,,	२५	धर्मना	धर्मनी
७६	१७	तथाप्रवृत्ति	यथाप्रवृत्ति
७९	१३	मतातूरीओ	मतातरीओ
८०	१३	भरणादिक	आभरणादिक
८२	१४	प्रतिप्रदेशे	प्रतिप्रदेश
९०	१०	तदन्य	तदन्त्य
९०	२२	अत्यत	अन्त्य
९१	१९	विसरी	विखरी
९२	८	परिणामिक	पारिणामिक
९७	१	क्रियारित्व	क्रियाकारित्व
९७	४	तिरोभाव्यभाव	तिरोभावाभाव
९७	७	सत्व	सतृत्व
१००	२	उत्पात्ति	उप्पत्ति
१००	९	इत्येव	इत्थेव
१००	२०	आस्त्व	अस्तित्व
१०३	१	परिणमयी	परिणमइ
१०३	१	,,	,,
१०३	१४	भवेन	भयेन
१०३	१७	कुभ	कुभ
१०५	४	द्वितियो	द्वितीयो
१०५	१६	एकैकन	एकैकेन

पृ.	पं	अशुद्धि	शुद्धि
१०६	१६	पर्यायप्रक्लन	पर्यायासत्त्वेन
१०७	५	साकेतिकेन	सांकेतिकेन
१०७	१९	"	"
११०	१९	धर्मी	प्रका
१११	२	आण्पा	आण्यु
१११	३	गुपर्याप	गुणपर्याय
११२	२	तृतयो	तृतीयो
११६	४	स्याद्वाद्र	स्याद्वाद्
११८	९	प्रदेशादिना	प्रदेशादीना
११९	७	काय	क्राय
१२०	२२	उत्पादव्यय	उत्पाद
१२२	११	घटापटादि	घटपटादि
"	१४	घटा	घट
"	१९	दिष्वेवि	दिष्वपि
१२५	४	सयु	सयुक्त
१२६	९	उत्पाद	उत्पाद
१२९	५	गुणीलक्ष	गुणिलक्ष्य
१३०	९	सोने	सौने
१३१	९	उथ्थित	उत्थित
"	१२	प्रकाश	प्रकाश
"	१६	छिन्न	च्छिन्न
१३५	९	पूर्ण	पुरण
१३६	२५	योग्यरुप	योग्यतारूप
१३७	१२	कर्म	धर्म

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
१३९	१०	सर्वैरैवा	सर्वैरेवा
१४२	१०	पूर्ण	पुरण
,,	१२	लब्व	लब्ध
१४३	८	पट्गुण	पड्गुण
१४४	२०	नियुत्ति	निज्जुत्ति
१४५	७	जाणिज्झा	जाणिज्जा
,,	,,	निरक्खेवनिरिखवे	निरकेवनिरिकवे
१४६	६	पज्झाया	पज्जाया
१४७	१६	त्यर्थ	त्यर्थ
१५१	२	ज्ञानी	ज्ञान
,,	६	वर्त्तन	वर्त्तमान
,,	७	तेम	ते
१५२	८	वस्तु	वस्तू
,,	२१	जाता	जात
१५३	१२	विष	विषे
१५६	६	लोकिका	लौकिका
,,	,,	त्रेधा	त्रिधा
१५७	२०	द्वादशसार	द्वादशार
,,	२३	ऋजु	उज्जु
१५८	१	अवक्रम	अवक्क
,,	५	वक	वक्क
,,	५	तदेव	तएव
,,	७	मात्मीय	मात्मीय
,,	८	ऋजु	ऋजु

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
१५८	९	तस्यार्तु	तस्यर्तु
,,	१२	गाही	ग्गाही
,,	१३	ति	त्ति
,,	१७	ऋजु	ऋजु
१६२	९	इन्द्रन	इन्दन
,,	१०	शक्रन	शकन
१६३	११	न्यज्यते	व्यज्यते
,,	१३	ग्राच्येनोंथन	वाच्येनार्थेन
१६५	१४	ऋजू	ऋजु
,,	१२	देशा	दशा
,,	२१	मेको	मेक
१६६	२०	पणे	पणो
१६९	६	दिनयातर	दीन्यवातर
१७४	११	प्रवृति	प्रवृत्ति
,,	२१	लवि	लवी
१७८	२०	सहस्या	साहस्या
१८१	२५	दश	दस
१८३	१८	पण	तथा
,,	१०	निज्झरा	निज्जरा
१८४	२१	अयोगी	अयोगि
,,	२२	नाबाधनिरूपाधिनि-धिरूप चरित्रानयाशा-	नाबाधनिरुपाधिनि-रूपचरितानायासा
१८५	२४	पयाष्ठिआ	पइष्ठिआ
१८६	४	उव्ववाइ	उववाइ

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
,,	५	वग्गो	वग्ग
,,	१८	ततशिष्य	ताच्छिष्य
१८८	७	द्वादशसार	द्वादशार
,,	१४	उवज्जाय	उवज्झाय

श्रीज्ञानसार

१९२	१७	उपेक्षते	उपेक्ष्यते
१९५	२०	शरी	शरीर
१९६	९	समभिरुढेन	समभिरूढत
,,	१०	एवमभ्तेन	एवमूतत
,,	१७	समाधान	समाधाय
१९७	४	सावरुचिमतो	साधनरचिमतो
,,	११	रथाप्य	सस्थाप्य
,,	१९	द्रव्य	द्रव्ये
१९८	१	आत्मानतानदसपन्नमय	आत्मानमनतानदसपन्न
,,	२१	निक्षेपाना	निक्षेपाणा
२००	२१	तेज	तेजो
२०१	८	चारित्रादिना	चारित्रादीना
२०४	७	प्राप्नोति	सुख प्राप्नोति
२०६	२	पूर्ण	पुरण
२१३	२२	अगमनो	आगमतो
२१५	१५	मम	मम न

पृ.	प	अशुद्धि	शुद्धि
२१६	१४	ज्ञानपात्र	ज्ञानपात्र
२१८	१	द्रव्येन	द्रव्ये
,,	२	असगाद्दि इत्यादि	
,,	५	आश्रव	आस्रव
,,	११	नर	नर
,,	२१	अन	अन
२२०	५	ज्योति	ज्योति
,,	६	मिन्त	मिन्न
२२१	१९	हेतु	हेतु
२२३	२	तन	तन्न
,,	१३	विश	विश्व
२२९	८	उपशातान्ना	उपशान्ताद्वा
,,	१४	अव्यवसानानि	अव्यवसायानि
२३२	२१	आगानलेन	आगालेन
२३३	२१	शुद्धात्मानदने	शुद्धात्मनदने
२३६	८	परिष्ट	पट्टिष्ठ
२३८	२१	अस्व	अश्व
२३९	१२	अतीत	अनागत
२४२	८	जइतव्य	जेतव्य
२४३	१	ता	स्ता
,,	११	मुह्यता	मूढता
२४६	१९	मृगो	गधासक्तो भृगो
२५३	६	स्वरुप	स्वरूपे
२५६	२०	द्वद्व	द्वन्द्व

पृ	पं	अशुद्धि	शुद्धि
२५७	१०	सुगमा	सुगमा
२६१	२३	यश नाम	यशोनाम
२७३	६	आश्लेषेन	आश्लेषेण
"	१८	चित्र	चित्रै
"	२२	यावती	यावत्
२७८	६	एकादशमम्	एकादशम्
२८३	४	मता	वन्त
"	१३	भावामिभि	भावानि
२८४	६	गुनित्व	मुनित्व
"	१७	तत्	स्तत्
२८५	१	कर्त्ता	कर्तृ
२९६	२२	धर्मादिना	धर्मादीना
२९७	६	तुलयानापि	तुलयानामपि
३०२	१४	ऽअनादीन	ऽअनादिनै
३०७	९	चक्रमाया	चक्रमयी
३०८	८	तदेव	सैव
"	१२	ज्ञानाधिष्ठ	ज्ञानाधिष्ठ
"	१३	कृष्टा	कृष्ट
"	१७	निर्वृत्त	निवृत्त
"	२०	पचदशमम्	पचदशम्
३१४	२०	ज्वसनादि	ध्वसनादि
३१९	४	व्यवहार	व्यवहारे
३२३	१५	रोदयिक	रौदयिक
"	२१	मय	भय

पृ	प.	अशुद्धि	शुद्धि.
३२५	२२	नि ार	निवारि
३२९	९	त्रिन	वृत
,,	१८	·"	भद्र
३३०	३	ा मी	आत्मीय
३३१	२५	तह	महा
३३२	१	कार्तं ग्ग्द्	कार्तस्वरद्
३३३	५	अनवछि ा	अनवच्छिन्ना
,,	१४	टीनता	दीनता
३३४	४	ममा मत	ममात्मन
,,	५	ध्रौ यात्व	ध्रौव्यत्व
,,	२०	आत्य	आत्म
३३६	७	अय	अद्व
,,	८	हन्त्रया	हन्या
३३८	२	दु खामा	दु खाना
,,	१९	वाह	बहि
३३९	१	भवन्ति	भवति
,,	५	दग्	दृग्
३४१	१५	भावंद्धि	भावर्द्धि
,,	२१	दष्टि	दृष्टि
३४४	१०	मुनि	मुनि
,,	१८	योगिन	योगिनो
३४६	१०	प्रत्यक्ष	न प्रत्यक्ष
३४७	१६	मान	माण
३५१	१५	घर्म	धर्मे

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
,,	२३	दिष्टता	द्विष्टता
३५३	१८	यस्म	यस्य
,,	२०	भवाभोवौ	भवाभोवौ
३५४	१९	व्यावात	व्याघाताः
३५५	१०	तानिश	तानिश
३५६	१६	यदौ	यथौ
,,	१८	विप	विष
,,	,,	कश्चिवन्	कश्चिद्
,,	१९	सर्वे	सर्पे
३५८	८	विरित	विरत
३६०	३	लोकानुयायी	लोकानुयायिना
,,	७	णार्थिन	णार्थिनो
,,	९	स्तोका	स्तोका
३६१	२	साक्षिक	साक्षिक
,,	८	धर्मे	धर्मो
,,	१२	साघु	साधु
३६२	२३	क्षयोनमो	क्षयोपशनो
३६४	१६	मार्गोपिदेशक	मार्गोपदेशकम्
३६८	१०	परिग्रहाग्वेशत्	परिग्रहग्रहावेशात्
३७३	२१	कथमतअनुभव	कथमतोऽनुभव
३७४	८	प्रयासा	प्रयास
,,	११	सद्गु	सद्गुरु
३८०	८	तत्नयाप्ति	तनूव्याप्ति
३८१	२४	सर्वोत्तम	सर्वोत्तमो

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि.
३८२	१४	कस्मात	कस्मात्
३८४	१४	द्यापया	द्याप्यया
"	२२	वे	सानवे
३९७	४	त्वोपयोगसाव्य	त्वोपयोग साव्य
४०७	१३	परिणत	परिणत
४१६	१२	ज्ञानात्मा	ज्ञानमेनात्मा
४२२	८	भवता	मूपास्व
"	२२	सावक	सावकौ

गुरुगुणषट्त्रिंशिका.

४३०	१०	भोजनकाति	भोजनजाति
४३५	१	विणओ	विणए
४३९	२	चउ	चउ
४४२	४	कुव्वते	कुव्वते
"	४	मेहणु	मेहण
"	४	रीइ	राइ
"	१६	भायय	भाय
"	१६	पिचूण	विचूण
"	२२	प्यस्सावि	अस्सावि
४४४	२१	प्रभाववना	प्रभावना
४५४	१२	सूरिवराणा	सूरिवराण
	२१	देवनदीधे	देवनदीये
४५७	१५	असमान	समान

पृ	प	अशुद्धि.	शुद्धि.
४५८	२५	लेष्य	लेय
४५९	१७	एहकलै	एकले
४६१	१९	रागदिक	रागादिक
४६२	१५	क्रम	कर्म
४७०	८	काकाताली	काकताली
,,	६	मय	मद
४७२	११	पवि १	पवित्र ३
,,	१२	च्यार	च्यार
,,	१३	सुघेय	सुध्येय
४७३	१०	वले	चले
,,	१७	वटी	वली
,,	१७	आपण	आषण
४७५	२०	वैदिक	वेदक
४७८	७	बुहत	बहुत
४८१	१४	तत्त्वतत्त्व	तत्त्वातत्त्व
,,	२१	सूषिम	सूक्ष्म
,,	२२	चोद	दोभेद
४८२	१६	समकितरै	समकितरो
४८३	१०	तीम	तीन
,,	१०	अविधि	अवधि
४८४	५	दुरति	दुरित
,,	७	वनमय	वनमें
,,	८	मोहनीन	मोहनीना
४८६	९	मुष	मूर्ख

पृ	प.	अशुद्धि	शुद्धि
,,	११	गुप	गुप
,,	१३	जीगदया	जीवदया
४८७	१८	मिथ्याग्रय	मिथ्याग्रह
,,	२५	सुपयी	सुलभी
४८८	२४	केर	करे
४९०	२४	लाने	लीने
४९३	२२	साझ	साजे
,,	५	ध्रग	धर्म
४९९	३	सुझांय	सुझाय
,,	२२	पख्या	खख्या
५००	१	मन वशील	मानव शील
,,	१०	विंच्योजात	विंच्यो न जात
,,	११	भारण	वारण
५०२	९	केकीर	केकी
५११	१९	वृप	वृक्ष
५१४	१५	रमरणिक	रमणिक
,,	,,	आदेय छे	आदे अछे
५१५	४	गधपेमे	गधप्रेमे
५१६	२१	सूद्रा	मुद्रा
५१८	१०	छे	छ
,,	१२	द्रे	व्हे
५२०	८	नित	नवि
५२१	३	तास	नास
५२८	२०	उदयाचलि	उदयावलि

पृ.	प	अशुद्धि	शुद्धि
५२९	४	जीवे	जावे
५३९	१५	शिशि	शशि
५४७	१६	सथिर	अथिर
५५१	१२	गाना रे	वधारे
५६०	१०	सत्तर	सत्तर
५६१	१६	षोटश	षोडशदळ
५६६	८	व्यय	अव्यय
,,	१३	यानपान	यानपात्र
,,	१४	गुणरागा	गुणखाण
५६८	१	अलेष	अलष
५६९	९	वाय	वाय
५७१	११	नियें	निचे
५७२	१५	आदरे	आदर
,,	२४	घात	थात
५७३	४	भटता	जडता
५७५	१०	मनपर्यें	मनपर्यव
५७९	४	कुभकरण	कुभकरण
,,	१०	षष्ठमो	षष्ठ

कर्मग्रन्थः

५८५	१६	विरोप	विरोष
५८९	१२	उसन्न	ओसन्न
६००	७	उव्वग	उव्वग
६०२	२२	सस्थान	सस्थान

पृ.	प.	अशुद्धि.	शुद्धि.
६२८	७	नम्यो	नम्या
६३२	१	तीर्थंकरो	तीर्थंकर न
६३४	५	अपर्याप्त्याभे	अपर्याप्तअवस्थामें
६३९	४	मार्गणाम	मार्गणामें
६४४	५	कम्मुरुल	कम्मुरल
६४६	१०	मय	मइ
६४८	५	किण्ह्ता	किण्हा
६४९	३	जीवमें	जीव
”	१२	मार्गणा	मार्गणामें
”	१५	तिरिं	तिरि
६५३		असत्पाअमृपा	असत्पामृषा (सर्वत्र)
६५८	१८	पहेली	पहेलो
”	१८	मनोयोग	मनोयोगे
६७३	५	लद्धि	लब्धि
६८१	१	मध्यय	मध्यम
६८३	९	नवामा	नवमा
”	१३	चतुर्थो	चतुर्थ
”	१३	कर्मग्रन्य	कर्मग्रन्य
”	१४	समेत	समेत
”	१४	समासम्	समास
६८४	५	सद्वार	सद्द्वार
६८८	१३	निद्दो	निद्दो
”	१४	अध्रुवोदयी	अध्रुवोदयी
७१०	२०	आवलीनी	आवलिनो

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि.
७१८	४	पत्ते	पज्जे
७३५	९	अनुव	अनुव]
७५२	१०	मोटा	मोटी
,,	१०	न्हाना	न्हानी
,,	८	मवरा	प्रवरा
,,	१०	सत्रार्थं	सूत्रार्थं
,,	१४	श्वरान्	श्वराव्
७६१	२३	भवे	भव
७६३	१	सेवम	सेवन
७६७	१४	विकल्य	विकल्प
७६९	१६	कर्ण	करण
७७२	७	निश्रय	निश्चय
७७४	६	शुद्धोपयोगे	अशुद्धोपयोगे
७७५	४	निश्चयनय	निश्चयनयी
,,	१२	एटटे	एटले
७८०	२१	अशुद्रोपयोग	शुद्धोपयोग
७८१	२०	विभाग	विभाव
७९०	२	पुव्व	पुव्व
७९५	२	विपेशे	विशेषे
७९८	११	विषयमिलापी	विषयाभिलापी
८०७	७	पश्चशद्	पश्चाशद्
,,	८	ननालि	नमालि
८०८	२१	स्तोत	स्तोक
८१४	४	गर्वादिक	गुर्वादिक

पृ	प	अशुद्धि.	शुद्धि.
८१७	२	वेद	वेदनीय
८१८	२५	परिराह्नोपनाणनाण	परिसहपन्नासुनाण
८१९	१	चेन	चेळ
"	२	पुरसाकारो	य राम्मत
"	६	लष्ठु	लष्ट
८२०	२५	पुरितसिहाणु	पुरिसासिहाणु
८३५	६	कम्म	कम्म
"	९	अनत	अवत
८३७	१६	जीव	अजीव
८३८	५	समयोर्व्वं	समयोर्व्वं
"	६	सम्पनरत्वोपशमिक	सम्यक्त्वौपशमिक
"	१९	पिछइ	पिच्छइ
८३९	२२	गणि	मणि
"	२४	रयण	रयण
"	२४	वेअड्ढ	ग्रैवेयक
८४०	१४	तिर्जर	तिर्जरा
"	२२	सव्वङ्काओ	सव्वट्ठाओ
८४१	३	देजोनी	देवोनी
८४२	१०	अत्येन्द्रि	अतीन्द्रिय
"	१६	अनावगाहि	अनवगाही
"	२२	द्रव्यपणे	द्रव्यपणे
८४३	१३	सत्य	सत्त्व
"	१४	असत्य	असत्त्व
"	१७	स्वप्रदेश	सप्रदेश

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
८४७	१५	सस	शसय
८५३	१६	उद्द्रव	उपद्रव
८५४	९	वत्थुमि	वत्थुम्मि
”	९	चउउउम	छउम
”	२१	अट्ठुण	अट्ठुणं
८६०	२१	जीवने	जीव
८६२	१९	मिथ्यात्वनय	मिथ्यात्वना
८६४	३	कसाय	कसाया
”	४	अजिय	अज्जिय
”	४	चरित	चरित्त
८६६	१५	सम्यक्य	सम्यक्त्व
”	१७	समकिन	समकित
”	२०	क्षयोप	क्षयोपशम
८६७	१९	रतोके	तोके
८६८	८	वीस	वीस
८७०	१८	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व
”	२४	सुख	सुखं
८७१	३	मूनि	मूनि
”	८	निक्तन	निवर्त्तन
”	९	दठ	हल
”	१६	तपयतो	तप्व्रत
८७२	१०	वृतो	वृत्तौ
”	११	दिनकृतौ	दिनकृत्ये
”	१३	इर्यावथिकी	इर्यापथिकी

पृ.	प.	अशुद्धि.	शुद्धि.
८७४	५	रुदि	उदि
,,	५	नर्मी	नर्मी
,,	७	इद्रि	इदि
,,	१०	शिल्प	शिल्प
,,	२०	जपा	जण
,,	३०	रुपे	रुवे
,,	२१	योगे	जोए
,,	२४	अने	अनेक
८७७	१७	चर्मांत्रें	चरमान्तें
८७८	४	उच्छेदागुल	उत्सेधागुल
,,	७	पमागगुल	पमाणगुल
,,	८	दुगणिय	दुगुणिय
,,	८	वीरसायगुल	वीरस्सायगुल
,,	१०	पमाणगुलेण	पमाणगुलेण
,,	१६	अर्थाग्रहना	अर्थान्नग्रहना
,,	९	आयगुलन	आयगुलेन
८८३	८	वासमय	वास सय
,,	९	किस	केस
,,	९	सस्साइ	तसाइ
८८८	७	आकुट्टिकया	आकुट्टिका
,,	७	त्साहोत्मिका	त्साहात्मिका
,,	९	कदर्प्पे	कदर्प्प
,,	१०	कल्प	कल्पः
,,	१२	योगीउप	योगोप

पृ.	प	अशुद्धि	शुद्धि.
,,	१२	रुपा	रुप
८९०	१९	उमत्ते	उम्मते
,,	२०	अमृढेय	य मृढेय
८९१	२	लोहोह	लोहोय
,,	८	वली	वळी
,,	१३	सन्नाह	सन्नाए
,,	१६	भावदशा	भावदिशा
,,	१६	द्रव्यदशा	द्रव्यदिशा
८९२	१५	स्वयोग	स्वयोग्य
,,	१५	पर्याप्ति	पर्याप्ती
,,	१६	समर्था	समर्थ्य
,,	१८	च	हि
८९३	२१	वलिय	दलिय
८९५	६	आश्री	समयआश्री
८९६	८	पुरसकार	पुरिसक्कार
,,	११	गुणिए	गुणिए
,,	११	पाणीग्रह	पाणीग्रह
,,	११	दुसतवेयाल	दुसयतवेयाल
८९८	११	११ मा सुवी	१२ मा सुवी
९००	१७	पइअमसखया	पइअसमसखया
९०६	१२	यतिया	जत्तिया
,,	१३	इति	इति
,,	१३	तितिया	तत्तिया
९१०	१८	णणयोयो	नणयोयो

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
११६	१३	वामी	जामि
,,	१४	गेविरझे	गेविज्झे
,,	१९	निनाणु	नियाणु
,,	२१	निनाणु	नियाणु
,,	११	वणरस	वणरसइ
११९	४	पादोपगम	पाद्मोपगम
,,	९	सचित्त	अचित्त
,,	९	अचित्त	सचित्त
,,	१९	अन	अवः
,,	१८	असख्यता	असख्याता
१२०	१४	प्राणातिपात	प्राणातिपात विरमण
,,	१८	सवाच्छ	सवा-छ
१२२	११	निगह	निग्गह
१२६	१२	अगुसेठी	अगुल सेढी
१२९	५	सयकेवलि	सुयकेवलि
,,	९८	कारण	कारण तैजसम्
,,	१४	मूत्त	मूय
१३९	२	उद्देशासना	उद्देशाना
,,	५	आगमनना	आगमना
,,	२५	बडिझव्वे	पडिवच्चे
१४०	१७	उगवमाणो	उग्गमंमाणो
१४२	१२	प्रपचा	प्रपच
,,	२१	कला	वेला
१४४	२४	काल	काले?

पृ.	प	अशुद्धि	शुद्धि.
१५५	१५	भुवरि	भुवरि
१५८	५	निछुग्वाडीओ	निच्छुग्वाडीओ
१५९	५	भाग	भाग
”	९	तद्त्य	तद्त्य
”	९	सूक्ष्म	सूक्ष्मो
१६०	१५	नवी	नथी
”	१७	दुयाहिण्ण	दुयाहिएण
१६१	५	तिर्यच्येत्र	तिर्यंचएव
”	१२	अरिह	अरिह

कर्मसंवेध

१६७	८	अट्ठच्छा	अट्ठछा
”	९	छदोसु	छदोसु
”	९	सिठाइ	सिच्छाइ
”	१२	म ग	म. ग १
१७७	९	अनहारक	अनाहारक
१८०	९	वणसय	पणसय
”	१०	इक्कारसय	इक्कारसय
”	१४	मिवज्ज	खविज्ज
”	१५	तिछज्जुआ	तित्यजुआ
”	१९	पयत्त	पज्जत्त
”	१९	तिठयर	तित्ययर
”	२३	पुव्वत्ता	पुव्वुत्ता

पृ.	प	अशुद्धि.	शुद्धि
,,	२४	कसाग	कसाय
,,	२४	मिछअसगी	मिच्छअसन्नि
१८२	१०	पणदि	पणिंदि
,,	१०	नच्छि	नत्थि
,,	११	दाग	दस
१८३	९	तिठ	नित्य
,,	९	विगउदि	विगलिंदि
,,	१०	परहारे	परिहारे
,,	१२	मिछा	मिच्छा
,,	१२	निठ	नित्य
,,	१३	मिछम्	मिच्छ
,,	१८	अज्ज	अपज्ज
१८६	११	अविरतति	अविरति
१८८	१०	छच	पच
,,	११	तिवइ	तिनवइ
१८९	१५	युआ	युआ
,,	१९	मिछ	मिच्छ
,,	२०	उदस्तु	उदयुच्छु
,,	२३	पडगही	पडिगहि
१९१	३	जएनिअर	जहन्नियर
,,	३	ठइठाणा	ठिइठाणा
,,	६	उणु	उणू
,,	७	दलिअ	दलिआ
१९२	१२	मज्जत्थ	मज्झत्थ

पृ	प.	अशुद्धि	शुद्धि
,,	१३	ज्जाण	झाण
,,	१४	अग्गाहणीअ	अग्गायणी
,,	१५	ततो	तत्तो
९९३	१६	निज्झर	निज्जर
,,	१८	निज्झरा	निर्जरा
९९६	१७	ग्रहस्त्छ	ग्रहस्थ
९९८	२०	श्राविक	श्राविका
१००३	१०	णुजुत्त	अणुजुत्त
,,	१०	पेछइ	पेच्छइ
,,	११	कुसुमाचुअराइणा-येगा मजरागहिया	कुसुमियचूयतेणएगा मजरी गहिया
,,	११	खवावारेणलयतण	खवावारेण लयतेण
,,	१२	पडिनियत्तओ	पडिनियत्तो
,,	१२	कहे	कहिं
,,	१३	अमच्चणादसाओ	अमच्चेण दसणाओ
,,	१३	पच्छसन्वण	पच्छासव्वेण
,,	१२	कट्ठाविसेसी	कट्ठाविसेसो
१००६	११	उपसमकितथी	उपशमसमकितथी
,,	१९	अतमुहूर्त	अंतर्मुहूर्त
,,	२४	,,	,,
१००७	१२	बूद्धि	बुद्धि
१०१२	११	निरावणा	निरावरणा
,,	१४	मुजतो	मुजतो
१०१४	५	६	५

पृ	प	अशुद्धि	शुद्धि
१०१५	८	मिडामि	मिच्छामि
"	१४	"	"
"	२२	"	"
१०१६	२	"	"

अशुद्धि शुद्धि अंगे सूचना.

पृ १ प. ज्या " २९ कोडाकोडी " इत्यादि खपावनानु कह्यु छे त्या साधिक पल्योपमना असख्यातमा भाग अधिक २९ को को इत्यादि जाणवु

पृ २ प ३ १ " एक कोडाकोडीसागर " स्थाने देशण एक कोडाकोडीसागर वाचवु

पृ २ प ४ थी ९ "मुहूर्त" ने स्थाने अन्तर्मुहूर्त वाचवु

पृ २१ प ९ " अरुपी " स्थाने रुपी अरुपी बन्ने ग्रहण करवा.

पृ ४० प ८ थी १० " कोइ एक प्रदेशे असख्य, अनत, वा सख्यात अगुरु लघु गुण कह्यो छे " परन्तु प्रति प्रदेशे अनत अगुरु लघु सर्वदा होय छे अने समय तथा प्रदेशोमा परस्पर असख्यगुण वा अनतगुण वा सख्यगुण हानी वृद्धि ए परिणमे ए अर्थ ग्रहण करवो

पृ ५२ प ६ पर्याय ते गुणमा सक्रमावे इत्यादि वाक्यमा मनोयोगनेज पर्यायथी उतारी गुणमा संक्रमावे इत्यादि

जाणवु कारण के द्रव्य, गुण, पर्यायनो परस्पर सक्रम होय नहि

पृ ५३ मा जीव अयोगनीगुणस्थानेथी नीचे केम नथी जतो? एना उत्तरमा मुख्य उत्तर जीवनी स्वाभाविक गति ऊर्ध्वज छे एटलु जाणवु

पृ ९८ प १२ "दर्शनगुण ते विशेष छे" ए स्थाने "ज्ञान-गुण ते विशेष छे" एम जाणवु

पृ ५५० प १७ "सादि अनादि अउेगतछेदरे" ए पदना अर्थमा प्रथम "अनादि" ने पछी "सादि" ए अनुक्रम राखवो

पृ ५५४ प ९ "निर्विषवायु आवार छे" ए स्थाने त्रिवि-धवलय आवार छे" ए अर्थ सभवे

पृ ५८५ गाथा ७ मीना अर्थमा पर्यायसमासादिकना अर्थमा ज्या ज्या "सर्व' पद आवे त्या त्या "एकथी अधिक" वा 'अनेक" एवो अर्थ करवो

पृ ५९० प ६ "एक कोडाकोटी" ने स्थाने "देशूण-पल्योपमना असख्यातमा भाग हीन एक कोडाकोडी" एम जाणवु

पृ. ६३५ प -१८ "ते आहारपर्याप्ति ताइज सास्वादन भावमे वरते" एम कह्यु छे परन्तु सास्वादनपणु, तो आहार पर्याप्तियी आगळ शरीर पर्याप्ति सुधी होय छे कारण के आहारपर्याप्ति तो १ समय मात्र छे ने अने अपचेन्द्रिय जीवोने सास्वादनपणु समय मात्र होय एम कहेवानु प्रयोजन नहि.

पृ. ६५५ गाथा ३१ ना टनामा फेरलिने ७ योगमा " असत्य-मनयोग तथा " असत्यवचनयोग " गणाव्यो छे ते स्थाने असत्यामृषामनयोग तथा असत्यामृषावचन-योग गणवो

पृ. ६६१ प १० " मानकषायीथी क्रोधीमु मायाथी कपटी अधिकार छे " ए स्थाने मानकषायीथी क्रोधी अधिक छे ने क्रोधीथी मायानी कपटी अधिक छे एम वाचवु.

पृ ६६१ प प १४ " च्यारगतिमें समकीते सर्व जीव छे. " ए स्थाने " चारे गतिमा समकीती जीवने अवधिज्ञान होय छे माटे " एम वाचवु

पृ ७३६ प २ " औदारिकथी वैक्रिय सूक्ष्म, भाषाथी उश्वास-सूक्ष्म, " एमा मध्ये रही गयेलो पाठ आ प्रमाणे जाणवो औदारिकथी वैक्रिय सूक्ष्म, वैक्रियथी आहारक सूक्ष्म, आहारकथी तैजस सूक्ष्म, तैजसथी भाषा-सूक्ष्म, भाषाथी उश्वाससूक्ष्म

पृ. ८०९ " चार वार श्रेणिगत अने पाचमीवार पडता " ए प्रमाणे उपशम सम्यक्त्वनी ५ वार प्राप्ति कही छे परन्तु अनादि मिथ्यात्वीने सम्यक्त्वनी प्रथम प्राप्तिमा एकवार अने चारवार श्रेणिमा, ए रीते ५-वार उपशम सम्यक्त्वनी प्राप्ति जाणवी.

तथा आठमे गुणठाणे अटकीने क्षपकश्रेणि मांडीने केवल ज्ञान पामे" एम कह्यु छे, परन्तु श्रेणिथी पडी ७ मे अप्रमत्त गुणठाणे आवीनेज क्षपकश्रेणि माडी शकाय परन्तु ८ मेथी नहि एम जाणवु

घणे स्थाने सयुक्त " झ " ने बदले मात्र " ठ " छपायलो छे अने " निर्जरा " शब्दमा ज्झ छपायलो छे, " निज्जरा " इत्यादि शब्दमा ज्ज ने स्थाने ज्झ छपायलो छे, ने तेवा घणा शब्दो होवाथी ते सर्व शब्दोनी शुद्धि आपेली नथी तोपण आ सूचनाथी तेवा शब्दो सुधारीने वाचवा

तथा जे शब्दोनी एकवार शुद्धि आपी छे तेवा प्रकारना बीजा सर्व सरखा शब्दो पण तेवीज शुद्धिवाळा जाणीने वाचवा कारण के तेवा अनेक शब्दो आवेला होवाथी सर्व शब्दोनी शुद्धि दाखल करता ग्रथ वधी जाय छे.

तथा कइक स्थाने अक्षरो एक बीजा शब्दमा जोडाइ गयेला होवाथी वाचक वर्गने अर्थ समजवो अशक्य थाय ते सभवित छे तो तेने स्थाने अक्षरो अर्थने अनुसारे मेलवीने वाचवा तेमाना कइक स्थान नीचे प्रमाणे छे

पृ. ५०० प १ " मन वशील विनागत तेज छे रे " ए स्थाने " मानव शीलविना गततेज छेरे " एम वाचवु

पृ ५०३ प. ७ " करे जसु वाणि रे " ए स्थाने " करेज सुवाणि रे " एम वाचवु

पृ ५०६ प १४ चलचित्तकारि जन विसरे रे " ए स्थाने " चलचित्त कारिज नवि सरे रे " एम वाचवु.

पृ. ५५५ प. ४ " मोहनीदलय लीन " ए स्थाने " मोहनिंद लयलीन " वाचवु

पृ ५५३ प. २१ " कनसें जेम न खन " ए स्थाने " सन सेजे मन खत " एम वाचवु. इत्यादि.

पृ. ६५५ गाथा ३१ ना टबामा केवलिने ७ योगमा " असत्य-मनयोग तथा " असत्यवचनयोग " गणाव्यो छे ते स्थाने असत्यामृषामनयोग तथा असत्यामृषावचन-योग गणवो

पृ. ६६१ प १० " मानकषायीथी क्रोधीमु मायावी कपटी अधिकार छे " ए स्थाने मानकषायीथी क्रोधी अ-धिक छे ने क्रोधीथी मायावी कपटी अधिक छे एम वाचवु.

पृ ६६१ प. प. १४ " च्यारगतिमे समकीते सर्व जीव छे " ए स्थाने " चारे गतिमा समकीती जीवने अवधि-ज्ञान होय छे माटे " एम वाचवु.

पृ ७३६ प २ " औदारिकथी वैक्रिय सूक्ष्म, भाषाथी उश्वास-सूक्ष्म, " एमा मध्ये रही गयेलो पाठ आ प्रमाणे जाणवो औदारिकथी वैक्रिय सूक्ष्म, वैक्रियथी आहा-रक सूक्ष्म, आहारकथी तैजस सूक्ष्म, तैजसथी भाषा-सूक्ष्म, भाषाथी उश्वाससूक्ष्म

पृ. ८०९ "चार वार श्रेणिगत अने पाचमीवार पडता " ए प्रमाणे उपशम सम्यक्त्वनी ५ वार प्राप्ति कही छे परन्तु अनादि मिथ्यात्वीने सम्यक्त्वनी प्रथम प्रा-प्तिमा एकवार अने चारवार श्रेणिमा, ए रीते ५ वार उपशम सम्यक्त्वनी प्राप्ति जाणवी.

तथा आठमे गुणठाणे अटकीने क्षपकश्रेणि मा-डीने केवल ज्ञान पामे" एम कह्यु छे, परन्तु श्रेणिथी पडी ७ मे अप्रमत्त गुणठाणे आवीनेज क्षपकश्रेणि माडी शकाय परन्तु ८ मेथी नहि एम जाणवु

શ્રીમદ્ બુદ્ધિસાગરજી ગ્રન્થમાળામાં પ્રગટ થયેલા ગ્રન્થો.

		પૃષ્ઠ	
૧	ભજન સંગ્રહ ભાગ ૧ લો	૨૦૦	૦-૮-૦
૧	અધ્યાત્મ વ્યાખ્યાનમાળા	૨૦૬	૦-૪-૦
૨	ભજનસંગ્રહ ભાગ ૨ જો	૩૩૬	૦-૮-૦
૩	ભજનસંગ્રહ ભાગ ૩ જો	૨૧૫	૦-૮-૦
૪	સમાધિ શતકમ્	૩૪૦	૦-૮-૦
૫	અનુભવ પચ્ચિસી	૨૪૮	૦-૮-૦
૬	આત્મપ્રદીપ	૩૧૫	૦-૮-૦
૭	ભજનસંગ્રહ ભાગ ૪ થો	૩૦૪	૦-૮-૦
૮	પરમાત્મદર્શન	૪૩૨	૦-૧૨-૦
૯	પરમાત્મજ્યોતિ	૫૦૦	૦-૧૨-૦
૧૦	તત્ત્વબિંદુ	૨૩૦	૦-૪-૦
૧૧	ગુણાનુરાગ (આવૃત્તિ બીજી)	૨૪	૦-૧-૦
૧૨-૧૩	ભજનસંગ્રહ ભાગ ૫ મો તથા જ્ઞાનદીપિકા	૧૯૦	૦-૬-૦
૧૪	તીર્થયાત્રાનું વિમાન (આ બીજી)	૬૪	૦-૧-૦
૧૫	અધ્યાત્મ ભજનસંગ્રહ	૧૯૦	૦-૬-૦
૧૬	ગુરુબોધ	૧૭૨	૦-૪-૦
૧૭	તત્ત્વજ્ઞાનદીપિકા	૧૨૪	૦-૬-૦
૧૮	ગહુંલી સંગ્રહ	૧૧૨	૦-૩-૦
૧૯-૨૦	શ્રાવકધર્મસ્વરૂપ ભાગ ૧-૨ (આવૃત્તિ ત્રીજી)	૪૦-૪૦	૦-૧-૦
૨૧	ભજન પદ સંગ્રહ ભાગ ૬ ઠ્ઠો	૨૦૮	૦-૧૨-૦
૨૨	વચનામૃત	૩૦૮	૦-૧૪-૦
૨૩	યોગદીપક	૨૬૮	૦-૧૪-૦
૨૪	જૈન ઐતિહાસિક રાસમાળા	૪૦૮	૧-૦-૦
૨૫	આનન્દઘન પદસંગ્રહ ભાવાર્થ સહિત	૮૦૮	૨-૦-૦
૨૬	અધ્યાત્મ શાન્તિ (આવૃત્તિ બીજી)	૧૩૨	૦-૩-૦
૨૭	કાવ્યસંગ્રહ ભાગ ૭ મો	૧૫૬	૦-૮-૦
૨૮	જૈનધર્મની પ્રાચીન અને અર્વાચીન સ્થિતિ	૯૬	૦-૨-૦
૨૯	કુમારપાલ ચરિત્ર (હિંદી)	૨૮૭	૦-૬-૦
૩૦	થી ૩૪ સુખસાગર ગુરુગીતા	૩૦૦	૦-૪-૦

શ્રીમદ્ બુદ્ધિસાગરજી ગ્રન્થમાળામાં પ્રગટ થયેલા ગ્રન્થો.

		પૃષ્ઠ	
૧	ભજન સંગ્રહ ભાગ ૧ લો	૨૦૦	૦-૮-૦
૧	અધ્યાત્મ વ્યાખ્યાનમાળા	૨૦૬	૦-૪-૦
૨	ભજનસંગ્રહ ભાગ ૨ જો	૩૩૬	૦-૮-૦
૩	ભજનસંગ્રહ ભાગ ૩ જો	૨૧૫	૦-૮-૦
૪	સમાધિ શતકમ્	૩૪૦	૦-૮-૦
૫	અનુભવ પચ્ચિશી	૨૪૮	૦-૮-૦
૬	આત્મપ્રદીપ	૩૧૫	૦-૮-૦
૭	ભજનસંગ્રહ ભાગ ૪ થો	૩૦૪	૦-૮-૦
૮	પરમાત્મદર્શન	૪૩૨	૦-૧૨-૦
૯	પરમાત્મજ્યોતિ	૫૦૦	૦-૧૨-૦
૧૦	તત્ત્વબિન્દુ	૨૩૦	૦-૪-૦
૧૧	ગુણાનુરાગ (આવૃત્તિ બીજી)	૨૪	૦-૧-૦
૧૨-૧૩	ભજનસંગ્રહ ભાગ ૫ મો તથા જ્ઞાનદીપિકા	૧૯૦	૦-૬-૦
૧૪	તીર્થયાત્રાનું વિમાન (આ બીજી)	૬૪	૦-૧-૦
૧૫	અધ્યાત્મ ભજનસંગ્રહ	૧૯૦	૦-૬-૦
૧૬	ગુરુબોધ	૧૭૨	૦-૪-૦
૧૭	તત્ત્વજ્ઞાનદીપિકા	૧૨૪	૦-૬-૦
૧૮	ગહુંલી સંગ્રહ	૧૧૨	૦-૩-૦
૧૯-૨૦	શ્રાવકધર્મસ્વરૂપ ભાગ ૧-૨ (આવૃત્તિ ત્રીજી)	૪૦-૪૦	૦-૧-૦
૨૧	ભજન પદ સંગ્રહ ભાગ ૬ ઠ્ઠો	૨૦૮	૦-૧૨-૦
૨૨	વચનામૃત	૩૦૮	૦-૧૪-૦
૨૩	યોગદીપક	૨૬૮	૦-૧૪-૦
૨૪	જૈન ઐતિહાસિક રાસમાળા	૪૦૮	૧-૦-૦
૨૫	આનન્દઘન પદસંગ્રહ ભાવાર્થ સહિત	૮૦૮	૨-૦-૦
૨૬	અધ્યાત્મ શાન્તિ (આવૃત્તિ બીજી)	૧૯૨	૦-૩-૦
૨૭	કાવ્યસંગ્રહ ભાગ ૭ મો	૧૫૬	૦-૮-૦
૨૮	જૈનધર્મની પ્રાચીન અને અર્વાચીન સ્થિતિ	૯૬	૦-૨-૦
૨૯	કુમારપાલ ચરિત્ર (હિંદી)	૨૮૭	૦-૬-૦
૩૦ થી ૩૪	સુખસાગર ગુરુગીતા	૩૦૦	૦-૪-૦

૩૫. પુદ્ગલ વિચાર	૨૪૦	૦-૬-૦
૩૬. વિજાપુર વૃત્તાંત	૯૦	૦-૪-૦
૩૭ સાબરમતી કાવ્ય	૧૫૬	૦-૬-૦
૩૮ પ્રાંતિજ ઈતિહાસ	૧૧૦	૦-૫-૦
૩૯-૪૦-૪૧ જૈનગચ્છમત પ્રબંધ સંઘપ્રગતિ જૈનગીતા		૧-૦-૦
૪૨ જૈન ધાતુપ્રતિમા લેખ સંગ્રહ		૧-૦-૦
૪૩ મિત્રમૈત્રી		૦-૮-૦
૪૪ શિષ્યોપનિષદ્		૦-૨-૦
૪૫ જૈનોપનિષદ્	૯૮	૦-૮-૦
૪૬-૪૭ ધાર્મિક ગદ્યસંગ્રહ તથા પત્રસદુપદેશ ભાગ ૧ લો	૯૭૬	૩-૦-૦
૪૮ શ્રીમદ્ દેવચંદ્રજી પ્રથમભાગ	૧૦૨૮	૨-૦-૦

નીચેના ગ્રન્થો પ્રેસમાં છપાય છે

(૧) કર્મયોગ (૨) ભજનપદસંગ્રહ ભાગ ૮ મો (૩) શ્રીમદ્ દેવચંદ્રજી ગ્રંથસંગ્રહ દ્વિતીયભાગ

નિચલા સ્થળે પુસ્તકો મળે છે.

મુંબાઈ, પાયધુની બુકસેલર-મેઘજી હીરજી

,, ચંપાગલી અધ્યાત્મ જ્ઞાન પ્રસારક મંડળ.